नवल किरण, कवि—राजपति दुवे 'बालेन्दु', प्रकाशिका—श्रीमती रानी देवी दुबे, द्वारा—श्री विश्वेश्वरदयाल शर्मा, हर्षनगर, इटावा (उ०प्र०)

अपने प्रिय शिष्य श्री राजपति दुवे 'बालेन्दु' जी के सम्बन्ध में उनके साहित्यिक-गुरु, पिंगल-शास्त्र के आचाय श्री राधा वल्लभ दीक्षित 'वल्लभ' जी ने जो कुछ लिखा है सर्वप्रथम उसे जान लेना आवश्यक है, 'यह देखकर और भी प्रसन्नता होती है कि वे (बालेन्दु जी) काव्य के प्रति आधुनिकता के चक्कर में नहीं पड़े हैं। फलतः उनकी रचनाओं का सम्बन्ध भारतीय चिरन्तन काव्य-धारा से अविच्छिन्न बना हुआ है। वे लोकगीतों की रचना में तो अद्वितीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाएँ भी भाव-प्रवणता, मधुर व्यंजना शैली और रसानुकूलता में निराली हैं।" संग्रह कविताएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में कवि का काव्यादर्श व्यक्त हुआ है:—

भावना सुकुमार दे दो,
प्रणय पारावार दे दो,
स्वप्न था कोई सलोना, याद अब भी आ रहा है।

गेयता का बाहुल्य बालेन्दुजी की विशेषता हो सकती है और उसी के अनुकूल उनकी भाषा भी प्रस्तुत हुई है, किन्तु कुछ स्थानों पर अशुद्ध वाक्य-रचना अखरती है। जैसे—'छोड़कर मझधार में जब चल दिए मैंने पुकारे', 'लहर बन चूमूँ पुलिन, जिस ठाँव आ प्रिय पाँव फेरा'। इसी प्रकार पृष्ठ १४ पर 'आशा की निर्मल पवनों में' पवन का बहुवचन 'पवनो' अशुद्ध है और पवन शब्द स्त्रीलिंग नहीं है।

कवि ने लोकगीत लिखने का भी प्रयास किया है। किंतु लोक-भाषा, लोक-भाव, लोक-प्रकृति के बिना वे कैसे सफल हो सकते हैं? भला इन पक्तियों में लोक-गीत कहाँ है?

बिरहा के गीत जगे, डोली परछाइयाँ।
कूक भरी कोयल ने, उमँगी अमराइयाँ।
लाज भरी चितवन में डूबी गहराइयाँ।
पुलक भरे तन-मन में, गूँजी सहनाइयाँ।

प्रस्तुत संग्रह में स्मृति, प्रकृति, जीवन, स्वप्न दीपावली, प्रगति, राजघाट, नेता, मानव और ईंट, पद्रह अगस्त, सैनिक, जवाहरलाल नेहरू, एटम, युद्ध, मैं और तुम, राष्ट्र, राष्ट्रकवि, प्यार, विरह-वेदना, जय जवान जय किसान आदि अनेकानेक विषयों पर कविताएँ लिखी गयी हैं। कवि में भावुकता है। उसमें विकास की भी सभावनाएँ हैं।

अनुभूतियों के घेरे, कवि—बालकृष्ण मिश्र, प्रकाशक—गोपाल कृष्ण मिश्र, रफीनगर, रायबरेली।

'अपनी कलम से' शीर्षक के अन्तर्गत श्री बालकृष्ण मिश्र ने लिखा है, "मेरी धारणा है—विज्ञान भौतिक दृष्टि से भले ही किसी परिवर्तन में समर्थ हो किन्तु मनोभावों की सृष्टि में उसका प्रभाव सदैव नगण्य रहेगा। मानवीय मनोदशाओं की रेखाएँ और उनके संवेग अपनी सत्ता, अपनी इकाई, अपना लक्ष्य अलग ही रखेंगे। हाँ, शैलीगत वैचित्र्य को लेकर उनका वाह्य रूप विभिन्न परिधानों में अपना आकार बदलता रहे यह दूसरी बात है।"

कवि आन्तरिक दृष्टि से सम्पन्न और भावानुकूल भाषा का धनी ज्ञात होता है। वह वहिर्मुखी कम, अन्तर्मुखी अधिक है। उसने हर विषय पर गम्भीरता से विचार किया है। वह भावना का पुजारी है। 'एक ताजमहल—अनेक भावनाएँ, शीर्षक कविता में निम्न पक्तियाँ देखिए:—

ढह जाता निर्माण
अनश्वर सदा भावना
ढह जाएगा ताज—
अगर है ताज-कल्पना

श्री बालकृष्ण मिश्र की वे कविताएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है जिनमें प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद अथवा विरोधी वस्तुओं का सम्वाद व्यक्त करने की स्थिति आयी है। कवि ने कई जगह निगमन शैली अपनाई है, सूत्र को विस्तृत

सरस्वती
जून १९६१

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में दो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएं, ६० कहानी-लेखकों की कहानियां तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१६ रु०—डाक व्यय—२·१० पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—३० रु०—डाक व्यय—२·७० पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—१२ रु०, डाक व्यय के लिए २·१० पैसे अतिरिक्त]

माननीय श्री श्रीमन्नारायण (भारतीय राजदूत, नेपाल)

"यह अंक सचमुच बहुत उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। सरस्वती के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अपूर्व सेवा हुई है उसकी झलक इस अंक द्वारा मिलती है।"

पद्मभूषण श्री सुमित्रानन्दन पंत

नि:संदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूं। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम बकदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्यसेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

ज़िन्दगी के मोड़ पर

लेखक—त्रिलोकी नाथ 'रंजन'

रात सूनी, दूर मंजिल । क्या हुआ ?—दिल को न हारो,
चांद छूने को उड़ी जाती चकोरी को निहारो
दूर तट।—निर्जीव लहरों ने कभी क्या हार मानी ?
पथ बना, लड़ती अटकती-हांपती ये आ पहुंचती हैं किनारे ।

उदीयमान कवि रंजन की स्फूर्तिदायक सरस कविताओं का यह प्रथम संग्रह है । कवि मस्ती और उल्लास का प्रतीक है, प्यार और प्रेरणा उसके गीतों के प्राण हैं । वह अपने गीतों की सरसता और ओजस्विता से श्रोता या पाठक को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर लेता है। उसमें मधुरता कूट-कूट कर भरी है जिसे वह सहज ही पाठकों में बांटता है ।

भावों का चतुर चितेरा है । जो कुछ भी उसने लिखा है बड़ी ईमानदारी से लिखा है या यों
देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, लिखा गया है । उसका काव्य श्रमसाध्य नहीं, इसीलिए कोई गीत वर्षों
ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह ज... पर लहराने लगा । कवि जब मन के भावों को एक रंगीन मज़
न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक ... शब्दों से एक मस्ती-सी फूटती है
विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है । मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्य...
मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है । इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्य...
श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया । उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा । मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं । अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें ।

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित ब्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नरपतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है । पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है । अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४·००

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है । कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है। अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या २५६ है। मूल्य ३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७०
पूर्ण संख्या ८३४

इलाहाबाद : जून १९६९ : अषाढ़ २०२६ वि०

खण्ड १
संख्या ६

सम्पादकीय

राष्ट्रपति के उत्तराधिकार का प्रश्न—राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन के अचानक निधन ने हमारे संविधान की एक त्रुटि को समस्या के रूप में खड़ा कर दिया है। संविधान के अनुसार यदि किसी कारण से राष्ट्रपति का स्थान सहसा रिक्त हो जाय तो उपराष्ट्रपति कार्यवाहक रूप से तुरन्त उस पद का भार ले लेंगे और तब तक उस स्थान पर रहेंगे जब तक कि नये राष्ट्रपति का चुनाव विधिवत् न हो जाय। संविधान के अनुसार यह चुनाव इस पद के रिक्त होने के बाद शीघ्रातिशीघ्र किया जाय, किंतु इसमें किसी भी हालत में ६ महीने से अधिक समय न लगे। जब तक राष्ट्रपति का चनाव न होगा तब तक उपराष्ट्रपति का पद रिक्त रहेगा। अब प्रश्न यह है कि यदि इस बीच किसी कारण से (जैसे ऐसी बीमारी से जो कार्यवाहक राष्ट्रपति को कार्य करने के योग्य न रखे) तो राष्ट्रपति का काम कौन सँभाले। देश के भावी इतिहास में ऐसे अवसर आ सकते हैं। तब क्या किया जाय? अमरीका में राष्ट्रपति का पद अचानक रिक्त होने पर उपराष्ट्रपति उनके पद पर स्थायी रूप से चला जाता है, किंतु यदि उपराष्ट्रपति का पद किसी कारण से रिक्त हो और उस समय राष्ट्रपति का स्थान भी अप्रत्याशित रूप से खाली हो जाय तब क्या होगा? अमरीका ने इसके लिए ऐसा पक्का प्रबन्ध किया है कि क्रम से १२ व्यक्ति राष्ट्रपति का कार्यभार सँभाल सकते हैं। वे ये हैं—

(१) उपराष्ट्रपति

(२) सदन का अध्यक्ष

(३) सिनेट का अध्यक्ष

(४) सेक्रेटरी आफ स्टेट (प्रधान या विदेश मंत्री के समानान्तर)

(५) सेक्रेटरी आफ दि ट्रेजरी (वित्तमंत्री)

(६) सुरक्षा मंत्री

(७) एटार्नी जनरल (विधिमंत्री)

(८) पोस्टमास्टर जनरल (डाकतार मंत्री)

(९) सेक्रेटरी आफ दि इंटीरियर (गृहमंत्री)

(१०) सेक्रेटरी आफ ऐग्रिकलचर (कृषिमंत्री)

(११) सेक्रेटरी आफ कामर्स (वाणिज्य मंत्री)

(१२) सेक्रेटरी आफ लेबर (श्रममंत्री)

उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें प्रथम ३ को छोड़ कर शेष सब व्यक्ति राष्ट्रपति द्वारा नामित व्यक्ति होते हैं जिनकी नियुक्ति की पुष्टि संसद द्वारा की जाती है। अमरीका में मंत्रिगण चुनाव लड़कर इन पदों पर नही आते। उत्तराधिकार की इस लंबी सूची के कारण अमरीका में राष्ट्रपति-पद के एक साथ कई बार रिक्त होने पर भी वह तत्काल इस लंबी सूची के कारण भरा जा सकता है और राष्ट्रपति के रिक्त रहने का कोई वैधानिक संकट उत्पन्न नही हो सकता।

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन के निधन के बाद उपराष्ट्रपति श्री वेंकटगिरि वाराहगिरि संविधान के अनुसार तत्काल कार्यवाहक राष्ट्रपति हो गये। उपराष्ट्रपति का पद (जो स्थायी रूप ही से रिक्त होने पर चुनाव से भरा जाता है) रिक्त हो गया। इस समय कोई उपराष्ट्रपति नहीं है, और इस कारण राष्ट्रपति पद का कोई उत्तराधिकारी नही रह गया। इस समस्या को सुलझाने के लिए संसद ने एक सरकारी विधेयक स्वीकार कर लिया है कि उपराष्ट्रपति के न होने पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पद पर कार्य करनेवाला व्यक्ति तब तक स्थानापन्न राष्ट्रपति का काम करे जब तक कि नया स्थायी राष्ट्रपति न चुन लिया जाय।

सरकार और कुछ विरोधी दलों मे इस विषय में मतभेद था। विरोधी दलों का कहना था कि प्रजातन्त्र में राष्ट्रपति पद पर स्थानापन्न कार्य करने के लिए वही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए जो अपने पद पर चुनाव से आया हो। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं। अतएव उन्हें स्थानापन्न राष्ट्रपति न बनाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका एक तर्क यह भी था कि स्थानापन्न कार्यकाल में उन्हें संसद या विधान सभाओं द्वारा पारित अनेक अधिनियमों पर स्वीकृति देनी पड़ती है। उनमें से कितने ही की वैधानिकता का प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता है। राष्ट्रपति पद पर से हटने पर संभव है कि मुख्य न्यायाधीश को उस पर निर्णय भी देना पड़े। उस अवस्था में अपने स्वीकृत अधिनियम की वैधानिकता पर विचार करते समय वे असमंजस में पड़ सकते है। इसलिए उन्हें ऐसे धर्म-संकट में डालना उचित न होगा। किंतु सरकार का कहना था कि राज्यों में राज्यपाल का पद रिक्त होने पर संविधान के अनुसार अभी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश स्थानापन्न राज्यपाल का कार्य करता है। उसी उदाहरण के अनुसार केन्द्र में राष्ट्रपति के पद पर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का कार्य सँभाल लेना कोई असंगत बात न होगी। फिर, अभी संविधान में कोई संशोधन नहीं किया जा रहा। इस समय केवल संभाव्य आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए यह प्रस्ताव रखा गया है।

संसद ने सरकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अब राष्ट्रपति पद पर स्थानापन्न कार्य करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरा व्यक्ति तत्काल उपलब्ध हो सकेगा।

राष्ट्रपति का चुनाव—किंतु नये राष्ट्रपति का चुनाव होना है। संविधान की मंशा है कि रिक्त पद को स्थायी रूप से भरने के लिए यथासंभव शीघ्र चुनाव कर लिये जायें। उसने इसके लिए अधिक से अधिक समय छः महीने दिया है। भारत मे दीर्घसूत्रता का ऐसा प्रकोप है कि यहाँ 'अधिकतम' अवधि 'न्यूनतम' हो जाती है। फ्रांस में राष्ट्रपति दि गॉल के त्यागपत्र देने पर कुछ ही सप्ताहों में नये राष्ट्रपति का चुनाव हो रहा है।

भारत में राष्ट्रपति का चुनाव संसद और राज्य-विधान सभाओं के सदस्य करते हैं। इन सबको मिलाकर उन्हें 'निर्वाचक मंडल' (ऐलेक्टोरल कॉलिज) की संज्ञा दी गयी है। यह चुनाव कुछ जटिल है क्योंकि विधानसभाओं और संसद के सदस्यों के मतों का मूल्य अलग-अलग संख्याओं में है। संसद के दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) के सदस्य निर्वाचन मंडल में हैं, किन्तु राज्यों में केवल विधानसभाओं के सदस्यों को राष्ट्रपति के चुनाव का अधिकार है।

राष्ट्रपति के पद के चुनाव मंडल के सदस्यों की संख्या और उनके मतों का मूल्य इस प्रकार है :—

राष्ट्रपति-निर्वाचन मण्डल

संसद

मतदाताओं की संख्या		मतों का मूल्य अंकों में
लोकसभा	५२०	२,९९, ५२०
राज्यसभा	२२८	१३१, ३२८
	७४८	४, ३०,८४८

राज्य विधानसभाएँ

असम	१२६	११,८४४
आंध्रप्रदेश	२८७	३५,८७५
उड़ीसा	१४०	१७,५००
उत्तर प्रदेश	४२५	७३,९५०
केरल	१३३	१६,८९१
गुजरात	१६८	२०,६६४
जम्मू-कश्मीर	७५	४,४२५
तमिलनाडू (मदरास)	२३४	३३,६९६
नागालैण्ड	५२	३६४
पंजाब	१२४	११,१२८
पश्चिम बंगाल	२८०	३५,०००
बिहार	३१८	४६,४२८
मध्य प्रदेश	२९६	३२,२६४
महाराष्ट्र	२७०	३९,४२०
मैसूर	२१६	२३,५४४
राजस्थान	१८४	२०,२४०
हरियाणा	८१	७,६१६
योग—	३,३८९	४,३०,८४७
महायोग	४,१३७	८,६१,६९५

केन्द्रीय शासित प्रदेशों (हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणीपुर, गोआ, पांडिचरी) की विधानसभाओं के सदस्य इस निर्वाचन मंडल में नहीं हैं क्योंकि वे 'राज्य' नहीं हैं।

हिन्दीभाषी पाँच राज्यों के मतों की संख्या १,६०,४९६ है। संसद में भी उनका यही अनुपात (४० प्रतिशत से कुछ ही कम) है।

चुनाव कराने का उत्तरदायित्व भारत के महा निर्वाचन आयुक्त का है। वे ही चुनाव का प्रबन्ध करेंगे और वे ही परिणाम घोषित करेंगे।

संविधान के अनुसार यह चुनाव स्थान रिक्त होने के बाद यथासम्भव शीघ्र होना चाहिए, किंतु ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि सरकार को उसे शीघ्र कराने की कोई विशेष चिंता है। राष्ट्रपति के पिछले चुनाव तक सत्ताधारी कांग्रेस दल का संसद और राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों में बहुत भारी बहुमत था। किन्तु पिछले चुनावों के बाद कांग्रेस के इस एकाधिकार को काफी धक्का लगा है। वर्तमान सदस्यों (रिक्त स्थानों को छोड़कर) को देखते हुए निर्वाचन मण्डल के कुल ८६१६९५ मतों में कांग्रेस के पास आज ४५६,६२७ मत हैं। अतएव पहिले की तरह वह जिस किसी को भी चाहे, विश्वास के खास, इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर सकती किंतु इस बार का राष्ट्रपति का चुनाव विशेष महत्व का है। अभी तक सामान्य चुनावों के तत्काल बाद ही राष्ट्रपति का चुनाव होता था। इस बार जो व्यक्ति राष्ट्रपति चुना जायगा वह चुनाव के दिन से पूरे पाँच वर्ष तक इस पद पर रहेगा। अगले सामान्य चुनाव १९७२ ई० में होंगे। उस समय की राजनीतिक स्थिति अनिश्चित होगी। प्रधान मन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति को काफ़ी अधिकार है। अतएव स्वभावतः कांग्रेस यही चाहेगी कि उसी के दल का कोई व्यक्ति राष्ट्रपति चुना जाय। किंतु वर्तमान स्थिति में उसका बहुमत इतना स्वल्प है कि अनुशासन की तनिक सी ढील या आंतरिक दलबन्दी के कारण अपने मनोनीत प्रत्याशी को इस पद पर बैठाने में उसे बड़ी कठिनाइयाँ हो सकती हैं। अभी तक वह राष्ट्रपति के चुनाव मे किसी अन्य दल से सलाह नहीं करती थी, क्योंकि उसका स्पष्ट और भारी बहुमत था। किंतु जैसा कि ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट है, उसे पूरा विश्वास नहीं है कि वह अकेले सफलता प्राप्त कर सकेगी और यदि सफल हो भी जाय तो इतने कम मत से राष्ट्रपति चुना जायगा कि वह जनता का पूरा विश्वास शायद प्राप्त न कर सके। शायद इसी कारण प्रधान मंत्री ने एक भाषण में कहा है कि राष्ट्रपति के चुनाव की समस्या दलगत नहीं है, वह राष्ट्रीय है। कांग्रेस के एक प्रमुख नेता ने पहिली बार इस सामान्य तथ्य को स्वीकार किया है। किंतु कांग्रेस अभी किसी विरोधी दल से किसी अपने चाहे प्रत्याशी के लिए समझौता नहीं कर सकी है। इसलिए राष्ट्रपति के चुनाव में विलम्ब हो रहा है। विरोधी दल कांग्रेस द्वारा मनोनयन की राह देख रहे हैं। भीतर-भीतर दलों में विचार-विमर्श हो रहा है किंतु जब तक कांग्रेस

अपने पत्ते नहीं खोलती तब तक वे भी चुप हैं। किंतु संविधान के अनुसार इस रिक्त स्थान की पूर्ति ६ महीने के भीतर हो जानी चाहिए। अतएव "बकरी की माँ बहुत दिन खैर नहीं मना सकती।" दलगत राजनीतिक सुविधाओं या दाँव-पेचों के कारण इसे टाला नहीं जा सकता। राजनीतिक दलों को खुले में शीघ्र ही आना पड़ेगा। हमें आशा है कि देश के गौरव का ध्यान रखकर वे किसी ऐसे व्यक्ति को राष्ट्रपति चुनेंगे जिसके चरित्र, गम्भीरता, न्यायप्रियता और योग्यता के कारण उसे जनता का हार्दिक एवं सहज सम्मान और प्रेम प्राप्त हो सके।

संसद सदस्यों के भत्ते में वृद्धि—जब हमारा संसद बना तब उसके सदस्यों का मासिक वेतन ४०० रुपये मासिक और संसद तथा उसकी समितियों की बैठकों में आने के लिए २१ रुपये प्रतिदिन का भत्ता निश्चित किया गया। हिन्दुओं में दान देते समय शून्यान्तक अंक अशुभ समझा जाता है। इसलिए १० या २० रुपये का दान देते समय उसकी संख्या ११ या २१ कर दी जाती है। धर्मनिरपेक्ष संसद सदस्य अपना भत्ता २१ करने में इस हिन्दू 'अंधविश्वास' से पीड़ित न थे। वेतन के ४०० और दैनिक भत्ते के २० मिला कर ४२० बनता है और यह भारतीय दण्ड विधान की एक बड़ी बदनाम धारा है। 'चार सौ बीसिये' के नाम से बचने लिए भत्ते को २१ रुपये कर दिया गया। किंतु इन बीस वर्षों में मँहगाई बहुत बढ़ गयी है और इसलिए १९६४ में संसद सदस्यों ने अपना वेतन ५०० रु० मासिक और भत्ता ३१ रु० कर लिया। चूंकि भत्ता मूलतः २१ था, अतएव २० रु० की बढ़ोत्तरी करने के लिए वह ३१ किया गया। और अब इस संसद ने अपना भत्ता पाँच वर्ष बाद ही बढ़ा कर पूरे ५१ रु० प्रतिदिन कर लिया है। संसद के सदस्यों को अपना वेतन और भत्ता बढ़ाने के लिए किसीकी खुशामद नहीं करनी पड़ती—प्रदर्शन, सत्याग्रह या किसीका घिराव नहीं करना पड़ता। वे स्वतन्त्र और निरंकुश है। अपने आप अपना वेतन और भत्ता बढ़ा सकते हैं। यह सही है कि कुछ विरोधी दलों के सदस्यों ने इस बढ़ोतरी का विरोध भी किया, किन्तु सम्बन्धित मन्त्री ने यह कहकर उन्हे चुप कर दिया कि यदि आप इस बढ़ोतरी को पसंद नहीं करते तो पुरानी दर ही से भत्ता लेते रहें। नयी दर से भत्ता लेने को आप विवश नहीं हैं। जनता को प्रभावित करने के लिए मौखिक विरोध करना एक बात है, और आती हुई लक्ष्मी को लात मारना दूसरी बात है। देखना है कि इन वाक्शूर विरोधियों में कोई ऐसा माई का लाल निकलता है जो 'दरिद्र, परेशान, त्रस्त और पीड़ित, जनता की सहानुभूति में भत्ते की बढ़ी हुई रकम लेने से इनकार कर दे। देश में आज जो महँगाई बढ़ी है उसके कारण ये संसद सदस्य स्वयं हैं क्योंकि इन्हींकी स्वीकृत आर्थिक नीतियों के कारण यह विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी है। अवश्य ही इन नीतियों का प्रवर्तन सरकार या योजना आयोग करता है, किंतु संसद सदस्यों की स्वीकृति के बिना वे न लागू हो सकती हैं और न चल सकती हैं। अपनी ही पैदा की हुई महँगाई से त्रस्त होकर उन्होंने अपना भत्ता बढ़ाया है। किंतु क्या महँगाई केवल उन्हीके लिए हैं ? बेचारे पेंशनवाले व्यक्ति जिनकी पेंशनें उस समय तय हुई थीं जब गेहूँ एक रुपये का पाँच सेर मिलता था, आज भी वही पुरानी पेंशन पा रहे हैं। वित्तमंत्री मुरारजी देसाई ने कह दिया कि उनके पास पेंशनें बढ़ाने को रुपया नहीं है। किंतु संसद सदस्यों के लिए उन्हें रुपया मिल ही गया। इसी प्रकार अध्यापक, क्लर्क (विशेषकर छोटे क्लर्क) आदि सीमित और निर्धारित आय के लोगों को आज जो कष्ट है उसकी ओर तभी ध्यान दिया जाता है जब उग्र का प्रदर्शन हों, सत्याग्रह हो, लाठी चलानी पड़े, अश्रु गैस छोड़नी पड़े या गोली चलाने की नौबत आ जाय। और तब कुछ ले-देकर मामला रफ़ा-दफा करने का प्रयत्न किया जाता है। संसद सदस्यों से उस जनता की सहानुभूति में अधिक कष्ट सहने और त्याग करने की आशा की जाती है जिसके वे प्रतिनिधि हैं। किंतु पुरानी कहावत है—'अपना हाथ, जगन्नाथ!'

किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। संसद सदस्यों के वेतन में वृद्धि करने, उन्हे विमान से यात्रा करने की (रेल की प्रथम श्रेणी में तो वे सारे देश में अब भी मुफ्त यात्रा कर सकते हैं), डाक-टेलीफोन की, निजी सचिव रखने आदि की अनेक खर्चीली सुविधाएँ देने के लिए, तथा विदेश यात्रा में व्यय के लिए विदेशी मुद्रा की अतिरिक्त धनराशि ले सकने के लिए एक विधेयक संसद में रखा जानेवाला है। उसके भी स्वीकृत हो जाने की सम्भावना है। शायद कुछ सामान्य फेर बदल हो जायें। देश में वर्गवाद के विरुद्ध नारे लगाये जाते हैं, किंतु नये-नये वर्ग बनते ही जाते हैं। अपने

विशेषाधिकारों और बढ़ी हुई आर्थिक हैसियत के कारण संसद सदस्यों का एक नया वर्ग बन रहा है जो शासकों और प्रशासकों के वर्ग के समान जनता से अधिकाधिक दूर होता चला जा रहा है। इससे उत्पन्न सामाजिक विषमता देश के भविष्य के लिए अशुभ प्रमाणित होगी।

अपॉलो-१० की आश्चर्यजनक सफलता—चन्द्रमा पर मनुष्य को उतारने की योजना की तैयारी में अपॉलो-१० की यात्रा सम्बन्धी आश्चर्यजनक सफलताओं से प्रेरित होकर १९६१ में अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति कैनेडी ने घोषणा की थी कि १९७० के पहिले अमरीका अपने किसी अंतरिक्ष यात्री को चन्द्रमा पर उतार देगा। उस समय अमरीका के वैज्ञानिकों को भी इसकी पूर्ति में सन्देह था। किन्तु वे इस काम में एकाग्र चित्त से लग गये और अपॉलो-१० की उपलब्धि उनकी आशा से भी अधिक सफल रही। आरम्भ में वहाँके वैज्ञानिकों में इस बात पर मतभेद था कि चन्द्रमा पर मनुष्य को किस प्रकार उतारा जाय। वैज्ञानिकों के एक दल का मत था कि पूरे यान को सीधे चन्द्र-तल पर उतारा जाय, और दूसरा दल कहता था कि वह इतना भारी (प्राय: ७ टन) है कि अंतरिक्ष में उसे छोड़ने के लिए एक करोड़ बीस लाख पाउण्ड की ठोकर देनेवाले प्रक्षेप्य की आवश्यकता होगी। किन्तु जो सबसे शक्तिशाली प्रक्षेप्य उपलब्ध था वह था शनि-५ जो ७५ लाख पाउण्ड की ठोकर देता है इस दूसरे मत के वैज्ञानिकों में प्रमुख थे डा० हूबोल्ट। उनका कहना था कि अन्तरिक्ष यान चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण वृत्त में परिक्रमा करता रहे, और उसमें से एक छोटे यान (नॉड्यूल) में बैठकर एक-दो अंतरिक्ष यात्री चन्द्र-तल पर उतरें। इस छोटे यान में ऐसे इंजन लगे रहें जो चलाने पर उसे चन्द्रतल से इतना ऊँचा उठा दे कि वह परिक्रमा करते हुए अन्त रिक्षयान के पास पहुँच जाय, और वे उसमें से निकलकर मुख्य अंतरिक्षयान में आ जायँ, और तब अपने इंजिन चलाकर मुख्य यान चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण वृत्त से निकल कर पृथ्वी पर लौट आने की यात्रा आरम्भ कर दे। अन्त में डा० हूबोल्ट की योजना के अनुसार ही काम किया गया। किन्तु इस यात्रा के लिए जिन संयंत्रों, बेतार के संचार साधनों, बेतार से चित्र और चलचित्र भेजने आदि की जो व्यवस्था की गयी थी उनकी जाँच आवश्यक थी। यह भी आवश्यक था कि चन्द्र-तल के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जाय, और चंद्रतल पर जहाँ ये अंतरिक्षयात्री उतारे जायें, वहाँकी स्थिति, धरती की बनावट, उसकी नरमी-कठोरता आदि का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। इसके लिए 'अपॉलो' नामक अतरिक्षयान बनाया गया, और जाँच-पड़ताल के लिए १० 'अपॉलो' यानों को चंद्रमा के निकट भेजा गया। प्रत्येक 'अपॉलो' की यात्रा से कुछ न कुछ महत्त्वपूर्ण नयी बातें मालूम हुईं तथा उसमें लगे संयंत्रों की कार्यप्रणाली की त्रुटियों और विश्वसनीयता की पुष्टि की गयी। अपॉलो-१० अंतिम परीक्षणयान था। इसका उद्देश्य चद्रमा के गुरुत्वाकर्षण वृत्त में पहुँचकर यह देखना था कि उससे जिस छोटे यान (मॉड्यूल) में बैठाकर मनुष्य चंद्रतल पर उतारे जायेंगे, वह यान उतर कर अपने इंजिनों के बल से मुख्ययान तक लौट सकता है या नहीं। जब अपॉलो-१० चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण परिधि में पहुँच गया तब वह चंद्रमा से १३० किलोमीटर की दूरी पर उसकी परिक्रमा करने लगा, और उसने दो मनुष्यों को छोटे यान में बैठाकर चंद्रमा की ओर भेजा। यह छोटा यान चंद्रतल पर उतर सकता था, किन्तु इसका यह उद्देश्य नहीं था। इस बार तो केवल यह देखा जा रहा था कि वह ठीक काम करता है या नहीं। अतएव वह चद्रतल से १५ किलोमीटर (साढ़े नौ मील) की ऊँचाई पर पहुँचकर रुक गया और चद्रमा की परिक्रमा करने लगा। सागरमाथा (माउण्ट ऐवरेस्ट) समुद्रतल से प्रायः ५ मील ऊँचा है। यह छोटा यान चद्रतल से उस ऊँचाई की दुगनी से कुछ कम ऊँचाई तक पहुँच गया था। इतने निकट से किसी मनुष्य ने चंद्रमा के दर्शन नहीं किये थे। दूरबीनों की सहायता से उन दो अमरीकियों ने चन्द्र-तल का सूक्ष्म निरीक्षण किया। इसके बाद अपने छोटे यान के इंजिन को चालू करके वे, पूर्व योजना के अनुसार, ऊपर उठे और मुख्य यान तक पहुँच गये। वे छोटे यान से निकल कर, अंतरिक्ष ही में, मुख्य यान में घुस गये, और पृथ्वी को वापस लौट आये। इस प्रकार उन्होने यह सिद्ध कर दिखाया कि (१) मुख्ययान से निकलकर और छोटे यान में बैठकर चंद्रतल तक पहुँचा जा सकता है, और (२) यह छोटा यान अपने इंजिन की शक्ति से परिचालित होकर चंद्रतल से ऊपर उठकर फिर मुख्य यान तक पहुँच सकता है।

अपॉलो-१० की यात्रा असाधारण रूप से सफल हुई। उसके सब जटिल से जटिल संयंत्र बिल्कुल ठीक तरह से काम करते रहे। वैज्ञानिकों ने उसका जो कार्यक्रम बनाया

था वह पूरा ही नहीं प्रत्युत हुआ, ठीक समय से पूरा हुआ। कहीं एक मिनिट का भी अंतर नहीं पड़ा। महासागर में जहाँ उसे उतरना था वह वहीं ठीक समय पर उतरा। अपॉलो-१० की सफलता अमरीकी वैज्ञानिकों और अभियंताओं के उन्नत ज्ञान, कल्पना, परियोजना, दक्षता और सहयोग का महानतम प्रमाण है। यह यात्रा उसके वीर यात्रियों के साहस और दक्षता की कीर्ति-गाथा है।

अब जुलाई में अमरीका अपॉलो-११ छोड़ेगा जो अपॉलो-१० की तरह चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण वृत्त में परिक्रमा करते हुए एक छोटे स्वचालित यान में २ सैनिकों को चंद्रतल पर उतारेगा। आशा की जाती है कि वे चंद्रतल पर कई घंटे रहकर उसकी मिट्टी, पत्थरों आदि के नमूनों के अतिरिक्त अन्य भौगोलिक एवम् वैज्ञानिक महत्त्व की जानकारी प्राप्त कर सकगे। यदि यह यात्रा सफल हुई तो चन्द्रमा पर पहुँचने का मनुष्य का युगों पुराना स्वप्न पूरा हो जायगा।

शुक्र ग्रह की रूस द्वारा खोज—अमरीका चंद्रमा पर मनुष्य को उतारने के काम मे एकाग्र चित्त से लगा है, किन्तु रूस ने अपना ध्यान सौर मण्डल के अन्य ग्रहों के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने मे लगा रखा है। अपने लक्ष्यों की भिन्नता के कारण अमरीका अपने यानों में मनुष्यो को वैठाकर छोड़ता है, और रूस बिना मनुष्यों के उन्हें भेजता है। दोनों ही ब्रह्माण्ड में स्वचालित या मनुष्य-चालित अंतरिक्ष यान भेज सकते हैं। जब अमरीका अपॉलो के उत्तेजक और प्रेरणाप्रद कार्यकलाप में व्यस्त था तब रूस ने अपना 'शुक्र-५' नामक यान शुक्र ग्रह की ओर छोड़ा। 'शुक्र-५' को शुक्र ग्रह में उतरना नहीं था। वह अंतरिक्ष में इस प्रकार छोड़ा गया था कि उस ग्रह के बहुत निकट होकर अज्ञात अंतरिक्ष में विलीन हो जाय। जब वह शुक्र से निकटतम दूरी पर पहुँच गया तब उसमें से एक के बाद एक करके धातु के दो अंडाकार गोले शुक्र ग्रह के तल की ओर छोड़े गये। यह कार्य रूस के वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला में बैठकर बेतार के संकेतों की सहायता से किया। इन खोखले गोलों में तरह तरह के संयंत्र लगे थे जो शुक्र के वायुमंडल के तापमान, उसमें भाप (जल के अंश) के अनुपात, उसके वायुमंडल की गैसों के विवरण, उसकी रेडियो सक्रियता, चुम्बकीय शक्ति, वायुमंडल के दबाव आदि को नापते और बेतार के द्वारा उन मापों को पृथ्वी पर भेजते जाते थे। शुक्र ग्रह का वायुमंडल घने कुहरे से इतना भरा है कि दूरबीन के द्वारा अन्य ग्रहों की तरह उसका तल नहीं देखा जा सकता है। अनुमान है कि उसके वायुमंडल में कार्बन मॉनॉक्साइड का प्राधान्य है और उसमें भाप का अंश बहुत अधिक है। उसका तापमान भी बहुत अधिक है। शुक्र-५ से शुक्र ग्रह पर गिराये गये गोलों में से एक ने ५३ मिनिट और दूसरे ने ५५ मिनिट तक बेतार द्वारा संकेत और संवाद भेजे। मालूम पड़ता है कि वहाँके अत्यधिक तापमान के कारण उन गोलों में रखे संयंत्र अधिक देर काम न कर सके। रूसी वैज्ञानिकों ने इस प्रकार जो जानकारी प्राप्त की है उसे अभी प्रकाशित नहीं किया। शायद उसका अध्ययन करने के बाद वे उसे प्रकाशित करें। किन्तु इतना तो उन्होंने घोषित कर ही दिया है कि शुक्र ग्रह इतना गरम है और उसकी दशा ऐसी है कि मनुष्य उस पर नहीं पहुँच सकता। वह उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। यह जानकारी भी बड़ी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। अब शुक्र-५ पर मनुष्य को उतारने का स्वप्न न देखा जायगा। जब रूसी वैज्ञानिक शुक्र-५ यान से छोड़े गये गोलों के संयंत्रों से प्राप्त जानकारी प्रकाशित कर देंगे तब हमें शुक्र ग्रह की प्रकृति का अधिक ज्ञान हो सकेगा।

पन्तजी को भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार—ज्ञानपीठ ने हाल ही में घोषणा की है कि इस वर्ष ज्ञानपीठ का चौथा पुरस्कार हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त को दिया गया है। इस निर्णय से जनता और साहित्य संसार को व्यापक संतोप होगा। पहिले वर्ष यह पुरस्कार मलयालम के प्रसिद्ध कवि श्री शंकर कुरुप को, द्वितीय वर्ष बँगला के उपन्यासकार को और तीसरे वर्ष कन्नड़ और गुजराती के दो कवियों को संयुक्त रूप से दिया गया था। इस वर्ष यह हिन्दी के एक कवि को मिला है। पुरस्कार एक लाख रुपये का है, और उस पर आयकर नहीं लगता। इसके साथ वाग्देवी की एक कांस्य प्रतिमा और प्रशस्तिपत्र भी भेंट किया जाता है। सुना जाता है कि हिन्दी और उर्दू के कई कवियों के कृतित्व पर विचार किया गया, और एक प्रस्ताव यह भी किया गया कि वह पन्तजी तथा उर्दू के एक कवि को संयुक्त रूप से दिया जाय। हर्ष और संतोष की बात है कि समिति ने यह प्रस्ताव नहीं माना।

पन्तजी हिन्दी के जीवित कवियों में सबसे वरिष्ठ है, और उनका कृतित्व सही अर्थं में युगांतरकारी रहा है। द्विवेदी युग में रीतिकालीन मांसल कविता के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसके फलस्वरूप खड़ीबोली में इतिवृत्तात्मक कविता लिखी जाने लगी जो पद्य अधिक, और काव्य कम होती थी। उस समय खड़ीबोली बन रही थी और उसकी भाषा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान ही खुरदुरी, उपदेशात्मक, उपयोगितावाद की कसौटी पर कसी हुई और अति शुद्धतावादी (प्योरिटन) होती थी। स्वयं आचार्यजी उस कविता से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने देखा कि हिन्दी में कविता लुप्त सी हो गयी है, और उन्होंने 'हे कविते !' नामक अपनी कविता में मानों उससे पूछा था कि तू कहाँ चली गयी है ? उस कविता का पहला पद्य है :

सुरम्यरूपे, रस-राशि-रंजिते,
विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गयी ?
अलौकिकानन्द विधायिनी महा,
कवीन्द्रकान्ते, कविते, अहो कहाँ ?

मानों इस प्रश्न के उत्तर में किशोर सुमित्रानन्दन पंत के रूप में कविता साकार सामने आ गयी। खड़ीबोली कविता की भाषा का संस्कार करके उसमें माधुर्य और सौष्ठव लाने का उन्होंने जो कार्य किया वह ऐतिहासिक महत्त्व का है। छायावाद का जनक कौन है इस विवाद में पड़ने की यहाँ आवश्यकता नहीं, किन्तु छायावाद को वृहत्त्रयी 'पंत, प्रसाद और निराला'—मे उनका नाम पहले लिया जाता रहा है। बहुत से अन्य कवियों की तरह उनका विकास एक बिन्दु पर आकर रुक नहीं गया। वे समय के अनुसार बदलते रहे। सौन्दर्य और प्रकृति के गायक से आरंभ कर वे मार्क्सवाद, यथार्थवाद, प्रयोगवाद की वीथियों का चक्कर लगाते हुए इस समय रवीन्द्रबाबू के समान 'मानवतावाद' पर पहुँच गये हैं। वे हिन्दी के गौरव हैं। उन्हें यह पुरस्कार देकर ज्ञानपीठ ने एक वास्तविक महाकवि का सम्मान किया है। हम भारतीय ज्ञानपीठ को इस विवेकपूर्ण निर्णय के लिए और पंतजी को इस पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। पन्तजी चिरजीवी हों और बहुत दिनों हिन्दी का गौरव बढ़ाते रहें। वे लक्ष्यपति तो थे ही, अब लक्षपति भी हो गये हैं।

इस पुरस्कार का एक व्यंग्य—पंतजी को यह पुरस्कार उनके 'चिदम्बरा, नामक संग्रह पर मिला है। इसमें उनके द्वितीय उन्मेष की कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जो शायद साम्यवादी धारा से प्रभावित हैं। उनमें (पृष्ठ ५० पर) एक कविता है जिसका शीर्षक है 'धनपति।' वह कविता यह है :

वे नृशंस हैं : वे जन के श्रमबल के पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जकके, भू जिनसे शोषित !
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित !

शय्या की क्रीड़ा कन्दुक है उनको नारी,
अहम्मन्य वे मूढ़, अर्थबल के व्यभिचारी !
सुरांगना, संपदा, सुराओं से संसेवित,
नरपशु वे : भू भार : मनुजता जिनसे लज्जित !

दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत !
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण !

पंतजी ऐसे सौम्य व्यक्ति में धनपतियों के प्रति इतना सात्विक आक्रोश उत्पन्न हो गया होगा कि उनके समान व्यक्ति की कलम से भर्त्सना के शब्दों की एक साथ इतनी लड़ियाँ फूट पड़ीं ! यदि पुरानी मान्यताओं के अनुसार पूछा जाय कि इस कविता में कौन सा 'रस' है तो हम यही कहेंगे कि इसमें 'आक्रोश रस' है, चाहे रस शास्त्र के ग्रंथों में उसका कहीं नाम भी न हो। इसमें पन्तजी ने आरंभ ही में एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिस पर ठहरकर कुछ सोचना पड़ता है : "नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित, नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित।" क्या धनी श्रम नहीं करते ? हमारा संपर्क धनिक वर्ग से नहीं के बराबर है, किंतु हमने अनेक राजाओं तथा धनिकों के बारे में सुना है कि उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ता है। सुना है कि सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला, पदमपत सिंहानियाँ, नवल टाटा, साहू जगदीशप्रसाद आदि धनपति प्रातःकाल से रात्रि तक काम में जुटे रहते हैं। अवश्य ही वे फावड़ा नहीं चलाते, किन्तु बौद्धिक ही कब उसे चलाता है ? शारीरिक श्रम न करनेवालों का नैतिकता से अपरिचित बतलाना एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे मानने पर हिमालय के अनेक पहुँचे हुए योगी और बुद्धिजीवी लोग उससे हीन समझे जाने लगेंगे।

किंतु हमें इस सब में व्यंग्य यह मालूम होता है कि इस काव्यसंग्रह को (जिसमें यह कविता है) एक धनपति ने (क्योंकि श्रीमती रमा जैन निर्णायक समिति में हैं और उन्होंने यह संग्रह अवश्य पढ़ा होगा) पुरस्कृत कर अपने हृदय की विशालता दिखलायी, और पन्तजी ने भी बावजूद उन विशेषणों के, जो उन्होंने धनपतियों के लिए प्रयुक्त किये हैं, एक धनपति को कृतार्थ करने के लिए उसका यह पुरस्कार स्वीकार कर लिया। अथवा वे ब्रजभाषा के अपने किसी पूर्ववर्ती सहधर्मी की सीख के अनुसार यह उचित समझते हैं कि चाहे "कंचन होवे कीच में" किंतु "ज्ञानी तजे न सोय।"

सरकंडों की नाव में अटलांटिक महासागर को पार करने का प्रयास—श्री चमनलाल का मत है कि दक्षिण अमरीका की प्राचीन मय या माया सभ्यता को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि अति पुरातन काल में भारतवासियों ने

वहाँ अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। आज से प्रायः साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व लघु एशिया में फिनीशिया नामक एक देश था। वर्तमान लैबनान प्रायः उसी क्षेत्र में है। इस देश के निवासी बड़े साहसी पोत चालक होते थे, और अपने छोटे छोटे जलयानों से दूर दूर देशों में जाकर व्यापार करते थे। मिस्र में नील-नदी के किनारे एक विशेष प्रकार का सरकडा होता है जिसे 'पैपिरस' कहते थे। अंग्रेजी शब्द 'पेपर' (कागज) उसी पेपिरस से बना है क्योंकि मिस्र में उसी से कागज बनाया जाता था। इन मजबूत और लम्बे सरकंडों के मुटठे बांधकर उनसे नावें भी बनायी जाती थीं, मिस्र की पुरानी कब्रों में (जिनमें राजाओं के शवों के साथ अनेक वस्तुएँ रख दी जातीं थीं) ऐसी नावों के नमूने मिले हैं। स्वीडन के एक सज्जन का विचार है कि किसी ऐसी ही सरकंडों की नाव पर आज से ४७०० वर्ष पूर्व कुछ फिनीशियन अटलांटिक को पार करके दक्षिण अमरीका पहुँचे होंगे। किंतु ये सज्जन केवल किताबी विचारक नहीं हैं उन्होंने यह कर दिखाने का निश्चय किया कि वास्तव में सरकंडों की नाव बना कर उसके द्वारा अफ्रीका से चलकर दक्षिण अमरीका पहुँचा जा सकता है। संसार में न तो साहसी व्यक्तियों की कमी है, और न दुसाहसियों की। इस विशाल पृथ्वी पर प्रत्येक संभव और असंभव विचार के समर्थक मिल जाते हैं। इन स्वीडिश सज्जन को भी छः सहयोगी मिल गये। ये सात साहसी सात देशों के हैं। इनमें एक रूसी और एक अमरीकी भी है। ईथोपिया में नील नदी के किनारे के प्रसिद्ध सरकंडे जमा किये गये, और उनसे १५ मीटर लम्बी एक नाव बनायी गयी। यह नाव ठीक उसी नमूने की है जैसी फ़राऊँ रामसिस के शवगृह में मिली थी। गत मास पश्चिमी अफ्रीका के किनारे से ये सातों साहसी 'रा' नामक इस नाव में अटलांटिक को पार करके दक्षिण अमरीका पहुँचने के लिए चल दिये है। 'रा' पुराने मिस्र के एक देवता (सूर्य) का नाम है। इसीलिए सरकंडों की इस नाव को यह मिस्री नाम दिया गया है। यदि यह यात्रा सफल भी हो गयी तो उससे 'फिनीशियन लोगों के सरकंडों की नाव में अटलांटिक महासागर को पार करने की संभावना मात्र ही प्रमाणित हो सकेगी। यह प्रमाणित करने के लिए कि वे वास्तव में वहाँ पहुँच गये थे, दूसरी तरह के प्रमाण आवश्यक हैं। जो भी हो, इस साहसिक यात्रा से यह स्पष्ट है कि अतरिक्षयानों और स्पुतनिक के इस युग में भी पुराने ढंग के साहसिक काम करने, खतरे उठाने तथा अपनी जान जोखिम में डालने का मनुष्य का उत्साह या प्रवृति कम नही हुई। हम इन साहसी वीरो की सफलता चाहते हैं।

सडक महत्त्वपूर्ण या पुराने वृक्ष?—अभी हाल में जापान के एक न्यायाधीश ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया है जिसमें सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तुओं के संरक्षण के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय व्यवस्था दी गयी है।

जापान में निक्को नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। जो स्थान भारत में ताजमहल का है, वही जापान में निक्को के मन्दिर का है। वह लकड़ी का बना है जिस पर लाख का चिकना और अत्यन्त चटक लाल रंग चढा हुआ है। यह मन्दिर सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में बनाया गया था। कला की दृष्टि से यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि सारे संसार के लाखों लोग इसे देखने प्रतिवर्ष वहाँ जाते हैं।

इस मन्दिर के सामने देवदारु के बारह पुराने वृक्ष लगे हैं। ये प्रायः ४०० वर्ष पुराने हैं। वे स्वयं तो आकर्षक हैं ही, उनसे उस मन्दिर का सौन्दर्य भी बढ़ता है।

किन्तु वे सड़क से लगे हुए हैं। यह सडक एक ऐसे स्थान को जाती है जहाँ छुट्टियों में बहुत से सैलानी पहुँचते हैं। यह सड़क वैसे तो बहुत सँकरी नहीं है, किन्तु समृद्ध जापान में मोटरों की सख्या इतनी बढ़ गयी है और छुट्टियों के दिनों में मोटर यातायात इतना बढ़ जाता है कि स्थानीय अधिकारियों ने सडक चौड़ी करने का निश्चय किया। उसे उस स्थान में चौड़ी करने में इन पुराने देवदारु वृक्षों का काटना अनिवार्य है। जब इनके काटने का समय आया तब मन्दिर के अधिकारियों ने न्यायालय से इस विध्वंस को रोकने की प्रार्थना की। यह मुकदमा पाँच वर्षो से चल रहा था। अन्त में टोकियो के जज श्री ईसीजावा ने गत मास अपना निर्णय दे दिया। उन्होंने इन पुराने देवदारु वृक्षों को काटने की अनुमति नहीं दी। इस महत्वपूर्ण निर्णय का सारांश यह है: एक सड़क के बदले में तो दूसरी सडक बना कर काम चलाया जा सकता है किन्तु सांस्कृतिक महत्त्व की पुरानी वस्तुओं का कोई विकल्प नही है। एक बार इन पुराने वृक्षों के काट दिये जाने पर इनकी पूर्ति नहीं की जा सकती। मन्दिर के सामने लगे ये बारह देवदारु के प्राचीन वृक्ष तेज यातायात से कही अधिक सुन्दर और महत्त्व पूर्ण हैं।

हमारे देश में नयी क्षणिक या सामान्य सुविधाओं के लिए प्राचीन स्मारकों का विध्वंस कर देने बहुत में कम लोगों को हिचक होती है। पुराने वृक्षों को काटने में तो यहाँके अधिकांश नये नागरिक और अधिकारी अत्यन्त हृदयहीन हैं। उन्हें जापान के इस न्यायाधीश की व्यवस्था से शिक्षा लेनी चाहिए। किन्तु अधिकारी तभी इन बातों का विचार करेंगे जब जनता मे सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तुओं और प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं से प्रेम हो। हमारे सुन्दर और दुर्लभ पशु धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे है। जंगल अमराइयाँ और बाग तेजी से काटे जा रहे हैं। यदि यही दशा रही तो वह दिन दूर नहीं है जब यह देश सपाट और सौन्दर्यहीन हो जायगा।

सप्तजिह्वा इति-हेति

डा० शिवराम सी० लेले, लखनऊ विश्वविद्यालय

[अति प्राचीन काल में पश्चिम एशिया में एक आर्य जाति रहती थी। जिसे हेति या हित्ती (हिटाइट) कहते थे। उनकी भाषा वैदिक भाषा से बहुत मिलती थी और वे ऐसे अनेक देवताओं की पूजा करते थे जो वैदिक देवताओं से मिलते थे। उन्होंने वहाँ एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर लिया था। विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत लेख में यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि हित्ती लोगों का बहुत कुछ इतिवृत्त वैदिक साहित्य में बिखरा पड़ा है। उन्हें 'सप्तजिह्व' भी कहते थे क्योंकि उनके साम्राज्य में सात भाषाएँ बोली जाती थीं। लेखक का मत है कि रावण हेति वंश का था तथा सिंधु घाटी (मोहनजोदड़ो) की सभ्यता हेतिओं की सभ्यता थी। लेखक का मत है कि दक्षिण-पश्चिम एशिया के प्राचीन इतिहास को समझने के लिए वैदिक साहित्य की सहायता लेना आवश्यक है—सम्पादक सरस्वती।]

भारतीय श्रुति-साहित्य, अपूर्वता से भरा है; अति प्राचीन इतिहास की सामग्री इस साहित्य में समाविष्ट है। यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में एक अति महत्त्व की बात आयी है। वह इस प्रकार हैं :—

"सप्त जिह्वाः इति; यान अमन् सप्त पुरुषान् एकं पुरुषम् अकुर्वन् तेषाम् एतद् आह।" (शत० ब्रा० ९-२-३-४४)

इसका अर्थ है—सात भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवालों का एक राष्ट्र निर्माण किया गया था; तब उस राष्ट्र को "सप्तजिह्वा" नाम दिया गया।

सात भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाले राष्ट्र का उल्लेख अति प्राचीन इतिहास मे आता है। सात भाषा बोलने वाले इस राष्ट्र का निर्माण एवं संगठन किया था 'हित्ती' लोगों ने। हिट्टी वा हिट्टाइट, इस शब्द का मूल है हेति; ये सारे शब्द परस्पर संलग्न हैं। हेति व प्रहेति ये दोनों सगे भाई थे। प्रहेति प्रारंभ से ही विरक्त प्रकृति का था, अतः उसने अपना सारा जीवन तप, ध्यान और ईश्वरार्चन में लगाया। हेति में ऐहिक प्रवृत्तियाँ अधिक बलवान् थीं। अतः उसने संसारी जीवन व्यतीत किया। इस हेति कुल में माली, सुमाली व माल्यवान् ये तीन महापराक्रमी और अग्नि समान तेजस्वी पुरुष हुए। लंकाधिपति रावण इनका नाती था।

विद्युत् केश हेति का पुत्र था। इस महापराक्रमी व परम शिवभक्त की पत्नी का नाम था 'सालकटंकटा'। 'सप्तजिह्वा' के समान यह 'सालकटंकटा' नाम भी अत्यधिक महत्त्व का है। इस नाम के प्रथमांग का—साल का एक अर्थ है चमकना। यह साल शब्द सालुस या इलुस नदी का संकेत भी करता है। इस अपूर्व नाम का उत्तरार्द्ध है, 'कटंकट'। यह कटंकट शब्द श्री शिवजी का तथा गणेश-जी का गुणपद (epithet) है। 'कटंकट' शब्द के अग्नि, सुवर्ण और चित्रक भी अर्थ हैं। इनमें अग्नि शिवजी का ही एक नाम है। यह कटंकट शब्द कटपुंट अथवा कटपोंट रूप में प्राचीन इतिहास में मिलता है। यह कटंकट अथवा कटपुंट क्षेत्र सालुस या इलुस नदी से घिरा था; यह सारा इतिहास 'सालकटंकट' इस महत्त्वपूर्ण नाम में ही सुरक्षित है। इस अनोखे नाम की और एक विशेषता है। यह नाम कौसल्या, कैकेयी आदि नामों के समान विशेष अर्थवाला है। कौसल्या और कैकेयी; कोसल और कैकेय देश की राजकन्या थीं। उसी प्रकार यह 'सालकटंकटा' 'सालकटंकट' देश की राजकन्या थी। इस अति महत्त्व के नाम के हेति कुल वालों के एक गोत्र नाम होने की भी पर्याप्त संभावना है। हेति-कुलोत्पन्न लोग वेदोपासक थे। उनका पठन-पाठनादि, सारा अध्ययन-आश्रमों में होता था। वेदोक्त यज्ञयाग, अग्निहोम, बहुसुवर्ण, गोमेध और वैष्णव व महेश्वरादि याग हेति कुलोत्पन्नों में प्रचलित थे। रावण का मातृकुल हेति; और पितृकुल मिलता है पुलस्ति। रावण के एक पुत्र मेघनाद अथवा इन्द्रजित ने अश्वमेध, राजसूय और उपरोक्त सारे याग शुक्राचार्य के नेतृत्व में किये थे। उसकी यज्ञशाला थी निकुंभिला में।

मनु के वंशज 'मानव', देवों के पक्षपाती थे और पराक्रमी मानवराजा स्वर्ग में देवों की सहायता के लिए जाते थे। स्वर्ग जीतना और देवों को हराना यह असुर-राक्षसों का ध्येय था। अतः स्वर्ग पर— देवो के निवास-स्थान पर— ये दोनों बार-बार आक्रमण करते थे। असुर और राक्षस जब तक एक थे, तब तक वे अजेय ही रहे। उनसे देवों की हार होती थी। अतः देवो ने—कूटनीति से काम लिया और

असुर तथा राक्षसों में फूट पैदा कर दी। इस प्रकार फूट कराकर देवों ने दोनों को अलग-अलग घेर कर उनका सफाया कर दिया। यह सारा इतिहास तैत्तिरीय संहिता में सुरक्षित है।

असुर, राक्षसादि नामों से पहचाने जानेवाले मनुष्य समूह और पिशाच, गुह्यक, गंधर्व, किन्नर आदि मानव-समूह वेद विरोधक व वेद जलाने वाले थे सो बात नहीं। ये लोग (विशेषतः असुर-राक्षस) वेद चुराया करते थे—जलाते नहीं थे। इन लोगों के आपस में विवाह भी होते थे। राक्षस-विवाह, भारतीय परंपरा में मान्य है; तथा गांधर्व और पिशाच-विवाह भी मान्य थे। पिशाच, शंकरजी के गणों में थे; एक पिशाच वेद भी थी। इन पिशाचों की अपनी भाषा थी और वह "पैशाची" नाम से प्रसिद्ध थी। पैशाची प्राकृत भाषा की एक उपभाषा है। आज भी पैशाची भाषा में गाने की परंपरा अफगानिस्तान के कामदेश में मिलती है।

असुर राक्षसादि वेदोपासक थे। इसका सबूत रामायण में ही मिलता है। सीता की खोज करने के लिए हनुमानजी लंका में निर्द्वन्द्व घूमते रहे थे। उस ससम भोर में उन्होने ब्रह्म-राक्षसों का (ब्राह्मण राक्षसों का) वेद-पठण-घोस सुना था। महापराक्रमी और ऋषि-भक्षक रावण के संबंध में एक अति विलक्षण परंपरा मिलती है। रावण महान् शिव-भक्त था। वेदों के खण्ड इसने किये थे। तथा वेदपठन के दृढ़ीकरणार्थ 'क्रम' जटा, घनादि पठन प्रकार रावण-निर्मित हैं।' (महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष—'रावण')

हेति तथा अन्य कुलोत्पन्नों को 'राक्षस' और 'असुर' संज्ञाएँ, हम लोगों ने दी हैं। तथा उनमें कुरूपता, भयानकता, उग्रता और जुगुप्सा निर्माण करने की चेष्टा भी जान बूझ कर की गयी है। कुरूपता, दानव, राक्षस और असुरों में नहीं थी ऐसा नहीं था। मानवों के समान उनमें भी कुरूप स्त्री-पुरुष थे। परन्तु उनकी भयानकता और जुगुप्सा निर्माण करनेवाला जो वर्णन मिलता है, वह पुराण-कारों की देन है। असुर-राक्षसों के आपस में, तथा गंधर्व, किन्नरादि से विवाह हुआ करते थे। गंधर्वो की सारी 'सुन्दरता' असुर व राक्षस कन्याओं में साकार हो चुकी थी। रावण की अभिषिक्त रानी मंदोदरी अपूर्व सुन्दरी थी; और वह थी असुरकन्या। सालकटंकटा की पुत्रवधू थी देववती। यह देववती गंधर्वकन्या थी। माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीन सुकेशपुत्र थे। इनका विवाह भी गंधर्व कन्याओं के साथ हुआ था। रावण की विगतधवा बहिन सूर्पणखा अपूर्व सुन्दरी थी; उसे रूपहीन बनाया गया था।

देवों की कूटनीति के कारण, असुर-राक्षसों की एकता भंग होने के साथ-साथ राक्षसों में भी दो पक्ष हो गये। एक पक्ष था देव सहायक, और दूसरा था देव-विरोधक। प्रथम गुट का नेता था कुबेर; और दूसरे गुट का नेता था रावण। वास्तव में राक्षस कुल का निर्माण हुआ ऋषि काश्यप से। स्वसा इनकी पत्नी थी। इनके पुत्र का नाम था राक्षस। इस राक्षस की संतति राक्षस कही गयी। ब्रह्माजी ने उदक निर्माण किया; और उसके संरक्षण के लिए राक्षस निर्माण किया। राक्षस यह शब्द 'रक्ष' धातु से बना है। जो रक्षण करता है वह राक्षस। राक्षसों की भयानकता, कुरूपता उद्दण्डता, मारकाट प्रियता, इत्यादि गुणावगुणों का अनुभव मनु के वंशजों को अधिक परिचय के कारण प्राप्त हुआ।

हेति कुल का भाग्यरवि प्रखर हुआ माल्यवान्, सुमाली व माली के कारण। हेति कुल में 'सुमालिया' नाम की गिरिवासिनी देवी की (दुर्गा की) उपासना प्रचलित थी। माली, सुमाली व माल्यवान् इन तीनों नामों पर उस उपासना का प्रभाव स्पष्टतया प्रतीत होता है। यहाँ से हेति इतिहास का आक्रमक युग प्रारंभ होता है। हेति भाषा में माली शब्द का अर्थ है 'स्वतंत्र, पराक्रमी पुरुष' और 'मेली' का अर्थ है दास। उक्त माली आदि नामों में हेति इतिहास के आक्रमणशील-युग का इतिहास सुरक्षित है। हेति लोगों की यह विशेषता बताई जाती है कि शासनकर्त्ता वर्ग प्रायः हेति राजाओं के नातेदारों का ही होता था। हेति की वह विशेषतः रावण के राज्य में भी पायी जाती थी। प्रहस्त (रावण का सेनापति) रावण का नातेदार ही था। रावण-साम्राज्य की उत्तर-सीमा के रक्षक सेनापति खर और सूर्पणखा, रावण के नातेदार ही थे।

संगठन मजबूत करने के बाद हेति आक्रमण शुरू हुआ। प्रारंभ में कुछ विजय मिली, परन्तु नारायणगण से जो युद्ध हुआ, उसमें माली, सुमाली, माल्यवान् हार गये। युद्ध-क्षेत्र में माली मारा गया; और दोनों भाई प्राण रक्षार्थ रसातल में जा छिपे। ईस्वी शती के ३२००—३४०० वर्ष पूर्व, पश्चिम एशिया में हेति का आक्रमण हुआ था। ये आक्रमक हेति पुरुष खंड में राज्य करते थे। पुरुषखंड के पास ही

एक 'गरोश' नाम का प्रान्त था, उस पर यह आक्रमण हुआ था। यह समय ईसा पूर्व ३२००—३५०० (अंदाज से) आता है। और सम्राट् था "गिल-गिमेश"—। इसको असीरिया के प्राचीन इतिहासवेत्ताओं ने सर्गोन बनाया। इस युद्ध में भी हेति लोगों की हार हुई।

रसा नदी के उत्तर तीर का प्रदेश था रसातल। अनुकूल काल पर्यंत सुमाली और माल्यवान् रसातल में छिपे रहे। सुअवसर पाकर सुमाली ने अपनी कन्या का विवाह विश्रवा पुलस्ती से किया। इस विवाह के कारण पुलस्ति और हेति कुलों में घनिष्ठता बढ़ी और उनकी आक्रमण शक्ति बढ़ी। रावणादि बन्धु विश्रवा पुलस्ति के आश्रम में पाले पोसे गये। उनका अध्ययन और शस्त्रास्त्र-शिक्षण उक्त आश्रम में हुआ। वैश्रवण कुवेर-रावण का सौतेला भाई था। रावण ने तपस्या करके अस्त्र-शस्त्रादि संपादन किये और सेना संगठित करके दिग्विजय आरंभ की। रावण की प्रारंभिक लड़ाई 'मरुत्त' नाम के राजा से हुई। रावण ने मरुत्त के यज्ञ का विध्वंस किया; और उक्त युद्ध में राक्षसों ने ऋषिओं का भक्षण भी किया। परन्तु राजा मरुत्त का वध नहीं किया। 'मरुत्त' यह नाम कशी अथवा कशु राजाओं की नामावली में मिलता है। अन्यत्र नहीं मिलता। रावण की विजय-यात्रा में असुर दैत्यादिकों पर आक्रमण हुआ। सूर्पणखा का पति ऐसे एक आक्रमण में मारा गया था।

स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिए रावण ने विशेष सिद्धता की। इस स्वर्गविजय युद्ध में मेघनाद ने विशेष पराक्रम किया। उसकी रण-कुशलता के कारण देवों की हार हुई; स्वतः इन्द्र—स्वर्ग का सम्राट्—बन्दी बना और रावण की धाक सर्वत्र जम गयी। इस महान् विजय के दो प्रमुख कारण थे: एक रावणादि वीरों का अदम्य साहस, और अभूतपूर्व शौर्य; दूसरा कारण अधिक महत्त्व रखता है। वह था इन्द्रजित का मायायुद्ध। 'राक्षसी माया' यह राक्षसों का विशेष प्रकार का युद्धतंत्र था।

"माया" शब्द का एक अर्थ है" "विशेष युद्ध-तंत्र" राक्षसी-माया—राक्षसों का विशेष प्रकार का युद्ध तंत्र। माया, मायावी, इस अर्थ के शब्दों से असुर राक्षसों का वर्णन ऋग्वेद में ही मिलता है।

"पाहिनो अग्ने रक्षसः। पाहिधूर्तेः अराव्णः।
(७-३६-३५)

"त्वं जघन्य, नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वानः ऋषये विमायम्"
(१०-७३-७)

प्रथम ऋचा में 'अराव्णः' की माया का उल्लेख है। दूसरी ऋचा में नमुचि की माया का उल्लेख है। पुराणों ने असुर-राक्षसों की माया का अत्यधिक वर्णन किया है। प्रथम ऋचा में जो 'अराव्णः' शब्द आया है वह वास्तव में 'रावण' शब्द का पिता है। पुत्र पिता से भी बढ़कर मायावी था। "माया" शब्द से स्पष्ट होने वाला युद्ध तंत्र काल्पनिक नहीं था। हेति वंश का एक ऐतिहासिक प्राचीन राजा "पित्कहनः" (Pitkhans) था। माया युद्ध में यह राजा तो अति निपुण व दक्ष था। उसने अपनी सारी सेना को भी इस मायायुद्ध में अति निपुण व दक्ष बना दिया था। अकस्मात् अनपेक्षित और सर्वतोमुखी आक्रमण करने में इसे माया युद्ध की विशेषता थी। पिक्तहन' राजा ने विशेष रूप से मायायुद्ध में प्रगति की थी। आकस्मिक रूप से छापा किस प्रकार मारना चाहिए, छापा मारने के लिए योग्य समय कौन-सा, छापा मारने में कौन-सी सावधानी रखनी चाहिए। किस बात से बचना व बचाना जरूरी है, शत्रु के नगर में कब और किस प्रकार घुसना चाहिए। शत्रु राजा के शयन मंदिर में किस प्रकार और कहाँ से घुसना चाहिए। हवा के समान अदृश्य बनकर केन्द्र-स्थानों में कैसे फैलना चाहिए, और शत्रु राजा को किस प्रकार बन्दी बनाना चाहिए इत्यादि सर्व तंत्रों में यह सेना अपूर्व थी। इस प्रकार की अभूतपूर्व सेना लेकर यह पितकहन राजा, वायु के समान अदृश्य परन्तु विनाशकारी बनकर शत्रु पर ऐसा सर्वांग परिपूर्ण आक्रमण करता था कि उक्त आक्रमण का समाचार शत्रुराजा के बन्दी बनने के बाद ही उसके अंगरक्षकों को मिलता था। यह राजा प्रजापडीन नहीं था। शत्रु की प्रजा पर भी यह अत्याचार नहीं करता था। पर प्रजापडीन उसके लिए निषिद्ध था। उसकी सेना भी विजित सेना का पीडन नहीं करती थी। रावण-पुत्र इन्द्रजित का राम की सेना पर जो प्रथम आक्रमण हुआ था वह आकस्मिक, तीव्रवेग वाला और अपूर्व था। रात्रि में तो, वह और भयानक व मायामय बना था। उक्त अभूतपूर्व एवं मायामय आक्रमण के कारण सारी प्रचंड वानर सेना भ्रम में पड़ गयी थी। महापराक्रमी वानर यूथ पति घायल और पाशबद्ध हो चुके थे। स्वतः राम-लक्ष्मण भी अचेत और पाशबद्ध हो गये थे। ऐसे चिंताजनक प्रसंग में बाहरी

सहायता आने के कारण वानर सेना, यूथपति और स्वतः राम-लक्ष्मण बच सके थे। अन्यथा पाशबद्ध होने के कारण वे दोनों भाई वानर यूथपति समेत बन्दी बनाये जाते।

'लंका' नगरी का अधिपति पहले था कुवेर। इस वैश्रवण कुवेर से रावण ने लंका बलपूर्वक छीन ली थी और वहाँ उसने अपना राज्य स्थापित किया था। लंका राजधानी बनने के पूर्व हेति और पुलस्ति कुल के लोग अन्यत्र रहते थे। रावण-पिता पुलस्ति की पत्नी का नाम मिलता है प्रतीच्या। यह नाम ही पुलस्ती कुल के निवासस्थान का पता बताता है। मरुत्त पर का आक्रमण भी हेति कुल का निवासस्थान सूचित करता है। सालकटंकट देश पश्चिम एशिया में था। कालखंज असुरों ने स्वर्ग पर बहुत बड़ा आक्रमण किया था। ये असुर प्रदेश में रहते थे। असिरिया में 'कालख' नाम का नगर मिलता है। अगरिस्तका असुर राक्षसों से घनिष्ठ संबंध था अगस्ति को 'मांदार्य' कहा गया है। 'मांदर्य' नाम की एक जाति हेतिराज्य में मिलती है। इलियड वर्णित प्रथम राजा के कुल का मूल पुरुष था 'इलुस' इलावृत्त! राजा इल, उसकी पत्नी इला का वर्णन पुराणों में आ चुका है। 'वर्वि' एक असुर नगर था; वर्वि नगर जलाने का सारा इतिहास अत्रि मंडल में आता है। यह वर्वि नगर और वैविलोन दोनों एक ही थे, यह बात डॉ० हरमान व्रन्होफेर महोदय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में सिद्ध कर चुके हैं। असुर, हेति, पुलिस्त्त इनकी क्रीड़ा-भूमि कहाँ थी, इसके लिए उपरोक्त संदर्भ पर्याप्त हैं।

ईसापूर्व ११९४ में पुलस्ति (Pulseti or purzeti) लोगों के नेतृत्व में मिस्र पर एक महान् परन्तु असफल आक्रमण हुआ था; इस आक्रमण में पुलरित्त की सहायता करने वाले, अक्कड़, शकलश, दानव आदि लोग (जातियाँ) थे। यह आक्रमण जलमार्ग और स्थल मार्ग से हुआ था। उक्त आक्रमण में हिट्टी वा हेति, किश, मश, पिडस और दर्दन भी थे। यह सेना बहुत बड़ी थी, परन्तु इसमें एकात्मकता नहीं थी। सेनासंचालन का कार्य भिन्न-भिन्न टोलियाँ अपनी इच्छानुसार करती थीं; सांधिक भावना, व संघशक्ति, का गठन हुआ ही नहीं था अतः मिस्र के प्रत्याक्रमण के समान इस सेना के पैर उखड़ गये और ये भागने वाले लोग जहाँ कहीं स्थान मिला, वहाँ घुसे और रहने लगे।

पुलस्ति कृत आक्रमण असफल रहा परन्तु हेतिकृत आक्रमण अधिक मात्रा में सफल रहे। हेति सेना का प्रमुख अंग थी रथी सेना। पदाति तथा अन्य सेना भी थी—परंतु युद्ध का सारा उत्तरदायित्व रथी सेना पर था। हेति की रथी-सेना आक्रमण में बहुत ही प्रभावी एवं अजेय थी 'गति' रथी सेना की विशेष शक्ति थी। रथी जब तक रथारूढ़ था तब तक वह अजेय ही थी। समतल प्रदेश में रथी को परास्त करना असंभव-सा था। हेति-रथ में सारथी के अतिरिक्त दो योद्धा रहते थे। धनुष और बाण प्रधान शस्त्र थे, त्रिशूल, पट्टिश, शक्ति, तोमर, प्रास इत्यादि शस्त्रों का भी उपयोग किया जाता था। रथी कवच धारण करते थे रथ खींचने वाले घोड़े भी कवचाच्छादित रहते थे। घोड़े विशेष प्रकार से जोते जाते थे। घायल घोड़ा रथ से आसानी से अलग किया जा सकता था; सारथी न होने पर रथी अकेले ही युद्ध करना और रथ चलाना दोनों कार्य भली भाँति कर सकता था। इंद्रजित इस विद्या में विशेष निपुण था रथी सेना पदाति सेना को घेरकर उसका संहार आसानी से करती थी। हेति लोग रथ में घोड़े का और गधों का भी उपयोग करते थे। रावण सीताजी का हरण करने के लिए जिस रथ से आया था उसमें गधे जोते गये थे। रामायण में इन गधों को पिशाच मुख बनाकर और भयंकर बना दिया गया है।

मिस्र पर किया गया पुलस्ति का आक्रमण असफल रहा परंतु जब मिस्र की प्रचंड सेना और हेति की रथ सेना में युद्ध हुआ तब, हेति की रथ सेना ने मिस्र की सेना अपने रथों के नीचे कुचल डाली। मिस्र के सम्राट् रामसस द्वितीय ने अपनी प्रचंड सेना हेति राज्य में भेजी। ओरोंटी नदी लाँघ कर यह प्रचंड सेना उत्पात मचाती आगे बढ़ी। इस महती सेना का स्वागत करने के लिए हेति रथ सेना खड़ी थी उस प्रचंड मिस्री सेना के रथ की आक्रमण-कक्षा में आते ही हेति रथियों ने धावा बोला। मिस्र की अधिकांश सेना को घेरकर उसका भयानक संहार किया गया। सम्राट् रामसस भाग्यवश बच गया। ओरोंटी के समतल प्रदेश में जो हेति रथ सेना, अजेय सिद्ध हुई, वह रथ सेना और उसके महापराक्रमी रथी लंका के युद्ध में अनायास मारे गये। लंका में रथियों का संचार-क्षेत्र सीमित था, अतः वानर यूथपति उन्हें रोककर विरथ कर देते थे। रथी के विरथ होने का अर्थ था उसकी निश्चित मृत्यु।

घोड़े पालतू होने के पहले गधा ही आवागमन का एक मात्र साधन था। अश्विनी कुमारों ने जो रथदौड़ जीती थी

उसमें अश्विनी कुमारों का रथ वहन कार्य गर्दभों ने किया था। बाँबिलोनी भाषा में 'अश्व' अर्थ वाची स्वतंत्र शब्द मिलता ही नहीं। अश्व के लिए वहाँ जो शब्द प्रयुक्त था। वह 'अनशु-कुर्रा' था। इस शब्द का अर्थ है—पूर्व (दिशा से लाया) का गधा।

एशिया का पश्चिमी भू-विभाग हेति लोगों तथा उनके अधिराज्य व संस्कृति की क्रीड़ाभूमि था। हेति राज्य में हेति लोग अल्पसंख्यक थे। अन्य लोगों को और प्रजापतियों को मिलाकर हेति लोगों ने एक राज्य एवं राष्ट्र बनाया था। इस राज्य में सात भाषाएँ प्रचलित थीं। गणेशी, वलई, हेति हर्शी, खुर्शी, लुव्ही, और पूर्व खत्ती। इन सप्त-भाषा-भाषी लोगों को एकत्रित करके हेति के नेतृत्व में यह साम्राज्य, पश्चिम में मिस्र तक, और पूर्व में सिंधु घाटी तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य में हेति लोग अल्पसख्यक थे। हेति के सर्वनाश का मुख्य कारण उनकी यह अल्पसंख्या ही थी। दूसरा कारण था नरमेध।

अति प्राचीन काल में नरमेध सर्वत्र प्रचलित था। ग्रीकों में भी था। शक फेनिक, असुर पिशाच, राक्षस, सब लोगों में नरमेध होता था। उसी प्रकार हेति लोगों में भी था। पराभव होने पर तो ये हेति लोग नरमेध अवश्य करते थे। कशु कुल (कस्साइट) में भी नरमेध प्रथा थी। हरिश्चन्द्र के बाद इक्ष्वाकु कुल में नरमेध की प्रथा समाप्त हो गयी। हेति कुल के विरुद्ध और राक्षसों के विरुद्ध श्री रामचन्द्र जी के नेतृत्व में जो नर-वानरों की एकता का निर्माण हुआ था उसका एक कारण नरमेध ही था। पुरुष शब्द का अर्थ 'वानर' है। यह महत्वपूर्ण बात कीथ और मेक्डोनेल महोदय की वेद सूचि में आयी है; इसके लिए उपरोक्त विद्वानों ने जिमर नाम के जर्मन पंडित का आधार भी दिया है। रावण के पतन के साथ-साथ यह सारा भयानक-काण्ड समाप्त हुआ।

हेति लोगों के जो मृत्तिका पात्र प्राप्त हुए हैं उन पर जो चित्र अकित है, उनका वर्णन डॉ होभ्कनी महोदय ने इस प्रकार किया है :—

"One of the favourite motives of this pottery is the elamite land-scape, full of rivers and springs, teeming with wild beasts, especially the Elam-i-bex (capricorn). Over them the eagle Zagros mountains is hovering while among them lingers a hunter."

यह सारा वर्णन, ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से एक विशेष परिस्थिति की ओर इशारा करता है। मकर राशि में जब शरद संपात था उस समय का यह सारा वर्णन है। भारत में मोहनजोदडो में जो मृत्तिका पात्र मिले हैं, उन पर भी आइ बेक्स-बकरे के चित्र अंकित हैं। ये सारे चित्र ही स्पष्ट रूप से बताते हैं कि सिंधुघाटी सभ्यता से हेति लोगों का ही संबंध था—द्राविड़ों का नहीं था। हेति इतिहास में तेलेपिनु अथवा तेलेपिनुश देवता की कथा मिलती है। यह हेति लोगों का समृद्धि का देवता था। एक बार ऐसा हुआ कि यह देवता रूठकर कहीं छिप गया। मानो समृद्धि रूठकर छिप गई। सर्वत्र अकाल पड़ा, सर्वत्र त्राहि त्राहि मच गयी। टेलिपिनुश को ढूँढने का प्रयत्न किया गया। इस कार्य के लिए गरुड को भेजा गया परन्तु गरुड हार कर लौट आया। फिर यह कार्य आँधी के देवता को दिया गया; परन्तु वह असफल रहा अन्त में यह कार्य शहद की मक्खी को दिया गया। मधुमक्षिका ने, टेलिपिनुश को ढूंढ निकाला और उसे साथ लेकर वह वापस आयी। टेलिपिनुश के आगमन के साथ साथ पृथ्वी शस्यसंपन्न हुई, खेत हरे-भरे हो गये और जीवसृष्टि आनंद से विभोर हो गयी। यह कथा गूढ़ अर्थपूर्ण हैं; इस पहेली को ज्योतिषशास्त्र स्पष्ट करता है। मधुमक्षिका का अर्थ ज्योतिषानुसार है 'पुष्य नक्षत्र'। वसंत-संपात (Vernal Equinox) पुष्य नक्षत्र में था। इसके प्रतियोग में आता है श्रवण नक्षत्र; श्रवण का देवता है—गरुड़। पुष्य नक्षत्र में वसंत संपात का काल है अत्यंत प्राचीन। यह समय आता है ईसा पूर्व ६५०० से ७००० वर्ष के बीच में। यही है हेति संस्कृति का अंदाज से समय! पुष्य में वसंत संपात आने के पहले का समय आँधी तूफानों का ही था; और गरुड़ और आँधी के देवता के द्वारा सूचित था।

हेति लोग शूर तथा साहसी थे। उनके अस्त्र-शस्त्र उस समय अत्यन्त उन्नत थे। वे लोहे और फौलाद के बने थे। मिस्र के सम्राट हेतिशास्त्र प्राप्त करने के लिए बडे लालायित रहते थे। इतना होने पर भी हेति लोगों में राष्ट्रीय एकता न होने के कारण, और बिखरे होने के कारण कालोदर में लीन हो गये। लंका, सिन्धु घाटी व पश्चिम एशिया के कफ एसिया (इन तीन स्थानों) में विभक्त हेति एक दूसरे की सहायता न कर सके। रावण के मित्र हेति का लंकाराज्य समाप्त हुआ, कुयवाच के निमित्त सिंधु-घाटी नष्ट हो गयी; अल्पसंख्यत्व के कारण सालकटंकट स्थित हेतिराज्य स्मृति शेष बना।

ये हैं हेति इतिहास की कुछ झलकें। पश्चिम एशिया में जो अनुसंधान और उत्खनन हो रहा है, उसका अध्ययन यदि भारतीय-वैदिक-पम्परा-दृष्टि को सामने रखकर होगा तो हेति इतिहास पर तथा अन्य जटिल ऐतिहासिक समस्याओं पर अधिक प्रकाश पड़ेगा तथा उनकी वास्तविकता स्पष्ट होने में अधिकाधिक सहायता प्राप्त होगी।

स्वर्गीय सम्पूर्णानन्द जी

[जैसा मैंने उन्हें देखा]

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

सन् १९१५ से लेकर सन् १९६९ तक—पूरे ५४ वर्ष मेरा और श्री सम्पूर्णानन्दजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। उनके जालिपादेवी वाले मकान पर मैं जाने कितने बार ठहरा, यद्यपि वे मेरे घर फीरोजाबाद में केवल एक बार ही सन् १९१८ में पधारे थे। उनसे भिन्न-भिन्न स्थितियों में मिलने तथा बातचीत करने के असंख्य अवसर मुझे मिले थे और ढाई वर्ष तक तो हम लोग डेली कालेज इन्दौर में साथ-साथ पढ़ाते रहे थे।

प्रारम्भ में ही यह बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि हम दोनों परस्पर विरोधी रुचियों तथा स्वभावों के व्यक्ति थे और हमारे विश्वास तथा दृष्टिकोण भी अलग-अलग थे, इसलिये मुझे आश्चर्य है कि हम लोगों की मैत्री अर्द्धशताब्दी तक ज्यों की त्यों कैसे कायम रह सकी और उसमें कभी किसी प्रकार की कटुता का समावेश नहीं हुआ।

श्री सम्पूर्णानन्दजी परम धार्मिक थे जब कि धार्मिक विषयों में मेरी कभी कोई रुचि नहीं रही। वे घोर आस्तिक थे और मैं आस्तिकता और नास्तिकता के व्यर्थ झंझट में कभी नहीं फँसा। वे शासन में विश्वास ही नहीं रखते थे, स्वयं वर्षो तक शासक रहे भी थे, पर मैं कम से कम विचारों में तो शासन मात्र का विरोधी रहा हूँ। इस प्रकार सामाजिक, विचार-सम्बन्धी तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से हम दोनों में बृहत अन्तर था और सम्भवतः यह सम्पूर्णानन्दजी की उदारता ही थी कि उन्होंने मेरे जैसे ऊल जलूल आदमी की सनकों को केवल सहन ही नहीं किया, बल्कि मुझे क्षमा भी कर दिया।

सम्पूर्णानन्दजी विद्वान थे, भिन्न-भिन्न विषयों के अध्ययन का उन्हें शौक था और अनेक विज्ञानों में उनकी अच्छी गति भी थी, जब कि मेरा अध्ययन अत्यन्त सीमित था। इस कारण हम लोगों का मिलन तथा विचार-परिवर्तन प्रायः घरेलू अथवा हँसी-मज़ाक के धरातल पर ही होता था। हाँ, कभी-कभी वे मेरे आन्दोलनों पर भी अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट कर दिया करते थे। मै यह कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करूँगा कि मेरे अनेक कार्यो में श्री सम्पूर्णानन्दजी ने आर्थिक सहायता दिलवाई और मेरे किसी भी अनुरोध को उन्होंने टाला नहीं। हाँ, मैंने अपने लिये कभी भी उनसे कोई सहायता नहीं चाही। उनकी खुशामद करने का सवाल तो कभी उठता ही नहीं था, क्योंकि यह मेरी आदत में शामिल नहीं।

And man shall treat with a man as a sovereign state, a sovereign state. एमर्सन का यह वाक्य मेरा आदर्श रहा है। यानी मनुष्य का वर्ताव मनुष्य के साथ वैसा ही होना चाहिये, जैसा एक सर्वथा स्वतंत्र राष्ट्र का दूसरे स्वतंत्र राष्ट्र के साथ होता है।

श्री सम्पूर्णानन्द जी के साथ मेरी छेड़छाड़ जिन्दगी भर चलती रही और मैं उसे देवरानी-जिठानी जैसे झगड़े कहा करता था।

डेली कालेज इन्दौर की बात है। इसे पचास वर्ष हो गये। मैं उन दिनों चतुर्वेदी समाज के विषय में कोई पुस्तक लिखना चाहता था और उसके लिये एक नोटबुक में कुछ बातें नोट कर ली थीं। उस नोटबुक को मैं अध्यापकों के 'कॉमन' रूम में पड़ी छोड़ गया। क्लास से वापिस आने पर देखता क्या हूँ कि उस नोटबुक में एक संस्कृत कविता लिखी हुई है।

> वर्षान्ते तु यथा दृशाः ग्रीष्मादौ हिमराशयः।
> चतुर्वेद्याख्य भूदेवाः प्रणश्यन्ति कलौयुगे॥
> त्यक्तधर्म्मा गता दैन्यं, कालिन्दी कूल सेविनः।
> कच्छ बच्चा श्रुतिसास्त्रे, मल्लकर्म विशारदाः॥
> वयः प्राप्त स्त्र कन्यानाम्, प्रतिदान कराः खलु।
> छिन्ना अस्य गतिस्तेपाम्, आर्यधर्म्म महाद्विपाम्॥

इस कविता को जब मैंने बहुत वर्षो बाद किसी लेख में छपा दिया तो हमारे सजातीय बन्धु इससे बहुत नाराज हुए थे। सम्पूर्णानन्दजी का यह स्वभाव था कि वह जिस किसी को अपना मान लेते थे उसकी छोटी-छोटी बातों पर भी निगाह रखते थे और शिष्टाचार सिखाने का कोई भी मौका हाथ से नही जाने देते थे। वे पूरे पचास वर्ष तक मुझे 'सलीका, सिखाने का असम्भव प्रयत्न करते रहे। स्वभावतः उससे मेरे मन में कुछ झुँझलाहट भी होती थी पर उनकी सद्भावना का मैं कायल था, इसलिए बुरा नहीं मानता था

बेड टी (प्रातःकालीन चाय पान) एक ऐसा विषय था

कि उस पर न जाने उन्होंने कितने लैकचर मुझे दे डाले। 'क्या गन्दी आदत तुमने डाल ली है।' यह उनका आक्षेप था। एक बार मैंने तङ्ग आकर उनसे कह दिया—

"देखिये किसी दिन 'वेद' में से 'वैड टी' का आदेश निकल आवेगा—जैसे आक्सीजन का नुसखा निकला था।" चूँकि सम्पूर्णानन्दजी प्राचीन संस्कृति के प्रेमी थे और वेदों के भक्त भी। इस कारण वे मेरे इस व्यङ्ग से उद्विग्न हो गये और बोले—"आप वेदों का मजाक क्यों बनाते हैं?" मैंने तुरन्त ही कहा—"आपने तो प्रयत्न करके वैदिक विद्या का अध्ययन किया है, जब कि मैं जन्मजात चतुर्वेदी हूँ। यह बात आप क्यों भूल जाते हैं?"

जब वे मुख्य मन्त्री थे, मैं उनके पास ठहरा हुआ था। मैंने देखा कि रात भर एक सिपाही उनकी कोठी का पहरा देता है। मैंने मौका पाकर उनसे कहा—"अगर यह सिपाही चार बजे मेरे लिये चाय बना दे तो इसे ब्राह्मण की सेवा करने का पुण्य प्राप्त हो जायगा और इस सर्दी में एक प्याला चाय भी।"

सम्पूर्णानन्दजी ने उत्तर दिया—"आप भी कैसी अजीब बात कहते हैं। इसमें डिसीप्लीन कैसे रह सकती है? उसका कर्तव्य मेहमानदारी थोड़े ही है?"

मैंने जवाब में कहा—"आप दो भ्रमों के शिकार बन गये हैं।"

उन्होंने कहा—"कौन-कौन से?" मैंने कहा—"एक तो आपको यह भ्रम हो गया है कि आपकी जान बहुत कीमती है और दूसरा यह कि कोई उसे लेने के लिये चिन्तित है! नहीं तो इस हथियारबन्द पहरेदार की क्या जरूरत है?"

श्री सम्पूर्णानन्दजी से मेरी बातचीत दिल खोलकर होती थी। एक बार मैंने उनसे स्पष्टतया पूछा—"लोग आप पर यह इलजाम लगाते हैं कि आप कायस्थों का पक्षपात करते है! इसमें कहाँ तक सचाई है? उन्होंने तुरन्त ही उत्तर दिया, हिन्दू समाज में ब्राह्मण और कायस्थ ये दो जातियाँ बुद्धियोनियों में अग्रगण्य हैं। एक बार ऐसा हुआ कि हमें एक ऐल० टी० ग्रेजुएट की जरूरत थी और प्रार्थनापत्र भेजने वालों में केवल एक ही ऐल० टी० था और वह था कायस्थ। परिणाम-स्वरूप उसी की नियुक्ति करनी पड़ी और इससे लोगों को कहने का मौका मिल गया कि मुझमें जातिगत पक्षपात है। अन्य गलतफहमियों के बारे में मैं क्या कहूँ। रात के दस बजे ऊपर के कमरे में 'मैं रेडियो से गाना सुन रहा था और आपके बुन्देलखण्ड के एक लीडर नीचे चक्कर लगा रहे थे। उन्हें यह भ्रम हो गया कि मेरे यहाँ रात को नर्तकियों का नाचना गाना होता है और उन्होंने यह बात चारों तरफ़ फैला दी थी! अब आप ही बताइये कि मैं इन अफवाहों का खंडन कहाँ तक करता रहूँ।"

श्री सम्पूर्णानन्दजी में दूसरों की गलती निकालने का दुर्गुण था जो शिक्षकों में प्रायः पाया जाता है। मैं यह स्वीकार करूँगा कि कभी-कभी श्री सम्पूर्णानन्दजी के उपदेशों से मेरे मन में बड़ी भुँझलाहट पैदा होती थी। उनके साथ किसी मीटिंग में जाना खतरे से खाली नहीं था। इन्दौर के एक गुजरात महाविद्यालय में हम लोग साथ-साथ गये। प्रबन्धक महोदय ने हम लोगों को गुलदस्ते भेंट किये। मेरा ध्यान उस समय किसी और तरफ था, इसलिये भूल से मैंने गुलदस्ते को ऊपर की ओर से ग्रहण किया। इतने में देखता क्या हूँ कि सम्पूर्णानन्द जी की त्यौरी चढ़ गयी है। कारण मेरी समझ में नहीं आया। सभा समाप्त होने के बाद मैंने उनसे नाराजगी का सबब पूछा तो वे बोले, "आपको इतना भी सलीका नहीं कि गुलदस्ता कैसे ग्रहण किया जाता है।" चूँकि हम लोग बहुत वर्षों बाद इन्दौर गये थे इसीलिये जगह-जगह पर हमारा स्वागत किया गया था। इन्दौर के म्यूनिस्पल बोर्ड ने भी हमारे सम्मान में एक मीटिङ्ग की और जब मैं धन्यवाद देने के लिये खड़ा हुआ तो मेरे मुँह से एक वाक्य निकल गया "मैं अपने दोनों बच्चों के लिए इंदौर का ऋणी हूँ।" देखता क्या हूँ कि सम्पूर्णानन्दजी दाँती मिसमिसा रहे हैं और नवीनजी भी क्रोध के मूड में हैं। मीटिङ्ग समाप्त होने पर सम्पूर्णानन्दजी ने कहा—"आप भी बिना समझे-बूझे क्या ऊट-पटांग बकते रहते हैं—'बच्चों के लिये इन्दौर का ऋणी हूँ' इसके मानी क्या हुए?" नवीनजी पास ही खड़े थे, वे भी बरस पड़े, "हो तुम निरे बेवकूफ, कभी यह भी सोचते हो कि तुम्हारे शब्दों से क्या ध्वनि निकलती है?" मैंने कहा—"ध्वनि की बात तो कवि लोग जाने, हमसे क्या मतलब?" बात दरअसल यह हुई थी कि मेरे मन में धन्यवाद देने का विचार अंग्रजी में आया था, मैंने सोचा था—"I am indebted to indore for both my sons" और उसीका तर्जुमा मैंने हिन्दी में कर दिया था।

एक बार जब मैं लखनऊ में श्री सम्पूर्णानन्द जी का अतिथि था पायनियर के सम्पादक महोदय का निमन्त्रण चाय

पार्टी के लिये मि०.. . चूंकि वक्त ऐसा रखा गया था कि वह मेरे दोपहर के विश्राम में बाधक होता, मैंने उसे अस्वीकार कर दिया। जिस पर मुझे सम्पूर्णानन्दजी का लैक्चर सुनना पड़ा—"आप भी अजीब आदमी हैं, शिष्टाचार का कुछ भी खयाल नहीं रखते। चूँकि आप श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रैसीडैन्ट है, आपको पायोनियर के सम्पादक की दावत में जाना ही चाहिये था। खासतौर पर इसीलिये भी कि वह एक भिन्न संस्था के सदस्य हैं।"

मैंने उन्हें बहुत समझाया कि मैं अपने दोपहर के विश्राम में कोई खलल सहन नहीं कर सकता, पर यह बात उनकी समझ में नही आयी।

लखनऊ में मेरे दैनिक कार्यक्रम को देखकर उन्होंने कहा था—"श्रमजीवी पत्रकार संघ के लिये मेरे दिल में कुछ भी इज्जत बाकी नहीं रह गई। जिस संस्था का प्रैसीडैन्ट दिन मे एक घंटा भी ईमानदारी के साथ श्रम न करता हो उसका सम्मान मैं कैसे करूँ।"

बात दरअसल यह हुई थी कि मुझसे मिलनेवालों का ताँता लगा रहता था और मेरा सारा वक्त चायपान, प्रवचन या गप्पाष्टक मे ही बीतता था।

जब श्री सम्पूर्णानन्दजी अपने कुटुम्ब के साथ सबेरे कलेवा करते थे ता यह आवश्यक समझते थे कि मैं भी उनके साथ बैठूं, पर मैं चूंकि एक बार चाय पी चुकता था इसलिये दूसरी बार अपने पेट पर जुल्म नही करना चाहता था, पर सम्पूर्णानन्दजी मुझे भी अपने कुटुम्ब का एक प्राणी मानते थे, इसलिये उनकी समझ में यह शिष्टाचार के विपरीत था कि कलेवे के वक्त मैं उनके साथ न बैठूं।

भोजनालय मे भी उनकी कठोर नियन्त्रण प्रवृति न छूटती थी। वे डिनर टेबिल के डिक्टेटर थे। एक बार उन्होंने अपने पौत्र कुमार को मेज के नीचे पाँव हिलाते हुए देख लिया और उसे डाँट पिला दी। सर्वदानन्द जी भी बहुत सतर्क बैठे हुए थे। इतने में रसोइये ने एक साथ मेरी थाली में कई पूरियाँ परोस दी। सम्पूर्णानन्दजी ने उसे डाट बता दी—"धीरे-धीरे परोसा जाता है या एक साथ उलट दिया जाता है?" अब मेरी बारी थी, चौबे होने पर भी मैं भोजन-भट्ट नही हूँ। पर सम्पूर्णानन्दजी मुझसे यह आशा रखते थे कि जो भी स्वादिष्ट मिष्ठान्न उन्होने मेरे लिये बनवाये थे उनके प्रति मैं पूर्ण न्याय करूँ। पर मैं ऐसा नहीं कर सका। झुँझलाकर उन्होंने मुझसे कहा—"अगर आपको चौबों की लुटिया डुबोनी हो तो मथुरा की जमुनाजी में जाकर डुबोइये, लखनऊ की गोमती में नहीं डुबोने पाओगे।"

मैंने हँसकर कहा—"मैं तो नाम मात्र को चौबे हूँ, पर यह तो बतलाइये कि क्या गोमती नदी पर भी मुख्यमंत्री का अधिकार है?"

एक बार मैंने उन्हें यह लिख दिया "अगले बार मैं लखनऊ अपने किसी चतुर्वेदी रिश्तेदार के पास ठहरना चाहता हूँ, कृपया अनुमति दीजिए।" उसके उत्तर में उन्होंने एक कार्ड में मुझे लिखा "अगर आप अमृत छोड़कर संखिया खाना चाहते हैं तो मेरी अनुमति की क्या जरूरत? जनाब, मैं तो आपके लिये अपने यहाँ षटरस भोजन का प्रबन्ध करता हूँ, और आप अंट संट पदार्थ खाना चाहते हैं।" जब तक श्री सम्पूर्णानन्दजी लखनऊ में रहे मैं किसी दूसरी जगह ठहर ही नहीं सका।

एक बार श्री सम्पूर्णानन्दजी ने मेरे साथ गहरा मजाक किया। बात यह हुई थी कि ब्रज साहित्य मंडल के अधिवेशन मे मैंने एक भाषण दिया था जिसमें मैंने कहा था—"स्वाधीनता संग्राम में अब तक तो मैंने कोई भाग नहीं लिया, पर अब ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश में हरे-भरे वृक्षो के कटने पर मुझे सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ना ही पड़ेगा, भले मुझे जेल की हवा खानी पड़े"। श्री सम्पूर्णानन्दजी के आफिस के किसी मनचले क्लार्क ने मेरे भाषण का वह अंश उद्धृत कर उचित कार्रवाई के लिये उसे उनकी सेवा में पेश कर दिया! श्री सम्पूर्णानन्दजी ने उस फाइल पर अपने हाथ से लिख दिया "हमारी सरकार को इस विषय में कुछ भी फिक्र करने की जरूरत नही क्योंकि जिस जगह जेल जाने की नौबत आवेगी चौबेजी वहाँसे बीस मील दूर रहेंगे।" सरकारी कागजों मे वह फाइल अब भी कही पड़ी होगी।

सम्पूर्णानन्दजी स्वाध्याय के बड़े शौकीन थे और भिन्न-भिन्न विषयों मे उनकी रुचि भी थी। जिन दिनो मै लखनऊ उनके पास ठहरा हुआ था वे वैज्ञानिक उपन्यास पढ़ रहे थे। उन्ही दिनों कानपुर मे पुलिस का कुछ प्रदर्शन होने वाला था। मैने भी साथ चलने का आग्रह किया तो बोले 'चलिये'। मोटर में मै भी साथ हो लिया।

मुझे आशा थी कि यात्रा में कुछ बातचीत हो जायगी, पर लखनऊ से कानपुर तक हम दोनों अपरिचित अंग्रेजों की तरह अलग-अलग बैठे रहे। वे वैज्ञानिक उपन्यास पढ़ते

रहे और इस लंबे सफर में उन्होंने मुझसे एक भी बात नहीं की ! लखनऊ से चलते समय मैंने श्री सर्वदानन्दजी से कहा था—"मैं चार बजे चाय पीने का आदी हूँ और उस समय हमारी मोटर उन्नाव के आस-पास होगी। क्या मैं बाबूजी से कहकर उन्नाव में चाय पी लूं ? सर्वदानन्दजी ने कहा—"जहाँ तक मैं जानता हूँ, बाबूजी इस बात को पसन्द नहीं करेंगे कि मुख्यमंत्री की गाड़ी बाजार में चाय की दूकान पर खड़ी हो !" इसके बाद मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ी कि कुछ कहता। मैं आज तक इस बात को नहीं समझ पाया कि बाजार में चाय की दूकान पर मोटर खड़ी कर देने से श्री सम्पूर्णानन्दजी के गौरव को क्या हानि हो जाती ? पर क्या कहा जाय, शासकों को अपनी शान का ख्याल रखना ही पड़ता है।

भोपाल से इन्दौर जाते समय जावरा तक प्रत्येक मील पर सिपाही खड़ा हुआ था। उन दिनों सम्पूर्णानन्दजी उत्तर प्रदेश के गृहविभाग के मंत्री थे और होम मिनिस्टर की रक्षा के लिये यह प्रबन्ध किया गया था। उन गरीब सिपाहियों को खड़ा देखकर मेरे हृदय में करुणा का भाव जाग्रत हो गया। मैंने कहा, "इन बिचारे गरीबों को इतना तंग क्यों किया जा रहा है ?" श्री सम्पूर्णानन्दजी बोले "अगर आप मंत्री होते तो आप क्या करते ?" मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया "मैं प्रत्येक सिपाही को अपनी मोटर में बिठाकर अगले मील पर छोड़ देता।"

उज्जैन में श्री सम्पूर्णानन्दजी ने मेरे साथ फिर एक मजाक किया। क्षिप्रा नदी में दो नौकाएँ जल में उतारी जानेवाली थीं और संतरण संस्कार श्री सम्पूर्णानन्दजी के ही हाथ से होना था। हम लोग साथ-साथ ही गये। नौका में बैठते वक्त मेरे जूते की एड़ी से कुछ कीचड़ लग गयी, सम्पूर्णानन्दजी ने उसे देख लिया और तुरन्त ही कहा "जनाब ! यह है आपका सलीका !" हम लोगों को माधव कालेज की मीटिङ्ग में पहुँचने में बीस मिनट की देर लग गयी। श्री सम्पूर्णानन्दजी वक्त के बहुत पाबन्द थे और उन्होंने उपस्थित जनता से क्षमा-याचना करते हुए—"माफ कीजिये, एक दुर्घटना के कारण हम लोग लेट आये, बात यह हुई कि हमारी राज्यसभा के नवीन सदस्य चतुर्वेदीजी क्षिप्रा नदी में डूबते-डूबते बचे। वह तो खैरियत हुई कि हम लोगों ने उन्हें निकाल लिया, नहीं तो यह मीटिङ्ग शोक सभा बन जाती।" इस बात को सुनकर मैं तो मुसकरा दिया पर लीडर के संवाददाता ने इस घटना को सच्चा समझा और इलाहाबाद को तार दे दिया कि चौबेजी डूबते-डूबते बचे। यह खबर 'भारत' में भी छपी। नतीजा यह हुआ कि मेरे घरवालों को बड़ी चिन्ता हो गयी, उन्होंने प्रसाद बाँटा और परिचितों तथा शुभ-चिन्तकों के तार और चिट्ठियाँ आयीं। टीकमगढ़ के कई मित्र चार मील चलकर कुण्डेश्वर पधारे और मेरे डूबने से बचने की खुशी में मुझसे आमों की दावत ले ली। झाँसी के एक साहित्यप्रेमी मजिस्ट्रेट अपनी कार में कुण्डेश्वर आये। वे भी भ्रम में थे कि मैं क्षिप्रा नदी में डूबते-डूबते बचा। चिट्ठियों और तारों का जवाब देते-देते मैं तंग आ गया और चिढ़कर श्री सम्पूर्णानन्दजी को लिखा—"आपने अच्छा मजाक किया। उसकी वजह से प्रसाद, पोस्टेज और आतिथ्य में मेरे अठारह रुपये खर्च हो गये हैं, जो आपसे वसूल किये जायँगे।" मेरे पत्र का जो उत्तर सम्पूर्णानन्दजी ने दिया वह यहाँ उद्धृत किया जाता है—

राजभवन, जयपुर

दिनांक दिसम्बर ३०, १९६३ ई०

प्रिय चतुर्वेदीजी,

आपको ऐसा ख्याल क्यों हो रहा है कि आपके सम्मान और उत्कर्ष का श्रेय मुझको नहीं है। आजकल अश्रद्धा का युग है, अन्यथा आप खुले कंठ से इस बात का विज्ञापन करते कि "मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर'। खैर मैं तो अपने उदार स्वभाव से आपकी कृतघ्नता को क्षमा करता हूँ। अब रही बात आपको डूबते से बचाने की। आप डूब रहे थे या नहीं डूब रहे थे, इसका कोई महत्त्व नहीं, महत्त्व इस बात का है कि मैंने बचाया। यह हो सकता है जिस कविता को आपने उद्धृत किया है: "नाथ कैसे गज को फन्द छुड़ायो।" उसमें जिस नाथ की चर्चा है उसने गज को न छुड़ाया हो, वह स्वयं हाथ-पाँव मारकर निकल आया हो। पर इस बात को देखिये कि यदि नाथ से छुड़ाये जाने की प्रसिद्धि नहीं होती तो उस गज का कोई नाम भी नहीं लेता। न जाने कितने हाथी जीते-मरते रहते हैं। यह मैं भी समझता हूँ कि इस बात की काफी सम्भावना है कि यदि आज से कुछ दिन के बाद आपकी जीवनी लिखी गयी तो उसमें इस बात का भी उल्लेख होगा कि उसके करुण क्रन्दन को सुनकर दयासिन्धु भगवान् सम्पूर्णानन्द नाव पर से क्षिप्रा में कूद पड़े, और उस डूबते हुए ब्राह्मण को निकाल

लाये। इस वर्णन में सत्य का कितना अंश है इसकी खोज कोई पागल इतिहास का पंडित करता फिरे, उसकी सुनेगा कौन ? गौ ब्राह्मण के प्रतिपालक होने की मेरी प्रसिद्धि इतिहास-वेत्ता के लिखने को अरण्य रोदन बना देगा और मेरे जैसे नाथ के कारण आप जैसे गज को अमृत्व प्राप्त हो जावेगा। एक बात और सोचता हूँ। गज और ग्राह की कथा पुरानी हो गयी। आपकी ऊँचाई को देखते हुए और इस बात को देखते हुए कि मैं आजकल राजस्थान में हूँ, कथा का नया रूप यह हो सकता है कि कलियुग के नये नाथ ने इस डूबते हुए ऊँट का उद्धार किया। इस समय यहाँ श्री भगवतीशरण सिंह उपस्थित हैं। मैंने आपका पत्र उनको सुना दिया। उन्होंने प्रणाम कहा है। हम सबके सौभाग्य से वह भी उस समय वहाँ थे जबकि आपके निमज्जन उन्मज्जन की घटना हुई थी। मालूम हुआ कि आपकी ७२वीं वर्षगांठ मनायी गयी है। इसके लिये तो बधाई, परन्तु आप ७२ वर्ष के हो गये इससे आपको मेरी उम्र में से कुछ वर्ष चोरी करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। मैंने अभी ७४वें वर्ष में प्रवेश किया है, ७५वें में नहीं।

आपका
सम्पूर्णानन्द

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी एम० पी०
९९ नार्थ एवैन्यू
नई दिल्ली

श्री सम्पूर्णानन्दजी के इस प्रकार के हास्यरसपूर्ण बीसियों ही पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं।

मैं भी सम्पूर्णानन्दजी से कभी-कभी गहरा मज़ाक कर देता था। एक बार मैं काशी में उनके जालपादेवीवाले मकान पर ठहरा हुआ था कि शाम को घूमने के लिए बाहर जाने की इच्छा हुई। श्री सम्पूर्णानन्दजी ने कहा कि आप आठ बजे तक लौट आइये। हम लोग साथ ही साथ व्यालू करेंगे। मैं पहुँचा जैन विद्यालय में और वहाँ यजमानों ने दस बजा दिये। लौटकर आया तो सम्पूर्णानन्दजी से खासी मधुर डाँट सुननी पड़ी। कहने की ज़रूरत नहीं कि स्वयं सम्पूर्णानन्दजी ने भी भोजन नहीं किया था। खाना ठंडा हो चुका था। उस समय मुझे एक किस्सा याद आ गया। आचार्य क्षितिमोहनसेनजी इसी प्रकार लेट होकर घर पहुँचे तो उनकी पत्नी बहुत रुष्ट हुई। आचार्यजी ने परसी हुई थाली उनके सिर पर रख दी। वे बोलीं, "यह क्या करते हो ?" आचार्यजी ने कहा—"कुछ नहीं, भोजन ठंडा हो गया है और तुम्हारा माथा गरम है सो उसे गरम कर रहा हूँ।" सम्पूर्णानन्दजी के साथ ऐसी गुस्ताखी करने की हिम्मत तो मेरी नहीं पड़ी, पर मैंने इतना तो कह ही दिया "आपने भोजन क्यों नहीं कर लिया ? यह धर्म क्यों निबाहा ?" जब सम्पूर्णानन्दजी नाराज़ होते हैं तो छोटे-छोटे वाक्य बोलने लगते हैं। "अजीब दिल्लगी करते हैं आप, इत्यादि-इयादि। उस दिन मुझे सम्पूर्णानन्दजी का हुक्म मानकर ज़रूरत से ज्यादा मिठाई खानी पड़ी।

भीगी बिल्ली की तरह बैठा हुआ मैं रसगुल्ले खा रहा था और घड़ी के आविष्कार को कोस रहा था। किसी भी शासक से यह उम्मीद रखना कि वह शासन कार्य में सर्वथा निर्दोष या दूध का धोया हुआ सिद्ध होगा, महज़ खाम-खयाली है। "काजर की कोठरी में कैसौ हू सयानौ जाय, एक रेख काजर की लागि है पै लागि हैं।

श्री सम्पूर्णानन्दजी से अवश्य ही अपने शासन काल में भयंकर भूलें हुई होंगी, पर दूर रहने के कारण हमें उनका पता नहीं। एक बार उन्होंने हमसे कहा—"आपके बुन्देलखंड के एक नेता काफी ऊधम मचा रहे थे। उनके गरमागरम भाषणों से हमारी सरकार कुछ परेशान थी। मैंने एक उपाय सोचा, इस बात की तलाश कराई कि उनकी रुचि किस विषय में है। मालूम हुआ कि वे एक विद्यालय में काफ़ी दिलचस्पी रखते हैं। हमने उस जिले के इन्स्पैक्टर आफ स्कूल्स को आदेश दे दिया कि उस विद्यालय की उन्नति के लिये जो कुछ कर सकें करें। नतीजा यह हुआ कि वे नेता महोदय इन्स्पैक्टर के यहाँ चक्कर काटने लगे।" यह सुनकर मुझे हँसी आ गई और मैंने कहा—"आपतो पहले की अपेक्षा काफ़ी चालाक बन गये हैं ?" सम्पूर्णानन्दजी ने मुसकरा कर कहा "शासन कहीं भोलेपन से चलता है ?" एक बार मैं रात के समय उनके निकट बैठा हुआ था। एक तार किसी पुलिस आफिसर की शिकायत का आया। सम्पूर्णानन्दजी ने उसे पढ़कर जमीन पर फेंक दिया। था वह प्रदेश के एक सुप्रसिद्ध नेता का सम्पूर्णानन्दजी बोले "इस तरह की शिकायतें मेरे पास बहुत आती है, पर मैं अपने अधीनस्थ आफिसरों पर विश्वास रखता हूँ।" वे Trust the man on the spot (स्थानीय अधिकारी का विश्वास करो।) के सिद्धान्त का अनुगमन करते थे! कुछ

लोग कहते हैं कि सम्पूर्णानन्दजी में बौद्धिक अभिमान था। वस्तुतः वे बुद्धिजीवी थे और अनेक विषयों के पंडित भी, इसलिये उनका अभिमान क्षम्य माना जा सकता है। वे अपने समय का सर्वथा सदुपयोग ही करते थे और फालतू आदमियों से बातचीत करने में झुंझला जाते थे। वे यह चाहते थे कि उनसे मिलने वाले आदमी संक्षेप में निवेदन कर विदा हो जायँ, पर हमारे यहाँ तो ऐसे व्यक्ति मंत्रियों के पास पहुँचते हैं जो दस-पन्द्रह मिनट तो अपने कथन की भूमिका में ही बिता देते हैं और तत्पश्चात् अपने मतलब की बात कह चुकने पर भी डटे रहते हैं! ऐसे अवसरों पर सम्पूर्णानन्दजी बातचीत बन्द करके किताब या अखबार पढ़ने लग जाते थे! फिर उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती थी कि सामने बैठा हुआ व्यक्ति साधारण आदमी है या केन्द्रीय सरकार का मंत्री। यह बात ध्यान देने योग्य है कि केन्द्रीय सरकार में उनके कई शिष्य थे। एक ने मुझसे ऐसी शिकायत की थी।

सम्पूर्णानन्दजी में कर्तव्य प्रेरणा की भावना इतनी प्रबल थी कि रात को भी बड़ी देर तक फायलें निबटाया करते थे। अपनी मरणासन्न पुत्री की तीमारदारी में भी उन्होंने सरकारी कागजों की उपेक्षा नहीं की, एक बार स्नानागार में रपट कर गिर जाने से उन्हें काफी चोट लग गयी, फिर भी निश्चित समय पर मीटिङ्ग में पहुँचे।

जब श्री सम्पूर्णानन्दजी पर भयंकर वज्रपात हुआ था—उनके सत्रहवर्षीय सुपुत्र का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया था—उस समय भी वे कांग्रेस के कार्य में व्यस्त रहे, और मातमपुर्सी के लिए आने वाले आदमियों को यह देख कर महान् आश्चर्य हुआ था कि उन्होंने उस भयंकर दुर्घटना की चर्चा भी नहीं होने दी।

जहाँ श्री सम्पूर्णानन्दजी में एक बड़ा भारी गुण था—वे अपने पुराने मित्रों से अत्यन्त स्नेह रखते थे—वहाँ उनमें एक त्रुटि भी थी कि वे नवीन मित्रों का निर्माण नहीं कर पाते थे। एक बार उन्होंने मुझसे लखनऊ में कहा था—"जब से काशी में मेरे दो तीन मित्र चले गये हैं, वहाँ जाने का मेरा मन नहीं करता।" मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ था।

जब मैं श्री सम्पूर्णानन्दजी के साथ अपने चौअन वर्ष व्यापी घनिष्ठ सम्बन्ध पर ध्यान देता हूँ और उन असंख्य कृपाओं का स्मरण करता हूँ, जो उन्होंने मुझपर की तो मेरा हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने दो हजार रुपये गणेश-स्मृति ग्रंथ के प्रकाशनार्थ कालपी के हिंदी भवन को दिये। नई दिल्ली के हिन्दी भवन को पन्द्रह सौ रुपये दिलवाये। आप बिना मुझे किसी भी प्रकार की सूचना दिये उत्तर प्रदेशीय सरकार से डेढ़ सौ रुपये महीने की पेंशन दिलवायी (यद्यपि वह साल भर तक ही जारी रह सकी)। आजाद की पूज्य माताजी को पेंशन दे दी। क्रान्तिकारियों को मदद दी और भी जिस किसी के लिये मैंने लिखा श्री सम्पूर्णानन्दजी ने उसको आर्थिक सहायता दी। स्वर्गीय शोभा चन्द्र जोशी की क्षय की बीमारी में भरपूर मदद की। मेरे कहने पर अपना बहुमूल्य समय तो न जाने कितनों को दिया होगा। अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक वे मेरे स्वास्थ्य के लिये चिन्तित रहे और अपनी घोर बीमारी में भी वे तार और पत्र भिजवाकर मेरी पूँछ ताँछ करते रहे।

बात दरअसल यह थी कि उन्होंने मुझे अपने कुटुम्ब का एक सदस्य ही मान लिया था और वैसा ही बर्ताव जिन्दगी-भर किया भी। और इधर मैं उनके आदेश तथा उपदेशों की निरन्तर उपेक्षा ही करता रहा। उनके पन्द्रह बार कहने पर मैं जयपुर पहुँच सका, यद्यपि मेरी प्रवास-भीरुता ही इसका मुख्य कारण थी।

मैंने जो ऊटपटाँग मजाक उनके साथ किये उनको उन्होंने स्नेहपूर्वक सहन ही किया और कभी बुरा नहीं माना। आज श्री सम्पूर्णानन्दजी के चले जाने के बाद मैं अपनी क्षुद्रता तथा धृष्टता के लिये उनकी स्वर्गीय आत्मा से क्षमा प्रार्थी है।

संयुक्तराज्य अमेरिका द्वारा भारत को आर्थिक सहायता

श्री शंकरसहाय सक्सेना भूतपूर्व निदेशक शिक्षा, राजस्थान

स्वतंत्र हो जाने के उपरान्त तत्कालीन नेताओं का ध्यान देश के आर्थिक विकास की ओर जाना स्वाभाविक था। अतएव श्री जवाहरलाल नेहरू ने पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के आर्थिक विकास का कार्यक्रम हाथ में लिया और बड़ी धूम धाम के साथ पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की गईं। परन्तु भारत सरकार के विशेषज्ञ तथा योजना आयोग के देवता इस बात को भूल गए कि स्वतंत्र भारत के सामने कुछ नई समस्याएँ उपस्थित हो गयी थीं जो कि पहले विद्यमान नहीं थीं। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद निरन्तर भारत का निर्यात आयात से अधिक रहता था। अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अन्तर निरन्तर भारत के पक्ष में रहता था। युद्ध काल में ब्रिटेन भारत से जो युद्ध सामग्री तथा अन्य माल खरीदता था उसका मूल्य स्टर्लिंग में भारत के खाते में ब्रिटेन में जमा कर देता था। उसका परिणाम यह हुआ कि भारत के खाते में १४,००० करोड़ रुपए के स्टर्लिंग जमा हो गये। भारत साहूकार राष्ट्र बन गया। परन्तु स्वतन्त्र होने के उपरान्त भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अन्तर निरन्तर भारत के विपक्ष में रहने लगा। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस मूलभूत परिवर्तन का कारण यह था कि विभाजन के फलस्वरूप भारत में खाद्यान्न तथा औद्योगिक कच्चे माल का अभाव हो गया। अनाज 'पटसन' कपास विदेशों से मंगाए जाने लगे। होना तो यह चाहिए था कि खेती पर विशेष ध्यान दिया जाता और खाद्यान्न तथा औद्योगिक कच्चे माल की दृष्टि से शीघ्रातिशीघ्र स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न किया जाता परन्तु ऐसा नहीं हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में खेती की उपेक्षा कर वृहद आकार के भारी उद्योग पर अधिक बल दिया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग-धंधों के लिए संयंत्र, कच्चा माल, तथा तकनीकी ज्ञान का आयात कल्पनातीत राशि में करना पड़ा। ऊपर से सरकार द्वारा चरम सीमा तक पहुँचने वाला अपव्यय और विदेशों को जाने के लिए आतुर असंख्य भीड़ ने आयात निर्यात के अन्तर को बहुत अधिक बढ़ा दिया और विदेशी विनिमय की कठिन समस्या देश के सामने उपस्थित हो गई। परन्तु फिर भी हमारे राजनीतिक नेताओं और अर्थशास्त्रियों की आंख नहीं खुली। हमारे अर्थशास्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की इच्छा को देखकर ही अपनी सम्पति देने लगे, अतएव किसी का यह साहस नहीं हुआ कि द्वितीय योजना की इस भयंकर कमी की ओर सरकार का ध्यान दिलाता।

विदेशी विनिमय की कमी को पूरा करने के लिए विदेशों और विशेषकर संयुक्तराज्य अमेरिका पर हम निर्भर होते गए। क्रमशः देश की आर्थिक स्थिति इतनी गिर गई कि हम पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए मुख्यतः विदेशों पर निर्भर हो गये। हमारा योजना आयोग संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर टकटकी लगाए रहता है कि वह कितनी आर्थिक सहायता देगा, उसी के अनुसार योजना को तैयार किया जावे। हमारा विदेशी ऋण इतना भयावह हो उठा कि उसके ब्याज को देने के लिए भी हमें और ऋण लेना पड़ रहा है। विदेशों पर अत्यधिक निर्भर रहने का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि साहूकार बड़े राष्ट्र हम पर दबाव डालने लगे।

यद्यपि हमारे राजनीतिक नेता यह कहते नहीं थकते कि विदेशों से आर्थिक सहायता हमें बिना किसी राजनीतिक बन्धन के मिलती है परन्तु जिसमें तनिक भी विचार कर सकने की शक्ति है, और बुद्धि है वह इस राजनीतिक प्रचार से धोखा नहीं खा सकता। हमारी विदेश नीति, अर्थनीति, तथा शिक्षा नीति आदि पर आर्थिक सहायता देने वाले बड़े राष्ट्रों का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है। रुपये का अवमूल्यन भारत को किस बड़े देश के दबाव के कारण करना पड़ा यह किसी भी विद्वान् से छिपा नहीं है। ताशकंद समझौता भी हम पर इसी कारण लादा जा सका। हमसे जो कहा जाता है फरक्का बाँध के सम्बन्ध में पाकिस्तान से वार्तालाप करो, कपास की खेती कम करके गेहूँ पैदा करो, कपास संयुक्तराज्य से मंगवाओ, आदि यह किस बात का द्योतक हैं। हम जो भी परियोजनाएँ कार्यान्वित करते हैं उनके लिए चाहे देश यथेष्ट विशेषज्ञ हो, तकनीकी ज्ञान उपलब्ध हो परन्तु परामर्शदाता तथा प्रेषकों की एक सेना विदेशों से आती है। हमारे अधिकांश विश्वविद्यालय विदेशी विश्वविद्यालयों के विस्तार केन्द्र मात्र बन गये हैं, हमारी योजनाओं पर साहूकार राष्ट्रों को स्वीकृत की मुहर लगाना आवश्यक हो गया है। सामुदायिक विकास योजना को विदेशी परामर्शदाताओं की देख-रेख में ही कार्यान्वित किया गया। संक्षेप में यदि कहें तो इस आर्थिक

परावलम्बता का भयंकर परिणाम यह हुआ है कि देश के आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन, पर बड़े राष्ट्र छा गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों भारत अपने को भूल गया है, और कतिपय बड़े राष्ट्रों की दया भिक्षा पर जीवित है। जो बात दो सौ वर्ष की दासता के काल में नहीं हुई, भारत अपने को नहीं भूला, वह स्वतंत्र भारत के इक्कीस वर्षों में होती दिखलाई देने लगी।

यदि हमारे नेता विदेशी सहायता के मोहजाल में न फँसकर बड़ी-बड़ी योजनाओं द्वारा देश में स्वर्ग उतारने का असफल प्रयत्न करने की भूल न करते और आरम्भ में खेती और छोटे उद्योगों को विकसित कर खाद्यान तथा कच्चे माल की दृष्टि से देश को स्वावलम्बी बनाकर गांवों की आर्थिक स्थिति को सुधारते और राज्य सरकार के बढ़ते हुए भयकर अपव्यय को रोकते तो विदेशी सहायता की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ती और देश स्वावलम्बी बन जाता। फिर देश में जो बचत होती उसी को पूँजी में परिणित कर बड़ी-बड़ी योजनाओं को बिना विदेशों पर निर्भर हुए पूरा किया जा सकता था। परन्तु हुआ इसके विपरीत। इस भयंकर भूल ने देश को आर्थिक दृष्टि से नितान्त परावलम्बी बना दिया और उसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं।

हम विदेशों पर कितने अधिक निर्भर हैं और हमारी आर्थिक स्थिति कितनी दयनीय हैं उसका दिग्दर्शन कराने के लिए लेखक संयुक्तराज्य अमेरिका द्वारा भारत को जो अभी तक आर्थिक सहायता मिली है उसका संक्षिप्त व्योरा देना आवश्यक समझता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भारत को दी गयी सहायता

संयुक्तराज्य अमेरिका ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ होने पर १९५१ से भारत को आर्थिक सहायता देना आरम्भ किया था। जनवरी १९६९ तक संयुक्तराज्य अमेरिका से मिलनेवाली आर्थिक सहायता की रकम ६७ अरब ४५ करोड़ ५८ लाख रुपए तक पहुँच गयी।

संयुक्तराज्य अमेरिका तीन संस्थाओं के द्वारा भारत को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। (१) अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका की एजेंसी (२) पी० एल० अर्थात् सार्वजनिक विधि (शान्ति के लिए भोजन) कार्यक्रम (३) संयुक्तराज्य अमेरिका निर्यात आयात बैंक।

संयुक्तराज्य अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी का एक मिशन स्थायी रूप से नई देहली में स्थापित है जो उसकी सहायता से कार्यान्वित की जानेवाली योजनाओं की देख-भाल करता है।

यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है कि जब हम विदेशी सहायता की बात करते हैं तो उसका अर्थ यह कदापि भी नहीं है कि संयुक्तराज्य अमेरिका उतनी रकम भारत को अनुदान के रूप में देता है जिसे भारत को चुकाना नहीं होगा। अधिकांश सहायता ऋण के रूप में दी जाती है जिसे भारत को ब्याज सहित चुकाना होगा। थोड़ी सहायता अनुदान के रूप में भी दी जाती है। जिसे भारत नहीं चुकायेगा। नीचे हम अनुदान तथा ऋण के रूप में संयुक्तराज्य अमेरिका ने जो भारत को जनवरी १९६९ तक आर्थिक सहायता दी है उसका व्योरा देते हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका का अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसी

उक्त एजेंसी ने भारत को नीचे लिखे ऋण दिए हैं। (१) वे ऋण जो रुपयों में चुकाए जा सकते हैं। इन ऋणों की कुल राशि ५२ करोड़ ८७ लाख डालर अर्थात् ३९६ करोड़ ५३ लाख रुपए है। यह ऋण मुख्यतः रेलों के विकास, विद्युत् उत्पादन, इस्पात के आयात तथा उत्पादन, जलविद्युत उत्पादन, औद्योगिक साख संस्थाओं को स्थापित करने, उर्वरक के कारखाने स्थापित करने के लिए लिये गये हैं। इन ऋणों को कुल संख्या २९ है।

वे ऋण जिनका भुगतान भारत को डालरों में करना होगा उन ऋणों की कुल राशि २३६ करोड़ १२ लाख डालर अर्थात् १७ अरब ७० करोड़ ९० लाख रुपए है। ऊपर के आँकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रुपयों में चुकाया जानेवाला ऋण बहुत कम है। अधिकांश ऋण डालरों में ही चुकाया जावेगा। अर्थात् भारत को मूल और व्याज डालर में चुकाना होगा।

यह ऋण भी रेलों के विकास, स्टील के कारखानों, परिवार नियोजन, उर्वरक के कारखानों, जलविद्युत् उत्पादन, औद्योगिक साख-संस्थाओं की स्थापना के लिए और ताता आयरन वर्क्स, ताता इंजिनियरिंग तथा लोकोमोटिव वर्क्स, हिन्दुस्तान मोटर्स लिमिटेड तथा अन्य निजी उद्योगों के लिए दिये गये हैं। इन ऋणों की संख्या ४८ है।

ऊपर लिखे ऋणों को ४० वर्षों में चुकाना होगा।

प्रथम दस वर्षों में मूल की किश्तें नहीं चुकाई जावेंगी केवल व्याज ही चुकाया जावेगा। शेष ३० वर्षों में सूद और मूल दोनों ही चुकाया जावेगा।

अनुदान—संयुक्तराज्य अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी तकनीकी सहयोग कार्य-क्रम के अन्तर्गत भारत सरकार को मलेरिया तथा चेचक के उन्मूलन के लिए, कृषि तथा तकनीकी विश्वविद्यालयों, तथा शिक्षण संस्थाओं, शिक्षा, दूध के उद्योग के विकास, खेती की पैदावार को बढ़ाने, सामुदायिक विकास योजना, कारीगरों के प्रशिक्षण मे सहायता देती है। इन कार्यक्रमों में अधिकतर होता यह है कि अमेरिका अपने विशेषज्ञ भेजता है जो इन कार्यक्रमों के सचालन में भारत सरकार को सहायता पहुँचाते हैं और उन अमेरिकन विशेषज्ञों के वेतन-भत्ते, आने-जाने के व्यय आदि पर जो व्यय होता है एजेंसी अनुदान मान लेती है। अर्थात् अमेरिकन विशेषज्ञों पर ही वह रकम व्यय हो जाती है। इसके अतिरिक्त हज़ारों की संख्या में भारत के प्रशिक्षण के लिए जो लोग अमेरिका जाते हैं वह व्यय भी इसमें सम्मिलित है।

१९५१ से जनवरी १९६९ तक भारत में अमेरिका से २७१५ विशेषज्ञ आये और ५ हजार भारतीय प्रशिक्षण के लिए अमेरिका गये।

इस पर जो संयुक्तराज्य अमेरिका की अर्न्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी ने व्यय किया उसकी रकम ४१ करोड़ ४१ लाख डालर अर्थात् ३१० करोड़ ५८ लाख थी।

पी० एल० ४८० अर्थात् सार्वजनिक विधि (शान्ति के लिए भोजन) कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अमेरिका ने नीचे लिखे खाद्यान्न बेचे :—४ करोड़ ८२ लाख टन गेहूँ, ५२ लाख टन मक्का, १७ लाख टन चावल, ३३ लाख गाँठ कपास, २ लाख ६७ हजार टन वनस्पति तेल, १ लाख ७० हजार टन चर्वी, ७ हजार ४ सौ टन तम्बाकू, २४, ९०० टन मक्खन निकला दूध का पाउडर, आदि।

पी० एल० ४८० के अन्तर्गत अमेरिका ने खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुएँ बेचीं उनका मूल्य ४३ करोड़ ८८ लाख डालर था। भारत को इनका मूल्य रुपयों में चुकाना होता है। कुल मूल्य का ८०·४ प्रतिशत संयुक्तराज्य पुन: भारत को ऋण (६०·५ प्रतिशत) और अनुदान (१९·९ प्रतिशत) के रूप में दे देता है। जिसमें से ६·५ प्रतिशत रकम निजी औद्योगिक क्षेत्र को ऋण स्वरूप देने के लिए १३ १ प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका की सरकार के उपयोग के लिए सुरक्षित है।

पी० एल० ४८० टाइटिल—२

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत संयुक्तराज्य अमेरिका दुर्भिक्ष वाले क्षेत्रों में दुर्भिक्ष से जनसंख्या की रक्षा करने के लिए अनाज बाँटता है। यह अनाज अमेरिकन दुर्भिक्ष सहायता सहयोग सेवा, कैथलिक सहायता सेवा, चर्च-विश्व-सेवा, तथा लुथेरान विश्व सेवा के द्वारा बाँटा जाता है। इस सम्बन्ध में हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए यदि संयुक्तराज्य अमेरिका का उद्देश्य केवल दुर्भिक्ष पीड़ित जनसंख्या की रक्षा करना मात्र हो तो उसे यह अनाज भारत सरकार को अथवा भारतीय सेवा संस्थाओं—उदाहरण के लिए रामकृष्ण मिशन, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, आदि को देना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं किया गया। केवल ईसाई मिशनरियों को ही यह काम सौंपा गया। बिहार के भयंकर दुर्भिक्ष में अमेरिकन ईसाई मिशनरियों ने इसका उपयोग धर्म-परिवर्तन करने में किया।

इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के अन्तर्गत १ करोड़ १२ लाख स्कूलों में जानेवाले बच्चों को स्वास्थ्यवर्धक आहार देने की व्यवस्था की गयी है। इस कार्यक्रम में राज्य सरकार तथा स्थानीय जनता जब यथेष्ट व्यय भार वहन करती है तभी उस क्षेत्र में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता दी जाती है।

संयुक्तराज्य अ रि नर्यात-आयात बैंक

निर्यात-आयात बैंक ने अभी तक भारत को २८ ऋण दिये हैं जिनकी कुल रकम ४५ करोड़ ८३ लाख डालर अर्थात् ३४६ करोड़ ७० लाख रुपये है। यह ऋण डालर मे ही दिये गये है और उनका भुगतान भी डालरों में ही करना होगा। इस ऋण पर भारत को ५३ प्रतिशत व्याज देना होता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका की आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में यह बात और ध्यान में रखने की है कि जो भी ऋण या अनुदान की रकम दी जाती है वह अधिकतर किसी योजना-विशेष से बँधी होती है। भारत सरकार केवल उसी योजना

पर रकम को व्यय कर सकती है और उस योजना के लिए जो भी यंत्र आदि मँगाने पड़ते हैं वे केवल संयुक्तराज्य अमेरिका से ही मँगाने पड़ते है फिर चाहे उनका मूल्य अधिक ही क्यों न हो। उदाहरण के लिए यदि किसी उर्वरक के कारखाने की स्थापना के लिए ऋण मिला है तो उसके लिए मशीने आदि संयुक्तराज्य अमेरिका से ही खरीदनी होंगी फिर चाहे इङ्गलैंड या जर्मनी में उससे अच्छा और सस्ता संयंत्र क्यों न मिलता हो। इस प्रकार सहायता से मिलनेवाली रकम से केवल संयुक्तराज्य अमेरिका के बाजार में ही मशीनें आदि खरीदी जा सकती हैं।

यह स्वाभाविक है कि जो देश ऋण या अनुदान देगा वह यह अवश्य चाहेगा कि उसके माल की खरीद की जावे जिससे उसके उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन मिले, और उसका निर्यात बढ़े। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या ऋण लेनेवाले देश को इस प्रकार की शर्त स्वीकार कर लेनी चाहिए।

आज किसी भी व्यक्ति के लिए यह सही मूल्यांकन करना कठिन है कि भारत को विदेशी सहायता से कितना लाभ हुआ परन्तु इसमें दो मत नहीं हैं कि यदि भारत विदेशी सहायता को जहाँ तक होता न लेता और अपने अनावश्यक खर्चों को कम करके अधिक बचत करके, अपनी विकास योजनाओं को बहुत बड़ी बनाने के मोह को छोड़ सकता तो देश के सामने जो आर्थिक संकट खड़ा हो गया वह न होता। तथा सरकार का जो अपव्यय करने का स्वभाव बन गया है न बनता।

स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री ने इस ओर ध्यान दिया था परन्तु अमेरिका से प्रभावित भारतीय विशेषज्ञों ने उनकी बात नहीं चलने दी। आज भी यदि योजना आयोग तथा हमारे नेता इस तथ्य को स्वीकार कर आत्मनिर्भरता के आधार पर देश के आर्थिक विकास का प्रयत्न करें तो देश के लिए शुभ हो।

जून १९५१ से जनवरी १९६९ तक संयुक्तराज्य अमेरिका से भारत को मिलनेवाली आर्थिक सहायता का व्योरा।

	डालर (लाख में)	रुपये (लाख में)
(१) मिशन का तकनीकी सहयोग कार्यक्रम		
(क) विकास अनुदान जिन्हें चुकाना नहीं होगा	४१४१	३१०५८
(ख) ऋण जिसे डालरों या रुपयों में चुकाना होगा	१५४१	११५५८
(२) संयुक्तराज्य अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी		
(क) विकास ऋण जिन्हें डालरों में चुकाना होगा	२३६१२	१७७०९०
(३) पी० एल० ४८० टाइटिल १ ऋण जिसे रुपयों में चुकाना होगा	४३८८२	२३६५००
(४) पी० एल० ४८० टाइटिल २ अनुदान जिसे चुकाना नहीं होगा	४९४२	३७०६५
(५) बाढ़ तथा दुर्भिक्ष सहायता अनुदान (चुकाना नहीं होगा)	५५	४१३
(६) संयुक्तराज्य अमेरिका आयात निर्यात बैंक के ऋण जिन्हें डालरों में चुकाना होगा	४५८३	३४३७०
(७) १९५१ का गेहूँ का ऋण जिसे डालर में चुकाना होगा	१८९७	१४२[illegible]८
योग	८९९४१	६७४५५८

शांतिप्रिय द्विवेदी

(एक संस्मरण : एक साक्षात्कार)

डा० स्वर्णकिरण

नाटे ठिगने कद के एक क्षीणकाय शरीर, प्राय: सिर कुछ बड़ा, नाक लंबी और उठी हुई, बाल बड़े-बड़े, खादी का पायजामा, कुर्ता, जवाहर बंडी और पैरों में साधारण मूल्य के चप्पल से सुसज्जित शांतिप्रिय द्विवेदी के प्रथम दर्शन से उनके प्रति आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक नहीं था; पर उनके प्रति इन पंक्तियों के लेखक को आकर्षण हुआ और वह नागरी प्रचारिणी सभा की एक गोष्ठी में। इनकी मेधा-शक्ति, इनकी वक्तृत्वकला, इनकी कवित्वमय शैली पर बहुत देर तक सोचता रह गया—व्यक्तित्व का अर्थ क्या है, व्यक्तित्व और कृतित्व में क्या सम्बन्ध है, दोनों में कौन महत्त्वपूर्ण है इत्यादि। शांतिप्रिय द्विवेदी शुक्लोत्तर समीक्षा के आत्म-व्यंजना प्रधान आलोचकों में अग्रगण्य थे। वह प्रकृति से कवि और दार्शनिक थे, प्रवृत्ति से आलोचक और निबन्धकार। ऐसा इन पंक्तियों का लेखक पहले से जानता था और किन्हीं-किन्हीं के मुँह से यह भी सुन चुका था कि शांतिप्रिय द्विवेदी उस नीबू के समान हैं जिसका सारा रस चूस लिया गया हो; वह एक ही कमरे में अपना सारा कार्य-व्यापार सम्पन्न कर लेते हैं, गन्दगी को सहसा गन्दगी मानने के लिए तैयार नहीं होते, इत्यादि। पर बिना अच्छी तरह से ठोक-पीटकर देखे हुए, कैसे मान लें कि शांतिप्रिय द्विवेदी क्या हैं और क्या नहीं हैं। इन्होंने कवि के रूप में साहित्यजगत् में 'क्षमा याचना' शीर्षक गद्य काव्य के साथ प्रवेश किया था जो प्रभा नामक पत्रिका में जनवरी सन् १९२५ में प्रकाशित हुई थी। निराला के अनुकरण में इन्होंने मुक्त छन्द में भी कविताएँ लिखीं। शायद उनका मन काव्यजगत् में नहीं रम सका और वे आलोचना जगत् में चले आये। 'हमारे साहित्य निर्माता' प्रथम आलोचनात्मक कृति ने विद्वानों का ध्यान इनकी ओर पहली बार आकृष्ट किया। 'साहित्यिकी', 'कवि और काव्य' 'सामयिकी', 'संचारिणी', 'युग और साहित्य' 'ज्योति-विहग', 'वृंत और विकास', 'परिव्राजक की प्रजा', 'धरातल', 'पथ-चिह्न', 'दिगम्बर' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं और आलोचकों एवं समीक्षकों ने इनकी प्रांजल भाषा-शैली और विस्तीर्ण दृष्टिकोण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। शांतिप्रिय द्विवेदी ने सचमुच अपना प्रतिमान आप ही स्थापित किया। छायावाद प्रशंसा—प्रतिष्ठा और गांधीवाद को साहित्यजगत् में स्थान इनके व्यक्तित्व के नियामक तत्त्व हैं जो पुकार-पुकारकर इनको भीड़ से अलग करते हैं। द्विवेदीजी आजीवन साहित्य की सेवा करते रहे—अनवरत, निष्काम; पर उन्हें क्या प्राप्त हुआ ? लगभग डेढ़ दर्जन कृतियाँ—काव्य, आलोचना, निबंध, संस्मरण, औपन्यासिक रेखांकन आदि सब कुछ; पर बढ़िया खाना-पीना, बढ़िया पहनना-ओढ़ना प्राय: नसीब नहीं हुआ; घुट-घुटकर जीते रहे, विष पी-पीकर अमृत का दान करते रहे।

वाराणसी-प्रवास में सन् १९६० के आसपास शांतिप्रिय द्विवेदी ने इन पंक्तियों के लेखक के मस्तिष्क में अपनी प्रतिभा की अद्भुत छाप छोड़ी। वह आकस्मिक रूप से इनके दर्शन कर सका और इनके व्यक्तित्व के प्रति किंचित् धारणा बना सका। उस भेंट का वर्णन 'शांतिप्रिय द्विवेदी : तीन आकस्मिक दर्शन' नामक लेख में किया गया जो वासंती के एक अंक (शांतिप्रिय द्विवेदी परिशिष्टांक, सितम्बर १९६१) में छपा। उसे पढ़कर शांतिप्रिय द्विवेदी के मस्तिष्क में 'आक-स्मिक' शब्द जैसे बैठ गया। वह कितने सवेदनशील, उदार थे, भावुक और कर्त्तव्यनिष्ठ थे इसका पता लेखक को तब चला जब वह इनके निवासस्थान पर, सन् १९६१ के उत्तरार्द्ध में, एक बार दर्शनार्थ गया और उन्हें अनुपस्थित पाकर, एक पत्र के साथ अपनी सद्य: प्रकाशित दो पुस्तकें 'मिटा हुआ पत्र' तथा 'कुएँ का उड़ाह' छोड़कर लौट आया। शांति-प्रिय द्विवेदी वाराणसी के बाहर थे और लौटते ही उन्होंने लेखक के पास यह पत्र लिखा :—

लोलार्क कुंड, वाराणसी

१०-१०-६१

प्रिय बंधु,

मेरी अनुपस्थिति में आये और मेरी कुटिया को कृतार्थ कर चले गये। सचमुच, मिलना-जुलना 'आकस्मिक' ही होता है। आपकी रचनाओं ('मिटा हुआ पत्र' और 'कुएँ का उड़ाह') द्वारा मैंने आपके सामीप्य का अनुभव किया। इन कविता पुस्तकों द्वारा विषण्ण वातावरण में मेरे कुछ क्षण जीवंत हो गये। नयी कविता के कवि होते हुए भी आप में अनात्मवाद नहीं है। अंतर्ज्योति के लिए आस्था और चिरंतन जीवन के लिए आश्वासन है। लोक प्रतीकों से ही आपने

बड़ी सरलता और स्वाभाविकता से सामाजिक वस्तुस्थिति का चित्रण और रचनात्मक सृष्टि का संप्रेषण दिया है। मैं आपकी प्रतिभा और कविता के उत्तरोत्तर कलात्मक विकास की शुभकामना करता हूँ।

आपका
शांतिप्रिय द्विवेदी

स्पष्ट है, पत्र के माध्यम से द्विवेदी ने लेखक की कृतियों का मूल्यांकन ही नहीं किया, उसे एक प्रकार से दिङ्ग निर्देशन भी किया और अपनी शुभकामनाएँ दीं।

विद्यार्थी जीवन में लेखक द्विवेदीजी के 'गुंजन' सम्बन्धी विचारों और प्रतिक्रियाओं से (कि 'गुंजन' में मुख्यतः सुंदर का सन्देश है, 'पल्लव' का अलौकिक सौंदर्य ही 'गुंजन' के विश्वजीवन में जीवन्त है, 'पल्लव' में वियोग शृङ्गार का प्राधान्य है, 'गुंजन' में सुखद शृंगार का प्राधान्य आदि से) प्रभावित हुआ था, और वह अब भी उनके द्वारा प्रदत्त छायावाद की परिभाषा कि 'छायावाद जीवन के मधुवन का मधुकाव्य है, भूल नहीं सका है। 'ज्योतिविहग' में 'गुंजन' सङ्कलित कविताओं का काल-सर्वेक्षण वस्तुतः 'गुंजन' के प्रत्येक पाठक के लिए आकर्षण का विषय है। सर्वेक्षण इस प्रकार है :—

'गुंजन' की कुछ कविताएँ 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच की हैं; जैसे, भावी पत्नी, मुस्करा दी थी क्या तुम प्राण!, तुम्हारी आँखों का आकाश, नवल मेरे जीवन की डाल, लाई हूँ फूलों का हास, मेरा कैसा गान। एकाध कविता पल्लव' काल की है—जैसे रूपतारा, तुम पूर्ण प्रकाम, आज शिशु के कवि को अनजान।

दो कविताएँ 'वीणा' और 'पल्लव' के बीच की हैं; जैसे कलरव किसको नहीं सुहाता। अलि इन भोली बातों को। एक कविता वीणा काल की है जैसे, नीरवतार हृदय में।

(ज्योतिविहग, पृ० १६१)

शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रशंसापरक आलोचना करते हुए भी, कृतियों के स्खलन और अभाव अपितु दोष को सामने रखने में चूकते नहीं थे; इसके प्रमाण-स्वरूप अनेकानेक उद्धरण रखे जा सकते हैं। लेखक कतिपय शंकाओं का समाधान इनसे मिलकर करना चाहता था पर कोई सन्दर्भ अथवा संयोग ही नहीं मिल पाया। उसे क्या पता, अपने जीवन-काल में शांतिप्रिय द्विवेदी समस्यापूर्ति से भी रुचि रखते थे और समय-समय पर अच्छी पूर्त्तियाँ करते थे, अन्यथा वह समय निकालकर अपने शोधकार्य के समय ही इनसे मिलता और इनकी सहायता से लाभान्वित होता। वह कैसे मिले, कब मिले इसीको लेकर १२-१०-६१ को उसने द्विवेदीजी के पास एक पत्र लिखा जिसका उत्तर लगभग दो सप्ताह के बाद इस प्रकार आया :

लोलार्क कुंड (भदैनी),
वाराणसी :
२३-१०-६१

प्रियवर,

आपका १२-१०-६१ का पत्र मिला।....मैं बाहर चला गया था, कल साँझ को एक सप्ताह बाद आया हूँ।

बनारस में जब रहता हूँ तब मिलने का समय १०-११ बजे अथवा ४–५ बजे अपराह्न में ठीक रहता है। कभी आइये तो उसके पहले एक पत्र लिखकर जाँच लीजिए।

आपका
शा० प्रि० द्वि०

पुनश्च :

आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

शांतिप्रिय द्विवेदी

लेखक पत्र पढ़कर प्रसन्न हुआ और मन ही मन अपनी शंकाओं को प्रश्न के रूप में शृङ्खलाबद्ध कर, १४ अक्टूबर सन् १९६२ को उनके निवासस्थान पर पहुँचा। पत्र में दिये हुए समय के बन्धन का उसके द्वारा पालन नहीं हो पाया, इसके लिए वह भयभीत था पर द्विवेदीजी ने कुछ नहीं कहा और स्वागत-सत्कार की मुद्रा में जब बातचीत के लिए तैयार हो गये तो लेखक की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही।

लेखक ने पूछा—नयी कविता के बारे में आपकी क्या राय है ?

शांतिप्रिय द्विवेदी बोले—पढ़ने के मामले में बड़ा दीर्घ-सूत्री हूँ; कविताएँ तो और भी कम पढ़ता हूँ। एक समय था, कविता में मेरी अत्यधिक रुचि थी और अपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश भी कविता-लेखक से किया था; तब प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की कविताओं का समय था, इनकी कविताएँ काफी अच्छी और सुन्दर हैं। इन लोगों ने पूर्ण जीवन देकर कविताएँ लिखीं। नयी कविता में बौद्धिक चमत्कार है। नयी कविता के लेखक बुद्धजीवी हैं, इनमें लोगों को आतंकित करने की भावना है। मूल में तो अहं है ही। अहं का विसर्जन ही, उत्सर्ग ही कविता और साहित्य है, पर नये कवि अहं को विसर्जित करना, उत्सर्जित करना जानते

ही नहीं। इससे पाठकों पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ पाता। नयी कविता में कोई कलात्मकता भी नहीं है। निराला के मुक्त छन्द में कलात्मकता है, लय नाटकीय गठन है, नयी कविता में लय और नाटकीय गठन पर भी उतना ध्यान नहीं दिया जाता। वस्तुतः इसमें गद्य में पद्य को रूपायित करने का प्रयत्न है। पुरानी कविता पढ़ने पर एक गूंज बच जाती है, पर नयी कविता पढ़ जाने पर कोई अनुगूंज अवशिष्ट नहीं रहती।

लेखक—अच्छी कविता के बारे में आपकी धारणा ?

शांतिप्रिय द्विवेदी—अच्छी कविता में रागबद्धता रहती है जिसका जादू मन-मस्तिष्क पर सहज रूप में चढ़ जाता है। इसमें मात्र लक्ष्य संप्रेषण ही नहीं होता जैसा कि आज की नयी कविता के कवियों का लक्ष्य होता है। नयी कविता में मन के बुलबुले निकलते हैं पर कोई आवर्षण नहीं रहता। असल में, आज व्यक्तिवाद का युग है; लेखक का व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। सो व्यक्तित्व-मुक्ति (Despersonification) से शंवलित कविता लिखी ही नहीं जाती। अच्छी कविता व्यक्तित्व-मोक्ष है और सार्वजनीन है, उसकी अनुगूंज सदैव विद्यमान रहती है। आज की कविता में बहुत कुछ समस्यापूर्त्ति का प्रयास है जो कि अच्छी कविता की संज्ञा से विभूषित करने के योग्य नहीं।

लेखक—समस्यापूर्त्ति के विषय में आपकी सम्मति ?

शांतिप्रिय द्विवेदी—समस्यापूर्त्ति दरबारी मनोविनोद की चीज है। यह उक्ति चमत्कार से संवद्ध है। इसमें स्वाभाविक रस-संचार नहीं होता, भाव-प्रवणता नहीं दीखती। समस्यापूर्त्ति चमत्कार प्रधान काव्य है। देव, मतिराम, घनानंद का काव्य ऐसा नहीं। वह रसप्रधान काव्य है। समस्यापूर्त्ति फुरसत की चीज है। कविता में मनोविनोद एवं मनोरंजन अपेक्षित है, पर यही कविता का सब कुछ नहीं है। समस्यापूर्त्ति में मनोविनोद, मनोरजन की मात्रा अधिक है। इधर मैथिलीशरण गुप्त ने अन्योक्ति पर एक रेडियोवार्ता प्रस्तुत की थी। इसमें अन्योक्ति पर प्रकाश डाला—पर काजहिं देह को धारे फिरौ परजन्य यथारथ ह्वै दरसौ......।—इसमें रसवत्ता है, सहज स्वाभाविकता है, समस्यापूर्त्ति में सहज स्वाभाविकता नहीं। 'जोग की न कहियो, वियोग की न कहियो ऊधो, सावन सुनाइयो..। कवहूँ मिलिवो, कवहूँ मिलिवो हिय में यह आस तिरैबो करे।....तनते बिथा जोबन च्यो गयो...।' इन पंक्तियों में विरह मूर्तिमान दीखता है; समस्यापूर्त्ति-काव्य में भी विरह के चित्र हैं पर उनमें वह आकर्षण नहीं है। छायावादी काव्य असल में रस-प्रधान काव्य है। इधर की रचनाएँ बुद्धिप्रधान हैं फिर भी समस्यापूर्त्ति के ढंग की हैं। इनकी तुलना में व्रजभाषा की पूर्त्तियों को रखिए, अंतर स्पष्ट हो जायगा। समस्यापूर्त्ति वर्त्तमान नयी कविता से अच्छी चीज है यद्यपि समस्यापूर्त्ति को अच्छा काव्य नहीं कहा जा सकता तथापि आकर्षक काव्य तो वह है ही। नयी कविता में कुछ अच्छे दृश्य अवश्य हैं पर वे मूलतः ड्राइंग-रूमी ही हैं; समस्यापूर्त्ति में पूर्त्तिकार के दृश्य इतने सीमित नहीं।

लेखक—जीवन को देखने का आपका कौन-सा तरीका है ?

शांतिप्रिय द्विवेदी—जीवन को मैं यथार्थवादी दृष्टि से देखता हूँ, चाहे वह आम्र की मंजरी हो या विशाल वृक्ष। बीच की चीज ठीक नहीं। मूल है तो विकास होगा। मनुष्य अपनी प्राकृत आवश्यकताओं से परिचालित होता है। प्राकृत आवश्यकताएँ पाशविक आवश्यकताएँ हैं। इनसे वचना संभव नहीं। मैं अपवाद नहीं हूँ। मैं शरीर को आवश्यक समझता हूँ, वस्तुतः शरीर से अलग कोई चीज नहीं, अध्यात्म भी नहीं। पृथ्वी को हल से जोतते हैं और तब उससे अन्न निकलता है, उसीसे अध्यात्म भी होता है। एक ही चीज के विभिन्न रूप हैं, विभिन्न नाम हैं—जो तू सींचै मूल को—आप शायद जानते हैं; मूल की सेवा करनेवाला मूल पर ध्यान देनेवाले को कभी पछतावा नही होता। मैं भी पछतावे में नहीं हूँ। मैंने शरीर धर्म पर अधिक ध्यान दिया है, जीवन को जीवन बनाने के लिए प्रयासशील रहा हूँ।

लेखक—आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ?

शांतिप्रिय द्विवेदी—मैं मनुष्य हूँ; मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का पक्षपाती हूँ। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपनी शक्ति को पहचाने, सहयोग बल का सहारा लेकर मुश्किल से मुश्किल काम करे, मनुष्यता को बढ़ाए, मानवता का कल्याण करे। मैं मनुष्य मात्र में सहयोग, सहोद्योग का भाव भरना चाहता हूँ। मेरा जीवन सचमुच उस दिन कृतार्थ हो जायगा जिस दिन मनुष्य अपने जीवन को दूसरों के कल्याण में पूर्णतया अर्पित कर देगा। मैं जीवन को यथार्थवादी मानता हूँ पर मेरा यथार्थवाद कम्युनिस्टों की तरह यांत्रिक नहीं। मैं पंचभूतों की सजीव

[शेष पृष्ठ ४७९ पर देखिए

तमिल के पंचमहाकाव्य

श्री एस० केशवमूर्ति

[तमिल भाषा भारत की एक अत्यन्त प्राचीन जीवित भाषा है। उसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। जिस प्रकार संस्कृत के तीन काव्यों की वृहत्त्रयी है, इसी प्रकार तमिल के पाँच प्राचीन महाकाव्य "पंच-महाकाव्य" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस लेख में इनका मनोरंजक परिचय दिया गया है—। सम्पादक सरस्वती।)

'तमिल' दक्षिण भारत में बोली जानेवाली सबसे प्राचीन समृद्ध द्रविड़ भाषा है। सिलप्पदिगारम, मणिमेगलै, सीवगसिंदामणि, वलैयपदि एवं कुण्डलकेसि पंच 'महाकाव्य' के नाम से तमिल भाषा में अत्यंत प्रचलित हैं। दो हजार वर्ष पूर्व इनका प्रणयण हुआ था। महाकाव्य के अष्टादश लक्षणों एवं धर्मार्थकाममोक्ष को लक्ष्य में रखकर रचे जाने से ये महाकाव्य की कोटि में गिने जाते हैं। कालक्रम एवं काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी उपर्युक्त क्रम ठीक है। प्रथम स्थान सिलप्पदिगारम एवं अन्तिम स्थान कुण्डलकेसि को है। उन दिनों बौद्ध एवं जैन संन्यासी अपना मत प्रचार करने उत्तर से दक्षिण आकर बस गये थे। दक्षिण में उनके पूर्व शैव एवं वैष्णव संप्रदाय प्रचलित थे। इन चारों संप्रदायों का, खासकर जैन और बौद्ध मतों का प्रभाव इन पंचमहाकाव्यों पर अधिक पड़ा है। ये महाकाव्य तमिल संस्कृति के दर्पण हैं।

१—सिलप्पदिगारम

काल निर्णय की दृष्टि से सिलप्पदिगारम प्रथम महाकाव्य है। इसके रचयिता तिरुवनंतपुरम् के चेर राजवंश में उत्पन्न राजा सेरलादन के द्वितीय पुत्र एवं सेन्गुट्टुवन के छोटे भाई इलंगोवडिगल हैं। इलंगोवडिगल निर्ग्रन्थ नामक जैन शाखा के सन्यासी हो गये थे। ये सिंहल के राजा द्वितीय गजबाहु के समकालीन हैं। अतः ईसा की दूसरी शताब्दी में थे। तमिल भाषा में उन दिनों प्रचलित तीनों अंगों (इयल, इसै, नाडगम) काव्य, संगीत एवं रूपक के गुणों को समन्वय कर उन्होंने सिलप्पदिगारम की रचना की।

सिलंबु + अदिगारम = सिलप्पदिगारम अर्थात् पायल से (कथा) अधिक बड़ी। अतः इस काव्य का शीर्षक सिलप्पदिगारम पड़ा। इस महाकाव्य के तीन काण्ड हैं। कथा चोल राजा की राजधानी 'पुगार' नगर में प्रारंभ होकर, पाण्ड्य की राजधानी मदुरै नगर में विकसित हो, चेर राज्य की राजधानी वंजि नगर में समाप्त होती है। अतः तीनों काण्ड क्रमशः पुगारकाण्डम्, मदुरैक्काण्डम् और वंजिकाण्डम् नाम से अभिहित है। प्रथम काण्ड में दस, द्वितीय काण्ड में तेरह एवं तृतीय काण्ड में सात—कुल मिलाकर तीस सर्ग हैं। शृंगार, वीर एवं करुण रस क्रमशः (प्रत्येक) काण्ड में प्रधान बने हुए हैं। इसे दुःखसुखांत महाकाव्य कह सकते हैं। क्रमशः तीनों राजाओं की कीर्ति गायी गयी है, यद्यपि यह राजाओं की कहानी नहीं है।

ग्रंथारंभ में कवि ने इस महाकाव्य के उद्देश्य तीन बताये हैं: (१) विधि के नियमों से कोई बच नहीं सकता। (२) पतिव्रता की अर्चना देवता भी करते हैं। (३) जो राजा शासन में चूकता है, उसे स्वय धमदेवता आकर दण्ड देते हैं। इन तीन तत्त्वों को जनता तक पहुँचाने के लिए इस काव्य का सृजन हुआ है। यह महाकाव्य "'अमवर्पाछंद" (स्वच्छंद छंद, Blank verse) में लिखा गया है। यद्यपि इस महाकाव्य में शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन मत के तत्त्व पाये जाते हैं फिर भी वह जैन मत की ओर ज्यादा झुका हुआ है। इसे जैन मत का प्रथम महाकाव्य मान सकते है। उन दिनों इन चारों मतों के बीच सहअस्तित्व एवं सहकारिता की भावना प्रधान थी। आपस में धर्म सम्बन्धी असहिष्णुता या झगड़े की प्रवृत्ति नहीं थी।

इस महाकाव्य के भाष्यकार अड़ियार्कुनल्लार ने इसे "स्वच्छंद छद में वर्णित, संगीत एवं नृत्य से युक्त कथा" कहा है। ग्रंथारंभ में स्वयं कवि ने कहा है कि उरैमिडै इट्ट पाट्टुडैच्चेय्युळ अर्थात् यह एक पद्यात्मक काव्य है जिसमें पद्य और गद्य का समन्वय हुआ है। (चंपू नहीं)। इसे कुछ लोगों ने नाडगकाप्पियम् अर्थात् नाट्यकाव्य कहा है। यहाँ 'कप्पियम्' महाकाव्य (Fpic) के अर्थ में लिया गया है। काव्यशास्त्र की दृष्टि में भी पंचमहाकाव्यों में इसे सर्वप्रथम स्थान मिलता है। इसमें ग्यारह प्रकार के नाट्य एवं तमिल देश में प्रचलित संगीत शास्त्र का सुन्दर निरूपण हुआ है।

कथावस्तु :—कथावस्तु तमिल के चोल, पाण्ड्य एवं

चेर राज्यों से संबंधित है। यह पतिव्रता श्रेष्ठी नारी कण्णगी की कहानी है। चोल राज्य के धनी वणिक परिवार में उत्पन्न कोवलन के साथ कण्णगि का विवाह संपन्न हुआ। पर ललितकलाओं एवं भोग-विलास में आसक्त कोवलन अपनी पत्नी को छोड़, माधवी नामक एक वेश्या के साथ दिन बिताने लगता है। कण्णगि दिन-रात आँसू बहाने लगती है। कुछ ही वर्षों में सारा धन समाप्त हो जाता है; धन की कमी हो जाने पर भी यद्यपि माधवी पतिव्रता है, फिर भी उस पर संदेह उत्पन्न हो जाता है। तुरन्त माधवी को त्याग, कोवलन अपनी पत्नी के यहाँ आता है। निर्धनी होकर, अपना मुँह बाहर भी न निकालने की स्थिति देखकर कण्णगि अपने पति को अपना माणिक्य से जड़ा एक पायल देकर उसे बेचने और उससे प्राप्त धन को व्यापार में लगाने की सलाह देती है। अपने देश में अपनों के सामने इस तरह गरीबी का जीवन बिताना कठिन समझकर, अपनी पत्नी को साथ ले पाण्ड्य राजधानी मदुरै में जीवनयापन करने चल पड़ता है।

कोवलन मदुरै में एक सुनार के पास पायल बेचने जाता है। उस सुनार ने पाण्ड्य राजा की पटरानी का एक पायल हड़पकर यह अपवाद फैला दिया था कि रानी की एक पायल की चोरी हो गयी है। कोवलन का दिया हुआ पायल रानी के पायल से मिलता-जुलता था। उसने कोवलन को चोर ठहराकर राजा के हाथों सौंप दिया और राजा ने उसे मृत्युदण्ड दे दिया। सुनार चोरी से बच गया।

कण्णगि यह समाचार सुनते ही सती होना चाहती थी। पर मरने से पूर्व अपने पति को निर्दोषी साबित कर उसने राज्य से प्रतिशोध लेने का संकल्प किया। अपने पासवाले दूसरे पायल को हाथ में ले वह राजसभा में पहुँची। राजा, रानी के साथ सिंहासनारूढ़ था। राजा ने बताया कि चोरी करनेवालों को मृत्युदण्ड देना हमारे राज्य का नियम है। कण्णगि ने पूछा कि महारानी के पायल में क्या भरा था? रानी ने झट उत्तर दिया कि मोती भरे थे। तब अपने पायल को तोड़कर उसने यह साबित किया कि उसके पायल में माणिक्य भरे हैं। उसे देखते ही राजा, अपनी भूल से इतना विह्वल हो गया कि, वहीं सिंहासन से लुढ़ककर मर गया। रानी ने भी वहीं पति के साथ प्राण त्याग दिये। कण्णगि इस पर भी संतुष्ट नहीं हुई। उसने अग्नि भगवान् से प्रार्थना कर सारे मदुरै को जला डाला।

वहाँ से अपने स्वर्गस्थ पति को ढूँढ़ती हुई वह वंजि नगर में पागल की तरह भटकने लगी। वंजि पहाड़ की चोटी पर पुष्पक विमान में बैठकर अपने पति के साथ वह भी स्वर्ग सिधार गयी। वहाँ के राजा ने उसकी गाथा एवं अद्भुत दृश्य को पहाड़ी लोगों से सुनकर पतिव्रता कण्णगि का एक मंदिर बनाकर उसकी पूजा द्वारा कोपाग्नि का शमन किया।

२—मणिमेगलै

मणिमेगलै के रचयिता हैं श्री सीत्तलै सात्तनार। इलंगोवडिगल् एवं मदुरै कूल वाणिगन सीत्तलै सात्तनार समकालीन थे। अतः दोनों महाकाव्य एक ही काल में रचे गये थे। काव्य के अंत में कवि ने कहा है "उरैप्पोरुल मुट्रिय सिलप्पदिगारम मुट्रम" अर्थात् सिलप्पदिगारम् की कथा-वस्तु यहाँ समाप्त होती है। सिलप्पदिगारम् से कथा प्रारम्भ होकर मणिमेगलै में समाप्त होती है। अतः मणिमेगलै को सिलप्पदिगारम का उत्तरार्ध मान सकते हैं। ऐसा होते ही हुए भी वह एक अलग महाकाव्य ही है। अतः इन दोनों को युग्म महाकाव्य (Twin Episcs) भी कहते हैं। सिलप्पदिगारम् में धर्म, अर्थ एवं काम की प्रधानता है, तो मणिमेगलै में मोक्ष की। इस महाकाव्य में बौद्धमत का एकमात्र अधिकार है। दूसरे अर्थ में इसे बौद्ध-धर्म-प्रचार ग्रंथ भी कह सकते हैं।

मणिमेगलै (अगवर्पा) स्वच्छंद छंद (blank verse) में लिखा गया है। इसके तीस सर्ग हैं। काव्यशास्त्र की दृष्टि से पंचमहाकाव्यों में यह द्वितीय ठहरता है। बौद्धमत को कूट-कूट कर भरने पर भी काव्य सौंदर्य में कुछ कमी नहीं आ पायी है।

कथावस्तु—कोलवन एवं वेश्या माधवी की पुत्री है मणिमेगलै। कोवलन के पाण्ड्य राज्य में मारे जाने की खबर सुनकर माधवी और मणिमेगलै अपने ऐश-आराम का जीवन त्यागकर अपनी संपत्ति को बौद्धमठ को अर्पण कर बौद्ध संन्यासिनी बन जाती हैं। मणिमेगलै जो अभी यौवन की देहरी पर पदार्पण कर रही है, वह भी संन्यास लेकर जीवन बिताती है।

एक दिन इन्द्रध्वज त्यौहार में फूल चुनने के लिए अपूर्व सुन्दरी मणिमेगलै फुलवारी की तरफ जा रही थी। उस नगर का राजकुमार उदयकुमार, उसके सौंदर्य से आहत

होकर उसके पीछे चलता है। मणिमेगला नामक एक देवता मणिमेगलै को मणिपल्लव द्वीप में छोड़कर उसकी लाज बचाता है। वह बुद्धपीठ के दर्शन कर, हाथ में अमुदसुरवि (अक्षयपात्र) को लिए घर लौटती है। अपने अक्षय-पात्र से भूखों की भूख मिटाती है। इस तरह सेवा-धर्म को अपनाकर जीवन बिताती है। विद्याधर देश की एक नारी कायसण्डिगै का भस्म रोग उससे मिटता है। वह अपने देश लौट जाती है।

उदयकुमार मणिमेगलै को बलात्कार से ले जाना चाहता है। इसलिए कायसण्डिगै का रूप धारण कर, मणिमेगलै सब की सेवा करती है। उदयकुमार को यह मालूम हो जाता है कि मणिमेगलै ही उसका रूप धारण कर भूख से पीड़ितों की सेवा करती है। एक दिन, रात में उससे मिलने उदयकुमार आता है। उसी समय अपनी पत्नी कायसण्डिगै की खोज में विद्याधर निकल पड़ता है। उदयकुमार को कायसण्डि के रूप मे रहनेवाली मणिमेगलै से प्रेमालाप करते देख, उसे अपनी ही पत्नी समझकर तलवार से उदयकुमार की हत्या कर देता है। बाद में वास्तविक स्थिति जानकर वह तुरन्त अपने देश लौट जाता है। राजा यह समझ कर कि उसके पुत्र उदयकुमार की हत्या मणिमेगलै द्वारा हुई है, उसे बन्धन में डालना चाहता है। तब रानी उसे अपने पास रखने के बहाने उसे अनेक कष्ट देकर उसे मारना चाहती है मणिमेगलै को विष देती है। पर-पुरुष को भेजकर उसका अपमान करने का षड्यन्त्र रचती है। पर मणिमेगलै पर उसका कुछ भी असर नही होता क्योकि वह अपने पूर्व जन्म का हाल जानती है और मन्त्रशक्ति से पुरुष बनकर अपने सतीत्व की रक्षा करती है। अन्त में रानी उससे क्षमा माँगकर उसे छोड़ देती है। राजा के आग्रह करने पर मणिमेगलै जेलखाने को धर्मशाला में परिवर्तन करने का पुरस्कार माँगती है।

वह वहाँ से काञ्ची नगर को चली जाती है। काञ्ची संस्कृति और विद्या का केन्द्र थी। वहाँ सभी मतो का तत्वज्ञान प्राप्त करने पर भी उसको शान्ति नही मिलती। बाद मे बौद्धभिक्षु अखण्डिगल की शरण मे जाकर और उनसे बौद्ध धर्म के तत्वो को सुनकर उसे शान्ति मिलती हे।

३—सीवगसिंदामणि

सीवगसिंदामणि (जीवक चिंतामणि) महाकाव्य के रचयिता है श्री तिरुत्तक्कदेवर। ये जैन संन्यासी है। उन दिनों यह समझा जाता था कि जैन कवि अपना मत-निरूपण करने के लिए वैराग्य का वर्णन कर शान्त रसयुक्त काव्य लिख सकते हैं—न कि सांसारिक जीवन से सम्बन्धित काव्य को। इस उक्ति को गलत साबित करने के लिए उन्होंने इस महाकाव्य की रचना की। इसमें तेरह लंबकं (सर्ग) हैं। आठ विवाहों का वर्णन होने से इस काव्य का नाम 'मणनूल' अर्थात् विवाह काव्य पड़ा है। तामिल में संस्कृत छन्दों का उपयोग पहले-पहल इसी काव्य में हुआ है। इससे पूर्व के तमिल काव्यों में तामिल के परम्परागत छन्द ही पाये जाते हैं। इसी ग्रन्थ को आदर्श मानकर तमिल रामायण के रचयिता कंबर ने संस्कृत छंदों को खुलकर अपनाया है। यह काव्य शृंगार रसप्रधान है। अन्त में नायक जैन पद्धति के अनुसार मुमुक्षु बनता है। ईसा की नवीं शताब्दी के अन्त में यह काव्य रचा गया। कहा जाता है कि इस काव्य की रचना कवि ने आठ दिनों में की थी। तिरुत्तक्कदेवर को तिरुत्तगुमुनिवर, तिरुत्तक्कमगामुनिवर आदि नाम से पुकारते है। कथानायक के नाम पर, महाकाव्य का नामकरण हुआ है। शब्दालंकारों एव अर्थालकारों से युक्त इस महाकाव्य के अध्ययन से किसी भी देश, काल और वातावरण मे पले लोग, मनवांछित फल प्राप्त करते हैं; अतः इसका 'चितामणि' नाम सार्थक हुआ है।

कथावस्तु :—हेमांगद देश का राजा सच्चंदन अपनी नव विवाहिता पत्नी विजया के साथ भोग करते हुए शासन का कार्य काष्टयंगारन नामक मन्त्री के हाथों में छोड़ देता है। मन्त्री राजा बनने के लिए सहसा अन्तःपुर पर आक्रमण कर देता है। उस समय विजया पूर्ण गर्भिणी थी। अतः राजा उसे मयूर नामक यान्त्रिक विमान में बिठाकर राजमहल से बाहर भेज देता है और स्वयं युद्ध करते हुए युद्धभूमि में मारा जाता है। जब विमान, श्मशान की ओर जा रहा था तब राजा की मृत्यु को सूचित करनेवाली मृत्युभेरी को सुन, रानी विमान को आगे चला नही सकी, मूर्छित होकर श्मशान मे गिर पड़ी। वहीं प्रसव हुआ।

उसी समय कन्दुक्कडन नामक एक वणिक अपने मृत-पुत्र को गाड़ने वहाँ आया। रानी बच्चे को छोड़कर पीछे छिप गयी। नवजात शिशु को वहाँ पड़ा देखकर यह समझा कि स्वयं भगवान् ने मेरा दुख निवारण करने के लिए इस बच्चे को प्रदान किया है। जब उसने उसे हाथ में उठाया, तब बच्चा छीकने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई—'सीव

(जीव) अर्थात् चिरकाल तक जीवित रहे।' अतः वणिक ने उसका नाम सीवगन रख दिया।

वही बच्चा बड़ा होने पर अपने जन्म के बारे में असली बात जान लेता है और काष्टयंगारन से प्रतिशोध लेने चल पड़ता है। वाराणसी का राजा, मुक्ति की खोज में तपस्या करते-करते भस्मरोग से पीड़ित होता है। सीवगन को देखते ही उसका रोग दूर हो जाता है। अतः अपने राज्य को उसके हाथों सौंपकर, वह तपस्या करने चला जाता है। सीवगन सेना एकत्र कर ,काष्टयंगारन को हराकर, अपने पिता के राज्य को फिर वापस ले लेता है। सुखमय जीवन बिताकर एक घटना द्वारा विरक्त बन, मुमुक्षु बन, मुक्ति प्राप्त करता है।

४—वळयापदि

वळयापदि एव कुण्डलकेसी, दोनों महाकाव्य आज उपलब्ध नही है। वे लुप्त हो गये है। आगे उपलब्ध होने की सम्भावना भी नहीं है, क्योंकि तीन बार समुद्र के प्रकोप से तमिल के बड़े भू-भाग के साथ कितना साहित्य भी विलीन हो गया। अन्य ग्रन्थों में इनका जो उल्लेख हुआ है, उसके एवं जनश्रुति में प्रचलित कथा के आधार पर, हमें इन महाकाव्यों की महानता देखने को मिलती है। वैश्य पुराण के पैंतीसवे अध्याय मे वळयापदि महाकाव्य की कथावस्तु का वर्णन मिलता है। कथा यों है—

नवकोटि नारायण हीरा और मणिक्य वेचनेवाला श्रेष्ठी था। उसके पास अतुल संपत्ति थी। उसकी अपनी जाति की एक पत्नी थी; साथ ही वह अन्य जाति की एक स्त्री से गुप्त रूप से विवाह कर उसके साथ सुख भोग रहा था। लेकिन जातिवालो ने उसे जाति से वाहर करने का डर दिखाकर, उस स्त्री को छोड़ने के लिए विवश कर दिया। उसने उस पत्नी को छोड़ दिया। उसके छोड़ने के कुछ ही महीनों बाद उसके एक पुत्र हुआ। उस स्त्री ने मजदूरी करते हुए अपने पुत्र को बड़ा किया। लड़का बड़ा होते ही अपने पिता का नाम पूछने लगा क्योंकि समाज में उसे सिर उठाना मुश्किल हो गया था। उसके पिता का नाम अज्ञात होने के कारण उसके मित्रगण हँसी उड़ाने लगे। एक दिन उसने हठ करके माता से पिता का नाम जान लिया। जानते ही वह पिता से न्याय माँगने उसके पास गया। लेकिन पिता ने उसे पुत्र मानने से इनकार कर दिया। वाद मे जाति के मुखिया तक यह समस्या पहुँची। लोग उसकी माता को भरी सभा में कुलटा कहने लगे। उन्होंने यह भी कहा कि यदि वह पतिव्रता हो तो उसे प्रमाणित करे। यह सुनकर उसकी माता तिलमिला उठी। उसने माहामाया, महामाता काली से प्रार्थना की कि इस वदनामी से वे किसी तरह उसे वचावें। काली ने प्रत्यक्ष होकर, उसके दुख का हरण किया। बाद में वणिक उसको पुत्र मानने लगा। अलकापुरी नामक गाँव एवं विपुल संपत्ति देकर, उसे व्यापार में लगा दिया।

यह कथा बाद में पचास-पचास पद्यों के रूप में दो बार "सेंदमिल" में प्रकाशित ई है।

कुण्डलकेसि

कुण्डलकेसि की कथा "नीलकेसि" नामक जैन खण्ड काव्य में, बीस पंक्तियों में दी गयी है। बीच-बीच में उस महाकाव्य के पद्यों का उद्धरण कई जगहों पर मिलता है। उन उद्धृत पद्यों का उद्धरण कई जगहों पर मिलता है उन उद्धत पद्यों से ही उसकी महत्ता जानी जा सकती है। इसके अलावा जनश्रुति में यह कथा अत्यन्त प्रचलित है।

कथा वस्तु—कुण्डलकेसि अपने पति के साथ सुखमय जीवन बिता रही थी। दूसरी स्त्री के प्रेम मे पड़कर उसका पति अपनी पत्नी को मार डालना चाहता है। एक दिन पहाड़ पर विहार करने के बहाने पत्नी को पहाड़ की चोटी पर ले जाता है। वहाँ जाकर वहाँ उसे लाने का उद्देश्य बताता है। पहले वह उसे हँसी मजाक समझती है। जब वह उसे धकेलने लगा, वह उसके पैरों पड़कर प्राण भिक्षा माँगती है और उसके जीवन में किसी प्रकार बाधा न पहुँचाने का वादा करती है। लेकिन दुष्ट पति नहीं मानता।

तब वह कहने लगती है—"आप क्यों मुझे धकेलने का पाप मोल लेते हैं? आप की इच्छा ही, मुझ पतिव्रता स्त्री की इच्छा होनी चाहिए। अतः मैं ही अपने आप चोटी से कूद कर प्राण त्याग दूँगी। यह मेरी अंतिम इच्छा है, तीन बार आपकी प्रदक्षिणा कर खुशी-खुशी प्राण त्याग दूँगी।"

अंतिम इच्छा को पूर्ण करने को अनुमति, मिली। उसने तीसरी बार प्रदक्षिणा करते समय, जोर से, पीछे से अपने पति को गिरा दिया। वह मर गया। वहाँ से वह सीधे घर न जाकर बौद्ध भिक्षुणी बन, बौद्ध मठ मे शरण प्राप्त करती है। सेवा धर्म को अपनाकर अपने कलंक को धोने लगती है। पढ़ी-लिखी होने से उसने बौद्ध

ग्रंथों का अध्ययन कर पण्डित्य प्राप्त किया। अन्यमताव-लंबियों से शास्त्रार्थ कर, सब को हराकर, बौद्धमत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित वाद-विवाद में हारकर, शर्त के अनुसार बौद्धभिक्षु बने। इन्हीं वादों को काव्य के उत्तरार्द्ध में सुन्दर ढंग से काव्यात्मक रूप दिया गया है। अतः यह सिद्ध है कि कुण्डलकेसि बौद्धमत का प्रचार करने के लिए लिखा गया महाकाव्य है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि पुराने जमाने में ही सीवगसिदामणि को छोड़कर साधारण जनता को नायक-नायिका के रूप में अपनाकर शेष महाकाव्य रचे गये। सिलप्पदिगाराम तथा सीवगसिदामणि जैनमत का प्रचार करने निकले तो मणिमेंगले और कुण्डलकेसि बौद्धमत के प्रचारक हैं। वलयापदि भारत की जाति-समस्या को सुल-झाने के लिए लिखा हुआ महाकाव्य है। भारतीय साहित्य में देश, काल, वातावरण, भाषा, वेशभूषा एवं कथा भिन्न-भिन्न होते हुए भी समानताएँ पायी जाती हैं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

[पृष्ठ ४७४ का शेषांश]

साधना का हिमायती हूँ। यह गाँधीजी का रास्ता है। नेहरू, ख्रुश्चेव का यथार्थवाद कम्युनिस्टिक यथार्थवाद है, मेरा रास्ता गाँधीजी का रास्ता है। मैं गाँधीवाद के द्वारा अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ।

लेखक—भविष्य में आप क्या करना चाहते हैं ?

शांतिप्रिय द्विवेदी—मुझे खादी से प्रेम है। खादी पर निकट भविष्य में लिखने का विचार है। आज के उपन्यास, कविता आदि सब की कुंजी खादी में है। खादी जीवन की एक मुख्य आवश्यकता है। यों मैं जानता हूँ कि लोग इससे सहमत नहीं होंगे पर यह तो वे स्वीकार करेंगे ही कि जीवन में 'रोटी' और 'सेक्स' प्रधान हैं। 'रोटी' का जरिया खादी है और हो सकता है, इसीसे 'सेक्स' की ओर झुकाव होता है, होना संभव है। रोटी के अभाव में, खाली पेट 'सेक्स' के सपने देखना संभव नहीं; इसके बिना सच पूछिए तो, जीवन का कोई भी सपना पूरा नहीं हो सकता। जीवन के सभी सपने खादी में साकार हो जायेंगे। खादी संपूर्ण सृष्टि में रागात्मक संबंध स्थापित कर सकती है। यह कविता है, कविता की आत्मा रस है। मनुष्य का जीवन इसके बिना सूना है। यों वह अकेला नहीं, सबको जिलाकर जीना उसके जीवन का लक्ष्य है, कर्त्तव्य है। वह खादी से प्रेरणा प्रोत्साहन प्राप्त कर बहुत कुछ कर सकता है। मैं खादी की उपयोगिता और सौंदर्य पर विस्मय-विमुग्ध हूँ।
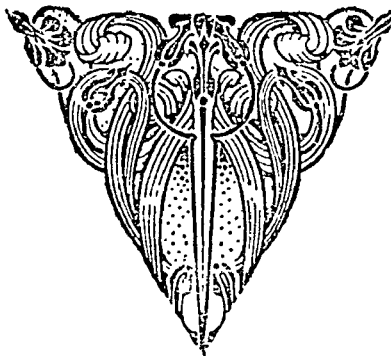
ग्वाल कवि का राज्याश्रित जीवन

डा० भगवानसहाय पचौरी, पी-एच० डी०

मध्ययुगीन भारत में यहाँके राज्यवंश कवियों, संगीतज्ञों, कलाकारों आदि गुणीजनों का पर्याप्त सम्मान करते थे। इस युग का कोई ही राजघराना कदाचित् ऐसा बचा हो, जो इन विद्वज्जनों से अलंकृत न हो। ये इस युग की ही प्रमुख प्रवृत्ति थी, जिससे सामन्ती दरवार विनोदित होते थे।

विद्वांसः कवय. भट्टाः गायकाः परिहासकाः
इतिहास-पुराणज्ञाः सभासप्तांग संयुता।

वीरगाथा काल के भाट और चारण प्रसिद्ध हैं। भक्ति-काल में तो "सन्तनु कों सीकरी सौं का काम? आवत-जात पनहियाँ टूटीं विसरि गयौ हरिनाम।" तथा "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछताना" जैसे सिद्धान्तों का बोलवाला रहा। पर अभक्त कवि तव भी राज-दरवारों में रहे। रीति युग की तो यह अनिवार्यता ही थी। कोई दरवार विना कवि के और कोई कवि दरवार के विना शोभित नहीं होता था। हम देखते हैं कि चिन्तामणि ने नागपुरेश रुद्रन्दशाह की राजसभा को अलंकृत किया, कविवर विहारी राजा जयसिंह के दरबार के रत्न बने, राजा मंगलसिंह की विद्वत् सभा को मंडन से चमत्कृत होने का श्रेय प्राप्त हुआ, मतिराम ने बूँदी नरेश भावसिंह के दरवार को उपकृत किया, भूषण ने छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल के यश-शौर्य का गायन किया। भिखारीदास प्रतापगढ़ नरेशों के आश्रित रहे, कविवर नेवाज, पद्माकर, देव, सोमनाथ, रसनिधि, रसानन्द, कलानिधि, सूदन, कृष्ण, भोगीलाल, शिव-राम, रामकवि, गोविन्द आदि शत-शत कवियों ने राज्याश्रयों में ही काव्य-सृजन किया। ये सभी कवि प्रायः पर्यटन प्रवृत्ति वाले हुए और अधिकाधिक राजाओं द्वारा प्रशंसित एवं पुरस्कृत होने की आकांक्षा रखते थे। हिन्दी के लिए इस दृष्टि से मध्यकाल शुभ रहा। इन यशस्वी कवियों ने दरवारों की शीतल छाया में रहकर हिन्दी के भण्डार को अपूर्व ग्रन्थों से भरा।

ग्वाल कवि युग की इस परम्परा में कुछ कदम आगे ही निकले। देशाटन का चस्का इनको वाल्यकाल से ही पड़ गया था। अल्पायु में ही शिक्षा-दीक्षा हेतु ये वृन्दावन, मथुरा, काशी और वरेली आदि स्थानों में घूमे थे। शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके काव्य-रचना में निष्णात होकर जीविकोपार्जन की खोज में भट्ट युवक घर से निकल पड़ा। कविता ही इनकी व्यसन और रुचि थी और यही व्यापार भी। उन दिनों मुगल सत्ता विश्रृंखलित होकर अस्तप्राय हो चुकी थी। विदेशी सत्ता देशी राज्यों पर प्रभुत्व पा रही थी। उत्तरी भारत राजनीतिक रूप से जर्जर और अशक्त हो चला था। राजा और नवाव पारस्परिक सत्ता संघर्षों में फँसे थे। एक दो स्थानों को छोड़ कर सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य था। इसी समय देश का पश्चिमोत्तर भूभाग सुख और शान्ति में जीवन-यापन कर रहा था। यह भूभाग था पंजाब, जहाँ गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के सिंह शिष्यों का एकच्छत्र राज्य था। पंजाब तक अभी अँग्रेजी घोड़ों की टाप श्रवणगोचर नहीं हुई थी। लाल रंग का अस्तित्व तब तक दिल्ली से आगे के नक्शे पर नहीं था। लाहौर में बुद्धि-कौशल और शूरवीरता के धनी पंजावकेसरी रणजीतसिंह की तलवार का शासन था। उत्तर और दक्षिण उसकी सूझ बूझ का नेतृत्व मानते थे। नाभा में जसवन्तसिंह और पटि-याला में कर्मसिंह-नरेन्द्रसिंह की राजसभाएँ विद्वानों से विभूषित थीं। रोपड़ और जींद की रियासतें भी हिन्दी को प्रश्रय दे रही थीं। सिखों के अन्तिम दसवें गुरु गोविन्दसिंह हिन्दी के ५२ कवियों को ससम्मान आश्रय देकर सिख राजाओं के समक्ष एक आदर्श रख गये थे। परम्परानुसार पंजाब के छोटे बड़े राज्य अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार हिन्दी कवियों का मान करते और दरबारों में उनको बुलाते तथा रखते थे। रणजीतसिंह का दरवार हाशम, गणेश, शिवदयाल, जयसिंह, बुधसिंह ग्वाल प्रभृति प्रतिभाशील कवियों से सुशोभित था। पटियालापति के यहाँ चन्द्रशेखर वाजपेयी, केशोदास, मूलासिंह, रामसिंह पंजाबी, पतैराम, देवीदित्ताराय, उमादास (भवानीदास), वनारसीदास, रूप-चन्द, कृष्णकवि, निहालचन्द, वंशी पंडित, ईश्वरकवि मैन-कवि चन्द्रकवि, स्वर्णकार, नवीन आदि कवियों का भारी सम्मान था। नाभानरेश के दरवार में वंशी पंडित, भाई प्रेमसिंह, लालकवि, भाई सन्तोषसिंह, ऋतुराज, नवीन आदि कवि आदृत थे। नाभा, पटियाला, कपूरथला के नरेश स्वयं भी अच्छे कवि रहे हैं। कपूरथला में फतैराम, फतहसिंह हरनाम, रामसुखराय आदि और जींद में मदनसिंह और साहवसिंह मृगेन्द्र के नाम विशेषतः उल्लेख्य हैं। ग्वाल रुचि से

पक्कड़ व पर्यटनप्रिय थे। दूसरे उनको आजीविका की भी खोज थी। गोपालसिंह 'नवीन', जो वृन्दावनवासी थे, ग्वाल की प्रतिभा से प्रभावित थे। कहते हैं कि वे ही ग्वाल को पंजाव ले गये। 'नवीन' का नाभा और पटियाला दोनों राज्यों से ही घनिष्ठ सम्पर्क था। वे स्वयं नाभा राज्याश्रित थे। फलतः उन्होंने कवि ग्वाल का प्रथम परिचय जसवन्तसिंह नाभापति से कराया। नाभा उन दिनों एक समृद्ध सिखराज्य था। गुणग्राही कवि राजा ने ग्वाल को अपना दरवारी कवि बनाकर सम्मान प्रदर्शित किया। ग्वाल मथुरा में रहकर 'नेह निवाह' और 'यमुनालहरी' की रचना कर चुके थे। 'यमुनालहरी' भक्त रससिक्त शृंगारिक प्रकृति वर्णन संयुक्त काव्य की उत्कृष्ट रचना है। इसका रचना काल यों संवत् १८७९ वि० ही उल्लिखित है पर यह किसी आश्रयदाता के निर्देश-पालनार्थ नहीं लिखी गई, क्यों कि इसमें इस विषय का कोई अन्तर्साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। प्रतीत होता है कि कवि जीवन का श्रीगणेश करने के लिए कवि ने व्रज-लोक मानस की युग-युग पूजिता कलिंदजा माता की वन्दना-स्वरूप यह रचना मंगलाचरण के रूप में लिखी। यहींसे कवि का वास्तविक कवि काव्य-जीवन में उतरा और इसी समय से कवि के कविता-काल का समारम्भ भी हुआ।

कवि का नाभा दरवार में सं० १८७९ वि० में ही प्रवेश हुआ, जहाँ उन्होंने नाभापति की इच्छापूर्ति हेतु शृंगाररस-पूरित नायक-नायिका-निरूपक काव्य-लक्षणग्रन्थ रसिकानन्द की रचना की। इसमें कवि ने ग्रंथ प्रणयन का उद्देश्य कथन करते हुए लिखा है :

"दई सु आज्ञा यों नृपति, सुन कवि ग्वाल अमंद।
देषि मतान्तर रिसिन के, विरच्यों रसिकानन्द॥"

'इन्तखावे यादगार' के लेखक इस विषय में मौन हैं। उनके अनुसार ग्वाल सीधे लाहौर गये थे। परन्तु वस्तुतः ग्वाल पहले नाभा दरवार में गये, लाहौर में इसके पश्चात्। ग्वाल की वीररस की रचना हमीर हठ की रचना सं० १८८३ वि० में अमृतसर में हुई।[१] 'कवि दर्पण' की रचना सं० १८९१ वि० में महाराजा रणजीतसिंह के सामन्त सरदार लहनासिंह अमृतसर के लिए की गई।[२] इससे सं० १८८३ वि० में कवि का अमृतसर वास सिद्ध होता है। कवि दर्पण की रचना अमृतसर में ही हुई थी, हम इसी मत के पक्ष में हैं। यदि कवि का नाभा प्रवास सं० १८७९ वि० से १८८२ वि० तक मान लिया जाय तो सं० १८८३ वि० से १८९१ वि० उसका अमृतसर में सरदार लहनासिंह के आश्रित रहना युक्तिसंगत है। सम्भवतः सरदार लहनासिंह के द्वारा ही कवि ने लाहौर दरबार में प्रवेश पाया होगा, यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है। महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु सं० १८९६ वि० में हुई[१] अतः कवि इससे पूर्व सम्भवतः सं० १८९२ वि० के आसपास ही लाहौर दरबार गया होगा।

यहां सं० १९०१ वि० तक रहने की बात किसी को भी अमान्य नहीं हो सकती। 'विजय विनोद' नामक वीरकाव्य की रचना महाराजा शेरसिंह के विश्वासपात्र दरवारी जल्हा पंडित के आदेश से सं० १९०१ वि० में की गई थी,[२] जिसके ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने वाले तथ्यों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि महाराजा रणजीतसिंह से लेकर सं० १९०१ वि० तक की लाहौर दरबार की समस्त गतिविधियों के साथ कवि का निकट का परिचय था। लाहौर के पश्चात् कवि पंजाब की पहाड़ी रियासतों में घूमघाम कर सुकेत मंडी पहुँचा जहाँ वह प्रायः दो-तीन वर्ष तक रहा और यहाँ बलवीर विनोद की रचना की। सं० १९०४ वि० में कवि पुनः नाभा के महाराज भगवानसिंह और भरपूरसिंह के दरबार में उपस्थित था, जहाँ उसने 'रसरंग' की रचना की।[३] इसके पश्चात् कवि कहाँ कहाँ रहा इसका सं०१९१७ वि० तक का कोई उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है कि वह मंडी में रहा हो। संभवतः इसी बीच टोंक में जाकर उसने कृष्णाष्टक बनाकर वहाँके नरेश को सुनाया हो, या मथुरा आकर रहा और बीच-बीच में राजस्थान की अलवर आदि रियासतों में घूमा हो। पर यह निश्चित है कि उसने नाभा में 'इश्क लहर दरया' की रचना सं० १९१७ वि० में की थी। रामपुर के शासक नवाव,[४] कल्वे अली खाँ साहब इन पर बड़े कृपालु थे। उनके विशेष आग्रह पर वे रामपुर १९१६ वि० में गये।

१—हम्मीर हठ : ग्वाल कवि (हस्तलिखित) छंद सं० २

२—कवि दर्पण: ग्वाल कवि (हस्तलिखित) छंद सं० २ एवं पुष्पिका

१—सिख इतिहास : ठा० देसराज।

२—विजय विनोद ग्वाल कवि (गुरुमुखी) छन्द सं० से ७१

३—रसरंग ग्वाल कवि (हस्तलिखत) छन्द सं०

४. इन्तखावे यादगार (उर्दू) ले० अमीर अहमद मीनाई रामपुर सं० १९३० वि० पृष्ठ ३२३

'अमीर' साहब इनके रामपुर प्रवास के विषय में इस प्रकार लिखते हैं :—

'शाहज़ादा इम्दादुल्ला खाँ ताब उनके शागिर्द थे। एक ज़माने में शाहज़ादा मौसूफ़ मथुरा गये हुए थे कि उनके साथ अकबर शाहज़ादा सैयदुल्ला खाँ इल्म अपने वालिद के पास गये। ग्वाल राय से मुलाक़ात हुई। शाहज़ादा सैयदुल्ला खाँ ने उसी मार्फत साबिका के ऐतबार से नवाब फिरदौस के हुज़ूर में उनका जिक्र किया। नवाब ममदूह ने उनकी मारफ़त उनको बुलाया। बहुक्म महमाननवाज़ी मदारात मौरूफ़ इनायत फ़रमाया। नौकरी उन्होंने मंजूर न की। सात महीने के बाद रुखसत हुए। जब बन्दगाने आली दाम अकबालहु ने सदर पर जुलूस फरमाया। वो रहमियत अरबाबे कमाल आया फिर ग्वाल राय को तलब फ़रमाया। हरचन्द्र बसारत से हौसला नकल ओ हरकत का बाकी तनहा मगर शहरो कदर अफजाई बन्दगान हुज़ूर का जो सुना बिला ताम्मुल आये और कदरदानियों के मजे उठाये। सौ रुपये मशाहिरा करार पाया। एक साल नौ महिने यह ताल्लुक़ रहा।"

रामपुर दरबार में ही ग्वाल की इहलीला जिमादी उल अव्वल की नौवीं तारीख सं० १२८४ हिजरी तदनुसार भाद्रपद शुक्ला एकादशी सं० १९३५ वि० दिनांक १४ सितम्बर १८६८ ई० सोमवार[१] को समाप्त हो गई। इन्तखाबे यादगार में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—"उम्र ६५ बरस थी कि जिमादी उल उव्वल की नौवीं तारीख बारा सौ चौरासी हिजरी को खाना मुल्के अदम हुए।[२]

१. काशी में छपे सं० १९२४-२५ वि० के पंचांग के पृष्ठ ९ पंक्ति ११ स्तम्भ १, ९ तथा ११ के अनुसार प्रमाणित।

२. इन्तखाबे यादगार पृष्ठ ३२३

बम्बई

श्री रामनिवास शर्मा मयंक

जिस दिन जाने को थे हम बम्बई।
बोले आकर मुंशीजी—
"जाते हो यदि बम्बई

करते जाओ वसीयतनामा
वरना उलझते फिरेंगे बच्चे
खामोखामा।"

पंडितजी बोलो : 'गोदान!
वहाँ पता कुछ न लगेगा
तुम्हारी टके भर जान
क्या होगा मान।"

आया दिल्ली-केन्ट
मिले बीमा एजेन्ट
"बीमा करवा लो लालाजी!
आजकल
होते बहुत एक्सीडेन्ट!"

—

इस प्रकार सं० १८७९ वि० से १९२५ वि० तक प्रायः ४६ वर्ष का सम्मानपूर्ण राज्याश्रित जीवनयापन करके ग्वाल ने हिन्दी के भंडार की श्रीवृद्धि की। इस जीवन में इन्होने हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी धर्म के आश्रयदाताओं को अपनी प्रतिभा से प्रसन्न किया।
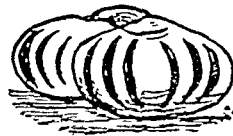
हमारे देश के शिक्षा-क्षेत्र में अव्यवस्था

प्रो० सहदेव चक्रवर्ती एम० ए०

भारत के प्रत्येक उस विचारक को, जिसे अपने देश की शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं में गहरी रुचि है, यह देख सुन कर आघात पहुँचता है कि शिक्षा के क्षेत्र में अभी तक आशातीत प्रगति नहीं हो सकी। इस दिशा में सरकार, समाज तथा राजनेताओं को जितना ध्यान देना चाहिये था, उतना नहीं दिया गया। कई बार यह सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि हमने स्वाधीनता के बाद के इस दीर्घ काल में क्या किया ? शिक्षा के क्षेत्र के प्रति इतनी उपेक्षा क्यों हुई ? मेरे विचार में हमारे देश में शिक्षा को एक लावारिस सामान की तरह समझ कर समय-समय पर उसकी इतनी उपेक्षा की जाती रही है कि इसके क्षेत्र में अव्यवस्था और अराजकता उत्पन्न हो गयी है, जिसका अन्त होने में नहीं आता। वस्तुतः यह हमारे देश का दुर्भाग्य समझा जाना चाहिये।

एक समय था, जब शिक्षा के क्षेत्र में हम आदर्शवाद के उच्च शिखर पर आरूढ़ थे, और मनु के शब्दों में यह दावा करते नहीं थकते थे कि इस देश के ब्राह्मणों से सारे संसार के लोग शिक्षा प्राप्त करें; हमारे आदर्शवाद का यह दावा स्वाधीनता प्राप्ति के समय के पहले तक चलता रहा और हमारे राजनेता, जो राष्ट्रीयता महात्मा गान्धी के आदर्शों से प्रभावित थे, जोर-जोर से चिल्लाया करते थे कि 'स्वराज्य' के मिलते ही देश की शिक्षा-प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन किया जायेगा।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा के क्षेत्र में कुछ उन्नति हुई है। किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस क्षेत्र में अराजकता, अव्यवस्था, पतन और असन्तोष का साम्राज्य भी छाया हुआ है। इस क्षेत्र के तीनों घटकों—छात्र, अध्यापक और प्रशासक—की स्थिति दिन-प्रतिदिन खोखली और पोपली होती जा रही है। इस क्षेत्र का चौथा घटक छात्र-छात्राओं के अभिभावकों (सामान्यता माता या पिता) को माना जा सकता है। किन्तु हमारा अनुभव तो यह है कि आज का अभिभावक अपने बच्चे की शिक्षा सम्बन्धी प्रगति में कोई रुचि नहीं लेता। अपने देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा उनसे सम्बद्ध कालेजों में चल रहे छात्र-आन्दोलनों से पता चलता है कि छात्रों के माता-पिता तथा सम्बन्धी उनके हित के प्रति सर्वथा उदासीन हैं। जब तक माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में स्वयं रुचि नहीं लेते और समय समय पर उनकी प्रगति की जानकारी प्राप्त नहीं करते, तब तक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की आशा दुराशा मात्र है। बच्चों के माता-पिता अब अधिक देर तक आँख मूंद कर नहीं बैठ सकते। राष्ट्र की इस गम्भीर समस्या को सुलझाने में उनका सहयोग भी उतना ही आवश्यक है, जितना समाज के किसी दूसरे वर्ग का। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता और न ही ताली एक हाथ से बजती है।

यह स्मरण रहे कि शिक्षा के क्षेत्र में अव्यवस्था और अनुशासन-हीनता ने एक अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है, जो हमारे समय की एक बहुत बड़ी चुनौती है, जिसका सामना डटकर धैर्य से करना होगा; और इस पुनीत कार्य में सबके सहयोग की अपेक्षा रहेगी।

इस लेख में शिक्षा क्षेत्र के विभिन्न घटकों की स्थिति पर विचार किया जायेगा।

छात्र

देश की शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्र-छात्राओं को सामान्यतया निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१—सरकारी तथा प्राईवेट स्कूलों के छात्र।

२—कालेजों (जिनका सम्बन्ध किसी विश्व-विद्यालय से है) के छात्र।

३—विश्व-विद्यालयों के छात्र।

इन छात्रों के अतिरिक्त एक अन्य वर्ग के छात्र भी हैं, जो स्वतन्त्र शिक्षण-संस्थाओं तथा पब्लिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। जैसे—गुरुकुल, ऋषिकुल, विद्यापीठ तथा पाठशालायें। महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित विश्वभारती (शान्ति निकेतन) अब केन्द्रीय विश्वविद्यालय बन चुका है, किन्तु इसका स्वरूप गुरुकुलों तथा विद्यापीठों जैसा ही है। बाहर के वातावरण का प्रभाव अभी इन संस्थाओं पर पूर्णतया नहीं पड़ा। गुरुकुलों तथा विद्यापीठों में भी कभी-कभी छात्र-असन्तोष फूट पड़ता है, यद्यपि यह

उतना उग्र नहीं होता, जितना बड़े-बड़े नगरों में स्थित शिक्षण-संस्थाओं में होता है। आखिर, खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग तो पकड़ता ही है।

असन्तोष, अव्यवस्था तथा अनुशासनहीनता के कारण

स्कूली छात्रों में अनुशासनहीनता, असन्तोष तथा स्कूलों में अव्यवस्था के अनेक कारण हो सकते हैं। देश में शिक्षा-सम्बन्धी प्रचार की गति तीव्र होने के कारण प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहते हैं। यह तो यथार्थ है कि शिक्षा के अभाव में मनुष्य समाज में पशु के समान समझा जाता है। भर्तृहरि का यह कथन शत-प्रतिशत यथार्थ है 'विद्याविहीन: पशुः'।

शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक छात्र-छात्राओं की संख्यायें निरन्तर वृद्धि के साथ-साथ देश के विभिन्न भागों में शिक्षण-संस्थाओं की संख्या भी कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ रही है। संस्थाओं में छात्रों की संख्या अधिक होती है और उन्हें पढ़ानेवाले अध्यापकों की संख्या अनुपात में कम हैं। दोनों की संख्या में सही अनुपात होना आवश्यक है। कई कक्षाओं में छात्रों की संख्या सौ से भी अधिक होती है; और उन्हें पढ़ाने वाला अध्यापक न तो ठीक तरह इन्हें पढ़ा सकता है; और न ही वह उनमें अनुशासन की भावना उत्पन्न कर सकता है। अध्यापक का छात्र पर नियन्त्रण रह नहीं पाता। ऐसी स्थिति में 'गुरु-शिष्य सम्बन्ध' की बात केवल कल्पना बनकर रह जाती है। परिणामतः संस्थाओं में अध्ययन-अध्यापन सन्तोषजनक रीति से नहीं हो पाता।

ट्यूशन का चक्कर

स्कूल में पढ़ाई न होने के कारण निर्धारित पाठ्य-क्रम समाप्त करने की दृष्टि से अध्यापक लोग अपने-अपने घरों में या अकादमियों में ट्यूशन का सिलसिला चलाते हैं। जो अध्यापक स्कूल में ठीक तरह नहीं पढ़ाता या नहीं पढ़ा पाता, वही अपने घर पर तल्लीन होकर पढ़ाता है और निर्धारित पाठ्यक्रम समाप्त करने की गारण्टी भी ट्यूशन पढ़नेवाले छात्र तथा उसके अभिभावक को देता है। यानी शिक्षा तो एक व्यवसाय हो गया है। प्रकट है कि अब गुरु-शिष्य सम्बन्ध की प्राचीन परम्परा दम तोड़ चुकी है; और शिक्षा-क्षेत्र में व्यावसायिक दृष्टिकोण प्रमुख हो गया है।

भयंकर परिणाम

स्कूलों में ट्यूशन-परम्परा के कई भयंकर परिणाम भी निकलते हैं। निर्धन छात्र शिक्षा-सम्बन्धी अतिरिक्त व्यय नहीं उठा सकते और धनी वर्ग के छात्र ही अध्यापकों के घर पर ट्यूशन पढ़ने में समर्थ हैं। जब बाजार में मनचाही वस्तु खरीदने के लिये जेब में पैसे ही न हों तो खरीददार उसे खरीदेगा कैसे? केवल सम्पन्न परिवारों के छात्र ही अतिरिक्त राशि व्यय करके अध्यापक के पास किसी विषय की ट्यूशन रख सकते हैं। निर्धन परिवारों के छात्र आजकल महँगाई के जमाने में ट्यूशन नहीं रख पाते, इसलिये पढ़ाई मे पिछड़ जाते हैं। अब कोई महर्षि सन्दीपनी का ऐसा आश्रम तो दिखाई नहीं देता, जहाँ छात्रों से शिक्षा-संबंधी शुल्क न लिया जाता हो और सारे छात्र धनी-निर्धन के भेद-भाव के बिना कृष्ण और सुदामा की तरह एक स्थान पर बैठकर गुरुमुख से कुछ श्रवण करते हों। अब युग बदल गया है। प्राचीन मर्यादायें और मूल्य लुप्त हो रहे है। क्योंकि 'आधुनिक' बनने के लिए पुरानी बातो और परम्पराओं को तिलांजलि देना आवश्यक समझ लिया गया है।

स्कूलों में ट्यूशन-परम्परा के और भी अनिष्ट परिणाम हुये हैं। धनी तथा निर्धन छात्रों मे तो मनो-मालिन्य बढ़ता ही है, अध्यापक भी इसका शिकार हुये बिना नहीं रहते। कम संख्या में ट्यूशन पानेवाला अध्यापक अधिक संख्या में ट्यूशन पानेवाले अध्यापक से चिढ़ता है, जलता-भुनता है और दोनों एक दूसरे के छात्रों से बदला लेते है। ट्यूशन-प्रणाली का सबसे खेदजनक पहलू तो यह है कि जो छात्र अपने पढ़नेवाले विषयों की ट्यूशन सम्बद्ध अध्यापक के पास नहीं रखता, तो अध्यापक उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता। वह अध्यापक का कोप-भाजन बनता है। अभिभावक के रूप में हमें ऐसा कटु अनुभव हुआ है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है? वह उस छात्र की उपेक्षा करता है और कई बार तो अध्यापक पीट-पीटकर ऐसे छात्रों को ट्यूशन रखने के लिए बाध्य करता है। फिर भला अपनी आर्थिक असमर्थता तथा निर्धनता के कारण पिटनेवाले छात्र के हृदय में पिटाई करनेवाले अध्यापक के प्रति सम्मान की भावना कैसे उत्पन्न होगी। ऐसे छात्र से अध्यापक द्वारा प्रतिष्ठा की आशा आकाश-कुसुम के समान प्रमाणित होगी।

ट्यूशन-प्रणाली का एक और घिनौना पहलू देखिये। ट्यूशन पढ़ानेवाला अध्यापक छात्र को उसी प्रकार परीक्षा

में उत्तीर्ण कराने की गारण्टी देता है, जैसा कि मध्यकाल में यूरोप के ईसाई पादरी दक्षिणा देनेवाले अपने भक्त अनुयायियों को मृत्यु के बाद स्वर्ग तक पहुँचाने की पूरी गारंटी दिया करते थे। ट्यूशन पढ़ाने वाले अध्यापक कई बार परीक्षकों से मिलकर अपने छात्रों को अपने-अपने विषयों में उत्तीर्ण कराने का प्रयत्न करते भी देखे गये हैं। यह तो भ्रष्टाचार का जघन्यतम पहलू है, जिसके शिकार कई अध्यापक हैं। ऐसे अध्यापकों का मान छात्र कैसे करेंगे? आर्थिक दृष्टि से असमर्थ छात्रों मे अध्यापकों से बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है। छात्रों मे असन्तोष तथा अनुशासनहीनता का यह भी एक कारण है।

हमारे विचार में स्कूली अध्यापकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि होने से उन्हें ट्यूशन पढ़ाने के लालच से रोका जा सकता है। स्कूलों में छात्रों तथा अध्यापकों की सख्या मे सही अनुपात निर्धारित करने का भी प्रयत्न होना चाहिये। ताकि अध्यापक सीमित संख्या के छात्रों पर पूरी निगरानी रख सके और संस्था में अनुशासन तथा व्यवस्था भी बनी रहे। इसके अतिरिक्त पढ़ाई मे निकम्मे छात्रो को अतिरिक्त समय मे पढ़ाने की व्यवस्था स्कूल की ओर से होनी चाहिए अतिरिक्त समय देनेवाले अध्यापक को स्कूल ही अतिरिक्त वृत्ति दे।

अब विश्वविद्यालयों तथा उनसे सम्बद्ध कालेजों के छात्रो की स्थिति पर विचार करना चाहिए। इस स्तर के छात्र तथा छात्राओं का बौद्धिक विकास आरम्भ होने लगता है। स्कूल में छात्र की बुद्धि परिपक्व नही होती, किन्तु कालेज में प्रविष्ट होते ही उसका विकास आरम्भ होने लगता है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ बौद्धिक विकास का होना स्वाभाविक है। कालेजों के अधिकांश छात्रों पर 'नई रोशनी' का अक्षुण्ण प्रभाव होता है। वे अध्यापकों तथा प्रिंसिपलों (आचार्य) से तर्क भी करते है; और कई बार उनकी आज्ञाओ की उपेक्षा भी करते है। बाहरी समाज के वातावरण के प्रभाव से भी ये अछूते नही रहते। कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में भी निर्धन तथा धनी दोनों वर्गो के छात्र पाये जाते है। कालेज-स्तर की शिक्षा राजनीति से भी प्रभावित होती है। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में तो देश के राजनीतिक दलो के प्रचारक तथा समर्थक छात्र भी समय-समय पर छात्रों मे आन्दोलन छेड़कर अपनी नेतागीरी बघारने से नहीं चूकते। परिणामतः राजनीतिक दलों के नेता अपने दल के समर्थक छात्रों के समर्थन में विश्वविद्यालय के मामलों में हस्तक्षेप करने लगते हैं। फिर तो 'विद्यामन्दिर' राजनीति के अखाड़े बन जाते हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में अध्ययन-अध्यापन को अवकाश कहाँ?

कालेजों में पढ़नेवाले छात्रों में एक वर्ग ऐसे छात्रों का है, जिनका सम्बन्ध उद्योगपतियों, 'जमीदारों' बड़े व्यापारियों और सरकारी व गैर-सरकारी अफ़सरों के परिवारों से है। इन परिवारों का वातावरण विलास, ऐश्वर्य, अनुशासनहीनता तथा लम्पटता से परिपूर्ण होता है। इन परिवारों के कई मुखिया अपने बच्चों को कालेजों में इसलिए पढ़ने के लिए भेज देते हैं, क्योंकि वे उनके नियन्त्रण में नहीं होते। परिवार का मुखिया तो धन जुटाने या हेराफेरी करने में मस्त है, इसलिए उसे अपने बच्चो की देख-भाल का भी ध्यान नहीं रहता और बच्चा भी समझता है कि चाहे वह परीक्षाएँ उत्तीर्ण न भी हो तो भी वह अन्त में अपने पिता के कारोबार मे तो जुट ही जायेगा। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर विशेषतया कारखानेदारो और जमींदारों के लड़के कालेजों में प्रवेश पाने के बाद भी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देते और शिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों, आचार्यो तथा उपकुलपतियों के लिए सिरदर्द बन जाते हैं। कम से कम उत्तर भारत में तो यही स्थिति है। देश के औद्योगिक नगरों में स्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में तो यही हालत दिखाई देती है।

हमारी शिक्षा-प्रणाली का एक बड़ा दोष यह है कि जिस व्यक्ति की रुचि पढ़ाई में नहीं, उसे भी संस्था में प्रवेश मिल जाता है। कक्षाओं में प्रवेश के समय शिक्षार्थी की रुचि का पता लगाने के लिए मनोवैज्ञानिक स्तर पर जांच-पड़ताल होनी आवश्यक है। फिर अधिक आयु के शिक्षार्थियो के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होना चाहिए ताकि वे छात्रों को भड़काकर कोई आन्दोलन न छेड़ दें। अनुशासनप्रिय तथा आज्ञाकारी छात्रो को पुरस्कार मिलने चाहिए ताकि छात्रों में अनुशासनप्रियता के प्रति भावना जाग्रत हो सके। इसमे कोई सन्देह नही कालेज तथा विश्वविद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं का प्रशासन में सहयोग लेना वाञ्छनीय है। इससे उनमें उत्तरदायित्व की भावना तो बद्धमूल होगी ही, साथ ही उन्हें इस बात का सन्तोष रहेगा कि शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारी उन्हें विश्वास में लेते हैं। इससे

शिक्षण-संस्थाओं का वातावरण अनुकूल रहने में सहयोग मिलेगा।

अध्यापक

अध्यापक शिक्षा-क्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। सब अनुभव करते है कि स्वतन्त्र भारत मे उनकी स्थिति ऐसी नही, जैसी होनी चाहिये थी। परिणामत: अध्यापकों मे असन्तोष है; और वे हीनता की ग्रन्थि से जकड़े हुये है। इसका अधिकांश उत्तरदायित्व समाज तथा सरकार पर है। आजकल के युग में कोरे आदर्शवाद की वेतुकी हाँकने से काम नही चलेगा। लोग अध्यापकों द्वारा प्राचीन काल के ब्राह्मण-वर्ग का अन्धानुकरण करते रहने की दुहाई देते नहीं थकते। अब यह नही हो सकता कि समाज के कुछ लोग तो महलों में वाजिदअली शाह बनकर विलासमय जीवन व्यतीत करें, खाये-पीये और मौज-बहारें लूटें और अध्यापकों से यह आशा रखे कि वे फकीर का-सा जीवन व्यतीत करें। आखिर, अध्यापक भी हाड़-मांस के बने मनुष्य है। उनके कन्धों पर भी अपने परिवार का भार है। उन्हें भी सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का पूरा अधिकार है। यह स्मरण रहे कि जिस देश के अध्यापक असन्तुष्ट हैं, वहाँ समाज प्रगति नही कर सकता। जो स्वयं मुर्दा है वह दूसरों मे जान क्या फूँकेगा ? इस दृष्टि से समाज तथा सरकार—दोनों ही अध्यापक के प्रति अपने उत्तरदायित्व से नहीं बच सकते।

लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। समाज के निर्माण में अध्यापक का भी उतना ही हाथ होगा, जितना कि समाज के दूसरे वर्गो का। अध्यापकों को अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान होना चाहिए। किन्तु उनमें भी कमियाँ हैं। वे लालची हो गये है। स्कूल-स्तर पर काम करनेवाले अधिकांश अध्यापक ट्यूशनों के चक्कर में पड़कर अपनी प्रतिष्ठा खो बैठे है। क्योंकि वे ट्यूशन रखने के लिए बच्चों को बराबर धमकाते और पीटते है। कालेज-स्तर पर यह बात तो नही। सामान्यतया यहाँ छात्र ट्यूशन के लिए अध्यापक को स्वय कहता है। इतनी बड़ी आयु के तथा परिपक्व बुद्धिवाले छात्र को लालच के वशीभूत होकर ट्यूशन के लिए बाध्य करना कोई खालाजी का वाड़ा नही।

राजनीति का भूत

कालेज और विश्वविद्यालय स्तर पर राजनीति छाई हुई है। कभी छात्रों की यूनियनों का चुनाव है तो कभी विश्वविद्यालयों की सीनेटों और सिण्डीकेटों के चुनाव के चर्चे हैं, और कभी विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जानेवाले विषयों से सम्बद्ध बोर्डो का चुनाव है। सबसे बढ़कर अध्यापकों की यूनियनों के पदाधिकारियों का चुनाव है, जो बाकायदा राजनीति के अखाड़े का रूप धारण कर लेता है। जो अध्यापक स्वयं राजनीति में उलझा हुआ है, उससे शिक्षण-संस्था में अनुशासन बनाये रखने की आशा कैसे की जा सकती है ? या वह अध्ययन-अध्यापन के कार्य में रुचि कैसे ले सकता है ? उससे अपने प्रति, अपने व्यवसाय के प्रति, संस्था और छात्रवर्ग के प्रति न्याय की आशा कैसे की जा सकती है।

फिर कालेजों और विश्वविद्यालयों के कई अध्यापक संस्था में छात्रों को पढ़ाने के कार्य की उपेक्षा करके निजी रूप से पुस्तकें लिखने या ट्यूशन के कार्य में व्यस्त रहते हैं। यह उनकी आय का उत्तम साधन है। पुस्तकें लिखना कोई आपत्तिजनक नहीं, किन्तु आपत्तिजनक है छात्रों के प्रति अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा। अध्यापक पहले अध्यापक है और लेखक बाद में। उसके द्वारा अध्यापक के रूप में अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा सर्वथा अनुचित है। कहने का तात्पर्य यह है कि अध्यापक का दामन साफ रहना चाहिए। इससे उस पर किसी को अँगुली उठाने की हिम्मत नहीं होगी।

प्रशासक

शिक्षण-संस्थाओं के प्रशासक-वर्ग में सरकार, प्रबन्ध कर्त्री समितियाँ, आचार्य तथा उपकुलपति आते हैं। विश्वविद्यालयों के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) भी इस कोटि में आते है। सरकार के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों का काम भी कोई सन्तोषजनक नही है। उनके अधीनस्थ कई कर्मचारी वार्षिक परीक्षाओ मे अवेधरूप से कई छात्र-छात्राओं की सहायता करते देखे गये है। वे अध्यापकों के स्थानान्तरण के मामलो में उनसे घूँस भी लेते हैं। दफ्तर में काम अधिक देर तक लटकाये रखना उनकी पुरानी आदत है। यदि सरकारी शिक्षा विभाग के कर्मचारियों की ऐसी अवस्था है तो निजी शिक्षण-संस्थाओं की क्या हालत होगी—इसकी कल्पना करना कोई कठिन नहीं।

निजी शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारी अपनी-अपनी शिक्षण-संस्थाओं के मामलों में सदा हस्तक्षेप करते रहते हैं,

जो सर्वथा अनुचित है। इन अधिकारियों में कई ऐसे भी हैं, जिनका शिक्षा से दूर का भी सम्बन्ध नहीं, किन्तु फिर भी किसी-न-किसी तरह उनका प्रभुत्व बना हुआ है। यह विरोध की विडम्बना नहीं तो और क्या है ?

जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, उस पर शिक्षा के प्रति घोर-उपेक्षा का दोषारोपण सार्थक है। यह सही है कि हमारे देश में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। हमारे देश की प्रतिभायें तो विदेशों में चमकती हैं—यह हमारे लिए लज्जा की बात नहीं तो और क्या है ? हमारे देश में दी जानेवाली शिक्षा में एक दोष यह है कि छात्र-छात्राओं को नैतिक मूल्यों का ज्ञान नहीं कराया जाता। सम्भवतः धर्म-शिक्षा धर्म-निरपेक्षता के ध्येय के विपरीत मानी जाती हो। ऐसी दशा में युवकों तथा युवतियों के चरित्र का निर्माण कैसे होगा ? विनयशीलता, शिष्टाचार, आज्ञापालन, परिश्रम, उत्तरदायित्व निभाने की भावना आदि तत्त्व छात्र-जीवन के मेरुदण्ड हैं, जिनकी उपेक्षा अपने आपको तथा समाज को संकट में डालकर ही की जा सकती है। अव्यवस्था तथा अनुशासनहीनता के निराकरण के लिए इन्हें अपनाना आवश्यक है। धर्म-निरपेक्षता से अभिप्राय मानवीय गुणों के प्रति उपेक्षा नहीं है। हमें अपने देश के छात्रों को केवल साक्षर नहीं बनाना, उन्हें विनयशील भी बनाना है। आजकल की शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान तक ही सीमित रह जायेगी, यदि छात्रों में विनयशीलता न पनप सकी।

इस लेख में शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था की ओर राजनेताओं, समाज-सेवियों तथा शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। यदि समय रहते युग की इस महान् चुनौती का सामना न किया गया तो राष्ट्र के लिए एक भयावह संकट उपस्थित हो जायेगा।

अन्तर्बोध

श्री दयानन्द बटोही एम० ए०

भींग गयी
अन्तर सतह,
अटक रहे
मुँह में शब्द !

रट लूँ—
क्यों ? कितना ?
अपने उम्र के वर्ष।
जन्म से
आँत में
आग रही है बरस !
आखिरी बार तक
ठहराव, घेराव,
ठेलम-ठेल, आग।
और, अन्तर में
दहक रही
युग की माँग।

—

का आकर्षण सदा अधूमिल रहेगा—पराक्रमांक समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त। अपने सबसे शक्तिशाली उपन्यास "करुणा" में राखाल ने स्कन्दगुप्त की विजय-कथा कही है। विजय की भी, और बौद्ध मठाधीशों—की प्रभुत्व-लिप्सा के कारण पराजय की भी। पर प्रतिष्ठान दुर्ग के सामने, गंगा-यमुना के संगम पर, अन्तिम पराजय के बाद भी, स्कन्दगुप्त हूण-विजेता के रूप में ही पाठकों के मानस पर टिके रहते हैं। शासन के प्रारंभ मे, प्रचण्ड-शौर्य-सम्पन्न परमभट्टारक सम्राट् स्कन्दगुप्त ने हूणो को करारी शिकस्त दी थी। भीतरी (जिला गाजीपुर) के शिलालेख में उल्लेख आया है :—

विचलितकुललक्ष्मी स्तम्भनायाद्यतेन
क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा

(विचलित कुल लक्ष्मी को स्थिर करने के लिए समुद्यत नये सम्राट् को रात जमीन पर सोकर बितानी पड़ी)

पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं
भुजबलविजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः।
जितमिति परितोषं मातरं सास्रनेत्राम्
हतरिपुरिव कृष्णो देवकी मभ्युपेतः॥

(पिता कुमारगुप्त के मरने पर गुप्तकाल की वंशलक्ष्मी चचल हो गयी थी। स्कन्दगुप्त ने अपने भुजबल से शत्रुओ को जीतकर उसे फिर स्थिर किया। और "मैंने शत्रुओ को परास्त कर दिया है" इस आश्वासन के साथ वे अपनी आँसूभरी आँखोवाली देवकी माँ के सामने पहुँचे, जैसे कृष्ण देवकी के सामने पहुचे थे) और सबसे बड़ी बात

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।

(हूणों के साथ संग्राम करते समय जिसकी भुजाओ से पृथ्वी कम्पित होने लगती थी) ऐसे परम-पराक्रमी, निष्कलक चरित्र के धनी, स्कन्दगुप्त को अपने उपन्यास का नायक बनाकर राखाल बाबू ने अपनी गहरी सूझबूझ का परिचय दिया। और यद्यपि उपन्यास मे वर्ण्यकाल कुमारगुप्त के शासन का अन्तिम अंश और स्कन्दगुप्त का शासनकाल है, पर बार बार सम्राट् चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त की चर्चा करके राखाल बाबू भारतीय-इतिहास के स्वर्ण-युग की समूची सृष्टि को मानस पट पर जीवन्त कर देते हैं। और "करुणा" में ही क्यों, "शशांक" में भी पूरे-पूरे परिच्छेदों में समुद्रगुप्त की हरिषेणलिखित प्रशस्ति और स्कन्दगुप्त का भीतरी-शिलालेख स्वतंत्र रूप से घटा बढ़ाकर पाठकों के सामने रक्खा गया है। इन गद्यगीतों का स्थायी राष्ट्रीय महत्व है—केवल पद्यात्मक न होने से यह बंकिमबाबू के "वन्देमातरम्" के समान गेय नही है।

राखाल बाबू के इन उपन्यासो में ऐतिहासिक ब्यौरे बिलकुल ठीक-ठीक अनुपात मे आकर उस समय के प्रतीतिजनक वातावरण की सृष्टि करते है। दोनो उपन्यासो में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के दुर्वह पराक्रम अविलंब, शुचित्रा और प्रजा-वत्सलता की रह-रहकर झाँकियाँ दिखाइ जाती है। उस समय के भिन्न राजपदाधिकारियो के नाम आते है। विलास-पूर्ण नागरिको का दैनिक जीवन आता है। एक प्राण मे जागृत हो जानेवाली मागधी-वीरो की सैनिक छवि आती है। और सबसे अधिक आता है छोटे-बड़े वृद्ध युवक स्त्री-पुरुष हर किसी का वज्र-कठोर अनुशासन से प्ररित आचरण। लगता है कि मगध अपनी आन्तरिक शक्ति के कारण अविजेय था, मात्र इसलिए नही कि उसके पास समुद्रगुप्त जैसे सम्राटो की विजय-परम्परा थी। और इन ऐतिहासिक ब्यौरो के देने मे राखाल बाबू बड़े सतर्क रहे कि ज़रा सी भी अतिशयता न हो। राहुल का पाण्डित्य कम न था और उनकी ऐतिहासिक जानकारी "सिंह-सेनापति" और "जय-यौधेय" के पन्ने-पन्ने म बिखरी पड़ी है। पर वहां Much of muchness का दोष है। उनके "मधुर स्वप्न" मे इस अतिशयता के संबंध मे दो मत हो ही नही सकते। पर राहुल के समान प्राचीन भारतीय इतिहास के उद्भट विद्वान् और प्राचीन शिलालेखो के अप्रतिम पंडित होते भी राखाल ने अपनी सारी जानकारी को प्रकट करने के लोभ पर अंकुश रक्खा और उसी कारण उन्हें अप्रतिम सफलता मिली।

राखाल बाबू की सफलता का एक और कारण है उनकी कवित्वपूर्ण संवेदनशीलता। बंगला की सभी महान् साहित्यिक विभूतियों के समान राखाल बाबू भी बहुत भावुक थे। इतिहास की घटनाओ के साथ; "असीम" और "मयूख" में भी जो प्रेम-कथाएँ उन्होने गूथी वह प्रेम की सघनता और दुखान्त परिणति के विषाद से पाठक के मन को अनिर्वचनीय सुखदुखमय रस से सराबोर कर देती है। पर "करुणा" और शशांक में तो उनकी यह शक्ति अपने

पूरे निखार पर है। स्कन्दगुप्त की मृत्यु का झूठा फैलाया हुआ समाचार पाकर उनकी वाग्दत्ता महिषी अरुणा देवी ने अपना शरीर अग्निदेव को समर्पित कर दिया। पाटलिपुत्र के राजमहल के गंगाद्वार पर हूणों की विजय करके लौटे हुए सम्राट स्कन्दगुप्त के हाथों, यह महिषी का भस्म-विसर्जन-प्रसंग बड़ा ही करुण और भव्य है। हर्षगुप्त तो उसे सम्राट् का "विवाह" कहते थे :—

"भानुगुप्त" महाराजाधिराज, पवित्र प्रतिष्ठानपुर में गंगा और यमुना के संगम पर आपने मुझे आज्ञा दी थी कि जिस दिन आप पाटलिपुत्र में पदार्पण करें, उसी दिन मैं साम्राज्य की पट्टमहादेवी को लेकर उपस्थित रहूँ। महाराज, परमेश्वरी, परमवैष्णवी, परममाहेश्वरी परमभट्टारिका पट्टमहादेवी आपके सामने उपस्थित हैं।

इतना कहकर कुमार हर्षगुप्त ने सोने का वह पात्र महाराजाधिराज के पैरों के पास रख दिया। सम्राट् के पैर उनके शरीर का भार न सह सके। ..."उस समय हर्षगुप्त ने सोने का पात्र खोलकर कहा—आर्य, बहुत दिनों के उपरान्त आज पट्टमहादेवी नगर में आई हैं।' कृपाकर उन्हें पैरों से छू लीजिये।

सूखे हुए नेत्रों और काँपते हुए हाथ से उस पात्र में से मुट्ठी भर राख लेकर स्कन्दगुप्त ने कहा—"बस यही न ?" यह अरुणा ऐसी-वैसी न थी। मालवराज बंधुराज ने वज्र के समान गंभीरस्वर से उनकी जय-जयकार करने के बाद, हूण यात्रा के लिए उत्तरापथ की ओर स्कन्दगुप्त के साथ प्रस्थान करने के पूर्व, उन्हींसे कहा था :

"देवी, आज युवराज के मुख पर जो दीप्ति दिखाई दे रही है वह बहुत दिनों से देखने में नहीं आई थी। वाह्लिका के तट पर, कपिशा में, गान्धार में, पुरुषपुर में और शतद्रु—तट पर हम लोग प्रायः यही सोचा करते थे कि क्या युवराज के मुख पर फिर भी वह शांत भाव कभी देखने में आवेगा। परन्तु आज तुम्हारे दर्शनों से फिर वह दीप्ति आ गई।"

उस अरुणा के भस्म मात्र को गंगा के जल में प्रवाहित करने के साथ ही स्कन्दगुप्त के जीवन में कोई रस नहीं रह गया था। भवभूति के राम के समान स्कन्दगुप्त का भी हृदय अन्तर्गूढ़ घनी व्यथा से पुटपाक के समान हो गया था।

और अपनी बालसखी, चित्रा के अनुराग में नखशिख तक डूबे हुए पिंगलकेशीय शशांक का हृदय उस समय भग्न हो गया जब उसी चित्रा का उनके छोटे भाई माधवगुप्त से राजमाता के आग्रह के कारण विवाह हो गया। विवाह के ठीक बाद शशांक चित्रा के सामने पहुंचे। चित्रा ने उन्हें पूरी कैफियत दी कि किस प्रकार वाध्य होकर उसे विवाह करना पड़ा। उसने शशांक से बार-बार क्षमा माँगी, बार-बार अपने प्रणय का विश्वास दिलाया। पर शशांक की तो केवल एक बात थी :

"अब तुम माधव की अंकलक्ष्मी हो, अब तुम मेरी नहीं हो।...........कोई सामान्य क्षत्रिय-वधू यदि आचार-भ्रष्ट हो जाय तो हो जाय, पर तुम दक्षदत्त की कन्या हो, महासेनगुप्त की पुत्रवधू हो, मगध की राजेश्वरी हो—तुम्हारे लिए ऐसी बात उचित नहीं है........... समझ लो कि शशांक सचमुच मर गया...........दूर देश में ज्ञानशून्य होकर मैंने इतने दिन अज्ञातवास किया। जब ज्ञान हुआ तब सुना कि पिताजी नहीं हैं। फिर भी दौड़ा-दौड़ा मैं पाटलिपुत्र आया क्योंकि जानती हो चित्रा, मन में बड़ी भारी आशा लिए हुए था कि तुम्हें देखूंगा तब कितना सुखी हूंगा। सोचता था कि तुम वैसे ही दौड़ी-दौड़ी मेरे पास आओगी, तुम्हारी हँसी से संसार खिल उठेगा, तुम्हें लेकर मैं अपना सब दुख-शोक भूल जाऊँगा।......अब और तुम्हारा सिर न दुखाऊँगा।...........चित्रा, चित्रे, चित्री, चित्रिता, चिती। अब और माया न बढ़ाऊँगा, तुम जाओ।"

"कहाँ जाऊँ, युवराज ?"

"अपनी सेज पर।"

"यही तो मेरी सेज है।"

"छिः चित्रा। अब मैं जाता हूँ......सब दिन के लिए विदा।" देखते-देखते नीचे गंगा में किसी भारी वस्तु के गिरने का शब्द हुआ। शशांक ने पीछे फिरकर देखा कि छत पर कोई नहीं है। उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वे भी छत पर से गंगा में कूद पड़े।"

पर चित्रा बच नहीं सकी। इस वियोग ने शशांक को क्षत-विक्षत कर डाला। इसी कारण चित्रा के भाई और अपने परम सखा नरसिंह से उन्होंने कहा :—

नरसिंह, मैं चित्रा की मृत्यु का कारण हूँ। मैंने उसे अपने हाथ से तो नहीं मारा, पर वह मरी मेरे ही कारण ......जिस समय मैंने सुना कि वह आज मगध की राज-राजेश्वरी होगी, उसी समय मेरी राज्य की आकांक्षा जीने

की आकांक्षा, सब दूर हो गयी।......नरसिंह, तुम मेरे बाल्य सखा हो। अब इस वेदना का भार हृदय नही सह सकता। तलवार खींचो मेरा हृदय विदीर्ण करो। नरसिंह —युवराज तुम अब महाराजाधिराज हो, अपना राज्य भोगो।

नरसिंह के लिए तो अब संसार सूना है। पितृहीन बालिका······················मेरी वह छोटी बहन अब नहीं है।·········· यह विशाल नगर, यह राजप्रासाद मुझे चित्रा-मय दिखलाई पड़ता है। यहाँ अब और ठहर नही सकता।

काश कि शशांक विवाह से पूर्व चित्रा से जाकर मिल लेते। या विवाह के हो जाने पर भी लोकाचार और शास्त्र के मिथ्या व्यवधान का तिरस्कार कर चित्रा को स्वीकार कर लेते। पर अदृ ट तो कुछ और ही था। सस्पेंस को बराबर जागृति रखने की क्षमता राखाल बाबू की बहुत बड़ी निपुणता है। यों तो पूर्वचर्चित सभी उपन्यासकारों की कथाओं में 'सस्पेंस' की कमी नहीं। पर राखाल बाबू तो इस विशेषता में सबके आगे लगते हैं। उनके भी सब उपन्यासों की अपेक्षा "करुणा" में इस तत्त्व का सर्वतोधिक प्रदर्शन है। स्कन्दगुप्त के चाचा गोविन्दगुप्त ने यौवन के आवेश में एक वेश्या इन्द्रलेखा को अपने पिता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम की एक अँगूठी दे दी थी। जब स्कन्दगुप्त के पिता कुमारगुप्त इन्द्रलेखा की पुत्री अनन्ता के रूपपाश में बँधकर इन्द्रलेखा के हाथ की कठपुतली हो गये तब दी गई अँगूठी को जैसे भी बने इन्द्रलेखा के हाथ से वापिस ले लेना जरूरी हो गया। इसी उद्देश्य से गोविन्दगुप्त का "मलयानिल" के छद्मभवेष से बौद्धसंघाराम में एकाकी इन्द्रलेखा से मिलने जाना और मरते-मरते बचना इन सबका वर्णन बड़ा रोमांचकारी है। सुविख्यात धरवंश के सामन्त जयधवल की पुत्री अमियादेवी से एक हूण विजेता युवक सामन्त देवधर का विवाह निश्चित हुआ। विवाह संस्कार होने के पूर्व ही देवधर के सामने जीवन और प्रतिष्ठा में से एक को वरण करने का प्रसंग आ गया। मद्य पीकर बावली हुई एक वेश्या मदनिका को उन्होंने राजमार्ग पर कोड़े लगवाये। मदनिका इन्द्रलेखा की सखी थी, अतः उसके जाकर फरियाद करते ही इन्द्रलेखा की पुत्री ने सम्राट् कुमारगुप्त की अनुमति के बिना राजमुद्रा से अंकित करके एक राजादेश भेज दिया कि देवधर अपराधी के रूप में बन्दी होकर सम्राट् के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किये जावें। देवधर और अमिया ने उसी रात्रि में अपना विवाह किया और उसके बाद पुष्पशय्या पर लेट कर आत्मघात कर लिया। उनके शव जयधवल देव दरबार में ले गये। सारा वृत्तान्त सुनकर कुमारगुप्त तो मूर्छित हो गये। मदनिका को कुत्तों से नुचवाकर प्राणदण्ड दिया गया तब जाकर जयधवल को कुछ चैन मिला। सारा का सारा प्रसंग बड़ा लोमहर्षक है।

यह तो दो उदाहरणमात्र हैं। अन्य न जाने कितने ऐसे प्रसंग "करुणा" और "शशांक" में भरे पड़े है। राखाल बाबू की इस क्षेत्र की श्रेष्ठता का कारण हम तो यह समझते है कि गुप्तकालीन भारत का यथावत् चित्र खींचने के अतिरिक्त उनका और कोई उद्देश्य नहीं था। राहुल के समान तथागत् के दर्शन और मार्क्स के साम्यवाद के बीच समन्वय स्थापित करने जैसी उनकी अपनी कोई प्रवृति नहीं थी। न उनका वृन्दावनलाल वर्मा के समान यही आग्रह था कि "आधुनिक समस्याओं का समावेश उपन्यासों में अवश्य होना चाहिए।" किसी विशेष वाद, सम्प्रदाय या मत का पोषण न करने के कारण इनके सारे उपन्यासों में सहज-प्रतीतिजनक वातावरण है जो पाठक को बलात् मुग्ध कर लेता है। ऐतिहासिक असंगति (Historical anachronism) से शत-प्रतिशत अपनी कथा को बचाये रखने का श्रेय इस निबन्ध में चर्चित उपन्यासकारों में से एक मात्र राखाल बाबू को मिल सकता है। और बिना एक बार भी प्रचारक या उपदेशक के रूप में पाठकों के सामने आये हुए, अपने देश के विगत इतिहास के सर्वाधिक—गौरव—सम्पन्न काल को, बच्चे बूढे सबके समक्ष इतने शक्तिशाली रूप में उपस्थित कर देने के कारण राखाल बाबू के दोनों उपन्यास आगामी पीढ़ियों द्वारा बड़े चाव से पढ़े जाते रहेंगे इसमें कोई संदेह नहीं।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में हम राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री और वृन्दावनलाल वर्मा की रचनाओं पर विचार करेंगे।

श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने हिन्दी उपन्यास—एक सर्वेक्षण में लिखा है, "ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य का कमजोर पक्ष है। ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा हमारे यहाँ अत्यन्त विरल रही हैं। प्रेमचन्द-पूर्व युग के तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यास वस्तुतः इस अभियान के अधिकारी नही। हम महेन्द्र जी की इस धारणा से सहमत हैं।
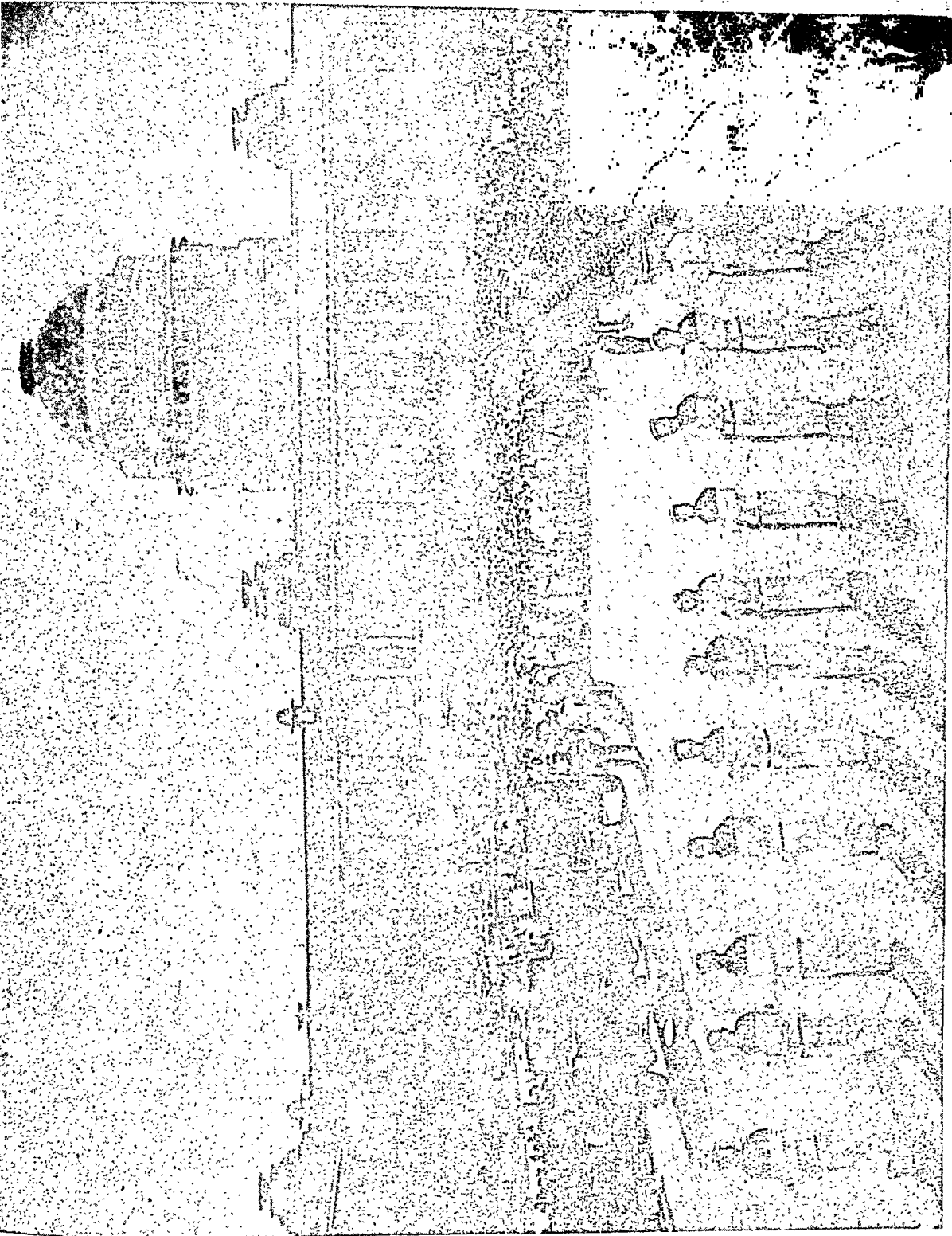
राष्ट्रपति भवन के प्रांगण से शवयात्रा का प्रारंभ
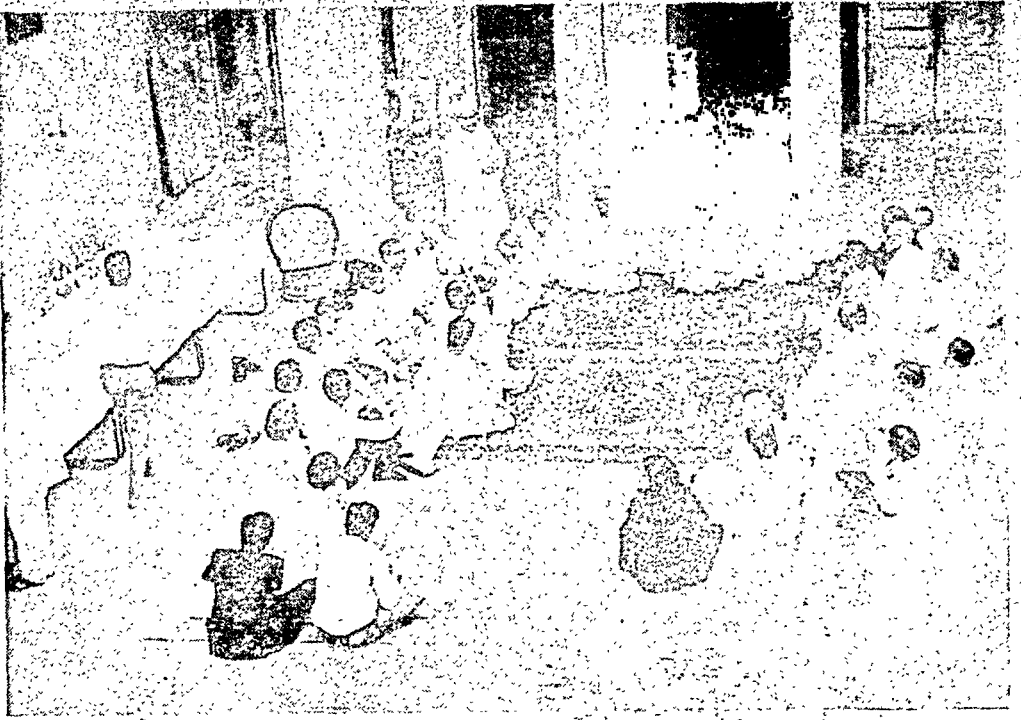
भारतीय साहित्यकारों का स्वागत

उड़ीसा, तमिनाडु और आंध्र के तीन वरिष्ठ साहित्यकारों ने गत मास उत्तर प्रदेश की यात्रा की जिसका आयोजन दिल्ली के भाषा संगम ने किया था। लखनऊ में पं० अमृतलाल नागर ने उनके सम्मान में साहित्यकारों की एक निजी गोष्ठी की। संगम के अध्यक्ष श्री गंगाशरणसिंह आगत साहित्यकारों का परिचय दे रहे हैं।

हिन्दी भवन का शिलान्यास

गत मास लखनऊ में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु जी गुप्त ने 'हिन्दी भवन' का शिलान्यास किया। यह विशाल भवन पाँच खंडों का होगा और इसके वनने में २२ लाख रुपये लगेंगे।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों और उनके लेखकों की संख्या कम नहीं तथा ऐसे उपन्यासों का रचना काल भी छोटा नहीं। किशोरीलाल गोस्वामी का "लवंगलता" सन् १८९० में लिखा गया था। पर श्रेष्ठता और कला की दृष्टि से हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का स्थान बड़ा हेठा है।

सबसे पहले हम राहुल सांकृत्यायन पर विचार कर लें। राहुलजी की साहित्य-साधना विराट् थी। अपने खुद के अकेले हाथों, साधनहीन, उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य की जो सेवा की, वह अपनी समता नहीं रखती।

"आलोचना" में एक वार राहुलजी ने लिखा था, "ऐतिहासिक उपन्यासकार का विवेक वैसा ही होना चाहिए जैसा कि इतिहासकार का होता है। ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिए.......तत्कालीन सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है।"

जव सन् १९४४ में उनका "सिंह-सेनापति" प्रकाशित हुआ तो यह आशा हुई कि इतने विशाल अध्ययन वाले लेखक ने जव ऐतिहासिक उपन्यास में हाथ लगाया है तो हिन्दी साहित्य को कुछ अनमोल रत्न आवेंगे। सिंह सेनापति की भूमिका में लेखक ने भ्रम फैलाया कि उपन्यास की कथा सिंह सेनापति द्वारा ईंटों पर लिखे गये जीवनवृत्त पर आधारित हैं, वे ईंटें जिला छपरा में खुदाई में मिलीं और अब पटना म्यूजियम में सुरक्षित हैं। इस भ्रम से पाठकों में उनके उपन्यास की विश्वसनीयता का मान बढ़ा। पर "सिंहसेनापति" और उसके वाद की रचनाओं—"जय-यौधेय," "मधुर स्वप्न" और "विस्मृत यात्री" में इतिहास की चित्रण लेखक का उद्देश्य नहीं था और इसीलिए इन रचनाओं को वह मान्यता नहीं मिल सकी जिसकी लोगों ने आशा लगा रखी थी।

अपने ऐतिहासिक और भौगोलिक ज्ञान के विस्तृत और गंभीर होने के बावजूद, राहुल ऐतिहासिक अनौचित्य से नहीं बच पाये हैं, कारण तत्कालीन जीवन की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य था। सम्मिलित सम्पत्ति तथा सम्मिलित पत्नी का सिद्धान्त का औचित्य वीरता और विलासिता का चोली दामन का साथ, गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति की और पद्धतियों से श्रेष्ठता, प्राचीन रूढ़ियों पर कुठाराघात, श्रम और भोग की समता, तथागत और मार्क्स के चिन्तन की समता यह उनके चार प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों—"सिंह-सेनापति" (१९४४) "जय-यौधेय" (१९४४), "विस्मृत यात्री" (१९५३-५४) और "मधुरस्वप्न" (१९४९)—मूल स्वर हैं। मुंशी, धूमकेतु, गुणवन्त, राखाल और वृन्दावनलाल ने अतीत को आदर्शात्मक दृष्टि से चित्रित किया है। अतीत की वर्तमान के लिए उपादेयता सामने रखी है। राहुल चतुरसेन और रांगेय-राघव ने अतीत की, वर्तमान की पार्श्वभूमि में, व्याख्या की है। जिस सीमा तक अतीत के तत्व वर्तमान साम्यवादी विचारधारा का समर्थन करते हैं उनको अभिनंदित करके उभारा है और वाकी का तिरस्कार किया है। सम्मिलित पत्नी के सिद्धान्त में तो राहुलजी साम्यवाद की सीमा का भी अतिक्रमण कर गये हैं और मूलतः अपनी खुद की विचार-धारा से प्रेरित जान पड़ते हैं। कारण साम्यवाद में सम्मिलित पत्नी का सिद्धान्त कहीं नहीं है। आत्यन्तिक दृष्टि से भी यह मत संगत नहीं लगता। एक तो यह सिद्धान्त जिज्ञासा, ज्ञान और एकनिष्ठा तीनों गुणों का, जो मनुष्य के उच्चतर स्वभाव के द्योतक हैं विराधी है। दूसरे मेरे तेरे की भावना का विनाश केवल विवाह-प्रथा के निषेध से संभव नहीं दिखलाई पड़ता उसके लिए तो भोगवादी जीवन का अमूल्य निषेध ही एकमात्र उपाय दिखलाई पड़ता है और उसके लिए न राहुल जी तैयार थे, न कोई साम्यवादी।[१]

इसके अतिरिक्त गौतमवुद्ध और मार्क्स की विचारधारा में समता देखना भी दृष्टिभ्रम है। यह सच है कि दोनों बुद्धिवादी थे, रूढ़ियों के विरोधी थे, अपने समय के सामाजिक और अन्य वैषम्यों के नाश के लिए कृत-संकल्प थे। पर दोनों साधनों में मौलिक अन्तर था—हिंसा और अहिंसा का। राहुल जी ने इस अन्तर को नजर अन्दाज करने के लिए गौतम को ऐसे भोज में निमन्त्रित कराया जहाँ गोमांस और शूकरमांस परसे जा रहे थे। पर इतने मात्र से पाठकों द्वारा वह ऐतिहासिक विशाल अन्तर नहीं भुलाया जा सकता था।[२]

इस मौलिक दोष से दूषित होने के कारण उनके सभी उपन्यासों में ऐतिहासिक अनौचित्य आ गया और पाठकों के लिए भारी रस-वाधायें उपस्थित हो गई। केवल विस्मृत यात्री में राहुलजी का प्रचारक का स्वर कुछ धीमा है, वहाँ साम्यवाद प्रत्युत राहुलवाद की स्थापना का आग्रह उतना प्रवल नहीं है, जितना अन्य तीन उपन्यासों में स्पष्ट है कि

१. आलोचना ४ पृष्ठ १०३-१०४
२. डा० सुषमाधवन—हिन्दी उपन्यास पृ० ३६८

सर भी अलीगढ़ के पासशुदा नौजवानों को सरकारी नौकरी के लिए उपयुक्त समझते थे। महात्मा गांधी के प्रभाव के फैलने और खिलाफत आन्दोलन से पहले मुस्लिम युवकों में अलीगढ़ की शिक्षा से ऐसा भाव उत्पन्न हो गया था कि हम इस देश के हिन्दुओं से अलग तथा अंग्रेजों के हिमायती हैं। मुझे याद है कि जब मैं म्योर कालेज इलाहाबाद मे (सन् १९०६-७) पढ़ता था, उस समय गोखले भारतीय राष्ट्रीयता तथा एकता का प्रचार करते फिरते थे, और जहाँ-जहाँ वे जाते थे वही-वही बाद में मोहम्मदअली जाकर भाषण देते कि मुस्लिम सभ्यता हिन्दू सभ्यता से भिन्न है, और मुसलमानो का भला कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन से अलग रहने और अंग्रेजों का साथ देने में है। वे दादाभाई नौरोजी के मंतव्यों के विरुद्ध भी प्रचार करते थे।

यह बात मैं इसलिए यहाँ पर लिख रहा हूँ कि जिससे वाचक वृन्द को पता लगे कि जाकिर हुसेन की शिक्षा कैसे वातावरण में हुई थी। और यदि वह एक असाधारण स्वदेश प्रेमी युवक और जन्म ही से महापुरुष न होते तो आज भारतवर्ष को ही क्या, सारे संसार मे किसीको उनकी तारीफ करने का मौका नही मिलता।

जाकिर हुसैन की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। कालेज जीवन मे भी वे पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त बाहर के इतिहास, दर्शनशास्त्र, और राजनीतिक विषयो पर गम्भीर पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे खेल-कूद और गपशप मे समय नहीं खोते थे बल्कि अपने सहपाठी विद्यार्थियो की सेवा और मदद भी करते थे। उनकी माता और बुजुर्गो ने १८ वर्ष की अवस्था मे ही उनका विवाह कर दिया था। उन्होंने हमारे सामने आदर्श गृहस्थ की मिसाल भी रखी है। जैसे १००) के वेतन में ३ लड़की और स्त्री का पालन-पोषण किया।

शिक्षक और जामिया मिल्लिया की स्थापना

महात्मा गांधी के अलीगढ़ आगमन पर और उनकी दलील को सही मानकर जाकिर हुसैन और उनके कुछ मित्रो ने सन् १९२० में जामिया मिल्लिया की स्थापना अलीगढ़ मे की, लेकिन उन्होंने वहांका वातावरण जामिया मिल्लिया की तालीम के अनुकूल नहीं पाया। इसलिये वे सन् १९२५ मे इस राष्ट्रीय विद्यालय को नयी दिल्ली ले आये। १९२३ में अध्यापक जाकिर हुसैन ने सोचा कि जामिया मिल्लिया को भारत की शिक्षा-संस्थाओं मे ऊँचा स्थान देने के लिए उसके अध्यापकों में पाश्चात्य विश्वविद्यालयों की विद्वता और पांडित्य होना जरूरी है। इसलिए उन्होंने चाहा कि वे जर्मनी जाकर उच्चतम अध्ययन करें और वहाँ पी-एच० डी० (Doctrate) करके भारतवर्ष लौटकर जामिया मिल्लिया की सेवा करें। इसके लिये वे जर्मनी (बर्लिन) जाना चाहते थे। मगर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने उन्हें जर्मनी के लिये पासपोर्ट नहीं दिया। तब उन्होंने इंग्लैण्ड के लिए पासपोर्ट बनवाया। लेकिन वे रास्ते में इटली में उतर गये और वहींसे बर्लिन चले गये। इंग्लैण्ड नहीं गये। वहाँ उन्होंने जर्मन भाषा सीखी और बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। अध्ययन काल में वे जर्मनी में महात्मा गांधी के विचारों का प्रचार करते थे, और वहाँ उन्होंने चित्रकला और संगीत का भी मनन किया, तथा गालिब की कविता पर एक पुस्तक भी लिखी। उन्हीं दिनों ग्रीक दार्शनिक और विचारक प्लेटो की रिपब्लिक का भी उन्होंने उर्दू में अनुवाद किया।

राष्ट्रीय विद्यालय जामिया मिल्लिया की सेवा के लिये जीवन अर्पण

जब उन्हें जर्मनी में यह समाचार मिला कि आर्थिक संकट और उच्चकोटि के अध्यापकों की कमी के कारण जामिया मिल्लिया बन्द होने को है, तो उन्होंने वहाँसे एक केबल (तार) भेजा जिसमें उन्होने लिखा कि जब तक मैं लौट न आऊँ तब तक जामिया मिल्लिया बन्द न की जाय। मैं यूरोप से कुछ शिक्षित साथियों को लेकर आ रहा हूँ। अब हमने यह तय कर लिया है कि हम लोग अपना सारा जीवन जामिया मे शिक्षक के रूप में व्यतीत करेंगे। जामिया मिल्लिया बन्द नहीं हुई।

डा० जाकिर हुसेन १९२६ में दिल्ली लौट आये। २९ वर्ष की अवस्था मे वे जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। उन्होने और उनके साथ आये हुए आक्सफोर्ड और बर्लिन विश्वविद्यालयों के शिक्षित युवकों ने प्रण किया कि वे इस राष्ट्रीय संस्था से केवल १०० रु० मासिक वेतन लेंगे। इसी वेतन पर डा० जाकिर हुसैन ने २२ वर्ष तक जामिया मिल्लिया की सेवा की। और अपने परिवार का पालन-पोषण किया। यद्यपि उनका पद विश्वविद्यालय के कुलपति (वाइस चान्सलर) का था तथापि खर्च कम करने के लिए वे स्वयं सेक्रेटरी और ट्रेजरर का काम भी करते थे। और जामिया मिल्लिया के लिए चन्दा

भी इकट्ठा करते थे। उन्होने अपने परिश्रम से एकत्र चंदे से जामिया की विशाल इमारतें बनवायी।

डा० जाकिर हुसैन ने जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय को इतना उच्च कोटि का शिक्षा केन्द्र बना दिया कि उसमें अध्ययन के लिए विद्यार्थी और अनुसंधान करने के लिए विशेषज्ञ योरोप, आफ्रिका, अरब, मिस्र, अफगानिस्तान, ईरान आदि से भी आने लगे।

राष्ट्रपति जाकिर हुसेन का आत्म-त्याग

डा० जाकिर हुसेन की इच्छा थी कि वे अपना सारा जीवन अपने देश के नवयुवको को शिक्षित करने मे व्यतीत करें। वे जानते थे कि राष्ट्र के उत्थान, आत्मगौरव और आजादी के लिए उचित व उदार राष्ट्रीय भाव उत्पन्न करने वाली शिक्षा बहुत आवश्यक है। जामिया मिल्लिया मे बजाय कालिज के विद्यार्थियो के पढ़ाने के वे स्कूल के छोटे दर्जे के विद्यार्थियो को पढ़ाते थे। उनमे सदाचार, स्वदेश-प्रेम, देश-सेवा और अनुशासन मे रहने की आदत डालना चाहते थे। एक बार जब उन्होंने स्कूल के एक विद्यार्थी को मैली टोपी पहने हुए देखा तो वे उसे अपने घर ले गये और उसके सामने खुद उसकी टोपी धोकर और दबा कर उसे दे दी और कहा कि भविष्य मे इस प्रकार अपनी टोपी साफ किया करो।

अगर महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू और अबुल कलाम आज़ाद इत्यादि उन पर जोर न डालते तो वे कभी भी जामिया मिल्लिया के अध्यापक-जीवन को न छोड़ते। सन् १९४७ मे हिन्दुस्तान के स्वतत्र होने पर देश के नेता और शुभचिन्तकों ने उनको जामिया मिल्लिया के बाहर राष्ट्रीय काम करने के लिये विवश किया और उनका सेवा-क्षेत्र विस्तृत कर दिया।

स्वतत्र भारतवर्ष के पहले मंत्रि-मंडल में डा० जाकिर हुसेन से मंत्रिपद स्वीकार करने को बड़ा आग्रह किया गया। लेकिन उन्होंने मत्रिपद स्वीकार नही किया क्योकि उस समय मुस्लिम लीग के साथ मिलकर कांग्रेस ने मिली-जुली सरकार बनायी थी और डा० जाकिर हुसेन जानते थे कि ऐसी दशा मे वे कोई उपयोगी काम न कर सकेंगे।

अलीगढ विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर—१९४८ में तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उनसे बड़ा आग्रह किया कि कम से कम अलीगढ़ विश्वविद्यालय के वाइस चन्सलर का पद स्वीकार कर लें। उस समय वह संस्था राष्ट्रीय भावनाओं से दूर चली जा रही थी। वहाँ के कुछ अध्यापक और विद्यार्थी पाकिस्तान चले गये थे और अन्य कुछ जाने की बात सोच रहे थे। उस संस्था मे साम्प्रदायिक भावना फैल रही थी। जामिया मिल्लिया की रजत-जयंती मनाने के बाद देश के हित के लिए डा० जाकिर हुसेन ने १९५० ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर का पद स्वीकार किया। उन्होने उस विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय रूप देने की भरसक कोशिश की और इसमे बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की।

राजनैतिक क्षेत्र में—सन् १९५२ मे प० जवाहरलाल नेहरू ने उन्हे राज्यसभा का सदस्य बना दिया।

राज्यपाल बिहार—सन् १९५७ मे डा० जाकिर हुसेन बिहार के राज्यपाल नियुक्त हुए। उनके कार्यकाल मे बिहार मे सब लोग बड़े प्रसन्न रहे। उनकी सोजन्यता, कार्य-निष्ठा, निष्पक्षता ने लोगो के हृदय जीत लिये थे।

उपराष्ट्रपति—सन् १९६२ मे वे फिर राज्यसभा के सदस्य नियुक्त हुए और उसी वर्ष उसके अध्यक्ष और राष्ट्र के उप-राष्ट्रपति चुने गये। इस आसन पर रहते हुए उन्होने राष्ट्रपति होने की योग्यता का प्रदर्शन किया।

राष्ट्रपति—मई १९६७ मे डा० राधाकृष्णन के पदमुक्त होने पर भारी बहुमत से डा० जाकिर हुसैन भारत के राष्ट्रपति चुने गये। विरोधी दलो ने उनके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के पदमुक्त मुख्य न्यायाधीश श्री सुब्बाराव को खड़ा किया था।

भारतवर्ष के राष्ट्रपति चुने जाने पर डा० जाकिर हुसैन ने कहा था :—

"यह मेरे लिए बड़े गौरव की बात है कि मुझ जैसे एक अदने अध्यापक को सारे राष्ट्र ने अपना राष्ट्रपति चुना है। आज से ४७ वर्ष पहले मैने यह निश्चय किया था कि मैं अपना सारा जीवन शिक्षा-प्रचार मे व्यतीत करूंगा। मैंने देशसेवा का सबक महात्मा गाधी के पैरो के समीप बैठकर सीखा। महात्मा जी ने मुझे मानव सेवा, सत्य और अहिंसा की प्रेरणा दी। वही मेरे पथ-प्रदर्शक रहे है। अब मुझे नया अवसर देश की सेवा करने का मिला है। मै अपने देशवासियो को महात्मा गाधी के उद्देश्यकी पूर्ति की ओर भरसक ले जाने की कोशिश करूंगा ताकि मेरे सब देशवासी व्यक्तिगत रूप से समाज मे रहते हुए सब देशवासियो को एकता के सूत्र मे बँधे हुए शुद्ध और आदर्श जीवन बसर

करे, और अपने दलित और गरीब देशवासियों को ऊपर उठाये। सब देशवासियों को समता के सूत्र मे बाँधकर भारत राष्ट्र की सेवा करें।

राष्ट्रपति के पद से जिस सादगी, सौजन्यता, सरलता, साहस, निर्भीकता और सहानुभूति के साथ डा० जाकिर हुसेन ने दो वर्ष राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग की निष्पक्षतापूर्वक सेवा कि वह उनके प्रति देशवासियों की श्रद्धांजलियों से स्पष्ट है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पार्लियामेंट में कहा—"डा० जाकिर हुसेन हमारे देश की सभ्यता के अवतार थे। उनमें वे सब गुण विद्यमान थे जो संसार के सर्वोत्तम मानव में हो सकते है। वह उच्चकोटि के विचारक, लेखक और विद्वान् थे! जब जब मैं उनके पास बैठी तब तब मैंने उनसे कुछ न कुछ सीखा। उनकी विद्वता, ज्ञान-भंडार, उनकी कला और जीव जन्तु प्रेम, उनकी सादगी, उच्चादर्श, उच्चकोटि की ईमानदारी, धार्मिक भावना, स्वदेशप्रेम उनके विशेष गुण है। डा० जाकिर हुसेन एक महामानव थे। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना असम्भव सा लगता है।"

उपराष्ट्रपति श्री गिरि को श्रद्धांजलि

डा० जाकिर हुसेन प्रमुख शिक्षक थे जिन्होंने अपने अध्यापन काल मे सदैव शिक्षा के द्वारा जनता को आदर्श जीवन का रास्ता दिखाया। उनके दिल मे गरीब और असहाय व्यक्तियों के लिए बड़ी जगह थी। उनकी धारणा थी कि मनुष्य की सेवा मे ईश्वर की सेवा है और मानवता सबसे ऊँचा धर्म है। डा० जाकिर हुसैन के हृदय मे हरेक मजहब के प्रति एकसी श्रद्धा और प्रतिष्ठा थी। सब धर्म उनके नजदीक (गांधी की तरह) मान्य और एक थे। आनेवाली पीढ़ियाँ डा० जाकिर हुसेन को न केवल भारत का वरन् सारे संसार का सर्वोत्तम पुत्र (देन) मानेगी। वे सारे संसार के सेवक और नागरिक माने जायेंगे। डा० जाकिर हुसेन सदा प्रत्येक व्यक्ति की स्वाधीनता के हामी थे। अहिंसा और सत्य उनके आदर्श थे।

स्वतन्त्र भारत के अंतिम गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचारी की श्रद्धांजलि

डा० जाकिर हुसेन से बढ़कर दूसरा कोई नागरिक हिन्दुस्तान मे नही हुआ। वे मुसलमानों में सबसे पहले सिपाही थे जिनको अली-बन्धुओं ने गांधीजी के स्वराज्य की लड़ाई की सेना में भर्ती किया था।

डा० जाकिर हुसेन ने अपने पिता का बनाया हैदराबाद का घर बेचकर जामिया मिल्लिया के पास में एक छोटा-सा मकान बनाया। वहाँ दफनाये जाने के बाद दूसरे दिन एक बुढ़िया स्त्री उनकी कब्र के पास बैठी देखी गई। सन्ध्या का समय था। तूफान और आंधी धूल उड़ रही थी। सूर्य अस्त होने को था। मजदूर कब्र पर काम कर रहे थे। दो सन्तरी पहरा दे रहे थे। वह वृद्धा रमणी चुप बैठी थी। किसी को पता नही था कि वह कौन थी।

एक संवाददाता ने उस बुढ़िया से पूछा कि तुम कौन हो। उसने कोई उत्तर नही दिया। उसके आँसू बहने लगे। वहांसे वह चल दी। संवाददाता तो खोज करने का अवसर ढूँढ़ते रहते है। एक ओखला निवासी से पता लगाया कि वह बुढ़िया किसी समय जाकिर साहब की नौकरानी थी। जब वह उनके आने की आहट सुनती तो दौड़कर दरवाजे पर उन्हे देखने आती, और जोर से घोषणा करती कि जाकिर साहब आ गये, जाकिर साहब आ गये। जब लोग उससे पूछते कि वह इतनी उत्सुकतापूर्वक क्यों दौड़ी हुई दरवाजे पर जाती है तो वह उत्तर देती अब बूढ़ी होती जा रही हूँ। क्या पता कि जब वे फिर ओखला आवें तब मैं जिन्दा रहूँगी या नही। एक बार ओखला आने पर जब वह दासी उनके स्वागत को नही दीखी तब उन्होंने पूछा वह कहाँ है? पता चला कि वह बीमार थी और झोपड़ी मे लेटी थी। जाकिर साहब उसके घर पर गये और बड़ी देर तक उसके पास बैठे रहे। उसकी मिजाज पुर्सी करते रहे। अतएव यह स्वाभाविक था कि वह बूढ़ी दासी उनकी कब्र पर स्नेह के आँसू बहाती। भगवान् बुद्ध ने 'करुणा' को धम्मपद में बहुत ऊँचा स्थान दिया है। जाकिर साहब के हृदय में भी करुणा का स्रोत उमड़ता रहता था। वे महामानव थे।

मै उन्हे महामानव मानता हूँ। महात्मा गांधी के अनुयायियों मे वे अद्वितीय भारतीय थे। काश कि वे अभी कम से कम २० वर्ष और भी भारतवर्ष की सेवा कर सकते। उनके समान भारतीय देशसेवक, महात्मा गांधी के विचार और आदर्शों के अनुसार भारतवासियो की तन मन से सेवा करनेवाला और कौन है? मंत्रिपद को ठुकराना आज की दुनिया में साधारण त्याग नहीं है। यह त्याग इस त्यागमूर्ति ने सन् १९४७ में कर दिखाया था। मैं चाहता हूँ कि हमारे देश के नौजवान उनको अपना आदर्श बना मंत्रिमंडलों की ओर पीठ फेरकर अपना सारा जीवन शिक्षा प्रचार, समाज-सेवा और दलितोद्धार में लगायें।

मेरी देखी पुस्तक—'दि सैटर्डे रिव्यू गैलरी'

(१) चर्चिल, (२) नोबेल, (३) जॉयस, (४) मिस मेयो, (५) लारेन्स, (६) आस्कर, वाइल्ड इत्यादि।

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

सं० रा० अमरीका के न्यूयार्क नगर से निकलने वाली पत्रिका 'सैटर्डे रिव्यू' ने अपने पिछले अङ्कों में समय-समय पर निकलनेवाले संस्मरणात्मक लेखों का एक संग्रह १९५९ ई० में 'सैटर्डे रिव्यू गैलरी' के नाम से निकाला था जिसमें कुछ संस्मरण बहुत रोचक हैं। उन्हींकी एक झलक पाठकों को दिखलाना इस लेख का उद्देश्य है।

सर विन्स्टन चर्चिल के विषय में लिखा है कि उनकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हें शेक्सपियर के कई नाटक जबानी याद थे। जो भाषण उन्हें अच्छा लगता उसे वे जब चाहे तब पूरा का पूरा सुना सकते थे। वे हैरो के पब्लिक स्कूल में पढ़े थे परन्तु वहाँ पर वे एक असफल विद्यार्थी थे। इंग्लैंड के पब्लिक स्कूलों में लैटिन एक अनिवार्य विषय है, परन्तु चर्चिल की लैटिन में रुचि नहीं थी। सौभाग्य से उनका एक सहपाठी उनका लैटिन का सारा काम कर दिया करता था। बदले में चर्चिल उसका अँग्रेजी का सारा काम कर देते थे। उनकी यह गति देखकर ही उनके पिता ने हैरो की शिक्षा समाप्ति के पश्चात् उन्हें किसी विश्वविद्यालय में न भेजकर सैण्डहर्स्ट के सैनिक स्कूल में भेज दिया।

चर्चिल ब्रिटेन में प्रधान मन्त्री थे। उनके पिता भी प्रधान मन्त्री रह चुके थे। चर्चिल ने द्वितीय विश्वयुद्ध जीता था। उन्हें साहित्य में नोबेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। अतः उनका अंग्रेजी में बड़ा ऊँचा स्थान है। श्री ए० शैलवेन ने अपनी पुस्तक 'योर फ्यूचर इन जर्नलिज्म' में लिखा है कि चर्चिल के अनुसार शब्द छोटे से छोटा और पुराने से पुराना होना चाहिए। साहित्य और भाषा के ऊपर अधिकारपूर्वक बोलने वाले ये चर्चिल महोदय हैरो के स्कूल में लैटिन व गणित में तीन बार फेल हुए थे। चर्चिल स्वयं कहा करते थे कि अँग्रेजी पर मेरे असाधारण अधिकार का कारण यही है कि मैं तीसरी कक्षा में अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा तीन गुने समय तक रहा, और जहाँ अन्य विद्यार्थी अपना समय लैटिन, ग्रीक आदि सीखने में लगाते थे मैं अँग्रेजी, केवल अंग्रेजी, को ही अपना सारा समय देता रहा। अतः मेरी नींव बहुत पक्की हो गयी है।

जार्ज बर्नर्डशा का एक नाटक खेला जानेवाला था। उन्होंने चर्चिल को दो पास भेजते हुए लिखा, "एक तुम्हारे लिये, दूसरा यदि कोई तुम्हारा मित्र हो तो उसके लिये।" चर्चिल ने उत्तर दिया—"कार्यवश आज तो मैं नहीं आ सकूँगा। यदि आपका नाटक दूसरे दिन चला तो कल आऊँगा।"

एक दूसरी पत्रिका 'सैटर्डे ईवनिंग पोस्ट' ने एक बोअर द्वारा चर्चिल का यह चित्र दिया है:

"अँग्रेज, २५ वर्षीय, अगठित शरीर, चलते हुए कुछ आगे को झुकता है, पीला वर्ण, बादामी बाल, सूक्ष्म मूछें कुछ-कुछ नाक से बोलता है, स का उच्चारण ठीक नहीं करता, डच भाषा से नितान्त अनभिज्ञ।" आगे चलकर चर्चिल ने मूंछ रखना बिल्कुल ही बन्द कर दिया था। इस पत्रिका के अनुसार अपनी विद्यार्थी अवस्था में चर्चिल बहुत बातूनी थे जिसके कारण उन्हें कई बार दण्डस्वरूप विद्यालय के क्रिकेट मैदान के चारों ओर दौड़ने का दण्ड मिला था। चर्चिल आरम्भ से ही बहुत घमण्डी थे। एक बार जब वे सेना में कैप्टेन से भी नीचे पद पर काम कर रहे थे तो उन्होंने कहा था कि सेनाध्यक्ष लार्ड किचनर यदि मुझसे मिलना चाहते हैं तो उन्हें मेरे पास आना चाहिए। मैं उनके पास क्यों जाऊँ?

चर्चिल की अहमन्यता को स्पर्श करने वाला एक प्रसंग मैंने कहीं पढ़ा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों बी० बी० सी० से चर्चिल का एक भाषण प्रसारित होना था। चर्चिल ने वेस्ट एण्ड में एक किराये की टैक्सी पकड़नी चाही। ड्राइवर उन्हें पहचान नहीं सका। उसने उत्तर दिया—"श्रीमन्, मैं इस समय कहीं नहीं जा सकता। समय हो रहा है मैं सीधे घर जाकर बी० बी० सी० से प्रसारित होनेवाला चर्चिल का भाषण सुनूंगा।" चर्चिल फूल कर कुप्पा हो गये और एक पौण्ड पुरस्कार स्वरूप ड्राइवर के हाथ में रख दिया। ड्राइवर ने यह समझा कि मेरी ना पर इन्होंने अधिक किराये का लालच दिया है। अत्यन्त प्रसन्न भाव से ड्राइवर ने कहा—"अच्छा आइए कहाँ जाना है, आपको?"

न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन के २९-११-१९५६ वाले अङ्क में चर्चिल सम्बन्धी एक लेख छपा है जिसमें बताया गया है कि चर्चिल पराजित शत्रुओं के प्रति बहुत उदार थे। साथ ही साथ प्रतियोगियों और विरोधियों पर व्यंग्य कसने में

उन्हें बहुत आनन्द आता था। यूनान की अशान्ति के दिनों उन्होंने पूछा कि यह बड़ा पादरी जो यूनानियों का नेतृत्व कर रहा है, सच्चा ईश्वरभक्त है या कोई धूर्त पाखण्डी, जिसने राजनैतिक स्वार्थ के लिए धर्म का आवरण ओढ़ रक्खा है। उत्तर मिला कि मानवीय आर्क विशाप ईश्वर भक्त नहीं, राजनेता हैं, जिन्होंने धर्म का आवरण ओढ़ रखा है। चर्चिल ने प्रसन्न होकर कहा तो वे अवश्य सफल होंगे। चर्चिल के विषय में अनेक झूठे चुटकले भी चल पड़े हैं, जैसे कि एक दिन राष्ट्रपति रूजवेल्ट चर्चिल के कक्ष में बिना किसी सूचना के चले गये। चर्चिल उस समय स्नानघर से नंगे निकल रहे थे। देखते ही रूजवेल्ट क्षमा माँगते हुए लौट पड़े। चर्चिल ने कहा, "क्षमा काहे की ? इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री को अमरीका के राष्ट्रपति से कुछ भी छिपाकर नहीं रखना है।"

नोवेल पुरस्कारों के संस्थापक जी० अलफ्रेड नोवेल के जन्म के समय (१८३३ ई०) उनके पिता दीवालिया हो चुके थे। वे किराये के मकान में रहते थे और उसका भी किराया वे चुका नहीं पाये। इस घोर दारिद्र्य के कारण नोवेल का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था और न तो उनका विवाह ही हो सका न उन्हे किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का ही अवसर प्राप्त हो सका। जब नोवेल ने प्रचुर सम्पत्ति अर्जित कर ली तो बहुत-सी सुन्दरियाँ उनसे विवाह की इच्छुक हुईं, परन्तु उन्होंने इस हीन भावना से किसीको मुँह नहीं लगाया कि ये सब मुझसे नहीं, मेरे पैसे से विवाह करना चाहती हैं। पेरिस की एक लड़की से उन्हें प्रेम हुआ भी था, परन्तु वह मर गयी। नोवेल ने इस पर एक कविता लिखी। अपनी सचिव काउण्टेस बार्था से भी उन्हें कुछ लगाव हुआ था, परन्तु वह एक युवा रईस के साथ भाग गयी। नोवेल ने कोई बुरा नहीं माना। वह अन्त तक उनकी विश्वासपात्र बनी रही। नोवेल की मृत्यु के पश्चात् इसे शान्ति नोवेल पुरस्कार भी मिला। नोवेल और उसके पिता को फ्रांस के राजा नैपोलियन की संस्तुति पर एक लाख फ्राङ्क नाइट्रो-ग्लिसिरीन के उत्पादन के लिये उधार दिये। नाइट्रो-ग्लिसरीन बहुत भयानक विस्फोटक है। मई १८६४ में नोवेल के कार्यालय में ही विस्फोट हो गया जिससे उनके भाई और ४ श्रमिकों की मृत्यु हो गयी, तथा पिता को लकवा मार गया। नार्वे में उनकी उद्योगशाला उड़ गयी। १८६६ में पनामा में एक जलयान में विस्फोट हुआ जिससे ६० व्यक्ति मरे, तथा ७५ लाख की हानि हुई। उनके एजेण्टों की कई दुकानें उड़ गयीं। नाइट्रो-ग्लिसरीन ढोती हुई एक रेल में विस्फोट हो जाने से १५ व्यक्ति मर गये तथा १५ लाख की हानि अलग से हुई। इससे चारों ओर नोवेल के विरुद्ध आक्रोश और घृणा फैल गयी। रेल और जलयानों ने उनका माल ढोना बन्द कर दिया। होटल वाले उन्हें अपने यहाँ ठहरने नहीं देते थे। कई देशों ने नाइट्रो-ग्लिसरीन का प्रयोग वर्जित कर दिया। अन्त में नोवेल नाइट्रो-ग्लिसरीन का संशोधित रूप डायनामाइट आविष्कृत करने में सफल हुए जो विस्फोटक तो उतना ही है, परन्तु भयानक नहीं। यह स्वयं नहीं फटता। इच्छानुसार जब चाहें तब विस्फोट के रूप में इसका प्रयोग कर सकते हैं। डायनामाइट से इन्होंने प्रचुर सम्पत्ति अर्जित की। पहिले इन्होंने केवल शान्ति पुरस्कार देने की योजना बनाई थी। तत्पश्चात् साहित्य और विज्ञान पर भी ये पुरस्कार देने के लिये सहमत हो गये। नोवेल का उद्देश्य आर्थिक सङ्कट से ग्रसित प्रतिमाओं को पुरस्कृत करने का था, परंतु दानपत्र की भाषा ऐसी बनी कि उसमें दरिद्रता व आर्थिक सङ्कट जैसे किसी भी प्रतिबन्ध का कोई उल्लेख नहीं हो सका। नोवेल स्वयं साहित्यकार थे, परन्तु उनकी रचनाएँ सामान्य कोटि की हैं। उनकी मातृभाषा स्वीडिश थी, पर वे ६ भाषाओं पर अधिकार रखते थे। नोवेल ने मरते समय ७ करोड़ रु० की सम्पत्ति छोड़ी थी। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार नोवेल ने २७-११-१८९५ को पुरस्कार देने के लिये ३ करोड़ १० लाख क्रोनर (स्वीडिश मुद्रा) से ट्रस्ट स्थापित किया था जिसकी रजिस्ट्री पेरिस में हुई थी। सैटर्डे गैलरी के अनुसार उनकी मृत्यु-तिथि ६-१२-१८९६ है, और फ्रांस की सरकार उनसे इसलिये अप्रसन्न हो गयी थी कि उन्होंने इटली के हाथ अपना डायनामाइट बेच दिया था। जब उनके एक भाई की मृत्यु हुई तो फ्रांसीसियों ने भूल से यह समझा कि अलफ्रेड नोवेल मर गये हैं, और उन्होंने उनकी मृत्यु पर कोई शोक प्रकट नहीं किया। नोवेल अपने अन्तिम दिनों में इटली के सानरीमो नगर में एकान्त जीवन बिताने लगे थे। डायनामाइट के अतिरिक्त वे कृत्रिम रबड़ और बनावटी रेशम के विषय में अनुसन्धान कर रहे थे। ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार उनकी आय का बहुत बड़ा स्रोत बाकू के मिट्टी के तेल का उद्योग भी रहा है। नोवेल की जीवनी से भारतीय मनीषियों की यह बात सिद्ध होती है कि इस संसार में सर्वसुखी कोई नहीं है।

कुरूपता और वीभत्सता के अमर गायक अङ्ग्रेजी के आइरिश साहित्यकार जेम्स आगस्टाइन जॉयस (१८८२-१९४१) पर भी उनके एक मित्र द्वारा लिखे हुए दो संस्मरण इस संग्रह में हैं जिनके अनुसार डबलिन (आयलैंड) में एक ऐसा भी पुस्तकालय है जहाँ आप अपनी पुस्तकें धरोहर रखकर ऋण प्राप्त कर सकते हैं। इस पुस्तकालय में समाचार-पत्रों में छपी घुडदौड, लाटरी इत्यादि की समस्त धर्म-विरुद्ध सूचनाओं और विज्ञापनों को पोत दिया जाता है। तब वे समाचार-पत्र पाठकों को पढने के लिये दिये जाते हैं। यहीं पर लेखक ने एक दिन जॉयस को रबड के जूते व फटा पायजामा पहने देखा था। जॉयस को किसी प्रतियोगिता में दो पुस्तकें पुरस्कार में मिली थीं। उन्हीं को वे धरोहर रखने आये थे। जॉयस वाचनालय में बैठकर गाने लगे। उन्हें शान्त होने के लिये कहा गया। वे शान्त हो गये, परन्तु फिर बोलने लगे जिस पर अध्यक्ष ने उन्हें बाहर निकाल दिया। जॉयस के पिता की कुल आय १५० रु०मासिक के लगभग थी, और साथ ही साथ वे घोर मद्यप और झगडालू व्यक्ति भी थे। जिस मोहल्ले में रहते वहाँ दूसरों का रहना दूभर हो जाता और यह अवगुण उनकी आय का एक साधन बन गया। मकान मालिक उनसे किराया न लेकर और उल्टे उन्हें अपने पास से कुछ देकर मकान छोडने को राजी कर लिया करते थे। दरिद्रता के कारण उनके भाई-बहिनों के वस्त्र जुओं से भरे रहते थे, जिन्हें मारते-मारते माता की हथेलियाँ रक्त से लाल हो जाती थीं। एक दिन जॉयस को महाकवि यीट्स के पिता मिल गये। वे उनके पास भाग कर कुछ माँगने गये थे। परन्तु वृद्ध ने यह कह कर उन्हें झिड़क दिया कि मद्यपों के लिये, मेरे पास १० सैण्ट (बारह आने) नहीं हैं। जॉयस की नेत्र-ज्योति क्षीण थी, परन्तु अर्थाभाव के कारण वे चश्मा नहीं ले सके। उन दिनों लेडी ग्रिगरी नाम की एक धनी महिला आपत्तिग्रस्त साहित्यकों की आर्थिक सहायता करने के लिए प्रसिद्ध थी। जॉयस उसके पास अपने राष्ट्रीय रङ्गमञ्च के लिए सहायता माँगने गये, परन्तु उसने भी टका सा जवाब दे दिया, "जिसे देखो वही साहित्यकार! जिसे देखो वही साहित्यकार! कहाँ से लाऊँ मैं इन सबके लिए" इस पर जॉयस ने एक कविता लिखी :—

"There was a kind lady called Gregory,
Who said, "Come to me poets in beggary,
But found, her inprudence,
When Thousands of students
Cried, "All we are in that category

उर्दू कवि सौदा की तरह जॉयस भी जिससे तनिक भी अप्रसन्न होते उसी पर हिजो लिखने बैठ जाते थे।

इन संस्मरणों के लेखक के यहाँ जॉयस के अतिरिक्त एक अन्य सज्जन ट्रैंच भी अतिथि रहे। ट्रैंच को उन्होंने कुछ दिन अधिक आग्रहपूर्वक ठहरा लिया। इस पर जॉयस ने एक कविता में उनकी निन्दा की। जॉयस ने अपनी एक पुस्तक में ब्रिटिश सम्राट् की निन्दा की थी। जब प्रकाशक को यह पता चला तो उसने एक प्रति को छोडकर सारा का सारा संस्करण फूंक दिया। इस पर जॉयस ने इस प्रकाशक के विरुद्ध कविताएँ लिखीं। जॉयस ने जीवन भर दुःख भोगे। उनकी सरस्वती को न केवल लक्ष्मी से अपितु प्रेम, सम्मान, प्रतिष्ठा सभी से बैर था। अतः जॉयस का हृदय संसार के प्रति कटुता से भर गया था। उन्होंने धर्म, साहित्य, अपनी जन्मभूमि आयरलैण्ड, सत्य, शिव, सौन्दर्य सभी को जी भरकर कोसा है। महाकवि यीट्स का जब अभिनन्दन होने वाला था तो जॉयस उनके पास गये और बोले, "क्या आयु है आपकी, मिस्टर यीट्स?" "आज मैं ४० का हो गया हूँ।" यीट्स ने उत्तर दिया। "मुझे दुःख है मैं इतनी बडी आयु के लोगों का साथ नहीं दिया करता।" यह कहकर जॉयस वापिस चले आये। जायस की महान् कृति 'उलैसिस' है जिसने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दी। इसका प्रकाशन सिलविया बीच की सहायता से हुआ। कुमारी बीयरिङ्ग ने प्रसन्न होकर उनके लिए एक अच्छी वृति नियत कर दी थी। जॉयस का कण्ठ बहुत मधुर था और उनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी। एक संगीत प्रतियोगिता में उन्हें कांस्य पदक मिला था जिसे उन्होंने निर्णायकों के सामने ही तोड़कर फेंक दिया क्योंकि वे अपने को स्वर्ण पदक का अधिकारी समझते थे। पुरातन पन्थी जॉयस की जीवनी से केवल यही सन्तोष ग्रहण कर सकते हैं कि वे अपनी जननी का बहुत सम्मान करते थे। घोर दारिद्र्य के दिनों में भी जब भी उन्हें कहीं से कुछ रुपया पारितोषिक, पारिश्रमिक या वृत्ति का मिलता उसका एक अंश वे अपनी माँ को अवश्य देते।

अमरीका की मिस मेयो ने भारतीयों के विरुद्ध 'मदर इण्डिया' लिखकर एक हलचल मचा दी थी। परन्तु मिस

मेयो तो सर्वव्यापी हैं। १८ वीं शती में ईरान के शेख हज़ी ने भी भारत की निन्दा में एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारत में केवल तीन ही प्रकार के व्यक्ति सुखी रह सकते हैं :—१ गुण्डे, २ गुटवन्द और ३ चाटुकार। परन्तु काशी पहुँचने पर उनका विचार वदल गया और उन्होंने हिन्दुओं की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा। ऐसी ही एक मिस मेयो इङ्गलंण्ड की श्रीमती फ्रांसिस ट्रालप थी जिन्होंने १८३२ में अमरीका के विरुद्ध "डोमेस्टिक मैनर्स आव दि अमेरिकन्स" लिखकर अमरीकियों में घोर क्षोभ उत्पन्न कर दिया। पुस्तक इतनी गन्दी थी कि यह समझकर कि एक स्त्री इतनी गन्दी पुस्तक नहीं लिख सकती, इसका लेखक कैप्टिन वेसिल हॉल को समझा गया क्योंकि इससे पूर्व भी हाल महोदय 'ट्रैविल्स इन नार्थ अमरीका" लिखकर मिस मेयो का रूप भर चुके थे। श्रीमती ट्रालप ने अपनी पुस्तक से लगभग १३,०००रु० कमाये।

डी० एच० लारेन्स एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। वहाँसे वे एक विवाहिता स्त्री को भगाकर ले गये थे। उनके उपन्यास 'रेन वो' में स्त्रियों के पारस्परिक अप्राकृतिक मैथुन का समर्थन था। उनकी "लेडी चैटर्लीज बावर" को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अश्लीलता के कारण जब्त हो गयीं। लारेन्स भूखों मरे। उनकी सरस्वती का भी लक्ष्मी के साथ साथ धर्म और सम्मान से वैर था। उनका कोई स्मारक नहीं है। उनकी मृत्यु पर पत्रों ने 'विष्टा का अन्त' शीर्षक से लेख लिखे।

आस्कर वाइल्ड अप्राकृतिक व्यभिचार के अपराध में दण्डित हुए। लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क तथा शिकागो की जनता के वे हृदय सम्राट् थे। स्वयं होम सेक्रेटरी (इँग्लैण्ड के गृहमंत्री) उनके नाम वारण्ट जारी करते समय द्विधा में पड गए थे। उन्होंने वाइल्ड के वकील को बुलाकर बतलाया कि वारण्ट ६-५१ संध्या को जारी होगा। आशय स्पष्ट था कि ६ वजकर ५० मिनट पर फ्रान्स को छूटने वाले जलयान से वाइल्ड भाग जायँ। परन्तु वाइल्ड भागे नहीं। उन्हें विश्वास था कि यदि मुझे पकड़ा गया तो मेरे भक्त क्रान्ति कर देंगे, परन्तु वे पकड़े गये और दण्डित हुए और कहीं कुछ नहीं हुआ।

'क्लासिक्स एण्ड कमर्शल्स' नामक पुस्तक में श्री एडकण्ड विलसन ने लिखा है कि आस्कर के पिता भी घोर दुराचारी थे। उन्होंने एक युवती पर बलात्कार किया था जो उनके पास चिकित्सा के लिए आयी थी। आस्कर वाइल्ड को दुराचार के कारण उपदंश हो गया था जो ठीक हो गया था, और उन्हें अपनी स्त्री से दो पुत्र प्राप्त हुए। किन्तु कुछ समय पश्चात् दबा हुआ उपदंश फिर भड़क उठा अतः उन्होंने अपनी स्त्री के पास जाना वन्द कर दिया और अप्राकृतिक साधनों से अपनी वासना को शान्त करने लगे।

आस्कर वाइल्ड ने अपनी इहलीला आत्मघात द्वारा समाप्त की। प्रोफेसर अलफ्रेड हाउसमन ने ब्रिटिश आर्डर आव मेरिट' जैसी उच्च उपाधि इसलिए स्वीकार नहीं की कि यही उपाधि जार्ज वर्नर्डशा जैसे टुच्चे साहित्यकार को मिलने वाली थी। जब राबर्ट ब्रिजेज को यह उपाधि मिली तो उन्होंने स्वीकार तो कर ली, परन्तु इसमें उन्होंने अपना बहुत बडा अपमान समझा क्योंकि उन्हींके साथ जान गाल्सवर्दी जैसे 'हेय' साहित्यकार को भी यही उपाधि मिली थी।

महाकवि यीट्स भूत-प्रेत, फलित ज्योतिष और जादू टोने में विश्वास करते थे।

ई० वी० ह्वाइट जब 'टाइम्स' के संवाददाता थे तो एक स्त्री खो गयी थी। बहुत खोज के पश्चात् उसके पति को उसका शव मिला। ह्वाइट ने समाचार भेजते हुए लिखा कि पति ने शव को देखकर कहा My God, it's her हे भगवान्, यह उसका है। सम्पादक ने उनकी भाषा में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया My God, it is she ! हे भगवान्, यह वह है। ह्वाइट इसे सहन न कर सके, और उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। बाद में ह्वाइट 'न्यूयार्कर' के सह सम्पादक हो गये। वे इतने एकान्तप्रिय थे कि उन्हें देखकर कोई यह नहीं पहिचान सकता था कि ये ह्वाइट हैं। एक वार एक सम्भ्रान्त साहित्यक महिला ने उनसे मिलने की तीव्र इच्छा प्रकट की। सम्पादक बहुत अनुनय विनय करके आग्रहपूर्वक उन्हें उक्त महिला के यहाँ एक सहभोज में ले गये। अवसर मिलते ही ह्वाइट चोरद्वार से भाग निकले और दीवालों, झाड़ियों और वृक्षों को कूदते-फाँदते अपने घर पहुँच गये। एक अन्य पुस्तक में ऐसा ही कुछ मैंने नोवेल पुरस्कार-विजेता फाकनर के विषय में पढ़ा था जो एक गोष्ठी से प्राण बचाने के निमित्त कोठे पर से छत का पानी नीचे ले जाने वाले नलों के द्वारा उतर कर भाग निकले थे।

नौकरी भी क्या चीज़ है !

श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी

विवाह के बाद मनुष्य के जीवन में दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना नौकरी है। यह जरूरी नहीं है कि जो नौकरी करता है वह विवाह भी करे, जैसे हमारे मित्र डाक्टर कुंजविहारी नौकरी करते हैं पर विवाह नहीं करते। पर यह जरूरी है कि जो विवाह करता है वह नौकरी करे। यह हो नहीं सकता कि इंसान विवाह तो कर ले पर अपने और अपनी पत्नी के पेट भरने की चिन्ता न करे। मंगतू ठेले वाले से जब हमने कहा, "यार, तुम मजे में हो। मर्जी आये जब छुट्टी कर दो," तो उसने लम्बी साँस भर कर उत्तर दिया, "कहाँ साहब आप छुट्टी कर सकते है, यहाँ हम पेट की नौकरी करते हैं, हमें छुट्टी कहाँ ? बच्चों का पेट कैसे भरे ?" और हमारी समझ में आ गया कि जो विवाह करता है, उसे नौकरी जरूर करनी पड़ती है—पराये की, या अपनी या अपनी पत्नी की। इस प्रकार विवाह और नौकरी का गहरा सम्बन्ध है। यह कहना कि नौकरी करने वाला विवाह करता है, या विवाह करनेवाला नौकरी करता है, उसी प्रकार गलत है जिस प्रकार यह कहना कि दूध पीने वाला पहलवान बनता है या पहलवान बनने वाला दूध पीता है।

नौकरी मे सबस बड़ा गुण या अवगुण यह है कि वह इंसान को नौकर बना देती है, अर्थात् 'चाकर है तो नाचा कर, ना नाचे तो ना चाकर।' नौकरी चाकरी करते ही आदमी नाचने लगता है; उठना, बैठना, लेटना सब भूल जाता है; सिर्फ नाचने लगता है। जो नाचता नहीं है, वह अच्छा नौकर नहीं होता। वह नौकरी से निकाल दिया जाता है। उसकी कानफोडेन्शल या गुप्त रिपोर्ट बिगाड़ दी जाती है। उसकी तरक्क़ रोक दी जाती है, जब तक कि वह लय में मिलकर ताक धिनाधिन नहा करने लगता। नाच म उसकी अपनी सत्र गायब हो जाता है, वह दुगुन मे नाचे तिगुन मे नाचे, कब सत्र पर आय, कब ताल दे यह सब उसके अफसर या मालिक पर निर्भर होता है। अफसर या मालिक यदि बदमिजाज़ है तो वह एक साथ चगुन मे शुरू होता है, और शाम तक ताकधा' 'ताकधा' 'यस सर' 'यस सर' किया करता है। अफ़सर यदि आफत टाल दस्तखत-मार होता है तो वह फिर मद गति में नाचता है। आधे दिन दफ्तर में बैठता है और आधे दिन रेस्तरां में बैठकर गप्पें लड़ाता है। नौकरी करते ही हर इंसान के सारे काम लय व ताल में शुरू हो जाते है। वह अलार्म के सहारे उठता है, बस के सहारे भागता है, और घड़ी की सुई के हिसाब से खाता, पीता, सोता है। आत्मगौरव, स्वाभिमान, चुस्ती, कर्त्तव्यपरायणता सब गायब हो जाते हैं। वह अगर ईमानदार होता है तो इतना ईमानदार कि बेईमान अफसरों या मालिकों के गलत कार्य्यो को नियमित करने लगता है, और यदि बेईमान होता है तो खुद भी खाता है और अफसरो को भी खिलाता है। हर काम बंधी हुई लय ताल मे करता है। नोटिंगो व आदेशों की भाषा बोलता है, दबग के आगे दुम हिलाता है और निस्सहाय को आंख दिखाता है। चाहे उसका मामला कितना ही न्यायोचित क्यों न हो। इस लय ताल मे नाचने की उसकी ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह निकम्मा हो जाता है। घर मे आता है तो दफ्तर के किस्से, मित्रों में बैठता है तो वही ट्रान्सफर व ग्रेड को बाते या अफसरों के स्कैण्डल। और जब रिटायर होता है तब नाचता तो नहीं है पर अपने नाचने के किस्से दूसरो को सुना-सुना कर 'बोर' किया करता है।

वास्तव म नौकरी इसान की रग रग मे इतनी भर जाती है कि वह अपनी ताल ही भूल जाता है। मेरे एक कवि मित्र हैं, बेचारे बड़े भले आदमी थे। भाई ने एक संस्था में 'ऐनाउन्सर' का नोकरी कर ली। अब भाई जब कभी मिलते है तो बात क्या करते है, समाचार पढ़ते हैं "चतुर्वेदीजी, आज मदार गेट पर एक सांड व जीप मे भिड़न्त हो गयी आपने सुना होगा, आदि !' मैं उसे समझाता हूँ, बंधु नौकर हो गये हो ठीक है हम भी नौकर है पर ये खबरें क्या पढ़ते हो ? इन्हे सुना ही दिया करो। पर वह यही उत्तर देता है, "यार, क्या करें हमें तो आदत ही पड़ गयी है आप तो सुन लिया करो।" अब बताइये इस निकम्मेपन का क्या इलाज है ? एक दूसरे साहब हैं जो एक भाषा विभाग में अनुवादक हो गये हैं, जब बोलते हैं तो हिंदी अंग्रेजी के

शब्दो का साथ साथ अनुवाद करते चलते हैं "चतुर्वेदीजी, आज वेल्यूज मूल्यो पर बड़ा क्राइसिस संकट है। कोई किसी पर ट्रस्ट विश्वास नहीं करता यहाँ तक कि वाइफ पत्नी भी हस्बैंड पति को ओवे नही करती।" मैंने उन्हें कई बार समझाया कि 'बंधु, यह अनुवाद की छोड़ो। एक भाषा का शब्द बोलो, अपना काम चल जायेगा।' पर भाई पक्का अनुवादक बन गया है। बताइये ये नौकरी है या अनर्थकरा।

औरो की तो क्या, अब हम अपनी बतायें कि नौकरी ने हमे कितना निकम्मा कर दिया है। जब हम नवयुवक थे, अपनी माँ के राजाबेटा थे। सवेरे उठकर कसरत करते, रोज घर को सब्जी लाते और मौके बेमौके घर का पानी तक भर देते। बदन मे इतनी फुर्ती थी कि हमे खुद आश्चर्य होता था। पाच-सात मील पैदल चलना हमारे लिए साधारण बात थी, यहाँ तक कि हम थोड़ी-बहुत दूर तो साइकिल पर जाना अपना अपमान समझते। हमारी पत्नी भी कहती हैं कि विवाह के प्रारम्भिक दिनो मे हम चुस्त पति थे जो नित्य सुबह चाय बना कर उन्हे पिलाते थे। पर जब से हम कालेज म पढ़ाने लगे है, हम न तो राजाबेटा रहे है, और न लायक पति। सवेरे चाय हमार बिस्तर पर न आ जाये तो हमे ऐसा लगता है कि माना अनर्थ हो गया। हम बिस्तर मे पड़े-पड़ इतने जोर से चिघाड़ते है कि सारा घर हिल जाता है। अब तो दो-चार मील यदि पैदल चलने का मौका आ जाये तो हमे जूड़ी चढ़ आती है। घर का सारा कार्य पत्नी करती है यदि वे कभी कह दे कि सब्जी ले आओ तो हमे साँप सूँघ जाता है फौरन यही बहाना बनाते है कि आज तो बहुत महत्वपूर्ण लेकचर तेयार कर रहे है या कापियाँ जाँच रहे है आदि। संक्षेप मे, अब हम बात करने का श्रम कितना भी कर सकते है पर शारीरिक श्रम की दृष्टि से पूरी तरह निकम्मे हो गये है।

ये हमारा ही हाल नही है। अध्यापन कार्य है ही ऐसा कि अध्यापक निकम्मा हो जाता है, या निकम्मा समझ लिया जाता है। अध्यापक की कोई परवाह ही नही करता, सब जानते है कि बेचारा नख-दन्तहीन प्राणी है। समाज की वृत्ति कुछ ऐसी हो गयी है कि आजकल उसी की पूछ की जाती है जो काट सके। राजस्थान मे एक किम्बदन्ती प्रचलित है कि मास्टर साहब को आते देखकर महिलाओं ने पर्दा नही किया। एक ने अन्य को टोका, "मिनख आरयो छै।' तो दूसरी महिला ने उत्तर दिया, "मिनख कठै, पढ़ावणयो छै पढ़ावणयो।" गोया बेचारा मास्टर क्या हुआ मनुष्य भी नही रहा। एक नौकरी ने उसे इतना पुरुषार्थ-हीन कर दिया।

वास्तव मे अध्यापक और अन्य मानसिक श्रम करने वाले लोग शारीरिक दृष्टि से बिलकुल निकम्मे हो ही जाते है। इसी प्रकार चुस्त नौकरियाँ करनेवाले बौद्धिक दृष्टि से निकम्मे हो जाते हैं। फौजी भाई हमेशा 'ऐटेंशन' व 'सेल्यूट करते रहते हैं; पुलिस वालो की कोई बात सीधी-सच्ची नही लगती। मुनीम-रोकड़िए हमेशा ब्याज का ही हिसाब किया करते है और हर हिसाब में या बात मे गलती पकड़ना अकाउंटटो की वृत्ति बन जाती है। चलते हुए कागज में 'ऑबजेक्शन' अर्थात् अड़ंगा न लगाया जाये, तब तक बाबू को रोटी नही पचती। असली अफसर वह होता है जो दस बार जी हुजूरी कराये बगैर काम नही करे। वास्तव मे यह नौकरी भी क्या शै' होती है कि हर व्यक्ति निकम्मा हो जाता है।

पर नौकरी का सबसे अधिक प्रभाव हमारे मित्र गजानन्द पर पड़ा है। बड़े अफसर है। सरकारी वाहन मिला हुआ है, अतः मित्रवर का पैदल चलने से चिढ़ है। घर मे इतने नौकर है कि हाथ हिलाने की आवश्यकता नही। वेतन अच्छा मिलता है, आज्ञाकारिणी पत्नी है, अतः भाई फूल-फूलकर कुप्पे हो रहे है। पूरे तीन मन की मूर्ति है। चलते है तो धरती धसकती है। मामूली ताँगे वाले रिक्शे वाले तो आपको देखकर ही दूर भाग जाते है। फुर्ती आपमें इतनी है कि रात को यदि लेटे हो और खाना परस कर आ जाये तो उठे कौन, तोंद पर थाली रखकर, लेटे-लेटे ही भोजन चर लेते हैं। आपको देखकर बरबस मुँह से निकल जाता है,

कर दिया हमको निकम्मा नौकरी ने,
एक नौकर चाहिए मक्खी उड़ाने के लिए।

मराठी कहानी

बदला

मूल ले०—जयवन्त दलवी

अनुवादक—सुरेन्द्र शुक्ल

सर्दियों के दिन थे; तिस पर भी दो-चार दिनों से कड़ाके की सर्दी थी। सड़क पर आवाजाही भी कम थी। बस स्टैण्ड पर मैं अकेला था। दूर सड़क पर भी कोई नजर न आता था। बिजली के खम्भे ही पहरेदार बने खड़े थे। तभी दूर पर अचानक रंगनाथ जाता दिखायी पड़ा। वह झूमता-झामता चला जा रहा था। आज उसकी यह दशा देखकर मुझे कुछ आश्चर्य तो जरूर हुआ; किन्तु उसके दुर्गुणों को देखते हुए मुझे कोई विशेष धक्का न लगा।

वह खूब पिये हुए था। चलता था तो लगता जैसे हाथ अलग से धड़ में जोड़ दिये गये हों। नशे में धुत् होने के कारण उसके पैर भी इधर-उधर पड़ रहे थे। फुलपैंट कमर से नीचे खिसक गयी थी, इससे उसके पाँयचे पंजों से घिसटते चले जा रहे थे। लगा यह रंगनाथ नहीं, उसका भूत ही उल्टे-सीधे पैरों से चला जा रहा हो।

वैसे मैं सुन तो चुका था कि इन दिनों वह खूब पीने लगा है। आज से लगभग छः मास पूर्व जब मुझसे मिला था और कंधे पर हाथ रखकर चलने लगा था तो उसके मुँह से शराब की कड़ी दुर्गन्ध आ रही थी; मेरी तो नाक ही फट गयी थी। पर आज तो पहले से भी ज्यादा धुत् दिखाई पड़ता था।

पहले की ही तरह आज भी उससे मेरी भेंट शाम को घर लौटते हुए हुई। आज भी पहले की तरह पहली तारीख थी और पूरे महीने का वेतन जेब में था। इसी बीच वह एक दम सामने से पास आ गया। अरसे के बाद भेंट हुई थी। झूठी हँसी के साथ उसने अपने दोनों हाथ मेरी ओर बढ़ाकर मेरा चुम्बन लेना चाहा कि मैंने डर के मारे दोनों हाथों से अपनी जेब सँभाली। मानो बिजली के करंट-से उसके दोनों हाथ छू गये और वे नीचे हो गये। मेरा यह व्यवहार उसको बुरा न लगा; क्योंकि वह कुछ होश में था। तभी उसने सिगरेट सुलगाई तो लगा जैसे उसकी आँखें गुस्से से लाल होकर दो अग्नि की चिनगारियों की तरह उगल रही हों। उसने भी मानो मनस्थिति भाँप ली हो। बोला—

"डर गया! लगा कि मैं जेब खाली कर दूँगा?"

"धत्! मैं भला ऐसा क्यों समझने लगा?" कह मैंने उसे आश्वस्त करना चाहा।

उसे मानों मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसी विचार से मेरी नज़र से नज़र मिलाकर वह मुझे और समझने की कोशिश करने लगा। वह कुछ मुस्कुरा उठा। शराबी जिस तरह से ओंठ भींचकर मदहोश होकर बेखबर हो जाते हैं, उसी तरह वह भी क्षण भर विचारों की दुनिया में डूब कर मुझे ताकता रहा। तभी मैंने उसकी चुप्पी तोड़ते हुए सहानुभूति से कहा—"रुपये चाहिए क्या?"

"रुपयों की मुझे क्या कमी है?" उसके ऐसे अलमस्त जवाब से लगा जैसे हजारों पर वह पेशाब करता हो।

और आगे भी वह बोलता ही गया—"भला, हमें रुपयों से क्या गरज! दिन में दो बार रूखा-सूखा भोजन, दो बोतल शराब। बस, रोज पाँच रुपये से अधिक मेरा खर्च नहीं है। पाँच रुपये मिल गए कि बस, मेरे बराबर शाहंशाह कोई दूसरा नहीं है। मुझे सिर्फ पाँच रुपये चाहिए.. ....पाँच...।" कहते वह बाएँ हाथ से चुटकियाँ बजाते हुए खुश होकर मुसकराने लगा।

मैंने पूछा 'कहीं कुछ नौकरी-धन्धा है कि बस। यों ही......?"

"तलाश में हूँ!" कह वह मुसकुरा उठा।

"फिर पाँच रुपये तुझे रोज देता कौन है?"

"देगा बाप और कौन?"

"हाँ, रोज, इसी तरह चुपचाप दे देते हैं। वे!" कह रंगनाथ एक उत्साही विजयी की तरह मुसकुरा उठा, मानों वह अपने पिता से किसी जन्म का बदला ले रहा हो!

रंगनाथ बाँह सिकोड़ते हुए कहने लगा—"साला एक बार पैरों में चाहे चप्पलें पहनना भले ही भूल जाए; किन्तु मजाल है कि वह टेबल पर पाँच रुपये रखना भूल जाय!"

मैं उसकी मुँह की ओर साश्चर्य ताकता रह गया।

उसके इस तरह बोलते हुए देखकर मानों मेरे सामने नाना काका का रुआबदार चेहरा फिर गया। उनका तमतमाता लाल मुँह, नुकीली आँखें और ऊँची नाक वाले नाना

काका पहिली ही बार अपनी ही सन्तान से किस बुरी तरह से परास्त हुए होंगे–एकदम से डर से सहम गये होंगे ! किसी तरह अपने काँपते हुए हाथों से पाँच रुपये का नोट टेबल पर ताले के नीचे रखकर चले जाते होंगे।

तभी उसने मुझे चौकाया—"कहाँ, घर जा रहे हो क्या ?"

उसने अचानक मुझसे यह सवाल कर दिया कि मुझे बहाना करने का मौका न मिला। उसके मेरे साथ चलने पर कुछ हर्ज तो न था; किन्तु मेरी पत्नी को शराबियों-नशेबाजों के साथ मेरा घूमना बिल्कुल ही पसन्द नहीं आता। इसी ख्याल से मेरे भी मुँह से निकल गया—'घर नहीं, जरा चौपाटी तक जाने का इरादा है !"

"क्या बजा होगा अभी ?"

"यही लगभग साढ़े छः बज रहे होंगे। तुझे जाना है न ?"

"हाँ, जाना तो है !"

"कहाँ ?"

"पीने......! पीने का काम भी तो रोज समय पर करना पड़ता है !"

"तो जाओ, फिर कभी मिलेंगे !"

कहकर मैं चल पड़ा और रंगनाथ भी अपनी राह लगा। मैंने मुक्ति की साँस ली; किन्तु उससे रहा न गया; उसने मुझे फिर पीछे से आ घेरा बोला—'चल, तेरे ही साथ आधे घण्टे चौपाटी का मजा लूटा जाय, अरसे से वहाँका मनहरण सूर्यास्त भी नहीं देखा.......। चल, आज तेरे ही साथ यह मौज-मजा लूटा जाय।"

और वह मेरे ही कंधो पर हाथ रखकर मेरे साथ हो गया। वास्तव मे उसे जाना तो घर ही था; किन्तु लाचारीवश वह मेरे साथ चौपाटी चलने को मचल उठा।

"तुझे तो मालूम ही है—मेरी जिन्दगी का रास्ता ही बदल गया है।"—वह साथ-साथ कहता चल रहा था। लगता था कि ये वाक्य किसी अशक्त बीमार के मुँह से निकल रह हों। तभी वह कुछ घबड़ाया सा कुछ ढूँढ़ने कीसी चेष्टा करने लगा।

"अरे, पर अपने हाथो ही अपनी जिन्दगी खराब की !"—मैंने कहा।

"राइट यू आर ! राइट !!"

"पर तू हजारों रुपयों का आदमी और आज इस तरह जिन्दगी गुजार रहा है ?"

"इसकी मुझे चिन्ता नहीं है—इस हालत में भी मैं सुखी हूँ और उस साले की पीठ पर रोज दो-चार-लातें जमा देता हूँ। बस, मुझे इसीमें आनन्द मिल जाता है। साला, मेरा बाप बना फिरता है।" कहते हुए उसकी आँखें गुस्से से कुछ-कुछ लाल हो गयीं।

उसका बाँया हाथ अभी भी मेरे कंधे पर था। उसका हाथ मानों मेरे कंधे पर जम सा गया था। हथेली के नीचे का कमीज का कपड़ा पसीने से एकदम लथपथ सा हो गया था।

वह फिर कहने लगा—"तू तो मेरे पड़ोस में ही रहता था, तुझे तो मालूम ही है, बुड्ढा कितना क्रोधी है। मगर अब उसका सारा गुस्सा ठण्डा हो गया। अब तो कछुआ-सा चुपचाप दबे पाँव कब घर से निकल जाता है, कुछ पता ही नहीं चलता; फिर भी अभी कभी-कभी गर्मा ही उठता है। कल भी रात में जरा गुर्रा उठा।"

वह इस तरह अपमानास्पद शब्दों से नाना काका के सम्बन्ध में बड़बड़ाता चल रहा था और मेरी छाती धड़क रही थी। मैं पीछे मुड़ कर देखता चल रहा था कि कहीं नाना काका पीछे-पीछे सब कुछ सुनते चले न आ रहे हों।

मैंने पूछा—"क्या कह रहे थे कल ?"

"कल रात में महफिल जरा देर तक जमी। यही लगभग रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे रहे होंगे ! सिर खुजलाते हुए घर में घुसते ही पूछ ही तो लिया—"कहाँ रहा इतनी देर ? जरा जल्दी आया कर। चोर कहीं का !"

"फिर ?" कह आगे जिज्ञासा करते हुए मानों मेरी बोलती ही बन्द हुआ चाहती थी। मुझे लगा, मानों नाना काका मुझे ही डाँट रहे हों जरा जल्दी आया कर !"

"उसका यह वाक्य सुनकर मुझे भी गुस्सा चढ़ आया; मगर वह साला स्वयं मार खाया-सा विस्तरे पर तब तक जा लेटा था।" कहता हुआ रंगनाथ खिलखिलाकर हँस उठा।

मैने कहा "रगनाथ, इस सम्बन्ध में मैं कुछ कहना तो नहीं चाहता था; किन्तु कहे विना रहा नही जाता .:.....।"

"बोल-बोल ! आजकल कोई भी मुझसे कुछ नहीं कहता ! तू ही बोल कुछ !"

"कुछ भी हो; पर नाना काका के साथ तो यह अभद्र व्यवहार न्यायसगत नहीं है। वे तेरे पिता जो हैं और शहर के एक प्रसिद्ध वकील हैं।"

"ठीक है आगे बोल ?"………

"कुछ भी हो पर पिता के साथ अनुचित व्यवहार ठीक नहीं लगता।"

"अरे, तुझे मालूम है ? मैंने उन्हें गोली से शूट नहीं कर दिया, यही उनका सौभाग्य समझ !"—वह खौलता-सा कहता गया—

"फांसी का डर तो मुझे है नहीं, आयु के १७ वर्ष में विष का प्याला तो तैयार था ही; दुर्भाग्य से उसे पी न सका ! काश ! पी लेता तो……।"

और मुझे लगा जैसे मेरे साथ रंगनाथ नहीं; उसका भूत चल रहा हो !

तभी मेरा ध्यान टूटा ; बोल उठा—"तुझे चौपाटी का सूर्यास्त देखना था न; लो देखो।"

और वह सूर्यास्त की दिशा की ओर देखता एकदम खो सा गया। एक क्षण बाद भावावेश में बड़बड़ाने लगा—"आज भी याद है वह क्षण। यही समय रहा होगा जब मेरी माँ की चिता धू धू कर सुलग रही थी और मैं दुःखी-चिंतित अस्ताचलगामी सूर्य का प्रतिबिम्ब खड़ा देख रहा था। क्या ही अच्छा होता यदि उस क्षण विष का प्याला मैं भी पी गया होता और……!"

रंगनाथ चिर परिचित की तरह सूर्यास्त को और भी परखने का सा प्रयत्न करने लगा !

उसने नानी काकी की बात क्या छेड़ दी; मेरा तो रोम रोम करुणापूर्ण व्यथा से तिलमिला उठा। मुझे लगा कि मानों नानी काकी का चेहरा मेरे सामने साकार हो उठा हो। वही उनकी लम्बी-लम्बी पिंगल केश-राशि किस तरह से चरचराकर जल गयी होगी ! निष्पाप, करुणामयी, सुन्दरता की मूर्ति सती-साध्वी नानी काकी की उम्र ही भला क्या रही होगी ! यही लगभग ३६ वर्ष ! वास्तव में वे बिल्कुल निर्दोष थीं। मैं उनसे भली भाँति परिचित था। उनका पड़ोसी रह चुका था !

जब वे ब्याह कर आई थीं, तो यहीं लगभग २० वर्ष की रही होंगी ! उनको शादी दोनों पक्षों की सम्मति से धर्म-सम्मत हुई थी। मैं उस समय लगभग १० वर्ष का रहा होऊँगा। आज भी मुझे स्मरण है; वे आते ही घर में सभी के साथ हिलमिल गयी थीं। नाना काका का भी क्या ही अद्भुत प्रेमपूर्ण व्यवहार था। कुछ ही दिनों बाद रंगनाथ पैदा हो गया था। रंगनाथ को मैंने गोद में खिलाया है। बढ़िया रंगरूप पाया था। देखते ही मन खिलाने को मचल उठता। पीली-पीली भूरी-भूरी आँखें,लाल लाल भरे-भरे गाल, अच्छे गुच्छेदार सुनहरे बाल, नानी काकी का ही चेहरा मोहरा उतर आया था रंगनाथ में। माता-मुखी सदासुखी रहने का वरदान प्राप्त कर जन्मा था !

बड़े प्यार-दुलार से नाना काका उसे खिलाते; नानी काकी भला क्या करतीं उतना प्यार !

नाना काका कभी नानी काकी के साथ घर से वाहर नहीं निकले। लोग इस बातपर जब चर्चा करने लगते, तभी कोई यह भी कहे बिना न रहता अरे, वे विवाह कर काकी को अपने साथ ले आए, यही क्या कम है !

"अरे वे विवाह के समय भी नानी काकी के साथ कहाँ रहे ?"

'तो………!

'वे उस वक्त भी उनसे ८-१० कदम आगे ही चलते थे।"

मेरे घर में भी चर्चा चलती होती और कभी-कभी तो नानी-काकी स्वयं ही आकर उनकी प्रशंसा के पुल बाँधने लगतीं। और जब कभी कोई नया कपड़ा नाना काका काकी के लिए लाते, वे घर में आकर सभी को बताये बिना उसे शरीर से न छुआतीं ! यह तो अरसे के बाद पता चला कि नाना काका कभी-कभी भूल से वर्ष में एकाध नई साड़ी लाते रहे हों। नानी काकी पेटी धराऊ साड़ियों को ही क्रम-क्रम से निकाल-निकालकर दिखाती हुई कहतीं—"इस बार देखो, वे यह साड़ी लाये हैं। है न सुन्दर ?"

नाना काका का यह दुर्व्यवहार आखिर कितने दिनों गुप्त रहता; कुछ दिन बाद तो यह भी सुनने में आने लगा कि उन्होंने एक ईसाई लेडी रख ली है—मिस आयरीनी डिपलो ! मैंने तो उन्हें अनेक बार उनके साथ आते जाते भी देखा। नानी काकी से उन्होंने अपना यह प्रेम-व्यापार बताया भी था। आगे तो यह भी हवा बँध गई कि वे उसके साथ "लव मैरिज" करने वाले हैं; किन्तु यह सब आँखों से देखते और कानों से सुनते हुए भी किसी की उनसे कुछ कहने सुनने की हिम्मत न पड़ती !

इस तरह से धीरे-धीरे उनका घर आना-जाना भी कम रहता था। कभी-कभी घर आते भी तो न किसी से बोलते चालते और न रंगनाथ ही उनसे कुछ बोलता। यद्यपि

जब-जब वे शाम को घर आते ता रंगनाथ प्यार भरी नजरों से निहारता हुआ उनका स्नेह जोहता रहता; फिर भी १०-१२ वर्ष के अपने बच्चे की ममता को भी वे आइरीनी के प्रेम के वशीभूत होकर भूल बैठे थे। वे उससे मुँह भर बोलते तक न थे।

एक बार तो नाना काका के इस व्यवहार को देखते हुए उन्होंने एक ऐसा जोर का तमाचा उनके गाल पर जड़ दिया कि वे बेचारी जगह पर ही गुड़मुड़ा कर रह गयी थीं। रंगनाथ ने नाना काका की यह हरकत गैलरी से देख भी ली थी। उसे लगा जैसे यह मार उसी पर पड़ी हो; वह एकदम से चीत्कार कर उठा। आस-पड़ोस के लोग दौड़ पड़े। पड़ोसियों को रंगनाथ की अबोध अवस्था और नानी काकी की असहाय अवस्था पर तरस आया। लोगों ने अनेक बार नाना काका को भी बुरा भला कहा; मगर वाह री नानी काकी! उस दिन बेचारी घर से बाहर नहीं निकली और न ही खुद किसी अड़ोसी-पड़ोसी के घर जाकर किसी बात की शिकायत की। पर नाना काका का रवैया भी बदला नहीं। वे जब तब उनके दो लातें जमाकर लाल लाल आँखें निकालते हुए अपना गुस्सा उन्हीं पर उतारते। ये बेचारी उफ तक न करतीं। किन्तु रंगनाथ अब लगभग १५ वर्ष का हो गया था। सोचने लगता, "अब माँ की परवरिश मुझे ही करनी है--जरा दो एक वर्ष में पढ़-लिखकर कुछ और बड़ा हो जाऊँ।"

वे अब ८-८, १०-१० दिनों तक घर आने का नाम तक न लेते—आइरीनी के यहाँ ही पड़े रहते। एक दिन चर्च से आइरीनी के साथ निकलते हुए मेरे पिता जी ने उन्हें देखा तो उनसे न रहा गया। उनके घर वापस आते ही वे उनकी बैठक में जा धमके। यद्यपि वे यह जानते थे कि नाना काका आयरीनी के सम्बन्ध में कुछ भी सुनना पसन्द न करेंगे और चर्चा छिड़ने पर दो-चार शब्द उल्टे-सीधे कहे बिना भी न रहेंगे; मगर पिताजी ने इसकी चिन्ता न की। जाते ही उन्होंने उनसे कहा—"सुना है आप धर्मान्तर कर रहे हैं ?"

"सुना, सम्भव हो सका तो !"

"क्यों ?"

"यों ही, मेरी मर्जी।"

"और नानी काकी कहाँ जाएँगी ?"

'जहाँ चाहे !"

"और रंगनाथ..........?"

"उसे होस्टल में रख दूँगा ?"

"—पर यह सब क्यों ?"—कहते हुए पिताजी कुछ गर्म हो गये थे और रंगनाथ और मैं गैलरी में छिपकर सुन रहे थे यह सब। नानी काकी भी अन्दर से चिक को ओट में खड़ी यह चर्चा सुन रही थी।

'मुझे अब अपनी पत्नी के साथ रहना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। फूहड़ औरत ! रसिकल !! नानसेन्स !!" कह नाना काका कुछ तिलमिला से उठे थे। यह वाक्य इस तरह से कह गये जैसे कोई यह कह दे कि मुझे यह फूल पसन्द नहीं और वह उस फूल को सूँघकर अत्यन्त तिरस्कार से फेंक दे; नाना काका का व्यवहार भी नानी काकी के साथ कुछ ऐसा ही बेरुखी का था !

"पर वह कुछ रखैल-वखैल तो है नहीं—व्याहता पत्नी है।"

"होगी, पर जीवन भर वह पसन्द आए---ऐसा जरूरी नहीं है। शादी एक करार है—दोनों में से कोई भी एक दूसरे को नोटिस देकर अलग हो सकता है।"

"अरे, पर बेचारी नानी काकी का क्या हाल होगा ! वह सती-साध्वी.........।"

"मैं यह सब नहीं जानता।" नाना काका ने बीच में ही टोंक दिया था।

"तो आप विवाह-विच्छेद करेंगे ?"

"हाँ, क्योंकि ऐसा किए बिना आइरीनी के साथ शादी करना सम्भव नहीं है।"

पिताजी यह वाक्य सुनकर एकदम सन्न रह गये। वे दुखी मन से घर वापस लौट गये। वे नाराज तो थे ही कहने लगे—"जो कुछ हो रहा है ठीक ही है। नानी के जीते जी वे न धर्मान्तर कर सकेंगे और न आइरीनी के साथ शादी ही। अच्छी मुसीबत में पड़ गये हैं।"

पिताजी एकनिष्ठ हिन्दू। भला उन्हें यह सब कब पसंद आता ! उन्हें इस बात से आनन्द ही हुआ कि चलो वे धर्मान्तर तो कर ही न पाएँगे।

पिताजी का यह विश्वास अधिक दिन न टिक सका। एक दिन प्रात: आकर ही रंगनाथ मेरे घर में चीत्कार कर रो उठा था—'नानी काकी चल बसी।'

सभी दौड़ पड़े थे। ८-१० दिनों से नाना काका घर

पर भी न आये थे; आइरीनी के यहाँ पुछवाया तो उसके घर में ताला बन्द था। दोनों कहीं बाहर गये हुए थे।

पता चला कि नानी काकी ने जहर पीकर आत्महत्या कर ली थी। रंगनाथ भी सोते समय नित्य दूध पीकर सोता था। उसके दूध में भी विष डाल दिया गया था, पर उस दिन रंगनाथ दूध पीना भूल गया था। वह दूध प्रातःकाल स्याह पड़ गया था। पुलिस ने नानी काकी की लाश के साथ उस विषमिश्रित दूध को भी जब्त कर लिया था।

रंगनाथ मारे दुःख के गैलरी पर चढ़ गया था। १६ वर्ष का रहा होगा। सोचने लगा था—"काश! मैंने भी वह दूध पीकर माँ के साथ ही उसकी अनन्त गोद में चिर विश्राम कर लिया होता!"

रंगनाथ के क्रिया-कर्म करने के दो दिन बाद नाना काका घर वापस आये थे, तब रंगनाथ मेरे घर पर ही था। उन्हें इस दुर्घटना से कुछ भी दुख अनुभव न हुआ। पिता जी ने अत्यन्त दुखी मन से उनसे पूछा भी—"अब आपका क्या विचार है?"

"अब तो जल्दी ही शादी करनी पड़ेगी।"

"धर्मान्तर कर?"

"हां!

"अरे, पर ऐसी स्थिति में संसार आप पर हँसेगा न।"

हँसेगा तो हँसने दो! मुझे किसी की चिन्ता नहीं है! मेरा उससे असीम प्रेम है—लोग कुछ भी क्यों न कहें, मै उसे छोड़ नहीं सकता। लोगों को उससे क्या मतलब—यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है। मेरी पहली शादी लोगो की सहमति से धर्म-सम्मत हुई थी, तो दूसरी शादी धर्मान्तर कर स्वेच्छा से हो जाये—दूसरे किसीको इससे क्या मतलब?"

"तो आप उससे शादी करेंगे ही?"

"तो फिर अपना स्नेह सौंपू भी किसे?"

"रंगनाथ को!"

पिताजी का यह वाक्य सुनकर वे निरुत्तरित से हो गये थे।

इस भेंट-मुलाकात के ठीक चार दिन बाद—जब नाना काका आइरीनी के साथ चर्च से बाहर निकल रहे थे तो पीछे से किसी अज्ञात व्यक्ति ने आकर आइरीनी की कोख में छूरा भोंक दिया। वह उसी जगह बेहोश हो गयी। हत्यारा चम्पत हो गया था। नाना काका उसे अस्पताल पहुँचाने की गड़बड़ में फँस गये थे, खूनी का अन्ततः पता भी न लग पाया था। इस रहस्य का भी उद्घाटन न हो पाया कि नाना काका ने धर्मान्तर कर उससे शादी की थी अथवा नहीं।

इस घटना के दो दिन बाद ही हमें अपना मकान बदल कर अन्यत्र जाना पड़ा था। फिर मैं कभी-कभार ही रंगनाथ को देखने-मिलने ही चला जाता; किन्तु पिताजी फिर उस मुहल्ले में कभी नहीं गये। वे तो नाना काका का मुँह देखना भी पाप समझते थे। बाद में पता चला कि रंगनाथ ने भी स्कूल छोड़ दिया था। वह कुसंगति में पड़ गया था। शराब पीने लगा था। बुरा लगता तो कभी-कभी उसे समझाने-बुझाने चला जाता; किन्तु सारी सीख व्यर्थ गयी। उसने अपनी आदत न छोड़ी।

उसके आचरणों को देखते हुए अब तो ऐसा लगने लगा था कि जैसे जिन्दगी से उसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं रह गया है। वह सूर्यास्त को एकटक खड़ा इस तरह से निहारता रहा जिस तरह से वह नानी काकी की जलती हुई लाश को निस्तब्ध खड़ा देखता रह गया था। माता की लाश के साथ ही मानों उसका सारा ममता मोह-भस्मी-भूत सा हो गया था। तभी उसका ध्यान टूटा। अत्यन्त भावावेश में आकर कहने लगा—"क्या क्या न सहा होगा उसने। कितनी मार खाई, पर मुँह से एक शब्द भी कभी न निकाला। पति को सुखी बनाने के लिए आत्महत्या कर ली, और उनकी जिन्दगी को सुखी करने के लिए उनके 'लव मैरेज' का मार्ग सुकर कर दिया। कितनी प्यारी माँ थी। वह जानती थी और मुझे अकेले यातना सहने के लिए छोड़ जाना नहीं चाहती थी; किन्तु मैं ही अभागा—!

"पर नानी काकी से उनकी नाराजगी का भला ऐसा कौन सा कारण रहा होगा?"

तभी आवेश में आकर वह बोल उठा—"कहता था मुझे पसन्द नहीं है; पर मैं पूछता हूँ कि शादी के समय तो उसका दिमाग ठीक था, कुछ मूर्ख तो न था। वह जानता था कि हिन्दू-पति-परायणा उसकी मार का कुछ जवाब न देगी, इसीलिए वह जब तब मारता रहता। क्या बताऊँ यदि उस समय मैं कुछ और बड़ा होता तो उस साले को बताए बिना न रहता कि औरत पर हाथ उठाने का क्या फल मिलता है। फिर भी मैं उसका बदला लिये बिना न रहूँगा। उसकी एक-एक लात माँ पर नहीं, मेरे ही सीने पर पड़ी है, साले से बदला लिये बिना न रहूँगा।" कहता कहता वह क्रोध से तमतमा उठा।

"पर आयरीनी की हत्या की किसने थी ?"

"राम जाने किसने मारा उसे, पर दुष्ट मर गई तो अच्छा ही हुआ । बुड्ढा जिन्दगी भर तड़पता तो रहेगा ।"

हम दोनों वापस लौटने लगे तो रास्ते में ही श्मसान घाट का फाटक दिखा । वह इशारे से कहने लगा—"बस, वहीं पर मैं भी जलकर राख हो गया होता और यह आजाद होकर मौज करता न घूमता ।"

और वह खिलखिलाकर हँस उठा ।

इसी बीच चौराहे पर पहुँचते ही उसे ढूंढ़ता हुआ रसाल मवाली आ धमका और उसके कंधे पर हाथ रखकर अपने साथ ले गया ।

फिर उससे भेंट हुई छह महीने बाद—बस स्टॉप पर । वह शराब के नशे में धुत्त हिलता-डोलता चला आ रहा था कि बीच सड़क पर बिजली के खम्भे से टकराकर जगह पर ही गुड़मुड़ा गया । सोचने लगा कि टैक्सी कर इसे इसके घर छोड़ आऊँ या अपरिचित सा मुँह मोड़कर अपनी राह लूँ । मगर नहीं—उसकी यह दुर्दशा मुझसे क्षणभर भी न देखी गयी । टैक्सी को रोका । उसके बेहोश मांस के लोथड़े को दोनों हाथों से समेटकर टैक्सी के अन्दर रखा । वह अध-खुली आँखों से मेरी ओर निहारकर बीच-बीच में फुसफुसा भर उठता—"चुप रह, एक लात मारूँगा ।' और लकवा मारी सी अपनी बाँई टाँग जरा ऊँची भर कर देता ।

वह मुझे साबित पहचान भी न पा रहा था ।

टैक्सी जाकर उसके घर के सामने रुकवायी ।

आवाज देने पर चिन्ताग्रस्त मुद्रा में नाना काका निकले । वे उसकी प्रतीक्षा में ही थे । मैंने उसे समेटकर एक बोरे की तरह पीठ पर लादकर घर के भीतर ले गया । वे उसे देखते ही बोले—'रंगनाथ, तूने यह क्या हालत बना ली है ?'

"चुप रह, एक लात मारूँगा ।" कहता रंगनाथ दीवाल का सहारा लेता हुआ खड़े होने का प्रयत्न करने लगा ।

उसके इस शब्द के भय से अथवा किसी को स्थिति का कुछ पता न चले—इस खयाल से नाना काका उठकर चुप-चाप गैलरी में चले गये । और नीचे रंगनाथ शराब के नशे में धुत्त 'चुप रह एक लात मारूँगा ।' कहता रात भर चिल्लाता रहा होगा ! और गैलरी में खड़े-खड़े नाना काका चिन्ताग्रस्त मुद्रा में मुँह से हाथ के नाखूनों को काटते हुए एक खरगोश के छौने की सुरक्षा की दृष्टि से उसे भी प्यार-भरी नजरों से एकटक देखते चहल कदमी करते रहें होंगे रात भर !

जीवन की गति

श्रीमती कविताश्री

गति जीवन है, दूर चला चल ।

तोड़ बन्ध - व्यामोह - परिधियाँ
ले सम्बल उत्साह - धैर्य का
राह अजानी चिर पहचानी
शतदल होगा शूल डगर का
उतरेगा स्वर्णिम प्रभात, पर
मौन निशा की कारा ही पल

गति जीवन है, दूर चला चल !

नवीन प्रकाशन

विचार नवनीत—लेखक, श्री मा० स० गोलवलकर। प्रकाशक, भानुप्रताप शुक्ल, भारतीय संस्कृति पुनरुत्थान समिति, उत्तर प्रदेश। प्राप्तिस्थान, राष्ट्रधर्म प्रकाशन, डा० रघुवीर नगर, लखनऊ-४। पृष्ठ-संख्या २४+४३२ मूल्य, चार रुपये।

श्री मा० स० गोलवलकरजी (गुरुजी) की पुस्तक से जैसी आशा करनी चाहिए, यह पुस्तक वैसी ही है। जो जटिल समस्याएँ आज देश को त्रस्त किये हुए हैं और उसके मानस को आन्दोलित कर रही हैं, उन पर इस पुस्तक में मुक्त भाव से विचार किया गया है। लेखक ने अपने विचार तर्क-संगत रूप में व्यक्त किये हैं और वे सामान्य पूर्वाग्रह से मुक्त पाठक को बहुत दूर तक अपने साथ ले जाने में समर्थ हैं। आज अनेक दल और नेता कितनी ही अप्रिय समस्याओं को ठीक ढंग से सामने नहीं आने देते। वे उनपर पीड़ा-हरण का लेप लगाकर व्यथा को छिपाने का प्रयत्न करते हैं जिससे वह व्यथा मूल से नष्ट नहीं की जा सकती। किन्तु लेखक आलोच्य समस्या या नीति के आधारभूत कारणों में पैठकर उसका निदान और चिकित्सा करने में विश्वास करते हैं। यह पुस्तक स्पष्टरूप से हिन्दू दृष्टिकोण से लिखी गयी है और इसका एक उद्देश्य जनता में हिन्दुत्व की भावना को जाग्रत करना है। इस देश के बहुसंख्यक हिन्दुओं का दृष्टिकोण ठीक ढंग से जनता के सामने नहीं आ पाता, क्योंकि अधिकांश राजनीतिक दल, नेता और समाचारपत्र 'धर्म निरपेक्ष' होने का दावा करते हैं। इस देश में व्यावहारिक रूप में 'धर्म निरपेक्ष' का अर्थ हिन्दू विरोध हो गया है। यह पुस्तक खुले ढंग से हिन्दू दृष्टिकोण सामने रखती है। प्रत्येक भारतवासी—विशेषकर प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। आप लेखक के मत से सहमत हों या न हों, परन्तु विचारों को संयमित और संतुलित बनाने के लिए यह आवश्यक है कि दूसरे लोगों के विचारों को समझा जाय। बहुधा एक ही प्रकार के बँधे-बँधाये विचार सुनते-सुनते लोगों की तर्कबुद्धि कुंठित हो जाती है और वे प्रचार और नारेबाजी के शिकार हो जाते हैं। भिन्न विचारों को जानने के बाद हमारे जो निर्णय होंगे वे अधिक ठोस और दृढ़ होंगे।

मूल पुस्तक अंग्रेजी में है। यह उसका अनुवाद है। इसमें अनुवाद के सामान्य दोष नहीं हैं। इसकी भाषा में प्रवाह है और वह सरल और सुबोध है। यह अनुवाद इस तथ्य का प्रमाण है कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी कितनी सरल और सामान्य जन के लिए कितनी बोधगम्य लिखी जा सकती है। देश की वर्तमान ज्वलन्त और जीवन्त समस्याओं पर जो लोग हिन्दू दृष्टिकोण जानना चाहते हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

भारत १९६८—वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ। भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय के गवेषणा और सदर्भ विभाग द्वारा प्रस्तुत। प्रकाशक; प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। बड़ा आकार। पृष्ठ-संख्या ४५६; मूल्य, साढ़े तीन रुपये।

प्रायः सन् १९२० से भारत सरकार अंग्रेजी में एक वार्षिकी पुस्तक निकलती है जिसमें भारत-सम्बन्धी अद्यतन जानकारी दी जाती है। इसमें ३० अध्यायों में भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि सूचनाएँ दी गयी हैं। भारत सरकार के विभिन्न विभागों के कार्यों के अतिरिक्त राज्यों के सम्बन्ध में जानकारी दी गयी है। इसमें बहुत से आँकड़े भी दिये गये हैं। भारत सरकार इसे सावधानी से तैयार कराती है। इसलिए इसमें दी गयी बातें और आँकड़े अद्यतन और विश्वसनीय हैं। जो लोग एक ही पुस्तक में भारत सम्बन्धी जानकारी चाहते हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य अपने पास रखना चाहिए। यह पत्रकारों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सदर्भ ग्रन्थ है। इसका आकार देखते हुए मूल्य भी वाजिब है।

आर्थिक समीक्षा (१९६८-६९)—भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत। प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। मूल्य तीन रुपये।

यह द्विभाषी प्रकाशन है। भारत सरकार की नयी नीति के अनुसार उसके सरकारी प्रकाशन (रिपोर्ट आदि) सब हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में प्रकाशित हुआ करेंगे। उसी नीति के अनुसार यह प्रकाशन दोनों भाषाओं में है। पहिले हिन्दी संस्करण है, बाद में अंग्रेजी संस्करण। इसमें

अनेक उपयोगी और स्पष्ट लेखाचित्र (ग्राफ) दिये गये हैं जिनसे पाठकों को बहुत सहायता मिलती है।

वास्तव में इसमें सरकारी दृष्टि से १९६८-६९ की भारत की आर्थिक प्रगति का सर्वेक्षण है। सरकारी प्रकाशन के लिए यह अत्यन्त प्रशंसा की बात है कि १९६८-६९ का वर्ष (३१ मार्च १९६९ को समाप्त होते ही यह समीक्षा प्रकाशित कर दी गयी। इस त्वरित प्रकाशन से इसका उपयोग हो सकेगा। इसमें कृषि, रासायनिक खाद, उद्योग-धंधों के उत्पादन, उनकी समस्याओं, विदेशी व्यापार, मुद्रा, विदेशी सहायता आदि पर अधिकृत जानकारी और आँकड़े दिये गये हैं। इसलिए यह आर्थिक समस्याओं के अध्येताओं के लिए एक वार्षिक गुटका आर्थिक संदर्भ ग्रन्थ बन गया है। अधिकतर प्रयत्न केवल तथ्य देने का किया गया है। जहाँ-तहाँ सरकारी मत भी परोक्षरूप से मिल जाता है। इस सदर्भ ग्रन्थ का उपयोग अध्यापक, विद्यार्थी एवम् राजनीतिज्ञ विशेषरूप से कर सकते हैं।

साहित्य परिचय का शिक्षा-समस्या विशेषांक—इस अंक के प्रधान सम्पादक, डा० रामशकल पाण्डेय और सम्पादक, श्री विनोदकुमार अग्रवाल प्रकाशक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा। पृष्ठ-संख्या २९०; इस विशेषांक का मूल्य, ५ रुपये।

इस देश मे शिक्षा की समस्या बहुत उलझी हुई है। इसका एक कारण तो यह है कि शिक्षा को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का माध्यम समझा जाने लगा है। उसका जो मुख्य उद्देश्य था (व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास करके उसे समाज के लिए उच्च चरित्र का उपयोगी व्यक्ति बनाना। वह भुला दिया गया है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि शिक्षा एक ऐसा विषय है जिसमें सुधार और परिवर्तन करने की राय देने का अधिकार इस देश में शिक्षित-अशिक्षित, व्यापारी, किसान, आंदोलनकर्ता आदि सबको है। हमारी सरकार भी बड़ी मुश्किल से एक 'शिक्षानीति' की घोषणा वर्षों बाद कर पायी है। किन्तु उसकी समस्याएँ इतनी विशाल और जटिल हैं और उस नीति को कार्यान्वित करने के लिए इतने धन की आवश्यकता है कि उसका भविष्य बतला देना किसी ज्योतिषी के लिए भी कठिन है।

अंग्रेजी में शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर परिचर्चा होती रहती है और समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में भी लेख छपते है। भारत सरकार शिक्षा सम्बन्धी जितनी विचार गोष्ठियाँ (सेमिनार) आयोजित करती है वे सब अंग्रेजी मे होते हैं। उनमें जो निबन्ध पढ़े जाते हैं वे भी प्रायः सभी सामान्यतः अंग्रेजी में होते हैं और वे अंग्रेजी में प्रकाशित किये जाते हैं। भारत सरकार का शिक्षा-विभाग प्रायः ३३ नियमित पत्र-पत्रिकायें अंग्रेजी में निकालता है। हिन्दी में वह केवल तीन पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। शिक्षा की समस्याओं या शिक्षा के प्रयोगों और सिद्धान्तों से सम्बन्धित जो भी पत्रिकाएँ वह विभाग निकालता है वे सब अंग्रेजी में हैं। इन सब कारणों से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा की समस्याओं पर बहुत कम लिखा जाता है। इसीलिए हम साहित्य परिचय के इस विशेषांक का स्वागत करते हैं।

इस अंक में ७७ उन विद्वानों के लेख हैं जो हिन्दी में शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर लिखते या लिख सकते हैं। अधिकांश लेख शिक्षा का नीति, उसके उद्देश्य, उसकी प्रशासन स बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित है। बहुत से लेख मुख्य रूप से परिचयात्मक हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द महात्मा गाँधी और श्री अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर भी लेख सम्मिलित किये गये हैं। कोठारी के आयोग की रिपोर्ट, अनुशासनहीनता, शिक्षा में राजनीति का प्रवेश आदि ज्वलन्त समस्याओं पर भी विचारपूर्ण निबन्ध हैं। इस प्रकार इस विशेषांक का महत्त्व यह है कि इसमें पहली बार हिन्दी पाठकों के लिए शिक्षा समस्याओं और स्थिति पर उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की गयी है जिससे वे अपने देश की शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकें। इतने उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक लेखों को एक साथ हिन्दी में इस सुन्दर और सुसम्पादित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक और प्रकाशक हिन्दी संसार की कृतज्ञता के अधिकारी हैं।

हिन्दी में 'मातृभाषा' प्रायः पारिभाषिक शब्द हो गया है। एक लेख में उसे 'जन्मभाषा' कहा गया है। वह उपयोग किसी प्रकार तर्कपूर्ण भी बतलाया जा सकता है किंतु एक चलते हुए पारिभाषिक शब्द के बदले नया शब्द बहुत सोच-विचार के बाद ही उपयोग में लाना चाहिए। 'पब्लिक स्कूल' के सबंध में इस लेख के लेखक के विचारों को जानकर हमें आश्चर्य हुआ। "पर्याप्त जानकारी न होने के कारण कुछ व्यक्ति इन्हें समाप्त करने का सुझाव देते हैं। इसका एक कारण यह है कि लोग इसे विदेशी शिक्षा-प्रणाली समझते है। वास्तविकता यह है कि इसका आधार भारतीय गुरुकुल प्रणाली है। जिसे हम आदर की दृष्टि से देखते हैं।" इस पर टीका व्यर्थ है। जो लोग इन्हें बंद करने की माँग करते हैं, उनके तर्क कुछ और हैं।

राजा लक्ष्मणसिंह के कुछ संस्मरण

(१९२६ में राजा साहब की जन्मशती थी। उस अवसर पर पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने इंदौर के पं० हरप्रसाद चतुर्वेदी से राजा साहब के सम्बन्ध में कुछ बातें पूछी थीं। पं० हरप्रसादजी ग्राम चंद्रपुर तहसील बाह जिला आगरा के रहनेवाले थे। उनके सुपुत्र स्वर्गीय प्रोफेसर श्रीनिवास चतुर्वेदी होल्कर कालिज में संस्कृत के प्राध्यापक थे। उसके पहले वे मेरठ के नानक चन्द्र हाई स्कूल के प्राध्यापक भी रह चुके थे। पं० हरप्रसादजी बड़े विद्वान् और सुलझे दिमाग के सज्जन थे। उन्होंने राजा साहब के सम्बन्ध में जो पत्र लिखा वह हमें पं० बनारसीदास के सौजन्य से प्राप्त हुआ। राजा साहब को व्यक्तिगत रूप से जानने के कारण यह पत्र विशेष महत्त्व का है, इसलिए हम हिन्दी-प्रेमियों की जानकारी के लिए उसे यहाँ सहर्ष प्रकाशित करते हैं। सम्पादक, सरस्वती।

श्रीमान् बनारसीदास जी चतुर्वेदी,

बहुत बहुत पालागन। आपका कृपा पत्र (पोस्टकार्ड) ता० २५-९-२६ का लिखा मिला। उसके उत्तर में दिवेदन है कि राजा लक्ष्मणसिंह जी क्षत्रिय-कुलभूषण यदुवंशी (जादौन) ठाकुर थे। इनका जन्म सम्वत् १८८३ आश्विन शुक्ला नौमी चन्द्रवार (तारीख ८ अक्टूवर सन् १८२६ ई०) को आगरे में हुआ था। ये हिन्दी, उर्दू, फारसी, कुछ अरबी, अंग्रेजी, प्राकृत, संस्कृत और गुजराती आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

बालकपन में प्रथम उर्दू व फारसी पढ़ी थी, पश्चात् हिन्दी, संस्कृत इत्यादि। १३-१४ वर्ष की अवस्था में आगरा कालेज में अंग्रेजी पढ़ने को भर्ती हुए थे। ये हृष्ट-पुष्ट, बुद्धिमान और साहसी थे। सन् १८५० ई० में लेफ्टिनेंट गवर्नर के दफ्तर में अंग्रेजी से उर्दू-हिन्दी, व हिन्दी-उर्दू से अंग्रेजी का अनुवाद करते थे। सन् १८५३ ई० में सदर बोर्ड के मुख्य अनुवादक हुए। १८५५ ई० में इटावे के तहसीलदार हुए। एक वर्ष के भीतर बाँदा में डिप्टी कलेक्टर हुए। सन् १८५७ ई० के गदर में इनने अंग्रेजों को मदद दी। इटावे के कलेक्टर ह्यूम साहिब को बालबच्चों समेत बचाकर आगरे के किले में लाये। सन् १८७७ ई० में दिल्ली दर्बार के समय 'राजा' की उपाधि मिली। सन् १८८८ ई० में पेंशन लेकर आगरे में रहने लगे। तीर्थ-यात्रादिक पर्यटन भी किये। सन् १८९६ ई० में स्वर्गवासी हुए।

सरकारी कामकाज में लगे रहते थे। हिन्दी भाषा के विशेष प्रेमी थे। अवकाश मिलने पर संस्कृत व अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करते थे। शकुन्तला नाटक, रघुवंश, मेघदूत आदि का हिन्दी में अनुवाद किया और छपाया भी।

हमारा उनका परिचय सन् १८७६ ई० में पंडित कुंज विहारी लालजी चौबे, डिप्टी इन्स्पेक्टर मदारिस (जिला-वीजीटर) आगरा ने कराया था। उक्त चौबे जी महाराज के घर पर बेलनगंज, आगरे में राजा साहिब बहुधा आया-जाया

करते थे। हम वहाँ आये-गये बने रहते थे। पंडितजी का संस्कृत और हिन्दी अभ्यास बहुत बढ़ा-चढ़ा था। अंग्रेजी भी जानते थे। अच्छे विद्वान् थे। उनने भी गोलनिरूपण, सुलभ बीजगणित आदि कई ग्रन्थ बनाये थे (संस्कृत से हिन्दी में उल्था किये थे)। राजा साहिब और डिप्टी इन्स्पेक्टर साहिब का परस्पर प्रेम था। हमने रघुवंश संस्कृत का हिन्दी अनुवाद उनकी आज्ञानुसार लिखा था। इस साल हम हिन्दी मिडल फर्स्ट क्लास में ब्राह् से पास हुए थे। स्कालरशिप (वजीफा) भी मिला था। सन् १८७८ ई० में हम आगरा नार्मल स्कूल में पढ़ते थे। जब भी हमने उनके अनुवाद इत्यादि लिखे थे, हम आला दर्जा में अच्छे नम्बर पर पास हुए थे। पंडित कुंज विहारी लाल जी गणित के परीक्षक रहते थे और राजा साहिब भी भिन्न विषयों के। चतुर्वेदी जाति से राजा साहिब का बड़ा प्रेम था, इतना ही नहीं, वे चतुर्वेदियों को पूज्य बुद्धि (गुरुभाव) से देखते थे। हम पर दोनों कृपा रखते थे।

गोकुलपुरा (शाहगंज) आगरा के गुजराती नागर (सहस्र अवधीच ब्राह्मण) पंडित लल्लू लालजी (प्रेमसागर हिन्दी के प्रणेता) के वंशीय पंडित बंसीधरजी, श्री लालजी, बालमुकुन्दजी भट्टाचार्य, हरीराय जी, कृष्णदत्तजी, पं० शालिग्रामजी (कालेज बोर्डिङ्ग हाउस के सुपरिन्टेंडेन्ट) इत्यादि हिन्दी के प्रेमियों से भी राजा साहिब का स्नेह था। हिन्दी का प्रेम राजा साहिब में इनके द्वारा बढ़ा था। उपरोक्त विद्वानों ने हिन्दी की कई पुस्तकें रची थीं। हिन्दी में उस समय इन विद्वानों की अग्रगण्यता थी। हमारे पास इनकी बनाई कई पुस्तकें हैं। उस समय ये हिन्दी की उन्नति कर रहे थे। इन्हीं के घराने के पं० विश्वेश्वर दयालुजी आगरा नार्मल स्कूल के मुख्य अध्यापक थे। हिन्दी भाषा के पं० हरीराम जी थे। हम इनके शिष्य वर्ग में से हैं। पं० बालमुकुन्दजी भट्टाचार्य हिन्दी, अध्यापक, आगरा कालेज के प्रिय सुपुत्र पं० रामेश्वर भट्ट थे। गोकुलपुरा वाले इन पंडितों के घराने के वयोवृद्धों के पास राजा साहिब का वृत्तान्त होगा। ठाकुर साहिब उमराव सिंह जी के सुपुत्र ध्यानपालसिंह जी, कुशलपालसिंह जी तथा अवाग के घराने में भी होना सम्भव है। राजा साहिब जो कविता करते थे वह किसी और से साफ लिखा लेते थे। हमने तथा दूसरों ने भी उनके कहने से उनकी पुस्तकें लिखी थीं कहीं कहीं कविता वगैरा: सुधारानी भी पढ़ती थी। रघुवंश में दक्षिण दिशा के वर्णन की यह कविता हमारी है....

दच्छिण दिशि के उरज इव दर्दुर मलय पहार,
भुवतिस्व इव सहच गिरी मानों नृपति विहार।

यह कविता सन् १८७८ ई० के नार्मल स्कूल अदना दर्जा परीक्षा में आ भी गयी थी। हमारे पास राजा साहिब की कई कविताएँ हैं। रात को कविताएँ बनाते थे, उसी समय उठ कर वे अपनी किताब में लिख भी लेते। स्मरणशक्ति भी उनकी अच्छी थी। हम सन् १८८८ ई० में तथा पीछे भी, जब जब अपने घर चन्द्रपुर (जिला आगरा) गये तब तब उनकी वर्तमान स्थिति में उनसे मिलते रहे थे। स्वभाव सीधा-सादा; मिलनसार, प्रसन्न चित्त था। उदार थे, दया उनके हृदय में थी। क्षत्रियों का जो धर्म ब्राह्मणों के प्रति शास्त्रों में लिखा है, उस पर उनका लक्ष्य था। हमारी जाति के मिश्र वंशीधर जी, छोटेलाल जी तथा सुन्दरलालजी आदि नये शहर इटावे वालों से भी उनका बड़ा स्नेह था।

राजा साहिब पृथ्वीराज रासो आदि वीर रस की तथा प्राचीन कविताओं के उत्सुक थे। स्वभाव उनका दबंग था। किसी से डरते नहीं थे। हमने यह बहुत जल्दी में लिखा है। आगे पीछे भी होगा। सुधार लीजिये, ऐसे ही शब्द योजना का भी——

भवदीय
पं० हरिप्रसाद चौबे

हज़रत मुहम्मद और क़ुरान शरीफ़

श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा

मुहम्मद साहब का जन्म नौशेरवाँ बादशाह के समय में हुआ था। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला था। मुहम्मद साहब के पिता उन्हें बाल्यावस्था ही में छोड़ परलोक सिधारे। उनके मरने पर अब्दुल्ला के पिता (मुहम्मद साहब के पितामह) ने मुहम्मद साहब के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लिया। कुछ दिनों के बाद उनका भी देहान्त होगया। मरते समय उन्होंने मुहम्मद साहब और उनकी माता को अपने बड़े पुत्र अबूतालिब को सौंप दिया।

अबूतालिब ने मुहम्मद साहब का लालन-पालन बहुत अच्छी तरह किया और उन्हें सौदागरी की शिक्षा दी। कुछ दिन पीछे उनका विवाह एक विधवा स्त्री के साथ कर दिया गया।

कुछ समय बीत जाने पर मुहम्मद साहब पर एक नया धर्म चलाने की धुन सवार हुई। उन्होंने 'बुतपरस्ती' हटा कर 'खुदापरस्ती' का प्रचार करना चाहा। उनका यह विचार उस एकान्तवास से और भी दृढ़ हो गया जो उन्हें किसी कारण से हारा पर्वत की गुफा में करना पड़ा।

एक दिन उन्होने अपनी स्त्री से कहा कि अभी हज़रत जिबराईल (फरिश्ता) मेरे पास तशरीफ लाये थे। उन्होने मुझसे कहा कि मैं खुदा का पैगम्बर मुकर्रर किया गया हूँ। यह संवाद सुनकर उनकी स्त्री बहुत प्रसन्न हुई।

मुहम्मद साहब ने उस समय अपना यह विचार सर्वसाधारण पर प्रकट करना उचित न समझा। इसलिए उन्होने पहले केवल तीन आदमियों पर अपना यह विचार प्रगट करके उन्हें अपना अनुयायी बनाया। उन तीन में एक तो स्वयं उनकी स्त्री, दूसरा उनका गुलाम और तीसरा अबूतालिब का पुत्र अर्थात् उनका चचेरा भाई था। कुछ दिनों बाद कुरैश घराने के (यह खानदान अरब मे बहुत प्रतिष्ठित और बलवान समझा जाता था) एक योग्य पुरुष ने मुहम्मद साहब का मत ग्रहण किया। इसके उपरांत धीरे-धीरे और भी कई प्रतिष्ठित मनुष्य मुसलमान हुए।

तीन वर्ष बीत जाने पर मुहम्मद साहब ने खुल्लमखुल्ला अपने मत का प्रचार करना आरम्भ किया। उन्होने एक सभा की और अबूतालिब के कुल घराने को एकत्र करके उनसे मुसलमान हो जाने के लिए कहा और यह भी कहा कि यदि वे मुसलमान हो जायँगे तो उन्हें सुख तथा यश प्राप्त होगा। परन्तु मुहम्मद साहब इससे हताश नहीं हुए। जब-जब उन्हें अवसर मिला तब-तब वे अपने विचार बड़े जोर-शोर से प्रगट करते रहे और लोगों को मुसलमान होने के लिए उकसाते रहे।

यह हाल देखकर कुरैशी लोग बहुत बिगड़े। उन्होंने अबूतालिब को बुलाकर कहा कि यदि तुम अपने भतीजे को इस कार्य से न रोकोगे तो उसकी जान पर आ बनेगी। आबूतालिब ने मुहम्मद साहब को बहुत समझाया पर उन्होने एक न मानी। जब आबूतालिब ने उन्हें अपने विचारों पर इतना अटल पाया तब वे भी उनके सहायक हो गये।

अब कुरैशियों ने कोई दूसरा उपाय न देख मुहम्मद साहब और उनके अनुयायियों को तङ्ग करना शुरू किया और यहाँ तक सताया कि उन्हें मक्का छोड़कर इथीयोपिया को भाग जाना पड़ा। इथीयोपिया के राजा ने उन्हें बड़े आदर से लिया। कुरैशियों ने कई बार मुहम्मद साहब और उनके साथियों को उससे माँगा। परंतु उसने न दिया और हर तरह से उनकी रक्षा की। कुछ दिन पीछे मुहम्मद साहब ने अपने चचा हमजा और उमर को मुसलमान किया, इससे उनका दल बहुत बलवान हो गया। क्योंकि ये दोनों पुरुष बड़े वीर और प्रतिष्ठित थे।

जैसे-जैसे मुहम्मद साहब का दल बढ़ता जाता था वैसे ही वैसे कुरैशियों का क्रोध भी भड़कता जाता था। अतएव उन्होने सलाह करके मुहम्मद साहब और उनके साथियों को जाति से बाहर कर दिया।

दसवें वर्ष अबूतालिब और मुहम्मद साहब की स्त्री का देहांत हो गया। अबूतालिब के मरते ही कुरैशियों ने मुहम्मद साहब को और ज्यादा तंग करना शुरू कर दिया। अन्त को मोहम्मद साहब यहाँ से भागे और तायत में (मक्का से ६० मील दूर पूरब की ओर) जा कर छिपे। परन्तु वहाँ पर वे एक मास से अधिक न ठहर सके। क्योंकि यहाँ के निवासियो ने उन्हे रखना उचित न समझा। अब मुहम्मद साहब फिर मक्का लौटे और मुंताम इब्न आदि की शरण ली।

इस घटना ने मुहम्मद साहब के अनुयायियों को हताश

कर दिया। परंतु मुहम्मद साहब हताश नहीं हुए। उन्होंने प्रचार का कार्य जारी रक्खा और बहुतों को अपने मत का अनुयायी बना दिया।

अब तक तो मुहम्मद साहब केवल कहने सुनने से काम लेते थे और मुसलमान करने में किसी पर किसी प्रकार का अत्याचार न करते थे। यहाँ तक कि यदि कोई उनका अपमान भी करता था तो उसे वे सहर्ष सहन कर लेते थे। परन्तु अब वे एक बड़े और बलवान दल के सरदार बन गये और लड़ाई का सामान भी जमा कर लिया। इससे उन्होंने तलवार से काम लेना शुरू किया। ऐसा करने के पूर्व उन्होंने यह मशहूर किया कि अत्याचार करने के लिये उन्होंने खुदा से आज्ञा प्राप्त कर ली है।

वास्तव में यदि मुहम्मद साहब तलवार से काम न लेते तो उन्हें अपने मत का प्रचार करना केवल कठिन ही नहीं असंभव हो जाता। मूंला, साइरिस और रोमलस आदि ने यदि शस्त्रों के काम न लिया होता तो वे अपना मत कभी न फैला सकते।

मुहम्मद साहब ने युद्ध का प्रबन्ध करके अपना एक दल मदीने, कुरैशियों का मुकाबिला करने के लिये, भेजा। इसकी खबर पाकर कुरैशियों ने मुहम्मद साहब को मार डालने के लिए एक षड्यन्त्र रचा। परन्तु भाग्यवश या मुसलमान लेखकों के अनुसार "मोजेज़" की मदद से वे बच गये और अपने दो गुलामों सहित "सूर" पर्वत की गुफा में जा छिपे। यहाँ वे तीन दिन तक छिपे रहे। मुसलमान लेखक कहते हैं कि कुरैशियों ने सूर पर्वत पर भी उनकी खोज की परन्तु "बहुक्म अल्लाह" वे लोग अन्धे हो गये। और उनको यह गुफा न दिखाई पड़ी। कुछ लोग कहते हैं कि मुहम्मद साहब के गुफा में घुसने के पीछे फौरन ही एक मकड़ी ने उनके मुँह पर जाला लगा दिया और दो कबूतरों के उस पर अंडे रख दिये। इससे कुरैशी धोखा खा गये। उन्होंने उस गुफा को न ढूँढ़ा। तीन दिन बाद मुहम्मद साहब गुफा के बाहर निकले और छिपते-छिपाते मदीना पहुँचे।

मदीना में स्थिर होकर उन्होंने चारों ओर छोटे-छोटे दल भेजना और कुरैशियों को पराजित करके मुसलमान करना आरंभ किया। कई स्थानों पर युद्ध हुआ। इसमें सबसे अधिक विख्यात "बद्र" का युद्ध है। इस युद्ध में मुहम्मद साहब की जीत हुई और इसी ने उनके मत की जड़ अरब में मजबूत कर दी।

थोड़े ही वर्षों में उनका दल बहुत प्रबल हो उठा। अन्त में छः हिजरी को १४०० योद्धा लेकर उन्होंने मक्के की ओर कूच किया। युद्ध की नीयत से नहीं, किन्तु सुलह की नीयत से। जब वे मक्के के समीप पहुँचे तब कुरैशियों ने कहला भेजा कि बिना युद्ध किये हम मुहम्मद को मक्के में न घुसने देंगे।

मुहम्मद साहब आक्रमण करने ही को थे कि मक्का-निवासियों ने आरा इब्न मसूद को अपना दूत बनाकर उनके पास भेजा और सुलह चाही। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। दस वर्ष के लिये शान्ति स्थापित हो गई। अब सबको यह अधिकार प्राप्त हो गया कि चाहे मुहम्मद का पक्ष लो चाहे कुरैशियों का।

आरो मुहम्मद साहब की शान देखकर चकित हो गया। वह कई राज दरबारों में रह चुका था। परन्तु उसने किसी बादशाह की ऐसी मान-मर्यादा न देखी थी जैसी कि मुहम्मद की थी। मुहम्मद साहब के अनुयायी जैसा उन्हें मानते थे ऐसा किसी भी देश की प्रजा अपने राजा को न मानती थी। जब मुहम्मद साहब स्नान कर चुकते थे तब उनके साथी उनके नहाये पानी को बड़ी भक्ति से पीते थे। यदि उनका कोई बाल पृथ्वी पर गिर पड़ता था तो उसे वे उठा लेते थे और बड़ी खबरदारी और भक्ति से उसे अपने पास रखते थे।

दो ही वर्ष बाद मक्का-निवासियों ने सुलह तोड़ दी और बहुत से मुसलमानों को मार डाला। यह देखकर मुहम्मद साहब ने दस सहस्र आदमियों को लेकर मक्के पर धावा कर दिया। मक्का-निवासियों की हालत अच्छी न थी। अतएव वे अपने को न बचा सके और विवश होकर मुसलमान हो गये। कुरैशियों ने भी मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उनके जीवन ही में कुल अरब में इसलाम धर्म फैल गया। इसके बाद मुहम्मद साहब ने अपना शेष जीवन मूर्ति, मन्दिर तोड़ने और सीरिया, मिस्र, यूनान आदि देशों में अपने मत का प्रचार करने में व्यतीत किया।

यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो चुकी है कि कुरान के रचयिता स्वयं मुहम्मद साहब थे। सम्भव है कि उसकी रचना करने में उन्होने दूसरों से भी कुछ सहायता ली हो। परन्तु मुसलमानों का यह अटल विश्वास है कि कुरान आसमान से उतरी है। कहते हैं कि वह जिबराईल नामक फरिश्ते के द्वारा मुहम्मद साहब के पास समय-समय पर भेजी गई।

जिस समय मुहम्मद साहब का देहान्त हुआ उस समय कुरान के हिस्से तितर-बितर थे। कोई हिस्सा चमड़े के टुकड़ों में लिखा हुआ था और कोई पत्रों पर; कोई-कोई भाग लिखा भी न गया था, लोगों को केवल ज़बानी याद था। मुहम्मद के मरने के बाद अबूबकर ने उनको एकत्र करके पुस्तक का आकार दिया।

कुरान का मुख्य आशय ख़ुदा की एकता है। एक ख़ुदा के सिवा और कोई ख़ुदा नहीं और मुहम्मद साहब उसके पैग़म्बर हैं। मुसलमानों के क़लमें का ठीक यही अर्थ है।

इसलाम धर्म के मुख्य दो भाग हैं—(१) ईमान (Theory) और दीन (Practice)। ईमान छः प्रकार का है। अर्थात् (१) ख़ुदा में (२) उसके पैग़म्बरों में, (३) उसके फरिश्तों में (४) उसकी पुस्तक कुरान में, (५) उसके अधिकार में और (६) न्याय के दिन में विश्वास करना।

दीन के चार अंग हैं (१) नमाज़ (२) रोज़ा (३) जकात (४) हज। जो इन सब बातों में विश्वास करे वही सच्चा मुसलमान कहा जा सकता है।

फरिश्ते यों तो बहुत है, परन्तु मुख्य चार हैं—(१) ज़िबरईल जिसका काम ख़ुदा की आज्ञा पैग़म्बरों के पास पहुँचाना है। (२) मिकाईल (३) इज्राईल जो मनुष्यों के प्राण हरण करते हैं (४) इस्राफील जो क़यामत के दिन सूर (एक प्रकार का शंख) फूकेंगे। शैतान भी पहले ख़ुदा का प्रिय फ़रिश्ता था। परन्तु ख़ुदा की आज्ञा भंग करने के कारण पतित कर दिया गया। फरिश्तों का उसूल यहूदियों से लिया गया है और यहूदियों ने इसे ईरानियों से लिया था।

दूसरा ध्यान देने योग्य विषय क़यामत का दिन है लिखा है कि क़यामत आने से पूर्व निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ेंगे—

(१) सूर्य पश्चिम में उदय होगा।

(२) मक्का में पृथ्वी से एक जानवर निकलेगा, जिसका रूप बड़ा ही भयानक होगा।

(३) दजला नामक नदी से दज्जाल निकलेगा, वह इसलाम को नाश करने की चेष्टा करेगा।

(४) हजरत ईसा आसमान से उतरेंगे।

(५) विकट धूल उठेगा जो पृथ्वी को घेर लेगा।

(६) अरब-निवासी फिर मूर्ति-पूजक हो जायँगे।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत से अनिष्टकारक लक्षण दिखाई देंगे। इसके बाद इस्राफ़ील अपना 'सूर' तीन बार फूँकेंगे। पहली बार फूंकने से कुल पृथ्वी थर्रा जायगी। पर्वत पानी की तरह गल जायँगे। समुद्र सूख जायँगे। सूर-चन्द्रमा काले पड़ जायँगे और तारे टूट-टूट कर गिर पड़ेंगे। तारे टूटने का कारण यह होगा कि फरिश्ते मर जायँगे। क्योंकि फरिश्ते ही उन्हें सँभाले हुए हैं।

सूर के दूसरी बार फूँके जाने पर आकाश और पृथ्वी के कुल जीव मर जायँगे।

इसके बाद ख़ुदा के तख्त के नीचे से पानी निकलेगा, जो मनुष्य के शुक्र के सदृश होगा। यह पानी चालीस वर्ष तक पृथ्वी पर बरसेगा। इस पानी के प्रभाव से मृत मनुष्यों की देह पृथ्वी से इस तरह निकलेगी जैसे वृक्ष उगता है। उनके निकलने पर उनमें प्राण डाले जायँगे। इसके बाद कबरों में पहुँचाये जायँगे। इसी समय जिबराईल और इस्राफिल फिर जीवित हो जायँगे। अब इस्राफिल तीसरी बार अपना सूर फूँकेगा। जिसके सुनते ही तमाम मनुष्य ख़ुदा के सामने आकर उपस्थित हो जायँगे और न्याय प्रारम्भ होगा।

न्याय का दिन पचास हज़ार वर्ष का होगा। उस दिन सब लोग ख़ुदा के सामने खड़े होंगे। सबके हाथों में एक पुस्तक होगी जिसमें उनके पाप-पुण्य लिखे होंगे।

मनुष्य की रूह (आत्मा) और जिस्म (शरीर) अलग-अलग अपने को निर्दोष प्रमाणित करना चाहेंगे। रूह कहेगी "ऐ ख़ुदा, जो कुछ किया इस शरीर ने किया। मैं निर्दोष हूँ। क्योंकि न मेरे हाथ थे, न पैर, न आँखें जिनसे मैं पाप करती अतएव सारा दोष इसी शरीर का है। इसी को दण्ड मिलना चाहिए।" शरीर कहेगा—'ऐ ख़ुदा, मैं निष्प्राण था। इसलिए मैं कुछ नहीं कर सकता था जो कुछ किया इस रूह ने किया। मैं बेक़सूर हूँ।

परन्तु ख़ुदा एक न मानेगा और निम्नलिखित कहानी के द्वारा दोनों को दोषी ठहरायेगा। "एक अन्धे और एक लँगड़े ने किसी बादशाह के बाग में फल चुराकर खाने का विचार किया। परन्तु एक को दिखाई न पड़ता था और दूसरा चल न सकता था। काम बने तो कैसे बने। सोचते-सोचते दोनों ने एक युक्ति निकाली। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर सवार होकर अन्धे को रास्ता बताता हुआ बाग में गया और फल तोड़े। दोनों ने मिलकर अपराध किया इसलिए दोनों दोषी हुए। इस प्रकार न्याय हो चुकने पर पापी तथा पुण्यात्मा 'सरात' पुल पर से उतारे जायँगे। यह पुल बाण से

भी ज्यादा महीन और तलवार से भी ज्यादा तेज होगा। सबके आगे-आगे मुहम्मद साहब चलेंगे। जो पुण्यात्मा होंगे वे उस पुल को पार कर जायँगे और जो पापी होंगे वे नरक कुण्ड में (जो उसी पुल के नीचे होगा) गिर पड़ेंगे। पुण्यात्मा विहिश्त में भेजे जायँगे। विहिश्त सातवें आसमान पर खुदा के तख्त के नीचे है। उसका फर्श मुश्क का है। कंकड़, पत्थर के स्थान पर हीरे-मोती आदि हैं। दीवारें सोने-चाँदी की हैं। वृक्ष सोने चाँदी के हैं। सबसे बड़ा वृक्ष तूबा है जो मुहम्मद साहब के महल में लगा हुआ है। वृक्षों में ऐसे बड़े और मीठे फल लगे हुए हैं जैसे मनुष्यों ने कभी देखा न हों। तूबा वृक्ष इतना बड़ा है कि यदि तेज से तेज घोड़े पर सवार होकर सौ वर्ष तक दौड़े तो भी उसकी छाया के बाहर न जा सके।

विहिश्त में पानी, दूध, शहद की नहरें तो हैं ही परंतु शराब की नहरें भी हैं। ये सब नहरें तूबा वृक्ष की जड़ से निकली हैं। विहिश्त वालों को खूब शराब पीने को मिलेगी और सेवा के लिए (हूरें) मिलेंगी। इन हूरों को अपनी ऐसी मिट्टी की मूर्ति न समझ बैठियेगा। ये पवित्र मुश्क (कस्तूरी) की बनी होंगी। मुहम्मद साहब ने कस्तूरी से ज्यादा अच्छी और खुशबूदार कोई दूसरी वस्तु नहीं समझी। नहीं तो कदाचित हूरें उसी की बनी होती।

हूरों के सिवा "युवक" (गिलमान) भी मिलेंगे। लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य को सत्तर हज़ार गिलमान और बहत्तर हूरें मिलेगीं। वे स्त्रियाँ भी मिलेंगी जिनसे वह पृथ्वी पर निकाह कर चुका होगा। विहिश्त में जो जो सुख पुरुषों को मिलेंगे वही स्त्रियों को भी। परन्तु यह बात साफ-साफ नहीं लिखी गई कि जैसे पुरुषों की सेवा के लिए स्त्रियाँ मिलेंगी वैसे ही स्त्रियों को पुरुष भी मिलेंगे या नहीं।

मुहम्मद साहब के पूर्व कई शताब्दियों से मक्का का मन्दिर पूजा के काम में लाया जाता था। पहले वह बुतखाना था। मुसलमान कहते हैं कि मक्का का मन्दिर उतना ही प्राचीन है जितनी की पृथ्वी। कहा जाता है कि जब हजरत आदम विहिश्त से निकाले गये तब उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि विहिश्त के मन्दिर वैत-उल-मामूर की नकल पृथ्वी पर भी उतारी जाय। ईश्वर ने उसकी बात मानकर रोश्ना के परदे पर बनी हुई नक़ल पृथ्वी पर उतारी।

हजरत आदम के मरने पर उनके पुत्र ने उसकी नकल पर मिट्टी, चूने आदि का मन्दिर बनवाया। इसके बाद वह कई बार गिरा दिया गया। परन्तु 'बहुक्म खुदा' इब्राहीम तथा इसमाइल आदि ने उसे फिर बनवाया।

यहाँ पर उस काले पत्थर का कुछ हाल लिख देना आवश्यक मालूम होता है जो काबा के पूर्व-दक्षिण कोने की ओर लगा हुआ है। कहते हैं कि यह पत्थर विहिश्त के पत्थरों में से है और पृथ्वी पर 'खुदा' के दाहिने हाथ के तुल्य है। हाजी (हज करने वाले) इसे बड़ी भक्ति से चूमते हैं। लोग कहते हैं कि यह पत्थर पहले श्वेत रंग का था। परन्तु पापी मनुष्यों के स्पर्श से काला हो गया।

कुरान में बहुत सी बातें यहूदियों के मत के आधार पर लिखी गई हैं। तलाक का वसूल मुहम्मद साहब ने यहूदियों ही से ले लिया था। परन्तु उसमें थोड़ा-सा भेद अवश्य कर दिया था।

यहूदियों में यदि किसी स्त्री को तलाक़ दे दी जाय तो फिर वह उसे अपने यहाँ नहीं रख सकता। परन्तु मुसलमानों में दो बार तलाक दे देने पर भी पुरुष स्त्री को रख सकता है। हाँ, यदि वह तीसरी बार तलाक़ दे दे तो कदापि नहीं रख सकता। जिस स्त्री को तलाक दी जाय वह चार महीने दस दिन ठहर कर दूसरा पति कर सकती है। यहूदियों में केवल तीन महीने ठहरने की आज्ञा है।

यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री पर दोषारोपण करे, परंतु उस दोष को प्रमाणित न कर सके, तो वह चार बार कसम खाय कि जो कुछ वह कहता है सच है। इससे स्त्री दोषी मान ली जायगी। हाँ, यदि स्त्री भी अपने निर्दोष होने की उसी प्रकार क़सम खाय तो फिर वह भी दोषी न समझी जायगी।

मुहम्मद साहब ने अपने लिए तीन विशेष अधिकार रक्खे थे और लोगों में यह मशहूर किया था कि "खुदा" ने स्वयं ये अधिकार उनको दिये हैं। वे अधिकार ये हैं:—

(१) मुहम्मद साहब चाहे जितनी विवाहिता या अविवाहिता स्त्री रक्खें। उनके लिए कोई संख्या नियत न थी।

(२) वे चाहे जितनी स्त्रियों को, एक ही समय, अपने महलों में आने दें।

(३) उनकी तलाक़ दी हुई स्त्रियों से कोई विवाह न कर सके।

यहाँ पर यह बात लिख देना आवश्यक मालूम होता है कि कुरान के अनुसार कोई और पुरुष चार से अधिक स्त्रियाँ नहीं ब्याह सकता।

इन बातों में यदि किसी को सन्देह हो तो सेल साहब के किये हुए क़ुरान के अंग्रेजी अनुवाद को देखें, और कुछ न करें तो उसकी भूमिका ही पढ़ लें।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७० जनवरी से जून १९६९ खण्ड १

विषय		लेखक		पृष्ठ

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारा गांधी साहित्य

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वांग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएं तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल २०) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक: स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५० मू० ५) रुपये।

जगदालोक

लेखक: ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० २४१, मू० ६) रुपये।

युगाधार

लेखक: श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं। सजिल्द, सचित्र और १२६ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ४·२५ पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक: श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएं लिखी हैं, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० १·४० पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक: श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0.65 Paise June 1969 SARASWATI—Reg. No L. 248

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

अद्भुत अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

पद्मासीतश—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएं—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ३·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार रॉबिसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले मातापिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

मई १९६६

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर २१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०६ कवियों की कविताएं, ६० कहानी-लेखकों की कहानियां तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१६ रु०—डाक व्यय—२·१० पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—३० रु०—डाक व्यय—२·७० पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—१२ रु०, डाक व्यय के लिए २·१० पैसे अतिरिक्त]

माननीय श्री श्रीमन्नारायण (भारतीय राजदूत, नेपाल)

"यह अंक सचमुच बहुत उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। सरस्वती के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अपूर्व सेवा हुई है उसकी झलक इस अंक द्वारा मिलती है।"

पद्मभूषण श्री सुमित्रानन्दन पंत

निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूं। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम बकदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्यसेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७९, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

दो अनमोल काव्य-संग्रह

चित्रा

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ८६, मूल्य २·७५

यह कवि की विचित्र कवितायें हैं। कहीं ग्राम-वधू और ग्राम-कन्या का चित्रण है तो कहीं लहरों और हिमाद्रि का परिचय, कहीं प्रेमी-जीवन की झलक है। कविता पढ़ते-पढ़ते जैसे पाठक सचमुच ग्रामवासी बन ग्राम-वधू को महुआ बिनते देख रहा है। चित्रा के समस्त चित्र सुन्दर और कलात्मक हैं। इसके गीत बड़े ही भावपूर्ण हैं।

कविता की बानगी देखें—

सुन सकोगे तुम समय दे, सुन सकोगे तुम हृदय दे।
और अपने भाव भी क्या शब्द भी बन जायँगे प्रिय ?
चाहता मैं कुछ न गाऊँ गीत बन जाता अचानक,
और तुम हो मौन क्या कुछ स्वर नहीं उठते तुम्हारे ?
अरुण चरणों की मधुर सुधि है हमें पागल बनाती
किन्तु तुम तो घूमते हो दूर यमुना के किनारे !

वासन्ती

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ११७, मूल्य ३·००

इस संग्रह में कवि की कितनी ही बढ़िया कविताएँ हैं। किसी में वसन्त है, किसी में मन को सदुपदेश हैं, किसी में प्रेम की सरसता है और किसी में कोयल की कुहू ध्वनि का सुन्दर वर्णन है। कविता-प्रेमियों को यह संग्रह बहुत पसंद आयेगा।

कविता का नमूना देखें—

लो समेट यह अपनी करुणा !
मरुथल ही मैं भला यहाँ हूँ बने न दृग ये गलगल वरुणा।
हूँ विदग्ध, हैं दग्ध अधर पुट, बँधता नहीं अभी कर-संपुट।
दो मधु का मतदान जले को, अपनी प्रीति करो मत अरुणा।
ले लो अपना सुरा पात्र ये, दो न मुझे तुम बूँद मात्र ये;
प्यास बुझ चुकी है प्राणों की, फिर न जगाओ तृष्णा करुणा !

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

भारत के तृतीय राष्ट्रपति श्री जाकिरहुसेन जिनका ३ मई को स्वर्गवास हो गया।

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७० पूर्ण संख्या ८३३ | इलाहाबाद : मई १९६९ : ज्येष्ठ २०२६ वि० | खण्ड १ संख्या ५

सम्पादकीय

एक और स्वप्न भंग—रूस की भारत सम्बन्धी नीति में परिवर्तन—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब भारत ने अपनी स्वतन्त्र विदेश-नीति का निर्माण किया तो दो देशों से विशेष आत्मीयता उत्पन्न करने की चेष्टा की। 'चीनी-हिन्दी भाई-भाई' और 'रूसी-हिन्दी भाई-भाई' के बहुप्रचारित नारों से यह नीति स्पष्ट हो गयी थी। "चीनी-हिन्दी भाई-भाई" का बुलबुला हिमालय की आकाशचुम्बी ऊँचाइयों पर वर्षों पहले फूट गया। भारत का रूस सम्बन्धी स्वप्न भी भंग हो रहा है। गत मास लोकसभा में जनसंघ के श्री कुँवरलाल गुप्त ने इस बात की चर्चा आरम्भ की कि रूस पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्रों की भारी सहायता दे रहा है। उन्होंने सरकार से जानना चाहा कि ताशकन्द समझौते के बाद रूस और भारत के सम्बन्धों में क्या परिवर्तन हुआ है। इस पर सुरक्षा-मन्त्री श्री स्वर्णसिंह ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया।

सुरक्षा-मन्त्री ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि ताशकन्द के बाद से रूस की नीति में परिवर्तन हो गया है। उस समय तक रूस पाकिस्तान को लड़ाई का सामान नहीं देता था, किन्तु अब वह भारी मात्रा में घातक हथियार उसे देने लगा है। उन्होंने यह भी बतलाया कि भारत सरकार रूस की सरकार को यह बात समझाने में विफल रही कि उसके पाकिस्तान को इस प्रकार सैनिक सामान के देने से स्थिति खतरनाक हो जायगी। इससे पाकिस्तान की हठ-धर्मी बढ़ेगी और भारत-पाक सम्बन्ध सुधर न सकेंगे। यह पूछने पर कि क्या सुरक्षा-परिषद् में कश्मीर का मामला आने पर रूस आगे भी भारत के पक्ष में अपने निषेधाधिकार

(वीटो) का प्रयोग करेगा, सुरक्षा-मन्त्री ने कहा कि भारत को अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उनके गोलमोल उत्तर से मालूम होता था कि उन्हें अब यह विश्वास नहीं है कि रूस कश्मीर के मामले में भारत का वैसा ही समर्थन करता रहेगा जैसा कि वह अब तक करता रहा है।

सरदार स्वर्णसिंह ने यह भी कहा कि रूस ने हमें आश्वासन दिया है कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसका उद्देश्य पाकिस्तान के साथ सामान्य सम्बन्धों को स्थापित करना है, किन्तु इससे भारत-रूस मैत्री पर आँच न आने दी जायेगी। श्री स्वर्णसिंह इस आश्वासन से सन्तुष्ट मालूम होते हैं, किन्तु हाल में जब रूस के सुरक्षा-मन्त्री, मार्शल ग्रेचको पाकिस्तान गये थे तब समाचार-पत्रों के अनुसार उन्होंने वहाँ कहा था कि पाकिस्तान को ये हथियार अपने शत्रु (या शत्रुओं) से लड़ने को दिये जा रहे थे। यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने "शत्रु" शब्द का प्रयोग किया था या 'शत्रुओं' का। उन्होंने किसी भी शब्द का प्रयोग किया हो, किन्तु रूसी नेता इतने भोले नहीं हैं कि वे यह न जानते हों कि पाकिस्तान किसे अपना शत्रु समझता है।

पाकिस्तान को अमरीका से अरबों रुपयों के अस्त्र-शस्त्र मिले हैं। भारत-पाक युद्ध के बाद अमरीका ने उन पर रोक लगा दी थी, किन्तु ईरान ऐसे देशों के माध्यम से वे उसे मिलते रहे हैं। चीन तो कई वर्षों से उसे प्रचुर संख्या में आधुनिक अस्त्र-शस्त्र बराबर देता जा रहा है। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारत-पाक युद्ध में टैंकों, विमानों आदि की जो उसकी क्षति हुई थी, वह तो उसने पूरी कर ही ली, साथ ही इस बीच उसने अपनी सेना दुगनी कर ली और लड़ाई के विमान भी दूने से अधिक कर लिये। दुगनी सेना को अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित करने के लिए उसे कितने हथियारों की आवश्यकता हुई होगी? वे सब उसे मिल गये। अब रूस उसे प्रचुर मात्रा में सभी तरह के आधुनिक टैंक, मिसाइल (प्रक्षेप), तोपें और लड़ाकू तथा बमवर्षक विमान दे रहा है। रूस ने पाकिस्तान को कितना और कौन-कौन-सा सैनिक सामान दिया है या देना स्वीकार किया है, यह गुप्त है। किन्तु ऐसी बातें एकदम गुप्त नहीं रखी जा सकतीं। योरोप के कुछ जिम्मेदार समाचार-पत्रों ने उनका विवरण दिया है। यदि वह आंशिक रूप से भी सही हो तो उससे मालूम होता है कि रूस ने पाकिस्तान को प्रचुर मात्रा में बहुत उन्नत और भयंकर टैंक, तोपें, मिसाइल और विमान आदि दिये हैं।

इसका भारत की सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अवश्य ही भारत सरकार और सुरक्षा-मन्त्री इस पर विचार कर रहे होंगे क्योंकि इस गम्भीर जिम्मेदारी के प्रति सतर्क रहने की उनसे अपेक्षा की जाती है। भारत की नीति यह रही है कि वह किसी राष्ट्र से सैनिक सामान की सहायता न लेगा। पाकिस्तान उसे सभी से प्रसन्नतापूर्वक लेता है। भारत की नीति का एक पहलू यह है कि जो अस्त्र-शस्त्र देश में बनाये जा सकते हों वे यहीं बनाये जायँ और उनमें देश आत्मनिर्भर हो जाय। इस दिशा में प्रगति हो रही है किन्तु आत्मनिर्भरता का लक्ष्य पूरा होने में कितनी कसर है, यह सम्बन्धित अधिकारी ही बतला सकते हैं। दूसरा पहलू यह है कि जो अस्त्र-शस्त्र या सामान देश में नहीं बन सकता, वह संसार के किसी भी देश से खरीदा जाय। भारत सरकार इसी नीति पर चल रही है। किन्तु पाकिस्तान की तेजी से बढ़ती हुई सैनिक शक्ति का सामना करने के लिए भारत सरकार अवश्य ही कार्रवाई कर रही होगी, और वह प्रकट भी नहीं की जा सकती। किन्तु सुरक्षा बजट में ऐसी कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं दीखती जिससे मालूम हो कि हम अब अद्यतन विमान, टैंक, मिसाइल आदि पहले से अधिक संख्या में खरीद रहे हैं। सुरक्षा-मन्त्री ने स्वीकार किया है कि पाकिस्तान ने अपनी सेना और वायुसेना के विमानों की संख्या बढ़ाई है। किन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि हमने अपनी सेना की संख्या में कोई वृद्धि नहीं की।

आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त बहुत ठीक और सर्वमान्य है। किन्तु वह अन्तिम लक्ष्य है। संसार में आज दो-चार ही राष्ट्र अपने को 'सैनिक' या 'आर्थिक' क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने का दावा कर सकते हैं। भारत ऐसे पिछड़े देश को इस लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी समय लगेगा। 'आर्थिक' क्षेत्र में भी हमारा लक्ष्य 'आत्मनिर्भर' होने का है, किन्तु तीन योजनाओं के बावजूद अपने लक्ष्य से अभी हम काफी दूर हैं। इस आर्थिक क्षेत्र में अपने पिछड़ेपन तथा साधनहीनता के कारण हम आत्मनिर्भरता के लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सारे संसार से सहायता ले रहे हैं। किन्तु 'सुरक्षा' के साधनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए हम सैनिक सहायता नहीं माँगते। यद्यपि हम ऐसे देशों

से घिरे हैं जिनके इरादे अच्छे नहीं हैं, फिर भी अपनी सुरक्षा बनाये रखने के लिए हम दूसरे शक्तिशाली राष्ट्रों से अस्त्र-शस्त्रों की सहायता लेना ठीक नहीं समझते। अन्न-दान, उर्वरक दान आदि दान तो ले लेते हैं, किन्तु 'अस्त्र-दान' लेने से घबराते हैं। इस पर 'गुड़ खाय और गुलगुले से परहेज करे' वाली कहावत याद आती है। कहा जाता है कि अस्त्र-शस्त्र की सहायता लेने से युद्ध की राजनीति में, या किसी गुट में फंस जाने की संभावना रहती है, और तब राष्ट्र अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति नहीं बना सकता। किन्तु पाकिस्तान परस्परविरोधी पक्षों (अमरीका-चीन, चीन-रूस) से सैनिक सहायता लेता रहा है, फिर भी उसकी नीति बराबर स्वतन्त्र रही है।

और क्या शस्त्रास्त्र की सहायता न लेने से तथा गुट निरपेक्षता की नीति अपनाने से हम अपनी विदेश नीति को स्वतन्त्र रख सके हैं?

स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर हमारे जो नेता शक्ति में आये वे दशकों से अंग्रेजों से संघर्ष करते और उनका विरोध करते आ रहे थे तथा उन्हें 'साम्राज्यवादी', 'उपनिवेशवादी' या 'नूतन उपनिवेशवादी' समझते थे। उन्हें उनकी राजनीतिक सदाशयता पर भरोसा नहीं था। अमरीकी उन्हींके भाई-बन्द थे। दुर्भाग्य से जिस समय भारत की विदेश नीति बन रही थी, उस समय संसार में दो गुट थे। एक गुट के प्रमुख सदस्य थे दो देश। इनसे 'घनिष्ठता' या 'सौहार्द' उस समय सम्भव नहीं था। उस समय के नीति निर्धारण करनेवाले नेता प्रकृति और प्रवृत्ति से मार्क्स की ओर झुके हुए थे। वे एकदम 'रेड' (लाल) तो नहीं थे, किन्तु 'पिंक' (हल्के लाल) जरूर थे, और वे साम्यवादी रूस और चीन को मानवता का उद्धारक समझते थे। वे सममुच गुटबन्दी में नहीं पड़ना चाहते थे और इसलिए वे उनके गुट में भी सम्मिलित नहीं हुए। किन्तु चूंकि वे इन दोनों साम्यवादी देशों को (शायद उनके बहुप्रचारित साम्राज्यवाद और पूंजी-पति प्रथा के विरोध के कारण) भारत का सच्चा शुभ-चिन्तक और विश्वसनीय मित्र समझते थे, व्यवहार में वे इनके अधिक निकट आ गये। और आरम्भ में रूस ने हमारी सहायता भी की। कश्मीर के मामले में अमरीका और ब्रिटेन आदि पाकिस्तान के समर्थक थे, किन्तु रूस ने हमारा समर्थन किया और अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करके हमारी बड़ी सहायता की। आर्थिक मामलों में भी उसने हमारी सहायता की। उसने भिलाई में लोहे तथा मिग विमान बनाने के कारखाने खोलने में बहुत सहायता की।

किन्तु जब भारत पर चीन और पाकिस्तान ने आक्र-मण किया तब रूस की प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई जैसी एक मित्र से आशा की जाती थी। चीन के भारत पर आक्रमण करने पर वह 'तटस्थ' रहा। भारत-पाक संघर्ष में भी उसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया भारत के लिए उत्साहवर्द्धक न थी। भारत और पाकिस्तान के प्रति इस तटस्थता का उप-भोग करके रूस ने ताशकन्द में दोनों देशों का समझौता करवाया—जिसका एकमात्र परिणाम यह हुआ कि हाजी-पीर आदि जो सैनिक महत्त्व के ठिकाने भारतीय जवानों ने खून बहाकर छीन लिये थे, वे लौटा देने पड़े। ताशकन्द समझौते के अनुसार भारत-पाक सम्बन्धों में जो सुधार होना था वह भारत के प्रयत्नों के बावजूद भी नहीं हुआ। रूस ने, जो पंच बना था, पाकिस्तान पर ताशकन्द समझौते को कार्यान्वित करने पर जोर नहीं दिया। अब इसका कारण स्पष्ट हो रहा है। ताशकन्द के बाद से रूस ने पाकिस्तान से मैत्री के सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय कर लिया था और उसे मजबूत बनाने के लिए उसे भारी सैनिक सहायता देने का निश्चय कर लिया था।

यह कहना कठिन है कि उसने यह महत्त्वपूर्ण नीति-परिवर्तन क्यों किया। शायद वह पाकिस्तान को चीन के प्रभाव से अलग करने के लिए ऐसा कर रहा है या और कोई कारण हो। किन्तु उसे मालूम था, और भारत सर-कार ने यह स्पष्ट भी कर दिया था, कि पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने से भारत का अहित होगा। किन्तु उसे भारत के रूस-प्रेम पर अगाध विश्वास मालूम पड़ता है। शायद वह यह सोचता है कि भारत सरकार किसी भी हालत में उसके (रूस के) विरुद्ध न जायगी।

और किसी सीमा तक उसका यह सोचना ठीक भी है। जो भारत सरकार अन्य देशों के अन्तर्राष्ट्रीय अनैतिक कामों की कड़े शब्दों में भर्त्सना करने में कभी नहीं चूकती, वह रूस के ऐसे कामों पर या तो चुप्पी साध लेती है या बड़े मुलायम शब्दों में अपनी असहमति प्रकट करके रस्म पूरी कर देती है। हंगरी पर जब रूस चढ़ बैठा था तब तत्का-लीन प्रधान मन्त्री भर्त्सना की अपनी स्वाभाविक भाषा भूल गये थे। वही स्थिति आज भी है। चैकोस्लोवाकिया के आन्तरिक मामले में रूस के सैनिक हस्तक्षेप की भर्त्सना

करने में वर्तमान प्रधान मन्त्री को भी कम पशोपेश नहीं हुआ। ब्रेजनेव ने एक अत्यन्त खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है : रूस को अधिकार है कि वह साम्यवादी देशों में साम्यवाद बनाये रखने के लिए उनके आन्तरिक मामलों में सैनिक हस्तक्षेप कर सकता है। किन्तु भारत सरकार ने इस पर अपनी स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। आज भी रूस को प्रसन्न करने के लिए रूस-चीन सीमा विवाद पर हमारे विदेश मन्त्री ने रूस का पक्ष लिया है। भारत-चीन सीमा-विवाद के समय रूस चुप रहा, किन्तु रूस-चीन सीमा विवाद पर हम जबर्दस्ती रूस का पक्ष लेना अपना कर्त्तव्य समझते हैं! रूस को प्रसन्न करने की आतुरता का यह एक उदाहरण है।

रूस को हम दोष नहीं देते। परराष्ट्र नीति का मूल और एकमात्र आधार अपने राष्ट्र का हित है। यदि रूस समझता है कि पाकिस्तान को शक्तिशाली बनाने और उससे मित्रता करने में उसका हित है तो उसने जो निर्णय किया है उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। परराष्ट्र नीति में इतनी लोच रहनी ही चाहिए। किन्तु भारत की परराष्ट्र नीति में वह लोच क्यों नहीं है? इसका उत्तर जनता जानना चाहेगी।

'गुप्त' बनाम गुप्ता—'सरस्वती' के दो अंकों में श्रीमती कमला रत्नम् का एक संस्मरणात्मक लेख (श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त के कुछ संस्मरण) प्रकाशित हुआ था। उसे पढ़कर हमारे सम्मान्य मित्र श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह ने अपने एक पत्र में हमें यह लिखा :

> "श्रीमती कमला रत्नम् का सुन्दर लेख भी पढ़ा। रोचक संस्मरण है पर इस सम्बन्ध में मेरी एक शिकायत है। 'गुप्त' के स्थान पर 'गुप्ता' लिखना वांछनीय नहीं प्रतीत होता। न जाने कैसे यह परिपाटी चल पड़ी है। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त को सी० बी० गुप्ता कहने की प्रथा चल गयी है, पर यह भारी भूल है। संस्कृत भाषा में गुप्त वैश्य जाति के लोगों का उपनाम माना गया है पर 'गुप्ता' शब्द का अर्थ वेश्या (दर असल, रखैल) है, अतः गुप्त के स्थान पर गुप्ता कहना सर्वथा अवांछनीय है।"

उस लेख में 'गुप्ता' का प्रयोग हमें भी खटका था किन्तु उन दिनों, कुछ तो अस्वस्थ एवं कई झंझटों में फँसे रहने के कारण, और कुछ प्रमाद, आलस्य तथा संकोचवश हमने उसे ज्यों का त्यों रहने दिया था। किन्तु इस पत्र ने हमें एक झटका दिया, और हम इस प्रश्न पर विचार करने लगे। हमने कई कोश देखे। मॉनियर विलियम्स ने 'गुप्ता' का अर्थ लिखा है : "A married woman who withdraws from her lover's endearments". हमारे पास आप्टे का पुराना १८९० ई० का (शायद प्रथम) संस्करण है। उसमें 'गुप्ता' के लिए लिखा है : "A lady married to another (परकीया) who conceals her lovers caresses and endearments past, present and future". 'शब्द कल्पद्रुम' में यह व्याख्या मिली : "परकीयान्तर्गतनायिकाभेदः। तस्या लक्षणम्। मैथुनगोपनम्। सा च त्रिधा। वृत्तसुरतगोपना १ वर्त्तिष्यमाणसुरतगोपना, २ वृत्तवर्त्तिष्यमाणसुरतगोपना, ३ इति रसमञ्जरी।

वृहत हिन्दी कोष में "गुप्ता के सामने लिखा है : "परकीया नायिका के दो भेदों में से एक, सुरति छिपानेवाली नायिका; रखेली; वैश्य स्त्री का उपनाम या वर्णसूचक उपाधि।" इससे 'गुप्ता' शब्द का अर्थ स्पष्ट है। वह एक विशेष प्रकार की कुलटा स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है।

अवश्य ही जो पढ़े लिखे लोग "श्री गुप्ता" या "श्रीमती गुप्ता" का प्रयोग करते हैं। उनका आशय वह नहीं है जो कोषों में बताया गया है। वह कुछ तो उनके उच्चारण के "अंग्रेजीकरण" का, और कुछ रोमन लिपि के ग़लत उपयोग का परिणाम है। हिन्दी में 'अशोक' शब्द में अन्तिम 'क' का पूर्ण ह्रस्व उच्चारण होगा। उसे रोमन में शुद्ध रूप से लिखा जाय तो Ashoka लिखा जायगा। Ashok लिखने से 'क' का हलन्त उच्चारण होगा—अशोक्। यदि "अशोक" लिखना हो तो मात्रा सहित अर्थात् A का उपयोग किया जायगा, यथा Asoka किन्तु सामान्य रूप से अंग्रेजीदाँ लोग अन्त में a लिखे जाने पर व्यंजन का दीर्घ उच्चारण ही करते हैं। इसी कारण रोमन में लिखे Misra, Shukal, Veda, Shloka आदि को वे मिश्रा, शुक्ला, वेदा, श्लोका आदि कहते हैं। नई दिल्ली की प्रसिद्ध सड़क "अशोका रोड" हो गयी है। हमारे मित्र स्वर्गीय पंडित अमरनाथ झा विद्वान् होने के कारण रोमन में अपना नाम शुद्ध रूप से Amara Natha Jha लिखते थे। किन्तु कितने ही अर्द्ध-शिक्षित अँग्रेजीदाँ इस अखरौटी का मजाक

उड़ाने के लिए—इसे 'अमरा नाथा भा' पढ़ा करते थे। ये लोग इस ध्वनि के अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण तो ठीक करेंगे, किन्तु हिन्दी शब्द को विगाड़ देंगे। एक महाशय भाषण दे रहे थे। बीच में बोले—In the second shloka of this chapter" (इन दि सेकण्ड श्लोका आफ़ दिस चैप्टर) एक श्रोता ने चिढ़ कर पूछा; Is there any snaka in it also (इज देयर ऐनी स्नेका इन इट आलसो ?) जो व्यक्ति 'स्नेक' कह सकता है, "बैड" कह सकता है, रेड (Raid) कह सकता है वह 'श्लोक' या 'वेद' क्यों नहीं कह सकता ? किन्तु अंग्रेज जिस प्रकार से हमारे शब्दों को बिगाड़ कर पढ़ते थे, उसी प्रकार हम भी उन्हें पढ़ते हैं जिससे इसे भी कम से कम अंग्रेजनुमा तो समझा ही जाय। यदि इन अंग्रेजी ढंग से उच्चारित शब्दों के अर्थों पर विचार किया जाय तो 'गुप्ता' के जोड़ के अनेक अर्थ मिलेंगे। उदाहरण के लिए शुक्ला का अर्थ "गोरी स्त्री" है। किन्तु हम कई श्यामकाय मुछन्दरों को जानते हैं जो अपने को 'शुक्ला' कहते हैं।

यह तो हुई इन शब्दों के शुद्ध आचरण और गलत उच्चरित शब्दों के अनर्थ की बात। सामान्य रूप से हिन्दी में 'गुप्ता' 'गुप्त' का स्त्रीलिंग रूप माना जाता है। हमने ऊपर बृहत् हिन्दी कोश का प्रमाण भी दिया है। इस संबंध में एक संस्मरण उल्लेखनीय है। काशी के स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू शिवप्रसादजी गुप्त हमारे बड़े कृपालु मित्र थे। जब तक वे जीवित रहे, काशी में हम उन्हींके यहाँ ठहरते थे। एक बार काशी में हम उनकी पर्णकुटी के दालान में बैठे उनसे बात कर रहे थे कि उनके किसी प्रतिष्ठित आत्मीय या मित्र का नौकर एक पत्र लेकर आया। उसने वह पत्र उनके हाथ में दे दिया। गुप्तजी ने लिफाफे पर लिखा पता पढ़ा। उस पर लिखा था—"श्री शिवप्रसाद गुप्ता, सेवा उपवन, काशी।" पढ़कर नौकर से बोले—ई चिट्ठी हमार न होय। एह का लोटाय लै जाउ।" और यह कहकर उन्होंने वह लिफाफा नौकर को लौटा दिया। नौकर ने बड़ी नम्रता से कहा कि यह सरकार के ही लिए है। बाबूजी ने हुक्म दिया था कि इसे सरकार के ही हाथ में दे देना।' गुप्तजी बोले—"ई हमरे बदे नहीं, हमरी मेहरारू के बदे है। पते पर लिखा है—श्री शिवप्रसाद गुप्ता। कहि दिओ कि एहिका उनके पास सरग में भेज देंय।" नौकर ने बड़ी खुशामद की किन्तु गुप्तजी 'गुप्ता' देखकर ऐसे भड़क गये थे कि उन्होंने वह पत्र किसी तरह लिया ही नहीं।

जो भी हो, हम अपने सामान्य मित्र श्री राजेश्वर बाबू के कृतज्ञ हैं कि उन्होने हमारी च्युति पर हमें टोक दिया। आशा है कि 'सरस्वती' के सुधी पाठक भी उनको धन्यवाद देंगे कि उनकी सतर्कता के कारण इस महत्त्वपूर्ण और रोचक विषय पर 'सरस्वती' में चर्चा हो सकी।

रवीन्द्र सरोवर का लज्जाजनक काण्ड—बहुत दिनों से शायद ही किसी घटना ने देश के जन मानस को इतना उद्वेलित किया है जितना ६ अप्रैल को घटित कलकत्ते के रवीन्द्र सरोवर पर स्थित खुली व्यायामशाला (स्टेडियम) के लज्जाजनक काण्ड ने। १७ अप्रैल को समाचार-पत्रों में जो संक्षिप्त समाचार छपा था उससे केवल यही मालूम होता था कि कलकत्ते में पुलिस और अनियंत्रित तथा उत्तेजित भीड़ में मारपीट हो गयी और पुलिस को गोली चलानी तथा अश्रुगैस छोड़नी पड़ी। किन्तु प्रायः एक सप्ताह बाद जब बंगाल के कुछ प्रमुख विद्वानों ने (जिनमें राष्ट्रीय प्रोफेसर श्री सत्येन सेन और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० रमेशचन्द्र मजुमदार भी थे) एक वक्तव्य देकर इस काण्ड की भर्त्सना की तब वास्तविकता सामने आयी। समाचार-पत्रों और संसद में भी इसकी गरमागरम चर्चा होने लगी। कलकत्ते की तीन महिलाओं ने टाइम्स आफ इण्डिया में इस सम्बन्ध में एक पत्र छपवाया है। उसमें संक्षेप में इस घटना का वर्णन दिया गया है। हम उसका अनुवाद यहाँ दे रहे हैं, उन्होंने उस पत्र में कहा है—

महोदय, ६ अप्रैल को रवीन्द्र सरोवर (लेक स्टेडियम) में एक सांस्कृतिक आयोजन किया गया था। यह आयोजन ७ बजे संध्या से आरम्भ होकर रात भर चलने को था।

प्रायः साढ़े आठ बजे कुछ लोगों ने पुलिस पर पत्थर फेंकना आरम्भ किया। कलकत्ते मे यह कोई नई बात नही थी। किन्तु पथराव बड़े जोर से हो रहा था। इससे पहिले कोई ६ बजे सात लारियों में भर कर गुंडे स्टेडियम में आ गये थे। थोड़ी देर बाद स्टेडियम की रोशनी (की बिजली) काट दी गयी। कुर्सियों और बैंचों मे आग लगा दी गयी। इस पर पुलिस ने अश्रुगैस छोड़ी और एक गोली चलायी। घबड़ायी और डरी हुई भीड़ दूसरी ओर अर्थात् तालाब की ओर भागी। गुंडों ने उसका पीछा किया। कुछ लोग

तालाब में कूद पड़े। अभी तक आठ लाशें निकाली गयी हैं जिनमें दो स्त्रियाँ भी हैं।

अब वास्तविक विध्वंस आरम्भ हुआ। गुंडों ने भीड़ की घबराहट का लाभ उठाया। उन्होने सैकड़ों स्त्रियों के गहने छीन लिये, उनके साथ छेड़छाड़ की, और उन पर सापराध (पाशविक) आक्रमण भी किये। जो लोग उनकी रक्षा करने गये उन्हें छुरी भोंक दी गयी। यह गुंडागर्दी आधी रात तक चलती रही।

यूनाइटेड फ्रन्ट सरकार ने पुलिस और समाचार-पत्रों को सलाह दी कि यह बात न कहें कि कितनी स्त्रियों का अपहरण किया गया है।

जो स्त्रियाँ लूटी गयी थीं या जिनके साथ छेड़छाड़ की गयी थी वे शरण पाने के लिए आसपास की बस्ती में भागीं, वे वस्त्रहीन थीं। कुछ नवयुवक जो उनकी सहायता को गये, उन्हें छुरी मार दी गयी। वहाँ उनकी रक्षा के लिए पुलिस मौजूद न थी। कुछ स्त्रियों को देखा गया कि उन्होंने अपना शरीर समाचार-पत्रों से ढक रखा था।

सबसे खराब बात यह है कि गृहमंत्री श्री ज्योति वसु और पुलिस विभाग इसे दबाने का बहुत प्रयत्न कर रहे हैं।

यदि स्थानीय पुलिस कुछ नहीं कर सकती तो यह केन्द्रीय गृहमंत्रालय का कर्त्तव्य है कि वह लोगों की रक्षा करे और उन्हें बचावे।

पवित्रा मुखर्जी
कलकत्ता, अप्रैल १२ पत्रलेखा भट्टाचार्य
अंजलि सरकार

इस पत्र के तथाकथित घटना का वर्णन संयत ढंग से किया गया है। कलकत्ते से आये हुए कुछ लोगों ने इसका जो वर्णन हमें दिया वह कहीं अधिक रोमांचक था। किन्तु श्री ज्योति वसु ने इस समाचार का प्रतिवाद किया है कि वहाँ स्त्रियों का अपमान हुआ, या दूसरे दिन उस स्थान में स्त्रियों के कपड़े बिखरे हुए पाये गये। उन्होंने यह भी कहा कि रवीन्द्र सरोवर में से केवल दो लाशें निकाली गयी हैं और वे दोनों युवकों की हैं। श्री ज्योति वसु ने यह भी कहा कि पुलिस में स्त्रियों के अपमान की कोई रिपोर्ट नहीं की गयी और न आसपास के लोगों ही ने इस सम्बन्ध में कुछ बतलाया। गृहमंत्री होने पर पुलिस ही श्री ज्योति वसु की आँख और कान हो गयी है। किन्तु सारे देश में—विशेष कर बंगाल और कलकत्ते में—इस काण्ड के समाचारों ने इतना रोष और बेचैनी फैला दी है कि इस घटना के प्रायः दस दिन बाद उन्हें इसकी जाँच के लिए हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश को नियुक्त करना पड़ा।

अब जब जाँच आयोग नियुक्त हो गया है, हम इस काण्ड पर उसका प्रतिवेदन प्रकाशित होने के पहिले कोई टीका-टिप्पणी करना उचित नहीं समझते। फिर भी एक बात स्पष्ट है। कलकत्ते ऐसी महानगरी में पुलिस का काम वैसे ही कठिन है, किन्तु बंगाल की यूनाइटेड फ्रन्ट की नई सरकार ने उसे नपुंसक बना दिया है। उसकी नीति के कारण बंगाल की शान्ति व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी है और वह अराजकता की ओर बढ़ रहा है। वहाँसे आये हुए लोग बतलाते हैं कि कलकत्ते के लोगों में—विशेषकर बाहर के लोगों में अरक्षा की भावना बढ़ रही है। वे अपनी जान और माल को वहाँ सुरक्षित नहीं समझते। मजदूरों की अनुशासनहीनता इतनी बढ़ गयी है कि वहाँके उद्योग-धन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। पूँजीपतियों और कारखानों के प्रबन्धकों की बात ही क्या, विश्वविद्यालय के अधिकारी भी वहाँ 'घिराव' के शिकार हो जाते हैं। भस्मासुर की कथा की आवृत्ति तब हुई जब 'घिराव' का समर्थन करनेवाले एक मंत्री ही कुछ घंटों के लिए 'घिराव' में पड़ गये! जिस राज्य में सरकार के 'मंत्री' ही 'घेर' लिये जायँ, वहाँ साधारण अधिकारियों की बात चलाना व्यर्थ है।

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं,
कहहु तूल केहि लेखे माँहीं?"

इंगलैण्ड में चोरी के कानून में सुधार—चोरी और उधार—इस वर्ष इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने शतियों पुराने चोरी के अपराध से सम्बन्धित कानून में सुधार करके उसकी जटिलता को बहुत कुछ दूर कर दिया है। इस जटिलता के कारण चोरी के अपराधियों को दण्डित करने में बड़ी कठिनाई होती थी। किन्तु साथ ही इस नये कानून ने कुछ ऐसी बातें भी जोड़ दी है जो उल्लेखनीय हैं। उनमें से कुछ ये हैं:

यदि किसीको कोई वस्तु कहीं पड़ी मिल जाय और यदि वह उसे उसके स्वामी (या पुलिस) को न लौटा दे तो उसे चोरी करने का दंड मिलेगा।

यदि किसी वस्तु का मूल्य नोटों या रुपये मे दिया जाय और विक्रेता मूल्य लेकर गलती से अधिक रेज-

गारी दे दे तो रेजगारी पानेवाले को अधिक रेजगारी लौटा देनी होगी यदि न लौटावे तो वह चोरी मानी जायगी।

सबसे मजेदार परिवर्तन उधार या मँगनी ली हुई वस्तु के लौटाने के सम्बन्ध में है। उधार दो प्रकार से लिया जा सकता है—वस्तु के स्वामी की स्पष्ट आज्ञा प्राप्त कर या उसकी आज्ञा के विना। मान लीजिए कि आपको सहसा कहीं जाना है। कोई सवारी नहीं मिल रही। किसी परिचित या अपरिचित के मकान में सामने एक बाइसिकिल या मोटर रखी है। आप जल्दी में किसीसे कुछ कहे बिना उसे लेकर चल देते हैं और अपना काम करके उसे जहाँ के तहाँ पहुँचा देते हैं। अभी तक इस प्रकार सवारी को लौटा देने पर उसे ले जानेवाले पर चोरी का अभियोग नहीं चलाया जा सकता था किन्तु अब विमान, मोटर, बाइसिकिल आदि का इस प्रकार 'मँगनी' या 'उधार' ले जाना चोरी समझा जायगा और दंडनीय होगा चाहे वह सवारी वाद में स्वेच्छा से लौटा दी जाय। इसका कारण यह है कि इस प्रकार 'उधार' ली गयी सवारियों से डकैती आदि होने लगी थी। इसी प्रकार कलाकृतियों का बिना अनुमति 'उधार' लेना भी (चाहे वह अंत में स्वेच्छा से लौटा दी जायँ) चोरी समझा जायगा और दंडनीय होगा। लन्दन के राष्ट्रीय संग्रहालय में गोया नामक एक प्रसिद्ध स्पेनी चित्रकार का बनाया हुआ ड्यूक आफ वेलिंगटन का चित्र टँगा था। कई वर्ष पूर्व एक व्यक्ति उसे उठा ले गया। इंगलैण्ड में इस घटना से बड़ी बेचैनी फैली, किन्तु चित्र का पता न लगा। चार वर्ष बाद उसे ले जानेवाले व्यक्ति ने उसे स्वेच्छा से लौटा दिया। पुराने कानून के अनुसार उस पर चोरी का अभियोग नहीं लग सका क्योंकि उसने उसे लौटा दिया था और उसका ले जाना 'उधार या मँगनी' ले जाना माना गया। किन्तु अब कलाकृतियों का इस प्रकार 'उधार' लिया जाना भी चोरी माना जायगा।

किन्तु अन्य वस्तुओं का 'उधार' लेना तब तक चोरी न माना जायगा और न दण्डनीय होगा जब तक यह प्रमाणित न हो जाय कि सहमति या बिना अनुमति के वस्तु को 'उधार' ले जानेवाले व्यक्ति का मंशा उसे लौटाने का न था। यदि इंगलैण्ड में आपका कोई मित्र आपकी अनुपस्थिति में आपके कमरे से कोई पुस्तक ले जाता है तो उस पर चोरी का अभियोग तब तक नहीं चलाया जा सकता जब तक उसे लौटाने में वह इतना बिलम्ब न कर दे कि उससे मालूम हो कि उसकी मंशा उसे लौटाने की न थी। यदि पुस्तक आपकी अनुमति ही से उधार ली गयी हो, किन्तु वह उसे न लौटावे और यह प्रमाणित हो जाय कि उसकी मंशा उसे लौटाने की नहीं थी, तब उस पर चोरी का अभियोग चलाया जा सकता है।

इंगलैण्ड में रेजगारी पानेवालों और पुस्तकों को उधार ले जानेवालों को अब अधिक सतर्क रहना पड़ेगा। यदि वे उधार ली हुई पुस्तक या वस्तु को समुचित अवधि में न लौटा देंगे और अतिरिक्त रेजगारी को तत्काल वापस न कर देंगे तो वे 'चोरी' के अभियोग में फँस जायँगे।

'उधार' लेकर वस्तु को हड़प जाने की कला काफी विकसित कर ली गयी है। इस कला के एक विशेषज्ञ से हमें एक बार तुकबन्दी सुनायी थी।

चीज लीजिए माँग
बिन माँगे, दीजे नहीं।
भूले चूके आपनी
चोरी नहीं थापनी।

यह 'शरीफ़ चोरों' का शराफ़तपूर्ण व्यावहारिक सिद्धान्त है। हमारी अनुमति या बिना अनुमति के हमारी कितनी ही पुस्तकें तथा अन्य वस्तुएँ 'उधार' या 'मँगनी' गयी हुई हैं जो वर्षों और युगों से लौटने का नाम नहीं लेतीं। यदि इस देश में भी ऐसा कानून बन सकता! किन्तु तब कितने ही महापुरुषों के पास इतने समृद्ध पुस्तकालय न होते, और बहुत से कला संग्रहालय भी इस देश में स्थापित न हो पाते!

राष्ट्रपति आइसन हॉवर का निधन—गत मास अस्सी वर्ष की आयु में जनरल आइसनहॉवर का स्वर्गवास हो गया। ज्योतिष के अनुसार जन्मपत्र में जितने उच्चग्रह और शुभ योग पड़ सकते हैं वे सब अवश्य ही उनकी जन्मपत्री में पड़े होंगे, क्योंकि इस युग में शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति को शान्ति और युद्ध के परस्पर विरोधी क्षेत्रों में इतनी सफलता और इतना उच्च सम्मान मिला हो जितना उन्हें मिला था। एक गाँव के अत्यन्त साधारण परिवार में जन्म लेकर उन्होंने अमरीका की सेना में प्रवेश किया, और इतनी उन्नति की कि द्वितीय महायुद्ध के अंतिम चरण में वे संयुक्त मित्र सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति (सुप्रीम कमाण्डर) नियुक्त हुए। इसी सेना ने हिटलर की अजेय जर्मन सेना को फ्रांस, इटली आदि से पराजित किया। संसार के इतिहास में उससे

पूर्व इतनी शक्तिशाली सेना एक सेनापति की कमान में कभी एकत्र नहीं हुई थी। अमरीका ने उन्हें सर्वोच्च सैनिक सम्मान दिया। उन्हें 'जनरल आफ दि आर्मी' बनाया जो योरोप के फील्ड मार्शल के बराबर है। वे सैनिक थे और राजनीति में कभी नहीं पड़े थे। लोग यह भी नहीं जानते थे कि उनके राजनीतिक विचार क्या हैं? पर महा-युद्ध के बाद वे इतने लोकप्रिय हो गये थे कि लोगों ने उनसे अमरीका के राष्ट्रपति पद के लिए खड़े होने का अनुरोध किया। वे रिपब्लिकन दल के टिकट पर खड़े हुए और भारी बहुमत से जीते। वे दूसरी बार भी खड़े हुए और जीते। वर्तमान राष्ट्रपति निक्सन उनके उपराष्ट्रपति थे। राष्ट्रपति होने से पूर्व वे अमरीका के प्रसिद्ध कोलम्बिया विश्वविद्यालय के कुलपति भी चुने गये थे। उनके समय में दुर्भाग्य से रूस से अमरीका का मतमुटाव बढ़ गया था और वह युग शीत युद्ध और सैनिक गुटबंदी का था। उनके शासन में अमरीका ने अपनी सैनिक-शक्ति खूब बढ़ायी तथा देश ने बड़ी आर्थिक उन्नति की। अमरीका में उनके समान महान् राष्ट्रीय नेताओं के शव वहाँ की राष्ट्रीय आर्लिंगटन सिमेट्री में दफनाये जाते हैं। किंतु उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि उनका मृत शरीर उनके गाँव के छोटे से गिरजाघर ही में गाड़ा जाया। वे जन्मजात योद्धा थे। रणक्षेत्र में शत्रु ही से नहीं लड़े—रोग से भी डटकर लड़े। साधारणतः हृदय का तीसरा दौरा घातक होता है, किंतु वे हृदय के छः दौरों को झेल गये। सातवाँ दौरा घातक सिद्ध हुआ। उनकी अन्त्येष्टि पूरे राष्ट्रीय और सैनिक सम्मान के साथ सम्पन्न हुई। उसमें संसार के अनेक नरेश, राष्ट्रपति और नेता सम्मिलित हुए थे। भारत की ओर से उपप्रधान मन्त्री श्री मोरारजी भाई देसाई गये थे। आइसन हावर जनता में बड़े लोकप्रिय थे और वरिष्ठ नेता के रूप में उनका बड़ा आदर किया जाता था। उनकी अनेक सफलताओं से भी बढ़कर उनके सम्बन्ध में जो सबसे बड़ी बात कही जा सकती है वह यह है कि वे बहुत लंबे दज के अमरीकी सज्जन थे।

भारतेन्दु कक्ष—मार्च के अन्तिम सप्ताह में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला भवन में 'भारतेन्दु कक्ष' का उद्-घाटन हो गया। उद्घाटन कलकत्ते के प्रसिद्ध और पुराने हिन्दी सेवक तथा गांधीवादी कार्यकर्त्ता श्री सीतारामजी सेकसरिया ने किया। कला भवन के निदेशक और प्रसिद्ध कलाविद् तथा साहित्यकार राय कृष्णदास के प्रयत्न से भारतेन्दु के वर्तमान उत्तराधिकारियों ने भारतेन्दु का 'सरस्वती भवन' नामक पुस्तकालय, उनके चित्र, पत्र तथा व्यक्तिगत उपयोग की अनेक वस्तुएँ इस कला-भवन के लिए विश्व-विद्यालय को भेंट कर दीं। इस उदारता और विशाल हृदयता के लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। कला भवन ने भी इस अमूल्य सामग्री को प्रदर्शित करने के लिए 'भारतेन्दु कक्ष' के नाम से एक विशाल कक्ष अलग कर दिया है। इसमें यह सब सामग्री सुव्यवस्थित और कला-पूर्ण ढंग से प्रदर्शित की गयी है। उनके अनेक दुर्लभ, अप्रकाशित और निजी पत्रों का संग्रह विशेष महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। वे पत्र उनके सरस और उदार व्यक्तित्व को समझने में बड़े सहायक हैं। इस संग्रह में जो चित्र और फोटोग्राफ हैं वे भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उनका पुस्तका-लय उनके समय के मुद्रित और अमुद्रित हिन्दी ग्रन्थों का अच्छा परिचय देता है जिससे अब तक की हिन्दी साहित्य की प्रगति की तुलना की जा सकती है। उनकी पुस्तकों तथा मासिक पत्रिकाओं का संग्रह बेजोड़ है। 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम ही अधिकांश हिन्दी-प्रेमियों ने सुने हैं। इस संग्रह में वे सब देखे जा सकते हैं। उनके पूज्य पिता के साहित्य का भी प्रदर्शन बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। यह संग्रहालय हिन्दी-प्रेमियों के लिए एक नया और महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल बन गया है। हिन्दी साहित्य के अध्येताओं और शोध करने-वालों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। भारतेन्दु सम्बन्धी इस अमूल्य सामग्री को सुरक्षित रखने और उसे इतने अच्छे ढंग से प्रदर्शित करने के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय के अधि-कारी और विशेषकर कलाभवन के संचालक हमारी हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं। यह बहुत ही उचित हुआ है कि भार-तेन्दु की यह सामग्री हिन्दी के महान् प्रचारक महामना द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय के भारत कलाभवन में रायकृष्ण-दासजी के निदेशन में सुरक्षित की गयी है।

इस आयोजन की अध्यक्षता सरस्वती के सम्पादक ने की थी। इसके साथ भारतेन्दु पर जो विचारगोष्ठी हुई थी उसकी भी अध्यक्षता सरस्वती सम्पादक ने की। उस अवसर पर पढ़ा गया उनका निबन्ध इस अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

महाराजा छत्रसाल : कवि के रूप में

श्री वियोगी हरि

छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप और गुरु गोविन्द-सिंह के साथ महाराजा छत्रसाल का नाम प्रायः लिया जाता है। तत्कालीन राष्ट्रीयता के ये महापुरुष उद्बोधक और उन्नायक माने जाते हैं। छत्रसाल ने किशोर-अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी थीं। अनेक किले जीते और निर्माण किये थे, और एक छोटी-सी जागीर को एक महान् राज्य में परिणत कर दिया था। उनके अधिकृत राज्य की सीमा इस प्रकार व्यक्त की जाती है :—

इत जमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टौंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस॥

कहते हैं कि इस राज्य की वार्षिक आय उस समय २ करोड़ रुपये के लगभग आँकी जाती थी।

हम इस लेख में महाराजा छत्रसाल की अदम्य शूर-वीरता का वर्णन नहीं कर रहे हैं। वह तो इतिहास-प्रसिद्ध है ही। यहाँ तो हम उनको एक रससिद्ध कवि के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं। वे एक अनन्य हरिभक्त थे और उच्चकोटि के कवि थे। सुकवियों के अच्छे गुणग्राहक तो थे ही। यही कारण है कि महाकवि भूषण को यह निर्णय करना कठिन हो गया था कि शिवाजी महाराज के पौत्र साहू की सराहना की जाय या कि छत्रसाल की—

और राज राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू कों सराहों कै सराहों छत्रसाल को?

आश्चर्य और दुःख की बात है कि छत्रसाल का कवि-रूप प्रकाश में नहीं आया। मिश्रबन्धु-विनोद में केवल इतना ही लिखा है कि, "छत्रसाल स्वयं भी कविता करते थे। राज-विनोद और गीतों का संग्रह नाम के उनके दो ग्रंथ भी खोज मे मिले हैं। उनका रचनाकाल संवत् १७३० से माना जा सकता है"—मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय भाग, ५३९—५४०। और भी आश्चर्य होता है कि विनोदकारों ने छत्र-साल को किसी भी कवि-श्रेणी मे प्रतिष्ठित नही किया।

शोध में छत्रसाल की रचनाओं के तीन संग्रह और प्राप्त हुए हैं—छत्र-विलास, नीति-मंजरी, और महाराजा छत्र-सालजू की काव्य। राज-विनोद और गीतों का संग्रह ये ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आये। हो सकता है कि राज-विनोद के पद्य इन तीन संग्रहों में आ गये हो। छत्र-विलास एक संकलित ग्रंथ है, जिसे चरखारी के महाराजा जुझारसिंह ने संवत् १९६९ में अपने राजकीय प्रेस में छपवाया था। यह लीथो में छपा है। अशुद्धियाँ बहुत अधिक हैं। ग्रंथ प्रकाशित तो हो गया था, किन्तु न जाने क्यों हिन्दी-संसार में वह अप्रकाशित ही रहा।

छत्र-विलास में (१) श्रीराधाकृष्ण-पचीसी, (२) कृष्णावतार के कवित्त, (३) रामावतार के कवित्त, (४) रामध्वजाष्टक, (५) हनुमान-पचीसी, (६) महाराजा छत्र-साल प्रति अक्षर अनन्य के प्रश्न, (७) दृष्टान्ती और फुटकर कवित्त, और (८) दृष्टान्ती तथा राजनैतिक दोहा-समूह।

२, ३, ७ और ८ संख्यक तो निस्संदेह फुटकर पद्यों के संग्रहमात्र हैं। रहे १, ४, ५ और ६ संख्यक, सो उनमें भी संदेह होता है कि ये नाम स्वयं ग्रंथकार ने रखे होंगे या किसी संपादक ने।

हमने 'महाराजा छत्रसालजू की काव्य' नामक हस्त-लिखित पुस्तक पन्ना में देखी थी। उसके अन्तर्गत कृष्ण-कीर्तन में राधाकृष्ण-पचीसी के लगभग सभी पद्य आ गये हैं। कृष्ण-कीर्तन इस नाम के संबंध मे भी ग्रंथकार मौन हैं। संभव है, यह नाम भी किसी संपादक ने ही रखा हो।

इसी प्रकार 'महाराजा छत्रसालजू की काव्य' में राम-ध्वजाष्टक और हनुमान-पचीसी के प्रायः सभी पद्यों का समावेश है। उसमें हनुमान-पचीसी और रामध्वजाष्टक ऐसे अलग-अलग नाम नहीं हैं।

हमने संवत् १९८३ में छत्रसाल-ग्रंथावली इस नाम से छत्रसाल की कविताओं का संकलन और संपादन किया था। पन्ना राज्य के पुस्तकालय में हमने महाराजा छत्रसालजू की काव्य तथा नीति-मंजरी ये दोनों हस्तलिखित पुस्तकें देखी थीं। कुछ दिनों बाद चरखारी में मुद्रित छत्र-विलास भी हमारे देखने में आया। महाराजा छत्रसालजू की काव्य संवत् १९०७ की लिखी हुई है। लिपि-कर्त्ता कोई वंशीधर कायस्थ है। इसमे श्रीकृष्ण-कीर्तन, अक्षर अनन्य के प्रश्न और तिनको उत्तर, श्रीरामचन्द्रजी तथा हनुमानजी के विषय के और कुछ फुटकर पद्य है। हमने पद्यों का क्रम कुछ बदल दिया है। छत्र-विलास के चार-पाँच पद्य इसमें और मिला दिये हैं। अधूरे और अत्यन्त शिथिल और अस्पष्ट होने के कारण २० छन्द इसमें से निकाल दिये है और, नाम 'कृष्ण-कीर्तन' ही रहने दिया है।

श्रीकृष्ण-कीर्तन जहाँ समाप्त हुआ, वहाँ यह लिखा है—"श्रीमहाराज छत्रसालजू देव कृत श्रीकृष्ण-कीर्तन सपूरनम्।" इसके आगे श्रीरामचन्द्रजी के विषय के पद्य आरम्भ हो जाते है। इन पद्यों के संग्रह को कोई नाम नहीं दिया गया। रामचन्द्रजी के संबंध के कुछ पद्य फुटकर संग्रह में भी पाये जाते हैं। हमने उन्हें भी क्रमबद्ध कर दिया है। राम-विषयक इन पद्यो के संग्रह का नाम हमने 'श्रीराम-यश-चंद्रिका' रख दिया है। इस ग्रंथ में भी छत्र-विलास के कुछ पद्यों को सम्मिलित कर दिया है।

श्रीरामचन्द्रजी के विषय के पद्यों के सिलसिले मे हनुमानजी के विषय की रचना शुरू हो जाती है। इस रचना को भी कोई नाम नही दिया है। छत्रविलास के 'राम-ध्वजाष्टक' और 'हनुमान-पचीसी' नामक ग्रंथों के पद्य तो इसमें भी मिलते हैं, पर नाम वे नही है। हनुमद्विषयक कुछ छंद फुटकर रचनाओं में भी है। हमने उन्हें एक ही स्थान पर संकलित कर दिया है। हनुमद्विषयक समस्त पद्यों के संग्रह का नाम हमने 'हनुमद्विनय' रखा है। छत्र-विलास में इस विषय के चार-पाँच पद्य अधिक है, पर वे बहुत अस्पष्ट और साधारण हैं। अतः उन्हें हमने हनुमद्-विनय में स्थान नही दिया।

हनुमान्जी के विषय की रचना जहाँ समाप्त हुई है, वहाँ समाप्ति-सूचक कोई वाक्य नही है। बस, वहाँसे फुट-कर पद्यो का आरंभ निम्नलिखित पंक्ति से हो जाता है:—

"अथ श्रीमहाराज छत्रसालजू की फुटकर काव्य।"

हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि महाराजा छत्रसाल ने किसी ग्रन्थ की रचना नही की थी। उनकी सारी कवि-ताएँ मुक्तक ही हैं। एक स्थान पर बैठकर किसी स्वतंत्र ग्रंथ-निर्माण के लिए उन्हें अवकाश ही कहाँ था।

पाठान्तर और संशोधन

छत्रविलास और पन्ना की पुस्तको में अत्यधिक पाठा-न्तर है। हमें पन्ना की पुस्तकें छत्रविलास की अपेक्षा अधिक शुद्ध प्रतीत हुई है। ज्ञात नही, 'छत्रविलास' के संग्रहकर्त्ता ने किन पुस्तकों के आधार पर संकलन और सशोधन किया होगा। कई पद्य तो उसमें अन्य साधारण कवियो के आ गये हे। अस्पष्टता, शिथिलता और अशुद्धता की भरमार है। पन्ना की पुस्तकों मे प्राय: ये दोष नही है। छन्दोभंग इनमें बहुत कम है। इनमे संशोधन के लिए बहुत कम स्थान है। कहीं-कहीं पर नाममात्र का थोड़ा-सा हेर-फेर करना पड़ा है।

भाव-साम्य एवं पद्य-सादृश्य

छत्रसाल ने कई सुकवियों के सुन्दर भावों को अपनाया है। सूर, तुलसी, बिहारी आदि के भाव जहाँ-तहाँ उनकी रचनाओं में मिलते हैं, जो उनकी बहुज्ञता के द्योतक हैं। हमने पद्य-सादृश्य भी दो-एक स्थलों पर देखा, जिसपर आपत्ति की जा सकती है। 'छत्रविलास-ग्रंथावली' का एक कवित्त नीचे दिया जाता है—

सुजसु सो न भूपन, विचार सो न मंत्री, त्यों,
साहस सो सूर कहूँ ज्योतिषी न पौन सो।
संयम सी औपध न, विद्या सो अटूट धन,
नेह सो न बन्धु, औ दया सो पुन्य कौन सो॥
कहे छत्रसाल, कहूँ सील सो न जीतवान,
आलस सो वैरी नाहिं मीठो कछू नौन सो।
सोक कैसी चोट है न भक्ति कैसी ओट कहूँ,
राम सो न जाप और तप है न मौन सो॥

कुछ पाठान्तर के साथ यह कवित्त 'छत्रविलास' में भी है। यही कवित्त हमने एक सज्जन के मुख से निम्नलिखित रूप में सुना है:—

जस सो न भूपन विचार सो न मंत्री कहूँ,
साहस सो सूरबीर ज्योतिष ले सगुन सो।
संयम सी औषध, न विद्या सो अटूट धन,
नेह ऐसो बन्धु औ दया-सो पुन्य कौन सो॥
सील सो न हितुवा आलस सो न वैरी कहूँ,
अन्न सो न प्यारो, न मीठो कछू नौन सो।
सोक ऐसी चोट है न भक्ति ऐसी ओट है,
न राम ऐसो जप है न तप और मौन सो॥

इसमें पाठान्तर के अतिरिक्त रचयिता के नाम का भी उल्लेख नहीं है। अब यहाँ पर समस्या उपस्थित हो जाती है कि यह कवित्त महाराजा छत्रसाल का रचा हुआ है अथवा किसी अन्य कवि का। यह दोनों ही प्रतियों में पाया जाता है। एक संग्रहकर्त्ता असावधानी कर सकता है, पर भिन्न स्थान और भिन्न काल के दो संग्रहकर्त्ताओं ने कदाचित् ही एक ही पद्य के सम्बन्ध में ऐसी भूल की हो। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि निश्चपूर्वक उपर्युक्त पद्य महाराजा छत्रसाल का ही रचा है। सम्भव है, यह किसी अन्य कवि

का हो। पर हमने उसे ग्रंथावली में, दो-दो पुस्तकों में होने के कारण, स्थान दे दिया है।

नीचे एक और कवित्त दिया जाता है--

जाकै बीर एक-एक काल ते कराल हुते,
जानें गहि काल आनि पाटी तें बँधायौ है।
कुम्भकर्न भ्रात जाकी धाक तें सकात लोक,
पूत इन्द्रजीत इन्द्र जीतिकैं कहायौ है॥
कहै छत्रसाल, इन्द्र वरुन कुबेर भानु,
जोरि-जोरि पानि आनि हुकुम मनायौ है।
जौन पाप रावन के भौना में न छौना रहयौ,
तौन पाप लोगनु खिलौना करि पायौ है॥

इसी समस्या पर हमने यह कवित्त सुना है :—

जाही पाप इन्द्र कें सहस्र भग अङ्ग भई,
जाही पाप चन्द्रमा कलंक आनि छायौ है।
जाही पाप रानी कौ बराती सिसुपाल भयौ,
ताही पाप कीचक कचक ठहरायौ है॥
जाही पाप बालि कौ बधहु कियौ बनमाली,
जाही पाप दानौ हाथ साथ दै जरायौ है।
जाही पाप रावन के न छौना बचे भौना माँझ,
ताही पाप लोगन खिलौना करि पायौ है॥

इस कवित्त में भी रचयिता का नाम नहीं है। जब तक यह निर्णय न हो जाय कि यह कवित्त छत्रसाल से पहले का है, तब तक हम इसे ग्रन्थावली के कवित्त के आधार पर रचा हुआ ही मानेंगे।

कविवर पद्माकर का निम्नलिखित सुप्रसिद्ध कवित्त महाराजा छत्रसाल रचित एक कवित्त के आधार पर रचा हुआ प्रतीत होता है :—

संपति सुमेरु की, कुबेरु की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर, सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के वितरि विचारै ना॥
दीने गज बगसि महीप रघुनाथराव,
यही गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
यही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

महाराजा छत्रसाल का रचा कवित्त यह है :—

दिग्गज दुचित्त, चित्त सोचत पुरन्दर भे,
आज मेरे करि कों का भिक्षुक बिलसिहैं ?
देत गज-दान भूप दसरथ राज-राज,
राम-जन्म भये कौ बधावनों हुलसिहैं॥
हाथी लै हजारन के हलके सुजाचक हूँ,
आछे अलकेश सनों आयकैं सुबसिहैं।
गोय लै गनेस, गिरजा लौं छत्रसाल कहै,
गज के भरम लै भिखारिनि बगसिहैं॥

निस्संदेह, पद्माकर के 'याही डर....उतारै ना' में जैसी खूबी है वैसी 'गोय लै....बगसिहैं' में नहीं। फिर भी हमें तो छत्रसाल का रचा ही कवित्त ऊँचा जँचता है। इसमें दिग्गजों का 'दुचित्त' होना और ऐरावत-पति पुरन्दर का चित्त में सोचना तथा याचकों का अलकेश बन जाना काव्य-कला का खासा निदर्शक है। 'महीप रघुनाथराव' और 'दशरथ राज-राज' में जो अन्तर है उसे देखते हुए छत्रसाल की अत्युक्ति, अत्युक्ति नहीं रह जाती।

भाषा और छन्दों का प्रयोग

महाराजा छत्रसाल की रचना ब्रजभाषा में है। बुन्देलखंडी का भी प्रयोग कहीं-कहीं पर हुआ है। अवधी के बहुत थोड़े शब्द मिलते हैं। यों तो फारसी के शब्द भी दो-चार पद्यों में प्रयुक्त किये गये है। पर कुल मिलाकर भाषा ब्रजभाषा है, जो शुद्ध और मधुर है। शब्दों की तोड़-मरोड़ बहुत कम की गयी है। किसी-किसी पद्य की भाषा तो ब्रजभाषा के किसी भी ऊँचे कवि की भाषा से टक्कर लेती है।

महाराजा छत्रसाल ने कवित्त ही अधिक लिखे हैं। 'हनुमद्विनय' में विविध छन्द पाये जाते हैं। उन्हें पढ़ते हुए केशव की रामचन्द्रिका का स्मरण हो जाता है। यति-भंग दोष अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत कम है। मालूम होता है कि छन्दःशास्त्र का उन्हें अच्छा ज्ञान था।

महाराजा छत्रसाल का एक दोहा और एक कवित्त इन दो पद्यों ने ही लोक-प्रसिद्धि पाई है! दोहा यह कि :—

जो बीती गजराय पर, सो बीती अब आय।
बाजी जाति बुन्देल की, राखौ बाजी राय॥

यह दोहा छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा को तब लिख भेजा था, जब औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य के क्षीण हो जाने पर मोहम्मद खाँ बंगस जफरजङ्ग पठान ने अस्सी हजार सवार लेकर बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी थी। छत्रसाल की आयु उस समय ८० वर्ष की थी। छत्रसाल को निश्चय हो गया था कि केवल अपनी सेना से

बंगस को परास्त नहीं किया जा सकता, इसलिए इस मौके पर बाजीराव पेशवा से सहायता लेना आवश्यक है।

और लोक-प्रसिद्ध कवित्त यह है :

सुदामा तन हेरे तौ रंकहूतें राव कीनों,
विदुर तन हेरे तौ राजा कियौ चेरे तें।
कूबरी तन हेरे तो सुन्दर स्वरूप दियो,
द्रोपदी तन हेरे तौ चीर बढ़्यो टेरे तें॥
कहै छत्रसाल, प्रहलाद की प्रतिग्या राखी,
हिर्नाकुस मार्यो नेक नजर के फेरे तें।
एरे अभिमानी नर, ग्यानी भएँ कहा भयौ?
नामी नर होत गरुड़-गामी के हेरे तें॥

कहते हैं कि किसी अहम्मानी ईर्ष्यालु जागीरदार से छत्रसाल का यश और प्रताप जब सहन न हो सका, तब उसने कहला भेजा कि—"तुम स्वयं ही अपने घर में राजा बन बैठे हो। हम लोग तो तुम्हें राजा मानते नहीं। हमारी दृष्टि में तो तुम वही मामूली जागीरदार हो।" इसी ताने के उत्तर में यह कवित्त रचा गया था।

महाराजा छत्रसाल को सबसे बड़ा सहारा भगवान् कृष्ण का ही सदा रहता था। अपने आपको वे ब्रजराज-दरबार का सरदार मानते थे।

संवत् १८६५ में बहादुरशाह बादशाह ने छत्रसाल को अपना मंसबदार बनाना चाहा, पर उन्होंने यह तुच्छ पद स्वीकार नहीं किया। निम्नलिखित कवित्त तभी उन्होंने रचा होगा—

जाको मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चन्द्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ।
कहै छत्रसाल, राज-राज है भंडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुर-राज कौ।
जुग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके ग्रह-काज कौ।
नर की उदारता में कौन है सुधार, मैं तो
मनसबदार सरदार ब्रजराज कौ॥

जहाँ चम्पतराय-नन्दन छत्रसाल बड़े-बड़े शत्रुओं के लिए खड़्ग-रूप थे, और मित्रों के महान् रक्षक, तहाँ ब्रह्मानन्द-रसाब्धि में सदा निमग्न रहते थे। अपने स्वभाव का सच्चा-चित्रण उन्होंने नीचे के कवित्त में क्या ही सजीव किया है :—

ध्यानिन में ध्यानी और ग्यानिन में ग्यानी अहौं
पंडित पुरानी प्रेम-बानी-अरथाने का।
साहब सों सच्चा, कूर कर्मनि में कच्चा, छत्ता
चंपत कौ बच्चा, सेर सूरवीर बाने का॥
मित्रन कौं छत्ता, दीह सत्रुन कौं कत्ता, सदा,
ब्रह्म-रसरता, एक कायम ठिकाने का।
नाहिं परवाही न्यारा नौकिया सिपाही, मैं तो,
नेही चाह-चाही एक स्यामा-स्याम पाने का॥

कृष्णकीर्तन में से श्री राधिका-सम्बन्धी इन कवित्तों में काव्य चमत्कार देखते ही बनता है :—

पूजन कौं देविन की जुरिकै जमातैं आय,
घेरि-घेरि पंथ में घटा सी घुमड़ी परैं।
कहै छत्रसाल, संभुरानी, इन्द्ररानी, विधि—
रानी, रमारानी मोद मांड़ि उमड़ी परैं॥
जाकी ओर राधा की परति दृग-कोर नेक,
सिद्धि रिद्धि ताकी ओर झूमि झुमड़ी परैं।
ओड़ी परैं कौन पै, बगोड़ीं एक गोड़ीं दौरि,
संपदै निगोड़ी होड़ा-होड़ी सुमड़ी परैं॥

राधा के सनेह-हित गेह तजि आयौं इतै,
और कहा कहौं गाय बिपिन चरायौं मैं।
जायौं जौन जनक तौन तनिक न मान्यौ मैं,
राधा के सनेह नंदलाल हूँ कहायौं मैं॥
राधा के सनेह मेह-नायक कौं जीत्यौ जाय,
कहै कृष्ण, 'छत्रसाल', गिरि को उठायौं मैं।
मोकौं कहै लाख बार भाखि-भाखि साखि दै-दै,
राधा बिनु, ताकि नैकु भूलिहूँ न भायौं मैं।

पूतना कैसी कसाइन है कि बालकृष्ण को विष पिलाते इसकी छाती जरा भी न कसकी :—

गोद में मोद सों लैकैं ललै, छत्रसाल, बलायें लईं बहुतेरी।
प्रेम बढ़ाय, हियो हुलसाय, ललै ललचाय, न भौंह तरेरी।
पापिन! पाछैं कहा समुझी, ब्रजबासिन की जियजीवन ए री।
कान्हर कौं विष देत अरी! कसकी छतिया न, कसाइन! तेरी॥

और, वृन्दावन में कलिन्दजा के ये कूल और कलित-कदम्बों की कुंजें :—

देखौ री देखौ, इन कूलनि पर अमैं भौंर,
उड़ैं दौरि-दौरि डार-डार रस चरिकैं
गावत हैं गूँजि-गूँजि गुननि गुविंदजू के,
मुदित मिलिंद रस भाव भूरि भरि

छत्रसाल, कुंजनि में कलित कदंब फूले,
तरुन तमाल-राजि राजति छहरिकैं।
मोहन बिलोकैं, ते बिलोकैं मनमोहन कों,
स्वर्ग के सिहात तरु आपुकों निदरिकैं॥
कैसो रमनीक नीक लागतु है बृन्दाबन,
सरद सुहाई रितु आई छिति भाई है।
लपटि रही हैं द्रुम-बेलीं मंजु हेलीं सम,
प्रफुल प्रसून दून-दून छवि छाई है॥
कहै छत्रसाल, छोनी छाजति छबीली छटा,
तरल तरङ्ग लेति रम्य रवि-जाई है।
राधिका पियारी संग कुंजनि में रङ्ग-केलि,
करत जुन्हाई जोय नन्द कौ कन्हाई है॥

यमुना के तट पर युगलकिशोर चन्द्र बिम्ब को बड़े ध्यान से देख रहे हैं, और राधा के प्रश्न का उत्तर कृष्ण यों दे रहे हैं :—

जुगलकिसोर चंद्र-बिंबहिं बिलोकि ठाढ़े,
तीर जमुना के, नीर नीरज हिलोरिकैं।
कारन कहा है तौन बूझें राधा माधव सों,
सौंह दै, दै नैन-सैन, जुग्म कर जोरिकैं॥
छत्रसाल, स्वामिनी के बैन सुनि बोले स्याम,
तेरो मुख-ससि ससि निरखि निहोरिकैं।
मेरो गुरु चन्द्र, मोसों कहैं ब्रज-चंद्र लोग,
तेरो मुख-चंद्र तौन कारण चकोरि कैं॥

ऊँची भक्तिभावना इस प्रकार हिलोरें लेती रहती थी छत्रसाल के मानस-सरोवर में आठो याम। आश्चर्य होता था उन्हें कि आखिर इन साधुओं ने श्यामसुन्दर का ध्यान न कर क्या सोचकर धूनी रमाई है। वे पूछते हैं ऐसे ही एक रुखखड़ भभूतिया बाबा से :—

को हौ जू, आये तुम कहाँ तें, कौन पंथ जात,
कहौ तौ कहौ, तुम्हें चेला कौन गुरु करे?
जानें बिना नाम के निकाम तें निकाम भये,
मूड़ कों मुड़ाय जानि-बूझिकै कुवां परे।
मातु पितु भाई बन्धु कुटुँब कबीला छाँड़ि,
सुन्दर बसन त्यागि बृथा धूरि में भरे।
कहै छत्रसाल, कान्ह ध्यान में न आये जोपै,
भरम गमाय धूनी ढोय-ढोय कैं मरे॥

कवि की दृष्टि में जीवन का सार तो राधिका-जीवन का अखण्ड ध्यान ही है :—

तीर पै कलिंदिनी के लेत है हिलोरैं नीर,
खचित अमंद फंद चारु चंदिनी के हैं।
फूले फूल मंजु कंजु, पुलिन प्रकाश फैल्यौ,
मालती-मवास मत्त मधुप रमी के हैं॥
दौरे-दौरे फिरैं गोप चोप करि, छत्रसाल,
करिके गुपाल नन्दलाल वसु नीके हैं।
इनहीं कौ नाम जग-जीवन-अमी है, एई,
जीवन हमारी बृषभानु-नंदिनी के हैं॥

छत्रसाल की श्रद्धा-भक्ति रामनाम पर कृष्ण-नाम से कुछ कम नहीं थी। रामनाम की महिमा नीचे के पद्यों में किस श्रद्धाभक्ति से गाई गई है।

गंडकी के घाट पय पीवन गयौ हो गज,
तहाँ आय दुष्ट ग्राह ग्रस्यौ सो पगन में।
आरत-पुकार सुनौ, बिरद बिचारि, मोहिं,
आतुर उबारि, नाहिं पावत भगन में॥'
साँची प्रीति जानि, छत्रसाल, चक्र-पानि आनि,
काढ्यो गज-फंद, नाम जाहिर जगत में।
आधो नाम लेत नहीं छन में उबारि लियौ,
सांकरे में 'रा' कह्यो, और 'म' कह्यौ मगन में॥
चन्दन सौ दानी है प्रमानीं चार छन्दन सो,
ध्यानी जग-वन्दन सौ, फन्दनि छुड़ावनो।
ज्ञानि होत यासों, महाध्यानी होत या के लियें,
पंडित पुरानी होत, मंगल-बढ़ावनो॥
प्रेम होत यासो, जोग-छेम होत यासों, सर्व-
नेम होत यासों, जन-मानस जुड़ावनो।
कहै छत्रसाल, प्रतिपाल करै दीनन कौ,
राम सौ प्रतापी नाम राम को सुपावनो॥
सार सब सार को, विचार निगमागम कौ,
निर्गुन सगुन कौ दुभाष-भाष भलु है।
यंत्र-मंत्र तंत्र सो सुतंत्र राम-मंत्र सदा,
साधु-सुरधेनु, कामतरु-चारु फलु है॥
कहै छत्रसाल, चारि चखनि निहारि अजौं,
सुमति सुधारौ, धारौ याहिं अविचलु है।
चलिगे, चलैंगे, जे चलत हैं प्रतीति मानि,
रामनाम ज्यो कों देत संतत कुसलु है॥

और यह मनोराज्य—

मेरे नैन जुगल चकोर, राम राका-ससि,
काय मन बचन बिलोकि सुख पावेंगे।

अंग-अंग अमित अनंग-छबि देखि-देखि,
द्वंद दुख भंजि भूरि आनंद बढ़ावैंगे ॥
छत्रसाल, मानस-नदीस बीस बिसे आजु,
अमिय अमन्द चारु चखनि चखावैंगे।
मोह-भ्रम-जनित बिदारि तम-तोम अब,
सीता-वर-चंद उर-मंदिर बसावैंगे ॥

कवि प्रार्थना कर रहा है कि हे राम, आयु यों ही व्यर्थ बीती जा रही है, क्यों नहीं आप मेरे हृदय में अपने चरणारविन्दों के प्रति प्रीति उत्पन्न कराते हैं :—

जीती नाहिं जाति विषै-वासना अजीती महा,
देह जरा-जीती भई खारिज खरीती-सी।
कहै छत्रसाल, तुम रीती कों भरीती करौ,
रीती तुत्र विदित भरीती करौ रीती-सी ॥
करहुँ अनीती नित्य छाँड़िकैं सुनीती, नाथ!
भोगौं भव-भीती, अन्त होयगी फजीती-सी।
चरन-सरोज-प्रीती दीजियै प्रतीती राम,
राखि मन-चीती, जानि बैस यौंहिं बीती-सी ॥

विनय, वैराग्य और भक्ति के कितने ही ऐसे पद हैं, जिनमें कवि ने अपना हृदय उड़ेल दिया है :—

करुणामूर्ति जानकी माता की कृपा को कैसे भुलाया जा सकता है, जिनकी सिफारिश से ही राम अपने भक्तों पर द्रवित होते हैं :—

सरन तुम्हारियै में परयौ हौं तुम्हारो जन,
पालौ, चहे घालौ, चहै लालौ, चहै जो करौ।
नामी बदनामी, महा कामी कूर कामनि में,
अधम तमामनि में आम नाम मो परौ ॥
मेरी मात जानकी! प्रमान की मानौ जोपै,
बूझि किन देखौ रामैं, यामैं न मुसा धरौ।
तेरो होय, छत्रसाल, तू त्रिलोकपाल ख्यात,
मेरो प्रतिपाल, मात! तू बताव दूसरौ ॥

× × ×

'हनुमद्विनय' कवि छत्रसाल ने अनेक प्रकार से विविध छंदों में की है। नीचे हम कतिपय ओजस्वी पद्यों को उद्धृत कर रहे हैं :

मदिरा

लीजिये नाम ताको सदा सर्वदा,
नर्मदा मोद-दो अंजनी-लाल है।
जानकी-नाथ के काज सारे महा,
रुद्र-औतार, भौ-तार, गोपाल है ॥
दास की आस पूजै, छता, मो हितै
हेरि दै कै कृपा-कोर, श्रीभाल है।
स्वर्न-सैलाभ-संकास बालार्क-भा,
बीर हनुमंत सो सत्रु कों घाल है ॥

मुक्तहरा

'महाबलि हौ, हनुमंत!' कह्यौ सिय-कंत कृपा करि राजिव-नैन ॥
'रिनी हम, तात! तुम्हारे सदा, न अदा तुम तें, हम भाखत बैन ॥
चहौ सु लहौ तुम भक्त-सिरोमनि! तो मन में मम भक्ति सुऐन।'
छता, कहि जै जय सीस नयौ करुनाकर के कर सौं बर लैन ॥

सुन्दरी

न डरे जब सिन्धु तरे, प्रभु! छांह गहैं न डरे स्वर्भानु की मातै,
न डरै सुरसै मग आय अरी, गढ़ लंक छरी-छरि देव-अरातै ॥
न डरे गिरिद्रोन-उपाटन में, न डरे सग व्यूह अदेव के घातै।
प्रभु के सब काज किये सब भाँति, छता जन के अरि क्यों न निपातै ॥

कवि

सरन तिहारी लई साँची सुनि, राम-दूत!
तेरो चहुँ दीनपाल! दीरघ सुजसु है।
उचित बिचारि छत्रसाल तेरे द्वार आयौ,
हा-हा लौ बिनै पाय परिवे लौं स्ववसु है ॥
आपुनो-बिरानो भलो बुरो सबै जानि परै,
मोकों कहा भयौ एती जानत हवसु है।
समय परें साँकरे में हाँकरें निसाँक रे,
सरन बुलायें कोऊ मारत न असु है ॥

आभार

कालोदरी सिंहिका लंकिनी कातरी,
ज्यों छरी, नाथ! त्यों वीर्य विस्तारि।
जो मोहि हीनो तकै देखि नाहीं सकै,
ताहि कों कालनेमादि सो मारि ॥
है ग जाकों, कहै छत्र ताकों, प्रभो!
लंक-पज्जारिनी पूँछ सों जारि।
देखें तुम्हें गीध सम्पाति के पंख में,
देव निस्संक भे, सो हियें धारि ॥

दंडक

नमो बात-संजात कौं, अंजनी-तात कौं,
आदि-अंतै-प्रजंतै परा प्रीति सों।
कृपा-पात्र श्री-कंत कौ संत भाखैं यहै,
स्वर्न-सैलाभ-संकास की रीति सों।
गहै पाय तेरे, छता, छेमदा प्रेमदा,
रीति सों, नीति सों, गीति सों, प्रीति सों।
महाबीर बीराग, पाथोधि लीला तर्यो,
ना डर्यो आतपा-सीत भीति सों॥

मल्ली

तुम सो प्रभु और, कहौ तुमहीं, केहि ठौर बसै, जेहि जाय निहारौं।
तुर हौ, फुर हौ, सबलायक हौ, खल ऊलर कौ कह गूलर फोरौं॥
बिन राम-रटी रसना मुख के अब सम्मुख जाय कहा कर जोरौं।
सिय-राम के नामहिं राखु, छता, सुनु, वायु-तनै! तुव आस न छोरौं॥

कवित्त

सकल पुरान बेद सास्त्र राज-नीति जानौ,
काव्य कोस, ठोस सर्वगुननि, अनंत हौ।
कहै छत्रसाल, राम-विजय-निसानु, सर्व,
ग्यान के निधानु, भानु-सिष्य भगवंत हौ॥
दुस्तर दुरंत दुराधर्ष तम-चारिन के,
घालक, कृपालु जन-पालक सुसंत हौ।
दुरित-दुरास-दुख-दारिद बिदारु मेरे,
अजय अकंपनारि! बीर बलवंत हौ॥
कृपन-दुवार जाय भरम गँवायबो भो,
रसन रटाय दाँत काढ़िबो बृथा गयौ।
तू तौ दानबीर महावीर हनुमान धीर,
विजय-ध्वजेस-द्वार कासु न भलो भयौ॥
कहै छत्रसाल, पालि, लाल अंजनी के, हमें,
सरन-सुपाल बीर बिरद भलो ठयौ।
मारिहौ तौ लेहौं पद परम, अनाथ-नाथ,
पालिहौ तौ ह्वैहै मोर कुमति-बिनास यौ॥
जरित जराव राज-आसन सुखासन, औ,
बासन निकासन न पाये तहाँ दौ परी।
मोतिन की झालरैं झरोखे झारि द्वार भये,
झिरमिरी जरतरी झार झरि भौं परी॥
भई छार छातरीं, कंगूरे, हीर-छाजे छत,
छत्रसाल, रावन के गेह गाज यौं परी।
राम के प्रताप लंक बंक जारी हनूमान,
सोने के मवास जारे कास कैसी झौंपरी॥
पब्बि जिमि शृंग पर, भानु तम-तोम पर,
दाव परचंड पर मेघ की तरंग है।
राम दसभाल पर, स्याम सिसुपाल पर,
बारिधि बिसाल पर कुंभज उतंग है॥
केकि अहि-वृन्द पै, तुषार अरविन्द पर,
छत्र, ज्यौं गजेन्द्र पै मृगेन्द्र की उमंग है।
अग्नि तूल-ढेर पर, मौन घन-घेर पर,
दनुज-बटेर पर बाज बजरंग है॥

× × ×

अब छत्रसाल के कतिपय नीतिपरक पद्य देखिए, जिसमें पद-पद पर उनका राजनैतिक अनुभव झलक रहा है। आदर्श राजा और आदर्श राज्य का सजीव चित्र अनेक पद्यों में उन्होने खीचा है। उनकी दृढ़ धारणा है कि अत्याचारी राजा कभी फूल-फल नहीं सकता। वे मानते है कि प्रजा-रंजन ही राजा का प्रधान कर्तव्य है। प्रजा संतुष्ट रहे और सेना सदा तैयार रहे यह मंत्र हमेशा उनके सामने रहता था :—

रैयत सब राजी रहे, ताजी रहे सिपाहि।
छत्रसाल ता राज्य को, बार न बांकों जाहि॥

'नीति-मजरी' में से कुछ सुन्दर पद्यों को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

चाहो धन, धाम, भूमि, भूषन, भलाई भूरि,
सुजसु सहूरजुत रैयत कौं लालियौ।
तौड़ादार घोड़ादार बीरनि सों प्रीति करि,
साहस सों जीति जंग, खेत ते न चालियौ॥
सालियौ उदंडनि कों, दंडिन कों दीजौ दंड,
करिकैं घमंड घाव दीन पै न घालियौ।
बिन्ती छत्रसाल करै होय जो नरेस देस,
रैहै न कलेस लेस, मेरा कह्यौ पालियौ॥
अगम अनादि जासु सुनत फिरादि दादि,
होत है सहाय, भाय अंतर कौ पायबो।

तासों राज-नीति में अनीति, कहौ, कौन करै,
छत्रसाल भाखतु है बेदनि कौ गायबो ॥
जोपै कोऊ निबल पै सबल जनावै जोर,
ताको मद तोरि आपु करै जन-भायबो ।
मानियौ, रे मनुज ! बिचारि उर आनियौ, रे !
जानियौ, रे ! गजब गरीब को सतायबो ॥

सवैया

लाख घटै, कुल-साख न छाँड़िये, वस्त्र फटै प्रभु औरहूँ दैहै ।
द्रव्य घटै, घटता नहिं कीजिये, देहै न कोऊ पै लोक हँसैहै ॥
भूप छता, जल-रासि को पैरिबो कौनिहुँ बेर किनारे लगैहै ।
हिम्मत छोड़े तें किम्मत जायगी, जायगौ काल, कलंक न जैहै ॥

कवित्त

कायर के पानि में कृपान कहा काम करे,
गगन-सुफूल काहू देखे नहिं सुने हैं ।
कृपन-हुलास, वार-नारि कौ विलास जैसे,
जींगनि-प्रकास, प्रेत-पावक न गुने हैं ॥
बनिया कौ क्रोध जैसो, ऊसर कौ खेत तैसो,
घूसर कौ घास बोय, कहौ, कौन लुने हैं ।
छत्रसाल, राम बिन आन काम कैसे,
जैसे सेमरि कों सेइ सुवा भुवा भूरि घुने हैं ॥
एक सो सुभाय एकरूप मिलि जाय जहाँ,
बिलग-उपाय तहाँ नेक न लखातु है ।
रहै आपु जौलों, तौलों मीत कों न आवै आँचु,
मीत कौ बिषाद देखि जारै निज गातु है ॥
बिरह-उदेग उफनात छीर नीर बिन,
हृदय-अधार देखि सो दुख बिलातु है ।
सज्जन सुचेतन की ऐसी प्रीति, छत्रसाल,
पानी और पै की जैसे प्रगट दिखातु है ॥
राज्य-तरु चंप, चंचरीक सम भूप कह्यौ,
भारत सुअबरीप जाहिर जनक भे ।
अकनि कियौ न कान स्वारथ-प्रमान कबौ,
नाहिं लेत लोभ-लाभ-सौरस तनक भे ॥
नीति बिन जाने भूप कूप बिन पानी सम,
छत्रसाल कहे, धुनि ताँत की भनक भे ।
नानक भे भाँड के, ब्रह्माण्ड भये ऊपर के,
कैसे वे भूप कूर कूकर भे बनक के ॥

सवैया

शब्दनि अर्थ ज्यों काठ हुतासन, तार के जंत्र में राग कलोलै ।
सुद्ध सुभावनि में, छतसाल, रमै हरि ज्यों सँग-संतनि डोलै ॥
संन में जीव ज्यों, बेनु में छीर रहै, दधि में घृत सार अमोलै ।
फूल में गंध बसै, महि कंचन, पंचनि त्यों परमेसुर बोलै ।

दोहा

छत्रसाल, जन पालिबो, अरिहिं घालिबो दोय ।
नहिं बिसारियौ, धारियौ, धरा-धरन कोउ होय ॥

बालक-लौं पालहिं प्रजा, प्रजा-पाल छतसाल
ज्यों सिसु-हित अनहित, सुहित करत पिता प्रतिपाल ।
छत्रसाल, राजान कों, बर्जित सदा अनीति ।
द्विरद-दंत की रीति सों, करत न रैयत प्रीति ॥
छत्रसाल, नृप-तेज तें, दुष्ट-प्रभाव न होय ।
जिमि रवि, उडुगन दिसि-करहुँ करत छीन छबि सोय ॥

महाराजा छत्रसाल के रचे कतिपय फुटकर पद्यों को उद्धृत कर हम यह लेख समाप्त करते है ।

ईसुर अनीसुर में अंतर अनंत ऐसो,
जैसे मित्र चित्र कौ न करतु उदोतु है ।
उदर-निमित्त कोऊ नित्त कों अनित्त कहै,
कोऊ परवित्त-काज बन्यौ ब्रह्म-गोतु है ॥
कहै छत्रसाल, जैसे भक्ति बिन ग्यान, जैसे,
ध्यान बे-बिराग, जैसे पानी बिन पोतु है ।
तैसेहीं बिचारु चारु माया कौ प्रचारु सर्व,
हंस बसु नाहिं पर्महंस कैसे होतु है ॥
आया तौ, सुरत करि नाम कों न गाया कभी,
बोधा पूत जाया-मोह-माया-भरयाव में ।
कहै छत्रसाल, चित्त-चाया सर्व पाया सुख,
धाया फिरा अर्व-खर्च माया से उपाव में ॥
अनित मनाया, नित सत्य बिसराया, भेद-
बेदनि बताया सो न लाया दिल-भाव में ।
पाया नर-जन्म, काया मृतक समान तौलौं,
जौ लगि न न्हाया दान-दाया-दरयाव में ॥
नखत, मयंक भानु-मण्डल बिचलि जातो,
मेरु ध्रुव मण्डल समस्त, ऋषि सातो जू ।
बिगत विकार अधिकार अंधकार होतो,
प्रलय पयोद निसि द्यौस झर लातो जू ॥

कर्मफल-प्रेरक कृतग्य छत्रसाल कहै,
ईसुर न होतौ तौ जहान मिटि जातो जू।
प्रबल प्रभंजन हिरातो सिसुमार-चक्र,
भूमि-गोल बिथरि अनंत में मिलातो जू॥

छत्रसाल, बिपत बितीत होति धीरज में,
संपत में जासु सील सत्य कों पिछानिये।
परम प्रवीन दीन-हीन-प्रति-पालन में,
अभय अछीन जासु बिक्रम बखानिये॥

अजसु बराय सुद्ध सुजसु प्रसारि राखै,
सहज प्रमान जासु लोक में प्रमानिये।
एक अवलंब ईस-प्रेम है अधार जाकौ,
सोई संत, सोई साधु, सोई सिद्ध जानिये॥

सवैया

तत्व महान कह्यौ प्रथमै, तेहितें पुनि पाँचहु तत्व, प्रवीनो।
भेद किये दास-पंच रु चौबिस, तत्व पचीस कहूँ पुनि चीनो॥
ए सिगरे मिलिकैं रच जीवहिं कर्म प्रधान तहाँ करि दीनो।
सो निहचै, कह छत्र नृपाल, रहै प्रभु मध्य उदौ, मधि लीनो।
न हैं हम विप्र अजामिल, नाथ! न गीध गयन्द की पाँति बिठारो।
न हैं गनिका-सबरी-सरि के, हमरो इनतें कुल-गोत नियारो॥
न हैं सदना, न धना, कबिरा, रयदास की जातिहुँ ना निरधारो।
छता, न पता कहिबी अपुनो, तुमहीं प्रभु! डारो कहूँ पनवारो॥

छप्पय

श्रीगुरु-हरि-पद-कमल अमल, अलि छत्रसाल मन।
पुनि सत-संगति पुष्प-सार, संसार विटप मन॥
अकथ प्रेम-रस-रतन रतन-निधि मधि अमोल गनि।
अवगाहक प्रथु, जनक, सनक, सुक, अज, सिव धनि धनि॥
प्रहलाद अंबरीषादि ध्रुव भोगतहूँ रस रह बिरस।
परिहरि बिकार चल चारि लखु, राज-नीति प्रभु-प्रीति-त्रस॥
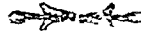
कहाँ आ गया मैं ?

श्री रामरतन 'नीरव'

छल गये अजाने विश्वास
संशयों का क्रूर अट्टहास
ये कहां आ गया मैं ?

जंगली हवाओं का वहशीपन
पात-पात विचरता उत्पीड़न
अभावों के हार बंटा संजीवन
ज्यूं हो मुर्दे सूरज का उदीपन

पल गयीं बे जान निःश्वास
बुझे आंखों के अमलतास
ये कहां आ गया मैं ?

दीवारों पर धूप के कफन
चिंदियों में बिखरा ये नमन
आत्मीयता कहीं खो बैठी तपन
पसरी है कैक्टस पर थकन

होने लगे अजूबे ही अहसास
और भी जकड़े दिशाओं के पास
ये कहाँ आ गया मैं ?

माखनलाल चतुर्वेदी : छायावाद : मुकुटधर पाण्डेय

श्री श्रीकान्त जोशी

श्री मुकुटधर पाण्डेय निश्चय ही मध्यप्रदेश की एक ऐसी विभूति हैं जिन पर सम्पूर्ण हिन्दी जगत् को अभिमान है। वे हिन्दी की खड़ीबोली की कविता के स्वर्णयुग 'छायावाद' के प्रथम समीक्षक एवं व्याख्याता हैं। डा० नामवरसिंह के शब्दों में "मुकुटधर पाण्डेय ने १९२० ई० की जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर की 'श्री शारदा' (जबलपुर) में "हिन्दी में छायावाद" शीर्षक से चार निबन्धों की एक लेखमाला छपवाई थी। जब तक किसी प्राचीनतर सामग्री का पता नहीं चलता, इसीको छायावाद सम्बन्धी सर्वप्रथम निबन्ध कहा जा सकता है। उस निबन्ध से पहले छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणियाँ हो चुकी थीं। प्रस्तुत निबन्ध "कवि स्वातन्त्र्य" में मुकुटधरजी ने रीति-ग्रन्थों की परतंत्रता से मुक्त होकर कविता मे व्यक्तित्व तथा भाव, भाषा छन्द......आदि मे मौलिकता की आवश्यकता पर जोर दिया है। दूसरा निबन्ध 'छायावाद क्या है, सबसे महत्त्वपूर्ण है। आरम्भ में ही लेखक कहता है, ...छायावाद एक ऐसी मायामय सूक्ष्मवस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असंभव है।" क्योंकि "ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं..... छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते है। उनकी रचना की सम्पूर्ण विशेषताएँ उनकी इस दृष्टि पर ही अवलम्बित रहती हैं। छायावाद में......प्राकृतिक दृश्य और घटनाएँ सांकेतिक रूप में अदृश्य तथा अव्यक्त के प्रकाशन में साहाय्य पहुँचाती हैं।"

श्री नामवरसिंह ने पाण्डेयजी के उपर्युक्त छायावाद सम्बन्धी वक्तृत्व को अपनी छायावाद शीर्षक महत्त्वपूर्ण पुस्तक में (पृष्ठ ९-१० पर) न सिर्फ विस्तार सहित उद्धृत किया है, बल्कि उन्होंने यह भी लिखा है कि "छायावाद पर पहला निबन्ध होने के साथ ही (पाण्डेयजी का यह निबन्ध) अत्यन्त सूझ-बूझ भरी गम्भीर समीक्षा भी है। इस निबन्ध का ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं, बल्कि स्थायी महत्त्व भी है।"

नामवरजी ने छायावाद के प्रथम समीक्षक के रूप में मुकुटधरजी को जो मान्यता दी है उस पर दो मत नहीं हो सकते।

दिनांक १३ जुलाई १९६८ के मध्यप्रदेश सन्देश में भी पाण्डेयजी ने एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध छायावाद शीर्षक से प्रकाशित किया है।

पाण्डेयजी के इस अप्रतिम ऐतिहासिक महत्त्व के कारण मेरी यह तीव्र आकांक्षा थी मैं उनसे एक प्रश्न भेंट लूं और छायावाद के प्रथम कवि के सम्बन्ध में प्रचलित नवीनतम मान्यताओं के आधार पर उनकी सम्मति प्राप्त करूँ। इधर कुछ वर्षों से यह बात बड़ी ही तीव्रता से महसूस की जाने लगी है कि छायावाद के प्रथम कवि निर्विवाद रूप से पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ही रहे हैं। अपनी प्रकाशन-विमुख प्रवृत्ति, शील-वृत्ति और आत्म-उपेक्षा-वृत्ति के कारण न तो अपनी रचनाओं को पुस्तक रूप में समय पर प्रकाशित किया और न ही कभी प्रचलित धारणाओं के खण्डन-मण्डन में सम्मिलित होना श्रेयस्कर माना। परिणाम यह रहा कि उनकी सतत् उपेक्षा की जाती रही और वे उपेक्षित बने रह गये। सन् १९५४ मे हिन्दी के विख्यात समीक्षक पण्डित लक्ष्मीनारायणजी 'सुधांशु' के सम्पादकत्व में 'अवन्तिका' का काव्यालोचनांक प्रकाशित हुआ था। यह एक अभूतपूर्व विशेषांक था जिसका शीर्षक था, "छायावाद का आरम्भ कब हुआ ?" इस परिसंवाद में सर्वश्री रामनरेश त्रिपाठी, रायकृष्णदास, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, नन्ददुलारे वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, प्रो० मनोरंजन, प्रभात, जानकीवल्लभ शास्त्री, आरसीप्रसाद सिंह, विनयमोहन शर्मा, प्रभाकर माचवे एवं शिवनाथ आदि साहित्य के दिग्गजों ने भाग लिया था। जब मैं सन् १९५५ में खण्डवा आया तो मेरे पास यह विशेषांक भी था, अतः मैंने स्वर्गीय चतुर्वेदीजी से इस विषय पर कुछ चर्चा करना उचित समझा। इस अंक में सर्वश्री नन्ददुलारे वाजपेयी एवं प्रभात ने सांकेतिक रूप में, तथा डा० प्रभाकर माचवे एवं डा० विनयमोहन शर्मा आदि ने अकाट्य रूप से माखनलालजी को छायावाद का जनक माना है। अतः मैंने उनसे सहज ही पूछा कि "इस परिसंवाद के सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है जब कि इसमें भाग लेने वाले कुछ महानुभावों की यह स्पष्ट सम्मति है कि छायावाद के पुरस्कर्ता आप हैं ?" माखनलालजी ने जो छोटा सा उत्तर दिया वह यह था,......"समीक्षक की सम्मति का एकेडेमिक महत्त्व है जब कि कवि की सम्मति उसकी कहन या वक्तव्य बन जाती है। हम कोई वक्तव्य

देना नहीं चाहते और शस्त्रक्रिया (माखनलालजी समीक्षा को शस्त्रक्रिया कहते थे) करना भी जरूरी नहीं समझते। हमें इतना याद है कि १९११-१३ में जब गणेशंकरजी हमारी कुछ एकान्त की तुकबन्दियों को पढ़ते थे जिनमें कि कुछ देर के लिए मैं अपना और केवल अपना बनकर रहता था, तो हैरत में पड़ जाते थे। तब मुझे कहना पड़ता था कि ये मेरी कविता नहीं है, यह मैं स्वयं हूँ. मेरी लाचारी है। वे कहते थे, "बड़ा अकेला रास्ता है, चलेगा नहीं।" मैं कहता था, "लाचारियों को लेकर अकेले ही कुली की तरह चलना होता है।"

माखनलालजी का उपर्युक्त वक्तव्य, मुझे लगता है, छायावाद के सन्दर्भ मे महत्त्वपूर्ण है, इसकी भी शस्त्र-क्रिया होनी चाहिए।

कविवर रामधारीसिंहजी दिनकर ने भी छायावाद के सन्दर्भ मे माखनलालजी को लेकर यह उल्लेखनीय वक्तव्य दिया है, "छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था......(मिट्टी की ओर पृष्ठ १३)" छायावाद की दुर्दशा पराकाष्ठा को पहुँच गयी होती यदि उसमें पन्तजी, निरालाजी प्रसादजी, माखनलालजी, भगवतीचरणजी और नवीन नही हुए होते। "(वही पृष्ठ ३०)" "माखनलालजी, इन कवियों के बहुत पहले मैदान में थे और छायावाद की छाया शायद सबसे पहले उन्ही पर पड़ी थी। वह और प्रसाद प्रायः समकालीन थे, किन्तु १९१२-१३ की लिखी हुई कविताओं को देखने से ज्ञात होता है कि आगे चलकर उदय होनेवाली किरण की झाँई जैसी माखनलालजी की रचनाओं में स्पष्ट होकर पड़ रही थी, वैसी प्रसाद जी की रचनाओं मे नही। कारण, शायद यह भी था कि प्रसाद का प्रगाढ़ पांडित्य नई शैली और मनोदशा को कुछ दूर तक अपने वश में रखने में समर्थ था किन्तु उद्दाम भावुकता के कारण माखनलालजी पर नवीनता का प्रभाव बहुत आसानी से पड़ सकता था।" (वही पृष्ठ ३१-३२)

न सिर्फ दिनकरजी का ही अपितु माखनलालजी को छायावाद के प्रथल पुरस्कर्ता के रूप में मान्यता देनेवाले और भी जनेक वक्तव्य मेरे सामने थे। मैंने यह अनिवार्यतः अनुभव किया कि मुझे इस सत्य तक पहुँचने के अपने प्रयासों में एक प्रयास मुकुटधरजी पाण्डेय के माध्यम से भी करना चाहिए। मे जानता था कि पाण्डेयजी छायावाद के जनक के रूप में प्रसादजी को मान्यता देते रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रसादजी छायावाद की पराकाष्ठा हैं। माखनलालजी और प्रसादजी के काव्य-व्यक्तित्व में भी पर्याप्त अन्तर है, किन्तु प्राप्त प्रमाणों की कसौटी पर प्रसाद छायावाद के पुरस्कर्ता-कवि सिद्ध नहीं हो पाते। मैं चाहता था कि पाण्डेयजी अपनी तीक्ष्ण समीक्षा दृष्टि से प्रमाणों के आर-पार पहुँचे और विलम्ब से ही सही, सत्य को प्रकाशित करने में मेरी ऐतिहासिक सहायता करें। मैने पाण्डेयजी को एक पत्र लिखा उसमें तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न भेजे थे। पत्र इस प्रकार था—

जवाहरगंज, खण्डवा, म० प्र०
१६-११-६८

श्रद्धेय मुकुटधरजी पाण्डेय
सादर प्रणाम

एक सुप्रसिद्ध पत्र के लिए मैं हिन्दी के कुछ गण्यमान्य साहित्यकारों से प्रश्न-भेटें ले रहा हूँ। आपकी सेवा में निम्नलिखित तीन प्रश्न प्रेपित है—

(१) पाण्डेयजी, छायावाद का छायावाद नामकरण करने के कारण आप हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अमर रहेंगे, पर जहाँ तक छायावाद के प्रथम कवि के संबंध में आपकी स्थापना है, वह पुर्नचिन्तन की अपेक्षा रखती है। मैं यह मानता हूँ कि आप जेसे श्रेष्ठ चिन्तक दुराग्रही नहीं हो सकते, इसी कारण ये प्रश्न करने का मै साहस कर पा रहा हूँ। छायावाद के प्रौढ़तम कवि एवं श्रेष्ठतम साधक के रूप मे निश्चय ही प्रसादजी का अप्रतिम स्थान है किन्तु छायावाद के प्रवर्तक, प्रथम कवि के रूप मे अब यह निर्विवाद रूप से माना जाने लगा है कि पं० माखनलाल चतुर्वेदी ही स्वीकार किये जा सकते हैं। माखनलालजी की आत्मगोपन की प्रवृत्ति के कारण तथा उनके राष्ट्रीय-स्वतंत्रता-संग्राम के एक अन्यतम सैनिक होने के कारण उनके इस महत्त्व की ओर तात्कालिक रूप से ध्यान नहीं दिया जा सका। क्रमशः जब गहरा विश्लेषण किया गया है तो यह सचाई छिपी न रह सकी। छायावाद के विश्रुत् व्याख्याता स्वर्गीय श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने स्पष्ट घोषणा की कि, "छायावाद की कविता का श्रीगणेश करने का श्रेय प्रसाद को दिया जाता है किन्तु उसके प्रति रुचि जाग्रत करने का श्रेय माखनलाल को है। (संचारिणी, पृष्ठ १८५, प्रथम संस्करण)।

अवन्तिका (सम्पादक श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र 'सुधांशु')

के जनवरी १९५४ के काव्यालोचनांक में इस सन्दर्भ में जो मत दिये गये वे इस प्रकार हैं--

(क) "१९१३ के लगभग छायावादी प्रवृत्ति का आरंभ (माखनलालजी की 'मेरा उपास्य' कविता से) माना जा सकता है। उन्हें हम हिन्दी का प्रथम अभिव्यंजनावादी कवि कह सकते हैं। मुझे ज्ञात नहीं इस काल की किसी भी खड़ी बोली हिन्दी रचना में अभिव्यंजना की सफाई हो।। यहाँ स्मरण रखने की बात है कि माखनलालजी का तत्कालीन अध्ययन का दायरा अंग्रेजी और बंगला तक नहीं बढ़ा था।

डा० विनय मोहन शर्मा

(ख) सन् १३ से सन् २० तक का समय इस स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति के अधिक गाढ़ा होकर छायावाद की विशिष्ट काव्य-शैली के रूप में परिवर्तित और परिणत होने का समय कहा जा सकता है..." कानपुर की प्रभा पत्रिका का प्रकाशन-काल भी यही था। प्रताप और प्रभा मे छायावाद की राष्ट्रीय शाखा का उद्‌भव और उन्मेष हो रहा था। 'भारतीय आत्मा' और नवीन उसके प्रमुख कवि थे।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

(ग) "माखनलालजी हमारे छायावाद के पुरौधा रहे है' (श्री सुमित्रानन्दन पन्त एक निजी पत्र में) तथा अपनी एक सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'छायावाद का पुनर्मूल्यांकन' में पन्तजी ने ये पक्तियाँ लिखी हैं, माखनलालजी की रचनाओं में राष्ट्रीय उद्‌बोधन के तेजस्वी गीत तथा सगुण शक्ति परक एव आध्यात्मिक स्वरों की प्रमुखता होने पर भी अभिव्यक्ति, भाव-बोध, तथा प्रकृति-स्पर्श की दृष्टि से वे छायावादी अभिव्यंजना शैली से पृथक् नही की जा सकती। भाषा की दृष्टि से उन्हें अनगढ़ छायावादी कहा जा सकता है किन्तु काव्य-वस्तु की दृष्टि उनमें रहस्य भावना सूक्ष्म अभिव्यंजना, प्रकृति का जीवन्त स्पर्श, हृदय का तारुण्य सौन्दर्य-मूल्यो की स्वीकृति आदि अनेक ऐसे तत्त्व है कि उनके काव्य को छायावादी काव्य से उस तरह पृथक् नहीं रखा जा सकता जिस तरह हम श्रीधर पाठक, गुप्तजी या हरिऔधजी के काव्य को रख सकते है......और कुछ आलोचक उन्हे छायावाद का प्रवर्त्तक मानते है तो यह उपर्युक्त धारणा को ही पुष्ट करता है।"

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' के शब्दो में, "श्री माखनलाल चतुर्वेदी की महत्ता इसलिए अधिक है क्योकि उन्होने छायावादी युग में भविष्य की (आज की) काव्य-शैली को उजागर किया था। यह सच है कि उन्होंने ४०-५० वर्ष पूर्व जो लिखा वह आज के युगीन साहित्य में उतर रहा है।

(४-४-६६ को जबलपुर का भाषण)

कृपया सूचित करें कि इन मतों के आधार पर तथा माखनलालजी के प्रकाशित काव्य ग्रन्थों के आधार पर (जिनमें काव्य रचना की तिथि भी दी गयी हैं) क्या आप इस विषय पर न्यायोचित पुर्नचिन्तन करना चाहेंगे?

माखनलालजी, जैसा कि स्वय आपने ही लिखा भी है, आपके काव्य-गुरु थे। यह संकेत भी इसी मत को दृढ़ करता है कि अब माखनलालजी के संबध में ऐतिहासिक त्रुटि को सुधार लेने में विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए।

दूसरा प्रश्न

छायावाद शीर्षक अपने विचारोत्तेजक निबन्ध (मध्य-प्रदेश संदेश १३ जुलाई १९६८ पृष्ठ १३) में आपने एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात कही है, वह यह कि "झरना के पश्चात् छायावादी कविताओं की एक बाढ़ सी आयी जिनमें शृंगारिकतापूर्ण लाक्षणिक भाषा में प्रेम का राग अलापा गया......पर (इनमें) अधिकांशतः आध्यात्मिकता की ओट में भौतिक प्रेम का ही आभास था।"

अपने उपर्युक्त विचारो के आधार पर कृपया स्पष्ट करें कि 'झरना' में या प्रसादजी मे भौतिक प्रेम का स्वर प्रमुख मानते है या आध्यात्मिक प्रेम का, तथा महादेवीजी के काव्य में यह स्वर किस सीमा तक छायावादी आध्यात्मिकता को व्यक्त करता है और किस सीमा तक छायावादी भौतिकता को?

तीसरा प्रश्न

इसी लेख में आपने आगे जाकर यह भी कहा कि "छायावाद में एक दिव्य-सौन्दर्य के दर्शन होते हैं जो प्रकृति सौन्दर्य का मूलाधार है।" तो क्या यह माना जाय कि छायावाद की सौन्दर्यमूलक दो धाराएँ थीं, एक भौतिक धारा और दूसरी दिव्य धारा। परवर्ती समीक्षकों ने छायावाद को या तो आध्यात्मिक धारा माना है या फिर शुद्ध भौतिक यदि आप दोनों ही धाराओ का समाहार छायावाद में मानते हों तो कृपया इस बात का तनिक विस्तार से विश्लेषण करें।

आशा है इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के विस्तृत उत्तर देकर आप छायावादी समीक्षा और छायावादी काव्य के अध्येताओं को बल पहुँचायेंगे।

बहुत आभार के साथ

विनम्र

श्री मुकुटधरजी पाण्डेय
पोस्ट–बोलपुर (श्रीकान्त जोशी)
द्वारा–सकती जवाहरगंज, खण्डवा म०प्र०
जिला–बिलासपुर म० प्र०

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए पाण्डेयजी ने जो प्रत्युत्तर मुझे भेजा है वह इस प्रकार है—

श्रीराम रायगढ़
२८–११–६८

मान्यवर,

आपका दि. १६–११–६८ का पत्र गाँव का चक्कर काटते हुए कल सन्ध्या को मिला। उत्तर में निवेदन है विगत् कुछ वर्षो के भीतर मेरे पास छायावाद के संबंध में जिज्ञासा-मूलक अनेक पत्र आये और यद्यपि मैंने प्रत्येक का उत्तर यथा-संभव यथा-समय ही दे दिया था, तथापि 'छायावाद' पर मैंने वह लघु लेख लिखा था जिसका कि आपने जिक्र किया है। उस लेख में मैंने 'छायावाद' सम्बन्धी अपनी जानकारी और धारणा सही रूप में प्रकट की थी। पर वे मेरे व्यक्तिगत विचार थे। यदि विद्वानों के शोध द्वारा वस्तु-स्थिति कुछ और सिद्ध होती है तो इसमें भला मुझे क्या दुराग्रह होगा ? मैंने शोध तो किया नहीं था।

नए ढंग की रचनाएँ बहुत पहिले शुरू हो गई थीं। छायावादी ढंग की छिटपुट रचना भी छपती रही होंगी। पर मैंने जब 'छायावाद पर लेख लिखे तब मेरे सामने 'प्रसादजी का 'झरना' था। श्री मा. ला. चतुर्वेदीजी की वैसी कोई पुस्तकाकार रचना कदाचित् तब तक नहीं निकली थी। सन् १९१३ में वे जरूर लिखते रहे होंगे क्योंकि प्रभा के सम्पादन में उनका मुख्य हाथ रहा करता था। पर उनकी फुटकर रचनाओं की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ होगा। उनकी १९१३ वाली 'मेरा उपाय' शीर्षक कविता जिसका उल्लेख डा० विनय मोहन शर्मा ने किया है, मैंने अभी तक देखी नहीं, देखी भी हो तो याद नहीं।

श्री चतुर्वेदीजी मुझसे उम्र में बहुत बड़े थे। वे मेरे पूज्याग्रज के मित्र थे। अतएव मैं उन्हें अपना गुरुजन मानता था। 'काव्यगुरु' शीर्षक तो सम्पादक का दिया हुआ है और उसमें हर्ज भी क्या है। मैं उनकी आज्ञा का पालन करता था। श्री पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी पर एक कविता 'कर्मवीर' के लिए मैंने उनके आग्रह पर लिखी थी। श्री चतुर्वेदीजी की रचनाएँ रहस्य-भावनापूर्ण, व्यंजना-प्रधान होती थीं जो 'छायावाद' के अपरिहार्य अंग हैं। इस बात को भला कौन अस्वीकार कर सकता है ? और वे मार्गदर्शी तो थे ही शैलीकार भी थे। पद्य में ही नहीं गद्य में भी। आपके प्रश्न नं०२ और ३ के उत्तर में वक्तव्य है कि किसी पुस्तक-विशेष या व्यक्ति विशेष को लेकर (जैसा कि आप चाहते हैं)कोई विचार प्रकट करना मैं ठीक नहीं समझता। भौतिक प्रेम भी कभी-कभी आध्यात्मिक प्रेम में बदल जाता है। मैं सन्त-महात्माओं की बात नहीं कहता। सामान्य कवि के हृदय में भौतिक प्रेम स्वाभाविक है। पर आगे चलकर काव्य साहित्य में उसकी परिणति आध्यात्मिकता में हो जाय तो उसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। 'छायावाद' के काव्य-सौन्दर्य में 'भौतिक धारा' और 'दिव्य-धारा' का पता लगाना समीक्षक का काम है, आप लगाइए। सामान्य पाठक तो आम खाने से काम रखता है, पेड़ गिनने से नहीं।

आशा है आपको मेरे उत्तर से सन्तोष होगा। कृपा रखिए।

आपका
मुकुटधर पाण्डेय

श्रद्धेय पाण्डेयजी का उपर्युक्त उत्तर उनकी विनम्रता, स्पष्टवादिता, श्रद्धाभावना और समीक्षकोचित विश्लेषण क्षमता का परिचय देता है। मेरी अपनी दृष्टि में उपर्युक्त पत्र स्पष्ट करता है कि (१) पुस्तकाकार प्रकाशित न होने से माखनलालजी की सन् १९११ से १९२४-२५ तक की रचनाएँ पाण्डेयजी के समक्ष नहीं आ सकीं। उनकी छायावादी सम्बन्धी धारणा प्रसादजी की 'झरना' पुस्तक पर आधारित है।

(२) माखनलालजी की रचनाओं में प्राप्त 'रहस्य भावनापूर्ण व्यंजना के कारण' वे उन्हें छायावाद के अन्तर्गत मानने में कोई बाधा नहीं पाते, उन्हें वे इस दिशा में 'मार्ग-दर्शी' कहने में भी किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करते।

(३) वे माखनलालजी के पद्य में ही नहीं गद्य में स्थित "शैलीकार' को भी विशेष महत्त्व देते हैं।

(४) यद्यपि वे शीलवश अपने को समीक्षक नहीं मानते, केवल सामान्य पाठक ही मानते हैं, फिर भी वे स्वस्थ समीक्षा के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त में दृढ़ आस्था रखते हैं कि समीक्षा को वृत्तियों को लेकर चलना चाहिए व्यक्तियों को सम्भवतः नहीं। उनका यह सिद्धान्त शायद उस समय की पीढ़ी की सामूहिक दृष्टि का परिचायक है। स्वयं माखनलालजी भी व्यक्ति को छोड़कर ही समीक्षा-वक्तव्य देते थे और उन्हें सामान्य व्यक्ति की प्रतिक्रिया से अधिक महत्त्व न देने का आग्रह करते थे।

यह सत्य है कि माखनलालजी की सन् १९११-१९२२ के मध्य की लिखी गयी रचनाओं का मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। छायावाद के सम्बन्ध में वास्तविक दृष्टि अपनाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक प्रतीत होता है कि उनकी इस बीच की समस्त रचनाएँ एक स्वतन्त्र संग्रह के रूप में प्रकाशित की जायँ। डा० दशरथ ओझा और डा० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा रचित पुस्तक 'सुकवि-समीक्षा, में इसी बात पर बल देते हुए स्पष्ट लिखा है कि— 'छायावाद शैली में लिखी हुई आपकी (माखनलालजी की) अनेक कविताओं में कहीं भी अनुकरण का आभास भी नहीं है। शैली की मौलिकता में आपका विश्वास है, इसी कारण छायावादी परम्परा में आलोचकों ने इनका नाम नहीं गिनाया। यदि इनकी कविताओं का छायावादी काव्य की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो प्रचुर सामग्री उसमें उपलब्ध होगी। एक गीत देखिए —

जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है
तो प्रणय से प्रार्थना में मोह क्यों है
तो प्रलय में पतन से विद्रोह क्यों है?

(सुकवि-समीक्षा पृष्ठ २३४)

यह उचित समय है कि हिन्दी के छायावाद काव्य की प्रारम्भिक चेतना के पुरस्कर्ता पं० माखनलालजी चतुर्वेदी का सही मूल्यांकन अब उपस्थित किया जाय। मेरी निर्ज धारणा यह है कि छायावाद की व्यक्ति चेतना का विस्फोट निश्चय ही माखनलालजी के वर्चस्वी हाथों से हुआ है छायावादी सूक्ष्म-सौन्दर्य-दृष्टि, अभिव्यंजनात्मक-लाक्षणिकता जीवंत-प्रकृतिबोध और आराध्य के प्रति एक रहस्यमयी समर्पणशीलता को उनके काव्य ने प्रारम्भ में ही साहसि स्वीकृति प्रदान की थी। उनका काव्य अपने क्षितिज क उत्तरोत्तर व्याप्ति देता गया। इस व्याप्ति में उसने कु सांस्कृतिक जीवंत मूल्यों को अर्जित किया और राष्ट्रीय बलि दानवादी काव्य की अप्रतिम प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किय साथ ही वह छायावाद से उस बिन्दु पर पृथक् भी हो गय जहाँ वह निरी 'उस पार' की अभ्यर्थना करने लगा औ नारी सौन्दर्य के प्रस्तुतीकरण में स्वयं कवि ही की कम जोरियों को अतिशय तनिमामय (किन्तु पुरुपार्थहीन) अभि व्यक्ति देने लगा। मुझे आशा है इस दिशा में, सोती ह प्रमादग्रस्त समीक्षा, अपना नयनोन्मीलन करेगी। हिन् समीक्षा का यह दुर्भाग्य रहा है कि वह अहमन्यता से स ही पराजित रही है। परिणामतः एक ओर तो वह अपेक्षि वस्तुसत्ता का निर्वाह नहीं कर सकी है, और दूसरी ओ स्थापित निर्णयों को प्राप्त प्रमाणों के आधार पर परिवर्ति कर सकने के अनिवार्य साहस से वंचित रही है। यह नहं जहाँ तक छायावाद का सम्बन्ध है, हिन्दी समीक्षा छाय वादी कवियों के सुदीर्घ आतंककारी वक्तव्यों के मध्य अपना रास्ता ढूँढ़ पाने में सफल नहीं हो सकी है। समीक्ष को कृति तक सीधे पहुँचना और अपनी सीधी पहुँच से प्रा निर्णयों को व्यक्त कर सकना आना ही चाहिए। छायावा के संदर्भ में यह नहीं हो सका है। माखनलालजी की अ शायद इसलिए भी ध्यान नहीं दिया जा सका कि उन्हो लम्बे-लम्बे वक्तव्यों की इस चक्रव्यूही परम्परा को मान्यता नहीं दी।

कर्नल अवस्थी की वीरता

(कामेंग युद्ध की एक ऐतिहासिक घटना)

सीताराम जौहरी, मेजर (अवकाशप्राप्त)

(नेफा में चीन के आक्रमण की कहानी हमारे लिए अप्रिय है। चीनियों ने नेफा के कामेंग और वालांग क्षेत्रों पर आक्रमण किया। वालांग में हमारी सेना ने चीनियों का डटकर सामना किया। एक-एक इंच भूमि के लिए वे लड़े। यह दूसरी बात है कि उस क्षेत्र में चीनियों की बहुत अधिक संख्या और अधिक हथियारों के कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा। वहाँ भारतीय सेना के अधिकारियों में लड़ने का संकल्प था। किंतु दुर्भाग्यवश कामेंग में यह स्थिति नहीं थी। वहाँ भी चीनी सेना की संख्या अधिक थी और उनके हथियार भी अधिक थे किंतु वहाँ कुछ वरिष्ठ अफसरों में लड़ने की इच्छा शक्ति (विल टू फाइट) की कमी थी। इसलिए जहाँ वे शत्रु से मोर्चा ले सकते थे वहाँ भी उन्होंने युद्ध बचाया और वे पीछे हट आये। कामेंग में भी जहाँ स्थानीय अफसरों को अवसर मिला, वे लड़े और खूब लड़े। कामेंग में चीनियों के दबाव से अथवा उनसे युद्ध करते-करते वे पीछे नहीं हटे। इस प्रकार तो संसार की प्रत्येक सेना को कभी कभी पीछे हटना पड़ता है। किंतु कुछ वरिष्ठ अफसरों के कारण बिना लड़े ही सेना नेफा से लौट पड़ी। कहीं कहीं तो भगदड़ सी मालूम होत थी। नेफा से इस प्रकार सेना के चले आने का प्रभाव देश पर बहुत खराब पड़ा। इस विषाद-पूर्ण वातावरण में उन वीर सैनिकों के कारनामें खो गये जो उस विपरीत स्थिति में भी भारतीय सेना की ऊँची परम्परा का पालन करते हुए वहाँ वीरता से लड़े थे। उनमें कितने ही प्रसंगों में अपूर्व वीरता, साहस और युद्ध-कौशल का प्रदर्शन हुआ। हमारी सम्मति में ये प्रसंग जनता के सामने आने चाहिए जिससे वे नेफा के युद्ध को संतुलित दृष्टिकोण से देख सकें। इसलिए हमने पाँच प्रसंग चुने हैं। राजपूत चौथी बटालियन के लें० कर्नल अवस्थी का, कुमाऊँ रेजिमेंट के मेजर शैतान सिंह का, सिख रेजिमेंट के कैप्टन पालटा का, राजपूत रेजिमेंट के कैप्टन डागर और सिख रेजिमेंट के हवलदार ईशरसिंह का। चीनियों ने जिस समय नेफा पर आक्रमण किया उस समय लद्दाख पर भी नया आक्रमण किया था। मेजर शैतान सिंह वहाँ लड़े थे। इन प्रसंगों में भाग लेने वाले सभी वीरों और उनके साथियों ने अंतिम जवान और अंतिम साँस तक शत्रु से युद्ध किया। ये प्रसंग भारतीय सेना के गौरव को बढ़ानेवाले और युवकों तथा जनता के लिए प्रेरणादायक हैं। हम इस अंक में राजपूत चौथी बटालियन के कमांडर ले० कर्नल अवस्थी का प्रसंग पाठकों की भेंट कर रहे हैं। —सम्पादक)

बात अक्टूबर-नवम्बर १९६२ की है जब कि भारत और चीन के युद्ध में नेफा के कामेंग क्षेत्र में चीन तेजी से बढ़ता आ रहा था। चीनियों ने एक आक्रमण के बाद दूसरा, और दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के बाद चौथा आक्रमण कामेंग डिवीजन के उत्तर में किया। भारतीय सेना की सुरक्षा रेखा टूट गयी। उसे धौला क्षेत्र छोड़ देना पड़ा। तत्पश्चात् गढ़वालियों ने एक महीने तक मोर्चा सँभाला, पर अंत में उन्हें भी पीछे हटने का आदेश मिला। हार के बादल चारों ओर छाये हुए थे। भारत ही क्या, सारा संसार आश्चर्य-चकित था। जिस भारतीय सेना ने अनेक युद्धों में नाम कमाया था, वही वीर सेना बढ़ती हुई चीनी सेना को रोकने में असमर्थ हो रही थी। ऐसा मालूम होता था कि एक-एक भारतीय सैनिक को कामेंग से बाहर होना पड़ेगा। किंतु उस आपत्तिकाल में अनेक भारतीय सैनिकों ने अपनी कर्तव्यनिष्ठा और वीरता के प्रमाण दिये। उनमें सबसे शानदार और महत्वपूर्ण प्रसंग कर्नल अवस्थी और उनके सहयोगियों का अभूतपूर्व बलिदान और शत्रु के सामने न झुकने का अदम्य संकल्प था। इस गौरव गाथा में उल्लेखनीय बात यह है कि कर्नल अवस्थी की दृढ़ता और वीरता ऐसी उत्तेजक और प्रेरणादायक थी कि कर्नल अवस्थी के साथ जितने भी अफ़सर थे उन्होंने भी अंतिम साँस तक उनका साथ दिया। यदि वे चाहते तो आत्मसमर्पण करके अपने प्राण बचा सकते थे, किंतु कर्नल अवस्थी के प्रत्येक साथी ने गौरव, आत्मसम्मान और वीरता का मार्ग वरण किया। इतिहास में ऐसी वीरता के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

सितम्बर १९६२ में ले० क० अवस्थी मऊ इनफेंट्री स्कूल में इन्स्ट्रक्टर का कार्य बड़ी योग्यता से कर रहे थे। एकाएक उनको तार द्वारा आदेश मिला कि वह जल्दी से जल्दी चौथी राजपूत बटालियन की कमान संभालें। उनको इस बटालियन के बारे में केवल इतना ही मालूम था कि वह कहीं पूर्वी भारत में तैनात है। आदेशानुसार वे रँगिया पहुँचे, वहाँ मालूम हुआ कि उनकी बटालियन मिसामारी में है। उन्होंने इसकी कमान संभाली। इस समय अक्टूबर का

महीना आरम्भ हो चुका था। ८ अक्टूबर १९६२ से भारतीय यूनिटों में दशहरा धूमधाम से मनाया जा रहा था। उन दिनों गोरखे, गढ़वाली, राजपूत इत्यादि सभी दशहरे के मनोरंजन में व्यस्त थे।

[२]

ठीक दशहरे के दिन जब कि यूनिट मनोरंजन में व्यस्त था, एकाएक वायरलेस द्वारा सूचना आयी कि चीनी आक्रमणकारियों ने सेनजांग टीले पर (धौला क्षेत्र) धावा बोल दिया है और इस आक्रमण से दूसरी राजपूत बटालियन को बड़ी क्षति पहुँची है।

दशहरा समाप्त हुआ और उसके शीघ्र बाद चौथी बटालियन को आदेश मिला कि वह जल्दी से जल्दी कामेंग में प्रवेश करे। बाद में ज्ञात हुआ कि बटालियन को 'बामडीला' जाना है।

बटालियन के 'बामडीला' पहुँचते ही कर्नल अवस्थी को आदेश मिला कि उनकी एक कम्पनी 'ओरकाला' (भारत भूटान सीमा पर १३०० फुट ऊँचाई पर) जायेगी। यह स्थान भारत-भूटान सीमा पर है। उन्होंने मेजर कुकरैती के साथ एक कम्पनी 'ओरका-ला' दर्रे के लिए रवाना कर दी। तत्पश्चात् चौथी बटालियन (एक कम्पनी कम) ड्राजोंग होती हुई लगभग छः मील जाकर रुक गयी। जहाँ पर वह रुकी वह स्थान उस पर्वत श्रेणी पर था जो सेला दर्रे से निकल कर दक्षिण की ओर चली गयी है। यह पर्वत की एक संकरी शृङ्खला है जिसके दोनों ओर दो नाले बहते हैं। इसके पश्चिमी नाले पर (जहाँ वह दक्षिण की ओर मुड़ता है) एक पुल बना है जिसे पुल न० १ कहते हैं। इस पुल को पार कर और प्रायः ३०० फुट ऊँचे चढ़कर एक छोटा सा समतल मैदान मिलता है। इसी समतल मैदान पर चौथी राजपूत बटालियन (एक कम्पनी कम) ने डेरा डाल दिया। यह स्थान उस मार्ग पर था जो सेला दर्रे को जाता था और जहाँ उस समय १६२वाँ ब्रिगेड तैनात था। उस ब्रिगेड के लिए सारा सामान और कुमक इसी मार्ग से भेजी जाती थी।

१२ नवम्बर को जब राजपूत बटालियन वहाँ पहुँची उसकी चार कंपनियों* की स्थिति इस प्रकार थी—

(क) एक कम्पनी को ओरका-ला को मेजर कुकरैती की कमान में भेज दिया गया था।
(ख) एक कम्पनी पूर्वी नाले की घाटी में मेजर नायर की कमान में नियुक्त कर दी गयी।
(ग) एक कम्पनी पर नम्बर एक पुल की सुरक्षा का भार रखा गया, और बची हुई—
(घ) एक कम्पनी बटालियन केन्द्र के साथ रही। इसके अतिरिक्त डिफेन्स प्लाटून भी बटालियन के स्टाफ की सुरक्षा के लिए था।

[३]

१५ नवम्बर को सूचना मिली कि चीनी सैनिक पूर्वी नाले की घाटी में घुसकर ब्रिग्रेड के यातायात-मार्ग पर छापा मारने का उपक्रम कर रहे हैं। चौथी राजपूत बटालियन को आदेश मिला कि वह मेजर नायर की कम्पनी को 'कुमुक' पहुँचाकर उसको और मजबूत बनायें। कर्नल अवस्थी ने बटालियन केन्द्र की कम्पनी से दो प्लाटून उसी दिन शाम को 'नायर' की कम्पनी में शामिल होने के लिए भेज दिये। अब कर्नल अवस्थी के पास एक ही प्लाटून रह गया। इन थोड़े से सैनिकों ही पर बटालियन के हैड क्वार्टर की रक्षा करने का भार भी था।

१६ नवम्बर को चीनियों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ गयी और ब्रिग्रेड में लड़ाई की हलचल मच गयी। बटालियन में आदेश पर आदेश आने लगे। इन्हीं सूचनाओं के द्वारा मालूम हुआ कि 'सेला' के उत्तर-पूर्व में सिक्खों के एक बड़े पतरौल को बड़ी क्षति पहुँची है। पतरौल के एक अफ़सर तथा ६३ जवान घायल हुए हैं। अवस्थी ने इस सूचना पर विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु १६ नवम्बर की रात को कुछ बेचैनी रही। अगले दिन दोपहर को खाने के समय पुल का कम्पनी कमांडर भी मौजूद था। एक बजकर ३० मिनट पर रेडियो द्वारा प्रसारित किया जा रहा था कि भारतीय जनता किस उत्साह से देश की रक्षा के लिए सहायता कर रही है। इस प्रसारण को सुनकर कर्नल साहब बहुत प्रसन्न हुए। संध्या को हवलदार से सूचना मिली कि ब्रिग्रेड से फोन आया है। कर्नल साहब फोन पर चले गये।

उनको फोन द्वारा यह आदेश प्राप्त हुआ कि १८ नवम्बर की सुबह को ब्रिगेड सेला से हटकर पीछे ड्रांगजोंग के लिए प्रस्थान करेगा। चौथी राजपूत बटालियन का कर्त्तव्य

* एक बटालियन में चार कम्पनियाँ होती हैं और एक कम्पनी में तीन प्लाटून होते हैं। एक प्लाटून में ४० सैनिक होते हैं।

होगा कि ब्रिगेड को सुरक्षित ढंग से पुल पार करा दे। पुल पार करने के बाद बटालियन को आदेश मिलेगा कि उसके बाद उसे क्या करना है। इस कार्य को १८ नवम्बर तक समाप्त कर देना था। आदेश से ऐसा प्रतीत होता था कि सम्भव है कि चौथी राजपूत बटालियन भी ड्रागजोंग की तरफ पीछे हटे।

आदेश से स्पष्ट था कि चीनियों का दबाव 'सेला' पर बढ़ने वाला है, परन्तु कर्नल अवस्थी बिलकुल परेशान न थे। वास्तव में वे प्रसन्न थे कि उन्हें युद्ध करने का अवसर प्राप्त हो रहा था। आदेश पाते ही उन्होंने पुल वाली कम्पनी को सतर्क कर दिया। उन्हें विश्वास था कि यदि चीनी दस गुनी संख्या में भी आवें तो न तो पुल को ही क्षति पहुँचा सकते थे, और न तो ब्रिगेड ही को। वे वीर थे और उनका साहस भी वीरों के समान था। १८ अक्टूबर को सूर्य उदय हुआ और समय व्यतीत होता गया, परन्तु ब्रिगेड का पता न चल रहा था। सौभाग्यवश ऊपर से एक जीप आयी जिसमें नम्बर एक सिख बटालियन के डाक्टर थे। उन्होने यह सूचना दी कि निकियाजोग वाले पुल नम्बर दो पर लगातार गोलाबारी हो रही थी, जिसके कारण ब्रिगेड को नीचे आने में कठिनाई हो रही थी। डाक्टर चले गये। अवस्थी अपनी कम्पनियों को एकत्र करने का तुरन्त प्रबन्ध करने लगे। ६ बजे सुबह वह सामान्य रूप से कुकरैती और नायर से वायरलेस पर बातचीत कर चुके थे। वहाँ सब सकुशल थे। कम्पनी कमांडरों को मालूम था कि १८ तारीख को ब्रिगेड 'ड्रागजोंग' की ओर पीछे हटेगा। परन्तु उन्हें कोई खास आदेश नहीं मिला था। अवस्थी ने नौ बजे के लगभग अपने कम्पनी कमांडरों से बातचीत की। कुकरैती ने उन्हें विश्वास दिलाया कि यदि वह 'ओरकाला' से चला तो शाम तक पुल नम्बर एक पर पहुँच जायेगा। सम्भव है नायर ने भी बटालियन केन्द्र वापस लौटना स्वीकार कर लिया हो। कर्नल साहब ने कुकरैती को १८ की शाम को आदेश के लिए फिर बुलाया।

१८ तारीख को सारे दिन कर्नल साहब ने ब्रिगेड के आने की बाट देखी, लेकिन वह नहीं आया। वह आता भी कहाँ से? शत्रु की भीषण गोलाबारी ने समस्त ब्रिगेड को छिन्न-भिन्न कर दिया था। ब्रिगेड की सारी टोलियाँ छोटी-छोटी टुकड़ियों में अनुशासनहीन भीड़ की भाँति भाग निकली थीं। अवस्थी ने सुबह के समय फायर की आवाज सुनी थी परन्तु जो सिक्ख बटालियन का डाक्टर सूचना दे गया था उससे अधिक उनको कुछ न मालूम हुआ। उन्हें ब्रिगेड और मेजर नायर दोनों का रास्ता देखना पड़ा। न तो ब्रिगेड ही आया और न नायर ही। दुर्भाग्यवश चौथी डिवीजन भी जो ड्रांगजोंग में नियुक्ति थी, उस समय ड्रांगजोंग छोड़कर असम की ओर चली जा चुकी थी। ऐसी भगदड़ में केवल राजपूत बटालियन की कम्पनियाँ ही 'ओरकाला' और पुल नम्बर एक पर जमी बैठी थीं। अवस्थी को निराशा हुई क्योंकि ब्रिगेड से आदेश आने बन्द हो गये थे। वहाँ पर अब कोई उनको आदेश देनेवाला न रह गया था। यदि होता तो भी वह वीर अपनी कम्पनियों के लौटे बिना पीछे हटने के लिए कदापि तैयार न होता। खैर, उन्होंने बेतार के द्वारा कुकरैती से बातचीत की और उनसे 'मंडाला-ला' की ओर पहुँचने के लिए कहा। यदि बटालियन आसाम की ओर पीछे हटी तो कुकरैती रास्ते में मिल जायेगा। वरना वह १९ नवम्बर या २० की सुबह तक बटालियन हेड क्वार्टर में पहुँच जायगा। १८ की रात्रि को कर्नल साहब, ब्रिगेड और मेजर नायर की राह देखते रहे, परन्तु उनमें से किसी से कोई संकेत नही मिला। उन्होंने कुकरैती से मिलाप किया। कुकरैती 'ओरकाला' से मंडाला-ला की ओर चल चुका था। कर्नल साहब को कुकरैती के स्थिति की पूरी जानकारी थी। ९ बजकर ३० मिनट पर वायरलेस पर कुकरैती से बातचीत हुई थी। इसके बाद यह भी मिलाप टूट गया। उनको अब यह आशा न रह गयी कि वह अपनी कम्पनियों को आसाम पहुँचने से पहले देखेंगे। उन्होंने १९ तारीख को ९ बजकर ३० मिनिट पर यह निर्णय किया कि वह अपने शेष जवानों के साथ आसाम घाटी की ओर चल देंगे।

आसाम को कूच कर दिया गया। कर्नल अवस्थी आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे उनकी सुरक्षा-पंक्ति। बचे-खुचे सैनिको की सहायता से अपनी सुरक्षा करते हुए यह टोली ड्रांगजोंग' की ओर बढ़ी। उन्होंने पश्चिमी नाला पार किया, और उसी दिन शाम को 'ड्रांगजोंग' के सामने वाली पहाड़ी पर पहुँच गये। वहाँसे हटने से पहिले भारतीय सैनिक वहाँ एकत्र किये सैनिक सामान मे आग लगा चुके थे। अब कर्नल साहब को इस वास्तविकता का पता चला कि भारतीय चौथी डिवीजन ड्रांग घाटी छोड़ चुकी है। कर्नल साहब सतर्क हो गये। उन्होंने डिवीजन केन्द्र जाने का विचार

छोड़ दिया। सड़क से चलना उन्हें ठीक न मालूम हुआ। उन्होंने पहाड़ियो की पगडंडियों का रास्ता पकड़ा। यदि वे चाहते तो दिन-रात चलते रहते, लेकिन शत्रु की निगाह से बचने के लिए उन्होने रात्रि में ही यात्रा करने का निश्चय किया। रात्रि में मार्च करते समय बड़ा कड़ा अनुशासन रखा जाता है। रास्ता बहुत निर्जन था तथा पहाड़ियाँ भी घने जंगलों से ढकी हुई थीं। उस समय स्थानीय जनता पर विश्वास करना भी खतरे से खाली न था, तथा उन्हें इस क्षेत्र के जङ्गल का रास्ता भी न मालूम था। परन्तु उस वीर ने साहस न छोड़ा, और एक चतुर नेता की भाँति जवानों का नेतृत्व करता रहा। इस समय तक उनके दल में जवानों की संख्या बढ़ चुकी थी, क्योंकि सेला से जङ्गली मार्गो से लौटनेवाले भूले-भटके अनेक सैनिक कर्नल साहब की टोली में आकर मिल गये थे। रात्रि में चलते समय, भटक जाने के डर से, हर एक जवान अपने सामने वाले व्यक्ति की पेटी पकड़े रहता था। इस प्रकार वह टोली एक लम्बी पंक्ति में चल रही थी।

इस प्रकार भूखे-प्यासे ये लोग २२ की सुबह को बामडीला के नीचे एक बस्ती के निकट पहुँचे। इस बस्ती में नैपाली मजदूर रहते हैं। उन्होंने सूचना दी कि रूपा में (जो बामडोला के नीचे है) चीनी पहुँच चुके हैं। इसलिए इस दल के लिये उधर न जाकर फुदुंग (ऊपरी रूपाछू नदी के किनारे) की ओर मुड़ना आवश्यक हो गया। २२ नवम्बर की रात को यह दल फुदुंग पहुँच गया। उसी रात वह दल रूपाछू के तट पर भी पहुँच गया। यहाँ से दो रास्ते हैं। एक शेखगाँव जाता है, दूसरा, उसके दाहिने जो पहाड़ी है, उसकी पीठ पर होता हुआ दर्रे को पार करके दर्रे से दूसरी ओर ८-१० मील पर कलकतांग नामकी बस्ती म पहुँचता है। यह बस्ती भूटान—भारत सीमा पर है। कर्नल साहब ने कलकतांग वाला रास्ता पकड़ा। २३ नवम्बर के सवेरे ही वे पहाड़ी की पीठ पर चढ़ गये। उनके सामने लगयाला (Lagyala) गुंफा दिखायी दी। इस गुंफा से कुछ दूरी पर दर्रा दिखाई दिया। कर्नल साहब ने खुश होकर कहा कि "हम १२ बजे तक उस दर्रे को पार कर लेंगे और फिर वहाँ से नीचे ढलान पर होते हुए असम की घाटी में पहुँच जायेंगे।" उन्हें क्या पता था कि उनके और लगयाला गुंफा के बीच एक बनी में शत्रु घात लगाये बैठा था। १० बजे का समय होगा जब यह टोली उस बनी के निकट पहुँची। एकाएक शत्रु की मशीनगनें खुल गयीं, और गोलियों की बौछार होने लगी। शत्रु सुरक्षात्मक मोर्चे बनाये बैठे थे, जब कि भारतीय जवान खुले में थे। परन्तु ये बहादुर घबड़ाये नहीं और अनुशासन-बद्ध रहे। अधिकतर ये जवान लड़ने की स्थिति में नहीं थे, परन्तु कर्नल अवस्थी के आदेश में लड़ने को तैयार थे। यदि अवस्थी चाहते तो बच कर भाग सकते थे, परन्तु उन्होने ऐसा नहीं किया। उन्होने शत्रु का सामना किया और बनी के शत्रुओं का सफ़ाया करने का निश्चय किया। जैसे ही कर्नल साहब पर फायर आया, उन्होंने मेजर त्रिलोकीनाथ को आदेश दिया कि पंक्तिबद्ध जवान (कालम) रुक जायँ और सैनिक तुरन्त आड़ ले लें। इसके बाद वे दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करें। शत्रु की गोली अगली पंक्ति पर आयी थी। इसलिए पिछले सिरे के जवानों को कुछ नहीं मालूम हुआ कि आगे क्या हो रहा है। कर्नल साहब ने जितने भी योग्य अफ़सर थे, उनको टोली का कमांडर बना दिया था। वे उस दल में अपनी-अपनी टोलियों के साथ थे। उस समय कर्नल साहब के साथ कैप्टेन टंडन (ऐडज्यूटैंट) कैप्टेन डाक्टर मेजर त्रिलोकीनाथ और उनका सूबेदार मेजर भी था।

त्रिलोकी ने इशारे से आदेश दिया तो टोली रुक गयी। इस टोली के पिछले आदमी ने पिछली टोली वाले कमांडर को सूचना दी। इस प्रकार मिनटो में सारे दल को रुकने का आदेश मिल गया। अनुशासन सहित जो भी आड़ ले सकता था, उसने आड़ ले ली। सब प्रतीक्षा करने लगे कि अब क्या होता है। उस समय कर्नल साहब छिप-छिप कर जमीन देख रहे थे। उसी समय त्रिलोकीनाथ ने टोली कमांडरों को कर्नल साहब से युद्ध के आदेश लेने के लिये बुलाया। जैसे ही यह सूचना पहुँची, सारे दल में एकाएक सन्नाटा छा गया। स्पष्ट हो गया कि चीनियों से युद्ध होगा। राजपूत अर्थात् पैदली सेना को कोई चिन्ता न थी क्योंकि युद्ध करना तो उनका काम ही है। परन्तु लांगरी, मशालची, नाई, धोबी इत्यादि (जो इस दल में शामिल हो गये थे) इस सूचना से घबड़ा गये। उनमें से कुछ ने तो साहस दिखाया, और कुछ इधर-उधर आड़ लेकर, रेंग कर, दल से निकल गये। ऐसे असंगठित कालम में यह सब कुछ स्वाभाविक है। खैर, जिनको निकलना था वह निकल गए, परन्तु जो रह गये वे कर्नल साहब के नेतृत्व में रह कर युद्ध करने के लिए तैयार थे। समस्त जे० सी० ओ० (हवलदार

सूबेदार आदि) आड़ लेते हुए त्रिलोकीनाथ के समीप आ गये। मेजर साहब ने इन लीडरों को ठीक से अपने सामने की जमीन देखने को कहा। शत्रुओं की गोला बारी बराबर जारी थी। भारतीय जवान जैसे ही खुली जमीन में आते गोली का निशाना बन जाते थे। यद्यपि बटालियन के डाक्टर उनकी चिकित्सा कर रहे थे, फिर भी ऐसे समय में जब शत्रु ऊँचो जमीन से गोली चला रहा था, नीचे खुली जमीन पर इन भारतीय जवानों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। बिना अफ़सर के सेना एक असगठित भीड़ के समान होती है। उन टोलियों के अफ़सर (अर्थात् जी० सी० ओ०) आदेश लेने के लिए आगे आ चुके थे। ऐसे समय में बहुत से जवान अनुशासनहीन होते जा रहे थे, लेकिन जो जवान अपनी मर्जी से रुके थे वे तो लडने के लिये उत्सुक थे। इसलिये अनुशासन का प्रश्न ही नहीं उठा।

१०·३० बजे अवस्थी तथा टडन आगे से अपनी टोलियों में वापस आये। उन्होंने सक्षिप्त आदेश दिये।

भारतीय टुकड़ियों का लक्ष्य साफ़ था। भारतीय टोलियाँ वनी से शत्रु का सफाया करेंगी।

इस लक्ष्य के लिये तीन टुकड़ियाँ तैनात की गईं। हर टुकड़ी को उसका अलग-अलग लक्ष्य बतला दिया गया। यह केवल आदेश ही था क्योंकि ऐसे आक्रमण के लिए आवश्यक साधन न थे। न तो उनके पास मार्टर ही थे, और न मध्यम मशीनगनें ही। तोपखाना तो केवल स्वप्न था।

अफ़सर आदेश लेकर अपनी-अपनी टोलियों में आ गये। नियत समय पर भारतीयों का आक्रमण शुरू हुआ। लक्ष्य एवं टुकड़ियों में बहुत कम फ़ासला था। अतएव भारतीयों ने अपनी राइफलों में सगीन लगा कर शत्रु पर धावा बोल दिया। ये वीर 'जय बजरंग बली' का नारा लगाते हुए बढ़े ही जा रहे थे। दूसरी ओर से शत्रुओं ने अपना फायर बढ़ा दिया। इन भारतीय बहादुरों की लाशों के ढेर लगते जा रहे थे, परन्तु वे पीछे हटने का नाम नहीं ले रहे थे क्योंकि वे सच्चे भारतीय वीर थे। अवस्थी इस आक्रमण को बड़े ध्यान से देख रहे थे। कुछ समय बाद नारों की ध्वनि मंद पड़ती गयी तथा शत्रु की फायर की ध्वनि निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। ११·३० बजे तक अवस्थी को इस बात का ज्ञान हो गया कि आक्रमण विफल हो गया। बचे हुए जवान तथा अफ़सर फिर से आक्रमण की तैयारी में पीछे चले आये। अब उन बहादुरों की बारी थी जो रिजर्व में थे। अवस्थी ने उन्हें आदेश दिया और कर्नल ने स्वयं उनका नेतृत्व किया। अपनी पिस्तौल निकाल कर कर्नल साहब बीच वाली टोली को लेकर आगे बढ़े। अनगिनित चीनियों को उन्होंने मृत्यु के घाट उतारा। यद्यपि उनके भी बहुत से सिपाही रण-भूमि की भेंट चढ़े फिर भी कर्नल अवस्थी ने साहस न छोड़ा। दम लेकर फिर से आक्रमण करने की तैयारी होने लगी।

अब तीसरा आक्रमण था। कर्नल साहब घायल हो गये थे। उनके पट्टी बांधी जा रही थी। इस तीसरे आक्रमण का नेतृत्व करते हुए मेजर त्रिलोकीनाथ अन्य सिपाहियों के साथ रण-क्षेत्र में काम आए। फिर चौथा हमला टंडन के नेतृत्व में हुआ। फिर पाँचवाँ आक्रमण हुआ। इसमें जो भी अफ़सर जे० सी० ओ०, जवान बचे थे, वे सब इकट्ठे हो गए। उनके पास राइफिलें और संगीनें तो थीं परन्तु गोलियाँ न बच रही थीं। उन्होंने राइफिलों का उपयोग लाठो की तरह किया। इस अन्तिम आक्रमण का नेतृत्व अवस्थी ने स्वयं किया। जब तक जान में जान रही हर एक व्यक्ति वीरता से लड़ा। अवस्थी घायल हो गये मगर फिर भी एक आक्रमण के बाद दूसरे का मुकाबला करते चले जा रहे थे तथा नेतृत्व कर रहे थे।

२३ नवम्बर की संध्या होते-होते सब समाप्त हो चुका था। सिवाय भारतीय वीरों की लाशों के वहाँ कुछ न रह गया था। जो थोड़े से जवान गंभीर रूप में घायल हो गये थे वे पड़े-पड़े दम तोड़ रहे थे। चीनियों ने उनकी सुश्रूषा करने की आवश्यकता न समझी। सभी घायलों के प्राण गये। उस संध्या को लगयाला के उस रणक्षेत्र में १४० वीर भारतीय शौर्य के प्रमाण स्वरूप भारत माँ की गोद में चिर-निद्रा में सो रहे थे।

इस भीषण संग्राम और अद्वितीय वीरता का समाचार लोगों को कई दिन तक न मिला। जब २७ नवम्बर को कुकरैती जंगलों में होते हुए आसाम पहुँचे तब वे अपनी बटालियन की तलाश करने लगे। नेफा से सेना की भगदड़ के कारण असम की सैनिक व्यवस्था भी अस्तव्यस्त हो रही थी। चौथी राजपूत बटालियन का किसी को पता न था। समझा जाता था कि वह सभवतः नेफा के दुर्भेद्य जंगलों में भटक रही है तथा समय पाकर आसाम पहुँच जायगी,

अथवा वह समाप्त हो गयी होगी। किंतु लगयांला की वनी के युद्ध में पिछली टोलियों के कुछ लोग आगे चलनेवाली राजपूत बटालियन को चीनियों से लड़ते देखकर जगलों में जा छिपे थे। जब वे असम पहुँचे तो उन्होने इस भीषण युद्ध का समाचार लोगों को दिया। स्थानीय सेना-अधिकारियो ने मेजर कुकरैती को उन वीर वलिदानी वीरों के शवों का पता लगाने को भेजा। वे १० दिसम्वर को वहाँ पहुँचे। उस क्षेत्र के आसपास कुछ चीनी सैनिक दिखायी पड़े। उनके हट जाने पर मेजर कुकरैती को १२ दिसम्बर को अवसर मिला और उन्होंने उस रणक्षेत्र में मिट्टी से दवे १४० शवों को निकाला। उनमें से उन्होने ९० शवों को पहचाना। उनमें इनके शव भी थे——

ले० कर्नल बी० एन० अवस्थी (कमांडर)

मेजर त्रिलोकीनाथ (उप कमांडर)

कैप्टन टंडन (ऐड्जुटैट)

कैप्टन दयालसिंह (कंपनी कमांडर)

बटालियन का डाक्टर

सैकेंड लेफ्टिनेंट छत्रपति सिंह (कर्नल गिरधारी सिंह के सुपुत्र)

सूबेदार मेजर पृथ्वी सिंह

सूबेदार गोपीचन्द (डिफेंस प्लाटून कमांडर)

बटालियन का हैडक्लर्क और उसके सहायक

शेष ५० शव नहीं पहचाने गये।

इन वीरों के परिवारों को इस घटना के काफी दिनों बाद उनके वीरगति पाने का समाचार मिला।

यदि कर्नल अवस्थी शत्रु के आक्रमण से डर कर अपने प्राण बचाना चाहते तो वे और उनके साथी आसानी से जंगलों में छिप कर भाग सकते थे। वे स्वयं अपने दल को लेकर, चीनियों को आत्म-समर्पण करके अपने प्राण बचा सकते थे। वे जानते थे कि उनके पास न तो मार्टर है और न मशीन गनें, और शत्रु के पास प्रचुर युद्ध सामग्री है। उनके जवानों के पास राइफलों की गोलियां भी पर्याप्त संख्या में न थीं। उस समय नेफा से हटती हुई सेना का मनोबल भी कम हो गया था। किंतु कर्नल अवस्थी प्रकृत वीर थे। वे भारतीय सेना की गौरवशाली परम्परा पर धब्बा लगाने को तैयार न थे। भारत का आदर्श रहा है——"जो रण हमहिं प्रचारहि कोई। लर्हिं सुखेण काल किमि होई।" चीनियों के गोली चलाकर आक्रमण करने के बाद मैदान से भागना न तो भारतीय सेना और न राजपूत रेजीमेंट की गौरवशाली परम्परा के अनुरूप होता। इसलिए स्थिति की भीषणता और खतरे की गंभीरता जानते हुए भी उन्होंने वह मार्ग या विकल्प चुना जो भारतीय वीर सदैव चुनते आये हैं। सेना के सम्मान, गौरव और आन के लिए प्रत्येक भारतीय वीर और राजपूत बटालियन का प्रत्येक सैनिक प्राणों की बलि देने को सदैव तैयार रहता है। वीरश्रेष्ठ कर्नल अवस्थी ने उस दिन इस आदर्श का पालन करते हुए अपने को उत्सर्ग कर दिया।

एक बात और, इन विपरीत भयंकर परिस्थितियों में वे स्वय ही नही लड़े, परन्तु उनमें नेतृत्व का वह गुण बड़ी मात्रा मे था जो अपने अधीन लोगों को कठोर परिस्थितियों में कर्तव्य पालन करने, और अपने जीवन का बलिदान तक करने को प्रेरित करता है। उनके साथ का एक-एक अफसर और जवान अंत तक लड़ता रहा। न तो किसी ने भागकर अपने प्राण बचाने की बात सोची, और न किसीने शत्रु को आत्मसमर्पण ही किया। उनके साथ के १४० सैनिकों में से प्रत्येक अंत तक लड़ता रहा, और खेत रहा। रणक्षेत्र में बिखरे हुए १४० शव इस बात का बोलते हुए प्रमाण थे।

आदर्श वीरता के ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं। इस वीर और उसके साथियो ने वीरता का एक नया कीर्तिमान स्थापित कर भारतीय सेना, विशेषकर राजपूत बटालियन के गौरव को ऊँचा किया है। 'सरस्वती' के पाठक सारागढ़ी के वीर सिख सैनिकों की गौरवपूर्ण कहानी पढ़ चुके है। वहाँ २१ सिख वीरों की टुकड़ी ने अत तक लड़कर वीरगति प्राप्ति की थी। उस घटना ने भारतीय सेना का मान बढ़ाया था। लगता था यह संग्राम भी उसी जोड़ का कारनामा है। इसमें कर्नल अवस्थी, उनके सारे अफसर और जवान (जिनकी संख्या १४० थी) इस युद्ध में अपूर्व वीरता से अंत तक लड़े और मारे गये। यह अपूर्व वीरत्वपूर्ण संग्राम भारतीय वीरों को देश और सेना की आन के लिए अतिम साँस तक लड़ने की प्रेरणा देता रहेगा।

पाठकों को यह जानकर हमारी तरह ही खेद और आश्चर्य होगा कि कर्नल अवस्थी को और उनके वीर साथियों को सेना या सरकार की ओर से कोई सम्मान नहीं मिला। सारागढ़ी का युद्ध अंग्रेजों के समय में हुआ था, और उस समय की गुण-ग्राहक सरकार ने उसमें वन्नि होने

कर्नल बी० एन० अवस्थी

हिंदू विश्वविद्यालय के भारत कलाभवन मे हाल ही में श्री सीताराम सेकसरिया ने इस कक्ष का उद्घाटन किया। दाहिने से सेकसरियाजी, डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, राय कृष्णदास और श्रीनारायण चतुर्वेदी।

मंच पर सेकसरियाजी भाषण देते हुए। अध्यक्ष (श्रीनारायण चतुर्वेदी) और डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी।

वाले प्रत्येक जवान को उस समय का सर्वोच्च सैनिक अलंकार दिया था। किंतु चीनियों से घिर जाने पर उनसे अंत तक लड़नेवाले इन १४० वीरों को या अफसरों को या उनके नेता कर्नल अवस्थी को भारत सरकार या सेना ने कोई मान्यता नहीं दी। सुना गया है कि राजपूत रेजिमेंट ने कर्नल अवस्थी को इस अनुपम वीरता, अद्भुत नेतृत्व और बलिदान के लिए 'परम वीर चक्र' देने की सिफारिश की थी किंतु वह स्वीकार नहीं की गयी। शायद इसका कारण यह लाल फीताशाही है कि उस समय उस युद्ध में उनकी वीरता का बखान करके सिफारिश करने वाला उनसे कोई ऊँचा अफसर—ब्रिगेडियर या मेजर जनरल—नही था, और ऐसी सिफारिश के अभाव में सरकार ने इस अनुपम शौर्य, साहस और बलवान शत्रु का डटकर सामना करने वाले वीर और उसके साथियों को सम्मानित करना ठीक न समझा। वहाँ कोई बड़ा अफसर होता भी कहाँ से? बड़े-बड़े अफसर तो उस भगदड़ में नेफा छोड़कर आसाम जा पहुँचे थे! इसलिए कर्नल अवस्थी और उनके साथियों की वीरता के गवाह कहाँ से मिलते? किन्तु क्या औपचारिक गवाही के अभाव में और लालफीताशाही से घबड़ा कर सरकार को इन वीरों के शौर्य को मान्यता न देना चाहिए? वह लाल-फीताशाही त्याज्य है जो ऐसे वीरों के सम्मान मे बाधक हो यदि ऐसा न किया गया तो संभव है कि बहुत से सैनिक अपना कर्तव्य पालन तभी करेंगे जब उपयुक्त गवाह मौजूद हों। इससे सेना के मनोबल पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हम आशा करते है कि अब भी सरकार इस पर पुनर्विचार करके इन वीरों को उपयुक्त ढंग से सम्मानित करेगी।

कर्नल अवस्थी और उनके बलिदानी साथियों को उचित मान्यता मिलनी चाहिए। उनकी वीरता की कहानी देश के युवकों के लिए प्रेरणाप्रद है और उसका प्रचार होना चाहिए। उनका चरित्र और बलिदान युवकों को बतलाता है कि देश के लिए दुर्दान्त शत्रु से विपरीत परिस्थितियों में लड़ते हुए किस प्रकार प्राण देने चाहिए। कर्नल अवस्थी तथा उनके साथियों ने जिन स्कूलों और कालिजों में शिक्षा पायी थी, उनमें उनके चित्र लगाये जाने चाहिए, तथा उन संस्थाओं के कीर्तिपटलों पर उनके नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित किये जाने चाहिए। उनके बलिदान का दिवस मनाया जाना चाहिए। उनके राज्यों की सरकारों को भी उनकी स्मृति रक्षार्थ तथा सम्मान के लिए उनके नाम से युवकों के लिए ट्राफ़ी तथा मेडल स्थापित करने चाहिए। युद्ध काल में हमारे नेता युवकों से बड़ी-बड़ी अपीलें करते है, किंतु यदि वे ऐसे वीरों का उचित सम्मान करेंगे तो उनकी अपीलों को अधिक बल और सफलता मिलेगी।

हमें यह भी विश्वास है कि राजपूत रेजिमेंट कर्नल अवस्थी और उनके वीर साथियों के गौरवशाली और महान् बलिदान की स्मृति जीवित रखेंगे, और उनके बलिदान-दिवस (२३ नवम्बर) को उचित रूप से मनाकर राजपूत बटालियन के १४० वीरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते रहेंगे।

लकदिवी-मिनिकोय तथा अमिनदिवी द्वीप

श्री शंकरसहाय सक्सेना, भूतपूर्व शिक्षा निर्देशक, राजस्थान

भारत के पश्चिम की ओर अरब सागर में छोटे-छोटे द्वीपों की एक मणिमाला के समान यह द्वीप एक हजार मील की लम्बाई में फैले हैं। अरब सागर के गहरे जल में स्थित यह द्वीप प्रसिद्ध दक्षिण समुद्र के द्वीपों से कहीं अधिक सुन्दर हैं। प्रकृति ने इन द्वीपों को नैसर्गिक सौन्दर्य से मानों आविर्भूत कर दिया है। पृथ्वी पर प्राकृतिक सौन्दर्य के ऐसे धनी द्वीप बहुत कम हैं। परन्तु अभी पिछले दिनों तक यह नैसर्गिक सौन्दर्य से परिवेष्ठित द्वीप समूह अत्यन्त उपेक्षित रहे। किसी ने उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। कराची से कोलम्बो के लम्बे फासले में फैले हुए अरब सागर के यह द्वीप सामरिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भारत के पश्चिमी तट की सुरक्षा की दृष्टि से इनका महत्त्व बहुत अधिक है।

१९५९ में पहली बार यह दूर-दूर फैले हुए द्वीप-समूह भारत सरकार द्वारा नियन्त्रित प्रशासनिक इकाई के अन्तर्गत संगठित किये गये और तभी से वे एक राजनीतिक इकाई के रूप में भारतीय गणतन्त्र के एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गये। वास्तव में यह मनमोहक सौन्दर्यवाले अरब सागर के द्वीप प्रवाल शैलमाला (कोरल-रीफ) के हैं और उन्हें अरब सागर की मानसून से प्रतिवर्ष पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है, इस कारण यह द्वीप वनस्पति से भरे-पुरे और बहुत बड़ी मात्रा में नारियल उत्पन्न करनेवाले हैं।

लकदिवी, मिनिकोय और अमिनदिवी द्वीप समूह भारत की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई है। यद्यपि यह द्वीप समुद्र में बहुत दूरी में फैले हुए हैं परन्तु सभी बीस द्वीपों का कुल मिलाकर क्षेत्रफल केवल ग्यारह वर्ग मील है और जनसंख्या केवल २५ हजार है। विभिन्न द्वीपों का क्षेत्रफल और जन-संख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

सम्पूर्ण क्षेत्रफल २९ वर्ग किलोमीटर अथवा ग्यारह वर्ग मील है। जिन द्वीपों में मनुष्य निवास करते हैं उनका क्षेत्र-फल और जनसंख्या (कुछ द्वीप ऐसे भी हैं जहाँ कोई आबादी नहीं है)

लकदिवी द्वीप-समूह	क्षेत्रफल	जनसंख्या
समूह	वर्ग किलोमीटर	(१९६१)
कालपेनी	२·६३	२६१३
अन्द्रोथ	४·३२	४१८३
अगन्ती	२·९०	२४११
कवारत्ती	३·५०	२८२८
मिनिकोय द्वीप-समूह		
मिनिकोय	४·५३	४१३९
अमिनदिवी द्वीप-समूह		
अमिनी	२·५२	३५३०
कदमान	३·०३	१८५१
चेलात	१·०३	९५३
किलतान	१·६१	१५२०
बितरा	१·०५	८०
	२७·१२	२४,१०८

इन द्वीप-समूहों के अधिकांश निवासी इस्लाम धर्म को माननेवाले हैं। १९६१ की जनगणना के अनुसार इन द्वीपों में २३,७८९ मुसलमान, २६३ हिन्दू और ५६ ईसाई थे। यहांके अधिकांश निवासी मलयालम भाषा-भाषी हैं केवल चार हजार से कुछ ही अधिक ऐसे हैं जो अन्य भाषा-भाषी हैं।

इन द्वीपों की मुख्य पैदावार नारियल है। यहाँकी यही मुख्य खेती है और अधिकांश कृषक नारियल की खेती करते हैं। इस समय इन द्वीपों में सात हजार एकड़ भूमि पर नारियल के बाग हैं और प्रतिवर्ष नारियल के बागों का विस्तार होता जाता है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यहाँ नारियल की पैदावार को बढ़ाने के लिए किसानों को उर्वरक का उपयोग करने तथा नारियल के पेड़ लगाने के सुधरे उपायों को अपनाने का सुझाव दिया जा रहा है। क्रमशः नारियल की वैज्ञानिक खेती का तेजी से विस्तार हो रहा है।

यहाँका दूसरा मुख्य धंधा मछली पकड़ना है। अभी तक तो इन द्वीपों के मछुआरे साधारण देशी नावों और देशी जालों के द्वारा मछली पकड़ने का धंधा करते थे। परन्तु अब राज्य सरकार ने यांत्रिक उपकरणों का उपयोग बढ़ाने का प्रयत्न किया है। स्वचलित यांत्रिक नौकाओं का निर्माण कराया जा रहा है और मछली को डिब्बों में भर-कर सुरक्षित रखने के कारखाने जगह-जगह स्थापित किये जा रहे हैं। इससे मछली का निर्यात बढ़ेगा और मछुआरों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

इन दो उद्योगों के अतिरिक्त द्वीपों में सब्जी तथा फ़लों का उत्पादन तथा मुर्गी पालने का उद्योग भी पनप रहा है।

यही इन द्वीपों के प्रमुख उद्योग हैं और इन्हीं पर यहाँ की जनसंख्या का निर्वाह होता है।

यह द्वीप भारत के अत्यन्त भाग्यशाली और अभाव-रहित भाग हैं। यहाँ खाद्यान्न का अभाव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन १६ औंस के हिसाब से खाद्यान्न उपलब्ध है और इस प्रदेश को सबसे वड़ी सुविधा यह है कि यहाँकी जनसंख्या पर कोई कर नहीं है। दूसरी विशेषता इन द्वीपों की यह है कि अभी तक यहाँ कोई राजनीतिक दल उत्पन्न नहीं हुआ है। राजनीतिक दलबन्दी से वह सर्वथा मुक्त है। कई बार विभिन्न राजनीतिक दलों ने इस बात का प्रयत्न किया कि यहाँ राजनीतिक दल का संगठन किया जावे परन्तु अभी तक वहाँ कोई राजनीतिक दल खड़ा नहीं किया जा सका। पिछले साधारण चुनाव तक केन्द्रीय सरकार यहाँसे एक व्यक्ति को भारतीय लोकसभा के लिए मनोनीत करती थी। पहली बार १९६७ में यहाँ लोक सभा के लिए चुनाव हुए। सात व्यक्ति चुनाव में स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। श्री एम० पी० सैयद जो चुने गये वे लोकसभा के सबसे तरुण सदस्य हैं। यद्यपि उन्होंने काँग्रेस पार्लियामेंटरी पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली है परन्तु वे प्रशासन के निर्भीक और कठोर आलोचक हैं।

पिछले सौ वर्षों से अधिक यह नैसर्गिक सौंदर्य से भरे हुए सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण द्वीप नितान्त उपेक्षित रहे। भारत सरकार ने कभी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण वे वहुत पिछड़ गये परन्तु पिछले दस वर्षों में विकास योजनाओं के द्वारा यह द्वीप तेजी से विकास कर रहे हैं।

इन छोटे-छोटे पिछड़े और बिखरे द्वीपों की राजकीय आय अधिक नहीं है। यह स्वाभाविक भी है। भारत सरकार बहुत वड़ी मात्रा मे वहाँ की सरकार को अनुदान देती हैं। आय-व्यय की तुलना में नगण्य है वह नीचे दी गयी आय व्यय सम्बन्धी तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।

वर्ष	राजकीय आय लाख रुपये	राजकीयव्यय लाख रुपये	आय का व्यय की तुलना में प्रतिशत
१९६४–६५ (वास्तविक)	१·४९	१२६·२७	१·२%
१९६५–६६ (,,)	१·२३	१३४·४६	०·६%
१९६६–६७ (,,)	५·६३	१४७·०५	३·८%
१९६७–६८ (अनुमानित)	३·६७	१५८·७५	२·३%
१९६८–६९ (,,)	३·५०	१८९·३१	१·९%

तीसरी पंचवर्षीय योजना में इन द्वीपों मे विकास कार्यो पर एक करोड़ आठ लाख रुपये व्यय हुए और चौथी योजना मे २ करोड़ २६ लाख का प्रावधान किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारत सरकार इन द्वीपों के महत्त्व को समझने लगी है और उनका विकास करने के लिए प्रयत्न-शील है।

पिछले दस वर्षों में इन द्वीपों में शिक्षा का संतोषजनक विकास हुआ। १९५७ में जब कि इन दूर-दूर विखरे हुए द्वीपों को एक प्रशासनिक इकाई मे संगठित किया गया उस समय वहाँ केवल ९ स्कूल थे जिनमें ९६२ विद्यार्थी अध्ययन करते थे। उसकी तुलना मे १९६७ के अन्त में इन द्वीपों में चालीस स्कूल थे जिनमें ६ हजार विद्यार्थी थे जिनमें से दो हजार लड़कियाँ थीं। यह देखते हुए कि इन द्वीपों में केवल मुसलमान ही निवास करते हैं लड़कियों की यह संख्या इस बात का प्रमाण है कि वहाँ की जनसंख्या प्रगतिशील है। वहाँ की सरकार प्रति विद्यार्थी २२५ रुपए वार्षिक व्यय करती है। वहाँ की सरकार योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देकर उच्च शिक्षा के लिए भारत के तकनोकी कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में भेजती है। आज इन द्वीपों के युवा और युवतियाँ वड़ी संख्या में भारत के मेडिकल, इंजिनियरिंग तथा अन्य तकनीकी कालेजों में अध्ययन कर रहे हैं। क्रमशः यहाँ की राज्य सेवा में द्वीप के निवासियों की संख्या वढ़ रही है। कवारत्ती' में सरकारी सचिवालय की स्थापना हो जाने के कारण द्वीप के युवकों को राजकीय सेवा में जाने का अवसर और सुयोग मिल गया है। प्रशासन में जितने भी राजकर्मचारो हैं उनका ३० प्रतिशत द्वीप निवासी हैं और यह प्रतिशत तेजी से वढ़ रहा है।

इन द्वीपों में सहकारिता का भी तेजी से विकास हुआ है और आश्चर्य की वात यह कि सहकारी समितियाँ यहाँ बहुत सफल हुई हैं। इन द्वीपों में १९६१-६२ में सहका-

रिता आन्दोलन आरम्भ हुआ और नौ प्राथमिक क्रय-विक्रय सहकारी समितियाँ स्थापित की गयी। १९६७ के अन्त तक उन सहकारी समितियों ने इन द्वीपों के सारे परिवारों को अपना सदस्य बना लिया और उनकी सदस्य संख्या ६,६५० और चुकता पूँजी २,४९, ९५० रुपये हो गई। १९६७ में इन समितियों ने चावल, गेहूँ शक्कर मिट्टी का तेल जिन पर वहाँ नियंत्रण है लगभग ३८ लाख रुपये की वेची। कवारत्ती सहकारी समिति ने एक वेकरी, एक आटा पीसने की मिल, और एक पेय तैयार करने का कारखाना खड़ा कर दिया है।

इन समितियों ने अपना एक संघ स्थापित कर लिया है जिससे वे सम्वद्ध है। लकदिवि सहकारी विक्रय संघ ने केरल मे (कालीकट मे) अपनी एक शाखा स्थापित करदी है जो सम्वद्ध सहकारी समितियों के लिए कालीकट के वाजार से आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर उन्हें उचित मूल्य पर बेचती है।

इन द्वीपों का मुख्य गृह-उद्योग नारियल की जटा को कातना है। अभी तक इसको हाथ से किया जाता था और बहुत श्रम साध्य था। अव कातने के उन्नत तरीकों का प्रचार किया जा रहा है और लगभग एक हजार व्यक्ति जिनमें से अधिकांश महिलाएँ है चरखे पर नारियल की जटा को कातने का प्रशिक्षण ले चुकी है। द्वीपो में नारियल-जटा सम्बन्धी प्रशिक्षण और उत्पादन केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं। सहकारी समिति उन्हे नारियल की जटा खरीदने के लिए ऋण देती है और नारियल के डोरे को भारत मे वेचने की व्यवस्था करती है 'अन्द्रोथ' मे नारियल-की भूसी से केशतन्तु बनाने का एक कारखाना स्थापित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त द्वीपो मे और कोई उद्योग नही है। केवल एक हाथ कर्घे का केन्द्र और है।

पिछले दिनों तक इन द्वीपो और भारत की मुख्य-भूमि के बीच जो व्यापार होता था वह थोड़े से विचौलियों-जमीदारो, तथा नावो के मालिकों के हाथ में केन्द्रित था, और वे खूब लाभ कमाते और जनता का शोषण करते थे। १९६१-६२ में प्रशासन ने इसे समाप्त करके सहकारी समितियों का सारा व्यापार करने का अधिकार दे दिया इससे किसानों को बहुत लाभ हुआ है। भूमि सुधार के परिणाम-स्वरूप जमीदारों का शोषण भी समाप्त हो गया और किसान सुखी है।

१९६० में इन द्वीपों और भारत की मुख्य भूमि के नियमित जहाजो के चलने से भारत की मुख्य भूमि की यात्रा बहुत सुविधाजनक, खर्चीली, और भय-रहित हो गयी है। इससे पूर्व देशी नावों से आना-जाना होता था जो बहुत खतरनाक और खर्चीला था।

इस वात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि इन पिछड़े हुए द्वीपों का आर्थिक विकास तो किया ही जावे वहां के रहनेवालों का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी समृद्धिशालो बनाया जावे। इन द्वीपों की अधिकांश जन संख्या शिड्यूल ट्राइब्स की है अतएव जब हम वहाँ सामाजिक विकास करें तो उनकी परम्पराओ और जीवन पद्धति की उपेक्षा न करें। अभी वहाँ कोई राजनीतिक दल नही है। विकास कार्य के लिए कुछ सलाहकार समितियाँ स्थापित करदी गई हैं जिससे कि जो भी कुछ विकास कार्य वहाँ हो रहा है उसमें उनका योगदान होता है। आवश्यकता इस वात की है कि जो वहाँ की जनसंख्या के परम्परागत सामाजिक सगठन है उनको दृढ़ बनाया जावें और उनका उपयोग इन द्वीपों के आर्थिक विकास के लिए किया जावे। परम्परागत संगठन को कमजोर कर नये संगठन स्थापित करना उचित नही है।

यह द्वीप बहुत सुन्दर हैं। प्रकृति ने उन्हें नैसर्गिक सौन्दर्य प्रचुर मात्रा मे प्रदान किया है। ऐसे सुन्दर द्वीप बहुत कम देखने में आते हैं अतएव उन्हे पर्यटन स्थल बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। भारत की मुख्य भूमि से अधिकाधिक लोग इन द्वीपों के सौन्दर्य को देखने के लिए जावें उससे इन द्वीपों की आर्थिक समृद्धि तो वढ़ेगी ही यह द्वीप भारत को जनता तथा भारत मे हो रहे कार्यो से अवगत होंगे और भारत की मुख्य भूमि पर रहनेवाले इन द्वीपों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। आज तो यह द्वीप समूह मानो भारत के लिए अज्ञात इकाई है। साधारण भारतीय उनके विषय मे कुछ भी नही जानता।

लेखक की मान्यता है कि इन द्वीप समूहों को सर्वोदय समाज व्यवस्था की प्रयोगशाला बनाया जा सकता है! यह द्वीप समूह जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं, खद्यान्नों आदि की दृष्टि से अभावरहित प्रदेश है, वहाँ कर लगभग नही है, कोई राजनीतिक दल वहाँ खड़ा नही हुआ हैं। वहाँ की अर्थ व्यवस्था अत्यन्त सरल और सादी है। उसमे जटिलता उत्पन्न नही हुई। अधिकतर जनसख्या स्वयं कार्य कर स्वतत्र पेशे के द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करती है उसमे परम्परागत दृढ़ सामाजिक संगठन है अतएव वहाँ सर्वोदय समाज व्यवस्था के आधार पर वहां के आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन को संगठित किया जा सकता है। यदि इन द्वीपों मे सर्वोदय समाज व्यवस्था का एक सफल प्रदर्शन किया जा सके तो अनायास ही उसकी व्यवहारिकता मे सर्वसाधारण का विश्वास उत्पन्न होगा और उसके अनुभवों का उपयोग विस्तृत क्षेत्र में किया जा सकेगा। क्या गाँधी शताब्दी वर्ष मे सर्वोदय व्यवस्था में विश्वास रखने वाली संस्थाएँ इस कार्य मे हाथ लेंगी ?

आधुनिक भारतीय साहित्य के कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकार (३)

श्री गोपीकृष्ण मणियार एम० ए०

अब हम धूमकेतु के गुजरात पर लिखे गये उपन्यासों की ओर ध्यान देंगे। इन उपन्यासों में धूमकेतु का एक नया ही रूप सामने आता है। कथा के ताने-बाने उन उपन्यासों में काफी जटिल है। पात्रों की भी बहुलता है। पर ऐसा लगता है कि इनको लिखते समय धूमकेतु ने ज्ञान की गठरी को, जिसने उनकी कथा कहनेवाली प्रतिभा को मौर्यकालीन उपन्यासों में अवरुद्ध कर रक्खा था, अब उन्होंने नीचे फेंककर चैन की साँस ली। इन उपन्यासों में भी बीच-बीच में लम्बे सम्वाद, लम्बे वर्णन आये हैं। पर कथा का 'सस्पेंस' और क्षिप्रता पाठक को बराबर आगे बढ़ाते चलते हैं। मुंशी ने केवल दो महाराजों—भीमदेव और जयसिंह—और एक महामात्य-मुंजाल का चित्रण किया है। धूमकेतु ने भीमदेव, कर्णदेव, जयसिंह और कुमारपाल का इतिहास चित्रित किया है। दामोदर, शांतू, मुंजाल और उदयन चार महामात्यों की कथा कही है। मुंशी की अपेक्षा धूमकेतु ने पाटनेतर राज्यों के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चित्रण में भी अधिक मन लगाया है और उस चित्रण में बहुत उदारता बरती है। अवन्तिनाथ भोजराज की वीरता और विद्यानुराग बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से अंकित किये हैं। महाराज भोज की विद्वतसभा जो 'कनकसभा' के नाम से दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी, उनका प्रसिद्ध महल 'सरस्वती कंठाभरण' जहाँ कनकसभा की बैठक होती थी, कनकसभा, जिसकी बैठकों में साहित्य, संगीत, कला का प्रदर्शन होता था, सबकी भरपूर झाँकी दिखाई है। उनकी 'कर्णावती' में "महाराज भोज की अन्तिम कनक-सभा" नामक अध्याय तो भावों से ओतप्रोत गद्यगीत है। उसी प्रकार 'राजसंन्यासी' में वर्णित महाराज भोज का पद्मभवन और छद्मवेषिणी चौला द्वारा महाराज भोज की पूरी विद्वन्मंडली और कुंतल की दो मुखरगर्विणी नर्त्तिकाओं को छकाना भी बड़े आकर्षक और अनूठे बन पड़े है। कर्णाट, चेदि, सिंध, अर्बुद—सभी बड़े-बड़े राज्यों के अधिपतियों के वर्णन इसी प्रकार भव्य ढंग से हुए हैं। इन विशेषताओं के साथ-साथ अपने कथा-संगठन में धूमकेतु ने कोई कमी नही रहने दी है। घटनाओं के प्रति पाठक की उत्सुकता कहीं धीमी नही पड़ती। आगे क्या होता है यह जानने की उत्सुकता के कारण पाठक बड़ी तेजी के साथ बढ़ने वाली, घटनाओं के साथ, चलता रहता है। "राजसंन्यासी" को ही लीजिए। इसका आरम्भ होता है कीर्त्तिगढ़ (सिन्ध की सीमा पर पाटन की सामन्त का राज्य) के स्वामी बूढ़े मकवाणा की मृत्युशय्या के सहारे खड़े होकर उसके पुत्र केशर मकवाणा द्वारा पिता के वैरी से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा से, और अन्त होता है चौलादेवी द्वारा अपने कुमार की ओर से बड़े होने पर भी सिंहासन के अधिकार को छोड़ने के प्रसंग से। पूरे उपन्यास में कहीं भी भरती का माल नहीं है। इस कौशल में धूमकेतु कई बार मुंशी से भी आगे निकल जाते हैं और मुंशी के साहित्यिक गुरु ड्यूमा की पंक्ति में जाकर बैठ जाते हैं।

चरित्र-चित्रण में धूमकेतु ने स्वाभाविकता पर अधिक दृष्टि रक्खी है। उनके कितने ही ऐतिहासिक पात्रों के अंकन बड़े ओजस्वी हुए हैं। पर उस ओज में स्वाभाविकता है, और है प्रतीति। मुंशी के विशिष्ट पात्र अपनी महत्ता में अतिमानवीय हो गये हैं। चौला को ही लीजिए, मुंशी के 'जयसोमनाथ' में चौला के चित्रण में काफी दुरूहता है। उसका भीमदेव के प्रति अनुराग भी प्लेटोंनिक (platonic) है। उसने भीमदेव को भगवान् सोमनाथ समझकर अपना शरीर अर्पित किया। पर जब उसे अपने भ्रम का ज्ञान हुआ, तब केवल कभी न मिटनेवाली विरक्ति हाथ रही।

प्रेमातुर महाराज पास आये, चौला के मुख को दोनों हाथों में लिया और उसे चूम लिया। चौला को सारा संसार हिलता हुआ जान पड़ा। वह मुख और पसीने की गंध, वह काढी हुई सुवासित दाढ़ी का सुहाना स्पर्श और वह बड़ी-बड़ी आँखों की विलास-लालसा उसे पराई, अपरिचित और अप्रिय जान पड़ी। वह आँखें मीचे, थर-थर काँपती हुई इस दुलार को सहन कर रही थीं'। और आगे चलकर जब सोमनाथ के नये मन्दिर में मूर्त्ति-प्रतिष्ठापन का दिन आ गया और महाराज ने चौला को कहा——

"आज रात को तेरा व्रत पूरा होगा और मै आऊँगा। तू सेज तैयार रखना—वैसी ही जैसी उस दिन। (प्रथम मिलन के दिन) की थी तब वह मुँह ढँककर सन्ध्या को

आरती में आती है और अपने पिनाकपाणि को नृत्य से रिझाते-रिझाते निष्प्राण होकर गिर पड़ती है।

इस चित्रण में विलक्षणता भले हो, प्रतीति नहीं है। धूमकेतु ने चौला को दूसरे ही साँचे में ढाला है। उनमें महारानियों को भी लज्जित करनेवाले गौरव की गरिमा है, त्याग का तेज है, कला का अनुराग और निपुणता है, और सबसे बढ़कर है पाटण की उत्तरोत्तर उन्नति की निरन्तर कामना। महामात्य दामोदर, महाराज भीमदेव, पाटण के एक-एक बच्चे को उन पर अपार श्रद्धा है। यह सब बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। "चौला" "राजसंन्यासी" और "कर्णावती" तीनों उपन्यासों में एक के बाद एक प्रसंग चौलादेवी की महानता के आये है। चौला की प्रेरणाशक्ति को लक्ष्यकर धूमकेतु की कल्पना तुरन्त गुप्तकाल मे पहुँच गयी—ध्रुवस्वामिनी पर जाकर रुकी—ध्रुवस्वामिनी जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पराक्रम का मूलस्रोत थी। चौला के आत्माभिमान का पार न था। उसके रूप और नृत्य-गायन-कौशल पर भरतखंड के सभी गण्यमान्य महीपाल मुग्ध थे और उसे अंकशायिनी बनाने को अधीर थे। पर चौला 'भोगिनी' कैसे बन सकती थी? वह तो केवल भगवान् सोमनाथ के मन्दिर की नर्तकी थी पर नृपतियों का वैभव तेज और आतंक उसके सम्मुख नगण्य थे। महाराज भीमदेव पर भी उसकी मोहिनी चली। वे उसके लिए पागल हो गये। पर उसकी निर्मलता को उन्होने पहिचाना और सिंहासनारूढ़ राज-महिषी के रूप में उसे पाने का अपना संकल्प प्रकट किया। पाटन के मत्री एव राजपुरोहित विमल एवं चड शर्मा बौखला उठे। महारानी उदयमती ने पाटन की सीमा से चौला को निकालने का बार-बार यत्न किया। हारकर २००० घुड़सवारों के साथ अपने पिता सोरठ के 'नव धणरा' को बुलवाया पर अपनी सौम्यता, दृढ़ता एवं त्याग से, दामोदर मेहता के बुद्धि-कौशल से, चौला ने सारे विरोधियों का मन जीत लिया। महारानी उदयमती से उसने अपनी एक भेट में कहा था—

"वारांगना नारी जीवन का एक अकस्मात् है, उसके जीवन का परिमल तो जनता ही है।"

और जब भोगराज द्वारा गंधर्व-वृंद के साथ भेजे गये मृदंग को महाराज भीमदेव के पूरे दरबार में कोई नही बजा सका। और उन गन्धर्वो को विजय पत्र देने की विवशता उपस्थित हुई तब परदे की आड़ में बैठी हुई राजमहिलाओं के बीच से उठकर चौला आई। उसने मृदंग उठा कर लाघव के साथ अपने सारे शरीर के साथ एकाकार कर लिया और गंधर्व वादक की गर्वोक्ति "इस मृदंग में पाटन के दुर्ग के पत्थरों को कँपाने का विनोद है" का हवाला देकर, चौला ने मृदंग पर थाप मारी। अषाढ़ी मेघ जैसा गम्भीर घोष सभा में गूंज उठा। यह घोष सुना? चौदह सौ तो क्या चौदह हजार की गज सेना को पीछे हटा देगा (मालव राज की सेना में चौदह सौ हाथी थे)।

सारा पाटन विजय गर्व के नशे में झूम कर "महारानी चौला की जय" चिल्ला उठा—वही पाटन जहाँ वारांगना को सिंहासन पर बैठाने की तत्परता के कारण महाराज भीमराज लोगों के मन से उतर चुके थे। अपनी ऐसी अनुपम सृष्टि पर परितुष्ट होकर धूमकेतु ने ठीक ही लिखा है:—

"गुजरात के इतिहास की यह प्राणदायी कथा, सर्वसमय की, सर्वकाल की है। इसका हिन्दी रूपान्तर प्रान्त-प्रान्त के संस्कार-वितरण की दृष्टि से अत्यंत सार्थक और स्वागत के योग्य कहा जा सकता है।"

अन्त मे एक और बात। धूमकेतु का महत्त्व इसीलिए और भी बढ़ जाता है कि मुंशी की प्रतिभा की चमक के दरम्यान उन्होंने अपनी महत्ता कायम की, और कायम रक्खी। मुंशी द्वारा चित्रित युग का ही "नये सिरे से अ नी कलम से अनावरण करने का उनका आग्रह एक दुर्निवार साहसिकता का परिचायक है। बहुत पहले, २४००० श्लोकों मे वाल्मीकि द्वारा सविस्तर वर्णित कथा प[र] कालिदास ने भी अपनी कलम उठाई थी और केवल १५६[८] श्लोकों के 'रघुवंश' द्वारा अपनी विशिष्ट प्रतिभा प्र[कट] कर दी थी। उन्होंने तो नम्रतावश लिख दिया था;—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशे स्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रयेस्वास्ति मे गतिः॥

पर धूमकेतु पर इतना भी अपने पूर्ववर्त्तियों का ऋण नही दिखलाई पड़ता। दो समकालीन उपन्यासकारों की एक ही काल और पात्रों को लेकर की गई रचनाओं मे इतना वैविध्य रहना साहित्य रचना के क्षेत्र में बड़ी मद्-

भुत घटना है, पाठको के लिए कौतुक, आनन्द और सन्तोष का तो विषय है ही।

अब हम गुजरात के तीसरे ऐतिहासिक कथाकार गुणवन्त आचार्य की रचनाओं को लेंगे। उनके ऐतिहासिक उपन्यास प्रायः एक दर्जन है। पर विजयनगराज्य पर लिखे गये उनके पाँच उपन्यासों का अभी तक हिन्दी में अनुवाद हुआ है—"हरिहर" "कृष्णजीनायक" "रामरेखा" 'बुक्कराय' और "महामात्य माधव"। यहाँ हम केवल इन्हीकी चर्चा करेंगे।

हम लोग भारतीय संस्कृति की एकसूत्रता की बाते तो बहुत करते है पर सचाई में उसे अपने जीवन के व्यवहार में लाने की जरा भी कोशिश नही करते। दक्षिण के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री श्रीनिवास आयंगर का आज से ४० वर्ष पूर्व उत्तर भारतीयों पर आरोप था कि वे लोग अपने अज्ञान में मस्त उत्तर-भारत की यशो-गाथा गाते रहते हैं और भूलकर भी यह जानने की कोशिश नही करते कि नर्मदा और ताप्ती के दक्षिण से कन्याकुमारी तक के विशाल भू-खंड में जीवन के विविध क्षेत्रों—राजनीति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, ललित-कला—में कितनी विराट् एवं महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं, कितने महापुरुषों का आविर्भाव हुआ। आज, ४० वर्ष बाद भी वह आरोप अधिकांश में सत्य है। हम हिन्दी को राजभाषा के पद पर वास्तविक अर्थ में आरूढ़ देखने के लिए बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। पर हम दक्षिण-प्रदेश की चार भाषाओं और साहित्यों—तमिल, तेलगू मलयालम् और कन्नड़—से अधिकाधिक परिचित होते जाने के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं। हिन्दी के विरोध के नारे के बावजूद, जो राजनीतिक कारणों से और थोड़े से लोगों तक सीमित है, दक्षिण के लोग बड़े चाव और तेजी से हिन्दी पढ़ते जा रहे है और गम्भीर विद्वानों का मत है कि अंग्रेजी के समान बहुत तेजी से वे हिन्दी में भी दक्षता प्राप्त कर हिन्दीभाषियो को लज्जा से नतशिर कर देंगे। अच्छा होगा यदि अब भी हम मोह निद्रा से जागें और दक्षिण की ज्ञानगंगा में धीरे-धीरे डुबकी लगाना शुरू करें। अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति, अध्यात्म एवं चिन्तन में दक्षिण की द्रविड़ जाति का प्राचीनकाल से ही कितना भारी योग-दान है यह इतिहास के विद्यार्थी से छिपा नहीं है। सुनीतिकुमार चटर्जी ने हिन्दू संस्कृति की तीन प्रधान विशिष्टताओं में एक विशेषता बताई है सत्य—अनुसन्धित्सा—सच्चाई को खोजने की अभिलाषा। हमारी उपासना-पद्धति, सामाजिक व्यवस्था, देवताओं की कल्पना इत्यादि में दक्षिण के योग का ठीक पता सत्यान्वेषण से ही मिलेगा और इस सत्यान्वेषण के पुनीत अनुष्ठान में गुणवन्त आचार्य ने आगे बढ़कर अपनी कृतियो द्वारा चौदहवी सदी के दक्षिण भारत का अंकन करके जो भाग लिया है उसके लिए पुरोगामी के रूप में उनकी बहुत दिनो तक वन्दना होगी। और गुजराती होकर भी दक्षिण प्रदेशों के प्रति जो उन्होंने ध्यान दिया, उस समय के इतिहास का बारीकी में अध्ययन किया, उस समय की सर्वक्षेत्रीय गतिविधियों में, जन-मन-स्पन्दन मे अपने को आत्म-विस्मृत कर, इतने सजीव, प्रामाणिक, उत्सुकता से भरे हुए आख्यान कहे उसके लिए वे और भी अधिक सम्मान के अधिकारी हैं।

गुणवन्त आचार्य का काम मुंशी, धूमकेतु, राखाल से अधिक कठिन था। मुंशी, धूमकेतु गुजराती है। और गुजरात पर लिखने के लिए उन्हें अध्ययन-विषयक वह श्रम नही करना पड़ा जो गुणवन्त के हिस्से आया। अपने प्रदेश का कुछ ज्ञान तो स्वतः जन्म एवं लालन-पालन से होता है। फिर अपने प्रदेश के प्रेम के कारण, प्रादेशिक या अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध सामग्री को पढ़ने में स्वाभाविक रुचि होती है। पता नही बेचारे गुणवन्त को कहाँ-कहाँ की खाक छाननी पड़ी होगी—अपनी सामग्री इकट्ठा करने में। जैसा कि स्वाभाविक था, इतिहास-ग्रन्थों के साथ लोक-कथाओ और लोकगीतों का अध्ययन करना भी गुणवन्त नही भूले। महामात्य माधव की भूमिका में उन्होने लिखा :—

"मदुरा की उस छोटी-सी सल्तनत का इतिहास में विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता जो खून और दगाबाजी से भरा हुआ है। खुद मुस्लिम नामानिगारों ने भी विस्तार से उल्लेख नही किया है। परन्तु मदुरा की सल्तनत का खूनी पंजा जनता पर इस प्रकार गहरा और करारा पड़ा था कि लोगों ने तमिल और मलयालम् भाषाओं में कई लोकगीत और कथागीत लिखे।

इस विस्तृत अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि इतिहासवेत्ताओ के लिए भी अपनी प्रामाणिकता के कारण उनके उपन्यास अनालोच्य हो गये। ऐसा मालूम पड़ता है कि दक्षिण के इतिहास की सामग्री उतनी बिरल और बीच-बीच में टूटी हुई नहीं है जैसा उत्तर भारत की सामग्री

का हाल है। दूसरे दक्षिण के संबंध में हमारी गैरजानकारी भी कम नहीं। इन्हीं दोनों कारणों से गुणवन्त के उपन्यासों में पग पग-पर नई जानकारी मिलती है। राजाओं का आपसी द्वेष और एक दूसरे को नीचा दिखाने की लपक-झपक तो है ही, उसके अलावा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और सामाजिक वर्गों का विस्तृत परन्तु रोचक परिचय भी बराबर मिलता चलता है। सबसे बढ़कर मध्यकालीन दाक्षिणात्य इतिहास के रंगमंच पर थिरकनेवाले, स्थानीय जन-साधारण के जीवन से आज भी ओत-प्रोत, विराट् व्यक्तियों के साथ भावात्मक साहचर्य का लाभ प्राप्त होता है।

इतने विशाल अध्ययन के बावजूद गुणवन्त ने अपनी कथा कहने की प्रतिभा को इतिहास की ज्ञान-गठरी से दब नहीं जाने दिया है। उनकी कथा में मुंशी के स्वनिर्वाचित साहित्य—गुरु ड्यूमा का सस्पेंस और वेग है। कहीं-कहीं तो संदेह होंगे। लगता है कि जासूसी या तिलस्मी उपन्यास हैं या ऐतिहासिक। "महामात्य माधव" के अन्त में मदुरा का सुलतान फिरोज मदुरा के अपने से पहले के सुलतान मुबारक, जिसको उसने धूर्तता से तख्त से हटाकर अपना कब्जा कर लिया था, के सामने पड़ता है। जब मुबारक ने पिछले हिसाब की भरपाई करने के लिए द्वन्द युद्ध के लिए उसे ललकारा तो तलवार उठाकर उसने वार किया—मुबारक पर नहीं, अपने साथी उमर कोतवाल पर। और उसे नीचे गिराकर फिरोज ने अपनी तलवार फेंक दी, हाथ झटक दिये और मुबारक की ओर मुड़कर बोला :—

मुबारक मेरे मन में तुम्हारे लिए हमेशा मान-सम्मान था। लेकिन इस नापाक ने मुझे गलत राह पर लगा दिया। इसी ने मुझसे झूठ-मूठ कहा कि तुमने (मुबारक) काजी साहब को मारा है। इसके बहकाने पर ही मैं चिढ़ गया था। बाकी मेरे दिल में तुम्हारे लिए कभी बुरा ख्याल नहीं आया। मैं जानता था कि तुम्हारा खान्दान कई पीढ़ियों से वफादार रहा है।"

फीरोज वैसे एकदम बदल गया था। मुबारक अवाक होकर सुनता रहा। इतना जल्द यह बदल गया। जमीन पर पड़े हुए उमर ने अपना हाथ लंबा कर, जोर से फिरोज का पैर खींचा। फीरोज नीचे गिर पड़ा। अपनी शेष समस्त शक्ति का उपयोग कर उमर ने दोनों हाथों से फीरोज का गला दबाया, जोर से, बहुत जोर से।

हम दो......दोनों......एक बेगम के प्रति......एक पाप ......के दो पापी......एक ही बेईमानी के दो करनेवाले ....मैं अकेला कैसे जा सकता हूँ.......फिरोज शैतान ....जहन्नुम में जाने पर भी तुझे साथ लेकर जाऊँगा। ......हाँ......"

और उसने फिरोज का गला और जोर से दबाया। फिरोज को बचाने के लिए दौलताबादी कुमुक का एक आदमी आगे बढ़ा। मुबारक ने उसे दोनों हाथों के इशारे से रोक दिया। वह देखता रहा।

कोड़े के मार-सी एक आवाज फिरोज की गर्दन से उठी—उनकी गर्दन टूट गई। और उसका निष्प्राण देह उमर के शव की पकड़ में आ रहा।"

यह तो एक उदाहरण है। पाँचों उपन्यास इस तरह के नाटकीय प्रसंगों से भरे पड़े हैं। "कृष्णाजी नायक" पूरे उपन्यास में अन्त तक पहुँचाने के पहले, पता नहीं लगता कि प्रसिद्ध ज्योतिषी गंगू कन्याली जो दिखलाई पड़ता है वह नहीं है। सारे उपन्यास में वह भयंकर देशद्रोही के रूप में चित्रित होता है। अपने परमसुहृद और अत्यन्त जनप्रिय कर्णाटक नरेश बल्लालदेव तृतीय (राजसंन्यासी) के पास सोने की मूठवाली एक बेशकीमत रत्नजटित तलवार थी उस तलवार के लोभ से, अपने हाथों राजा का शिरच्छेद कर उनके कटे सिर को गंगू ने तुर्क-सेनापति को अपने हाथों समर्पित किया। दौलताबाद से सूबेदार मुहम्मद तगी मोची की कन्या मंजरी से जिसके प्रति खुद उसका पुत्री भाव था, विवाह कर वह विप्रविनोदी (पतित ब्राह्मण) बना। केवल अन्त में यह पता लगता है कि गंगू कान्याली विजयनगर राज्य के महाकरणाधिप 'प्रज्ञाचक्षु' दादाजी सोमैया से विजयनगर के हित में जासूसी करने को वचनबद्ध हो गया था। उस योजना के अतर्गत एक ओर तो उसने काम्पिली और किरात प्रदेशों को विजयनगर राज्य के अन्तर्गत किया और दूसरी ओर वह तुरुकों (तुर्कों) पर पूरी नजर रखकर उनकी सारी अंतरंग जानकारी दादाजी सोमैया को देता रहा जिससे पांड्य प्रदेश को तुर्कों की दासता से मुक्तकर विजयनगर राज्य के एक सीमान्त प्रदेश बनाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। अपने अनुष्ठान की सफलता के लिए बेचारा ब्राह्मण जीवन भर झूठी बदनामी, तिरस्कार और अपमान के भार को एकाकी सूबेदार की कटार के घाव से मरते हुए गूँगू के मुँह से ही, कृष्णाजी नायक के

समान आप भी सारी असलियत कान खोल कर सुन लीजिए "मैंने प्रतिज्ञा की थी कि काम्पिलीगढ़ दक्षिणापथ के लिए चाहे जितना उपयोगी क्यों न हों, मैं इसका विनाश करूँगा ....काम्पिली देव का सत्यानाश होगा ...."गंगू के चेहरे पर क्रूर हास्य रेखायें छा गयीं"। और मैंने उनका नाश किया है। मैंने यह भी सुना कि तुर्कों ने उनके छोटे बड़े पुत्रों को कत्ल कर दिया।"

"महाराज सचमुच आप ब्रह्मराक्षस हैं।"

अपने राजा का अपमान करने वालों के लिए मैं ब्राह्म-राक्षस था। अपने लोगों के लिए ब्राह्मण था। तुम्हारे लिए कृष्णाजी ! काम्पिलीगढ़ के खंडहरों से लेकर वारंगल तक के खंडहरों का सारा तेलगु प्रदेश प्रस्तुत है—यह गंगू की कृपा है। याद है, किरातराज के दुर्ग से तुम्हें किस प्रकार भगा दिया था? किरातराज को शक न हो और तुम भाग सको—इस प्रकार की मेरी व्यवस्था थी ....तुम्हारा पीछा करने का ढोंग रचकर मैंने तुम्हें भाग निकलने की राह बताई थी ? याद है सब कुछ ?"

"अब याद आ रहा है महाराज...........मैं अल्पमति आपकी किस प्रकार अभ्यर्थना करूँ। अपनी सेवा और अपने वैर—दोनों की दृष्टि से आप अनन्य हैं, असाधारण हैं, महान् हैं।"

ऐसे नाटकीय प्रसंगों के बीच, बड़ी सतर्क निपुणता के साथ गुणवन्त किसी न किसी पात्र के मुँह से जीवन के गम्भीर सत्यों और राष्ट्र को प्राणवान बनाये रखनेवाले तत्वों का बराबर उद्घाटन करवाते रहते हैं।

कृष्णाजी ने काम्पिली के राजा से कहा था, "बालकों के चरित्र निर्माण के लिए प्रतापी पुरुषों की जीवन-गाथा का श्रवण जरूरी है। ऐसा लगता है कि गुणवन्त की घटनाएँ, संवाद, पात्रों का स्वागत-चिन्तन सब कुछ इस चारित्र-निर्माण दृष्टिकोण से अनुप्राणित है। स्थान की परिमितता के कारण, इस तरह के थोड़े से ही उद्धरण दिये जा सकते हैं।

जो नर सावधान रहता है वह सदा सुखी रहता है। अमरपुरी में जो जागता है वह जीता है और जो सोता है वह मरता है। भारत भर में हमने अधिक से अधिक हानि इसीलिए सही कि हम अधिक गफलत में रहे। हमें यह समझने में समय लगा कि तुर्कों के लिए किसी प्रकार का साहस अशक्य नहीं है और किसी प्रकार की यात्रा असंभव नहीं है। (कृष्णाजी नायक पृ० ५६)

"जिस घड़ी तुरुष्कों का लूट का मार्ग बन्द हो जावेगा उस घड़ी उसके अन्दर वैमनस्य जन्म लेगा। आज जो उनमें दृढ़ता है वह हमारी निर्बलता के कारण है। हमारी निर्बलता ही उनका बल है।" (वही पृष्ठ ५६)

"हर एक इन्सान के लिए तकदीर का एक कौल होता है। हजारों लाखों सालों से आदमी और तकदीर का साथ रहता आया है। तकदीर कभी किसीका पीछा नही छोड़तीं, फिर चाहे आदमी सातवें आसमान में रहता हो या सातवें पाताल में। (वही पृष्ठ ९९)

"क्यों घबराता हैं ? सल्तनत लेने के लिए चला है और कलेजा इतना कच्चा रखता है ? जो अपनी सल्तनत लेना चाहता हो या परायी छीन लेना चाहता हो उसे अपना सिर हथेली पर लेकर चलना चाहिये।"

("महामात्य माधव" पृष्ठ १४६)

"बिरद बखानते हुए कवि चुप नही रहते। तूफान के बीच मर्द आदमी कदम पीछे नहीं हटाते। दाँव के सामने जुआरी पैर पीछे नहीं धरते। प्रेमी के पास से प्रेमी लौटते नहीं।

......मृत्यु के हाथ में धर्म का तराजू है और धर्मराज मेरा तेरा न्याय करेंगे। क्या तो तीर्थकरों के भव्य और क्या विरूपाक्ष के भक्त सभीको उस महान् हिसाब-नवीस के सामने अपने-अपने मुहरे रखने होंगे।

(रायरेखा)

ऐसा लगता हैं कि राष्ट्र के चारित्रिक निर्माण के उद्देश्य से ही उन्होंने "रायरेखा" के विचार को धीरे-धीरे अपने उपन्यासों में संवर्धित किया। एक तो इस नाम का पूरा उपन्यास ही है। पर "रायरेखा" शब्द से इंगित चेतना का स्वर उनके सभी उपन्यासों से मुखरित हुआ हैं। जैसे अभी हाल १९४७ ई० में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बने हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों का सन्निवेश हुआ है, ठीक उसी प्रकार गुणवन्त के अनुसार आज से ६०० वर्ष से भी अधिक पूर्व १३४६ ई० में भगवान् कालमुख विद्यालंकार के आदेश महामंडलेश्वर हरिहर और महाकरणाधिप दादाजी सोमैया (जो अंधे थे पर अपनी विलक्षणता के कारण प्रज्ञाचक्षु कहे जाते थे) ने राज्य और समाज

के प्रत्येक सदस्य के अधिकार और उत्तरदायित्व की सीमा रेखा अंकित की। यह सीमा रेखा ही कहलाई 'रायरेखा'।

राज्यगुरु पंडित आर्यभद्र के मुंह से रायरेखा का परिचय सुनिये—"सहस्रों वर्षो से इस देश में साम्राज्य रहते आ रहे हे। राज्य रहे हे। महाराजा रहे है। सम्राट् रहे है। उन्होंने धर्म के अनेक कार्य सम्पन्न किये हे। उनमें से कुछ ने अनर्थ आचरण भी किये हे, परन्तु किसी ने 'रायरेखा की कल्पना न की और न ही उस पर आचरण किया। और एकमात्र विजयधर्म-राज्य ने यह करके दिखा दिया।

रायरेखा कैसी साफ और सीधी चीज है। परन्तु बड़े समय तक के लोगों के दिमाग में भी इसकी कल्पना नही आई। विजयनगर राज्य में रहनेवाले किसी भी व्यक्ति को स्वच्छन्दता का, उच्छृंखलता का अधिकार नहीं है। संसार में जितने अधिकार है सबके साथ धर्म जुड़ा हुआ है।

राज्य किसीको आय के तीसवें भाग से अधिक कुल कर नहीं वसूल कर सकता। आज तक न्याय तन्त्र सेनापतियों और दण्डनायकों के हाथ में रहा है, अब आगे से वह राजगुरु द्वारा निर्वाचित धर्माधिकारी के हाथ में रहेगा। न्याय सभा की बैठक सदैव नगर मन्दिर में प्रजाजनों की उपस्थिति में ही होगी। खानगी में किसीकी तलाशी न ली जावेगी और धर्माधिकारी की आज्ञा के बिना किसीको कोई दण्ड नही दिया जा सकेगा। राजगुरु अथवा धर्माधिकारी की आज्ञा के बिना राज्य अथवा राज्याधिकारी, सेठ, नायक या दुर्गपाल किसीकी सम्पदा या जायदाद नही ले सकेगा।

इसके अतिरिक्त राज्य चारों धर्मों के उत्सव, समान भाव और रूप से, मनाएगा। चारों भाषाओं के पण्डितों के योग से कलासभा की रचना होगी। राज्य के सभी आदेश शिला-लेख पर अंकित किये जावेंगे, कोई आदेश मौखिक न रहेगा।" (रायरेखा)

गुणवन्त के चित्रण के अनुसार विदेशी तुर्को के साथ संघर्ष में जनता के सभी वर्गो से सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पर पहले पहल ध्यान दिया गया और उसी का फल हुआ 'रायरेखा' की स्थापना। जो अपने ही देश की संस्कृति और सम्प्रदायो के निकट अस्पृश्य थे, जिन्हें समाज में कोई अधिकार नही प्राप्त था उन कुरुओं, पांचालों, वेसवाणों, होलेयों और पालेरों के भूमि और श्रमसंबंधी अधिकारों का आश्चर्य में डालनेवाले सुनिश्चित ढग से राज्य-तन्त्र में पहले-पहल निर्धारण हुआ। चार प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों—वीरशैव, शुद्ध-शैव, जैन, भागवत—का एक सर्वसम्मत आचार्य के अधीन संगठन कर धार्मिक विद्वेष का मूलच्छेद किया गया। होलेयों और पालेरों (क्रीतदासों) ने जो श्रवण बेलगोला के वीरवणिकों की सम्पदा अपना खून दे देकर रात-दिन बढ़ाते जा रहे थे, विद्रोह किया। धरती की पीठ पर कहीसे जिसकी हुंडी खाली नहीं लौटकर आती थी, उस वीरवणिकों के पृथ्वी सेठ वायीजन की प्रचंमैंड पराक्रमगर्व-शालिनी कन्या गोमती को बाध्य होकर इन दासों के परचेरी के अधिकार प्रदान करने पड़े—पालेर अब क्रीतदास नही थे। वे अब विजयनगर राज्य की ओर से एक वर्ष के अनुबन्ध के अंदर वणिकों को वीरवणिक, कुरूम्बा, देवांग; बनाजा बेहारूल—उधार दिये गये मजदूर थे जिन्हें रहने के लिए मकान, उचित मजदूरी, पारिवारिक जीवन की सारी सहूलियत देना वणिकों के लिए आवश्यक था। इसमें संदेह नही कि छः सौ वर्ष पूर्व ऊपर बताई गई जिस व्यवस्था की सर्जना हुई वह आज भी चिर-नवीन है और चाहे तो आज भी हमारा देश इस सुव्यवस्था को हेर-फेर के साथ स्वीकार कर लाभ उठा सकता है।

कवयित्री रत्नावली

डा० रवीन्द्र

लाज न लगत आपकों, दौरे आएउ साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम कों, कहा कहों मैं नाथ।।
अस्थिचर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम मँह, होति न तौ भवभीति।।

इन पंक्तियों के साथ एक नाम जुड़ा है रत्नावली का, जो गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी थीं। पत्नी ही नहीं मार्ग-दर्शिका भी थीं। उनके वचनों ने उन्हें सांसारिक मोह त्याग कर आध्यात्मवाद की ओर प्रेरित किया। तुलसीदास का मोह छूट गया और रामचरितमानस जैसा अमर काव्य देकर उन्होंने हिन्दी साहित्य की ही श्री-वृद्धि नहीं की, जन-मानस को भी उबारा। लेकिन मानस पर एक छाप पड़ जाती है कि वह स्त्री कैसी कठोर थी! भारतीय पत्नी की तो यह मर्यादा नहीं है कि अपने पति को 'लाज न लागत' कहकर फटकारे, 'धिक-धिक ऐसे प्रेम को' कहकर धिक्कारे, अपमानित करे। जब मैं पांचवी या छठवी कक्षा का विधार्थी था तब एक पाठ पढ़ा था जो मानस पर अंकित हो गया। तुलसीदास, जिनका मुँहबोला नाम रामबोला अथवा रामोला था, का विवाह रत्नावली के साथ हुआ था। एक बार रत्नावली अपने पीहर चली गयी। तुलसीदास, जो अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे, बिना पत्नी के सूने घर में न रह सके। रात्रि को ही ससुराल चल दिये। मार्ग में बरसात की चढ़ी हुई गंगाजी को पार कर घर पहुँचे तो, द्वार बन्द था। पिछवाड़े की दिवाल पर परनाले के साथ सांप लटका हुआ था, लेकिन उसे रस्सी समझ पकड़कर ऊपर चढ़ गये। जब पत्नी के सामने पहुँचे तो उसने उक्त पंक्तियाँ कहीं।

इस कहानी मे घटनाचक्र इतनी सहजता से गुम्फित है कि रत्नावली की फटकार अस्वाभाविक नही लगती, लेकिन इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने से पूर्व, कुछ तथ्यों पर विचार कर लेना श्रेयस्कर होगा।

सोरों से पश्चिम दिशा में बद्रिकाश्रम गगातट पर बसा था। ऐसा उल्लेख वाराहपुराण में है। आजकल तो गंग जी सोरों से तीन मील दूर बहती हैं तथा बदरिका या बदरिया सोरों का एक मुहल्ला बन गया है। लेकिन बात चार सौ वर्ष पूर्व की है जब संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् पं० दीनबन्धु पाठक के घर रत्नावली का जन्म हुआ। रत्नावली यथा नाम तथा गुण थी, रत्नावली ने स्वयं कहा है :—

जनम बदरिका कुल भई, हों पिय कंटक रूप।
विंधित दुषित ह्वै चलि गये, रत्नावली उर भूप।।
हाय बदरिका वन भई, हौं बासा बिपिवेलि।
रत्नावलि हौं नामकी, रसहि दयो विष वेलि।।

बदरिका में रत्नावली के जन्मस्थान का कथित प्रतीक एक मिट्टी का ढेर है। सम्भवत: इसका कारण यही है कि गगा की बदलती धार और उसके तीव्र लहरों ने इस ग्राम को कई बार जलमग्न किया था। जैसा तुलसीदास के भतीजे कवि कृष्णदास ने अपनी 'वर्ष-फल' नामक पुस्तक में वर्णन किया है :—

सोरह सौ सन्तावनि विक्रम के वर्ष माँझ।
भई अति कोप दृष्टि विश्व के विधाता की।।
बीतत अषाढ़ बाढ़ लायो बढ़ि देव धुनी।
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माता की।।

रत्नावली सुन्दर, सुशील, सरल स्वभाव की ही नहीं बुद्धिमती एव सुशिक्षिता भी थीं। कवि मुरलीधर चतुर्वेदी ने रत्नावली की काव्यमय जीवनी में लिखा है कि आरम्भ में भाइयों से शिक्षा ग्रहण कर, रत्नावली—

कछुक दिन में भई जोग। कहहिं सरसुती ताहि लोग।।
पुनि ब्याकरनहु पितृ पढ़ाय। दीनों कोसहु तिहिं घुकाय।।
बालमीकि पुनि पठन लागी। गई भारती तासु जागी।।
पिंगल के कछु अंग जानि। काव्य करन की परी बानि।।

कुशाग्रबुद्धि रत्नावली ने अपने विद्वान् पिता से व्याकरण ही नहीं, पिंगल का भी ज्ञान प्राप्त किया और कविता करने की प्रवृत्ति उसमें सहज जाग्रत हुई। रत्नावली का हस्तलिखित

साहित्य,* लगभग २०० से अधिक दोहे तथा कुछ पद, आज भी तुलसी समिति सोरों के पास सुरक्षित है। लेकिन हिन्दी साहित्य में उसका उचित मूल्यांकन नहीं हुआ, ऐसा प्रतीत होता है रत्नावली हृदयोद्गारों को जब तब दोहों के रूप में प्रगट किया करती थी। पति वियोग ने उसके दर्द को उभाड़ दिया था और फिर ब्रजभाषा मे मधुर दोहे सहज भाव से रत्नावली के मानस रत्नाकर से प्रवाहित हुये :—

हों न उऋन पिय सों भई, सेवा करि इन हाथ।
अब हों पावहु किस विधि, सदगति दीनानाथ॥

रत्नावली ने भारतीय संस्कृति के स्त्री शिक्षा विषयक उच्चादर्शों को भी अत्यन्त सरलता से छोटी-छोटी कड़ियों मे पिरो दिया है जैसे :—

बारीपितु आधीन रहि, जोबन पति आधीन।
बिनु पति सुत आधीन रहि, पतित होत स्वाधीन॥

रत्नावली के दोहों में पति वियोग की पीड़ा, पति-दर्शन की लालसा, अटूट पति भक्त एकानेक रूप में मुखरित हुई है :—

पतिगति, पतिवित, मीतपति, पति सुर, गुरु भरतार।
रतनावलि सरवस पतिहि, बंधु बंध जगसार॥

रत्नावली के विचार पति को सर्वस्व मानने के है वह पति के सम्मुख पूर्ण रूप से विनत है। पति को परमेश्वर मानती है, वह भला पति का अपमान कर सकती है।

रतनावलि न दुखाइये, करि निज पति अपमान।
अपमानित पति के भयें, अपमानित भगवान॥

रत्नावलि के प्राप्य सभी दोहों का एक-एक शब्द उसके सरल, मर्यादित एवं पति-भक्ति में पगे सौम्य कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देता है। उसका पति को इतने कठोर शब्दों मे धिक्कारना कि 'लाज न लागत आपको' तर्क-संगत नही प्रतीत होता। रत्नावली परम साध्वी थी। दुर्भाग्य से पति-वियोग सहती हुई ही सम्वत् १६५१ विक्रमी, चैत कृष्णा अमावस्या को इस लोक से चली गई, लेकिन अन्त समय तक पति के लिये व्याकुल होती रही—

असन बसन भूषन भवन, पिय बिन कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन-छिन 'जिय' अकुलाय॥

---

* रत्नावली (की जीवनी) और रत्नावली लघु दोहा सग्रह—ये दोनों हस्तलिखित (प्राचीन) रचनायें पं० गोविन्द वल्लभ जी भट्ट सोरो निवासी के सौजन्य से उपलब्ध है।

दोहा रत्नावली, गोपालदास की प्रति, १८२८ वि० में रत्नावलि रचित २०१ दोहे संग्रहीत हे।

दोहा रत्नावली, लघु दोहा सग्रह, ११० दोहों का सग्रह ईश्वर नाथ की प्रति, संवत् १८७५ वि० दोहा रत्नावली, गंगाधर की प्रति १८२९ वि०।

रत्नावली के कुछ प्रचलित पद, आदि सोरों में प्राप्य है।
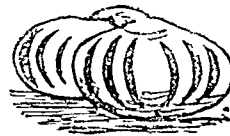
'तुलसी-रत्ना' संवाद

श्री राजकुमार सैनी

('तुलसी-रत्ना संवाद' ऐतिहासिक धारणा या किम्वदन्ती पर आधारित न होकर, कवि-कल्पना-मात्र है।)

चन्द्रोदय का समय;
गगन में अंधकार के झाड़
ज्योत्स्ना में कुछ यों बिखरे
मलिन अन्तर के भाव-अभाव
दार्शनिक हो कर ज्यों निखरे।
धरा का दूर-दूर तक मौन
प्रश्न सा करता जाता; कौन ——?
घाट तक आया।
चित्रकूट का घाट—
कि जिस पर,
वरद वृक्ष का साया।
हृदय हो रहा व्यग्र, श्लथ, क्लान्त
आज का भी निष्फल दिवसान्त;
और,
चन्दन घिसते ही रहे
रोष के रिस रिसते ही रहे—
'आज भी न आए रघुनाथ
तिलक-वंचित तुलसी का माथ!'
प्रतीक्षारत था वातावरण
ढूँढ़ते वृक्ष वृक्ष के नयन
किसी आगत को।
फड़कते पात-सुमन-सम्पात
विकल स्वागत को।
यह छाया सी वह कौन?
कि जो लगती चेतन
बढ़ती ही आती चीर-चीर निर्जन का मन।

उठ राम-भक्त ने ज्यों ही
फिर कर एक बार—
देखा तो पाया खड़ी सामने
स्वगत हार—
सी क्लान्त रत्न की प्रतिमा।
कौतूहल सी आई पुकार "तुम रत्ना ??"
(या अंधकार-तन्द्रालस पट पर सपना।)
बोली वह,
ज्यों जागरण-वीन सी मंद स्वर,
परित्यक्ता मैं ही आर्य।
न होवें चकित, प्रवर !!
मैं ही एकान्त रात्रि में तो यह आई हूँ
मिलने की कोई साध रही, जो लाई हूं।
"यह सत्य
कि मैंने निज प्रभु को धिक्कारा था
अपने युग-पग पर आप परशु ज्यों मारा था।
यदि मेरा था अपराध, मुझे दंड देते तुम
यह गात समर्पित खंड खंड कर देते तुम
पर यह भी क्या, मुझ एक अभागिन के कारण
धिक्कृत हों सभी नारियाँ,
न्याव रहा अनुपम ?"
"ठहरो !!" बोले रघुनाथ-दास
ज्यों मन्थर-मन्थर बहता कोई
जल प्रपात; या गर्जन करता
मंद्र-मंद्र ध्वनि मेघराज
रिमझिम पर।

"रत्ने, तुमने जो दिया ज्ञान
शत साधुवाद, शत धन्यवाद,
शत-शत प्रणाम,
मैं दास राम का हूं
देखो, उससे विरक्त
रुचता ही नहीं धरा अम्बर सागर समस्त।"
आगे कहते कुछ, किन्तु तभी बोली-रत्ना,
"नारी है राम-रहित यह ही कैसे माना?"
अस्वीकृति से शिर हिला कहा फिर
सप्रयास
"कब कहा, व्यर्थ तुम तो यूं ही होती हताश"
हां, नहीं कहा, बस कहा,
कि अवगुण आठ रहें———
हाँ कहें, कहें वर-पुरुष, नारियाँ क्यों न सहें"

हो रहे मौन,
वे क्या कहते?
होता यदि कोई अन्य, उसे समझा देते
"पर कभी नहीं———रत्ना के सम्मुख कभी नहीं।"
सामने प्रश्न सा रहा अड़ा
वे मौन ताकते रहा धरा।
रत्ना बोली—"बोलते नहीं?"
मुख-अम्बुज क्यों खोलते नहीं??'

रिमझिम सा स्वर,
दब गया विकल रत्ना का
फिर गर्जन करता मेघराज रिमझिम पर
बस बरस पड़ा ज्यों झर-झर सारा अंबर
बोले—"भन्ते!
मैं अनासक्त,
रघुनाथ बाण से मर्माहत,
ऐसे में क्या-क्या कह जाता
जाने किस-किस दिशि बह जाता
अवशेष राम बस रह जाता।
हूं क्षमा प्रार्थी
तुमसे पायी थी प्रथम ज्योति
मिल रही आज दूसरी————।"
"नाथ!"
बोली रत्ना या बिलख रही।
स्वामी-चरणों पर बिखर पड़ी।

तब उठा, बांह से, वे बोले
निष्कंप कंठ हौले हौले
"रत्ना!!————"आगे कुछ कह न सके,
जो कहना था वह कह न सके,
फिर सहसा उसे खड़ी करके,
उन नयनों का विषाद पढ़ते,
प्राणों पर वज्रायस धरते,
मुख फेर लिया चल दिए शीघ्र,
शीघ्रातिशीघ्र;
ले त्वरित वेग पल-पल अशीघ्र————
निस्पंद-स्पद पथ पर विलोप,
वह खड़ी रही आलाप रोक।
हाँ खड़ी रही,
हो निस्सहाय जब गिरी कि कब तक
पड़ी रहीं।
फिर अधकार की मौन दृष्टि ने ही देखा————
कब लौटी वह।

नाक की चर्चा

डा० श्यामसुन्दर व्यास और डा० शिवनन्दन कपूर

(संयोग की बात कि मध्यप्रदेश के दो डाक्टर-प्राध्यापकों ने प्राय: एक साथ दो ललित निबन्ध भेजे और दोनों एक ही विषय पर। दोनों को एक साथ 'नाक' पर कलम चलाने की प्रेरणा हुई। विषय एक होते हुए भी उनका विषय उपस्थित करने का ढंग और दृष्टिकोण भिन्न है। एक में चिंतन है, दूसरे में गवेषणा। किंतु दोनों ही मनोरंजक हैं। ऐसे कम ही अवसर आते हैं जब दो विद्वान् इस प्रकार के लेख एक ही विषय पर लिखते हों। हम दोनों को एक साथ प्रकाशित कर रहे हैं जिससे वे इस बहुचर्चित इंद्रिय पर दो डाक्टर-प्राध्यापकों की लच्छेदार भाषा में लिखे निबंधों का आनन्द एक साथ ले सकें। सम्पादक, सरस्वती)

(१) नाक की बात

शरीर-शास्त्र की दृष्टि से नाक, भले ही घ्राणेन्द्रिय मात्र हो, मान-सम्मान के मानवीय मापदंडों की दृष्टि से नाक की अपनी साख है। नाक से आदमी नाकवाला है और जिसकी नाक नहीं, उसकी चार भले आदमियों में कोई साख नही। इसीलिये नाक कटाकर नक्कू कहलाने की अपेक्षा नाक के लिये आदमी नाना प्रकार के नाच नाचना भी पसन्द करता है।

नाक, व्यक्ति और समष्टि की प्रतीक है। अपनी नाक के साथ ही व्यक्ति को बाप-दादाओं की, परिवार की, समाज की और देश की नाक का भी ध्यान रहता है। ललित, कलाओं में श्रेष्ठत्व का मूल्यांकन जिस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने में है उसी प्रकार नाक का मूल्यांकन भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने में ही होता है। व्यक्ति की नाक से परिवार की नाक बड़ी होती है: परिवार की नाक से समाज की और समाज की नाक से भी देश की नाक सर्वोपरि है। नाक रखने के लिये चाहे नाकों चने चबाना पड़े, नाक में दम हो जावे, मगर दम में दम रहते आदमी नाक नीची नही होने देता। यह बात और है कि किसी का शकुन बिगाड़ने के लिये आदमी अपनी नाक कटवा ले या किसी की नाक काटकर चुनौती दे दे।

मानव-इतिहास में नाक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। न जाने कितनी घटनाएं, कितने बलिदान, कितनी शौर्यपूर्ण गाथाएं और न जाने कितने उत्थान-पतन के रोमांचकारी क्षण, नाक के नाम पर ही विश्व-रंगमंच पर घटित हुए हैं। नाक नचाती रही है और नाचनेवाले नाक के नाम पर, नाचते रहे हैं। कभी नाक का श्रेष्ठत्व, शक्ति-परीक्षण के नाम पर तलवारों की धारों से खेला है, नेजों की नोकों पर नाचा है, बर्छियों से छिदा, तीरों से टकराया और अस्त्रों-शस्त्रों की दौड़ मे हुमसा है। कभी नाक नारी के माध्यम से ऊंची-नीची होती रही है और कभी राष्ट्रीयता का नशा, नाक के नाम पर, विश्व-मानवता को नाकों चने चबाता रहा है। विश्व की नाक का बाल बनने की होड़ा-होड़ी में न जाने कितनी नाकें उतर चुकी हैं। आज भी अनेक नथुने नाक के नाम पर फूल रहे हैं और शीत युद्ध की नाटकबाजी, नाक के करिश्मों की कहानी कहती चली जा रही है। चपटी चौपट नाक वाले नाक उठाने की चिन्ता मे उठा-पटक कर रहे है और लम्बी-ऊँची नाक वाले, नाक की नथनी उतर जाने के भय से ग्रसित है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानवीय विकास का इतिहास नाक पर आधारित रहा है और आगे भी रहेगा।

नाक की इस चिन्ता ने मनुष्य मात्र की नाक में दम कर रहा है। समझ आते ही बाप-दादाओं की नाक, धरोहर की तरह सौप दी जाती है, और मध्यम वर्ग का त्रिशंकु प्राणी इस भार से हमारे देश में विशेष रूप से संतप्त देखा गया है। सपूत कुल की नाक होता है और कपूत से कुल की नाक नीची होती है। कपूत-सपूत के लिये धन-संचय चाहे व्यर्थ समझा गया हो, मगर सपूत के मन पर, सिर पर बाप-दादाओं की नाक बचाने का बोझ लादना अनिवार्य समझा जाता है। सपूत की सपूती इसीमे है कि वह अपनी नाक के साथ बाप-दादाओं की नाक का भी संरक्षण करे। इस नाक के सरक्षण के नाम पर चाहे उसका सर्वनाश हो जावे तो भी कोई बात नही, बाप-दादाओं की नाक नीची नहीं होनी चाहिए।

बाप-दादाओं की नाक कम लम्बी नही होती। पल पल पर वह सपूती की कसौटी बनती है और सामाजिक आचार-

व्यवहार, खान-पान में उसका हवाला देकर सपूत की हालत खस्ता कर दी जाती है, या यों कहिए बेचारे का नाक मे दम कर दिया जाता है। बाप-दादाओं के परमधाम पहुँच जाने के बाद भी उनकी नाक यहीं रहती है और संस्कृति की तरह नाक की परम्परा भी चलती रहती है।

बाप-दादाओं की नाक से भी, नाकदार आदमी के लिये, देश की नाक ऊँची रहती है। जिस देश में इन नाकदार आदमियों की जितनी अधिकता होती है, उस देश का गौरव उतना ही महान् होता है। जिस देश मे जितने अधिक 'नकटू' होते है वह देश उतना ही गया गुजरा होता है। सच पूछिए तो किसी भी देश की नाक उसके नागरिक होते है। इन नागरिकों का कार्य-व्यापार, चिन्तन-मनन ही देश की नाक के मान-सम्मान का निर्णायक होता है। देश की नाक का 'लेखापाल' है इतिहास, और इस इतिहास के निर्माता है देश जन। अतः यदि हमें किसी भी देश की नाक का अन्दाज लगाने की आवश्यकता पड़े तो हम इतिहास के ऐलबम को उठाकर अपनी तुष्टि कर सकते है।

नाक का इतना महत्त्व होने के कारण ही संसार में 'नाक की लड़ाई' दिन-प्रतिदिन शैतान की आंत की तरह लम्बी होती चली जा रही है। व्यक्ति, वर्ग एवं राष्ट्रों के मध्य नाक का युद्ध, विश्व-मानवता को नाकों चने चबवा रहा है। नुकीली, तोतापरी नाक वाले राष्ट्र ही नहीं, चपटी सपाट नाक वाला राष्ट्र भी अपनी नाक ऊँची रखने के लिए दिन-प्रतिदिन 'लाल' हो रहा है। नाक का बाल बनने के लिये, नाक से नाक टकरा रही है और इस होड़ा-होड़ी में न जाने कितनी नाकों की नथनियाँ उतर चुकी हैं। कहीं नाक-भौंह सिकुड़ रही है, कही नथूने फूल रहे है और कहीं नाक उतरती चली जा रही है।

अन्तराष्ट्रीय नाक प्रतियोगिता में दुर्भाग्यवश हमारी नाक, अपनी साख को सलामत नहीं रख पा रही है क्योंकि आपस के जोड़-तोड़ में ही हमारी व्यक्तिगत, प्रादेशिक नाकें इतनी लड़ रही है कि राष्ट्रीय नाक की साख खटाई में पड़ गई है। व्यक्तिगत खींचतान में तो हम बड़े नाक वाले बन जाते है, अपनी नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देते: मगर जहां राष्ट्रीय नाक का प्रश्न आता है, हमारी नाकें न जाने कहाँ गायब हो जाती है। यों राष्ट्र की नाक के नाम पर हम नथुने फुलाते हुए लफ्फाजी भले ही कर लें, आपस में नाकें लड़ा बैठें, अपनी नाक को बचाकर विरोधी की नाक को भरे चौराहे उतार लें या नीलाम कर दें, परन्तु यदि अपने सिर पर या चमड़े पर जबाबदारी आती हो तो हम नाक दबाकर प्राणायाम लगा जाते हैं। हमारा राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा है कि दूसरों को सूली पर चढ़ाने के लिये हम 'नाकदार' बन जाते हैं, पर स्वय पर सुई की चुभन भी आती हो तो नाक फड़फड़ाना बन्द कर देते हैं। इतना ही नहीं, नथ की उपलब्धि के लोभ में हम नाक छिदवा भी सकते हैं और नाक बेच भी सकते हैं। प्रमाण देने का अर्थ है अपनी नाकदार नाक के छिलपटे छीलना। यह गैरत से ढकी रहे तो ही अच्छा है। हम सब जानते है कि हम कितने नाकदार है। —डा० श्यामसुन्दर व्यास

(२) "नाक-पुराण"

चतुर्नास याने चार नाकों वाले ब्रह्मा जी की ईजाद की हुई यह नाक भी क्या अजब चीज है। एक तिकोन, और दो मामूली से छेद। न तो इसमें कजरारे नयनों की मादक चंचलता है, और न गुलाबी अधरों की सरसता। फिर भी 'चतुर्नास' के इस ट्रेड-मार्क को सौन्दर्य का स्तम्भ ही समझिये। मदन वात्स्यायन साहब जो एक साथ ही सौंदर्य के देवता, और कामशास्त्र के आचार्य मालूम पड़ते है, भी फरमा गये हैं—

"रूपवानो में मैं नारी हूँ

नारी के अंगों में नाक। 'सुशिप्रा'—(सुंदर नाक वाली) से।

सच पूछिये तो हुस्न का असली पैमाना यही है। कही किसी 'हुस्ना' की नाक भी टेढ़ी या ज़रा आगे की ओर उठ जाती है, तो लोग नाक-भौ चढ़ाने लगते हैं। बदकिस्मती से कहीं वह हिडिम्बा निकली तो फिर कोई भीम भी उसे न पूछेगा। बस, समझ लीजिये कि नाक छोटी-मोटी हो गई, तो किस्मत भी खोटी हो गई। वैसे खुद छोटी-मोटी हो, तो खास हर्ज नहीं। आँखों में नुक्स हो रंगीन चश्मा चढ़ जायगा। मगर खुदा-न-ख्वास्ता कहीं नाक नुक्स वाली हुई, तो उस पर कौन पर्दा चढ़ेगा। देखनेवाले तो नाक-नक्शा ही देखते हैं। घूँघट का नाका भी तो नाक ही है।

एड़ी चूमने वाली घुँघराली जुल्फें छाँट कर 'बाब्ड-हेयर' कर दी जांय, उनका फैशन में शुमार होगा। जड़ से साफ कर दीजिये। उतना बुरा नहीं लगेगा। चेहरे पर एक पाकीजगी, एक पवित्रता छा जायेगी। लेकिन, नाक आधी, अजी आधी की भी आधी कट गई, तो खूबसूरती

बिल्कुल साफ। जब सौंदर्य का स्तंभ नाक ही नहीं रहेगा, तो ऊपरी मंज़िलें और सजावटें, यानी हिरनी सी आखे, गुलाबी होठ, और लाजभरी चितवन क्या खाक टिकेंगे? इसी से तो मुहब्बत में नाकाम आशिक माशूका की नाक पर ही दांत लगाते देखे गये है।

शायरों की उड़ानें

काम के इस कला-निकेतन के चारों ओर संस्कृत के कवियों ने खूब उड़ानें भरी है। कहीं तो नाक उन्हें काम के तरकश सी लगती है! इस तरकश में भी एक खूबी है। उसमें नये बाण भरे जाने वाले हैं, इसलिये उसे उलट कर खाली किया जा रहा हे। कहीं दांत रूपी अनारदानों को खाने के लिये काम का पालतू तोता बनाया गया है। देखिये—

'पुराणबाणत्यागाय नूतनास्त्रकुतूहलात्।
तन्नासा भाति कामेन तूणीवाधोमुखीकृता॥
दन्तालिदाडिमीबीजभक्षणोत्कण्ठचेतसः।
मन्ये मारशुकस्येयं नासाचंचुर्विराजते॥

हिन्दी में भी नाक की थोड़ी बहुत लंबाई नापी गई है, लेकिन ज्यादातर पुरानी पेमाइशें ही हैं। वही तिल के फूलों और पाटली पुष्पों की बहार। और आगे बढ़े तो सुग्गे की चोंच लगा कर मन बहला लिया। बिहारी तो अपनी नायिका के नाक चढ़ाने पर ही जी-जान से फिदा होकर नहीं रह गये, बल्कि उसकी 'बेसर' के नाम पर जन्नत का पट्टा भी लिख गये। एक आधुनिक कवि ने तो नाक की उपमा 'दीये की लौ' से दी है।

नाक की नकेल

नाक वशीकरण की आधार-भूमि याने खास जगह कही गई है। बिहारी ने तो लिखा है कि वो जितना ही 'नाक मोरि नाहीं करै', याने नखरा दिखाती है, उतना ही तो हज़रत मनाते है। नाक मोड़ना क्या, सिकोड़ने पर ही लोग लुटे हैं। वह नाक सिकोड़ कर, जितना 'सी-सी' करती हैं, उस आवाज़ को सुनने के लिये ही, आशिक रास्ता भूल कर कंकरीली डगर पर चलता है—"नाक मोरि सीबी करै, जितै छबीलो छैल। फिरि फिरि भूलि वहै गहै पिय कंकरीली गैल।"

सुंदरी स्त्री वशीभूत पति की नाक पकड़ कर हिलाती है। जिधर चाहती है, घुमाती है, ले जाती है। पशुओं की भी अधिकतर नाक ही नाथी जाती है। उनका वही एक अंग ऐसा है, जिसके काबू में आते ही, सारा शरीर पकड़ में आ जाता है। जैसे उनकी ताकत का मरकज या केन्द्र यही हो। ऊंट की नकेल मशहूर है। गैडे की नाक ही सबसे कमजोर जगह है। और कही भी चोट पड़ती रहे, उसे पता भी न लगेगा। कंबख्त की नाक ही सबसे कीमती भी तो होती है। मुगल बादशाहों के जमाने मे उससे ज़हर का पता लगाने वाले प्याले बनते थे। नथ भी औरतों की गुलामी के एक सुनहले रूप के अलावा क्या है। वेश्याओं में नथ उतारने की रस्म होती थी। उसका मतलब ही उन्हें अपने रोज़गार के लिये आजाद कर देना होता था।

नाक की किस्में

नाक लंबी भी होती है, छोटी भी, भोंड़ी, पकौड़ी सी फूली, और कछुए की पीठ सी चपटी भी। कही नागिन सी बल-खाती, कही सीधी-सपाट। कही-कही विन्ध्या विराट, कही सरयू का पाट, कहीं-कहीं चंबल का घाट। कभी-कभी तो इसकी नोक, पहाड़ की दूसरी चोटी की तरह ऊपर उठी भी दिखाई देती है। नाक रखी भी जाती है। मौके-बेमौके काट भी ली जाती है। जोश मे लोग नाक उड़ाने का आर्डर दे बैठते है। चढ़ने को नाक चढ़ती भी है, गलती भी हे, और बहनेवाली नाक छिनक कर परे भी फेंक दी जाती है। फिर भी जादू के जोर से साबुत की साबुत। जैसे आंख मारी, फिर भी कायम। रात के सन्नाटे में किसी की नाक खर्राटे भरने लगे तो नीद भी फर्राटे से आसमान पर ही दम लेगी। जैसे एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है; उसी तरह एक नाक बजाने वाला सारे मोहल्ले की नीद हराम कर सकता है। ऐसा नाकिस नाक अगर किसी बारात में भी है, तो उसमे हरगिज न शरीक हों। रात में सारी मिठाइयां बदमजा होकर पेश होंगी।

कुछ लोग तो अपनी नाक को ही आर्केस्ट्रा बनाये फिरते हैं। मगर जब किसी नक्कू से पाला पड़ जाता है, तब आफत आ जाती है। होशियारों की तो बात छोड़िये, नाक पर मक्खी भी न बैठने देने वालों के भी जब नाक में दम आ जाता है, तो कोई क्या करे। लंबी और सुडौल नाक वाले सामुद्रिक-शास्त्र में भाग्यवान और भद्र कहे गये है। मगर

कोई क्या करे जब ऐसे लोग भी नाकिस या नाकारा निकल जाते हैं। किसमें हिम्मत है कि उस नाक बनाने वाले की नाक सीधी कर सके। यों आर्यो की नाक लंबी, और खूबसूरत, और, द्रविड़ों की अफ्रीकनों सी चपटी मानी गई है।

नाक की महिमा

नाक वाले गर्दन कटा देना पसंद करेंगे, लेकिन नाक ही सब कुछ है। यों कहने को तो हम आप सभी नाक वाले हैं! नाक इज्जत की निशानी है, इसीलिये तो इसका कोई सानी नहीं। वह वीरों की शान है। कट जाये तो जिन्दगी बीरान ही नहीं, मसान बन जाये। सूर्पणखा ने सौंदर्य का दुरुपयोग करना चाहा, तो लक्ष्मण ने सीधे-सीधे उसकी नाक काट दी। उसकी नाक क्या कटी रावण की ही कट गई। और एक नाक के पीछे इतना युद्ध हुआ कि सोने की लंका खाक हो गई। रावण के पूरे १ लाख पूत, सवा लाख नाकिस नाती भी समाप्त हो गये। चने चवाने वाले बंदरों ने राक्षसों को नाकों चने चबवा दिये। और-तो-और, रावण इतना नक्कू हुआ कि आज भी वह नाक काटने को कहानी घर-घर कही-सुनी जाती हैं। बनारस की नककटैया मशहूर है। मानिनी नायिका की नाक पर आई हुई हँसी भी प्रेमियो के मन में उल्लास की तरंग उठा देती है।

कितनी हत्या आदि की घटनाओं में जहाँ बड़े-बड़े जासूस बेकार हो जाते हैं। उनके कुत्ते नाक से सूँघ कर ही अपराधी की खोज कर लेते है। प्राणायाम नाक दबाने के अलावा और क्या है? नाक की सबसे बड़ी महिमा यह कि 'नाकपृष्ठ' स्वर्ग में ही रहकर 'नाकपति' विष्णु इस संसार का सूत्र-संचालन करते हैं। रामचंद्र के 'पिनाक' याने शंकर का धनुष तोड़ डालने पर सभी 'नाकपाल' फूल बरसाते हैं।

वह नाककाट डाकू

बुद्ध के जमाने में अंगुलिमाल एक मशहूर डाकू हो गया था। मुसाफिरों की अंगुलियाँ काट कर उनकी माला पहनना ही उसका शौक था। कलियुग में चंवल का मशहूर डाकू गब्बरसिंह हुआ। उसने जो पुलिस वालों को 'हैवतनाक' (भयंकर) पाया, तो 'गजबनाक' (क्रोधित) होकर, खौफनाक फिर खतरनाक हो गया। बजाय अंगुलियों के उसने तय किया कि कतर नाक। सैकड़ों नाकें काट डालीं। अब भी जुल्म के शिकार सैकड़ों शर्मनाक, दर्दनाक, और गमनाक चेहरे भिण्ड के इलाके में दिखाई देते है। वह चला गया, लेकिन अपने आतंक की जीती-जागती निशानियाँ छोड़ गया।

हसीन नाक बनाम लम्बी नाक

हसीन नाक तो हसीन है ही, कभी-कभी जरूरत से ज्यादा लम्बी नाक उसे भी चुनौती दे डालती है। मानो चोंच निकाल कर कहती हैं, हमारे भी हजारों मुरीद है। १८वीं सदी में यार्कशायर में टासस वेडर्स नामक एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी महज नाक देखने दूर-दूर से लोग आते थे। उसकी नाक मामूली नहीं, पूरे ७॥ इंच लंबी थी। अपनी नाक से ही उसने नाक ही नहीं नामा भी कमाया, टिकट लगा कर प्रदर्शिनियाँ कराईं। नाक ने जिंदगी भर नाक ही नही रखी, आराम का ठेका भी ले लिया। उसकी नाक माथे के बीच से लेकर, निचले होठों के समानांतर तक थी। आज तक संसार में उसकी लंबी नाक का रेकार्ड है।

नाक से काम निकालना

नाक कामयाबी की निशानी है। समाज में आपकी नाक है, तो धाक है। वैसे भी किसी से काम निकालना हो तो खुद उसके दरवाजे पर जाय। कायदे से पहले 'नाक' (KNOCK) करे। दर्शन हो जांय तो बार-बार नाक रगड़े। उसकी किसी बात पर नाक न सिकोड़े, अन्यथा बाद में कितनी भी नाकाबन्दी करेंगे, कितनी भी नाक घिसेंगे, कोई फायदा न होगा। फिर तो शायद नाक की सीध में ही चले जाने का आर्डर मिले। हो सकता है, बाउंडरी 'नाक' कर या फ़र्लांग कर भागना पड़ जाय।

'नाक' और 'श्योनाक'

नाक ही जिंदगी की निशानी, और सासों के 'आवागमन' का रास्ता है। क्रोध का प्रकटीकरण भी इसीलिये नाक काटने में किया जाता। वैसे नाक' (नक्र) का निवास जल-तल याने पाताल में भी है। 'नाक' (स्वर्ग) आकाश में भी है, लेकिन 'श्योनाक' (लोध) इसी मर्त्यलोक में जमीन पर ही उगता है। नासा के ही खानदानी नोज (NOSE) और नासिक से भी आप परिचित होंगे। कर्मो का नाश करने वाली 'कर्मनासा' (कर्म की नाक न समझें) का भी नाम कानों में पड़ा होगा। मौका मिले तो नासिकेतोपा-स्थान भी पढ़ लें। अंत में यह कहकर कि चने की नाक जैसे टेढ़े आदमियों से बच कर रहिये, मैं यह 'नाकपुराण' बंद कर रहा हूँ, नही तो पढ़ते-पढ़ते आपके भी नाकों-दम आ जायगा।

—डा० शिवनन्दन कपूर

खरबूजा और तरबूज

श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी

(१) खरबूजा

हमारे देश में काफी प्राचीन काल से खरबूजा उगाया जा रहा है। मोहनजो-दड़ो (३००० ई० पू०) की खुदाई में प्राप्त सामग्री में सबसे अजीब् वस्तु चाँदी में लिपटा हुआ एक कपड़ा था, जिसमें खरबूजे के बीजों के अवशेष थे। प्राचीन यूनान और रोम में इसकी काफी माँग थी। १६वीं शताब्दी के मध्य में डचों ने इसे यूरोपीय बाजारों में पहुँचाया। अंग्रेजों ने तो इससे अपनी जेबें भरने मे कसर ही नहीं रखी। वे किसानों को इसी शर्त पर भूमि देते थे कि वह आधी जमीन पर खरबूजा उगाये। भारतीय किसान की खरे पसीने की कमाई से पैदा हुआ खरबूजा यूरोप में बिकता रहा।

सामान्य परिचय

ककड़ी की लता के समान ही लता पर लगने वाला यह फल नदियों, तालाबों के पेटों में जनवरी-फरवरी में उगाया जाता है। हमारे देश में जौनपुरी, सहारनपुरी, लखनवी, अलीगढ़ी, धारीये, बनास आदि किस्मों के खरबूजे बड़े लोकप्रिय हैं ! जो इस इलाके में पैदा होने के कारण उसी नाम से पहचाने जाने लग गए।

गर्मी बढ़ने के साथ ही यह पकना शुरू हो जाता हैं। कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है क्योंकि ये तेजी से पकने लगते हैं। पके खरबूजे की सुगन्ध बड़ी मधुर होती है। रुचिकारक, स्वादिष्ट, सर्वत्र सुलभ और सस्ता तो यह होता ही है।

गुण विवेचन

स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने इसे स्वास्थ्य के लिए काफी हित-कारी फल स्वीकारा है। कच्चा खरबूजा मधुर पर किंचित् कड़वापन लिये होता है ! हल्का खट्टापन इसका स्वाद और भी अच्छा बना देता है।

पका खरबूजा शीतल और खटमीठा होता है। यह तृप्तिदायक, कफकारक, पौष्टिक, मूत्रवर्द्धक, स्निग्ध, स्वा-दिष्ट और हल्का रेचक होता है।

रासायनिक विश्लेषकों ने बतलाया है कि इसका हमारे शरीर की ग्रहण-शक्ति पर काफी अधिक प्रभाव पड़ता है ! गर्मी में नियमित सेवन करने से यह शरीर की स्वचालन क्रिया पर पर्याप्त मात्रा पर प्रभाव डालता है। इससे गुर्दे की शिथिलता मिटती है और मूत्र शुद्ध होता है। गर्मी तुरन्त छांटने के विशेष गुण के कारण यह विशेष रूप से लोकप्रियता प्राप्त किये हुए है।

घरेलू उपयोग

कच्चे खरबूजे का रसेदार या सूखा साग, रायता और आचार आदि बनाया जाता है। इसके छिलकों की भी सब्जी अकेले ही या चने की दाल के साथ बनाई जाती है। इसके छिलकों को सुखाकर उनका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को किसी भी तरकारी में डालने से वह शीघ्र ही पक जाया करती है।

पके खरबूजे को वैसे ही या शक्कर मिलाकर खाया जाता है। अच्छे पके खरबूजे के छोटे-छोटे टुकड़े करके शक्कर, इलायची मिलाकर उसका पेय बना लें। यह पेय गर्मी के सारे ही उपद्रवों को तो नष्ट कर देगा साथ ही साथ ग्रीष्म ऋतु का एक शानदार मौसमी नाश्ता भी बन जाएगा।

कच्चे खरबूजे का अचार भी बनाया जाता है। खटाई डालकर पके खरबूजे की सब्जी भी बनाई जा सकती है। शर्बत भी बनाकर पी सकते हैं। और हाँ, इसके बीजों को व्यर्थ ही मत फेंकिये। उनको ठण्डाई में मिला लें, आपकी ठण्डाई का स्वाद बढ़ जाएगा। चाहें तो आप उन्हें तल कर नमकीन भी बना सकते हैं। मुँहासों से परेशान हों तो बीजों की गिरी पीसकर मुँह पर लेप कर लें और सूखने पर रगड़कर पोंछ लें। चेहरा कान्तिमान हो उठेगा।

खरबूजे की कोमल-कोमल पत्तीदार शाखाओं की भी सब्जी बनाई जाती है। जो स्वादिष्ट ही नहीं पेट के रोगों के लिए हितकर भी होती है। इसके बीजों से तेल भी निकाला जा सकता है, जिससे उत्तम किस्म का साबुन बनता है। अधपके खरबूजों को हल्का सा उबालकर मसल लें। इसके बाद चीनी की तीन तार की चाशनी लेकर, मेवा, इलायची डालकर थाली में घी लगा जमा लें। यह मिठाई पर्याप्त स्वादिष्ट और पौष्टिक होती है। साथ ही साथ काफी सस्ती भी रहती है।

औषधि के रूप में

आयुर्वेद में खरबूजे के कल्प को बड़ा लाभदायक बतलाया गया है। इससे संग्रहणी, पथरी, यकृत, मूत्रसंस्थान के रोग, गठिया आदि में काफी लाभ होता है। पर यह किसी सुयोग्य वैद्य की राय से उसके मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

लू लग जाने पर उसके बीज पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए। इसका शर्बत बनाकर पिलाना और इसके रस की शरीर पर मालिश करनी चाहिए। वजन घटाने के लिए भी इसका भरपेट प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ अन्य ज्ञातव्य

दूध और खरबूजा एक दूसरे के विरोधी गुणों वाले हैं। अतः एक साथ इनका उपयोग नहीं करना चाहिए।

खाली पेट खरबूजा कभी नहीं खाना चाहिए। खरबूजे को खाने से पहले उसे कुछ समय ठण्डे पानी में रख छोड़ना चाहिए जिससे उसकी उष्णता कम हो जाए। हमेशा ताजा खरबूजा ही खाना चाहिए क्योंकि बासी खरबूजा बजाय लाभ के हानि कर सकता है। अधिक मात्रा में खरबूजा खाना हो तो शर्बत बनाकर काम में लेना अच्छा रहेगा।

इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु का यह लोकप्रिय फल अनेक दृष्टियों से एक श्रेष्ठ फल है। हमें इसका उपयोग अपने आहार के एक अंग के रूप में करके इसके गुणों से लाभ उठाना ही चाहिए।

(२) तरबूज

गर्मी की ऋतु में बाजार में जब साग, भाजी और फलों की कमी नजर आने लगती है, तभी सस्ता, सर्वसुलभ और उपयोगी समाजवादी फल तरबूज बाजार में आ धमकता है।

गर्मी के सूखे मौसम में जब तेज लू चलने लगती है तब इसका शीतल गूदा बड़ी तृप्ति और शान्ति प्रदान करता है।

सामान्य परिचय

यह भारी भरकम फल लता पर लगता है। रेतीली भूमि पर बोये गए तरबूज स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। आकार में कुछ लम्बे, गोल और रंग में हल्के हरे और गहरे हरे दोनों ही रंगों के होते हे। गहरे हरे रंग के तरबूज काफी अधिक मीठे होते हैं और गूदा भी इनमें हल्के हरे रंग वालों से ज्यादा होता है। वजन में २५-३० किलो तक के तरबूज आप बाजार में बिकते देख सकते हैं। ग्रामीण जनता की मान्यता है कि तरबूज जितना भारी होगा स्वाद, गुण और गूदा की अधिकता उसमें उतनी ही अधिक होगी।

पके तरबूज को काटने पर भीतर से लाल या सफेद गूदे की मोटी परत निकलती है। यही भाग खाने के काम आता है। राजस्थान की बनास नदी के, मध्यप्रदेश में धार के, उत्तरप्रदेश में फर्रुखाबाद, आगरा, मथुरा आदि के तरबूज बड़े प्रसिद्ध हैं

इसकी बेलें पशुओं को खिलाई जाती हैं। जो उनके लिए एक पौष्टिक चारा साबित हुआ है।

रासायनिक विश्लेषण

रासायनिक विश्लेषण कर्त्ताओं ने इसमें विभिन्न रासायनिक तत्वों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है :—

जल	९५·७	प्रतिशत
प्रोटीन	०·१	,,
वसा	०·२	,,
खनिजपदार्थ	०·२	,,
कार्बोहाइड्रेट्स्	३·८	,,
कैलशियम	०·११	,,
फासफोरस	०·१	,,

इसमें विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। प्रति १५० ग्राम तरबूज के गूदे में ५ कैलोरियाँ प्राप्त होती हैं। गर्मी शमित करने के विशेष तत्त्व इसके गूदे में होते हैं।

गुण-विवेचन

आयुर्वेद विशेषज्ञों की दृष्टि से कच्चा तरबूज मलरोधक, नेत्र रोगों को बढ़ाने वाला, पित्त और शुक्रनाशक होता है। भारी होने से पचता भी देर से है। अतः कच्चे तरबूज का सेवन नही करना चाहिए। हाँ, कच्चे तरबूज के गूदे, छिलके, गिरी आदि की तरकारी सूखी या रसेदार बनाकर काम में ली जा सकती है। वह क्षुधावर्द्धक एवं सुपाच्य होती है।

अच्छी तरह पका हुआ तरबूज शीतल, क्षुधा-हारक, तृप्ति-प्रदायक, पित्तजनक और कफ तथा वात व्याधियों को दूर करने वाला होता है। इसका गूदा खाने तथा इसका जल

पीने, छिलका सब्जी बनाने, गूदा सब्जी बनाने, शरबत बनाने, गिरी ठण्डई बनाने या भून कर खाने या मिठाई बनाने के काम में आती है। बीज कई प्रकार की औषधियों में भी काम आते हैं। अतः उन्हें व्यर्थ नहीं फेंकना चाहिए! उन्हें सुखाकर दलकर गिरी निकाल लेनी चाहिए!

घरेलू उपयोग

आप यदि थोड़ी सी सावधानी बरतें तो इस मौसमी फल के अनेक घरेलू उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं।

गर्मी के कारण शारीरिक दाह हो रही हो, तो तरबूज खाना अत्यन्त लाभदायक है। ऐसा करने से दाह कम हो जाएगी, मन को शान्ति भी मिलेगी। लू में यह फल काफी फायदेमन्द रहता है।

तरबूज के बीजों की गिरी २५ ग्राम, काली मिर्च २५ ग्राम, थोड़े गुलाब के सूखे पुष्प, १० बादाम की गिरी इन सबको सम्मिलित करके पीसकर छान लीजिए। आवश्यकतानुसार चीनी तथा बर्फ मिला लें। गर्मी-जन्य समस्त रोगों पर यह शर्बत रामबाण औषधि का काम करेगा।

काली मिर्च तथा तरबूज के बीज की सूखी गिरी समान मात्रा मे ले लीजिए और पीसकर चूर्ण बना लीजिए सर्दियों में इस चूर्ण के सेवन से शरीर मे बल की वृद्धि होती है।

मूत्रकृच्छ्र मे तरबूज के २५० ग्राम पानी मे काली मिर्च तथा जीरे का चूर्ण मिलाकर पीना अत्यन्त लाभदायक साबित हुआ है।

तरबूज को बीच मे से काटकर एक हिस्सा निकाल लीजिए। अब उसमें २५० ग्राम शक्कर भरकर वही टुकड़ा फिर से लगा दें। इस तरबूज को छत पर रख दें। ओस में पड़े रहने से यह अधिक पानी छोड़ेगा। अब प्रातःकाल इसे निकाल कर सब पानी पी जाइये। इस पानी के सेवन से उपदंश, पेशाब की जलन तथा मूत्राशय के विभिन्न रोग समाप्त हो जाते हैं।

तरबूज के कच्चे (सफेद भाग) तथा छिलके के बारीक टुकड़े करके उन्हें अच्छी तरह सुखा लीजिए। इनकी सब्जी बनाई जा सकती है। नाश्ते के लिए वैसे ही तल कर चाय के साथ खाया जा सकता है। उपवास आदि में भी यह काम आ सकते हैं। बहुधा तरबूज का लाल गूदा खाकर सफेद भाग छिलका व बीज ऐसे फेंक दिये जाते हैं। उन्हें इस रूप में उपयोग में लाकर आप दोहरा लाभ उठा सकते हैं। कच्चे तरबूज की सब्जी (सूखी एवं रसेदार) बनाई जा सकती है, अचार भी बनाया जा सकता है।

तरबूज की गिरी से मिठाई भी बनाई जा सकती है, जो स्वादिष्ट और पौष्टिक दोनों ही होती है। यदि मुँहासों के कारण आप परेशान है तो थोड़ी सी गिरी को चन्दन के चूरे के साथ पीस कर लेप कर लें! जब लेप सूख जाए तो चेहरा साफ धोकर पोंछ लें। ५-७ बार के प्रयोग से ही आप मुँहासों से राहत पा जाएंगे।

इस प्रकार तरबूज के आप कई तरह से प्रयोग कर सकते है। परन्तु यह ध्यान रखिए कि भूखे पेट तरबूज भूल कर भी मत खाइये। इसी प्रकार इसका अधिक मात्रा में सेवन न करना चाहिए। अतः सीमित मात्रा मे ही इसका सेवन कीजिए और गर्मी की झुलसती दुपहरी में राहत की साँस लीजिए!

इतिहास का भाव

श्री मण्डन मिश्र

शिक्षा में इतिहास का मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। पर इतिहास क्या है, इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नही। आजकल जिसे इतिहास कहा जाता है, उसे समझने के लिए 'इतिहास लेखन शैली" के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी पड़ेगी। मिस्र तथा बाबुल के प्राचीन शासको के, जो ईसा से हजारों वर्ष पूर्व हुए थे, उस समय के लिखे हुए वर्णन मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार लिखित इतिहास के ये सबसे प्राचीन उदाहरण हैं। प्राचीन यूनानी स्वभाव से ही जिज्ञासु होते थे। जहाँ वे गये उसका कुछ न कुछ वर्णन उन्होंने लिख डाला। उनकी भाषा मे इतिहास "हिस्ट्री" शब्द का अर्थ ही "जिज्ञासा" है। प्राचीन रोम-निवासियो को ओजस्विनी भाषा लिखने का बड़ा शौक था। अपने साम्राज्य की महत्ता का वर्णन करने मे वे बड़ी प्रभावशाली भाषा का प्रयोग करने लगे। मुस्लिम संस्कृति का प्रचार होने पर इतिहास लिखने मे एक नये भाव की उत्पत्ति हुई। ई० सन् की चौदहवी शती मे इब्लखलदूँ ने "अपने विश्व-इतिहास की प्रस्तावना" मे लिखा कि "इतिहास का भाव श्रेष्ठ है, वह शिक्षापूर्ण है और उसका आदर्श ऊँचा है।" फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति के आरम्भ मे प्रसिद्ध लेखक वालटेयर ने इतिहास के सामने एक नया आदर्श रक्खा। उनका कहना था कि "मेरा उद्देश्य मनुष्य की मानसिक शक्ति का इतिहास है, न कि छोटी-छोटी घटनाओ का विस्तृत वर्णन। शासको के इतिहास से मुझे कुछ मतलब नही। मै तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि मनुष्य जंगली से सभ्य कैसे हुआ। इस तरह इतिहास राजाओ के वर्णन से सभ्यता के विकास का वर्णन बना। विज्ञान की उन्नति होने पर इतिहासो के भी लिखने मे वैज्ञानिक ढग का अनुकरण होने लगा। प्राचीन शिलालेखो, दानपत्रो, मुद्राओ और खण्डहरो मे माथा-पच्ची कर सत्य का अनुसन्धान प्रारम्भ हुआ। इतिहास भी एक विज्ञान समझा जाने लगा। ब्यूरी ऐसे प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि "इतिहास एक विज्ञान है—न कम न ज्यादा।" एक फ्रान्सीसी लेखक इनसे भी आगे बढ़े हुए हैं। उनकी राय में इतिहास "एक शुद्ध विज्ञान है" इनके विरोध में कहा जाता है कि इतिहास कभी विज्ञान हो ही नही सकता। इसमें प्राचीन घटनाओं के जानने के लिए लेख आदि जिन प्रमाणों का सहारा लिया जाता है, उनसे सत्यता का पता ही नही लग सकता। प्रायः आपस की साधारण बातचीत ने इतिहास की धारा ही बदल दी है, पर उसका कही उल्लेख ही नही मिलता। फिर लेखो मे भी परस्पर विरोध होता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक ढंग पर ऐतिहासिक प्रयोग नही हो सकते। कुछ लोगों ने इतिहास को एक कला मान रक्खा है। इसमें भी अड़चन पड़ती है, कला को विशेष रूप देने के लिए कुछ काट-छाँट भी करनी पड़ती है जिससे इतिहास का रूप ही बिगड़ जाता है। विज्ञान और कला के झंझट दूर करने के लिए प्रायः कहा जाता है कि "कला इतिहास की लेखन-शैली मे होनी चाहिए पर विज्ञान घटनाओं के अनुसन्धान मे।"

सत्य के अनुसन्धान का भाव आने पर इतिहास का निष्पक्ष होना आवश्यक हो गया। पर इसके विरुद्ध एक दूसरा दल उठ खड़ा हुआ। उसका कहना है कि इतिहास लिखने मे निष्पक्षता असम्भव है। लेखक जिस काल मे रहता है, उससे वह अपने का कभी सर्वथा अलग नही कर सकता। उस पर उसके समय का रंग जमा ही रहता है। वह "पूर्व" या "अतीत" को वर्तमान के चश्मे से ही देखता है। जर्मनी के एक विद्वान् का कहना है कि हम एक जर्मन की दृष्टि से ही इतिहास को देख सकते है। एक इटालियन अध्यापक लिखता है कि राष्ट्र से संस्कृति भिन्न नही की जा सकती। यदि प्राचीन इतिहास के अध्ययन से हममे उत्साह नही बढ़ता तो फिर गड़े हुए मुर्दो को खोदने की आवश्यकता ही क्या? "ज्ञान केवल ज्ञान के लिए"—इसका कुछ अर्थ नही। कुछ लोगो का कहना है कि इतिहास सदा अपने को दोहराया करता है। एक ही से घटना-चक्र आते रहते और उनका वैसा ही परिणाम होता है। दूसरो के मत मे प्राचीन घटनाओ की पुनरावृत्ति हो ही नही सकती। कुछ लेखक नेताओ के जीवन का विस्तृत वर्णन व्यर्थ समझते है, दूसरो का कहना है कि उनकी छोटी-छोटी

बातों का भी इतिहास पर प्रभाव पड़ता है। यदि नेपोलियन न हुआ होता तो यूरोप का इतिहास कुछ दूसरा ही होता। बिना लेनिन के क्या बोलशीविक क्रान्ति सफल होती? विश्व रंगमंच पर आज जो अभिनय हो रहा है, क्या वह उसके मुख्य पात्र स्तालिन, मुसोलिनी, हिटलर आदि को बिना पूरी तरह जाने समझ में आ सकता है?

प्रसिद्ध अंग्रेजी कोष "आक्सफर्ड डिक्शनरी" मे इतिहास की परिभाषा दी हुई है—"सार्वजनिक घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन"। अध्यापक हर्नशा की राय मे "विश्व घटनाओं की गति या उसके कुछ अंश का वर्णन इतिहास है।" प्रसिद्ध "कैमब्रिज हिस्ट्री" के सम्पादक स्वर्गीय लार्ड ऐक्टन का कहना है कि "विश्व का इतिहास राष्ट्रों के इतिहास का संग्रह नहीं, वह बालू की रस्सी नहीं एक लगातार विकास है, जो स्मरण शक्ति के लिए भार न होकर आत्मा के लिए प्रकाश है। उसका प्रवाह निरन्तर जारी रहता है।" कुछ वर्ष पूर्व श्री टोयन्बी की पुस्तक "स्टडी आफ़ हिस्ट्री" "इतिहास का अध्ययन" ६ जिल्दों में प्रकाशित हुई। उसमें वे लिखते हैं कि "इतिहास का आधार राष्ट्र कभी नहीं हो सकता। अपने राष्ट्र को ही विश्व मान लेना बड़ी भूल है। वह तो वास्तव मे विश्व का एक अंग मात्र है और इसी दृष्टि से उसका इतिहास लिखा जाना चाहिए।" श्री वेट्स के शब्दों में "मानव जाति ही हमारा राष्ट्र है।" इन सब परिभाषाओं पर विचार करते हुए यह कहना बड़ा कठिन है कि इतिहास क्या है? परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इतिहास का उद्देश्य सत्य की खोज ही होना चाहिए। इसे छोड़कर जब कोई दूसरा उद्देश्य रक्खा जाता है तब उसे सिद्ध करने के लिए घटनाओं की खींचतान करनी पड़ती है। सम्प्रदायवाद, राष्ट्रवाद या अन्य कोई 'वाद' जहाँ आया वहाँ बिना सत्य का गला घोंटे काम ही नहीं चलता। दूसरी बात यह है कि विश्व में भिन्नता होते हुए भी एकता माननी पड़ेगी। इस छिपी हुई एकता को ढूँढ़ निकालने ही के लिए सारा अनुसन्धान है। भिन्नता की भूलभुलैया में लुकती-छिपती एकता की झलक पाने के लिए ही इतिहास का पर्दा उठाना पड़ता है।

अपने यहाँ इतिहास की जो प्राचीन परिभाषा है उसमें ये कई नवीन भाव आ जाते हैं और वह अधिक व्यापक भी जँचती है। किसी एक राजा के चरित्र-वर्णन के व्याज से प्राचीन घटनाओं का वर्णन करना इतिहास बतलाया गया है। परन्तु इससे कहीं ऐसा न हो कि भिन्न-भिन्न इतिहास अपनी ताने अलग-अलग अलापने लगें, इसलिए उनका सम्बन्ध पुराण से भी जोड़ दिया गया है। इतिहास, पुराण अपने यहाँ साथ ही रक्खे गये हैं। जिसमें सर्ग "सृष्टि" प्रतिसर्ग प्रलय, वंश महान् पुरुषों के कुल, मन्वन्तर किस-किस मनु का कितने समय तक अधिकार होता है, यह, और वंशानुचरित (महान् पुरुषों के कुलचरित्र) का वर्णन मुख्य रूप से किया गया हो उसे पुराण कहते हैं। इस तरह राज्यों का इतिहास विश्व के साथ जोड़ दिया गया। परन्तु इतिहास यदि घटनाओं का कोरा-कोरा वर्णन ही रह गया तो उससे लाभ ही क्या? इसलिए उसे जीवन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—के उपदेशों से समन्वित भी होना चाहिए। इस तरह का जो कथायुक्त पूर्ववृत्त है वह इतिहास है—धर्मार्थ काम मोक्षाणामुपदेशसमन्वितं पूर्ववृत्तं कथायुक्तिमितिहासं प्रचक्षते।

यह इतिहास का कितना उच्च आदर्श है। कितना ही अच्छा हो यदि आधुनिक इतिहास-लेखक इसका ध्यान रक्खें।
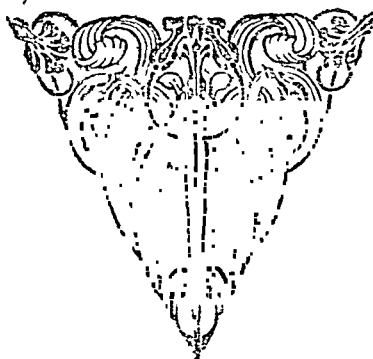
भारतेन्दु—आधुनिक पत्रकार के रूप में

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी

भारतेन्दु ने अपने छोटे से जीवन में जो काम किये, उनका वर्णन और मूल्यांकन अभी ठीक ढंग से नहीं हुआ। कोई रामचन्द्र शुक्ल ही इस विषय के साथ उचित न्याय कर सकता है। अतएव मैं उनके विविध कार्यों के मूल्यांकन का प्रयास न करूँगा। उनके कार्य में मुझे जिस बात ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह उनकी आधुनिकता है। साथ ही उनकी सार्वभौमिक (कैथलिक) रुचि देखकर आश्चर्य हुआ। आप जानते हैं कि वे पत्रकार भी थे। उनके पूर्व जो पत्रिकाएँ निकलती थीं वे या तो शृङ्खलताहीन समाचारों से, या किसी विशेष विषय, जैसे धर्म संबन्धी लेखों से भरी रहती थीं। भारतेन्दु ने कई पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं। उनमें उनकी 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' प्रमुख है। उसे देखने से और उसकी पूर्ववर्ती हिन्दी पत्रिकाओं से तुलना करने से मालूम होता है कि उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता में कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया था। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका की सम्पूर्ण जिल्दें मुझे देखने को नहीं मिलीं। मेरे संग्रह से १८७४ से लेकर १८७९ के २२ अंक हैं जिनमें एक अंक हैं तीन मास का संयुक्त अंक है। बीच-बीच में वह बन्द भी नहीं। सबसे पुराना अंक जून १८७४ का, और अंतिम अंक सितम्बर १७७९ का है। फिर भी इन क्रमहीन अंकों से ही उनकी दृष्टि की व्यापकता और रुचि की सार्वभौमिकता स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में सभी विषयों पर लेख प्रकाशित कर पाठकों की रुचि और ज्ञान को विस्तृत किया। उसमें कविता, नाटक, कहानी आदि के अतिरिक्त विज्ञान, इतिहास, पुरातत्व, जीवनी, यात्रा आदि अनेक विषयों पर अनेक लेख निकाले। विज्ञान पर सुलभ रसायन, बिजली, परमाणु, योतिर्विद्या (खगोल) और बच्चों के आहार ऐसे विषयों पर लेख निकले थे। इतिहास पर केवल भारत ही नहीं, विदेशों के इतिहास पर भी लेख दिये गये। इनमें ग्रीस और महाराष्ट्र के इतिहासों पर प्रकाशित लेख उल्लेखनीय हैं। पुरातत्व पर "पंपासर का दानपत्र" नामक लेख है। जीवनियों में सूरदास, जयदेव और रामानुज स्वामी के जीवन वृत्तान्त छापे गये। बदरिकाश्रम की यात्रा, सरयूपार की यात्रा, जनकपुर की यात्रा, यात्रा सम्बन्धी लेखों के नमूने हैं। समकालीन कवियों की कविताओं के अतिरिक्त वे पुराने कवियों को भी प्रकाश में लाते थे, जिनके उदाहरण गदाधर भट्ट, काष्ठजिह्व स्वामी और नन्ददास के काव्य हैं। वे अनुवादों की आवश्यकता और उपयोगिता भी समझते थे। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में ठाकुर गदाधर सिंह का कादम्बरी का अनुवाद छपा। सामवेद के कुछ अंशों का अनुवाद प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी के शिशुपालन सम्बन्धी एक निबन्ध के अनुवाद ने भी स्थान पाया। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि उसमें कुरान शरीफ का अनुवाद धारावाहिक रूप से बहुत दिनों निकला। यही नहीं, अपने समय की उस प्रगतिशील पत्रिका में वे पुस्तकों की आलोचनाएँ भी प्रकाशित करते थे। ये आलोचनाएँ आवश्यकतानुसार सहानुभूतिपूर्ण या आक्रामक होती थीं जिनसे भारतेन्दु की निर्भीकता टपकती थी। कभी-कभी राजनीतिक विषयों पर भी लेख होते थे। ऐसे एक लेख का शीर्षक था "अंग्रेजों से हिन्दुस्तानियों का मन क्यों नहीं मिलता।" साहित्य मे एक और विद्या का प्रयोग वे बड़ी सफलता से करते थे। वह था व्यंग्य। व्यंग्य साहित्यिक भी होते थे, और राजनीतिक भी। उस समय "इन्दर सभा" नामक एक विशिष्ट शैली के नाटक का बड़ा प्रचलन था। यह अवध की ह्रासोन्मुखी (डिकेडैंट) संस्कृति की उपज थी। उनकी नि:सारता और हास्यास्पदता स्पष्ट करने के लिए उन्होंने "बन्दर सभा" नामक एक छोटा सा व्यंग्य नाटक प्रकाशित किया था। 'ग्राम पाठशाला नाटक' में तत्कालीन प्राइमरी स्कूलों की दुर्दशा का चित्रण किया गया था।

यह बतलाने के लिए कि उनकी कल्पना कितनी प्रखर थी, उनके विचार समय से कितने आगे थे तथा वे उस समय भी हिन्दी में वे सब काम करना चाहते थे जिनको करने की बात आज की जाती है, दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। जून १८७४ के अंक में उन्होंने बनारस कालिज के गणिताध्यापक पण्डित लक्ष्मीशंकर मिश्र की "सरल त्रिकोणमिति की उपक्रमणिका" नामक पुस्तक की विस्तृत समालोचना की थी। उसमें उन्होंने उस युग में मानक पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता पर जोर देते हुए लिखा था—

"हिन्दी भाषा में विज्ञान, दर्शन, अंकादि के ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं और जो दस-पाँच छोटे-मोटे हैं भी वह पुरानी चाल के हैं और उनके पारिभाषिक शब्द भी ठीक नहीं

हैं।..........इस ग्रन्थ के अन्त में एक निर्घंट भी है जिसमें पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द भी दिये हैं। यह इस विद्या के और नये-नये ग्रन्थ बनानेवालों को बहुत उपयोगी होंगे, पर हम यह कहना चाहते हैं कि जो लोग त्रिकोणमिति के नये ग्रन्थ रचे वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करें क्योंकि बहुत-से पारिभाषिक शब्द होने से भ्रम होता है। इसके सिवाय जब सब लोग यही शब्द लिखने लगेंगे तो हिन्दी में इनका प्रचार भी हो सकता है।"

इस टिप्पणी से स्पष्ट है कि वे ज्ञान-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता और उनका मानकीकरण चाहते थे। अब प्रायः १५-२० वर्ष से भारत सरकार यही काम कर रही है।

दूसरा उदाहरण एक ऐसी योजना का है जो कार्यान्वित न हो सकी, किंतु वह उनकी दूरदर्शिता की परिचायिका है। हिन्दी संसार इधर पिछले बीस वर्षो से कानूनों के हिन्दी अनुवादों तथा "ला जर्नल" के ढंग की पत्रिका की आवश्यकता का अनुभव कर रहा है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ऐसी पत्रिका निकाली किन्तु एक-दो अंकों से अधिक वे उसे न निकाल सके। अब भारत सरकार के विधि विभाग ने ऐसी पत्रिका का आरम्भ किया है जिसका एक अंग प्रकाशित भी हो चुका है, और आशा है कि भारत सरकार का प्रकाशन होने के कारण वह स्थायी रूप से प्रकाशित होती रहेगी। भारत सरकार ने कानूनों के हिन्दी अनुवादों का काम भी आरम्भ कर दिया है किन्तु इस प्रकार के प्रकाशनों की कल्पना भारतेन्दु की अलौकिक प्रतिभा ने बहुत पहले ही कर ली थी। सन् १८७५ के अप्रैल की चन्द्रिका में उन्होंने अपने नाम से एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। वह विज्ञापन यह था—

"हिन्दी में बहुत से अखबार हैं पर हमारे हिन्दुस्तानी लोगों को उनसे कानूनी खबर कुछ भी नहीं मिलती और न हिन्दी कानूनों का तर्जुमा ही है जिसे देखकर और पढ़ कर वे अदालत की बातें समझ सकें। अदालत यह चीज है जिससे छोटे-बड़े किसी को छुट्टी नहीं। इससे सब गृहस्थों को इसका जानना बहुत जरूरी है। बहुत से बेचारे गृहस्थ कानून जाने बिना लोगों के जाल में पड़कर खराब हो जाते हैं। तो इस आपत्ति से लोगों को बचाने को एक माहवारी पत्र "नीति प्रकाश" नाम का बनारस में जारी होगा। इसमें अंग्रेजी और उर्दू कानूनों का तर्जुमा छपा करेगा और इसके सिवाय विलायत और हाईकोर्ट के फैसले छपेंगे। मुंशी ज्वालाप्रसाद गवर्नमेंट प्लीडर हाईकोर्ट बाबू तोताराम हाईकोर्ट प्लीडर इत्यादि लायक दोस्त इसके मददगार होंगे। इसमें इतनी बातें छपेंगी (१) दीवानी फौजदारी, कलक्टरी वगैरह के कानून। (२) रियासतों के कानून (३) इण्डिया गजट और गवर्नमेंट गजट का खुलासा। (४) हाईकोर्टों और विलायत की नजीर और दूसरी अदालतों की नजीर। (५) हिन्दू और मुसलमानों के धर्मशास्त्र। (६) नयी और पुरानी नीतियों का संग्रह। (७) सरकार से और राजाओं से जो अहदनामें हुए हैं उनका खुलासा। (८) और विदेशों के कानूनों का खुलासा। (९) कानूनों और फैसलों पर राय (१०) फुटकर।"

इस विज्ञापन से मालूम होता है कि उनकी विधि पत्रिका की कल्पना कितनी व्यापक और उपयोगी थी। उन्हें हिन्दी के उस आरम्भिक काल में–१८७५ में–एक ऐसी पत्रिका निकालने की कल्पना का श्रेय है जैसी हम आज तक नहीं निकाल सके और जिसे अब दूसरे रूप में भारत सरकार ने निकालना आरम्भ किया है। वे केवल कविता, कहानी, नाटक आदि को हिन्दी की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं समझते थे। समग्र जीवन से संबधित वाङ्मय को हिन्दी में लाने की तथा उसके लिए मानक और शुद्ध पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता को उन्होंने स्पष्ट रूप से समझ लिया था। यह पत्रिका 'नीति प्रकाश" नहीं निकली क्योंकि इस विज्ञापन में उन्होंने स्पष्ट रूप लिख दिया था—"बिना ५०० ग्राहक ठहरे इसका काम न शुरू होगा। और ग्राहक ज्यादे होंगे तो इसके पन्ने बढ़ा दिये जायेंगे। उन दिनों १८७५ में इस प्रस्तावित ४० पृष्ठों के मासिक पत्र का वार्षिक मूल्य ६ रु०, और ६ आने डाक महसूल अलग रखा गया था। आज भी ऐसे विषय के पत्र के इस मूल्य के ५०० ग्राहक होने कठिन हैं। उन दिनों उसके ५०० ग्राहक नहीं मिले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

अंत में उनके निर्भीक व्यंग और पैनी आलोचना की ओर इंगित करके इस चर्चा को समाप्त किया जायगा। कुछ लोग उनकी विजयनी वैजयन्ती, प्रिंस फ्रेडरिक के स्वागत आदि कविताओं के कारण उन्हें अंग्रेजों का अंध-भक्त मान लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय बहुसंख्यक प्रजा को अंग्रेजों का आगमन बरदान मालूम होता था, क्योंकि

मुगल साम्राज्य के लंबे पतनकाल में स्थानीय सूबेदारों तथा उद्दंड और सफल उपद्रवियों के राजा बन बैठने से प्रदेश में शान्ति और व्यवस्था नहीं रह गयी थी। प्रिंस फ्रेडरिक के स्वागत में उन्होंने कहा भी है कि पुष्ट नृपति दल बल दली दीना भारत भूमि।" अंग्रेजों ने पश्चिम से आकर परेशान और त्रस्त प्रजा को राहत दी और उसने चैन की सांस ली इसलिए उन्होंने कहा था कि भारतवासी पच्छिम सों उदित अपूरब चंद" को देखकर प्रसन्न हैं। उस समय अंग्रेजों के आने से हिन्दू प्रजा की प्रसन्नता का एक कारण और था। आज हम भूल गये हैं कि निरंकुश नवाबों और सुलतानों के शासन में हिन्दू प्रजा किस प्रकार रहती थी। आज भी जब किसीकी निरंकुशता या तानाशाही का वर्णन करना होता है तो हम कहते हैं कि "अमुक ने नवाबी मचा रखी है।" एक बात और थी। मुसलमानी शासन में हिन्दू और मुसलमान व्यावहारिक रूप से कानून की निगाह में एक समान नहीं थे। हिन्दुओं को उन कई सौ वर्षों मे उन निरंकुश धर्मान्ध शासकों के शासन में, कोई नागरिक अधिकार (सिविल राइट्स) नहीं प्राप्त थे। अंग्रेजों ने आकर हिन्दू और मुसलमान प्रजा को कानून की निगाह में समान बनाया। हिन्दुओं को शतियों बाद नागरिक अधिकार (सिविल राइट्स) मिले, और उनमें अपने अधिकारों की चेतना हुई। उनका सुप्त स्वाभिमान जागा। यही कारण था कि भारतेन्दु की पीढ़ी के लोग, जिन्हें नवाबी की याद थी अंग्रेजों के शासन को वरदान समझते थे और उनसे इतना बड़ा नैतिक लाभ प्राप्त करने के लिये उनके कृतज्ञ थे। दीर्घकाल तक उन अधिकारों का उपभोग करने के कारण आज हम उस स्थिति को भूल गये है। अतएव उनकी राजभक्ति उसी कृतज्ञता का दूसरा रूप था। किन्तु भारतेन्दु की राजभक्ति अन्धी राजभक्ति नहीं थी। उस समय भी उन्होंने अंग्रेजी शासन में होने वाले देश के आर्थिक शोषण को समझ ही नहीं लिया था, प्रत्युत उसके विरुद्ध बार-बार आवाज भी उठायी थी। उनमें राष्ट्रीय स्वाभिमान भी इतना जग गया था कि अंग्रेजों की उद्दण्डता, उनकी अहंमन्यता, उनका जातीय पक्षपात, उनका काले-गोरे का भेद उनके हृदय में चुभने लगा था किन्तु उस युग में अंग्रेजो का जो आतंक था, और अंग्रेज अधिकारियों को जो अधिकार थे और जिस प्रकार वे उनका उपयोग करते थे उसके कारण सरकार के विरुद्ध कुछ कहने की बात तो दूर, लोगों को सामान्य अंगरेज के विरुद्ध भी कुछ कहने का साहस नहीं होता था। इस पृष्ठभूमि में उनकी निर्भीकता का मूल्य और भी बढ़ जाता है—विशेषकर जब हम वह विचार करते हैं कि वे उस वर्ग के थे जो परिस्थितिवश शासकों की चापलूसी करने को विवश था। हिन्दी संसार फैलन के कोश से परिचित है। फैलन साहब ने वह कोश परिश्रम से तैयार किया था। उनका कार्य सराहनीय था। किन्तु भारत सरकार ने उसे अत्यधिक प्रश्रय दिया था। उस पर उन्होंने एक टिप्पणी लिखी थी।

उनकी आलोचना की पृष्ठभूमि जानना सहायक होगा। सरकार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' की १०० प्रतियाँ खरीदती थी। किन्तु इसमें 'यती वेश्या सम्वाद' नामक एक लेख छपा था। किसी ने सरकार से शिकायत की कि वह अश्लील है. इसी प्रकार एक यूनानी पुस्तक में बाजीकरण विषय के वर्णन को अश्लील बताकर वह पुस्तक एक अंग्रेज अधिकारी ने पुस्तकालय से हटवा दी थी। फैलन के कोश में—कोश होने के कारण—सभी प्रकार के अश्लील शब्द हैं। इस पृष्ठभूमि में भारतेन्दु ने फैलन के कोश के संबंध में यह टिप्पणी लिखी—

"बड़े पुन्य का फल
उनहत्तर हजार स्वाहा

बड़ा पुन्य करे तब अंग्रेज के घर जन्म ले गौर वर्ण होने से ही सब बातों में गौरव। हिन्दू लोग लाख किताब बनावें, इससे क्या होता है। अंग्रेज होने से ही किताब बनाया नहीं कि उसमें सब गुण हो जाते हैं। आप लोगों ने कभी श्रीयुत् डा० फैलन साहिब की डिक्शनरी देखा है? न देखा हो तो जरूर देख लीजिए। उसमें आप लोगों से टिक्कस वसूल कर करके सरकार ने उनहत्तर हजार छः सौ रुपये दिये हैं। सब मिलाकर तेरह सौ बानब्बे कापी इसकी पचास-पचास रुपये में सरकार ने खरीदी है। जिसमें ८ सौ कापी तो सिर्फ बंगाल गवर्नमेंट ने ली हैं। इस किताब में सब मिलकर ग्यारह सौ पेज हैं जिनके अठपेजी एक सौ पौने उन्चालिस फार्म हुए। इसकी अच्छी से अच्छी छपाई, कागज कटाई-बँधाई वगैरह यदि २० रुपये फार्म रखिये तो अट्ठाइस सौ रुपये हुए। बाकी छासठ हजार आठ सौ पचास रुपये क्या हुए। फैलन नाय समर्पयामि अंगरेजत्वात्। हाय! यह नहीं सोचा गया कि

यह एक एक रुपया हिन्दू प्रजा गण का एक रुधिर बिन्दु है ? हम यह नहीं कहते कि डा० फैलन को उतने बड़े परिश्रम के बदले कुछ न दिया जाता। बड़ा इनाम ऐसे परिश्रम का १० हजार रुपया बहुत है। तब भी ५६ हजार से अधिक सरकारी रुपया बचता। लोगों को बड़ी फिक्र पड़ी है कि सरकार सदा कर्जदार बनी रहती है। लोग आँख खोल खोलकर सरकार को इस उदारता का दर्शन करें। लोग अपने काम की निन्दा नहीं करते कि हिंदू कुल में क्यों जन्म हुआ है। हमारी सरकार ही की निन्दा करते हैं।

एक बात और सुनिए। सभ्यता तो इस कोश में कूट-कूट कर भरी है। कबीर (होली की गाली) जो जो चाहिए *सब लीजिए।* जब बनारस की पब्लिक लाइब्रेरी ब्रज-भूषण दास के दूकान के बगल में थी तब केम्पसन साहब इस देश के डाइरेक्टर एक बेर आये थे। 'शरहे बदर चारज' एक फारसी की बड़ी भारी किताब है। उसे देखकर आप बड़े ख़फा हुए और फर्माया ऐसी नंगी किताब आम कुतुबखाने में न रखनी चाहिए। यह कह कर आपने उसमें से वाजीकरण का प्रसंग निकाल कर दिखलाया। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका की १०० कापी पहिले गवर्नमेन्ट लेती थी। इसमें जो 'यती वेश्या सम्वाद' छपा था वह सभ्यता के विरुद्ध था। इस वास्ते गवर्नमेन्ट ने उसका लेना बंद कर दिया। (वास्तव में उस सम्वाद में एक शब्द भी सभ्यता के विरुद्ध नहीं था।) किन्तु इस कोश में जो साफ-साफ निरावरण आइने की तरह नंगी बातों का बाल बाल वर्णन है और नंगे शब्द हैं उसमें दोष नहीं क्योंकि वह अंग्रेज लेखनी निर्गत है। इस समय लज्जा और सभ्यता हाथ न पकड़ती तो अपने पाठकों को कुछ उसके उदाहरण हम भी सुनाते।

उनके व्यंग्य और अंग्रेजों संबंधी विचारों का १७७४ की जून की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित एक अन्य लेख से भी पता लगता है। यह है 'रुद्री की टीका'। उसका आरम्भिक अंश इस प्रकार है।

क्या लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि वेदों में हमारे इस समय के महाराजाधिराज, प्राणदाता, हितकर्ता अंग्रेजी की भी स्तुति लिखी है ? यदि ज्ञात न हो तो मुझसे सुनें। चारों वेदों में केवल इन्हीं का वर्णन है। यदि माधवाचार्य के इतना समय मुझे मिलता तो मै चारों वेद का भाष्य बनाकर सिद्ध कर देता। यहाँ मैं केवल रुद्री का अर्थ दिखलाता हूँ जो हमारे भविष्यद्वक्ता वेदकर्त्ताओं ने हिन्दू प्रजा को इनसे बचने के लिए पहिले ही से लिख छोड़ी है।

> नमस्ते रुद्रमन्यव—
> उतोदुत् यबवे नमः
> नमस्ते अस्तु धन्यने
> बाहुभ्यामुत ते नमः

हे रुद्र, अर्थात् धन बलादि हरण करके रुलानेवाले अंग्रेज, तुम्हारे क्रोध और बाण, धनुष और बाहुओं को नमस्कार है।

"सबके पहिले क्षमा मांगकर प्राण बचाने के हेतु *क्रोधाधिक को नमस्कार किया।*"

१८७४ में जब लोगों में अंग्रेजी की खुशामद और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करने की होड़ लगी हुई थी उन दिनों अंग्रेजों को सार्वजनिक रूप से धन, बल आदि का हरण करके रुलानेवाला कहना, और उसे प्रकाशित कर देना बड़े साहस और निर्भीकता का काम था।

अंग्रेजों की इस प्रकार धन बल आदि हरण करने की भर्त्सना करने का जो क्रम हिंदी साहित्य में बीसवी शती के आरम्भ से प्रकट होने लगा, और वह भी कांग्रेस के बीस वर्ष के प्रचार और स्वदेशी आन्दोलन की वेगवती आंधी के बाद, उसके अग्रगामी होने का श्रेय भारतेन्दु को है।

अंग्रेजों की पराधीनता राजनीतिक दृष्टि से हमारे आत्मसम्मान को बराबर ठेस पहुँचाती रही। प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम इसका साक्षी है। उससे उत्पन्न आर्थिक शोषण को भी जनता अनुभव करती रही किन्तु उसकी भावना को साहित्य में वाणी नहीं मिली थी। भारतेन्दु पहिले साहित्यकार थे जिन्होंने इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध खुलकर और लगातार आवाज उठायी। "पै धन विदेश चलि जात, इहे अति ख्वारी, आदि अनेक पक्तियाँ इसके प्रमाण है। शासन की आर्थिक नीतियों की ओर ध्यान देकर साहित्य को आधुनिक दृष्टिकोण देने में भारतेन्दु ने सफल अग्रगामी नेता का काम किया था।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतेन्दु ने अनेक प्रकार से हिन्दी साहित्य, हिन्दी भाषा और हिन्दी पत्रकारिता को युगों के अंधकार, अज्ञान और पिछड़ेपन से निकालकर

आधुनिकता के मार्ग पर अग्रसर किया। इन्हीं कारणों से हम भारतेन्दु को आधुनिक हिन्दी का पिता और उसको आधुनिक बनाने वाला मानते हैं।

एक बात और दृष्टव्य है। उनके सारे साहित्य में कहीं प्रान्तीय सकुचित भावना नहीं है। वे जब भी बात करते हैं, और जो भी बात कहते हैं, समग्र भारत को दृष्टि में रखकर। यही सच्चा राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। आज जो लोग साहित्य द्वारा देश में भावनात्मक एकता स्थापित करने की बात कहते हैं उन्हें मालूम होना चाहिए कि भारतेन्दु हिंदी साहित्य को वह स्वस्थ परम्परा दे गये हैं, और उसी के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में उस प्रान्तीय या क्षेत्रीय सकुचित भावना का लेश भी नहीं है जो दुर्भाग्य से कुछ भारतीय भाषाओं में दीख पड़ती है और जो भारतीय एकता के मार्ग मे बाधक है। देश की भावनात्मक एकता का ऐसा ठोस और सफल प्रचार और समर्थन अपने में स्वयं एक महान् उपलब्धि है।

ऐसे युगदृष्टा महापुरुष की क्रान्तिकारी सेवाओं का पूर्ण मूल्यांकन होना आवश्यक है। हमें नवीन पीढ़ी के सामने उन्हें आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। इसे उन्हें जनता के सम्मुख बार बार लाना है जिससे उन पर उनके संदेशों का प्रभाव पड़े। यह संग्रहालय उस दिशा में सही कदम है। किंतु यह पर्याप्त नहीं है। भारतेन्दु को और उनके संदेश को हमें जनता के पास अनेक उपायों से पहुँचाना हैं। जो सरकार गालिब शती पर करोड़ों खर्च कर सकती है वह देश के भावनात्मक एकता का शंख फूंकनेवाला भारतेन्दु पर यदि कुछ लाख ही व्यय करने को तैयार हो तो उनका शिव-सन्देश जनता में नवीन जीवन और नवीन राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न कर सकता है—इसमें मुझे संदेह नहीं है।
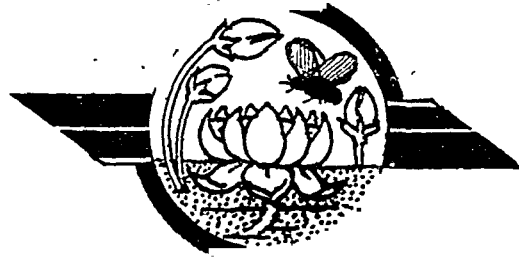
स्पष्टीकरण

अप्रैल की 'सरस्वती' में मेरा लेख छपा है—'नागकन्याओं की चर्चा।' उसमें एक गलती है—मुद्रण की नहीं, मेरी अपनी। प्रमादवश 'जालम्' संज्ञा को 'जाल:' लिख दिया! 'आनाय.' के झमेले में वह हो गया है। जल में फैलाया जानेवाला 'आनाय'—'जाल:-आनाय:'—'जालो आनाय:' ठीक। विशेपरूप के अनुसार—'जाल:'। परन्तु जब उसने साधारण संज्ञा का रूप ले लिया, तो नपुंसक लिङ्ग—'जालम्'।

सो 'जाल आनाय:' को 'जालमानाय:' पढ़ें और 'आनायस्तु जालः स्यात्' को 'आनायस्तु जालं स्यात्' पढ़ें।

—किशोरीदास वाजपेयी

श्री सीताजी का वन-निष्कासन

पंडित शिवरत्न शुक्ल "सिरस"

कुछ समय हुआ कि मैंने पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी से लिखकर पूछा था कि क्या वास्तव में श्रीसीताजी का वन निष्कासन हुआ और क्या वाल्मीकीय उत्तरकांड वास्तव में उन्हींका लिखा है। उस पर उन्होंने उत्तर में लिखा था कि इनके उत्तरो के लिए प्रमाणों की आवश्यकता है। विद्वानगण प्रमाण के विना कोई बात न मानेंगे। उस समय मै चुप रहा, जब विशेष प्रमाणों का संग्रह हो गया तो मैंने "वैदेही वनगमन—गवेषणा" नाम की पुस्तक लिखी, जो प्रेस में दी जा चुकी है। उस पुस्तक की भूमिका पण्डित प्रवर श्री रामकुमार दास रामायणी, मणिपर्वत, अयोध्या ने लिखी है। उसमें उन्होंने यह प्रमाणित करने के लिए प्रमाण दिये हैं कि उत्तरकांड श्री वाल्मीकि जी का रचित नहीं है। जो प्रमाण दिये है, उनमें से यहाँ कुछ दिये जाते हैं।

१९३७ में तिरुमाली तिरुपति देवस्थान प्रेस, तिरुपति, से प्रकाशित और श्रीकृष्णमाचार्य लिखित 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' ग्रंथ के पृष्ठ ४१७ में गुणाढ्य (बौद्ध) का काल ४९५ बी० सी (B.C.) ईसा पूर्व दिया गया है। काशी से प्रकाशित "संस्कृत साहित्य का इतिहास" में और महाकवि ग्रंथ में भी शक्ति गुणाढ्य का उक्त पाँच सो बी०सी० काल निर्णीत है। अब से ढाई सहस्र वर्ष पूर्व महाकवि गुणाढ्य ने "वृहत्कथा" लिखी थी। उस वृहत्कथा सरित सागर के लम्बक नव तरंग में बड़े ढँग से राम को अन्यायी राजा सिद्ध करने के लिए सर्वप्रथम सीता निर्वासन की गर्हित कल्पना की है। किसी धोबी की गुप्त वार्ता अपने गुप्तचरों से सुनकर राम ने अग्नि-शुद्धा जानकी को कलंकित और लज्जित करने के लिए उन्हें आसन्न-प्रसवा जानते हुए भी बिना अपराध बताये, विना सफाई का अवसर दिये वन में छुड़वा दिया। इस उपन्यास को प्रचारित करने के लिए एक पूरा पोथा ही रचकर उत्तरकांड के नाम से किसी अज्ञात व्यक्ति के द्वारा वाल्मीकि रामायण में जोड़ दिया गया। गुणाढ्य की कल्पना वैसे ही निर्मूल है जैसी की बौद्धों की कल्पना है कि राम और सीता सगे भाई बहिन थे।

जैनियों की भी कल्पना है कि राम ने केशलुचक जैनी साधु होकर ही निर्वाण किया, रावण को लक्ष्मण ने मारा हनुमान ने अपना विवाह सूर्पणखा की बेटी के साथ किया था।

तत्वमार्तंड में उत्तरकांड को प्रक्षिप्त माना गया है। देखिये त० मा० सं० २२, २३। 'रामकथा का विकास' के लेखक ने वहुत छानबीन के पश्चात् उत्तरकांड का रचना-काल तीसरी शती माना है। पं० किशोरीदास वाजपेयी ने भी ८-४-६२ और ८-७-६२ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में उत्तरकांड को प्रक्षिप्त सिद्ध किया है।

वेदोपनिषद् भाष्यकार पण्डितराज स्वामी श्री भगवदाचार्यजी ने कई वर्ष पूर्व 'उत्तरकांड विमर्श' लिखकर उसे प्रक्षिप्त सिद्ध किया था। तिरहुत में अनेक स्थानों में प्रतिवर्ष वर्षाऋतु के चातुर्मास में वाल्मीकीय रामायण का पारायण होता है। पर उसमें उत्तरकांड का पाठ नहीं होता है। उत्तरकांड त्याज्य है। इनमें सबसे प्रौढ़ प्रमाण जैमिनी महाभारत के अश्वमेध पर्व का है। उसके अनुसार प्रथम या द्वितीय शती तक उत्तरकांड की रचना नहीं हुई थी।

भारतेतर देशों में भी रामायणें हैं। परन्तु जहाँ-जहाँ बौद्धों के साथ परवर्ती साहित्य नहीं गया, वहाँ-वहाँ गुणाढ्य की कल्पना का प्रवेश नहीं होने से उनमें उत्तरकांडीय सीता-त्याग आदि की कथाएँ नहीं हैं। जैसे, कम्बोडिया की रामायण "रेयामकेर" में, जावा द्वीप की रामायण "सेरतराम" में, वालीद्वीप की रामायण "भित्तिप्रतिमाओं" में उत्तरकांडीय कथाओं की चर्चा नहीं है।

५ अक्टोबर सन् १९२४ की माधुरी पत्रिका वर्ष ३-खण्ड १ संख्या ३ के पृष्ठ ४१५-१६ पर लिखा है "जावा में ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी में रामायण पहुँच चुकी थी। जावा की रामायण में उत्तरकाड नहीं है। उस समय भारत में भी उत्तरकांड की रचना न हो पाई थी। उत्तरकांड क्षेपक है। पीछे से वनाकर जोड़ा गया है।"

विचार करने की बात है कि वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण के द्वारा सीता बाल्मीकीय के आश्रम में पहुँचाई गईं।

परन्तु श्रीमद्भागवत में राम स्वयं सीताजी को वन में अकेली छोड़ आये। यदि घटना यथार्थ होती तो दो प्रकार से निष्कासन क्यों वर्णन किया जाता? यदि पुराण व्यास-कृत माने जायँ तो अति प्राचीन काल में उनकी रचना हुई थी। परन्तु उनमें नन्द वंश का वर्णन मिलता है। जो ईस्वी सन् के आरम्भ से कई शती पूर्व हुआ था। "ब्रह्मांड पुराण में क्षेमधर्म, क्षत्रौजा, विद्धिसार, अजातशत्रु, दशक, उदासी, नंदिवर्धन आदि का वर्णन है।

मत्स्यपुराण में शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षेमजित, विन्दुसेन, अजातशत्रु, दशक, उदासी, नन्दिवर्धन का उल्लेख है। वायुपुराण मे शिशुनाग, शाकवर्ण, क्षेमवर्मा, क्षत्रोजा, विन्दसार, अजातशत्रु, नंदिवर्धन के नाम आये है विष्णु पुराण में शिशुनाग, काकवर्ण क्षेमधर्मा, विंविसार, अजातुशत्रु, दर्भक, उदयन, उदयाश्वं नंदिवर्धन, की चर्चा है। श्रीमद् भागवत मे क्षेत्रज्ञ, विधिसार, दर्भक, उदय का वर्णन है। इन क्षेपकों का सम्मिलन बौद्धो ने किया।'

१—श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२—अध्याय १ श्लोक ८-१३

२—वायुपुराण अनुषङ्गपाद अध्याय ३७ श्लोक ३२०-३२४।

मत्स्यपुराण अध्याय २७२ श्लोक १७-२१" इन्दु १९१४ ई०

इससे प्रमाणित है कि बौद्धकाल में बौद्धों ने, हिंन्दुओं के, जिन्हें वे अपना विरोधी समझते थे, धर्म-ग्रन्थों को ऐसा बिगाड़ा था कि जिससे स्वयं हिन्दुओं का विश्वास उनसे हट जाय। वाल्मीकि ने राम को लोकोत्तर गुणों का आगार बतलाया है। रामराज्य आदर्श राज्य बतलाया गया है। उसमें धोबी के मन में राजसी एवं तामसी विचार कैसे उत्पन्न हो सकते थे। माघ मास में ग्रीष्म के गुण नही हो सकते। तब धोबी के मन में गर्हित विचार आ नहीं सकते थे। चरों द्वारा प्रजा की भावना जानने की प्रथा राजसी अथवा तामसी राज्यों में प्रचलित होती है क्योंकि उनमें राजा के प्रति द्वेष भाव रहने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में राजा, प्रजा के भाव जानने के लिए चर नियत करता है। किन्तु ऐसा अवसर रामराज्य में नहीं था। वह शासन सतोगुणी था। सब के विचार सतोगुणी थे।

सर्वं मुदित मेवासीत्सर्वो धर्मोपरोऽभवत्
राममेवानु पश्यन्तो नाभ्यहि सन्परस्परम्
वाल्मीकीय युद्धकांड १२८

अर्थात् सभी प्रसन्न थे। सभी धर्मात्मा थे। राम की ओर देखकर उस समय के लोग परस्पर ईर्षा-द्वेष नहीं करते थे। वाल्मीकि ने अग्नि ग्रन्थ को युद्धकांड ही में समाप्त कर दिया था। उन्होंने ग्रंथ समाप्ति के शब्द युद्धकांड ही में कह दिये थे—

'ऐश्वर्यं पुत्र लाभश्च भविष्यति न संशयः'

अर्थात् इस समस्त रामायण को सुनने और पढ़नेवालों को ऐश्वर्य और पुत्र प्राप्त होता है।

यदि उत्तरकाड उनका रचा होता तो अभिषेक उत्तरकांड मे कराते जिसको उन्होने युद्धकाड ही में करा दिया और ग्रंथ की समाप्ति भी वहीं कर दी।

इन कारणों से मेरी मान्यता है कि उत्तरकांड वाल्मीकि रामायण का अंग नही है। वह प्रक्षिप्त है। बाद में बना कर विरोधियों द्वारा जोड़ा गया है। वाल्मीकि के नाम के प्रभाव से, अज्ञानवश, लोगों ने उसे वाल्मीकि कृत मान लिया। उसी मे सीता वनवास की कथा है जो राम पर लांछन लगाने के लिए जोड़ी गयी। कारण है कि विद्वान् पाठकगण इस समस्या पर विचार करेंगे।
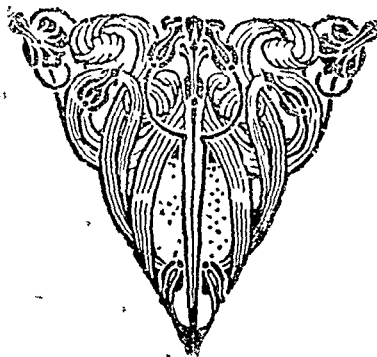
हिमालय की आवाज

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

(एक साधारण कमरा। धोती कुर्ता पहने, आँखों पर चश्मा लगाये पं० जगदीश कुछ पढ़ रहे हैं। वैठे-वैठे आवाज लगाते हैं)।

जगदीश –(जोर-जोर से) शम्भू, ओ शम्भू वेटा, अरे, जरा सुन तो—(शम्भू का प्रवेश)

शम्भू—क्या वात है पिताजी ?

जगदीश—(खाँसते हुए खिसियाने स्वर में) वेटा क्या बताऊँ ? वे लोग कब से मेरे पीछे पड़े हुए है, फिर पूछ रहे हैं। अब तू ही बता, मैं क्या जवाव दूँ उन्हें ? (फिर खाँसते हुए)

शम्भू—पिताजी, आप उनसे साफ-साफ क्यों नही कह देते कि—

जगदीश—जरा सोच-समझ से काम ले वेटे, माँ-वाप जो कुछ भी करते हैं, सव अपने वच्चों की भलाई के लिये ही, समझे, वहाँ रिश्ता हो जायेगा तो वे तुझे अच्छी नौकरी दिलवा देंगे।

शम्भू—नहीं चाहिए मुझे ऐसी नौकरी।

जगदीश—मेरे वेटे, वचपना नहीं दिखाते। उनकी जान-पहचान वड़े-वड़े लोगों से है। वे कह रहे थे कि व्याह होते ही तुझे किसी चाय-वागान का मैनेजर वना देंगे। आठ सौ रुपया महीना, शानदार वँगला, साहबी ठाट-वाट। ऊपर से पढ़ी-लिखी सुशील लड़की, ऊँचा खान-दान। अब इससे ज्यादा और क्या चाहिए ?

शम्भू—मैंने आपसे कहा न कि मैं ऐसी नौकरी नही करूँगा, पिताजी।

जगदीश—(क्रुद्ध होकर) तो झक मारेगा। तुझे क्या हो गया है। (स्वर वदलते हुए) पढ़ा-लिखा लड़का और ऐसी ऊल-जलूल वातें। शम्भू, तुझे मालूम है कि मैंने कैसे-कैसे दिन झेले। जिन्दगी भर पूजा-पाठ के चक्कर में रहा। दर-दर की ठोकरें खाईं। अपने आप भूखा रहा। एक-एक पैसा जोड़-जोड़ कर तुम लोगों को पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, इस उम्मीद पर कि मेरा वुढ़ापा चैन से कटेगा। मेरी तरह मेरे वेटे दर-दर नहीं भटकेंगे और तुम लोग (एकाएक भर्राती हुई आवाज में) रामू से पचास वार कहा था—वेटे, फौज में मत जा, मत जा, तू बी० ए० पास है। कहीं भी छोटी-मोटी नौकरी मिल जायेगी, पर कोई मेरी माने तो। अपनी जिद पर अड़ा रहा, और तव सबसे पहले उसी की जान—हे भगवान् मैंने कौन-सा पाप किया था, जो ऐसा दिन देखना पड़ा।

शंभू—पिताजी, आप भी कैसी बातें करते हैं। अब क्या होगा उन बातों को याद करके। भैया ने देश के लिए अपनी सीमाओं की रक्षा के हेतु जो वलिदान किया, उसके लिए आज देश का बच्चा-बच्चा उनका नाम लेता है। आपका नाम लेता है। हमारे खानदान का नाम लेता है।

जगदीश—अरे वेटा, नाम लेने से क्या किसी का वेटा वापस मिल सकता है। मेरे सीने पर जो घाव—(खाँसी का दौर उठता है) किसी वाप से पूछो कि वेटे की मौत क्या होती है।

शंभू—ऐसी मौत किस-किस को नसीब होती है पिताजी—काश मैं—उस दिन सारे शहर में हजारों लोगों ने उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। हिमालय पर अपनी जान न्यौछावर करने वालों में सबसे आगे मेरा भैया रहा—यह सोचते ही मैं सारा दुख भूल जाता हूँ, पिताजी—और मैंने भी निश्चय किया है कि अपने भैया के पद-चिह्नों पर चलूँगा। मुझे ही नहीं पूरे देश को उन पर अभिमान है। अपने प्राणों की बाजी लगा-कर देश के गौरव की रक्षा की—इससे बड़ा त्याग और बड़ी सेवा और क्या हो सकती है। पिताजी, मैंने आपको दुखी देखा, इसलिये आपसे साफ-साफ कुछ कह न सका, लेकिन अब तो आपको स्वयं ही पता लग जायेगा। तीन दिन के बाद मैं भी चला जाऊँगा। मैंने माँ से पूछ कर यह सब किया है। मैं अपने भाई के अरमान पूरे करूँगा।

जगदीश—शंभू, पागल तो नहीं हो गया। क्या तू भी मुझे छोड़ कर जाना चाहता है। अच्छा जाओ, सब जाओ ठीक है जव मेरे ही अपने हाथ के न रहे तब दुनिया से क्या गिला-शिकवा।

भूशं—पिताजी, आजकल आप—आप धीरज रखें—

जगदीश—धीरज (एकाएक स्वर बदल कर) कैसा धीरज। अब जिन्दगी में रह ही क्या गया है। रामू अपने आप,

बिना बताए, फौज में भरती हो गया था। तू भी वहीं जा रहा है। तीन दिन के बाद। जाओ। मुझे भी ले चलो —(खाँसी का दौर उठता है)

शंभू—पिताजी, आप आराम करें आपका बेटा ऐसा कुछ नहीं करेगा, जिससे आप को ठेस लगे।

जगदीश—(उत्साहित होकर) सच बेटा, तो क्या तूने अपना इरादा बदल दिया है। (प्रसन्नता से) अरे, ओ रामू की माँ,, इधर तो आओ।

(रामू की माँ (ममता) का प्रवेश)

ममता—क्या बात है ? बाप बेटे में गुपचुप इतनी देर से क्या-क्या बातें चल रही हैं ?

जगदीश—अरी भागवान्, जा, प्रसाद चढ़ा मेरी ओर से। मुँह मीठा कराओ। शंभू शादी के लिये तैयार हो गया है और फौज में जाने का विचार भी उसने छोड़ दिया हैं। हे भगवान् !

शंभू—पिताजी, आप गलत समझे हैं। शादी तो मैं फिलहाल कर ही नहीं सकता। तीन दिन के बाद मुझे ट्रेनिंग के लिये जाना है। उसके बाद न जाने किस मोर्चे पर भेजेंगे। क्या ठिकाना। मैंने तो कहा था कि मैं ऐसा कोई कदम नहीं उठाऊँगा जिससे आपको ठेस पहुँचे।

जगदीश—ठीक है, और भी जो कहना है, कह डालो। फिर न जाने तुम्हें ऐसी बातें सुनाने को मैं मिलूँगा भी—

ममता—छिः, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं। बेकार अपना दिल छोटा कर रहे हैं। मेरे आज दस बेटे होते तो, सभी को फौज में भेज देती। मेरा रामेश्वर। आखिर दम तक देश के लिये लड़ता रहा। आज जहाँ भी जाती हूँ, वहीं लोग मेरा सम्मान करते हैं। बहादुर रामू की माँ हूँ—ऐसा सुनते ही मैं सारा दुख भूल जाती हूँ। कौन जानता था हमको ? लेकिन आज घर-घर में, गाँव-गाँव में, गली-गली में, मेरे लाल की बातें होती हैं। मेरे बेटे ने मेरे प्रदेश की रक्षा की। उन ऊँची-ऊँची पहाड़ों की, जहाँ किन्नरियाँ और आछरियाँ सदा नाचती रहती हैं।

जगदीश—रामू की माँ, तुम्हारा दिमाग तो सही है ? एक जवान बेटे से पहले ही हाथ धो बैठी हो, अपने कलेजे के टुकड़े को सदा के लिये गवाँ बैठी हो, फिर शंभू को भी उसी रास्ते पर भेज रही हो। क्या बुढ़ापे में भी तड़प-तड़प कर सिसकती रहोगी। आगे-पीछे कोई पानी देने वाला भी नहीं। पहाड़ को छोड़े बरसों हो गये है, यहाँ परदेश में कौन बैठा है अपना।

ममता—अजी, कौन अपना और कौन पराया। आज रामू के कारण सभी हमारे हो गये और हम सभी के। शंभू भी चला जायेगा तो लोग यही तो कहेंगे कि इस बुढ़िया ने अपने दोनों बेटे देश के लिये दे दिये हैं।

जगदीश—लगता है, रामू की माँ, तुम पर भी शंभू ने जादू कर दिया है। आजकल के लड़कों को भला कौन समझाए। तुम्हीं बताओ अपने शहर के जितने बड़े-बड़े आदमी है—है किसी का बेटा फौज मे, देश की रक्षा मे, वे तो पैसा बटोरने में लगे हैं, और मर रहे हैं हम-जैसे गरीबो के बेटे।

शंभू—पिताजी, जब देश की रक्षा का सवाल आता है तब अमीर और गरीब का सवाल ही नही रहता। देश-रक्षा के लिये सभी अपना तन-मन-धन देने को तैयार हो जाते हैं। अपने शहर के सभी लोगों ने जी-खोल कर रक्षा-कोष के लिये दान दिया। सीमाओं पर मर मिटने वाले दीवानों के लिये, जो जिससे हो सकता था, उसने किया।

जगदीश—मेरे बेटे, तुम्हें किसी ने बहका दिया है। इतने साल हो गये आजादी को, हम जैसे गरीबों के लिए क्या किया हमारी सरकार ने ?

शंभू—पिताजी, इतने कम सालों में इतना हुआ कि जो हजारों सालों में न हो सका। देश का बच्चा-बच्चा जाग गया है। देश का नक्शा ही बदल गया है। निर्माण में समय लगता है पिताजी।

जगदीश—अरे बेटे, मुझे क्या समझाओगे। यह कहने की बातें हैं।

शंभू—यह सच्चाई है , पिताजी, आज कहीं भी जाइये, विकास का काम हो रहा है, नहरे बन रही हैं, बांध खड़े हो रहे हैं, क्या नहीं हो रहा है। आज जरूरत है दृष्टिकोण बदलने की। कई लोग आज भी पुराने दृष्टिकोण से देखते हैं। आज हर माँ-बाप को देश की हिफाजत के लिए अपना बेटा दान देना है। देश-रक्षा के लिए हर एक को तैयार होना है। यही समय की पुकार है।

जगदीश—ठीक है बेटा, जो चाहो करो, मगर हमारे बुढ़ापे का भी तो कुछ ख्याल रखो। तुम चले जाओगे तो कौन देखेगा हमको, एक घूंट पानी देने वाला भी घर में नहीं। बहू होती तो कुछ सहारा तो होता।

ममता—आपको बहू-बहू की रट लगी हुई है, लेकिन आज....

जगदीश—रामू की माँ, तुम भी इतनी बदल गयीं। दो साल पहले तुम्हीं ने बार-बार मुझ से कहा था कि घर में कोई बहू होती तो—

ममता—ठीक है, परन्तु वक्त के साथ-साथ हमको भी बदलना है। नहीं तो हम पीछे रह जायेंगे।

जगदीश—अरे, क्या कहने, आज तो तुम वीर सेनानियों जैसी बातें कर रही हो, लेकिन अपने दिल से पूछो, अपने दिल के घावों से पूछो, कि क्या तुम यह सब अपने दिल से कह रही हो; क्या अपने नौजवान बेटे की मौत हरदम तुम्हें सताती नहीं?

ममता—मेरा रामू, मेरे पहाड़ों का वीर सिपाही बना, लोग कहते हैं कि हिमालय जैसा पहाड़ दुनिया में नहीं और इस पहाड़ की लाज रखी मेरे बेटे ने। इसका पहला पुजारी बना मेरा बेटा, इससे बड़ी बात क्या हो सकती है। आज मेरे बेटे की मौत ने मेरी आँखें खोल दी हैं। देश रहेगा, तो मेरी जैसी माँ कभी नहीं मर सकती। देश के लिए सभी मेरे बेटे है। आज हर वीर के चेहरे में मुझे रामू का चेहरा दिखाई देता है। हर सिपाही की ललकार में मुझे रामू की किलकार सुनायी देती है। अब तुमसे क्या छिपाऊँ—मैंने मंगलसूत्र के अलावा सारे गहने रक्षाकोष में दिये हैं। मैं जानती हूँ कि तुम मेरी बात से कभी नाराज नहीं हुए। इसलिए तुम्हारी आज्ञा के बिना ही मैंने उस दिन सब कुछ दे दिया था।

जगदीश—हूँ। तो यह बात है। मेरे पास भी क्या है? लो, जो-कुछ है, आज प्रतिज्ञा करता हूँ सब मेरे देश का है। कल ही गांव जाकर सब कुछ देश के लिये समर्पण कर दूंगा। जब हिमालय का सबसे पहला पुजारी मेरा बेटा बना—फिर बाप कहाँ पीछे रहने वाला है। मैंने जीवन भर पूजा की, लेकिन अब जानती हो किसकी पूजा करूँगा—देश पर मर मिटने वाले सपूतों की। बेटा शंभू, तुम बेशक जाओ, मैं तुम्हारी भी पूजा करूँगा·····तुम जैसे लाखों नौजवानों की पूजा करूँगा·····(पृष्ठभूमि में दूर—"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नागाधिराज" धीरे-धीरे मन्द पढ़ते हुए स्वर)

नाग न होता इतने भय का पक्षधर

प्रो० सेवक वात्स्यायन

गुण-गौरव का स्वत्व जहाँ है बोलता
पाती वहीं अनीति प्रतीति है;
संध्या की घबराई सी खग-मण्डली
हो उठती वह बार प्रभूत सभीति है;
मन का मोदक खाते खाते लोक यह,
भूल गया है स्वाद किसी भी पथ्य का;
जहाँ बात में घात छिपी रहती सदा,
वहाँ विनय का समय, भला हो, कथ्य क्या!
बामन का उद्धार कुछ बड़ी बात है,
सावन का संताप यहाँ संभव सखे!
जीवन के बहुरूप अलौकिक से लगे,
जिसको देखा उसने दुर्भेद्य दुख चखे,
स्रोत बहक जाता जब भी उन्माद का,
मद की संज्ञा उसे मिलाती मण्डली;
नाग न होता इतने भय का पक्षधर
जितनी होती उसकी वर्तुल कुण्डली,
कई हजार पुरानी निधियाँ लुप्त हैं,
विधियों के व्यामोह न हमको छोड़ते;
दंशित हैं हम किसी ज़हर के कोप से,
पावन सुधियाँ किसी तरह से तोड़ते,
उन्हें न कोसो जिन पर श्री-आभार है,
चरण-वन्दना सबकी हो पाती नहीं;
संबंधी हैं द्रोह-द्वेष के रूप सब,
यहाँ अपरिचित की कुछ चल पाती नहीं,
जय के लक्षण होते जाते दूर हैं,
तो भी हम तटस्थ से हो पाते नहीं;
बार बार के विदा-गीत से भी प्रथित
जाना होगा जहाँ न हम जाते वहीं।

———

कुलफी

मूल लेखक : श्री सुजान सिंह

अनुवादक : प्रो० आशानन्द वोहरा एम० ए०

मास समाप्त होनेवाला था, परन्तु समाप्त होने में ही न आता था। सोच रहा था कि महीने के पहले पक्ष के पन्द्रह दिन कैसे जल्दी समाप्त हो जाते हैं और वेतन भी उन पन्द्रह दिनों के साथ ही कैसे जल्दी से समाप्त हो जाता है। मुझे चटाई की सफ़ चुभ रही थी! करवट बदलकर पीठ पर हाथ फेरा तो प्रतीत हुआ कि सफ़ की चुभन के चिह्न अंकित हो गये हैं।

"मलाईवाली कुलफी" ठंडी लगने वाली ध्वनि में कुलफी बेचनेवाले ने आवाज लगाई। उसकी आवाज कितनी देर तक मेरे कानों में गूंजती रही। सफेद रंग की दूध की कुलफी साकार मेरी आँखों के सामने नाचने लगी। मेरे मुँह में पानी आ गया। परन्तु मैं विवश था। पैसे की तंगी हवालात (जेल) की तंगी से भी बुरी होती है। मैंने अपने दिल की इच्छा (चाह) से बचने के लिए 'कुलफी' शब्द की बनावट पर विचार करने की ओट ले ली। कुलफी का अर्थ ताला होता है, स्वर्णकारों ने आभूषणों में इसको लाकर कुलफ का कुलफी बना दिया है। कुलफी को भी टीन के साँचों में बन्द करके जमाया जाता है--इसलिए 'कुलफी' कहा जाता है। इसी तरह धीरे-धीरे पता नहीं कब नींद ने मुझे कुलफी से छुटकारा दिलाया।

मेरी दोपहर पश्चात् की नींद अभी पूरी नहीं हुई थी कि मुझे मेरे छोटे लड़के ने हिला कर जगा दिया। मैं खीझा हुआ था परन्तु बच्चे की तोतली आवाज ने मुझे शान्त कर दिया।

"पिताजी कितनी आवाजें लगाई, आप जागते ही नहीं।"

"हाँ, हाँ तुझे क्या कहना है? बता भी" मैंने कुछ जल्दी से पूछा।

"टक्का, एक टक्का दो, पिताजी"

परन्तु टक्का मेरे पास था नहीं। मेरे पास आज कुछ भी न था। जून की २६ तारीख थी। घर का खर्च, बाजार की उधार की साख पर मुश्किल से चल रहा था।

"टक्का दो भी न पिताजी!"

बाहर मुरमुरेवाला हमारे दरवाजे के पास ऊँची-ऊँची आवाजें लगा रहा था। कोई उत्तर सोचने के लिए समय निकालने के लिए मैंने कहा, 'बेटे तू टक्का क्या करेगा?"

मुझे टक्का (टका) खर्च करना है, और क्या करते हैं, टक्के को?"

मुझे पता हैं, पहले युद्ध के पश्चात् जब बड़ी महंगाई हो गयी थी, हमें एक धेला खर्च करने को मिलता था और धेले के मस्सदीराम के खरीदे हुए छोले (चने) समाप्त होने में ही नहीं आते थे। अब एक आने के भी उतने छोले नहीं मिल सकते और मेरी आमदनी, मेरे पिता की आमदनी के पास तक नही पहुँचती थी, हलांकि मेरी पढ़ाई मेरे पिता की पढ़ाई से कई गुना अधिक थी। मैं दुनिया की आर्थिक दशा और इस दशा को बनाने और कायम रखने वाले धन-कुबेरों पर विचार करने लगा।

बाहर से फिर "मुरमुरे छोले" की आवाज गूंजी और साथ ही बच्चे ने कहा "टक्का दो भी न पिताजी!"

"टक्का बुरा होता है" मैंने हालात से पैदा हुई बदहवासी जैसी हालत में कहा।

"हूँ, टक्का भी कभी बुरा होता है, पिताजी? टक्के का मुरमुरा आता है।"

"मुरमुरा बुरा होता है' मैंने कहा और बाकी बात अभी मेरे मुँह में ही थी कि बच्चे ने कहा "मुरमुरा तो मीठा होता है।"

इस दलील का मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। मैं भी मीठे का लोभी था। परन्तु फिर भी मैंने अपनी फीकी हिकमत जताते हुए कहा, "मुरमुरे के साथ खाँसी लग जाती है, बेटे।"

"आप टक्का दे दो। मुझे कहीं नहीं लगती खाँसी।

बच्चा शरारत पर तुला प्रतीत होता था। टक्का मेरे पास था नहीं। मैंने बच्चे को टालने के लिए उसे पता नहीं क्यों कह दिया--शायद बड़ा लोभ देकर भुलाने के लिए--

"मुरमुरा गंदा होता है। हम शाम को बाजार में कुलफी खायेंगे।"

मुरमुरे छोलेवाला जब तक टल चुका था। बच्चा भी मेरी आज्ञा के प्रतिकूल संध्या को कुलफी खाना मान गया। समझा बला टल गई। मैंने सोचा कहीं और छाबड़ीवाला न आ जाये। अत: मै कपड़े डालकर कड़कती धूप में बाहर निकल गया और सड़कों पर समय की हत्या करता रहा। कीमती समय मैं एक टक्के की माँग से बचने के लिए नष्ट कर रहा था।

मैं अपने मालिक से क्यों नही कहता कि मेरा इतने में गुजारा नही होता? पर सुनेगा कौन? अकेले की चाहे जितनी ऊँची हो, सुनी नही जाती। दो जरूरतमंद इकट्ठे हो नहीं सकते। यदि हो जाये तो रहने नहीं दिये जाते, जिससे मिलकर मांग न करें। मांग करने पर कई बार नोकरी से जबाब हो जाता है। मैं डर गया। बेरोजगारी के भयानक भविष्य ने मुझे प्रकम्पित कर दिया। कायरों की भाँति मैं सदा चुप रहा करता था और अब भी चुप रहने का ही फैसला किया।

सायं को यह समझ कर कि बच्चा जल्दी सो जाता है मै दबे पैरों घर पहुँचा। आवाज न जगाई, केवल कूडी ही खटखटाया। ऊपर से ही आवाज आई, पिताजी, आ रहा हूँ, और थोड़ी देर के बाद बच्चे ने आकर दरवाजा खोला।

"पिता......जी... ...कुलफी खाने जाना है न?" उसने भरे लहजे में पूछा।

ऊपर चल, ऊपर....मैंने कहा।

बच्चा उदास सा होकर आगे चल पड़ा। चारपाई पर बैठकर बच्चे को गोद मे लेकर मैंने प्यार से कहा, "अब रात हो गयी है, कुलफी कल खायेंगे।"

हताश होकर बच्चा चुप हो गया। कितनी देर आकाश की ओर देखते हुए कुछ सोचता रहा। फिर कहने लगा, "पिता.......जी, तारे रुपये होते है न। बड़ा वीर भाई कहता था कि तारे रुपये होते है और पिताजी हमारी छत पर बरस क्यों नहीं पड़ते?"

मैंने यह कहकर कि "तारे रुपये नहीं होते" मानों उसके स्वर्ग को गिरा दिया हो। वह चारपाई पर लेट गया और आसमान की ओर देखता आखिर सो ही गया।

दूसरे दिन काम पर मैं अपने साथियों से कुछ मांगने की कोशिश करता रहा परन्तु साहस नहीं होता था। माँगना भी बहुत ही कठिन काम है। मृत्यु जितना दुःख होता है माँगने में।

आखिर एक साथी से तीन रुपये ले ही लिये। जब घर आया तो बच्चा दोपहर की नीद सो रहा था। रोटी खिलाते हुए श्रीमतीजी ने तीन रुपये ठग लिये। आधा मन लकड़ियाँ, शाम की सब्जी, नमक, तेल आदि में ही बच्चे के जागने से पहले ही तीन रुपये खतम हो गये। मैंने कहा भी कि बेटे को कुलफी खिलानी है पर उन्होंने कह दिया, बड़ा उसे याद रहगा। मैं टक्का (तीन नये पैसे) दे दूंगी मुरमुरे के लिए।........

बच्चे ने जागते ही कुलफी माँगी। शार-शराबा होने गया। कलवाला मुरमुरा और टक्का मंजूर नही थे। आखिर शाम को कुलफी खिलाने का वायदा करके छुटकारा हुआ और बच्चे ने टक्का मेरे पास जमा कर दिया। साय से पूर्व ही मैं खेलने जाने का बहाना करके घर से निकल गया और काफी रात बीत वापिस आया। बच्चे को सोया देखकर साँस मे साँस आई। रोटी खिलाते श्रीमती ने बताया कि लाड़ला बड़ी देर तक आपका इन्तजार करता रहा है। मै बच्चे के साथ सोने के लिए लेटा परन्तु बहुत बेचैन रहा। नीद आती ही नहीं थी, परन्तु आखिर पता नही कब आ गई। नीद तो कहते है काँटो पर भी आ जाती है।

आधी रात के बाद का समय था। बच्चा कुछ सोते हुए बेचैन प्रतीत होता था। उसने दो-तीन बार पेट पर लाते मारी थी। अब उसने बाजू उलटाकर मेरे मुँह पर दे मारी। जागा तो मै आगे ही हुआ था, अब चेतन हो गया। बच्चा कुछ बुड़बुड़ाया। मुझे कुछ पता लगा। वह फिर ऊँची से बुड़बुड़ाया, "कुलफी, पिता....जी, कुलफी।" मै विह्वल हो उठा। "सरदारजी, जागते हो" श्रीमतीजी ने कहा, और यह जानकर कि मै जागता हूँ, उसने बात जारी रखते हुए कहा "देखो न सोया हुआ भी कुलफियाँ माँगता है।" मुझ पर मानो बिजली गिर गयी हो। मै चुप रहा और बच्चा भी चुप हो गया।

सवेरे उठकर बच्चे ने कुलफी की माँग न की। मेरे काम से वापिस आ जाने पर भी उसने मुझसे कुछ न माँगा। रोटी खाकर मैं दोपहर में सोने के लिए लेट गया। उस

चुभने वाली चटाई पर और उधार न ले सकने की असफलता पर अफसोस करता रहा। फिर मुझे नींद आ गयी। मेरी नींद अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि गली में किसी कुलफी वाले ने आवाज लगाई, "ठंडी ठार कुलफी, मजेदार कुलफ़ी।" मैं जाग पड़ा। बच्चा मेरे पास रबड़ की फटी हुई बत्तख के साथ खेल रहा था। दूसरी आवाज पर उसके कान खड़े हो गये। बत्तख को फेंक कर वह उठ ख़ड़ा हुआ। दरवाजे के पास जाकर वह खड़ा होकर बाहर देखने लगा। मैंने सोचा, अब मुझे जगाने आयेगा परन्तु वह वहीं खड़ा रहा। फिर वह बाहर चल पड़ा। मैं चुपके से उसके पीछे चलते हुए दरवाजे की ओट में आ खड़ा हुआ। कुलफी वाला सामने शाहजी के लड़के को कुलफी निकाल कर देने मे लगा हुआ था। यह लड़का गली का "बुली" था। अपने से छोटे लड़कों को हमेशा पीटा करता था। यह कोई आठ वर्ष का था। बच्चा सिपाहियों की तरह टाँगें फैलाकर पीठ पीछे हाथ मिलाकर खड़ा था। कुलफी की ओर वह ध्यान से देख रहा था। परन्तु उसने उस वेचने-वाले से कुलफी नहीं माँगी थी। जैसे ही कुलफी-वाले ने शाहजी के लड़के के हाथ में कुलफी की पलेट रखी, बच्चा क्रोध में उसे मारने के लिए दौड़ा। वह पलेट गिर गई कुलफी फलूदा और चम्मच और नाली में जा गिरा शाहजी का लड़का। किसी विजयी की तरह बच्चा उसकी तरफ देखता रहा। शाहजी का लड़का गुस्सा खाकर उठा....कुलफी का नुकसान और अपनी हीनता उसे जैसे नया जोश दे रही थी। जैसे ही वह उठा, बच्चे ने फिर उसे एक ऐसी ठोकर मारी कि वह फिर नाली में जा गिरा और चीत्कार करने लगा। कुलफीवाला बच्चे को थप्पड़ मारने के लिए आगे बढ़ा ही था कि मैंने भागकर बच्चे को उठा लिया। कुलफी वाले ने शाहजी के लड़के को उठा लिया। सेठानी जो किसी का कोई उलाहना नहीं सुनती थी, आज हमें उलाहना देने आई। बच्चे का शरीर गरम हो रहा था। श्रीमती बच्चे को गाली निकालते हुए कहने लगीं, "आ तूं लगा है अब उलाहने लाने?" और मारने के लिए चपत उठाई। मैंने कहा, कुछ प्रसाद बाँटो, कायर पिता के घर बहादुर लड़के ने जन्म लिया है।*

* "सभतंग" नामक कहानी संग्रह से मूल लेखक की अनुमति से साभार अनूदित की गई।

हृदय में फूल खिले

डा० कमलाकान्त 'हीरक'

अच्छत औ रोरी को
तुलसी के चौरा पर
धीरे से बिखराकर
आँचर से ढाँप
जला दीपों की पाँति
सगुन सोच रही।

आँगन के पार, द्वार
दौड़ गयी बिन पूछे
नयनों की दृष्टि,
याद सपना कर भोर का
पाती की पाँति पाँति
मन ही मन बाँच रही।

पिछले सब दर्द धुले
आहट पा चरणों की,
हिरदय में फूल खिले
साँसों से झरे,
मोह-मेघों की पाँति
हँसी अधरों पर नाच रही।
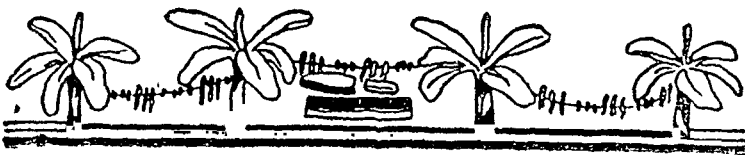
महादेई की साध

श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी

गोधूली का समय था। घण्टियों की टन-टन करती हुई गायें चली आ रही थीं। सूर्य डूब रहा था। धूल ऊपर उठ रही थी। कहीं-कहीं धूल के पीछे से डूबते सूर्य की किरणें चमक रही थीं। गाय बिस्सू लम्बर ने थान पै बाँध दी। कुएँ से पानी खींचकर गाय के सामने रख दिया। गाय की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। बिस्सू दूसरी बाल्टी खींचने चला—"बहुत प्यासी है।"

"आख़िर दिन भर की प्यासी होगी" बिस्सू की घर-वाली महादेई ने कहा।'

बिस्सू बोला—"अरी ओ, थोड़ा चारा तो डाल दे साँवरी के सामने।"

"चारा तो नहीं रहा, कुटी थोड़ी पड़ी होगी, लाये देती हूँ।" कुछ क्षण रुककर—"अरी, रमचन्दा की! ओ रमचन्दा की। थोड़ी कुटी पड़ी होगी, डाल जा।"

"अरी, तू क्यूँ न उठा लाये?' बिस्सू ने कहा।

"दिन भर हो जाता है घर के धन्धों में लगे। ले आयगी। बहुएँ होती ही काहे को हैं।' महादेई ने कहा।

"रहने दे बहू! कहा तुझसे और टाल दिया बहू पर।। ऐसी बूढ़ी हो गई चार बच्चों पर ही।" बिस्सू ने कहा और अपनी बाहुओं को देखा और हाथ फेरा—"अभी निबल नहीं।"

बिस्सू कुटी भर लाया। महादेई ने कहा—"तुम क्यों निबल होगे लने। निबल तो जनी होती हैं।"

'तुम भी कुछ निबल नहीं, मगर ठसक है बेटों-बहुओं की।" बिस्सू ने उसका मर्म छू लिया।

"ठसक काहे की, अपने बहू-बेटे हैं, जुग-जुग जिएँ!" महादेई ने जब कहा तो गला भर आया—"ईश्वर ने बेटी नहीं दी। बिना कन्यादान के मुक्ति नहीं होतो।"

"तो कहाँ से हो कन्यादान? कन्या नहीं तो क्या, बेटे तो हैं। बिना सन्तान तो नहीं हो' बिस्सू ने कहा।"

"हाँ, पर बेटी भी तो होनी चाहिये।"

"ये तृष्णा तो संसार में बनी ही रहती है।"

"तृष्णा मत कहो, गुबिन्दा के बाप! एक बेटी तो मिलनी ही चाहिए थी।"

"हमारे चाहने से क्या होता है। ईसुर को जो मंज़ूर होता है वही होता है।"

"हाँ ये तो हैंई" कुछ क्षण गला साफ करके बोली—"गोदान और कन्यादान तो भौ-सागर से तरने की किस्ती हैंई।",

बिस्सू ने दूध दुहते हुए कहा—"हूँ, ऊँ, सो तो हैंई।"

"जब मैं मरूँ तो गाय तो दान करा देना मेरे हाथों" महादेई ने जरा जोर लगाकर कहा।

"अभी मरने की क्यों मनाती है" बिस्सू ने महादेई की ठोड़ी पकड़कर कहा—"स्यात, भगवान् सुन ही लें।"

महादेई ने बिस्सू का हाथ झटके के साथ अलग किया—"अलग हो जाओ। कोई देखेगा तो क्या कहेगा।"

(२)

कई वर्ष बाद

..बिस्सू लम्बर चारपाई पर लेटा था। सोच रहा था घर की समस्याएँ। घर का पुरखा वही था। सबसे बड़े बेटे रम-चन्दा को आते देख, बुलाया—"रमचन्दा। बेटा कहीं बात पक्की हुई? कोई लड़का देखा रमदेई के लिए।"

"देख रहा हूँ, दादा, कोई मिले तो। उतने पैसे भी तो नहीं। कैसे होगी शादी यही सोचता हूँ।"

"संसार के सब काम होते हैं। बेटा! लड़कियाँ, क्वारी तो नहीं रहतीं। पीले हाथ तो सभी के होते हैं। अधीर न हो बेटा।"

"तीन साल हो गये, तलाश करते। पीले हाथ हो जायें तो गंगा नहा आऊँ।"

पौर की आवाज अन्दर तक आ रही थी। महादेई भी आ गई—"हाँ, हाथ पीले हो जायें तब चैन आये। हुई कहीं बात ठीक बेटा?"

"नहीं, माँ! बिना रुपये के कोई काम नहीं होता। वर वाले भी घर देखते हैं और पैसा...." एक क्षण रुककर—और यहाँ दोनों जून का खाना मुश्किल हो रहा है।"

इतने ही में गोविन्दा और जगतू भी आ गये। महादेई जैसे सोते से जगाकर बोली—"आओ बेटा, ये बातें रोज सोचने की नहीं। अख़िर जवान बेटी घर में बैठी है। तेरा भाई ही तो है। कुछ तुम्हारा भी फर्ज है।

क्यों नहीं, माँ ! हम भी कुछ ज्यादा तो नहीं कमा पाते और फिर हमारी भी वेटियाँ हैं। आज नहीं तो कल हमें भी शादियाँ करनी हैं।

"वो तो ठीक है, वेटा । चार आदमी जिसके सव काम कर लेते हैं, अकेले कोई काम नही होता !" विस्सू लम्वर ने कहा ।

"अगर मैं कर सकता तो तुमसे नहीं कहता । अड़े-भिड़े पै अपने ही काम आते हैं ! और फिर थोड़ा-थोड़ा कर चुका दूंगा ।"

'नही, भैया, हम इतने कमजोर नहीं जो किसी के सामने जवान डालें" गोविन्दा ने कहा और जगतू ने हामी भरी ।

"निनुआँ अभी नही आया ! भौजी से ही पूछ ले माँ ।" जगतू ने कहा ।

निनुआँ की वहू साग छील रही थी। सब सुन रही थी ! सास को देखते ही उसने कहा--"हम क्या किसी से अलग है ...!"

यह सुनकर महादेई पौर में आ गयी और वोली—'वो तुम्हारे साथ है, अलग नहीं। जवान वेटी है, चौदह साल की । अब जल्दी उसके पीले हाथ कर दो, वेटा ।"

(३)

आखिर विवाह किसी तरह पक्का हो ही गया था। बारात आ गयी थो और चढ़ चुकी थी। बाराती डेरे में थे। अगहन का महीना था। कुछ बाराती अगिहाने पर हाथ ताप रहे थे। कुछ अपने विस्तरों में ही कुनमुना रहे थे। उधर मण्डप के नीचे विवाह की रस्में हो रही थीं। रामदेई की माँ ने सुवह से कुछ न खाया था। महादेई ने भी उपवास रक्खा था।

कन्यादान का समय आ गया था। महिलाओं की आँखें भीग गई थीं। वातावरण मौन था। पुरोहित की हल्की आवाज के अतिरिक्त 'चूं' भी नहीं। रात के सन्नाटे में हर धीमा शब्द भी सुनाई दे जाता था। चारों बहुएँ कभी कोठे में घुसती, कभी वाहर निकलतीं। कोठे में से एक गुनगुनाहट की आवाज आई–"वो पहले ही वैठी है मैं क्या करूँगी जाकर ?"

"नहीं, नहीं, आपका हक है आप बड़ी हैं। आप ही लेंगी, कन्यादान ।"

मण्डप के पास वैठी महिलाएँ समझ गयी थीं। कुछ बोली नहीं। अब बेटी पराई हो जायगी। अब तक अपनी थी। औरत भी क्या है जिसे दान कर दिया जाता है ! और स्त्रियाँ सिसक उठीं। फिर आवाज आई—"रुपया सवका लगा है, उसका अकेला नही।"

"उसे ही ले लेने दे कन्यादान, देखूँ, कैसे लेती है ?"

"नहीं भौजी, सबका हक बरावर है, पर ये तो आपका हक है।"

लम्बरदार ने ये सब सुना। उससे नहीं रहा गया और वह आकर वोला–"क्यों तू बहू के पीछे पड़ी है। लेने दे उसे ! उसका हक है। बेटी की माँ है।"

"ले कन्यादान, बहू। सभी की रकम लगी है, सबका हक है। कैसे लेगी वह। मैं लूंगी कन्यादान ।'

'तेरी तो मती मारी गई है।'

'हाँ, हाँ, मारी गई है तुम्हें क्या तुम जाओ वैठो।'

जगतू की वहू, रामदेई की माँ के पास पहुँची। रामदेई की माँ रो रही थी। वह चाहती थी कि कन्यादान मैं लूँ फिर जाने मरे कि जिये। पास ही वारात का डेरा था। वहाँ भी जागरण हो गया था, चहल-पहल सुनकर।

महादेई उठी और पौर में पहुँची। विस्सू लम्बर चारपाई पर माथे पर हाथ धरे वैठा था ।

'क्या कहते हो ?' महादेई ने कहा।

'मैं क्या कहता हूँ ! वेकार का झगड़ा उठा रक्खा है। बराती सुन रहे होंगे। सब जाग गये हैं, तुम्हारा चरित्र सुनकर।'

'जाग गये हैं तो जाग जायँ। ये तो घर के बासन है, खटकते ही हैं। क्या उनके घर कभी झगड़ा नही होता होगा ?'

'अच्छा भाई, मैं कुछ नही कह रहा। तुम्हें दीखे सो करो।' विस्सू ने एक साँस लेकर कहा।

'कन्यादान के लिये आदमी तरसता है। दूसरे की वेटियों तक की शादी करके लोग कन्यादान लेते हैं। ये तो अपनी ही नातिन है। कव से तरसते यह मौका आया है। दिन भर हो गया भूखे।'

'वेटी तो अपनी ही होनी चाहिए।'

'न हो तो क्या, बस। वड़े-वड़े सेठ-साहूकार दूसरो की वेटियों का व्याह करके कन्यादान लेते है। कन्यादान मैं लूंगी। मैं घर की वड़ी हूँ।'

पौर की सब आवाज आँगन में पहुँच रही थी। जगतू की बहू, रामदेई की माँ को समझा रही थी—'रहने दे बहिन, जिन्दगी भर को कलेस हो जायगा। जीना भी मुश्किल हो जायगा। जाने दे···।'

रामदेई की माँ रो रही थी—'मुश्किल से तो ये दिन आया है, बेटी के कन्यादान का।'

'छोटी बेटी का ले लेना।'

'तीन साल तलाश करने के बाद तुम सबकी मदद से ये शादी हो रही है। मेरा अकेला क्या बूता था। कौन लेता मेरी बेटी को। कौन जाने छोटी के ब्याह की····।'

जगतू की बहू के भी आँसू आ गये थे। वह भी सिसक उठी—'अब तो मान जाओ बहिन; नहीं तो जिन्दगी भर ताने सुनने पड़ेंगे। दोनों लालाओं की बहुएँ कह रही हैं कि हमारा सबका रुपया लगा है। उसका क्या हक है। मुझे भी हाँ मे हाँ मिलानी पड़ती है। उठो, बहिन, हठ न करो।'

इतने ही में महादेई आ गई। जगतू की बहू का हाथ पकड़ के धकेल दिया—'तू यहाँ क्या समझाने आई है, करने दे उसे। छोटी की शादी जाने हुई कि न हुई।

सब महिलाओं की निगाहें उधर खिंच गई। चारों बेटे एक ओर बैठे थे। जगतू उठा और वहाँ आया—क्या बात है माँ, तू ही ले ले। ऊधम क्यो मचा रक्खा है। चल भौजी उठ यहाँ से। अभी किसनियाँ भी तो है।'

'उसका ब्याह जाने हो कि न हो जगतू ?'

बिटियाँ क्वारी भी रही हैं, कहो ? और कहीं तो हर्द का टीका हो जाता है। कुछ रुककर—'तू क्यों उठाता है, उसे लेने दे। जिसका हक है वह लेगा नहीं।'

रामदेई की माँ सुनते-सुनते थक गई थी। रो रही थी, वह उठी और एक कोने मे बैठ गई।

'क्यों उठती है बहू तेरा ही हक है, तेरी ही बेटी है, तू ही ले। मैं तो ये चली।' और वह कोठे की ओर चली।

जगतू ने माँ का हाथ पकड़ के खींचा—'झगड़ा मचा रक्खा है। सारा घर उठा लिया है और अब कहती है—मैं तो चली! लो कन्यादान।'

होता विश्वास नहीं

प्रो० रामस्वरूप खरे

नभ का उड़ना छोड़ विहग जब धरती पर उतरा—
क्षमता है उड़ने की, पर होता विश्वास नहीं!
यह सच है स्वप्निल चित्रों में मन रम जाता है।
दूरी के रहने पर आकर्षण बढ़ जाता है॥
हर अनबोली बात अश्रु बहकर कह जाता है।
आशा के मधुमय प्रवाह में जन बह जाता॥
हाथ थामने पर कोई अपना बन जायेगा—
यह हर भटके राही को, होता आभास नहीं!
कोई लहर कभी सागर का तट छू आती है।
कभी अश्रु-स्नाता की भी छवि मन भा जाती है॥
कभी किसी की सुधि-चपला उर-नभ छा जाती है।
और कभी अनदेखी कृति चित्रित हो जाती है॥
कर सोलह श्रृंगार प्रकृति बाला सी हँसती है—
किन्तु सुमन खिलने पर भी, होता मधुमास नहीं।
रूप और यौवन को पाकर फूला कौन नहीं ?
आकर्षण के मृदु झूले पर झूला कौन नहीं ?
पलकों के उत्थान-पतन पर भूला कौन नहीं ?
कंचन की अनुपम आभा पर भूला कौन नहीं ?
सुधा सदा जो पीता आया सिंधु विमंथन कर—
विष-पायी बन जायेगा, होता विश्वास नहीं!

इतने ही में निनुआं, गोविन्दा, रमचन्दा और बिस्सू लम्बर सब आ गये। लम्बर ने कहा—'कलेस कर रक्खा है। अब कहाँ चली ? लेती क्यों नहीं ?'

मण्डप के नीचे चौक पर बैठा दूल्हा कभी-कभी ऊँघ जाता था। रामदेई सिसक रही थी। आधी रात बीत चुकी थी। क्षितिज पर सफेदी थोड़ी आने लगी थी, सुबह करीब होने ही वाली थी।

महादेई लौट आई। रामदेई के हाथ पीले किये और अपनी साध पूरी की।

धार्मिक सिद्धान्तों पर वैज्ञानिक प्रयोग—सम्पादक श्री कुबेरप्रसाद गुप्त, प्रकाशक मानस साधना मण्डल, लखनऊ।

और जो कुछ भी हो पुस्तक का विषय ऐसा है जिसकी कि नितान्त आवश्यकता है। यदि धार्मिक सिद्धान्तों पर वैज्ञानिक प्रयोग होने लग जायँ और उनके फलस्वरूप धार्मिक सिद्धान्तों को थोड़ा-बहुत भी समर्थन मिले तो इन सिद्धान्तों पर से जो आस्था उठती जा रही है वह फिर से लौट आये। केवल अनास्था आस्था में ही परिवर्तित नहीं हो जायगी, वरन् जो आस्था बनेगी वह इतनी दृढ़ होगी। बहुत से प्राणी जो जिज्ञासु हैं और आस्था व अनास्था के बीच में लटके हुए हैं उनको भी एक किनारा मिल जायगा। इस प्रकार पुस्तक का विषय, अत्यन्त आधुनिक और समय की पुकार के अनुकूल है। यदि इस विषय पर अधिक अनुसन्धान हो और विषय पर उचित प्रकाश डालती हुई और पुस्तकें प्रकाशित हों तो अवश्य ही देश और मानव-समाज दोनों की ही सेवा हो।

ऐसे विषय में दृष्टान्तों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक के अन्त में भी अनेक दृष्टान्त दिये गये है जिनमें लोगों ने भोजन विधि में कई प्रकार के परिवर्तन किये और उनको उनसे लाभ भी हुआ। वे दृष्टान्त कोरी कल्पनाएँ न मान ली जायँ इसलिए जिनके दृष्टान्त दिये गये हैं उनके पूरे पते व चित्र भी दिये गये है।

पुस्तक में जिस धार्मिक सिद्धान्त को लेकर परीक्षण किया गया है वह है 'व्रत'। स्थान-स्थान पर शिविर स्थापन करके यह स्थापना की गयी हे कि आधुनिक जगत् मे भोजन और भोजन के पौष्टिक गुणों की जो इतनी अधिक व्याख्या की गयी है वह अपनी जगह पर जो कुछ भी स्थान रखती हो; फिर भी ऐसा नहीं है कि उस भोजन के न करने या व्रत करने से जीवन-शक्ति मे कोई कमी आती हो। व्रत करके तथा केवल जल प्राप्त करके भी प्राणी दैनिक कार्यो को बिना किसी थकान का आभास किये ही कर सकता है इस दैनिक कार्य में शारीरिक श्रम खेती आदि के काम भी शामिल है।

ऐसा ही एक शिविर मानस साधना मंडल ने उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथदासजी के आमन्त्रण पर लखनऊ के राजभवन में आयोजित किया था। पुस्तक में उसकी सफलता के कई प्रमाण दिये गये हैं। निष्कर्ष यह निकाला गया है कि भोजन शरीर-निर्माता है, शरीर को जीवनी शक्तिदायक नही है। शरीर की जीवन-शक्ति उस पर निर्भर नही है, वह जीवन-शक्ति द्वारा पचाया जाता है। पुस्तक का दावा है कि कई रोगों का इलाज यह मडल इस रूप मे कर चुका है। पुस्तक एक बार भोजन के सम्बन्ध मे रूढ़ि मान्यताओ पर फिर से विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

स्वदेश चिन्तन—लेखक डा० पु० ग० सहस्रबुधे। राष्ट्र-धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ।

यह पुस्तक डाक्टर पु० ग० सहस्रबुधे के अंग्रेजी में लिखे सात लेखों का हिन्दी अनुवाद है। सुन्दर अनुवाद क्या होता है, इसका यह पुस्तक जीता-जागता उदाहरण है। इतनी सरस, सुबोध, सहज और प्रवाहपूर्ण भाषा है कि पढ़ने में बहुत आनन्द आता है। अग्रेजी मे लिखे लेख अवश्य ही बड़े आकर्षक होंगे जो उनका हिन्दी अनुवाद इतना आकर्षक बन सका हे।

ये लेख अत्यन्त विचारोत्तेजक है। लेखक का विश्लेषण असाधारण है, और जिस निष्कर्ष पर वे पहुँचते है वे इतने तर्कसगत है कि उनको अस्वीकार कर देना सहसा सहज नही है। भारतीय समस्याओ पर और भारतीय दुर्बलताओं पर निःसंकोच प्रकाश डाला गया है। इन लेखों की बातो का यदि दशांश भी हम जीवन मे उतार सकें तो भारत जगत् को चुनाती देनेवाला राष्ट्र बन सकता है। उपयुक्त ऐतिहासिक उदाहरण लेखों को गहनता प्रदान करते है, और यह दिखाते है कि कितने अध्ययन और चिन्तन के बाद ये लेख लिखे गये है। एक लेख के पढ़ने के पश्चात् जब उसका निष्कर्ष सम्मुख आता है तब वह अचूक प्रभाव डालता है। जीवननिष्ठा नामक लेख मे से एक उदाहरण अकित है।

"व्रतबद्ध, नियमबद्ध जीवन का उपहास करने की अपने यहाँ परिपाटी है। प्राचीन काल के अर्थशून्य और पोंगापंथी व्रतादि ही इस उपहास के जनक हैं। परन्तु इन

अर्थहीन बन्धनों का उपहास करते समय हम जीवन के सभी बन्धनों का उपहास करते हैं—इस बात का विवेक भी खो बैठे हैं और परिणामस्वरूप हमारा कौटुम्बिक जीवन, शालेय जीवन, सार्वजनिक जीवन विशृंखल हो गया है। उसमें से तपस्या उठ गयी है।''

'समुत्कर्ष प्राप्ति की राज्यविद्या' लेख का एक वाक्य है : 'राणा ने साथ भोजन नहीं किया, इस व्यक्तिगत अपमान की इतनी तीव्र अनुभूति करनेवाले मानसिंह को—स्वकुल की स्त्रियाँ अकबर के यहाँ भेजते, मुगलों की दासता स्वीकार करते तथा रात-दिन मुगलों के सम्मुख नतमस्तक होते—अपमान की अनुभूति नहीं हुई। क्या यह अपमान नहीं था?'

ये सभी लेख स्वदेश की अवस्था पर विचार करके लिखे गये हैं। अतः इस पुस्तक का नाम स्वदेशचिंतन है। आजकल पाठ्यक्रम के लिए नयी-नयी पुस्तकों की खोज होती है। खोज न भी हो तो कम से कम खोज की बात होती है। इस पुस्तक के लेख ऐसे हैं जिनमें से कम से कम एक लेख प्रत्येक उच्च कक्षा में अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए। ये लेख विद्यार्थियों के उचित चरित्र-निर्माण में सहायक होंगे।

अन्तिम दो अध्यायों में कार्ल मार्क्स के विचारों और सिद्धान्तों का ऐसा तर्कपूर्ण विवेचन किया गया है कि कम्युनिस्टों के तत्वज्ञान की अवैज्ञानिकता, असङ्गतता और पोथीवादी परम्पराओं का सम्मोहन अपने आप हट जाता है और वास्तविकता प्रगट हो जाती है। यहाँ पुस्तक के भिन्न-भिन्न लेखों से कुछ भाग उद्धृत हैं—

'प्रमुख रूप से मार्क्स तथा फ्रायड इस दूसरे अनर्थयुग के प्रणेता हैं। अपराधी को अपराध के उत्तरदायित्व से मुक्त करनेवाला दूसरा मनोविज्ञान का सम्प्रदाय 'फ्रायडवाद' है। आज अमरीकी माता अपने बालक को दंड देने का साहस नहीं कर सकती। यदि दंड देती है तो मध्ययुगीन विक्टोरिया के जमाने की कहलाती है। इन उदाहरणों के द्वारा जेन ब्रेड बताती हैं कि फ्रायड का मानस शास्त्र ही अमरीकी माता-पिता की दुर्बलता का कारण है।'

'आज भारत मे किसी पर भी उत्तरदायित्व नहीं है। आज भारत में घोर अनर्थकारी प्रसङ्ग प्रस्तुत हैं, परन्तु उनके लिए उत्तरदायी कोई नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति 'समाज से पूछिये' कहकर अपना पिण्ड छुड़ाता है। आत्म-स्वातन्त्र्य का महत्त्व ध्यान में आते ही 'इसके लिए मैं जिम्मेदार हूँ', 'मुझसे पूछिए' कहने की दृढ़ता निर्माण होगी। उत्तरदायित्व की अनुभूति और आत्मस्वातंत्र्य का प्रादुर्भाव ही राष्ट्र की समृद्धि का मूलमंत्र है।'

'विद्याजीवी व बुद्धिजीवी वर्ग को तो मार्क्स ने पानी पी-पीकर कोसा है। बुद्धिजीवी याने मजदूर-क्रांति का पक्का दुश्मन, पूँजीपतियों का पिट्ठू और प्रस्थापित शासन का क्रीतदास आदि बातें कम्युनिस्टों के मुख से अनेक बार सुनने को मिली हैं। पूँजीपति और मजदूरों को छोड़कर सभी वर्ग नष्ट होनेवाले हैं, इस प्रकार की भविष्यवाणी मार्क्स ने की है। इस बात का उल्लेख पहले भी कर चुके हैं। आशय यह कि मध्य वर्ग भी नष्ट होनेवाला है। मार्क्स की इस शाप वाणी का इस वर्ग पर जरा-सा भी परिणाम नहीं हुआ, इसके विपरीत जिस समय वह नाम शेष होना चाहिए था, उस समय यह वर्ग अत्यन्त शक्तिशाली व प्रभावशाली बना।'

जीवन साहित्य का वैष्णव जन अंक—सम्पादक पंडित हरिभाऊ उपाध्याय और श्री यशपाल जैन। प्रकाशक; सस्ता साहित्य मंडल, कनाट प्लेस नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या १०६ मूल्य, इस अंक का रु० २.५० पैसे।

'जीवन साहित्य' का जन्म गाँधीवाद के प्रभाव से हुआ था, और आज भी वह अपने को 'अहिंसक नवरचना का मासिक' बतलाता है। महात्मा जी की जन्मशती के वर्ष में उसका विशेषांक निकालना स्वाभाविक है। किंतु विशेष महत्त्व की बात यह है कि यह अंक ''वैष्णवजन अंक'' है। महात्मा जी के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रचनात्मक कार्यकलापों और विचारों पर नित्य ही साहित्य निकल रहा है। किन्तु महात्माजी इन विभिन्न क्षेत्रों में जो काम करते थे उनका उद्देश्य 'व्यक्ति का सुख और विकास था। और, वे व्यक्ति को कैसा बनाना चाहते थे? उनकी कल्पना के मनुष्य का वर्णन नरसी मेहता ने 'वैष्णवजन तो तेणे कहिये नामक अपने अमर गीत में पहले ही से कर रखा था। नरसी द्वारा परिभाषित, वैष्णवजन' बापू का आदर्श व्यक्ति—आदर्श नागरिक—था 'जीवनसाहित्य' बापू का इस विषय पर इस अंक के द्वारा मानों बापू की सारी शिक्षाओं और उपदेशों का सार निकाल कर जनता के सामने रख दिया है।

इस अंक में छोटे-बड़े मिला कर ३ लेख हैं। इनमें पुराने लेखों का भी अच्छा अनुपात है जो स्वय महात्माजी चन्द्रबली, राजगोपालाचारी, महादेव देसाई, अरविन्द घोष, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि के हैं। पुराने होने पर भी इनका सामयिक महत्त्व है। अंक के लिए जो लेख विशेषरूप से लिखवाये गये मालूम होते हैं उन्हें काका कालेलकर उमाशंकर जोशी, मदालसा नारायण, और स्वयं सम्पादक श्री हरिभाऊजी के लेख विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। श्री विष्णु प्रभाकर का 'वैष्णवजन' नामक रूपक बड़ा हृदय स्पर्शी है। सब मिलाकर यह नये पुराने लेखों का महत्वपूर्ण संग्रह बन गया है और गाँधीजी के विचारों और दर्शन को समझने में सहायक है।

इस अंक का आकार बहुत बड़ा नहीं है। चित्र भी नहीं है। पचास वर्षों के अधिकतस लेखों के अतिरिक्त विज्ञापन भी हैं; फिर भी इसका मूल्य ढाई रुपया है। यह 'सस्ता साहित्य मंडल' के अनुरूप नहीं है।

मनोरंजक संस्मरण

१—गुलाबी राय

यह संस्मरण आगरे के साहित्याचार्य श्री मदनमोहन 'उपेन्द्र' ने भेजने की कृपा की है :—

सेण्टजॉन्स कालिज आगरे का मैं विद्यार्थी था। उन दिनों वहाँ बाबू गुलाबरायजी हमारे हिन्दी के प्रोफेसर थे। एक दिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के प्रसिद्ध निबन्ध-संग्रह 'चिन्तामणि' की चर्चा हो रही थी। उसके निबन्धों की आलोचना से आरम्भ होकर बात धीरे-धीरे शुक्लजी के व्यक्तित्व पर आ गयी। शुक्लजी ऊपर से बड़े गम्भीर मालूम होते थे। हँसते बहुत कम थे। उनकी मुसकुराहट भी उनकी घनी मूँछों में छिप जाती थी और लोगों को दिखाई नहीं पड़ती थी। वे बोलते भी बहुत कम थे। किंतु उनका स्वभाव विनोदी था और जब कभी बड़ी गम्भीर मुद्रा में गहरा विनोद कर बैठते थे। गुलाबरायजी ने बतलाया कि एक बार सम्मेलन में किसी गम्भीर विषय पर विचार-विनिमय हो रहा था। उस समय के प्रमुख विद्वान् उसमें भाग ले रहे थे। शुक्लजी अध्यक्ष थे। जब कई विद्वान् बोल चुके और वातावरण काफी गम्भीर था तब एकाएक उन्होने कहा—'आपने अनेक विद्वानों के विचार सुने। अब इस विषय पर भारत के प्रमुख पुष्प की राय भी सुनिए।' इतना कहकर उन्होने मेरी ओर इंगित किया। मेरे नाम 'गुलाब-राय' का यह श्लेष सुनकर सभी लोग हँस पड़े और सबकी निगाहें मुझ पर केन्द्रित हो गयी। संकोच के मारे मुझे उठ कर बोलना कठिन हो गया।

बाबू गुलाबरायजी को जो लोग जानते थे और जो उनके संकोचशील स्वभाव से परिचित थे वे उस समय की उनकी स्थिति की कल्पना कर सकते है।

२—अभी और मश्क कीजिए

बाबू गुलाबरायजी ने एक बार अपना एक अनुभव बड़े गर्व से सुनाया था। उन दिनों वे छतरपुर पहुँचे ही थे और उन्होंने लिखना आरम्भ ही किया था। उस युग में हिन्दी को सर्वोत्तम पत्रिका 'सरस्वती' थी और उसके सम्पादक आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की हिन्दी जगत् में बड़ी धाक थी। उस समय के हिन्दी लेखकों की अभिलाषा यही रहती थी कि सरस्वती में उनका लेख छप जाय। उसमें लेख छपना मानों हिन्दी संसार में मान्यता मिल जाना था। उस युग में हिन्दी मे लिखनेवाले अपेक्षाकृत बहुत कम थे। द्विवेदीजी होनहार प्रतिभाशाली युवकों से लेख लिखवाते और उन्हें अच्छी तरह सुधारकर प्रकाशित कर देते थे। कभी-कभी तो वे उसे एकदम नये सिरे से लिख देते थे और वह इतना बदल जाता था कि लेखक भी अपनी कृति को पहचान नहीं सकता था। बाबू गुलाबरायजी की भी सरस्वती में लेख छपवाने की इच्छा हुई और उन्होने बड़े परिश्रम से एक लेख लिखकर द्विवेदीजी की सेवा में भेज दिया। किंतु न मालूम क्यों द्विवेदीजी ने उसे स्वीकार नहीं किया। शायद उस दिन किसी कारण से उन्हें झुँझलाहट हो गयी थी। उन्होने उस लेख पर इतना लिख कर लौटा दिया—'अभी और मश्क कीजिए।' किंतु आश्चर्य यह कि गुलाबरायजी इससे हतोत्साहित नहीं हुए। उन्हें इस बात की प्रसन्नता हुई कि द्विवेदीजी ने उनका लेख पढ़ा और अपने हाथ से यह उपदेश लिख भेजा। उन्होंने द्विवेदीजी की सीख मान कर सचमुच 'मश्क' की, और उसका जो परिणाम हुआ वह गुलाबरायजी की बाद की कृतियो से स्पष्ट है। द्विवेदीजी का वह झुँझलाहट भरा वाक्य गुलाबरायजी का पथ-प्रदर्शक बन गया।

किन्तु यदि आज कोई सम्पादक किसी नवोदित साहित्यकार पर इससे आधी भी कड़ी सम्मति देने का साहस करे तो क्या हो ? पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष शुरू हो जाय।

अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन

(Walt Whitman)

पूर्णसिंह

अमेरिका के लम्बे-लम्बे हरे देवदारों के घने वन में वह कौन फिर रहा है ? कभी यहाँ टहलता है कभी वहाँ गाता है।

एक लम्बा ऊँचा वृद्ध युवक, मिट्टी गारे से लिप्त, मोटे वस्त्र का पतलून और कोट पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव और नंगे ही दिल अपनी तिनकों की टोपी मस्ती में उछालता, झूमता जा रहा है। मौज आती है तो घास पर लेट जाता है। कभी नाचता कभी चीखता और कभी भागता है। मार्ग में पशुओं को हरे तृण का बोझ उड़ाते देख आनन्द में मग्न हो जाता है। आकाशगामी पक्षियों के उड़ान को देख हर्ष में प्रफुल्लित हो जाता है। जब कभी उसे परोपकार की सूझती है तब वह गोल गोल श्वेत शिव-शंकरों को उठा उठाकर नदी की तरंगों पर बरसाता है। आज इस वृक्ष के नीचे विश्राम करता है, कल उसके नीचे बैठता है। जीवन के अरण्य में वह धूप और छाँह की तरह विचरता चला जाता है। कभी चलते-चलते अकस्मात ठहर जाता है मानो कोई बात याद आ गयी। बार-बार गर्दन फेर-फेर और नेत्र उठा उठा कर वह सूर्य को ताकता है। सूर्य की सुनहली सोहनी रोशनी पर वह मरता है। समीर की मन्द-मन्द गति के साथ वह नृत्य करता है, मानों सहस्रों वीणायें और सितार उसको पवन के प्रवाह में सुनाई देते हैं। इस प्राकृतिक राग की आँधी के सामने मानुषिक राग, दिनकर के प्रकाश में टिमटिमाती हुई दीप-शिखा के समान तेजोहीन प्रतीत होते हैं। इसके भीतर बाहर कुछ ऐसी मधुरता भरी है कि चंचरीक के समूह के समूह उसके साथ साथ लगे फिरते हैं। उसके हृदय का सहस्रदल ब्रह्म-कमल ऐसा खिला है कि सूर्य और चन्द्र भ्रमरवत उस विकसित कमल के मधु का स्वाद लेने को जाते हैं। बारी-बारी से वे उसमें मस्त होकर बन्द होते हैं और प्रकाश पाकर पुनः बाहर आते हैं।

उस सुन्दर धवल केशधारी वृद्ध के वेश में कहीं न्यागरा* की दूध धारा तो नहीं फिर रही है ? यह मस्त वनदेव कौन है। चलता इस लटक से है मानों यही इस वन का राजा या गन्धर्व है। पत्ता-पत्ता, कली-कली, नली-नली, डाली-डाली, तने-तने को यह ऐसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखता है मानों सब इसीके दिलदार और यार हैं। सामने से वे दो कृषक-महिलाएँ दूध की ठिलियाँ उठाये गाती हुई आती हैं। क्या ही अलौकिक दृश्य है। औरों को तो ये दो अबलायें अस्थि और मांस की पुतलियों ही प्रतीत होती हैं, परंतु हमारे मस्तराम की आश्चर्य भरी आँखों को वे केवल बाँस की पोरियाँ ही दीखती हैं। उसकी निगूढ़ दृष्टि उनसे लड़ी। वे दोनों इस वृद्ध-युवक को आवारा समझ कुछ खफा हुई, कुछ शरमाई और कुछ मुसकराई। उसने उनके मतलब को जान लिया। वह हँसा, खिलखिलाया और सलाम किया। नयनों से कुछ इशारे किये, आँसू बहाये। किसी की प्रशंसा की, कोई याद आया, किसी से हाथ मिलाया और उसे दिल दे दिया। यह दृश्य हमारे मस्त कवि का एक काव्य हुआ।

ये दो खोखले वृक्ष, केश बदल कर और वृद्ध स्त्रियों का रूप बनाकर सामने नजर आये। वे दोनों वृद्धायें हाथ में हाथ मिलाये कुछ अलापती जा रही हैं। उसने जिन दो पूर्व युवतियों, हुस्न की परियों, विकसित कलियों को देख कर अपना काव्य-प्रवाह बहाया था उसी पवित्र काव्य गंगा को वृक्षों के चरणों में ही छोड़ दिया। वह सौन्दर्य का कितना बड़ा पुजारी है। वह हर वस्तु में सुन्दरता ही सुन्दरता देखता है। क्यों नहीं, तत्ववित् है न। उसके अनुभव में आया है कि उसकी एकमात्र प्यारी नाना रूपों में प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक वस्तु सुन्दर है क्या बाँस की लम्बी २ पोरियाँ और क्या वट के खोखले तने। या तो संसार की दृष्टि ही अपूर्ण है, या मेरी ही दृष्टि मदमाती है। उनमें अन्तर अवश्य है। जो आँख हर आँख में अपने ही प्यारे को देखती है वह भला तुम्हारे कला के पैमानों के कारागार में कैसे बन्द हो सकती है। बस सौन्दर्य का सच्चा पुजारी यही है। यह सबको सदा यही सुनाता है —"तुम भले तुम भले"।

अमेरिका के वन में नहीं, जीवन के अरण्य में यह कौन जा रहा है, यह प्रकृति का बंभोला है कौन ? यह वन का शाहदौला है कौन ? यह इतना शरीफ अमीर होकर ऐसा रिन्द फ़क़ीर है कौन ? अमेरिका के वही मूर्ख, तत्त्व हीन, मशीन रूप नरक में यह जीता-जागता ब्रह्मज्ञान रूपी स्वर्ग कौन है ? इसकी उपस्थिति मात्र से मनुष्य की आभ्यन्तरिक अवस्था बदल जाती है। अमेरिका का बहिर्मुख सभ्यता को लात मारकर बिरादरी और बादशाह से बागी होकर, कालीनों को जलाकर महलों में आग लगा कर यह कौन जाड़ा मना रहा है ? प्रभात की फेरी-वाला, जङ्गल का योगी, अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फ़क़ीर वाल्ट ह्विटमैन अपनी काव्य-रचना करता हुआ जा रहा है।

वह कोमल और ऊँचे लंबे और गहरे, स्वरों में एक

* सर्वोत्तम सौन्दर्यपूर्ण दृश्यवाला अमेरिका का एक झरना।

सँदेशा देता जा रहा है। सभ्यता के नगरों से यह योगी जितनी ही दूर होता जाता है उसका स्वर उतना ही गम्भीर होता जाता है।

वास्तव में मनुष्य स्वतंत्रताप्रिय है। किसी प्रकार के दासपन को वह नहीं सह सकता। आजकल अमेरिका में लोग अमीरी से तंग आ गये हैं। उनकी हँसी एक प्रकार की मिस्सी है। जो किसी को मुख दिखाता हुआ झट मल ली। वहाँ घर और वस्त्रों को कफ़न और कब्र बनाकर मनुष्य-जीवन का प्रवाह दबाया जाता है। चमकता हुआ कल्दार ही इस बाह्य जीवन को स्थित रखने का वहाँ खुदा है। जैसे भारतवासी फोटो उतरवाते समय ओठों और मूँछों के कोण और कोटों के किनारे सँभालते हैं उसी तरह आधुनिक कलदार सभ्यता (Dollar Civilisation) में जीते-जागते मनुष्यों को सुन्दर फोटो रूप बनकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनके आचरण हृदय प्रेम की ताल में तुले नहीं होते, वे कृत्रिम होते हैं। वहाँ काव्य के नृसिंह भगवान् ह्विटमैन ने अपने उच्च नाद से हिन्दुओं की ब्रह्म विद्या और ईरान की सूफी विद्या को एक ही साथ घोषित किया है। वाल्ट ह्विटमैन के मत में वह मनुष्य ही क्या जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं। वह मनुष्य के जीवन में एक मनुष्य का जीवन देखता है। उसके काव्य का यह प्रवाह आकाशवत् सार्वभौम है। जैसे आकाश समस्त नक्षत्र आदि को उठाये हुए है। उसी तरह उसका काव्य सब चर और अचर, नर और नारी को चमकते-दमकते तारों की तरह, अपने में लपेटे हुए है। वह सबके मन की कहता है और सब उसको मन की बात बताते हैं। गरीबों को अमीर और अमीरों को ग़रीब करनेवाला कवि यही हैं। अपने आनन्द की मस्ती में उसे काव्य की तुकबन्दी भी बन्धन प्रतीत होती है। वह प्रत्येक दोहे-चौपाई को पिङ्गल के नियम की तराज़ू में नहीं, किन्तु अपने हृदयानंद के ताल में तोलता है। जो लोग मिस्र के पिरामिड को उत्तम कला-कौशल का नमूना मानते है। उनकी सुन्दरता देखने की दृष्टि परदानशीनों की सी है। प्रकृति के बाह्य अनियमित दृश्य इन परदानशीनों के नियमित दृश्यों से कहीं बढ़-चढ़कर हैं। जो भेद समुद्र की छाती के उभार के प्रेमियों और एक युवती के वक्षस्थल के उभार के प्रेमियों में है, वही भेद ह्विटमैन के सदृश स्वतंत्र काव्य-प्रेमियों और तुकबन्दी के प्रेमियों में है। बाग़ बनाना तो मानुषी कला है, और जङ्गल बनाना दिव्य कला है। चित्र बनाना तो जीतों को मुर्दा बनाना है। और मुर्दा प्रकृति को जीवित संसार बना देना ब्रह्म-कला है। और कवि तो केवल चित्र बनाते हैं परन्तु यह कवि जीते-जागते प्राणियों को अपने काव्य में भरता है। नीचे हम वाल्ट ह्विटमैन की पोयम्स आव जॉय (Poems of Joy) नामक कविता के कुछ खण्डों का तरजुमा नमूने के तौर पर देते हैं।

आनन्द काव्य

ओः कैसे रचूँ आनन्द भरी, रस भरी, दिल भरी कविता राग भरी, पुंस्त्व भरी, स्त्रीत्व भरी, बालकत्व भरी, संसार भरी, अन्नभरी, कल भरी, पुष्प भरी ॥१॥
ओः ! पशुओं की ध्वनि लाऊँ, मछलियों की फुर्ती, और उनके तुले हुए तैरते शरीरों को लाऊँ। चारों ओर हो विशाल समुद्र का जल, खुले समुद्र पर हो खुले बादलों, और चले हमारी नैया ॥२॥
ओः ! आत्मानन्द का दरिया टूटा, पिंजड़े टूटे, दीवारें टूटीं, घर बह गये और शहर बह गये। इस एक छोटी पृथ्वी से क्या होता है ? लाओ दे दो सब नक्षत्र मुझे, सब सूर्य मुझे, और सब काल मुझे ॥३॥

....

ओः ! इस अनादि भौतिक हृदय पीड़ा को—इस प्रेम दर्द को— दरसाऊँ कैसे अपनी कविता में। कैसे बहाऊँ उस आत्मगंगा के नीर को; कैसे बहाऊँ प्रेमाश्रुओं को अपनी कविता में ॥४॥

जो पृथ्वी है सो हम है जो तारे हैं सो हम हैं ओः हो ! कितनी देर हमने उल्लुओं के स्वर्ग में काट दी।

हम शिला हैं पृथ्वी से धँसे हैं हम खुले मैदान हैं साथ साथ पड़े हैं, हम हैं दो समुद्र जो आन मिले हैं।

पुरुष का शरीर पवित्र है, स्त्री का शरीर पवित्र है। फूलों का शरीर पवित्र है, वायु का शरीर पवित्र है, जल पवित्र है, धरती पवित्र है, आकाश पवित्र है, गोबर और तृण की झोपड़ी पवित्र है, प्रेम पवित्र है, सेवा पवित्र है, अपण पवित्र है। लो अब अपने आपको तुम्हारे हवाले करता हूँ। कोई भी हो, तुम सारी दुनिया के सामने मेरे हो रहो।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचगवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न
२२ स्वप्न का सहस्त्र-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ भ्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती
अप्रैल १९६९

हमारा रामायण साहित्य

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी सांची के १२०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल पन्द्रह रुपये।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८·००

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३ रु०।

मैनेजर,
बुकडिपो,
इंडियन प्रेस
(पब्लिकेशंस)
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ७·५० रुपये प्रति भाग है।

सीको हीटिङ्ग मैन्टल

सीको : विज्ञान की सेवा में

वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् देश में वैज्ञानिक यंत्रों की कमी को पूरा करने के लिये, सीको अपने उत्पादन व दूसरे देशों से सर्वश्रेष्ठ यंत्रों को मँगाकर शिक्षा, उद्योग एवम् वैज्ञानिक खोज की सेवा में संलग्न है।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

हेड आफिस—६, तेज बहादुर सप्रू रोड, इलाहाबाद

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥
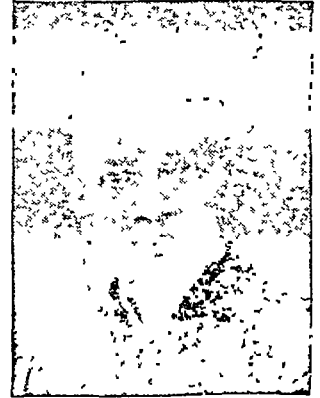
देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं :—

ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पड़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नरपतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४·००

प्रासंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है। अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या २५६ है। मूल्य ३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज

इस सीरीज की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक जगत में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास पैसे। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल ६२ पैसे

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झांकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शाहजादियां

**मिलने का स्थान
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद**

घर का भेदिया
अगूठी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की सुनी हुई कहानियां
समस्या
क्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

विषय-सूची

पाकिस्तान के निवर्तमान राष्ट्रपति
जनरल अयूब खाँ

पाकिस्तान के नये राष्ट्रपति
जनरल याहिया खाँ

पिनाकी चटर्जी

लेफ्टी० जार्ज ड्यूक
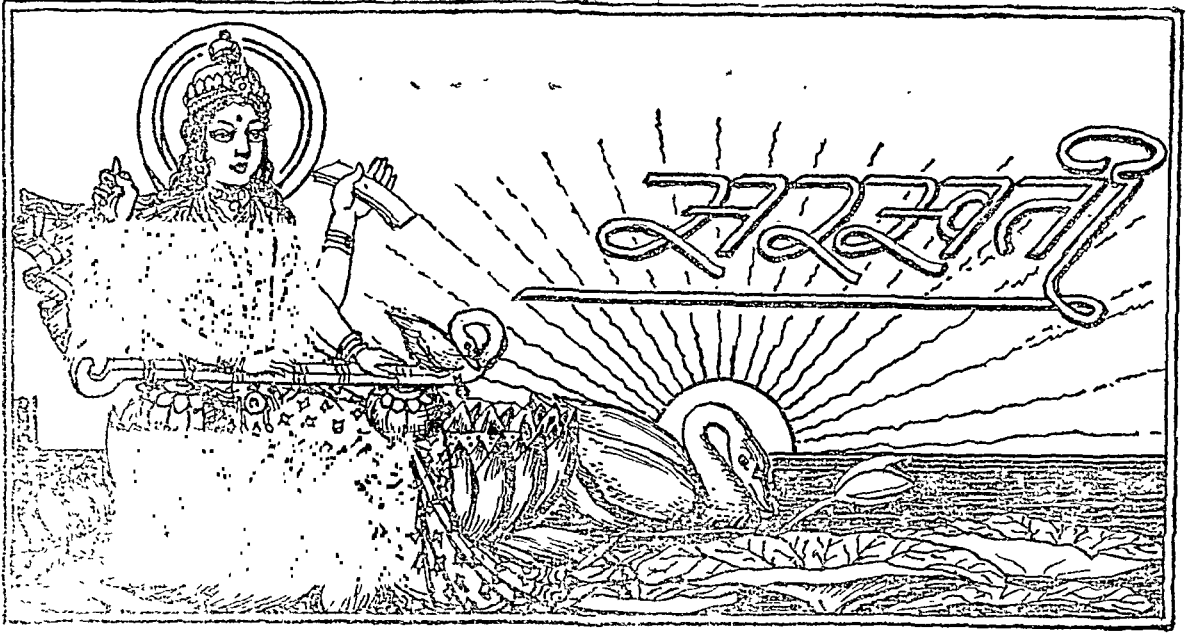
सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७०
पूर्ण संख्या ८३२

इलाहाबाद : अप्रैल १९६९ : वैसाख २०२६ वि०

खण्ड १
संख्या ४

सम्पादकीय

उत्तर प्रदेश विधान सभा में उर्दू में शपथ लेने का दुराग्रह—स्वतंत्रता के बाद जब उत्तर प्रदेश की सरकार ने हिन्दी को अपने राज्य की राजभाषा बनाया और विधानसभा ने अपना सारा कार्य केवल हिन्दी में करने का नियम बनाया तब सभी लोगों ने इसका स्वागत किया था। नयी विधान-सभा के प्रथम अध्यक्ष राजर्षि टंडनजी थे, और उन्होंने विधान सभा में केवल हिन्दी में काम करने की दृढ़ परम्परा स्थापित कर दी। वह परम्परा इतनी दृढ़ हो गयी थी कि उनके बाद जब श्री नफीसुल हसन अध्यक्ष हुए तो वे भी निष्ठापूर्वक विधानसभा का सारा काम हिन्दी में चलाते थे। उस समय विधान सभा के मुसलमान सदस्य भी हिन्दी में काम करते थे। उनमें से कुछ के हिन्दी भाषणों में अरबी और फारसी शब्दों की बहुलता रहती थी, किन्तु इस पर किसीको आपत्ति न थी क्योंकि हिन्दी के अधिकृत विद्वान् बोलचाल की उर्दू को हिन्दी ही की एक शैली मानते हैं हिन्दी की उस शैली में बोलने में कोई क्यों आपत्ति करता? विधान सभा के सदस्यों की भाषा में अरबी और फारसी ही नहीं, अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग बड़े धड़ल्ले से किया जाता है। किन्तु वे जो भाषा बोलते हैं उसकी गठन हिन्दी होती है और वह हिन्दी व्याकरण के अनुसार होती है। इस प्रकार विधानसभा में सद्भावनापूर्ण वातावरण में काम होता था। वहाँ उसकी भाषा के सम्बन्ध में विवाद नहीं होता था। राज्य में भी मुसलमान विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने लगे थे। और कुछ तो बी. ए. तथा एम. ए. में भी हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने लगे थे। यह क्रम अभी जारी है। इनमें से अनेक विद्यार्थियों का हिन्दी साहित्य का ज्ञान बहुत अच्छा है और वे इस विषय में दूसरे विद्यार्थियों से सफलतापूर्वक टक्कर ले सकते हैं। धीरे-धीरे राज्य के मुसल-

मान राज्य की राजभाषा हिन्दी में काम करने के अभ्यस्त होते जा रहे थे। सरकारी कार्यालयों में भी कितने ही मुसलमान कर्मचारी बड़ी अच्छी हिन्दी में सफलतापूर्वक काम करने लगे थे और अब भी कर रहे हैं।

पाकिस्तान बनाने में सबसे अधिक योगदान उत्तर-प्रदेश के मुसलमानों ने दिया था। उत्तर प्रदेश मुस्लिम लीग का सबसे दृढ़ केन्द्र था। विभाजन के बाद मुस्लिम लीगी मनोवृत्ति के कितने ही मुसलमान पाकिस्तान चले गये। जिन्हें अपनी मातृभूमि से प्रेम था और जिन्हें भारत के संविधान तथा उसके प्रजातन्त्र में विश्वास था, वे यहाँ रह गये। वे धीरे-धीरे अपने को नयी परिस्थिति के अनुकूल बनाने लगे। उन्होंने देखा कि भारत में उन्हें पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता है, उन्हें अपने विकास की पूरी गुंजाइश है, वे देश के ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं। सेवाओं में उनके साथ कोई भेद-भाव नहीं है। भारत सरकार उन्हें सुख-सुविधा देने तथा उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए आतुर रहती है। अतएव वे भारतीय राष्ट्र में घुलने-मिलने लगे और यदि पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के प्रति अत्याचार होने के समाचार बीच-बीच में न आते रहते, तथा पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दू शरणार्थियों का ताँता न बँधा होता तो मुस्लिम लीग के आन्दोलन से हिन्दुओं में जो प्रतिक्रिया हुई थी वह स्वतः समाप्त हो जाती। फिर भी देश के मुसलमानों ने सामान्यतः शान्ति ही रखी और भारत के अच्छे नागरिक होने का परिचय दिया। भारत-पाक संघर्ष में भारतीय मुसलमान सैनिक देश की रक्षा में बड़ी निष्ठा और वीरता से लड़े। इससे वातावरण और भी स्वच्छ हुआ।

किंतु कुछ लीगी मनोवृत्ति के मुसलमान व्यक्तिगत विवशताओं के कारण पाकिस्तान नहीं जा सके। उनका विश्वास 'दो राष्ट्र सिद्धान्त' में बना रहा। किंतु वे उस समय निरुपाय थे। अधिकांश मुसलमान कांग्रेस का समर्थन करते थे क्योंकि कांग्रेस शासन में उन्होंने देखा कि उनके साथ न्याय किया जाता है और उनकी उन्नति का ध्यान रखा जाता है। हमारे देश में संविधान ने सभाएँ संगठित करने और बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी है। इन लीगी मानसिकता के लोगों ने जब देखा कि चुनावों में कहीं-कहीं मुसलमान मत निर्णायक है तो उन्होंने धीरे-धीरे मुसलमान जनता में साम्प्रदायिक भावनाएँ फैलाना आरंभ किया। मुसलमानों के प्रति सरकार की कोमलता तथा चुनावों में सफलता प्राप्ति के लिए कांग्रेस की अति उत्सुकता से लाभ उठाकर उन्होंने कुछ साम्प्रदायिक संगठन भी बनाए। वे संस्कृति और भाषा की दुहाई देकर मुसलमानों में उसी पृथकत्व की उस भावना को प्रोत्साहित करने लगे जो पन्द्रह-सोलह वर्ष के कांग्रेसी शासन में कमजोर पड़ गयी थी। उन्होंने मुसलमानों में कांग्रेस विरोधी भावना उत्पन्न करनी आरंभ की और इस समय उनके आन्दोलन का जो रूप है वह यदि इसी क्रम से चलता रहा तो भय है कि वह पुरानी मुस्लिम लीग के आन्दोलन का रूप ले लेगा।

इस आन्दोलन को जीवित रखने के लिए वे नये-नये शिगूफे छोड़ने लगे। विधानसभा की भाषा निश्चित हो चुकी थी, और बीस वर्षों से हिन्दी में बड़े अच्छे ढंग से काम चल रहा था, किंतु अपने आन्दोलन को जीवित रखने के लिए उन्होंने यह माँग की कि मुसलमानों की मातृभाषा उर्दू है और वे विधान सभा में तथा अन्य स्वायत्त संस्थाओं में निष्ठा की शपथ उर्दू में लेंगे। उनकी यह माँग उस समय की गयी जब कई महापालिकाओं के चुनाव हो रहे थे। उस समय इस राज्य में राष्ट्रपति का शासन था और उसके कर्त्ता-धर्त्ता और विधाता राज्यपाल श्री गोपाला रेड्डी थे। श्री रेड्डी का बहुत निकट संबंध हैदराबाद से रहा है जहाँके निज़ाम ने अपने राज्य में उर्दू चला दी थी और जहाँ उर्दू का वातावरण बन गया था। श्री रेड्डी उससे प्रभावित हैं और उर्दू के प्रेमी और पोषक हैं। उन्होंने इस मांग को मान लिया कि मुसलमान सदस्य उर्दू में शपथ ले सकते हैं और सुना जाता है कि ऐसा आदेश भी निकाल दिया। लखनऊ के कांग्रेसी नगरप्रमुख ने उसे मान लिया, किंतु वाराणसी के जनसंघी नगरप्रमुख ने उसे नहीं माना। उनका कहना था कि हिन्दी राज्य की और नगर महापालिका की स्वीकृत भाषा है, अतः सारी कार्रवाही उसीमें होनी चाहिए। राज्यपाल को इसके विरुद्ध आदेश निकालने का अधिकार नहीं हैं। अंत में यह मामला हाईकोर्ट में गया और हाईकोर्ट ने वाराणसी के नगरप्रमुख की बात की पुष्टि की। फिर भी साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित मुसलमान नहीं माने। यह आशंका होने लगी कि राज्यपाल विधान सभा में उर्दू में शपथ लेने के लिए भी कुछ आदेश देंगे। किंतु विधान सभा के उन सदस्यों ने, जिन्हें सदस्यों को शपथ दिलाने का काम सौंपा गया था, कुछ मुसलमान सदस्यों को जो उर्दू में शपथ लेने की

जिद कर रहे थे, उर्दू में शपथ दिलाने से इनकार कर दिया। बाद मे अध्यक्ष का चुनाव हो जाने पर नये अध्यक्ष श्री खेर ने भी यही व्यवस्था दी। मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने भी इसीका समर्थन किया। अत मे उन थोड़े से सदस्यों ने भी (जिन्होने शपथ नही ली थी) हिन्दी में ही शपथ ले ली क्योंकि अध्यक्ष ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि जो सदस्य विधिवत् शपथ न लेंगे उन्हें सदन में न बैठने दिया जायगा।

इस कांड की गूँज संसद मे भी हुई। वहाँ हिन्दी विरोधी लोगों का अच्छा जमाव है। कुछ कांग्रेसी सदस्य भी उनके साथ हो गये और उन्होने वहाँ बड़ा वावैला मचाया। प्रधान मंत्री ने भी उनके मत का समर्थन किया और कहा कि मातृभाषा में शपथ लेने की छूट होनी चाहिए और वे इस सम्बन्ध में उत्तरप्रदेश सरकार से कहेगी : किंतु उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने बड़ी दृढ़ता दिखलाई और कहा कि उत्तरप्रदेश की विधान सभा इस मामले में स्वतंत्र है और वह किसीके दबाव मे नही आवेगी। प्रधानमंत्री को उत्तरप्रदेश विधान सभा के आंतरिक मामले में न पड़ना चाहिए। ऐसी ही अनधिकार चेष्टाओं के कारण केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध बिगड़ते हैं। किंतु केन्द्र के महाप्रभु यह भूल जाते है कि वे निरंकुश शासक नही हैं। वे संविधान से शासित प्रजातंत्र के अधिकारी है और राज्यों और विधान-सभाओं को जो अधिकार प्राप्त हैं उनमें उन्हें हस्तक्षेप न करना चाहिए। इस काण्ड मे विधान सभा के अध्यक्ष श्री आत्माराम गोविन्द खेर, मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त और शपथ दिलानेवाले दो सदस्यों ने जो दृढ़ता दिखलायी उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। हमें खेदपूर्वक यह भी कहना पड़ता है कि राज्यपाल श्री रेड्डी ने जो रुख अपनाया वह अनुचित था और उससे हिन्दी-प्रेमियो को उनके हिन्दी विरोध की जो धारणा थी उसकी पुष्टि ही हुई। श्री रेड्डी ऐसे सुसंस्कृत, साहित्यप्रेमी और कुशल प्रशासक से हमें ऐसी आशा न थी।

संसद में तथा बाहर भी इस बात पर बल दिया गया कि मातृभाषा में शपथ लेने की अनुमति होनी चाहिये, राजभाषा कुछ भी हो। वे शपथ के समान महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए भी राजभाषा के उपयोग को महत्त्व नही देते। उनका एक तर्क यह है कि शपथ की गम्भीरता मातृभाषा ही में ठीक तरह से समझी जा सकती है। यदि यह तर्क मान लिया जाय तो संसद में सिवाय श्री फ्रैंक एन्थनी के और किसीको अंग्रेजी में शपथ न लेनी चाहिए, किंतु वहाँ बहुत से सदस्य अंग्रेजी मे शपथ लेते है। केन्द्रीय सरकार का राजभाषा के प्रति रुख सदैव ढुलमुल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अंग्रेजी-निष्ठ है और संविधान मे हिंदी के राजभाषा बना दिये जाने से वह उसका विरोध खुल कर तो नही कर सकती, किंतु उसके लिए उसमे विशेष उत्साह भी नही है। यदि केन्द्रीय सरकार मे राजभाषा की निष्ठा होती तो वह देश मे उसके प्रति अनुराग उत्पन्न करती, उसका प्रचार करती और उसके अधिकाधिक उपयोग पर बल देती। किंतु उसने अंग्रेजी को सहराजभाषा बना दिया और अनन्तकाल के लिए अंग्रेजी को अपने यहाँ प्रश्रय दे दिया। यदि ऐसी सरकार उत्तर प्रदेश मे भी उसकी राजभाषा हिंदी के अधिकारो के प्रति सजग न रहे तो इसमे कोई आश्चर्य नही।

प्रश्न उर्दू मे शपथ लेने का नही है। थोड़े-से मुसलमान सदस्य उर्दू को उत्तर प्रदेश की सहराजभाषा बनवाकर मुसलमानों को राज्य की सामान्य राजनीतिक और सामाजिक धारा से पृथक् करना चाहते है। अतएव वे योजनाबद्ध रूप से यत्न कर रहे हैं। शपथ वह उँगली है जिसे पकड़ लेने पर वे उर्दू के सहराजभाषा का पोहचा पकड़ेगे। अतएव उनकी यह माँग इतनी निरीह नही है जितनी ऊपर से दीखती है। यह 'दो राष्ट्र' के सिद्धान्त की उपक्रमणिका है। हमे प्रसन्नता और संतोष है कि उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री और सरकार सजग है और अभी तक उन्होने प्रशसनीय दृढ़ता दिखलायी है। किंतु केन्द्रीय नेतृत्व की नीति सदैव की भाँति तुष्टीकरण की है। यद्यपि तुष्टीकरण की नीति बराबर विफल रही है और इस चुनाव में कांग्रेस को भी इस विफलता का कुछ अनुभव हो गया है, तथापि फ्रांस के वोर्बोन शासकों की तरह यह नेतृत्व न तो कोई नई बात सीख या सोच सकता है और न पुरानी गलत बातों को भूल या छोड़ सकता है। उसकी बुद्धि मे जड़ता आ गयी है। उसमें समय के अनुसार नीति बदलने की लोच की कमी है। अतएव हिन्दी को खतरा इन मुट्ठीभर साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित मुसलमान सदस्यों से नही है, इन ढुलमिल नेताओं से है। हमारे नेतृत्व में सुबुद्धि आवे और वे देश के दीर्घकालीन हित और एकता को ध्यान में रखकर उचित कार्य करें—इसीमे देश का कल्याण है।

एक साहसिक यात्रा—भारती नौसेना के श्री ज्यार्ज ड्यूक और कलकत्ते की श्री पिनाकी चटर्जी ने अभी हाल में एक बड़ी साहसिक समुद्री यात्रा करके एक नया कीर्तिमान स्था-

पित कर दिया है। ये दोनों एक अठारह फुट लम्बी नाव को डाँड़ से खेकर कलकत्ते से चलकर अंडमान द्वीप पहुँच गये। उन्होंने बङ्गाल की खाड़ी की यह यात्रा तैंतीस दिन में पूरी की। इस नाव में पाल नहीं लगा था। इसलिये नाव को केवल बाहुबल से चलाया गया। डाँड़वाली खुली नाव से इतनी लम्बी यात्रा करना,—वह भी भँवरों, समुद्री धाराओं, उत्ताल तरङ्गों और शार्क नामक नरभक्षी भयंकर विशाल जलजीवों से पूर्ण समुद्र में,—अदम्य साहस, दृढ़ संकल्प और अथक शारीरिक परिश्रम ही से सम्भव था। दिन में इस खुली नाव में उन्हें प्रखर सूर्य-किरणों में झुलसना पड़ता था और रात मे कड़ी शीत का सामना करना पड़ता था। रास्ते में ठहरने या अन्न-पानी लेने के लिये कोई ठिकाना न था। लोग जानते है कि समुद्र यात्रा में पीने का पानी सबसे बड़ी समस्या है। उन्हें कुल यात्रा के लिए अपनी छोटी सी नाव में पानी और खाद्य-सामग्री ले जानी पड़ी थी। उनके पास ऐसे आधुनिक यंत्र भी न थे कि विपत्ति में पड़ने पर वे उनके द्वारा कहीं संवाद भेज सकते अथवा सहायता की माँग कर सकते। कई बार कई दिन उनका समाचार न मिलने से देश में बड़ी चिन्ता हो गयी थी, और उनका पता लगाने के लिए नौ-सेना के विमान उनके यात्रा मार्ग पर उनका पता लगाने को भेजे गये थे। किंतु वे सब विघ्नबाधाओं को पार कर अपने लक्ष्य पर पहुँच गये, और उन्होंने भारतीय युवकों के सामने एक साहसिक और अभूतपूर्व उपलब्धि का आदर्श रख दिया। सारे देश को इन साहसी युवकों की सफलता पर गर्व और प्रसन्नता है।

अंडमान और भारत की मुख्य भूमि के बीच भाप और डीजल से चलनेवाले जहाजों के युग से पहिले भी नावों द्वारा यात्राएँ होती थीं। कई बार अंडमान में निर्वासित कैदी छोटी-छोटी देशी नावों द्वारा वहाँसे भाग गये थे। प्रायः दस वर्ष पूर्व भारतीय सेना के एक अधिकारी श्री सामन्त विशाखपट्टनम् से नौका द्वारा अंडमान जाकर उसी नाव से लौट आये थे। किंतु उनकी नौका में पाल लगा था और वह पाल ही से परिचालित थी। किंतु बङ्गाल की खाड़ी को केवल डाँड़ से खेकर पार करने का कोई उदाहरण अभी तक नहीं था। श्री ड्यूक और श्री पिनाकी चटर्जी ने वह अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया। सारे देश ने उनके इस साहसिक कार्य की प्रशंसा की। ये दोनों साहसी वीर हमारी बधाई के पात्र हैं।

भारत की एकता और साम्प्रदायिक राजनीतिक संगठन—समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि कुछ ईसाइयों ने एक राजनीतिक संगठन बनाया है जिसका नाम 'क्रिश्चियन डिमॉक्रेटिक पार्टी' है। मुसलमानों की पुरानी मुस्लिम लीग और अब उसका *नया संस्करण* मजलिस मशावरात, सिक्खों का अकाली दल, हिन्दुओं की हिन्दू महासभा ऐसी ही संस्थाएँ हैं। अतएव यदि ईसाइयों ने भी ऐसी संस्था बनायी है तो कोई अभूतपूर्व या आश्चर्य-जनक बात नहीं हुई। किन्तु इससे यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि बिलगाव की भावना तथा समुदायों में संगठित होकर देश की समस्याओं को अपने संकुचित दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। एक ओर तो लोग राष्ट्रीय एकता की चिल्लाहट मचा रहे हैं, दूसरी ओर प्रत्येक छोटे-बड़े समुदाय भाषा, धर्म या संस्कृति के आधार पर अपने संगठन बनाकर बिलगाव की भावना को प्रोत्साहन दे रहे हैं। हमारी सरकार एक ओर तो देश की भावनात्मक एकता के लिए प्रयत्न कर रही है, दूसरी ओर उसको कमजोर करनेवाले इन सामुदायिक संगठनों की भी बातें आदरपूर्वक सुनकर और इस प्रकार उन्हें परोक्ष मान्यता देकर उनका महत्त्व और प्रभाव बढ़ा रही है। यथार्थवादी होने के कारण हम किसी जाति या समुदाय के उन सगठनो को जो अपनी कुरीतियों को दूर करने और समाजसुधार के लिए बनाये जाते हैं, अवांछनीय नहीं समझते। किन्तु ऐसे जो संगठन देश की राजनीति में हस्तक्षेप करके अपने "हितों" पर जोर देते हैं उन्हें हम इस देश की एकता और स्वस्थ राजनीतिक चिन्तन के लिए बाधक समझते हैं। जो लोग संकुचित सामुदायिक दृष्टिकोण से राजनीति को देखते और अपने सामुदायिक हितों को महत्त्व देते हैं वे समग्र दृष्टि से देश की समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ विचार नहीं कर सकते। हमारी मान्यता है कि राजनीति में और देश के हित में 'अधिक से अधिक लोगों के हित' के सामने छोटे-छोटे समुदायों के राजनीतिक हितों को महत्त्व न दिया जाना चाहिए। संविधान में उनकी संस्कृति, उनके धर्म-पालन और मातृभाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में जो विधान हैं वे पर्याप्त रूप से *उनकी संस्कृति, धर्म और भाषा की रक्षा करते हैं*। देश की राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ किसी वर्ग या समुदाय-विशेष की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत सारे देश के हित से देखी जानी चाहिए। इसीलिए जब हम इस प्रकार के किसी नये

संगठन के बनने की बात सुनते है तो हमें प्रसन्नता नहीं होती। इस ईसाई पार्टी की एक बात बड़ी मजेदार है। आजकल देश में भावनात्मक एकता की जो चर्चा जोर शोर से चल रही है, इसकी उपेक्षा शायद इस पार्टी के संगठनकर्त्ता नही कर सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने जो उद्देश्य घोषित किये है उनमें एक यह भी है कि "राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता के लिए जनमत को प्रबुद्ध करना।" यह अनोखी बात है कि जो दल एक विशेष समुदाय के हितों की रक्षार्थ बनाया गया है वह राष्ट्रीय एकता को फैलाने की बात करे। यदि राष्ट्रीय एकता ही लक्ष्य था तो एक सामुदायिक या साम्प्रदायिक सस्था बनाने से वह उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है ? अपने चिंतन और तर्क की असंगति या तो वे देख और समझ नही सके, या उन्होने इस देश के लोगो को इतना भोलाभाला समझ लिया है कि 'राष्ट्रीय एकता' की बात कहने से लोग उनके असली उद्देश्य पर दृष्टिपात न करेंगे। राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक या सामुदायिक स्वार्थ परस्पर विरोधी वस्तु है। तुलसीदास कह गये है—

"हंसब ठठाइ फुलाउब गालू
दुइ न होंहि इक संग भुआलू !"

पाकिस्तान में सैनिक शासन—अभी कुछ ही महीने पहिले पाकिस्तान में जनरल अयूब के शासन के दस वर्ष पूर्ण होने पर सारे देश में खुशियां मनायी गयी थी। कई सप्ताह बड़े-बड़े 'जश्न' और उत्सव होते रहे। पाकिस्तान के समाचारपत्रों ने अयूब के शासन की उपलब्धियों को खूब बढ़ा-बढ़ाकर उनका धुआंधार प्रचार किया। वहांके राजनीतिज्ञों, साहित्यिको तथा प्रमुख सामाजिक नेताओं ने अयूब के शासन की रंगीन तस्वीरे खीची। रेडियो पाकिस्तान ने तो अयूब की विरुदावली गाने मे कमाल कर दिया। ऐसा मालूम होता था कि सारा पाकिस्तान अयूब का भक्त है और उन्हें देश का नया मसीहा मानता है।

किन्तु नियति का क्रूर व्यंग्य देखिए कि इस बहुप्रचारित अयूब के गुणगान के कुछ सप्ताहो के भीतर ही सारे पाकिस्तान में उनके शासन के विरुद्ध आन्दोलन और प्रदर्शन होने लगे, और यह सिद्ध हो गया कि दशक-समारोह और उसका तथाकथित जनता का उत्साह केवल सरकार द्वारा किया हुआ खर्चीला नाटक मात्र था। जनता में अयूब के शासन के प्रति घोर असंतोष था। सरकार द्वारा प्रेरित और संचालित ऐसा प्रचार कितना खोखला हो सकता है इस बात का यह पाकिस्तानी प्रदर्शन ऐतिहासिक उदाहरण है।

पाकिस्तान के लिए सैनिक शासन कोई नई बात नहीं है। कायदे आजम जिन्ना और नवाबजादा लियाकत अली के शासन मे ऐसा मालूम होता था कि पाकिस्तान की सरकार प्रजातांत्रिक ढंग से चलेगी और उसमें स्थिरता तथा स्थायित्व आवेगा। किन्तु उनके बाद वहांके छोटे-बड़े राजनीतिज्ञों मे शक्ति प्राप्त करने की अस्वस्थ होड़ लग गयी, अनेक दल बन गये। राजनीतिक नेता देश का लाभ न देख कर स्वार्थरत हो गये। भ्रष्टाचार बढ़ गया। प्रशासन ढीला हो गया। नेताओं और राजनीतिज्ञों की आपाधापी से सारा वातावरण विषाक्त हो गया। राजनीतिज्ञो पर से जनता की आस्था जाती रही। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि पाकिस्तान की गाड़ी बैठ जायगी। ऐसे समय मे वहां की सेना ने देखा कि देश को बचाने का एकमात्र उपाय सैनिक शासन स्थापित कर उसे अवांछनीय नेताओं से मुक्ति दिलाना है। जनरल इस्कंदर मिर्जा और जनरल अयूब ने मिल कर सरकार को निकाल दिया और देश का शासन अपने हाथों में ले लिया। किन्तु १९ दिनों ही में जनरल अयूब ने जनरल इस्कंदर मिर्जा को निकाल दिया और सारी सत्ता अपने में केन्द्रित कर ली। देश सैनिक शासन और जनरल अयूब की तानाशाही में आ गया। जनरल अयूब देश के राष्ट्रपति बन बैठे।

सही या गलत, जनरल अयूब समझते थे कि पाकिस्तान के लिए पाश्चात्य ढंग का प्रजातन्त्र उपयुक्त नही है। वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करने से गाल बजानेवाले सिद्धान्तहीन और स्वार्थी राजनीतिज्ञों का बहुमत हो जाता है और सत्तारूढ़ होने पर वे स्वार्थ की दृष्टि से, या अपनी गद्दी बचाने के लिए ऐसे काम करते हैं जो देश के हित में नहीं होते। इस मामले में जनरल अयूब अकेले न थे। इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो भी इसी विचार के थे। पाकिस्तान में-विशेषकर पश्चिमी पाकिस्तान में—सामन्तवाद का युग एकदम समाप्त नही हुआ था और वहांके लोग, अयूब की दृष्टि में प्रजातान्त्रिक परम्पराओं का पालन करने को तैयार नही थे। उन्होंने 'बेसिक डिमाक्रेसी' (आधारभूत प्रजातन्त्र) का एक नया सिद्धान्त चलाया जिसमें संसद का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इस प्रणाली में सरकार

चुनावों को बहुत कुछ प्रभावित कर सकती है। जनरल अयूब के विचार कुछ भी रहे हों, किन्तु जनता अपने प्रजातान्त्रिक अधिकारों को न छोड़ना चाहती थी। पर सैनिक शासन में जनता निरुपाय थी। संविधान बदला गया और आधारभूत प्रजातन्त्र उसमें सम्मिलित कर दिया गया। इस सिद्धान्त पर चुनाव हुए जिनमें जनता का प्रत्यक्ष अंशदान न था। नई संसद और प्रान्तीय विधानसभाएँ बनीं। जनता को न तो उनमें विश्वास था और न दिलचस्पी। यह नाटक कई वर्ष चला। किन्तु लोगों की जनतांत्रिक भावनाएं मरी नहीं। वे दबी रहीं और ज्यों-ज्यों दबाव बढ़ता गया वे अपने को व्यक्त करने के लिए छटपटाने लगीं। अन्त में एक समय ऐसा आ गया कि विस्फोट के रूप में वे उबल पड़ीं।

पाकिस्तान का संगठन बड़ा अस्वाभाविक और प्रशासन की दृष्टि से अव्यवहार्य है। भारत में जो क्षेत्र मुस्लिमबहुल थे वे या तो पश्चिमी भारत में थे या पूर्वी भारत में। देश का बटवारा धर्म के आधार पर हुआ। मुस्लिम-बहुल क्षेत्र पाकिस्तान में और हिन्दूबहुल क्षेत्र भारत में विभाजन कर दिये गये। इसी आधार पर पूर्वी बंगाल पाकिस्तान को दिया गया, किन्तु उसके और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच प्रायः एक हजार मील लम्बी भारतीय भूमि है। वहाँके निवासियों की भाषा बंगला है। पश्चिमी पाकिस्तान की भाषाएँ सिन्धी, पंजाबी, पस्तो और बिलोची हैं। दोनों क्षेत्रों के निवासियों में कोई साम्य नहीं—भोजन, भेष, भाषा, वंश, उद्योग-धंधे सब भिन्न हैं। पाकिस्तान के बनानेवालों का विश्वास था कि इन सब भिन्नताओं को धर्म की एकता दबा देगी और वे दोनों मिलकर भाई की तरह रहेंगे। उन्होंने इतिहास से कोई शिक्षा न ली। जार्डन, सीरिया, मिस्र, सऊदी अरब, यमन, अलजीरिया, लीबिया आदि के निवासी केवल एक ही धर्म के नहीं, एक ही वंश के भी हैं। किन्तु राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से वे एक धर्म और एक वंश के होते हुए भी एक नहीं हो सके। किन्तु इस क्षेत्र के मुसलमान इतने धर्मान्ध हो गये थे कि इस सरल बात को भी न समझ सके। यदि उनका उद्देश्य मुस्लिमबहुल क्षेत्रों को हिन्दूबहुल क्षेत्रों से अलग करना मात्र ही होता तो प्रशासन की असाध्य समस्याओं का विचार कर उन्हें पूर्वी बंगाल को एक अलग राज्य बनाने की माँग करनी थी। किन्तु उन्होंने एक विचित्र और असंभव राज्य बना डाला। पश्चिमी पाकिस्तान के लोग अधिक उन्नत हैं। सेना और प्रशासनिक सेवाओं में भी उनका प्रायः एकछत्र अधिकार है, अतएव जब पाकिस्तान बना तब पूर्वी पाकिस्तान में अधिकांश वरिष्ठ अधिकारी पश्चिमी पाकिस्तान (पंजाब) से गये। वहाँ जो सेना गयी वह भी पंजाबी, पठान या बलूची थी। वे केन्द्र से दूर थे और वहाँ ये पश्चिमी पाकिस्तान के अधिकारी अपने व्यवहार के कारण लोकप्रिय न हो सके।

पाकिस्तान के अधिकारी उर्दू को सारे पाकिस्तान की राजभाषा बनाना चाहते थे—यद्यपि न तो वह पंजाबी मुसलमानों, सिंधी मुसलमानों, बलोचियों या पठानों की भाषा है। वे उसे इस उपमहाद्वीप के मुसलमानों की भाषा मानते हैं और इसलिए उन्होंने वह पाकिस्तान की राजभाषा बना दी। किन्तु पूर्वी बंगाल के मुसलमान बँगला को अपनी भाषा मानते हैं। उन्होंने इसका तीव्र विरोध किया और पाकिस्तान को बँगला को राजभाषा के रूप में मान्यता देनी पड़ी। अधिकार पंजाबी मुसलमानों के हाथ में था और बहुसंख्यक होने पर भी पूर्वी बंगाल के लोग उन अधिकारों, पदों आदि से वंचित थे जो उन्हें मिलने चाहिए थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि अधिकतर राजस्व पूर्वी पाकिस्तान से मिलता है तथापि अधिकांश पश्चिमी पाकिस्तान पर खर्च किया जाता रहा। अधिकांश नये उद्योग-धंधे भी वहीं खोले गये। इन सब कारणों से पूर्वी पाकिस्तान वालों में तीव्र असंतोष फैल गया।

उधर भारत के प्रति अंधे द्वेष के कारण पाकिस्तान ने चीन से मेल बढ़ाया। पाकिस्तान के एक नेता मौलाना भासानी हैं जो कम्यूनिस्ट और चीन-प्रेमी हैं। उन्हें इस स्थिति से बल मिला और उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान के कई जिलों में अपने केन्द्र बनाकर उन्हें मजबूत कर दिया। दूसरे पूर्वी पाकिस्तानी नेता श्री रहमान हैं जो राष्ट्रीय विचारों के प्रजातंत्रवादी हैं। इन्होंने पूर्वी पाकिस्तान को पाकिस्तान के भीतर स्वायत्त शासन देने की माँग की। उनका कहना है कि केन्द्र के अधिकार में केवल सुरक्षा (सेना) और विदेश विभाग रहें। ये दोनों यद्यपि परस्पर विरोधी राजनीतिक विचारों के हैं तथापि स्वायत्त शासन की माँग में एकमत हैं। श्री रहमान पर विद्रोह करने का अभियोग लगाकर उन पर मुकदमा चलाया गया और वे बंद कर दिये गये। मौलाना भासानी भी नजरबंद कर दिये गये। किन्तु

असंतोष की आग भड़क उठी। थोड़े ही दिनों में वहाँ अराजकता फैल गयी और स्थिति बेकाबू हो गयी।

उधर पश्चिमी पाकिस्तान में भी अयूब के शासन के प्रति घोर असंतोष भड़क उठा जो दबा हुआ था। यद्यपि वहाँ अपेक्षाकृत अधिक खुशहाली थी और उद्योग-धंधे भी बड़े थे किंतु उनसे अधिकांश लाभ कुछ थोड़े ही से लोगों को हुआ था। शासन में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया था कि सामान्य जन परेशान हो गये थे। जनता की स्मृति बड़ी कमजोर होती है। वह भूल गयी कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के समय उसकी क्या दशा थी। इस बीच चीन से पाकिस्तान की मित्रता करानेवाले और भारत के घोर विरोधी श्री जुल्फिकार अली भुट्टो से जनरल अयूब की अनबन हो गयी। वे विदेश-मंत्री के पद से अलग कर दिये गये और वे उनके कट्टर विरोधी हो गये। किंतु इस बीच श्री भुट्टो ने अयूब शासन का खुला विरोध करके लोकप्रियता प्राप्त कर ली। जब वे कानून भंग करने पर उतारू हो गये तो सरकार ने उन्हें पकड़ लिया। उनके पकड़े जाते ही पश्चिमी पाकिस्तान में अयूब शासन के प्रति रोष भड़क उठा। वहाँ भी अयूब-विरोधी आंदोलन ने जोर पकड़ लिया और सामान्य जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। लोग प्रजातंत्र की माँग करने लगे।

जन० अयूब ने अनुभव कर लिया कि उनका आधारभूत प्रजातंत्र का सिद्धांत विफल हो गया और अब कुछ रियायतें देनी ही होंगी। उन्होंने सब दलों के नेताओं का सम्मेलन बुलाया। इसमें परस्पर विरोधी मत के लोग थे। दो बातों पर सब सहमत थे कि प्रजातांत्रिक शासन स्थापित किया जाय और वयस्कों को मताधिकार हो। अयूब ने इनको मान लिया। किंतु पूर्वी पाकिस्तान की यह माँग कि संसद में जनसंख्या के आधार पर सदस्यों की संख्या रखी जाय, यह पश्चिमी पाकिस्तान के नेताओं को अमान्य थी क्योंकि अभी पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान बराबर की संख्या में सदस्य भेजते हैं यद्यपि पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या अधिक है। इसी प्रकार इस माँग पर मतभेद रहा कि पश्चिमी पाकिस्तान एक इकाई न माना जाय, किंतु भाषा के आधार पर उसके चार प्रान्त (पश्चिमी पंजाब, सिंधु, बलूचिस्तान और पखतूनिस्तान) बनाये जायँ। अयूब ने यह कह कर बात टाल दी कि ये बातें उस संविधान सभा में तय की जायँ जो वयस्क मताधिकार से चुनी जायगी।

किंतु इससे विरोधियों का समाधान नहीं हुआ। पाकिस्तान के दोनों खंडों में विरोध इतना बढ़ा कि उसने अराजकता का रूप ले लिया। अयूब ने उसे शांत करने के लिए दोनों क्षेत्रों के राज्यपालों को भी बदल दिया जो जनता में बड़े अप्रिय हो गये थे। किंतु अराजकता बढ़ती गयी और अयूब से गद्दी छोड़ने की माँग की जाने लगी, पूर्वी पाकिस्तान में प्रायः पूरी अराजकता फैल गयी। लोग अयूब के समर्थकों को मारने लगे। कहीं-कहीं सेना भी बुलायी गयी, पर स्थिति काबू में न आयी। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि पूर्वी बंगाल पाकिस्तान के हाथ से निकल जायगा। पश्चिमी पाकिस्तान की भी स्थिति बिगड़ रही थी। अंत में उसने सेनापतियों से सलाह ली। दोनों इस बात पर सहमत मालूम हुए कि सैनिक शासन लागू किया जाय, किंतु सेनापतियों का यह विचार था कि अयूब का इतना विरोध है और जनता में उनके विरुद्ध इतनी तीव्र भावना है कि उनके रहते सेना सहयोग नहीं कर सकती। निरुपाय होकर अयूब गद्दी छोड़ने को सहमत हो गये। पाक सेनापति जनरल अहिया खाँ ने शासन की बागडोर लेकर सैनिक शासन लागू कर दिया।

पहिली बार सैनिक शासन लागू होने पर जनरल अयूब की तानाशाही दस वर्ष से अधिक चली। इस बार भी सैनिक शासन के शीघ्र समाप्त होने के लक्षण नहीं हैं। पहिले कहा गया कि अयूब ने तीन महीने की छुट्टी ले ली है किंतु बाद में अहिया खाँ राष्ट्रपति बन बैठे। सारी शक्ति अब उन्हीं के हाथ में है। वैसे तो उनकी स्थिति सुदृढ़ है किंतु वे शिया हैं, और पाकिस्तान के बहुसंख्यक मुसलमान सुन्नी हैं। दोनों सम्प्रदायों में वहाँ बड़ा मनोमालिन्य है। यही एक बात है जिससे उनका भविष्य खतरे में पड़ सकता है, किंतु इस बार उन्होंने सेना के तीनों पक्ष पदाति सेना, नौसेना और वायुसेना का सहयोग प्राप्त कर लिया है। इसलिए उनकी स्थिति सुदृढ़ है।

भारत चाहता है कि पाकिस्तान आर्थिक और सामाजिक उन्नति करे क्योंकि देखा गया है कि गड़बड़ी होने पर जनता का ध्यान बटाने के लिए बहुधा राजनीतिज्ञ और शासक पड़ोसी देशों से कलह आरंभ कर देते हैं। भारत और पाकिस्तान के संबंध बड़े नाजुक हैं। अतएव यदि पाक जनता शान्ति के कामों में लग जाती और संतुष्ट रहती है तो एकाएक दोनों देशों के बीच संघर्ष की संभावना कम हो जाती है। बहुत कुछ शासकों पर भी निर्भर है। वहाँ सैनिक शासन हो गया है और मेभी-अभी कुछ दिनों सेना का ध्यान आंत-

रिक स्थिति के सुधारने में लगा रहेगा। किंतु बहुत कुछ जनरल अहिया खाँ के विचारों पर निर्भर है। ये वे ही जनरल हैं जिन्होंने छम्ब पर आक्रमण की योजना बनाई थी और उस अभियान का संचालन किया था जिससे पाक-भारत-युद्ध आरंभ हुआ। उस अभियान के लिए उन्हें वहाँ का सर्वोच्च सैनिक सम्मान 'हिलाल-ए-जुर्रत' दिया गया था। किंतु हमें आशा करनी चाहिए कि प्रशासन का भार ग्रहण करने पर वे एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की तरह विचार और व्यवहार करेंगे।

भाप से चलनेवाली मोटर गाड़ी—सरस्वती के पाठकों ने श्री शकरसहाय सक्सेना का वह लेख पढ़ा होगा जिसमें उन्होंने आधुनिक उद्योगों के कारण हवा के विषैले होने की समस्या का बड़ा रोचक और विचारोत्तेजक वर्णन किया है। नगरों में हवा दिनोंदिन अधिक दूषित होती जा रही है क्योंकि मोटर गाड़ियों, बसों, ट्रकों, स्कूटरों, रिक्शा-स्कूटरों, मोटर साइकिलों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये चलते समय बराबर विषैली गैसें छोड़ती हैं जिससे नगरों की हवा में साँस लेना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा हो गया है। दिल्ली की दरियागंज की सड़क पर—विशेषकर सवेरे और सध्या के समय—चलनेवाले जानते हैं कि उन्हें साँस लेना दूभर हो जाता है। मोटरों से निकली हुई विषैली गैसों से आँखों और गले में कड़ुआहट पैदा हो जाती है। इन गैसों के फेफड़ों में घुसने से कितने ही रोग हो जाते है। जो समस्या हमारे देश में है वह पाश्चात्य देशों में भी हैं—और बड़े पैमाने पर है, क्योंकि वहाँ मोटरों की सख्या यहाँ से कई गुना अधिक है। वहाँके विचारशील लोग इस पर कुछ दिनों से विचार कर रहे हैं। अमरीका और इग्लैण्ड के कई मोटरकार-निर्माता कई वर्षों से इस पर शोध कर रहे हैं। अब उन्होंने घोषित किया है कि वे भाप के इंजिन से चलनेवाली मोटरगाड़ी बनाने में सफल हो गये हैं। उनका कहना है कि अगले वर्ष वे नमूने की गाड़ियाँ प्रस्तुत करेंगे। ये गाड़ियाँ टर्बाइन से चलेंगी जिसे संचालित करने की शक्ति भाप से मिलेगी। इन गाड़ियों से नाममात्र को गैस निकलेगी और सम्भव है कि पैट्रोल या डीजल तेल के न होने के कारण वह इतनी हानिकारक भी न हो। यदि ये नमूने की गाड़ियाँ सफल हुईं और लोगों ने उन्हें पसन्द किया तो उन्हें बाजार में आने में बहुत देर न लगेगी। नगरों को विषैली गैसों से मुक्त करने और लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा करने में वे वरदान सिद्ध होंगी।

अमरीका के राष्ट्रपति के वेतन में वृद्धि—अभी तक अमरीका के राष्ट्रपति का वेतन एक लाख डालर वार्षिक था। राष्ट्रपति का वेतन के अतिरिक्त और भी अनेक सुविधाएँ होती हैं, फिर भी अमरीका में बहुत दिनों से यह अनुभव किया जाता था कि यह राशि इस पद के लिए कम है क्योंकि यह बहुत पहिले निर्धारित की गयी थी। तब से अब देश के वेतनमान बहुत बढ़ गये हैं। अमरीका के सविधान के अनुसार किसी राष्ट्रपति का वेतन उसके कार्यकाल में नहीं बढ़ाया जा सकता। उसे बढ़ाना कांग्रेस (संसद) के अधिकार में है, किंतु बढ़ाया हुआ वेतन अगले राष्ट्रपति ही को मिल सकता है। इसलिए राष्ट्रपति निक्सन के पद ग्रहण करने के ठीक पहिले कांग्रेस ने राष्ट्रपति का वेतन एक लाख डालर से बढ़ाकर दो लाख डालर वार्षिक कर दिया। भारतीय मुद्रा में यह पन्द्रह लाख रुपये हुआ, अर्थात् सवा लाख प्रति मास। अमरीकी राज्य की आय भी विशाल है। सन् १९६६ में उसकी शुद्ध आय १०४,७२,७० लाख (एक खरब, चार अरब बहत्तर करोड़ और सत्तर लाख) डालर थी। तब से यह बढ़ी ही है। अमरीका में संसद सदस्यों को ३०,००० डालर (सवा दो लाख रुपया) वार्षिक वेतन मिलता है, मत्रिमंडल के सदस्यों का वेतन ३५,००० डालर है। संसद के अध्यक्ष का वेतन ४३,००० डालर वार्षिक, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का ४०,००० डालर और उसके सामान्य न्यायाधीशों का ३९,५०० डालर प्रतिवर्ष है। अमरीका का जीवनस्तर बहुत ऊँचा है और वहाँके वेतनों का निर्धारण उसीको ध्यान में रखकर किया जाता है।

अमरीका ही में राष्ट्रसंघ का कार्यालय है। उस देश के वेतनमानों का प्रभाव उसके कार्यकर्त्ताओं के वेतनमानों पर भी पड़ा है। उदाहरण के लिए राष्ट्रसघ के महासचिव का वेतन लीजिये वह ७५,००० डालर प्रतिवर्ष है और उन्हें तथा संघ के अन्य कर्मचारियों को आयकर भी देना पड़ता है। वे बाहर से अपने लिए जो सामान (शराब, मोटरकार, सिगरेट, तम्बाकू आदि) मँगाते हैं उसके आयात शुल्क से भी युक्त है।

इस देश के नेता बराबर जीवन स्तर बढ़ाने की बात करते हैं देश में जीवन-स्तर ऊँचा उठा भी है। अब बिजली, रिफ्रिजिरेटर, टेलीफोन, वातानुकूलन, मोटरकार, स्कूटर, सिलाई की मशीनों, टेपरिकर्डरों, रेडियो, ट्रांजिस्टर आदि का प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। परिधान का मानदंड भी बढ़ा है। साबुन की खपत बहुत बढ़ी है। गाँवों में तो अब मनुष्यों की सवारी का स्थान बैलगाड़ी की जगह बाइ सिकिल और मोटर बस ने प्राय: ले ही लिया है। इस परिवर्त्तन से जीवन-स्तर ऊँचा उठा है और आवश्यक रूप से मँहगा हो गया है। किंतु इस देश में इस उठते हुए जीवन स्तर से वेतनक्रमों का तालमेल बैठाने की ओर वे नेता भी ठीक तरह से ध्यान नहीं देते जो जीवनस्तर उठाने की वकालत करते हैं। किंतु अब यह धारा उल्टी नहीं जा सकती। भ्रष्टाचार को दूर करने, जीवन में शान्ति और सुख लाने के लिए वेतन-क्रमों का पुनरीक्षण आवश्यक है, यदि यह न किया गया तो देश संकट में पड़ सकता है।
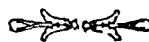
आत्मानं विद्धि

(Know Thyself)

प्रो० आशानन्द वोहरा एम० ए०

त्रिविध तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से संतप्त एवं संत्रस्त प्राणी प्रतिदिन सुख की प्राप्ति के लिए संघर्ष-रत रहता है। भविष्य में सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए वह वर्तमान में दुखों-कष्टों को सहन करता है परन्तु उसका सम्पूर्ण जीवन इसी चक्र में व्यतीत हो जाता है और उसे सुख की कहीं प्राप्ति नहीं होती। वास्तव में सुख शान्ति है ही कहाँ ? जीवन-पर्यन्त मानव क्लेशमय संसार से आत्यन्तिक दुःख निवृति के लिए भटकता ही रहता है। चतुर्दिक दुःख का ही साम्राज्य है। दुःख नाश के साधनों की खोज में कभी किसीसे कुछ पूछता है कि किस वस्तु को प्राप्त करने से उसे इनसे छुटकारा मिल सकता है ? और कभी किसी महात्मा, ज्ञानी या मुनि की शरण में जाता है। मन्दिरों और जंगलों में भटकता है। यदि भाग्य से उसे कोई आत्म-रहस्य का ज्ञाता मिल जाये तो वह उसे यही कहता है कि "आत्मा को जानो।" परन्तु यह आत्मा है क्या ? इसे कैसे जाना जाये ? इसके विषय में वैदिक और भारतीय दार्शनिक आरम्भ से विचार करते आये हैं। भारतीय तपोनिष्ठ महर्षियों ने ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता को ब्रह्म की संज्ञा दी है, उसे परमतत्व कहा है। और पिण्डाण्ड की नियामक सत्ता को आत्मा कहा है। दोनों की एकता पर वल दिया है। वह ब्रह्म ही प्रत्येक प्राणी की आत्मा के रूप में व्याप्त है। ब्रह्म-दर्शन का सरल उपाय आत्म-दर्शन कहा गया है। इसीलिए श्रुति कहती है "**आत्मानं विद्धि।**" यह आत्मा ही समस्त पदार्थों में श्रेष्ठतम पदार्थ है। मानव-जीवन का लक्ष्य ही 'आत्म-साक्षात्कार' कहा गया है। जिसे आज का महत्त्वाकांक्षी मानव भूला हुआ है। आज के इस भौतिकवादी युग में आध्यात्मिक मान्यताओं एवं संस्थापनाओं का पूर्णतः अवमूल्यन ही नही हो चुका है अपितु दिन-प्रतिदिन ये लुप्त होती जा रही है। मानव नैतिक अधोगति की ओर जा रहा है। परन्तु मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तो भौतिक एवं शारीरिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति की आवश्यकता है। इसीलिए एक स्थान पर कहा है :—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
(यजुर्वेद ४०।३)

आत्मघाती देशों को भारत अपनी इन्हीं शक्तियों की अक्षुण्णता के कारण अपना आध्यात्मिक संदेश देता आया है और विश्व का पथप्रदर्शन करता आया है। दोनों क्षेत्रों में भारत ने अत्यधिक उन्नति की है। इसकी सांस्कृतिक परम्पराएँ युगयुगों से मानवता को उद्बोधित करती आयी हैं।

वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य में आत्मा के स्वरूप पर सम्यक् विचार किया गया है। चैतन्यता की प्रतीक आत्मा को अजर और अमर कहा गया है।

'न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (कठ० उप० १-८)

वह नित्य और अविकारी है। यही आत्मब्रह्म है। इसी चैतन्यता के कारण सम्पूर्ण संसार को यह आत्मा प्रिय है। इस आत्मा के स्वरूप का कठोपनिषद् में अत्यन्त सुन्दर विवेचन हुआ है। नचिकेता यमराज से अपने तृतीय वर के रूप में आत्मा के रहस्य को जानना चाहता है। तब एक अत्यन्त रमणीय रूपक द्वारा वे इस तत्त्व का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥३॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिणः॥४॥

"तू आत्मा को रथी जान, शरीर को रथ समझ, बुद्धि को सारथि जान और मन को लगाम समझ॥३॥ विवेकी पुरुष इन्द्रियों को घोड़े वतलाते हैं तथा उनके घोड़े रूप से कल्पित किये जाने पर विषयों को उनके मार्ग

बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं।" (कठोपनिषद्-१-३-३-४)

अध्यात्मविद्या का सारा प्रासाद आत्म-निरूपण और आत्मसाक्षात्कार की प्रवृत्ति पर खड़ा है। 'अपने' को जानने से ही इसकी प्राप्ति हो सकती है। वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी सम्वाद में इस तथ्य का सुन्दर निरूपण हुआ है। याज्ञवल्क्य ने एक समय जब वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने के लिए सोचा तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी मैत्रेयी को बुलाकर कहा कि मैं तो वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने जा रहा हूँ इसलिए तुम्हें यदि किसी प्रकार की आवश्यकता हो तो कहो—मैं देता चलूं ताकि तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। तब मैत्रेयी कहने लगी यदि मुझे समस्त ब्रह्माण्ड के भोग्य पदार्थ मिल जायें तो मुझे क्या आत्मिक शान्ति मिल जायेगी ? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं। सांसारिक भोग्य पदार्थों के मिलने से आत्मिक शान्ति नहीं मिल सकती है। हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि भोग्य पदार्थ सम्पन्नता से तुम्हें उतना सुख अवश्य मिल जायेगा। तब मैत्रेयी कहने लगी जिन पदार्थों के प्राप्त करने से आत्मा को शाश्वत शान्ति नहीं मिल सकती उन्हें मैं क्या करूँगी ? एतदर्थ मुझे तो आत्मा तत्त्व का रहस्य बताओ। इस पर याज्ञवल्क्य कहने लगे :—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि।

आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनदं सर्वं विदितम्।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आत्मा को जाननेवाला ही समस्त दुःखों से मुक्त हो सकता है। वह ही शोक और अवसाद को पार कर लेता है।

तरति शोकमात्मवित्। [छन्दोग्योपनिषद (७-१-३)]

छादोग्य उपनिषद् में एक स्थान पर नारद ऋषिप्रवर सनत्कुमार के पास उपदेशार्थ जाकर कहने लगे, "भगवन्! मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद याद है, इनके अतिरिक्त इतिहास पुराण रूप पाँचवां वेद, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्ध कल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधि-शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देव-विद्या, ब्रह्म-विद्या, भूत-विद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्र-विद्या, सर्पविद्या (गारुड़-मन्त्र) और देवजन विद्या, नृत्य-संगीत आदि—हे भगवन्! यह सब जानता हूँ परन्तु फिर भी मेरी आत्मा को सुख और शान्ति प्राप्त नहीं। मैं 'मन्त्रविद्' हो गया हूँ परन्तु 'आत्मवित्' नहीं हुआ। प्रकृति के ज्ञान से शान्ति नहीं होती इसीलिए कहा गया है 'आत्मानंविद्धि'। अपना ज्ञान आत्मज्ञान है और जो आत्म तत्त्व को जानता है उसे सदैव सुख और शान्ति प्राप्त रहती है।

"तदेय श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखता ँ सर्वं ँ ह।

"पश्य : पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति।"
छान्दोग्योपनिषद् ७. २६.२

"इस विषय में यह मन्त्र है—विद्वान् न तो मृत्यु को देखता है, न रोगों को और न दुःखत्व को ही। वह विद्वान सब को (आत्मरूप ही) देखता है, अतः सबको प्राप्त हो जाता है।"

यह सम्यग्दर्शन ही मानव को विविध तापों से मुक्त कर सकता है। मानव को इसी तरह आत्यन्तिक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। इसे अच्छी तरह से जानना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसके बिना जीवन व्यर्थ है। केन उपनिषद् में भी आत्म-ज्ञान को परम पुरुषार्थ कहा गया है :—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न
चेदिहावेदीन्महती विनष्टि :।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा :
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।। (२.५)

इसलिए हमें इस जन्म में ही (अर्थात् मनुष्य जन्म में ही) सम्पूर्ण जीवों में व्याप्त एक ब्रह्म-स्वरूप आत्म तत्त्व को जान लेना चाहिए। परमार्थतत्त्व को प्राप्त कर लेना चाहिए और यदि इसे न जान पाये तो वही जन्म-मरण का चक्र चलता रहेगा। अतः इस महान हानि से अपने को बचाना चाहिए।

इस परमतत्त्व के ज्ञान से मानव को अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है। यह परमतत्त्व या आत्म-तत्त्व कैसा है ? इसके स्वरूप के विषय में श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी कहा गया है:—

"अंगुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभि कलृप्तो
य एत द्विवदुरमृतास्ते भवन्ति ।। (३·१३८)

जो मानव इस हृदय स्थित और मन के द्वारा सुरक्षित इस आत्मतत्व को जान लेता है वह अमर हो जाता है। इस आत्मदर्शन से समस्त शोकों की निवृत्ति हो जाती हैं। सम्यग्ज्ञान के लिए और शोकों से निवृत्ति की प्राप्ति के साधनों के विषय में मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है:—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मय हिशुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ।।
(मु० उ० १-५)

"यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन योगिजन देखते हैं वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा शरीर के भीतर रहता है।" आत्मदर्शन के लिए इन साधनों को अपनाना होगा। जब तक हम 'सत्य' तक नहीं पहुँचते तब तक हमें इसके दर्शन होने कठिन हैं। आत्म-शक्ति के द्वारा ही आत्म ज्योति प्रकाशित होगी। चित शुद्धि और जिज्ञासा के द्वारा ही इसका साक्षात्कार किया जा सकता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणते तनुं स्वाम् ॥
(मु० उ० ३-३)

जो विद्वान् इसे जानने की इच्छा करता है उसे यह आत्मा अपना स्वरूप अभिव्यक्त कर देता है।

आत्मा को जानने के लिए उपनिषद् साहित्य में एक स्थान पर वीणा का उदाहरण दिया गया है जिसके द्वारा हम सरलता से इसे जान सकते हैं।

हे वृन्दावनलाल !

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

सूना तुम ने कर दिया माँ हिन्दी का भाल,
अपना दुख किससे कहूँ ? हे वृन्दावनलाल !
हे वृन्दावनलाल ! स्नेह पाया जन-जन का,
सह न सके पर तुम वियोग मैथिलीशरण का !
प्रिय-वियोग से भी खलता है यह दुख दूना,
आज उपन्यासों का है वृन्दावन सूना !!

पहुँच गए हो श्रेष्ठवर प्रेमचन्द के पास,
तुम को सब-कुछ मिल गया; अब क्यों रहो उदास ?
अब क्यों रहो उदास ? उदासी हम को दी है,
हम ने सिर को झुका, उदासी यह सह ली है ?
यही भरोसा है, हिन्दी को नित्य नए हो,
दोगे निज आशीष, जहाँ भी पहुँचे गए हो !!

औरौ; तुम को मिल गए कविवर माखनलाल,
फिर तो कौन लिखे, कहो, सम्मेलन का हाल ?
सम्मेलन का हाल ? जहाँ सुख ही सुख छाया,
कहाँ असत्य, कि हिंसा, ईर्ष्या, दुख औ माया ?
केवल विनती यही, सुनो जग के सिरमौरौ !
पद-चिन्हों हम चलें; चहिय वरदान न औरौ !!

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न
बाह्यान् शब्दान् शक्नुयाद् ग्रहणाय ।
वीणायै तु ग्रहणेन वीणा वादस्य वा
शब्दो गृहीत ॥

जैसे बजाई जाती हुई वीणा के बाह्य शब्दों को कोई पकड़ नहीं सकता, परन्तु वीणा के अथवा वीणा के वादन के पकड़ में आ जाता है अर्थात् समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा को जान लेने पर सब कुछ जाना जाता है। इसलिए हमें आत्मा को जानना चाहिए। 'आत्मानं विद्धि।'

'नाग'-कन्याओं की चर्चा

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

पुराणों में अनेक जगह 'नाग'-कन्याओं की चर्चा आई है। 'नाग'-कन्याओं की सुन्दरता का वर्णन आता है। हमारे अनेक राजाओं के विवाह भी नाग-कन्याओं से हुए हैं। ये 'नाग' क्या हैं, कौन हैं ?

'नगा अगा पर्वता:'

संस्कृत में 'नग' और 'अग' पर्वत के नाम हैं। नगे भव:-'नागः'—पहाड़ पर पैदा होने वाला (जो कोई भी) 'नाग'। 'नागो राजा'—पहाड़ी राजा; 'नागः सर्पः'—पहाड़ी साँप। 'नागो गजः'—पहाड़ी हाथी। 'नागम् सीसकम्'–पहाड़ी सीसा आदि।

'नाग-कन्या' से विवाह हुआ'–पहाड़ी लड़की से विवाह हुआ। पर्वतीय अञ्चलों में नैसर्गिक सौन्दर्य है ही।

'नागवंश का राज रहा'—पर्वतीय राजवंश का राज रहा।

परन्तु 'नाग' शब्द से लोग 'सर्प' मात्र समझने लगे और 'नाग-कन्या' का अर्थ साँप की पुत्री (सँपोली) समझने लगे ! साँप में मानवाकृति की कल्पना और वैसी सुन्दरता का आरोप अज्ञान की पराकाष्ठा !

'पर्वतीय' की जगह 'नाग' विशेषण अल्पकाय और सूच्चार्य होने से चला। 'नागोराजा'–पहाड़ी राजा। हिन्दी में 'नागराज' चला और फिर यह बहुत बड़े 'विषधर' के अर्थ में रूढ़ हो गया !

विशेषण से संज्ञा

विशेषणों से संज्ञाएँ बन जाती हैं। कभी विशेषण से ही विशेष्य समझा जाने लगता है। अमरूदों की मंडी में लोग (इलाहाबादी अमरूदों का क्या भाव है, कहने की जगह) 'इलाहाबादी का क्या भाव है' कह देते हैं। इसी तरह हाथियों के प्रकरण में 'नागो गजः क्रीतः'–'पहाड़ी हाथी खरीदा' की जगह 'नागः क्रीतः'–'पहाड़ी खरीदा है' कहने लगे। आगे चलकर 'विशेषण' का अर्थ लुप्त हो गया और 'नाग': कहने से निर्विशेष 'हाथी' मात्र का बोध होने लगा।

'जाल' शब्द भी ऐसा ही है। पशु-पक्षियों को फँसाने के लिए रस्सी आदि के 'आनाय' बने। आनीयन्ते पशु-पक्षियो येन, स 'आनाय:'–पशु-पक्षियों को पकड़ लाने का साधन 'आनाय'। परन्तु, 'आनाय' शब्द की जगह आगे 'जाल' शब्द चल पड़ा; यद्यपि कोश-ग्रन्थों में 'आनाय' भी दर्ज है–'जाल आनाय:' 'आनायस्तु जाल: स्यात्'। 'जाल' पहले विशेषण के रूप में चला–जल में फैलाया जाने वाला 'आनाय'–'जाल'। 'जल से 'जाल'। यों पृथ्वी पर फैलाया जाने वाला 'आनाय' जब विशेष रूप से बनाकर मछलियों के पकड़ने के काम आने लगा तो उसे 'जाल आनायः' कहने लगे। आगे चलकर विशेषण ('जाल') मात्र से 'जाल-आनाय' समझा जाने लगा। फिर और आगे 'आनाय' मात्र को 'जाल' कहने लगे। 'आनाय' की अपेक्षा 'जाल' छोटा शब्द है; सूच्चार्य भी है।

इसी तरह 'नीलम' संज्ञा बनी जो एक मणि की वाचक है। 'नील' विशेषण है। 'नीलमणि' 'नीलम्' वही 'नीलम्' (स्वरान्त होकर) नीलम नग है, जो अँगूठी आदि में जड़ा जाता है।

'संस्कृत भाषा' के लिए 'संस्कृतम्' शब्द चलता है–'संस्कृते ऽनूद्यताम्'—संस्कृत में अनुवाद करो। संस्कृता भाषा-'संस्कृतम्'। पर 'संस्कृता' का 'संस्कृतम्' रूप कैसे हो गया ?

बात यह है कि जब किसी विशेषण को संज्ञा का स्थान मिल जाता है, तब उसका प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में होता है; यह संस्कृत भाषा की स्थिति है—

जालः	आनायः	जालम्
नीलः	मणिः	नीलम्

नागम् सीसकम् ('नागम्' का 'नागम्' ही रहा) नागम्

संस्कृता भाषा—संस्कृतम्

यह स्थिति अप्राणिवाचक संज्ञाओं में ही देखी जाती है। प्राणिवाचक संज्ञाएँ नपुंसकलिङ्ग नहीं होतीं—

नागः	गजः	नागः
नागः	सर्पः	नागः
नागः	क्षत्रियः	नागः

सो, 'नागकन्या' का मतलब है–पहाड़ी लड़की, 'सँपोली' नहीं। 'कन्या' शब्द से ही सब स्पष्ट है।

यह सरकारी साहित्यानुराग और समवेदना

श्री सूर्यनारायण व्यास

स्व० उग्रजी ने अपने अवसान से पूर्व 'ग़ालिब-उग्र' ग्रन्थ लिखा था, और वह अब प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने ग़ालिब के पद्यों का चटपटी भाषा में भाष्य किया है। वर्षों से उनकी साधना थी, वे ग़ालिब के भक्त थे, मर्मज्ञ भी थे। वे तुलसीदास और ग़ालिब की तुलना किया करते थे। जब वे उज्जैन में मेरे पास रहे, बराबर ग़ालिब की गरिमा का गान किया करते थे। ग़ालिब का काव्य हमारी चर्चा का विषय बनता रहता था। मैंने ग़ालिब को स्वतंत्र रूप से पढ़ा नहीं, उग्रजी से सुना ही अधिक था। उर्दू मैंने पढ़ी नहीं, किन्तु उर्दू के अनेक शायरों को शौक से पढ़ा है। दाग़, जौक, मीर, इक़बाल को पढ़ने-सुनने-समझने का प्रयास किया है। ग़ालिब के विषय में मेरे मन में समादर भी है। वह दार्शनिक कवि है, और बहुत बड़ा कवि है। उसकी शताब्दी मनाई जा रही है, यह स्वाभाविक भी है। ग़ालिब की कई शताब्दियाँ मनेंगी। उसका जादू शताब्दियों तक ज़मा रहेगा। उसकी कविताएँ स्वयं सप्राण हैं। ऊँचाई लिये हुए हैं, गहराई लिये हुए हैं। यही कारण है कि भारत ही नहीं, विदेशों में भी शताब्दी की आवाज उठी है, और कई देशों में वह मनाई जा रही है। ग़ालिब वास्तव में इसके हकदार है। पर सवाल यह है कि क्या यह 'ग़ालिब शताब्दी' ग़ालिब के भक्तों द्वारा मनाई जा रही है? क्या इस विशाल पैमाने पर मनाये जानेवाले आयोजनों के पीछे उनके भक्त-जन हैं, या सरकार का साहित्यानुराग है? क्या इनके पीछे साहित्यिक समाज है या सरकारी सूत्रों की प्रेरणा है? सारे देश के सभी भाषा के पत्र ग़ालिब के गुण गाने को सहसा एक साथ कैसे प्रेरित-प्रभावित हुए हैं? अधिकांश राज्य कैसे इस साहित्य-सेवी के प्रति सहसा अनुरक्त हो उठे हैं? नगर-नगर जश्न मनाये जा रहे है। ग़ालिब का विशाल और भव्य स्मारक बनाया जा रहा है। डाक-टिकिट जारी हो रहा है। एकेडेमी बन रही है? ढेरों लेख छप रहे हैं। ग़ालिबमय एक वातावरण बन गया है। इसके पीछे विशुद्ध साहित्य-पूजा की भावना है या साहित्य में राजनीति का 'रस' ओत-प्रोत है? सरकारी-साहित्यिकता का यह उबाल आखिर सहसा कैसे आ गया? यदि यह साहित्य-पूजा की पवित्र भावना से प्रेरित-सम्बन्धित होता तो वास्तव में इस देश का सद्भाग्य ही समझा जा सकता था। पर यदि यह धर्म-निरपेक्ष सरकार 'पवित्र साहित्य-पूजा' से प्रेरित-प्रभावित हुई होती तो आज तक तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, निराला, प्रसाद, तुकाराम, रामदास, त्यागराज, रवीन्द्र, गडकरी, न्हानालाल, शरद् आदि अनेक ऐसे अधिकारी हैं जिनकी अर्ध शताब्दि-शताब्दी मनाने का पुण्य सरकार के पल्ले सहज ही पड़ सकता था, और राष्ट्र का साहित्यक 'सिर' उठाकर सरकार की यशोगाथा गा सकता था। ग़ालिब से स्पर्धा का कोई कारण नहीं है। मैं बतला चुका हूँ कि ग़ालिब का मेरे मन में बड़ा आदर है। पर सरकार के सहसा 'ग़ालिब-प्रेम' के प्रति मेरी आशंकाएँ हैं। और उसका कारण बहुत स्पष्ट है। शासन की वर्ग-विशेष के प्रति प्रेम-प्रदर्शन-प्रोत्साहन की प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट प्रकट होती रहती है।

जिस समय सूर-मीरा, तुलसी, कबीर के डाक-टिकिट निकलनेवाले थे, तब सरकार को सुझाया गया था कि महाकवि कालिदास का टिकिट भी प्रकाशित की जाये। सरकार जरा भी सहमत नहीं हुई, आपत्तियाँ उपस्थित की गई। कालिदास जैसा कवि भारतीय एकता और संस्कृति का एकमात्र प्रतिनिधि राष्ट्रकवि है। और वही एक ऐसा कवि हैं, जिसकी एकमात्र नाट्य-कृति 'शाकुन्तल' के प्रथम अनुवाद ने पश्चिम-जगत् में पहुँच कर भारत के साहित्यक गौरव को विदेशों में प्रतिष्ठित किया। आज विश्व की प्रत्येक भाषा में मेघदूत और शाकुन्तल के अनुवाद मौजूद हैं। भारत का यह राष्ट्रकवि समस्त विश्व का लाड़ला कवि होकर दुनिया पर प्रभावित है। किन्तु उसका डाक-टिकिट निकालने में सरकार को आपत्तियाँ थी। इसी प्रकार जब उस विश्व विभूति की स्मृति मनाने, स्मारक बनाने के लिए राज्यसभा में तत्कालीन सदस्य श्री कृष्णकान्त व्यास एवं श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया, और सदस्यों ने समर्थन भी किया तब तत्कालीन शिक्षा-मंत्री मौलाना-आजाद की ओर से छोटे-मौलाना 'श्रीमालीजी' ने राज्य सभा में सरकार को यह 'प्रस्ताव नामंजूर' का फ़तवा

दिया था। सदस्यों को अपना प्रस्ताव वापिस लेने को विवश होना पड़ा था। यह सरकार के 'साहित्यनुराग' का एक उदाहरण है।

इस घटना से सरकारी-मनोवृत्ति से विवश होकर मैंने रूस की सरकार, और उनके लेखकों की प्रमुख संस्था 'वॉक्स' से लिखा-पढ़ी की, और तत्कालीन रशिया-स्थित श्रीमती कमलारत्नम् के माध्यम से प्रयास किया तो 'रूस' ने कालिदास-स्मृति मनाने का विचार स्वीकार कर लिया। मुझसे योजना माँगी गयी। उसमे मैंने 'डाक-टिकिट' निकाले जाने का भी सुझाव दिया था। यह जानकर हमें विस्मय हुआ कि १९५६ मे जिस विशाल पैमाने पर रूस की सरकार के सहयोग से मास्को मे कालिदास-स्मृति मनायी गयी, उसके शतांश मे भी अबतक हमारे देश में नहीं मनायी गयी। उसी समय रूस-शासन ने प्रथम डाक-टिकट का प्रकाशन भी किया, और कालिदास के ग्रथो का रूसी-भाषा मे लाखो की सख्या मे प्रकाशन किया। रूस के इस आयोजन का जब हमने सचित्र-विवरण भारतीय पत्रों में प्रसारित किया तब जाकर मध्यप्रदेश शासन ने १९५८ में कवि-स्मृति दिवस मनाना आरभ किया, और जब हमने तत्कालीन राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू को रूस मे प्रकाशित डाक-टिकिट दिखलाया तब राष्ट्रपति के प्रेरित करने पर विवश होकर १९५९ में कालिदास टिकिट का प्रकाशन हुआ। आजतक भी भारत सरकार अपने महान् राष्ट्रकवि-कालिदास का स्मृति-समारोह मना नही सकी, स्मारक बनाने की कल्पना तो कोसों दूर है। जिस शासन की यह प्रवृत्ति रही है उसका सहसा गालिब शताब्दि मनवाना, और उसमें 'साहित्यानुराग-जागृत' होना वास्तव में विस्मयजनक ही है। स्पष्ट है कि यह जागरण साहित्य-प्रेरित नही, किन्तु राजनीति, और वर्ग-विशेष के अनुराग-प्रदर्शन से ही अनुप्राणित है। हम गालिब और कालिदास की तुलना नही करना चाहते, न यह संभव ही है। पर्वत-और परिमाणु का साम्य संभव ही नही। प्रश्न है कि विश्व कवि के प्रति जो सरकार उपेक्षा करती है, राष्ट्रकवि का जो समादर करना अप्रयोज्य मानती है, वह गालिब का गुण गाने लगे तो अच्छा अवश्य है, पर आश्चर्यजनक भी है। जो सरकार कालिदास के डाक टिकिट निकालने में आपत्तियाँ उठाती रही, वह गालिब का डाक-टिकिट सहज ही प्रसारित कर रही है। यह "धर्म-साहित्य वर्ग-निरपेक्ष सरकार" किस दिशा की ओर प्रवाहित हो रही है ? यही विचार योग्य है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सरकार का यह साहित्यानुराग (?) वास्तविकता से विरक्त है, वह वर्ग-विशेष के प्रति 'प्रणय-प्रदर्शन की राजनीति से ही अनुप्राणित है। इसका दूसरा उदाहरण हाल ही में सामने आया है। डी० एम० के० के अन्ना दुराई के अवसान के समय उनकी अन्तिम-यात्रा के कार्यक्रम में भारत के गृह-मंत्री का दौड़कर दक्षिण जाना, और तुरंत बाद ही स्वयं प्रधान मंत्री का समवेदना-प्रदर्शन के लिए श्रीमती अन्ना के पास पहुँचना ! क्या यह 'राजनीतिक समवेदना' 'भय' से प्रादुर्भूत नहीं थी ? यदि 'हार्दिक' होती तो क्या कारण है कि आगे देश के मूर्धन्य-मनीषी संपूर्णानंदजी के स्वर्गस्थ होने पर भारत सरकार का एक केन्द्रीय कर्मचारी भी काशी नहीं गया ? क्या यह समवेदना भेद-भाव, भय-भावना से उद्भूत 'समवेदना' नहीं है ? अन्ना दुराई ने सरकार की भाषानीति को सदा ठुकराया, भारत सरकार के तैयार डाक-टिकिट को भी जारी नही होने दिया, एन्० सी० सी० परेड के हिन्दी सकेतो को रोका, भारत सरकार के पवित्र सिद्धान्त वाक्य को मूल में स्वीकार न कर तथा 'आकाशवाणी' नाम बदलकर समय-समय पर करारी चोटें 'केन्द्र' पर कीं। उसके अंतिम-आदर के लिए 'भय की भाषा' समझने वाली सरकार दौड़ी जाये, और एक यावज्जीवन देशभक्ति से ओत-प्रोत रहनेवाले, ईमानदार, त्यागी-तपस्वी, सार्वदेशिक-विद्वान् के निधन पर केन्द्र का एक 'कारकून' भी न पहुँचे, यह सरकारी-मनोवृत्ति के समझने—संदेह करने के लिए पर्याप्त है। सम्पूर्णानन्दजी प्रथम-श्रेणी के नेता रहे है, सर्वोच्च पदों पर वर्षों रहे हैं, स्व० जवाहरलाल जी के साथी-सहकर्मी और वरिष्ठ-व्यक्ति भी थे। सारी काशी उनकी अंतिम यात्रा में सम्मिलित हुई, किन्तु (दक्षिण से आतंकित) किसी केन्द्रीय नेता को काशी पहुँचने की कतई चिन्ता नही हुई। यह प्रवृत्ति बतलाती है कि जिस तरह केन्द्रीय नेताओं का साहित्यानुराग 'राजनीति' एवम् 'वर्गाग्रह' से प्रेरित है उसी तरह उनकी शोक-समवेदना भी 'भय' की राजनीति से प्रभावित है। उसका हृदय से कोई संबंध नही है।
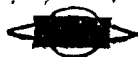
माया-शबरी

श्री कुबेरनाथ राय

विश्वामित्र दीर्घकाल से कृच्छ्र साधनापूर्ण तप कर रहे थे। दिन-मास-सम्वत्सर, वर्षा-शरद्-वसन्त, पतझार-फूल-फल—फिर पतझार— इस सारी काल की क्रिया-प्रक्रिया से तटस्थ उदासीन होकर वे भीतर की आत्मज्योति का दर्शन करने में लगे थे। अष्टपाशों को काटते हुए, माया के पंच कंचुकों को खोलते हुए, षड्रिपुओं से भयानक युद्ध करते हुए, शरीर के सारे चक्रों में शक्ति संचार करते हुए वे योगासन पर आरूढ़ थे। भोजन-पान के नाम पर वृक्ष-वृत्ति; जो आकाश दे दे, जो धरती दे दे उसीसे सन्तुष्ट! इन्द्रियों का प्रभु कुटिल इन्द्र भय खा गया कि कहीं यह ऋषि इन्द्रासन पर ही विजय प्राप्त न कर ले।

पर संयम का दुर्ग चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो कहीं न कहीं, कोई न कोई दरार या फाँक रह ही जाती है। कोई न कोई छिद्र छूट ही जाता है। ज्ञानमार्ग की यही सबसे बड़ी कठिनाई है। प्रत्येक इन्द्रिय-द्वार पर उस इन्द्रिय का अभिमानी देवता बैठा है। षड्रिपुओं के आगमन पर जरा सी फाँक पाते ही वह द्वार खोल देता है। प्रकृति मायामयी है। वह अपनी सार्थकता सिद्ध करने को सदैव तत्पर रहती है। वह चूकती नहीं।

सो एक दिन ऐसा ही हुआ। सबेरे-सबेरे ही ऋषि की नजर हंस-मिथुन पर पड़ी जो परस्पर मृणालसूत्र समर्पित कर रहे थे। फिर चारा बाँटते दो कपोत दिखे। फिर अपने कुटीर के पास नृत्यरत मयूर-समाज और आक्षितिज धूप-छाँही रेशमी हरीतिमा को देखा। गाधिपुर (वर्त्तमान गाजीपुर) के इस तपस्वी का ब्रह्मव्रतलीन मन अभी पूरी तरह स्मृतियों को मार नहीं सका था। वे दब भर गयी थी। कोमल दृश्यों को देखते ही वे एक के बाद एक मन के व्योम में उतरने लगी। उन स्मृतियों के लीला-विभ्रम, उनके कटाक्ष, उनकी सव्याज-संदर्शित मेखलाओं का कामुक प्रदर्शन, ये सभी मन के व्योम मे प्रकट होने लगे। एक-एक स्मृति एक-एक नारी बन गयी। एकान्त असहनीय हो उठा। फाँक मिल गयी। कामना-सर्प उस दरार से देह में प्रवेश कर गया। इन्द्र जीत गया। वैराग्य की पराजय हुई। अचानक एक किरात रूपसी, मयूर पंख और फूलो का मुकुट बाँधे, हाथ में वंशी लिये हुए उधर से गुंजरी। उसकी मेखला पुष्पो की थी, उसके स्तनमण्डल पर पुष्पों का हार था, उसकी हँसी में सारा प्रस्फुटित जंगल मूर्त्त हो उठता था, उसकी आँखों में उत्तर भारत के सारे देवदारु वनों की सघन श्यामल हरीतिमा उतर आयी थी। नारी क्या थी, वासना का साक्षात् रक्त कमल थी। रतनार मदपायी वासना का रूप छन्द ही मानों वंशी हाथ में लेकर सम्मुख खड़ा हो। ऋषि का ध्यानयोग तो पहले ही से विशृंखलित था, अब सम्मुख यह माया शबरी आ गयी तो ऋषि का कवि-मन एक असीम समुद्र बन गया। उन्हें लगा कि उनके समुद्रोपम मन का चन्द्रमा मन का सर्वश्रेष्ठ रत्न इस माया शबरी की नीविग्रंथि में है। विश्वामित्र गायत्री छन्द के रचयिता थे। ज्योति की उपासना का यह मत्र उन्हींका आविष्कार है। परन्तु उस दिन उन्हें माया शबरी की देह के वासना-कमल में ही सातों वैदिक छन्द दिखायी पड़े। देह क्या थी, सात छन्दों का तरंगित संगम थी। तृषा, तृषा, अति तृषा! कवि ऋषि का मन इस देह छन्द को भीतर-भीतर कल्पना द्वारा पीने लगा। बाहर-बाहर वनकन्या अपनी वंशी पर स्वरक्रीडा कर रही थी।

कवि ऋषि का हृदय मंथन शुरू हो गया। वे नारी अंगों के आदर्श छन्दों की कल्पना कर भीतर ही भीतर मानसरमण करने लगे। बाहर उनके सम्मुख शबर रूपसी खड़ी थी—पल्लव जैसे हाथ, कोमल बाँस जैसी सटकार लचीली बाहुलता,[1] वसन्तकालीन कुसुमित पर्वत के पलाश वन सी अंगअंग शोभा, पर्वत जैसी श्यामल गठित देह मानों विधाता ने शिलाखण्ड लेकर भारतीय मूर्त्तिकला का अभ्यास किया हो। और सबके के ऊपर सफेद फूलों सी दंत-पाँत और वंशीस्वर। ऋषि का मन हाथ में न रहा और उनके कल्पना-जगत् में बनते हुए, नारी रूप का एवं अंग-भंग के छन्दों का जो ध्यान था वह बाहर की इस वन-कन्या पर आरोपित हो गया। उन्हे लगा कि यह वन-कन्या नही है—कोई अप्सरा है, मेनका है। रति-क्रिया के क्षणों में कल्पित रूप का आरोपण एक साधारण मनोवैज्ञानिक

---

१. उपमा कम्बनली है। उन्होंने सीता की भुजलता की उपमा दी है "लचीले नरम हरे बाँस सी भुज-लता"

घटना है जिसका कम-वेश अनुभव सभी पुरुषों को होता है। वही विश्वामित्र के साथ घटित हुआ। ऋषि की आँखों में इन्द्रधनुष के सात रंग उतर आये। दो देहों के मिलन में मस्तिष्क से पैरों तक संचारित उद्दाम प्राणशक्ति के लय-युक्त धक्कों ने ऋषि के मन को वेसुध कर दिया—वे समझते रहे कि उनके वाहुपाश में कोई किरात कन्या, शवर कन्या या द्राविड़ बालिका नहीं, वल्कि मेनका है, स्वर्ग की अप्सरा ही उनसे प्रेम करने को उतर आयी है। ऋषि परम तृप्ति के क्षण को पाकर अंधे जैसे हो चुके थे।

मेघ वरसने के वाद आसमान शान्त और साफ हो जाता है। वैसे ही मन भी रति के वाद निर्मल शुभ्र और कामनाहीन हो जाता है। परन्तु यह रति यदि समाज स्वीकृत न हो, व्यभिचार हो तो सत्पुरुष के मन में पश्चाताप की दीपशिखा भी जलने लगती है। उसकी रोशनी से भीतर ही भीतर ग्लानि द्वारा आत्म-दाह होने लगता है। विश्वामित्र के साथ भी यही हुआ। नशा टूटते ही उन्होंने देखा कि उनके व्रतभंग का कारण मेनका नहीं, एक अवोध द्राविड़ कन्या है। ऋषि को पश्चाताप हुआ। उन्होंने अग्नि में पुराने आसन-लँगोट और मेखला को भस्म कर दिया। स्नान किया, फिर नया वल्कल देह में लपेट दण्ड-कमण्डल उठाकर उत्तराखण्ड के सघनतर वनों में प्रवेश कर गये। वहाँ वे शुद्ध मन से तपस्या करेंगे और गायत्री छन्द में दो-चार और कविताएँ लिखेंगे—यही योजना बनाकर सघन कान्तार के अगम मार्ग में अगोचर हो गये।

पर शवर कन्या ने शमी वृक्ष की तरह आर्य तेज को धारण किया और समय बीतने पर एक बालिका को जन्म देकर, वह उसे निर्जन में छोड़कर अपने कुनवे में जा मिली। सम्भवतः वह कुनवा सफेद रंग को लेना नहीं चाहता था, सम्भवतः उसका भावी पति इस गैर की सन्तान को घर में रखने को तैयार नहीं था।

मयूरों ने वालिका की धूप-वर्षा से रक्षा की। कोमल चित्तवाले कण्व ने उसे पाला। आर्य सम्राट् दुष्यन्त ने उसे प्रणयिनी वनाया। आर्यशक्ति और द्राविड़ रक्त, आर्य वीर्य और द्राविड़ रज, आर्य वासना और द्राविड़ भूमि के संयुक्त प्रयत्न से जनमी यह कन्या नये 'हिन्दू भारत' का प्रतीक वनी, जो मूलभूत आर्यावर्त से अधिक विस्तृत और व्यापक भाव का द्योतक है, जो हमारे वर्तमान का आदि रूप है। यह ऐसे ही नहीं है कि शकुंतला के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर ही इस देश का भारत नाम पड़ा। शकुंतला की मिथक वताती है कि आज जिसे हम 'भारत' कहते हैं वह आर्य-द्राविड़ दोनों वंशों का संयुक्त उत्तराधिकार है। पर जव खान्दान में कोई कपूत जन्म लेता है तो संयुक्त रूप को लात मार कर वार-वार वाँटने की धमकी देता है। वह बाहर के लोगों के उकसाने में आकर धोती खोलकर नाचता है और इतिहास का भाग्यविधाता उस समय रो देता है जव उसके नंगे नाच को ही सरकार और जनता राष्ट्रीयता और देशभक्ति मान बैठती है। और तब सारा गाँव गाय को दुह कर दूध पी जाता है और वेचारा गाय वाला अकेला पड़कर चुप लगा जाता है क्योंकि जहाँ वह मुँह खोलेगा कि दसों दिशाओं से सुनेगा 'अबे चुप !'

और उसे डर है कि वह अकेले है और सारा गाँव मिलकर न केवल उसकी गाय का दूध पी रहा है वल्कि एक दिन उसकी गाय को काटकर बोटी-वोटी करके लोग खा भी जायेंगे। गायवाला मन ही मन रोता है। उसे अपनी गाय से वड़ा मोह है। पर उसे अभिव्यक्त करने पर भी उसे शक की नजरों से देखा जायगा। अतः चुप ! सव मौन !...और इस कमीने कल्यान्त की प्रतीक्षा ! दिन आ रहा है जव एक अनात्मवादी राक्षस सारे गाँव की जीभ काट लेगा। (उसकी तो पहले से ही कटी जैसी है) और तब ५० वर्ष तक पावक-भोग सारे गाँव को करना होगा फिर शंकराचार्य जैसे महापुरुष का अवतरण और आत्मा का पुनराविष्कार ! सम्भवतः देश की यही नियति है।

कर्म-पारिजात

तो, सत्यभामा रूठ गयी।

उसे भी पारिजात चाहिए। इन्द्र के बगीचे से कुछ पुष्प-उपहार कृष्ण के पास आये। डाक का पार्सल खोलते समय मात्र रुक्मिणी ही वहाँ मौजूद थी, और कृष्ण ने रसिकतापूर्वक रुक्मिणी के केशों में पारिजात फूलों को सजा दिया। वाद में सत्यभामा को पता चला तो वह रूठ गयी। चाहे जैसे हो उसे भी पारिजात चाहिए। साम, दाम, दण्ड, भेद से या जैसे हो पारिजात लाना ही होगा।

और इन्द्र से घनघोर युद्ध करके कृष्ण लाये पारिजात। सत्यभामा ने वीर पति के अंग-क्षतों को चूमा, बहते रक्त को देखकर रो पड़ी, ग्लानि हुई; पर मन ही मन सन्तोष हुआ कि चलो कृष्ण को इसी बहाने द्वितीय इन्द्रजीत

कहाने का मौका मिला। पहला था त्रेता का अप्रतिम रावण-कुमार मेघनाद। श्रीकृष्ण के जीवन काल में व्यास, भीष्म, विदुर, संजय, युधिष्ठिर, अर्जुन तथा द्रौपदी ये सात ही जानते थे कि वे 'नारायण' हैं (अवश्य 'वलराम' को छोड़कर वे तो कृष्ण के अंश हैं, उनका अलग व्यक्तित्व नहीं)......इसीसे सत्यभामा इस बात पर इतराने लगी कि वह द्वितीय इन्द्रजीत की पत्नी है।

यह सब तो हुआ, परन्तु तीसरे ही दिन पारिजात के पौधे मुरझाने लगे, पुराने फूल सूखने लगे। स्वर्ग का पारिजात, कल्पवृक्ष का पुत्र पारिजात, स्वर्णहरित पत्रोंवाला पारिजात, श्वेत-स्वर्ण पुष्पों का पारिजात, अजर रूप-गंध वाला पारिजात—परन्तु यह सूख क्यों रहा है? क्यों इसकी पत्तियाँ मुरझा रही हैं? सभी सोचने लगे। सात्यकि और गद ने कहा—"धोखा हुआ है! नकली देकर इन्द्र ने पिण्ड छुड़ाया है?"

"फिर से चढ़ाई! इस बार तुम अकेले नही, सारे यादव चलेंगे—मैं भी चलूंगा!" नशे में घुत्त लाल आँखों वाले वलराम ने कहा।

यादवों में गणतंत्र था। कृष्ण आधे के मुखिया थे—आधे के मालिक थे बूढ़े अक्रूर जी। कृष्ण ने उनकी ओर देखा। उनको हिचकते देखकर उस आधे के युवकों का नेता कृतवर्मा बोल उठा—"अरे, इनसे क्या पूछते हो भैया! ये जिन्दगी भर के लोढ़ू...। मैं कहता हूँ, चढ़ाई! मैं नेता हूँ! वाप रे, यादवों का अपमान! इन्द्र की हिम्मत!' ऐसे ही औरों ने भी कहा। और तब यादवों की उस विधान सभा का निर्णय क्या हुआ, यह सुनने को वहाँ कोई रहा नहीं। हल्ला-गुल्ला में निर्णय यही मान लिया गया कि चढ़कर इन्द्र के माथे पर लाठी बजा ही दी जाय। और सारे यादव हथियार कंधे पर रख रख कर मूंछे ऐंठते हुए बाँह उठाकर लम्बी-चौड़ी हांकते सभास्थल पर पहुँचने लगे। चारों ओर गर्जन-तर्जन होने लगा।

इन्द्र चिन्ता में पड़ गये। कृष्ण वलराम की शक्ति को वे जानते थे। "हो सकता है इस बार वे यादवों का ही देवमण्डल बैठा दें, जैसा कि एक बार बलि ने दानवों का देवमण्डल बैठा कर सफलतापूर्वक सृष्टि सचालन किया ही था। और पारिजात तो नकली नहीं, असली दिया गया था। क्या बात हुई कि धरती पर उसका स्वभाव और हो गया—"आदि बातें उन्होंने नारदजी को सुनायीं। "नारदजी, कुछ करिये। नहीं तो मेरी इज्जत गयी।" इन्द्र ने आर्त्त स्वर से कहा।

नारद वड़ी देर तक इन्द्र की चिन्ता की उपन्यास के पाठकों जैसी मौज लेते रहे। अंततः उन्होंने सान्त्वना दी—'इन्द्र घबड़ाओ मत। सत्यभामा को मैंने ही उकसाया था। मैं अब जाकर सब ठीक कर देता हूँ। उन्हें सब समझा दूंगा।"

सृष्टि के चलते-फिरते कल्पवृक्ष-स्वरूप नारदजी ने धरती पर, यानी अपने गुजरात में सीधे जूनागढ़ के पास समुद्र-मण्डल के तट पर द्वारका में अपनी ढेंकी[1] को उतार दिया, और विना किसी विश्राम के यादव सभा में पहुँचे। वहाँ पर तो कवच-सनाह बाँधे जा रहे थे। कृष्ण उद्धव को कागज-पत्र और खजाने की चाभी दे रहे थे और काम समझा रहे थे। द्वारका के महाजन शंकर साहु सेना के लिए आटा-सत्तू-कलेवा-पाथेय को लदवा रहे थे। चारों ओर यादव लोग बहक रहे थे—"चलो इस बार स्वर्ग ही लूट लें। देवता क्या हमसे ज्यादा शराब पी सकते हैं? अरे हमसे कौन टकरायेगा?" आदि, आदि ध्वनियाँ उठ रही थीं।

नारदजी ने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया। यों वलराम मानते ही नहीं थे। पर किसी तरह वे भी रास्ते पर आ गये। तब सबको सुव्यस्थित करके नारद जी का साहित्यिक हिन्दी में भाषण हुआ—"यादवो, पारिजात नकली नहीं, असली ही है। परन्तु इस धरती पर आकर उसका प्राण-धर्म बदल गया है। धरती की माया है, जन्म, प्रणय और मृत्यु। सो इस माया का प्रवेश इस स्वर्ग पारिजात में भी धरती की जलवायु में आते-आते हो गया।... धरती कर्मभूमि है-और देवलोक भोगभूमि। भोगभूमि में कल्पवृक्ष विना किसी विशेष प्रयत्न के अपने-आप बढ़ता है, फूलता है और मुरझाता नहीं। परन्तु धरती पर तो इसे 'आलवाल'[2] बना कर पानी देना होगा, समय-समय पर गोड़ना होगा। तब यह हरा-भरा रहेगा। इसे गहगहा कुसुमित और हरा-भरा रखना है तो कर्म-जल से इसे

१. नारद जी का वाहन लोककथाओं में धान कूटने की ढेकी है।

२. आलवाल=पौधों और पेड़ों को पानी से सींचने के लिए उनके चारों ओर बनी वृत्ताकार गहरी जगह। 'थाला' भी कहीं कहीं कहते हैं। पुराना शब्द है। पर अब भी चलता है।

सिंचित करो—धरती के धर्म का निर्वाह करो। यहाँ पर आकर पारिजात अपने स्वभाव को धरती के अनुरूप ढाल चुका है। विष्णु भी जब धरती पर अवतार लेते हैं तो, यहाँ के स्वभाव के अनुरूप अपने को ढाल लेते हैं, तो यह तो महज एक पुष्पवृक्ष है। वे भगवान् भी जन्म लेते हैं, तो प्रणय करते हैं, राजकाज करते हैं, अपनी खेती-बारी लड़ाई-झगड़ा सँभालते हैं। रामावतार में उनकी अपनी निजी सवा सौ एकड़ की खेती थी—वे किसानों के अन्न से अपना पोषण थोड़े करते थे, खुद कमाते थे। यह तो कर्म-भूमि है। अतः स्वर्ग-पारिजात यहाँ आकर कर्म-पारिजात हो गया—तो फिर आश्चर्य क्या?"

सारे यादव इस तर्क को मान गये। इस घटना के तेंतीस वर्ष बाद महाभारत की लड़ाई में कृष्ण को कर्म-भूमि वाली बात याद थी। वे सदैव कहा भी करते थे, "धरती कर्मभूमि है।" पर साथ ही उन्होंने अपना आविष्कार जोड़ रखा था—"पर कर्म को निरासक्त भाव से, कर्त्तव्य-रस के लिए, फल के लिए नहीं, करना चाहिए।"

जिस समय यह घटना घटी कृष्ण पचास या पचपन वर्ष के विदग्ध नायक थे। उन दिनों औसत आयु थी सौ वर्ष या सवा सौ वर्ष। अतः पचास वर्ष या साठ वर्ष का वही महत्त्व, बल आवेश था जो आज तीस-पैंतीस का है, क्योंकि आज की औसत स्वस्थ पुरुष की आयु है साठ वर्ष। कृष्ण के जमाने में हिन्दुस्तान में 'साठा तब पाठा' की कहावत एक तथ्य थी। तेंतीस वर्ष बाद ८३ वर्ष की आयु में कृष्ण अधेड़ होने लगे, तो उन्होंने शस्त्र से युद्ध न करके बुद्धि से ही महाभारत के समर-क्षेत्र में युद्ध किया। अर्जुन उस समय तिरसठ वर्ष के गभरू पट्ठे जवान थे।[1]

---

१. ऊपर की आयु-गणना श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार है।

आ जाऊँगा

श्री रामस्वरूप खरे

जब हो मेरी आवश्यकता महसूस तुम्हें—
आवाज जरा दे देना, मैं आ जाऊँगा!

मन मिला न जिसका, उसे निकटता दूरी है,
आने की सचमुच, उसको ही मजबूरी है।
चाहे पहाड़ हों खड़े, पड़ें सागर पथ में—
मन पास सदा तो दूरी भी क्या दूरी है॥

जब सूझे नहीं तुम्हें पथ, मुझे बुला लेना—
बन मैं आशा की किरण, तिमिर ढा जाऊँगा!

चलना पग सँभल-सँभल के रख कुश-काँटे हैं,
यह अनजानी है डगर, देश है अनजाना।
सौन्दर्य-सुधा से स्नात मूर्तियाँ टेरेंगी—
हैं आकर्षण भी बहुत, कहीं मत रुक जाना॥

जब लगे डूबने नाव, याद मेरी करना—
पतवार स्वयं लेकर मैं पार लगाऊँगा?

मत मुझे समझना दूर, न इस भ्रम में रहना,
जो भी कहनी हो बात हृदय की कह देना!
कर सकता विलग न कोई भी हम दोनों को—
जो भी आयें बाधायें, हँसकर सह लेना॥

जब लगें काँपने पाँव, मुझे बतला देना—
दे सबल सहारा, मैं मंजिल बन आऊँगा!
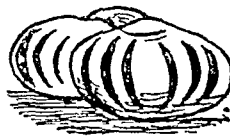
डॉ० सम्पूर्णानन्दजी और 'शान्त-रसांक'

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

दिनांक १० जनवरी, १९६९ को हिन्दी का एक और प्रधान स्तंभ ढह गया, जिसे देश 'सम्पूर्णानन्द' और कुटुम्बी, स्नेही, शिष्य 'बाबूजी' या 'दद्दूजी' कहा करते थे। वे सरस्वती के ऐसे लाड़ले थे कि निधन के २० दिन पूर्व, उनके ७९वें जन्म दिवस पर, उनके सद्यःप्रकाशित वैदिक ग्रन्थ का विमोचन किया गया। उनके लगभग चालीस प्रकाशित सद्ग्रंथों में एक उनके द्वारा सम्पादित 'प्रेमा' (मासिक, जबलपुर) का, अक्टूबर, १९३१ में प्रकाशित, 'शान्त-रसांक' भी है; जिसका संक्षिप्त परिचय देकर मैं उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित करता हूँ।

सन् १९२९ में बाबू गोविन्ददासजी ने, पं० द्वारका प्रसाद जी मिश्र के सम्पादन में, 'लोकमत' दैनिक प्रकाशित किया था। प्रतिदिन सोलह अखबारी पृष्ठों का सचित्र अक निकलता था। इसमें सम्पूर्णानन्दजी के अनुज, बाबू परिपूर्णानन्द जी वर्मा, सह-सम्पादक होकर आये थे। मैं प्रतिदिन चित्रों के ब्लाक बनवाकर दिया करता था। इस प्रकार परिपूर्णानन्दजी के सम्पर्क में आया। साल-डेढ़-साल बाद 'लोकमत' ब्रिटिश-सत्ता का ग्रास बन गया तथा बाबू साहब और मिश्रजी को 'कृष्ण-मंदिर' में ले लिया गया। मैं एक मासिक पत्र प्रकाशित करने की चिन्ता में था। मैं अज्ञात् भी था और अनुभवहीन भी। परिपूर्णानन्दजी अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर धाराप्रवाह लिखने लगे थे। 'सरस्वती' में भी उन्हें स्थान प्राप्त था। सम्पादन का भी अनुभव हो चुका था। अपने पूज्याग्रजों के सहयोग के अतिरिक्त उन्हें काशी-प्रयाग के साहित्यकारों की मैत्री भी प्राप्त थी। उनका प्रोत्साहन और सहयोग मुझे मिल गया। उन्हीं के भरोसे 'प्रेमा' का प्रवेशांक अक्टूबर, १९३० में प्रकाशित हो गया। 'प्रेमा' तो तीन साल में ही काल-कवलित हो गई, परन्तु वर्मा-बन्धुओं की कृपा तथा स्नेह का अक्षुण्ण भागीदार हो गया।

परिपूर्णानन्दजी ने साल में दो रस-विशेषांक प्रकाशित करने की योजना बनाई। ये अंक निकल पाये : हास्य-रसांक-अप्रेल, १९३१, सम्पादक—स्व० बाबू अन्नपूर्णानन्द-जी वर्मा; शान्त-रसांक-अक्टूबर, १९३१, सम्पादक स्व० डॉ० सम्पूर्णानन्दजी; श्रृंगार-रसांक अप्रेल १९३२, सम्पादक पं० लोकनाथ जी द्विवेदी सिलाकारी; करुण-रसांक, अक्टूबर, १९३२, सम्पादक स्व० पं० केशवप्रसाद जी पाठक। ऐसा विचार था कि कम-से-कम एक वीर-रसांक तथा एक शेष-रसांक प्रकाशित कर दें तो हिन्दी में रस-कोश उपलब्ध हो जायगा। जो नहीं होना था, वह नहीं हो पाया।

शान्त-रसांक का सम्पादकीय पूज्य सम्पूर्णानन्द जी ने इस प्रकार आरम्भ किया है :—

" 'प्रेमा' के सम्पादक-युगल ने मुझे अपने शान्तरस-विशेषांक का सम्पादक बनाकर मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया। यह काम मेरे सिर पर ऐसे समय आन पड़ा, जब मुझे अंग्रेजी दैनिक 'टू-डे' का सम्पादन-भार ग्रहण करना था। नये दैनिक के सम्पादक के सिर हजार झगड़े रहते है। सुयोग्य सहायकों के होते हुए भी मैं उनसे मुक्त नहीं था। दूसरा अन्याय मेरे साथ यह किया गया कि मुझे पर्य्याप्त समय नहीं दिया गया। मैं एक मास और माँगता था, पर मेरी बात न मानी गयी। तीसरा अन्याय जो दूसरे से भी अधिक दुःखद प्रतीत हुआ, यह किया गया कि पत्र के आकार के विषय में मुझे पूर्ण स्वातन्त्र्य नहीं दिया गया। मेरी समझ से इस अंक में (जो १२९ पृष्ठों का है) अभी कम-से-कम ४० पृष्ठ और होने चाहिए थे। परिणाम यह हुआ कि पारसी-दर्शन, ईसाई-दर्शन, मंत्रशास्त्र, सूफीमत, ईसाइयों, सन्तमत के योगी-सम्प्रदाय, पाश्चात्य दार्शनिक जैसे प्लेटो, हीगेल, बर्गसन इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों पर कुछ भी प्रकाश न पड़ सका। फलतः अंक निकला सही, पर अधूरा निकला। जिन विद्वान् लेखकों ने अपनी रचनाओं से इसे विभूषित किया है, मैं उनका ऋणी हूँ, पर खेद यह है कि जैसी माला में इन रत्नों को पिरोना चाहता था, वह न बन सकी। इसके लिए उनसे और सुज्ञ पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। मेरी अस्वस्थता और समयाभाव की कठिनाई के कारण अन्त में बहुत-सी त्रुटियाँ रह गयी हैं—इनके लिए मैं सबसे पहले 'प्रेमा' के स्थायी सम्पादकों से क्षमा-प्रार्थी हूँ—पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जितना स्वातंत्र्य इस अंक के लिए मुझे चाहिए था, वह मेरे दुर्दैव से मुझे न मिल सका।

"हास्य-रसांक निकालने के बाद 'प्रेमा' के संचालकों

का साहस बहुत बढ गया था। उन्होंने श्रृंगारादि चलते रसों को छोड़कर, सीधे शान्त-रसांक निकालने का निश्चय किया। कारण शायद यह था कि इसके लिए मुझ जैसा शान्तरस का खब्ती सम्पादक उन्हें सुगमता से मिल गया। जो कुछ हो, उन्हें अब अनुभव हो गया होगा, और यदि न हुआ होगा तो बिक्री का हिसाब मिलाने पर हो जायगा कि उन्होने भारी भूल की। शान्तरस का अंक निकालना सुकर नहीं है। कारण यह है कि इसके प्रेमी कम है। भारत धर्म-प्रधान देश माना जाता है और वक्त-बे-वक्त पढ़े-लिखे भारतीय भी कपिल, कणाद, व्यास, शकर आदि के नाम लेकर 'इडियन फिलॉसफी' के बल पर बड़प्पन की डीग मार लेते हैं, पर बात सच्ची यह है कि इस रस के प्रेमी बहुत कम है। साहित्य के बहुत-से मर्म्मज्ञों ने तो यह व्यवस्था दे दी हे कि शान्तरस कोई रस है ही नही। शृंगारस की तो यह महिमा है कि—

"अनबूड़े बुड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।'

"और इन 'सब अग बूड़ने वालों, को जो आनन्द मिलता है, वह 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है। पर जिसका यह दावा है कि उसमें, सब अग बूड़ने' से साक्षात् 'ब्रह्मानन्द' प्राप्त होता है, उसे लोग इसे (शान्त) मानने से ही आनाकानी करते है। ठीक है। जहाँ पूर्ण शान्ति है, वहाँ मौन है, अर्थात् वाणी का अभाव है। फिर 'रस' कहाँ से आए? बहुत माथापच्ची करने पर विद्वानों की एक पर्याप्त संख्या ने कृपा करके यह निर्णय किया कि रौद्र-वीभत्सादि की भाँति शान्ति को भी रसों की पक्ति में बैठने का अधिकार है, पर यह बड़ा ही 'शुष्क' है। यह ठीक है। हम इसे स्वीकार करते हैं। यहाँ आर्द्र सामग्री से बहुत कम काम लिया जाता है। इसको हम दोप नहीं मानते।

"हमारी समझ में तो दो ही मुख्य रस है—शृंगार और शान्त। आगे चलकर हम दिखलावेगे कि श्रृंगार भी शान्त का ही एक भेद है। शृंगार और शान्त का सम्बन्ध बहुत पुराना है। भोगी से योगी हो जाने के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। ये रस दोनो किनारो पर है। जीव इन्हीं के बीच मे मँडराया करता है। अन्य रसो का उन्माद क्षणिक होता है। इनके द्वारा सारा जीवन रँग जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में एक विशेषता आ जाती है। अन्य रस इन दोनों में से किसी एक के साथ गौणरूप में पाये जा सकते हैं, पर ये दोनों एक साथ नही टिक सकते। जो शृंगारी है, वह शान्त नही, जो शान्त है, वह शृंगारी नही। यह लोगों का पुराना अनुभव चला आया है। इसीको लक्ष्य करके भर्तृहरि ने लिखा था।—

एको कान्ता सुन्दरी वा दरी वा,
एको वासः पत्तने वा वनेवा।
एकं मित्रं भूपतिर्वा यती वा,
एको देवः केशवो वा शिवो वा॥"

इसके बाद मोक्षानुभव-जन्य रस को शान्त रस मानते हुए विषय का गभीर विवेचन किया गया हे। उसके सम्पूर्ण पाठ से ही ज्ञान तथा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। मुझमें उसका सारांश देने की क्षमता नहीं। सच तो यह है कि 'साहस बहुत बढ़ जाने के कारण, शान्त-रसाक का सम्पादन करवा लिया था। समझ-बूझ कुछ नही थी। अब तीन-बीसी-दस पर कुछ समझने का प्रयत्न करते रहते हैं।'

अंक की अन्य सामग्री कैसी-क्या थी, उसका अन्दाज विषय-सूची से ही लग सकता है, जो निम्नाकित है :—

चित्र-संख्या––१९ ।

उर में घाव लिए हँस दो तो....

श्री भगवती लाल व्यास

जो गागर कल वेढब छलकी, रीती आयी थी पनघट को,
डोली जो कल उठी यहाँ से कभी जाएगी ही मरघट को ।
पड़ी न यम की छाया जिस पर ऐसी उमर नहीं दीखी है,
उलट दिया है वृद्धापन ने हर यौवन के घूँघट-पट को ।

लोगों को तो मिल जाते कहने सुनने को लाख बहाने,
किन्तु बीतती जो जिस पर है वही जानता, जग क्या जाने ?

किसने समझीं इस दुनिया में पाप-पुण्य की वर्तुल राहें ?
कौन जिया है जग में केवल दया-धर्म की लेकर चाहें ?
देवों का सम्मान बढा तो सबने पावन होना चाहा,
मंदिर पर पहरे बैठाये पड़ें न उन पर जग की छाहें,
धोने को तो अधिक भयंकर इससे भी हैं पाप पुराने,
कारावद्ध देवताओं पर बीत रही वह जग क्या जाने !

हमने कैद किया तुलसी को हर घर में और हर आँगन में,
बेकसूर पावस को बाँधा हर भादों औ हर सावन में,
पर हम दबा नहीं है पाये कोइल के सुहाग की बिंदिया,
पतझड़ शंख बजाता आया हर अमराई, हर आँगन में,
पतझड़ को भी बसने को यूँ ही थे क्या कुछ कम वीराने !
किंतु उसे अमराई भायी क्यों, यह हम सब कैसे जाने !
सूरज का उत्थान देखकर चन्द्र मलिन क्यों हो जाता है ?
शहनाई जब गाती है तब मातम क्यों अकुला जाता है ?
तुम मानो या भले न मानो, मुझे स्पष्ट यह दीख रहा है,
दर्द सभी की गाँठ बँधा है, पीड़ा छूट नहीं पाता है !
रोने को तो मिल जाते हैं इस दुनिया में लाख बहाने,
उर में घाव लिये हँस दो तो तुम्हें मनस्वी दुनिया जाने !

तिब्बत में भारतीय संस्कृति का प्रभाव

डा० वासुदेव उपाध्याय

तिब्बत का पठार हिमालय के उत्तर दिशा में स्थित है जो समुद्रतल से अट्ठारह हजार फुट ऊँचा है। उत्तर में क्यूनल्यून की पर्वत-श्रेणियाँ तथा दक्षिण में वाहरी हिमालय पर्वतमाला से घिरा हुआ है। भारत से वहाँ तक पहुँचने के लिए दो सुगम मार्ग हैं—(१) उत्तर प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी पहाड़ी में 'नीति' नामक दर्रा है जो व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। उसके द्वारा पहाड़ी लोगों तथा भोटियों में सामग्री का आदान-प्रदान होता रहता है। (२) दूसरा विख्यात मार्ग दार्जिलिंग के समीप गांगटोक होकर ल्हासा जाता है। इसीके द्वारा राजकीय आवागमन होता है। भारतीय सामान्यतः गांगटोक के मार्ग से तिब्बत जाते थे। इस पठारी भूभाग का इतिहास सातवीं शती तक अन्धकारमय था। वहाँ अधिकत्तर असभ्य जातियाँ निवास करती थीं और उनका अपना गुप्त मत था जिसे वोन-पा का नाम दिया गया है। वोन-पा मतानुयायी मंत्र-तंत्र में विश्वास करते थे जो भारतीय तंत्रयान (बौद्धधर्म की तीसरी शाखा) से मिलता-जुलता था। सातवीं शती में तिब्बत के निवासियों का सम्पर्क वाहरी लोगों से हुआ। चीन के हानवन्शी राजा ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया जो इसके सम्पर्क का श्रीगणेश था। तिब्बत के शासक गम्पो ने नेपाल नरेश अंशुवर्मा की राजकुमारी से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर बाहरी सम्पर्क का विकास किया। उस समय तक वहाँ बौद्ध मत का प्रसार हो चुका था, अतः विवाह के क्रम में नेपाल की राजकुमारी बौद्धमत के देवता अक्षोभ्य, मैत्रेय तथा शाक्यमुनि की प्रतिमाएँ तिब्बत लेती गईं। यह कार्य तिब्बत में ज्ञान प्रसार का माध्यम बना और भोटिया लोगों में जिज्ञासा बढ़ने लगी। गम्पो को भारतीय धर्म पर आस्था हो गयी और उसने अनेक व्यक्तियों को भारत जाकर उनकी लिपि एवं साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा। यद्यपि तिब्बती लोगों को प्राचीन धर्म वोन-पा से संघर्ष करना पड़ा तथापि प्रारम्भ में राजाश्रय पाकर बौद्धधर्म का प्रचार बढ़ता गया। पूर्वमध्य युग में पूर्वी भारत में तंत्रयान का प्रचार हो गया था, तथा उसी भूभाग से तिब्बती लोगों का अधिक सम्पर्क रहा। अतएव से, जो तंत्रयान (यंत्रयान) का गढ़ था, भारतीय पण्डित वहाँ जाकर धर्मप्रचार करते रहे तथा क्रमशः भारतीय संस्कृति का प्रसार तिब्बत में बढ़ता गया। इस धर्म-प्रचार के कार्य में पद्मसम्भव तथा शान्तिरक्षित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आठवीं शती में शान्तिरक्षित नालंदा से तिब्बत पहुँचे किन्तु भोटिया लोगों ने उनका विरोध किया। इस कारण शान्तिरक्षित अपने उद्देश्य की पूर्ति न कर सके तथा भारत लौट आये। तिब्बत के शासक का समर्थन रहने पर भी जनता के घोर विरोध के कारण भारतीय भिक्षु को स्वदेश लौटना पड़ा। तंत्रयान के प्रबल समर्थक पद्मसम्भव को उस मार्ग में पर्याप्त सफलता मिली। ल्हासा के समीप उसके लिए ओदन्तपुरी के सदृश मठ तैयार किया गया। जनता में मंत्रयान की विचारधारा को भर कर पद्मसम्भव ने भोटिया लोगों में बौद्धधर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। इस सफलता के कारण तिब्बत में पद्मसम्भव को अधिक आदर मिला और वे देवतुल्य माने जाने लगे। नवीं शताब्दी में ल्हासा से तिब्बत के शासक का पश्चिमी भाग में स्थानान्तरण होने पर वहाँ अनेक सुन्दर मठ तैयार किये गये। यह बौद्ध भिक्षुओं के लिए प्रसन्नता की बात थी। इस प्रकार बौद्धधर्म की लोकप्रियता बढ़ने लगी। पश्चिमी तिब्बत के शासक ने भोटिया लोगों को कश्मीर में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जहाँ उन्होंने बौद्धधर्म का अध्ययन किया। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर तिब्बत के साधुओं ने भारतीय ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया जिससे तिब्बत में ज्ञान का प्रसार होने लगा। बुद्धधर्म का इतना प्रचार होने पर भी गम्पो की तीसरी पीढ़ी में भारतीय धर्म का गहरा विरोध हुआ था। शासक बौद्धमत का शत्रु बन बैठा, इस कारण मठ जला कर भस्म कर दिये गये, प्रतिमाएँ ध्वस्त कर दी गयीं, तथा धार्मिक कृत्य बंद कर दिये गये। बौद्ध भिक्षुओं के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना घोर पाप समझा जाता था किन्तु तिब्बत के राजा की आज्ञा हुई कि सारे भिक्षु गृहस्थ होकर जीवन व्यतीत करें। अतएव बौद्धधर्म को कड़ा धक्का लगा, तथा मत का प्रचार समाप्त सा हो गया। प्रायः सौ वर्षों तक भिक्षु जनता के सामने न आ सके। चीन के इतिहास से पता चलता है कि राजा शराबी, लम्पट तथा क्रूर हो

गया। मंत्रियों के आतंक के कारण भिक्षु पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने लगे। मन्दिरों से मूर्तियाँ हटा दी गयीं, वे नीच कामों के केन्द्र हो गए तथा मन्दिरों के द्वार पर शराब पीते भिक्षु दृष्टिगोचर होने लगे। बौद्ध ग्रंथों को पर्वतों की कन्दराओं में डाल दिया गया जिससे उन्हें कोई पढ़ न सके। ल्हासा के समीप इस प्रकार की दुर्दशा तथा दुखद स्थिति के कारण उस समय भिक्षु नाम का कोई व्यक्ति वहाँ न रह पाया। उस परिस्थिति में भी पश्चिमीय तिब्बत के लोग भिक्षु जीवन यापन करते रहे। भिक्षुओं का मूल्यवान वस्त्र पहनावा हो गया तथा साधारण भारतीय बौद्ध भिक्षुओं से उनका रहन-सहन ऊँची श्रेणी का था। चीवर नाम की कोई वस्तु न रही।

ग्यारहवीं शती से तिब्बत में विघ्नों का अन्त हो गया। बौद्ध-धर्म की दुखद कहानी सभी भूल गये। विक्रमशिला के प्रसिद्ध पण्डित (भिक्षु) दीपंकर श्रीज्ञान का तिब्बत में शुभागमन हुआ जिन्होंने बौद्ध-धर्म में सुधार लाने का प्रयत्न किया। कहा जाता है कि दीपंकर ने अपने जीवन के तेरह अमूल्य वर्षों को बौद्धधर्म की नींव सुदृढ़ करने में लगाया। उन्होंने तिब्बती जनता में युद्ध-प्रेम को कम किया। भोटिया लोग युद्ध में दक्ष थे तथा उन्होंने चीन, तुर्किस्तान के कुछ भू-प्रदेशों को जीत लिया था। ऐसे लोगों में अहिंसावादी धर्म का प्रचार करना साधारण व्यक्ति की शक्ति के बाहर की बात थी। किन्तु दीपंकर द्वारा तंत्रयान के प्रचार से युद्ध की लिप्सा जाती रही। बोन-पा वालों ने इसे अपनाया। बौद्धमत के प्रचार से तिब्बती जनता में आमूल परिवर्तन हो गया तथा वे अहिंसा के विचार से ओतप्रोत हो गये। तांत्रिक मत का सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया। यह कहना युक्तिसंगत होगा कि महायान के सिद्धान्त को चीनियों ने तिब्बत में फैलाने का प्रयत्न किया था, किन्तु नालंदा तथा विक्रमशिला के भिक्षुओं द्वारा तंत्रयान का गम्भीर रूप से प्रचार किया गया। इस कारण तिब्बत मंत्रयान का अनुयायी हो गया। आचार्य अतीस के सतत प्रयत्नों तथा लगन के कारण योगाचार दर्शन का अधिक प्रसार हो सका। उन्होंने भिक्षुओं में पवित्रता तथा तपस्या के भाव आरोपित किये। गूढ़ रहस्यमय कार्यों को निरुत्साहित कर तिब्बत में बौद्धधर्म की गहरी नींव डाली। इस कारण मंत्रयान कई शतियों तक समादर पाता रहा। चौदहवीं शती के पश्चात् इस तिब्बत के बौद्धमत में एक नया मोड़ देखते हैं। उसकी प्रधानता और शक्तिशाली विचार को लेकर लामा प्रथा का जन्म हुआ। कालान्तर में उसकी विस्तृत भावना के कारण प्रमुख लामा दलाई लामा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह जन्म के सिद्धान्त पर अवलम्बित है। दलाई लामा बार बार जन्म लेते हैं और वहाँ के सयाने कुछ लक्षणों के सहारे घोषित करते हैं कि दलाई लामा अमुक स्थान में अमुक बालक के रूप में अवतरित हुए हैं। आजकल तिब्बत के दलाई लामा चीनियों द्वारा देश पर अधिकार हो जाने के कारण भारत में निवास कर रहे हैं।

भारतीय कला का प्रभाव

तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रसार से वहाँकी कला भी प्रभावित हुई और वहाँसे अनेक भारतीय ढंग की कलात्मक कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। सारी तिब्बती कला में बुद्ध, बोधिसत्व, अन्य देवी-देवताओं तथा जातकों की कथाओं का प्रदर्शन मिलता है। अधिकतर तिब्बत के कलाकार सूती कपड़े, मिट्टी की दीवाल पर तथा लकड़ी की पट्टियों पर चित्र तैयार किया करते थे। हस्तलिखित पोथियों को चित्रित करने में भी हस्त कला का प्रदर्शन कलाविद करते रहे। यदि कलात्मक नमूनों का विभाजन किया जाय तो निम्नलिखित उप-विभाग हो सकते हैं।

(१) लामा साधुओं द्वारा चित्रित देव समूह। उसमें बोधिसत्व को केन्द्र में स्थान दिया जाता था तथा उसके चारों ओर खचित वृत्त में बुद्ध के चित्र बनाये जाते थे।

(२) साधारण जनता द्वारा स्वीकृत या प्रचलित विचारों के अनुकूल स्वर्ग तथा नरक की कल्पना का प्रदर्शन। इसमें देवता तथा असुर को क्रमशः मध्य तथा बहिर्स्थान दिया जाता था।

(३) तिब्बत के प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण।

(४) मानव जीवन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण (जैसे जीवन वृक्ष)।

तिब्बत के धार्मिक चित्रों के बनाने में कलाकार भारतीय रंग तथा कूँची का प्रयोग करते थे। प्रारम्भिक अवस्था में अजन्ता का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। मिट्टी की दीवारों पर लेप लगाकर चित्र तैयार किये जाते थे। तिब्बत

के पश्चिमी भाग की चित्रकला सर्वथा भारतीय प्रभाव से ओत-प्रोत है किन्तु पूर्वी भाग में चीन का प्रभाव झलकता है। तिब्बती कला की एक विशेषता यह है कि सीमित क्षेत्र में ही प्रतीक तथा वर्णनात्मक विस्तार का समुचित समावेश पाया जाता है। तिब्बत के कलाकार १०×८ फुट के क्षेत्र में सैकड़ों आकृतियाँ स्पष्टतया चित्रित करने में दक्षता दिखला चुके थे। देवताओं के चित्रों की अधिकता थी किन्तु अन्य साधु-सन्तों के चित्रों को भी स्थान दिया गया था। जैसा कहा गया है, समाज में स्वर्ग एवं नरक की भावना का प्रदर्शन तिब्बती कला की निजी विशेषता है। संसार में मनुष्य जीवन की लीलाओं का चित्रण भी स्थान पा चुका था। नरक की घोर यातनाओं तथा देवता-असुर संग्राम के चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किये गये हैं। तिब्बत के कलाकार सांसारिक सुख एवं दुख को जनता तक चित्रों द्वारा पहुँचाने में कुशल सिद्ध हुए। धार्मिक प्रदर्शन में देवी-देवताओं के चित्रों का मूल्याङ्कन आवश्यक हो जाता है। उस देवसमूह में बुद्ध के चौबीस, बोधिसत्व के बारह, देवियों के नौ, लोकपालों के बयालिस तथा साधारण देवताओं के चित्र मिलते हैं। उसके प्रदर्शन की ऐसी सुन्दर रीति तिब्बत में अपनायी गयी थी जिसका भारतीय स्वरूप अज्ञात है। देव समूह को कई वृत्तों द्वारा प्रदर्शित करते थे। मध्यवृत्त के केन्द्र के समीप प्रमुख देवता का चित्र खींचा जाता था तथा अन्य बाहरी वृत्तों में गौण देवता चित्रित किये जाते थे। उसका साधारण भाव यह था कि प्रधान देवता केन्द्रीभूत थे। अन्य देवताओं को गौण स्थान देकर दूसरे या तीसरे वृत्त में चित्रित किया जाता था। तिब्बत के कलाकार अधिकतर लामा होते थे जिन्हें अपने विषय का गम्भीर ज्ञान होता था। लामा विशेषतया कनवास-(किर्मिच) को आधार के लिए चुनते थे। गुनगुने पानी में सफेद खड़िया गलाकर कनवास पर लेप लगाया जाता तथा सूख जाने पर चिकने पत्थर से उस जमीन को रगड़ा जाता था। वे वनस्पति से तैयार रंगों तथा खनिज रंगों तथा उनके सम्मिश्रण का प्रयोग करते थे। ल्हासा के समीप नीला तथा हरा रंग और पूर्वी तिब्बत में बसंती पीला रंग सरलतापूर्वक तैयार किया जाता था। भारत से सिन्दूरी, नेपाल से सुनहले रंग तथा बर्मा से लाख मँगा कर तिब्बती चित्रों में उनका प्रयोग किया जाता था। वहाँके चित्रों के माप में अशुद्धता के लिए स्थान न था, क्योंकि कलाविद् मापयंत्र का समुचित प्रयोग जानते थे। प्रारम्भिक स्थिति में साधारण व्यक्ति का जो कुछ कार्य हो, चित्रों की अंतिम अवस्था में कुशल लामा ही कार्य सम्पादन करते थे जिससे किसी स्थान पर त्रुटि न रहने पाये। झण्डों के चित्रण में केवल लामा रंग भरता था। इस प्रकार तिब्बती चित्रों में भारतीय शैली का अनुकरण पाया जाता है।

भारतीय पण्डितों का साहित्यिक कार्य

यद्यपि सातवीं शती में बौद्ध धर्म तिब्बत में प्रवेश कर चुका था तथापि सौ वर्ष बाद भी कोई भोट देशीय न तो भिक्षु बना और न वहाँ कोई ऐसा केन्द्र (मठ के रूप में) ही स्थापित हो सका जहाँ पठन-पाठन का कार्य-क्रम चल सके। भोट राजा की प्रार्थना पर नालंदा के महान् आचार्य शान्तिरक्षित तिब्बत गये और राजा की इच्छानुसार आचार्य ने एक मठ की नींव डाली। विहार-निर्माण के आरम्भ करते ही राजा की इच्छा हुई कि भोटदेशीय व्यक्ति दीक्षित किये जायँ, इस कारण नालंदा के सर्वास्तिवादी आचार्यों को बुलाया गया। शान्तिरक्षित के निधन हो जाने पर आचार्य विमल मित्र, बुद्ध गुह्य, शान्तिगर्भ तथा विशुद्धसिंह की सहायता से संस्कृत ग्रथों का अनुवाद आरम्भ हुआ। नवीं शती से तिब्बत के शासकों ने अनुवाद कार्य में अधिक ध्यान दिया। इस कार्य में सहायता करने के लिए नालन्दा से विद्यार्थीगण भी निमन्त्रित किये गये। उनमें जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि; बोधिमित्र आदि उल्लेखनीय हैं। उन्हें इस कार्य में भोट विद्वान् रत्न रक्षित, धर्मताशील, ज्ञानसेन, जयरक्षित आदि ने सहायता दी। सर्वप्रथम अनुवाद कार्य में भाषा की कठिनाई थी किन्तु विद्वानों से मिलकर ऐसी भाषा विकसित की गयी जो देशवासियों के समझने लायक थी। शायद तरीम घाटी में प्रचलित भाषा का सहारा लेकर कार्य प्रारम्भ हुआ था, किन्तु कालान्तर में संस्कृत से सीधा अनुवाद होने लगा। मध्य एशिया की भाषाओं के माध्यम से अनुवाद करना बन्द हो गया।

भारत के जिन महान् आचार्यों के ग्रंथ अनूदित किये गये उनमें पद्म सम्भव तथा शांतिरक्षित गौड़देशीय पण्डित थे। वे किसी समय नालंदा महाविहार के कुलपति रह चुके थे। शीलभद्र भी ह्वेनसांग के समय नालंदा में आचार्य का काम कर रहे थे। वे महान् नैयायिक थे। उनके ग्रंथ

भी वहाँ अनूदित किये गये। व्याकरण शास्त्र के प्रगाढ़ पण्डित धर्मपाल के संस्कृत ग्रंथों का भी अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया था। कमलशील तथा स्थिरमति नामक विद्वानों को तिब्बत में सादर निमन्त्रित किया गया जिनके द्वारा व्याकरण का प्रचार तिब्बत में हुआ। कमलशील अपनी प्रतिभा के लिए सुप्रसिद्ध थे। चीन के विद्वानों से शास्त्रार्थ में वह विजयी हुए, इस कारण द्वेषवश चीनियों में उनकी हत्या कर दी। इतनी विपरीत परिस्थिति में भी नवी शती तक अनुवाद का कार्य चलता रहा और भोट भाषा में अनेक ग्रंथों का अनुवाद कर दिया गया। सूत्रों का अधिकांश अनुवाद इसी समय का है। उसी समय तत्र-ग्रंथों के अनुवाद भी हुए। तिब्बती भाषा के ग्रंथों का अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालता है कि नागार्जुन असंग, वसुबन्धु, चन्द्रकीर्ति, शांतिरक्षित तथा कमलशील रचित कितने दर्शन ग्रंथ तिब्बती में अनूदित हो चुके थे। बुस्तन ने "बौद्धधर्म का इतिहास" नामक ग्रंथ में उन विद्वानों के ग्रंथों तथा उनकी अनुवाद विषयक वार्ता पर पर्याप्त विवरण उपस्थित किया है। नागार्जुन के अनूदित ग्रंथों में तत्रसमुच्चय, बोधिचित्त विवरण, सूत्र समुच्चय के नाम उल्लेखनीय हैं। असग तथा वसुबन्धु के जीवन-वृत्त तथा उनके ग्रंथ अभिधर्म समुच्चय, तत्वविनिचय, उत्तर-तत्र तथा अभिधर्म कोष, नागार्जुन के शिष्य चन्द्रकीर्ति की टीकाओं का विवरण भी उपस्थित किया गया। बुस्तन ने चन्द्रगोमिन, स्थिरमति, दिङ्नाग के भोट भाषा में सुरक्षित ग्रंथ रत्नों का विवरण उपस्थित किया है। दसवी शती के प्रसिद्ध भारतीय पण्डित दीपंकर श्री ज्ञान ने आर्यदेव द्वारा रचित ग्रंथों का समावेश तिब्बती साहित्य में किया था। इनके अनेक ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ था। इस प्रसंग में विक्रमशिला के सुप्रसिद्ध आचार्य अभयंकर गुप्त के मित्र बुद्धकीर्ति का नामोल्लेख अत्यन्त आवश्यक है जो तंत्रविद्या के प्रगाढ़ विद्वान् थे, तथा तिब्बती साहित्य के पारंगत पण्डित थे। भोट भाषा में अनुवाद के कार्य की सफलता के लिए नालंदा के आचार्यो को श्रेय देना होगा। ग्यारहवी तथा बारहवीं शताब्दियों में उत्तरी भारत, विशेषकर बिहार के बौद्ध पण्डितों ने तिब्बती भाषा की उन्नति के निमित्त जो कार्य किया वह स्वर्णाक्षरों में लिखा जा चुका है। वह सदा स्मरणीय रहेगा।

भोट साहित्य के गम्भीर अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तिब्बत में दो प्रकार का कार्य हुआ। अधिकतर कार्य धार्मिक विषयों को लेकर किया गया था। बौद्ध साहित्य मे हम महायान तथा तंत्रयान के ग्रंथों का अनुवाद पाते हैं। भारतीय आचार्यो ने तथा कुछ भोट देशीय पण्डितों ने इसकी अभिवृद्धि की। सम्पूर्ण साहित्य को (अ) कंजूर तथा (ब) तंजूर नामक उपविभागों में विभक्त किया गया है। पहले उपविभाग में अनूदित ग्रंथों की गणना होती है। सूत्र, विनय तथा अभिधम्म सम्बन्धी साहित्य के अनुवाद से इसे पूर्ण किया गया। तंजूर में समस्त टीकाओं का समावेश किया गया है। इसमें काव्य, नियम, ज्योतिष, आयुर्वेद, विज्ञान तथा जीवनवृत्तांत आदि सांसारिक विषयों को ग्राह्य रूप में उपस्थित किया गया है। इसीके अन्तर्गत सैनिक-लेख पत्रों की भी गणना युक्तिसंगत होगी।

जैसा कि कहा जा चुका है सांस्कृतिक इतिहास में तिब्बत बहुत पिछड़ा हुआ देश था। उसकी न कोई लिपि थी और न साहित्य था। बौद्ध धर्म ने उस देश की संस्कृति के विकास में उदारता से काम लिया। भारतीय दर्शन का ज्ञान करा कर भोटिया लोगों को भारतीय संस्कृति से परिचय कराना ही भारतीय पण्डितों का उद्देश्य था। भारतीय आचार्यो ने इस बात पर बल नहीं दिया कि तिब्बत की जनता संस्कृत भाषा पढ़कर ही बौद्धधर्म का ज्ञान उपार्जित करे, बल्कि नाना विषयों का भोट भाषा में अनुवाद कर उसे समृद्ध बनाया। भारतीय विद्वान् तिब्बत वालो को अपनी भाषा (भोट भाषा) द्वारा पुण्यार्जन करने का आग्रह करते रहे। भारतीय पण्डितों ने भोट देशीय भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का संवर्धन किया।

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि नवीं शती में सबसे अधिक तिब्बती अनुवाद भारतीय विद्वानों ने किये। प्रायः दो सौ वर्षो तक बौद्धधर्म के ह्रास तथा अत्याचार का युग था। ग्यारहवीं शती से नालंदा के अतिरिक्त विक्रमशिला महाविहार के आचार्यो ने पर्याप्त सहायता की थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् दीपंकर श्रीज्ञान ने तिब्बत में ही अपने जीवन के अंतिम तेरह वर्ष व्यतीत किये और ल्हासा के समीप उनका शरीरान्त हो गया। उनसे सम्बन्धित सोमनाथ (कश्मीरी पण्डित) तथा गयाधर (वैशाली निवासी) का उल्लेख उस प्रसंग में असंगत न होगा। दीपंकर श्री ज्ञान के पश्चात् भारत-तिब्बत सम्बन्ध क्रमशः समाप्त हो गया। वह भारतीय ग्रंथों के अनुवाद का अंतिम काल था। वहाँ वे ग्रंथ सुरक्षित रह सके जो अनुवाद के रूप में तिब्बत में संग्रहीत हो चुके थे। आज भारत में कितने ही ग्रंथों के संस्कृत मूल अप्राप्य हैं, किन्तु भोट भाषा में उनके अनुवाद विद्यमान है। ऐसे अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ राहुल जी भारत ले आये थे जो बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना में सुरक्षित है। यह उचित भी है क्योंकि बिहार प्रदेश के पण्डितों ही ने उनके भोट भाषा में अनुवाद कार्य में सबसे अधिक कार्य किया था।

महाराजा अनूपसिंहजी के आश्रित हिन्दी राजस्थानी कवि

श्री अगरचंद नाहटा

सरस्वती के जनवरी अंक में श्री मोहनलाल पुरोहित का लेख 'विद्यानुरागी महाराजा अनूपसिंह । एक व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक प्रकाशित हुआ है। उसमें महाराजा के आश्रित संस्कृत विद्वानों और उनकी रचनाओं के नाम दिये हैं। राजस्थानी के केवल सुवा बहोत्तरी का उल्लेख किया जिसके रचियता का नाम नहीं दिया गया। महाराजा के आश्रित हिन्दी कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख इस लेख में नहीं किया गया। इसलिए प्रस्तुत लेख में उनका विवरण प्रकाशित किया जा रहा है।

महाराजा अनूपसिंह का विद्या प्रेम राजा होने से पहले महाराज कुमार की अवस्था में भी था। उन्होंने मथैन आदि जातियों के कई लेखक रख छोड़े थे। जिनका काम यही था कि महाराजा को जो ग्रन्थ पसन्द आये या अपने संग्रह में जिस रचना की नकल वे रखना चाहते थे उनकी नकल वे लहिये (लिपि लेखक) करते रहते थे। महाराजा जहाँ कहीं जाते उनमें से कई साथ ही रहते और निरन्तर नये-नये ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करके महाराजा के सरस्वती भण्डार को बढ़ाते रहते। जो ग्रन्थ खरीदने से मिल सकते थे या किसीके द्वारा भेट हो सकते थे उनको तो उन्होंने प्रयत्नपूर्वक संग्रह कर ही लिया। इसीका परिणाम है कि अनूप संस्कृत लाइब्रेरी जैसा हस्तलिखित प्रतियों का विशिष्ट और महान् संग्रहालय तथा प्रत्येक विषय और भाषा के अनेकों अज्ञात एवं अन्यत्र अप्राप्त एवं दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह अन्यत्र नहीं है। महाराजा के नाम से रचे गये संस्कृत ग्रन्थ भी अनेक हैं। पर हिन्दी और राजस्थानी के उनके स्वयं के रचे हुए ग्रन्थ नहीं हैं। उनके आश्रित कवियों एवं विद्वानों ने ही उनकी रचना की है। यह सर्वप्रथम उनके आश्रित हिन्दी कवियों और उनकी रचानाओं का संक्षिप्त विवरण देकर फिर राजस्थानी रचनाओं का वर्णन दिया जायगा।

(१) **उदैचन्द**—जिस गुटके में इनका अनूप रसाल ग्रन्थ लिखा हुआ है उसकी सूची में इसे मथेन उदैचंद कृत लिखा है। अतः ये वही हैं जिन्होंने सम्वत् १७३४ में महाराजा अनूपसिंहजी की आज्ञानुसार संस्कृत में 'पाण्डित्य दर्पण' ग्रन्थ बनाया है। इन्होंने अनूप रसाल नामक ग्रंथ महाराजा के नाम से उन्हींके लिए सम्वत् १७२८ की विजयादशमी को बनाया है। ग्रंथ में तीन स्तवक हैं जिनमें से पहले में नायिका वर्णन के ६१, दूसरे में नायक वर्णन के २० और तृतीय में अलंकार वर्णन के ३५ पद्य हैं।

(२) **अभयराम पांडे**—ये भारद्वाज कूल, सनावढ़ जाति एवं करैया गोत्र के पांडे थे। इनके पिता का नाम केशवदास व निवास स्थान रणथंभोर गढ़ के निकटवर्ती बैहरना ग्राम था। महाराजा अनूपसिंहजी की इन पर बड़ी कृपा थी। उन्होंने इन्हें कविराय का पद दिया था। अभयराम ने महाराजा के नाम से सम्वत् १७५४ के मार्गशीर्ष शुक्ला २, रविवार को 'अनूप शृंगार' नामक हिंदी ग्रन्थ बनाया जिसमें नायकादि का वर्णन है।

(३) **नंदराम**—इस कवि ने अपने नाम के अतिरिक्त कुछ भी परिचय नहीं दिया। और न ग्रंथ के निर्माणकाल का ही निर्देश दिया। इन्होंने महाराजा अनूपसिंह जी की आज्ञा से 'श्रमसमेदिनी' नामक हिन्दी ग्रन्थ सब रसग्रन्थों का सार लेकर सरल रूप से बनाया है। अनूप रसाल की भाँति इसमें भी ३ प्रमोद हैं जिनमें क्रमशः नायिका वर्णन के पद्य ६४, नायक वर्णन के १८ एवं अलंकार वर्णन के ३३ पद्य है।

(४) **शिवराम**—ये अहिपुर नागौर के निवासी-पुरोहित थे। महाराज को आप पर बड़ा स्नेह था। उन्होंने इन्हें सदन, वसन, धन-धान्य सब दिये। दशकुमार कथा नामक संस्कृत ग्रन्थ की कथा की महाराजा अनूपसिंहजी के पसन्द आने पर उन्होंने उसका हिन्दी रूपान्तर करने की कवि शिवराम को आज्ञा दी। तदनुसार सम्वत् १७५४ के मार्गशीर्ष शुक्ल १३ को प्रस्तुत दशकुमार स्कध की रचना की गई। इसमें ९वें पद्य से ६१ वे पद्य तक में बीकानेर के राजाओं की ऐतिहासिक वंशावली का परिचय दिया गया है।

(५) **जनार्दन**—ये गोस्वामी थे। लक्ष्मीनारायणजी के प्रति महाराजा की भक्ति देखकर आपने उनके लिए 'लक्ष्मी नारायण पूजा सार' नामक ५२ पद्यों में (हिन्दी ग्रन्थ) बनाया। जनार्दन गोस्वामी अच्छे विद्वान् थे। इनके बनाये कई ग्रन्थ प्राप्त हैं।

(६) **नाजर आनन्दराम**—ये महाराजा अनूपसिंहजी

के दीवान थे। सम्वत् १७४९ के मिगसर वदी १२ को अदूणी से महाराजा ने इन्हें परवाना लिखकर भेजा था जो कि अनूप संस्कृत लायब्रेरी में अब भी विद्यमान है और राजस्थान भारती में और स्पष्ट दिया है। ये सफल राज्याधिकारी होने के साथ साथ सुकवि एवं विद्वान् भी थे, इससे महाराजा अनूपसिंहजी एवं सुजानसिंहजी की आप पर विशेष कृपा थी। इनके द्वारा रचित भगवत्गीता भाषा का उल्लेख ओझाजी ने अपने 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में किया है जिसकी रचना सम्वत् १७६१ कार्तिक शुक्ला ५, रविवार को हुई थी। इसके अतिरिक्त (१) गीता महान् भाषा टीका सम्वत् १७५४ आश्विन शुक्ला ७ रविवार (२) शनिश्चर कथा और (३) गणेशजी की कथा की प्रतियाँ अनूप संस्कृत लायब्रेरी में सुरक्षित हैं। इनमें से भगवत्गीता भाषा एवं गीता माहात्म्य भाषा का रचना काल सम्वत् १७६१ मिगसर वदी १३ औभपुर पाया जाता है। सरदार-शहर की तेरापंथी सभा के संग्रह में नाजर आनन्दरामजी द्वारा रचित अज्ञान बोधिनी नामक एक और ग्रन्थ, हमारे अवलोकन में आया है जिसकी रचना सम्वत् १७६९ के श्रवण शुक्ला ९ गुरुवार को की गयी है।

हमारे संग्रह में सतीदास व्यास रचित रसिक आराम (सम्वत् १७३३ माघ सुदी २ महाराजा अनूपसिंह के समय में) उपलब्ध है पर वे महाराजा के आश्रित थे या नहीं यह अज्ञात हैं।

व्यास देवीदास या रसिक राय—इनके रचित 'नीतिशास्त्र' सभा परिणी भाषा टीका की एक प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और दूसरी स्वर्गीय कवि सुखदास जी चारण के संग्रह में है। सम्वत् १७२० में महाराजा कर्णसिंह व अनूपसिंहजी की आज्ञा से इस हिन्दी गद्य भाषा टीका की रचना हुई। कविराज सुखदान जी चारण वाली प्रति देखकर जब मैंने नोट्स लिखे थे, उसमें उसका रचयिता व्यास देवीदास का उल्लेख है और अनूप संस्कृत लायब्रेरी की सूची में रचयिता का नाम 'रसिक राय' दिया है और प्रति अपूर्ण होने का उल्लेख किया गया है।

> महाराज करणेशजु और अनूप आधार।
> हुकमें कियो टीका रची, भाषा व्यास विचार॥
> विघ्न राज पद जुग विमल, नमो चितमें धरि चित्र।
> करूँ नीत भाषा अर्थ, नारद कहै कवित्त॥
> संवत सत्रहस सै समय, बीसी करण विवेक।
> 'रसिक राज' कारण रची टीका कारण अनेक॥

इससे मालूम होता है कि रसिक राज (महाराजा) के लिए रचे जाने का जो उल्लेख है, उसको सूची बनाने वाले ने रचयिता का नाम समझ लिया है। अनूप संस्कृत लायब्रेरी में राजस्थानी और हिन्दी रचनाओं का बहुत अच्छा संग्रह है। कई रचनाएँ तो अन्यत्र अप्राप्य हैं और कइयों की सबसे प्राचीन प्रतियाँ यहीं हैं। इससे महाराजा का संस्कृत की ही भाँति हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के प्रति विशेष अनुराग सिद्ध होता है। हिन्दी का सूचीपत्र छप तो गया पर अद्यावधि प्रकाशित नहीं हुआ। राजस्थानी का तो प्रकाशित हो चुका है।

अब हम महाराजा के आश्रित विद्वानों के रचित राजस्थानी भाषा की कुछ रचनाओं का परिचय दे रहे हैं। श्री मोहनलाल पुरोहित ने 'सुआ बहत्तरी' नामक राजस्थानी भाषा के अनुवाद का अपने लेख में उल्लेख तो किया है, पर रचियता का नाम उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। इसकी २ प्रतियाँ हमारे संग्रह में हैं, उनके अनुसार इस सुक सप्तति वार्पिक का रचयिता देवीदान नाइता ही था जिसने महाराजा की आज्ञा से वैताल पच्चीसी और सिंघासन बत्तीसी का राजस्थानी में उल्था किया था।

देवीदान नाइता रचित ३ राजास्थानी अनुवादों के प्रारम्भिक पद्य नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) सुआ बहोत्तरी के प्रारम्भिक पद्य :—

> करि प्रणाम श्री शारदा, अपनी बुद्धि प्रमाण।
> सुक सुप्तति वार्तिक करी, नायवै देवीदान॥१॥
>
> बीकानेर सुहावणौ, सुख संपत्ति की ठौर।
> हिन्दुस्तान अरु हिन्दू धरम, ऐसा सहर न और॥२॥
>
> तहां तपै राजा करण, जंगल को पातशाह।
> ताको कुंवर अनूपसिंह, दातासूर दुवाह॥३॥
>
> तिन मोंकू आज्ञा दई, सुमसन्न हुई कई एहु।
> संस्कृत हुमती वारतिक, सुक बहोतरी करी देहु॥४॥

(२) वैताल पचीसी—

करता ऊपरि जो करै, तेरो है सौभाग ।
निरापराधन चाहिये, काहू नर सिरि खाग ॥१॥

कथा कही मन भावति; उपणि बीकानेर ।
चाहे गाल न साभल्या, मिलि २ रुचि सूंफेर ॥२॥

कौतिक कुंवर अनूपसिंघ, केरै लिखी बणाइ ।
बात पचीस वैताल री, भाषा कहि बहु भाई ॥३॥

(३) सिंघासण बत्रीस—

प्रणमू सरस्वती पाई, वले विनायक वीनवूं ।
बुद्धि दे सिद्धि दिवाय सनमुख थापे सरस्वती ॥१॥

आरंभियो परवाण, चाढै चकि चामुंडरा ।
त्रत्रा धीस खलाण, भैरव मांने विगन भय ॥२॥

देश मरुस्थल देख नव कोटी में कोट नव ।
बीकानेर विशेष, मन निश्चय करि जाणिये ॥३॥

तिहां राजा राठोड़, करण सूर सूत करण सो ।
महि खत्रियां सिर मोड़, छत्रवट खूमाणां खरौ ॥४॥

तसु सुत कुंवर अनूप, सिघ पराक्रमसिघ सौ ।
भेदग भल गुण भूप, आगे तेड़ि आइसु दियौ ॥५॥

संस्कृत थी सद भाइ, कथा विक्रम वैताल री ।
भाषा कही समभाय, तू देई दान नाइता ॥६॥

वैताल री पचवीस समलाऐ सरसी कथा ।
सिंघासण बत्रीस लगती लाभै ना मरै ॥७॥

एक अन्य कवि जोशीराय ने महाराजा अनूपसिहजी के लिये दंपत्ति विनोद नामक एक बत्तीस कथाओं वाला रोचक ग्रन्थ बनाया जिसका मैंने सम्पादन किया है—

बीकानेर सुहावणो, दिन दिन चढ़तौ दौर ।
हिन्दुस्तान मृजाद हद, नवकोटी सिर मौर ॥३॥
राज करै राजा तिहां, कमधण भूप अनूप ।
सकबंधी करणेससुत, राठौडा कुल रूप ॥४॥
देस राज सुभ देष कैं, मन मैं भयौ हुलास
दंपति विनोद की वार्त्ता, कहिस कथा सविलास ॥६॥

उपरोक्त चारों राजस्थानी अनुवाद गद्य में हैं। जोशी राय ने पंचतंत्र का भी राजस्थानी में अनुवाद किया है। वह संस्कृत का भी ज्ञाता था। अनुवाद हूबहू नहीं है, भावानुवाद ही समझना चाहिए। वैसे संस्कृत ग्रन्थों पर आधारित अवश्य है, पर लिखा गया है अपने ढंग से। अतः मौलिक रचना-सी यह बन गयी है।

महाराजा अनूपसिंह के विद्या अनुराग के सम्बन्ध में ओझाजी ने लिखा है कि "वह जैसा वीर था वैसा ही संस्कृत और भाषा का विद्वान्, विद्वानों का सम्मान करता एवं उनका आश्रयदाता था। इसने स्वयं भिन्न-भिन्न विषयों पर संस्कृत में कई ग्रन्थ निर्माण किये थे। उनके आश्रय में कितने ही संस्कृत के विद्वान् रहते थे जिन्होंने उसकी आज्ञा से अनेक विषयों के संस्कृत ग्रन्थ लिखकर उसका नाम अमर किया।"

राजस्थानी भाषा के कई चारण कवि उनके आश्रित थे जिन्होंने महाराजा के सम्बन्ध में डिंगल गीत, वैल इत्यादि रचनाएँ की हैं। अनूपसिहजी की आज्ञा से 'दूहा रत्नाकर' नामक दुहों का एक बहुत बड़ा संग्रह तैयार किया गया जिसका विवरण 'मरु भारती' में प्रकाशित हो चुका हूँ। इनके जैसे विद्यानुरागी विरले ही मिलेंगे। इनकी संस्कृत भाषा की सेवा के सम्बन्ध में 'सागरिका' पत्रिका में एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुका है।

ऋतु-संहार में वसन्त-वर्णन

पंडित रामसेवक पाण्डेय

कविकुल-गुरु महाकवि कालिदास की कवित्व कीर्ति अंशुमाली भगवान् भास्कर की भाँति विश्व-व्यापिनी है जिनकी प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों से गुम्फित वैदर्भी रीति से शोभित अलंकृत सरस कविता की प्रशंसा जिस प्रकार दण्डी, बाण आदि प्राचीन भारतीय कवियों ने की है उसी प्रकार मुक्तकण्ठ से गेटे आदि पाश्चात्य महाकवियों ने भी। आज भारत के ही विश्व-विद्यालयों में नहीं, अपितु एशिया, योरुप और अमरीका आदि देशों के विश्व-विद्यालयों में उनके ग्रन्थ पढ़ाए जाते हैं।

कालिदास के काव्यों का अध्ययन पाश्चात्य संस्कृतज्ञ विद्वानों ने खूब किया है और उन पर खोज-पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। कालिदास के ग्रन्थों पर लिखा साहित्य जितना अंग्रेजी आदि समृद्ध भाषाओं में मिलता है उतना अभी अपनी राष्ट्र भाषा में नहीं। हमारे देश के अंग्रेजी के विद्वान् उनके काव्यों का अनुशीलन अंग्रेजी के माध्यम से करते हैं। यह देश का दुर्भाग्य है।

कालिदास की रचना महाकाव्य, खण्डकाव्य (श्रव्य-काव्य) तथा नाटक (दृश्यकाव्य) इन तीन प्रकारों में मिलती हैं। महाकाव्य-रघुवंश और कुमारसम्भव, खण्डकाव्य मेघदूत और ऋतु-संहार तथा नाटक शकुन्तला विक्रमोर्वशी और मालविकाग्नि मित्र हैं। प्रस्तुत निबन्ध का विषय ऋतु-संहार खण्ड-काव्य है। अतः उसी पर बिचार किया जा रहा है।

ऋतु-संहार खण्ड-काव्य है। खण्डकाव्य का लक्षण है—"खण्डकाव्यं* भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसार च यथामेघदूतादि" "अर्थात् जो काव्य (महाकाव्य) के एकदेश का अनुसरण करता हो उसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं जैसे मेघदूत आदि (साहित्यदर्पण परिच्छेद कारिका ३२८)

महाकाव्यों में ऋतु-वर्णन उनका अंग है। उद्दीपन-विभावरूप में ऋतुओं का वर्णन उनमें किया जाता है। कालिदास के महाकाव्यों में से एक ऋतु-वर्णन चुनकर ऋतु-संहार खण्ड-काव्य की रचना है। महाकाव्यों में ऋतुओं का वर्णन गौण-रूप से रहता है प्रधान नायक का चरित। पर ऋतु-सहार में ऋतुओं का प्रधान-रूप से उल्लेख किया गया है। इस खण्ड-काव्य में प्रधान शृङ्गार रस है। उद्दीपन-विभाव-स्वरूप ऋतुओं का वर्णन किया गया है।

महाकवि कालिदास की यह प्रथम रचना है। कुमार-सम्भव, शकुन्तला आदि के समान यह प्रौढ़ रचना नहीं है तो भी इसके वर्णन सरस, सुन्दर एवं हृदय-ग्राही हैं। कारण कि—महाकवि कवित्व-प्रतिभा अपने जन्म ही के साथ लाए हैं। अतः नयी उम्र में भी सुन्दर रसमयी सहृदयहृदयावर्जिनी कविता बनी है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, सचमुच वह वाग्देवतावतार हैं।

ऋतु-संहार में छः सर्ग हैं। वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी आदि छन्दों में इसकी रचना हुई है।

ऋतु-संहार के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक परि-स्थिति का चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। उन्होंने अपने समय की स्त्रियों की वेष-भूषा और उनकी शृङ्गारविधि का अच्छा वर्णन किया है। उन्होंने काव्य में दिखलाया है कि स्त्रियाँ अपने अंगों में सुगन्धित अगराग लगाती थीं जिनका निर्माण ऋतुओं के अनुरूप होता था। वह चन्दन, केसर, कस्तूरी, कालीयक, कालागुरु आदि सुगन्धित सौन्दर्य-जनक एवं शरीर-कान्ति को बढ़ानेवाले द्रव्यों से तैयार किया जाता था जिसके लेप का स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता था। कालागुरु आदि द्रव्यों का अंगराग में ही नहीं उपयोग होता था अपितु उसमें केश-कलाप और गृह आदि भी सुगन्धित किये जाते थे।

तथाकथित द्रव्यों को घिसकर उनके लेप से मुख, कुच आदि अंगों पर पत्र मंजरी, मकर आदिकों की रचना होती थी जिनसे रमणियों का सौन्दर्य और बढ़ जाता था। इनका बनाना भी उच्च कोटि की कला में गिना जाता था।

---

*इस कारिका पर पं० दुर्गादत्तद्विवेदी ने टिप्पणी लिखा है कि—"आदिपदेन ऋतु-संहारादीनाँ संग्रहः। अत्रैवभेदे देवद्विजराज स्तुतिमात्र प्रवर्णानायक्तिश्चितलक्षणक्रामन्ये द्वामापि काव्यानमन्तर्भावः" आदि पद से ऋतु-संहार आदि का भी संग्रह है। देवता, द्विजराज. की स्तुति-मात्र जिनके वर्णन के अधीन हो और जिनमें कुछ काव्य के लक्षणों का समन्वय होता हो उन काव्यों का भी खण्डकाव्य में अन्तर्भाव होता है।

वे सुन्दरियाँ बड़ी सौभाग्यवती[१] समझी जाती थीं जिनके कपोलों पर उनके प्रियतम पत्र-रचना करते थे।

महिलाएँ भिन्न-भिन्न ऋतुओं में उत्पन्न पुष्पों के आभरण बनाकर पहिनती थी, केशों मे गूँथती और उनके पराग को कपोलों पर लगाती थीं।

कालिदास ने वसन्त में अशोक, आम्र, नवमल्लिका, कर्णिकार, पलाश, कुन्द और कुरवक के पुष्पों का ग्रीष्म में, शिरीष, पाटल और कमल के कुसुमों का सर्ज वर्षा में, (राढ़) अर्जुन, कदम्ब, केतकी, बकुल (मोलसिरी), मालती चमेली का पेड़ और यूथी (जूही) के सुमनों का, शरद में कमल, कल्हार, कुमुद, सप्तच्छद (सतौना), कदम्ब, शेफालिका, (हरसिंगार), बन्धूक और नव मालती के फूलों का, और हेमन्त में लोध्र-पुष्प का वर्णन किया है। शिशिर में उन्होंने किसी कुसुम को यद्यपि ऋतु-संहार मे नही लिखा है तथापि शिशिर के वर्णन में 'निवेशितान्न: कुसुमैः शिरोस' है। आठवें पद्य के इस वाक्य से सिद्ध होता है कि शिशिर मे भी स्त्रियाँ केशों में कुसुम लगाती थी और वे कुन्द और लोध्र के होगें। इसलिए यह न समझना चाहिए कि शिशिर और हेमन्त में दोनों ऋतुएँ, समान-धर्म की होती है। कुन्द और लोध्र दोनां में होते हैं। कुन्द-कुसुम वसन्त तक फूलता है। इसलिए कुन्द का वर्णन कवि ने वसन्त मे भी किया है।

ऋतुसंहार में काञ्ची, नूपुर, अंगद, वलय, रत्न-जटित मौक्तिकहार आदि आभूषण तथा वस्त्रों में अंशुक, दुकूल और कूर्पासक का उल्लेख है।

ऋतु-गणना

वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक भारतवर्ष में दो ऋतुएँ मानी जाती हैं। सूर्य की गति से दो अयन माने गये हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन। ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त में मकर की संक्रान्ति से छः महीने तक उत्तरायण और कर्क से धनु: राशि तक दक्षिणायन माना गया है।

> भानो: मकरसंक्रान्ते षण्मासा उत्तरायणम्।
> कर्कादेसार्थैवस्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्॥
>
> —सू० सिद्धान्त

उत्तरायण मे शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म तथा दक्षिणायन में वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुएँ होती है। ऋतु-गणना में मत-भेद है। आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत वर्षा से, चरक और अष्टाङ्ग हृदयकार शिशिर से एवं अमरसिंह मार्गशीर्ष से ऋतुओं को गिनते हैं। ऋतुएँ दो प्रकार से मानी गयी हैं महीनों और, संक्रान्तियो[१] से। महीनों के अनुसार चैत्र-बैसाख, वसन्त; ज्येष्ठ-आषाढ़, ग्रीष्म; श्रावण-भाद्रपद वर्षा; कुआर-कातिक शरद; अगहन-पौष हेमन्त और माघ-फाल्गुन शिशिर होता है। संक्रान्तियों[२] के अनुसार इस प्रकार गणना होती हैं—मेष-वृष ग्रीष्म, मिथुन-कर्क-प्रावृट, सिंह-कन्या वर्षा, तुला-वृश्चिक शरद, धनु:-मकर हेमन्त और कुम्भ-मीन वसन्त होता है।

महाकवि कालिदास ने संक्रान्तियों से ही ऋतु विभाग माना है। इसीलिए ऋतु-संहार मे ग्रीष्म से ऋतु-वर्णन का आरंभ किया है। सरस्वती के पाठकों के मनोरञ्जनार्थ ऋतु-संहार से वसन्त वर्णन के पद्य प्रस्तुत प्रबन्ध में हम लिख रहे हैं। लेख विस्तार भय से अन्य ऋतुओं का उल्लेख नहीं कर रहे हैं। अन्य ऋतुओ का वर्णन किसी दूसरे प्रबन्ध में करेंगे।

ऋतुओं में वसन्त सब ऋतुओं से मनोहर होता है। इसीलिए इसे ऋतुराज कहते है। वसन्त में गुलाबी जाड़ा होता है जो किसी प्राणी को कष्टदायक नहीं। वन-उपवन पुष्पित होकर चतुर्दिक सौरभ बिखेरते है। वनों में पलाश पुष्प ऐसे

---

१ किसी नायिका के कपोल पर उसके प्रिय ने अपने हाथ से मञ्जरी बनायी है। उसको अपने सौभाग्य का गर्व है। उसकी सखी उसके मद को न सहती हुई कहती हैं,—प्रिय की कपोल पर लिखी हुई मञ्जरी शोभित हो रही है। इसीलिए गर्व न करो। और भी ऐसी मञ्जरियों की पात्र हो सकती है यदि शत्रु रूप कम्प विघ्न न डाले।

> मा गर्वमुद्वह कपोल तले चकास्ति
> कान्तस्व हस्तलिखिता मम मञ्जरीति।
> अन्यापि भिन्न खलु भाजनमीदृशीनां
> वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्मरायः॥
>
> (साहित्य दर्पण)

१ श्रावण भाद्रपद वर्षा।

२ संक्रान्तियों के अनुसार ऋतु गणना हमने शार्ङ्गधर से लिख दी है उसमें, दोषों को संचय, प्रकोप और शमन को दिखलाने हेतु प्रावृट् और वर्षा दो ऋतुएँ लिखी गयी हैं और हेमन्त के समान गुण-धर्म वाला शिशिर होता है, इसीलिए उसे छोड़ दिया है—लेखक

खिल उठते हैं मानों विना आँच की आग लगी है। उपवनों में आम्र पुष्पित होते हैं। उनके भौरों की भीनी-भीनी सुगन्ध घ्राणेन्द्रिय को तृप्त कर हृदय को आह्लादित करती है जिन पर अलि पुञ्ज गुञ्जार कर संगीत का सा आनन्द देते हैं और कोयल कुहकने लगती है।

ऋतु-संहार का नायक इसी मधु-मास में अपनी प्रियतमा से कहता है—

प्रफुल्ल चूतांकुर तीक्ष्णसायको द्विरेफमाला विलसद्धनुर्गुणः।
मनांसि वेद्धुंसुरत प्रसङ्गिनां वसन्त योद्धा समुपागतः प्रिये ॥
(ऋतुसंहार षष्ठ सर्ग।१।

प्रिये, वसन्त योद्धा फूले हुए आम के अंकुर (मौर या बौर का पैना वाण लिए हुए, जिसके धनुष में भ्रमर माला (भौरों की कतार) डोर (ज्या) लगी हुई है, रति-क्रीड़ा के व्यसनी विलासियों के मन को वेधने के लिए आया है।

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखा प्रदोपा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥
वही—२

प्रिये, वसन्त में सभी सुन्दर लगते हैं—पेड़ खिले हुए हैं, सरोवरों में जल कमलों से पूर्ण हैं, स्त्रियाँ कामेच्छावाली, सायंकाल सुख देनेवाले, दिवस रमणीय और पवन सुगन्धित वह रहा है। कवि महिलाओं की वेश-भूषा का वर्णन करता है:

कुसुम्भ रागारुणितैर्दुकूलैर्नितम्बबिम्बानि विलासिनीनाम्।
रक्तांशुकैः कुंकुम राग गौरै रलंक्रियन्ते स्तन मण्डलानि ॥
वही—३

कुसुम रंग से रँगी हुई साड़ियों से विलासिनियों के नितम्वविम्व (नितम्ब-मण्डल——कटिपश्चाद्भाग को नितम्ब कहते हैं, विम्ब गोलाकार मंण्डल का नाम है। चूंकि नितम्ब गोल होते हैं इसीलिए संस्कृत के कवि नितम्ब के साथ बिम्ब लगा देते हैं) और केसर के रंग से रँगे लाल दुपट्टों से कुच-मण्डल अलंकृत किये जा रहे हैं।

'कुकुंम राग गौरै' इस विशेषण पद से ही अंशुकों (परिधान वस्त्रों) का लाल होना सिद्ध है। अतः रक्त विशेषण से अविकपदता-दोष है। गौर का अर्थ यहाँ लाल है (गौरः पीतेऽरुणेश्वेते विशुद्धे चाभिधेयवत्। नाश्वेते सर्षपे चन्द्रे न द्वयोः पद्म केसरे" इति मेदिनी) विलासिनी महिलाओं ने जिस केसर का उपयोग किया होगा वह लाल रंग की ही होगी। उत्तम केसर कश्मीर ही की होती है जो लाल रंग की होती है जिसका किञ्जल्क सूक्ष्म और उसमें कमल पुष्प की गंध आती है ("कुङ्कुमं सूक्ष्मकेसरं रक्तवर्णं पद्म-सुगन्धि श्रेष्ठम्" वैद्यकशब्दसिन्धु)। विलास नायिकाओं का एक सत्वज अलंकार होता है और जो स्वभाव से उत्पन्न होता है। अट्ठारह अलंकारों में इसकी भी गणना है। (देखिये साहित्यदर्पण परिच्छेद ३ कारिका ९०) वह जिनमें हो उन्हें विलासिनी कहते हैं।

कर्णेषु योग्यं नव कर्णिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्।
पुष्पञ्च फुल्लं नवमल्लिकायाः प्रयाति कान्तिं प्रमदाजनानाम्
(वही—५)

प्रमदाओं (मदपूर्ण विलासिनियों) के कानों में योग्य नवीन कर्णिकार के कुसुम तथा चञ्चल काली अलकों में (चोटियों में) अशोक के फूल और नवमल्लिका के खिले फूल परम शोभा को पा रहे हैं। कर्णिकार के मेदिनी कोष में दो अर्थ वतलाये गये हैं—अमलतास और द्रुमोत्पल। अमरकोष में कर्णिकार, परिव्याध और द्रुमोत्पल ये तीन शब्द पर्यायवाची लिए हैं। अमर कोष के सुधा व्याख्याकार ने कर्णिकार का अर्थ कठ-चम्पा लिया है और वैद्यक शब्द-सिन्धुकार ने 'स्वर्णातु'। जो हो, पर जो लोग कर्णिकार का अर्थ कनेर लिखते हैं वह गलत हैं। कनेर करवीर का अर्थ है जो एक विष होता हैं। उसमें सफेद पीले और गुलाबी फूल तीन प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रकार के करवीरों में होते हैं जब कि कर्णिकार में बड़े सुहावने पीले फूल। महाकवि वाल्मीकि जी ने कुसुमित कर्णिकारों की उपमा पीताम्वर, जिन पर सोने का काम (जरी का) बना हुआ है, धारण किये हुए पुरुषों से दी है।

सुपुष्पितामु पश्यैतान् कर्णिकारान् समन्ततः।
हाटकः प्रतिसंछन्नान्नरान् पीताम्वरानिव ॥
(वा० रा० कि० काण्ड प्र० सर्ग २१)

नव-मल्लिका का अर्थ वैद्यक शब्द सिन्धु में वसन्ती 'नेवारी' लिखा है। नवमल्लिका का अर्थ वासन्ती है। यह वसन्त ऋतु से लेकर ग्रीष्म तक फूलती है। इसीलिए इसे ग्रैष्मी भी कहते हैं।

स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्राः भुजेषु संगं वलयाङ्गदानि।
प्रयान्त्यनङ्गातुर मानसानां नितम्बिनीनां जघनेषु काञ्च्यः॥

कामातुर नितम्बिनियों (जिनके प्रशस्त नितम्ब हैं) के कुचों में श्वेत चन्दन से भीगे हार (फूलों के या मोती आदि रत्नों के हार) भुजाओं में वलय (कंकण) और आंगद (बाजूबंद) तथा जघन प्रदेशों में (कटि के अग्र-भाग को जघन कहते हैं) काञ्ची (करधनी) पड़ी हुई है। 'अनङ्गातुर' पद से कवि ने दिखलाया है कि काम के संताप के दूरीकरण के लिए सित चन्दन आदि शीतल द्रव्य तथा वलय आदि स्वर्ण जैसी ठंढी धातुओं के बने हुए आभूषणो को पहिना है। इस प्रकार वर्णन से उनका मौग्ध्य ध्वनित है।

सपत्रलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषुहेमाम्बुरुहोपमेषु ।
रत्नान्तरे मौक्तिकसंगरम्यः स्वेदागमो विस्तरुतामुपैति ॥

विलासिनी कामनियों के पत्र-रचनालंकृत स्वर्ण-कमल के समान मुखों पर और (हार आदि आभूषणों के) रत्नों के मध्य में मोतियों के संग से रमणीय स्वेद (पसीना) फैल रहा है।

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः ।
कूजद्द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटु ॥

राग से हर्षित पुंस्कोकिल (नर कोयल) आम के बौर के रसासव से (रसरूपी मद्य) मत्त होकर अपनी प्रिया कोयल को चूमता है और कमल पर बैठा गुञ्जा रव करता हुआ भ्रमर भ्रमरी से प्रिय लगने वाली चाटुकारिता (खुशामद) कर रहा है।

कालिदास ने इस पद्य में रसाभास का वर्णन किया है। तिर्यक् (योनि) गत रति होने से शृङ्गराभास हैं। छोटा काव्य होने से केवल भ्रमर और भ्रमरी का ही उल्लेख है। शृङ्गाराभास का वर्णन कुमारसम्भव मे वसन्त के सन्दर्भ में बहुत सुन्दर है जिसमे भ्रमर, कोकिल के अतिरिक्त हरिण, चक्रवाक आदिकों की काम-क्रीड़ाओं का उल्लेख मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है।

ऋतु प्रभाव से होने वाले प्रकृतिप-रिवर्तन का चित्रण कितना हृदयाकर्षक है जिसे निम्नलिखित पद्य में पढ़ें। उपमालंकार ने चार चाँद लगा दिये हैं।

आदीप्तवह्निसदृशैर्मरुतावधूतैः सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः ।
सद्यो वसन्तसमयेहिसमाचितेयं रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः ॥

जलती हुई आग की तरह लाल-लाल पुष्पों से लदे हुए वायु से कम्पित पलाश वनों से भूमि ऐसी शोभित होती है मानों लाल-लाल अतलस पहने कोई दूल्हन हो।

नाना मनोज्ञ कुसुमद्रुमभूषिताङ्गान् ।
हृष्टान्यपुष्ट निनदाकुलसानु देशान् ॥
शैलेयजाल परिणद्धशिलातलौघान् ।
दृष्ट्वाजनः क्षितिभृतोमुदमेतिसर्वः ॥

महाकवि प्रकृति पर्यवेक्षण में पटु है। वसन्त में देखा हुआ प्राकृतिक दृश्य उन्हें स्मरण हो आता है। तत्फलस्वरूप वह वर्णन करते हैं।

नाना प्रकार के मनोज्ञ पुष्प-वृक्षों से भूषित-हर्षित कोकिलाओं के निनाद से निनादित शिखर वाले पर्वतों को देखकर सभी जन आनन्दित हो उठते है जिनके शिला-तल शैलेय-जाल से परिवेष्टित है।

वसन्त को योद्धा बनाकर कवि ने वसन्त का आरम्भ किया था। अब अन्त उसके मित्र कामदेव को नृपति बनाकर करते हैं—

आम्री मञ्जुल मञ्जरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु—
ज्र्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशुसितम् ।
मत्तेभो मलयानिलः परभृतोयद्बन्दिनोलोकजित् ।
सोऽयं वो नितरीतरीतुवितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ॥

प्रिये, आम की मञ्जुल (सुन्दर) मञ्जरियाँ (बौर की बालियाँ) जिसके बढ़िया बाण हैं ऐसा किंशुक (पलास का फूल-पलाश को हिन्दी में ढाक कहते हैं, जिसका धनुप है) जिसमें भँवरों की पंक्ति डोरी है, निष्कलङ्क चन्द्रमा जिसका सफेद छत्र है, मत्त गज जिसका मलय-पवन है और कोकिलाएँ जिसके वन्दीगण हैं, ऐसा लोक विजयी अनंग (अपने मित्र) वसन्त के सहित आपका मंगल करें।

वसन्त वर्णन का यह अन्तिम पद्य बहुत सुन्दर बना है। रूपकालंकार, मञ्जुल-मञ्जरी में माधुर्य गुण, चारों पादों में प्रसाद गुण तथा वितरीतरीतु में यमक आदि अनुप्रास विशेप चमत्कारजनक हैं। अन्त मे आशीर्वादात्मक मङ्गल कामना का वर्णन कवि की प्रशस्त शैली है जिसका उल्लेख प्रत्येक ऋतु के अन्त में किया है। जिस काव्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल किया जाता है उसका प्रचार खूब होता है और उसके पढ़नेवाले आयुष्मान् होते हैं—इस प्राचीन शास्त्र मर्यादा का कवि ने पालन किया है।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

आए दिनों हिंदी-विरोधियों द्वारा बड़े जोर-शोर से यह तर्क उछाला जाता है कि अहिंदी-भाषी राज्यों में यदि हिंदी के प्रचार-प्रसार पर विशेष बल दिया गया तो देश टूट जायगा, उसकी एकता खंडित हो जायगी। निस्संदेह राष्ट्रीय एकता एक बहुत बड़ा मूल्य है और उसकी रक्षा बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देकर भी की जानी चाहिए। लेकिन प्रश्न है कि राष्ट्रीय एकता का तात्पर्य क्या मुट्ठी भर पढ़े-लिखे, मोटी तनख्वाह पाने वाले लोगों की एकता से है या इसकी सीमा में बहुसंख्यक अपढ़ ग्रामीण जनता, खेतों में हल चलानेवाले किसान और कल-कारखानों में काम करनेवाले मजदूर भी आते हैं? यदि हम थोड़ी देर के लिए इस सत्य को नजर-अंदाज भी कर दें कि किसी देश का व्यक्तित्व उसकी अपनी भाषा में ही; उस भाषा में जिसमे सदियों से उसका चिंतन और साहित्य-सर्जन होता आया है, जो उसके शरीर मे स्वाभाविक रूप से रच-पच गई है, मुखरित हो सकता है तो भी यह शंका बनी ही रहती है कि राष्ट्रीय एकता उस भाषा के द्वारा कैसे साधित हो सकती है, सवा सौ वर्षों तक घुट्टी पिलाई जाने के बाद भी जिसके साधारण जानकारों का अनुपात दो-तीन प्रतिशत से अधिक नहीं। आज से लगभग सैंतीस-अड़तीस वर्ष पूर्व राष्ट्रभाषा की समस्या पर विचार करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'नवजीवन' (२१ जून १९३१ ई०) में लिखा था—'अगर स्वराज्य अँग्रेजी बोलने वाले भारतीयों को और उन्हींके लिए होनेवाला हो तो निस्संदेह अँग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरनेवालों, करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलितों व अंत्यजों का हो और इन सबके लिए होनेवाला हो तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।' और फिर स्वराज्य हो जाने के बाद २१ सितंबर १९४७ ई० के 'हरिजन सेवक' में उन्होने लिखा—"मेरा कहना यह है कि जिस तरह हमारी आजादी को छीननेवाले अँगरेजों की सयासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अँग्रेजी भाषा को भी हमें यहाँ से निकाल देना चाहिए।"

इस प्रसग में एक और घटना ध्यान देने योग्य है। जब ६ अप्रेल १९२० ई० को गुजराती साहित्य-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करने महाकवि रवीन्द्रनाथ भावनगर (काठियावाड़) पधारे थे तो गांधीजी ने गुजरात की जनता के समक्ष उनसे हिंदी में भाषण करने का अनुरोध किया था और गुरुदेव ने भी अग्रेजी के अपने विशद पांडित्य के बावजूद टूटी-फूटी हिंदी में ही देश की जनता से दो बातें करने में प्रसन्नता का अनुभव किया। यह इस तथ्य का संकेत है कि गांधीजी ने देश के राजनीतिक जीवन में प्रवेश करते ही यह अच्छी तरह जान लिया था कि भिन्न-भिन्न राज्यों की जनता के बीच संपर्क का माध्यम हिंदी ही हो सकती है, कोई विदेशी भाषा नहीं।

हिंदी के राष्ट्रभाषा-पद पर प्रतिष्ठित करने का नारा हिंदी-भाषियों का दिया हुआ नहीं है। यह आवाज सबसे पहले बगाल में उठाई गई थी और इसके उठानेवाले मनीषी वे थे, जो देश में नवोत्थान के अग्रदूत और नवीन राष्ट्रीय भावना के जनक माने जाते हैं। इन मनीषियों की परंपरा राजा राममोहन राय से प्रारंभ होती है। राममोहन राय ने १८२६ ई० में कलकत्ता से 'बंगदूत' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला था। इस पत्र में बँगला और अँगरेजी के साथ हिंदी के भी कुछ पृष्ठ रहा करते थे। कहते है कि राय महोदय स्वय भी हिंदी में लेख लिखते थे और उनकी कुछ रचनाएँ 'बंगदूत' में प्रकाशित हुई थी। उनके बाद ब्रह्मसमाज के दूसरे प्रमुख नेता बाबू केशवचंद्र सेन हिंदी के प्रबल समर्थक थे। केशव बाबू ने ही स्वामी दयानन्द सरस्वती को उनके मत के सार्वदेशिक प्रचार की दृष्टि से 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिंदी में करने की प्रेरणा दी थी। केशव बाबू भी 'सुलभ समाचार' नामक एक पत्र निकाला करते थे। इस पत्र के एक अंक मे राष्ट्रीय एकता की समस्या पर विचार करते हुए उन्होने टिप्पणी दी थी—"यदि एक भाषा के न होने से भारत में एकता नहीं होती है तो इसका उपाय क्या है? तब सारे भारतवर्ष मे एक ही भाषा का व्यवहार करना ही एकमात्र उपाय है, अभी कितनी ही भाषाएँ भारत मे प्रचलित हैं, उनमे से हिंदी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिंदी को अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज में ही एकता सम्पन्न हो सकती है।" (चैत्र ५, बँगला संवत् १२८०, १७७५ ई०)।

बङ्गाल के ही एक अन्य विद्वान् जस्टिस शारदाचरण मित्र ने तो इस भाषायी एकता को सम्भव बनाने की दिशा

में एक व्यावहारिक कदम भी उठाया था। उन्होंने कलकत्ता में १९०५ ई० में एक 'लिपिविस्तार-परिषद्' की स्थापना की थी तथा 'देवनागर' नामक एक ऐसे पत्र का प्रकाशन आरंभ किया था, जिसमें भारत की अनेक भाषाओं के लेख देवनागरी लिपि में छापे जाते थे। उनकी धारणा थी कि भारत की सभी भाषाओं को देवनागरी लिपि अपना लेनी चाहिए। इससे देश की एकता को बल मिलेगा। इस अनुष्ठान में मद्रास के जस्टिस कृष्ण स्वामी भी उनके समर्थक थे।

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी आज सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग का विरोध करने लगे हैं। पर स्वाधीनता-प्राप्ति के केवल सात वर्ष पूर्व उन्होंने गुजरात विद्या-सभा के तत्त्वावधान में भारतीय आर्यभाषाओं और हिंदी पर कुछ व्याख्यान दिये थे, जो बाद में पुस्तकाकार संकलित भी हुए। ये व्याख्यान विशुद्ध भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से दिए गए थे। इनके पीछे किसी प्रकार की राजनीतिक पक्षकारता नहीं थी। इनमें एक व्याख्यान में सुनीत बाबू ने कहा था—"हिंदी या हिंदुस्तानी आज के भारतीयों के लिए एक बहुत बड़ी रिक्थ है। यह हमारे भाषा-विषयक प्रकाश का एक महत्तम साधन तथा भारतीय एकता एवं राष्ट्रीयता का प्रतीक-रूप है। वास्तव में हिंदी ही भारत की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती है।........यह सब होने के साथ-साथ हिन्दी (हिंदुस्तानी) एक महान् सम्पर्क-साधक भाषा है।' (भारतीय आर्य भाषा और हिंदी—पृष्ठ १४९-५०) अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए चटर्जी महोदय यहाँ तक कहने में संकोच नहीं करते—'केवल बँगला या गुजराती, पंजाबी या मराठी का ज्ञान किसी व्यक्ति को प्रांतों के संकुचित क्षेत्र तक ही सीमित रख सकता है, परन्तु हिंदी या हिंदुस्तानी को लेकर वह अखिल भारतीय बन जाता है। ([वही—पृष्ठ १५५)

यह भी एक विचित्र संयोग है कि जिस भाषा को देश के प्रबुद्ध चिंतकों और जननायकों ने राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया, उसका नाम 'हिंदी' अर्थात् सारे हिंद देश की भाषा। यह बँगला, असमिया, गुजराती या तमिल की तरह क्षेत्र-विशेष या राज्य-विशेष की भाषा नहीं, बल्कि इसका प्रचार प्रारम्भ से ही थोड़ा-बहुत सार्वदेशिक रहा है। हिंदी-साहित्य का इतिहास इसके सार्वदेशिक चरित्र का एक बहुत बड़ा प्रमाण है। इसका बीज-वपन उन सिद्ध कवियों की वाणियों से हुआ, जिनसे ही बँगला, असमिया और उड़िया साहित्यों के इतिहासकार अपने अपने साहित्य का श्रीगणेश मानते हैं। यदि इस काल में देश के एक छोर पर सिद्ध कवि हुए तो इसीके कुछ बाद इसे लगभग दूसरे छोर के उन जैन साधुओं की प्रबन्धात्मक रचनाओं से बल मिला, जिन्हें हिंदी के विद्वान् अपने साहित्येतिहास के अंतर्गत परिगणित करते हैं तो गुजराती के लेखक जिसे 'जूनी गुजराती' का उदाहरण मानते हैं। फिर कुछ और आगे चलने पर हमारी भेंट अमीर खुसरो से होती है, जो हिंदी के प्रतिष्ठित कवि होने के साथ उर्दू-काव्य-परम्परा के जनक हैं।

भक्तिकाल हिंदी-साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस काल में विद्यापति, नानक, मीरा और दादूदयाल जैसे कवि और साधक उत्पन्न हुए, जिन पर एक से अधिक भाषाओं ने अपने अपने दावे पेश किये हैं। विद्यापति को हिंदी, मैथिली और बँगला तीनों ही काव्य-परम्पराओं में आदरणीय स्थान प्राप्त है। नानक जितने हिंदी के कवि हैं, उतने ही पंजाबी के। मीरां की आधी रचनाएँ व्रजभाषा-मिश्रित राजस्थानी में हैं, आधी गुजराती में। दादूदयाल पर भी इन दोनों ही भाषाओं के बोलनेवाले अपना-अपना अधिकार घोषित करते हैं। यह बात हिंदी की विलक्षण समन्वयशीलता और पाचनशक्ति का प्रमाण है।

हिंदी और मराठी के सन्त कवियों में न केवल भावधारा का आश्चर्यजनक साम्य है, प्रत्युत भाषा और अभिव्यक्ति-प्रणाली में भी अधिक अन्तर नहीं। यह इन दोनों भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो चुका है। उधर व्रजभाषा का कृष्ण काव्य सुदूर-पूर्व बङ्गाल तक प्रचारित हुआ और बङ्गभाषा के अनेक कवियों ने इससे सीधी प्रेरणा ग्रहण की। इतना ही नहीं! बङ्गाल में व्रजभाषा और बङ्गला के संयोग से 'व्रजबुलि' नामक एक नवीन काव्यभाषा का ही जन्म हो गया, जिसमें पद-शैली की कुछ वैसी ही सुमधुर और गेय रचनाएँ प्रस्तुत हुईं, जैसी हिंदी के कृष्ण-भक्त कवियों की हैं। 'व्रजबुलि' के गीतिकाव्य के माधुर्य एवं लालित्य का कुछ अनुमान हम इस बात से भी कर सकते हैं कि आधुनिक काल के कवीन्द्र रवीन्द्र तक इसके अनुकरण का मोह नहीं त्याग सके और उन्होंने 'भानुसिंहेर पदावली' के नाम से इस शैली में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की।

दक्षिण भारत की भाषाओं तमिल, तेलुगु, मलयाली आदि—से हिंदी का कोई पारिवारिक संबंध नहीं। फिर भी हिंदी दक्षिण के लिए सर्वथा अपरिचित हो, ऐसी बात

नहीं। वर्त्तमान खड़ीबोली को ही एक शैली 'दक्नी' या 'दक्षिणी हिंदी' के नाम से पुकारी जाती है। इस शैली के पुरस्कर्त्ता ख्वाजा बंदेनावाज़ गेसूदराज, शाह मीरांजी और मुल्ला वजही थे। इन्होने पद्य और गद्य दोनों में रचनाएँ की हैं। शाह मीरांजी की गद्य-पुस्तक 'सबरस' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"सीधे बात पकर, घर कूं आ। तूं कूं जवान मे काई कूं जाता। अव्वल तुझे जो सिखलाता है, उसे पूछ—तूं मुझे सिखलाता सो तुझ पर खुला है ?" इसे हिन्दी मानने मे किसको इन्कार होगा ? दक्षिणी हिंदी के अधिकांश लेखक बीजापुर, गोलकुंडा, गुलबर्गा और उसके आसपास के रहनेवाले थे। महाराज शिवाजी के पिता शाहजी ने मराठी और तेलुगु के साथ हिंदी भाषा में भी कुछ कविताएँ लिखी थो। उनका 'राधा बनसीधर-विलास, नामक एक यक्षगान उपलब्ध हुआ है। शिवाजी के राज-दरबार में रहकर भूषण का काव्य साधना करना तो प्रसिद्ध ही है। भूषण ने अपनी कविताओं द्वारा शिवाजी और उनके सभासदों तथा सैनिकों को उत्साहित-उत्तेजित करने का प्रयास किया है। यह तभी संभव था, जब उक्त दरबार में हिंदी के समझनेवालो की सख्या खासी अच्छी रही हो। रीतिकाल के ही एक अन्य यशस्वी कवि पद्माकर भट्ट जाति के तैलंग ब्राह्मण थ और उनकी मातृभाषा तेलुगु थी। पर उन्होंने काव्य-रचना उस काल की मान्य साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा में ही की।

वर्त्तमान हिंदी (खड़ीबोली) अपने मूल रूप में मेरठ, सहारनपुर, दिल्ली और उसके आसपास के थोड़े-से क्षेत्र की जनपदीय बोली है। लेकिन विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से आज उसका क्षेत्र पश्चिम में राजस्थान और हरियाणा से पूर्व में बिहार के पूर्वी छोर तक और उत्तर मे हिमाचल प्रदेश और नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में मध्यप्रदेश की लगभग दक्षिणी सीमा तक विस्तृत हो चुका है। इस भू-भाग के सभी राज्य उसे प्रादेशिक स्तर पर अपनी-अपनी राजकीय भाषा स्वीकार कर चुके हैं। यह कम बड़ा भू-भाग नही। सारे देश के मानचित्र मे इसका वही स्थान है, जो शरीर से हृदय का; और हृदय की भांति ही यह सदियों तक संपूर्ण देश का प्रेरणा-स्रोत रहा है। किंतु हिंदी का प्रचार-प्रसार यहीं तक सीमित नहीं। असम से लेकर गुजरात तक उत्तर भारत का शायद ही कोई ऐसा भू-भाग हो, जहाँ आंशिक रूप से भी हिंदी न समझी जाती हो या जहाँ हिंदी बोलकर अपना काम न चलाया जा सकता हो। कलकत्ता और बंबई जैसे दो बड़े महानगर प्रकट रूप से अहिंदी क्षेत्रों में पड़ने के बावजूद हिंदी भाषा से न केवल पूरी तरह परिचित हैं, बल्कि उसकी साहित्यिक गति-विधियों के केन्द्र भी है। इनसे हिंदी के अनेक स्तरीय पत्रों का प्रकाशन हो रहा है।

इसी प्रकार उत्तर भारत के पर्यटकों के साथ हिंदी सुदूर दक्षिण में भी ले जाई गयी है। मदुरा, कांची तथा रामेश्वरम् में जो धर्मशालाएँ बनवाई जाती थीं, उनमें तीर्थ-यात्रियो की सुविधा के लिए दुभाषिए भी रखे जाते थे। धीरे-धीरे स्थानीय भाषा के साथ हिंदी के संपर्क से इन तीर्थस्थानो में बोलचाल की एक नई भाषा का विकास हो गया, जिसे 'गोसाइँ भाषा' कहते है। आज भी इन तीर्थ-स्थानो मे हिंदी आंशिक रूप से बोली और समझी जाती है और वहाँ के पंडे, पुरोहित और दूकानदार और नही तो आर्थिक कारण से ही इससे विरक्त नही हुए है। इस तरह हिंदी समझनेवालों की सख्या, हिंदी-क्षेत्र की वास्तविक जन-संख्या से कहीं अधिक है।

जिस तरह प्रत्येक राज्य में हिंदी थोड़ी-बहुत बोली अथवा समझ ली जाती है, उसी तरह हिंदी के लेखक भी आज केवल हिंदीभाषा-भाषी राज्यों तक ही सीमित नहीं। भारत का शायद ही कोई अहिंदीभाषी राज्य हो, जहाँ हिंदी के दस-पांच उच्च कोटि के लेखक न हों। इनकी परंपरा नामदेव (मराठी), नानक (पंजाबी), अष्टछापी कृष्णदास (गुजराती), पद्माकर (तैलंग) और लल्लूलाल (गुजराती) से चली आ रही है। ये लेखक कहीं अपनी मातृभाषा के साथ हिंदी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे है तो कहीं अनुवादों के द्वारा भाषाओं के संपर्क को घनिष्ठ बना रहे है। इनके माध्यम से अभिव्यक्ति की नई भंगिमाओ और नवीन प्रयोगों के आगमन का पथ भी प्रशस्त हो गया है। इस संक्षिप्त निबंध में ऐसे लेखकों की सूची प्रस्तुत करना संभव नही। लेकिन मुसलमान कवियों या ईसाई पादरियो की हिंदी-सेवा के समान अहिंदीभाषी (विशेषकर दक्षिण भारत के) लेखको की हिंदी-सेवा भी किसी जिज्ञासु के लिए अध्ययन का रोचक विषय हो सकती है।

यदि अनुवादों की बात की जाय तो भारतीय वाङ्मय का जो भी नवनीत है, उसका बहुलांश अनूदित रूप मे हिंदी मे उपलब्ध है। संस्कृत के वाल्मीकि, व्यास और कालिदास की बात छोड़िए, क्योंकि हिंदी तो संस्कृत की उत्तराधि-कारिणी ही है; तमिल के कंबन की रामायण और मराठी के ज्ञानेश्वर के अभंगों से लेकर ग़ालिब और रवीन्द्र, भारती (तमिल) और शंकर कुरूप (मलयाली), शरत (बँगला) और मुंशी (गुजराती) तक के साहित्यो से हिंदी के माध्यम से बखूबी परिचित हुआ जा सकता है। इतना ही नहीं, आज विदेशी कवियो और लेखको तक की बहुतेरी कृतियों के हिंदी मे अनुवाद हो चुके है। अनुवादों का, जो साहित्यिक सेतु हैं, इतने बड़े पैमाने पर कार्य भारत की किसी दूसरी भाषा में नहीं हुआ है। फिर भी आश्चर्य है, कुछ राज-नीतिज्ञों को हिंदी राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे बाधक दीख पड़ती है और वे निस्संकोच उस भाषा की वकालत करते हैं, जिसके सर्वग्रासी प्रभाव से मुक्त होकर ही हम स्वतंत्र चिंतन के साथ अपने राष्ट्रीय चरित्र का विकास कर सकते हैं और देश में जनतंत्र को सफल बना सकते हैं।

देवनागरीकरण—प्रादेशिक लिपियों का या भाषाओं का ?

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा 'नीरव'

केरल में पैर रखने से पूर्व ही मलयालम् का कुछ ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से मैंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से प्रकाशित 'मलयालम् स्वयं शिक्षक' को पढ़ना हित-कर सोचकर इस पुस्तक को मँगा लिया था। देवनागरी लिपि में लिखित होने से यह पुस्तक मुझ जैसे व्यक्ति के लिए बहुत कुछ उपादेय है। इस पुस्तक में लिखे कुछ नियमों का सार यह है—(१) 'कमल, राध, वेदन' का मलयालम् में 'कमला, राधा, वेदना' उच्चारण होता है। (२) शब्द के बीच में या अन्त में आनेवाले 'क, ट' का उच्चारण साधारणतः क और ग; ट और ड के बीच होता है। (३) चिह्नित वर्ण का उच्चारण हिन्दी के हलन्त रहित 'अ' के समान होता है। (४) तालव्य स्वरों (अ, आ, इ, ई, एँ ए, ऐ) के साथ 'क्क' आनेपर उच्चारण 'य' आगम के साथ होता है। इन नियमों को ध्यान में रखते हुए मैंने मलयालम् भाषा सीखना आरंभ किया किन्तु मेरा उच्चारण सुनकर श्रीमान् 'क' और श्री-मती 'ग' को हँसी आ जाती थी और मैं अपने अन्दर स्वभा-वतः कुछ हीन भावना का अनुभव करने लगता था। कारण यह था कि पुस्तक में लिखित लक्ष्मि-अविट हिन्दि पठिक्कु:नु आदि को पढ़ते समय या उच्चारण करते समय देवनागरी लिपि में लिखित स्वरूप ही मेरे सम्मुख होता और पूर्वोल्लिखित नियमों को पल-पल पर याद रखना ध्यान से उतर जाता अतः मेरा उच्चारण 'लक्ष्मी अविडे हिन्दी पठिक्कु:न्नु' जैसा न हो पाता था। सत्य तो यह है कि इन थोड़े-से नियमों में मलयालम् भाषा की व्यवस्था को समझा देने की शक्ति भी नहीं हैं। क, ट के संबध में तो इसमें बताया गया है किन्तु च, त, प के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है। शब्द के आरंभ तथा मध्य में आनेवाले ए, आँ के सम्बन्ध में कहा गया है किन्तु शब्दान्त में आने वाले एँ, आँ के बारे में कुछ नहीं। 'अ' का उच्चारण तो 'आ' वत् होता है किन्तु शब्दान्त 'इ, उ' के बारे में कुछ नहीं कहा गया। ऐ, औ के बारे में भी कुछ नहीं बताया गया है। और यदि किसी स्वयं शिक्षक पुस्तक में इस प्रकार के ढेर सारे नियमों को लिखा भी जाये तो हिन्दी मातृभाषा-भाषी साधारण पाठक से क्या यह आशा की जा सकती है कि वह इन सभी नियमों को पग-पग पर याद रखते हुए ही इतर भाषा (मलयालम्, तमिल, कन्नड़ या बँगला) का अध्ययन, उच्चारण कर सकेगा ?

इस प्रकार के (अनावश्यक) नियमों का उल्लेख करने का प्रमुख कारण यह है कि जब देवनागरी लिपि में मलया-लम्, तमिल, कन्नड़ या बँगला भाषाएँ लिखी जाती हैं तो लेखक (जो प्रायः मातृभाषा-भाषी ही होते हैं, किन्हीं कारणों-वश) उन्हें उच्चारणात्मक रूप में प्रस्तुत न कर अपनी मातृ-भाषा की विशिष्ट लिपि का ही देवनागरीकरण कर देते हैं। यह सर्वस्वीकृत सत्य है कि संसार की परंपरागत, प्रचलित लिपियों में से कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जो भाषा का शत-प्रतिशत उच्चारणात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने की क्षमता रखती हो। इस दृष्टि से कुछ परिस्थितियों को छोड़कर (हिन्दी भाषा के शब्दों का लिखित तथा उच्चारणात्मक भिन्न रूप, यथा—काम—काम् ; ऋषि—रिशि ; कृपया—क्रिपया ; उपन्यास—उपन्न्यास् ; रावण—रावड़ँ ; में—मैं ; आदमियों—आद्-मियों ; कक्षा—कक्छा, कक्शा ; ज्ञान—ग्याँन् ; ज्ञात—ग्यात् झण्डा—झंडा—झन्डा; संसार—सन्सार)। देवनागरी लिपि अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। देवनागरी लिपि में लिखित किसी भी इतर भाषा का उच्चारण हिन्दी भाषा-भाषी संस्कारवश अपने हिन्दी-उच्चारण के अनुरूप ही करने का प्रयास करेगा। यदि हिन्दी भाषी को अंग्रेजी सिखाने के लिए रोमन लिपि में लिखित अँग्रेजी भाषा का मात्र देवनागरीकरण प्रस्तुत किया जाये तो स्थिति कितनी अधिक हास्यास्पद तथा भयावह हो सकती है, चार-छह उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जायेगी, यथा—बुट्—वट् ; बुट्टर—बटर् ; सउटिओउस्—कौशस् ; जुड्जे—जज् ; निघ्ट्—नाइट् ; नुडे—न्यूड् ; ओउट् होउसे—आउट् हाउस् ; पुफ्फ्—पफ् ; सोफ्टेन्—साफ्न् ।

जो नियम या सत्य कुछ अधिक प्रतिशत में रोमन लिपि में लिखित अँग्रेजी भाषा के लिए स्वीकार्य है उससे कम प्रति-शत में मलयालम् लिपि में लिखित मलयालम् या तमिल लिपि में लिखित तमिल भाषा के लिए या अन्य भारतीय भाषाओं के लिए तथा कुछ प्रतिशत में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी भाषा के लिए भी स्वीकार्य है। मूल प्रश्न यह है कि हिन्दी भाषाभाषियों को इतर भाषाएँ सिखाने के लिए या अन्य अवसरों पर प्रादेशिक भाषाओं को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करते समय प्रादेशिक लिपियों का देवनागरीकरण करना अधिक वैज्ञानिक तथा उचित है या प्रादेशिक भाषाओं (के उच्चारण)

को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया जाए ? केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से प्रकाशित 'परिवर्धित देवनागरी पुस्तिका' में लिखित मलयालम् भाषा के कुछ शब्द यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं—भाषायुट, अतिन, उपाधियायि, पट्टिकयिल्, भाषकलिलुं, रीतियुं रण्टामतायि। देवनागरी लिपि से परिचित कोई भी भाषा-भाषी इन्हें मलयालम् भाषा के शब्द जानकर भी देवनागरी लिपि में लिखित स्वरूप के समान उच्चारण करने पर मलयालम् भाषा नहीं बोलेगा चाहे वह कोई अन्य भाषा क्यों न हो ? क्योंकि मलयालम् भाषा में इन शब्दों का रूप भाषयुडे, अदिने, उपाधियायी, पट्टिगयिल्, भाषगलिलुम् रीतियुं, रण्टामतायी है। पुस्तिका में इन शब्दों के उच्चारण के संबंध में नियम भी नहीं दिये गये हैं। (यहाँ यह संभव है कि परंपरावादी व्याकरण-वेत्ता या साहित्यिक मलयाली इस सत्य को उसी प्रकार स्वीकार करने के लिए तैयार न हों जैसे परंपरावादी व्याकरण-वेत्ता या साहित्यिक हिन्दी भाषी इस सत्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते कि वे देवनागरी लिपि में जिस प्रकार की हिन्दी लिखते हैं; वैसी बोलते नहीं हैं)। यदि प्रादेशिक भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखते समय उनका मानक उच्चारणात्मक रूप प्रस्तुत किया जाए तो बहुत से अनावश्यक नियमों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं होगा तथा देवनागरी लिपि से परिचित व्यक्ति उन भाषाओं का लगभग शुद्ध रूप जान सकने में भी समर्थ हो सकेंगे, यथा—यदि मलयालम् लिपि में लिखित 'कुटम्' तलिक, मुरि, ताड्क्ल, अतुं, वलिय, इरिक्कुक, इविट, पच्च, चाट्टुक, जोलि, अव, एतुं, ताट्टुक' आदि शब्दों के भाषायी रूप 'कुडम्, तलिगा, मुरी, ताड्गल, अद, वलिया, इरिक्कुगा, इविडे, पच्चा, चाड्डुगा, जोली, अवा, एद, ताड्डुगा' का देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया जाये तो मलयालम्-इतर भाषी मलयालम् भाषा के लगभग शुद्ध रूप से परिचित होने का अच्छा तथा सरल अवसर प्राप्त कर सकता है। यही बात अन्य प्रान्तीय भाषाओं के लिए लागू होती है। प्रादेशिक भाषाओं को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करनेवाले लेखकों या अनुवादकों को चाहिए कि वे प्रादेशिक भाषाओं का अधिक से अधिक शुद्ध रूप प्रस्तुत करने के लिए उनके उच्चारणात्मक रूप को ही देवनागरी लिपि में अंकित करें न कि उन भाषाओं की लिपि में लिखित वर्णों के स्थान पर देवनागरी लिपि के वर्णों को ही अविकल अंकित कर दें।

इस संबंध में हिन्दी भाषियों को भी देवनागरी लिपि की प्रधान कमी को दूर कर उसे अधिकाधिक ध्वन्यात्मक लिपि बनाने के पक्ष पर चिन्तन-मनन करने की आवश्यकता है। देवनागरी लिपि में 'अ' का मात्रा-चिह्न न होने से अवश्य ही बहुत अधिक कठिनाई तथा अवैज्ञानिकता है। यदि देवनागरी लिपि के लिए 'अ' का मात्रा-चिह्न (ऽ) स्वीकार कर लिया जाये तो वर्णों के खंडित रूपों तथा हल्—चिह्न से छुटकारा मिल जाये तथा लिपि में पूर्ण ध्वन्यात्मकता का गुण भी समाविष्ट हो जाये। वैसी (ध्वन्यात्मक) देवनागरी लिपि में प्रादेशिक भाषाओं का लगभग शत-प्रतिशत उचारणात्मक रूप प्रस्तुत करना बहुत ही सरल कार्य हो जायेगा।
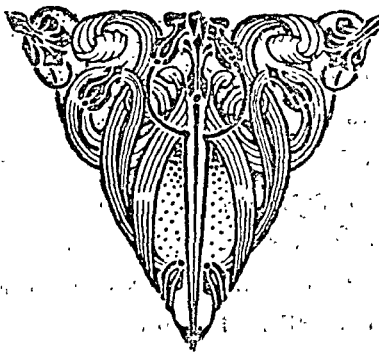
जिन्हें देश भूल गया (मदनलाल धींगरा)

श्री शंकरसहाय सक्सेना (भूतपूर्व शिक्षा-निदेशक, राजस्थान)

यह उस समय की बात है जब भारत में क्रान्तिकारी विचारधारा बलवती हो उठी थी। अंग्रेजों की दासता देश-भक्त तरुणाई को अखरने लगी थी। बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र में सबल क्रान्तिकारी दल स्थापित हो गये थे, और भारत-विरोधी अंग्रेज शासकों तथा देशद्रोही भारतीयों को क्रान्तिकारी युवक अपनी गोलियों का शिकार बनाने लगे थे। इसके साथ ही अंग्रेज सरकार का दमन चक्र भी अत्यंत तीव्र गति से चल रहा था। तनिक भी संदेह होने पर फाँसी, कालापानी और आजन्म कैद की सजा दे दी जाती थी। जहाँ तक क्रान्तिकारियों का प्रश्न था अंग्रेजों की न्याय-प्रियता का आवरण हट गया था। वे उन्हें दोष प्रमाणित न होने पर भी दण्ड देने से हिचकते नहीं थे। इस कारण क्रान्तिकारियों में बदला लेने की उत्कट अभिलाषा जाग्रत हो उठी थी। क्रान्ति की यह लहर केवल भारत में ही नहीं बह रही थी, इङ्गलैड में रहनेवाले और शिक्षाप्राप्ति के लिये गये हुए भारतीय तरुणों में भी यह क्रान्तिकारी विचारधारा प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही थी। मानिक-तल्ला विद्रोह मे सम्मिलित क्रान्तिकारियो के साथ जैसा क्रूर और निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया गया तथा अन्य देशभक्त क्रान्तिकारी जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार की नृशंसता के शिकार बने उसके कारण तरुण क्रान्तिकारियों में बदला लेने की भावना अत्यन्त बलवती हो उठी थी। क्रान्ति-कारियों की यह भी मान्यता थी कि यदि ब्रिटिश सरकार के उस क्रूर दमन का बदला लेकर निराकरण नहीं किया गया तो क्रान्ति की जो लहर उस समय बलवती हो उठी थी वह तेजहीन होकर शिथिल हो जावेगी।

उस समय लन्दन में श्री श्यामकृष्णजी वर्मा, वीर-सावरकर, लाला हरदयाल और मैडम कामा, आदि प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित कर रहे थे। ऐसे समय एक अमृतसर का पंजाबी युवक जो लन्दन में इंजिनियरिंग की शिक्षा लेने आया था, जिसमें मातृभूमि की भक्ति कूट-कूट कर भरी थी, इस क्रान्तिकारी भावना से प्रभावित हो गया। वह 'इंडिया-हाऊस' में रहता था और वह उन सभी सभाओं और गुप्त मंत्रणाओं में सम्मिलित होता जिनमें भारत को स्वतंत्र बनाने के सम्बन्ध में चर्चा होती। लाला हरदयाल और श्री श्यामकृष्णजी वर्मा द्वारा प्रकाशित 'इंडियन सोसियोलाजिस्ट' जो भारतीयों को क्रान्तिकारी विचारधारा का मन्त्र देता था, का वह नियमित पाठक था। यही तेजस्वी देशभक्त युवक मदनलाल धींगरा था।

इंडिया हाउस लन्दन में क्रान्तिकारियों का मुख्य केन्द्र था। उस संस्था के अन्दर जो उत्कट और गहन देशभक्ति की भावना प्रवाहित हो रही थी उसका एक छोटा सा उदा-हरण देना पर्याप्त है। दस मई को १८५७ के प्रथम भार-तीय स्वतंत्रता के युद्ध की स्मृति में इंडिया हाउस में भार-तीयों की सभा बुलाई गयी और वहाँ १८५७ की क्रान्ति के नेताओं नाना साहब, तात्या टोपे और रानी लक्ष्मीबाई, आदि वीरों को भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की गई। यह सभा १० मई १९०९ को सायकाल के समय आमंत्रित की गई थी। मदनलाल धींगरा उस दिन यूनिवर्सिटी कालेज में अपनी कक्षा में १८५७ के वीर शहीदों की स्मृति-स्वरूप उन क्रान्तिकारियों की यादगार का बिल्ला लगाकर उपस्थित हुआ था। जब उससे कहा गया कि वह अपना बिल्ला उतार दे तो उसने दृढ़ता से बिल्ला उतारने से इनकार कर दिया। इस पर अंग्रेज छात्रो ने उसे तंग करना शुरू कर दिया। धींगरा ने उनके नेता की गरदन पकड़ ली और गम्भीरतापूर्वक उससे कहा कि यदि तुम शालीनता का व्यवहार नहीं करोगे तो यह गरदन तुम्हारे धढ़ से पृथक् कर दी जावेगी। उसके उपरान्त किसी अंग्रेज सहपाठी का धींगरा से बोलने का साहस नहीं हुआ।

धींगरा की राजनीतिक और क्रान्तिकारी गति-विधियों का समाचार भारत में उसके पिता के पास पहुँचा जो कि एक धनी और प्रसिद्ध डाक्टर थे। उसका भाई भी एक सफल बैरिस्टर था। भाई ने कर्जन-वायली को लिख भेजा कि वह उसके भाई की देखभाल रक्खे और उसे बुरे प्रभाव से बचाने का प्रयत्न करे। जब धींगरा को यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने बड़े भाई को सूचित किया कि वह उस अध-गोरे कर्जन-वायली के अभिभावकत्व को किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकता जिसका एक मात्र कार्य भार-तीय देशभक्तों और क्रान्तिकारियों को फँसाकर दंड दिलाना भर है।

कर्जन-वायली भारतीय सेना का अवसर प्राप्त अधिकारी

था जो सेना से अवकाश प्राप्त करने पर भारत मन्त्री का राजनीतिक ए० डी० सी० नियुक्त किया गया था। कर्जन-वायली भारत और भारतीयों से घृणा करता था और देशभक्त भारतीयों का तो वह घोर शत्रु था। देशभक्त भारतीयों को कठोर दंड दिलाने में ही उसे सुख मिलता था। उसके कारण अनेक देशभक्त भारतीयों को दण्ड भुगतना पड़ा था। यही कारण था कि प्रत्येक देशभक्त भारतीय उसको अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था। वायली गर्व के साथ भारतीय क्रान्तिकारियों और देशभक्तों के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित करता और उनका दमन करने का दावा करता था।

मदनलाल धींगरा ने कर्जन-वायली को मारने का निश्चय किया, किन्तु उसके बाह्य आचरण में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा। वह उन दिनों अत्यन्त शान्त और गम्भीर रहता था उसमें किसी ने उन दिनों तनिक भी उद्विग्नता नहीं देखी जब कि वह कर्जन-वायली को मारने की तैयारी कर रहा था। वह एक ऐसे क्लब का सदस्य बन गया जहाँ पिस्तौल चलाने और निशाना लगाने का अभ्यास कराया जाता था। एक पिस्तौल खरीद कर उसने अभ्यास करना आरम्भ कर दिया।

१ जूलाई १९०९ को इंडियन नेशनल ऐसोशियेसन की वार्षिक बैठक थी। इम्पीरियल इंस्टिट्यूट के जहाँगीर हाल में मीटिंग का आयोजन किया गया था। धींगरा को ज्ञात था कि कर्जन-वायली उस मीटिंग में अवश्य सम्मिलित होगा। धींगरा अपने स्थान से दो घंटे पूर्व ही मीटिंग के लिए चल दिया और 'वेस्टबोर्न' गया जहाँ उसके कुछ अभिन्न मित्र रहते थे। वास्तव में वह अपने उन अन्तरंग मित्रों से अन्तिम बार मिलने गया। वह जानता था कि वह उसका अन्तिम मिलन होगा। परन्तु उसने अपने मित्रों को भी कुछ नहीं बतलाया। उनसे मिलकर और अन्तिम विदा लेकर वह ठीक समय पर मीटिंग में पहुँच गया। संगीत का कार्यक्रम समाप्त होते ही कर्जन-वायली हाल से बाहर निकला और सीढ़ियाँ उतरने लगा। धींगरा ने बढ़ कर मुस्कराते हुए उससे बातचीत करना आरम्भ की और तुरन्त अपना रिवाल्वर निकाल कर एक के बाद दूसरी पाँच गोलियाँ उस पर दाग दीं। वायली वहीं गिर पड़ा। वायली के समीप ही खड़े हुए एक पारसी कोवासलाल काका वायली को बचाने के लिए आगे बढ़े तो धींगरा ने उन पर भी गोली चलाई। वे पुरी तरह घायल होकर गिर पड़े। कर्जन-वायली की तत्काल मृत्यु हो गयी और गोलियों के कारण उसका चेहरा क्षत विक्षत हो गया। श्रीकोवासलाल काका को शीघ्र अस्पताल ले जाया गया परन्तु कुछ दिनों के उपरान्त उनकी भी मृत्यु हो गयो।

पास खड़े हुए लोगों ने धींगरा को पकड़ लिया परन्तु धींगरा ने बलपूर्वक अपने हाथों को छुड़ा लिया और रिवाल्वर से अपने सिर पर गोली चलाई, परन्तु रिवाल्वर खाली हो चुका था, उसकी गोलियाँ समाप्त हो चुकी थीं। मदनलाल धींगरा के पास एक गोलियों से भरा हुआ रिवाल्वर और एक छूरा और था और यदि वह चाहता तो अपने *पकड़ने वालों को भी मार सकता था परन्तु उसने,* शान्त स्वर में गम्भीरतापूर्वक कहा कि वह अन्य किसी को मारना नहीं चाहता, वे सब सुरक्षित हैं उन्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे इस बात का दुख है कि पारसी सज्जन पर मुझे गोली चलानी पड़ी क्योंकि वे मेरे उद्देश्य में बाधा डालना चाहते थे।

जिस समय मदनलाल धींगरा पकड़ा गया उसके चेहरे पर तनिक भी उत्तेजना या घबराहट का चिह्न नहीं था। किसीने उसके लिए 'खूनी' शब्द का प्रयोग किया तो मदनलाल धींगरा उत्तेजित हो उठा। उसने थोड़े आवेश में कहा "मैं एक देशभक्त हूँ जो अपनी मातृभूमि को विदेशियों की दासता से मुक्त करने के लिए प्रयत्न कर रहा है। 'खूनी' शब्द के प्रति मुझे घोर आपत्ति है क्योंकि मैंने जो कुछ किया वह न्यायोचित है। यदि जरमन लोग इंगलैंड पर अधिकार कर उसे पराधीन बना लेते तो इंगलैंड के लोग भी वही करते जो मैंने किया है।

मदनलाल धींगरा का मुकदमा २३ जुलाई १९०९ को 'पुराने बेली' की सेशन अदालत में हुआ। बीस सेकिंड में अदालत ने मुकदमा समाप्त कर दिया और धींगरा को मृत्युदण्ड की सजा दे दी। साथ ही शेरिफ़ ने उसकी फाँसी का दिन १७ अगस्त १९०९ निर्धारित कर दिया।

जब न्यायाधीश ने धींगरा से पूछा कि अभियुक्त कुछ कहना चाहता है तो धींगरा ने शान्त और गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया "तुम मेरे साथ जो भी व्यवहार करना चाहो कर सकते हो। मुझे उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। तुम श्वेत लोग सर्वशक्तिवान हो, और जो भी चाहो कर सकते

हो। लेकिन याद रक्खो कि भविष्य में हमारा भी एक दिन समय आवेगा जब हम तुमसे इसका बदला लेंगे।"

मदनलाल धींगरा की जेब में एक वक्तव्य था जो वह अदालत के समक्ष पढ़ना चाहता था। जब पुलिस ने उसको अपनी हिरासत में लिया और उसकी तलाशी ली तो वह वक्तव्य उनके हाथ पड़ गया और उसने उस वक्तव्य को छिपा लिया। मदनलाल धींगरा ने न्यायालय से प्रार्थना की कि पुलिस ने मेरे वक्तव्य को दबा लिया है वह उससे लेकर अदालत में पढ़ा जावे। मदनलाल धींगरा का वक्तव्य क्रान्तिकारियों के इतिहास में अभूतपूर्व और प्रत्येक व्यक्ति को रोमांचित कर देनेवाला था अतएव पुलिस ने उस वक्तव्य को छिपा लिया। वह नहीं चाहती थी कि वह वक्तव्य कभी भी प्रकाशित हो। मदनलाल ने न्यायालय से केवल एक ही प्रार्थना की कि उसके वक्तव्य को पुलिस से लेकर अदालत में पढ़ा जावे परन्तु अपनी न्यायशीलता पर गर्व करनेवाले ब्रिटिश न्यायालय ने धींगरा की कोई सुनवाई नहीं की।

मातृभूमि के लिए अपनी आहुति देनेवाले क्रान्तिकारियों के इतिहास में धींगरा का वक्तव्य अत्यन्त प्रभावशाली और अद्भुत था। उसकी अन्तर आत्मा की आवाज उसमें अपने पूर्ण ओज से उद्भासित हुई थी। धींगरा ने अपने ओजस्वी वक्तव्य में कहा था :—

"मैं यह स्वीकार करता हूँ कि उस दिन मैंने देशभक्त भारतीय युवकों की फांसी, आजन्म कारावास तथा कालेपानी, के अमानवीय दण्डों का विनम्र प्रतिशोध लेने के लिए एक अंग्रेज का रुधिर बहाया था।

इस कृत्य में मैंने केवल अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसीसे भी परामर्श नहीं किया। मैंने किसीके साथ मिल कर षड्यंत्र नहीं किया, केवल मात्र अपना कर्त्तव्य पालन किया है।

मेरा यह विश्वास है कि जिस राष्ट्र को विदेशी किर्चो और संगीनों के बल पर पराभूत किया जाता है और दास बनाये रक्खा जाता है, वह राष्ट्र आक्रामक राष्ट्र से शाश्वत युद्ध की स्थिति में रहता है; क्योंकि उस जाति के लिए जिसे निःशस्त्र कर दिया गया हो, खुला युद्ध कर सकना असम्भव है। अतएव मैंने सहसा आक्रमण किया और क्योंकि मुझे बन्दूक रखने की आज्ञा नहीं थी, मैंने अपनी पिस्तौल निकाली और गोली दाग दी।

एक हिन्दू होने के नाते मेरा विश्वास है कि मेरे देश के प्रति दुर्भावनापूर्ण दुष्कृत्य भगवान् का घोर अपमान है। मातृभूमि का पक्ष श्री राम का पक्ष है, उसकी सेवा श्री कृष्ण की सेवा है। मेरा जैसा माता का पुत्र जो धनहीन है और जिसके पास बुद्धि और चातुर्य भी कम है माँ को अपने रुधिर के अतिरिक्त और क्या भेंट कर सकता है। वही मैंने माता की बलवेदी पर चढ़ा दिया है।

भारतीयों को आज एक ही पाठ पढ़ने की आवश्यकता है कि किस प्रकार मरा जावे और उस पाठ को पढ़ाने का एक ही तरीका है कि हम स्वयं मरें। इसलिए मैंने मृत्यु का आलिंगन किया है और मुझे अपने इस बलिदान पर गर्व है।

यदि भारत और इंगलैंड का वर्तमान अप्राकृतिक सम्बंध समाप्त नहीं होता तो भारत और इंगलैंड के बीच यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा जब तक कि हिन्दी (भारतीय) और अंग्रेज जातियाँ जीवित हैं।

मेरी भगवान् से केवल एक ही प्रार्थना है कि मैं पुनः भारतमाता की पावन भूमि में जन्म लूँ और मैं पुनः इसी पवित्र कार्य के लिए मरूँ जब तक कि माता को स्वतन्त्र करने का कार्य सफल न हो जावे, और भारतमाता मानवता के शुभ के लिए और भगवान् की गौरव गरिमा को प्रकाशित करने के लिए स्वतन्त्र न हो जावे।"

धींगरा ने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि उसका हिन्दू पद्धति के अनुसार दाह-संस्कार किया जावे। कोई अहिन्दू उसके शरीर को न छुए, उसके कपड़ों तथा अन्य सामान को बेंच दिया जावे और जो रुपया आवे वह राष्ट्रीय कोष में दे दिया जावे।

धींगरा के इस साहसिक कार्य से समस्त इंगलैंड मानों निद्रा से जाग पड़ा। मानों किसीने इंगलैंड को झकझोर दिया हो। इंगलैंड के बाजारों में, मकानों में, क्लबों में, पार्लियामेंट में, शिक्षण-संस्थाओं में, और प्रत्येक समाचार-पत्र में केवल धींगरा की ही चर्चा थी। धींगरा ने इंगलैंड निवासियों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि जैसा कहा जाता है कि भारतवासी ब्रिटिश शासन को वरदान मानते हैं वह सही नहीं है।

धींगरा के पिता में अपने महान् क्रान्तिकारी पुत्र के बलिदान को गर्व के साथ स्वीकार करने का साहस नहीं था। उन्होंने कायरता का परिचय दिया। उन्होंने लार्ड

मार्ले को तार भेजकर कहा कि उन्हें लज्जा है कि धींगरा उनका पुत्र है, वे उसको अपना पुत्र स्वीकार नहीं करते। धींगरा के भाई ने सार्वजनिक रूप से धींगरा को अपना भाई मानने से इनकार कर दिया। इंगलैंड में जो भी भारतीय उस समय मौजूद थे, उन्होंने भी महान् कायरता का परिचय दिया। अपनी राजभक्ति दिखलाने के लिए उन्होंने ५ जुलाई को प्रसिद्ध "कैक्सटन हाल" में धींगरा की निन्दा करने के लिए सभा बुलाई। उस सभा में सर मनछेरजी भोवानगिरी, सर आगाखाँ, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बी० सी० पाल तथा खापर्डे आदि ने बहुत जोरों से धींगरा की निन्दा की। सभा में महाराज कुमार कूचबिहार, सर दिनशा पैटिट, फ़जलभाई करीमभाई आदि बहुत से प्रसिद्ध भारतीय उपस्थित थे। उस समय थ्योडर मारिसन जो इंडिया कौंसिल के सदस्य थे, धींगरा के भाई को मंच पर ले आये और धींगरा के विरुद्ध निन्दात्मक वाक्य कहलवाए। उसके उपरान्त सभापति सर आगाखाँ ने घोषणा की सभा सर्वसम्मति से मदनलाल धींगरा की निन्दा करती है। सभापति के मुख से यह शब्द निकले ही थे कि भीड़ में से गरजती हुई एक गम्भीर आवाज सुनाई दी—नहीं सर्वसम्मत से नहीं! सर आगा खाँ का चेहरा क्रोध और क्षोभ से लाल हो गया और क्रोधित स्वर में उन्होंने पूछा—"कौन 'न' कहता है?" तुरन्त उत्तर मिला "मैं कहता हूँ" नहीं"। अध्यक्ष महोदय ने पूछा "महोदय आपका नाम" तब तक मंच पर बैठे हुये कुछ अति अंग्रेज भक्त अधीर हो उठे और चिल्लाकर कहने लगे—"उसको बिठा दो, उसको भगा दो।" सर मनछेरजी भोवानगरी मंच से कूदे और जिधर से आवाज आई थी उधर दौड़े। चुनौती देते हुये उस गम्भीर और तेज आवाज ने कहा "यह मैं हूँ मेरा नाम सावरकर है।

सभा का दृश्य ही बदल गया। भारतीओं में भय के कारण भगदड़ मच गयी। उन्हें भय हो गया कि कहीं क्रान्तिकारी सभा पर बम न फेंक दें। जो भी राजे, सर और ऊँचे कहे जानेवाले अधिकारी सभा में मौजूद थे, भागकर कुर्सियों के नीचे और जहाँ जिसको जगह मिली छिप गये। जो अभीतक राजभक्ति प्रदर्शित करने में सबसे आगे थे वे काँप रहे थे। उस उत्तेजना और भय के वातावरण में एक यूरेशियन श्री पामर ने सावरकर के सिर पर प्रहार किया जिससे सावरकर का चश्मा टूट गया, और उनके सिर से खून बहने लगा। फिर भी सावरकर वहाँ से नहीं हटे। उन्होंने दृढ़ता से कहा—"यह सब होते हुए भी मैं कहता हूँ कि मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ"। श्री तिरुमलाचार्य सावरकर के पास ही खड़े थे। उन्होंने श्रीपामर पर इतने वेग से प्रहार किया कि श्री पामर गिर गए और लुढ़कते हुए चले गये। श्री ऐयर-पामर को गोली मारने ही वाले थे कि सावरकर ने संकेत से उन्हें रोक दिया।

जहाँ धींगरा के पिता ने उनको अपना पुत्र स्वीकार नहीं किया और कुछ अंग्रेज भक्तों ने उनकी निन्दा की वहाँ असंख्य विदेशियों और समस्त भारतवासियों ने मदनलाल धींगरा को महान् देश-भक्त और बलिदानी के रूप में अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने धींगरा के संबंध में लिखते हुए टाइम्स पत्र में लिखा "यद्यपि मेरा इस हत्या से कोई संबंध नहीं है परन्तु मैं यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहता हूँ कि मैं धींगरा के कार्य का समर्थन करता हूँ और उसे भारत की स्वतंत्रता के लिए बलिदान होनेवालों में बहुत ऊँचा स्थान देता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी इस घोषणा से बहुतों को धक्का लगेगा परन्तु सौभाग्यवश इंगलैण्ड में ऐसे ऊँचे विचारवाले विद्वान् और राजनीतिज्ञ हैं जिनका मेरे साथ इस बात में मतैक्य है कि राजनीतिक हत्या खून नहीं है।

सावरकर मदनलाल धींगरा से २२ जुलाई १९०९ को ब्रिक्सटन जेल में मिले और कहा—"धींगरा, मैं तो तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। वास्तव में तुम धन्य हो" धींगरा की केवल एक ही इच्छा थी कि उसका वह वक्तव्य जो पुलिस ने उसकी जेब से निकाल लिया था और दबा दिया था किसी तरह प्रकाशित हो जावे। उन्होने सावरकर को बतला दिया कि उस वक्तव्य की मूल प्रतिलिपि कहाँ है। धींगरा को फाँसी लगने के केवल दो दिन ही शेष थे। सावरकर यह चाहते थे कि फाँसी लगने के पहिले ही धींगरा का वक्तव्य प्रकाशित हो जाना चाहिए।

सावरकर के सहयोगी श्रीज्ञानचन्द वर्मा ने धींगरा के वक्तव्य की प्रतियाँ अमेरिका तथा आयरलैंड के पत्रों में प्रकाशित होने के लिए भेज दी परन्तु उन देशों में वक्तव्य पहुँचने और छपने के पहले धींगरा को फाँसी लगा दी जाती। केवल इँग्लैण्ड के समाचार पत्रों में ही वह फाँसी के पूर्व प्रकाशित हो सकता था। परन्तु इँग्लैण्ड के किसी भी समाचार-पत्र को उस वक्तव्य को प्रकाशित करने के लिए राजी करना

कठिन था। सावरकर ने अपने मित्र 'डेविड गारनट' को यह कार्य सौंपा। गारनट उस वक्तव्य को डेलीन्यूज' के रात्रि-लाईन्ड के पास ले गया जिन्होंने धींगरा के उस क्रान्तिकारी वक्तव्य को अपने पत्र के रात्रि-संस्करण में छाप दिया। १६ अगस्त १९०९ को प्रातःकाल लदन में जब धीगरा का वह क्रान्तिकारी वक्तव्य छपा तो मानों इँग्लैण्ड में भूकम्प आ गया। ब्रिटेन की पुलिस और गुप्तचर विभाग निश्चिन्त थे। वे यही समझे बैठे थे कि वह वक्तव्य केवल उन्हींके पास है अतएव उन्होंने इस संबंध में अधिक सतर्कता नहीं बरती। १६ अगस्त को प्रातःकाल उन्होंने चकित होकर देखा कि चुनौती शीर्षक से वह वक्तव्य संसार भर में प्रसारित हो गया।

जब मदनलाल धींगरा ने समाचारपत्रों मे अपना वह वक्तव्य पढा तो वे अत्यन्त आनन्दित हो उठे, उनकी अन्तिम इच्छा पूरी हो चुकी थी। १७ अगस्त १९०९ को अत्यन्त प्रसन्नता और सन्तोष के साथ वे स्वयं सूली पर चढ़ गये। इस प्रकार उस वीर देशभक्त ने मातृभूमि के लिए मृत्यु को वरण किया। मदनलाल धींगरा ने जिस साहस और उत्कट देशभक्ति का परिचय दिया वह भारत के क्रान्तिकारी इतिहास में अभूतपूर्व था। धीगरा जैसे देशभक्त मरते नहीं अमर हो जाते है।

समस्त योरोप में मदनलाल धीगरा के साहस और देशभक्ति की सराहना की गयी। आयरलैड के सभी समाचारपत्रों ने मुख्य पृष्ठ पर मदनलाल धींगरा का चित्र देकर उस वक्तव्य को छापा। चित्र के नीचे छपा था "आयरलेंड मदनलाल धींगरा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है जिसने अपने देश के लिए अपना बलिदान कर दिया।

मदनलाल धींगरा के उस साहसपूर्ण कार्य ने तत्कालीन विदेशी लेखकों, विचारकों, और राजनीतिज्ञों को भी उनका प्रशंसक बना दिया था। प्रसिद्ध लेखक ब्लन्ट ने अपनी डायरी में धीगरा के सम्बन्ध में लिखा था कि आज तक किसी भी ईसाई बलिदानी ने अपने जजों का ऐसी निर्भीकता और शान के साथ सामना नही किया था। आगे ब्लन्ट ने यह भी लिखा कि भारत में धीगरा के फाँसी का दिन सैकड़ो पीढ़ियों तक शहादत के दिन की भाँति मनाया जावेगा।

यही नही लायड जार्ज और चर्चिल जैसे ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भी मदनलाल धीगरा की उत्कट देशभक्ति के प्रशसक बन गये। लायड जार्ज ने चर्चिल से धीगरा की देशभक्ति की भूरि भूरि प्रशंसा की थी। चर्चिल स्वयं धीगरा का प्रशंसक और भक्त बन गया था। चर्चिल का कहना था कि धींगरा के अन्तिम वाक्य देशभक्ति के नाम पर कहे गए वाक्यों में सर्वश्रेष्ठ थे। लायड जार्ज और चर्चिल मदनलाल धींगरा की प्लूटार्क के अमर वीरों से तुलना करते थे।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल ने मैडम कामा द्वारा प्रकाशित 'वन्देमातरम' पत्र में धींगरा के सम्बन्ध में लिखा था "भविष्य में जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य धूल और राख में मिल जावेगा, धींगरा के स्मारक भारत के प्रत्येक बड़े नगर के मैदानों में सुशोभित होंगे जो हमारे भावी बच्चों को उस गौरवशाली अभिजात देशभक्त के जीवन और मृत्यु की श्रद्धा के साथ याद करायेंगे जिसने अपनी मातृभूमि के लिए, जिसे वह इतना अधिक प्रेम करता था सुदूर विदेश में अपना बलिदान किया था।"

मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन-वायली की हत्या के सम्बन्ध में लिखते हुए लन्दन के टाइम्स पत्र ने लिखा था "दमन भारत को विनाश की ओर ढकेल रहा है। यदि इंगलैड अब भी यह विश्वास करता है कि वह भारत मे मानवता के हित में जमा हुआ है तो उसका यह भ्रम शीघ्र मिट जावेगा। भविष्य में होनेवाली राजनीतिक हत्याओं की सूची लम्बी होगी, परन्तु उसकी जिम्मेदारी उन लोगों की होगी जो भारत की स्वतन्त्रता के प्रयत्न को सहारा न देकर उसे बलपूर्वक ब्रिटेन की अधीनता में रखना चाहते है।

मदनलाल धींगरा को जब फाँसी हुई तब वे केवल बाईस वर्ष के थे। सम्पूर्ण लम्बा जीवन उनके सामने पड़ा था परन्तु उन्होंने मातृभूमि की बलवेदी पर आहुति देकर देश के लिए बलिदान की परम्परा में ऐसा गौरवशाली अध्याय जोड़ दिया जिसका प्रकाश और सुरभि भारत की आनेवाली पीढ़ियों को अनन्त काल तक अनुप्राणित करती रहेगी।

दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त क्रान्तिकारी देशभक्तों के द्वारा मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए किये गये कार्यों की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई जिसके कारण आज की पीढी उनके त्याग और बलिदान से अपरिचित है। परन्तु किसी दिन इतिहास इस तथ्य को स्वीकार करेगा कि देश की स्वतन्त्रता में उनका शानदार और महत्त्वपूर्ण योगदान था। उनके बलिदान और मातृभूमि के लिए मर मिटने की कहानी हमारी भावी पीढ़ियों को देशभक्ति का पावन संदेश देती रहेगी।

—जय हिन्द
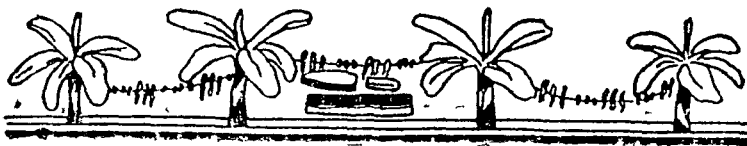
रचनाएँ लौटती हैं

राजेन्द्रप्रसाद जैन

सामरसेट मॉम की कहानी 'मिस टाम्पसन' 'कास्मोपोलिटन मैगजीन' ने लौटायी और 'स्मार्टसेट' ने स्वीकार कर ली। कोल्टन को यह कहानी इतनी रुची कि उन्होंने इसे नाटक के रूप में परिवर्तित करने की अनुमति माँगी जो मॉम ने प्रसन्नतापूर्वक दे दी। इस नाटक का नाम 'रेन' रखा गया जो न्यूयार्क में ६४८ शानदार दिनों तक चला। अमरीका के अन्य नगरों में इसके १४२० शानदार प्रदर्शन हुए और लंदन में १५०।

एड हो की सारी ख्याति का आधार उनकी 'दी स्टोरी आफ ए कण्ट्री टाउन' है। जब कोई भी प्रकाशक इसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुआ तो उन्हें यह स्वयं छपानी पड़ी थी।

जॉयस की कविताएँ जब पहली बार प्रकाशन के लिये स्वीकृत हुई तो उनकी आयु ४० वर्ष की हो चुकी थी।

सैटर्डे रिव्यू के कविता विभाग की सम्पादिका कु० एमि लवमैन को ९८% रचनाएँ लौटानी पड़ती थीं। उनके अन्दर यह विशेष गुण था कि कोई भी लेखक जिसकी रचना उन्होंने लौटाई हो उनसे अप्रसन्न नहीं हुआ। किसी की अस्वीकृत रचना खो न जाय, इसके लिये वे बहुत सतर्क रहती थीं। इस पत्रिका के अन्य विभागीय सम्पादक क्रिस्टोफर मोरले एक दिन बैठे हुए रो रहे थे। कारण कि अन्य प्रकाशक से वे एक दुर्लभ फ़ोटो उधार माँग कर लाये थे इस वायदे पर कि दो सप्ताह के भीतर वे उसे लौटा देंगे। परन्तु दुर्भाग्य से वह अब मिल नहीं रहा था। कु० एमि ने खोज की तो पता चला कि फोटो खिसक कर रद्दी की टोकरी में जा पड़ा था जिसे कि कोई घण्टा भर हुआ मेहतरानी कूड़े में डाल आयी थी। कु० एमि झपट कर नीचे गयीं तो पता चला कि लगभग ३० मिनट हुए नगरपालिका का ट्रक उस कूड़े के ढेर को उठा कर ले गया है। कु० एमि एक टैक्सी में वहाँ पहुँचीं जहाँ ये ट्रक कूड़ा डालते हैं, और दो घण्टे के कठोर परिश्रम के पश्चात् वे उस फोटो को ढूँढ़ निकालने में सफल हुईं। इतनी सतर्कता बरतते हुए भी वे एक बार सङ्कट में फँस गईं। एक लेखक की एक रचना अस्वीकृत हुई, परन्तु पूर्व इसके कि वह लौटाई जा सके, वह खो गई। लेखक बार-बार रचना वापिस लौटाये जाने का तकाजा करने लगा, और लगभग ३ वर्ष के पश्चात् उसने नोटिस दिया कि मेरी रचना का मूल्य ५०,००० डालर (लगभग ४ लाख रु०) है। या तो १ मास के भीतर-भीतर मेरी रचना लौटा दो नहीं तो हर्जाने के ५० सहस्र डालर दो। एमि ने बहुत खोज की, सारा कार्यालय छान मारा परन्तु रचना नहीं मिली। सौभाग्य से तीन सप्ताह पश्चात् ही इस पत्रिका को अपना पुराना भवन छोड़कर नये भवन में जाना पड़ा। जब सारा सामान ढोया जा रहा था तो संयोगवश वह रचना मिल गयी। इससे पत्रिका के संचालकों व एमि को जो प्रसन्नता हुई तथा उस लेखक को जो अपना स्वप्न भंग हो जाने से मानसिक सन्ताप पहुँचा, उसका अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं।

अमरीका की 'न्यूयार्कर' पत्रिका की ग्राहक-संख्या तो कुल ३ लाख है, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक है। इस पत्रिका के सम्पादक श्री रॉस ने एक दिन प्रतिज्ञा की कि मैं अब ऐसी कोई कविता स्वीकृत नहीं करूँगा जिसे मैं स्वयं नहीं समझता। इससे सिद्ध होता है कि अमरीकी पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसी नयी कविता व अकविता छपती रहती हैं जिन्हें सम्पादकगण स्वयं नहीं समझ पाते। सम्पादकीय विभाग के 'ई० बी० व्हाइट', थार्बर के चित्रों से इतने प्रभावित थे कि सम्पादकीय विभाग के अन्य सब सदस्यों के तीव्र विरोध के बावजूद भी उन्होंने थार्बर के चित्र स्वीकृत कराने में सफलता प्राप्त की। यही नहीं, वे थार्बर के घर गये और जो चित्र रद्दी समझकर स्वयं थार्बर ने रद्दी की टोकरी में डाल दिये थे वे भी उन्होंने न्यूयार्कर में प्रकाशित कराये।

श्री० टॉमलिन्सन् अमरीका के धन कुबेर साहित्यिक थे। उन्होंने एक लेख 'नामकरण' पर लिखा था। टॉमलिन्सन् ने यह लेख 'दी नेशन' को प्रकाशनार्थ भेजा। वहाँ से लौट आया परन्तु, उन्हें विश्वास था कि मेरा लेख

अभूतपूर्व है। अतः उन्होंने इसे 'दी न्यूयार्कर' में भेजा। वहाँ से भी लौट आया, फिर उन्होंने इसे 'दी सैटर्डे रिव्यू' में भेजा। वहाँ से भी लौट आया। परन्तु लेखक का आत्मविश्वास था कि हिलने का नाम नहीं लेता था।

उन्होंने उसे 'दी मार्निङ्ग टेलिग्राफ' में भेजा। वहाँ से भी लौट आया फिर भी लेखक ने पराजय स्वीकार नही की। अबकी बार उन्होंने इसे "डेट्रोइट ऐथलंटिक न्यूज" में प्रकाशनार्थ भेजा और वहाँ से भी लौट आया। यह सब इतिहास किसी मित्र ने 'इजिङ्गलास सिटिंजन हेरल्ड' के सम्पादक को सुनाया, तो सम्पादक ने टॉमलिन्सन को लिखा कि आप अपना उक्त लेख हमारे पास भेजिये। हम उसे प्रकाशित कर देंगे। परन्तु अब टॉमलिन्सन का हृदय टूट गया था। उन्होंने लेख नही भेजा। लेख न भेजने का एक कारण और भी हो सकता है। टॉमलिन्सन एक बड़े उद्योगपति थे, और इस पत्र के प्रतिनिधि टॉमलिन्सन से उनकी फार्मों के विज्ञापन प्राप्त करने के हेतु शीघ्र मिलने वाले थे। टॉमलिन्सन की मृत्यु के पश्चात यह लेख उनके कागजों में मिला, जिसके साथ एक और कागज नत्थी था जिसमें बतलाया गया था कि यह लेख कहाँ-कहाँ से लौट आया है। यह लेख तब 'सैटर्डे रिव्यू' के ११-८-४५ वाले अङ्क में छपा, और आलोचकों ने घोषणा की कि यह टॉमलिन्सन का सर्वोत्तम लेख है। यदि लेख का अर्थ विचार, भाव, अनुभव इन तीनों के निचोड़ को भाषा में व्यक्त करना है। is by far his most outstanding written achievement, if writing is to be regarded as the field of the mind, the spirit, and the seeing eye, put down in words.

अस्वीकृत रचनाओं पर मेरा एक लेख कादम्बिनी और एक सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। यह तीसरा लेख उसी विषय पर लिखकर मैं पाठकों को उबा नही रहा हूँ। यह विषय इतना रोचक है कि इसमें ऊबने का कोई प्रश्न नहीं उठता। फिर यह विषय अत्यन्त उपयोगी है। यदि इस पर लेखक वा सम्पादक गण अपने-अपने विचार व अनुभव लिखें तो इसमें उन लेखकों को प्रोत्साहन मिलेगा जो अपनी १०-२० रचनाएँ अस्वीकृत होते ही हतोत्साहित होकर बैठ जाते हैं और सम्पादको व प्रकाशकों के प्रति अपने हृदय में कटुता भर लेते हैं। श्री कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर ने एक वार लिखा था कि एक लेखक ने अपनी रचनाएँ अस्वीकृत होने पर लिखा था कि मैं देखूँगा कि आपके पत्र का एक भी ग्राहक मेरे क्षेत्र में न रहने पाये। इस प्रकार के लेखों से सम्पादकों में नया आत्मविश्वास जागृत होगा, तथा साथ ही साथ वे रचनाएँ अस्वीकृत करते समय अधिक सतर्कता वरतेंगे। वैसे यह विद्यार्थियो के लिये शोध प्रबन्ध का भी अच्छा विषय है। अङ्गरेजी में भी इस विषय पर अभी तक कुछ नहीं लिखा गया। अस्वीकृत रचनाओं के विषय में यत्र-तत्र विखरा हुआ मसाला मिलता है जिसको एक स्थान पर इकट्ठा करना भी बड़ा परिश्रम साध्य है। हिन्दी यदि इस विषय को हाथ में ले तो उसे इस क्षेत्र में अग्रणी होने का गौरव प्राप्त होगा और मुझे इस वात का सन्तोष होगा कि जहाँ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी में अनेक आन्दोलनों को जन्म देने में सफल हुए वहाँ एक में मैं भी सफल हुआ।

आधुनिक भारतीय साहित्य के कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकार (२)

श्री गोपीकृष्ण मणियार एम० ए०

गुजरात को लेकर लिखे गये उपन्यासों में—"पाटन का प्रभुत्व", "गुजरात के नाथ", "राजाधिराज", "जय सोमनाथ" में–गुजरात की सांस्कृतिक अस्मिता (cultural self consciousness) मुंशी की प्रधान प्रेरणा रही है। सांस्कृतिक अस्मिता ही नही, राजनीतिक प्रभुत्व भी। पाटन कैसे पड़ोसी छोटे-बड़े राज्यों को, बल से, कौशल से, अपने मुंजाल जैसे मत्री के माध्यम से, जीत सका और कैसे-कैसे उसकी संस्कारशीलता भी धीरे-धीरे निखरती गयी—यही उनकी कथा की आधारभूत ध्वनि है। इस दृष्टिकोण के दोष की तो हम बाद में चर्चा करेगे। अभी तो यह कहना है कि इस दृष्टिकोण के कारण मुंशी के सारे उपन्यासों में सांस्कृतिक वातावरण बराबर बना रहता है। अपने पिता, वर्ण, धर्म और विद्या पर गर्व करनेवाली मजरी दुर्धर्ष पराक्रमी काक की सुहागरात में भी इसीलिए दुत्कारती है कि उसमें विद्या का संस्कार नही है। अवन्तिनाथ पाटन की इसीलिए उपेक्षा करते रहते है कि वहाँ वैभव और शौर्य भले भरपूर हो, पर सस्कृति और सरस्वती नही ही है। कम से कम मालव के बराबर लोमा की सहस्रार्जुन के प्रति विरक्ति भी इसी संस्कारहीनता के कारण थी।

पर इस सस्कारशीलता के अनुराग के साथ-साथ स्थूल नारी सौन्दर्य के लिए मुंशी के मन मे अनन्य आकर्षण था। शरत् ने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि स्थूल शारीरिक सयोग की कौन कहे, साधारण चुम्बन तक को मैंने अपनी रचनाओ में स्थान नही दिया है। इसके ठीक विपरीत, मुशी ने नारी-शरीर के सौन्दर्य और नर-नारी के शरीर-सयोग के उद्दाम आवेग-विह्वल चित्र खीचे हैं। ऐसे चित्र उनकी सारी कृतियों मे बिखरे पड़े हैं। उग्रा-विश्वनाथ, परशुराम-कल्विणी, परशुराम - लोमा, त्रिभुवन-प्रसन्नकुमारी, दुर्गपाल-प्रसन्नकुमारी, काक-मजरी के मिलन के प्रसग इसी प्रवृति के उदाहरण है। अपनी आत्मकथा के द्वितीय-भाग सीधी चढ़ान के अतिम अश में मुंशी ने बहुत ईमानदारी और तटस्थता के साथ आत्म-विश्लेषण किया है। उसमें उन्होने स्वीकार किया है कि १९०७ से १९१८ तक उन्होने जिस कठोर संयम का बलपूर्वक पालन किया वह विमूढ़ात्मा और मिथ्याचारी का था। इन्द्रियों का तो वे दमन कर सके, पर इन्द्रियार्थो का तो आकर्षण पूर्ववत् प्रबल बना रहा। १९१८ मे महाबलेश्वर जाकर आत्मचिन्तन के क्षणो मे उन्होने लिखा:—

"कर्मेन्द्रियाणि" को सीधा रखने मे मैं सफल हुआ था, परन्तु इन्द्रियार्थो ने विचित्र रूप से मेरे हृदय पर अधिकार जमा लिया था। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को वश में करने के लिए मैंने अपने पास की ग्रीक शिल्पाकृति की जो तस्वीरे थी उन्हे फेक दिया, परन्तु जब भी कोई सुडौल अगोवाली स्त्री या पुरुष दृष्टिगोचर होता था, तब मेरी कल्पना मे उसका चित्र खड़ा हो जाता था कि उसकी शारीरिक अपूर्वता कैसी होगी। रस को वश मे करने के लिए मैंने सादा और फीका भोजन करना आरम्भ किया। परन्तु तेल-मिर्च-हीन भोजन मे भी मै रस की सूक्ष्मता परख लेता और वह अधिक सूक्ष्म कैसे हो सकती है इसके प्रयोग मेरी कल्पना मे आ जाते।... मादक कविता मैंने पढ़ना छोड़ दिया था, परन्तु मेरी स्मरण शक्ति शैली के Epipsychidion, पियर लुई के Song of Biletus बाइबिल के Song of Solomon जयदेव के गीतगोविन्द या मीरा की किसी विलासी पक्ति के आसपास अनायास ही सरस सृष्टि खड़ी कर देती थी।"

इसका जो हल मुशी ने अपने लिए खोजा वह था अपने स्वभाव, अपनी अस्मिता को मध्यबिन्दु बनाना। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि प्रकृति के विरुद्ध बलपूर्वक किया गया कोई अभ्यास सिद्ध नही होता। अपने स्वभाव को स्वीकार करना एवं उसका संवर्धन करना ही ठीक है। इसकी संगति और औचित्य पर विचार बड़ा दुष्कर है। हर एक व्यक्ति का आत्म-विकास का मार्ग भिन्न होता है, प्रतिभापुत्रों का और भी विलक्षणता लिये हुए। यहाँ तो केवल यह बताना है कि मुंशी की इस विशिष्ट रुचि के कारण एक ओर तो नारी के शरीर सौन्दर्य के कवित्वपूर्ण वर्णन आये है, दूसरी ओर शारीरिक मिलन के बहुत चटक दृश्य अकित हुए है। इस प्रसंग में केवल कल्विणी की छाती एवं नितब पर परशु-

राम के कोड़े लगाने और बाद मे उनके लोमा के साथ शारीरिक मिलन का उद्धरण देना पर्याप्त होगा :—

"कल्वि णी—मुझे बहुत चिन्ता हो रही है। मुझे नीद नही आती है। भार्गव, भय के मारे मै मरने को पड़ी हूँ। जाने किस क्षण तुम्हारा क्या हो जावेगा। इसी विचार से मरी जा रही हूँ। ओ देव पशुपति! भार्गव! अपना हाथ मुझे दो। मैं उठना चाहती हूँ।" उसने हाथ फैला दिया। राम ने उसे उठाने के लिए अपना हाथ लम्बा किया। उसके स्पर्श से उसकी नस नस झन-झना उठी और उन्मत्त सी होकर कल्विणी उठ बैठी। उसके शरीर पर से मृगचर्म खिसक गया। वह अवस्त्र थी। उसका सुडौल स्तनमण्डल विलास के सारतत्व सा राम की आँखो के आगे भूल उठा—स्पर्श करनेवाले की भूख से अधीर।

राम की आँखे चमक उठी और स्थिर हो गयी।

"भार्गव, भार्गव, क्या देख रहे हो? हाथ पकड़ो, उद्धार करो।"

उसकी कामविह्वल आँखो मे एक दुर्निवार निमंत्रण था। किसी सशक्त अश्विनी की छटा में वह खड़ी हो गयी। आँखों से, हाथो से, ओठो से, सारे शरीर से, वह राम की अभेद्य मानवता को निमत्रण दे रही थी। राम भी उठ खड़ा हुआ। उसका गंभीर मुख भयकर हो उठा। उसकी आँखे विकराल हो गयी। उसने खूंटी पर एक कोड़ा टँगा हुआ पाया। स्त्रियों और दासो पर नियंत्रण रखने के लिए कुक्षि (कल्विणी के पति) ने उसे रख छोड़ा था। धीरे से विचारपूर्वक राम ने वह कोड़ा उठा लिया, और घोड़े के शिक्षक की अचूक कला से उसने धीरे से एक कोड़ा कल्वणी की छाती पर और दूसरा उसके नितंब पर जमा दिया। अश्विनी जैसे उछलती है ठीक वैसे ही कल्विणी उछल पड़ी। उसके मुख से क्रोध की वेदनापूर्ण हिनहिनाहट फूट पड़ी। कोड़े को खूंटी पर टाँग कर राम धीर गति से यहाँ से चला गया। × × ×

आज तक स्त्री पुरुष के संबंध के प्रति वह अन्धा ही था। कल्विणी के दर्शन और घिघियाने से उसकी आँखें खुल गयीं। × × ×

लिंग-प्रधान अधर्म का मूल और उसका नियमन तथा पति-पत्नी के संबंध का धर्म उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा।

अँधरे में वह झपटता हुआ चला जा रहा। × × × वह आश्रम मे जा पहुँचा। परशु को रखकर अपने मृगचर्म पर बैठ गया। पास ही सोई लोमा उसे नये ही स्वरूप मे दिखाई पड़ रही थी। × × × वह नीचे झुक कर लोमा के सामने देखता रहा। केवल आँखें मीच कर वह सोई हुई थी, नीद ने आज उसकी पलको का स्पर्श तक नही किया था। राम की आँखों से झरते तेज से दग्ध होकर उसने आँखे खोली। राम उसका अपना राम, मादक एकाग्रता से, उसकी ओर देख रह था। उसकी आँखो मे एक अपरिचित पागलपन था—विलास का भूखा, आह्लादक, और हृदय-वेधक, उसके शरीर के तार तार मे प्रणय की ऊर्मियाँ आँधी की भाँति वह रही थी, सृष्टि आनन्द से डोल रही थी × × × सीमान्त सुख के भार से उसकी आँखे मिच गयी।

राम गहरी साँस ले रहा था। उसकी आँखें धधक रही थी। बिना बोले ही उसने लोमा को उठा लिया। अपने स्नायु-बद्ध हाथों में उसे उठाकर छाती से लगा कर, वह उसे आश्रम के बाहर ले गया। लोमा आँखें मीच कर ऐसे लिपट रही थी मानो नींद में स्वर्ग का अनुभव कर रही हो। जिस क्षण के लिए वह तरस रही थी, वह क्षण आ पहुँचा था।"

एक और छोटा उद्धरण—काक मंजरी के समागम का—देने का लोभ सवरण नही किया जा सकता :—

यह क्या कर रहे हो? या तुम्हें आँखें नही है? मुझे क्यों तड़पा रहे हो? मैं कब से तरस रही हूँ? प्राण निकले जा रहे हैं तुम्हारे पास हृदय है या नही?"

काक ने इन शब्दों को सुना और समझा। उसके संयत हृदय में भी एक न बुझनेवाली आग लग गयी। वह छलाँग मार कर मजरी के पास आया, उसे बाँहों में लिया, बलपूर्वक उसका मुख ऊँचा किया और उस मुख पर कामदेव की लिखी हुई दिव्य लिपि को उसने पढ़ा। फिर उसे हाथो में लिया, छाती से चिपटा लिया और उस पर चुम्बनों की वर्षा कर दी।"

मुंशी की यह एक भारी दुर्बलता है। मुंशी सम्बन्धी विवेचन के अन्त में यह दिखलाया जायेगा कि इन उपन्यासों का साहित्यिक मूल्य के अतिरिक्त राष्ट्र-जीवन के लिए कितना बड़ा महत्त्व है। मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ में नानालाल चमनलाल मेहता ने "वसन्त के पक्षी" शीर्षक अपने लेख में बताया है कि "सभी परिस्थितियों में अडिग

रह कर जीवन के झंझावात का सामना करना उनके काक और मुंजाल जैसे उदात्त पात्रों का, उनके खुद के समान, स्वभाव है और यह भी कि ऐसे सजीव उदात्त पात्र आज की सन्तान के लिए स्वप्न और कल्पना की सामग्री उपस्थित करते हैं।"

पर इन सब के बावजूद, ऊपर बताई गई दुर्बलता मुंशी की कृतियों का एक बड़ा दोष है। 'अश्लील और अश्लीलता' शीर्षक अपने लेख में जैनेन्द्रकुमार ने श्लील और अश्लील की बड़ी बारीकी से परीक्षा की है। उनका कहना है कि अश्लीलता व्यक्ति की अपेक्षा से होती है, वस्तु में अपने आप से नहीं। गांधीजी की आत्मकथा में वहाँ वह प्रसंग आता है कि पिता मृत्यु-शय्या पर हैं और गांधी जी विषयलिप्त—उसे पढ़कर एक सज्जन इतने उत्तेजित हो गये कि वीर्य-रक्षण उनके लिए दुःसाध्य हो गया। जैनेन्द्र ने पूछा है कि क्या गाधीजी की आत्मकथा का वह अंश अश्लील है? ऐसे जैनेन्द्र को भी लिखना पड़ा:—

"शरीर-वर्णन जहाँ ध्यान को अपनी ओर अटकाने के लिए है, या वर्णन करनेवाले का ध्यान खुद शरीर में अटक कर रह गया है,······ वहाँ, अश्लीलता है।···जो अश्लील है उसमें या तो दुबकाचारी है या सीनाज़ोरी। वहाँ या तो चुनौती के साथ भोगपक्ष में शरीर का निरंकुश वर्णन होगा, नहीं तो शील के आडंबर के नीचे लाग-लपेट के साथ वैसा कुतूहल पैदा करने की वृत्ति होगी।"

मुंशी में कहीं दुबकाचोरी वाली अश्लीलता नहीं है, पर सीनाजोरी वाली जरूर है। इन्द्रियों के अर्थों से हठीले तुरंग के समान विरत न होने वाला उनका मन शरीर-वर्णन और शरीर-संयोग के प्रसंगों पर बिना कुछ रंग-बिरंगे चित्र खड़ा किये हटता न था। नहीं तो ऐसे वर्णनों की कोई संगति नहीं थी। मुंशी के उपन्यासों की कथा सरल ऋजु गति से बढती चलती है, गौण परिस्थितियों के उलझे वर्णन उसका गतिरोध नहीं करते। पर नारी शरीर सौन्दर्य एवं नर-नारी शरीर सयोग के वर्णन उनकी इस सामान्य प्रवृत्ति के अपवाद हैं। हाँ, पृथ्वीवल्लभ इस दोष से मुक्त है। जब यह छपा तो बहुत लोगों के पुण्य-प्रकोप-प्रदर्शन का विषय बना। गाधीजी तक को विस्मय हुआ कि मुंशी की कलम से ऐसी रचना क्योंकर निकली। मुंशी ने इस सारे झंझावात को, तटस्थ-भाव से बश कर निकल जाने दिया। उन्होंने लिखा है:—

"मुझे" "गीतगोबिन्द" और "जानकीहरण" को जला डालने की कभी इच्छा नहीं हुई थी। मैंने शेक्सपियर के "वीनस" और "एडोनिस" की रसिकता से जगत् में प्रलय आने की बात कहीं नहीं पढ़ी थी।··· जिस सन्तान को मैंने कल्पना में धारण किया और जन्म दिया है वह यदि दूसरों को पसन्द न आवे तो क्या मुझे उसके टुकड़े-टुकड़े कर देने चाहिए? उसे क्यों न संसार में विहार करने दिया जाय? यदि वह अयोग्य होगी, तो विलुप्त हो जावेगी; जीने और किसी को जिलाने के योग्य होगी तो जीवित रहेगी।·······

"मैंने सरस्वती की पूजा की है, दीनता से, शिशुभाव से।

मैंने अपना हृदय चीर कर उसके चरणों मे पृथ्वीवल्लभ को रखा है। वह पुण्य किसीको नीरस मालूम हो, या पल भर मे मुरझा जाने वाला हो तो मुझे क्या?

अजलि रूप बनने ही में इस पुण्य की पहली और अंतिम सफलता है।"

हमारी दृष्टि मे मुंशी की इतनी आवेगपूर्ण सफाई बजा थी। जैनेन्द्र के अनुसार जहाँ शरीर-व्यापार द्वारा मनोवृत्ति को समझने-समझाने का, अथवा उससे भी आगे बढकर उसके भीतर से आत्मधर्म की शोध या प्रतिष्ठा का प्रयास है—वहाँ अश्लीलता नहीं है तो पृथ्वीवल्लभ में केवल शरीर व्यापार का वर्णन नहीं है। केवल थोड़ा सा स्पर्श-चुम्बन का वर्णन मुंज-मृणालवती के प्रसग में आता है।

"मुंज ने अपने हाथ बढ़ाकर मृणाल को जोर से पकड लिया।

बुढ़ापे के किनारे खड़ी हुई, महातापसी, तड़फड़ाती, काँपती, भाग जाने की इच्छा मे कंपित होती हुई, आनन्द की चरम सीमा का अनुभव करती हुई—मृणाल ज्यों की त्यों खड़ी रही। मुंज ने जरा झुक कर चूम लिया।"

बस इतना ही मात्र प्रसंग है। बाकी सारे उपन्यास में पृथ्वीवल्लभ की सारी सम-विषम परिस्थितियों में समभाव से रहकर, रमणी की मोहिनी, संग्राम की भयकरता, तपस्या की कठोरता, सरस्वती एवं ललित कलाओं की मोहकता सबसे बारी-बारी से सुपरिचित होकर, एक एक प्रसंग से, एक एक पल से, रस निचोड़ने की कथा को ही, रसपूर्ण ढंग से दुहराया गया है।

"फिर ढोंग की बात कर रही हो मृणाल ! कलंक पापियों पर पड़ता है। जो अशुद्ध हो वही भ्रष्ट होता है, और तप पर उन्हीं के पानी फिरता है जो कमजोर होते हैं। आनन्द समाधि के अनुभव से कभी कलंक नहीं लगता, कभी भ्रष्टता नहीं आती, वह तो तप की महासिद्धि है। आनन्द की जो अरुचि होती है उसी का नाम रोम है।" मुंजाल द्वारा मृणालवती को इस प्रकार समझने में ही इस उपन्यास में प्रतिपादित जीवन-दर्शन की कुंजी है। भले हम इस जीवन-दर्शन से सहमत न हों। मैं स्वयं नहीं हूँ। अपनी अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ केवल सत्पुरुषों के लिए प्रमाण-स्वरूप हो सकती हैं। वैसी सत्पुरुषता का दावा हममें से कितने अपनी योग्यता के बल पर कर सकते हैं ? नम्रता के भाव से नहीं, सच्चाई के प्रति ईमानदारी के तकाजे से, हम अपनी सारी प्रवृत्तियों को सही नहीं मान सकते। और यदि वस्तुस्थिति ऐसी है, तो मुंजाल का जीवन-दर्शन आज के युग में हमारा मार्ग-प्रदर्शन नहीं कर सकता। पर उस जीवन-दर्शन का अपना मूल्य है, अनुकूल परिस्थितियों में अपनी कृतार्थता है। और वह जीवन-दर्शन सुवोध सात्विक ढंग से "पृथ्वीवल्लभ" में अंकित किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भारतीय कल्पना ने उदार मानवता के आदर्शों को सहस्रों वर्षों तक सजीव रक्खा। उस सजीवता में, मुंशी ने, आधुनिक युग के अनुरूप, बहुत अधिक मात्रा में अभिवर्धन किया। आधुनिक युग के अनुरूप पुराने पात्रों को ढाला। विश्वामित्र का वर्णद्वेष से रहित होना, शुनःशेष का भगवान वरुण का दर्शन करना, परशुराम का पूरे के पूरे शार्यात गोत्र के पुरुषों और राजा को यादव-गोत्र को सबल बनाने के लिए मार डालना, बंदीगृह में पड़े हुए कीर्तिदेव और मंजरी का संस्कृत श्लोकों में एक दूसरे को परिचय देना, वर्त्तमान लोकगीतों द्वारा खंगार और राणक के प्रेम, शौर्य और अन्त की व्यंजना यह सब आज के पाठकों की रुचि से बहुत मेल खानेवाली बातें हैं। अभी धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते हुए "कृष्णदशावतार" में मुंशी कृष्ण की लोकोत्तर वीरता और कार्यकौशल का जितने स्वाभाविक ढंग से विकास दिखाते जा रहे हैं उसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। उनके वर्णित द्रोणाचार्य राजगुरु को शोभा देने वाले बहुमूल्य रेशम के वस्त्र पहनते हैं, सत्य-भामा आधुनिक प्रगल्भ स्वतंत्र नारी के समान कृष्ण पर अनुरक्त होती हैं और उनकी सहायता करने के लिए सात्यकि की योजना सुझाती हैं, और भीम अपने स्वच्छंद व्यवहार से राजकुमारी द्रौपदी को छकाता और अपने ससुर राजा द्रुपद को रिझाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि ऐसे प्रसंगों पर, "क्या यह सच है, क्या सचमुच ऐसा हुआ होगा, या यह सब मुंशी की मन-गढ़ंत है," यह प्रश्न करना ठीक नहीं है। काव्य के सत्य को वस्तु-जगत् की वास्तविकता से एक कर मानने से ऐसे सन्देह ही होते हैं। स्थूल जगत की वास्तविकता मात्र गृहणीय नहीं। चिन्तन का सत्य, अनुभूति सत्य से कहीं अधिक वास्तविक होता है—कारण उसी सत्य से तो स्थूल वास्तविकता धीरे धीरे रूप ग्रहण करती है।

गुजरात की 'सांस्कृतिक राजनीतिक अस्मिता' मुंशी की मूल प्रेरणा रही है। यही प्रेरणा धूमकेतु की सारी गुजरात-सम्बन्धी उपन्यासों की भी है। आधुनिक पाठक को, जो अखंड भारत के चित्र का अभ्यस्त रहता है, ऐसा लग सकता है कि मुंशी ने अपने राजनीतिक जीवन में तो अखंड भारत का आन्दोलन चलाया, पर अपनी साहित्यिक कृतियों में वे पूरे आर्यावर्त की भव्यता को उस प्रकार उभार कर दिखाने में सफल नहीं हो सके जिस प्रकार राखाल बाबू अपनी "करुणा" और; 'शशांक' में सफल हुए। इसी कारण कुछ लोगों द्वारा उन पर प्रान्तीयता का लांछन लगाया गया है। गुजरात के इतिहास पर लिखे गये उपन्यासों को छोड़िए। "लोपाहर्षिणी" इत्यादि उपन्यासों के सम्बन्ध में, मुंशी ने स्वयं लिखा है :—

"मुझ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि इन महानाटकों में मैंने जो भृगुवंश के महापुरुषों का चित्रण किया है वह इसलिए कि मैं स्वयं भड़ौच का भार्गव ब्राह्मण हूँ। सम्भव है कि कुछ गुजराती लोग ऐसा समझें। किन्तु विवेचनशील लोग मानेंगे कि वैदिक काल में भृगुवंश एक महाप्रचंड शक्ति था।"

मुंशी पर प्रान्तीयता का आरोप करना केवल यह जाहिर करता है कि पाठक या आलोचक ने मुंशी की कृतियों को समझा ही नहीं। आठवीं से बारहवीं सदी के गुजरात पर लिखे गये उपन्यासों में बार-बार पाटन की महत्ता की घोषणा कानों को खटक सकती है। पर वहाँ कथाकार की विवशता मात्र है, प्रान्तीय या आंचलिक प्रवृत्ति नहीं। स्थान और काल का आधार तो मुंशी को

किसी भी कथाकार की भाँति, स्वीकार करना ही था। और अपने खुद का प्रदेश, जिसमें कथाकार जन्मा हो, पला-पुसा हो, उसका सबसे ज्यादा अच्छी तरह से जाना हुआ होता है। पर्ल बक भी चीन देश की पृष्ठभूमि में इसीलिए अपने उपन्याम सफलतापूर्वक लिख सकीं कि वे वहाँ स्वयं वरसों रह चुकी थीं। पर गुजरात को अपने चार उपन्यासों का विपय वना कर भी क्या मुंशी ने तात्कालिक सारे उत्तर और मध्य भारत का चित्र उपस्थित नहीं किया है? महमूद गजनी के व्यक्तित्व, पराक्रम और उसकी सेना की विशालता का और कौन उपन्यासकार या इतिहासकार इतना विशद और यथार्थ परिचय दे सका है? सामन्त चौहान का चालुक्यराज भीमदेव से वार्त्तालाप सुनिए :—

"चालुक्यराज, गर्व में मस्त हम सब यह मानते हैं कि अमीर को कुचलना मामूली वात है। परन्तु जैसे अजगर के मुख में वनचर जा पड़ते हैं वैसे ही हम उनके मुँह में चले जा रहे हैं......आपने तो अभी अमीर का नाम ही सुना है, परन्तु मेरे घोघा वापा ने तो उसे रोकने के लिए अपने पूरे कुल की आहुति दी है। मेरे पिता ने उसे रेगिस्तान में भटकाने के लिए अपूर्व पराक्रम किया है और मैंने अकेले ही उसकी सेना के वीच में उसके गले पर खंजर रक्खा है......महाराज, अमीर के पास तीस हजार सवार हैं, जो पंखवाले जंगली घोड़ों पर विचरते हैं। उसके पास दस हजार तो हाथी होंगे। और असंख्य भयंकर योद्धाओं की पैदल सेना है। कम से कम तीस हजार ऊँटों पर पानी लाद कर उसने रेगिस्तान को पार किया है। कोटों को तोड़ने के लिए उसके पास वड़े-वड़े यंत्र है।......यह तो सेना का वल है और अमीर अलग। उसमें ऐसी सेना को हाथ में रखने की कला है। उसे मित्र वनाना आता है, कायरों को साहसी बनाना आता है। उसकी व्यूह रचना की शक्ति की कोई सीमा नहीं। उससे कैसे लड़ेंगे?"

पाटन के महत्व को वताने के साथ-साथ लाट, अवन्ति, सोरठ—किसकी वीरता, भव्यता को मुंशी ने समान श्रद्धा से नहीं अंकित किया? उनके पात्रों का रंगमंच कई वार प्रान्तीय सीमा को पार कर, अनायास ही, विस्तृत हो उठता है। "पाटन के प्रभुत्व" में आनन्दसूरि ने दृढ़तापूर्वक अपने मत का, मुंजाल के मत के विरोध में समर्थन किया। उनकी मान्यता थी :—

"परन्तु धर्म की ध्वजा के आगे टेक की क्या गणना हो सकती है? अकेली टेक ने कभी राज्य की रचना की है? क्षत्रियों की टेकों ने ही तो समस्त गुजरात को—समस्त भारतवर्प को छिन्न-भिन्न कर डाला है; और यदि समय रहते एक धर्म की सत्ता प्रवल न होगी तो एकधर्मी यवन कल जल्दी ही आपको दासों का भी दास बना छोड़ेंगे।"

इसी प्रकार अवन्तिराज के प्रतिनिधि के रूप में कीर्त्तिदेव ने मुंजाल से अपनी पहली मुलाकात में "गुजरात के नाथ" में कहा :—

"जैसे गुजरात का राज्यतंत्र आप एक उँगली पर लिये हुए हैं, वैसे ही आर्यावर्त का राज्यतंत्र भी लीजिए... महाराज, कल राजसभा में आपने एक अर्ध-नग्न म्लेच्छ को देखा था? यहाँ तो वह अकेला है। परन्तु काश्मीर के पास उसकी जाति के एक अरव योद्धा हैं। वे सारे आर्यावर्त को भस्मीभूत करने के लिए मानों कदम उठाये खड़े हैं। उनके भयंकर रणसिंगों की आवाज, उनकी भयानक पुकार उत्तर प्रदेशों में गूँज रही है। मन्त्रिवर, आप भी भूल गये गजनी के सुलतान द्वारा किये गये पाटण और देवपट्टण के विनाश को? कल जयदेव महाराज ने जिस पापी को सिरोपाव भेंट किया उसीके पौत्र आपके और मेरे बच्चों के तन पर कपड़े का एक टुकड़ा भी न रहने देंगे।"

अपनी इसी वात को कीर्त्तिदेव ने काक, कृष्णदेव (खेंगार) इत्यादि के सम्मुख और भी सजीव शब्दों में रक्खा था :—

"मै केवल अवन्ति में ही नहीं रहा हूँ, सारे आर्यावर्त्त में फिरा हूँ। अनेक देशों का पर्यटन करते हुए मुझे स्पष्ट भास हुआ है कि यदि हम केवल एक दूसरे से लड़ते रहेंगे तो हमारे राज्य छिन जायेंगे, हमारा धर्म नष्ट हो जावेगा, हम लुट जावेंगे और पृथ्वी पर से हमारा नाम निशान मिट जावेगा।.........सिर पर घन गर्जना हो रही है और आपको सुनाई नहीं पड़ती। जयदेव महाराज अवन्तिनाथ के साथ लड़ रहे हैं, जूनागढ़ के राजा पाटण के साथ लड़ रहे हैं, सपाद लक्ष के राजा (अजमेर के आसपास का प्रदेश) चित्तौड़ के रावल के साथ लड़ रहे हैं। कोई कुछ भी नहीं समझता। अकेले एक काश्मीराधिप समझते हैं। दानवों के समान विक-

राल निर्दय पवनों की महासेना को रोकते-रोकते काश्मीर-पति का भी साहस समाप्त हो गया है।...........आप सब तो बैठे हैं आत्मबल के गर्व में सन्तोष मानकर, परन्तु प्रति-वर्ष वह महाविनाशक पवन-सागर आगे ही बढ़ता आ रहा है। कन्नौज और सापादला ने उनकी लहरों का स्पर्श किया है। हमारी अवन्ति में उसकी भयंकर गर्जना की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ी हैं। समय पर सावधान न हो जाइएगा तो काश्मीर डूब जावेगा, सपादलक्ष का भी विनाश हो जावेगा और पाटण का नाम और निशान भी हाथ न लगेगा।"

यह पूरे भारतवर्ष को उस समय के परिप्रेक्ष्य से उप-स्थित करना नहीं है तो और क्या है ? और मुंशी के वैदिक काल के उपन्यासों पर तो कोई भी आंचलिकता का लांछन लगा नहींसकयता। वशिष्ठ, अरुन्धती, अगस्त्य-लोपामुद्रा, परशुराम-सहस्रार्जुन, आर्य असुर के जितने सर्वाङ्ग-सुन्दर, नवीनता, अद्भुतता और पवित्रता से पगे चित्रण इन उपन्यासों में हुए हैं—उतना भी यदि मुंशी की अखिल भारतीय प्रवृत्ति को प्रमाणित नहीं करता, तो शक की दवा तो लुकमान के पास भी नहीं। "महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-वच-विसिखन बाँची ?"

अन्त में हम यही कहेंगे कि मुंशी हमारी राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। बहुत पहले १९३० में—उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने की अनिवार्यता की घोषणा की। बाद में संविधान में हिन्दी को राजभाषा पद देने का श्रेय बहुत हद तक उन्हींको है। सन्देह नहीं कि इस देश के आधुनिक जीवन को वे आर्य-संस्कृति के पुन-रुत्थान के स्वरों से स्पन्दित देखना चाहते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि केवल इससे ही आज के जीवन के ऊहापोह से हम बच सकते हैं। मुंशी की सारी कृतियों में अपने देश की अद्भुत सभ्यता और उसकी अविच्छिन्न गत्यात्मक-परम्परा से मोह छलका पड़ता है। हो सकता है कि उनकी कृतियों की आज लोकप्रियता आगे चल कर कम हो जावे पर फिर भी धूमिल—पुरातन—पृष्ठभूमि के कारण तो उनका महत्त्व रहेगा ही—इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं।

अब हम गुजरात के दूसरे यशस्वी कथाकार धूमकेतु की चर्चा करेंगे। धूमकेतु की ऐतिहासिक रचनाओं की संख्या विशाल है और उनकी परिधि भी बहुत विस्तृत है—पाँचवीं सदी ई० पू० से लेकर पुष्यमित्र शुंग तक के समय का उन्होंने "नगरसुन्दरी", वैशाली "मगधपति", "महा मात्य चाणक्य", "चन्द्रगुप्त मौर्य", "सम्राट् चन्द्रगुप्त", "चंड अशोक", "प्रियदर्शी", "अशोक और राज्य क्रान्ति" उप-न्यासों में चित्रण किया है। और गौरव के उत्तुंग शिखर पर चढ़े मध्यकालीन गुजरात की कीर्ति कथाएँ "वाचिनी देवी", "मूलराजदेव", "चलादेवी", "राजसंन्यासी", "कर्णावती", राजकन्या", "जय सिंह", "सिद्धराज" "सोरठ विजेता", "अवन्ती-कथा" और "राजर्षि कुमार-पाल" में गाई हैं।

धूमकेतु के प्राचीन भारत के उपन्यासों में इतिहास का पुट कुछ अधिक हो गया है। इन उपन्यासों में उनकी कल्पना उतनी उन्मुक्त विहारिणी नहीं जितनी मुंशी की, या राखाल की। नये-नये पात्र, नयी नयी घटनाएँ उनके उपन्यासों में भी आयीं हैं। पर इतिहास की उँगली उन्होंने यहाँ कतई कही नहीं छोड़ी है।" नगरसुन्दरी" "वैशाली" और "मगधपति" में आम्रपाली, वर्षकार अजातशत्रु, महानमन, महाली, जीवककुमार, अभयकुमार, अवन्तिराज प्रद्योत, अवन्ति की हथिनी भद्रवती, कोशल-राज प्रसेनजित और महारानी वार्षिका, दासी-पुत्र विडू-डभ, सेनापति बधुल-मल्ल, वैशाली के सेनानायक सिंह और उनके बड़े भाई गोपाल आये हैं। 'महामात्य चाणक्य" में राक्षस, और चन्द्रगुप्त, "चन्द्रगुप्त मौर्य और सम्राट् चन्द्रगुप्त" में सिल्यूकस, अभि, पर्वतेश्वर, शकटार, चन्द्रगुप्त, अशोक, सुमन', चंड अशोक व प्रियदर्शी अशोक' मे राधागुप्त, सुबन्धु, कलिंगराज चैत्रराज और उनका पुत्र यश, चारुअंगी, उपगुप्त, महारानी विदिशा, तिष्यरक्षिता, जालौक हैं और अन्त में 'राज्यक्रान्ति' में बृहद्रथ और पुष्यमित्र अंकित हुए हैं। और ये सारे पात्र आये हैं इतिहास-सम्मत विवरणों के साथ। ऐसा लगता है कि इतिहास के पात्रों और घटनाओं को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना धूमकेतु के लिए सबसे अधिक महत्त्व रखता है। प्रणय और पराक्रम की कथायें उस उद्देश्य में बाधक होकर नहीं आ सकतीं।

"नगर सुन्दरी" और" वैशाली" में चित्रित आम्रपाली को ही देखिए। यह एक ऐसा नाम है जिस पर वर्तमान युग में बड़े-छोटे सभी उपन्यासकारों ने अपनी कलम चलाई है। चतुरसेन शास्त्री तो अपनी "वैशाली की नगरवधू" के नाम पर चालीस वर्षों की तनमन से साधित अपनी अमू-

त्य साहित्य सम्पदा रद्द करने के लिए तैयार थे। पर गुजरात के रामचन्द्र ठाकुर की जितनी सफलता न चतुरसेन को मिली, न धूमकेतु को। चतुरसेन की कृति तो एक अजब भानमती का पिटारा है। पुराणों के भिन्न-भिन्न काल के ऋषि-मुनि, दार्शनिक, स्मृतिकार एक साथ इकट्ठे हो गये। काल के समान, देश की भी कोई संगति नहीं रही। राहुलजी के ढंग पर ब्राह्मणों और राजाओं को जी भर कोसा गया और लम्पट जीवन का रस ले लेकर वर्णन किया गया। जहाँ तक धूमकेतु का प्रश्न है, उन्होंने आम्रपाली को वैशाली— मगध-युद्ध की कहानी में केवल एक कड़ी के रूप में देखा। रामचन्द्र ठाकुर के उपन्यास में आम्रपाली एवं विम्बिसार की एक दूसरे पर अनुरक्ति ही प्रधान है, मगध और वैशाली का संघर्ष गौण। धूमकेतु के उपन्यास में आम्रपाली और विवसार के सम्मिलन और वियोग का चित्रण वहुत थोड़े पन्नों में हुआ है। यह सच है कि उन थोड़े पन्नों में यह अंकन वहुत प्रभावशाली ढंग से हुआ है। पर धूमकेतु का वल इस प्रणय कथा के चित्रण पर नहीं रहा यह स्पष्ट है। इस प्रसंग में वैशाली ने अपने बचाव और मगध के महामात्य ने उसके विनाश के लिए क्या क्या दाँव पेच खेले, इसीको धूमकेतु ने खूब वढ़ा चढ़ा कर, खंडन मंडन से भरे विविध संवादों द्वारा वताया है।

धूमकेतु के उपन्यासों में वर्णन, सम्वाद और अपने-अपने पक्ष का समर्थन काफी लम्बे हो गये हैं। मुंशी और राखाल जैसी चुस्ती नहीं। एक वात को कई तरह से दुहराकर कहे बिना उनको भरोसा नहीं होता कि पाठक पूरी तरह से वात समझ पावेंगे। रामचन्द्र ठाकुर ने आम्रपाली का सौन्दर्य वहुत नपे-तुले शब्दों में बताया।—

"इसी वीच सहसा रथ के अग्रभाग में से, जिस तरह वादल के हट जाने पर चाँद चमक उठता है वैसे ही, आम्रपाली का मुख वाहर निकला, और क्षण भर तक आस-पास खड़े हुए लोगों ने बातें वन्द कर लीं, वे आम्रपाली की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे—इतना रूप, इतनी मादकता. ऐसा अस्फुट यौवन, हृदय के धकधक वेग को तीव्रतम कर देनेवाली यह नृत्यांगना, कवियों के काव्य में से, कथाकारों के वर्णन में से, कलापतियों के चित्रण में से उद्भूत, तेजस्विता और सौन्दर्य के सत्व जैसी यह सुन्दरी, सम्मोहक सौन्दर्य विखेरती हुई रथ पर खड़ी थी।"

अव इस वर्णन से धूमकेतु के चित्रण की तुलना कीजिए :—

"किसी-किसी स्त्री में रूप तो होता है पर भयंकर। उस रूप पर आँखें गड़ाना ऐसे-वैसे का काम नहीं। उसकी ओर ताका ही नहीं जा सकता। किसी स्त्री का रूप भव्य होता है। शायद ही उसके समीप जाने का कोई साहस कर सके। वह अस्पृश्य, उन्मत्त होता है। किसीका रूप सुन्दर, मोहक, प्रसन्न और प्रशांत होता है जो मन को जीत लेता है, किन्तु अद्भुत रोमांचक नहीं होता। जिस रूप को एक वार देखें, फिर दूसरी वार देखें, तो उसमें धरती और आसमान का अन्तर दिखाई देने लगता है, मानों रूप का परिवर्तन हो गया हो। समुद्र की मनोहर तरंग में जिस तरह लाख-लाख सुन्दरता भिन्न होती है, लहर के तनिक आगे बढ़ने पर उसकी छटा न्यारी वन जाती है, और दूर-दूर तक वढ़ जाने पर वह फिर भिन्न हो जाती है। हवा भी भिन्न, छवि, रूप, रंग सब कुछ एकदम भिन्न हो जाते हैं। किस विरली-स्त्री के देह में रूप नहीं वल्कि लावण्य का समुद्र हिलोरे ले रहा होता है। उसका सौन्दर्य एक पल एक तरह का तो दूसरे पल दूसरी तरह का दिखता है। प्रथम वार का उसका रूप दूसरी वार देखने को मिलता ही नहीं। प्रत्येक पल आँखों के सामने रस का रूप अनोखा दिखता है। कई स्त्रियों के रूप ऋतु के अनुसार वदलते हैं। किसीका दिन में हजार बार बदलता है। किन्तु जो रूप प्रतिक्षण वदलता है वह विरल रूप है। रूप नहीं, हजारों वर्षों में एकाध वार भटकती-भटकती आनेवाली रूपलीला ही होती है वह। कोई राधा, कोई तिलोत्तमा, कोई शकुन्तला, अकस्मात् ही अवतरित होती है।

"आम्रपाली के पास ऐसी ही रूपलीला थी, रूप नहीं। उसे देखनेवाला कभी उसे भूल नहीं पाता, किन्तु क्या देखा सो वह कह नहीं सकता। स्वप्न में देखी गयी कोई दूसरे स्वप्न की लीला जैसी। इस दुनिया की तो वह थी, किन्तु यहाँकी नहीं थी।"

अद्भुत और वड़ा भावमय है यह वर्णन। पर कथा की गति में इससे वाधा पड़ती है। मन की मौज में लिखे गये "फिर आम बौरा गये" जैसे भाव-बहुल निवन्धों में ऐसी उक्ति वड़ी आकर्षक लगती। पर "नगर-सुन्दरी" उपन्यास में उपन्यासकार का खुद प्रकट होकर इस तरह

का भाषण देना ऊब पैदा करता है। रामचन्द्र ठाकुर के संक्षिप्त वर्णन में आम्रपाली की इतिहास-विख्यात सुन्दरता का जैसा उन्मेष हुआ है, वैसा अपने लम्बे स्वगत-भाषण से भी धूमकेतु संघटित नही कर सके।

पर इससे हमारा यह आशय नही कि धूमकेतु की मौर्य-कालीन रचनाओं में सम्वाद नहीं हैं, नवीन प्रसंगों की उद्भावना नहीं है, सजीव-पात्रों का चरित्र-चित्रण नहीं है। "नगर सुन्दरी" में आम्रपाली जनपदकल्याणी बनने से इनकार करती है—केवल इसीलिए नहीं कि प्रवेणी पुस्तक का यह लिच्छिवियों का नियम नारीत्व एव मातृत्व का विध्वंसक है, बल्कि इसीलिए भी कि

"यहाँ वैशाली में ऐसा कौन है जिसके यहाँ नारी के केश में पिरोये मौक्तिक नवकोटि मूल्य के हों? ऐसा कौन है जिसका धान्यभंडार समूचे राष्ट्र को सात अकाल तक भूख से बचाने में असमर्थ हो? आपका स्वप्न है नगरी के गौरव के लिए जनपद-कल्याणी। किन्तु मेरा स्वप्न है नगरी के ऐसे नरसिंहों का जो एकाकी एक हाथ से एक सहस्र का सामना कर सके।"

उसी प्रकार "नगरसुन्दरी" के अन्त में, राजनीतिक कारणों से आम्रपाली विंविसार से उत्पन्न अपने प्राण-प्रिय शिशु अभयकुमार को मगध भेजने के लिए विवश हुई। विदा के समय, उसने दारुण व्यथा से व्याकुल होकर जो कहा था, उसे सुनिये :—

"वैशाली, वैशाली, ओ वैशाली, तुझे मैंने अपना स्त्रीत्व दिया, मातृत्व दिया, अब तुझे क्या चाहिए, बोल? वैशाली नगरी! बोल अब क्या दूँ?" "वैशाली! अब क्या दूँ?" चारों ओर से जैसे जंगल प्रतिध्वनित हो रहा हो ऐसा लगा तेरे प्राण—और एक बुलबुल गाते-गाते उड़ गई "प्राण दिये बिना कोई किसीको प्राणवान नही बना सकता।"

उसी प्रकार "वैशाली" में "वैशाली नगर अमर रहे" वाला गीत राखाल के "शशांक" में आये हुए यह कौन बला है? सैकड़ों नरपतियों के मुकुटमणि जिसके गरुड़-ध्वज को अलकृत कर रहे हैं"•• वाले गद्य-गीत जितना ही भव्य है। अभयकुमार और नर्तकी प्रेमा की अनुराग-कथा और प्रेमा की हत्या के कारण निगूढ़ निराशा से अभिभूत होकर अभयकुमार का भिक्खु होना पाठकों के हृदय में गम्भीर अवसाद उत्पन्न करते हैं। और चरित्र-चित्रण तो धूमकेतु का सबसे बड़ा कौशल है। मुंशी के समान, उनको भी पात्रों की पूरी भीड़ एक साथ रंगमंच पर लाने में कोई असमंजस नहीं होता। भीड़ तो कोई अनाड़ी खड़ी कर सकता है। पर उस भीड़ के एक-एक व्यक्ति को रक्त-मांस से, प्राणों से सम्पन्न करके पाठक के मानस-पट पर अपनी कुछ अविस्मरणीय विशिष्टताओं के साथ अंकित कर देना बड़े कौशल का काम है और यह कौशल धूमकेतु में भरपूर मात्रा में है। केवल उनमें संयम की अपेक्षा थी। यदि वे मन की सारी बातें न कह कर, कुछ मन में भी रख लेते तो उनके मौर्यकाल के उपन्यास भी उतने ही सर्वाङ्गरूपेण आकर्षक होते जितने मध्य-कालीन गुजरात पर लिखे उपन्यास। ऐसा लगता है कि मौर्यकाल की पुष्कल सामग्री के वैविध्य में धूमकेतु का उपन्यासकार भ्रमित हो गया। शिलालेख, विदेशियों के भ्रमण-वृतान्त, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, त्रिपिटक एवं अन्य बौद्ध धर्मग्रन्थ, पतंजलि का महाभाष्य, पुराण, मुद्राराक्षस जैसे संस्कृत नाटक—सभी में तो मौर्ययुग के सम्बन्ध में कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। किसे छोड़ें—इस सम्बन्ध में ऊहापोह के कारण धूमकेतु का कलापक्ष इन उपन्यासों में निखर नहीं पाया।

पर इन त्रुटियों के रहने पर भी, इन उपन्यासों का अभी दो-चार पीढ़ी तक राष्ट्रीय महत्त्व एक विशेष कारण से रहेगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी स्वतंत्र गणराज्य के नागरिकों का जैसा चारित्रिक और बौद्धिक स्तर होना चाहिए। उसे हम अर्जित नहीं कर सके हैं। अपने देश के इतिहास और भूगोल के सम्बन्ध में विदेशों में स्थित हमारे दूतावासों के सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों को इतना कम ज्ञान है कि इसको लेकर विदेशीय लोगों के मन में हमारे प्रति अश्रद्धा धीरे-धीरे बढ़ रही है। यदि गम्भीर पुस्तकों के द्वारा हम भारतीय अपने देश के इतिहास, साहित्य और संस्कृति से अपने को परिचित करने की मुद्रा में नही हैं, तो कम से कम इन उपन्यासों द्वारा ही अपनी मौलिक कमी को दूर करें, इसीमें हमारा कल्याण है। इस क्षेत्र में धूमकेतु के उपन्यास, राष्ट्र के लिए बहुत स्थायी उपयोग की वस्तु सिद्ध होंगे।

(क्रमशः)

सुजान जीत गई

सतीशचन्द्र चतुर्वेदी

गलियाँ पार करते हुए बाजार में से गुजरते हुए मीर-मुंशी तवाइफ के जीने तक पहुँचे। जीने पर कदम बढ़ाये।

सीढ़ियों पर तथा अगल-बगल पान की पीक से छिड़की हुई दीवारों से बचते हुए मीर मुंशी साहब नाक-भौं सिकोड़ते ऊपर की सीढ़ी तक पहुँचे। तबला खटक रहा था और तबले की ताल पर ही सुजान के कोमल पैरों की थपकी छन, छन, झनक, झनक के शब्द कर रही थी। उसकी पतली सुरीली आवाज उस्ताद की सारंगी के स्वरों में समाई जा रही थी। काली बड़ी चपल आँखें जब तकिया लगाये बाँकों पर गिरती थीं तो जेब से नकदी निकलवा ही लेती थीं। और फिर महीन बारीक दुपट्टे में सुजान झूम जाती थी और नई उमंग से फिरकी लेती थी। उस्ताद के बूढ़े हाथों में नया खून दौड़ जाता, तबले वाले के ढीले पड़ते हुए हाथ ठीक चल उठते, पान लगाने वाली बड़ी बी की बाहें फड़क उठती थीं।

सुजान की नजर फिरकियाँ लेते हुए जीने तक गई और कदम ठिठक गए—"आइये मुंशीजी, सलाम अर्ज है।"

मुंशीजी ने कदम अन्दर रक्खा और सब लोग सर झुकाकर खड़े हो गए। बाँके छैलों ने सर झुकाकर आदाब अर्ज किया और जीने की तरफ कदम बढ़ाये। सुजान ने कहा—"चल दिये सेठजी, आपका दिल्ली शहर के बड़े हाकिम से तारीफ कराऊँ। आप हैं दिल्ली सल्तनत के मीर मुंशी साहब।"

"आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।" एक बाँके ने कहा—

"अच्छा तो अब इजाजत हो," दूसरे ने कहा—

"अच्छा, फिर कभी मुलाकात होगी" मुंशीजी ने कहा, वे दोनों चले गये।

'सुजान' आज तो बहुत थका हूँ, तुम्हारा मीठा संगीत सुनकर ताजगी आयेगी, मुंशीजी ने कहा।

'आज तो आपकी शायरी होगी।"

"नहीं सुजान, तुम नाचो.........।"

"और आप गाइये।"

"नही सुजान मुझे आज मुआफ कर दो। मेरा दिलो-दिमाग दुरुस्त नहीं है। आज तुम्हारी ही सुनूँगा।"

सुजान चार कदम दूर हुई। पैरों की पायलों ने झन-झनक किया और सारंगी तबला बज उठे। सुजान ने फिरकियाँ लीं। आँखें नचाईं। शरीर मटकाया। परन्तु मीर मुंशी न जाने क्यों चुप ही बैठे रहे। कभी-कभी ऊपरी मन से 'वाह-वाह' कर देते थे। सुजान उनकी गम्भीरता को कनखियों देख लेती थी।

नाच-गान बन्द हुआ। सुजान मुंशीजी के करीब आई। तबले और सारंगीवाले अपने साज छोड़कर इधर-उधर नशा करने चले गये।

सुजान ने मुंशीजी का हाथ पकड़कर अपनी तरफ किया और पूछा—'कौन-सी शिकस्त से आप मायूस हैं? आज आप किस परेशानी में हैं?'

'कुछ नहीं सुजान, दिल कुछ भारी-भारी है, न जाने क्यों? मुंशीजी ने आगे कहा—'मेरे करीब आओ सुजान।' सुजान मुंशीजी के और पास आ गई।

'सुजान, तुम ही मेरी कविता की प्रेरणा हो।'

'कोई शेर पढ़िये, आज तो आपने कुछ कहा ही होगा।' सुजान ने कहा और अपना सर मुंशीजी के सीने पर रखदिया।

"आज कुछ भी नहीं कहा सुजान, कुछ कहना चाहता हूँ, कहूँगा। तुम्हारी याद आ गई, चला आया। जी चाहता है, तुम मेरी आँखों के सामने ही रहो।"

'आपके सामने मैं क्या हूँ? आप शायर हैं और मैं ठहरी आपके टुकड़ों पर गुजर करने वाली। खुदा ने हमें भी क्या जिन्दगी दी है।"

'ऐसा न कहो सुजान, तुम पेशा करती हो तो क्या हुआ?'

'मगर मुझे आपसे मोहब्बत है, मुंशीजी' यह कहते हुए सुजान का गला भर आया।

'मोहब्बत करने का हर-एक को हक है सुजान, तुम पेशा करती हो तो क्या?' मुंशीजी का भी गला भर आया दोनों कुछ क्षण शान्त रहे। अन्दर से बड़ी बी यह सब

चुपके से देख रही थीं। सोच रही थीं कि कहीं लड़की मोहब्बत के चक्कर में न पड़ जाय। इतने ही में सारंगी और तबले वालों ने प्रवेश किया। मुंशी और सुजान दोनों अलग हो गये। मुंशीजी चले गये।

दिल्ली के सुल्तान मुहम्मदशाह का दरबार लगा हुआ था। बादशाह शासन के कामों में मसरूफ था। आमिल-मातहत सब नीचा सर किये बैठे थे। बादशाह मुल्क के कामों में थक गया था। उसने कहा—'मावदौलत का सर मुल्क के कामों में खपाते-खपाते थक गया है। दिलबहलाव के लिये किसी का गाना ही हो जाय।'

एक मुसाहिब—'जो हुक्म बादशाह सलामत का। क्या मुजरा कराया जाय?'

दूसरा मुसाहिब—'आलम-पनाह का हुक्म हो तो शेर पढ़े जायँ?'

एक मुंहलगे मुसाहिब ने कहा—'सुना है कि जनाब मीर मुंशी साहब अच्छा गाते हैं। आलमपनाह का हुक्म होगा तो वे जरूर कुछ सुनाएँगें।'

'मुंशीजी की शायरी या गाना?' बादशाह ने कहा।

उसी मुसाहिब ने कहा—'गाना, जहाँपनाह।'

'सुना तो हमने भी है मुंशीजी के बारे में।'

'आज क्यों न आलमपनाह वह करिश्मा देखें।'

बादशाह ने कहा—'आप लोग कह रहे हैं तो क्यों न मुंशीजी का गाना सुना जाय।' एक क्षण रुक कर उन्होंने मुंशीजी की ओर देखा।

मुंशीजी बोले—'जहाँपनाह ने बजा फरमाया, पर आज मेरा चित्त ठीक नहीं। अतः मुझे मुआफ फरमाया जाय' सङ्कोच के साथ मुंशीजी ने बचने की कोशिश करते हुए कहा।

पहला मुसाहिब—'जहाँपनाह अगर हुक्म दें तो कुछ अर्ज करूँ।'

'क्यों नहीं, कहो क्या कहना चाहते हो?'

'मुंशीजी बुरा न मानें तो कहूँ।'

'कहो जो कहना चाहते हो।'

'आलमपनाह, मीर मुंशीसाहब तब तक न मानेंगे जब तक तवाइफ सुजान न कहे।'

मीर मुंशी अवाक रह गये। लज्जा से सर नीचा कर लिया। बादशाह ने मुंशी और सुजान की मोहब्बत के बारे में पहले भी सुना था। बादशाह को एक बार क्रोध आया कि मुंशी मेरे कहने पर न गाये और सुजान के कहने पर गाये। सोचा शायर ऐसे ही दीवाने होते हैं और कहा—'क्या सचमुच ऐसा है?'

'हाँ आलमपनाह।'

'अच्छा तो, सुजान को दरबार के साथ पेश किया जाय।' बादशाह ने कहा।

दो सर्दार सुजान को लेने चले गये। सुजान का कोठा पास के बाजार में ही था। सुल्तान के हुक्म पर सुजान तुरन्त ही दरबार में दाखिल हुई। सर झुका कर सलाम किया और एक ओर खड़ी हो गई।

बादशाह ने उससे कहा—'आज हम मीर मुंशी साहब का गाना सुनने को बेताब हो रहे हैं। हम उनकी शायरी से वाकिफ थे मगर हमें यह नहीं मालूम था कि वे गाना गाते हैं। मुझे बतलाया गया है कि तुम्हारे कहने पर ही वे गा सकते हैं। हमें पूरा भरोसा है सुजान, तुम हमारे दिल की माँग को पूरा कराने में मददगार होगी।'

सुजान को यह पता नहीं था कि हमारी मोहब्बत का राज खुल गया है और उसकी खबर बादशाह सलामत को भी लग गई है। कुछ क्षण वह अवाक रह गई। सुजान ने गला साफ करके कहा—'जो हुक्म जहाँपनाह! मैं मुंशीजी से मिन्नत करूँगी, खुशामद करूँगी कि वे गा दें। मुम्किन है वे मान जायँ। आपका हुक्म वे जरूर मान लेंगें।'

मुंशीजी की मोहब्बत का राज आज खुला हुआ जा रहा था। मुंशीजी पशोपेश में थे कि कैसे गाऊँ। मैं कोई गायक भी तो नहीं, यूँ-ही गुनगुना लेता हूँ। बादशाह सलामत का हुक्म और सुजान का कहना मैं न टाल सकूँगा, मुझे गाना ही होगा।

'मुंशीजी, जहाँपनाह के हुक्म की तामील कीजिये। वे आपका गाना सुनना चाहते हैं।' सुजान ने कहा।

मुंशीजी की आँख सुजान से मिली और तुरन्त ही बादशाह से। मुंशीजी ने नीचा सर करके कहा, "बादशाह सलामत ने मुझे गाने के लिए मजबूर कर दिया है।"

सब उस शायर का गाना सुनना चाहते थे। सुजान खुश थी।

'मैं' कोई गायक तो नहीं हूँ, कविता लिखता हूँ। यूँ गुनगुना लेता हूँ थोड़ा।' मुंशीजी ने कहा।

"यह तो बादशाह सलामत जानते होंगे कि तुम शायर हो पर आज वे तुम्हारी गुनगुनाहट ही सुनना चाहते हैं।"

सुजान ने कहा। उसे मुंशीजी की गुनगुनाहट पर विश्वास था कि वे अच्छा गायेंगे।

मुंशीजी गाना नहीं चाहते थे। उन्हें दरबार में शर्मिन्दा किया गया वे तो शायर हैं। पर सुजान का कहना टालने की मुंशीजी में ताकत कहाँ थी!

बादशाह के सामने सुजान बैठी थी। सितार और तबला रखे थे। मुंशीजी उठे और सुजान के सामने मुँह करके बैठ गये। उनकी आँखें बादशाह के सामने नहीं उठ रही थीं।

सुजान आज बहुत खुश थी। उसकी मोहब्बत आज रंग ला रही थी। मुंशीजी ने उसकी बात मान ली थी।

सितार और तबला ठनकने लगा। मुंशीजी ने आलाप लिया और स्वर खींचे। सारा दरबार 'वाह-वाह' से गूंज गया। लोग झूम उठे। बादशाह को पता नहीं था कि मीर-मुंशी के गले में इतना दर्द है। वे अच्छा गा भी लेते हैं। मुंशीजी ध्रुपद गा रहे थे।

गाना खत्म हुआ। बादशाह ने कहा—'मुंशीजी का गाना सुनकर हम खुश हैं परन्तु... कहकर कुछ क्षण वह रुके उनकी त्यौरियाँ चढ़ गई थीं। सुजान ने बादशाह की तरफ देखा।

मगर हम बेअदबी और हुक्मउदूली बर्दाश्त नहीं कर सकते" कहते-कहते बादशाह एक क्षण रुके।

सारा दरबार खामोश हो गया। बादशाह के क्रोध का क्या परिणाम होगा। भयानक सन्नाटा वहाँ छा गया। सुजान का दिल धड़क रहा था।

बादशाह ने आगे कहा—हमारे कहने पर न गाया और गाया तो हमारी तरफ पीठ करके। यह हुक्मउदूली और बेअदबी है। हम इस गुस्ताखी को माफ नहीं कर सकते। मुंशीजी को सरकारी नौकरी से बर्खास्त किया जाता है और हुक्म दिया जाता है कि इन्हें शहर से बाहर निकाल दिया जाय।"

सारा दरबार चुप था। सब सोच रहे थे कि बेअदबी और हुक्मउदूली तो हुई है मगर वह एक शायर है इसलिए उसे बख्श देना चाहिए। [illegible]शाह के हुक्म के सामने कौन चूं कर सकता था! सुजान कुछ कहना चाहती थी, पर न कह सकी। उसकी आँखों के कोनों में दो बूंद आँसू थे जिन्हें उसने पोंछ लिया। किसी ने नहीं देखा। वह बादशाह को अदाब बजाकर सीधी अपने घर चली गई। मुंशीजी ने बादशाह को सलाम किया और दरबार से बाहर चले गए।

मुंशीजी ने चारों ओर निगाह दौड़ाई मगर सुजान कहीं नहीं दिखी। वह सुजान से एक बार मिलना चाहते थे।

मुंशीजी सुजान के कोठे पर पहुँचे। सड़क पर जनता मुंशीजी को देख रही थी। उन्हें देखकर सब सर नीचा कर लेते थे। सुजान कोने में खामोश बैठी थी। मुंशीजी से कुछ न बोली। मुंशी ने कहा—"सुजान" "हाँ, मुंशीजी" और वह सिसक उठी।

"क्यों रोती हो, सुजान। जो होना था वह हो गया। तुम नाहक क्यों रोती हो सुजान।"

"तुम दिल्ली छोड़ रहे हो?"

"हाँ क्या करूँ छोड़ना पड़ रहा है।"

सुजान सिसक उठी।—"ये सब मेरी ही वजह से हुआ है।" तुम्हारा क्या कुसूर, जो उसे मंजूर होता है वही होता है।" मुंशी ने कहा।

कुछ क्षण रुककर मुंशीजी ने कहा—"और क्या तुम न चलोगी मेरे साथ?"

सुजान की आँख बड़ी बी से मिली और बड़ी बी चिल्ला उठी—"ये कहाँ जायगी? बादशाह सलामत का हुक्म तुम्हें निकालने का हुआ है, इसे नहीं।"

सुजान—"मुझे जाने दो माँ। मुझे रुपये से तोलो। बिना मुंशीजी के मेरा पैर भी न उठेगा।"

"क्या मुहब्बत करने लगी मुंशी से? अपना पेशा छोड़कर भूखी मरना चाहती है और हमें भी तरसाना चाहती है? हमारा काम मोहब्बत करना नहीं। हमें किसी से मोहब्बत नहीं होती "बड़ी बी ने कहा।"

इस उपदेश का सुजान पर कोई असर नहीं हुआ। वह बोली—'मुझे जाने दो मां, मुझे जाने दो।" और वह खड़ी हो गई।

बड़ी बी ने सुजान का हाथ पकड़कर झटककर कहा—"आई कहीं की जानेवाली! जाइये, जाइये मुंशीजी रास्ता नापिये। कभी फिर दिल्ली आने की इजाजत हो तब गाना सुनने आना। ले जाओ जी सरदार साहब, क्या देखते हो। क्या मुंशी के पीछे हम अपना धंधा छोड़ देंगे? भूखों मरेंगे।"

"अच्छा सुजान, मैं जाता हूँ।"

"नहीं, मुंशीजी, मैं भी चलूंगी तुम्हारे साथ मुझे छोड़कर न जाओ मुंशीजी।"

बिदाई

प्रो० रामस्वरूप खरे

चली कल्पना मधुर अश्रु भर, आँखों में दो चार !
आज मनाने पुण्य जन्म-दिन, कवि के पावन द्वार !!

आई व्यथा अपरिचित करुणा—
भर आँचल में फूल !
सुख भी थका-थका यों आया—
पंथ गया ज्यों भूल !!

हँसता पतझर भी आया था, रोती हुई बहार !
कवि का मधु अतीत भी आया, ले दुःख का उपहार !!

यों तो जीवन में सब कुछ था—
कम थे नहीं अभाव !
जो बन जाते थे गीतों के—
सुन्दर-सुन्दर भाव !!

कैसे बेचे इन गीतों को, कवि सचमुच लाचार !
क्योंकि बसा है इनके उर में, उसका पावन प्यार !!

थके नृत्य के चरण, किन्तु—
कब थक पाई अभिलाष !
जब-जब आई खुशी न जाने—
मन क्यों हुआ उदास !!

दूँ क्या तुम्हें पास क्या मेरे ? चिर पीड़ा सुकुमार !
समझा जाता 'लेना-देना', इस जग में व्यापार !!

"कहाँ जायगी तू" कहकर बड़ी बी ने उसे पकड़कर खींच लिया।

सुजान सिसक उठी —"तुम जाओ मुंशीजी, मैं इन सींखचों से नहीं निकल सकती" और वह रो पड़ी। मुंशी जी चले गये।

मुंशी घनानन्द वृन्दावन पहुँचे। वहीं रहते और कविता लिखते। काव्यरसिक यात्री उनकी मधुर वाणी को सुनकर रुक जाते।

श्रीकृष्ण के मन्दिर में जाकर कविता पढ़ते—

"पहिले अपनाय सुजान सनेह सों,
क्यों फिर नेह को तोरिये जू"

एक यात्री ने पूछा—"कविजी, ये सुजान से क्या मतलब है, आपका ?

"सुजान—यही ईश्वर" कविजी कहते।

"सुजान तो दिल्ली की एक वेश्या है, दूसरे यात्री ने कहा।

"होगी हमारी सुजान तो श्रीकृष्ण हैं यही सुजान हैं।

"वह सुजान तो किसी मीर-मुंशी की कविता गाती है और आँखें भर लाती है।" उसी यात्री ने कहा।

"सच ! क्या सुजान मीर मुंशी की कविता गाती है ?"

आप जानते हैं उसे ?'

नहीं,हाँ जानता था, पर अब नहीं अब तो श्रीकृष्ण को ही जानता हूँ। मुंशीजी ने आह भरकर कहा और अपने विचारों में खो गये।
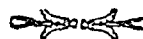
नौटंकी

निशीथ कुमार राय

देहाती डाकखाना। खुद जाकर अपनी चिट्ठी लाओ तो ठीक है वर्ना कौन जाने कब खत मिले। कौन जाने मिलेगा भी या नहीं।

घुन्नू चाचा, अलोपी, समरजीत, इन्द्र वगैरह बहुत से लोग वहाँ भीड़ लगाये बैठे थे। दस बजे डाक बँटना शुरू होगा। लोग बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे।

शिवसरन ने कहा—"घुन्नू चाचा, हम तो सरहज के हाल चाल बरे चिट्ठी देखैं आय रहे। बहुतै बीमार रही—सार तो ओका देखैं के फुरसतै नाहीं पवतै—का करी।"

दरअसल सरहज की तबीयत के बारे में उन्हें उतनी दुश्चिन्ता न थी जितनी अपने पाँच रुपये के लिये। सरहज के प्रति उनके मन में दुर्बलता थी, यह वह भी जानती थी और उसका फायदा उठाने में नहीं चूकी। पाँच रुपये का 'लाटरी' का टिकट उनके गले मढ़ दिया और बोली थी, "जब आप लखपती हो जायेंगे तो आपकी मैनेजरी करूँगी।" शिवसरन को इसमें तनिक भी सन्देह न था कि लाटरी में उसे रुपये मिलेंगे और शुरू-शुरू में उसने इसकी चर्चा भी गाँव में की। मगर उसके लिये अपनी बेचैनी उन्हें जरा भद्दी मालूम पड़ती थी तो झेंप मिटाने के लिये वे यह कह देते थे कि सरहज की बीमारी की वजह से हाल-चाल जानने की फिक्र उन्हें है। वास्तव में तो वे लखपती बनने का सुख संवाद सुनने जाया करते थे और डाकखाने पर बैठे-बैठे भी यह स्वप्न देखा करते थे कि सरहज उनकी मैनेजरी कर रही है। इस कल्पना से उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था।

उधर समरजीत कह रहा था, "अब की जन्माष्टमी के समै जो नौटंकी न आई तो अगले साल कौनो चन्दा न देई!"

बनारस वालेन का चिट्ठी न लिखके जो हमरे 'ढिगवस' चले जातेउ तो तुरन्तै नौटंकी केर इन्तजाम होइ जातै। और जस चहतेउ, ओहिनतरा की नौटंकी मिलत! रोज बनारस वालन के चिट्ठी अगोरै न पड़त", बोला अलोपी। वह मौजा ढिगवस जिला प्रतापगढ़ का रहनेवाला था। हर बात में वह अपने गाँव का उल्लेख जरूर करता था। वहाँ की नौटंकी आती तो उसमें उसका साला जरूर आता। वह नौटंकी में ढोल बजाता था। और उसके जरिये दो-चार रुपये कमीशन के मिल जाते! पर लड़के बनारस की नौटंकी के लिये व्यग्र थे।

इन्द्र बोला, "रक्खो ढिगवस! उससे अच्छा तो चोलापुरवाले हैं। उसमें एक लौंडा तो ऐसा है कि कौन कह सकता है औरत नहीं मर्द है? क्या चेहरा, क्या-लचक, अहा, हा, हा,—"

उसकी तारीफ के बीच ही अलोपी कड़वे स्वर में बोल उठा, "ढिगवस और चोलापुर? राजा भोज और भुँजवा तेली? जनखा के गाना सुनै बरे नौटंकी काहे बोलावै, हियई से हिजड़न का बोलाय के न नचाय लेइ!"

ढिगवस केर नौटंकी में का बहिन बिटिया आवथीं?

खबरदार, बहिन बिटिया न गरियाउ नहीं तो ठीक न होई—

घुन्नू चाचा ने घुड़की लगाई, "चुप रहो तुम लोग, बात केर बतंगड़ बनाय देत हौ! कहाँ नौटंकी? अबहिन चिट्ठी के बरे आवा हौ और हिंया लड़इ लागेउ!"

अशोक ने बी० ए० पास किया है। वह अपने आपको इन सबसे ऊँचा समझता है। छोटी मोहरी ड्रेन पाइप पैन्ट पहने, आँखों में धूप का चश्मा लगाये फिरता है, भले धूप हो या न हो। जब से बी० ए० पास किया है और डिप्टी-कलक्टरी के इम्तहान में बैठने की तैयारी कर रहा है तब से गाँव में उसकी 'पोजिशन' बन गई है। अलोपी ने उसकी ओर ताक कर कहा, "कहो भाई अशोक, जन्माष्टमी जैसे पुनीत पर्व में नौटंकी न नचाकर अगर 'संकृती कारकम' का पोरोगिराम बनाया जाय तो ठीक न पड़ी!" अशोक से बात करते समय लड़के शुद्ध भाषा का प्रयोग करते थे क्यों कि वे जानते थे अशोक देहाती बोली को गँवारपन समझता था और सख्त ना-पसन्द करता था। एक अनपढ़ और ग्रेजुएट की बोली में कोई फर्क ही न रहा तो ग्रेजुएट कैसा?

अशोक को नौटंकी के प्रसंग में मध्यस्थ माना जाना पसन्द न आया और फिर मन ही मन में वह भी बनारस की नौटंकी को देखने की इच्छा रखता था। उसने 'हाँ' या 'न' का जवाब न देकर एक अवज्ञासूचक शब्द 'हुँ' निकाला।

हाई स्कूल का चपरासी लल्लू अब तक चुप खड़ा था। अब जरा रोब दिखाकर डाकिया से बोला—"अरे भई हमार डाक दे के हमका छुट्टी कर देव ! जस तुम सरकारी नौकर अहा तस हमहू तो अही—हियई कब तक ठाड़ रहब।"

थाने का सिपाही केशव अब तक कुछ न कह कर थोड़ी दूरी पर पाँव फैलाकर खड़ा-खड़ा सिगरेट पी रहा था। अब बोला, "हमार डाक होय तो दयदेव नहीं तो हम जाई। दरोगाजी रौना के डाकखाने के गबन की तफतीश करैं जाय वाले हैं।"

औरों की बात की ओर तो पोस्टमास्टर ने अब तक कान ही नहीं लगाया था पर सिपाहीजी का मजमून सुनकर वे झटपट स्वयं एक पैकेट उसकी ओर बढ़ाकर मृदु हँसकर बोले—"अरे मुंशीजी, हमने तो आपको देखा ही न था। यह लीजिये डाक ! और सब आनन्द है न ?"

उनके कुशल प्रश्न का जवाब न देकर कानिस्टिबल केशो डाक लेकर साइकिल पर सवार होकर चल दिया।

अब लड़कों के लीडर समरजीत ने भी पूछा, "चाचा, हमारे युवक मण्डल के नाम कोई खत तो नहीं है"

'नहीं' एक छोटा सा जवाब। दीर्घ प्रतीक्षा, झूठी उम्मीद और आसरा का अन्त उस छोटे से शब्द ने कर दिया। लड़के निराश होकर लौट चले। अलोपी ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी लोगों को समझाता हुआ चला कि ढिगवस की नौटंकी एक बार मँगवाकर देखना ठीक होगा कि इन्तजार-इन्तजार में तो जन्माष्टमी आ जायगी और तब शायद ही कोई पार्टी मिल सके।

शिवसरन की चिट्ठी थी। उसमें सरहज ने धीरज बँधाया था कि इनाम शिवसरन को ही मिलेगा जब भी नतीजा निकले। उनके चेहरे को देखकर घुन्नू चाचा ने पूछा—"कहो शिवसरन, सरहज मजे में है न ?"

"हूँ" अनमने होकर शिवसरन ने जवाब दिया।

"तो फिर लाटरी नहीं मिली होगी" बोला हनुमान प्रसाद ! शिवसरन जल उठे। हनुमान में बड़ी ईरखा है। तीक्ष्ण स्वर में बोले—"मिलेगी ही ! अभी नतीजा नहीं खुला है ?"

इन सबकी बातें सुन रहे थे मुंशी जैराम। मुंशीजी बरामदे के कोने में रखे बेंच पर बैठे थे। उम्र लगभग सत्तर थी। स्वास्थ्य ठीक न था। मोटे फ्रेम का हाई पावर का चश्मा। शीशे के अन्तराल से दो स्तिमित आँखों में प्रच्छन्न जलन और निरुपाय क्रोध की झलक प्रतिफलित थी।

वे किसी जमाने में इस मौजे के जमींदार भवनाथजी के जिलेदार थे। भवनाथजी कभी के मर चुके थे। जमींदारी भी नहीं रही—पर वे रह गये। भवनाथ के बेटे रामनाथ ने अब कुछ जमीन पर 'मेकानाइज्ड फार्मिंग, मुर्गी पालन आदि कारोबार चालू किये हैं ? स्वयं तो लखनऊ रहता था क्योंकि पशुपालन विभाग के कर्त्ता-धर्त्ताओं से योगायोग रखकर सरकारी सहायता झटकने के लिये वहीं रहना जरूरी था। देहात में उसने 'अप टू डेट' देवेन्द्रपाल जाट को रक्खा था। देवेन्द्रपाल अँग्रेजीदाँ थे। हाकिम हुक्काम की मिजाजपोशी करके चल सकते थे। उस वातावरण में वृद्ध जैराम का स्थान न था। मुंशी जैराम अपने जमाने के बेढब जिलेदारों में गिने जाते थे पर बदलते जमाने के साथ साथ वे 'आउट आफ डेट' हो गये थे। किन्तु पुराने नौकर होने के नाते उन्हें 'फार्म' पर मुहर्रिर के काम पर रामनाथ ने नियुक्त कर दिया था। पर जहाँ मुंशीजी ने किसी जमाने में बादशाही की थी वहीं अब यह जिल्लत उठानी पड़ेगी, इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। अन्त में वही हुआ। उनकी मैनेजर से पटरी नहीं बैठी। उसकी शिकायत पर मुंशीजी को वहाँ से हटाकर डाक लाने के काम पर लगा दिया गया। एक तरह की पेंशन थी। पर मुंशीजी ने लोगों से कहा, "अरे भाई रामू को मैंने इन हाथों से पाला-पोसा है। बड़े हुजूर जब जिन्दा थे तो हमी सब कुछ करते-धरते थे। अब वह नया मैनेजर आकर हमारा बना-बनाया दरबार उजाड़ दे यह देखते नहीं बनता। इसीलिये तो रामू ने मुझे कहा कि चचा, आप खत किताबत का चार्ज ले लें ताकि पता रहे कौन हमारे खिलाफ क्या करता है ! हमने भी कहा ठीक है।"

इधर कुछ दिनों से मैनेजर को सन्देह हो गया था, कि सब पत्र खोलकर पढ़ने के बाद मुंशीजी उन्हें देते हैं। उसने मुंशीजी को आड़े हाथों लिया और रामनाथ को शिकायत लिख भेजा कि मैनेजर उनके खिलाफ जाल रचता है—

उन्होंने पता लगा लिया है। अब वह जान गया है इसलिये उनके पीछे पड़ा है—रामनाथ को चाहिये इस दगाबाज चोर को फौरन 'डिसमिस' कर दे !

उन्हें पूर्ण विश्वास था कि रामनाथ, उनका रामू, इस गैर शख्स के मुकाबले में उन्हें नीचा नहीं दिखायेगा।

उन्होंने गाँव भर में कह रक्खा था कि रामू को लिख दिया है अब देखो कब मैनेजर का औलाद बोरिया-बिस्तर बाँधता है ! रामनाथ औरों के लिये बड़ा साहब है उनके लिये तो वही रामू है जिसे उन्होंने हाथ पकड़कर 'क ख, ग, घ,' लिखना सिखाया था। अगर वे अँग्रेजी पढ़े लिखे होते तो आज रामू बाहर से मैनेजर क्यों बुलवाता ? और रामू बेचारा क्या करे ? आजकल अँग्रेजी-दाँ मैनेजर चाहिये ! फिर भी उसने उन्हें सर्वेसर्वा बना रखा है। एतबार तो उन्हीं पर है !

× × ×

उस दिन डाकखाने के अन्दर खत छाँटे जा रहे थे। सरहज के खत से मालूम हुआ, लाटरी का इनाम किसी और सूबेवाले को मिला है ! अगर इस सूबे के नाम आता तो उन्हें अवश्य मिलता। सरहज ने लिखा है..........

अलोपी ने बनारसवालों का खत पढ़ा। जन्माष्टमी के दिन नौटंकी खाली नहीं है। पुलिस लाइन में खेलना है। और किसी दिन के लिये कहें तो आ सकते हैं।......

अशोक हवा में उड़ता घर लौटा। पी० सी० एस० के इन्टरव्यू का बुलौवा आया है ! कानिस्टिबल केशो का चेहरा बुझ सा गया। उसे मारने का मजाहमत का मुकदमा छूट गया है, कोर्ट मुहर्रिर ने "पर्चा फैसला" भेजा है !

मुन्शी जैराम प्रतीक्षा में बैठे थे। क्या आज भी रामू का जवाब नहीं आयेगा। मैनेजर ने उनसे डाक लेने का काम भी छीन लिया है, कहा है, "मुंशीजी आप इस काम के लायक भी नहीं हैं। मैंने साहब को लिख भेजा है। आगे उनकी मर्जी। मैं अपनी जिम्मेदारी पर आपको डाक 'सेन्सर' करने नहीं दूँगा।"

मुंशीजी को रामू का खत मिल जाता तो उस शोख और उद्धत मैनेजर के मुँह पर दे मारते !

पोस्टमास्टर ने पुकारा जैराम काका, आपका रजिस्ट्री है। मुंशीजी का कलेजा धक से हुआ। शिथिल चरणों में यथासम्भव चुस्ती लाकर लपके।

खत रामनाथ का था। उसमें लिखा था, "चाचा, मैनेजर की शिकायत आपने तस्लीम किया है कि डाक सेन्सर करते रहे हैं। आपसे क्या कहूँ। पर अगले महीने से फार्म को आपकी जरूरत नहीं है। आप हमारे मकान के उस हिस्से को भी खाली कर दीजियेगा जिसमें आप रह रहे हैं क्योंकि मैनेजर को गोदाम के लिये दिक्कत हो रही है।"

वृद्ध जैराम अपना बोरिया बिस्तर बाँधकर जाने की तैयारी कर रहे थे। पूछने पर बोले, "भई अब तो मैं प्रयागधाम बसूँगा। रामू को मैंने कह दिया है कि बड़े हुजूर के पास अब जाऊँगा। आखिर कभी तो छुट्टी मिले। जिन्दगी भर तो देख भाल करता आ रहा हूँ ?" कहकर हँसे पर वह हँसी रोने का ही रूपान्तर था।

गिरगिट

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

(सजा-धजा ड्राइंग रूम। बाबू बलदेव उर्फ भैयाजी, बंदगले का कोट और चूड़ीदार पायजामा पहने, आँखों पर चश्मा, कुछ नीचे सरका हुआ अखबार पढ़ रहे हैं। तभी नेपथ्य से 'भैयाजी, भैयाजी, की आवाज। भैयाजी उठकर जाते हैं। नेपथ्य में 'अरे-रे नमस्कार, आइए, आइये' फिर दो सज्जन दारूमल बुशर्ट-पैंट पहने और दमड़ीलाल-धोती-कुर्ते में, भैयाजी के साथ बैठक में आकर बैठ जाते हैं।)

भैयाजी—वाह, भाई वाह, बड़े अच्छे मौके पर आये हैं आप लोग, मैं तो अभी याद ही कर रहा था।

दारूमल—(हँसते-हँसते) हँ-हँ, आपने भी क्या कही! आप याद करें और हम न आयें, भला यह कैसे हो सकता है? ह ह ह....

दमड़ीलाल—अजी, हम तो सुबह ही आ जाते, लेकिन उधर भी, हँ-हँ, आप तो जानते ही हैं, पक्की करनी थी, नहीं तो फिर फायदा ही क्या?

भैयाजी—दरअसल, लालाजी, सवाल तो यही है। वे लोग पक्की बात करे तो, मैं आज क्या, अभी, सयुक्त-मोर्चा छोड़ दूँ। आखिर, रखा ही क्या है उसमें?

दारूमल—बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक, भैयाजी, सही फरमाया आपने। वहाँ धरा ही क्या है? कभी कोई बाहर कूदने की कहता है तो कोई ऊपर उछलने की। इसी उछल-कूद में सब चौपट हो गया। बात तो यह है कि 'कहाँ की ईंट, कहाँ का रोड़ा, भानुमती ने कुनुबा जोड़ा।' वह हरदम खीचातानी चलती रहती है। कोई धमकी देता है, तो कोई चुनौती, अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग! क्यों ठीक है न, दमड़ीलालजी?

दमड़ीलाल—अजी, क्यों नहीं, क्यों नहीं, यही तो मैं कहूँ मोर्चे की सबसे बड़ी बीमारी है। इसीलिए, कुछ लोग मोर्चा छोड़ने की बातें कर रहे हैं और एक नया दल बनाकर सरकार बनाने के चक्कर में हैं।

भैयाजी—हाँ भई, बात तो सही है, पर सवाल तो यही है कि नये दल की सरकार में मुख्यमन्त्री कौन बने? मैंने तो तुम जानो, साफ-साफ कह दिया है, नहीं तो फिर से मोर्चा छोड़ने से फायदा क्या। सवाल तो यही है।

दमड़ी—भैयाजी, बस, पते की बात कही आपने। कितने बड़े-बड़े त्याग किये आपने! कितने दलों के तजुर्बे हासिल किये आपने, और फिर भी, आपको मुख्यमन्त्री न बनाया गया तो फिर फायदा ही क्या? अजी राम भजो, राम भजो, चलो, मोर्चे में अभी कुछ सुनते तो हैं आपकी। मन्त्री भी बने थे, पर अपनी बात के लिए लात मार दी कुर्सी पर। इसे कहते हैं तलाक, नहीं-नहीं, मेरा मतलब है त्याग। क्या बताऊँ, आजकल यह ससुरा तलाक लफ्ज मुँह में ऐसा चढ़ गया, ऐसा चढ़ गया कि बस निकलने का नाम ही नहीं लेता यार मैं माफी चाहता हूँ। अजी क्या बताऊँ, हाँ तो, भैयाजी, उधर तो बात पक्की ही समझिए, लेकिन हमारा भी कुछ ख्याल रखिये—मेरा मतलब आप समझ गये होंगे?

भैयाजी—अरे, वाह, भई वाह, तुमने भी क्या बात कही? सवाल तो यह है कि मोर्चे से पाँच और तोड़ने है और उसके लिए कम-से-कम पचास हजार तो चाहिये ही, क्योंकि दस-दस हजार से कम पर तो कोई मानेगा ही नहीं......दूसरी बात मुख्यमन्त्री बनने की है। अगर यह सब ठीक हो गया तो, फिर तो पूछो मत, जो चाहोगे, हो जाएगा......सवाल तो यही है।

दारूमल—अजी भैयाजी, आप फिक्र न करो, उनका कहना है रुपयों की परवाह न करो, रुपया तो हाथ का मैल है। सवाल तो मोर्चा तोड़ने का है। जैसे-तैसे पाँच और टूट जायँ तो समझो, काम बन गया।

भैयाजी—देखो दारूमलजी, दस-दस हजार देकर तो पाँच टूट ही जाएँगे। मैने घुमा-फिराकर उनसे बातें भी की है और यह भी कहा कि दो-तीन को अपने मंत्रि-मंडल में शामिल भी कर दूँगा, लेकिन हाँ, उधर से मेरी बात पक्की हो जानी चाहिए। कहीं फिर......

दारूमल—भैयाजी, आप कैसी बातें करते हैं, वो तो सब मुझपर छोड़ दीजिए, आप तो झटपट पाँच को तोड़कर एक नया दल बना दीजिए और फिर देखिए हमारा कमाल। आपसे मुख्यमंत्री बनने के लिए कहा जाएगा। आप बिलकुल निश्चित रहें।

दमड़ी—अरे साब, मैं तो कहूँ मोर्चे से जैसे ही छह अलग हुए नहीं कि फट से एसेम्बली में अविश्वास का प्रस्ताव और फिर देखिए मोर्चा सरकार चारों खाने चित, बस फिर तो—दसों उंगलियाँ घी में और सिर कढ़ाई में।

भैयाजी—सो तो है ही। दो-तीन का ही तो सवाल है। वे जिधर लुढ़के, उधर सरकार बनी, समझो, और हम तो छह तोड़ेंगे। फिर तो कहना ही क्या! "सवाल तो यही है।"

दारूमल—तो भैयाजी, देर किस बात की? शुभ काम में देर नहीं होनी चाहिए। आप झटपट पाँचों से लिखवा लीजिए और तुरन्त स्पीकर को भेज दीजिए। मैं अभी उनसे अखबारों में समाचार भिजवा देता हूँ। बस अब झटपट हो जाय, आप समझो, हम सबकी तकदीर खुल गयी......

भैयाजी—दारूमलजी, यह तो ठीक है, लेकिन उधर फिर कहीं गड़बड़ न हो। पिछली बार मोर्चेवालों ने कहा कुछ और किया कुछ। इसीलिए मैं सख्त नाराज हूँ उन लोगों से और हाँ, इसलिए यह दिखा देना चाहता हूँ कि मेरे हाथ मे कितनी ताकत है। वे समझते क्या है? एक ही दिन में पता लग जाएगा? हैं किस चक्कर में?

दमड़ीलाल—भैयाजी, सो तो है ही, आज ही उन्हें पता लग जायगा। भागे-भागे आएँगे आपके पास, लेकिन आप जानो, आप उनकी बातों पर रत्ती भर भी ध्यान न देना। वे लोग बड़े घाघ है घाघ, पहुँचे हुए, घाट-घाट का पानी पिये हुए। ऐसों से जरा सँभल कर काम लेना चाहिए। चिकनी-चुपड़ी बातें करेंगे, लल्लो-चप्पो करेंगे, मनाएँगे, लेकिन आप टस-से-मस न होना?

भैयाजी—अरे दमड़ीलाल जी, तुम भी कैसी बातें करते हो। यहाँ भी कच्ची गोलियाँ नही खेली है। सब जानते हैं। अरे हमने भी तो घाट-घाट का पानी पिया है। बीसियों पार्टियों के दिल देखे हैं। सबको पहचानते हैं।

दारूमल—भैयाजी, सो तो है ही, नही तो आपके पीछे ये लोग इतना क्यों दौड़ते? रोज चक्कर लगाते हैं। खुशामद करते हैं। तलुवे चाटते है। साली राजनीति क्या हो गयी कि तमाशा हो गया।

भैयाजी—अजी क्या पूछो, आजकल तो यह बिजनेस हो गया है बिजनेस। हमने भी सोचा चलो बहती गंगा में हाथ धो लो? क्या रक्खा है इन बातों में। देखो न, जिनके पास कल तक एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी, आज वे करोड़पति हो गये। आखिर कैसे? अरे साहब राजनीति में ही तो आजकल सब कुछ रखा है। एक बार चुने गये नहीं कि सब वारा-न्यारा। हम भी रही-सही कसर निकालना चाहते हैं। और फिर मुझे आप लोगों का भी तो ध्यान रखना है और........'सवाल तो यही है।"

दमड़ी—क्यों नहीं, क्यों नहीं, भला क्यों किसीसे पीछे रहे? यह तो सभी मानते है कि बहती गंगा में हाथ धोना पाप नहीं है, और पाप पुण्य भी तो सब पुरानी घिसी-पिटी बातें हैं। भला इनमे रखा ही क्या है? सब कुछ चलता है इस दुनियाँ में।

दारूमल—और नही तो क्या? कौन है आजकल दूध का धोया हुआ? क्यों भैयाजी? है न सही बात?

भैयाजी—अजी, बिलकुल सही, सोलह आने सही। इसीलिए तो हम भी वक्त के साथ चल रहे हैं।

(इसी बीच खट्खट् की आवाज) (धीरे-धीरे) अरे-रे, कौन आया है? कहीं वो तो नहीं आये हैं.... हाँ तो, दारूमलजी मेरी तरफ से बिलकुल पक्की समझो उधर का आप जाने, बस।

दमड़ी—(खड़े होकर, चलते-चलते) अच्छा तो भैया जी, अब हम लोग उधर जाते हैं और फिर...अच्छा....

भैया जी—अच्छा....अच्छा...(तीनों बाहर जाते हैं) नेपथ्य में....अरे-रे, आप! नमस्कार, नमस्कार।

(भैया जी धोती-कुर्त्ताधारी प्यारेलाल के साथ फिर बैठक में आ जाते हैं)

प्यारेलाल—भैयाजी, सुनने में आया कि आप फिर फिसलने की सोच रहे हैं। देखिये इससे आपको ही नुकसान होगा। लोगबाग भी कहेंगे कि भैयाजी को क्या हो गया? कभी इधर, कभी उधर।

भैयाजी—देखो प्यारेलालजी, आप जानते ही हैं मोर्चेवालों ने मेरे साथ सरासर धोखाधड़ी की! अब मैं वहाँ कैसे रहूँ? दरअसल, सवाल तो यही है लोग चाहे जो कहें, अब मैं...आप जानों, मोर्चे में रहना ही नहीं चाहता।

प्यारेलाल—तो जो कुछ हमने सुना है, सच ही है। भैया जी, आप थोड़ा आगे-पीछे भी देखा करें। जब से आप एम० एल० ए० हुए—आप ही सोचिए, आपने कितने दल बदले हैं। इससे मोर्चे का क्या, आपको ही पछताना पड़ेगा।

भैया जी—अजी इसमें पछताने की क्या बात है? राजनीति में सब चलता है। मोर्चे में भी तो आधे से ज्यादा इधर-उधर से आए हुए हैं। अजी, आप ही बताइए आज कौन-सा नेता है, जो एक ही पार्टी में रहा। यह तो सब चलता है। सब अपना-अपना भला देखते हैं। 'सवाल तो यही है'?

प्यारेलाल—भैयाजी, ऐसी बात तो नहीं; रामेश्वर जी को ही देखिये। उनके पीछे कितने लोग पड़े? कैसे-कैसे प्रलोभन दिये, यहाँ तक कि मुख्यमंत्री बनने के लिए भी कहा गया, लेकिन वे हैं कि टस-से-मस न हुए। इसे कहते हैं चरित्र!

भैयाजी—अजी आप भी कैसी बातें करते हैं। चरित्र! कहाँ है आजकल चरित्र! ऊपर से नीचे तक, सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सब बटोरने में लगे हैं।

प्यारेलाल—वाह, भैया जी वाह, अगर सब आपकी ही तरह सोचने-विचारने लगें तो समझो, हो गया बेड़ापार। आप भी कैसी बातें करते हैं? अगर संयुक्त मोर्चा टूट गया तो याद रखिए, आप को ही सब लोग बुरा-भला कहेंगे।

भैयाजी—(जल्दी-जल्दी), अजी लोग कौन होते हैं? मैं किसी की परवाह नहीं करता। सभी बड़े-बड़े लंबे-चौड़े वायदे करते हैं, लेकिन कुर्सी पर बैठते ही सब-कुछ भूल जाते हैं। और कुर्सी हथियाने के लिए यह बताइये, किसने गुल नहीं खिलाए। मैं तो कहता हूँ कुर्सी पर वही बैठ सकता है जो चलता-पुर्जा, मेरा मतलब बिलकुल चार सौ बीस हो...सवाल तो यही है।

प्यारेलाल—हाँ-हाँ आपकी बात तो बिलकुल ठीक है कि आजकल सभी कुर्सी के चक्कर में पड़े हैं। इसीलिए तो यह सब उखाड़-पछाड़, तोड़ना-तुड़ाना, बैठना-बिठाना चल रहा है, लेकिन आपको तो मालूम ही है कि आखिर यह सब कब तक चल सकता है? तीन-तीन बार एक पार्टी को छोड़कर फिर उसी में जाना आप ही सोचिए यह कहाँ तक ठीक है?

भैया जी—अरे प्यारेलाल, आप नहीं समझे मैं तो वापस कभी नहीं आता। एक बार आगे बढ़ गया तो बढ़ता ही जाता हूँ। फिर से उस पार्टी में जाने का सवाल ही नहीं आता। मैं तो एक बिलकुल नया दल बना रहा हूँ....फिर देखिए....क्या-क्या गुल खिलाता हूँ...सबको दिखा दूँगा। सारे तोड़-फोड़ कर अपनी नयी पार्टी में न भिजाए तो मेरा नाम....हाँ यही तो सवाल है।

प्यारेलाल—भैयाजी, आपकी बात मैं मानता हूँ। माना कि आपने इधर-उधर दे-दिलाकर कुछ तोड़ भी दिये तो कल आपकी नयी पार्टी से भी उन्हें तोड़ा जा सकता है। भला, जो रुपयों पर बिकते हों, उनका क्या भरोसा—गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास।

भैयाजी—अरे भाई, राजनीति में ऐसे ही चलता है। जो पैंतरे बदलते रहते हैं, राजनीति उन्हींके इर्द-गिर्द चक्कर काटती है। सभी पार्टियों में ऐसे लोग हैं, जो रुपयों से खरीदे गये हैं। फिर अगर हम भी कुछ करें तो कौन-सा जुल्म होगा। आजकल इसीको राजनीति कहते हैं। 'सवाल तो यही है।' खाली समझने का फेर है, बस।

प्यारेलाल—खैर, अपना-अपना ख्याल है। आपसे ज्यादा क्या कहना! आप पछताएँगे, यह मैं आपको बता देता हूँ। अगर आपने मोर्चे से कुछ तोड़ भी दिये तो सरकार तो आप बना नहीं पाएँगे। सरकार तो उन्हीं की बनेगी, जो यह सब उखाड़-पछाड़ कर रहे हैं, करवा रहे हैं, इतना याद रखना आप। वे आपको मुख्यमंत्री कभी नहीं बनाएँगे। उनकी चाल आप नहीं समझे।

भैयाजी—अजी, मैं सब समझता हूँ। मैं भी देख लूँगा—एक-एक को, यहाँ भी धूप में बाल सफेद नहीं हुए—

प्यारेलाल—अरे-रे भैयाजी, आप कैसी बातें कर रहे हैं आपके सभी बाल तो अभी काले ही हैं।

भैयाजी—अजी, आप इसकी फिक्र न कीजिये, मैं सब देख लूँगा, अब अपने राम को भी कुछ-कुछ हथकंडे मालूम हो गये। बिना ऐसे किये गाड़ी चलती ही नहीं। इसलिये इसमें क्या बुराई है। 'सवाल तो यही है।'

प्यारेलाल—(समझाते हुए) भैयाजी, आप जानो, आपका काम जाने। मैं तो एक दोस्त के नाते यही कहूँगा कि आप उनके चक्कर में मत पड़िए आप वैसे ही—मेरा मतलब, लोग-बाग कहते हैं, भैयाजी की जेब गरम कर दो, और जब चाहो तब इधर-उधर कर दो। आखिर साख भी तो कोई चीज है।

भैयाजी—अजी, आज के जमाने में साख! ईमानदारी! सच्चाई—यह तो अब किताबों में ही रह गयीं और आगे तो आप देखेंगे इनके मतलब भी बदल जाएँगे।

प्यारेलाल—देखो भैयाजी, मेरी सुनो, तो चुपचाप मोर्चे में डटे रहो, अपने चुनाव-क्षेत्र मे दौरे लगाओ ? अगले चुनाव के लिए अपनी स्थिति अभी से मजबूत करो—बस, इसीमे आपका भला है। वार-वार इधर-उधर दौड़-भाग करने से सवका विश्वास उठ जाएगा और आप देखेंगे ऐसे लोगो को लोग आगे चुनेंगे भी नहीं—इसलिये कभी-कभी कुछ दूर की भी सोचिये।

भैयाजी—अजी, आप भी कैसी वातें करते है। लोगो की तो बस पूछो नही। चुनाव के मौके पर भी तो वही चलता है। दर असल, सवाल तो यही है कि सच्चे ईमानदार आदमी कभी चुनाव जीत ही नही सकते। आपको तो सब पता है, चुनाव के दिनों मे क्या नही चलता है–शराव, रुपये—और—बस, क्या वताऊँ आपको, यह तो हमेशा ही चलेगा—

प्यारेलाल—भैयाजी, अब आगे आप देखना, वह वात नही रहेगी कि पानी की तरह पैसा वहाओ और चुनाव जीतो। लोगबाग भी कुछ-कुछ समझदार हो गये हे। वे सबको अच्छी प्रकार जानते पहचानते है।

भैयाजी—अजी, खाक जानते है। लोग ही अच्छे होते तो यह सब कुछ होता क्यो। इतनी महँगाई, वेकारी, मिलावट, चोर-वाजारी, रिश्वतखोरी–सब सालो से चल रही है और लोग वाग वेसे ही चिल्लाते हे, करते-धरते कुछ नही। आखिर चुनाव के मौके पर फिर उन्हीको वोट देते है। क्यो। आप ही वताइये। हर आदमी रोज बीसियों शिकायतें करता है, हर नेता को भला-बुरा कहता है, लेकिन फिर भी वोट उसी को देता है। आखिर क्यों। क्या उस समय उसकी अक्ल कही चरने चली जाती है, या उसका दिवाला निकल जाता है। इसलिए चुनाव की वात तो छोड़िये। वह सब मै देख लूँगा—टका है तो सव टकटका, नही तो, झक-झका—'सवाल तो यही है।'

प्यारेलाल—अच्छी वात, भैयाजी, अब आपको क्या समझाऊँ। आपकी मर्जी, जो चाहे, करें, लेकिन मेरी वात गाँठ बाँध लो—एक-न-एक दिन आपको भी पछताना पड़ेगा। माना कि इस उखाड़ पछाड़ की वजह से कही ऐसेम्वली भंग कर दी गयी और राज्य मे गवर्नर का शासन घोषित कर दिया गया तो बोलिये आप फिर क्या करेंगे। जरा सोचिये।

भैजाजी—अजी, हम क्या सोचें। सभी देश लेंगे, जो सब करेंगे वो हम भी करेंगे। और अभी तो याद रखिये गवर्नर का शासन हो ही नही सकता। वे लोग तो एडी-चोटी का जोर लगाएँगे और ऊपर उन्ही के लोग वैठे है फिर भला ऐसेम्वली भंग कैसे होगी। और हो भी जाय तो अपन को क्या। 'सवाल तो यही हे।'

प्यारेलाल—(उठते-उठते) अच्छा भैयाजी, मै अब चलता हूँ। अपनी तरफ से जो कुछ कहना था, मैंने कह दिया, वाकी आपकी इच्छा। वैसे भी चुनाव मे कुछ गड़वड़ होने के कारण आपके विरुद्ध मामला चल रहा हे •• वही····

(दोनो उठकर चले जाते है)

दूसरा दृश्य

(भैयाजी की वही बैठक। भैयाजी खोये-खोये से चुपचाप अखबार पढ़ रहे थे। एक तरफ, उनकी पत्नी कमला बैठी हैं।)

कमला—(उलाहने के स्वर मे) लो, अब वनो चीफ-मिनिस्टर। वड़े आये चीफ मिनिस्टर बनने वाले, कैसी-कैसी डींगें हाँका करते थे और अब मुँह दिखाने के काबिल भी न रहे।

भैयाजी—(गुस्से मे) देखो कमला, ज्यादा चपर-चपर न करो। यह सब तो तुम्हारी वजह से हुआ। तकदीर जो खराब है तुम्हारी।

कमला—(जल्दी-जल्दी) हाँ-हाँ, मेरी वजह से हुआ। मुझे कभी पूछा भी आपने? हम तो पड़ोसियों, रिश्तेदारो और जान-पहचानवालो के ताने सुन-सुनकर वैसे ही परेशान है। ऐसा भी आदमी क्या, जो दिन मे दो-दो तीन-तीन वार पेंतरे वदले। तुम्हें कितनी वार समझाया ऐसा न करो, ऐसा न करो, लेकिन तुमने हमारी कभी सुनी भी? कभी मोर्चे मे, कभी कांग्रेस मे, कभी इसमे, कभी उसमे। आखिर कुछ तो लिहाज करते।

भैयाजी—देखो, ज्यादा वक-वक मत करो, मै वैसे ही परेशान हूँ और तुम ऊपर से कटे पर नमक लगा रही हो। हो गया, जो होना था। अब मैं क्या करूँ?

कमला—आखिर, कुछ तो सोच-समझकर करते, लेकिन तुम पर तो चीफ मिनिस्टरी का भूत सवार था। अच्छे-

खासे मंत्री हो गये थे। क्या इतना कम था ? शान थी, मान था, सब कुछ था लेकिन नहीं, तुम्हें तो··· न जाने कहाँ की लगी थी। अब हो गये न—न घर के न घाट के।"

भैयाजी—हाँ, बाबा हाँ, धोबी का कुत्ता, न घर का, न घाट का। (गुस्से) देखो, अपनी बकवास बन्द करो और जाओ यहाँ से। मैं···बहुत परेशान हूँ।

कमला—लो, कुछ समझाने-बुझाने की बात कहो तो खाने को आते हैं। मैं इतने दिन चुप रही, तुम क्या जानो लोग कैसी-कैसी बातें करते हैं ? इज्जत न रही तो और है ही क्या ?

भैया जी—बड़ी आयी इज्जतवाली ? अब बड़ी ऊँची-ऊँची बातें झाड़ रही हो और जब तुम्हारे हाथ में नोटों की गड्डी पकड़ाई थी, तब क्यों नहीं तुमने वापस की। झट से रुपये लेकर रख दिये। यह भी नहीं पूछा—भला, इतने रुपये आये कहाँ से।

कमला—हाँ-हाँ अब तुम्हें याद क्यों रहेगा। मैंने तो उसी समय रुपये लौटाने के लिए कहा था, लेकिन तुम्हीं ने तो कहा था घर आयी हुई लक्ष्मी को नहीं लौटाते हैं। अब मेरे सिर मढ़ रहे हो न ? ठीक है, सारा कसूर मेरा ही है। चुनाव में महीनों रात-दिन एक कर मैंने तुम्हें जिताया और उसका फल······

भैयाजी—बस-बस, अब रहने दो यह सब ? हमेशा एक ही रट लगा रखी है कि चुनाव में मैंने रात-दिन एक किया·· और, दो-तीन महीने कुछ काम कर लिया तो जिन्दगी भर यही कहती फिरोगी।

कमला—मैंने कहा ही क्या जो इतने आग-बबूला हो रहे हो ?

भैयाजी—तो निकालो न सारी कसर। दिल का सारा गुबार निकाल लो न अभी।

कमला—हाँ-हाँ, निकालूंगी। अब तक तो चुप रही, अब चुप नहीं रहूँगी। सब लोग थू-थू कर रहे हैं। तुम्हारी ही वजह से यह सब हुआ। मोर्चा भी टूटा, सरकार भी टूटी। आखिर तुम्हारे हाथ क्या लगा ? मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँ ? जहाँ भी जाती हूँ, वही बातें होती हैं ?

भैया जी—(गुस्से में) तो किसने कहा कि घर से निकलो, घूमो-फिरो और दुनिया भर की बातें सुनो ? क्या घर में चुपचाप बैठा नहीं जाता ?

(तभी खट्खट् की आवाज, कमला चली जाती है। भैयाजी बैठे-बैठे ही कहते हैं)

आइए-आइए (दारूमल का प्रवेश)

दारूमल—जल्दी-जल्दी, भैयाजी, गजब हो गया। (दो पेज का लोकल अखबार दिखाकर) गजब हो गया ! आपका चुनाव ट्रिब्युनल ने रद्द कर दिया है ? चुनाव में गलत तरीके इस्तेमाल करने की वजह से आप पर बीस आरोप लगाये हैं और पूरा हर्जाना देने की····

भैयाजी--(बहुत दुखी होकर) दारूमलजी, मैं लुट गया, बरबाद हो गया, आप लोगों ने मुझे कहीं का न रखा (बेहोश होते हुए से) हे भगवान् ····मैं कहाँ दल बदल में फँस गया हूँ, मुझे उबारो····मुझे··

(पर्दा गिरता है।)
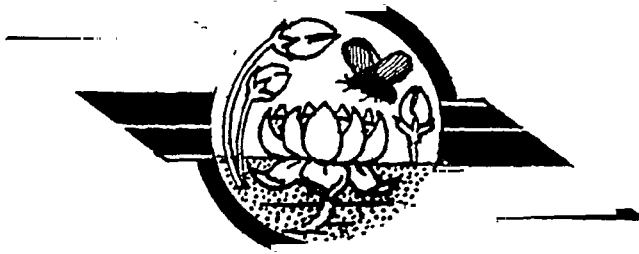
गीता माता की गोद में—लेखक सीकर, प्रकाशक श्री गीता आश्रम १० सदर बाजार दिल्ली कैंट। मूल दो रुपये।

यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है और चौथे भाग को छोड़कर बाकी सभी भागों के दो दो खंड हैं। समालोचनार्थ पुस्तक में द्वितीय व तृतीय भाग के प्रथम खंड प्राप्त हैं।

यह पुस्तक वास्तव में पुस्तक रूप में नहीं लिखी गई है, वरन अध्ययनार्थं निकट सम्बन्धियों के विदेश जाने पर पत्रों द्वारा पूछे हुए उनके प्रश्नों के उत्तरों और सीखों का एक प्रकार का संशोधित संकलन है। यह बात अपने में ही महत्त्वपूर्ण है। कितने अभिभावक अपने आश्रितों के मानसिक विकास का या उन्हें संस्कृति का ज्ञान देने का ध्यान रखते हैं? कितने अभिभावक अपनी सन्तान से इस अदृश्य डोर के द्वारा संपर्क बनाये रहते हैं? क्या वास्तव में सारा दोष आज के छात्रों को ही है? यही पुस्तक की अकृत्रिमता और व्यवहारिकता है। प्रश्न भी वे ही उठे हैं जो साधरणतः आधुनिक विद्यार्थियों के मन में उठा करते हैं। उनका समाधान भी इस प्रकार हुआ है कि वे जिज्ञासुओं का बहुत सुन्दर ढंग से समाधान करते हैं और वे उनके द्वारा आसानी से ग्रहण किये जा सकते हैं। इस कारण पुस्तक जिज्ञासुओं के लिये लाभदायक है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि ये व्यावहारिक हैं। सामान्य बुद्धि के प्राणी भी इसका भली प्रकार समझ सकते हैं। जो कुछ भी इसमें लिखा है वह अनुभूति पर आधारित हैं, केवल विचार प्रसूत नहीं है।

पुस्तक का नाम 'गीता माता की गोद में' इस कारण पड़ा है कि लेखक ने अपने उत्तरों और शंकासमाधानों के प्रतिपादन का आधार गीता को बनाया है, और स्थान-स्थान पर उसके श्लोकों को उद्धृत करके भावों को स्पष्ट करने में उनसे प्रेरणा पाई है।

पुस्तक की भाषा सरल है तथा शैली सुबोध है। भाषा सरल होते हुये भी जटिल आध्यात्मिक विषयों को व्यक्त करने में सफल है। इस सरल भाषा के कारण पुस्तक उन जनसाधारण की बन गयी है जो अपने हृदय में तो जिज्ञासाएँ रखते हैं परन्तु जिनका समय गृहस्थी के दैनिक जीवन में फँसे रहने के कारण उनका समाधान नहीं पा सकता। ऐसे प्राणियों की जिज्ञासाओं का समाधान इस पुस्तक से भली भाँति हो सकता है—साथ ही आध्यात्म्य की कुछ गहरी समस्याओं का भी ज्ञान उनको प्राप्त हो सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि जो कुछ भी पुस्तक में व्यक्त है, उसको दैनिक जीवन का क्रम यथावत् रखकर भी जीवन में उसे उतारा जा सकता है—केवल अपना मानसिक दृष्टिकोण धीरे-धीरे बदलकर और अपने मन पर संयम रख कर।

छोटी-छोटी बातों को लिपिबद्ध करके फिर उनको पुस्तक का आकार देकर लेखक ने बिन्दु में सिन्धु भर दिया है।

मनुस्मृति—रचयिता श्री मोहनलाल चौबे प्रकाशक चतुर्वेदी प्रकाशन मन्दिर, ९९ मिश्राना, मैनपुरी। मूल्य चार रुपये। पृष्ठ-संख्या २३४।

यह पुस्तक मनुस्मृति का पद्यानुवाद है। इधर हिन्दी में पुस्तक प्रकाशन की बाढ़ सी आई है, परन्तु ब्रज व अवधी एक प्रकार से उपेक्षित पड़ी हैं। यह पुस्तक भी इस पीढ़ी की लिखी हुई नहीं है। अपने स्वर्गीय पितामह चतुर्वेदी मोहनलाल मिश्र की लिखी हुई पुस्तक को उनके पौत्र श्री माधुरीशरण चतुर्वेदी ने सम्पादित करके छपवा दिया है। इस प्रकार यह पुस्तक यद्यपि अब प्रकाश में आई है तथापि दो पीढ़ी पूर्व की है। श्री माधुरीशरणजी का यह कार्य अवश्य ही सराहनीय है। आज के भौतिकवादी जगत में ऐसे कार्य और भी अधिक सराहनीय हैं।

पुस्तक में द्वादश अध्याय हैं। प्राचीन रीति के अनुसार कविवंश परिचय, फिर वन्दना, तत्पश्चात् ग्रन्थ विषय की प्रस्तावना आती है। भाषा की सरसता और प्रवाह तथा सादगी के कारण पुस्तक अत्यंत रोचक हो गयी है।

उपदेशात्मक काव्य में जो अपना भीना रस होता है तथा व्यवहार योग्य होने के कारण इसमें जो भावों की परिमार्जिता है वही सभी इन पद्यों में पूर्णतः झलकती हैं। इन पद्यों में बड़ी-बड़ी सारगर्भित बात भी सहजता से आ गयी है।

इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन से पुरानी सभ्यता पुराने दृष्टिकोण, पुरानी धार्मिक मान्यताओं आदि का परिचय हो जाता है और उन पर आधुनिक परिवेश में विचार करने का अवसर मिलता है। जो लोग मनुस्मृति को मूल संस्कृत पढ़ने में असमर्थ हैं, वे अनुवाद को कौतूहलवश ही पढ़ जाते हैं। ये पुस्तकें प्राचीन परम्परा का ज्ञान करा देती हैं और पाठक उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं। इस कारण कोई भी युग हो, इन प्राचीन पुस्तकों का अपना एक स्थान बना ही रहता है।

मनुस्मृति का अनुवाद सुबोध ढंग से इस पुस्तक में उतरा है। ब्रजभाषा साहित्य में रीति और शृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयों पर जो ग्रंथ लिखे गये थे, उन पर विद्वानों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इससे ब्रजभाषा साहित्य के विषय में बहुत कुछ भ्रम फैल गया है। इस प्रकार के साहित्य को प्रकाश में लाना आवश्यक है। मनुस्मृति का ब्रजभाषा का अनुवाद ऐसे ब्रज-साहित्य का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। इसके लिए सम्पादक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

महाभारतकालीन राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान—लेखक डा० पु० ग० सहस्रबुद्धे अनुवादक डॉ० वा० मो० आठले, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ।

डा० पु० ग० सहस्रबुद्धे के लेखों का अनुवाद करके राष्ट्रधर्म प्रकाशन ने हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है। यह सेवा वास्तव में कितनी अमूल्य है इसका ठीक अनुमान उसी समय हो सकता है जब इस पुस्तक का पठन किया जाय। अपनी सूक्ष्म और अन्तर्दृष्टि के लिए ये लेख अनमोल लेखों की गणना में आते हैं। सत्य का प्रदर्शन इतनी सुबोधता और तर्कपूर्ण रीति से किया गया है कि महाभारत सम्बन्धी अनेक भ्रम स्वतः मिट जाते हैं, और श्रीकृष्ण की नीति जो बहुधा हिन्दू समाज में आलोचना का कारण बनती रही है, एक साथ आलोचना से परे हट कर वास्तविक भारतीय नीति क्या है, इसका प्रदर्शन करती है। 'द्विविध नीति : गृहनीति और परनीति' में स्पष्ट हो जाता है कि परनीति में गृहनीति अपनाने के कारण ही हम अकर्मण्यता और चिरंतन वासना को प्राप्त हुए हैं। पृथक्-पृथक् क्षेत्र में पृथक्-पृथक् नीति अपनाई ही जाती है। अपने घर में जो हम करते हैं, अपने पति, पत्नी, पुत्र, धन से जो व्यवहार हम करते हैं दूसरे की पत्नी, पति, पुत्र, धन से वह व्यवहार तो हम नहीं करते। दैनिक जीवन में हम दो नीति अपनाते हैं, तो राजनीति में दो नीतियाँ क्यों न अपनायी जायगीं? पूर्ण महाभारत का ध्यान न रखकर हम केवल उसके एकरूपक ध्यान रखते हैं और जो एक गृहनीति के रूप में है। महाभारत में परनीति भी पूर्ण रीति से स्पष्ट कर दी गयी है, परन्तु पूरे महाभारत का पाठ न करके हम उसका आंशिक पाठ करते हैं और सब में उसको उतारते हैं। इस पुस्तक में महाभारत की परनीति के भाव स्थान स्थान पर उद्धृत हैं और इतने उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं कि परनीति और गृहनीति का विश्लेषण बहुत सुन्दरता से हो जाता है। पृष्ठ ६५ तथा ६६ पर शत्रु का नाश किस प्रकार करना चाहिये, इसका उपदेश स्वयं भीष्म पितामह शान्तिप्रिय युधिष्ठिर को देते हैं।

इसी प्रकार पृष्ठ ६४ पर अर्जुन युधिष्ठिर को संसार की व्यवहार नीति का दिग्दर्शन कराते हैं।

गृहनीति तथा परनीति में भ्रम के कारण अनर्थ नामक निबन्ध में बड़े सुन्दर ढंग से अश्वत्थामा का प्रसंग आता है और फिर उस प्रसंग का उचित स्पष्टीकरण करना होता है।

इस पुस्तक में से यदि नमूने के अंश उद्धृत करने लगें तो इतने अंश उद्धृत हो जायँगे कि यह समालोचना विस्तृत रूप धारण कर लेगी। फिर, एक आंशिक भाग प्रस्तुत करने का जो दोष होता है, वह भी आ जायगा। प्रत्येक कथन इतने तर्क-संगत रूप से चलता है कि पूरा प्रस्तुत करना आवश्यक है जो किया नहीं जा सकता। अतः संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि राजनीति और समाजनीत में रुचि लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़नी चाहिए। जो व्यवहार-कुशल हैं उनको यह पढ़नी चाहिए नीति समझने के लिये, और जो धार्मिक हैं उनको अपना संतुलन बनाये रखने के लिये कि धर्म की गृहनीति को व्यवहार की परनीति से न उलझायें और सफल प्राणी बनें। और जो देश के कर्णधार हैं उनको तो उसको पढ़ना ही चाहिये जिससे कि वे परनीति को ठीक तरह से समझकर उसे अपना सकें। यह राष्ट्रीय ग्रन्थ एक जीवित ग्रन्थ है, इसकी कथाएँ कपोल-कल्पित नहीं हैं। वे जीवन में उतरने की क्षमता रखती हैं। अतः वे मार्ग-प्रदर्शन करने की भी क्षमता रखती हैं।

पुस्तक की सफलता का कारण मूल लेख तो है ही, बहुत कुछ उसका अनुवाद भी है। सुन्दर, सरस अनुवाद में भावों की जटिलता और भाषा दोष नहीं आया है। ऐसा प्रतीत ही नहीं होता कि अनुवादित पुस्तक पढ़ी जा रही है। शब्दों का प्रवाह बहुत सहज और भाषा नित्य-प्रति के व्यवहार की है। उर्दू शब्दों के प्रयोग के बिना भी, पुस्तक की भाषा जन-साधारण के लिए सुगम है, और संस्कृत के उलझे हुए शब्द कहीं भी नहीं हैं। इतने सुन्दर अनुवाद के लिए अनुवादक को बधाई है।

रावण—(नाटक) लेखक श्री लाल प्रद्युम्नसिंह, प्रकाशक, ज्योति प्रकाशन, घोघर रीवा (म० प्र०)

नाटक की पृष्ठ भूमि में रावण है और रावण ही उस का मुख्य पात्र है, अतः पुस्तक का नाम रावण है। रावण के जीवन की अत्यन्त सहज मनोवैज्ञानिक रूप रेखा स्वाभाविक ढंग से उभरी हैं। किन्तु रावण एक राक्षस था जो अन्य प्राणियों से भिन्न था, इसका भाव इस नाटक को पढ़ कर नहीं रह जाता, वरन् उसके सब कृत्य उसकी महत्त्वाकांक्षा के इतने अनुरूप लगते हैं, संवाद मन के दबे भावों को इतनी सहजता से प्रगट करते हैं कि सीता-हरण, राम युद्ध, कुबेर का वन्दी बनाना, सभी घटनाएँ स्वाभाविक मालूम होती हैं। यही वास्तविकता और सहजता कुंभकरण, विभीषण और सुर्पनखा के चरित्रों में भी आई है। उन्होंने जो भी किया उनका चरित्र इस रूप में उभरता है कि उन चरित्रों से उसी व्यवहार की आशा की जा सकती है। हनूमान के विप्र-रूप में आने के पूर्व विभीषण और उसकी पत्नी का वार्तालाप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वह कथोपकथन छोटा सा है पर उनको जन समुदाय के दूसरे वर्ग में ले जाता है जिनमें बहुत सी इच्छाएँ बनी रहती हैं पर इतनी शक्ति नहीं होती जो उन इच्छाओं की पूर्ति कर सकें। वह सुअवसर की खोज में ही रहता है। इस प्रकार की सहजता के साथ-साथ भी एक ऐतिहासिक चित्रण जो हमारे मनों में जमा हुआ हैं वह भी खंडित नहीं होता, केवल थोड़ा और स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार ये भिन्न-भिन्न चरित्र किसी एक व्यक्ति विशेष के न होकर एक वर्ग के चरित्र हो जाते हैं, और एक प्रकार से ये आधुनिक भूमिका पर भी प्रतिष्ठित हैं। रावण के सहारे आजकल जो प्राणी में रावणत्व व्याप्त है वह भी पटाक्षेप में स्पष्ट हो उठता है। जो अशिव प्रवृत्तियाँ हमारे देश को गलत रास्ते पर विपर्योन्मुख कर रही हैं वे सभी रावणत्व के अन्तर्गत आ जाती हैं। ऐसी प्रवृत्तियों में एक मूल प्रवृत्ति शक्ति या अधिकार की अबाध लालसा है। शक्ति का स्रोत लोकसेवा में है, परन्तु उसे भुलाकर लोग शक्ति के लिये शक्ति की उपासना करते हैं। उनके सम्मुख केवल वैयक्तिक उन्नति का प्रश्न रहता है किसी प्रकार के नैतक अनैविक प्रश्न नहीं रहा करते। लोक हित और सामाजिक उन्नयन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यही वे रावणत्व की प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें लेखक रावण के माध्यम से दर्शाना चाहता है।

भाषा सरल है, कथोपकथन और संवाद स्वाभाविक हैं। नाटक खेला भी जा सकता है। कथोपकथन स्थान-स्थान पर काफी चुभता हुआ है और कहीं भी ऊब पैदा नहीं करते।

अमर काव्य ताशकन्द का शहीद—लेखक राम पुनीत श्रीवास्तव, प्रकाशक लोक संगम प्रकाशन। सी ९।७३ बागबरियार सिंह, वाराणसी—१

इस पद्य पुस्तक में श्री स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री की जीवन कथा है। लेखक उनके सहपाठी हैं। श्री लालबहादुर जी के निधन के पश्चात् लेखक के मन में उथल-पथल थी। वे उनकी जीवन गाथा लिखना चाहते थे परन्तु सोच नहीं पाते थे कि किस रूप मे लिखूँ। इस उलझन का समाधान (लेखक के अनुसार) स्वयम् लालबहादुर शास्त्रीजी ने किया। लेखक का कथन है कि वे दो बार उन्हें स्वप्न में मिले और पद्यमय जीवन गाथा लिखने का केवल आदेश ही नहीं दे गये, वरन् जो भिन्न-भिन्न अध्याय पुस्तक में है उनका नाम भी बता गये!

सहपाठी और लेखक होने के नाते अपने इतने पूज्य मित्र के जीवन पर कुछ लिखने की भावना स्वाभाविक है। साथ ही, निरन्तर उलझन में रहकर और कुछ तय न कर पा सकने की स्थिति में अवचेतन मन का स्वप्न में कुछ समाधान कर लेना भी सम्भव है। परन्तु उसको स्वर्गीय आत्मा की इच्छा और आदेश मान लेना, और यह कल्पना कि स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री ऐसे सरल और विनम्र प्राणी को अपनी मृत्यु के पश्चात् जगत में अपनी कीर्ति गाथा लिखवाने की इच्छा इतनी बलवती होगी कि वे स्वप्न में आदेश देंगे, यह बात कुछ गले के नीचे नहीं उतरती।

पुस्तक में छंदों की विभिन्नता रखी गई है। इससे

एक ही छंद पढ़ने की जो अरुचि सी हो जाया करती है वह अवश्य भंग हो गई है। शास्त्रीजी के जीवन की बहुत सी घटनाएँ और जीवन वृत्तान्त पुस्तक में छंद-बद्ध अवश्य हो गये हैं। उनके जीवन के छोटे-छोटे वृत्तान्त भी आ गये हैं परन्तु जहाँ हृदय की भावुकता का चित्रण आता है वहाँ हृदय को स्पर्श नहीं कर पाते लेखक की सम्भावना असंदिग्ध है। किन्तु काव्य क्षमता ने उनका साथ नही दिया पुस्तक वर्णनात्मक बन कर रह गयी है किन्तु वर्णन समान्यतः अच्छे हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य—लेखक श्री सीताराम शर्मा। प्रकाशक, श्री शिव शकर खोयका, युगबोध प्रकाशन, १।२ शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता—१२। मूल्य ५ रु. पृष्ठ संख्या २०८।

इस पुस्तक मे नव-लेखन की उसमे भी कथा-साहित्य की स्थिति पर विचार किया गया है, पुस्तक के नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता हे। अतः नव-लेखकों की कहानियो का ताना-बाना भली प्रकार बुनकर पुस्तक मे तेयार किया गया है। पुस्तक के 'आत्म प्रकाशन' ने प्रारम्भ मे ही कहा हे कि 'किसी भी पूर्वाग्रह से बँधकर चलनवाला भी किसी नये के प्रति ईमानदार नही रह सकता। ऐसी दशा मे उस 'नये' की मिट्टी तक खराब करने मे वह नही चूकेगा। किन्तु मिट्टी खराब करना उपलब्धि के दायरे का निर्माण नही करता है।' लेखक ने अपने इस कथन को पुस्तक में बड़ी ईमानदारी के साथ निभाया है। अपनी आलोचना बड़ी सतुलित रखी है तथा अपनी सम्मति बनाने मे जिस 'ठहरी हुई बुद्धि' का परिचय दिया है तथा जो सूक्ष्मग्राहिता दिखाई है उसके लिए लेखक अवश्य बधाई का पात्र है। पुस्तक का सबसे बड़ा गुण यही है।

जिन कथाओं और कथाकारो की चर्चा आई है उन सभी की सूची पुस्तक के प्रारम्भ मे दे दी गयी है। पुस्तक के प्रारम्भ में उन सन्दर्भो पर प्रकाश डाला गया है जिन पर नई कहानी लिखी गई हैं। उस चिंतन परम्परा और उन भिन्न-भिन्न कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है जिन्होने नयी कहानी को पिछली कहानी से भिन्न स्तर पर ला खड़ा किया है।

इस पुस्तक की एक और उल्लेखनीय विशेषता है, वह है पुस्तक की भाषा। अच्छी खासी हिन्दी के बीच उर्दू के बदले मुहावरे देखकर पहले आभास होता है कि लेखक भाषा में संकुचित दृष्टिकोण न रखकर उसको विकसित करने की रीति अपना रहा है। जैसे, "आज जिस संक्रान्ति काल से हम गुजर रहे हैं (जब कि खुद अपनी ही रवायतें हमें अपनी नही मालूम होती)।" पर यह रूप बाद में बदल जाता है और मुहावरो के स्थान पर एक-दो उर्दू शब्द आजाते हैं जो मन्त्री हिन्दी के बीच ध्यान तो आकर्षित करते है पर विशेष खटकते नही। परन्तु बाद मे यह उर्दू का स्थान अँग्रेजी ले लेती है, और इस प्रकार का वाक्य मिल जाते हैं—'एडजस्ट न हो पाने की दशा में छटपटाहट स्वाभाविक है।' मूल्यों का स्पेक्ट्रम (Spectrum) इनके लिए काफी धुँधला है। यह स्पेक्ट्रम उन आधारभूत अवस्थाओं से बनता है जो प्रमुख मूल्यों को रूप (form) देती है। अस्तु, जब आधारभूत अवस्थाएँ ही माशाअल्लाह हो तो मूल्य के स्पेक्ट्रम का खुदा ही हाफिज हुआ करता है। "ब्रड किया जाता है"'ब्रूमिन से अपने आपको अलग नही कर सकता।".... आदि आदि लेखक अँगरेजी में सोचकर हिन्दी में लिखता है, की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि लेखक हिन्दी मे अँग्रेजी लिखता है। एक उदाहरण और है 'जब बात प्रेम की अनाटमी से होती हुई डिसेक्शन तक पहुँच जाय तो' यह अँग्रेजी में लिखना नहीं है तो क्या है?

वैसे जहाँ लेखक हिन्दी लिखता है वहाँ भाषा बड़ी चटपटी भी है और पढ़ने में आनन्द देती है।

मनोरंजक संस्मरण

दो नरेशों की गुण-ग्राहकता

समाचार क्या है ? इसे स्पष्ट करने के लिए कहा गया है कि यदि कोई कुत्ता किसी मनुष्य को काट ले तो वह कोई विशेष बात नहीं है। किन्तु यदि कोई मनुष्य किसी कुत्ते को काट खाय, तो वह 'समाचार' है, क्योंकि यह घटना असाधारण है। इसी प्रकार मध्यकाल में कवि तो सामान्यतः राजाओं की प्रशंसा किया ही करते थे, किन्तु दो-एक ऐसे अनोखे गुणग्राही राजा भी हुए जिन्होने कवियों का विशेष सम्मान किया और उनकी प्रशंसा भी की।

संत कवि रीवा निवासी थे और कवि होने के अतिरिक्त अच्छे विद्वान् भी थे। उस समय रीवा में प्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी महाराज रघुराजसिंहजू देव शासन कर रहे थे। संतजी के गुणों से प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें अपने दरबार में आश्रय दिया था, और वे जब तब उन्हें धन भी दिया करते थे। एक बार उनके किसी कार्य से महाराज बड़े प्रसन्न हुए। वे स्वयं कवि थे। उन्होंने सन्तजी की प्रशंसा में यह छन्द बनाया—

साधन साधु के साधि सबै,
करख्यौ रस-रासि जलै रवि सान है।
त्यौं कर आपने सौं बरसाय
कर्यौ जन हीतल सीतल थान है।
श्री रघुराज सनाथ कै केतिक
सिष्य सयान औ हौं हूँ अयान है।
लच्छन लच्छ में दच्छ विचच्छन
संत समान नहीं कवि आन है॥

अपने आश्रयदाता से अपनी यह अनोखी काव्यमयी प्रशंसा सुनकर संतजी चकित रह गये। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि ऐसे गुणग्राही नरेश से धन और जीविका न लेंगे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा आजीवन निवाही।

संत कवि धन प्राप्ति के उद्देश्य से दूसरे राजाओं के दरबारों में जाने लगे। उस समय उत्तर भारत के कई राजा साहित्यप्रेमी थे और कवियों का सम्मान करते थे। उनमें बूंदी के महाराज रामसिंह, दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह, बलरामपुर के महाराज दिग्विजयसिंह उस समय प्रमुख थे। वैसे तो अधिकांश दरबारों में कवियों का मान होता था।

उनकी इन यात्राओं में उनकी बूंदी की प्रथम यात्रा उल्लेखनीय है। बूंदी के महाराज रामसिंह के काव्यप्रेम की प्रशंसा सुनकर वे बूंदी गये। उन दिनों किसी महाराज के पास पहुँचना बड़ा कठिन था। लोग सप्ताहों और महीनों की प्रतीक्षा के बाद महाराज के दर्शन कर पाते थे। बूंदी में यह कठिनाई और अधिक थी, क्योंकि वहांके कुछ प्रभावशाली कवि तथा दरबारी नहीं चाहते थे कि कोई बाहर का कवि या विद्वान् महाराज का कृपापात्र हो जाय। इसलिए वे ऐसा उपाय करते कि बाहरी व्यक्ति प्रतीक्षा से थककर महाराज से बिना मिले ही लौट जाय। संतजी के साथ भी यही चाल चली गयी। कई मास बूंदी में ठहरने पर भी महाराज से उनकी भेंट न हो पायी और वे निराश होकर वहाँसे चल दिये। किन्तु बूंदी से प्रस्थान करते समय उन्होंने एक दोहा लिखकर महाराज के दुर्ग के फाटक पर चिपका दिया। वह दोहा यह था—

सतयुग त्रेता द्वापरहुँ फिरे संत के धाम।
अब कलियुग के संत सों नजर चुरावत राम॥

संयोग से किसी ने महाराज को समाचार दे दिया कि किले के फाटक पर किसीने एक दोहा लिखकर चिपका दिया है और उसे पढ़ने को भीड़ लग जाती है। महाराज को कुतूहल हुआ और उन्होंने स्वयं आकर वह दोहा पढ़ा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि लिखनेवाला उसे चिपका कर अमुक मार्ग पर चला गया है। महाराज चूंकि स्वयं रसज्ञ थे, समझ गये कि संत नाम के किसी कवि ने यह, लिखा है और वह निराश होकर चला गया है। उन्होने तत्काल उन्हें लौटा लाने के लिए सवार भेजे। वे सवारों को मिल तो गये, किन्तु रीवाँ महाराज से प्रशंसित कवि ने सवारों के साथ लौटना अस्वीकार कर दिया। सवार उनसे वहीं रुके रहने की प्रार्थना कर महाराज के पास लौट गये और उन्हें सब बातें बतलायीं। तब महाराज ने उन्हें ससम्मान ले आने के लिए कुछ सरदारों और दरबार के कवियों को भेजा। उनके आग्रह पर वे बूंदी लौट गये। महाराज ने उनका बड़ा सम्मान किया और कई मास अपने पास रखा तथा जब वे चलने लगे तो उन्हें अच्छी विदाई देकर विदा किया।

ये घटनाएँ बतलाती हैं कि मध्यकाल में दरबारी कवियों में भी स्वाभिमानी कवि होते थे, और उस समय कुछ नरेश भी इतने सहृदय और समझदार होते थे कि ऐसे कवियों का यथेष्ट सम्मान करते थे।

दर्शनशास्त्र से लौकिक लाभ (२)

महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा एम० ए० डाक्टर आव लिटरेचर

सभी दार्शनिक इस बात को मानते हैं कि संसार में जितने पदार्थ हैं सबमें कोई एक साधारण तत्व मौजूद है। अर्थात् इस साधारण तत्व को भारतवर्ष के दार्शनिक 'सत्' कहते हैं। इसी सत्ता (सत्-ता) के द्वारा पदार्थों का अस्तित्व माना जाता है। जर्मनी के दार्शनिक इसी को 'Being कहते हैं। वहाँ के दार्शनिकों ने इतने ही से सन्तोष किया। उन्होंने इससे आगे बढ़ने की आवश्यकता ही न समझी। कारण इसका यह था कि उन लोगों को नास्तिकों में अपने दर्शन का प्रचार करना था। अतएव उन लोगों को इसी से सन्तोष हो गया कि सब पदार्थों में एक ऐसा तत्त्व निहित है। जिसका निषेध महानास्तिक भी नहीं कर सकता। इन्द्रियों से जो कुछ मैं देखता हूं उससे अधिक और कुछ भी नहीं है—ऐसा माननेवाले बड़े-बड़े नास्तिक भी इतना अवश्य स्वीकार करेंगे कि 'ये चीजें हैं' और इन सब में सत्ता अवश्य है। ये सब चीजे क्षणिक ही क्यों न हों, जब तक इनके विषय में यह कह सकते हैं कि ये है तब तक यह भी स्वीकार कर सकते है कि इनमें सत-ता है।

ऊपर जो कुछ हमने लिखा उससे सिद्ध है कि संसार के सब पदार्थो मे एक सत्ता है, अतएव इस दृष्टि से वे सब एक हैं। परतु इस सत्ता मूलक एकता का हम लोगों के आचरणों पर प्रभाव नही पड़ सकता। क्योंकि सत्ता की एकता का खयाल सामान्यतः सांसारिक बातों ही के विषय में हम लोगों के चित्त मे उठता है। इससे परलोक सम्बन्धी अनुष्ठानो तथा धर्माचरणो मे इस सत्ता बुद्धि से उतना लाभ हम नही उठा सकते जितना कि उठाना चाहिए। हमारे देश के दार्शनिक इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि दार्शनिक विचारों का प्रभाव जब तक आचरण पर नहीं पड़ता तब तक वे व्यर्थ हैं। इससे इन लोगों ने इस सत्ता के विषय में विचार करके यह स्थित किया कि यह 'सत्ता' चैतन्यमूलक है। साधारण आदमी यह समझते हैं कि चैतन्य केवल मनुष्यों और जानवरों ही में होता है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। जितने पदार्थ इस संसार में हैं सभी में चैतन्य व्याप्त है। इस बात को किसी न किसी ढंग से सब दार्शनिक मानते हैं।

नास्तिक और आस्तिक सभी विज्ञानवादियों का कथन है कि सारे पदार्थों का अस्तित्व विज्ञान रूप से ही है। अर्थात् उनका जितना ज्ञान हम लोगों को होता है उनकी 'सत्यता' या 'अस्तित्व' भी उतना ही है। तात्पर्य यह है कि चैतन्य रूप ही से चीजे 'सत्य' कही जा सकती हैं। अब यह विचार उपस्थित होता है कि यह चैतन्य एक है या अनेक। चैतन्य भाववाचक संज्ञा है। इसी से यह अनेक नहीं हो सकता। जितने चेतन पदार्थ हैं सभी 'चेतनता' गुण एक ही हैं। उसमें बहुत हो ही नहीं सकता। यह बात जब हम लोगों के मन में अच्छी तरह जम जायगी—जब हम यह समझ लेंगे कि मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, पत्थरों इत्यादि सभी पदार्थों में एक ही चैतन्य व्याप्त है तब एक के काम का असर सब पर क्या पड़ेगा। क्योंकि जब एक ही चैतन्य सब में व्याप्त है तब एक के काम का असर सबके ऊपर पड़े बिना नहीं रह सकता। यह संस्कार मन में दृढ़ हो जाने पर हम लोग कोई भी ऐसा काम न करेंगे जिससे दूसरों को किसी प्रकार का दुख पहुँचे। सब मनुष्यों में एक ही चैतन्य वर्तमान है, इस बात का प्रमाण देशान्तरों से एक नये प्रकार से प्राप्त होता है। कुछ दिनों से योरप और अमेरिका में लोग इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि दूसरे आदमी के मन की बात जान लेना संभव है। शुरू में तो लोग इसको निरी ठगविद्या कहते थे। पर अब बड़े-बड़े विद्वान् तक इस पर विश्वास करने लगे हैं। हम लोगों के लिए तो यह कोई नई बात नहीं। जब हममें और आप में एक ही चैतन्य है तब यदि हम

आपकी चित्तवृत्ति को जान लें तो इसमें आश्चर्य ही क्या। पर हम लोग जो उसे नहीं जान लेते उसका कारण उपाधि है। अर्थात् उपाधियों के कारण चैतन्य का शुद्ध प्रकाश नहीं पड़ता। वह प्रकाश मन, शरीर और इन्द्रियों के आच्छादन से ऐसा ढका रहता है कि उसकी स्वाभाविक शक्ति का व्यापार रुक जाता है। इसीसे हम लोग एक दूसरे के हृदयगत भावों को नहीं समझ सकते। पर यदि हम योगाभ्यास या और किसी उपाय से इन उपाधियों का आवरण अपने चैतन्य के अव से हटा दें तो 'निज' और 'पर' का भेद ही न रह जाय फिर जैसी अपनी चित्त-वृत्ति वैसी ही दूसरों के; सब एक सी हो जायेगी। इस दशा में एक दूसरे के मन की वात जान लेना कौन सी बड़ी वात है।

दर्शनिकों के विषय में प्रायः लोगों की राय है कि ये संसार की वास्तिविक दशा को नहीं देखते, केवल कल्पनायें किया करते हैं; इनकी वातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास के योग्य केवल वैज्ञानिक हैं; क्योंकि उनके विचार गवेषणापूर्ण और कल्पना शून्य होते हैं। पर सच तो यह है कि वैज्ञानिकों की भी गवेपणा और विचार दार्शनिकों ही के मार्ग पर धीरे-धीरे चले आ रहे हैं। रसायनशास्त्र के बड़े-बड़े अध्यापकों ने अपनी गवेपणाओं से अब इस वात को सिद्ध कर दिया है कि परमाणुवाद रसायनशास्त्र का परम सिद्धान्त नहीं। रसायनशास्त्र का चिरंतन सिद्धान्त अब सत्य नहीं माना जा सकता। अब तक भी वैज्ञानिकों को इस परमाणुवाद पर पूर्ण विश्वास न था। क्योंकि इसके अनुसार जितने प्रकार के मूल है उतने ही प्रकार के परमाणुओं का मानना आवश्यक था। पर अब वैद्युत यन्त्रों के द्वारा पदार्थों की परीक्षा करके वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में जितने पदार्थ हैं ––स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म, पर्वतों से लेकर परमाणुओं तक––सभी एक मात्र विद्युत के परिणाम हैं। एक एक परमाणु में अनन्त 'विद्युत विन्दु' (electron) व्याप्त हैं। अतएव अब विज्ञानशास्त्र का भी यह सिद्धान्त हुआ कि समस्त जगत का मूल तत्त्व, नाना प्रकार के गुणवाला, परमाणु नहीं है, किन्तु एक मात्र विद्युत है। अर्थात् जगत एक ही तत्त्व का परिणाम है। विद्युत क्या है इसका विचार अब हो ही रहा है। अब तक लोग इतना ही कह सकते हैं कि यह एक प्रकार की शक्ति है। इस दशा में यह आशा करना अधिक नहीं कि वैज्ञानिक लोग यदि अपने विचारों को इसी तरह सूक्ष्म करते जायेंगे तो उन्हें शीघ्र ही इस वात को मानना पड़ेगा कि जिस समस्त-जगद्व्यापक तत्त्व को वे 'विद्युत्' कहते हैं वह और कोई 'शक्ति' नहीं है; वह केवल वही 'चित्' शक्ति है, जिसको भारतवर्ष के ऋषियों ने हजारों वरस से जगत् का मूलतत्त्व मान रक्खा है।

वैज्ञानिकों की दृष्टि इस ओर आकर्पित करने में अग्रगण्य, हमारे देश के रत्न, अध्यापक जगदीशचन्द्र वसु हैं। कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज की विज्ञानशाला में जो उनकी गवेपणायें जारी हैं उनसे उन्होंने निम्नलिखित सिद्धान्तों को निर्णीत कर दिया है :–

(१) जितने पदार्थ हैं—जीव, शरीर, वृक्ष, पत्थर इत्यादि––सबमें वैद्युत प्रक्रिया एक ही प्रकार की चलती है।

(२) जितनी वैद्युत प्रक्रियायें पदार्थों में होती हैं उनका कारण जड़ शक्ति नहीं, किन्तु कोई ऐसी शक्ति है जो सनातन, नित्य, अपरिवर्तनशील और सर्वत्र एक रूप से व्याप्त है।

पाठक अब विचार कर सकते हैं कि इसी नित्यादि-विशेषण-विशिष्ट शक्ति को हमारे वेदान्त शास्त्र ने 'चित-शक्ति' कहा है।

सारांश यह कि सारे जगत में एक ही मूलतत्त्व व्याप्त है। इस दार्शनिक सिद्धान्त का पोषण अब विज्ञान-शास्त्र के द्वारा भी हो रहा है। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञा-निक अब उन्हीं-वाक्यों को मानने लगे हैं। जिनकी घोपणा इस पवित्र भूमि पर अनादि काल से ऋषियों के द्वारा होती आई है। वह घोषणा है :—'एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ति' एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म' इत्यादि।

अब प्रश्न यह है कि यदि चैतन्य सर्वत्र व्याप्त है तो फिर भेद कहाँ से आया। सांसारिक अवस्था में तो भेद अवश्य ही है, इसको सभी मानते भी है। सुनिए :—

शास्त्रों में लिखा कि चैतन्य स्वरूप ब्रह्म ने जो अपने ऊपर उपाधियाँ की हैं उन्हीं उपाधियों के कारण भेद-भाव उत्पन्न होता है। एक ही चैतन्य अनेक रूप में प्रतिभाषित होने लगता है। अनन्त शक्तिमान ब्रह्म को उपाधियों की आवश्यकता का कारण यह है कि विना उपाधियों के चैतन्य की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती, जब तक चैतन्य

निरुपाधि और निर्विकार है तब तक अवाँमनसगोचर भी है और एक भी है। और सकलेन्द्रियगम्य और मनोमात्र पदार्थों ही की समष्टि का नाम संसार है। इससे संसार-दशा में अपने को अभिव्यक्त करने के लिए चैतन्य को उपाधियों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे जब खनिज धातुओं की उत्पत्ति उपस्थित होती है, अर्थात् जब स्वप्रकाश परम चैतन्य अपने को उन धातुओं के नाम-रूप-द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है तब वह अपने ऊपर उसी नामरूप उपाधि को धारण करता है। जब वृक्ष-रूप में अपने को आविर्भूत करना चाहता है तब वृक्ष-रूप उपाधि से अपने को उपहित करता है। और जब किसी जन्तु के शरीर में अपने को अभिव्याप्त किया चाहता है तब उस जन्तु का शरीर धारण करता है। कारण इसका यह है कि जिस अवस्था में जिस पदार्थ का प्राधान्य रहता है उस अवस्था में अपने को अभिव्यक्त करने के लिए परमात्मा को उसी पदार्थ की उपाधि अपेक्षित होती है। निराकार और निरुपाधि अभिव्यक्ति सर्वथा असंभव है। इसी तरह परमार्थतः भेद शून्य होने पर भी चैतन्य, ससार दशा में, भेदों से आच्छन्न ही प्रतिभापित होता है। जब तक जिस दशा में उसको अपनी अभिव्यक्ति अभीष्ट इष्ट है तब तक उसे उसी दशा के अनुकूल नाना उपाधियों से अपने को परिछिन्न करना पड़ता है।

चैतन्य को अपनी अभिव्यक्ति क्यों है और क्यों आरंभ होती है, यह प्रश्न उन अभिप्रश्नो में से है जिनका किसी प्रकार की उत्तर असभव हैं। उपनिपदों में कहा है 'तदैच्छत् बहु स्याम्' अर्थात् परब्रह्म की इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक को जाऊँ। यह ब्रह्म का एक से अनेक होना संसार का आरंभ है। सर्वथा निरीह ब्रह्म को यह इच्छा क्यों हुई, इसका समाधान शास्त्रों में यह लिखा है कि संसार चक्र अनन्त है। सृष्टि-प्रलय, प्रलय-सृष्टि यह चक्र अनादि अनन्त है। प्रलयानन्तर-सृष्टि में जो ब्रह्म की इच्छा कारण होती है उस इच्छा का उद्बोधक आगामी संसार में आने वाले जीवों का अदृष्ट ही माना गया है। इस संसार में आये हुए जीवों के अदृष्टानुसार, सुख दुख भोग के हेतु, जितने पदार्थ अपेक्षित होंगे उतने पदार्थों का होना आवश्यक है। इससे जिन शरीरों की, जिन इन्द्रियों की, जिन विषयों की अपेक्षा उक्त भोग के लिए होगी उन शरीरादि के रूप से ब्रह्म की अभिव्यक्ति आवश्यक होती है। इसी प्राकृतिक आवश्यकतानुसार ब्रह्म अपने ऊपर नानात्व और तत्कारिणीभूत उपाधियों को धारण करता है। इसके विरुद्ध कुछ लोगों की यह शंका होती है कि एक बार जब संसार चक्र प्रवृत्त हो गया तब तो उक्त क्रम ठीक चल सकता है। पर जो सृष्टि प्रथम हुई उस समय तो किसी जीव का अदृष्ट न था, फिर ब्रह्म की नानात्व-संबंधिनी इच्छा का उद्बोधक क्या हो सकता था? पर ऐसी शंका करनेवाले यह भूल जाते हैं कि शास्त्रों के अनुसार "प्रथम-सृष्टि" सर्वथा अप्रसिद्ध है। जैसा पहले कह आये हैं सृष्टि प्रलय चक्र अनादि और अनन्त है। शास्त्रों में इसका दृष्टान्त बीजांकुर कहा गया है। जैसे पहले बीज हुआ या अंकुर, इसका निर्धारण नहीं हो सकता उसी तरह पहले जीवों का कर्म्म हुआ या तदनुसार सृष्टि, इसका निश्चय नहीं हो सकता। दोनों की प्रकृति अनादि-अनन्त चक्रवत होती है।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारा धार्मिक साहित्य

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य बीस रुपये।

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ७ रु०।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८·०० रुपये।

यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ. १९५० सजिल्द प्रति का मू. १४·००

मैनेजर,
बुकडिपो,
इंडियन प्रेस
(पब्लिकेशंस)
प्राइवेट
लिमिटेड,
इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0.65 Paise April 1969 SARASWATI—Reg. No. L. 242

सरस्वती
मार्च १९६९

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूल वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २ ५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूल वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएं—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ३·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रैडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार रॉबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले मातापिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Statement about ownership and other particulars about newspaper (Saraswati) published by the Indian Press (Publications) Private Ltd. Allahabad.

FORM IV

(See Rule 8)

1.	Place of Publication.	Allahabad.
2.	Periodicity of its publication.	Monthly.
3.	Printer's Name	Shri P. L. Yadav.
	Nationality	Indian.
	Address	Indian Press Private Ltd. 36, Pannalal Road, Allahabad.
4.	Publisher's Name	Shri B. N. Mathur. Supdt.
	Nationality	Indian.
	Address	Indian Press (Pubs) Private Ltd. 36, Pannalal Road, Allahabad.
5.	Editor's Name	(i) Pt. Sri Narain Chaturvedi: (ii) Shrimati Sheela Sharma.
	Nationality	Indian.
	Address	(i) 53, Khurshed Bagh, (Vishnupuri) Lucknow (ii) Commissioner's Resi dence Agra
6.	Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	1. Shri H. P. Ghosh 2. Shri D. P. Ghosh 3. Shri R. Ghosh 4. Shri S. P. Ghosh 5. Shri K. K. Ghosh 6. Shri S. K. Ghosh 7. Shri P. K. Ghosh — 6, Malaviya Road, Allahabad. 8. Shri N. N. Mukherjee — 21, „

I, B. N. Mathur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated 1-3-1969.

(Sd.) B. N. Mathur,
Signature of Publisher

|| ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ||

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज का प्रत्येक उपन्यास स्वत: पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का सूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न
२२ स्वप्न का मदान्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ भ्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर बन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

दो काव्य-पुष्प

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्दविभोर हो उठेंगे।

मूल्य तीन रुपये।

श्री देवेन्द्रजी हिन्दी-साहित्य के लब्ध-ख्याति कवि हैं। अन्तस्तल को कोमलतम अनुभूतियों एवं प्रकृति के मर्मस्पर्शी चित्रों की सफल व्यंजना उनकी अमर कृति 'रजनीगंधा' के माध्यम से हुई है। इसकी कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।

श्री देवेन्द्रजी की दूसरी अमर कृति अन्तर्ध्वनि भी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें कवि सफल चित्रकार की भाँति रागात्मक कल्पना की तूलिका से चित्र खींचकर असीम एवं चिरन्तन सौन्दर्य के मधुर स्पन्दनों का अनुभव कराता है।

हिन्दी साहित्य की अनुपम देन के रूप में प्रस्तुत श्री देवेन्द्रजी की 'रजनीगंधा' तथा 'अन्तर्ध्वनि' का रसास्वादन करना हिन्दी प्रेमियों के लिए समीचीन है। मूल्य तीन रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

विषय-सूची

गत मास राष्ट्रपति ने दिल्ली में ग़ालिब शती समारोह का उद्घाटन किया। वे उद्घाटन भाषण दे रहे हैं। उनके दाहिने समारोह समिति के अध्यक्ष श्री फखरुद्दीन अली अहमद और बाईं ओर शिक्षा-मंत्री श्री राव तथा दिल्ली के उपराज्यपाल श्री आदित्यनाथ झा बैठे हैं। पृष्ठभूमि में कवि ग़ालिब का चित्र है।
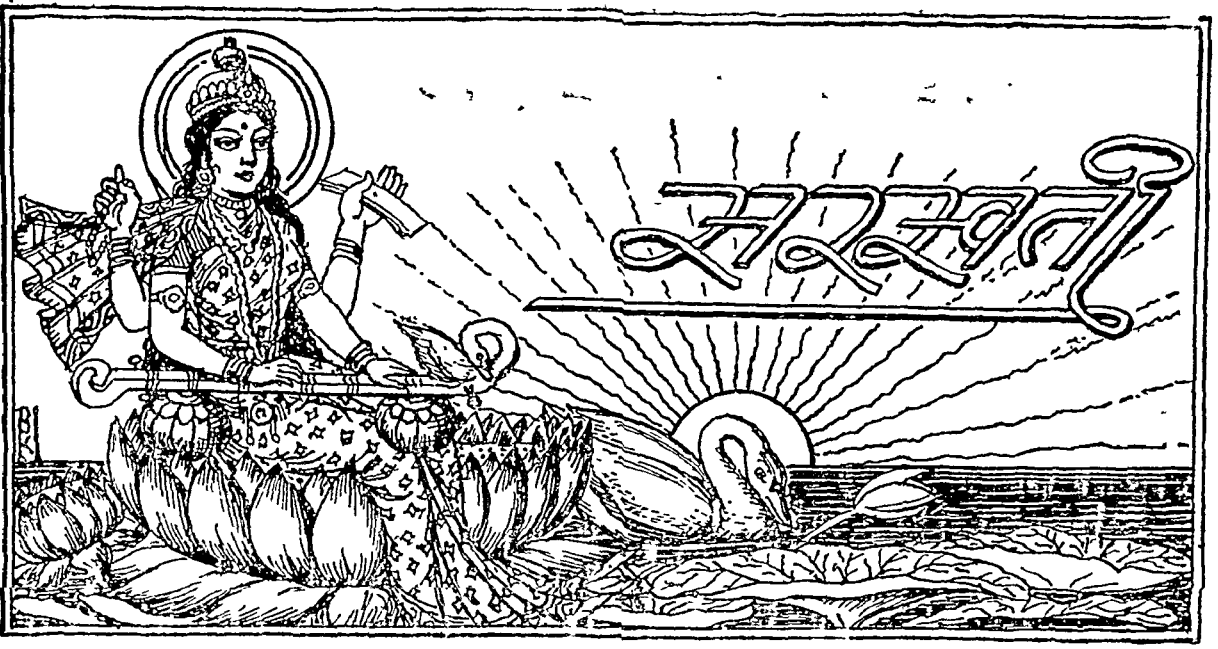
सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७० पूर्ण संख्या ८३१ | इलाहाबाद : मार्च १९६९ : चैत्र २०२६ वि० | खण्ड १ संख्या ३

सम्पादकीय

श्री वृन्दावनलाल वर्मा—अभी हिन्दी संसार डा० सम्पूर्णानन्द, श्री रामचन्द्र वर्मा और श्री ब्रजकिशोर नारायण के वियोग के दुःख को भूल भी न पाया था कि सहसा हृदय की गति रुक जाने से गत मास हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू वृन्दावनलाल भी चले गये।

वर्माजी हिन्दी संसार में एक व्यक्ति न होकर एक संस्था बन गये थे। बहुत कम लोगों को हिन्दी की सेवा इतने दीर्घकाल तक करने का अवसर मिला, जितना वर्माजी को। साहित्य संसार में उन्होंने कहानी लेखक के रूप में प्रवेश किया। वे हिन्दी के आरम्भिक कहानी-लेखकों में थे। उनकी पहिली कहानी 'सरस्वती' सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी जब कि गुलेरीजी की पहिली कहानी 'उसने कहा था' और प्रेमचन्दजी की पहली हिन्दी कहानी 'सौत' सरस्वती में १९१५ में प्रकाशित हुईं। इस प्रकार उन्होंने कथा साहित्य में १९०९ में प्रवेश किया, और वे अपनी मृत्यु तक—१९६९ तक, पूरे साठ वर्ष हिन्दी की अनवरत सेवा करते रहे। कहानी-लेखन से उन्होंने आरम्भ अवश्य किया, किन्तु जो कुछ वे कहना चाहते थे उसके लिए कहानी का माध्यम उन्हें उपयुक्त न मालूम हुआ। इसलिए वे उपन्यास लेखन की ओर उन्मुख हुए।

हिन्दी में तिलस्मी उपन्यासों के बाद किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि ने कुछ सामाजिक उपन्यास अवश्य लिखे थे, किन्तु वास्तव में हिन्दी में उपन्यासों का युग मुंशी प्रेमचंद के उन उपन्यासों से आरम्भ हुआ जिनमें जनता के सुखदुख का चित्रण होता था। प्रायः उन्हींके साथ वृन्दावनलालजी ने ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा आरंभ की। इतिहास उनका प्रिय विषय था, यह इस बात से भी स्पष्ट है कि उनकी पहिली कहानी भी ऐतिहासिक थी। उनका

'गढ़ कुण्डार' नामक वृहद् उपन्यास हिन्दी का पहला सफल ऐतिहासिक उपन्यास था। उसने हिन्दी में एक नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया और एक नई परम्परा को जन्म दिया। उसने हिन्दी जगत् में वर्माजी को सफल उपन्यासक र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उसके बाद उन्होंने अपनी सारी शक्ति उपन्यासों के लिखने में लगा दी और एक दर्जन से अधिक श्रेष्ठ उपन्यास हिन्दी संसार को भेंट किये। उनमें कुंडली चक्र, विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी, कचनार, मुसाहवजू, अचल मेरा सुहाग, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि बहुत लोकप्रिय हुए। मृगनयनी तो इतनी लोकप्रिय हुई कि अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातकीय स्तर पर पाठ्यपुस्तक निर्धारित की गयी।

उन्हें बुन्देलखण्ड से अत्यन्त प्रेम था। उन्होंने देखा कि उसके अतीत का गौरव भुला दिया गया है। उन्होने अपनी जादू की लेखनी से बुन्देलखण्ड के इतिहास के विभिन्न युगों के जीते-जागते चित्र प्रस्तुत किये जो पाठकों को उन युगों का यथार्थ परिचय कराते हैं। अपने उपन्यासों को सजीव और यथाथ बनाने के लिए वे अथक परिश्रम करते थे। वैसे तो सारा बुन्देलखण्ड उनका देखा हुआ था, किन्तु जब वे किसी उपन्यास के कथानक के लिए कोई विशेष क्षेत्र चुनते तो महीनों घूम-घूमकर उसका निरीक्षण करते, और साथ ही तत्कालीन इतिहास के लिए उपलब्ध पुस्तकों, कथाओं, किम्वदन्तियों का संग्रह करके उनका अध्ययन करते, बाद मे तो इतिहास के प्रति ईमानदार रहने की उनकी प्रवृति इतनी बढ़ गयी थी कि वे जिस विषय पर लिखने का निश्चय करते उस पर पूरी शोध ही कर डालते थे और कभी-कभी भूल जाते थे कि मैं इतिहास नहीं, उपन्यास लिख रहा हूँ।

उनके उपन्यासों की मनोरंजकता और सफलता का रहस्य इस बात में है कि उनमें बुन्देलखण्ड की धरती की सोंधी महक है। उनको पढ़ते समय हम अपने को अतीत मे पाते है और तत्कालीन समाज का चित्र हमारे मानसपटल पर सिनेमा के फिल्म की तरह घूम जाता है। उनकी कथा में अबाध प्रवाह होता है। अपने अतीत के प्रति रुचि उत्पन्न करने में बंगला भाषा में जो काम डी० एल० राय ने ऐतिहासिक नाटक लिखकर किया, वही काम हिन्दी में वर्माजी न अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा किया।

वे कोरे साहित्यकार न थे। उन्होने बहुत दिनों वकालत की और सफल वकील रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने खेती में भी बड़ी रुचि ली। उन्होने एक बड़ा कृषि फार्म बनवाया था जिसकी देखरेख वे स्वयं करते थे। उन्हें कृषकों की समस्याओं और उनके बहुमुखी सुधार में बड़ी रुचि थी। इसीलिए वे आरंभ ही से सहकारी आंदोलन से सम्बद्ध थे और जिले के सहकारी बेंक के संचालकों में रहे। उन्हें शिकार का शौक था और वे बड़े अच्छे शिकारी थे। उन्हें राजनीति में भी दिलचस्पी थी, और स्वतन्त्रता संग्राम मे तथा कांग्रेस के आन्दोलनों मे वे सक्रिय भाग लेते थे। क्रातिकारियों से भी उनकी सहानुभूति थी, और कितनी ही बार उन्होंने उन्हे प्र[illegible]य दिया था। इस प्रकार उनका जीवन कोरा साहित्यिक और एकांगी नहीं था। वह बहुमुखी था। उनका अनुभव विस्तृत था और इसीलिए उनके उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के इतने सुन्दर और सफल सम्मिश्रण की छटा मिलती है।

वर्माजी के उपन्यास ही नही, [illegible] स्वयं भी बड़े लोकप्रिय थे। उनमें साहित्य और जनता के लिए अगाध प्रेम था। इसीलिए उनकी दीर्घकालीन सेवाओं और उनके महत्त्वपूर्ण कार्य को लोगों ने हृदय से सराहा। हिन्दी संसार में शायद ही कोई सम्मान या पुरस्कार हो जिसके वे पात्र हों और वह उन्हें न मिला हो। साहित्य सम्मेलन ने उन्हें हिन्दी के सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य वाचस्पति' से, और भारत-सरकार ने 'पद्मभूषण' के अलकरण से सम्मानित किया था। आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें सम्मानार्थ डी० लिट्० की उपाधि दी थी। सोवियत भूमि का पुरस्कार भी उन्हें दिया गया था। उनकी 'झाँसी की रानी' तथा कई उपन्यासों का रूसी भाषा में अनुवाद कराकर इसके साहित्य प्रकाशन विभाग ने साहित्यकार के रूप में उन्हे मान्यता दी थी। उनकी पुस्तकों के अनुवाद रूस में बहुप्रशंसित और लोकप्रिय रहे और उनके कई संस्करण हुए।

यों तो इस देश में अस्सी वर्ष की आयु अच्छी आयु समझी जाती है, किन्तु वर्माजी का शरीर इतना कसरती और स्वस्थ था कि वे साठ वर्ष से अधिक के न मालूम होते थे। वे स्वय कहा करते थे कि मैं ७५ वर्ष का जवान हूँ। इसलिए हमें आशा थी कि वे अभी बहुत दिनों हमारे बीच रहेंगे और हिन्दी की सेवा ही नही करते रहेंगे प्रत्युत नये साहित्यकारों को प्रेरणा और मार्गदर्शन भी देते रहेंगे। वे बराबर डंड-बैठक किया करते थे क्योंकि उन्हें कसरत-कुश्ती का बड़ा

शौक था। वे अपना स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए उसे आवश्यक समझते थे, किंतु शायद उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि वय की वृद्धि होने पर उतना व्यायाम नहीं किया जा सकता जितना जवानी में। वाग्भट ने व्यायाम के सम्बन्ध में लिखा है—'वृद्ध जीर्णोच तं त्यजेत्'। शायद इसी 'अति' व्यायाम के कारण उनका हृदय उस परिश्रम को सहन न कर सका और कमजोर हो गया था। गत मास की दो तारीख को उनकी सबसे छोटी पुत्री का विवाह था। उन्होंने उसमें सम्मिलित होने के लिए मुझसे आग्रह किया था। हमें अपार खेद है कि हम उसमें नहीं पहुँच सके और उनके अंतिम दर्शन न कर सके।

उन्होंने जितने दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा की, उतनी शायद ही और किसी ने की हो। उन्होंने उच्चकोटि के अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी को समृद्ध किया। उपन्यासकार और शैलीकार के रूप में वे हिंदी में अमर रहेंगे। वे हमारे पुराने मित्र थे। हमारा उनका एक सम्बंध और था। हम 'सरस्वती' के सम्पादक हैं और उन्होने अपना साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' में आरम्भ किया था तथा वे उसके सबसे पुराने और वरिष्ठ जीवित लेखक थे। इन सब कारणों से उनके स्वर्गवास से हमें व्यक्तिगतरूप से जो दुःख हुआ है उसे व्यक्त करना कठिन है। हिन्दी की तो अपूरणीय क्षति हुई है। उनका यशः शरीर अमर है। 'सरस्वती' हिन्दी के अमर उपन्यासकार श्री वृन्दावनलालजी वर्मा के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

राजधानी एक्सप्रेस—बहु-चर्चित और बहु-विज्ञापित 'राजधानी एक्सप्रेस' दिल्ली और हावड़ा के बीच चलने लगी। यह इन दोनों स्थानों के बीच की १४४५ किलोमीटर की दूरी १७ घंटे और २० मिनटों में तै करती है। अभी इस लाइन पर सबसे तीव्रगति से चलनेवाली हावड़ा-कालका मेल इस अन्तर को २४ घंटे ५ मिनट में तै करती है, इस प्रकार दो राजधानियों (कैपिटल्स) कलकत्ता और दिल्ली के "कैपिटलिस्टों" को इस यात्रा में ६ घंटे ४५ मिनट की बचत होगी। इसमें यात्रियों की संख्या सीमित है, प्रायः २५० यात्री इसमें यात्रा कर सकते हैं। इसमें संगीत, सिनेमा, भोजन, चाय, काफी आदि का प्रबन्ध है। यह भारतीय रेलों की क्षमता का प्रदर्शन है। इसके लिए विशेष प्रकार के डब्बे बनाये गये हैं। वे वातानुकूलित हैं। भारत में "ऐश-ओ-आराम" के साथ यात्रा करनी हो तो इसमें करें।

इस गाड़ी से यह प्रमाणित हो गया कि रेलवे अधिकारी यदि चाहें तो उनमें इतनी क्षमता है कि वे गाड़ियों को तेज़ चला सकते हैं। किन्तु उन्होंने अपनी इस क्षमता का उपयोग देश की जनता को राहत देने में कितना किया? क्या इधर ३०-४०वर्षों में रेलें तेज चलने लगी हैं? कुछ गाड़ियाँ जो राजधानियों को जाती हैं, अवश्य कुछ तेज हो गयी हैं, किन्तु अधिकांश गाड़ियों में कोई दृष्टव्य परिवर्तन नहीं हुआ। सन् १९२७ का रेलवे टाइम टेबिल हमारे हाथ लग गया। हमने बिना किसी क्रम से कुछ सवारी (पैसेंजर), एक्सप्रेस और डाकगाड़ियों के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थानों पर पहुँचने और छूटने के समय देखे और उनकी आज की समय सारिणी से तुलना की, उनके कुछ उदाहरण ये हैं:

१९२७	पै०	शिकोहाबाद	छू०	५·४५	फर्रुखाबाद	प०	९·२८	६६ मील	३	घंटे	४३	मि०
१९६९	पै०	,,	,,	७·००	,,	,,	१०·४५	,,	३	,,	४५	,,
१९२७	पै०	,,	,,	२१·००	,,	,,	०·०७	,,	३	,,	२७	,,
१९६९	पै०	,,	,,	१९·५०	,,	,,	२३·३५	,,	३	,,	४५	,,
१९२७	पै०	इलाहाबाद	,,	६·२०	टूंडला	,,	२०·०९	२६३	१३	,,	४९	,,
१९६९	पै०	,,	,,	६·३५	,,	,,	२०·४५	,,	१४	,,	२०	,,
१९२७	पै०	,,	,,	७·४५	जबलपुर	,,	१९·१०	२२९	११	,,	२५	,,
१९६९	पै०	,,	,,	१६·४५	,,	,,	६·००	,,	१३	,,	१५	,,
१९२७	पै०	,,	,,	१६·४५	जंघई	,,	१८·३२	३७	१	,,	४७	,,
१९६९	पै०	,,	,,	१६·३५	,,	,,	१८·३०	,,	१	,,	५५	,,
१९२७	पै०	लखनऊ	,,	१६·१५	झाँसी	,,	२·२२	१८२	१०	,,	०७	,,

१९६९	पै०	;,	,,	२१·१५	,,	,,	६·००	,,	८	;,	४५	;,
१९२७	पै०	अहमदाबाद	,,	२१·२५	अजमेर	,,	१६·५५	३०५	१९	,,	३०	,,
१९६९	पै०	,,	,,	२३·००	,,	,,	१९·५५	"	२०	"	५५	"

इन नमूनों से स्पष्ट है कि उन गाड़ियों में, जिनमें हमारी अधिकांश जनता यात्रा करती है, इन ४२ वर्षों में क्या उन्नति हुई है। इन ४२ वर्षों में अधिक शक्तिशाली और उन्नत इंजिन लिये गये हैं, भारी पटरियाँ लगाई गई हैं तथा अन्य सुधार हुए हैं किन्तु आज भी जनता को अधिक तेज गाड़ियाँ नहीं मिलीं। अब देखना है कि "तेज" गाड़ियों जैसे डाक और एक्सप्रेस गाड़ियों से क्या सुधार हुआ है। कुछ नमूने देखिए—

१९२७	मेल	लखनऊ	छू०	१०·१५	झाँसी	प०	१७·००	१८२	६	,,	४०	,,
१९६९	मेल	,,	,,	७·३०	,,	,,	१४·१०	,,	६	घंटे	४०	,,
१९२७	मेल	हावड़ा	,,	१५·१६	बम्बई	,,	७·००	,,	३९	,,	४४	,,
१९६९	मेल	,,	,,	१९·४५	,,	,,	११·२५	,,	३९	,,	४५	मि०
१९२७	मेल	दिल्ली	,,	३·३७	मुगलसराय	,,	१६·३१	४८४	१२	,,	५४	;,
१९६९	मेल	,,	,,	८·००	"	"	२०·५५	"	१२	"	५५	"

यह प्रसिद्ध हावड़ा कालका मेल है जो १९२७ में पटना होकर जाती थी। अब वह गया होकर जाती है। इसलिए उसे अब मुगलसराय और हावड़ा के बीच मे २ घटे ३२ मिनिट कम चलना पड़ता है। इनकी पुष्टि वर्तमान पंजाब मेल (नं० ६ जो पटना होकर जाती है) और कालका मेल (नं० २ जो गया होकर जाती है) के उन समयों से किया जा सकता है जो वे मुगलसराय और हावड़ा के बीच लेती हैं। वास्तव में १९२७ में जितना समय कालका मेल दिल्ली और हावड़ा के बीच लेती थी। प्रायः उतना ही आज १९६९ मे भी लेती है। वास्तविक अन्तर केवल ७ मिनिट का है जो इसकी दूरी (९०२ मील) देखते हुए नगण्य है। फिर भी एक्सप्रेसो और डाकगाड़ियो मे इस बीच कही-कहीं वास्तविक प्रगति हुई है। उदाहरण के लिए:-

१९२७	मेल	लखनऊ	छू०	११·६	गोरखपुर	प०	१९·२०	१७२	८	घंटे	१४	मि०
१९६९	मेल	"	"	९·१५	"	"	१५·१०	"	५	"	५५	"
१९२७	मेल	दिल्ली	,,	२०·२	अहमदाबाद	"	८·५५	५३९	३६	"	५३	"
१९६९	मेल	"	"	२२·१०	"	"	५·००	५३९	३०	"	५०	"

किन्तु वास्तव में रेलवे यात्रा में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ, सिवाय इसके कि तीसरे दर्जे के डिब्बों में पंखे लगा दिये गये हैं। पर अब कितनी ही सवारी गाड़ियों में रोशनी नही रहती और यदि रहती भी है तो रोती सी। भीड़ के कारण कभी-कभी तो खड़े होने की भी जगह नहीं मिलती, इन ४२ वर्षों में वेतन वेतहाशा बढ़े हैं, अधिक कागजी योग्यता के कर्मचारी लिये जाने लगे हैं, अफसरों को संख्या में खूब वृद्धि हुई है। किन्तु रेलों में जो उन्नति हुई है वह ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट है। करोड़ों रुपया लगा कर एक प्रदर्शनीय तेज गाड़ी चला देने से जनता संतुष्ट नहीं हो सकती। समाजवाद का नारा लगानेवाली सरकार की रेलों मे अभी भी वर्ग-भेद है। इस विलासितापूर्ण रेल को चलाकर विषमता और तीव्र कर दी गयी है। धनिकों को सुख सुविधा देने मे रेल के अधिकारी जितने तत्पर रहते है यदि उसका एक अंश भी जनता को राहत देने में वे ध्यान देते तो इन ४२ वर्षों में जनता द्वारा प्रयुक्त होनेवाली सवारी गाड़ियों की यह दुर्दशा न होती। आज से ४२ वर्ष पूर्व कम से कम इतना तो निश्चय था कि गाड़ी समय से छूटेगी और निर्धारित समय पर पहुँचेगी। किन्तु आज सवारी गाड़ियों में चलनेवाले भुक्तभोगी ही जानते हैं कि समय सारिणी में दिये रेलों का समय पर पहुँचाने का वचन माशूक के वादे से अधिक मूल्यवान नहीं है। और इस बीच किराये में जो अंधाधुन्ध वृद्धि हुई है उसकी चर्चा करना व्यर्थ है।

बम्बई के दंगे—पाठकों ने समाचार-पत्रों में बम्बई के

दंगों का हाल पढ़ा होगा। अधिकांश लोग इनका उत्तरदायित्व शिवसेना पर रखते हैं। किन्तु शिवसेना, गोपाल सेना आदि रोग नहीं, रोग के लक्षण हैं। स्वतन्त्रोत्तर भारत में हमारे नेताओं ने प्रत्येक अल्प वर्ग को वह चाहे भाषायी वर्ग हो, चाहे धार्मिक वर्ग हो, चाहे संस्कृति का वर्ग हो—अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया और उन्हें प्रोत्साहन दिया। अतएव हमारे देश में लोगों का दृष्टिकोण संकुचित हो गया और उन्होंने समग्र देश की दृष्टि से समस्याओं को देखना छोड़ दिया। संकुचित स्वार्थों ही की ओर उनका ध्यान रह गया। 'अनेकता में एकता' हमारा नारा था किन्तु हम 'अनेकता' ही में अटक कर रह गये। 'अनेकताओं' पर इतना जोर दिया और उनकी चाशनियों को इतना कड़ा बना दिया कि वे ठोस हो गयीं और एक दूसरे से मिलने के योग्य न रहीं। अब उन्हें मिलाकर एक करने का उपाय यही है कि उनको चूर्ण करके उनसे एक नौरतनी चूरन बनाया जाय। किन्तु कड़ी वस्तु को चूर्ण करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। क्या आज हमारी सरकार या राष्ट्र में इन तत्त्वों को चूर्ण करने की शक्ति है ? यदि आज नहीं है, और यदि हम समग्र देश को एक बनाये रखना चाहते हैं तो हमें यह शक्ति उत्पन्न करनी होगी।

शिव सेवा ने महाराष्ट्र-मैसूर सीमा विवाद को लेकर हड़ताल आरम्भ अवश्य की, किन्तु जैसा कि ऐसी स्थिति में सामान्यतः होता है, गुण्डों और असामाजिक तत्त्वों की वन आयी। ये तत्त्व आदर्श-निरपेक्ष होते हैं। उन्हें शिवसेना या किसी सेना के आदर्शों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। गड़बड़ी का लाभ उठाकर अपना लाभ करना उनका एक मात्र उद्देश्य होता है। बम्बई की सरकार को आशंका न थी कि यह हड़ताल भयंकर दंगों का रूप ले लेगी। वम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में तो आजकल हड़तालें आये दिन होती ही रहती हैं। इसलिए आरम्भ में वह लोगों की ठीक ढंग से रक्षा न कर सकी बाद में जब उसने स्थिति की गंभीरता का अनुभव किया तब उसने दंगों का कड़ाई से दमन किया। उन दंगों के सम्बन्ध में एक समझदार उत्तरदायी व्यक्ति ने अपने निजी पत्र में लिखा—"अब बम्बई में शान्ति है। किन्तु जो कुछ भी हुआ वह भयानक और लोमहर्षक था। शासन, नेतृत्व और पुलिस की गैर-जिम्मेदारी ही इसमें दोषी है। सारा बम्बई अनाथ सा प्रतीत हुआ। यहाँ कोई भी कुछ भी कर सकता है।.......खुले आम बसें, कारें, टैक्सियाँ और नगर वाहन जलाए गये ! सड़कों की विद्युत् व्यवस्था और यातायात व्यवस्था भंग कर दी गयी। ट्रेनें जलाई गईं। सभी पार्टियाँ और सम्प्रदाय मौन ! इससे लगता है कि आज बम्बई, तो कल समूचा देश ध्वस्त किया जा सकता है। 'स्व-ग्रस्त' नेतृत्व में जन जीवन अनाथ है।.......इसका दोष किसी सेना-विशेष को न दिया जाकर सत्ता को दिया जाना चाहिए क्योंकि अदूरदर्शिता मुख्य कारण है।" यह एक ऐसे सामान्य बम्बई प्रवासी नागरिक की व्यक्तिगत प्रक्रिया है जो न महाराष्ट्रीय है और न दक्षिण भारतीय, और जो राजनीति से कोसों दूर है। सरकार को सदैव सजग रहना चाहिए, और विशेषकर उस अवस्था में जब उसे मालूम हो कि भावनात्मक स्थिति असामान्य है। ऐसी परिस्थिति में सामान्यतः सरकारें असंतोष का वास्तविक कारण ढूंढ़ने और उसका निराकरण न करके 'कुछ' करने के लिए ऊपरी और सतही कड़ी कार्रवाई करने लगती हैं। शोर मचानेवालों को संतुष्ट करने के लिए किसी विशेष दल या वर्ग का दमन करने से रोग दूर न होगा।

संविधान में सिद्धान्त की दृष्टि से प्रत्येक भारतीय नागरिक को भारत के किसी भाग में रोजी-रोटी कमाने और रहने का अधिकार है। किन्तु इस अधिकार का प्रयोग प्रवासियों को इस तरह करना चाहिए कि स्थानीय लोगों को उनकी उपस्थिति न अखरे। ये आगन्तुक सामान्यतः छोटे-छोटे समुदायों में सीमित और स्थानीय जन-जीवन से अलग रहते हैं। वे नदी के उन छोटे-छोटे द्वीपों की तरह हैं जो नदी में रहकर भी उससे अलग हैं, जो उसके जल से लाभ तो उठाते हैं किन्तु उसे कुछ देते नहीं। हम अपने ही प्रदेश में (जहाँ देश के सभी भागों के लोगों का हार्दिक स्वागत होता रहा है) कुछ ऐसे वर्गों को जानते हैं जो पीढ़ियों से यहाँ रहते हुए भी शुद्ध हिन्दी बोलना आवश्यक नहीं समझते और जो यहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में नहीं मिल पाये। पहले एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जो लोग जाते थे वे वहीं बस जाते थे। आज नये बड़े उद्योगों और बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के कारण अधिकांश उड़ती चिड़ियाँ आती हैं जिन्हें न तो स्थानीय जीवन में भाग लेने का अवकाश होता है, न रुचि और न कोई कारण। अखिल भारतीय उद्योगों ने और भी समस्या उपस्थित कर दी है। उनकी

स्थापना के लिए स्थानीय लोगों की सैकड़ों या हजारों एकड़ भूमि ले ली जाती है, किन्तु कभी-कभी उनके प्रबन्धक या संचालक जो दूसरे प्रदेशों से आते हैं, छोटे-छोटे पदों पर भी अपने या बाहरी प्रदेशों के लोगों को वरीयता देते हैं। हमसे एक प्रदेश में यह शिकायत की गयी थी कि वहाँ जो भारत सरकार का विशाल उद्योग खुला उसके मुख्य प्रबंधक एक अन्य प्रदेश के सज्जन थे। उन्होंने क्लर्कों की कौन कहे, कितने भृत्य भी अपने ही प्रदेश से बुलाकर नियुक्त किये। ऐसे संकुचित कार्यों की प्रतिक्रिया स्थानीय लोगों में होनी स्वाभाविक है। इसके लिए नियम बनाये जाने चाहिए कि अखिल भारतीय उद्योगों में किन-किन श्रेणियों में स्थानीय लोगों का रखना आवश्यक होगा। इन कारणों से बहुत से प्रदेशों में बाहरी लोगों के प्रति असंतोष है। एक भाषाभाषी आंध्र ही में तिलंगाना के लोग वहाँ छोटे पदों पर आन्ध्र के अन्य भागों के लोगों की नियुक्तियों का विरोध करते हैं। तब यदि स्थानीय लोगों को यह अनुभव होने पर कि बाहरी लोगों के कारण उनकी रोजी-रोटी खतरे में है, उन्हें असंतोष हो तो क्या आश्चर्य है! यदि बम्बई में बाहरी प्रतिष्ठान बहुत हैं और वहाँ एक छोटे से क्षेत्र में इतने बाहरी लोग एकत्र हो गये हैं कि महाराष्ट्र के लोगों में वहाँ हीनता की भावना उत्पन्न हो गयी है। शिवसेना उस तीव्र असंतोष की मूर्त प्रतिक्रिया मात्र है। जो स्थिति बम्बई में है वह कुछ अंशों में कितने ही दूसरे स्थानों में भी है। वहाँ भी असंतोष है, किन्तु वह तीव्र नहीं है। स्थिति बदलने पर वहाँ भी समस्या उत्पन्न हो सकती है। अतएव देश के कर्णधारों को इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके ऐसी आचार संहिता बनानी चाहिए जिससे क्षेत्रीय भावनाओं को समाप्त करने में सहायता मिले।

श्री मगन भाई देसाई—हमें यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गुजरात के प्रसिद्ध गाँधीवादी नेता और राष्ट्रभाषा हिन्दी के कर्मठ और उत्साही समर्थक श्री मगन भाई देसाई का स्वर्गवास हो गया। वे आरम्भ ही से महात्माजी के अनुयायी थे और उनके रचनात्मक कार्यक्रमों में बड़ी रुचि लेते थे। जब गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की तब काका कालेलकरजी आदि के साथ वे भी उसके आरम्भिक कार्यकर्ताओं और अध्यापकों में थे। गुजरात विद्यापीठ की वर्तमान उन्नति का बहुत कुछ श्रेय उन्हींको है। वे कई वर्ष उसके उपकुलपति भी रहे। शिक्षाविद् होने के अतिरिक्त वे 'सत्याग्रह' नामक गुजराती पत्र के सम्पादक भी थे जो गाँधीवाद का प्रबल समर्थक और प्रचारक है। उन्होंने गुजराती कोश साहित्य की भी समृद्धि की। वे गुजराती के अग्रगण्य लेखकों और सम्पादकों में गिने जाते थे। गाँधीजी के वे एकनिष्ठ भक्त और अनुयायी थे, और इसी कारण उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में विशेष रुचि ली। हम उन्हें आधुनिक गुजरात के प्रबल हिन्दी-समर्थक के रूप में जानते थे। उन्होंने गुजरात में हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में जो कार्य किया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। उनका जीवन अत्यन्त सरल और सादा था। व्यवहार में भी वे बड़े स्पष्ट और सरल थे। वे उन थोड़े से व्यक्तियों में थे जो गाँधीजी के एकनिष्ठ अनुयायी थे और जिन्होंने उनके रचनात्मक कार्यक्रम को चलाने में अपना सारा जीवन लगा दिया। ऐसे महान् देशभक्त, कर्मठ, त्यागी, साहित्यकार, पत्रकार और हिन्दी प्रचारक के स्वर्गवास से देश की अपार क्षति हुई है। 'सरस्वती' उनकी पावन स्मृति में श्रद्धा से नत है।

श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'—हिन्दी के प्रसिद्ध और पुराने लेखक पंडित रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' का स्वर्गवास इस मास के आरम्भ में गोंडा में हो गया। वे बस्ती जिले के निवासी थे। वे बड़े मेधावी छात्र थे। और उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया था। एम० ए० में सर्वप्रथम होने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय का स्वर्णपदक मिला था। उन्होंने शिक्षा को अपना कार्यक्षेत्र चुना और वे मध्य भारत तथा उत्तर प्रदेश में कई कालेजों के प्राचार्य रहे। एक बार उन्हें अफगानिस्तान की सरकार ने भी परामर्श देने के लिए आमन्त्रित किया था। अंग्रेजी के विद्वान् और प्रोफेसर होते हुए भी हिन्दी से उन्हें गहरा प्रेम था। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य में बराबर सहयोग देते थे। उन्होंने लेखनी द्वारा भी हिन्दी साहित्य की सेवा की और कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। उनका 'अवधी कोश' अपने विषय का एकमात्र कोश है और बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनके निधन से हिन्दी और शिक्षा जगत् की बड़ी क्षति हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

स्पेनी राजदूत और हिन्दी—जब किसी देश से कोई

नया राजदूत भारत में नियुक्त किया जाता है तब वह भारत के राष्ट्रपति के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें अपना परिचय-पत्र देता है और साथ ही उनको सम्बोधित करते हुए एक भाषण भी देता है। ये राजदूत अपना भाषण अपने देश की भाषा में या अंग्रेजी में देते रहे हैं। ये भाषण लिखित होते हैं और सामान्यतः वे उसका हिन्दी अनुवाद कराकर उसकी प्रतिलिपि भी दे देते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टता के अनुसार दो देशों के मध्य पत्राचार आदि उनकी भाषाओं में होता है। उदाहरण के लिए इटली की सरकार ब्रिटेन की सरकार को अपना पत्र इटालवी भाषा में भेजेगी और ब्रिटिश सरकार उसे अंग्रेजी में। यदि वे चाहें तो दोनों ही केवल इटालवी या केवल अंग्रेजी भाषा में पत्राचार कर सकते हैं। भारत की राजभाषा हिन्दी है किन्तु हमारे राजनयिक उसका व्यवहार कम ही करते हैं। दूसरे देशों के राजदूत अभी तक या तो अपने देश की भाषा में बोलते थे या अंग्रेजी में। अंग्रेजी अधिकांश देशों की भाषा नहीं है और भारत की भी नहीं। किन्तु भारत सरकार में अंग्रेजी का इतना प्रचलन है कि विदेशी लोग जानते हैं कि यहाँ उनके अंग्रेजी बोलने पर कोई आपत्ति न होगी। किन्तु गत मास जब स्पेन के नये राजदूत श्री गिलेर्मो नदल ब्लेनिस ने राष्ट्रपति को अपना परिचयपत्र दिया तब उन्होंने जो भाषण दिया वह हिन्दी में था। भारत के राजनयिक इतिहास में पहली बार एक विदेशी राजदूत ने इस अवसर पर अपना भाषण हिन्दी में दिया। इस प्रकार स्पेन के राजदूत ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। उनकी भाषा बड़ी प्रांजल थी। अपने भाषण में उन्होंने बतलाया कि वे चार वर्ष भारत में रह चुके हैं और यहाँ उन्हें हिन्दी सीखने का अवसर और प्रोत्साहन मिला था। इसलिए वे उस अवसर पर हिन्दी में बोल सके। जो भी हो, हमें इस बात की प्रसन्नता है कि स्पेन के राजदूत ने हिन्दी में बोलकर एक स्वस्थ परम्परा का आरंभ किया है। हम उन्हें इसके लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

राष्ट्रपति ने भी इस अवसर पर उनके हिन्दी भाषण का जो उत्तर दिया वह भी हिन्दी में था। हम राष्ट्रपति से अपेक्षा करते हैं कि ऐसे औपचारिक अवसरों पर वे सदैव हिन्दी में बोलेंगे।

पाठ्यक्रम के अनोखे विषय—ऐसा मालूम पडता है कि अमरीका में कोई विषय ऐसा नहीं समझा जाता जिसमें विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा न दी जा सके। वहाँ दक्षिणी कैरीलाइना नामक एक राज्य है। उसके विश्वविद्यालय ने कई अल्पकालीन पाठ्यक्रम आरम्भ किये हैं। ये केवल 'ज्ञान' के लिए पढ़ाये जायंगे, इनके पढ़नेवालों को प्रमाणपत्र न मिलेंगे। कुछ विषय ये हैं, जादूटोना, पृथ्वी के बाहर के जीव, रहस्यवाद, शराब की दुकान पर काम करना, विवाह पूर्व के योनि सम्बन्ध, कीमिया, प्रेम करने की कला (लव मेकिंग) आदि। गनीमत इतनी ही है कि शिक्षा केवल मौखिक ही होगी। सिद्धान्त ही सिखाये जायेंगे, प्रायोगिक कार्य नहीं किया जायगा। शायद उसके लिए अमरीका भी अभी काफी 'आधुनिक नहीं हुआ। किन्तु विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में सम्मिलित किये जाने से ये विषय 'प्रतिष्ठित' हो गये। भला, उन विषयों को 'बेकार' और 'अप्रतिष्ठित' कौन कह सकता है जिन्हें विश्वविद्यालय में मान्यता मिली हो और जो वहाँ पढ़ाये जाते हों। पिछड़े देशों के हजारों विद्यार्थी आधुनिक ज्ञान प्राप्त करने अमरीका जाते हैं। इस समय भी कई हजार भारतीय छात्र वहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आशा है कि लौटकर उनमें से कम से कम कुछ तो अपने एशियाई और अफ्रीकी पिछड़े देशों को 'प्रगतिशील' बनाने के लिए उनमें उनके प्रचार का प्रयास करेंगे। पाठ्यक्रम सुधार में अपार गुंजाइश है।

पिता ने पुत्र से अदालत द्वारा उच्च शिक्षा का व्यय लिया—अमरीका बड़ा विचित्र और मनोरंजक देश है। वहाँ की कोई-कोई घटना बड़ी आश्चर्यजनक और अभूतपूर्व होती है। अभी हाल में वहाँ एक पिता ने अपने पुत्र से उच्च शिक्षा का व्यय अदालत द्वारा वसूल किया है। पिता दरिद्र नहीं है अच्छा खाता-पीता व्यक्ति है। उसका नाम आर्वल राबर्टसन है और वह मियामी का रहनेवाला है। जब उसके पुत्र जेम्स ने माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद विश्वविद्यालय की तथा दाँतों की डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की तब आर्वल राबर्टसन सहसा सहमत नहीं हुए। इस पर उनके पुत्र ने उन्हें पिघलाने के लिए लिखा कि आप मुझ पर इस संबंध में जो व्यय करें वह ऋण समझ कर दें और मैं बाद में कुल राशि को १०० डालर प्रति मास की किश्तों में चुका दूंगा। शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद जेम्स दांत की डाक्टरी करने लगा। पिता ने उस समय सब धन का हिसाब रख छोड़ा

था जो उसने जेम्स के विश्वविद्यालय और दंत चिकित्सा विद्यालय में पढ़ते समय व्यय किया था। वह कुल राशि १९,००० डालर थी। जब जेम्स कमाई करने लगा तब पिता ने यह रुपया माँगा। पुत्र तो पिता के धन से उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता था। उसने देने से इनकार कर दिया। पिता ने उसके ऊपर १९,००० डालर की नालिश ठोंक दी। आर्वल राबर्टसन को रुपये की तंगी नहीं है, किंतु सिद्धान्तरूप से वे ऋण की वसूली आवश्यक समझते हैं। अदालत ने जेम्स के विद्यार्थी जीवन के लिखे पत्र के आधार पर उसके विरुद्ध निर्णय कर दिया और उसे १०० डालर की मासिक किश्तों में सारा धन लौटा देने का आदेश दिया।

पहली बात जो ध्यान में आती है वह यह कि अमरीका में उच्च शिक्षा का व्यय कितना अधिक है। चार-पाँच वर्षों की उच्च शिक्षा का व्यय १९,००० डालर या भारतीय मुद्रा में १४२,५०० रुपया हुआ। अर्थात् वहाँ विश्वविद्यालय और चिकित्सा कालिज में रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष बीस और पचीस हजार रुपये के बीच व्यय करने पड़ते हैं। इसी कारण वहाँके अधिकांश विद्यार्थी छुट्टियों मे पूर्ण-कालिक तथा विद्याध्ययन के दिनों में अंशकालिक नौकरियाँ करके अपनी शिक्षा का व्यय निकालने का प्रयत्न करते हैं। विश्वविद्यालय भी अच्छे प्राध्यापक प्राप्त करने के लिए उन्हें अस्सी हजार से लेकर डेढ़ लाख रुपये तक वार्षिक वेतन देते हैं। प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों आदि को अद्यतन बनाये रखने के लिए वे करोड़ों रुपये खर्च करते है। शिक्षा पर व्यय करने में जितने मुक्तहस्त अमरीकन लोग है उतने संसार के और कोई लोग नहीं। यही कारण है कि वहाँकी शिक्षा इतनी खर्चीली और इतनी उन्नत है।

दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि पुत्र के वयस्क हो जाने के बाद उसके पिता का यह कानूनी कर्तव्य नहीं है कि वह उसकी शिक्षा का व्ययभार वहन करे ही। पिता-पुत्र का जो स्नेह संबंध है उसके कारण पिता चाहे जो व्यय करे, किंतु पुत्र के वयस्क हो जाने के बाद वह उसे करने को बाध्य नहीं है। फिर भी, कोई पिता अपने पुत्र को उच्च शिक्षा के लिए ऋण दे और उसे अदालत के द्वारा वसूल करे—यह अकल्पित बात थी।

श्रद्धा और आत्मनिर्भरता का चमत्कार—नाँदेड़ का पुल—नादेड़ मराठवाड़ा का एक प्रसिद्ध नगर है। इसकी प्रसिद्धि सारे भारत में इसलिए है कि दशमेश गुरु गोविन्दसिंह जी का स्वर्गवास यहाँ एक आततायी के आक्रमण में लगे घावों के कारण हुआ था। सन् १७०३ में उस स्थान पर जहाँ उनका दाह-संस्कार हुआ था, एक विशाल गुरुद्वारा बनवा दिया गया था। यह गुरुद्वारा सिखों का एक बड़ा पुनीत तीर्थ है। नांदेड़ नगर के निकट ही गोदावरी नदी बहती है। नदी के दोनों ओर अनेक गुरुद्वारे बने हुए हैं। जो सिख तीर्थयात्रा करने नाँदेड़ जाते थे उन्हें बरसात में गोदावरी के उस पार के गुरुद्वारों के दर्शन में बड़ा कष्ट होता था क्योंकि नदी पर कोई पुल नहीं था। करनाल के बाबा जीवन-सिंह को यात्रियों की इस असुविधा को दूर करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस आवश्यकता का अनुभव तो कितने ही लोगों और सरकारी अधिकारियों को भी होता रहता था, किंतु कुछ परिणाम न निकलता था। बाबा जीवनसिंह दूसरी मिट्टी के बने थे, वे आवश्यकता का अनुभव करके और उसके लिए खेद व्यक्त करके ही चुप रह जानेवाले नहीं थे। उन्होंने बिना सरकारी सहायता के यात्रियों के श्रमदान और चंदे से इस पुल को तैयार करने का संकल्प किया। उनका संकल्प पूरा हुआ और वह पुल अब चालू हो गया है।

यह कोई छोटा पुल नहीं है। यह डेढ़ फर्लांग से कुछ अधिक लम्बा है और इतना चौड़ा है कि इस पर मोटर, ट्रक बसें आदि निकल सकती हैं। यह लोहे के गार्डरों और सीमेंट का है और इसमें बारह खंभे हैं। श्रमदान आदि का मूल्य छोड़कर इस पर बाबाजी को श्रद्धालु जनता से लेकर बाइस-लाख रुपये लगाने पड़े। इसके बनने से केवल तीर्थयात्रियों ही को नहीं, सारे क्षेत्र की जनता को अपार सुविधा हो गयी है। आज देश के लोग छोटी-छोटी बातों के लिए भी सरकार का मुँह ताकते है। ऐसे वातावरण में बाबा जीवनसिंह ने लोहे-पत्थर का यह विशाल पुल खड़ा करके दिखला दिया है कि निष्ठा और श्रद्धा के साथ आत्म-निर्भर रहकर भी बड़े से बड़ा रचनात्मक कार्य किया जा सकता है।

वाल्मीकि-कृत रामायण में स्त्री-धर्म की मीमांसा

प्रो० सहदेव चक्रवर्ती

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि जिन विविध नैतिक स्तरों में विश्वास करते थे, उनमें से एक स्त्री-धर्म भी है। सामान्यतया यह माना जाता है कि किसी भी सभ्यता की परख इस बात पर निर्भर है कि किसी समाज में स्त्रियों का कितना आदर होता है, और उसमें उनकी स्थिति क्या है। हिन्दू विचारक एक पग और आगे जाते हैं, जब वे इस सन्दर्भ में यह स्वीकार करते हैं कि लज्जा, चरित्र-सम्बन्धी पवित्रता तथा पति के प्रति निष्ठा किसी सभ्यता की सच्ची कसौटी है। यह कहना ठीक नहीं है कि आर्यों के पितृमूलक समाज में पुरुष स्त्रियों पर बलपूर्वक शुद्धता की भावना लादते थे; किन्तु यह एक धार्मिक और नैतिक माँग थी, जिसकी आशा सवर्ण पुरुषों तथा स्त्रियों से की जाती थी। इस प्रकार राम और सीता को ब्रह्मचारिणी कहा गया है जिसका भाव अविवाहित रहने से नहीं, अपितु शुद्धता से है।

महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण में आदर्श स्त्री का उदाहरण हमें सीता में मिलता है, जिनकी नैतिक चरित्र-संबधी पवित्रता तथा पति के प्रति भक्ति ने दृष्टान्त का रूप ग्रहण कर लिया है।

वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर थी[१]। विश्ववारा ब्रह्मवादिनी थी। इसी प्रकार घोषा और लोपामुद्रा मन्त्र-द्रष्टा थीं, जिन्होंने ऋग्वेद की कई ऋचाओं की रचना की थी।[२] असङ्गा, अपाला और इन्द्राणी सिकता आदि स्त्रियाँ प्रतिभा की दृष्टि से उच्च कोटि को प्राप्त थीं। उन्हें मन्त्रों का साक्षात्कार हुआ था।

रामायण-काल में स्त्रियों के प्रति समाज की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं हुआ। महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदि काव्य में स्त्री को आदर्श रूप में चित्रित करते हुये पति, सन्तान तथा समाज के प्रति उसके कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है। जिस प्रकार वैदिक युग में स्त्रियों को तपस्या करने, धार्मिक पूजा तथा वैदिक स्वाध्याय का अधिकार प्राप्त था, उसी प्रकार रामायण काल में भी कौशल्या, सीता, अहिल्या, अनसूया, शबरी, तारा और मन्दोदरी आदि स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि वे राजनेत्री तथा तपस्विनी थीं। उन्हें धार्मिक विधि-विधान का अधिकार था। वे वैदिक ज्ञान में निष्णात थीं।

१. ऋग्वेद, ५/२८
२. ऋग्वेद १०/३९-४०

महर्षि वाल्मीकि इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते कि स्त्रियों को शूद्रों के समान वेदाध्ययन तथा कर्मकाण्ड का अधिकार नहीं है। रामायण में सीता ने कौशल्या से कहा है कि उसने अपने पिता के घर पर सब धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है[१]। सीता और कौशल्या को मन्दिरों में दैनिक प्रार्थनायें और देवताओं की पूजा करते हुये दिखाया गया है[२]। अनसूया ने अपने पति के साथ वानप्रस्थ जीवन व्यतीत किया। शबरी तपस्विनी थी। तारा असाधारण राजनेत्री थी। हमें विदित है कि बाली की पत्नी ने अपने पति को सुग्रीव से संघर्ष न करने का परामर्श इसलिये दिया था, क्योंकि वह समझती थी कि सुग्रीव बिना किसी सशक्त व्यक्ति की सहायता के अपने भाई को चुनौती नहीं दे सकता[३]। इसी प्रकार रावण की पत्नी मन्दोदरी ने अपने पति से कहा था कि वह सारे राक्षस-वर्ग को विनाश से बचाने के लिए सीता को लौटा दें[४]।

वाल्मीकि ने स्त्री को पति के हित को ध्यान में रखकर उसे दास, मित्र, पत्नी, बहिन और माता कहकर सम्बोधित करते हुये उसका आदर्श रूप में चित्रण किया है[५]। वाल्मीकि ने आगे चलकर आज्ञाकारी स्त्री को सम्पूर्ण धर्म के समकक्ष ठहराया है, अर्थ और काम जिसके पूर्णतया समभागी हैं। उनकी दृष्टि में औचित्य, काम और अर्थ का समावेश एक गुणशालिनी स्त्री में होता है[६]। स्त्री आज्ञाकारी और कर्त्तव्यपरायण होकर धर्म की प्राप्ति में पुरुष की सहायक होती है, अपने रूप और सौन्दर्य से काम का सम्पादन करती है और पुत्र-जन्म द्वारा अपने पति को लाभ पहुँचाती हैं।

स्त्रियों में दोष

किन्तु वाल्मीकि स्त्रियों के दोषों से भी परिचित थे। उनके अनुसार स्त्री स्वभाव से धूर्त, स्वार्थी और किंकर्त्तव्य-

१. अयोध्याकाण्ड, ३९-२७
२. अयोध्याकाण्ड, ४-३०, ३३/२०-१५, १६
३. अयोध्याकाण्ड २६-४
४. सुन्दरकाण्ड, १४-४९
५. अयोध्याकाण्ड, १२-६९
६. अयोध्याकाण्ड, २१-५७

विमूढ़ होती हैं[१]। सृष्टि के आरम्भ से ही स्त्रियों का यह स्वभाव रहा है कि वे सम्पन्न व्यक्ति को प्रसन्न रखती हैं और विपद्ग्रस्त व्यक्ति को त्याग देती हैं। स्त्रियों का स्वभाव विद्युत् की अस्थिरता, शास्त्रों की तीक्ष्णता, गरुड़ और वायु की तीव्रता का अनुकरण करने का है[२]। डा० बैंजामिनखान ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि स्त्रियाँ अपने निवास-स्थान को बदलने में बिजली का, स्नेह कम करने में शस्त्र की तीक्ष्णता का और बुरा काम करने में वायु तथा गरुड़ की तीव्रता का अनुकरण करती हैं[३]। स्त्रियाँ स्वभाव से ही कपटी, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ और धर्मसम्बन्धी ज्ञान से शून्य होती हैं और पिता तथा पुत्र में मतभेद उत्पन्न करती हैं[४]। किंतु वाल्मीकि अपने इस कथन पर नियन्त्रण करते हुए कहते हैं कि 'मुझे सब स्त्रियों का नाम नहीं लेना चाहिये।'

वाल्मीकि बुरी स्त्री को व्यभिचारिणी बताते हुए इन शब्दों में उसके चरित्र का वर्णन करते हैं—"भले ही उस स्त्री का पति उसे स्नेह करता हो, किन्तु वह आपत्ति में अपने पति की सेवा करने में असफल रहती है। जहाँ वह अपने पति की समृद्धि का उपभोग करती है, वहाँ वह विपत्ति में उस पर अनेक दोषारोपण करती है, यहाँ तक कि उसे छोड़ भी देती है। वह मिथ्या भाषण करती है, और साधारण-सी बातों पर ही आवेश में आ जाती है क्योंकि उसका मन अपने पति में अनुरक्त नहीं है। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ स्त्रियाँ अपने वंश तथा उसकी स्थिति का ध्यान तक नहीं रखतीं। वे कृतघ्न होती हैं और उन्हें औचित्य का ध्यान नहीं रहता। अपनी भूलें सुझाये जाने पर भी वे उन्हें स्वीकार नही करतीं[५]।

इसके विपरीत वाल्मीकि गुणी स्त्री का वर्णन करते हुए उसके विषय में कहते है कि 'वह अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करती है, सत्यभाषिणी और शुद्ध स्वभाव की होती है तथा अपने पति को नैतिक और आध्यात्मिक कल्याण का परम साधन मानती है[६]।

१. अयोध्याकाण्ड, १२-१०
२. अरण्यकाण्ड, १३-५, ६, ७
३. कन्सैप्ट ऑफ धर्म इन वाल्मीकि रामायण-पृष्ठ १७०.
४. अरण्यकाण्ड, १२-१००.
५. अयोध्याकाण्ड, ३९-२०, २१, २२, २३.
६. अयोध्याकाण्ड, ३९-२४.

जेराल्ड हर्ड का कथन है कि 'आधुनिक युग में जब कि पारिवारिक जीवन के बन्धन शिथिल हो रहे हैं, घरेलू जीवन में निराशा का संचार हो रहा है और अनेक दम्पतियों के लिए पारिवारिक जीवन नीरस हो गया है और इसे सुखद बनाने तथा इसकी नीरसता से छुटकारा पाने के लिये हमारा हृदय नये-नये साधनों के लिये लालायित है। हम अपने जीवन, बच्चों और घर से भी परेशान हो गये हैं। हमने अपने लिये भोजन बनाने का काम रसोइये को, बच्चों को नर्स को और घर को नौकरों को सौंप दिया है। पति और पत्नी के रूप में हम जीवन का आनन्द लूटने में मस्त हैं। किन्तु कुछ समय बाद सारा कुछ मिथ्या, मृत और जीवन-शून्य प्रतीत होता है[१]। यदि हम यह जानने का प्रयत्न करें कि वाल्मीकि ने पवित्र दाम्पत्य सम्बन्ध के विषय में क्या लिखा है और घरेलू जीवन के वास्तविक सुखों की प्राप्ति के लिये उनके परामर्श पर चलें तो इससे समाज को लाभ ही होगा।

पति और पत्नी के सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए वाल्मीकि कहते हैं कि 'जिस प्रकार सारंगी बिना तार के ध्वनि नहीं देती, और बिना पहियों के रथ नहीं चलता, उसी प्रकार सैकड़ों पुत्रों के होते हुये भी स्त्री अपने पति के बिना सुख प्राप्त नहीं कर सकती[२]। आगे चलकर वाल्मीकि कहते हैं कि पत्नी के लिये एकमात्र देवता उसका पति ही हो सकता है। आदि कवि के शब्दों में—

'स्त्रीणां भर्त्ता हि दैवतम्[३]।'

आदि कवि पति को न केवल दिव्यता की पीठ पर प्रतिष्ठित करते हैं, अपितु उनका विश्वास है कि कोई भी स्त्री अपने पति की सेवा करती हुई अगले जीवन में स्वर्ग की अधिकारिणी होती है। उसे किसी दूसरे देवता की पूजा की आवश्यकता नहीं रहती। अपने पति की सेवा करती हुई स्त्री धर्म को प्राप्त होती है, और पति के प्रति कर्त्तव्य में कोताही करनेवाली स्त्री नरक की पात्र बनती है। कहा गया है —

भर्त्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेद्।
भर्त्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्[४]॥

१. दि मॉरल्ज सिन्स नाइनटीन्थ सैंचुरी—पृष्ठ ३२
२. अयोध्याकाण्ड, ३९-२९, ३०
३. अयोध्याकाण्ड, ३९-३१.
४. अयोध्याकाण्ड, २४-२६, २७, २८.

वेद तथा स्मृतियें भी स्त्रियों से इसी मार्ग का अनुसरण करने की आशा करते हैं। हम देखते हैं कि आधुनिक समाज में स्त्रियाँ अपने पारिवारिक जीवन की उपेक्षा करके दूसरे कई सामाजिक कार्यों में रत रहती हैं और वे समझती है कि वे कोई बहुत अच्छा काम कर रही है। किन्तु वाल्मीकि स्त्रियों की इस प्रकार की प्रवृत्ति की निन्दा करते है। उनका स्पष्ट कहना है कि इस प्रकार की स्त्रियाँ जीवन के अभीप्सित ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकतीं। पारिवारिक जीवन में अस्त-व्यस्तता से सुख का लेशमात्र भी नही रहता इसलिए आदि कवि को पारिवारिक जीवन का विघटन अमान्य है।

वर्तमान औद्योगिक युग ने हमारे पारिवारिक जीवन को विघटित करने की चुनौती दी है क्योंकि शिक्षित स्त्रियाँ वृत्ति (नौकरी) की खोज में है और स्वतन्त्र आर्थिक जीवन व्यतीत करने के लिये लालायित है और छोटे-मोटे बहाने बनाकर अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद तक करने के लिए तैयार रहती है। इस सन्दर्भ में वाल्मीकि का कहना है कि पिता, माता, पुत्र, मित्र और यहाँ तक आत्मीयता से एक भी स्त्री का आश्रय स्थान नहीं हो सकता; जितना कि उसका पति। भावी तथा वर्तमान जीवन में स्त्री का आश्रय-स्थान केवल उसका पति है[1]। इसलिए स्त्री को जहाँ अपने पति के सुखों का उपभोग करना है, वहाँ उसे उसके दुःखों का समभागी बनने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

जब रावण सीता से कहता है कि उसका पति घर से निकाल दिया गया है वह निर्धन शक्तिहीन और सत्ताशून्य हो गया है, इसलिये उसे उसका (राम का) विचार न करके मेरे प्रति अनुरक्ति दिखाते हुये ऐश्वर्य और गौरव का उपभोग करना चाहिये तो सीता रावण को उत्तर देती हुई कहती है कि "राम चाहे निर्धन हो गया हो और अपने अधिकार से वञ्चित हो चुका हो, वह मेरा पति है, और केवल वही मेरा पति है।"

वैधव्य का अभिशाप

जहाँ वाल्मीकि पति और पत्नी के सम्बन्धों का आदर्श-मय चित्रण करते हुये इतने दूर चले गये हैं, वहाँ वे वैधव्य को स्त्री के लिये बहुत बड़ा अभिशाप मानते है। वाली की पत्नी तारा कहती है—"पतिशून्य स्त्री सदा विधवा कही जायेगी, भले ही वह पुत्रवती हो और सम्पत्ति की स्वामिनी हो[2]।" कौशल्या का कहना है कि "स्त्री के लिये वैधव्य से बढ़कर कुछ बुरा नही है[3]।"

सती प्रथा

वाल्मीकि के युग में समाज को सती प्रथा (पति की चिता के साथ स्त्री का जीवित रूप में जलना) का ज्ञान नही था। कौशल्या, तारा और मन्दोदरी ये सब स्त्रियाँ विधवा हो चुकी थीं। दुःख और शोक के आवेग में भले ही उन्होने अपने पतियों के साथ जल-मरने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु प्रतीत होता है कि उनकी इच्छा परम्परामूलक न होकर भावना-मूलक थी[1]। इनमें से कोई भी स्त्री अपने पति के साथ नही जली।

पर्दा प्रथा के सम्बन्ध में कही-कहीं उल्लेख मिलता है। किन्तु प्रतीत होता है कि पर्दा प्रथा केवल आर्य जाति के राजकीय परिवारों की स्त्रियों मे प्रचलित थी।[2]

यौन सम्बन्ध

पति और पत्नी के सम्बन्धों की चर्चा करते हुए वाल्मीकि ने हमारा ध्यान एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक बात की ओर खींचा है, और वह है स्त्री तथा पुरुष में यौन सम्बन्ध। उनके कथनानुसार पत्नी केवल किसी व्यक्ति की काम-वासना की तृप्ति का साधन नहीं है, अपितु काम-वासना की तृप्ति तभी सम्भव है; जब पति और पत्नी में समान रूप से इसके लिए इच्छा हो। पारस्परिक इच्छा के अभाव मे रति-क्रिया से सुख मिलने की अपेक्षा लम्पटता को बढ़ावा मिलता है। उनका कहना है कि "जो अनिच्छुक स्त्री की इच्छा करता है; वह अपने-आपको भस्मीभूत करता है; और इच्छुक स्त्री को चाहनेवाला अत्यधिक सुख पाता है।[3]"

वाल्मीकि केवल पति के प्रति पत्नी के कर्त्तव्यों की ही गणना नही करते, अपितु राम के पति रूप में चरित्र द्वारा समाज के लोगों से वे आशा करते है कि वे राम के समान 'एक पत्नीव्रत' बनेंगे 'एक पत्नीव्रत' होने से अभिप्राय केवल यह नहीं है कि किसी व्यक्ति की एक ही पत्नी हो, अपितु उसकी निष्ठा केवल एक पत्नी के प्रति होनी चाहिए। पत्नी के प्रति पति का प्रेम पति और प्रेमी के अतिरिक्त माता-पिता के प्रेम के समान भी होना चाहिए। इसी लिए सीता अपने पति के सम्बन्ध में अनसूया से कहती है—

स्थिरानुरागो धर्मात्मा
मातृवत् पितृवत् प्रियः[4]।

अर्थात् राम का प्रेम मेरे प्रति स्थिर है, और उसका यह प्रेम न केवल पति और प्रेमी के रूप में है, अपितु माता-पिता के प्रेम के तुल्य है।

---

१. अयोध्या काण्ड, २७-६
२. किष्किन्धा काण्ड, २३-१२, १३
३. अयोध्या काण्ड, ६६-८

१. युद्धकाण्ड, ६५—५.
२. युद्धकाण्ड, ११४—२७.
३. सुन्दर काण्ड, २२—४२, ४३.
४. अयोध्याकाण्ड, ११८—४.
उत्तरकाण्ड, ४९—८.

तुलसी की काव्यदृष्टि और हिन्दी-आलोचना

डा० प्रेमप्रकाश गौतम

कविसम्राट् गो० तुलसीदासजी ने अपने कृतित्व के रूप में हिन्दी-जगत् और व्यापक रूप में समस्त जगत् को जो महती सम्पत्ति प्रदान की है उसका आकलन और मूल्याङ्कन निश्चय ही दुष्कर कार्य है। काव्य-क्षेत्र एवम् सांस्कृतिक दिशा में ही नहीं, लोक-जीवन, समाज, भाषा आदि इतर क्षेत्रों में भी उनका योगदान अत्यन्त मूल्यवान् है। भारतीयता के प्रतिनिधित्व में अग्रणी गोस्वामी तुलसीदास सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से भारत के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों में निर्विवाद रूप से सबसे आगे है।

जीवन-दृष्टि और काव्यमूल्यों की दृष्टि से वे बहुत-कुछ समन्वयवादी और परम्परावादी हैं, पूर्ववर्त्तियो के चिन्तन से उनका व्यक्तित्व प्रभावित है। परन्तु प्रगतिशील और मौलिक तत्त्व भी उनके कृतित्व में पर्याप्त है। अनेक दृष्टियों से उनका साहित्य आज भी भारतीय जनता के लिए और व्यापक रूप में समस्त मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण है।

गोस्वामी तुलसीदास के विराट् व्यक्तित्व ने हिन्दी की समीक्षा-पद्धति को भी प्रभावित किया है। आचार्य शुक्ल की समीक्षा-प्रणाली जो हिन्दी की बहुमान्य और प्रतिष्ठित आलोचना-प्रणाली है, मूलतः गोस्वामी तुलसीदास की काव्यदृष्टि और उनके कृतित्व की अनुयायिनी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अधिकतर समीक्षा-संस्कार और सिद्धान्त (उनका काव्यात्मक लोकवाद, लोकमगल की साधनावस्था, व्यक्ति एवम् शैली की अपेक्षा विषय का महत्त्व-स्वीकार— विषयवस्तु के औदात्य पर बल, आचारवादिता, काव्य में सत्य—सच्ची अनुभूति तथा जीवन जगत् की वास्तविकता की अभिव्यक्ति—का आग्रह, अभिधावाद, साधारणीकरण के प्रति निष्ठा, रसवाद और शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध की भावना, मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध के प्रति रुचि आदि) इस काव्यमर्मज्ञ महाकवि के काव्य-सम्बन्धी विचारो पर ही आश्रित हैं। शुक्लजी का आलोचक अन्य साहित्य-स्रोतो से भी प्रभावित है परन्तु उसका मूल प्रेरणा-स्रोत तुलसी का ही कृतित्व एवम् काव्यदर्शन है।

गोस्वामीजी अपनी लोक संग्रह-भावना के लिए प्रख्यात हैं। 'मानस' के प्रारम्भ में यद्यपि उन्होंने 'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषा निबन्ध-मतिमंजुलमातनोति' वाली बात कही है और 'मानस' की रचना का प्रयोजन आत्मसुख बताया है।[1] परन्तु आत्मसुख की भावना के साथ उनके 'मानस' में विश्वकल्याण की परमार्थ-बुद्धि भी है। अन्यथा इस ग्रन्थ में वे लोकधर्म की विविध-बहुल शिक्षाएँ प्रस्तुत न करते। श्रीराम के स्वरूप की लोकपरायणता, शक्ति, शील और कर्म के प्रति 'मानस' के प्रायः सभी पात्रों की निष्ठा और प्रबन्ध के माध्यम से जीवन के नाना क्षेत्रों का चित्रण करने की गोस्वामीजी की चेष्टा, सामान्यजनभावों एवम् जनभाषा का आग्रह आदि और भी कितनी ही बातें है जो उन्हें पूर्णतः लोकसंग्रही सिद्ध करती हैं। ऐकान्तिकतापेक्षिणी भक्ति की साधना में संलग्न और वैयक्तिक उत्कर्ष के अभिलाषी होने पर भी गोस्वामीजी में सामाजिक भावना सच्चे अर्थ में विद्यमान है। काव्य की सामाजिक उपयोगिता और सर्वहितकारिता के सम्बन्ध में उनका कहना है—

> कीरति भनिति भूति भलि सोई
> सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

वही कीर्ति, काव्य-रचना तथा सम्पत्ति भली हैं जो गंगा के समान सबकी हितकारिणी हो। वस्तुतः काव्य में शिव और सत्य से समन्वित 'सुन्दरम्' ही स्पृहणीय है। 'मानस' मे ही नही, तुलसी के समस्त साहित्य मे 'सब कहँ हित' की यह भावना और क्षमता विद्यमान है।

आचार्य शुक्ल का 'काव्यात्मक लोकवाद', उनका साधनावस्था-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत-कुछ 'रामचरितमानस' से ही प्रेरित है। काव्य-नायक शील एवम् कर्म-सौन्दर्य से सम्पन्न और लोकमंगल के लिए प्रयत्नशील हो, शुक्लजी की यह दृष्टि तुलसी के राम-चरित्र की अनुयायिनी है। गोस्वामीजी में जो सर्वहित-कामना है वह उन्हें बहुत-कुछ आचारवादियों के निकट ले आती है। वे काव्य को काव्य के लिए न मानकर उसे स्वान्तःसुख तथा सामाजिक सुख-विधान के हेतु—सामष्टिक जीवन

---

१ स्वान्तः सुख, शिवेतरक्षति (वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण) व्यवहारज्ञान, 'कान्तासम्मित उपदेश' और 'सद्यः परनिर्वृत्ति' के अतिरिक्त यश को भी गोस्वामीजी ने काव्य-प्रयोजन माना है—'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरही, सो श्रम बादि बाल कवि करहीं' 'सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान'।

की परितुष्टि, परिष्कृति एवम् प्रगति के हेतु--मानते हैं। लोकहृदय को छूने और लोक-हृदय का परिष्कार करनेवाली भाव-सामग्री को ही उन्होंने अपने वाङ्मय में स्थान दिया है। उनके भाव और विभाव दोनों लोकानुभूति और लोक-जीवन के अनुकूल हैं, लोक-मर्म का स्पर्श करते हैं। लोक-सामान्य अनुभूति के प्रति आचार्य शुक्ल की निष्ठा गोस्वामी जी की इसी भावना को स्वीकार कर विकसित हुई प्रतीत होती है। तुलसी के विचारानुसार काव्य की विषयवस्तु उदात्त होनी चाहिए, 'वर विचारों' की सत्ता उत्तम काव्य के लिए अपरिहार्य है--

हृदय सिंधु, मति सीप समाना
स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जौं बरषइ बर बारि बिचारू।
होहिं कवित मुकतामनि चारू।

चारु कवित-मुक्तामणि की प्राप्ति तभी सम्भव है जब वर विचार-वारि की वृष्टि हो। भव्य विचार-सामग्री उत्कृष्ट काव्य की प्रथम आवश्यकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी काव्य-प्रतिमा (शारदा ?)[1], भाव (हृदय), बुद्धितत्व (मति), उदात्त चिन्तन (वर विचार), और शैली-चातुर्य (युक्ति– 'जुगति बेधि पुनि पोहिअहि राम चरित वर ताग') को काव्योपदानों के रूप में स्वीकार करते हैं। गोस्वामीजी का विचार है कि भव्य विचार-सामग्री काव्य में तभी हो सकती है जब उसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में भगवान्, भगवद्-भक्ति या अध्यात्म से हो। वास्तव में नरचरित्र का नहीं, नारायण-चरित्र का ही गायन काव्य को अमरता प्रदान कर सकता है। प्राकृत जनों का गुणगान करने पर तो वाणी अनुताप से सिर धुनने लगती है—

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना,
सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।

यही नहीं, सुकविकृत विचित्र 'भनिति' भी राम-नाम के अभाव में शोभा प्राप्त नहीं कर पाती—

भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ
राम नाम बिनु सोह न सोऊ।

'मानस' की भी शोभा 'रघुपति नाम उदार' से है। गुप्तजी भी स्वीकार करते हैं कि राम का वृत्त स्वयम् काव्य है। वास्तव में भगवद्-भावना के अभाव में—धर्म एवम् अध्यात्म की लोकपावना भागीरथी से अभिषिक्त हुए बिना काव्य औदात्य की सुरभूमि का स्पर्श नहीं कर सकता। गिराग्राम्य होने पर भी रचना में 'सियराम-जस' होने पर उसे सुजान गाते और सुनते हैं। भणिति (वाह्य वाग्-विधान) भले ही भदेस हो (भनिति भदेस), वस्तु भली होनी चाहिए (वस्तु भल बरनी)। तुलसीदासजी ने इसीलिए वाग्विधान की अधिक चिन्ता नहीं की है। शैली की अपेक्षा काव्यवस्तु को महत्त्व देने की साहित्य-क्षेत्र में विषय की उदात्तता का महत्त्व स्वीकार करने की—आचार्य शुक्ल की प्रवृत्ति गोस्वामीजी की इस दृष्टि की अनुयायिनी प्रतीत होती है। काव्य की विषय-वस्तु—तद्गत विभाव, विचार एवम् कथातत्त्व—यदि उत्कृष्ट हों तो वहिरंग की दुर्वलता और क्षीणता भी क्षम्य है। प्रथित प्रतिभावान् गोस्वामी जी के कृतित्व में अन्तरग ही नहीं, वहिरंग भी परिपुष्ट है, यद्यपि अपनी विनयशीलता के कारण 'मानस' के प्रारम्भ में उन्होने अपनी कलाविहीनता एवम् कवित्व-विवेकशून्यता का उद्घोष किया है—

भनिति मोर सब गुन रहित,
कवि न होउँ, नहिं बचन-प्रवीनू।
सकल कला सब विद्या-हीनू।
भाषा भनिति मोरि मति भोरी
हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी।

परन्तु यह गोस्वामीजी की विनयशीलता है। अपने आपको तुच्छ एवम् काव्य विवेकहीन वताने की प्रवृत्ति भारतीय काव्यकारों की परम्परागत प्रवृत्ति है।[1] अपनी

---

१. कभी-कभी शब्दों का अर्थ खींचतान कर करते हुए व्याख्याकार अपने मनोनुकूल वात काव्यकार में आरोपित करते हैं। 'तुलसीदास और उनके काव्य' के लेखक पं० रामदत्त भारद्वाज ने 'शम्भुप्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम-चरित मानस कवि तुलसी' और 'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू, वेद पुरान उदधि घन साधू' में प्रयुक्त सुमति शब्द का अर्थ 'प्रतिभा' किया है जो ठीक नहीं। 'बोले विहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ, जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ' आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि तुलसी प्रतिभा को ईश्वरदत्त मानते हैं। वस्तुतः यहाँ प्रतिभा की चर्चा ही नहीं है।

१—जैसे कालिदास ने रघुवंशम्' के आदि में और स्वयम्भू ने 'पउम चरिउ' के आदि में।

'भणिति' को 'भदेस,' 'सब गुनरहित' 'कवित रस एकउ नाहीं' जैसे विशेषण गोस्वामीजी ने दिये अवश्य हैं परन्तु सत्य यही है कि उनकी काव्यसाधना 'भदेस' से सर्वथा मुक्त, सर्वगुण-सम्पन्न तथा समस्त काव्य-रसों से संसिक्त है।

काव्य में सत्य का, सच्ची अनुभूति और जीवन-जगत् की वास्तविकता की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक महत्त्व है, इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी सत्य को काव्य का अनिवार्य तत्त्व[1] स्वीकार किया है—

कवित विवेक एक नहि मोरे।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।

उद्धृत चौपाई में प्रयुक्त 'सत्य कहउँ' शब्दों का अर्थ 'सच सच कहता हूँ' किया जाता है परन्तु इन शब्दों से गोस्वामीजी का अभिप्राय अपनी सच्ची अनुभूति तथा श्रीराम की पुण्य कथा के सत्य को कथन करने से भी हो सकता है। 'सच सच कहता हूँ' यह अर्थ लेने पर भी गोस्वामीजी की सत्य के प्रति निष्ठा और सच्ची अभिव्यक्ति का आग्रह सिद्ध होता है। स्वर्गीय आचार्य द्विवेदी, कविवर जयशंकर प्रसाद और आंग्ल साहित्य-समीक्षक डॉ० जॉनसन ने भी काव्य में सत्य की सत्ता का महत्त्व स्वीकार किया है।[2] आचार्य शुक्ल ने भी काव्यक्षेत्र में आरोपित (कल्पित) अनुभूति का विरोध करते हुए (कल्पित अनुभूतियों के कारण उन्होंने छायावादियों की कठोर आलोचना की है) सच्ची अनुभुति पर बल दिया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिल्टन के अनुकरण पर सारल्य को—अभिधावृत्ति और प्रसादपरकता और काव्य का एक विशिष्ट गुण स्वीकार किया है। गोस्वामी जी भी सरलता का पक्ष लेनेवाले अभिधा-प्रेमी काव्यकार हैं, सरल-सुबोध अभिव्यक्ति के पक्षपाती हैं। वाग्वैदग्ध्य उन्हें अधिक प्रिय नहीं। उनका काव्य अधिकांश में सहज-सरल एवम् स्पष्ट है। 'विनय-पत्रिका' के प्रारम्भ और 'मानस' के कुछ स्थलों में अवश्य संस्कृत शैली के अनुगमन के कारण क्लिष्टता है। वे लिखते हैं—

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान।

चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र वर्णित हो। उच्च काव्य चमत्कारपरक अलंकरण तथा लाक्षणिक वक्रता से अधिक सम्बन्ध नहीं रखता। सहज काव्य के उपासक आचार्य शुक्ल भी अभिधाप्रिय काव्य-समीक्षक थे। काव्य-क्षेत्र में चमत्कार, शब्दक्रीड़ा अथवा लक्षणा-व्यंजना का वैचित्र्य उन्हें रुचि-कर नहीं था।

उच्च काव्य-सर्जना के लिए कवि का 'विमल मति' होना भी आवश्यक है। जब तक कवि की बुद्धि और हृदय भूमि स्वच्छ नहीं होगी, उदात्त काव्य—निर्मित उसके लिए सम्भव नहीं है। दुःशील व्यक्ति महान् काव्यकार नहीं हो सकता। गोस्वामी जी स्पष्ट लिखते हैं—

'सो न होइ बिनु बिमल मति'।

गोस्वामी तुलसीदास परम्परा प्रेमी कवि हैं, काव्य के परम्परागत मानों में उनकी पूर्ण आस्था है—

आखर अरथ अलंकृत नाना, छंद प्रबंध अनेक बिताना।
भावभेद रसभेद अपारा, कवितदोष गुन विविध प्रकारा।

× × ×

छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल-कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।

धुनि अवरेख कवित गुन जाती
मीन मनोहर ते बहु भाँती।

'तुलसी सतसई' में महाकवि ने अलंकार, रीति, गुण और विशद विविध वर्णन को (अलंकार कवि रीति युत

१—गोस्वामीजी की दृष्टि में काव्य के मूल तत्त्व हैं—हृदयतत्त्व, और मति (बुद्धितत्त्व) तथा कल्पना। राग-समन्वित बुद्धितत्त्व ही 'सत्य' है।

२—द्विवेदी जी ने 'सत्य' को 'असलियत' नाम से काव्य की प्रमुख विशेषता, उसका मूल तत्त्व बताया है—'कवि को 'असलियत' का सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए—('कवि और कविता')। प्रसाद लिखते हैं—आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पनात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।' ('काव्य और कला')। डॉ० जॉनसन लिखते हैं—Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of season-

भूषन दूषन प्रीति) अनिवार्य काव्योपादानों के रूप में स्वीकार किया है। दोषों से काव्य अस्पष्ट नहीं रहता। सहृदयता और तन्मयता भी काव्य के लिए अपेक्षित है। सुन्दर-काव्य के छंद द्वैत का हनन कर अद्वैत की अनुभूति प्रदान करते हैं। (तु० स० ४।९७, ९८, ९९)

गोस्वामीजी शब्द और अर्थ का वैभिन्य स्वीकार नहीं करते। वे गिरा और अर्थ को--अभिव्यक्ति और अनुभूति को—कालिदास और क्रोशे (क्रोचे) के समान सम्पृक्त बताते हुए काव्य तथा इतरकलाओं का एक ही पक्ष मानते प्रतीत होते हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न, न भिन्न।

परन्तु गिरा और अर्थ का यह अद्वैत आचार्य शुक्ल को स्वीकृत नहीं है। वे स्पष्टतः काव्य के दो पक्ष मानते हैं—भाव-पक्ष एवम् कला-पक्ष।

इस अद्वय का प्रतिपादन करते हुए गोस्वामीजी अन्तरंग के साथ बहिरंग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनकी दृष्टि में बहिरंग गौण ही है। उनका कथन है कि काव्यात्मा ही नहीं, काव्य का कलेवर और वसन भी उदात्त होना चाहिए। मलिनकाय, मलिनवसना अथवा आवरणहीन नग्न सर्जना उन्हें अप्रिय है—'सोह न वसन बिना वर नारी......।'

गोस्वामीजी की काव्य-कसौटी कठोर है। उनके विचारानुसार विद्वानों से समादृत् काव्य-रचना ही वास्तविक काव्य है। कविता जहाँ जन्म पाती है उससे भिन्न स्थान पर और अधिकारी जनों द्वारा ही शोभा प्राप्त करती है--'उपजत अनत, अनत छवि लहहीं'......'मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी'। विद्वान् जिस प्रबन्ध का आदर नहीं करते उसका निर्माण-श्रम, गोस्वामीजी की दृष्टि में, बाल कवि व्यर्थ ही करते है--

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं
सो श्रम बादि बालकवि करहीं।

यही नहीं, गोस्वामीजी की दृष्टि में शत्रु भी जिसका श्रवण कर अपना सहज वैर भूल कर बखान करने लगे, वही काव्य-प्रयास सच्चा काव्य है--

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥

विद्वद्-समाज को ही नहीं, समस्त मानव-समाज को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखनेवाली काव्य-सर्जना ही तुलसी की दृष्टि में सफल है। उनके मतानुसार समाज-परितोष विद्वद्-समाज से भी बड़ा काव्य-मापक है।[1]

गोस्वामी तुलसीदास इन दोनों कसौटियों पर खरे उतरते हैं। उनकी रचना विपश्चितों के मध्य तो समादर प्राप्त है ही, अर्ध-शिक्षितों और अशिक्षितों को भी प्रिय है। धार्मिकता और भक्तिभावना का उपहास करनेवाले नास्तिकवृत्ति के मार्क्सवादी और तथाकथित 'नये' साहित्यकार भी, उनकी प्रशंसा करते हैं, उनकी महत्ता के सामने आनत होते हैं। गोस्वामीजी के कथनानुसार 'सुकवि कवित...उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं' परन्तु गोस्वामी तुलसीदास का कवि-कृतित्व जहाँ समुदित हुआ वहाँ भी पूर्णतः समादृत है।

---

१. तुलसीदासजी के काव्यविषयक अन्य विचार हैं—काव्य-क्षेत्र में समासवृत्ति वांछनीय है (अरथ अमित, आखर अति थोरे), कवि में 'सुमति' अपेक्षित है (शंभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम चरितमानस कवि तुलसी), अर्थ और शब्द कवि की शक्ति हैं (कविहि अरथ आखर बलु साँचा), उत्तम सहृदय जन ही काव्य का अधिकारी है (पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग)।

श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य

डा० रामचंद्र मिश्र

हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद एक नूतन काव्योन्मेष है। इस काव्योन्मेप से पूर्व का काव्य मृतप्राय रीतिकालीन काव्य के भाव और कला-पक्ष की परम्परागत प्रवृत्तियों से ग्रस्त था, जिसमें मात्र शास्त्रीय तत्त्वों की उपलब्धि थी। वह काव्य वस्तुतः सहज जात रसानुभूति से भटककर कृत्रिम भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हो गया था, जिसमें छलना थी स्वाभाविकता नही और विलासपरक जीवन-केलि थी सरलता नहीं, इस उन्मेप को ही यह श्रेय है कि जिसके द्वारा काव्य पुनः प्राकृतिक भाव-धारा से सिक्त हो जीवन्त और पल्लवित हो उठा।

स्वच्छन्दतावाद आधुनिक हिन्दी-काव्य का छायावाद है जो १९२५ ई० से १९४० ई० तक उसे विशेष प्रकार की काव्य-सर्जना सम्पन्न और गौरवास्पद किए रहा। यह वह काल है जिसमें प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि कवियों ने अपनी काव्य-कृतियों द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट काव्य की प्राण-प्रतिष्ठा की, जिनके द्वारा काव्य के भाव और कला-पक्ष की बन्धनहीनता के साथ उनके स्वछन्द स्वानुभूत विधान, सामान्य जीवन का प्रस्फुटन, प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण, प्रेम, अज्ञात के प्रति लालसा आदि स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ घोषित हुई, इस चतुष्टयी तथा अन्य समकालीन कवियों के द्वारा इस प्रकार की काव्य-निधि प्रस्तुत की गयी जो हिन्दी साहित्य के किसी युग के काव्य से होड़ लेने में समर्थ हो सकी, प्रसाद की "कामायनी" इस युग का सफलतम महाकाव्य हैं जिसमें स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ शीर्ष पर पहुँची हैं।

हिन्दी के कतिपय मूर्द्धन्य आचार्यों का विचार है कि यह काव्योन्मेष योरुपीय मुख्यतः अंग्रेजी रोमाण्टिक रिवाइवल (Romantic Revival) का हिन्दी पर प्रभाव है, पर हिन्दी काव्य की आधुनिक गतिविधियों और प्रवृत्तियों के अध्ययन से स्पष्टतया सिद्ध है कि यह काव्योन्मेष परिस्थितिजन्य स्वभावगत है, जिसको प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीधर पाठक को है। इसीसे आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी का प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि कहा है, छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि में पड़ने के कारण श्रीधर पाठक को पूर्व-स्वच्छन्दतावादी कवि तथा उनका काव्य पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य कहा जा सकता है।

श्रीधर पाठक का जन्म ११ जनवरी, १८५८ ई० को आगरा जिलान्तर्गत जोंधरी ग्राम में एक सनातनी सारस्वत ब्राह्मणपरिवार में हुआ था। उन्होंने "आराध्य शोकांजलि" और अप्रकाशित "स्वजीवनी" में अपनी वंशीय परम्परा का सविस्तर उल्लेख किया है। उनका परिवार मात्र धनाढ्य और गुणाढ्य न था उसमें एक से एक बढ़कर लोक-विश्रुत विद्वान् भी जन्मे थे, उन्होंने आराध्य शोकांजलि में स्वयं लिखा है—

प्रपितामाह श्री कुशल मिश्र भाषा के परम प्रतिभाशाली कवि थे "बालकृष्ण चन्द्रिका" और "गंगा नाटक" उनकी रुचिर रचनाएँ हैं—श्रीकृष्ण बाबा जू के छोटे भाई राधाकृष्ण जी संस्कृत के बहुत अच्छे पण्डित थे। पिता जी के सगे भ्राता शास्त्री धरणीधरजी न्याय और धर्मशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे। न्याय के प्रसिद्ध ग्रन्थ "आत्म तत्त्व विवेक" पर आप एक संस्कृत व्याख्या लिख गये हैं।

श्रीधर पाठक की शिक्षा उनके गाँव जोंधरी, फिरोजावाद और आगरा में हुई थी। अनन्तर नौकरी के सम्बन्ध में उन्हें कलकत्ता, रेवाडी, प्रयाग आदि में रहना पड़ा। १९१४ ई० में उत्तर प्रदेश शासन के सार्वजनिक निर्माण विभाग के उच्च पद से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया था और अनन्तर वह प्रायः प्रयाग में लूकरगंज के 'पद्मकोट' सज्ञक अपने आवास में रहे थे।

रूढ़िवादी परिवार की संतति होने पर भी उन्होंने जीवन में अन्धानुसरण नहीं किया और न अविश्वस्त मान्यताओं के प्रति अपनी निष्ठा दिखलाई, वह जीवन के सच्चे पारखी थे इसीसे मानवीय संवेदनाओं में उन्हें विश्वास था, इसका सम्यक् प्रस्फुटन उनकी कृतियों के साथ व्यावहारिक जीवन में भी हुआ है।

मनोविनोद, बाल-भूगोल, जगत सचाई सार, काश्मीर सुषमा, आराध्यशोकांजलि, जार्ज वन्दना, भक्ति विभा, श्री गोखले प्रशस्ति, श्री गोखले गुणाष्टक, भारतीय गति आदि उनके मौलिक काव्य हैं, अनूदित कृतियों में श्री

गोपिका गीत भागवत के दशम् स्कन्ध के ३१ वें अध्याय श्री गोपिका गीत का समश्लोकी अनुवाद है। शेष एकान्त-वासी योगी, ऊजड़ ग्राम और श्रान्त पथिक अंग्रेजी के कवि गोल्डस्मिथ के क्रमशः हरमिट, डेजेर्टेड विलेज और ट्रेवलर के अनुवाद हैं।

पाठकजी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य के तत्त्व तो हैं ही उनसे पूर्व भारतेन्दुयुगीन काव्य में भी वे किसी न किसी अंश में विद्यमान हैं। इस युग में परम्परागत काव्य के विषय, भाषा, छन्द आदि में परिवर्तन हो उठे थे, शृंगार और भक्ति के स्थान पर अंग्रेजी शासन, देश की दुरवस्था, निर्धनता, विधवा, अशिक्षा, राष्ट्रभाषा आदि को काव्य का विषय, ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी-बोली तथा दोहा, घनाक्षारी, कवित्त आदि छन्द और पद-शैली के स्थान पर कजली, लावनी, रेखता, पयार, कबीर आदि लोक-छन्दों को अपनाया जाने लगा था, इन समग्र में स्वच्छन्दतावादी तत्त्व न होने पर भी वे स्वच्छन्दतावाद की ओर उन्मुख अवश्य करते है। यह सत्य है कि इस युग के कवि ठाकुर जगमोहनसिंह के काव्य में श्यामा विषयक उद्दाम प्रेम, विन्ध्य प्रदेश के प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण आदि उपलब्ध हैं, जो समकालीन कवियों की रचनाओं में सबसे अधिक स्वच्छन्द हैं, इसीसे आचार्य शुक्ल ने उनके सम्बन्ध में कहा है--

यद्यपि ठा० जगमोहनसिंहजी अपनी कविता को नये विषयों की ओर नहीं ले गये, पर प्राचीन संस्कृत काव्यों के प्राकृत वर्णनों का संस्कार मन में लिये हुए, प्रेमचर्या की मधुर स्मृति से समन्वित विन्ध्य प्रदेश के रमणीय स्थलों को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होंने देखा है वह ध्यान देने योग्य हैं, उसके द्वारा उन्होंने हिन्दी काव्य में एक नूतन विधान का आभास दिया था।

हिन्दी में अंकुरित इंगित स्वच्छन्दता को श्रीधर पाठक ने एक विशेष भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया है। १८८६ई० में गोल्डस्मिथ के रोमाण्टिक प्रेम-काव्य हरमिट का जब एकान्तवासी योगी के नाम से पाठकजी ने अनुवाद प्रस्तुत किया तो उनका काव्य स्वच्छन्दता की सुस्थिर भूमि पर सुशोभित हुआ--

प्राण पियारे की गुण गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ॥
विश्व निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
बलिहारी त्रिभुवन धन उस पर वारों काम करोर॥

अंजलेना और एडविन की प्रेम-कहानी में मानवीय तत्त्व है, विद्वानों और पण्डितों द्वारा प्रवर्तित सीमित और एकान्त प्रेम नहीं, पाठकजी की इस रचना के लिए उनकी काफी प्रशंसा हुई। श्री पिन्काट ने इस अनुवाद की प्रशंसा करते हुए कहा था कि यह रचना भारतीयों को आलंकारिकता और कल्पनाशीलता के स्थान पर मानवीय प्रेम और सहानुभूति को अवगत कराने में प्रवृत्त होगी।

एकान्तवासी योगी के अतिरिक्त "ऊजड़ ग्राम" और श्रान्त पथिक की वस्तु और भाव-धारा में भी स्वच्छन्दवादिता के प्रमाण हैं, जिनको अनुवाद द्वारा प्रस्तुत कर पाठकजी ने हिन्दी की इस काव्य-पद्धति को प्रौढ़ और गतिशील बनाया।

हिन्दी स्वच्छन्दवादिता के लिए पाठकजी का अनूदित काव्य के साथ मौलिक काव्य का प्रदेय भी महत्त्वपूर्ण है, वह १९ वर्ष की अवस्था से काव्य-सर्जना करने लगे थे उनकी प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह "मनोविनोद" में हुआ है, जिसका प्रथम संस्करण १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संस्करण में सामयिक विषयों के अतिरिक्त राष्ट्र और भाषा-प्रेम के साथ प्रकृति के अनेकों संश्लिष्ट चित्रण विद्यमान हैं, 'वनाष्टक' का स्थल देखिए--

कोयल तू कल बोलनी री, शुक प्यारे हरे-पट-धारे, अहो।
भोरी मैना सुनैना रसीलेन की सो परेवा परेई के प्यारे, अहो॥
अहो मोरा मचावन शोरा, चकोरा, पपीहा पिया रटवारो, अहो।
बन के तुम बांके सदा के धनी वन-जीवन प्रान तिहारो, अहो॥

मनोविनोद में कितनी ही प्राकृतपरक रचनाएँ हैं, अंग्रेजी में भी The Cloudy Himalala बड़ी मार्मिक रचना है। जातिवाद के सम्बन्ध में To Caste भी एक अमर रचना है, जो उनके उदार और स्वच्छन्द हृदय का प्रस्फुटन करती है--

Thou Aryan Ind's ill fame, unmanning curs
Of stalwart worthy ones of Aryavart,
Perdition pit of noble Hindu life

× × ×

I hate thee, shun thee, loath thee serpent ol'
How gloat I on thy death it draweth

देख ली उनकी लज्जा-छटा, सुमित्रा-सुत ने आँखें खोल,
और बोले—'क्या युद्धोत्साह—किये है रंजित युग्म कपोल ?
थक गई होगी करते युद्ध नींद से—आओ मेरे फूल।'
ऊर्मिला के कपोल से सरक गया उनका यह विरल दूकूल।
कहूँ आने की मैं क्या बात ? (ऊर्मिला, पृष्ठ १२९-३१)

नवीनजी के ऊर्मिला-लक्ष्मण-प्रेम में स्वच्छंदता अधिक है, जब कि गुप्तजी के ऊर्मिला-लक्ष्मण-प्रेम में पारिवारिकता। इसी कारण नवीनजी की ऊर्मिला अधिक रोमांटिक है जब कि गुप्तजी की ऊर्मिला कुल-वधू की मर्यादा में सिमटी हुई दिखाई देती है।

कैकेयी-वर-याचना ऊर्मिला के लिए एक विषम स्थिति उत्पन्न कर देती है। गुप्तजी की ऊर्मिला अपने मन को इस प्रकार बोध देती है—

कहा ऊर्मिला ने—'हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग-भरा ! है अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो, शोक-भार से चूर्ण न हो।
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग भाव सरसे।
(साकेत, पृष्ठ १०९)

गुप्तजी ने राम-वन-गमन के अवसर पर लक्ष्मण ऊर्मिला को एकान्त मिलन का अवसर न देकर कवि-कौशल का परिचय दिया है। इससे ऊर्मिला का विषाद मूक होते हुए भी अत्यन्त सघन हो जाता है, जो 'इधर ऊर्मिला मुग्ध निरी, कह कर 'हाय !' धड़ाम गिरी' से व्यक्त होता है। नवीनजी ने इस अवसर पर ऊर्मिला-लक्ष्मण के एकान्त मिलन की योजना की है, जिसमें भावी वियोग की शोक-विह्वलता, भावोद्वेलन, संकल्प-विकल्प और धर्य-दिलासा की व्यजना की गई है। अत में मानवता के कल्याण के निमित्त ऊर्मिला विरह की पीड़ा स्वीकार करती है।

गुप्तजी की ऊर्मिला के विरह के सम्बन्ध में अनेक आलोचनाएँ की गई हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊर्मिला का विरह उसके जीवन का व्यक्तिगत पहलू है जो उसी तक सीमित है। उसके रुदन से आदर्श में कोई बाधा नहीं पड़ती। कभी जब उसकी कामना (व्यक्तिगत पहलू) और आदर्श (सामाजिक पहलू) में संघर्ष होता है, तब उसमें आदर्श की ही विजय होती है। (रामचरित-मानस और साकेत-परमलाल गुप्त, पृष्ठ १३०-३१) इसके लिए वह स्वप्न में भी सचेत हैं—

भूल अवधि-सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी—'आओ'।
किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोलकर—'जाओ'।
(साकेत, पृष्ठ २६७)

नवीनजी की ऊर्मिला वियोग में कभी तो प्रेम-योगिनी बनती है, कभी उसमें विरह-दुख सहने का शौर्य्य-भाव उत्पन्न होता है, कभी वह वेदना को ही प्रियतम मानकर वियोग में संयोग की क्रीड़ा करने लगती है और अन्त में अद्वैत-भावना से वह स्वयं ही लक्ष्मण बन जाती है। नवीनजी ने ऊर्मिला के इस विरह को प्रतीकात्मक रूप देकर जीवन का ब्रह्म के प्रति आध्यात्मिक विरह बना दिया है। अतः यह स्वच्छंद और एकान्तिक होते हुए भी लौकिक जीवन से विच्छिन्न है। गुप्तजी की ऊर्मिला का विरह अधिक मानवीय और स्वाभाविक है। वह प्रेमी-प्रेमिका का एकान्तिक विरह मात्र ही नहीं है, उसमे एक गृहस्थ कुल-वधू की भावनाओं का उद्गार भी समाविष्ट है।

गुप्तजी ने ऊर्मिला को बहुत रुलाया है, बहुत से आलोचक इसे उचित नहीं समझते। उनकी राय मे जितने आँसू बहेंगे, उतना आदर्श भी बह जायेगा। उनका ऐसा सोचना भ्रमपूर्ण है, क्योंकि ऊर्मिला के आँसुओं में स्वयं की तो बात ही क्या, दूसरों को भी पवित्र करने की शक्ति है। फिर उसके आँसू उसे निष्क्रियता की ओर नहीं ले जाते। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि समय पड़ने पर हम उसे वीरता की प्रतिमूर्ति के रूप मे देखते है। इस प्रकार गुप्तजी ने कला के सौंदर्य, हृदय की करुणा और आदर्श के शौर्य्य से समन्वित ऊर्मिला के चरित्र की सृष्टि की है। उसमें भारतीय कुल-वधू की मृदुता और वीरांगना के आदर्श समाहित हो गये है। नवीनजी की ऊर्मिला एकान्त प्रेम की साधिका के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है।

जहाँ तक प्रेम के आदर्श का सम्बन्ध है, गुप्तजी और नवीनजी दोनों की ऊर्मिला के प्रेम का विकास एन्द्रिय से अतीन्द्रिय प्रेम की ओर होता है। परन्तु नवीनजी की ऊर्मिला के प्रेम का एन्द्रिय पक्ष बिल्कुल छूट जाता है जब कि गुप्तजी की ऊर्मिला मिलन में भी 'प्रिय यौवन की कहाँ आज वह चढ़ती वेला' का खेद प्रकट करती है। यह दोनों कवियों की काव्यगत मान्यताओं का अन्तर है। नवीनजी कला को 'आत्मा की समाधि तन्मयता' मानते हैं (ऊर्मिला,

पृष्ठ १०३), जब कि गुप्तजी उसे हृदय-संस्कार का साधन। यही कारण है कि गुप्तजी की ऊर्मिला का स्वरूप वस्तु-मूलक सांस्कृतिक आदर्शों को लिए हुए है, जब कि नवीन जी की ऊर्मिला का स्वरूप आत्म-साधना को प्रत्यक्ष करता है।

हिन्दी काव्य में ऊर्मिला के विरह का वर्णन प्रोषित-पतिका की भाँति किया है और उसे अत्यन्त विस्तार दिया गया है। कन्नड़ के महाकवि कुवेम्पु ने उसे एक तपस्विनी के रूप में चित्रित किया है। राम-लक्ष्मण के वन-गमन के उपरान्त वह सरयू नदी के किनारे पर्णकुटी बनाकर तपस्या में लीन हो जाती है। उसके प्रेम में बाहरी झंझावात, प्रलाप-विलाप आदि नहीं है, संयम और तपस्या का गाम्भीर्य है। गांधीजी ने 'साकेत' में ऊर्मिला के आँ ग्रों को देखकर एक ऐसी ही दृढ़ और संयमी नारी का रूप प्रत्यक्ष करने के लिए कवि को लिखा था। परन्तु गुप्तजी का कवि अपनी करुणा का आग्रह नहीं छोड़ सका। सच-मुच त्याग के साथ अनुराग, वीरता के साथ मृदुता, अश्रु के साथ हास, आदर्श के साथ कामना का ऐसा संगम अन्यत्र नही दिखाई देता। गुप्तजी के इस नारी-चरित्र की समकक्षता में बँगला के कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की प्रमीला को रखा जा सकता है, परन्तु गुप्तजी की ऊर्मिला का चरित्र मधुसूदन दत्त की प्रमीला की तेजस्विता और करुणा की मार्मिकता को धारण न करते हुए भी अधिक कलात्मक और पूर्ण है।

गीत

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

कर ले रे मन ! मन भर कर पूजा।
तेरा मीत मिल गया तो फिर, क्या पूजा ?--जब कहीं न दूजा।
कर ले रे मन ! मन भर कर पूजा।

(२)

पूजा का सुख, बहुत बड़ा सुख, पर कवि कहते इसे विरह-दुख।
जहाँ न रवि पहुँचे, कवि पहुँचे; कवि की बातें सोहें कवि-मुख।
विरह-सिन्धु तर, प्राप्त किया मन-मीत; किसे फिर तू पूजेगा ?
उसको बूझ लिया तो फिर कुछ, कहीं नहीं रहता अनबूझा।
कर ले रे मन ! मन भर कर पूजा।

(३)

तू बैकुण्ठ चाहता है, पर यह तो है केवल चतुराई।
ना वंशीवट, ना यमुना-तट, न तो वहाँ हैं कुँअर कन्हाई।
प्रेम-पंथ ही सार, चला चल; प्रेम-पंथ तू क्या पहिचाने ?
यह तो निपट अग्नि-पथ, प्यारे ! जिसको सूझा, उस को सूझा।
कर ले रे मन ! मन भर कर पूजा।

(४)

खेल बहुत खेले, माया के झूठे-मूठे प्यार किये हैं।
अब पूजा का समय आ गया, जिस पूजा के लिये जिए हैं।
बड़े भाग्य से तुझे मिला है, छोटा-सा यह स्वर्णिम अवसर।
कर पूजा, फिर-फिर कर पूजा; पूजा छोड़ कहीं मत तू जा।
कर ले रे मन ! मन भर कर पूजा।
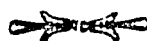
आधुनिक भारतीय साहित्य के कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकार (१)

श्री गोपीकृष्ण मणियार एम० ए०

ऐतिहासिक उपन्यास—इस शब्द के कान में आते ही मन में जो सवाल तुरन्त उठ खड़ा होता है वह यह है कि यह उपन्यास किस समय के इतिहास को चित्रित करता है और क्या इसमें इतिहास की प्रधान घटनाओं और पात्रों के जीवन-क्रम का ध्यान रक्खा गया है। ऐतिहासिक उपन्यास की सबसे कठिन कसौटी है ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा और उसी के साथ-साथ ऐतिहासिक जानकारी से कथाप्रवाह को ढक न जाने देना। इस संबंध में हम आगे विस्तृत विचार करेंगे। अभी हमें ऐतिहासिकता की धारणा पर ही विचार करना है। इतिहास की घटनायें जैसी घटित हुईं, काल और देश की पृष्ठभूमि में व्यक्ति और समष्टि का जो संघर्ष, अटूट मेल, विजय और पराजय, आनन्द और विषाद संघटित हुए, क्या वे लिखित इतिहास में सही-सही, या करीब-करीब भी सही-सही, चित्रित हुए। संक्षेप में यों कहें कि क्या इतिहासकार इतिहास लिखने में सर्वथा वस्तुनिष्ठ (objective) रहे ? या उनकी अपनी मनोवृत्तियों, रुचि-विरुचियों, सस्कारों और अवचेतन मन ने बलात् उनके लिखे इतिवृत्तों में मनमाने हेर-फेर किये ? सर्वथा वस्तुनिष्ठ, (objective) इतिहासकार तो आज के युग में भी, जब इतिहास-लेखन और ऐतिहासिक मानों की आलोचना ट्वायनबी और लार्ड एक्टन सरीखे मनीषियों के हाथों इतनी आगे बढ़ चुकी है, दुर्लभ हैं। जीवनमुक्त अवस्था की बात तो कहीं नहीं जा सकती पर स्थूल शरीरधारी व्यक्ति के लिए चाहे वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, अपनी रुचि-विरुचि और अवचेतन मन से सर्वथा मुक्त हो जाना असंभव है। इसी कारण अनायास उसकी अपनी भावनायें या दृष्टि-कोण थोड़ी या अधिक मात्रा में उसके चिन्तन एवं तत्संभूत विवरणों में अपनी छाप डाल ही जाते हैं। जब आज की यह दशा है तो पहले की पीढ़ियों के इतिहासकारों का, जो अपने देश, संस्कृत, धर्म के आगे किसी और देशधर्म संस्कृति को तिनके बराबर समझते थे, या पूर्ण तिरस्कार के योग्य मानते थे, कहना ही क्या है ? प्लूटार्क, जस्टिन, फाह्यान, अलबरूनी, इब्नबतूता—थोड़े से नाम इस प्रसंग पर्याप्त हैं। और आधुनिक काल में भी अंग्रेज-विजेताओं विजितों को अपने कब्जे में बनाये रखने के लिए इति- में क्या-क्या तोड़-मरोड़ नहीं की गयी। अंग्रेजों द्वारा लिखे गये इतिहासों से जब मेजर बी० डी० बसु के Rise of Christian Power in India की तुलना की जाती है तब मन इतने भयंकर झूठ के प्रश्रय पर—जो अन्यथा—चरित्रशालिनी और अनुकरणीय अंग्रेज जाति ने अपनाया क्रोध, दुःख, विरक्ति से भर जाता है। शायद अंग्रेज लेखकों ने यह समझ लिया था कि क्षण-क्षण में अपने सहज विलास से आमूल कायापलट करनेवाली आद्याशक्ति ने अपनी सारी शक्ति और सत्व अंग्रेज जाति को सौंप दिया है और जो वे लिख रहे हैं उसकी झूठाई का पर्दाफाश नहीं होगा। अन्य विजित जातियों के साथ भी इसी प्रकार का अन्याय हुआ। अपने विरोधी वीर का उचित सम्मान करने की परम्परा केवल व्यक्तियों तक ही सीमित रही। राष्ट्रीय स्तर पर इसे कभी मान्यता नहीं मिली। मिली होती तो इतिहास युद्धों, नृशंसताओं, शोषणों और आर्त्त-नादों, प्रतिघातों की कथा न होकर कुछ और ही मनोरम कहानी होता। अस्तु केवल साम्राज्यवादियों के इतिहासकारों द्वारा ही इतिहास झुठलाया नहीं गया। आज के तानाशाहों ने भी अपने देश एवं दल के युवकों और अनुयायियों की चिन्तनशक्ति और विवेक को कुण्ठित रखने के लिए पुरानी परम्परा का ही, नयी मान्यताओं और पद्धतियों की पूरी अवहेलना कर, आश्रय लिया। रूस और चीन में अब, और जापान, जर्मनी और इटली में इसके पूर्व १९३५ से १९४३ तक, यही हुआ।

"हमारा देश कभी विजित नहीं हुआ, हुआ भी तो दूसरों के विश्वासघात से, अपनी सामरिक दुर्बलता या कायरता से नहीं। दुनिया के और देश, जिनसे हमारा मन नहीं मिलता है, हमें निगल जाने को तैयार बैठे हैं। अपनी रक्षा मात्र के लिए हमें उनसे आगे होकर युद्ध करना ही पड़ेगा, नहीं तो हमारी हार और सर्वनाश निश्चित है।"

इस प्रकार की धारणा जन-जन के मन में इतिहास को आमूल बदल देने के लिए बैठायी गयी। जब महायुद्ध के बाद लोगों को वस्तुस्थिति का पता चला, तब उन्हें कितना धक्का लगा होगा यह सोचने लायक है। और, सही बातें भी कितनों के गले उतर सकीं। बहुत से जर्मन तो अब भी हिटलर को अपना आराध्य मानते हैं, जैसे उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में नेपोलियन बोनापार्ट अपने देशवासियों का

अश्रु-सिक्त अर्घ्य, अपनी पराजय के कितने वर्षों बाद तक, ग्रहण करता रहा। आज भी अधिकांश चीनवासी यही मानते होंगे कि भारतीयों ने हम पर आक्रमण किया है, जब कि क्रूर सत्य ठीक इसके विपरीत है। तो इन सब बातों का निष्कर्ष केवल यह है कि ईमानदारी के साथ, बिना अपनी ओर से जरा भी नमक-मिर्च लगाये, घटित घटनाओं या व्यक्तियों के जीवन-वृत्त को यथावत् लिख डालना असंभव काम है और घटित इतिहास एवं लिखित इतिहास में कम या वेश दूरी बनी रहनी अनिवार्य है।

जिस प्रकार घटित एवं लिखित इतिहास में फर्क रहता है उसी प्रकार लिखित इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में फर्क रहना अवश्यंभावी है, बल्कि यों कहें कि इस फर्क के रहे बिना लोग ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ते समय ऊँघते-ऊँघते सो जायँगे। ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ा जाता है औत्सुक्य भावना के कारण, जैसे कोई भी उपन्यास पढ़ा जाता है। इतिहास का तो केवल "मौन" रहना जरूरी है। इतिहास की पृष्ठभूमि में पात्रों और घटनाओं का निर्माण और विकास तत्कालीन जनसाधारण का जीवन-स्पन्दन, व्यक्ति के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व—यह सभी पाने के लोभ से पाठक ऐतिहासिक उपन्यास उठाता है। यदि यह सब देकर, उपन्यासकार केवल इतिहास के तथ्यों को विवरणात्मक ढंग से उपस्थित करने लगता है, तब पाठक के लिए मुँह विगाड़ कर पुस्तक फेंक देने के अलावा और कोई चारा नहीं उठता। गुजराती ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री रामचन्द्र ठाकुर के "अपने आम्रपाली" उपन्यास की भूमिका में लिखा है :—

"मैं यह नहीं जानता कि ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यतः इतिहास होता है या ऐतिहासिक नींव पर खड़ी की गई कल्पना की इमारत। परन्तु इस पुस्तक के लिखने का मेरा उद्देश्य इतिहास दिग्दर्शन की अपेक्षा छठी-सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व के समान और मनुष्यों का दिग्दर्शन कराना विशेष है।"

समाज और मनुष्यों का दिग्दर्शन—यही ऐतिहासिक उपन्यासकार की सफलता का सच्चा प्रमाण और उसके ग्रंथों के भविष्य में जनप्रिय होने का आधार है।

इस सबन्ध में इतिहास-वेत्ताओं का ऐतिहासिक उपन्यासकार की ओर अवज्ञा के साथ उँगली उठाना गलत है। उनकी अक्सर यह राय रही है कि इतिहास का जितना अहित ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा हुआ है उतना और किसी से नहीं। उनका कहना है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार अपना उपन्यास लिखने में ऐसे पात्रों और घटनाओं का समावेश करते हैं जिनका इतिहास की किसी पुस्तक में जिक्र नहीं। उनकी दृढ़ मान्यता है कि बिना किसी ठोस ऐतिहासिक आधार—शिलालेख, मुद्रा, मूर्ति, लेख, तत्कालीन ग्रंथों में चर्चा के बिना इस प्रकार की मन-मानी कल्पनायें करना अनधिकृत चेष्टा है। पर वे भूल जाते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास कभी शुद्ध इतिहास मात्र होने का दावा करता ही नहीं और जो लोग ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने की आशा से उठाते हैं या ऐसी पुस्तक पढ़ते समय यह सोचते हैं कि उसमें वर्णित सारी घटनायें इतिहास-सम्मत हैं, सारे पात्र ऐतिहासिक हैं वह एक भारी भ्रान्ति में पड़े हैं। ऐतिहासिक उपन्यास में किसी और उपन्यास की तरह बहुत सीमा तक लेखक की काल्पनिक सृष्टि मौजूद रहती है। केवल उसे यह सावधानी बरतनी पड़ती है कि परवर्ती काल की प्रथाएँ, वेश-भूषा, राज्यतंत्र, शस्त्र-अस्त्र, सैन्य-संगठन इत्यादि की, भूल से पूर्ववर्ती काल में चर्चा न हो जावे, न एक देश की विशेष परिस्थिति का दूसरे देश के वर्णन में जिक्र आ जावे—यानी काल और देश की सीमाओं का बहुत सजग रहकर ध्यान रखना पड़ता है। इतिहासज्ञों की एक और बड़ी भूल है। कल्पना का सहारा लेकर भी, ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास को रंग-बिरंगे रंगों से सजा-सवाँरकर जनसाधारण को उसके प्रति जितना कुतूहली और जिज्ञासु बना देते है उतना स्वय इतिहासकार अपने प्रयत्नों से नही कर पाते। ऐतिहासिक उपन्यास पढ़कर इतिहास का अध्ययन करनेवाले लोगों की संख्या काफी बड़ी है। वेदों में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध का ज्ञान कितनों को हो सकता है ? पर मुंशी के 'परशुराम' में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध से विशाल जन-समुदाय को इस युद्ध की जानकारी हो जाती है। यह ठीक है कि वेद का ज्ञान रखनेवालों के लिए ऐसे स्थल अधिक आकर्षक होते हैं। पर यहाँ हम बात इतिहास की कह रहे थे। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासज्ञों के प्रीति के पात्र हैं, उपेक्षा और तिरस्कार के नहीं, इतना सब होने के बाद भी यदि इतिहास-शास्त्रियों की नाराजगी बनी रहती है तो, आर्थर मेलविल क्लार्क के शब्दों में यदि उन्हें यह पसंद नहीं है तो कोई उन्हें ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ने के लिए बाध्य नहीं करता, पर उन्हें यह मालूम होना

चाहिये कि जनसाधारण में न जाने कितने लोग ऐतिहासिक उपन्यास पढ़कर इतिहास की ओर आकृष्ट हुए और यदि एक भावी इतिहासकार इतिहास से छिनकर ऐतिहासिक उपन्यास के फंदे में आ फँसा तो एक कोड़ी लोग उपन्यास को तिलांजलि देकर इतिहास की आराधना में लग गये। इस संबंध में यह भी याद रखने की बात है कि कम से कम एक ऐतिहासिक उपन्यासकार—सर वाल्टर स्काट—ने अतीत काल के जीवन्त प्राणियों से आबाद करके और दिखलाकर कि अतीत काल केवल कभी कभी याद करने की चीज हैं, सारे परवर्ती इतिहासकारों पर अमिट प्रभाव डाला है।''[१]

पर इसका यह आशय नहीं कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास को कतई भुला देने की छूट है। इसके विपरीत, उसको प्रधान घटनाओं और जीवन-कृत्यों का तो ध्यान रखना ही है। ऐसा न करने से रवीन्द्रनाथ ठाकुर कथित 'ऐतिहासिक रस' की क्षति होगी, पाठक का मन अनैतिहासिकता के कारण वितृष्णा से भर उठेगा और उपन्यासकार अपने मूल उद्देश्य में ही असफल हो जायेगा। और प्रधान घटनाओं और इतिहास के मोटे ढाँचे को सुरक्षित रखने के लिये उपन्यासकार को केवल सतही ज्ञान काम नहीं देगा। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, धूमकेतु, रामचन्द्र ठाकुर, गुणवन्तआचार्य, राखालदास बनर्जी, राहुल सांकृत्यायन, वृन्दावनलाल वर्मा—जिन उपन्यासकारों के ऐतिहासिक उपन्यासों पर हम आगे विचार करेंगे—इसीलिए इतने सफल हो सके हैं कि उन्होंने अपने वर्ण्यकाल की घटनाओं और गतिविधियों का बहुत सावधानी से अध्ययन किया है। आज के युग मे विदेशी ऐतिहासिक फिल्मों में घटना, वेशभूषा, खानपान, आमोद-प्रमोद संबंधी प्रामाणिकता का जो आग्रह दिखलाई पड़ता है, वही आग्रह, निष्ठा, तथ्यों के प्रति सजगता—आज के ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जरा-सी भी भूल हुई और सतर्क एवं बहुपाठी पाठक ने गला पकड़ा। 'बहती रेता' में गुरुदत्त ने वैशाली को मिर्जापुर जिले की एक जगह बताई है। पाठक की श्रद्धा एवं विश्वास में तुरन्त ठेस पहुँचती है। 'अतः ऐतिहासिक तथ्यों का, विपुलता और साथ ही अतीव सतर्कता से संग्रह करना, ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर केवल तथ्यों की भीड़ लगने से उसका काम नहीं चलेगा। एक तो उसमें ग्रहण-वर्जन की क्षमता होनी चाहिए। दूसरे अपने वर्तमान से सर्वथा मुक्त होकर अतीत के वातावरण में, जिसका यथाशक्य सच्चाई से वह अनुमान मात्र कर सकता है, रम जाने, तन्मय हो जाने की, उसमें प्रतिभा होनी चाहिए।

सेंट्सबरी ने अपनी आलोचना में एक जगह लिखा है कि ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता की एक बड़ी कसौटी यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने जानते हुए तथ्यों को, जिनका कथावस्तु से सीधा संबंध नहीं है, अपने उपन्यास में शामिल करने के प्रलोभन को कहाँ तक रोक पाता है। तथ्यों की पूरी जानकारी होने के बाद भी केवल कुछ चीजों की चर्चा करना और बाकी को साफ छोड़ देना—यह बहुत संयम की अपेक्षा रखता है। इस संयम के अभाव में, जो कुछ जाना हुआ है उसे बना कर पाठक को चमत्कृत करने के प्रलोभन से बचने की असफलता मे, अनेक क्षमताशाली कथाकारों की अकृतार्थता का रहस्य छिपा है।

वर्तमान से अपने को सर्वथा मुक्त कर, अतीत में डूब-जाने की क्षमता बहुत बड़ी सिद्धि है जो बिरले सरस्वती पुत्रों को प्राप्त होती है। यह तो एक तरह की प्रतिभा होती है जो अभ्यास से कम, और जन्म से अधिक, मिली होती है। 'इस सिद्धि के बल पर ही यशस्वी ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी कृतियों में अतीत को जीवन्त बना देते हैं और ऐसे अमर पात्रों की सृष्टि कर पाते हैं जो जनमानस-पटल पर अमिट रूप से अंकित हो जाते है। पर वर्तमान से अपने को सर्वथा मुक्त करने का मतलब क्या है? क्या भूतकाल के चित्रण में वर्तमान कहीं रंचमात्र भी झलके तक न? यह तो न संभव है, न अपेक्षित। वर्तमान झलके, पर अतीत की ऐतिहासिकता को ठेस पहुँचाकर नहीं। जो प्रवृत्तियाँ आज है पर कल नहीं थी, उनका बीते कल में

१. If they do not iike this, The historians are not forced to read historical novlls. But many men in general public have broken in to history proper by historical fiction, and for every potential historian reduced from fact by fiction, a score have come through fiction to fact. Nor should it be forgotten that one historical novelist at least, Sir Walter Scott, by peopling the past with real human beings and insisting on the past as omething more than memorablice, influenced ·r good all subsequent historians—Studies · literary Modes by Arthur Melville Clark.

अस्तित्व दिखाना अनैतिहासिकता है। पर जो प्रवृत्ति आज है, उसके कुछ बीज कल थे, या कल की किसी विशेष प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में आज की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई—इस दृष्टि से अतीत की प्रवृत्तियों का अंकन करना न केवल सर्वथा संगत होगा, वल्कि पाठक के लिए वहुत रुचिकर होगा। क्योंकि पाठक तो अपने वर्तमान को एकदम भूलता नहीं। और यदि उसे अपने वर्तमान को, अतीत के परिपार्श्व में रखकर देखने से, अपनी भूलों, कमियों, कर्तव्यों का जाग्रत वोध होता है तो ऐसी रचना के लिए उसकी श्रद्धा वढ़ जाती है।

ऊपर गिनाये लेखकों को एक एक कर विचारार्थ लेने के पूर्व हम ऐतिहासिक उपन्यास के उद्देश्यों की संक्षिप्त चर्चा कर लें। *वर्तमान काल में ऐतिहासिक उपन्यास के निम्न*-लिखित एक या अनेक उद्देश्य होते हैं :—

(१) किसी विराट् ऐतिहासिक व्यक्ति का जीवन चित्रित करना।

(२) वर्तमान को अतीत से आलोकित करना।

(३) अतीत काल के मानों का पुनर्मूल्यांकन करना।

(४) प्रमुख वातों और आदर्शों का संघर्ष, घात प्रतिघात, चित्रित करना।

(५) मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व अंकित करना।

१९वीं शताब्दी तक ऐतिहासिक उपन्यासों में या तो ऐतिहासिक संगति का विशेष ध्यान नहीं रक्खा जाता था, या केवल ऐतिहासिक विवरणों से ही कथावस्तु ढकी रहती थी। साथ ही साथ इस माध्यम से सामाजिक प्रथाओं की आलोचना-निन्दा, अपने वाद की पुष्टि एवं प्रचार, और इतिहास के ज्ञान इत्यादि विविध उद्देश्य होते थे। मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व, पात्रों के स्वाभाविक चरित्र-विकास तथा सामान्य प्रवृत्तियों के विकास-संघर्ष को उपन्यासों में प्रमुखता उन्नीसवीं सदी के पर्यवसान से मिलनी शुरू हुई। आज का उपन्यास विना मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व और तत्कालीन प्रवृत्तियों के चित्रण के, जनप्रिय नहीं हो सकता।

योरोप में एक ऐसा समय था जव ऐतिहासिक उपन्यासों की तूती वोलती थी। वाल्टर स्काट और एलेक्जेंडर ड्यूमा न केवल अपने जीवन काल में आश्चर्यजनक ढङ्ग से लोकप्रिय रहे, वल्कि आज भी उनकी पुस्तकें वड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। जैनेन्द्रकुमार ने तो विश्व-साहित्य में केवल दो उपन्यासकार माने हैं—महर्षि वेदव्यास और एलेक्जेंडर ड्यूमा

भारतीय साहित्य में भी जिन्होंने आवश्यक उपकरण से अपने को सुसज्जित कर, इस क्षेत्र में पैर रक्खा, और लगन के साथ काम किया, उनको आशातीत सफलता मिली है।

सवसे पहले हम गुजराती साहित्य के तीन महारथियों कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, धूमकेतु और गुणवन्त-आचार्य की चर्चा करेंगे।

मुंशी की ऐतिहासिक रचनाओं को दो मोटे भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक तो मध्यकालीन गुजरात के इतिहास पर आधारित रचनायें। इस वर्ग में आते हैं :—'जयसोमनाथ', 'पाटन का प्रभुत्व', 'गुजरात के नाथ' और 'राजाधिराज'। इनके दो और उपन्यास और एक नाटिका—'भगवान कौटिल्य', 'पृथ्वीवल्लभ' और 'ध्रुवस्वामिनी' भी ऐतिहासिक काल पर आधारित हैं। दूसरे वर्ग की रचनाएँ शुद्ध रूप से तो ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कही जा सकतीं। कारण उनमें वैदिक और पौराणिक युग की कथाएँ हैं पर कथावस्तु का चित्रण सर्वथा ऐतिहासिक आधारों और प्रामाणिक शैली पर है। 'लोपामुद्रा', 'लोमहर्षिणी' और 'परशुराम तीन उपन्यासों और 'शंवर-कन्या' नाटिका में आर्य और दस्युओं के संघर्ष, वशिष्ठ और विश्वामित्र वर्णभेद (Colour bar) के प्रश्न पर परस्पर विरोधी मत और जमदग्नि और परशुराम के साथ हैहयराज सहस्रबाहु के वैर इत्यादि का वहुत सजीव चित्रण और व्याख्या है। अभी हाल में धारावाहिक रूप से विद्याभवन जर्नल में प्रकाशित होता हुआ 'कृष्णदशावतार' महाभारत के पात्रों को सर्वथा नवीन ढाँचे में ढालकर उपस्थित करता है। कालक्रम से इन उपन्यासों की तालिका इस प्रकार है :—

पाटन का प्रभुत्व	१९१६
गुजरात के नाथ	१९१८–१९
पृथ्वीवल्लभ	१९२०–२१
राजाधिराज	१९२२–२३
भगवान कौटिल्य	१९२४–२५
ध्रुवस्वामिनी [नाटक]	१९२८
लोपामुद्रा	१९३३–३४
जयसोमनाथ	१९३४–३७
लोमहर्षिणी	१९४६
भगवान परशुराम	१९४६

मुंशी की विशेषताओं और उनकी भारतीय वाङ्मय को

देने को आंकने के पहले हम उनके संबंध में उन्हीं के मुंह से कुछ सुन लें :—

"कहानी लेखक के रूप में, मेरी सृजनकला के तीन प्रकार मुझे दिखाई देते हैं। पहले प्रकार में मैं केवल आत्म-कथन करता, अपना अनुभव किया हुआ दुख या सुख वर्णन करता। दूसरे मे मैं अपने किसी अनुभव को पहले कल्पना में एकत्र करके, बाद में उसे मूर्तिमंत करते हुए काल्पनिक व्यक्ति या प्रसंग का सहारा लेकर कहानी लिखता। तीसरे प्रकार में बिना अनुभव की हुई मनोदशा गढ़कर, कल्पना से उसका अनुभव करके उस पर मुख्य पात्र या प्रसगों की रचना करता।"

"पाटणनी प्रभुता से मैंने दूसरा प्रकार आरम्भ किया। पृथ्वीवल्लभ में पहला प्रकार ही मुख्य है। भगवान् कौटिल्य से मैने तीसरा प्रकार अपनाया। जयसोमनाथ में मुझे इसी की प्रबलता दिखाई देती है।"

(सीधी चढ़ान–पृष्ठ १९७)

"मेरी लिखने की पद्धति ही ऐसी है जिसमें ससकल्प अनुसरण के लिए स्थान नहीं है। जब मैं कहानी लिखने बैठता हूँ तब मुझे पहिले दो-तीन परिच्छेद एक दो बार पुन: पुन: लिखने पड़ते हैं। बाद में वह सृष्टि मेरी कल्पना पर अधिकार जमा लेती है। उसके पात्रों में मै तन्मय हो जाता हूँ। शब्द, व्याकरण या अक्षर-विन्यास की परवाह किये बिना मेरी कलम कल्पना द्वारा निर्मित प्रसगों, भावों और वार्त्तालापों का केवल वेगपूर्वक व्यक्त करने का अन्धा साधन बन जाती है। ऐसे समय मेरी उद्दीप्त कल्पना किसीकी प्रतीक्षा नहीं करती। अपने नियमों के अनुसार मेरी पूर्व-संचित सामग्री की सहायता लेकर वह शाब्दिक सृजन करती है।"

(सीधी चढ़ान–पृष्ठ २४२)

उद्दीप्त कल्पना का उनके ऐतिहासिक सामग्री संचय पर पूरी तरह से हावी होकर. प्रभंजन वेग से शाब्दिक सृष्टि करने लग जाना—यह मुन्शी की अप्रतिम सफलता का रहस्य है। गुजरात के मध्यकालीन युग के और सूदूर इतिहास–वैदिक और पौराणिक-काल—के पात्रों में इतना प्रबल जीवन-स्पन्दन इसी सिद्धि द्वारा संभव हुआ है। कल्पना की यह सर्वथा स्वतन्त्र उड़ान, संयोगवश इसलिए संभव हो सकी कि हमारे देश के प्राचीन इतिहास और सस्कृति के तथ्य बहुत थोड़े है। वैदिक काल के ऋषियों, आर्य-दस्यु युद्ध दाशरात्र युद्ध इत्यादि के सम्बन्ध में वैदिक ऋचाओं एवं पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसीलिए मुन्शी ने वशिष्ठ और विश्वामित्र की व्यक्तिगत कलह, रेणुका का स्वैरिणी दोष के कारण पति की आज्ञा से पुत्र द्वारा वध—जैसे सुप्रचलित आख्यानों को तो उन्होंने बिल्कुल दरगुजर कर दिया और आज हमें भली लगनेवाली प्रवृत्तियों से अनुप्राणित करके इन घटनाओं को सर्वथा नये रूप में उपस्थित किया। श्री मुन्शी के अनुसार वशिष्ठ आर्य-रक्त-शुद्धि के प्रबल समर्थक थे, विश्वामित्र केवल संस्कार को योग्यता की कसौटी मानते थे। अपने परम स्नेही और प्रबल पराक्रमी गुरु अगस्त्य और गुरुभाई वशिष्ठ की, और अपने सारे प्रजाजन एवं परिवार के मत की अवज्ञा करके भरतों के राजा विश्वरथ (आगे चलकर विश्वामित्र) ने दस्युराज शंवर की राजकुमारी उग्रा को अपनी परिणीता वधू के रूप में स्वीकार किया। भगवती लोपामुद्रा ने बीच-बचाव न किया होता तो अगस्त्य या तो विश्वरथ के प्राण ले लेते या अपना ही प्राण दे देते। आगे चलकर, दस्युओं के राजा भेद ने जब राजा सुदास के पुत्र दिवोदास की परिणीता पत्नी शशीयसी का, जिससे उसकी (भेद की) गुप्त प्रणय-लीला काफी पहले से चल रही थी, वशिष्ठ के आश्रम से हरण किया तब सारे आर्य राजा और ऋषि वशिष्ठ क्रोध से पागल हो उठे और एकमत से राजा भेद को सवक देने का निश्चय हुआ। पर विश्वामित्र ने हँसते हुए जमदग्नि से पूछा—"यदि भेद शम्वर का पुत्र न होकर किसी आर्य राजा का पुत्र होता, यदि उसका वर्ण काला न होता, गौर होता, तब तो सह लेते या नहीं ?"

"यह अलग बात है।"

"नहीं यह सत्य बात है।.........राजा भेद यदि दास न होता तो राजा सोमक की पुत्री को भगा ले जा सकता था पर वह तो दास, अधम, वध्य, मनुष्य-कोटि का नही है, उससे ?" विश्वामित्र के स्वर में अन्तर्वेदना की ध्वनि थी।

"मामा क्या करना चाहते हैं ? क्या आप पागल हुए हैं ?"

भृगुश्रेष्ठ, मेरा मार्ग सीधा है, मैं अन्य मार्ग से नहीं जाऊँगा, भेद और उग्रा दोनों आर्य हैं, यह मेरी दृष्टि है !"

"और हम सब......"

"तुम सब मेरे सर्वस्व हो—पर जमदग्नि ! मेरे सर्वस्व से भी मेरे मन में सत्य श्रेष्ठतर है।

और इसी प्रकार परशुराम 'में रेणुका के लांछन का

सर्वथा नया कारण बताया है। पुराणों में वर्णित मान्यता को तो उन्होंने जमदग्नि के मुंह से कहलवाया है :—

'राम !' जमदग्नि ने कहा—"सृष्टि के आदिकाल से आज तक आर्यजीवन में यह कभी नहीं देखा सुना गया कि कुलपति की अर्धांगिनी ने कभी पर-पुरुष का सेवन किया हो? यह मैंने देखा है अपने ही कुल में, अपने ही घर में।....... मैंने अनेक कुलटाओं का शिरच्छेद किया है और करवाया है आज अन्तिम बार फिर अपने उसी धर्म का पालन करना चाहता हूँ।"

पर राम तो गंधर्वा के ग्राम में जाकर देख आये थे कि क्यों अम्बा कल्याणी गंधर्वराज के साथ भागकर चली गयी थी और पर-पुरुष का सेवन कर रही थी।

एक बड़े से पत्थर के बने घर के निकट पहुँचकर रेणुका उसमें प्रवेश कर गई। वहाँ पाँच रक्तपित्त के रोगियों को आश्वासन देकर वह भीतर के भाग में चली गयी।

चारपाई पर एक ऐसा व्यक्ति पड़ा हुआ था जिसके हाथ-पैर खिर गये थे। उसके पैरों से पीप वह रहा था। रेणुका को देखकर वह हर्ष के आवेश से भर आया—'अम्बा, अम्बा, आज तुम फिर आ गयीं, आज दोपहर को मैंने तुम्हें सपने में देखा था और सोचा था कि फिर तुम आओगी। अम्बा! अम्बा! उसने अपने दोनों डुण्डे हाथों को जोड़कर कहा। 'गान्धर्वराज, यह मेरा पुत्र मुझसे मिलने आया था, इसे आपसे मिलाने आई हूँ। भार्गव का सदा का दुर्धर्ष हृदय भर आया। उन्होने परशु फेंक दिया और दोनों हाथों से अपनी आँखे ढाँप लीं।

अम्बा, कल्याणी, क्षमा करो, क्षमा करो।

रेणुका ने पुत्र को बताया कि एकाएक कोढ़ का रोग गंधर्व ग्राम में फट पड़ा और वह अकेली गंधर्वा की सेवा के लिए रह गई थी। पहले इनकी संख्या ८० थी। जब 'राम' आये, तब तीस रह गई थी।

'तेरे पिता उग्र हो उठे। मैंने यहाँकी सारी वस्तुस्थिति भी उन्हें जताई, पर उन्हें सन्तोष न हो सका। मैं गंधर्व-राज के यहाँ रहती हूँ, इस बात को लेकर समूचे आर्यावर्त्त में पुण्य-प्रकोप व्याप गया।........भृगुओं की कीर्ति पर कलंक लग गया। निदान महर्षि ने मुझे आज्ञा दी कि मुझे लौट आना चाहिए। पर मैं कैसे जा सकती थी।.........मैं पागल नहीं थी। मैं पति की आज्ञा का लोप कर रही थी। मैं पराये घर वास कर रही थी, पर-पुरुष की सेवा भी करती थी। शिरच्छेद ही मेरे लिए योग्य दंड हो सकता है इस बात को भी मैंने आनन्दपूर्वक स्वीकार कर लिया। पर इन दुखियों को मैं न छोड़ सकी।' इसीलिए जब जमदग्नि से 'इस मनाई का शिरच्छेद कर' यह आज्ञा पाकर राम ने कहा।

मैं अम्बा को मारूँगा अवश्य। पिता की आज्ञा को माथे पर चढ़ाऊँगा। किन्तु उसके अनन्तर फिर मैं पितरों में जाकर नहीं मिलना चाहूँगा। मै भी अम्बा का अनुसरण करूँगा। आपके कहने से मैं भले ही आर्य हो जाऊँ पर अपनी दृष्टि में तो चांडाल से भी अधम हो जाऊँगा। जीवन भर आपने आर्यत्व पर गर्व किया है। पर उसकी सामर्थ्य से आप सदा ही भाग छूटे हैं। यदि आप चाहते तो महर्षि और मुनिवर (विश्वामित्र और वशिष्ठ) के बीच के कलह को शान्त कर सकते थे। आप यदि चाहते तो पलक मारते आर्यावर्त को एक कर सकते थे। आप यदि चाहते तो जिस अम्बा ने जगत् को उज्ज्वल किया है, उसके अंगीकार किये हुए परमधर्म को समझकर, उसके बल से सबको बचा सकते थे। केवल आर्य-गौरव के काष्ठ पिंजर को आपने आर्यत्व मान लिया है। उसके भीतर के प्राण को आपने नहीं पहचाना है।......

आपने अम्बा के समान सती को कुलटा कहा है। 'आपने चार-चार पुत्रों को उसे मारने के लिए भेजा। पर आप अपने पैरों चलकर यह देखने नहीं गये कि किन गंधर्व राम के चरणों की वह सेवा कर रही थी।

परिणाम यह हुआ कि जमदग्नि को वास्तविकता का बोध हुआ।

'रेणुका, रेणुका, 'रुदन के स्वर में जमदग्नि ने कहा-- 'मैंने तेरा बध करवाया। पर तेरे पुत्र ने तुझे जिला दिया। राम परशु फेंक दे। अपनी प्रतिज्ञा को मैं लौटा लेता हूँ।"

प्रचलित आख्यानों का ऐसा सजीव और संस्कारमय नवीकरण वन्दनीय नहीं है तो और क्या है? भले पुराणों के वर्णन के वह विरुद्ध हो, पर क्या इसी कारण वह उपेक्षणीय है, तिरस्करणीय है? पुराणों में स्वयं कल्पना का कितना लंबा हाथ है वह किसी प्राचीन भारतीय इतिहास के विवेकी विद्यार्थी से छिपा नहीं है। फिर उनमें वर्णित घटनाओं को यथावत ग्रहण करने की विवशता क्यों? मैं तो समझता हूँ कि रेणुका के चरित्र का यह पहलू सर्वथा संभव और कहीं अधिक उदात्त हैं और मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रखर कल्पना के बल पर ऐसे नवीन पुण्य-प्रसंगों की सृष्टि कर सकने में सत्यतः १९२२ से १९४५ तक का मुन्शी

का 'पच्चीस वर्ष का उल्लासमय तप' शत-प्रतिशत सफल हुआ। संयम के कठोर आदर्श से कभी-कभी जो स्खलन हुए उन प्रसंगों की ही सत्यवती, कुन्ती, अहिल्या, तारा यथार्थवादिता और आधुनिकता के नाम पर बार-बार चर्चा करने से हमें आश्वासन और मनोरंजन भले प्राप्त हो लें, पर उससे हमें स्फूर्ति, साहस, बल और दृढ़ता तो नहीं ही मिलेगें।

यह साहित्य का अपार सौभाग्य था कि मुंशी की कल्पना ने प्रणय, शौर्य, औदार्य के रमणीक और ओजस्वी चित्र अंकित किये। उनके व्यक्तिगत जीवन को देखते तो उनकी कृतियों में निराशा की कालिमा, अवसाद की जड़ता, अपमान का दंश—यही सब आने चाहिए थे। पिता की मृत्यु के बाद अनेकानेक अभाव, निरन्तर संघर्ष, बारंबार विफलता एवं तिरस्कार उनके जीवन को कंटकाकीर्ण करते रहे। अपना विश्वविद्यालय एवं कानून का अध्ययन उन्हें कितनी कठिनाइयों के बीच पूरा करने को मिला। अगाध आत्म-विश्वास, दृढ़ लगन और अपनी मा से बार-बार उत्साहित किये जाना—इन्हींके सहारे इन्हें विजय मिली। पर संघर्ष की कटुता इनके जीवन के मधु को क्षत करके ही रही। श्रीमती लीलावती ने इनके ऊपर, इनसे अपने विवाह के पूर्व, लिखे गये रेखाचित्र में ठीक ही लिखा था :

He is indifferent to the world because he could not get something from it which he wanted. In his pride, he does not complain before it, but despises it all the more and takes a delight in criticising it and tearing it to pieces before his mental eye.

मुंशी का दाम्पत्य जीवन भी बड़ा निरान्दमय रहा। १३ वर्ष की अवस्था में ही, सन् १९०० में, इनका विवाह ६ वर्ष की एक सरल बालिका लक्ष्मी के साथ कर दिया गया। बेचारी सीधी, प्रेम के कवित्वपूर्ण निवेदन से अपरिचित, बालिका, विभिन्न साहित्यों के शीर्षस्थ कवियों की अप्रतिम नायिकाओं के ध्यान में डूबे रहनेवाले, कल्पना-प्रवण, रसिक किशोर मुंशी को कैसी भाती? मुंशी के ही अपने शब्दों में सुनिए :

"लक्ष्मी के आत्म-समर्पण की सीमा नहीं। परन्तु उससे पढ़ाई नहीं होती थी। उसकी उर्मियाँ बालक के समान ठंडी, मीठी, आर्द्रता से रहित होती थीं। हृदय के भाव शब्दों या व्यवहार में व्यक्त करने की उसकी शक्ति भी परिमित थी। मैं था विद्या का भूखा, स्वभाव का कथनात्मक और दूसरे का कथन सुनने का प्यासा, आविर्भाव का रसिक तथा अंकुशरहित—तादात्म्य पर रचित प्रणय भावना का पोषण करनेवाला। मैं तो ऐसी सहचरी के लिए बेचैन था जो मेरे साथ प्रेम प्रसंग पर वाद-विवाद कर सके और कांट (Kant) तथा स्पेंसर पढ़ सके।"

१९२४ तक, जब लक्ष्मी की मृत्यु हुई, मुंशी बहुत बेचैन रहे। १९१८ में लक्ष्मी को लिखे उनके पत्र से पता लगता है कि प्रबल विचार-संयम से अपने मन-तुरंग को उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। उनकी निरन्तर चेष्टा यही रही कि निरपराधिनी पति-प्राणा सती को उनकी भग्न-हृदयता से ठेस न पहुँचे। पर उनके खुद के सन्ताप की सीमा न थी। १९१९ से श्रीमती लीलावती से प्रथम साक्षात्कार हुआ तो उन्हें लगा कि मानों जन्मजन्मान्तर की सखी मिल गयी। जिस बाल्यकाल की संगिनी बालिका को उन्होंने कल्पना में "देवी" संबोधन करके अपूर्व रूप और गुणों का आरोप करके सलज्ज और सुकुमार नवोढ़ा बना दिया था वही मानों तेरह वर्ष की समाधि के परिणामस्वरूप साक्षात् हुई जीवित खड़ी थी। "लक्ष्मी की मृत्यु के दो वर्ष बाद १९२६ में जब इनका लीलावती से लग्न हुआ तभी उस दाम्पत्य विषमता के दुर्वह भार से इन्हें निष्कृति मिली। इन सब विपरीतताओं के बावजूद, इनकी कल्पना ने जो अतिरमणीय प्रणय, अप्रतिम पराक्रम और अनुपम त्याग के विशद चित्र अंकित किये इसके लिए इनको जितना साधुवाद दिया जावे, थोड़ा है। आलोचकों एवं मनोवैज्ञानिकों के लिए यह कहना सरल है कि जीवन की विपरीतताओं के परिणामस्वरूप ही मुंशी की रचनाओं में उद्दाम प्रणय एवं पराक्रम के उदात्त प्रसंग प्रकट हुए हैं। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि संखिया से औषध बनाना बड़ा दुष्कर कार्य है और हलाहल को पान कर विश्व में मंगल की वर्षा करनेवाला नीलकण्ठ भी, देवताओं तक में, केवल एक ही है।

मुंशी की रचनाओं में दूसरी विशेषता है शुरू से अंत तक कथावस्तु की रोचकता और प्रसंगों की ओजस्विता तथा नाटकीयता। बचपन से ही मुंशी को कहानी सुनने का व्यसन था। वे जो पढ़ते उसे मा और बहिनों को सुनाते—थोड़े में नहीं, काफी विस्तार के साथ। उन्हें जहाँ लगता

श्रीमती कॉरेटा किंग

इस वर्ष अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना का नेहरू पुरस्कार अमरीका के दिवंगत नीग्रो नेता डा० मार्टिन लूथर किंग को दिया गया। वे महात्मा गांधी के अहिंसा मार्ग पर चलते हुए अमरीका के नीग्रो लोगों के लिए समान नागरिक अधिकार प्राप्त करने के आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे कि एक गोरे की गोली से शहीद हो गये। उनकी मृत्यु के कारण नेहरू पुरस्कार लेने के लिए उनकी पत्नी भारत आयी थीं। चित्र में वे पुरस्कार के साथ दी गयी प्रशस्ति पढ़ रही हैं।

स्वर्गीय वृन्दावनलालजी वर्मा
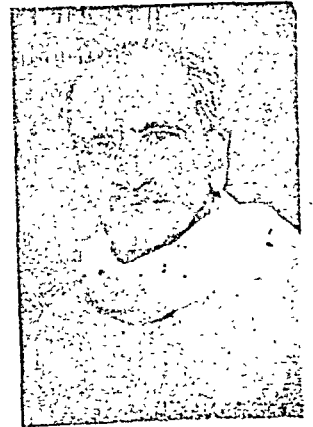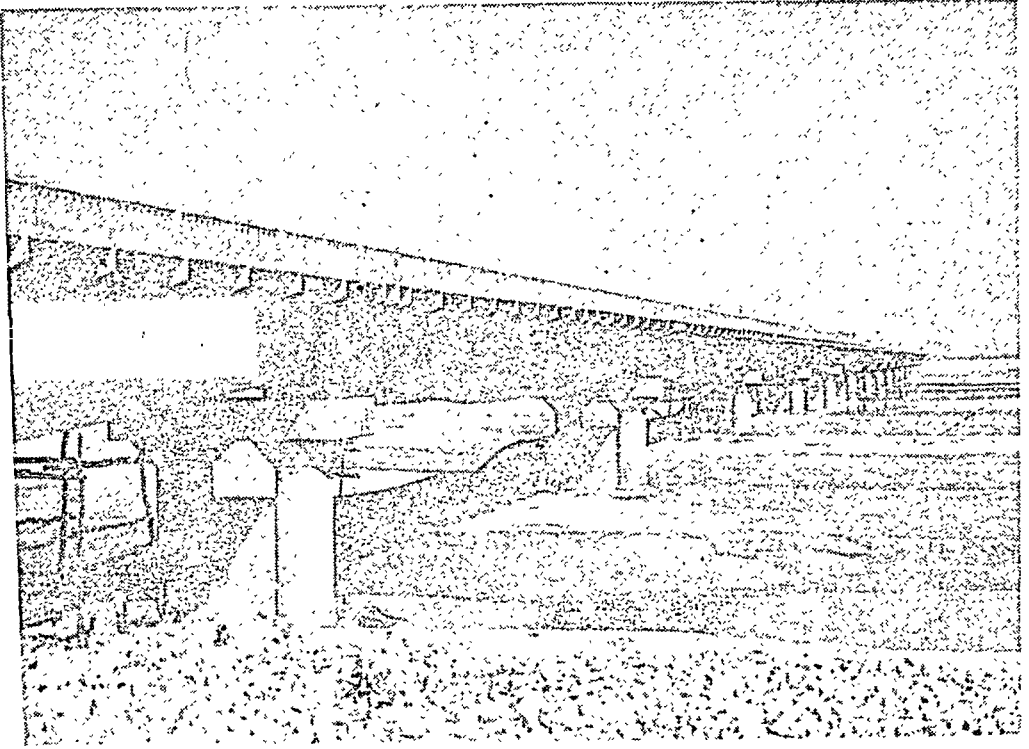
घाघरा नदी पर (बहराइच जिले में) इस ८५० मीटर लम्बे आधुनिक पुल का श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस मास की ८ तारीख को यातायात के लिए उद्घाटन किया।

कि सुननेवालों को रस नहीं आ रहा है तो अपनी ओर से कुछ मिला देने में भी वे चूकते नहीं थे। ड्यूमा के उपन्यास पहली बार तो इन्होंने "साँस लेने की परवाह किये बिना" पढ़े। बाद में बार-बार पढ़े और कुटुम्बियों को सुनाये। ड्यूमा की सृष्टि उनकी हो गयी। उनके पात्रों के साथ इनका पूरा तादात्म्य हो गया। "उपन्यास लिखने की कला मे ड्यूमा मेरा गुरु है।.........कड़ी से कड़ी कसौटी लीजिए। कथावस्तु की रोचकता, संगठन या विविधता का मापदण्ड स्थिर कीजिए, पात्रो के वैविध्य और सजीवता को' कला का अंग समझिए, संवाद कौशल, सचेष्टता और नाटकीयता को मुख्य तत्त्व मानिए, प्रसग योजना और अद्भुतता को उपन्यास का प्राण ठहराइए तो ड्यूमा की कला किसी भी साहित्यक महारथी की कला से हेठी न ठहरेगी। निरन्तर रस पैदा करने की शक्ति—जो कथा का प्राण है—को यदि माप-दण्ड माना जाय तो विश्व साहित्य मे कथा सम्राट् का मुकुट ड्यूमा को ही पहनाना पड़ेगा। इस उद्धरण मे मुशी ने सूक्ष्म में अपनी खुद की साहित्य कला के सारे सूत्र बता दिये है। एक-एक विशिष्टता का विवेचन एव उपन्यासों के प्रसगो से उनका स्पष्टीकरण तो प्रस्तुत लेख की सीमा के बाहर है। पर सब गुणो के मूल मे है कथा की रोचकता और ओजस्वी प्रसंगों की बहुलता। लीलावती ने इनके रेखाचित्र मे लिखा था कि "किसी ने यह कहा है कि इनके पात्रों मे गर्व बहुत है, इनके विषय मे भी यही कहा जा सकता है।" मुंशी को अपनी सस्कारिता, विद्या-बुद्धि-वैभव अस्मिता—एक क्षण के लिए नही भूलती थी। वही उनके पात्रो में प्रकट हुई। ऐसा नही कि दूसरी प्रकार के पात्र नही चित्रित हुए हैं। पर वे थोड़े हैं और उनके चित्रण का उद्देश्य अभिजात पात्रों के रंग को और चटक करना है। जहाँ खगार है, वहाँ देसलदेव बीसलदेव है, जहाँ विश्वरथ है, वहां अनीगर्त है; जहाँ मुंजाल और देवीप्रसाद है, वहाँ ऊदा मेहता और जैनपति आनन्दसूरि है। एक ओर विलक्षण बुद्धि, असीम पराक्रम, अथाह उदारता दूसरी ओर अकल्पनीय शुद्रता, दैन्य, स्वार्थ-लिप्सा, कपट-चातुरी। और यह भी नही हुआ कि सदैव सत् को असत् पर विजय ही मिली हो।" "जयसोमनाथ", "पृथ्वीवल्लभ", "राजाधिराज दुखान्त ही है। पर विषाद की घनी छाया घिरती आने पर भी उदास ओजस्वी पात्रों एवं प्रसंगों का सम्मिलित प्रभाव कुछ इस तरह का होता है कि सत् का गौरव पराजय में भी अधूमिल रहता हे। ठीक है, गजनी ने सोमनाथ का मदिर तोड़ ही डाला। मुन्ज को तैलप के मदमत्त हाथी ने सूंड मे लपेट कर प्राणहीन कर ही दिया, काक की प्रियतमा यम का तिरस्कार करके भी पति के लौट आने के बाद जीवित न रह सकी। पर यह सब नियति की अनिवार्यता मात्र लगती है। इस बार हार हुई है, पर क्या फिर जीत न होगी? और यदि बार बार भी हार हुई, तो भी क्या लगातार जूझते जाना जीवन को आनन्द, पराक्रम, त्याग और उदारता से बिताना स्वधर्म के लिए हँसते-हँसते अपना समर्पित कर देना इसके अतिरिक्त किसी भी विवेकी चरित्रशाली व्यक्ति के लिए और कोई मार्ग है?

निरन्तर रस पैदा करने की शक्ति को मुन्शी ने कथा का प्राण माना है और अपनी रचनाओ से इसे पूरी तरह चरितार्थ किया है। कही भी, इनकी कथा मे शिथिलता, नीरसता नही आ पाई है। मुशी ने इसके लिए बहुत सतर्कता बरती। केवल आमुख मे वे उपन्यास के काल एवं वर्ण्य इतिहास के बारे मे कुछ कहते है। पर उपन्यास के शुरू होते ही जो कुछ बताना होता है उसे केवल पात्रो के द्वारा, बहुत चुस्त एव उपयुक्त सवादो द्वारा, कहलाते है। इस सम्बन्ध मे धूमकेतु, राहुल, वृन्दावनलाल वर्मा कोई उनके सामने नही ठहरते। कथा मे आदि से अत तक ऐसा प्रवाह रखने की क्षमता केवल चतुरसेन शास्त्री मे थी। पर उन्होने काल देश की सीमाओ की जानकर बल्कि ऐलानिया उपेक्षा की। अन्यथा अतीव रोचक होते हुए भी, उनके अपने हिसाब से उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' इसीलिए अनैतिहासिकता से दूषित है। मुन्शी मे इतिहास और कल्पना बिलकुल सही सही अनुपात मे मिले है और इसीलिए न उनमे अविश्वनीयता और अप्रामाणिकता आ पाई है न ऐतिहासिकता से उनकी कथाएँ ही बोझिल हो पाई है। इस क्षेत्र मे केवल राखाल मुन्शी के समकक्ष ह। [क्रमशः]

महापुरुषों की मृत्यु

श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा

१० जनवरी को अपने भ्राता डा० सम्पूर्णानन्दजी का शवदाह करते हुए मेरे मन में जो आँधी उठी, उसे ही लिपिवद्ध कर रहा हूँ।

हर साल, हर महीने संसार के किसी-न-किसी कोने में कोई महापुरुष संसार छोड़कर चला जा रहा है, पाँच-सात दिन उसका गम मनाने के बाद लोग—घर के लोग भी—दुनिया के धंधे में लग जाते हैं, कौन कब तक किसके लिए रोये, यही क्या कम है कि हम स्वयं तो जीवित हैं। कब तक जीवित हैं, यह जानने से भी क्या लाभ ? जब आँख मुंदी, मुंद जाय।

जीना सब चाहते हैं, योगी, विरागी, संन्यासी भी। धर्मराज युधिष्ठिर से यक्ष ने प्रश्न किया था कि "आश्चर्य" क्या है, धर्मराज ने उत्तर दिया—

> अहनि अहनि भूतानि गच्छन्ति यमसादनं।
> शेषाः जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्य अतः परं॥

रोज लोग मर रहे है फिर भी जो नहीं मरता है वह जीना चाहता है। यह कितना आश्चर्य है, पर इसमें आश्चर्य क्या है ? संसार में प्रति मिनट ९० बच्चे पैदा हो रहे हैं। ६० व्यक्ति मर रहे है, । यह संख्या मरनेवालों की स्वाभाविक मृत्यु है। वसे तो सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रतिवर्ष १८,००० तथा इगलैड में १०,००० व्यक्ति तथा भारतवर्ष में प्रति घटे एक व्यक्ति आत्महत्या करके प्राण देता है, कमाल मरने मे है या जीने में ? कितनी बड़ी वात कही है एक शायर ने—

> कह दो यह कोहकन से कि मरना नहीं कमाल।
> मर मर के हिज्रे यार में जीना कमाल है॥

चार दिन का जीवन चिन्ता तथा बाधाओं के झमेले में ही बड़ी आसानी से कट जाता है, पता भी नहीं चलता कि दिन कैसे बीते और अन्तिम दिन आ जाता है। असल में छोटी सी जिन्दगी इसलिये बड़ी मालूम होती है कि वेदना के कारण समय नहीं कटता :—

> फ़र्ते ग़म से हुई है उम्र दराज़।
> एक दिन एक साल है प्यारे॥

देखते-देखते जीवन की समस्यायें लपेटती हुई, चिता पर ले जाकर रख देती हैं :—

> क्षणो बालो भूत्वा, क्षणमपि युवा कामरसिकः।
> क्षणैर्वित्तैर्हीन. क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः॥
> जरा जीर्णो रोगैः नट इव वलीमंडिततनुः।
> नरः संसारान्ते विशति यमधानी यवनिका॥

बच्चा, जवान, बूढ़ा, रोगी होते समय नहीं लगता और यमराज के घर जाने का समय आ जाता है, और जाने के समय ले क्या जाते है ?

> तोहमतें चन्द अपने जिम्मे कर चले।
> किसलिये आये थे ? हम क्या कर चले॥

यह हम क्यों भूल जाते हैं कि पैदा होने का अर्थ ही है मरना—

> पैग़ाम ज़िन्दगी ने दिया मौत का मुझे।
> मरने के इन्तज़ार में जीना पड़ा मुझे॥

या यों कहिये कि

> समझ में आ गया अंजामे ज़ीस्त ऐ वेदिल।
> बिगाड़ने के लिये हम बनाये जाते हैं॥

डर लगता है मौत से सबको—यह भी सही है। एक अंग्रेजी कवि ने ठीक लिखा है :—

> O death am I so purposeless a Thing
> Shall my soul falter or my body fear,
> Its poignant hour of bitter suffering.

क्या मैं इतनी निरर्थक वस्तु हूँ मृत्यु ? क्या मरने के नाम से मेरी आत्मा काँपेगी या शरीर भयभीत होगा ? मौत के समय की कठोर पीड़ा को सोचकर ! लेकिन इस भय से भी लाभ क्या होगा ?

> कोई मर कर जिया तुझमें।
> कोई जीकर मरा तुझमें।
> तेरी खुशफेलियाँ हम—
> कूचये कातिल समझते हैं॥

खुशफेलियाँ का अर्थ होता है अद्भुत कार्य। सब लोग मरने से नहीं डरते। महापुरुष कभी नहीं डरते। कवीरदास ने लिखा है :—

जिस मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहौं कब भेंटिहौं, पूरन परमानन्द ॥
जब लग मरने से डरै तब लग प्रेमी नाहिं ।
बड़ा दूर घर प्रेम का, समझ देख मन माहिं ॥

लेकिन मरने से वही डरता है जिसका मन माया-मोह में इतना लिपटा है कि उससे संसार छोड़ते नहीं बनता । मन बड़ा चंचल है । साधारण व्यक्ति को वैराग्य नहीं होता, गीता में लिखा है :—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

अभ्यास से ही वैराग्य होता है । पतंजलि ने लिखा है कि अभ्यास वैराग्यभ्यां तन्निरोधः"—अभ्यास और वैराग्य से इसका (वृत्तियों का) निरोध होता है, पर आज कल किसे अवकाश है कि अभ्यास और वैराग्य की शरण ले । इसलिये कि—कबीरदासजी के ही शब्दों में—

जीवत ही मरना भला, जो मरि जाने कोय ।
मरने पहले जो मरे, अजर अमर सो होय ॥

कितना काम कीजियेगा संसार में, विज्ञान चाहे कितना भी आगे बढ़ जाय पर विश्व का रहस्य रहस्य ही बना रहेगा । डा० आर० ए० मिलिकन का कथन है कि मनुष्य कुछ भी नहीं जानता । इसकी सीधी मिसाल है कि १६ पावर के बिजली के लैम्प में से एक क्षण में जितने विद्युत्कण निकलते हैं उनकी संख्या गिनने के लिए २५ लाख व्यक्ति बराबर २४ घंटे गणना करते रहें तो उन्हें २०,००० वर्ष चाहिये । सर आर्थर एडिंगटन ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अपने एक व्याख्यान में कहा था कि दुनिया में "प्रोटोन" नामक अणु की संख्या लगभग १५, ७४७, ७२४, १३६, २७५, ००२, ५७७, ६०५, ६५३, ६६१, १८१, ५५५, ४६८, ०४४, ७१७, ६१४, ५२०, ११६, ७०६, ३६६, २३१, ४२५, ०७६, १८५, ८३१, ०३१, २६६ है जो निरन्तर बन रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं । गिन सकिये तो जरा मुंह से गिन ही लीजिये इस संख्या को । और इन्हीं प्रोटोनों से बना हमारा शरीर प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है । बन रहा है । फिर मरने में क्या नवीनता है ? हम प्रति क्षण मरते जीते है—

आरजू फिर आरजू के बाद खूने आरजू ।
चार हरफ़ों में है सारी दास्ताने ज़िन्दगी ॥

केवल इच्छा, आकांक्षा, विकार—इन्हींसे जीवन ओत-प्रोत है, एड्री मॉराय ने अपनी पुस्तक "कोई मनुष्य सुखी नहीं है"—में लिखा है कि "जीवन को चलाये चलो, चिन्ता छोड़ दो । बस ।" आगे वे लिखते हैं "कदम सम्हाल कर चलो, धीरे-धीरे चलोगे तो ठीक रहेगा, अगर बीते समय की गति-पूर्त्ति के लिए बहुत हाथ-पैर फटकारोगे तो कुछ भी न बनेगा ।" यह इसलिए भी कि मौत कभी आती नहीं, सदैव प्रस्तुत है । पुराणों में मृत्यु के देवता यमराज की सवारी भैंसे पर है, पर यह केवल संकेत है, भैंसा पौराणिक व्याख्या के अनुसार मोह का परिचायक है । मृत्यु मोह मृत्युंजय महादेव की व्याख्या में लिखा है कि "मृत्यु का अर्थ है प्रसाद" जो प्रसाद पर विजय पा जाय वही मृत्युंजय है, इसलिए कि प्रमादी के लिए दिन-रात्रि मृत्यु है, जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार जो छुटकारा दिलाये वह मृत्यु है—'मुंचति इति मृत्यु' तब डरना क्यों उस वस्तु से जो छुटकारा दिलाती है । कहते हैं कि चिन्ता और चिता में बहुत कम फासला है, जिसने बुद्धि से काम लिया वह कल्याण पाता है, "शिव" में से इ निकाल दे तो "शव" बन जाता है । बुद्धिहीन मनुष्य मुर्दा हो जाता है । बुद्धिमान चिन्ता नहीं करता । कर्तव्य का पालन करता है और जो चिन्ता नहीं करता उसके लिए बाबा कबीरदास ने लिखा है—

फिकिर तो सबको खा गयी, फिकिर की भारी पीर ।
फिकिर का फाका जो करे, कहिये ताहि फकीर ॥

फिर लिखा है—

मन सराय तन पाहरू मनसा उतरी आय ।
कोऊ काहू का नहीं देखा ठोंक बजाय ॥

एक दिन ऐसा आयगा कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी क्या करे, तन की नारी नाहिं ॥

पश्चिमीय विद्वानों की दृष्टि में

जान फ़ोस्टर ने लिखा है कि मृत्यु वैसे ही है जसे किसी बैंक में चेक जमा कर सुवर्ण प्राप्त किया जाय । इस बोझिल शरीर को हम रखना नहीं चाहते । इसे लाकर पटक देते हैं और इसके बदले में स्वतंत्रता, ज्ञान, विजय प्राप्त करते हैं । कितना आनन्द है उस स्थिति में, जे०

क्लार्क के विचार से मृत्यु अंधेरे कमरे से निकलकर प्रकाशमय स्थिति को प्राप्त करना है। स्विफ्ट की दृष्टि में मृत्यु इतनी स्वाभाविक तथा आवश्यक वस्तु है कि यह कहना कि भगवान् ने मौत क्यों बनाया बड़ी भारी भूल है। शरलाक ने लिखा है कि जब हम इस संसार को छोड़कर दुःख से रहित सुखमय परलोक में प्रवेश करते हैं तब हमारी समझ में आता है कि परलोक छोड़कर इस लोक में आना ही वास्तव में मृत्यु है। मृत्यु मरने में नहीं, जन्म लेने में है। कोल्टन ने लिखा है कि मृत्यु उनको स्वतंत्रता प्रदान करती है जो स्वतंत्र रहते हुए भी परतंत्र हैं। उन्हें चिकित्सा प्रदान करती है जिन्हें डाक्टर नहीं अच्छा कर सकता तथा उन्हें शान्ति प्रदान करती है जो संसार में उसका अनुभव नहीं कर सकते। डबल्यू० मिटफ़ोर्ड की दृष्टि में वही लोग मौत से डरते हैं जो इसे बुरी चीज समझते हैं। उन्हें क्या पता कि संसार में यही सबसे अच्छी चीज है। टियन एडवर्ड्स कहते हैं कि दुनिया मरनेवालों की बस्ती है पर परलोक ज़िन्दा रहनेवालों का घर है। डर्बी ने लिखा है कि क्लेन (विद्वान् विचारक) जब मरने लगे तो धीमी आवाज़ में बोले—"क्या बताऊँ, अब बोलने या लिखने की शक्ति नहीं है वरना मैं बतलाता कि इस समय मरने में कितना मज़ा आ रहा है।"

हार्थन के अनुसार :—

"जिस प्रकार भयानक सपना देखने के बाद जब हमारी नींद खुलती है तो हम अपने को बधाई देते हैं, उसी प्रकार मरने के बाद भी हम अपने को बधाई देते रहेंगे।"

शेक्सपियर के अनुसार जो मृत्यु को भयंकर वस्तु समझता है निश्चय ही उसका जीवन दूषित रहा होगा।

क्योंकि हमारे जीवन में सुख कहाँ है? लिखा है :—

> जीवन्तोऽपि मृताः पंच
> व्यासेन परिकीर्त्तितः।
> दरिद्रो व्याधितो मूर्खः
> प्रवासी नित्यसेवकः॥

जीवित रहते हुए भी पाँच प्रकार के लोग मरे के समान हैं—दरिद्र, व्याधा, मूर्ख, परदेश में पड़ा हुआ और चाकरी करके पेट भरनेवाला।

जब जीवन तथा मृत्यु की ऐसी व्याख्या है तो महापुरुषों की मृत्यु से हमें यही सन्तोष होता है कि वे मर कर जी गये। अंधेरे से उजेले में चले गये और उनकी मृत्यु की वास्तविकता कबीर के इस दोहे में है :—

> धन रहे न जोबन रहे, रहे नाम ना गाम।
> कबिरा केवल जस रहे, कर ले सच्चा काम॥

जो सच्चा काम करके चला गया, वही वास्तव में जी गया।
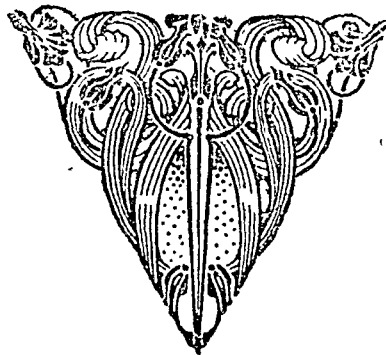
मुक्त मार्ग की मंजिल

श्री लक्ष्मीनिवास बिरला

सतत नये नये विचार, नया ज्ञान, नये लोग ये सभी सृष्टि की प्रकृति के बारे में हमारी विज्ञता में निरंतर परिवर्त्तन कर रहे हैं। व्यक्ति पर इसका सीधा और निर्णयात्मक परिणाम यह पड़ रहा है कि अब कोई भी बालक उसी प्रकार की दुनिया में रहने का नहीं, जिसमें उसके पिता और पितामह रह रहे हैं।

सहस्रों वर्षो से बच्चे अपने पूर्वजो के दिखाये मार्गो पर चलते रहे हैं। उन्हें सुस्थिर पथों पर चलने तथा संस्कार-बद्ध जीवन जीने के लिए दीक्षित किया जाता रहा है, और उन्होंने अपनी जन्म-भूमि तथा परिवार के साथ आन्तरिक सम्बन्ध कायम रखे हैं। आज, न केवल अतीत से पूर्ण विच्छेद हो रहा है, वरन् बच्चे को एक अनजान भविष्य के लिए शिक्षित करना भी अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

यह सब न केवल हमारे युग की ज्वलंत विशेषता है, उसके रूप-परिवर्त्तनों का मूल भी है। क्योंकि, जैसे-जैसे दुनिया हमारे सामने अधिक उजागर होती है, अनुभव की भूख भी बढ़ती है। परिवर्त्तन तथा नवीनता की लालसा है, और चमत्कार की खोज है। इससे पुराने विश्वासों का क्षरण हो रहा है। उनका स्थान मिले-जुले विश्वास और शैलियाँ ले रही हैं। प्राचीन और परंपरागत रूढ़ियों को तिलांजलि दी जा रही है। संस्कृति का यह मिला-जुला रूप भी इतनी तेजी से आज के जीवन की लय को निर्धारित कर रहा है, जिसमें मौजूदा दुनिया में अर्थ की खोज में परेशान अनगिनत व्यक्तियों की अशांति-भावना निहित है।

अतीत में सभी मानव-समाजों ने 'पावन' और 'अपावन'' में भेद किया है, किन्तु हमारा युग निरपेक्ष है।

हमारे युग की एक दूसरी ज्वलंत विशेषता यह है कि जनता अपने सामाजिक "निषेध" को स्वीकार करने के लिए और अधिक प्रस्तुत नहीं है। बुनियादी अर्थो में, यह भावना व्यक्तिवाद के ऐतिहासिक दावों से श्रेणी नहीं, व्यक्ति की भाँति समझने की माँग से विकसित हो रही है।

अत्यन्त उलझे, जन-संकुल राष्ट्रीय समाज में एक नया सामाजिक रूप प्रकट हो रहा है। इसे हम सामुदायिक समाज कह सकते हैं। इस सामुदायिक समाज की विशेषता न केवल परस्पर-निर्भरता में वृद्धि है, वरन् यह तथ्य भी है कि व्यक्ति के अभावों को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक कार्य दल या सामुदायिक साधनों के माध्यम से करने पड़ रहे हैं।

राजनीति के ऐसे दलगत आधार के फलस्वरूप लक्ष्यों और अधिकारों का संघर्ष होना स्वाभाविक है। व्यक्ति के मूल अधिकारों पर आधारित परम्परागत सिद्धान्त विवादों को सुलझाने के लिए सदा स्पष्ट नियम नहीं दे पाते। और फिर व्यक्ति को भी जीवित तो रहना ही है।

किन्तु यह बात सहज समझ में आ जानी चाहिए कि हमारे समाज के सामने जैसी समस्याएँ हैं, उन्हें सुलझाने के लिए वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक संगठन पूर्णतः अपर्याप्त हैं।

आज के समाज-शास्त्र में एक ऐसी बहस छिड़ी हुई है जो यहाँ व्यक्त विवादों की जड़ तक पहुँचती है। व्यक्ति पर आधुनिक समाज के प्रभाव का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया जा रहा है। एक ओर ऐसे लेखक हैं जिनकी दृष्टि में आज का समाज नये विस्तारों, अधिक गतिशीलता और नये विचारों तथा नई संस्कृतियों की सम्पूर्ण उपलब्धियों के कारण व्यक्ति को अधिक अवसर प्रदान कर रहा है। एक समाज-शास्त्री का कहना है कि आधुनिक होने का अर्थ जीवन को विकल्पों, प्राथमिकताओं और अभिरुचियों के रूप में देखना है। दूसरी ओर ऐसे लेखन हैं जिनकी दृष्टि में मानव पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विच्छिन्न, और अलग-अलग हो गये हैं।

आज के अधिकांश राजनीतिक और सामाजिक विवाद परिवर्तन की गति और रूप के बारे में चिन्ता से पैदा होते हैं। अनेक मामलों में, विरोध के साथ ये प्रस्ताव भी आते हैं कि सरकार कुछ अधिक नियंत्रण लागू कर व्यवस्था कायम करे। केन्द्रीय सरकार से यह आशा करना व्यर्थ है कि वह बड़ी मात्रा में लचीलापन तथा विकेन्द्रीकरण अपनाकर व्यक्ति की पूरी रक्षा करेगी।

पूर्णिमा की निस्तब्ध रात्रि में आकाश में पूर्ण चन्द्र अपनी छटा बिखेर रहा था। करोड़ों वर्षो से वह पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और इसमें कभी व्यवधान नहीं पड़ा। उसके ग्रहण तक क्रमबद्ध होते हैं और उनकी

भविष्यवाणी की जा सकती है। सृष्टि की घड़ी न कभी तेज चलती है, न धीमी। प्रकृति में सर्वत्र अद्भुत संतुलन और लय है। वह व्यवस्था और निश्चितता के अनुशासन में बँधी है। चन्द्रमा गुरुत्वाकर्पण के नियमों का पालन करता है, किन्तु मानव-जीवन के बारे में पूरी तरह कुछ भी भविष्यवाणी नही की जा सकती, क्योंकि मनुष्य—केवल मनुष्य ही—अपने वातावरण में परिवर्तन ला सकता है या अपना भविष्य वदल सकता है। ईश्वर ने उसे अपनी इच्छा-शक्ति दी है और उसको खुला छोड़ दिया है। वह सोचने को स्वतन्त्र है। वह तंत्र के अधीन है पर वह तंत्र है उसका अपना। स्वतन्त्र या स्वनियंत्रित।

दर्शन ही चिन्तन है। वह विज्ञान, धर्म तथा जीवन के बीच मानों पुल है। वह एक भावना है—एक अनुशासन है—सदाचरण है। वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सत्य की खोज है।

उच्च प्रशासनिक दायित्व के पदों पर आसीन लोगों में अपने निजी निर्णयों में अधिक विश्वास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वे स्थितियों का सर्वेक्षण करने और सही निर्णय लेने में दूसरों की अपेक्षा स्वयं को अधिक निपुण समझते हैं। दरअसल, यह उनका काम है। लेकिन जव जनता भी सम्वन्धित है, तो ये अधिकारी यह महसूस नहीं कर पाते कि इस विश्वास को प्रकट करने के लिए निर्णय की घोषणा भर ही पर्याप्त नहीं है। मुख्य कार्यकारी लोगों से यह आशा नहीं कर सकता कि वे उसके निर्णयों पर केवल इसलिए विश्वास करें, क्योंकि वे 'उसके' निर्णय हैं। उसे वताना चाहिए कि उसने किन प्रमुख वातों को ध्यान में रखा है, जिससे लोग जान जाएँ कि उसने कुछ निर्णय किया है, वह सही है और प्रभावशाली नीति भी है। लोग लक्ष्य के वजाय साधनों के वारे में एक उच्च अधिकारी को कहीं अधिक छूट देने के लिए तैयार हो सकते हैं किंतु उन्हें यह महसूस हो जाना चाहिए कि उसके निर्णय और नीति में वे भी भागीदार है।

विंस्टन चर्चिल ने लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा था कि "उसमें दूसरे लोगों की राय पर निर्णय में सामंजस्य करने की प्रायः आवश्यकता होती है।" वह इस नीति को दूसरे युद्धकालीन नेताओं से ज्यादा भलीभाँति समझते थे। जव परिस्थितियों ने मोड़ लिया तव उन्होंने लोगों को जाकर समझाया कि क्या हो चुका है और क्यों? उन्होंने अपने निर्णयों की सहज घोषणा करने के वजाय सावधानी तथा धैर्य से उन्हें समझाया और इस वात पर वल दिया कि जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से न केवल निर्णय करती है वरन् उत्तरदायित्व में भी हिस्सा वँटाती है।

जव नीतियाँ और कानून जनमत से दूर पड़ जाते हैं या यह मान लिया जाता है कि जनमत तो उनके पक्ष में ही है, अथवा नेतृत्व जनता के मन को जीतने में असफल रहता है, तो उसका स्वाभाविक औचित्य समाप्त हो जाता है। तव जड़ रहित वृक्ष की भाँति लोकतांत्रिक परीक्षण एक अभिशाप वन जाता है। जो कुछ चल रहा है उसे वदलने में प्रकटतः निःस्वत्व जनता अपनी सरकार से खिंच जाएगी। जव नीति वदल पाने की सम्भावना क्षीण ही होती है तो वह प्रायः प्रदर्शन कर नीति को चुनौती देती है। उसकी असमर्थता से या तो निष्क्रिय उपेक्षा या कहीं अधिक खतरनाक सीधी शत्रुता जन्म ले लेती है।

कुछ लोकनेता ऐसे होते हैं, जिनमें अपनी वात समझाने की आदत नहीं होती। वे घोषणा करते हैं, सिखाते हैं, अपील करते हैं और दलीलें देते हैं। लेकिन वे खुलकर अपनी वात नहीं कहते कि उन्होंने क्या किया है और उसके वारे में वे क्या सोचते हैं, क्या महसूस करते है। इस प्रकार आम वातावरण रहस्यपूर्ण वन जाता है जो अवश्य ही संकट के समय मन का उत्साह नहीं बढ़ाता। राष्ट्रीय सुरक्षा की, संकट आने पर, लोग जानकारी न मिलने को सहन कर सकते हैं। किन्तु जिस क्षण समझ लेंगे कि रहस्य, रहस्य वनाए रखने के लिए है, उसी क्षण उसे सहन न करने की भावनात्मक प्रतिक्रिया होने की संभावना है।

युद्धोत्तर पीढ़ी के सामने दो ही विकल्प है कम्युनिस्ट संसार के साथ सवका एकीकरण, अथवा अपनी स्वतंत्रता वनाए रखने के लिए प्रयत्न करना। अपने समाज के रूप और अपने भविष्य का निर्णय करने का मनुष्य का अधिकार सर्वथा स्वाभाविक लगता है और ऐसा सकारण है। आत्म-निर्णय का सिद्धांत वैदिक समाज में तो था ही, पर यूरोप में भी प्राचीन ग्रीस में दास युग के समय प्रतिपादित हुआ, मध्य युग के प्रबुध्य धर्म ज्ञान और पुनर्जागरण द्वारा उठाया गया, "संसदों की जननी" इंगलैण्ड द्वारा अमल में लाया गया, फ्रांसीसी क्रांति द्वारा उद्घोषित किया गया और उद्योग की स्वतंत्रता की प्रेरणा के माध्यम से

[शेष पृष्ठ २२२ पर देखिए

सोवियत रूस में मानवता जीवित है

श्री शंकरसहाय सक्सेना--भूतपूर्व शिक्षा निदेशक-राजस्थान

अभी कुछ समय हुआ जबकि सोवियत रूस के नेतृत्व में उसके अधीन मित्रराष्ट्रों की सेनाओं ने जैकोस्लावाकिया पर आक्रमण कर उसे पादाक्रान्त किया था। जैकोस्लावाकिया के विरुद्ध सोवियत रूस के उस बर्बर व्यवहार और सैन्य संचालन ने संसार के प्रत्येक देश में उन लोगों को भी झकझोर दिया जो यह मानते थे कि सोवियत रूस एक वामपक्षीय प्रगतिशील राष्ट्र है, वह साम्राज्यवादी राष्ट्र नहीं बन सकता। परन्तु वह स्वप्न टूट गया जबकि रूसी सेनाओं ने जैकोस्लावाकिया पर इस कारण आक्रमण कर दिया कि वहाँकी कम्यूनिस्ट पार्टी ने जो सत्तावान थी अपने देशवासियो को लेखन, भाषण और विचार की स्वतंत्रता प्रदान करने का निर्णय कर लिया।

जैकोस्लावाकिया के सर्वमान्य नेता प्र ड्यूबेक और प्रधान मंत्री को कैदकर और हाथों में हथकड़ियाँ डालकर मास्को ले आया गया। अन्य नेताओं के साथ भी ऐसा ही अपमानजनक व्यवहार किया गया। जब जैकोस्लावाकिया के नेता मास्को लाये गये तो उन्हें क्रैमलिन में इकट्ठा किया गया। रूसी नेता उन्हें इस प्रकार घूरकर देखते थे मानों कुछ नये प्रकार के जानवर पकड़कर अजायबघर में लाये गये हों। कोसीगन ने जैच प्रसीडियम के उदार सदस्य 'फ्रांट्से-क्रेगिल' की ओर देखकर घृणा के स्वर में यह कहा—"गैलीशिया से लाया हुआ यहूदी कौन है"

जैच नेताओं पर मास्को में ऐसा वीभत्स मनोवैज्ञानिक दबाव डाला गया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यहाँ तक कि उनको धमकी दी गयी कि उनको मरवा दिया जावेगा। जैकोस्लावाकिया की राजधानी 'प्राग' तथा समस्त देश में जैच जनता ने जिस अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया और देशव्यापी सत्याग्रह हुआ उसकी तनिक भी खबर बदी जैच नेताओ को नहीं होने दी गयी। रूसी नेताओं ने जैकोस्लावाकिया के राष्ट्रपति बन्दी 'सवोवोदा' को यह भी धमकी दी कि यदि उन्होंने रूस के कहे अनुसार समझौता नहीं किया तो 'स्लोवाकिया' का प्रदेश सोवियत रूस में मिला लिया जावेगा और शेष जैकोस्लावाकिया को स्वशासित गणतंत्रों में संगठित कर उनका प्रशासन किया जावेगा। वे स्वशासित गणतंत्र उसी प्रकार के होते जैसा कि तिब्बत चीन के आधीन स्वशासित है।

ऐसी असहाय अवस्था में बन्दी जैच नेताओं ने समझौते पर हस्ताक्षर कर दिया। कहना चाहिए कि एक प्रकार से आत्म-समर्पण कर दिया।

इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि समस्त जैकोस्लावाकिया में रूस की गुप्त पुलिस का जाल बिछा दिया गया। कितने व्यक्तियों को कैद कर लिया गया और उन्हें सुदूर बन्दी शिवरों में ले जाया गया। यह किसी को भी ज्ञात नही है। राष्ट्र की सम्पूर्ण सचार-व्यवस्था पर रूस का अधिकार हो गया। भविष्य में जैच सरकार कौन सी रीति नीति अपनाएगी वह निर्धारित कर दी गयी। पश्चिमी जर्मनी से पूर्ण शत्रुता को पुनर्जीवित किया गया। भविष्य में जैकोस्लावाकिया अपने आर्थिक विकास के लिए पूंजीवादी राष्ट्रों से ऋण या सहायता नही ले सकेगा। जैकोस्लावाकिया की सेना पूर्ण रूप से रूस के नियत्रण में रहेगी। जब तक रूस आवश्यक समझेगा सोवियत रूस की सेनाएँ जैकोस्लावाकिया मे रहेगी। जैकोस्लावाकिया सोवियत रूस का एक शासित प्रदेश बन गया। यही कारण था कि ३० अगस्त १९६८ को जैकोस्लावाकिया के प्रधानमत्री ने उन लोगों को जिन्होंने रूस के विरुद्ध सत्याग्रह में प्रमुख भाग लिया था और स्वतंत्रता की भावना का प्रदर्शन किया था देश से भाग जाने की सलाह दी थी।

परन्तु जंच जनता ने अपने नेताओ के इस आत्मसमर्पण को स्वीकार नहीं किया। उसने साम्राज्यवादी रूस को चुनौती दी, उसे ललकारा। जगह-जगह रूसी विरोधी प्रदर्शन हुए, कई नेता रूस विरोधी होने के कारण अपदस्थ कर दिये गये, और कई स्वय हट गये क्योकि वे उस समझौते को अपनी आत्मा से स्वीकार नही कर सके। जैच तरुणाई ने रूसियों का प्रत्येक स्थान पर विरोध करना आरम्भ कर दिया, और आज तो जैच युवक विश्व की मानवता को चुनौती देकर आत्मदाह कर राष्ट्रीय यज्ञ में अपनी आहुति दे रहे हैं। सोवियत रूस जैकोस्लावाकिया के इस राष्ट्रीय आक्रोप से स्तम्भित है। जिस विचार स्वातंत्र्य को समाप्त करने के लिए उसने जैकोस्लावाकिया को पदा-

क्रान्त किया था वह नहीं हो सका, सोवियत रूस का उद्देश्य सफल नहीं हुआ।

मानवजाति के लिए यह संतोष की बात है कि सोवियत रूस जैसा शक्तिशाली और अधिनायकवाद में विश्वास रखनेवाला देश, जो अपनी सैनिक शक्ति, टैंक और अणु-वम के द्वारा विश्व को आतंकित करता है, और जो एक नये प्रकार के साम्राज्यवाद की जड़ों को मजबूत बना रहा है वह स्वतंत्र लेखन, और स्वतंत्र भाषण से स्वयं भयभीत और आतंकित है। सोवियत रूस का जैकोस्लावाकिया पर आक्रमण इस वात का प्रमाण है कि वन्दूक शब्दों से भयभीत हो गयी थी।

यह वात वहुत महत्त्वपूर्ण है कि सोवियत रूस के नेताओं ने अपने देश में पुनः स्टालिन आतंक और भय को पुनर्जीवित कर रूसी लेखकों की आत्मा की आवाज को आतक और भय से दवा दिया। उसके वाद ही उसने जैको-स्लावाकिया की स्वतत्रता का अपहरण किया नही तो सोवियत रूस के राजनीतिक सत्ताधारियो को यह भय था कि स्वयं सोवियत रूस के लेखक सोवियत रूस के इस जघन्य पाप का विरोध करते।

सोवियत रूस के सत्ताधारियों का भय सही था। यह इसीसे सिद्ध होता है कि सोवियत रूस की सेनाओ के जैको-स्लावाकिया पर आक्रमण करने के दो दिन उपरान्त ही सोवियत रूस के अट्ठासी प्रमुख लेखको ने जकोस्लावाकिया के लेखकों को एक अत्यन्त विनम्र किन्तु भावनापूर्ण क्षमा-याचना का पत्र लिखा। लदन के 'टाइम्स' पत्र में सोवियत रूस के अट्ठासी लेखकों का वह ऐतिहासिक पत्र प्रकाशित हुआ है जिसका अनुवाद वी 'निकोलस बैथल' ने किया था। उस रूसी लेखकों के पत्र के नीचे हस्ताक्षरों के स्थान पर केवल यह शब्द लिखे थे "मास्को के लेखक"। यह इस वात का द्योतक है कि सोवियत रूस में आज कितने भय और आतक का साम्राज्य है कि सोवियत रूस के प्रमुख लेखक अपने नामों के हस्ताक्षर करने का भी साहस नही कर सकते।

रूसी लेखकों का पत्र

जैकोस्लावाकिया के लेखकों को,

प्रिय मित्रो, आप रुधिर के नाते हमारे भाई तो हैं ही लेखनी के नाते भी भाई हैं। आपके देश के इन आपत्ति-काल के दिनों में हम मास्को के लेखक अपनी घोर असमर्थता को लज्जा के साथ अनुभव करते हैं, और आपकी इस दुखान्त परिस्थिति के कष्टों के भागीदार है। उन सभी व्यक्तियों (लेखकों) के कंधों पर आज घोर विपत्ति मंडरा रही है जिन्होंने अपनी प्रतिभा और अपने शब्दों का मानव जाति की सेवा के लिए उपयोग किया है। आज 'स्वतंत्रता का गला केवल जैकोस्लावाकिया में ही नही घोटा जा रहा है वरन् हमारे देश में भी स्वतंत्रता का गला उसी निर्दयता से घोटा जा रहा है।

हम इस कारण अत्यन्त लज्जित है कि इस अवसर पर स्वतंत्रता का गला घोटनेवाले हमारे देशवासी है। हमारा वर्तमान स्टालिनवादी पद्धति का नेतृत्व और सदैव सतर्क रहनेवाले सुरक्षा के राजकीय विभागो के कारण आज हम आपके वचाव के पक्ष में अपनी आवाज नहीं उठा सकते। इस वर्ष के जनवरी मास से हम आप लोगों के संघर्ष को ईर्षा के साथ ध्यान से देख रहे है और हमे यह देखकर अत्यन्त हर्ष है कि कम से कम एक 'स्लावानिक' देश ऐसा है जहाँ वास्तविक 'कम्यूनिस्ट स्वतंत्रता-विचार, वाणी और आचरण की स्वतत्रता विद्यमान है।

दुर्भाग्यवश इस पत्र के साथ प्रत्येक रूसी लेखक सम्मिलित है। आज भी यहाँ कई ऐसे साहित्यिक व्यक्ति है जिन्होने अपनी लेखनी को रुढ़ान्तवाद (डौगमटिज्म) की सेवा में अर्पित कर दिया है, और वे उस स्तर तक नीचे पहुँच गये है कि जो किसी भी लेखक के लिए लज्जाजनक है। हमें सृजनात्मक स्वतंत्रता के दमन का विस्तृत और लम्बा अनुभव है, यही कारण है कि हम आज आपसे एक प्रार्थना करने के लिए यह पत्र लिख रहे है कि भविष्य में चाहे जो भी हो आप लोग रुढ़ान्तवादियो की विचारधारा की किसी चाल या उसके लालच के शिकार न हों। अपने देश में सेसरशिप आप पुनः लागू न होने दे और वे लोग यदि आप पर बलपूर्वक फेडिन, शोलोखोव, या सोफरोनोव, जैसे साहित्यिक सट्टेवाजों की कृतियों को लादना चाहें, तो भी आप उनसे प्रभावित न हो, और इस प्रकार अपने को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न न करें।

हम अपनी ओर से वचन देते हैं कि हम सच्चाई और ईमानदारी से मानववाद की सेवा करेंगे। हम कभी भी अपनी लेखनी को उन स्याही के कुओं में नही डुवोयेंगे जिनमें खून भरा है। फिर चाहे वे हमें साइवेरिया के कैदी शिवरों में भेजने की धमकी दें, चाहे हमारे सर्वोत्तम साहित्य

के ग्रन्थों को प्रकाशित न करें, चाहे वे हमें भौतिक क्षुधा और आध्यात्मिक भूख से पीड़ित करें, हम अपनी आन, इज्जत, और आत्मा को नहीं बेचेंगे। जिस प्रकार हम आज भी और सैकड़ों पीढ़ियों से एक खून के रहे हैं, उसी प्रकार हम इसमें भी एक रहेंगे।

भविष्य में किसी दिन इतिहास उन सबों के नामों की घोषणा करेगा जिन्होंने इस पत्रपर हस्ताक्षर किये हैं, परंतु आज अभी यह सम्भव है। हम अट्ठासी लेखक हैं जिन्होंने यह पत्र लिखा है। अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो चालकों की भाषा में अट्ठासी का अंक एक सम्पूर्ण योग है। अतएव हमारा यह कटु आलिंगन स्वीकार कीजिए—उसकी जो भी कीमत हो। यह कोई 'जुडा' का चुम्बन नहीं है। हमें क्षमा करो और रूस को क्षमा करो। रूस को उन आँसुओं के लिए जिन्हें आज आप बहा रहे हैं दोष न दीजिए।

औचित्य चिरजीवी हो,

'मास्को के लेखक'

मास्को के अट्ठासी लेखकों के ऊपर लिखे पत्र में कितनी वेदना है, कितनी पीड़ा है। रूस द्वारा जैकोस्लावाकिया की स्वतंत्रता के अपहरण से वे कितने दुखी हैं, और अपने ही देश में जो उनकी लेखन और विचार प्रकाशन की स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया गया है, उसका कैसा दारुण चित्रण है। वास्तव में सोवियत रूस, चीन तथा अन्य कम्यूनिस्ट देशों में मानवता सिसक रही है और पीड़ा से कराह रही है।

किन्तु इस निविड़ अंधकार में एक प्रकाश की रेखा है जो मानवता के लिए आशा का महान् श्रोत है। सोवियत रूस में आज ऐसे लेखक मौजूद हैं जो विचार करने, लेखन और भाषण की स्वतंत्रता के अपहरण की उस घुटन को अपने हृदय में अनुभव करते हैं, उनकी आत्मा अभी जीवित है, मर नहीं गयी है। वे सोवियत नेताओं के इस जघन्य कार्य की भर्त्सना करते हैं, और उनकी विरुदावली का गान करने से इनकार करते हैं। मानव जाति के लिए यह आशा और संतोष का विषय है। जो प्रकाश की रेखा आज इन रूसी लेखकों के हृदय में जगमग कर रही है, वह किसी दिन महान् प्रकाश-पुंज बनकर सोवियत रूस में आच्छादित अंधकार को छिन्न-भिन्न कर देगी। तब रूसी जनता लेखन, भाषण, और विचार करने की स्वतंत्रता के अपहरण को सहन नहीं करेगी और रूस की जनता आज की भाँति पीड़ा का अनुभव नहीं करेगी। वही वास्तविक अर्थों में स्वतंत्रता का सुख भोग कर सकेगी।

२५ अगस्त १९६८ को ठीक चार दिन बाद जबकि सोवियत रूस के टैंक जैकोस्लावाकिया में घुसे थे और रूसी सेनाओं ने जैकोस्लावाकिया को पादाक्रान्त किया था, थोड़े से रूसी नागरिकों ने अपने हाथों में झंडे लेकर 'रेड-स्क्वायर' में रूस के इस कुकृत्य का विरोध करते हुए प्रदर्शन किया था। उन झंडों पर लिखा था। "जैकोस्लावाकिया से हट जाओ, "आक्रमक लज्जित हो" "विचार स्वातंत्र्य चिरजीवी हो।" उन रूसी प्रदर्शनकारियों को रूसी गुप्त पुलिस ने पकड़ लिया, उनको निर्दयतापूर्वक पीटा और उन पर यह दोषारोपण किया गया वे शान्ति भंग कर रहे थे। उन्हें कारावास ले जाया गया।

जब उन प्रदर्शनकारियों का मुकदमा हुआ तो किसी भी विदेशी पत्रकार को न्यायालय के उस कक्ष में घुसने नहीं दिया गया जहाँ वह मुकदमा हो रहा था। प्रदर्शन-कारियों ने अपने वक्तव्य में कहा कि हम जानते थे कि हम जो अपनी आत्मा की आवाज के अनुसार रूस ने जिस प्रकार जैकोस्लावाकिया की स्वतत्रता का अपहरण किया है उसके विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे है उसका परिणाम होगा निर्वासन और कैदी शिविरो में जाना। परन्तु हमने अपना विरोध प्रकट करना कर्त्तव्य समझा। हमने कोई अपराध नहीं किया है, राज्य के किसी कानून का उल्लंघन नहीं किया वरन अपनी आत्मा की आवाज को शान्तिपूर्वक उद्घोषित किया है। उन प्रदर्शनकारियों ने लेखन और भाषण की स्वतंत्रता के मानवोचित मौलिक अधिकारों की माँग करते हुए जैकोस्लावाकिया पर सोवियत रूस द्वारा किये गये आक्रमण के प्रति अपना विरोध प्रकट करनेवाले वक्तव्य दिये तो न्यायालय ने उन्हें कार्यवाही में रखना अस्वीकार कर दिया। न्याय का नाटक समाप्त हुआ, प्रदर्शनकारियों को शान्ति भंग करने तथा सोवियत रूस की सरकार को बदनाम करने के आरोप में कठोर दंड की सजा दे दी गयी।

प्रदर्शनकारियों ने न्यायालय के सामने जो वक्तव्य दिये और न्यायालय ने उन्हें न्यायालय की कार्यवाही में सम्मि-लित करने से इनकार कर दिया उन वक्तव्यों को बाहर समाचारपत्रों में नहीं जाने दिया गया। विदेशी पत्रों का तो प्रश्न ही नहीं था सोवियत रूस के पत्रों में भी वह

वक्तव्य नहीं छपे। परन्तु इतनी कड़ाई होते हुए भी किसी प्रकार दो प्रदर्शनकारियों श्रीमती लारिसा डेनियल, कैदी लेखक यूरी डैनियल की पत्नी और पावेल-लिटविनाव स्टालिन के युद्धपूर्व के विदेश मंत्री का पौत्र के वक्तव्य किसी प्रकार लंदन के टाइम्स पत्र के प्रतिनिधि को किसी ने दे दिये, जिन्हें उसने स्वीकार कर लिया और टाइम्स को प्रकाशित होने के लिए भेज दिये। सोवियत रूस की सरकार क्रोध से बौखला उठी और उसने तुरन्त उस पत्र प्रतिनिधि को सोवियत रूस की सीमा से बाहर निकल जाने की आज्ञा निकाल दी।

अवश्य ही सोवियत रूस क्रूर दमन के द्वारा आज जनसाधारण को अपने स्वतंत्र विचारों को प्रगट नहीं करने देता, और यही कारण है कि वह यह भी सहन नहीं करता कि उसके प्रभाव-क्षेत्र के पूर्वीय योरोप के साम्यवादी देशों में विचार स्वतंत्र्य पनपे, परन्तु सोवियत रूस में घटित ये घटनाएँ और जेकोस्लावाकिया में तीव्र विरोध इस ओर इंगित करता है कि अब लम्बे समय तक विचार स्वातंत्र्य का गला नहीं घोटा जा सकता। जेकोस्लावाकिया के तरुणों ने अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जो अभूतपूर्व त्याग और बलिदान का परिचय दिया है उससे सोवियत रूस भी स्तब्ध है। आज संसार में अपने को प्रगतिशील कहनेवाले भी सोवियत रूस के इस साम्राज्यवादी रूस को पहचानने लगे हैं। अवश्य ही जेकोस्लावाकिया में जो राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का और विचारों की स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चल रहा है वह सोवियत रूस के बुद्धिजीवियों को उद्वेलित करेगा और अन्ततः सोवियत रूस में भी लेखन, भाषण और विचार स्वातंत्र्य का आन्दोलन बलवान होगा। बंदूक सदैव के लिए लेखनी और वाणी को रोक नहीं सकेगी। यही कारण है कि आज सोवियत रूस वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता की माँग से भयभीत है।

मुक्त मार्ग की मंजिल

[पृष्ठ २१८ का शेषांश]

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उसका विस्तार किया गया। कम्युनिस्ट संसार भी उसके सभी आयामों को बंद नहीं कर सकता। कार्ल मार्क्स तक का उसकी अनिवार्यता में विश्वास था। उनकी नई व्यवस्था किसी विशेष पूर्व व्यवस्था की भाँति नहीं बनी बल्कि उन्होंने उन प्रणालियों के अनुरूप समझी जिन्हें अपने विचार से उन्होंने इतिहास के सामान्य नियमों में देखा।

व्यक्ति या समाज शाश्वत सत्य का निर्णय नहीं करते और समाज में परिवर्तन से सत्य नहीं बदलता। मानव के सत्यबोध पर, वह क्या और किस प्रकार अनुभव करता है सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ सकता है। भारी सामाजिक आलोडन के समय शाश्वत समझे जानेवाले सत्यों की संख्या कम हो सकती है और इसलिए वे अधिक मूल्यवान हैं। वे अधिक निगूढ़ अनुभव किये जा सकते हैं और इसलिए वास्तविक जीवन में उन पर अमल करना अधिक दुस्तर है। अतः बदलते समाज के नये रूपों और निगूढ़, चिरंतन सत्य के बीच मध्यवर्ती कड़ी बनाना आवश्यक है।

प्लेटो के अनुसार "लोकतंत्र में स्वतंत्रता राज्य की शोभा है, और इसलिए लोकतंत्र में केवल प्रकृति का उन्मुक्त जन ही रहने का विचार करेगा।"

आत्मनिर्णय की, पहले भौतिक दमन से और फिर सामाजिक प्रतिबन्धों से मुक्ति की, यह भावना हमारी सभ्यता का प्रमाण चिह्न है। जिस दिन यह भावना इस सीमा तक क्षीण हो जाएगी कि हम अपना कार्य अपने से किसी बड़े व्यक्ति से कराने के लिए छोड़ दें, उसी दिन हमारी सभ्यता की कमर टूट जाएगी, हम पर अपनी विफलता के ज्ञान का कलंक लग जायेगा।

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्ता के संस्मरण (२)

श्रीमती कमला रत्नम्

बेगमपेट में गुप्ताजी के सान्निध्य में यद्यपि हमारा प्रवास संक्षिप्त ही रहा, फिर भी इस अवधि में कुछ ऐसी देश-व्यापी घटनाएँ घटीं जिनके कारण यह काल हमारे जीवन में अविस्मरणीय हो गया है। १५ अगस्त १९४७ की रात हम सबने साथ-साथ मनायी थी। गुप्ता परिवार के साथ दिन भर बिताने के बाद हम लोग विमान-सेना के मेस में रात्रिसमारोह में गये। दिल्ली से रेडियो पर आज़ादी के पर्व की घटनाओं की खबरें आ रही थीं। लार्ड माउन्ट-बैटेन ब्रिटिश सरकार की ओर से शक्तिप्रत्यर्पण का प्राय-श्चित यज्ञ कर रहे थे; परन्तु उनकी इस विनम्र दानशीलता में भी स्वार्थ और धोखे की कृपणता छिपी हुई थी। स्वतन्त्रता रमणी का एक पाणि वेदोच्चार-ध्वनि के साथ न्यायप्रिय भारत के हाथ मे था, और दूसरा कलमा पढ़ कर ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान को दे रही थी। भारत और विश्व के इतिहास में स्वतन्त्रता का यह अभिसार नवीन और अभूतपूर्व था। नितान्त पदार्थवादी और स्वार्थान्ध ब्रिटिश सरकार ही इसकी कल्पना कर सकती थी और ऐतिहासिक हृदयहीनता से सुलेमान के न्याय का अक्षरशः अभिनय करके अपने को परम न्याय-पवित्र और श्रेष्ठ साबित कर सकती थी। कराची में अपने घरों की छतों पर बैठे, अरब सागर की सारी हवाओं के झोके झेलते हुए जिस बात के सच होने की हम कभी कल्पना भी न कर सकते थे, वही होने जा रहा था। सीता रावण को दी जा रही थी—भारत के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे, और उसी क्षत-विक्षत बूढ़े वीर पिता की व्रणित देह दिल्ली में हमारे नेता ग्रहण कर रहे थे। नेहरू जी, सरदार पटेल, लार्ड माउन्टबैटेन सबकी आवाजें माइक के ऊपर तैरती जा रही थीं—केवल एक आवाज जो भारत की सच्ची आवाज थी—आर्यावर्त की आत्मा की हूक थी—अनुपस्थित थी। बापू नोआखाली में बैठे बंगाली सीख रहे थे और मुसल-मानों की रक्षा कर रहे थे। बापू की आत्मा ने अन्त तक विभाजित भारत को स्वीकार नहीं किया था और परकटी आज़ादी पर हमें उनका आशीर्वाद नहीं मिला था। "पक्ष-च्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धा" एक बार इन्द्र ने पर्वतों के भी पर काटे थे और वे भाग कर समुद्र में छिप गये थे—केवल हिमालय को इन्द्र नहीं छू सके थे। परन्तु कलियुग के इन्द्र ब्रिटेन ने हिमालय के भी पर काट लिये और हिन्द महा-सागर आज उतना गहरा नहीं रहा कि बूढ़ा हिमालय उसमें अपना सिर छुपा सके? फिर भी आजादी एक नशा थी और उसकी उत्तेजना हम सब पर छाई हुई थी। १५ अगस्त को रात के ठीक बारह बजे सैनिक मेस में सबने मदिरा पी—राष्ट्रीय गीत गाया और खुशी-खुशी मरकटों की भाँति वन्दनवारों से सजे हुए खम्भों पर चढ़ गये। इस समारोह के बीच भी हमने गुप्ता जी को बहुत तटस्थ और बहुत ध्यानमग्न पाया था।

हैदराबाद में गुप्ताजी के जीवन का एक और भी पक्ष था जिसके बारे में हमें केवल उनकी पत्नी द्वारा ही जान-कारी मिल सकती थी—वह है उनका अनेक विभिन्न और संख्यातीत सभा-सोसाइटियों का मेम्बर होना—मेम्बर ही न होना सक्रिय सभापतित्व के रूप में उनका संचालन करना। यहाँ तक कि हैदराबाद में उनके बारे में एक किंवदन्ती प्रचलित हो गयी थी कि निजाम सरकार ने उनकी अपने वैतनिक कार्यक्षेत्र के बाहर शिक्षा, कला और जन-कल्याण के कामों में गतिविधियों को देखकर उन्हें इन सबसे रोकते हुए फरमान निकालने का निश्चय किया था। उनका तर्क था आखिर दिन में जब आप पच्चीस मीटिंगों में उपस्थित रहेंगे तो दफ़्तर का काम कब करेंगे, जिसके लिये आप वेतनभोगी हैं? धन के समान समय की भी कंजूसी करते हुए निजाम ने ऐसी योजना बनायी होगी यह विश्वास करने में कठिनाई नहीं जान पड़ती। परन्तु सच तो यह है कि गुप्ता जी अपनी सतत कर्मठता द्वारा दिन भर में स्वयं ही सब काम निपटाते थे। वित्त-सचिव हों अथवा शिक्षा-सचिव हों, संग्रहालय समिति के मेम्बर हों अथवा हिन्दी भवन के जन्मदाता, सब प्रकार से उन्होंने हैदराबाद की अच्छी से अच्छी सेवा की और वहाँ के सांस्कृतिक जीवन को भरपूर विकसित किया। इस सम्बन्ध में उनके स्थानीय मित्र और परिचित हमारी अपेक्षा निस्सन्देह अधिक अधिकारपूर्ण प्रकाश डाल सकेंगे। मुझे उनके जीवन के उस व्यस्ततम काल की केवल एक घटना याद आती है। १९५९ में लाओस जाने से पहले तिरुपति और कांचीपुरम् की तीर्थयात्रा के लिये मुझे मद्रास जाना पड़ा था, रास्ते में प्रेम से मिलने के लिये हैदराबाद भी

रुकी थी। उन दिनों जीजी जीवित थीं, घर और बच्चों का सारा भार उनपर छोड़ कर प्रेम अपनी डाक निपटाने और कमिटियों में व्यस्त रहती थी, यहाँ तक कि मेरे शहर घुमाने और मनोविनोद का काम भी उसे गुप्ताजी पर ही छोड़ना पड़ा था—और मुझे याद पड़ता है कि एक अच्छे मित्र और आतिथेय के समान गुप्ताजी दिन भर के कामों से फ़ुरसत पाकर बिना थकान या भूख का आभास दिये रात की शो में सिनेमा ले गये, जहाँ थोड़ी देर बाद अपनी मीटिंगों से फ़ुरसत पाकर प्रेम भी हमारे साथ हो गयी थी। गुप्ताजी का यही जन-कल्याणकारी कर्मयोगी रूप आज उनकी षष्ठिपूर्त्ति के अवसर पर सर्वाधिक प्रकाशित है और यही चिरकाल तक प्रकाशित रहेगा।

गुप्ताजी कला, संगीत और साहित्य के बड़े प्रेमी हैं। नगर के लगभग सभी प्रमुख कलाकार, साहित्यकार, लेखक और कवि उनके घनिष्ठ मित्रों में से हैं और उनके घर आते-जाते रहते हैं। अपने मकान में जहाँ कभी-कभी वे पुत्र सहित हमारे साथ टेनिस खेला करते, वे तो अजन्ता की कला की चर्चा करते घण्टों नहीं थकते थे। कई बार उन्होंने हम लोगों के साथ अजन्ता जाने का प्रोग्राम बनाया क्योंकि हमारी जिद थी कि आन्ध्र प्रदेश की सांस्कृतिक यात्रा और अजन्ता के दर्शन हम उन्हीं के साथ करेंगे। गुफाओं और भित्तिचित्रों से उनकी व्यक्तिगत निकटता और जीवन भर का परिचय इस यात्रा में एक नया रस भर देता। परन्तु मनुष्य की सब प्रतिज्ञाएँ और अभिलाषाएँ पूरी नहीं होतीं। गुप्ताजी की व्यस्तता और हमारे अधिकतर भारत से बाहर रहने के कारण यह कार्यक्रम पूरा न हो पाया और अन्त में १९६७ की गरमियों में जब हम अन्ततोगत्वा अकेले यह यात्रा कर पाये तो अजन्ता महाराष्ट्र में चला गया था।

मैं इस लेख को गुप्ताजी की हिन्दी सेवाओं के उल्लेख से समाप्त करना चाहती हूँ। हैदराबाद में साहित्य-कला और शिक्षा का बहुत-सा काम उन्होंने हिन्दी के माध्यम से करने का प्रयत्न किया है। आदरणीय अब स्वर्गवासी पंडित वंशीधर विद्यालंकार के सहयोग से उन्होंने हिन्दी को उसमानिया विश्व विद्यालय में स्थान दिलाया, एक समय था जब गुप्ताजी के परिवार के कई सदस्य हिन्दी में एम० ए० और पी-एच० डी० की तैयारियाँ कर रहे थे। स्वयं उनकी बेटी सुमन हिन्दी की विदुषी एम० ए० है और विधाता के विधान से पतिवियोग हो जाने के कारण अब अपना सारा समय अपने बच्चों की शिक्षा में और हिन्दी अध्यापिका के रूप में राष्ट्रभाषा की सेवा में लगा रही है। पिता के कर्मयोगी और तपस्वी रूप की बहुत कुछ छाया इस शान्त सौम्य युवती में दिखाई पड़ती है। हैदराबाद सरकार की ओर से बहुत दिनों तक 'अजन्ता' नाम का हिन्दी मासिक निकलता था, जिसके सम्पादन और संचालन में गुप्ताजी पण्डित वंशीधर विद्यालंकार की बहुत सहायता करते थे। हिन्दी भवन के माध्यम से गुप्ताजी ने अनेक प्रतिष्ठित कवियों और साहित्यकारों को हैदराबाद बुलाकर उनका सम्मान करने में सहयोग दिया है। इस सम्बन्ध में मुझे मई १९६७ की वह अविस्मरणीय सन्ध्या *याद आती है जब हिन्दी भवन हैदराबाद ने अपने स्नेह*-निमन्त्रण से मुझे और श्री रत्नम् को संभावित किया था। उस दिन वर्षा होनेवाली थी फिर भी भवन के सुरम्य बगीचे में दरियाँ बिछाकर बैठने की व्यवस्था की गयी थी। महकते फूलों से मंच सजाया गया था, अध्यक्ष का स्थान स्वयं गुप्ताजी ने ग्रहण किया था और उस दिन वे बड़ी सुन्दर हिन्दी बोले भी थे। नगर के बहुत से साहित्यकार, अध्यापक और हिन्दी-प्रेमी जनता आयी हुई थी जिनसे मिलकर हम लोगों को बड़ा आनन्द हुआ था।

पदमुक्त हो जाने के बाद गुप्ताजी का अवकाश के क्षणों में स्वाध्याय और मित्रों से मिलना-जुलना बहुत बढ़ गया है। इसी यात्रा के दौरान उन्होने लगभग सौ लोगों को बुलाकर बहुत बड़ा भोज दिया था। सरकारी अधिकारी, प्रोफेसर, मन्त्री आदि सभी उपस्थित थे। उर्दू, तमिल, हिन्दी और तेलुगु भाषाओं का जैसा मधुर सम्मिश्रण उस दिन उनके घर में देखने को मिला उससे हमारे मन में आशा बँधी कि भाषायी प्रेमसूत्र में जुड़े अखण्ड भारत का स्वप्न एक दिन अवश्य साकार होगा और बहुत सम्भव है इस कार्य को करने का श्रेय आन्ध्रप्रदेश को प्राप्त हो। हैदराबाद में दीर्घ काल तक निजाम के उर्दू शासन के कारण तथा आन्ध्रप्रदेश के भारत के हृदयस्थल में स्थापित होने के कारण, तथा आन्ध्र जाति के कठोर पदार्थवादी होने के कारण सम्पूर्ण आन्ध्र भारत की भाषा समस्या हल करने में बड़ी भूमिका अदा कर सकता है। आन्ध्र की सीमाएँ बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर तथा मद्रास से मिली हुई हैं। पूर्व में विस्तृत सागर है जहाँ

पर्वतों के ऊपर बने महलों में से किसी दिन कालिदास तथा अन्य संस्कृत कवियों ने द्वीपान्तर से आयी काली मरिच, मसालों और अन्य कीमती द्रव्यों से लदी कलिंग की नावों को लंकर डाले देखा था। और इस दृश्य ने उनकी दृष्टि और कल्पना को विशाल बनाया था। इस समुद्र से अब भी मलाया, सिंगापुर तथा इन्दोनीशियाई दीपसमूहों के ऊपर से बहती बाहर की स्वास्थ्य-वर्द्धक वायु आन्ध्र के भीतर प्रवेश करती है। आन्ध्र ही भारत का वह देश है जहाँ उत्तर दक्षिण, पूर्व और पश्चिम आपस में मिलते हैं। मराठी भाषा और मराठी भोजन आन्ध्र के कई प्रान्तों की भाषा और भोजन से इतने अभिन्न हैं कि उनमें भेद करना कठिन है। कन्नड़ और तेलुगु भाषाओं की लिपि एक ही है तथा भाषा में भी ८० प्रतिशत समानता है। हिन्दी, उर्दू, उड़िया, बंगाली काफ़ी समझी जाती है और हिन्दी तो बहुत शुद्धता और अधिकार के साथ बोली भी जाती है। मद्रास की तमिल भाषा का भी सीमावर्ती जिलों में प्रचार है तथा बहुत से आन्ध्र मद्रास से पूर्व सम्बन्ध के कारण तमिल भाषा जानते हैं। और बहुत से तमिल-भाषी भी तेलुगु भाषा का अपना ज्ञान स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाते। कम से कम अपने संगीत और नृत्य में तो वे नित्य ही आन्ध्रनिर्मित तेलुगु पदावलियों को गाते हैं। इस सम्बन्ध से शायद राजाजी को भी यह कहने में कठिनायी हो कि वे तेलुगु नहीं जानते। सीमा-वर्ती परमपवित्र तिरुपति देवस्थानम्, त्यागराय संगीत और भरतनाट्यम् नृत्य के कारण आन्ध्र और मद्रास का सांस्कृ-तिक आदान-प्रदान अत्यन्त निकट सतत और सनातन है। जनसंख्या की दृष्टि से भी हिन्दीभाषियों के बाद आन्ध्र जनता का ही नम्बर आता है। १९६५ के आँकड़ों के अनुसार लगभग चार करोड़ जनता तेलुगु बोलती है, कन्नड़भाषियों को मिलाकर यह संख्या साढ़े पाँच करोड़ हो जाती है। तेलुगु का प्रचार भारत से बाहर बर्मा, हिन्दचीन तथा दक्षिण अफ़रीका में भी है। स्वयं तामिलनाड में जहाँ भाषायी अलगाव को इतना महत्व दिया जा रहा है, ३३६३,५७९ तेलुगुभाषी है, इसके अलावा मैसूर में २०,४४२४९ तेलुगुभाषी और है। बिहार, केरल, उड़ीसा और बंगाल में भी तेलुगुभाषी बड़ी संख्या में फैले हुए हैं (देखिये "दि गजेटियर आफ़ इण्डिया १९६५ अपेन्डिक्स ६")। अतएव अपनी स्वाभाविक सरलता, नैसर्गिक भारतप्रेम और राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर आन्ध्र भाषा समस्या का हल ढूंढ़ने में पहल करे तो बहुत सफल हो सकता है। आन्ध्र स्त्री और पुरुष स्वभाव से ही खादी पहनते हैं, देशप्रेम और स्वतन्त्रता के गीत गाते हैं, व्यापारी होने के स्थान पर अधिक कलात्मक और भावुक हैं, तथा उत्तर की भाँति अंग्रेजी भाषा और सभ्यता का नशा उन पर हावी नहीं हुआ है, हिन्दी के प्रति उनके मन में कोई ऐतिहासिक अथवा भावनात्मक विरोध भी नहीं है, न ही हिन्दी के चलन से केन्द्रीय सरकार में उनकी नौकरियाँ जाने का भय है, इस लिये उनके लिये यह करना कठिन नहीं है।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध तेलुगु विद्वान् डाक्टर क० रामकोटीश्वर राव के विचार जानने योग्य है। वे लिखते हैं सौ वर्ष पहले जब बिशप काल्डवेल ने अपना "द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण" लिखा तब पहली बार भारतीय भाषाओं को द्रविड़ और आर्य समूहों में विभाजित करने का रिवाज चल पड़ा। भाषाओं के विभाजन से जातियों के भी विभाजन की प्रथा चल पड़ी। इससे ज्ञात होता है कि मानवीय ज्ञान और कलाओं में—ह्यूमैनि-टीज में—पश्चिमी विश्लेषण-परक दृष्टिकोण को अपनाने से विभाजन और अलगाव की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिसे पद और सत्ता की भूख ने अब दानव का रूप दे दिया है। यदि समय रहते इस प्रवृत्ति को रोकने का उपाय न किया गया तो इससे देश के टुकड़े-टुकड़े होने का डर है। मुसलमानों ने कभी इस देश की भाषाओं और संस्कृति को अपना नहीं माना, इसलिये देश का विभाजन हुआ। वही प्रवृत्ति अब पंजाब, तमिलनाड तथा उत्तर-पूर्वी सीमांचल पर दिखायी दे रही है। इसको रोकने के लिये भारत की एक संस्कृति, एक आत्मा पर जोर देना, उसके बारे में लिखना, बोलना और प्रचार करना आवश्यक है। इस दिशा में प्रथम प्रयास आन्ध्र के डाक्टर सी० नारायण राव ने किया जिन्होंने पहली बार अंग्रेजों के इस झूठ का खण्डन किया कि भारत में आर्य और द्रविड़ दो भिन्न जातियाँ हैं, तथा उत्तर और दक्षिण भारत पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के समान दो अलग देश हैं। उन्होंने आन्ध्र भाषा को संस्कृत से ही जन्मी पैशाची प्राकृत से उद्भूत माना है। आन्ध्र के गुणाढ्य ने इसी प्राकृत में अपनी "बृहत्कथा" लिखी और आन्ध्र के शातवाहन राजा हाल ने इसी भाषा में अपनी "गाथा सप्त-शती" की रचना की। ये बातें कन्नड़ भाषा के विषय में

भी उतनी ही सत्य हैं। तेलुगु और कन्नड़ की लिखित और बोलचाल की शैलियों में संस्कृत का इतना अधिक प्रभाव है कि द्रविड़-शुद्धता के नाम पर यदि इनमें से संस्कृत शब्दों को निकाल दिया जाय तो कोई इन भाषाओं को समझ नहीं सकेगा। सत्य है ब्राह्मणों की असहिष्णुता और सत्तालोभ ने तमिल से संस्कृत शब्दों के बहिष्कार की लहर चलाई है, परन्तु ऐसी कोई कल्पना दक्षिण की अन्य भाषाओं के बारे में नहीं की जा सकती। तेलुगु और कन्नड़ उत्तर और दक्षिण भारत के बीच में उत्तर प्रदेश में स्थित हैं और पूरे भारत को जीवित रखने में उनकी वही भूमिका है जो उदर भाग के मर्मांगों की होती है।

संस्कृत और अब कुछ काल से तेलुगु भाषा और लिपि का अध्ययन करने के बाद मै इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि यदि तेलुगु साहित्य को नागरी लिपि में लिखा जाय तो वह हिन्दी के उतना ही समीप आ जायगा जितना आज आपस में मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली और हिन्दी साहित्य एक दूसरे के समीप है। मेरी आशा है कि आन्ध्र भारत के लिए कामकाज की एक भाषा और सब भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि की समस्या हल करने मे अवश्य ही पहल करेगा और मूल्यवान् योग देगा। बहुत लोगों को यह मालूम नहीं है कि भारत मे एक समय वह भी था जब मुसलमानों के आतंक से संस्कृत का पढ़ना-पढ़ाना बन्द हो गया था। मध्यकाल में कतिपय कट्टरपन्थी ब्राह्मणों ने भी रामायण, महाभारत तथा कालिदास साहित्य जैसे ललित कृतियों को अनुशीलन का निषेध किया था। ऐसे समय में आन्ध्र मे ही भारतीय संस्कृति को जीवित रखने की आवाज उठी थी। आन्ध्र विद्वानो ने संस्कृत के सार्वभौमिक महत्त्व को पहचानते हुए उस भाषा मे नये ग्रन्थ लिखे। अप्पय्य दीक्षित और भट्टोजि दीक्षित ने व्याकरण में अविस्मरणीय काम किया, पण्डितराज जगन्नाथ ने कविता को आगे बढ़ाया और मल्लिनाथ पण्डित ने कालिदास-ग्रन्थों की नयी और सरल "संजीवनी" टीका लिख कर दक्षिण क्या सारे भारत में फिर से कालिदास की धूम मचा दी। आज संस्कृत विद्यार्थियों के लिए मल्लिनाथ सिरमौर हैं। जगन्नाथ पण्डितराज बहुत समय तक मुगलों के दरबार और उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में रहे। झूठी रूढ़िवादिता को तोड़ने और उत्तर-दक्षिण में प्रेम-सम्बन्ध बढ़ाने में उनका जो अमूल्य योगदान है उसे भारतीय साहित्य का कौन विद्यार्थी भूल सकता है? तेलुगु भाषा के माध्यम से वेमना ने नीति में, पोतन्ना ने कृष्ण-भक्ति में तथा नन्नय्या और श्रीनाथ ने महाभारत नैषधादि महाकाव्यों के पुनर्लेखन में फिर से भारत की एक आत्मा की प्रतिष्ठा की। अभी हाल ही में केवल एक सौ वर्ष पहले सन्त त्यागराय ने पुनः संस्कृतनिष्ठ भाषा में भारत की एक आत्मा और एक संस्कृति के गीत गाकर समस्त दक्षिणापथ में नये जीवन का संचार किया था। हिन्दी-अंग्रेजी प्रश्न पर भी हाल ही में आन्ध्रप्रदेश से यह आवाज उठी थी कि शिक्षा मातृभाषा में हो, हिन्दी अनिवार्य हो और अंग्रेजी जिसे सीखनी हो वह अलग से पैसे देकर सीखे। अंग्रेजी के विषय में आन्ध्र का यह निर्णय ठीक ही है क्योंकि आज भी अंग्रेजी शिक्षा रुपयों के ही मोल आदमी खरीदते हैं।

इस पृष्ठभूमि मे यह अनुरोध अयोग्य नहीं होगा कि आन्ध्रप्रदेश भारत के हृदय मे फिर से समन्वय का दीप जलाये और गुप्ताजी जैसे देश के सेवक उसे आरती मे सजाकर भारत माँ की नीराजना करें। देश के सामने आज एक बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि उसकी भिन्न-भिन्न भाषाओं और साहित्यों का सही और प्रामाणिक इतिहास हिन्दी भाषा मे जनता के सामने लाया जाय। काल की अमर गुहा मे सुरक्षित मनुष्य का श्रेष्ठतम अध्ययन और चिन्तन हमें साहित्य के रूप में ही प्राप्त होता है। यदि गुप्ताजी अब अपने अवकाश के समय मे तेलुगु भाषा के इतिहास और साहित्य के हिन्दी में प्रकाशन का काम हाथ मे लें तो बड़ा अच्छा हो। इस संकल्प के लिए हम उनकी दीर्घ आयु और उत्तरोत्तर कर्मठता और सफलता की कामना भी करते हैं।

नेत्रहीनों के ज्ञान-चक्षु खोलनेवाले—लुई ब्रेल

श्री जवाहरलाल कौल 'सुमन'

सौ वर्ष पहले तक नेत्रहीनों की दुनिया में सिवाय अँधेरे के कुछ न था। अँधेरे में ठोकरें खाते, दर-दर की भीख माँगते और मुहताजी का जीवन बिताते न जाने कितने नेत्रहीन पैदा हुए और चल बसे। आखिर एक ऐसा नेत्रहीन भी इस संसार में आया, जिसने दुनिया भर के अंधों के जीवन में नया प्रकाश भर दिया। उसने अंधों के लिए हाथ के स्पर्श से पढ़ी जा सकने वाली लिपि "ब्रेल" का आविष्कार किया और नेत्रहीनों के ज्ञान-चक्षु खोल दिये। आज संसार की कोई भी भाषा इस लिपि के द्वारा पढ़ी तथा लिखी जा सकती हैं। इसके माध्यम से पढ़ते हुए आज के नेत्रहीन उच्च से उच्चतर शिक्षा ग्रहण कर रहे है और समाज पर बोझ बने रहने की बजाय सेवा का उपयोगी जीवन बिता सकने में समर्थ हो रहे हैं।

लुई ब्रेल का जन्म फ्रांस के एक ग्राम 'कोभरे' में ४ जनवरी, १८०१ ई० में हुआ था। यह गाँव पेरिस से कुछ ही मील दूर है, जहाँ लुई ब्रेल के पिता घोड़े की काठियाँ बनाने का काम किया करते थे।

चमड़े का काम होने के कारण लुई के पिता के घर में नुकीले और तिरछे औजारों की भरमार रहती थी। पिता की नजर बचाकर इन्हीं औजारों से खेलते हुए बालक लुई ने एक दिन अपनी एक आँख फोड़ ली। अभी कुछ ही दिन बीते थे कि दूसरी आँख भी लुई का साथ छोड़ गयी और वह अंधेरी दुनिया में रहने को विवश हो गया।

बालक लुई बचपन में ही बाल-सखाओं के साथ खेल-कूद में शरीक होने से वंचित हो गया। तमाम स्कूलों के दरवाजे भी उसके लिए बंद हो गये। लाचारी में वह घर पड़ा रहता और उसे देख-देखकर उसके पिता अपने व्यवसाय को कोसते रहते, जिसने उनके पुत्र की आँखें ही छीन लीं। आखिर उन्हें नेत्रहीनों के एक स्कूल का पता मालूम हुआ और बालक लुई को उसमें दाखिल करा दिया गया।

उन दिनों अंधे बालकों को मोम के बने अक्षरों की सहायता से पढ़ना सिखाया जाता था। यह एक खर्चीला साधन था और वह भी अधूरा। अंधे बालक अक्षर-ज्ञान तो प्राप्त कर सकते थे; किन्तु लिखना बहुत कठिन था। जिज्ञासु बालक लुई एक ऐसे साधन की तलाश में जुट गया, जिससे अंधे बालक पढ़ने के साथ-साथ लिखने के योग्य भी हो सकें।

स्कूल की शिक्षा समाप्त कर लुई ब्रेल उसी अंध विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हो गया। रोजी-रोटी का सहारा तो हो गया, लेकिन वह संतुष्ट न था। वह अपने लिए नहीं, अपने लाचार साथियों के लिए कुछ करके जीना चाहता था। उसे तो एक ऐसे साधन की तलाश थी, जिससे नेत्रहीन पढ़ने के अलावा लिखने में भी समर्थ हो सकें। वह निरंतर विचारमग्न रहता—सोचता कि ऐसा कौन-सा उपाय किया जाय। जाने कितनी रातों की नींद उसने यही सोचते-सोचते हराम कर दी होगी।

आखिर उसने एक नयी लिपि का अविष्कार किया। यह लिपि क्या थी, केवल छः बिंदुओं का अजीब खेल था। मोटे कागज पर एक नुकीले पिन से बिंदु उभारे जाते। छः बिंदुओं की जगह बदलती जाती। कहीं केवल पहला बिंदु, रहता, कही पहला और दूसरा, कहीं दूसरा और चौथा तथा कहीं तीसरा और पाँचवाँ। बस अलग-अलग क्रम से पड़े बिंदुओं का मतलब अलग-अलग अक्षर होता। कमाल की बात है कि इन्हीं छः बिंदुओं के सहारे आज संसार की कोई भी भाषा लिखी जा सकती है। लिखते वक्त अक्षर एक पिन तथा एक फ्रेम की मदद से बिंदुओं के रूप में उभारे जाते हैं और उन्हें पढ़ा जाता है अँगुली के स्पर्श से। इस प्रकार लुई महान् ने नेत्रहीनों को अँगुली से देख सकने का वरदान दिया।

जिस लुई ब्रेल के आविष्कार से सारी दुनिया के नेत्रहीनों को एक नया जीवन मिला, उसे जीते-जी यह देखने का मौका न मिला कि उसने कितने बड़े उपकार का काम कर डाला है। उसने फ्रांस की उस समय की सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा था कि उसके द्वारा आविष्कृत लिपि को सभी नेत्रहीनों के लिए स्वीकार कर लिया जाय। किंतु बिना जाँच-पड़ताल के ही उसे ठुकरा दिया। एक अंधे ने ज्योति का दीप जलाया, लेकिन आँखवाले उस दीप की रोशनी का महत्त्व न समझ सके। लुई को इससे गहरा सदमा लगा और वह क्षय रोग से पीड़ित हो गया। तमाम

[शेष पृष्ठ २३२ पर देखिए

डॉ० परशराम कृष्ण गोडे

लेखक, महामहोपाध्याय श्री दत्तोवामन पोतदार, भू० पू० उपकुलगुरु, पूना विश्वविद्यालय

अनुवादिका, शकुन्तला बोरगांवकर, एम० ए० (बनारस)

[श्रेष्ठ प्राच्य विद्या पंडित तथा पूना के भंडारकर ओरिएन्टल इन्स्टिट्यूट के क्यूरेटर, डा० परशराम कृष्ण गोडेजी का दि० २७ मई १९६७ में देहावसान हुआ। भारतीय संस्कृति इतिहास का दर्शन करनेवाले इस विश्वविख्यात संशोधक की स्मृति में श्रद्धांजलिस्वरूप यह लेख, पूना विद्यापीठ के तत्कालीन उपकुल गुरु म० म० दत्तोवामन पोतदारजी ने लिखा था।]

विद्याभ्यसनं व्यसनम्
अथवा हरिपाद सेवनं व्यसनम् ॥

संस्कृत के इस सुप्रसिद्ध श्लोक में दो व्यसनों का तुल्यवान होने का वर्णन किया है। एक विद्याव्यसन, दूसरा ईश्वर भक्ति का व्यसन। ईश्वर भक्ति का व्यसन अनन्य भक्ति का ही एक स्वरूप है। भगवान् का अनन्य उपासक भगवान् के अतिरिक्त और किसीको भी नहीं पहचानता, तद्वत् विद्याव्यसनी सर्वथा विद्यादेवी से ही अनुरक्त रहता है, विद्या की भक्ति करता है। जिस प्रकार भगवान्-भक्त अंत में भगवान् रूप हो जाता है उसी प्रकार विद्या भक्त विद्या रूप हो जाता है।

स्व० परशराम पंत गोडेजी अनन्य विद्याभक्त थे। उनकी विद्याभक्ति अव्यभिचारिणी थी। अपने छोटे से कमरे में बैठकर उन्होने अपनी विद्याभक्ति के द्वारा संसार को विस्मय-विमुग्ध कर दिया। बाल्यकाल में स्व० अण्णासाहब विजापूरकर, तथा यौवन मे स्व० डॉ० गुणेजी के प्रोत्साहन से वे विद्याभक्ति के मार्ग पर चले।

''महाभारत की काव्य शैली' विषय पर उन्होंने पहला निबन्ध सन् १९१६ में प्रकाशित किया। उसी वर्ष संस्कृत विषय मे बी० ए० की परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। उसके उपरान्त एम० ए० की परीक्षा देने के बाद उन्होंने भांडारकर प्राच्य-विद्या मन्दिर में प्रवेश किया।

इस संस्था ने व्यासजी के महाभारत की चिकित्सक आवृत्ति प्रकाशित करने का काम ले लिया। आज चालीस वर्ष हो गये। वह कार्य आज अंतिम पर्व तक आ पहुँचा है। इस संस्था को डेक्कन कॉलेज में सरकार द्वारा संग्रहीत संस्कृत के असंख्य हस्तलिखित ग्रन्थ मिल गये हैं, इनकी नयी वर्णन सूची बनाने का काम डॉ० गोडेजी को सौंपा गया। सूची छपने पर यह सूची बीस-पचीस खंडों से प्रकाशित होगी। यह सारा काम तैयार है। केवल छपाना ही बाकी रह गया है। वर्णन सूची के इस कार्य में जैसे-जैसे वे अधिक ध्यान देने लगे वैसे ही वैसे उनको संस्कृत ग्रन्थों तथा संस्कृत ग्रन्थकारों के काल निर्णय के प्रश्न की ओर ध्यान देना पड़ा। इसमें उन्होंने अपनी विशिष्ट पद्धति निर्माण की।

किसी ग्रन्थकार के निश्चित कालवद्ध तथा संवद्ध उल्लेख उन्होंने एकत्र कर रखे हैं। वे दो छोर निश्चित करते थे। इन दो छोरों में काल दृष्टि से उस ग्रन्थकार को बिठाते थे। अमुक वर्षो या सदियों के पूर्व, अथवा अमुक वर्षो या सदियों के उपरान्त वह ग्रन्थकार विद्यमान न रहेगा,— यह बात अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध करते थे। दो काल-निदर्शक खूंटियों के बीच में वे ग्रन्थकार को पकड़ रखते थे। इस शास्त्र-शुद्ध तथा निश्चयकारक पद्धति के अवलम्बन से गोडेजी आसानी से अनेक ग्रंथ तथा ग्रन्थकारों का काल-निर्णय कर सके। इस पद्धति को हम 'गोडे पद्धति' कहेंगे। गोडे जी ने इस पद्धति का निर्माण किया सो बात नहीं, परन्तु उनके समान किसी ने उसका सफलतापूर्वक तथा अधिक मात्रा में उपयोग न किया होगा। अतः इस पद्धति को 'गोडे पद्धति' कहना अनुचित न होगा।

काल-निर्णय का कार्य गोडेजी ने अखंड चालीस वर्षों तक किया। कालनिर्णय के साथ ही गोडेजी ने ग्रन्थकार का नाम निर्णय, ग्रंथनाम निर्णय, कुल निर्णय का भी कार्य किया। उसके लिये संस्कृत साहित्य के इतिहास की पुनर्रचना करना अत्यावश्यक था। अखंड परिश्रम से गोडेजी ने यह महान् कार्य किया है। उन्होंने अपनी विविध टिप्पणियों की तथा शोध निबन्धों की सूची १९४१ में बनायी। उसमें २०२ टिप्पणियों का संग्रह है। मुनि जिनविजयजी के प्रोत्साहन से ये टिप्पणियाँ तीन खंडों में, लगभग १३०० छपे हुए पृष्ठों में, प्रकाशित की गयीं।

इसी समय गोडेजी ने भारतीय जीवन के एक उपेक्षित

परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग की ओर अपनी संशोधक की दृष्टि डाली। खाद्यपदार्थ, सौगंधिक द्रव्य, शस्त्र, अलंकार आदि के विषय में गोडेजी ने अखंड परिश्रम से ज्ञान संग्रह किया और उनका एकीकरण किया। उनके एतद् विषयक निवन्ध-वाचन से जिज्ञासु पाठकों को सतोष प्राप्त होता है। साधारण वस्तुओं के बारे में अपना अज्ञान ध्यान में आता है तथा जिज्ञासा तृप्त होने के कारण आनन्द तथा आश्चर्य का लाभ होता है। देखिये, ...'नथ'...एक सामान्य अलंकार है। पर यह नथ अलकार कहाँसे आया? कब से आया? इसके प्रकार कितने हैं? इन सारी बातों में उन्होंने काल दृष्टि में शोध करके निवन्ध तैयार किया। ऐसे उनके निवन्धवाचन से हमारा अज्ञान तुरन्त दूर हो जाता है।

भुट्टा, जलेवी, चना, दीपावली, घोड़े, रीठा, काँच, गाय का दूध, मेंहदी धनुपवाण, गुलाव का इत्र, पतग आदि सैकड़ों विषयों पर उन्होंने शोध की तथा 'भोजन कुतूहल, जैसे संस्कृत ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त की। संस्कृत, मराठी, हिन्दी, तमिल, कन्नड आदि भापाओं में इन वस्तुओं के उल्लेख देखे, कालदृष्टि से उनको ठीक बिठाया और उन पर टिप्पणियाँ तैयार कीं। इस कार्य में उन्होंने न केवल भारतीय विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया, अपितु देश-विदेश के विशेषज्ञों से भी पत्र-व्यवहार द्वारा उपयुक्त जानकारी प्राप्त की। वनस्पतिशास्त्र, औपधिशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों स इस विपय के उपांगों का यथा तथ्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए गोडेजी ने महान् प्रयत्न किये। विविध ज्ञानकोशों का आधार लिया। उस विषय के विशेषज्ञ से, फिर चाहे वह इटली का हो, अमरीका, चीन, जापान या मिस्र का हो, उससे पत्रव्यवहार द्वारा सम्बन्ध जोड़कर ज्ञान संचय किया। मधुमक्खी मधु का कण-कण जमा करके मधु-संचय करती है। इस मधुकर वृत्ति का गोडेजी ने अवलम्बन किया, और हमको ज्ञानामृत के घट उपलब्ध किये। अन्तर इतना ही है कि मधुमक्खी अपने घर से निकलकर नित्य वाहर भ्रमण करती है, किन्तु गोडेजी ने अपने घर तथा अपनी संस्था के अतिरिक्त चालीस वर्षो में वाहर की राह भी नहीं देखी। पूना से वम्वई की यात्रा भी टाल जाते थे। भारत इतिहास संशोधन सस्थान के वार्षिक सम्मेलन में उपस्थित रहकर वे अपने निवन्ध प्रस्तुत करते थे।

इस प्रकार उन्होंने ७०० के ऊपर टिप्पणियाँ (निबंध) लिखी हैं। उन टिप्पणियों के चार खंड प्रकाशित हो गये तथा २-३ खंडों का मुद्रण कार्य चल रहा है। उनका लेखन कार्य ८-९ खंडों में व्याप्त होगा तथा उनके लगभग ४००० पृष्ठ होंगे।

डॉ० गोडेजी अनेक विपयों का चिंतन एक ही साथ करते थे। प्रत्येक विपय संदर्भो की टिप्पणियाँ स्वतन्त्र कापी में करते थे। उनकी अभ्यासिका टिप्पणियों की कापियों से भरी रहती थी। सूची तथा क्रमानुसार वे सारी जानकारी लिख लेते थे। इस सारी जानकारी में सुसंगति तथा निश्चितता आने पर उन टिप्पणियों की रचना करके अनेक शोध संस्थाओं को प्रकाशन के लिए भेज देते थे। उनकी टिप्पणियों की तथा निवन्धों के महत्त्व के कारण शोध पत्रिकाओं के संपादक उनके पास नित्य निवन्धों की माँग करते थे। अपनी टिप्पणियों के द्वारा गोडेजी विद्वानों को ज्ञान देते थे। इतना ही नहीं, गोडेजी अपने निवन्ध अलग छपवाकर विद्वानों के पास अपने खर्च से भेज देते थे तथा पत्र द्वारा प्रार्थना करते कि इन निबन्धों में यदि कुछ सुधार अपेक्षित हो तो कीजिये। इसके लिए उन्होने अपने ५००० रुपये खर्च किये।

स्व० गोडेजी की अनन्य विद्या साधना का और दूसरा प्रमाण क्या चाहिए? उन्होंने डॉ० कत्रेजी जैसे सहयोगी के साथ अनेक शोध-पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया। डॉ० काणे, डॉ० सुखटणकर, डॉ० टामस, डॉ० लाहा, डेनिसन रॉस जैसे जगविख्यात विद्योपासकों को अर्पित किए हुए स्मरण ग्रन्थों के सम्पादन कार्य में उन्होंने महान् परिश्रम किया। अग्रेजी का संस्कृत-अंग्रेजी कोश गोडेजी तथा श्री चि० ग० कर्वेजी ने सुधारा और वढ़ाया। दुर्दैव की वात है कि ये दोनों कोश-सम्पादक एक ही वर्ष में परलोक सिधारे। देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने गोडेजी की योग्यता पहचान ली तथा उनका मान-सम्मान किया।

गोडेजी कोकण के रहनेवाले थे। मूल उपनाम ठाकुर था। इस घराने के पुरुषों ने सन् १७४८ में मुदगड का किला जीत लिया था तथा मडकवा गाँव इनाम में प्राप्त किया था। ये सारी वाते अनेक पत्रकों के आधार पर गोडेजी ने प्रकाशित की थी।

गोडेजी का साहित्य इतिहास तथा संस्कृत-विपयक कार्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि उनके निवन्ध का आधार लिये विना न चल सकेगा। स्व० गोडेजी का ध्येय-वाक्य निम्नलिखित श्लोक में ग्रथित है। वे हमेशा इसका उल्लेख करते थे।

दृढाभ्यासाभिधानेन
यत्ननाम्ना स्वकर्मणा।
निजवेदन जे वैव
सिद्धिर्भवति नान्यथा॥

विद्योपासकों की अगली पीढ़ियों के मार्ग के संकट दूर करके उन्होंने उनके ज्ञान-साधना का मार्ग सुलभ कर दिया। ज्ञान-साधना के मार्ग में गोडेजी का आदर्श दीपस्तम्भ सदियों तक मागदर्शन करता रहेगा।

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

श्री राधेमोहन

इस भूतल पर कुछ ऐसे प्राणी भी जन्म लेते है कि जिनके जन्म पर न तो शहनाइयाँ वजती है और न किसी प्रकार का विज्ञापन होता है किन्तु इनके महाप्रयाण से जगत् के अगणित व्यक्तियों के हृदय पर बज्राघात-सा प्रभाव पड़ता है और इनकी स्मृति व कीर्ति सुदीर्घ काल तक इस वसुन्धरा पर सुस्थिर रहती है। ऐसे विरले व्यक्तियों में वे जन आते हैं जो अपने लिए ही नही वरन् "देश, जाति व धर्म के लिए ही जीना" इनके जीवन का ध्येय रहता है। ऐमे ही नर-पुंगवों में से एक थे गंगाप्रसाद उपाध्याय उनके निधन पर अनेक विभिन्न विद्वानों ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें 'ज्ञान का भानु', 'विद्या के सागर', 'महान् दार्शनिक', 'आर्य सिद्धातों के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अप्रतिम लेखक और अद्वितीय प्रवक्ता', 'हिन्दी साहित्य का एक महान् उन्नायक', 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के भावो का यथार्थवक्ता व अनन्य भक्त' आदि वतलाया है।

उनका जन्म ६ सितम्बर १८८१ ई० में कासगंज, जिला एटा से तीन-चार मील दूर काली नदी के किनारे नदरई ग्राम में हुआ था। जव वे दस वर्ष के थे तभी उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उनकी पूज्या माता के ऊपर ही आपकी शिक्षा-दीक्षा का भार रहा।

"होनहार विरवान" की लौकोक्ति के अनुसार वे निस्सहाय अवस्था में ही भावो सयोजनाओं की सम्पूर्ति के लिए गन्तव्य दिशा की ओर अभिमुख हो गये थे। वैदिक आश्रम, अलीगढ़ में उस समय आर्यसमाज के तत्कालीन मूर्द्धन्य विद्वान् श्री स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज रहते थे। उनके उपदेशों ने किशोरावस्था में ही उनमें स्व-भाषा और स्व-सस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया। आगे चलकर हम देखते है कि उनका समस्त जीवन इन्ही दोनों क्षेत्रों में कार्य करते वीता।

हिन्दी साहित्य का अजेय महारथी

राष्ट्रभाषा हिन्दी को समुन्नत वनाना आपने अपने जीवन का परम लक्ष्य आरम्भिक काल से ही निर्धारण कर लिया था। उस समय (१९०७ ई० में) विद्यार्थियोपयोगी हिन्दी व्याकरणों की अच्छी पुस्तकों की कमी थी। उन्होंने उस समय कक्षा तीन से लेकर हाई-स्कूल तक की कक्षाओं के लिए क्रमवद्ध रूप से और वैज्ञानिक शैली में "नवीन हिन्दी व्याकरण" की रचना की जिसे इंडियन प्रेस ने प्रकाशित किया। इस रचना से जहाँ हिन्दी अध्ययन-अध्यापन के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ, वहाँ आपको आर्थिक लाभ और यश भी प्राप्त हुआ। इस पुस्तक पर नागरी प्रचारिणी सभा तथा उत्तर प्रदेशीय सरकार ने पारितोषिक भी प्रदान किया था। बाल निवन्ध माला भी इसी कड़ी की एक पूरक पुस्तक थी। इसके वाद ६ भागों में उन्होंने 'हिन्दी शेक्सपीयर' और फिर "अंग्रेज जाति का इतिहास", "महात्मा नारायण स्वामी", "राष्ट्रनिर्माता दयानन्द," और "जीवन चक्र' आदि कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। "जीवन चक्र" आपका आत्मचरित्र है। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने इस पुस्तक पर ६०० रु० का पारितोषिक प्रदान करके आपको सम्मानित किया था। हिन्दी में उच्चकोटि के दार्शनिक साहित्य की पूर्ति के लिए आपने 'आस्तिक वाद', 'अद्वैतवाद', 'हम क्या खावे ?' 'जीवात्मा', 'भगवत कथा,' 'विधवा विवाह मीमासा' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने "आस्तिकवाद" पर मंगलाप्रसाद पारितोपिक प्रदान करके आपको गौरवान्वित किया। ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करनेवाली यह अद्वितीय रचना है।

हिन्दी और धार्मिक जगत् में आपकी आलोचनात्मक कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में 'शांकर भाष्यालोचन,' 'ऐतरेयालोचन,' 'कम्युनिज्म,' और 'दयानन्द मीमांसा प्रदीप' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ऐतरैयालोचन' और 'कम्युनिज्म' पर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने विशेष पुरस्कार प्रदान किया था।

हिन्दी को समृद्धिशाली वनाने के लिए आपने अनेक सस्कृत व पाली ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया। 'मनुस्मृति,' 'धम्मपद', 'शतपथ', 'सर्वदर्शन संग्रह' आदि उनके अनूदित ग्रन्थ है। मनुस्मृति के अनुवाद में १५० पृष्ठों की लिखी हुई उनकी भूमिका ने उसके महत्त्व को और भी वढ़ा दिया है। शतपथ ब्राह्मण २५० पृष्ठों में अनूदित बृहद् ग्रन्थ है जो अव २८ वर्षो बाद दिल्ली मे छप रहा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने समाज सुधार तथा सामा-

जिक समस्याओं पर लगभग १०० ट्रैक्ट (पुस्तिका) लिखे हैं जो लगभग १ करोड़ की संख्या में भारतवर्ष तथा दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बिक चुकी है। उनकी धर्म और दर्शन सम्बन्धी कृतियों के कारण आर्यसमाज के सिद्धांतों के उच्चतम् लेखक और आख्याता के रूप में उन्होंने ख्याति प्राप्त कर ली है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनकी सेवाओं एवं विद्वता से प्रभावित होकर १९३१ ई० में झाँसी सम्मेलन में उन्हें 'दर्शन परिषद्' का अध्यक्ष बनाकर उनका सम्मान किया था। ब्रह्मदेशीय (वर्मा के) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फरवरी १९५२ के द्वितीय वार्षिकोत्सव के वे अध्यक्ष थे। उस समय हिन्दी भाषा के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप पर उन्होंने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था।

वैदिक धर्म के अतिरिक्त अन्य मतों का अध्ययन तथा विभिन्न महापुरुषों के कार्यो का आपने गहरा अनुशीलन करके अनेक तुलनात्मक ग्रन्थों की रचना की। इस दिशा में आपकी "सायण और दयानन्द", "शंकर, रामानुज और दयानन्द" "राम मोहन राय, केशव और दयानन्द", "बुद्ध और दयानन्द" आदि इस कड़ी की उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

उच्चकोटि के लेखक के साथ साथ वे एक प्रतिभाशाली कवि भी थे। संस्कृत भाषा में सुललित छन्दों में लिखी हुई "आर्योदय काव्यम्" आपकी अनुपम रचना है जिसकी संस्कृतज्ञ विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है! "आर्य स्मृति" नामक काव्य की भी आपने संस्कृत में रचना की थी। उर्दू में आपने "दयानंद आजम", 'आहे बेजुबाँ' नामक मुसद्दस की रचना की थी। देहान्त से लगभग एक सप्ताह पूर्व आपकी उर्दू में कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ था।

आर्यसमाज के अद्वितीय सेवक

श्रद्धेय उपाध्यायजी के जीवन का दूसरा पक्ष आर्यसमाज की निष्काम भाव से सेवा करना था। आर्यसमाज के संपर्क से ही आपके हृदय में राष्ट्रभाषा और स्वधर्म के प्रति प्रेम का जागरण हुआ था। अतएव आपने आर्यसमाज का आजीवन सेवा का व्रत किशोरावस्था से ही धारण कर लिया था। राष्ट्रभाषा में लिखा हुआ आपका प्रचुर साहित्य जहाँ हिन्दी के वर्चस्व को समुन्नत करने वाला था, वहाँ जनसाधारण को आर्यसमाज के सिद्धान्तों की ओर अभिमुख करने में विशेष सहायक सिद्ध हुआ। अहिन्दी भाषियों के लिए आपने अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। "फिलासफी आफ दयानंद", "वैदिक कल्चर", 'आई एण्ड माई गाड,' 'रीजन एण्ड रिलीजन' इत्यादि कई बड़े बड़े ग्रंथों की आपने रचना की। इनमें अनेक पुस्तकों के हिन्दी में भी अनुवाद हो चुके हैं। उर्दू में आपने लिखा 'मसाबीहुल इस्लाम', 'इस्लाम और आर्यसमाज' तथा 'फिलसफए आमाल' आदि ग्रंथ आपके गहन अध्ययन के परिचायक हैं। इन पुस्तकों का आपने स्वयं हिन्दी में भी अनुवाद कर दिया था। उनके ग्रंथों के प्रकाशन मुख्यतया कला प्रेस और ट्रैक्ट विभाग से हुए है। कला प्रेस आपका अपना प्रेस था और 'ट्रैक्ट विभाग' की आपने १९२४ ई० में आर्यसमाज, चौक इलाहाबाद में स्थापना की थी। उन्होंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर लिखी हुई पुस्तकों पर कभी एक पैसा भी नहीं लिया। आपका सिद्धान्त था "घर का खाओ और समाज की सेवा करो"। इस सिद्धान्त के पालनार्थ आपके धन अर्जन करने के स्रोत अध्यापकी या स्कूली पुस्तकें थीं। वे समय समय पर आर्यसमाज को दान भी देते रहे। आर्य समाज से धन प्राप्त करने की कभी इच्छा भी नहीं की। इस प्रकार का आदर्श उपस्थित करके लक्षाधिक व्यक्तियों को आपने अपना अनन्य भक्त बना लिया था। उन्होंने महर्षि दयानंद कृत सत्यार्थ प्रकाश का "लाइट आफ ट्रुथ" नाम से अँग्रेजी में अविकल अनुवाद किया था। चीनी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद आपके प्रबन्ध से सम्पन्न हो सका।

कुशल प्रशासक

सन् १९४१ ई० में उत्तर प्रदेशीय आर्य-प्रतिनिधि सभा पर सहस्रों रुपया कर्ज हो गया था जिससे आर्यसमाज के प्रचार में बाधा पड़ती थी। ऐसे कठिन समय में प्रतिनिधियों ने उन्हें प्रधान बनाने का प्रस्ताव किया, किन्तु सभा की आर्थिक दुरवस्था को जानते हुए भी उन्होंने उस पद को सहर्ष स्वीकार कर लिया, और फिर सारे प्रान्त का तूफानी दौरा करके अल्पकाल में ही सभा को इस दुरवस्था से निकाल लिया। १९४४ ई० तक आप इस पद पर बने रहकर आर्यसमाज को विस्तार करके के लिए कई महत्त्वपूर्ण कार्य आपने किया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि, दिल्ली के उपप्रधान के रूप से आपने १९४३ ई० से १९४५ ई० तक सेवा की, तथा १९४६ ई० से १९५१ ई० तक वे उसके प्रधान मंत्री रहे। अपने मंत्रित्व काल में आपने विदेशों में आर्यसमाज के लिए विशेष कोश की स्थापना की थी जिससे विदेशों में आर्य प्रचारक भेजे जाते हैं तथा विदेशों में धर्म-प्रचार के योग्य साहित्य वितरण किया जाता है।

वैदिक मिश्नरी

विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार की आपकी प्रबल इच्छा थी। अतः इस लालसा की पूर्ति के लिए वैदिक मिशनरी बनकर वे १९५० ई० में दक्षिण अफ्रीका तथा १९५१ में बर्मा, थाईलैंड, सिंगापुर आदि सुदूर देशों में गये। गुरुकुल वृन्दावन से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। १९३६ ई० में वे उसके कुलपति चुने गये थे। आप आजीवन आर्यसमाज और साहित्य की सेवा में लगे रहे। वृद्धावस्था में भी उन्होंने अपनी लेखनी को विश्राम नहीं दिया। देहान्त के एक सप्ताह पूर्व उन्होंने सर्व-साधारण को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने के लिये "पंच महायज्ञ" नामक एक पुस्तक बोलकर लिखवायी थी। वे कहा करते थे कि "जो मुफ्त का खाता है वह पाप खाता है, अतः मुझे अपने बेटों का धन भी बिना कुछ किये हुए नहीं खाना चाहिए। मेरा सौभाग्य है कि मैं नित्य प्रति कुछ न कुछ पढ़ता और पढ़ाता रहा हूँ।" आश्चर्य है कि निधन से एक दिन पूर्व तक उन्होंने हम लोगों को योगदर्शन विधिपूर्वक पढ़ाया था। मेरे ऐसे कई अन्य व्यक्ति थे जो उनसे नित्य प्रति पढ़ा करते। इस क्रम का उन्होंने अन्त तक निर्वाह किया। ऐसा लगता है कि रुग्णावस्था में मेरे ऐसे तुच्छ व्यक्तियों को पढ़ाकर उन्हें आत्मिक सन्तोष होता था क्योंकि वे कहा करते थे कि वेद का आदेश है कि "माहं राजन अन्य कृतेन योजम्" अर्थात् मैं दूसरे की कमाई न खाऊँ। मैं तो इस वेद की आज्ञा का परिपालन कर रहा हूँ ताकि आगामी जीवन में अदीनता का स्वभाव मुझमें बना रहे।

उनका जीवन अत्यन्त सादा और सरल था, उनमें नाम मात्र को भी बनावट या दिखावा नहीं था, और न था झूठा धार्मिक दंभ। उदाहरण के लिए एक घटना ही पर्याप्त होगी। एक दिन उनके एक शिष्य मौलवी अली उनके पास पढ़ने आये। उस समय वे सन्ध्या करने के लिए लगभग बैठ चुके थे। उन्होंने मौलवी साहब के आने की आहट पाकर आँखें खोलीं और कहा कि 'आइए, पहिले पढ़ लें। मौलवी साहब ने कहा कि सन्ध्या कर लें। उन्होंने कहा कि 'नहीं, तुम्हें पढ़ा करके ही सन्ध्या करूंगा क्योंकि तुम्हारा समय व्यर्थ नष्ट न होगा, और मेरा ईश्वर तो भागा नहीं जा रहा है। तुम्हें बैठा करके मेरा मन भी तो तुम्हारी ओर लगा रहेगा। कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर अंतिम साँस तक सेवारत इस महापुरुष के निधन से आर्यसमाज की महान् क्षति हुई है साथ ही हिन्दी जगत् का एक उच्चकोटि का तपस्वी साहित्य-निर्माता उठ गया है जिसकी क्षति-पूर्ति होना निकट भविष्य में असम्भव है।

नेत्रहीनों के ज्ञान-चक्षु खोलनेवाले—लुई ब्रेल

[पृष्ठ २२७ का शेषांश]

उम्र लगाकर उसने जो काम किया, उसे ही मान्यता न मिली। इसी गम में घुल-घुल कर ६ जनवरी, १८५२ को इस संसार से चल बसा।

हाय रे निष्ठुर संसार। तेरा विधान कितना क्रूर है। यहाँ व्यक्ति के जीते-जी तो उसका जीवन दूभर कर दिया जाता है, किंतु मृत्यु के उपरान्त उसे पूजा जाता है, उसके अवशेषों को श्रद्धा के पुष्पों में सुरक्षित रखा जाता है। यही सब कुछ अन्य महापुरुषों की भाँति लुई ब्रेल के साथ भी हुआ। उसके इस दुनिया से चल बसने के बाद शीघ्र ही सरकार ने उसकी लिपि को मान्यता प्रदान कर दी और संसार के सारे देशों ने इसे सहर्ष अपना लिया। उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए ही इस लिपि का नाम "ब्रेल-लिपि" रखा गया।

इस समय संसार के सभी देशों में नेत्रहीनों के लिए इस लिपि को उपयोग में लाया जाता है। भारत में भी हिंदी तथा अन्य सभी भाषाओं की शिक्षा इसी लिपि के माध्यम से दी जा रही है। आज जापान में तो दैनिक समाचार-पत्र तक इस लिपि में नेत्रहीनों के लिए छापे जाते हैं।

संसार भर के नेत्रहीन लुई ब्रेल के प्रति कृतज्ञ हैं और आज के दिन उस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित किये बिना नहीं रह सकते।

भगवान राम के घुटने पर अचेत अवस्था में लक्ष्मण—पास में शोकातुल बन्दर बैठे हैं

सिसकते पाषाणों की नगरी—किराड़ू

श्री भूरचन्द जैन

राजस्थान की भूमि जिसकी गोद में स्वतन्त्रता की मर्यादा के लिए जूझनेवाले रणबांकुरों ने जन्म लिया, जिनकी शूरवीरता के लिए आज भी राजस्थान का मस्तक सदा ऊँचा रहता है, वहीं कला के प्रेमियों ने इस धरती पर ऐसी कला-कृतियाँ प्रदर्शित करने का प्रयास किया है जो आज भी सैलानियों को अपनी ओर बरबस आकर्षित करती हैं। यहाँके प्राचीन भवनों में किलों की कला, मंडपों का शृंगार, नृत्यवादकों के हावभाव, पशु-पक्षियों की आकृतियाँ, वीरोचित प्रेरणा की महान् विभूतियाँ, धर्म-प्रचारकों की सन्देश रेखाएँ, विलासी जीवन की छटा, युद्ध के भयंकर रूप, सौन्दर्य को सजाने के प्रारूप देखने को मिलते है—राजस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक। इन्हें कलाकारों ने अथक प्रयत्नों से छीनी और हथौड़ी से आकृति रूप दिया है।

राजस्थान की शिल्पकला केवल पहाड़ी एवं जलमय स्थानों के समीप ही विकसित नहीं हुई है वह मरु प्रदेश रेगिस्तान में भी निखर उठी है। पश्चिमी राजस्थान में ऐसा ही एक स्थान बाड़मेर जिला है। बाड़मेर जिले के रेत के टीले विख्यात हैं। बाड़मेर से २२ मील एवं बाड़मेर-मुनाबा रेलवे के खड़ीन स्टेशन से ३ मील की दूरी पर हथमा ग्राम के समीप कलाकृतियों से अलंकृत कला-कौशल एवं सिसकती पाषाणों की नगरी किराड़ू के दर्शन करने को मिलते हैं। वहाँका एक भी पाषाण ऐसा नहीं होगा जिसने कलाकार की हथौड़ी की मार न खायी हो।

किराड़ू जो १२वीं शताब्दी में किराटकूप या किरात-कूप के नाम से विख्यात था। वहाँ कभी शासकों एवं प्रजा के जनसमुदाय ने यहाँ के सजीव सौन्दर्य का आनन्द लूटा होगा, नयनाभिराम दृश्यों से अपने को धन्य भी माना होगा, लेकिन आज किराड़ू वह नहीं रहा। जहाँ प्रातः के मांगलिक गान गाती हुई रमणियाँ थाल सजाये देव-स्थानों की ओर जाती थीं, जहाँ नगाड़ों के डंके बजते थे, वहाँ अब मृत्यु का सन्नाटा है। वे मानव भी नहीं रहे जो
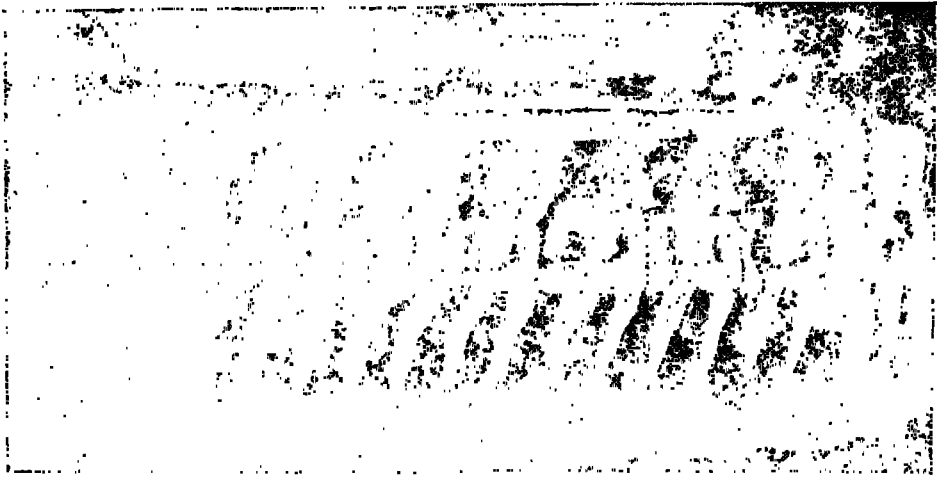
सागर मन्थन—देवताओं द्वारा

नगरी की भव्य इमारतों में निवास करते थे, वह राजा भी नहीं रहा जो इनकी रक्षा के लिए सदा तैयार रहता था। अब तो वह केवल सिसकती पाषाणों की तितर-वितर बस्ती भर है जिसके भग्नावशेष अपनी बिलखती गाथा कह रहे हैं।

काले और गहरे भूरे रंग की पहाड़ियों और रेतीले टीलों के बीच में बसा किराडू आज बिखरी हालत में दृष्टिगोचर होता है। किराडू नगरी के एक कोर से दूसरी कोर तक ध्वस्त भवन असंख्य तितर-वितर पाषाणों के रूप में विद्यमान हैं। इन धराशायी पाषाणों को गोद में लिये यहाँकी धरती आज भी पाँच देवस्थानों को कुछ हद तक सुरक्षित रखने में सफल हुई है। किराडू के इतिहास की गौरव-गाथा का वर्णन यहाँ के ये पाँच भग्न मन्दिर ही नहीं अपितु कई मन्दिरों, राजप्रासाद, नगर, भवन आदि भी कराते थे जो प्रकृति के प्रकोपों एवं आक्रमणकारियों की चोटों सें नष्ट हो चुके हैं। निकट के हथमा ग्राम के निवासियों से जब यह पूछा जाता है कि किराडू का ऐसा हाल कैसे हुआ तो वे बतलाते हैं—किराडू तो कटकों का डेरा था, अर्थात् यहाँ आक्रमणकारियों का ताँता कभी बंद ही नहीं होता था।

विनाश से बचे हुए पाँच देवालयों में श्री सोमेश्वर का मन्दिर सबसे बड़ा है। जिसका बाहरी भाग अभी भी कलाकृतियों से सज्जित है। मन्दिर के नीचे के पत्थर से लेकर छत तक के पत्थरों पर कलापूर्ण खुदाई का काम है। मन्दिर के आलम्बन पर नीचे से ऊपर की ओर गजथर, अश्वथर एवं नरथर का प्रदर्शन अत्यन्त आकर्षक है। उनके नीचे के अलंकरण भी बड़ी बारीकी से बनाये गये हैं। मन्दिर के बाहरी भाग के उत्तर दिशा की ओर कृष्ण की लीलाएँ, जैसे शकट भंजन, केशी वध, गोवर्धन-धारण, बकासुर-वध, पूतनावध, एवं अनेक दृश्यों को अत्यंत कौशल से प्रस्तुत किया गया है। मन्दिर के दक्षिणी प्राचीर में पौराणिक घटनाओं के सजीव दृश्य उत्कीर्ण हैं। इनमें अमृत-मन्थन का दृश्य बड़ा आकर्षक है। मन्दिर के अन्य भागों में रामायण से सम्बन्धित कथाओं के उत्कीर्ण चित्र हैं। अशोक-वाटिका में सीता, सुग्रीव-बाली युद्ध, सेतु-निर्माण आदि दृश्यों को बड़ी कुशलता से दिखलाया गया है।

इसी मन्दिर के गर्भगृह की छत न मालूम कब टूट कर गिर गयी या तोड़ी गयी। लेकिन गर्भमंडप के ४४ स्तंभ आज भी खड़े हैं। स्तम्भों के ऊपरी भाग में मकर अपना मुँह फैलाये हुए दिखाये गये हैं। जिसके मुँह में मानव एवं मयूर कृतियाँ जीवन संघर्ष में रत हैं। खम्भों पर योद्धाओं और नृत्यकारों की सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिर का ऐसा कोई भी भाग नहीं है जिस पर मानव जीवन से सम्बन्धित किसी कार्य को चित्रित न किया गया हो। दैनिक दिनचर्या से लेकर, सौन्दर्य साधना, रति-क्रिया आदि की भी बारीकियाँ देखने को मिलती हैं।

मन्दिर के बरामदे की बाहर की दीवारों पर तीन शिलालेख भी हैं किंतु वे इतने बिगड़ गये हैं कि पढ़े नहीं जाते। पहला लेख वि० सं० १२०९ का राजा कुमारपाल सोलंकी के समय का, दूसरा १२१८ तक वि० सं०

का लेख परमार सिंधुराजा से लेकर सोमेश्वर तक की वंशावली तक को लिये हुए है। तीसरा लेख वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदी १३ का गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे) और उसके सामन्त महाराज पुत्र मदन ब्रह्मदेव का है।

सोमेश्वर मन्दिर के ठीक पास ही एक छोटा-सा शिव का देवालय है जिस पर रामायण के दृश्यों में वानर सेना, भगवान् राम के घुटने पर अचेतन अवस्था में सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण लेटे हुए हैं। पास में वानर शोकग्रस्त मुद्रा में दिखाये गये हैं। हनुमान संजीवनी बूटीवाले पहाड़ को उठाते हुए भी दिखाये गये हैं। इसीके समीप ही महाभारत के अनुसार भीष्म पितामह को शरशैया पर लेटे हुए दिखाया गया है जो कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। भीष्म पितामह के प्रति कलाकारों की श्रद्धांजलि उनकी आंतरिक श्रद्धा की परिचायक है।

इसी मन्दिर से कुछ दूर पर दो अन्य मन्दिर हैं जिनमें शिव, ब्रह्मा एवं विष्णु की मूर्तियाँ हैं। इनके शिखर अब धरा पर आने को आतुर हो रहे हैं। इनके बाहरी भाग को देखने से मालूम होता है कि इनमें भी तोरण एवं सभामंडप थे। रति-क्रियाओं को इन्हीं मन्दिरों में बहुलता से देखा जा सकता है।

पाँचवाँ और अंतिम एक वैष्णव मन्दिर है जिसके स्तम्भों पर अब केवल तोरण रह गये हैं।

परिचारिका द्वारा पीठमर्दन (घरेलू जीवन का दृश्य)

इस कारण इसे अब 'तोरणिया का मन्दिर' भी कहते हैं। इसके खम्भों पर विषैले जन्तुओं के साथ मकर मुख में पुरुष भी दिखाये गये है। वहाँ खम्भों के नीचे के भाग पर नदियों की प्रतिमाएँ हैं। किसीकी गोद में बालक है, तो कहीं वह नृत्य कर रही है, तो कहीं स्तनों को सम्भाल रही है, तो कहीं अपने वस्त्रों को समेटती नजर आती है, तो कहीं लज्जा से अपना नतमस्तक नीचे किये हुए दीख पड़ती है। मन्दिर के आंतरिक भाग, जिसकी भारी चट्टान आज भी तोरणों के पास तितर-बितर पड़ी है, एक भारी चट्टान पर अंकित भगवान् गणेश को मोदक खाते हुए दिखाया गया है। वह वास्तव में बड़ी ही चित्ताकर्षक और सुन्दर प्रतिमा है। किराडू का कोई भी ऐसा देवालय नहीं है जिसमें भगवान् गणेश की प्रतिमा किसी न किसी रूप में न हो।

किराडू जिसके असंख्य पाषाण जिन पर न मालूम कितना धन, श्रम और समय लगा होगा, आज खँडहर हैं। इस विनाश की एक दंतकथा भी है। एक साधु जो देशाटन के लिए किराडू से अन्यत्र चला गया, अपने पीछे अपने शिष्य को छोड़ गया था, लेकिन किराडू की एक कुम्हार महिला के अतिरिक्त और किसी ने भी शिष्य की देखभाल नहीं की। साधु ने वापिस आने पर शिष्य की दयनीय हालत देखी तो उसे क्रोध आया और उसने शाप दे दिया कि किराडू का विनाश हो और जहाँ इन्सान है वहाँ पत्थर ही रह जायँ। परन्तु शाप देने से पूर्व उसने कुम्हार महिला को वहाँसे चले जाने के लिए कह दिया और कहा कि मुड़कर किराडू की तरफ नहीं देखना। लेकिन कुतूहल-वश कुम्हार महिला ने पीछे मुड़कर देखा तो वह भी पत्थर बन गयी जो खड़ीन स्टेशन और सिहाणी गाँव के मार्ग के पास किराडू से कुछ दूर हाथमा के समीप आज

किराडू के टूटे खंभों की सुंदर और बारीक खुदाई का एक नमूना

भी मूर्ति के रूप में देखी जाती है। मनुष्य के पत्थर बन जाने की बात किराडू के तालाब के पास में आई एक बारात के दृश्य रूप में बिखरे पाषाणों में भी दृष्टिगोचर होती है। यह शाप की कहानी किम्बदन्ती के रूप में प्रचलित है। पहाड़ी के ऊपरी भाग पर एक टूटी हुई कुटी को उसी साधु की कुटिया बतलाया जाता है।

किंतु किराडू की एक भी ऐसी प्रतिमा चाहे वह दीवारों, तोरण, खम्भों या द्वार पर अंकित नहीं है जो खंडित न हो। फिर भी दर्शक रामायण, महाभारत, पुराणों आदि के जीवन की झाँकियों को निहारने का आनन्द लेते हैं।

किराडू तक पहुँचने के लिए अब बाड़मेर से खड़ीन तक पक्की डामर सड़क का निर्माण भी हो चुका है। खड़ीन स्टेशन से हाथमा गाँव तक दो मील के रास्ते को भी कच्ची सड़क का रूप दे दिया गया है। बाड़मेर से सिहाणी प्रतिदिन सायं एक बस चलती है जो हाथमा गाँव अथवा किराडू के समीप किराडू देखने वाले यात्रियों को छोड़ देती है। किराडू में हाल ही में एक विशाल पानी का ठांका भी बना दिया गया है। वैसे स्वयं किराडू के आस-पास कई पानी के तालाब और कुएँ भी विद्यमान हैं। किराडू देखने वालों की प्रातः एवं सायंकाल का समय बहुत ही उपयुक्त माना जाता है। वर्षा के दिनों में इसकी पाषाण कला के साथ-साथ प्राकृतिक छटा भी निखर उठती है।

भग्नावशेष पाषाणों और मन्दिरों का संरक्षण अब पुरातत्व विभाग की देख-रेख में है।

स्वामी विवेकानन्द की कल्पना का भारत

श्री नागेश्वरसिंह "शशीन्द्र" विद्यालंकार

विवेकानन्द को अपना अन्तिम आशीर्वाद देते हुए स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा था—"नरेन्द्र ! आज मैं भिखारी हो गया।" सचमुच परमहंस ने अपना सारा धन उन्हें दे दिया था। अपना सारा प्रकाश उनके अन्तर में उड़ेल दिया था। किन्तु वे विवेकानन्द को देकर इस भारत को ही नहीं समस्त संसार को धनी बना गये। स्वामी विवेकानन्द को बापू महर्षि कहा करते थे। एक महर्षि की तरह उनके जीवन में त्याग और तपस्या की मात्रा तो थी ही साथ साथ तेज और पराक्रम की मात्रा भी उतनी ही थी। वे भारत को भारत बनाना चाहते थे। वे जहाँ भारतीयों में आध्यात्मिकता की बात देखना चाहते थे, वहाँ उनमें उन्नत शरीर और बलिष्ठ भुजा भी। उन्होंने विसेश्वरैया को एक पत्र में लिखा था—"भारत को आज ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है—वह है लोहे की मांसपेशियां और फौलाद के स्नायु, प्रचण्ड इच्छा-शक्ति जिसका अवरोध दुनिया की कोई शक्ति न कर सके, जो संसार के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में समर्थ हो फिर चाहे समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े साक्षात मृत्यु का सामना क्यों न करना पड़े।"

भारत सदा से ज्ञान-विज्ञान की भूमि रहा है। सदियों तक जगत्गुरु बना रहा। अपने इस महान् भारत के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"भारत वह पुरातन भूमि है जहाँ संसार में सर्वप्रथम ज्ञान का अवतरण हुआ था। और इसके बाद किसी देश तक उसके प्रकाश की किरणें पहुँच सकी थीं। यह वही भारत है, जिसके अध्यात्म को अन्तः-स्रवण, स्थूल रूप से दिखायी देता है। उन सरिताओं में जिनका जल सागर जैसा विस्तृत प्रतीत होता है और यह वही भारत है, जिसकी गरिमा का प्रतीक है—हिमालय, जिसके हिम के स्तर पर स्तर आकाशों में प्रवशिष्ट होते चले गये हैं और जैसे स्वर्ग के रहस्यों तक पहुँच गये हैं।"

भारत की धरती तो ऐसी पवित्र है जहाँ कपिल और कणाद हुए। व्यास और वशिष्ठ पैदा हुए। राम और कृष्ण की क्रीड़ाभूमि रही। इसकी यह महिमामयी धरती ऋषि और मुनियों के चरणों से धन्य होती रही।

एक बार किसी शिष्य ने उनसे पूछा—"स्वामीजी ! मानव प्रकृति के जिज्ञासा का उदय सर्वप्रथम कहाँ हुआ था ? उसके उत्तर में विवेकानन्द ने कहा था—"मानव प्रकृति के प्रति जिज्ञासा का उदय सर्वप्रथम तुम्हारे ही भारत में हुआ था और यहीं अन्तर और बाह्य विश्व को जानने-समझने की चेष्टा की गयी। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि आत्मा के अमरत्व के सिद्धान्त सबसे पहले यहीं प्रतिपादित किये गये। स्रष्टा-द्रष्टा ईश्वर के अस्तित्व का पता यहीं लगाया गया तथा मानव एवं प्रकृति में अन्तर्निहित उसकी शक्ति का साक्षात्कार यहीं के महापुरुषों ने किया। धर्म और दर्शन के श्रेष्ठतम आदर्शों की पहुँच पराकोटि तक, यहीं हुई। इसी भारत भूमि से अध्यात्म और दर्शन का ज्वार उठा तथा विश्व को परिप्लावित कर गया। और यही देश होगा जहाँ से एक बार पुनः जीवन और शक्ति का स्रोत उठकर वर्तमान पतनशील एवं क्षीण मानव-समुदाय को प्रेरणा और बल प्रदान करेगा।"

भारत मरकर भी जिन्दा रहा है। उसका अध्यात्म-बल घटने के बदले बढ़ा है। वर्तमान भारत के चरित्र का उद्घाटन करते हुए विवेकानन्द ने अपने एक लेख में लिखा है—"अपना ही यह भारत है जिसने सदियों तक आघात पर आघात झेले है विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचार सहे हैं। संस्कृति तथा सभ्यता के विपर्यय पर विपर्यय का डट कर सामना किया हैं। अपना वही देश है जो विश्व में चट्टान की दृढ़ता लिये हुए है और जिसका तेज और प्राण-शक्ति अजर-अमर है ? पुनः पाठक पूछेंगे कि अपने देश का जीवन क्या है। इसका उत्तर होगा। आत्मा का प्रकृति ही इसका जीवन है, अनादि, अनन्त और अमर, और सौभाग्य से हम सभी भारत-जैसे महान् देश की संतान है।"

प्राचीन भारत के अस्तित्व की यदि कोई आलोचना करता था तो स्वामीजी को इससे बड़ा दुख होता था। वे इसी प्राचीनता को भारत की आत्मा मानते थे। और इसी अतीत के बल पर वे भविष्य के मृत्युंजयी भारत का निर्माण चाहते थे। एक बार किसी आलोचक ने उनसे पूछा—कि अतीत की ओर देखने से अवनति होती है और कुछ प्राप्त नहीं होता। इसलिए आपके जैसे समाज-सुधारक

संत को भविष्य की ही बात करना चाहिए। स्वामीजी ने उस आलोचक को उत्तर देते हुए कहा था—'मेरे मित्र, तुम्हारा कहना भी सत्य है, मगर एक बात याद रखो कि भविष्य के निर्माण में अतीत का भी योग होता है। जहाँ तक देख सको, पीछे मुड़कर देखो और अतीत के ज्ञान एवं शक्ति के स्रोत से प्रेरणा और दिशा प्राप्त करो फिर भविष्य के भारत को उज्ज्वल और महत्तर बनाओ, उससे भी उज्ज्वल और महान् जितना यह पहले कभी रहा होगा। हमारे पूर्वज महान् थे। हमें सबसे पहले यही याद रखना चाहिए। हमें अपने जीवन और अस्तित्व के तत्त्वों को समझना होगा और पहचानना होगा, उस रक्त को जो हमारी धमनियों में प्रवाहित है, हमें उस रक्त में आस्था होनी चाहिए और विश्वास होना चाहिए। उस आस्था और अतीत की महानता की चेतना के द्वारा हमें ऐसे भारत का निर्माण करना होगा, जो पहले से अधिक गौरवमय एवं तेजोमय होगा।

भारत ने पतन के दिन भी देखे। मैं इससे घबराता नहीं क्योंकि ऐसे दिन तो आते ही रहते हैं और प्रत्येक राष्ट्र और जाति के जीवन में उन्हें आना ही चाहिए। एक विशाल वृक्ष को देखो बढ़ता है, फूलता है, फल देता है—वह फल धरती पर गिरता है और सड़कर मिट्टी में मिल जाता है किन्तु फिर उसी में से एक नवीन अकुर जन्म लेता है और उससे एक विशालवृक्ष उग आता है। भारत की अवनति और पतन का वह काल भी आवश्यक ही था। इसी पतन और अवनति के बीच वह भावी भारत उठ रहा है। उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ व्यापक हो रही हैं और नयी कोपलें फूट रही है।

अन्य देशों की समस्याओं की अपेक्षा हमारे देश की समस्याएँ अधिक बड़ी और काफी उलझी हुई हैं। जिनमें जाति, धर्म और भाषा की समस्याएँ प्रधान हैं। लेकिन विवेकानन्द इस समस्या को नहीं मानते थे। उनकी ऐसी मान्यता थी कि जाति धर्म और भाषा के मेल से एक राष्ट्र का निर्माण होता है। सचमुच संसार के अन्य राष्ट्रों को बनानेवाले तत्त्व कम हैं। यहाँ तो जातियों पर जातियाँ कितनी खड़ी हैं, उन्होंने भी कहा है—''यहाँ आर्य, द्रविड़, तातार, तुर्क, मुगल और यूरोपीय लोग संसार की अनेक जातियाँ आयीं और बहुत घुल-मिल गयीं। जातियों के रक्त ही नहीं मिले, भाषाओं का भी संमिश्रण अद्‌भुत है। यूरोपीय और पूर्वीय जातियों में रीति-रिवाज और व्यवहार आदि की जितनी भी भिन्नता है, उससे कहीं अधिक भिन्नता यहाँ मिलती है लेकिन उसी भिन्नता में एक अलौकिक एकता भी है।''

एक किसी भाई ने उनसे लिखकर पूछा कि आपकी कल्पना के मृत्युंजयी भारत का आधार क्या होगा ? उसके उत्तर में स्वामीजी ने लिखा था—''परम्परा और धर्म।''

सचमुच देखा जाय तो इसी आधार पर हमारे राष्ट्र की एकता का भवन खड़ा है। यूरोप में राष्ट्रीय एकता है, राजनीतिक विचारों द्वारा और एशिया में धार्मिक आदर्शों से राष्ट्रीय एकता है। भारत के भविष्य के लिए धार्मिक एकता पहली आवश्यक शर्त है। भारत की धरती पर एक ऐसे व्यापक धर्म की प्रतिष्ठा की आवश्यकता है जो सबको मान्य हो, सबको स्वीकार हो। उस व्यापक धर्म का अभिप्राय बताते हुए स्वामी विवेकानन्द ने एक लेख में लिखा है—''मेरा अभिप्राय वह धर्म नहीं है—उस तरह का धर्म नहीं है, जिस तरह के धर्म की बात मुसलमान, बौद्ध अथवा ईसाई करते हैं। मेरा अर्थ भिन्न है। हम सब जानते हैं कि कुछ ऐसी बातें जो सभी धर्मों में समान रूप से मान्य हैं। सभी सम्प्रदायों के लोग जिन्हें स्वीकार करते हैं। भले ही उनके अपने अलग-अलग निष्कर्ष हों, अलग-अलग उपदेश और आदेश हों। अतः मूलभूत बातें सभी धर्मों में एक-सी हैं वे ही हमारे धर्म में भी इस तरह हैं कि अपनी-अपनी सीमाओं में सबको अपने-अपने ढंग से जीने की स्वतंत्रता है। हम उन मूलभूत बातों को जानते हैं। कम से कम वे लोग तो जानते ही हैं जिसमें सोचने-विचारने की शक्ति है। हम चाहते हैं कि वे सर्व-सम्मत मूलभूत बातें भारत के सभी लोग जानें, समझें और उसे जीवन में उतारने का प्रयास करें यही कदम सबसे पहले उठाया जाना चाहिए। क्योंकि यही पहला कदम भावी भारत के निर्माण के लिए आवश्यक है।''

पदार्थ की चौथी अवस्था—प्लाज्मा

श्री श्याममनोहर व्यास एम० एस्-सी०

कुछ वर्षों पूर्व तक पदार्थ की तीन अवस्थाएँ ही वैज्ञानिक जानते थे पर जब से प्लाज्मा की खोज हुई है तब से वैज्ञानिकों की यह धारणा बदल गयी है।

यदि हम किसी जीव-विज्ञान-विशेषज्ञ से प्लाज्मा के बारे में बात करें तो वह इसका अर्थ रक्त की संरचना लेगा और उसीके बारे में बताने लगेगा। विज्ञान का अध्ययन करनेवाले कई व्यक्ति भी प्लाज्मा व प्रोटोप्लाज्मा में अन्तर नहीं समझते।

आज से पचास वर्ष पूर्व कोई भी व्यक्ति प्लाज्मा शब्द से परिचित नहीं था। विश्व को प्लाज्मा से परिचित कराने वाले वैज्ञानिक हैं—इरविंग लिमर।

प्लाज्मा कोई पदार्थ-विशेष नहीं है। यह द्रव्य की ही एक विशेष अवस्था है—असामान्य अवस्था!

सामान्यतः हम पदार्थ की तीन अवस्थाएँ जानते हैं—(१) ठोस (२) द्रव और (३) गैस।

इरविंग लिमर ने द्रव्य की चतुर्थ अवस्था पर खोज की और उसे 'प्लाज्मा' का नाम दिया। यह ठोस, द्रव व गैस से पूर्णतः भिन्न रूप है।

यदि हम सूर्य के केन्द्रीय ताप और उसके गर्भ में पाये जानेवाले गैस-पुंज के बारे में विचार करें तो हम सहज ही प्लाज्मा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सूर्य अनन्त ऊर्जा का उत्पादक है। उसके केन्द्र का तापमान लगभग दो करोड़ अंश सेंटीग्रेड है। इस उच्च-ताप में पदार्थ का गैस-पुंज भी अपनी अवस्था बदल लेता है और उसका नया रूप बन जाता है—प्लाज्मा!

सन् १९६४ में न्यूयार्क के विज्ञान मेले में प्लाज्मा का प्रायोगिक प्रारूप देखने को रखा गया था। इसे देखकर ऐसा ज्ञात होता था मानों आकाश-गंगा से कोई तारा वहाँ लाकर कैद कर दिया गया हो! आकार में वह एक विशाल अण्डे जैसा था जिसकी चौड़ाई तीस फुट थी और लम्बाई पचास फुट के लगभग। उसके अन्दर उफनते-बिफरते गैस-पुंज के बादल उमड़-घुमड़ रहे थे।

अनन्त आकाश में असंख्य तारों का द्रव्य प्लाज्मा के ही रूप में है।

प्रयोगशाला में प्लाज्मा उत्पन्न करना वैज्ञानिकों के लिए कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं। प्लाज्मा उत्पन्न करने का सफल तरीका यह हो सकता है कि ड्यूटेरियम और ट्रिटियम गैसों के मिश्रण को दस लाख एम्पीयर की बिजली के द्वारा दस या बीस लाख डिग्री तक गर्म किया जाये। इतने तापमान में भौतिक तत्त्व प्लाज्मा के रूप में परिणत हो जाते हैं।

प्लाज्मा को हम अत्यधिक आयोनाइज्ड गैस भी कह सकते हैं।

उसमें थर्मो। न्यूक्लियर सक्रियता पैदा करने के लिए प्लाज्मा को कम से कम लगभग ५ करोड़ डिग्री तक गर्म करना चाहिए। इस तरह से उत्पादित प्लाज्मा इतना गर्म होगा कि इसे किसी भी साधारण पात्र में नहीं रखा जा सकता। सघन चुम्बकपूर्ण क्षेत्रों को प्लग के रूप में व्यवहार करके इसे संग्रह किया जा सकता है जिससे अत्यधिक गर्म प्लाज्मा को पात्र की सतहों से अलग रखा जा सके। यह इस तरह से हो सकेगा कि मानों एक बड़ी बोतल के अन्दर की घिरी कई जगह में एक छोटी चुम्बकीय बोतल प्लाज्मा को पकड़कर रख रही हो।

सोवियत रूस के 'ओग्रा' और अमरीका के 'स्टेलैरेटर', और 'पाइरैट्रन' जैसे प्रयोगों के द्वारा भौतिक शास्त्री मजबूत चुम्बकपूर्ण क्षेत्रों की सक्रियता के द्वारा प्लाज्मा को कम से कम स्थान में रखने और इस पर दबाव डालकर या इसमें अधिकाधिक विद्युत् प्रवाह देकर इसे गर्म करने की चेष्टा में लगे हुए हैं। अभी तक प्लाज्मा को ५० लाख डिग्री तापमान तक ही गर्म किया जा सका है। यदि प्लाज्मा को वैज्ञानिक स्थिर रूप से रख सकने में सफल हो गये तो वे सितारों की शक्ति प्रयोगशाला में उत्पन्न कर सकेंगे।

सूर्य और तारागण प्लाज्मा के विशाल भण्डार हैं। वे प्लाज्मा से ओत-प्रोत होकर प्रकाश, ताप और रेडियोधर्मी विकिरण प्रसारित करते रहते हैं।

यदि प्लाज्मा को वैज्ञानिक अपनी योजनानुसार काम में ला सके तो मानव जाति का बड़ा कल्याण हो सकता है। अमरीका के वैज्ञानिकगण प्लाज्मा के अनन्त उपयोगों की सम्भावनाओं पर विचार कर रहे हैं। प्लाज्मा वैज्ञानिकों के कई स्वप्नों को साकार रूप में परिणत कर देगा। रेगिस्तान हरे-भरे खेतों में लहलहा उठेंगे। कठोरतम धातु खंडों और लोह-चट्टानों को वे प्लाज्मा की सहायता से आसानी से काट सकेंगे। प्लाज्मा लैम्प वायुयानों को गहरे कुहरे में भी मार्ग दिखा सकेंगे। अन्तरिक्ष यात्रा में भी प्लाज्मा बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। प्लाज्मा युक्त यान की गति एक लाख किलोमीटर प्रति घंटा होगी। प्लाज्मा की सहायता से कई मिश्र धातुओं का निर्माण भी किया जा सकेगा।

प्लाज्मा की सहायता से अनन्त ऊर्जा निर्माण हो सकेगा। प्लाज्मायुक्त यान का निर्माण हो जाने पर ग्रहों-उपग्रहों की यात्रा सम्भव हो सकेगी।

प्लाज्मा के उपयोग की अनगिनत और आश्चयजनक संभावनाएँ हैं!

बरोबुदूर तथा अङ्कोरवाट

डा० वासुदेव उपाध्याय

दक्षिण-पूर्व एशिया के बर्मा, मलाया तथा हिन्द-चीन के प्रदेशों में और जावा, सुमात्रा, बालि आदि द्वीप-समूहों में भारतीय संस्कृति के प्रचार हो जाने पर भारत के विभिन्न धर्मों का प्रचार एवं प्रसार भी समयानुकूल हुआ। भारतीय संस्कृति के प्रचार के क्रम में वास्तुकला तथा मूर्तिकला को भी उन भूभागों में अपनाया गया और वहाँ जो मन्दिर और मूर्तियाँ बनायी गयीं, उनका शिल्प और सौन्दर्य दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देता है।

धर्म तथा कला का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव जावा के शैलेन्द्र नरेश ने एक विशाल बौद्ध स्तूप की स्थापना की तथा बौद्ध धर्म के प्रसार में योगदान किया। श्री विजय के शैलेन्द्र शासकों का भारतीय सम्बन्ध सर्वप्रसिद्ध है। भारत में ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर अनेक बातों का उल्लेख किया जा सकता है। नालंदा महाविहार के ताम्रपत्र लेख में यह वर्णन आया है कि शैलेन्द्र-वंश-तिलक बालपुत्रदेव ने नालन्दा में बौद्ध-विहार का निर्माण किया, तथा पूर्वी भारत के बौद्ध धर्मावलम्बी पालवंशी नरेश देवपाल से उसके लिए पाँच ग्राम दान देने की प्रार्थना की थी। इस घटना से मालूम होता है कि जावा के राजा अपने राज्य से बाहर भी बौद्ध धर्म और इसके ज्ञान के प्रसार में रुचि लिया करते थे। जावा का प्रसिद्ध स्तूप बरोबुदूर उन्हीं शैलेन्द्र शासकों की देन है। अङ्कोरवाट कंबुज (वर्तमान कम्बोडिया) देश का अद्वितीय मंदिर है जिसके कलापूर्ण निर्माण में वहाँके नरेश जयवर्मा ने अकथ परिश्रम किया था। आठवीं सदी के अन्त में जावा (श्रीविजय) के राजा ने कंबुज देश पर आक्रमण किया था जिसका विशद विवरण अरब व्यापारी सुलेमान तथा चीन के इतिहासकारों ने किया है। नवम शती के आरम्भ से ही कम्बुज के इतिहास का नया युग सामने आता है। जयवर्मा द्वितीय ने जावा के शासक के रूप में कार्य आरम्भ किया। द्वितीय शासक जयवर्मा कंबुज का महावीर माना जाता है। वह हिन्द-चीन का सबसे प्रतापी राजा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् खमेर जनता उसे 'परमेश्वर' के विरुद से याद किया करती थी। शताब्दियों तक कंबुज में उसकी प्रशंसा के गीत गाये जाते रहे। हिन्द-चीन की वास्तुकला में जयवर्मा द्वितीय की देन अद्भुत है। उसका शासन-काल कंबुज की वास्तुकला का स्वर्णयुग था। वह बड़ा कला प्रेमी था, और उसका कल्पना-बोध बहुत ऊँचा था। कंबुज में उसने अपनी कल्पनाओं को साकार रूप दे दिया। उस समय उत्तरी भारत में गुप्त-युग के पश्चात् गुर्जर प्रतिहारों का शासन था तथा समस्त उत्तरी भारत में शैवधर्म (पाशुपत मत) का प्रचार हो गया था। समुद्रगुप्त की पूर्वी भारत को विजय के पश्चात् ताम्रलिप्ति नामक बन्दरगाह से हिन्दचीन तथा द्वीप समूह को भारतीय जहाज नियमित रूप से जाने लगे थे और उनके द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार दक्षिण-पूर्व एशिया में हो गया। उस पाशुपत का प्रभाव हिन्द-चीन में दीख पड़ता है। कंबुज का मध्ययुगी इतिहास यह बतलाता है कि शैव-वैष्णव की एकता स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा था, किन्तु कंबुज में वैष्णव के सम्प्रदाय का जोर अधिक न रह पाया। शैव मत के प्रबल होने का यह प्रभाव हुआ कि कितने ही बौद्ध-विहार भी शैव देवालयों में परिणत हो गये। सम्भव है कि जयवर्मा द्वितीय भी प्रारम्भ में बौद्ध था, किन्तु कालान्तर में शैव हो गया। उसके उत्तराधिकारी निश्चित रूप से शैव मतानुयायी थे। यही कारण था कि बादोन के विशाल मन्दिर के निर्माण के समाप्त होते ही उसने शैव मन्दिर का रूप धारण कर लिया।

अंकोर या एगकोर आधुनिक नाम है। इसका शाब्दिक अर्थ नगर होता है। थाम का मूल संस्कृत शब्द धाम है तथा वाट (वट) मंदिर के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अङ्कोरवाट का प्रसिद्ध मंदिर इतना विशाल और विचित्र है कि वहाँकी जनता उसे मानव कृति न मान कर इन्द्र की आज्ञा से देवशिल्पी की रचना मानते हैं। कंबुज देश की गाथा है कि अंकोर के वाट को प्रथमतः कच्ची मिट्टी से बनाया गया था। दैवी इच्छा से उस पर हिमपात हुआ और वह रुई की तरह किसी वस्तु से ढँक गया था। इसके कारण वह ठोस पत्थर हो गया। वाट में यत्र-तत्र गोल छिद्र दीख पड़ते हैं जिन्हें वहाँके श्रद्धालु इन्द्र की अंगुलियों के निशान बतलाते हैं। यदि इतिहास पर विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि जिस मध्य युग में भारतीय गौरव का सूर्य पश्चिम में डूब रहा था, उस समय पूर्व में कंबुज देश में

उसका प्रकाश फैल रहा था। बारहवीं सदी में इस प्रसिद्ध मदिर का निर्माण किया गया। अकोरवाट चारों तरफ खाई से घिरा है। पश्चिम ओर उस पर सेतु बना है। आयताकार मदिर की खाई ढाई मील लम्बी तथा छः सौ फुट चौड़ी है। वह पूरब-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। पश्चिम दिशा से इस मदिर में प्रवेश करते हैं तथा गोपुर का विशाल मार्ग वाट के प्रथम दीर्घा तक पहुँच जाता है। गोपुर पाँच खंडों का है, जो रामेश्वरम् तथा कांचीवरम् मदिरों के गोपुर की याद दिलाता है। अङ्कोर-वाट दक्षिण भारतीय मंदिरों से अधिक मिलता है। प्राकार, खण्ड तथा गोपुर में समानता है। यह वाट प्राकार के तीन खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड पहले के ऊपर स्थित है, और वे सभी आयताकार है। भूमि से ग्यारह फुट ऊँचा पहला खण्ड है और दूसरा पहले से बाईस फुट ऊँचे पर स्थित है। सीढ़ियों के सहारे प्रत्येक व्यक्ति एक से दूसरे खण्ड में जाता है। तृतीय खण्ड चौवालीस फुट ऊँचा है। सभी खण्डों में प्रवेश द्वार गोपुर के समान है। धरातल से तृतीय खण्ड ११५ फुट ऊँचा तथा केन्द्रीय अधिष्ठान करीब २१० फुट ऊँचा है। इस मदिर की बनावट पर ध्यान दिया जाय तो पर्वत की तरह ऊँचा यह वाट है। ७५ फुट ऊँचाई पर तृतीय धरातल है और वहाँ से मदिर का शिखर १२५ फुट ऊँचा गया है। मदिर की बनावट विशुद्ध भारतीय है। दक्षिण भारतीय शिखर तथा गोपुरम् में समानता है। केन्द्रीय शिखर के गर्भगृह में देवराज की प्रतिमा है। देवराज दो सौ फुट ऊँचे शिखर पर विराजमान है। अङ्कोरवाट की बनावट में पर्वताकार सुमेरु की कल्पना की गयी है। प्रत्येक खण्ड को जल से घेर कर समुद्र के बीच उसे दिखाया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि देवराज (भगवान्) प्रलय के पश्चात् क्षीर समुद्र में शयन कर रहे हैं। प्रत्येक खण्ड एक दूसरे के ऊपर खड़ा दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक प्राचीर के कोने पर चार शिखर है किन्तु प्रत्येक खण्ड का मध्य शिखर चारों से ऊँचा है। केन्द्र का नवाँ शिखर सबसे ऊँचा है। उसीके नीचे भगवान् का स्थान है। इस योजना की कल्पना में देवराज की ज्योति चारो तरफ बिखर रही है, तथा एक ही स्थान से निकली ज्योति चारों तरफ प्रकाश फैला रही है। खण्डो के बीच जल की स्थिति से यह अनुमान लगाया जाता है कि भवसागर को पार वही करेगा जो भगवान् के सान्निध्य में पहुँचने का प्रयास करेगा। अङ्कोरवाट स्थापत्य एवं वास्तुकला की पराकाष्ठा का उदाहरण है। विद्वानों का मत है कि अनुपात, संतुलन और बनावट में अङ्कोरवाट संसार की इमारतों में बेजोड़ है।

अङ्कोरवाट के केन्द्रीय स्थान तक पहुँचने से पहले ही खण्डों की दीवारें पूर्णरूप से उत्कीर्ण दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम खण्ड की दीवार पर देवासुर-संग्राम का दृश्य खुदा है। उसके पूर्वी भाग में दानवों से युद्ध, दक्षिण ओर अमृत-मन्थन, तथा राजा की शोभायात्रा उत्कीर्ण है। द्वितीय खण्ड के प्रांगण की दीवार पर महाभारत तथा रामायण की कथाएँ प्रस्तर पर खुदी हैं। कुरुक्षेत्र, कृष्ण एवं अर्जुन तथा रामायण से मारीच वध, बालि-सुग्रीव संघर्ष, अशोक-वाटिका में हनुमान, लका-युद्ध, पुष्पक विमान में रामचन्द्र जी की यात्रा आदि गाथाओं का प्रदर्शन है। दीवारों पर स्वर्ग एव नरक के भी दृश्य उत्कीर्ण है। इस प्रकार वाट के उत्कीर्ण प्रदर्शनों से पता चलता है कि कबुज के कलाकार भारतीय धार्मिक परम्पराओं से पूर्णतया परिचित थे और उनका प्रदर्शन करने में कुशल थे।

बारहवी तथा तेरहवीं सदी तक भारतीय जीवन से प्रकाश जाता रहा। इस्लाम के आक्रमणों से हिन्दूधर्म का ह्रास हो रहा था। भारत में मन्दिर गिरने लगे। दक्षिण-पूर्व एशिया के जावा, मलेशिया आदि क्षेत्रों में इस्लाम पहुँच गया था। वहाँका दीपक भी बुझ गया। अङ्कोर-वाट के लिए भी ह्रास के दिन आ गये। कबुज अन्य देशों से युद्ध करने में उलझ गया। सांस्कृतिक चेतना घटने लगी। जिन प्रस्तर खण्डों को रखकर उसका निर्माण किया गया था वे धीरे-धीरे जीर्ण होकर गिरने लगे। कम्बुज देश के बायोन तथा वाट के अवशेष उसकी महानता की कहानी सुनाते हैं।

कबुज के लेख उन दिनों शिव की स्तुति के साथ आरम्भ किये जाते थे। उनसे उस देश में शैव मत के तत्कालीन प्रचुर प्रचार का परिज्ञान होता है। वास्तुकला के अद्वितीय महामन्दिर अङ्कोरवाट के समक्ष नतमस्तक होना पड़ता है। कंबुज कला में तामसिक भावना का अभाव उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। भारतीय मन्दिरों मे कलाकारों ने "काम" का यत्र-तत्र प्रदर्शन किया भी है परन्तु कबुज की उत्कीर्ण मूर्तियों में विलासिता का सर्वथा

अभाव है और शुद्धता अपनी चरम सीमा पर है। कंबुज की भारतीय आत्मा विशुद्ध रूप से सात्विक है।

यहाँ बायोन मन्दिर के सम्बन्ध में दो शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। वाट के मन्दिर से बायोन में एक विशिष्ट अन्तर यह है कि खमेर शासकों के कार्यों का प्रदर्शन भी बायोन में किया गया है। शासकों द्वारा अन्य प्रदेशों पर आक्रमण, युद्ध यात्रा, सेना तथा सामुद्रिक यात्रा का सुन्दर चित्रण प्रस्तरों पर मिलता है। अङ्कोरवाट में महाभारत युद्ध के चित्रण-शैली को बायोन में शायद आत्मसात कर लिया गया। उसमें कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद का बड़ा ही सुन्दर प्रदर्शन है। इस प्रकार अङ्कोरवाट भारत तथा कंबुज के सांस्कृतिक सम्बन्ध जोड़ने की विशिष्ट कड़ी है।

बरोबुदूर जावा द्वीप का महान् स्तूप है जिसका निर्माण मध्य युग में हुआ था। जावा के इतिहास से पता चलता है कि सातवीं शती के मध्य तक वास्तुकला का विकास न हो सका था, और इसके पश्चात् मध्य जावा में जो निर्माण कार्य हुआ वही इस द्वीप की गौरव-गाथा सुनाता है। ई० स० ६२५-६३० ई० तक के काल को भारत-जावा के वास्तुकला का स्वर्ण युग कहते हैं। शैलेन्द्र वंश के नरेशों ने बौद्ध कला से विशेष प्रेम प्रदर्शित किया तथा अनेक बौद्ध मन्दिरों (जैसे कलसन मन्दिर आदि) के अतिरिक्त बरोबुदूर स्तूप (ई० स० ८५० में) का भी निर्माण किया। सातवीं शती से दसवीं शती तक स्थापत्य कला शिखर पर पहुँच गयी थी और इस स्वर्ण-युग के प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण मन्दिरों का निर्माण हुआ था। इस ब्राह्मण-मन्दिर समूह से कुछ दूर हटकर दक्षिण-पूर्व में बौद्ध भवनों का निर्माण आरम्भ हुआ था। इतिहास से पता चलता है कि उस मध्य युग में सुमात्रा के शैलेन्द्रवंशी राजाओं का प्रभाव दक्षिण पूर्वी द्वीप समूह में अधिक विस्तृत था, और इसीके शक्तिशाली बौद्ध शासकों ने आठवीं शती में बरोबुदूर स्तूप का निर्माण किया। सम्भवतः शैलेन्द्र नरेशों के वास्तुकला प्रेमी होने के कारण मध्य-जावा में सुन्दर तथा भव्य भवनों का निर्माण हुआ तथा जनता में कला की अभिरुचि बढ़ने लगी। विश्व में बरोबुदूर के सदृश कला की उच्चतम कुशलता को व्यक्त करनेवाला अन्य दृष्टान्त नहीं है। इसको देखने से मनुष्य भवन की विशालता से उतना प्रभावित नहीं होता जितना प्राकृतिक वैभव तथा उस परिस्थिति में बरोबुदूर के निर्माण-कला से होता है। उसका व्यापक प्रभाव मानव के मनःशक्ति को उद्बोधित करता है।

भारतवर्ष के आरम्भिक अवस्था में धातु-चैत्य (स्तूप) का ही निर्माण होता रहा, किन्तु कालान्तर में ऐसे भी स्तूप बने जिनमें धातु-शरीर (भगवान् बुद्ध के शरीर की राख) नहीं रखी जाती थी। वे केवल स्मारक स्तूप होते थे। स्मारक स्तूप के निमित्त कोई निश्चित स्थान न रहा। भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर एशिया के दक्षिण-पूर्व प्रदेशों अथवा द्वीपों में कलाकारों ने निर्माण कार्य प्रारम्भ किया। इस कारण वहाँ भारतीय कला का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। जावा की कला को "भारतीय-जावा" शैली भी कहते हैं। गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो उसमें किसी न किसी रूप में भारतीयता की छाप दृष्टिगोचर होती है। बरोबुदूर भी उससे प्रभावित है। पाल-युग में पूर्वी भारत के भारतीय अधिक संख्या में दक्षिण पूर्व एशिया में गये। स्थानीय कला में उन्होंने निश्चित रूप से योगदान किया, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ विभिन्न कलात्मक नमूने उपलब्ध होते हैं। बरोबुदूर की निर्माण शैली यद्यपि विश्व में अपना जोड़ नहीं रखती, तो भी यह कहना उचित होगा कि पहाड़पुर (उत्तरी बंगाल) के मूल रूप को मध्य-जावा में संशोधित तथा विकसित कर अङ्गीभूत कर लिया गया।

विश्व की इमारतों में अद्वितीय स्थान रखनेवाला, मानव कला-शक्ति का उच्चतम नमूना तथा कलाकृतियों की पराकाष्ठा को व्यक्त करनेवाला बरोबुदूर का स्तूप जावा के बौद्ध कलाविदों की देन है। यह मध्य जावा के केडु के समतल भूमि के पार्श्व में छोटे पर्वत शिखर पर स्थित है। स्तूप आठ विभिन्न स्तर के चबूतरों के ऊपरी भाग में निर्मित है। नीचे के पाँच चबूतरे चौरस तथा चौकोर आकार के हैं जो क्रमशः ऊपर की ओर छोटे होते जाते हैं। बाद के तीन चबूतरे गोलाकार हैं। सबसे ऊपरी स्तर पर गोलाकार समतल भाग के मध्य में बरोबुदूर का स्तूप स्थित है। वह बहुत कुछ बर्मा के स्तूपों के आकार से मिलता है। बरोबुदूर-स्तूप के नामकरण से तथा वास्तविक स्वरूप में विभिन्नता है। भारतीय साहित्य में स्तूप एक प्रकार का स्मारक है जो बुद्ध के धातु (भस्म)-पात्र के ऊपर निर्मित रहता, जैसे तक्षशिला सारनाथ, या साँची

के स्तूप। उसका सम्बन्ध हीनयान मत से था और भगवान् बुद्ध के चार प्रधान प्रतीको (हाथी, वृक्ष, चक्र तथा स्तूप) मे उसका प्रमुख स्थान था। हीनयान की वास्तुकला में चैत्य का प्रधान आकार स्तूप ही रहा जिसे पश्चिमी सह्याद्रि पर्वतमाला में उत्कीर्ण पाते है। हीनयान चैत्य मे स्तूप को ही भाजा, नासिक, कनहेरि, कार्ले तथा अजन्ता (गुहा सख्या ९) गुफाओ मे प्रधान स्थान दिया गया है। हीनयान मत मे बुद्ध प्रतिमा के लिए कोई स्थान नही था। महायान ने स्तूप मे बुद्ध प्रतिमाओ को निर्मित करना आरम्भ किया। सम्भवतः मध्य जावा में हीनयान का अवसान हो गया था। अतएव बरोबुदूर के स्तूप मे बुद्ध की अनगिनत मूर्तियाँ खोदी गयी थी। जैसा कहा गया है कि स्तूप आठ मजिल की ऊँची चोटी पर निर्मित है जिसकी ऊँचाई एक सौ सोलह फुट है। दूर से देखने से प्रकट होता है कि स्तूप प्रस्तर का एक ऊँचा टीला है जो कच्छप के स्वरूप का आभास दिलाता है। दूर से देखने पर बरोबुदूर स्तूप आकर्षक या प्रभावशाली नही है। वह वास्तुकला की भव्य या सुसस्कृत भावना उत्पन्न नहीं करता किन्तु यह तो निर्विवाद है कि यह अति विस्तृत, बहुत बड़ी और ठोस इमारत है। प्रथम पाँच चौकोर खड उसके प्रारम्भिक अग हैं जो क्रमशः ऊपरी दिशा मे छोटे होते गये है। नीचे के चबूतरे की लम्बाई ४०० फीट है। एक खड से दूसरे खड पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी है जिनके मुख्य प्रवेश द्वार मेहराबदार तथा अलकृत है। प्रत्येक चबूतरे के चारो ओर पहाड़ काटकर बरामदे बनाये गये है जो अपेक्षाकृत सँकरे है और जिनके आगे पतले खभे है। बरामदे की दीवार पर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ खुदी है। इस प्रकार क्रम से ग्यारह उत्कीर्ण चित्र समूह है। एक बरामदे के स्तम्भ युक्त ताख में (जो मदिरनुमा दीख पड़ता है) बुद्ध प्रतिमा खुदी है। चबूतरे के निचले बरामदे से सीढ़ी द्वारा ऊपरी भाग में पहुँचते है तथा फाटक होकर ऊपर बरामदे मे उत्कीर्ण मूर्तियों को देख सकते है। तीसरे चबूतरे से ऊपर जाते समय आकार मे परिवर्तन दीख पड़ता है। ऊपरी भाग गोलाकार तथा समतल है। यहीसे बरोबुदूर की बनावट मे अन्तर आ गया है और यहीसे स्तूप की नयी योजना आरम्भ होती है। यहा से ऊपरी खडो तक वर्गाकार चबूतरों को गोलाकार चबूतरो मे परिवर्तित कर दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस खड से अत के खंड तक के चबूतरे गोल है और इनका व्यास क्रमशः कम होता जाता है। सबसे ऊपर के चबूतरे का व्यास ९० फुट है। प्रत्येक गोलाकार चबूतरे पर छोटे आकार के स्तूप बने है जिनकी सख्या पचहत्तर तक है। अतिम गोलाकार चबूतरे के मध्य में वह प्रमुख स्तूप है जो समस्त विस्तृत योजना के मुकुट के सदृश निर्मित है। इस स्तूप की कल्पना का मूल्याङ्कन करने से ज्ञात होता है कि विश्व के सृजनात्मक तथा कलात्मक उदाहरणो में बरोबुदूर सर्वोत्कृष्ट तथा उच्चतम शिखर पर रक्खा जा सकता है। पाश्चिमी विद्वानों ने कहा है कि बरोबुदूर की योजना में 'पिरामिड के ऊपर स्तूप' निर्माण का विचार काम कर रहा था। कुछ का मत है कि उसके निर्माताओं ने स्तूप के अन्दर पिरामिड को स्थान देने की परिकल्पना की थी। ऐसे भवन का निर्माण अत्यन्त कठिन है जो आकार मे अत्यन्त विशाल हो, दूर से देखने में सुन्दर और प्रभावशाली है, और साथ ही जिसमें अतीव सुन्दर एवम् चूड़ान्त कलाशैली का प्रयोग हो। शायद इसी अत्यन्त दुष्कर कार्य को कर दिखाना इस स्तूप के निर्माताओं का उद्देश्य था। सभवतः जावा के कल्पनाशील श्रद्धालु और समर्थ बौद्ध कलाविदों ने विशिष्टतम कलाकृति बनाने का संकल्प किया जो विश्व में अतुलनीय हो, पूर्व कलात्मक नमूनों से विचित्र हो तथा विशालता मे कहीं इसका जोड़ न हो। उन्होने इस स्तूप को ऐसी मूर्तियो और जातक की कथाओं के दृश्यो से अलकृत करना चाहा जो कला की दृष्टि से सुन्दरतम हों, और वे यहाँ इतनी प्रचुर सख्या में हों कि अन्य कोई स्तूप या मन्दिर उसकी बराबरी न कर सके। यही कारण था कि भगवान् बुद्ध ही की ४३३ मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी तथा कथाओ से सबधित पद्रह सौ दृश्य बरामदों की प्रस्तर दीवारो में बनाये गये। मदिर के अलं-करणों की सुन्दरता, रोचक तथा मोहक खुदाई एवं अनेक कलापूर्ण बुद्ध-प्रतिमाएँ यात्री का चित्त बलात् आकर्षित कर लेती है। इसमें विशालता तथा कुशलता का संयोग अवर्णनीय है। ऐसा मालूम होता है कि बरोबुदूर स्तूप की कल्पना दानवी थी, किन्तु उसकी समाप्ति किसी कुशल जड़िया ने की है।

बरोबुदूर तथा अङ्कोरवाट संसार के आश्चर्यजनक, उत्कृष्ट और विलक्षण भवनों मे गिने जाते है। पहला बौद्धमत का, तथा दूसरा ब्राह्मण धर्म का चिरस्मरणीय एव अद्वितीय भवन है। इनके समान एक साथ विशाल आकार का तथा गरिमा और गौरवमय कोई निर्माण प्राचीन भारत मे नही मिलता है।

उनको देखने से उनका प्रेरणास्रोत स्पष्ट हो जाता है। भारत से ही सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त ग्रहण कर देवराज का मदिर तैयार किया गया। स्तूप के अन्तर्हित ससार की दार्शनिक भावना ने ही बरोबुदूर स्तूप को धरातल से इतनी ऊँची स्थिति दी। भारतीय सांस्कृतिक प्रसार के साथ दक्षिणपूर्व एशिया में कला जिस पराकाष्ठा पर पहुँची उसका श्रेय वहाँ के निवासियो और कलाकारों की उदात्त भावना, आध्यात्मिकता, भारतीय सस्कृति के प्रति प्रेम और उनके नैसर्गिक एव उच्च कलाबोध, कल्पना तथा शिल्प की प्रति [illegible]

गणितिक कविता पाठ

श्री निशीथकुमार राय

और मास्टर साहब कभी-कभी बीमारी या अन्य कारणवश छुट्टी भले ले लें, पर हिन्दी के अध्यापक बृजकिशोरजी छुट्टी कभी नहीं लेते थे। इसलिये जब ग्यारह बजे तबीयत खराब होने के कारण वे घर चले गये तो दसवें दर्जे के लड़कों को बेहद खुशी हुई ! ऐसे मौके से पण्डितजी बीमार पड़े कि दसवीं के छात्र उनके प्रति कृतज्ञता अनुभव करने लगे। अगले दिन वसन्तपंचमी होने के कारण स्कूल में सरस्वती पूजा होनी थी और उसीके प्रबंध के लिए अंतिम पीरियड आज नहीं होना था। राजकपूर का नया चित्र शुरू होने जा रहा था, और बहुतों ने देखने का निश्चय किया था, परन्तु जरा पहले न पहुँचने से टिकट मिलने की आशा न थी, इसलिए यदि अन्तिम पीरियड के पहिले वाला पीरियड भी न होता तो काम बन जाता। पर वह था हिन्दी का पीरियड और हिन्दी के पण्डितजी का आना उतना ही निश्चित था जितना सूरज का पूरब में निकलकर पश्चिम दिशा में अस्त होना।

ऐसी परिस्थिति में उनका अस्वस्थ होना एक प्रथम श्रेणी की खुशखबरी थी !

पाँचवे घन्टे के समाप्त होते ही मैं, हरसरन, किसन, और शिवशंकर हेडमास्टर साहब के पास पहुँचे। सभी चेहरे को उदास बनाने के चक्कर में थे। मैंने नम्र स्वर में कहा, "सर, यह पीरियड हिन्दी का है पर पण्डितजी अस्वस्थ होकर घर चले गये हैं इसलिए—"

—"हाँ, हाँ, उनकी तबीयत अचानक खराब हो गयी। क्या किया जाय ! मैं तो कल की पूजा की तैयारी में लगा हूँ। बहुत से मास्टर साहब भी उसीमें लगे हैं !—"

हम सबने चेहरा और भी विषादपूर्ण बनाया। सफलता पास ही है ! शिवशंकर की खुशी की झलक उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी। फिर भी आँखों की दृष्टि करुण बनाने के लिए वह आँखों को इस तरह नचा रहा था कि देखनेवाले को हँसी आ जाय।

किसन की आदत थी कि वह मास्टरों का, औरों के मुकाबले, अधिक प्रियपात्र बनने की कोशिश में रहता था। बराबर खुशामद करने का अवसर ढूँढ़ा करता था। आज भी एक बड़ी लम्बी दीर्घश्वास छोड़कर ऐसी शक्ल बनाये रहा कि आज हिन्दी न पढ़ पाने से उसका जीवन ही व्यर्थ हो जायगा। हेडमास्टर साहब ने एक बार प्रोफेसर मानसिंह राठौर की ओर ताका। वे वैसे इतिहास के अध्यापक थे। अब तक वहीं बैठे निश्चिंत होकर बटुए में से सुपारी आदि निकालकर खाने के चक्कर में थे। अब अचानक एक पीरियड हिन्दी पढ़ाने की बला सर पर आते देखकर इस अन्दाज़ से झटपट खड़े हो गये कि मानों बहुत जरूरी बात याद आ गयी हो, और "देखूँ कल मिठाई का क्या इन्तजाम हुआ" कहते हुए इस तरह बेतहाशा भागे मानों पूजन के बाद प्रसाद बाँटने का समय आ गया हो और मिठाई का पता न हो !

मजबूरन हेडमास्टर साहब ने बच्चों को कहा; "क्या किया जाय ? इस समय अब कोई खाली नहीं हैं। तुम लोगों की पढ़ाई में जरा नुकसान रहेगा मगर हिन्दी तो मातृभाषा है—कोई चिन्ता नहीं !"

कहीं खुशी, नकली उदासी का आवरण भेद करके स्वरूप प्रकाश न कर बैठे इस डर से टोली लेकर झटपट भागने के चक्कर में थे कि शिवशंकर तारीफ लेने के चक्कर में पड़ गया। अब छुट्टी हो ही गयी है, हर्ज क्या है कुछ कह डालने में ! चेहरे पर मातमपोशी का भाव प्रकट करते हुए बोला, "क्या किया जाय मजबूरी है, वर्ना इसी मातृभाषा में फेलशुदा लड़कों की सख्या—"

कई लड़कों ने शिवशंकर को चिकोटी काट ली। वह 'उफ' करके रुक भी गया। पर नुकसान जो होना था—हो चुका था। हेडमास्टर साहब उद्विग्न हो उठे और कोने में बैठे प्रो० धुन्नुसिंह रावत को क्लास लेने का अनुरोध किया, "रावतजी, आप गणित के टीचर हैं पर इससे क्या आता जाता है। वर्डसवर्थ तो गणित की चर्चा करते करते श्रेष्ठ कवियों में से अन्यतम हो बैठे !"

—हाँ, हाँ ! हिन्दी विन्दी सबके मूल में गणित है। आज यही सिद्ध कर दिखाऊँगा" कहते हुए हताश, और विमुख छात्रों की टोली को हँकाकर वे क्लास की ओर चले। न केवल राजकपूर की नयी फिल्म देखने की उम्मीद गयी, बल्कि हाथ आयी छुट्टी गायब होकर इस गणित विशेषज्ञ के पाले जा पड़े।

—अरे महाभारत में श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र उंगली पर नचाते थे ! कैसे ? प्योर मैथमेटिक्स ! चक्र को बैलन्स

करना और एक बार 'मोमेन्टम' लगाने के बाद मध्याकर्षण शक्ति पर उसे छोड़ देना ! गणित नहीं तो क्या है ?

—सन्त्रस्त होकर लड़कों ने पूछा, 'तो क्या फिर से सवाल पढ़ाया जायगा इस पीरियड में भी ?'

—सवाल तो जड़ है ! साहित्य, दर्शन, भूगोल, इतिहास—गणित के परे कुछ भी तो नहीं है ! हाः हाः हाः हाः खुशामदी शिवशंकर के कारण यह विपदा सब पर आयी मगर निर्लज्ज किसन ने फिर मक्खन लगाया, "कविता गणित के बाहर है यह मूर्ख लोग कहेंगे ! अगर गिनकर कविता की पंक्तियाँ लिखी जाती है—और गिनने की शक्ति गणित देता है !"

वैसे कोई भी शिक्षक इन बातों को मजाक समझकर अलफ हो उठे होते पर गणित के भोले-भाले अध्यापक ने मोटे फ्रेम के चश्में के अन्दर से प्रसन्न दृष्टि द्वारा समर्थन किया ! बोले, "तुम सब क्लास में चलकर बैठो—मैं अभी डस्टर और 'चाक' लेकर आया ।

क्लास में लोग किसन को नोच खाने पर अमादा हुए । क्यों बे शिवआ, हिन्दी में कितने लड़के इस साल फेल हुए थे ? हिन्दी का बड़ा भारी प्रेमी बना है—वह झापड़ मारूँगा कि अभी कविता करने लगेगा !—क्यों बे गधे, अब कविता के नाम पर गणित का फिर से दो पीरियड ! इस समय !! तेरे लिये ही सबको यह सज़ा मिली है ! अबे हिन्दी का नुमाइन्दा, हॉकी मंच के वक्त नजदीक मिलना तो तुझे छन्दोबद्ध स्टिकें मारूँगा !"

सबके आक्रमण के जवाब में आत्म-समर्थन के लिए शिवशंकर कुछ कहने जा ही रहा था कि प्रोफेसर रावत आ घुसे ! बोले, 'तो आज क्या पढ़ना था तुम लोगों को ?" खुशामदी किसन फौरन बोला, "गणित—आइ ऐम सौरी कविता !"

'अबे सन्धि करके 'गणिका' क्यों नहीं कहता ! गणित और कविता मिलकर गणिका ही तो होगा !' अशोक ने ताना मारा ।

शिवशंकर बहुत गाली खा चुका था । बदला लेने के लिए बेचैन था । अब चिल्लाकर पूँछा, "हाँ कैसी सन्धि बता रहे हो अशोक ?—सन्धि नहीं—लड़ाई की कविता ? आज सुभद्राकुमारी चौहान की वह कविता पढ़नी थी, "खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी और फिर किताब की आड़ लेकर शिवशंकर से हाथ जोड़ा । अनुनय का यह नीरव प्रदर्शन शिवशंकर ने मंजूर किया और निम्नस्वर में बोला 'खबरदार फिर कभी खिल्ली अगर उड़ाई—

प्रोफेसर ने प्रश्न किया, "सिपाही विद्रोह किस सदी में हुआ था ?

—१८५७ ई० में" बोला अमरजीत !

—अरे मैंने पूछा कौन सी सदी ?

—"सत्रहवीं सदी" झटपट बोला समरसिंह ! तुरन्त मि० रावतजी उठे ! महामूर्ख १८५७ ई० सत्रहवीं सदी ! तू जनम भर गधा रहेगा । मेरी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि फेंकते ही मैंने अन्दाजन जवाब उड़ाया "उन्नीसवीं सदी ।"

—ठीक ! पर लिखा है १८ सौ और सदी उन्नीसवीं—व्हाई ?

मैं चुप ! यह भेद मालूम न था । इसलिये चुप रहा । सभी लोग चुप रहे ! प्रोफेसर रावत गुस्साकर बोले, "सिपाही विद्रोह पर आधारित कविता पढ़ने चले हो और सदी नहीं समझते ? क्या कविता समझोगे ? देखा न, गणित कविता के लिए कितनी आवश्यक है ?

— सब लोग मान गये ! गणित बिना कविता का रस लेना कतई सम्भव नहीं इस बात को मान गये !

१८०० से १८०० घटा दो ! व्हाट रिमेन्स ? जीरो हाँ, शून्य इस शून्य से ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है और उसी शून्य से सदी का आरम्भ ! हाः हाः हाः हः नोट कर लो"

"नोट कर लो" उनका तकिया कलाम था । कुछ देर रुककर वे फिर बोले, "अच्छा, तुम सब युद्ध की कविता पढ़ने जा रहे हो ? याद रखो कविता पाठ भी खण्ड युद्ध के बराबर है । पढ़ाई स्वयं ही महायुद्ध हैं । इस युद्ध की तैयारी तुम सब ने कर ली है ?...... अल राइट कौन-सी तैयारी की हैं ? यू अमरजीत ?

अमरजीत चकचौंधिया गया । कविता युद्ध में विजयप्राप्ति का अस्त्र भला क्या हो सकता था ? टरकाने के लिए बोला "वीर सेनानी एवं प्रबल पराक्रमी शस्त्र !"

अबे तू तो शब्दों का तोप चलाने लग गया है ! बिलावजह सरल मसले को पेचीदा मत कर दिया कर !

—'गणित' बोला किसन । वह जानता था कि यह एक शब्द प्रोफेसर रावत के लिए पासपोर्ट है !

....सो तो है ही ! पर इस कविता को समझने के लिए तुम लोगों को इतिहास और भुगोल का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है ।

—इतिहास, भूगोल भी गणित का ही दूसरा रूप है !" बोला । किसन शायद जलचर जीव मुर्दे से भी इस प्रकार नही चिपटते जैसे किसन चिपटा था शब्द गणित से।

—अवश्य ? लगता है अब तुम समझोगे कविता का गूढ़तत्व ! पढ़ो वही लाइन ?

"खूब लड़ी—"

—वेट' चीख पड़े प्रो० रावत—"खूब" लड़ी ! कितनी लड़ी ? नही मापा गया इसलिए फर्ज करो "खूब" बराबर है 'A' के ! तो पढ़ा जायगा 'A लड़ी मर्दानी—"एक गये । मर्दानी ! हाउस्ट्रेन्ज झांसी की रानी मर्दानी थी यह तो इतिहास मे से पढ़ा जाय !

Split up, Split up. Split up. बोर्ड पर अलग प्रत्येक शब्द लिख डालो" बोले गणित के अध्यापक रावतजी !

तो झाँसी की मर्दानी रानी खूब कसे लड़ी ?

हथियार से" बोल पड़ा शिवशकर ! सोचा, खूब जवाब दिया पर मि० रावत उबल पड़े "हथियार से तो लड़ी ही होगी ! नही तो क्या हाथापाई किया था ? मर्दानी कितनी भी हो, बिला हथियार के कोई नही लड़ सकता। प्रश्न यह नही—प्रश्न तो है, किस तरह पल्टन सजायी होगी ?

"व्यूह रचना—" अशोक अभी कहना पूरा भी नही कर पाया था कि मास्टर साहब बोले, "आप अपनी साहित्य चर्चा रहने दीजिये ! मेरा प्रश्न वह नही है "तुम बताओ" अमरजीत की ओर ताककर उन्होने पूछा । अमरजीत बेचारा—छत की ओर टकटकी लगाये खड़ा रहा मानो वही लिखा है प्रश्न का उत्तर ! मास्टर साहब पल भर रुक कर बोले, "अच्छा, ज्यामिति का ज्ञान किस दिन के लिए ह ? कविता को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि एक रेखा के समानान्तर जो रेखायें खीची जायेगी वे आपस मे समानान्तर होगी। कौन सा थियोरेम ?"

किताब की ओर निगाहे निबद्ध रखकर अशोक कहाँसे कहाँ चले आये। कहाँ झाँसी की रानी, कहाँ सुभद्राकुमारी चौहान और कहाँ ज्यामिति ! देखो कहाँ तक जाकर रुकते है ?

तो देखा, सुभद्राकुमारी कोई साधारण कवयित्री थी ? उनको गणित का ज्ञान खूब रहा तभी तो लिख पाई "खूब लड़ी"...... सब क्या लड़ती, खाक ? अगर सेना तरतीब से पन्द्रहवी थ्योरेम के अनुसार सजाया न गया होता तो भला लड़ सकती थी रानी ? हरगिज नहीं !!

तब तक टनटन करके घन्टा बजा । लोगो ने परिणाम पाने की आशा की ? पर गणित के अध्यापक को कविता मे गणित का इन्जेकसन देने का सुअवसर मिला था । वे भला कहाँ रुकते ? जब तक सरल कविता को भी गणित से अधिक दुर्बोध्य न कर डालते ! उस पीरियड को लाँघ कर वे आगे की पीरियड मे पहुँच गये ।

ब्लकबोर्ड पर जो अलग-अलग शब्द कविता का लिखा गया था उस पर मास्टर साहब ने १, २, ३, ४ की सख्या क्रमानुसार लिखी और फिर लड़को की ओर ताक कर बोल "कुछ समझ मे आया ?" लोग चुप ! एक तो हिन्दी काव्य का गणितिक परिवर्त्तन, दूसरी ओर छुट्टी के बाद भी पढ़ाई के बहाने बैठकर इस कविता के जहर को निगलना ! जाने किसका मुँह देखा था !

—"तुम बताओ किसन, समझ मे आया ?" किसन औंघा रहा था। हड़बड़ा कर जागा और पासपोर्ट का सहारा लिया "हाँ सर, गणित"

—गणित तो है ही मगर कैसा गणित ? क्या हल है ?

—"हल ?" कहकर शून्य दृष्टि से वह पखे को देखने लगा ! मानो खूब सोच रहा है !

—"बैठो ! तुम गधे हो !" गर्जे मि० रावत।

—"गधा नही तो इस खेताब को पाने के लिये नहर खोदकर घड़ियाल घर ले आता ?" दबी जुबान मे अशोक बोला ! किसन अपने को गुण्डा लगाता था । मारे गुस्से के उसने जूता खोलकर शिवशकर को टेबिल के नीचे से दिखाया ।

—"तुम मेरी ओर ताककर पूछा । मै बोला "एक सौ बाईस करोड़—"

—"क्या ? एक सौ बाइस करोड़ क्या ?"

मै चुप हो गया । सख्या को पढ़कर मैं कह रहा था। अब कहने की कोशिश की "सैन्य !"

—भारत की जनसख्या क्या है ?

—"तैंतीस करोड़ सर" फिर किसन खुशामदी बोल उठा।

—"तो आज से सौ साल पहिले नब्बे करोड़ अधिक क्या ? यानी हमारी जनसख्या मे वृद्धि के बजाय घटती हो रही है ?"

कुछ देर रुककर फिर शुरू किया "चाहे कविता हो, चाहे गाना, चाहे भागवत गीता हो चाहे खाना—सभी मे गणित घुसा हुआ है ! दरअसल सुभद्राकुमारीजी का बाहरी रूप कवयित्री का था पर भीतर से वे थी—

—"भीतर से वे—"

—"भीतर से वे थी आइनस्टाईन !" बोला बेहया खुशामदी किसन ?

—"हाँ" प्रसन्न मुद्रा में प्रो० रावत बोले । तभी टनटन शब्द से अन्तिम पीरियड भी खत्म हुआ । मि० रावत बोले "तो आगे और सुनोगे ?"

—किसन ने गाढ़े में डाला था—उबारा भी उसी ने, "नही सर ! यह कोई हिन्दी के पण्डितजी का लेक्चर नही रहा । इतना पेचीदा गणितपूर्ण व्याख्या को जज्ब करने मे समय लगेगा !"........

प्रश्न चिह्न

कु० शशिप्रभा पाराशर

सुमन सीढ़ियाँ उतर रही थी तभी उसने सुना कि भैया माँ से कह रहे हैं माँ, अब तुम सगाई का मुहूर्त निकलवा लो, वह जो पिताजी के मित्र है न श्री महेशानन्द उनके साथ आज श्यामलालजी आये थे। उन्होंने अपने सबसे बड़े लड़के के लिए बिट्टन को माँगा है।" माँ प्रसन्नता से बोलीं—"सच।

सुमन चुपचाप एक सीढ़ी पर बैठ कर माँ और भैया की बातें सुनने लगी। भैया कह रहे थे—लड़का एम० ए० पास है और किसी कालिज में पढ़ाता है।" माँ ने पूछा—"लड़के की आयु कितनी है और देखने में कैसा है ?" भैया ने उत्तर दिया—लड़का विधुर है और उसकी आयु पंतीस वर्ष है लेकिन देखने सुनने में अच्छा है।" माँ बोलीं—"अब हमारी बिट्टन भी तो २६ वर्ष की हो गयी उसके लिए ठीक आयु का कुंवारा लड़का मिलेगा कहाँ ? बिना बाप की लड़की के किसी तरह हाथ पीले हो जायँ यही बहुत बड़ी बात है।" भैया बोले, "सबसे अच्छी बात तो यह है कि उन लोगों ने स्वयं लड़की को माँगा है इसलिए हमें दाना दहेज में कुछ देना नहीं पड़ेगा।" माँ ने गम्भीरता से कहा—"ठीक तो है, घर बैठे जैसा लड़का मिल जाय उसीसे रिश्ता कर देना चाहिए, तू बहन की शादी में अधिक खर्च कर ही कैसे सकता है, तेरे आगे भी तो दो बच्चे हैं।"

पिता की मृत्यु के बाद से माँ की बीमारी देखकर, पड़ोसियों की हँसी और भाभी के व्यंग्य सुन-सुन कर सुमन इतनी ज्यादह परेशान हो गई थी....उसका मस्तिष्क इतना थक गया था कि उसने मन में यह निश्चय कर लिया कि अब कोई पढ़ा-लिखा ढंग का लड़का हुआ तो चाहे वह बिलकुल काला हो या उसकी आयु चालीस वर्ष क्यों न हो, वह विवाह के लिए तैयार हो जाएगी। सुधाकर कमरे में चला गया तो माँ आँखो मे आँसू भरे बड़बड़ा रही थीं—"लड़के को तो वह पढ़ा-लिखा कर इतना बड़ा अफसर बना गये, बहू न सूरत में अच्छी न सीरत मे और इतना बढ़िया लड़का पा गई। मेरी फूल-सी सुकुमार बच्ची...... न मालूम इसके भाग्य में क्या लिखा है ?".......सुमन सीढी से उतरकर आँगन में आ गई थी, माँ उसे एक फ़ोटो दिखाकर बोली "देख बिट्टन, यह लड़का तुझे पसन्द है ?" सुमन ने बिना देखे ही सिर हिला कर हामी भर दी।

सब लोग विवाह की तैयारी में लगे थे, सुमन साड़ियों का बंडल लिए हुए घर में घुसी तो उसने सुना माँ भैया से कह रही थीं—"अरे सुधाकर, यह रेडियो तो बहुत छोटा-सा है।" सुधाकर ने उत्तर दिया—"ढाई सौ का है।" माँ ने कहा—"लेकिन यह रेडियो दहेज में देने योग्य तो है नहीं।" सुधाकर बोला—"वह साला तीन सौ रुपल्ली पाने वाला मास्टर, क्या मै उसके लिए रेडियोग्राम खरीद कर लाऊँगा।" अचानक सुमन के हाथ से साड़ियों का बंडल छूट पड़ा। माँ ने उधर देखकर कहा—"अरे बिट्टन तू आ गई, देखूँ तो क्या-क्या लाई है।"

साड़ियाँ देख कर माँ बोलीं—"बिट्टन, तू तो सब सूती साड़ियाँ ही ले आई, इनमें विवाह के योग्य भारी साड़ी तो एक भी नही है।" सुमन ने चुपचाप सिर झुका लिया। तभी सुधाकर हँस कर बोला—"माँ, भारी साड़ियों का क्या होगा ? वह मास्टरुआ रोज इसे घुमाने ले जाया करेगा, क्या ? दो-सौ रुपये की साड़ी पहन कर उसकी साइकिल के केरियर पर बैठी हुई यह बहुत अच्छी लगेगी ?"

धीरे-धीरे विवाह का दिन भी आ गया, बारात आने में केवल आधा घंटा बाकी था। माँ कमरे में गई तो देखा कि सुमन एक साधारण-सी पीली धोती पहने चटाई पर बैठी है, वह बोली—"बिट्टन !" पर कोई उत्तर न मिला। माँ ने बिट्टन की ठोड़ी उठाकर मुँह ऊपर किया, उसकी आँखों में आँसू न थे बरन थी विषाद की एक गहरी छाया... .. उसका चेहरा बिलकुल सफ़ेद पड़ गया था।

सुमन को किसी ने फूलों से नही सजाया था, उसके शरीर पर कोई आभूषण भी नही था। माँ सोच रही थी कि मैंने तो बहू को अपने जेवरों के अतिरिक्त चार नये 'सेट' खरीद कर दिये थे और आज बिट्टन के लिए कुछ भी नही। उसी समय सुधाकर हाँफता हुआ कमरे में घुसा और सुमन को देखकर माँ से बोला—"बारात तो दरवाजे पर आ गयी और यह अभी तक बाल खोले ऐसे ही बैठी है, इसे जल्दी से माला लेकर बाहर भेजो।" माँ बोली—बेटा, इसके पास तो एक भी जेवर नही है, ऐसी ही नंगी-बूची जायेगी तो श्वसुरालवाले क्या कहेंगे ?" सुधाकर झुँझलाकर बोला—"ज़ेवर नही है तो मैं क्या करूँ, बहू से उसकी नथ और बालियाँ माँग कर इसे पहना दो।"

सुमन विदा होकर स्टेशन पहुँची, गाड़ी के 'थर्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट' में बारात के सभी लोग ठुँसकर बैठ गये, एक सीट पर बालिश्त भर की जगह में सुमन को भी बैठा दिया गया। रात भर लकड़ी की सीट पर पैसेंजर ट्रेन के झटके खाते-खाते सुमन की हड्डियाँ दुखने लगीं—उसका सारा शरीर टूटा जा रहा था। इससे पूर्व सदैव ही वह 'फ़र्स्ट कलास' में यात्रा करती रही थी। सुबह जब वह श्वसुराल पहुँची तो देखा घर के दरवाजे पर खूब भीड़ थी। औरतों ने उसे ले जाकर एक छोटे-से कमरे में तखत पर बैठा दिया। उसकी ननदें, देवरानी और रिश्ते की जिठानियाँ छिन भर उसे घेरे रहीं, ननदें तो उसे मूर्ख बनाने के प्रयत्न में चटर-चटर बातें ही करती रहीं लेकिन जिठानियों ने उससे कुछ बड़े ही फूहड़-पन के भद्दे मजाक भी किये। सुमन ऐसी बातें सुनने की बिलकुल आदी न थी...उसका जी मिचलाने लगा, वह मन में सोच रही थी कि उस जैसी शान्त व एकांतप्रिय लड़की को भगवान ने कहाँ लाकर फँसा दिया, इन जाहिल औरतों से न मालूम कब छुटकारा मिलेगा ?

उसी समय पड़ोस की एक स्त्री ने आकर उसकी सास से कहा—"बहन जी, बहू क्या-क्या सामान लाई है जरा हमें तो दिखाओ।" इस पर सास ने तुनक कर कहा—"कुछ लाई हो तो दिखाऊँ, सुना था कि इसका भाई बहुत बड़ा अफ़सर है लेकिन बहन की शादी में कुछ भी खर्च नहीं किया, इससे अधिक और बढ़िया सामान तो महाराजिनें भी अपनी लड़कियों को दे देती हैं।"

संध्या समय सुमन जब भोजन करने बैठी तो दो-चार ग्रास खाते ही उसे बड़े जोर की खाँसी आने लगी, किसी ने पूछा—"बहूरानो क्या हो गया ? सुमन सोचने लगी कि मैं किस मुँह से कहूँ कि मुझे तेल में बना हुआ खाने की आदत नहीं है। उसने जल्दी से एक गिलास पानी पी लिया और बोली—"जी कुछ नहीं, जरा गला खराब हो गया है।"

विवाह से पहले सुमन नित्य ही सुबह-शाम अपने बगीचे में टहला करती थी और रात्रि में थोड़ी देर सितार बजाकर तब सोती थी; उसका सोने का कमरा खूब बड़ा और हवादार था, यहाँ इस छोटे-से बन्द कमरे में उसे बिलकुल नीद नहीं आयी, वह रातभर करवटें बदलती रही। सुबह के पाँच बजे जैसे ही सुमन को जरा-सी झपकी आई कि सुरेश ने आकर उसे जगा दिया और बोला—उठकर जल्दी से चाय बना दो मुझे छः बजे जाना है।" दर्द के मारे सुमन का सिर फटा जा रहा था, वह सोचने लगी कि ऐसी सर्दी में अपने घर तो वह नौ बजे तक बिस्तर से उठती ही न थी और जब उसकी तबियत खराब होती थी तो माँ उसे बिस्तर पर ही चाय दे जाती थीं।

किसी तरह गिरती-पड़ती सुमन जब रसोई में पहुँची तो देखा कि वहाँ गन्दे बर्तनों का ढेर लगा है, उसके मुँह से निकल गया—"अरे दयाराम तूने अभी तक रसोई के बर्तन भी नहीं धोये, और हाँ अँगीठी जलाने के लिए जरा ये कोयले तोड़ दे—।" सुरेश वहाँ आकर बोला—"किस दयाराम से बातें हो रही हैं ?" सुमन को जैसे होश आ गया, वह सिटपिटा कर बोली—"दयाराम तो हमारे यहाँ का नौकर है—वह खाना बनाता है।" सुरेश ने कहा—"यह तुम्हारा मायका नहीं है। यहाँ कोई नौकर-वोकर नहीं, यहाँ तो सब काम स्वयं करना पड़ेगा और हाँ, मुझे दस बजे कालिज पहुँचना है इसलिए नौ बजे खाना बिलकुल तैयार मिलना चाहिए। और मैं शाम को पाँच बजे लौटूँगा, उस समय आते ही मुझे चाय मिल जानी चाहिए। जाते-जाते सुरेश कहता गया—और देखो उस कमरे में जो मेरी दो कमीजे पड़ी हैं उन्हें भी धोकर और प्रेस करके रख देना।"

सुमन को लगा जैसे टेलीफोन की घंटी बजी हो, चौंक कर वह कमरे में इधर-उधर देखने लगी। सुरेश बोला—"क्या है ?" सुमन ने उत्तर दिया—"फोन की घंटी बज रही है, जरूर माँ ने टेलीफोन किया होगा।" "लेकिन यहाँ तो फोन है नहीं, लगता है तुम्हारे दिमाग में टेलीफोन की घंटी घनघनायी होगी।" सुरेश ने कहा। "फोन के बिना तो लगता है जैसे दुनिया से बहुत दूर एक अँधेरे कुएँ में पड़े हों, किसी का कोई समाचार नहीं मिल सकता" सुमन धीरे से बड़बड़ाई। सुरेश ने व्यंग्यपूर्वक कहा —"तुम्हारे मायके में फोन लगा है इसका यह मतलब नहीं कि सभी के घरों में फोन लग सकता है।"

× × ×

"आज कॉलिज नही जाना है क्या ?" सुमन ने पूछा।

"नहीं, आज दो अक्टूबर है इसलिए कॉलिज में छुट्टी है।" सुरेश ने उत्तर दिला। "दो अक्टूबर"...सुमन धीरे से बुदबुदायी। सुरेश बोला—"क्या तुम्हें मालूम नहीं कि दो अक्टूबर महात्मा गाँधी और शास्त्री जी का जन्म

दिन है।" "और यही तो मेरा भी जन्मदिन है।" सुमन ने कहा। "तब तो झटपट हलुआ बना डालो।" सुरेश हँसकर बोला। "हलुआ'''" "क्यो, क्या तुम्हे हलुवा पसन्द नहीं? तो पकौड़ियाँ बना लो।" सुरेश ने कहा। "लेकिन आखिर तुम्हारे मायके में किस तरह तुम्हारा जन्म दिन मनाया जाता था?" सुमन को असमंजस में पड़े देख कर सुरेश ने पूछा। तब सुमन बोली—"प्रति वर्ष मेरे जन्मदिन पर माँ एक नयी साड़ी लाकर मुझे देती थी, भैया सबको 'पिक्चर' का 'मेटिनी शो' दिखाते थे फिर किसी बढ़िया 'काफीहाउस' मे ले जाकर दावत करते थे और रात में घर लौट कर खूब आतिशबाजी छुड़ाते थे''' यह कहते-कहते सुमन का चेहरा ऐसा दमक उठा मानो वह स्वयं ही फुलझड़ियाँ छुड़ा रही हो। सुरेश बोला—"तो फिर कल तुम अपने घर क्यो नही चली गयी?" "अपने घर''' मेरा घर तो अब यही है।" सुमन कुछ उदास होकर बोली।

सुमन और सुरेश हाथो में कुछ सामान पकड़े सड़क पर जा रहे थे, पास से एक 'स्टूडेबेकर' गाड़ी निकल गयी। सुमन के मुँह से निकला—"भाभी" लेकिन गाड़ी रुकी नही, भाभी ने उसे देखकर भी नही पहचाना। सुरेश ने प्रश्नसूचक दृष्टि से सुमन की ओर देखा, वह बोली —"लगता है भाभी ने देखा नही।" सुरेश ने कहा—"जान बूझकर स्वयं को धोखा देने का प्रयास मत करो।" हम लोग साधारण आदमी हैं'' ''''कहते हुए सुमन का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। सुरेश ने पूछा—"और तुम्हारी भाभी के बराबर में बैठी हुई वह मुटल्ली कौन थी?"

"जी,—वह तो मेरी चचेरी बहन थी—कचन, उसका पति भी अफसर है, उसके पास बहुत बड़ा सा बँगला है''' गाड़ी है''' "वह तुमसे छोटी है?" सुरेश ने बीच ही में पूछा। "नहीं, मुझसे छः महीने बड़ी लेकिन उसका विवाह मुझसे छः वर्ष पहले हुआ था।" सुरेश कुछ मुस्करा कर बोला—"वह तो इतनी तगड़ी है जैसे हाथी और तुममें खरगोश के बराबर भी ताकत नही है।" सुमन तुनक कर बोली—"उसे खाने-पहनने और घूमने के अतिरिक्त अन्य काम ही क्या है। घर में चार नौकर है, बच्चों की देखभाल भी आया करती है।" सुरेश ने विनोद-पूर्वक कहा—"वह है तो अफसर की पत्नी लेकिन देखने में बड़ी भद्दी लगी, तुम्हारी तरह सुन्दर नही है।"

"वह पढ़ी-लिखी भी मुझसे कम है, गांव में पैदा हुई थी और वहाँ दिन भर कुएँ से पानी भरा करती थी। उसका विवाह तो भैया ने ही करवाया था, चाचा जी स्वय इतना अच्छा लड़का कहाँ ढूँढ़ पाते।" सुमन ने कहा। इस पर सुरेश बोला—"तो फिर तुम्हारे भैया ने तुम्हारा विवाह किसी अफसर से क्यों नही कर दिया, तुम भी मजे से गाड़ी मे बैठ कर घूमा करती।"

सुमन के हाथ मे पत्र देखकर सुरेश बोला—"किसका पत्र है?" "भैया का, अगले सप्ताह मुन्ना की शादी है।" सुमन प्रसन्न होकर बोली। "अच्छा" "अब किसी तरह पाच सौ रुपये का प्रबन्ध कर दो।" सुमन ने कहा—"लेकिन इतने रुपये का तुम क्या करोगी?" सुरेश बोला। "मुन्ना के लिए एक गरम सूट तो बनवाना ही है, उसकी बहू को मुँह दिखाइ मे कोई जेवर नही तो कम से कम एक बढ़िया साड़ी अवश्य देनी चाहिये और कुछ नकद रुपये भी खर्च होगे ही।" सुमन ने उत्तर दिया।

इस पर सुरेश बोला—"क्या सूट बनवाना बहुत आवश्यक है?" सुमन ने कहा—"हाँ, विवाह के समय लड़का मामा और बुआ के लाये हुए कपड़े ही पहनता है।" सुरेश ने कहा—"मै तो तुम्हे अधिक से अधिक पचास-रुपय दे सकता हूँ, इसमे तुम सूट बनवाओ या साड़ी खरीदो चाहे रेल का किराया-भाड़ा दो।" "केवल पचास रुपये—इतन मे क्या होगा—कम से कम दो-सौ रुपये सूट मे ही लग जायंगे, वसे मुन्ना तो रोज तीन-तीन चार-चार सौ क सूट पहनता है।" सुमन बड़बड़ाई। सुरेश ने कहा—"जब हमारी इतनी हैसियत नही है तो फिर वहाँ जाने की ही क्या आवश्यकता है?" सुमन बोली—"यदि मै नही जाऊंगी तो भैया बहुत बुरा मानेगे।"

सुरेश ने कहा—"तो फिर तुम चली जाओ, लेकिन मै तो वहाँ जाऊँगा नही।" सुमन—"क्यो, आखिर तुम क्यो नही जाओगे?" सुरेश बोला—"मै तो अपने जैसी हैसियत-वालो के घर ही जाता हूं, अफसरो के घर जाना मुझे पसन्द नही। हाँ, तुम चाहो तो जा सकती हो क्योकि तुम्हारे भैया है।" सुमन कातर स्वर मे बोली—"लेकिन रुपये का प्रबध करना ही पड़ेगा।" सुरेश बिगड़ कर बोला—"मैं इतने रुपये का प्रबध कहाँ से करूँ? तुम जानती हो कि मेरा वेतन चार सौ रुपये है जिसमें से डेढ़ सौ रुपये तो इन दो कोठरियों के मकान का किराया ही चला जाता है,

सौ रुपये रिक्शा आदि में खर्च हो जाते हैं और पचास रुपये की तुम्हारी दवा तथा टॉनिकें आ जाती हैं, केवल सौ रुपये बचे जिसमें खाना-पहनना—रिश्तेदारो को देना-लेना सभी कुछ तो शामिल हैं। उधर रमेश—इंजीनियरिंग में पढ़ रहा है, उसके खर्चे के लिए मैं 'ट्यूशन्स' करके रुपये भेजता हूं और अपने माँ-बाप को तो एक पाई भी नही भेज पाता।

सुमन चिढ़कर बोली—"यदि तुम्हारे अपने बच्चे भी होते तो उन्हें कहाँ से खिलाते-पहनाते और कैसे पढ़ाते ?" सुरेश ने कहा—"हम लोगों का विवाह हुए पूरे आठ वर्ष हो चुके लेकिन तुमने अभी तक मुझे बाप बनने का सौभाग्य प्राप्त नही होने दिया।" इस पर सुमन बोली—"मै ऐसी मूर्खता क्यों करूँ? बच्चों को जन्म देकर मै बीमार हो जाऊँ तो तुम मुझे खैराती अस्पताल में डाल दोगे, और तुम बच्चों के प्रति ही अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकोगे? बच्चों को चमरटुलिया स्कूल में पढ़ाओगे, लड़का बड़ा हो जाएगा तो एम० ए० पास करके किसी दफ्तर में क्लर्क बन जायेगा और लड़की बड़ी हो जायेगी तो किसी बाबू से या किसी अफ़सर के चपरासी से उसका विवाह कर दिया जायेगा, यही न।" सुरेश ने तड़ से सुमन के मुँह पर एक जोर का तमाचा जड़ दिया। वह इस अपमान से तिलमिला उठी, उसका सफेद चेहरा बिलकुल स्याह पड़ गया।

सुधाकर का बॅंगला 'ट्यूबलाइट्स' और रंगीन बल्बों से खूब सजा हुआ था, फाटक के बाहर छोटी-बड़ी सैकड़ों मोटरें खड़ी थी। घर में खूब भीड़-भाड़ थी, सुधाकर की पत्नी दौड़-दौड़कर नौकरों से काम करवाने में व्यस्त थी। सुमन आँगन के एक कोने में बैठी हुई मुन्ना की कमीज मे बटन टाँक रही थी। कुछ महिलाए एक गलीचे पर बैठी आपस मे बातें कर रही थी, उनमें से एक ने सुमन की ओर इशारा करते हुए एक दूसरे से पूछा—"क्या यह सुधाकर जी की बहन है?" "हो सकती है, क्योकि सूरत उनसे बहुत मिल रही है।" दूसरी स्त्री ने कहा। उसी समय सुमन किसी काम से उधर आई तो पहली स्त्री ने आगे बढ़कर उससे कहा—"आप सुधाकर की बहन हैं न?"

"जी हाँ!" उस स्त्री ने साड़ी का पल्ला खिसका कर अपना हीरों का हार चमकाते हुए पूछा—"आपके पति क्या करते हैं?" "जी····टीचर हैं। सुमन ने उत्तर दिया। वह स्त्री एक कदम पीछे हट गयी और नाक सिकोड़ कर बोली—"कौन से स्कूल में पढ़ाते हैं?" सुमन बिना कोई उत्तर दिये ही वहाँसे चली गयी। पीछे से दूसरी महिला ने कहा—"कोट तो देखो, कितना पुराना है····" और दोनों स्त्रियाँ ही-ही करके हँसने लगी। सुमन कमरे के दरवाजे पर पहुँची तो उसने सुना भाभी किसी से कह रही थीं—"यह सूट हमारी ननन्द रानी लाई हैं मुन्ना के लिए, हुँ···ऐसे सूट तो हम अपने नौकरों के लिए बनवा देते हैं।"

सुमन को बुरी तरह खाँसी आ रही थी, सुरेश ने पूछा—"क्या तुम अस्पताल से अपनी दवा नहीं लाई?" सुमन कराहते हुए बोली—"छः महीने तो हो गये वहाँ से दवा लाते-लाते, अब मुझमें इतनी शक्ति नहीं रह गयी है कि रोज अस्पताल दौड़ी जाऊँ।" सुरेश ने कहा—क्या वहाँ से दस-पन्द्रह दिन की दवा इकट्ठी नही मिल सकती?" सुमन बुरी तरह हाँफ रही थी, वह रुक-रुक कर बोली—"हम जैसो को कै···से मिल सकती है···· उसके लिए भी 'सोर्स' की आवश्यकता··· होती····है। तुम्हारा तो किसी डाक्टर से भी···परिचय नहीं····" सुरेश बोला—"यदि डॉक्टर से परिचय हो भी तो क्या वह रोज घर पर आकर इंजेक्शन लगा जायगा?"

सुमन बोली—"लेकिन अस्पताल में ही कब—मुफ्त में इंजेक्शन दिये जाते है, वहाँ तो केवल फोकट की दवाएँ मिलती है····उनसे किसी को लाभ हो या न हो।"

सुरेश ने कहा—"मै न तो अफसर हूँ न कोई सरकारी कर्मचारी जो तुम्हारा इलाज किसी सरकारी अस्पताल में करवा सकूँ। डाक्टरो की लम्बी चौड़ी फीस देने की मेरी हैसियत नही········

उसी समय सुधाकर ने कमरे में प्रवेश किया, सुमन को खाँसते देखकर वह बोला—"अरे बिट्टन, तूने अपनी यह क्या हालत बना ली, दो वर्ष हो गये मुझे कोई पत्र भी नही डाला?" सुमन कुछ न बोली। सुधाकर ने फिर कहा—"चल तुझे डॉक्टर को दिखा लाऊँ।" सुमन शान्त भाव से बोली—"मैं बिलकुल ठीक हूँ, मुझे कही नहीं जाना।" सुधाकर बोला—"ठीक क्या है? उठ जल्दी से तैयार हो जा नहीं तो फिर डॉक्टर साहब चले जायंगे" सुमन ने फिर उसी स्वर में उत्तर दिया—"नहीं भैया, मैं बिलकुल ठीक हूँ अब मुझे दवा की कोई आवश्यकता नही।"

सुधाकर बिगड़कर बोला—"तू बड़ी जिद्दी हो गई है, उठती है या नहीं? सुमन आँखे फाड़े देखती रही, लेकिन उठी नहीं। सुधाकर का मन हुआ कि वह उसके एक जोर का तमाचा लगा दे लेकिन उस हड्डियों के ढाँचे को देख कर वह सोचने लगा—आखिर किस जगह चाँटा मारे। उसने सुमन की बाहें पकड़कर जबरदस्ती उसे बैठा दिया·· लेकिन यह क्या···उसके हाथ तो बिलकुल बर्फ की तरह ठंडे थे, बैठते ही सुमन का सिर एक ओर लटक गया····उसने गर्दन के साथ एक बड़ा-सा प्रश्न चिह्न बना दिया·· हाँ, प्रश्न चिह्न ही तो।

मनीषी की लोकयात्रा—ले० डा० भगवतीशरण सिंह, प्रकाशक, विश्वविद्यालय प्रकाशन, के ४०/६ भैरवनाथ, वाराणसी—१/ पृष्ठ-संख्या ५५२/, मूल्य २५) रुपये। पं० सोहनलालजी लखनऊ पधारे थे। ठहरे थे भैया साहब (पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी) के यहाँ। मैं मिलने पहुँचा था। संध्या समय का उदार चेहरा उस कक्ष में घनीभूत होता जा रहा था। मन कुछ उचाट सा था। लगता था जीवन अकारथ गया। 'बह्यो जात अँजुरी को पानी'। ऐसा ही कुछ भाव मन को बोझिल बनाए था कि द्विवेदी जी के निकट रखी मैंने एक पुस्तक देखी—मनीषी की लोकयात्रा—शीर्षक के नीचे, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज का नाम पढ़ा। चित्र भी देखा। उत्सुकता बढ़ी। पं० गोपीनाथजी के यश से परिचित हूँ, इसी से पुस्तक के प्रति त्रिसाला हवायें नहीं उड़ा सका। किसीकी पुस्तक जरूरत बिना उठाकर पढ़ना या माँगकर ले जाना उचित नहीं, यही मानता रहा हूँ। 'पर हस्ते गतेगता' की कहावत कम संकोच में नहीं डालती। पुस्तक उठा लेने पर द्विवेदीजी ने कहा, देखा—यह है असली चीज, बाकी सब बेकार है! बकवास है।

द्विवेदीजी के इस कथन का मर्म मैं लेखनी से व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। विज्ञजन ग्रंथ पढ़कर ही उसे समझते हैं। बंगलौर जाना था, द्विवेदीजी से उस ग्रंथ को माँगकर मैं साथ ही लेता गया। जितना कुछ पढ़ा, पढ़कर समझने की कोशिश की, ग्रंथ की एकाध बात का उल्लेख मैंने स्वतंत्र-भारत के संपादक पं० योगीन्द्रपति त्रिपाठी से किया। कुछ चर्चा भी हुई। फिर, तो वे उस ग्रंथ में डूब गये। देर तक पढ़ते रहे। ग्रंथ का पता नोट किया, बड़े प्रभावित थे, कहने लगे, 'यह मँगाना है।'

नहीं जानता था, उसी ग्रंथ की आलोचना मुझे ही लिखनी होगी, । जिस चीज के प्रति हृदय आस्थावान हो उठे, वह अपने को मंगलमय और महान् अनुभव होने लगे, उसके प्रति प्रयुक्त शब्दावली नहीं कह सकता, दूसरों को कैसी लगेगी। फिर भी आज देश के लोगों से भी विनम्र निवेदन करना चाहूंगा कि वे इस ग्रंथ को पढ़ें अवश्य—चाहे उनके धार्मिक या राजनैतिक विश्वास कैसे ही हों।

प्रस्तुत ग्रंथ में, यद्यपि महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन ही समाहित है, किन्तु उसमें जीवन, जगत और जगत से परे अदृष्ट सृष्टि के प्रति बहुत कुछ मिलेगा उसे हम ज्ञेय की संज्ञा समझते हैं। उससे भी आगे परम-ज्ञेय है। और यह इस ग्रंथ की किंवा पं० गोपीनाथजी के जीवन की सार्थकता है। महिमा की उसे ज्ञेय के प्रति जिज्ञासु होने पर स्वाभाविक ही हम श्रेय के प्रति भी अवश्य उन्मुख होंगे। ग्रंथ पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सर-ब्रजेन्द्र नाथ शील, डॉ० वेनिस, आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० गंगानाथ झा के महत्त्वपूर्ण प्रसंग भी दिये गये हैं और जीवन-कला के ही अन्तर्गत सिद्धयोगी स्वामी योगत्रयानन्द तथा स्वामी विशुद्धानन्द का भी उल्लेख आता है। ये सिद्धपुरुष थे और गृहस्थ होकर भी पूर्णकाम थे, सूर्य-विज्ञान में निष्णात थे। बाबा के इस विज्ञान के चमत्कार जिन लोगों ने देखे हैं उनमें पं० गोपीनाथ प्रमुख हैं। स्वामी विशुद्धानन्द जी आपके गुरु थे। स्वामी जी अपनी नाभि से हरा-भरा कमल प्रकट करके दिखा सकते थे दिखाया भी। उनका कहना था, "इस तरह का कमल प्रत्येक मनुष्य के शरीर में है। यही नहीं, नाभि में रक्त, श्वेत तथा नील वर्ण के असंख्य कमल विद्यमान हैं।" योग में उच्चकोटि में प्रविष्ट न होने पर यह अनुभव नहीं मिलता। इसी प्रकार की सिद्धि-सूचक अनेक घटनाएँ ग्रन्थ में सप्रमाण दी गयी हैं। आँखों देखी साक्षी और वे घटनाएँ ऐसी हैं कि बिना आस्था के शायद बहुतों को विश्वास न हो। ग्रंथ को पढ़कर पाठक सोचने लगेंगे कि सत्य झूठ से कहीं अधिक विचित्र होता है। दुर्भाग्य यह है कि जब वही सत्य-वर्णन किसी विदेशी की कलम से प्रकाशित होता है तो पढ़े-लिखे कहीं अधिक आसानी से आकृष्ट होते हैं और वे विश्वास करने के लिए भी विवश होते हैं। ब्रिटिश-पराधीनता-काल में श्री ब्रण्टन पाल ने ऐसी ही एक पुस्तक लिखी थी। उसमें आँखोंदेखी साक्षियाँ सँजोई थीं और वे साक्षियाँ उन्हें भारत-भ्रमण के समय मिली थीं, कहीं किसी गिरि-गह्वर में तो कहीं किसी निर्जन नदी-पुलिन में। बहुत दिन तक वह पुस्तक प्रसिद्ध रही। लोग खूब पढ़ते थे, फिर अप्राप्य-सी वह हो गयी। आज विस्मृति में दब चुकी है। जाननेवाले फिर

भी उसे याद करते रहते हैं। अण्टन पाल महर्षि रमण के शिष्य थे, उन्हीं के चरणों के निकट बैठकर वह पुस्तक उन्होंने लिखी थी, नाम था 'डिस्कवरी आफ इण्डिया'। 'मनीषी की लोक-यात्रा पढ़कर मिस्टर पाल की पुस्तक याद हो आयी और दुख भी हुआ कि आज तो जबकि भारत स्वतंत्र है, भारत की सभी विद्याओं का पुनरुद्धार होने की आवश्यकता है। मेरा विचार है कि महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ के जीवन-दर्शन में जो साधना समरस है वह प्राचीन भारत की विद्या है।' महत्तम की ही गरिमा उसमें पुंजीभूत है। पराधीनता काल में अण्टन पाल-प्रभृति विदेशी जिज्ञासु जिस विद्या की झलक मात्र देखकर आश्चर्यचकित होते थे वह विघा स्वतंत्र भारत में एक स्वप्न बन गयी। भौतिकता का रंग जमकर गाढा हो गया, उसकी पर्त बन गयी, पर्त पर,पर्त किन्तु मनुष्य अपनी आत्मा को नहीं खोज पाया। उसका साक्षात्कार आज के धर्मनिरपेक्ष भारत में उपहासास्पद बात बन गयी। प्रस्तुत ग्रन्थ उस जड़ता का नाश करता है, भारत की विद्याओं के प्रति उन्मुख करना है, विश्वास जगाता है और पाठक सोचने लगता है कि जगत की यात्रा के बाद भी बहुत कुछ करने को रह जाता है। इसीसे उसे महा-यात्रा कहा गया। लोक-यात्रा के दर्पन में महायात्रा का मर्म समझने की कोशिश करें यह इस ग्रन्थ का उद्दिष्ट है और इस, प्रकार के ग्रन्थ लेखन की प्रचेष्टा भारत की ही सेवा है, यहांके जन-समाज की आराधना है।

ग्रन्थ में सिद्ध पुरुषों के साक्षात्कार, पत्र, चित्रावली और परिचय-आलाप का समावेश ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। भाषा, भाव, शैली और शब्द-गरिमा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ हिन्दी-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। वाक्य जैसे सूत्र हैं साँचे में ढले हुए। छपाई, सफाई श्लाघ्य हैं। लेखक का श्रम एक साहसिक कथा है। निर्धारित मूल्य तो मात्र ग्रन्थ-गौरव की निछावर है। ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार देश को ऊँचा उठाएगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—वचनेश त्रिपाठी

पंडित मोतीलाल नेहरू—लेखक बी० आर० नन्दा प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पुराना सचिवालय दिल्ली ६

प्रकाशन विभाग ने भारत के स्वनामधन्य पुत्रों और पुत्रियों की जीवनगाथा प्रकाश में लाने के विचार से जो ग्रन्थ माला प्रकाशित करना प्रारम्भ की है, यह पुस्तक उसीकी एक कड़ी है। पं० मोतीलाल नेहरू की जीवन-कथा इस श्रृंखला की एक आवश्यक कड़ी है। इस माला की पुस्तकों में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि वे सरल हों तथा ऐसे विद्वानों से लिखाई जायें जो अधिकारी हों। इस माला के प्रधान सम्पादक श्री आर० आर० दिवा-कर (विहार के भूतपूर्व राज्यपाल) हैं। पुस्तक बी० आर० नन्दा द्वारा लिखित 'द नेहरूज़: मोती लाल ऐन्ड जवाहर लाल, संक्षिप्त रूप है।

पुस्तक के २५२ पृष्ठ सरस उपन्यास के समान लगते हैं। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। इस देश के इतिहास में परिवारों पर आपत्तियाँ आती रही हैं, उनमें अकाल मत्यु और दुर्घनाएँ होती रही हैं, वे एक प्रदेश से उखड़ कर दूसरे प्रदेशों में नये सिरे से जमते रहे हैं, कभी-कभी ऐसे परिवार में एक सितारे का उदय होता है जो अपनी चमक से सारे समाज को आलोकित कर देता है। संसार इन परिवारों के पुराने कष्टों को भुला देता है, किन्तु उसे उस सितारे का वैभव अवश्य चकित और प्रभावित कर देता है अतएव यह कथा नेहरू परिवार की ही कथा नहीं लगती बल्कि भारत के उन सहस्रों परिवारों की कथा लगती है जो इस प्रकार के उतार-चढ़ाव देख चुके हैं। पुस्तक आरम्भ से ही नेहरू-परिवार के प्रति एक विचित्र सहानुभूति उत्पन्न कर देती है। नेहरू परिवार के उत्थान की कहानी बड़े रोचक ढंग से गहराई में पैठ कर, कही गयी है। अन्तिम भाग वास्तव में भारत को स्वतन्त्रता के संघर्ष का इतिहास है। इस प्रकार यह पुस्तक केवल दो महान् व्यक्तियों का जीवन चरित्र-मात्र न रहकर प्रका-रान्तर से भारत के कितने ही विस्थापित परिवारों का तथा भारत के स्वतन्त्रता-संघर्ष का इतिहास भी है। पुस्तक के पठन में सरस और आकर्षक लगने का कारण भी यही है।

पुस्तक की छपाई सामान्य रूप से साफ और संतोष-जनक है।

जीवन का अर्थ---स्वार्थ—लेखक श्री मंगलानन्दसिंह, प्रकाशक सखा साहित्य-कला सदन, मकरपुर (पत्रालय-ताड़र) भागलपुर। मूल्य साढ़े बारह रुपये। पृष्ठ-संख्या ४४८।

पुस्तक का नामकरण 'जीवन का अर्थ' किया गया है परन्तु लेखक का निवेदन है कि 'अर्थ' शब्द का प्रयोग

संस्कृत में जिस व्यापक रूप से हुआ है उसी व्यापक रूप से उसका अर्थ यहाँ समझा जाय। उनका कथन है कि "तत्त्व" 'मूल' 'विषय' आदि शब्दों का सुझाव कुछ विद्वान् मित्रों ने दिया था, किन्तु इनमें से कोई भी शब्द मेरी पुस्तक के पूर्ण आशय और औचित्य के पूर्णतः सिद्ध करने के योग्य नहीं हैं। 'तत्त्व' या 'मूल' आदि से वस्तु के सारत्व या एकार्थ का ही बोध होता है। इनसे जीवन के सारे स्वार्थ रूपी विभिन्न स्वरूपों का बोध कदापि नहीं हो पाता है। परन्तु 'अर्थ' सब प्रकार के जीवन के स्वार्थों के समुच्चय तथा इकाई रूप का बोध कराता है या करा सकता है। इसी रूप में मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है और इसका अर्थ इसी रूप में समझा जाना चाहिए।" "स्वार्थ ही हमारे जीवन का मूल तत्व है। यही अपना है। यही हमारे सारे श्रेय प्रेय का मूल कारण होता है और इसीसे सारे अनिष्ट या अभिशाप भी हाथ लगते हैं।"

पुस्तक लिखने की प्रेरणा के सम्बन्ध में लेखक का कहना है—"गीता, योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थों में साफ-साफ अनेक रूपों में कहा गया है कि निष्काम, निस्पृह, या निस्वार्थ, तत्व, भाव या कर्म से तात्पर्य है 'अहंकार', 'स्व' या आसक्तिरहित तत्व, भाव, व्यापारादि। किसी प्रकार इनका अभिप्राय चाह व कामनारहित नहीं है। इसी आधार पर मैंने स्वार्थ को मानव का सर्वस्व माना है, क्योंकि चाह व कामनारहित होकर मानव न मानव ही रह *सकता है, न ही कुछ कर सकता है।*"

अपने इस भाव का प्रतिपादन करने के लिए लेखक ने पुस्तक को सात अध्यायों में बाँटा है। जिनमें उन्होंने क्रम से मानस की पृष्ठभूमि तथा उसकी प्रवृत्तियाँ, स्वार्थ के तात्विक रूप, स्वार्थ का वैयक्तिक रूप, समाज और संस्थान रूप स्वार्थ, राज्यरूप स्वार्थ तथा इसकी वृत्तियाँ, शाश्वत तत्व व्यक्तित्व और उसकी प्रवृत्तियाँ, स्वार्थ का स्वत्व तथा उसका सामिष्टक समीकरण के शीर्षकों में विभाजित किया है और प्रत्येक शीर्षक में विवेचना की सूची के अन्तर्गत सूक्ष्म विभाजन करके विषय को परिपूर्ण करने का प्रयास किया है।

हमारे दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत विचारों को पूरी छूट दी गयी है। किसी प्रकार के पद्धतिवद्ध विचार अविवेकी विचार नहीं माने जाते। उनको केवल पद्धतिवद्ध होना चाहिये। विचारों से सम्बन्धित कोई प्रश्न अनुचित नहीं माना जाता। विचारों की इसी स्वतन्त्रता के कारण हमारे दर्शन शास्त्र में जहाँ एक ओर वेदान्त का दर्शन है, वहाँ लौकिक जगत् के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए चार्वाक का दर्शन भी है। अतः पुस्तक में जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं उन पर कुछ कहने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। हालाँकि उनके इस वाक्य से '*चाह व कामनारहित होने पर मानव-मानव न रह जायगा तथा गीता व योग-वसिष्ठ ने केवल कर्म से स्व, व अहंकार ही निकालने को कहा है*"—यह प्रश्न उठता है कि मानव का ध्येय मानव बने रहना नहीं है—अति मानव बनना है। कर्म में से 'स्व' तथा 'अहंकार' निकाल देने का अन्तिम अभिप्राय यह है कि इस प्रकार 'स्व' विहीन कर्म करने पर वह अन्त में कामनारहित हो सकेगा। अवश्य ही लेखक के अनुसार कामना, व चाह रखने पर वह मानव ही रहेगा जब कि गीता और योगवाशिष्ट का ध्येय मानव को अति मानव बनाने का है। लेखक अवश्य ही अपने निष्कर्ष पर अत्यन्त दृढ़ता से पहुँचे हैं। यदि ऐसा न होता तो एक बार इतनी बड़ी पुस्तक की पांडुलिपि के खो जाने के पश्चात् दूसरी बार फिर उसको लिख सकना बहुतों की सामर्थ नहीं है। गुरुतर कार्य केवल मानसिक दृढ़ता के कारण ही हो सकते हैं।

पुस्तक की भाषा जटिल है। वाक्य बहुत लम्बे हैं। जहाँ वाक्य छोटे आ जाते हैं वहाँ शैली में गति आ जाती है, प्रवाह बढ़ जाता है और फिर शीघ्र ही एक लम्बा जटिल वाक्य आकर प्रवाह को रोक देता है। पुस्तक की भाषा से प्रगट होता है कि लेखक संस्कृत के विद्वान् हैं और उनके शब्द अपना स्रोत वहीं से पाते हैं। यह सत्य ही है कि भाषा में शब्द मूल से लेने पर उसकी भाव अभि-व्यक्ति बढ़ जाती है, परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि वे जटिल हो उठते हैं और जन साधारण उन्हें सुगमता से ग्रहण नहीं कर पाते। इस पुस्तक में भी यह दोष आ गया है। जटिल वाक्यविन्यास, अप्रचलित शब्द, विषय की जटि-लता सभी मिलकर पुस्तक को जन साधारण के लिए दुरुह बना देते हैं। इसके दूसरे संस्करण में वाक्य-विन्यास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। छोटे-छोटे वाक्यों से भाषा का यह दोष बहुत कुछ दूर हो सकेगा और लेखक के विचार पाठकों को अधिक ग्राह्य हो सकेंगे। इन सब जटिलताओं के साथ एक और दोष आ मिला है। वह है छपाई का दोष। और पुस्तक को समझने की कठिनता को बढ़ा देता है। इसी प्रकार यत्र-तत्र व्याकरण की त्रुटियाँ भी मिलती हैं।

मनोरंजक संस्मरण

होनहार विरवान के होत चीकने पात

ग्राउस साहब पिछली शती के अंतिम भाग में उत्तर प्रदेश में कलक्टर थे। उनकी अंग्रेजी में लिखी 'मथुरा' नामक पुस्तक आज भी मथुरा के इतिहास की प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। वे बड़े हिन्दीप्रेमी थे और उन्होंने इस प्रदेश में हिन्दी को उसका स्थान दिलाने में बड़े प्रयत्न किये थे। *'कवि और चित्रकार' के सम्पादक श्री कुंदनलालजी* उनके हेडक्लर्क थे और जहाँ-जहाँ ग्राउस साहब की बदली होती थी वहाँ-वहाँ वे अपनी भी बदली करा लेते थे। वे भी हिन्दी के परमभक्त और सेवक थे। उन दिनों हिन्दी प्रेमियों के मिलन का एकमात्र स्थान कविसम्मेलन होता था क्योकि तब तक हिन्दी की सस्थाएँ पूर्ण रूप से विकसित नही हुई थी। अतएव ग्राउस साहब की प्रेरणा से कुंदनलाल जी कवि सम्मेलनो का भी जब-तब आयोजन किया करते थे। उन दिनो कवि-सम्मेलनों में समस्याएँ दी जाती थी और कवियों को उनकी पूर्ति के छन्द सुनाने पड़ते थे। जब ग्राउस साहब और कुदनलाल जी फर्रूखाबाद में थे तब एक बार वहाँ भी एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। उसमें समस्या दी गयी—"भाल लिखी लिपि को सक टार।' उसमे बाहर से भी अनेक कवि आये थे जिनमें स्वर्गीय प० नाथूराम शर्मा 'शकरजी' भी थे। वे उस समय नवयुवक थे और साहित्य-ससार में नये ही नये आये थे। किन्तु उनकी समस्यापूर्ति सर्वोत्तम ठहरायी गयी और ग्राउस साहब ने उन्हे स्वर्णमडित रजत पदक प्रथम पुरस्कार के रूप में भेट किया। वह समस्या-पूर्ति यह थी।

'शंकर' देसन कौ सिरताज अधोमुख आज बिना अधिकार।
भयो पर दास, न मोद-विलास, धरा-धन पास न, त्रास अपार।
श्री-हत अंग, न गौरव संग, दुखी चित भंग करै मन मार।
हा ! बनि भारत की बिगरी विधि भाल लिखी लिपी को सक टार॥

ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस समय महारानी विक्टोरिया का राज्य था और अंग्रेजों का प्रताप-सूर्य मध्याह्न पर था। उन दिनों देशभक्ति की बात करना, और वह भी अंग्रेज कलक्टर के सामने, बड़े साहस का काम था। ग्राउस साहब भी इतने उदार-हृदय थे कि उन्होने इस भावनावाली पूर्ति के रचयिता को अपने हाथो से पुरस्कृत किया। पदक मिलने पर शकरजी ने इस दोहे से आभार व्यक्त किया—

मेडल रजत सुवर्णमय, चित-चकोर हित चन्द।
आयो, पायो, संग में लायो परमानन्द॥

इस कवि-सम्मेलन में द्वितीय पुरस्कार बूंदी की श्रीमती चंद्रकला देवी को मिला था जो पुस्तकों के रूप में था। उन्होने भी उसके मिलने पर यह दोहा पढ़ा था—

दानी अति सम्मान कौ, बानी कौ सर्वस्व।
पायो पुस्तक शशिकला वर सुन्दर वर्चस्व॥

दर्शनशास्त्र से लौकिक लाभ

महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम० ए०, डाक्टर आव लिटरेचर

इस समय संसार में जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबका मूल दर्शनशास्त्र है। दर्शनशास्त्र के आधार पर स्थित होने के कारण ही धर्म स्थायी होता है। जो धर्म दर्शनशास्त्र से जितना ही अधिक सम्बन्ध रखता है उसमें उतना ही अधिक सनातनत्व और चिरन्तनत्व पाया जाता है। यों तो बहुत से दर्शनशास्त्र हैं पर उनमें वेदान्त मुख्य है। यह सब दर्शनों का राजा है। हम इस लेख में वेदान्त दर्शन के गूढ़ तत्त्वों पर विचार न करेंगे, किन्तु यह दिखलावेंगे, कि यह दर्शन कैसा उपयोगी और उत्तम है तथा इसके सिद्धान्त हम लोगों के लिए, व्यवहार दशा में भी कैसे उपकारी हैं।

कुछ दिनों से इस देश में सभी विषयों में मतभेद दिखाई देता है। ऐसा कोई भी विषय नही जिसमें नाना प्रकार के मत-मतान्तर न हों। परन्तु प्राचीन काल में यह बात न थी। जिस समय इस देश मे यथार्थ शास्त्राभ्यासी, अनुभवी विद्वान् मौजूद थे उस समय यहाँ इस बात का सदा प्रयत्न होता रहता था कि भेदों की संख्या घटाई जाय। इस विषय का अनुशीलन करते-करते प्राचीन विद्वानों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि ससार के सभी भेद-भावो, सभी भिन्न-भिन्न पदार्थों के अन्तर्गत एक ही शक्ति है; इसीलिए सबको 'एक' तथा 'अभिन्न' कह सकते हैं।

लोगों का ख्याल है कि इस एकतावाद या अद्वैतवाद के आदि प्रवर्त्तक श्री शंकराचार्य जी थे। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन है। इसकी चर्चा वेदों में भी पाई जाती है। ऋग्वेद में एक जगह लिखा है—'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'। इसे हम संपूर्ण दर्शनशास्त्रों का मूल सूत्र कह सकते हैं। इसमें उस अनुभव की चर्चा है जिसके आगे हमारा अनुभव जा ही नहीं सकता। नाना युक्तियों के द्वारा इसी एकतावाद की पुष्टि, तथा अनेक दृष्टान्तों के द्वारा व्याख्या, उपनिषदों में पाई जाती है। जिस समय की चर्चा उपनिषदों में है उस समय इस सिद्धान्त का विश्वास भारतवासियों के हृदयों में अटल था। यह हो सकता है कि सब लोग इसके वास्तविक मर्म को अच्छी तरह न समझते रहे हों। परन्तु यह निश्चित है कि लोग इस पर पूर्ण विश्वास रखते थे और जानते थे कि इस संसार में जितने भिन्न-भिन्न पदार्थ पाये जाते हैं उन सबके अन्तर्गत सर्वत्र व्याप्त कोई 'अपूर्व शक्ति' अवश्य है।

शंकराचार्य के समय तक इस देश के निवासियों का करीब-करीब ऐसा ही विश्वास रहा। परन्तु शंकराचार्य ने इस सिद्धान्त को कुछ और भी विस्तृत किया। वे केवल इतना ही मानने पर संतुष्ट न हुए कि संसार के सब पदार्थों के अन्तर्गत एक शक्ति है, किन्तु उन्होंने इस सिद्धान्त का भी प्रचार किया कि केवल यही 'एक शक्ति' सत्य है और संसार को सब पदार्थ जो दिखाई देते है मिथ्या हैं। पर लोगों के चित्त मे, इस सिद्धान्त के विषय में, शंका उठने लगी। वे कहने लगे—संसार के सब पदार्थो के अन्तर्गत एक अपूर्व शक्ति है। यह बात तो समझ मे आ जाती है और विचार करने पर अनुभव के अनुकूल भी पाई जाती है। पर इस बात पर विश्वास नही जमता कि संसार के सब पदार्थ मिथ्या है। क्योंकि जब हम आग को छूते है तब जल जाते हैं इसलिए यह कैसे मान लें कि अग्नि आदि सारे पदार्थ मिथ्या हैं।" बस उसी समय से नाना प्रकार के विवादों का अंकुर उत्पन्न हो गया। और अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि अनेक मत-मतान्तर फैल गये।

इस लेख में मत-मतान्तरों के झगड़े पर विचार न किया जायगा। यह प्रश्न भी न किया जायगा कि संसार के सब पदार्थ मिथ्या हैं या सत्य। संसार के सब पदार्थो के अन्तर्गत 'एक शक्ति' है—केवल इसी सिद्धान्त पर विचार किया जायगा और यह दिखलाया जायगा कि यह सिद्धान्त युक्तिसिद्ध है तथा आधुनिक विज्ञान और व्यवहार के अनुकूल भी है।

आजकल वेदान्त के अनुयायी केवल एकत्व की धुन में मग्न रहते हैं। उन्हें इस बात पर विचार करने की परवा नहीं कि यह एकत्व वास्तव में यथार्थ है या केवल काल्पनिक। इसके सिवा यदि इन एकतावादियों की सांसारिक दशा पर दृष्टि डाली जाय तो पता लगता है कि इनमें एकता के बदले घोर विरोध का अटल राज्य है। इसका कारण पूछने पर ये लोग यह बतलाते है कि यह 'एकत्व' केवल पारमार्थिक है। सांसारिक या व्यावहारिक नही। अतएव यह केवल पारमार्थिक दशा में ही पाया जा सकता है, सांसारिक या व्यावहारिक दशा में इसके दर्शन नहीं हो सकते। इस कारण को सुनकर—"समाधानन्तु जातं किन्तु परितोषो न जातः"—यह भाव मन में उत्पन्न होता है। युक्तियुक्त उत्तर तो मिल गया, परन्तु चित्त मे सन्तोष न हुआ। सच तो यह है कि ऐसे सिद्धान्त ही से क्या लाभ जिसके द्वारा हमारे व्यवहारों में शुद्धता न आवे। पर वास्तव में वेदान्त दर्शन का 'एकत्ववाद' केवल पारमार्थिक ही नहीं, किन्तु व्यावहारिक भी है। इसके द्वारा हम लोग अपने व्यवहारों को सुधार सकते है। इन्हीं सुधारे हुए व्यवहारो से हम लोगों का, और सारे संसार का, उपकार हो सकता है।

समस्त संसार के दार्शनिक दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। एक तो वे जो ससार का मूल कारण ईश्वर को मानते हैं। दूसरे वे जो या तो ईश्वर आदि किसी चेतन कारण को मानते ही नहीं; या यह कहते है कि संसार का कोई कारण है या नहीं, इस बात को मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं कर सकती। इनमें से जो लोग ईश्वरकर्तृक सृष्टि मानते है उनका मत है कि जितने पदार्थ संसार मे हैं उनका अस्तित्व ईश्वर ही के अस्तित्व पर अवलम्बित है। अर्थात् उनका अस्तित्व केवल इसी बात पर है कि उनमें ईश्वर की शक्ति मौजूद है। ईश्वर की शक्ति वास्तव में एक है। बस यही शक्ति वेदान्त दर्शन की वह एक शक्ति है जो ससार के सब पदार्थो मे व्यापक है और जिसे वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते है, वेदान्त दर्शन के 'एकत्ववाद' या 'अद्वैतवाद' की जड़ यही है। 'अद्वैतवाद का' इतना अंश तो सभी आस्तिक स्वीकार करते है, परन्तु इस एक शक्ति, या 'ब्रह्म' के सिवा और जितने पदार्थ है वे मिथ्या है, इस विषय में मत-भेद हैं, पर इन मतभेदों से यहाँ कुछ मतलब नहीं। यहाँ इतना ही स्मरण रखना आवश्यक है कि संसार के सम्पूर्ण पदार्थो में जो शक्ति व्यापक है वह सत्य है और एक है।

ऊपर हमने जो कुछ लिखा उससे आस्तिक लोगों का तो समाधान हो सकता है, परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हृदय से ईश्वर के अस्तित्व में संशय रखते हैं। उनके संतोष के लिए हम आगे यह दिखलावेंगे कि ससार की संपूर्ण वस्तुओं में कुछ ऐसे लक्षण पाये जाते है जिनसे उनमें एकता का होना सिद्ध होता है।

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0.65 Paise March 1969 SARASWATI—Reg. No. L. 148

सरस्वती

सीको शेकर बाथ

सीको : विज्ञान की सेवा में

वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् देश में वैज्ञानिक यंत्रों की कमी को पूरा करने के लिये, सीको अपने उत्पादन व दूसरे देशों से सर्वश्रेष्ठ यंत्रों को मँगाकर शिक्षा, उद्योग एवम् वैज्ञानिक खोज की सेवा में संलग्न है।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

हेड आफिस—६, तेज बहादुर सप्रू रोड, इलाहाबाद

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते है। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियां डाक से नहीं भेजी जायेंगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भजिए।

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहां के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

महामानव जवाहरलाल नेहरू
की
अमर कहानी
पत्रकार पी० डी० टंडन
द्वारा
प्रणीत

मानवता का प्रहरी

कौन नहीं जानता कि स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने आज के भारत का निर्माण किया है. संसार की राजनीति में उन्होंने हमारे देश को विशेष स्थान दिलाया है। उन्होंने देश की, तथा विदेशों की बहुत सी पेचीदी समस्याओं के सुलझाने में हाथ बटाया। उनका हृदय विशाल था, मस्तिष्क ऊँचा था, अपने सिद्धान्त से, ध्येय से ये किसी भी शक्ति या कठिनाई द्वारा हट नहीं सके। उन्होंने ऊँचे मानव का हृदय पाया था। पत्रकार टंडन ने ऐसे महामानव के जीवन की दिलचस्प झाँकी इस पुस्तक में प्रस्तुत की है। यह पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं है, बल्कि स्वर्गीय महापुरुष के संबंध की छोटी छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। इसमें उनके जीवन संबंधी अलभ्य प्रचुर चित्र भी है। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। मूल्य रुपये ५.५०।

○ ○ ○

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १.५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

'सत्यं, शिवं, सुंदरम्, का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उनका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू क मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतम और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

दो अनमोल काव्य-संग्रह

चित्रा

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ८६, मूल्य २·७५

यह कवि की विचित्र कवितायें हैं। कही ग्राम-वधू और ग्राम-कन्या का चित्रण है तो कही लहरों और हिमाद्रि का परिचय, कहीं प्रेमीजीवन की झलक है। कविता पढ़ते-पढ़ते जैसे पाठक सचमुच ग्रामवासी वन ग्राम-वधू को महुआ विनते देख रहा है। चित्रा के समस्त चित्र सुन्दर और कलात्मक हैं। इसके गीत वड़े ही भावपूर्ण है।

कविता की बानगी देखें—

सुन सकोगे तुम समय दे, सुन सकोगे तुम हृदय दे।
और अपने भाव भी क्या शब्द भी वन जायँगे प्रिय ?
चाहता मै कुछ न गाऊँ गीत वन जाता अचानक,
और तुम हो मौन क्या कुछ स्वर नहीं उठते तुम्हारे ?
अरुण चरणों की मधुर सुधि है हमे पागल बनाती
किन्तु तुम तो घूमते हो दूर यमुना के किनारे !

वासन्ती

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ११७, मूल्य ३·००

इस संग्रह मे कवि की किनती ही बढ़िया कविताएँ हैं। किसी मे वसन्त है, किसी में मन को सदुपदेश है, किसी में प्रेम की सरसता है और किसी में कोयल की कुहू ध्वनि का सुन्दर वर्णन है। कविता-प्रेमियों को यह संग्रह वहुत पसंद आयेगा।

कविता का नमूना देखें—

लो समेट यह अपनी करुणा !
मरुथल ही मैं भला यहाँ हूँ वने न दृग ये गलगल वरुणा।
हूँ विदग्ध, है दग्ध अधर पुट, वँधता नही अभी कर-संपुट।
दो मधु का मतदान जले को, अपनी प्रीति करौ मत अरुणा।
ले लो अपना सुरा पात्र ये, दो न मुझे तुम बूंद मात्र ये;
प्यास बुझ चुकी है प्राणों की, फिर न जगाओ तृष्णा करुणा !

दो काव्य-पुष्प

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूँज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे।

मूल्य ३·०० रुपया

श्री देवेन्द्रजी हिन्दी-साहित्य के लब्ध-ख्याति कवि हैं। अन्तस्तल की कोमलतम अनुभूतियों एवं प्रकृति के मर्मस्पर्शी चित्रों की सफल व्यंजना उनकी अमर कृति 'रजनीगंधा' के माध्यम से हुई है। इसकी कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।

श्री देवेन्द्रजी की दूसरी अमर कृति 'अन्तर्ध्वनि' भी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें कवि सफल चित्रकार की भाँति रागात्मक कल्पना की तूलिका से चित्र खींचकर असीम एवं चिरन्तन सौन्दर्य के मधुर स्पन्दनों का अनुभव कराता है।

हिन्दी-साहित्य की अनुपम देन के रूप में प्रस्तुत श्री देवेन्द्रजी की 'रजनीगंधा' तथा 'अन्तर्ध्वनि' का रसास्वादन करना हिन्दी प्रेमियों के लिए समीचीन है।

मूल्य ३·०० रुपया

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

सीमान्त गाँधी खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७०
पूर्ण संख्या ८३९

इलाहाबाद : नवम्बर १९६९ : कार्तिक २०२६ वि०

खण्ड २
संख्या ५

सम्पादकीय

हिंसा का ताण्डव—आश्चर्य की बात है कि इधर कई वर्षों से देश में हिंसा वढ रही है और उसका वातावरण-सा वनता जा रहा है। हम दक्षिण से तो अधिक परिचित नही है, किन्तु उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शान्ति-व्यवस्था विगड़ती जा रही है और गाँवों में स्थानीय गुंडों का उत्पात बढ़ता जा रहा है। हमारे एक मित्र जो उच्च शिक्षा प्राप्त (एम० ए०, एल-एल० वी०) है, आन्दोलन में कई वार जेल हो आये है, तथा विधानसभा के सदस्य भी रह चुके है, अव अपने गाँव में रहकर खेती करते हैं। उनका कहना हे कि अव भले आदमियों के लिए गाँवों में रहना दूभर हो गया है क्योंकि वहाँ (उनके शब्दों में) विलेज व्रुलीज (village bullies गाँव के गुंडों) का राज है। खेतों और वागों की उपज तभी मिल सकती है और वहाँ जीवन तभी यापन किया जा सकता है जव वे संतुष्ट रहें, या कम से कम—विरोधी न हो जायँ। इसलिए उनके कुकृत्यों का विरोध करना अपने लिए आफत मोल लेना है। जमींदारी उन्मूलन के पहिले जमींदार लोग अपने हित में इन तत्त्वों को नियंत्रण में रखते थे। किन्तु अव वे स्वच्छन्द है। वहुत जगह तो चुनावों में उन्हीकी सहायता की अपेक्षा रहती है। इस कारण उनका राजनीतिक महत्त्व भी हो गया है और इसीसे उन्हे प्रभावशाली समर्थक भी मिल जाते हैं। परिणाम यह है कि देहात में अपराव वढ़ रहे हैं। नगरों में भी छोटी-छोटी वातों को लेकर उग्र प्रदर्शन होते रहते है जिनमें उत्तेजक नारेवाजी की जाती है और उसकी शव्दावली युद्ध की शव्दावली मालूम होती है। सरकारी कर्मचारी, विद्यार्थी, मजदूर आदि सभी वर्ग अपने वर्गगत कल्पित या वास्तविक, जा या वेजा स्वार्थो के लिए उग्र प्रदर्शन और रेल, तार, वस आदि की तोड़-फोड़ तक

करते हैं। समाज ने वर्गगत स्वार्थों को यह छूट दे रखी है कि एक छोटे वर्ग की स्वार्थ की पूर्ति के लिए समाज को चाहे जितनी असुविधा पहुँचा दी जाय। मजदूरों की तनिक-सी वेतनवृद्धि या बोनस का आकार थोड़ा सा बढ़ाने के लिए सारे नगर या क्षेत्र की बिजली या पानी या यातायात का रोक देना इस देश का समाज स्वाभाविक और शायद उचित भी समझता है। अब तो राजनीतिक दलों में भी वाक्युद्ध की सीमा का अतिक्रमण होने लगा है। बंगाल में इधर कितनी ही राजनीतिक हत्याओं के समाचार मिले है। किसी समय कहा जाता है कि "आज जो बंगाल करता या सोचता है, कल सारा देश वही करने या सोचने लगता है।" यदि इस कथन में सत्य का कुछ भी अंश है तो इस बात का भय है कि अन्य क्षेत्रों में भी ऐसी घटनाएँ होने लगेंगी।

गाधीजी की अहिंसा की कल्पना बड़ी व्यापक थी। वे विचार या वाणी में भी अहिंसा का आग्रह करते थे। किन्तु आज लोगों के हृदय में बैठी अहिंसा बहुधा उनके वचनों और शब्दावली से झलकने लगती है। असहिष्णुता हिंसा की सखी है। यह हिंसा को उत्तेजित करती है। शायद इस देश के इतिहास में इतने व्यापकरूप से असहिष्णुता कभी नही रही जितनी आज है। यह बढ़ती हुई हिंसा का लक्षण है। जब भाषा, राज्यों की सीमा, नदियों के जल का उपयोग, नये कारखाने या शिक्षा संस्था के स्थान ऐसी बातों के लिए भी लोग उग्र आंदोलन और हिंसक कार्य करने लग जाते है, तब 'धर्म' ऐसी वस्तु के नाम पर झगड़ा हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अहमदाबाद और गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों को देश में व्याप्त हिंसा के वातावरण की पृष्ठभूमि में ही देखा जाना चाहिए। गुजरात में इससे पहिले यह विष नहीं फैला था। वहाँ हिन्दू और मुसलमान बड़ी शान्ति से रहते आये है। वहाँकी जनता और सरकार दोनों ही समानरूप से शान्तिप्रिय रही है। उत्तर भारत मे तो कहीं-कही दोनों वर्गो की भाषा मे भिन्नता है जिसके कारण मतभेद रहता है और वे एक दूसरे के लिखित साहित्य और विचारों से अपरिचित रहते है, किन्तु गुजरात मे तो हिन्दू और मुसलमान सभी गुजराती बोलते है और उसीमे काम-काज करते है। इसके अतिरिक्त गुजरात महात्माजी का जन्म-स्थान ही नही, गांधीवाद का सबसे दृढ़ शिविर भी है। वहाँ इस समय गांधी जन्मशती के इस पावन वर्ष में, उनकी आत्मा को सबसे अधिक कष्ट देनेवाली घटना घट सकती है। इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

इन उपद्रवों का तात्कालिक कारण इतना छोटा और साधारण है कि उससे सारे नगर में, इतने बड़े पैमाने पर भीषण उपद्रव नहीं हो सकते। अहमदाबाद में जगन्नाथजी का एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि वहाँके कुछ साधु मन्दिर की गउओं को चराकर लौट रहे थे। रास्ते मे एक जगह मुसलमानों का कोई जलूस निकल रहा था। किसी कारण से कुछ गउएँ भड़क गईं जिससे भगदड़ मच गयी, और शायद उन गउओं ने कुछ मुसलमान दर्शकों को घायल भी कर दिया। इस पर कुछ मुसलमान मन्दिर चढ़ गये और वहाँ उन्होंने साधुओं को मारा-पीटा तथा मन्दिर मे भी कुछ तोड़-फोड़ की।

यह दुर्घटना खेदजनक थी, और यदि दोनों वर्गो के दिल साफ होते तो इसे आकस्मिक घटना समझकर कुछ वाद-विवाद के बाद मामला रफा-दफा हो जाता। किन्तु इस छोटी सी घटना ने इतना उग्र रूप ले लिया, यह इस बात का प्रमाण है कि अहमदाबाद में किन्हीं कारणों से दोनों वर्गो में भीतर ही भीतर काफी दुर्भावना घर कर गयी थी। इस घटना से उसका विस्फोट हो गया। कुछ लोगों के अनुसार इन उपद्रवों के पीछे बाहरी लोगों का हाथ है।

सरकार ने इन उपद्रवों की जाँच के लिए सर्वोच्च न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक न्यायिक आयोग नियुक्त कर दिया है। गुजरात उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश इसके अन्य सदस्य हैं। इस आयोग की रिपोर्ट से वास्तविक तथ्यों का पता लगेगा। त तक हम अहमदाबाद तथा गुजरात के अन्य नगरों के उ द्रवों पर अपने विचार प्रकट करना उचित नहीं समझते किन्तु यदि देश मे हिंसा का वातावरण बना रहता है त उपद्रव बंद नहीं होगे। कभी उनके कारण आर्थिक, क राजनीतिक और कभी साम्प्रदायिक होंगे। सही [illegible] उपद्रव समानरूप में गर्हित है। उनके सबके मूल में अ हिष्णुता और हिंसा की भावना है। अतएव यदि देश हिंसा को समाप्त करना है तो अहिंसा, सहिष्णुता त दूसरों की भावनाओं और विचारों के आदर का वातावर बनाना आवश्यक है। किन्तु जो नेता विधानमंडलों तक हिंसा और असहिष्णता का प्रदर्शन करते हैं, आपस लड़ते रहते है तथा अपनी भाषा और व्यवहार से वातावर

ो क्षुब्ध करते और देश के सामने अस्वस्थ एवं हानिकर उदाहरण रखते हैं, वे देश में अहिंसा, सहिष्णुता एवं सौहार्द का वातावरण कैसे बना सकते हैं?

रबात का इस्लामी शिखर सम्मेलन और भारत—जेरूसलम नगर पैलेस्टाइन में है। वह तीन धर्मों का तीर्थ है। मुसलमान, ईसाई और यहूदी उसे अपना तीर्थ मानते हैं। सबसे पहिले वहाँ यहूदी राज्य था और एक यहूदी नरेश सुलेमान ने वहाँ एक मंदिर बनवाया था। कालान्तर में जब अरब मुसलमान हो गये और उन्होंने पड़ोसी देशों की विजय आरम्भ की, तब उन्होंने उस पर अधिकार कर लिया और बहुत-से अरब वहाँ गये जहाँ सुलेमान का मंदिर था। वहाँ उन्होंने एक मस्जिद बना दी। इसका नाम 'अल् अक्सा' है। हजरत ईसा मसीह इसी नगर के निकट बेथलहैम नामक स्थान में पैदा हुए थे और वे जेरूसलम ही में तत्कालीन रोमन शासकों द्वारा पकड़े गये थे और पास की ही एक पहाड़ी पर सूली (क्रॉस) पर चढ़ाये गये थे। इन्हीं कारणों से ये तीनों धर्म जेरूसलम को अपना तीर्थ मानते है। जब द्वितीय महायुद्ध के बाद इसराइल का नया यहूदी राज्य राष्ट्रसंघ के एक मन्तव्य द्वारा बनाया गया तब जेरूसलम नगर उसे दिया गया। ऐतिहासिक कारणों से वह उसे अपनी राजधानी बनाना चाहता था। किंतु अरब लोग इस नये राज्य के विरुद्ध थे और उसे न बनने देना चाहते थे। अतएव जैसे ही वह बना, वैसे ही उन्होंने चारों ओर से उस पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि वे इसराइल को नष्ट न कर सके तथापि जार्डन की सेना ने जेरूसलम नगर के पुराने भाग पर अधिकार कर लिया। जब १९६७ में तीसरा इसराइल-अरब युद्ध आरम्भ हुआ तब इसराइल ने उस पर अधिकार कर लिया। इस समय वह उसीके अधिकार में है।

कुछ महीने पूर्व 'अल् अक्सा' मस्जिद के एक भाग में आग लगा दी गयी थी और इससे उस भाग को काफी क्षति पहुंची थी, इसराइलियों का कहना है कि आग लगाने वाला एक धर्मान्ध आस्ट्रेलियन ईसाई युवक है। उन्होंने उसें पकड़ भी लिया और उन्होंने उस पर मुकद्दमा भी चला दिया है। किंतु अधिकांश अरबों का विश्वास है कि आग लगाने का काम यहूदियों ही ने किया। वे अरब भी जो यहूदियों को आग लगाने का दोषी नहीं मानते, इसराइल राज्य को इस दुर्घटना के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं क्योंकि नगर पर उसी का अधिकार है और 'अल् अक्सा' की रक्षा का भार उसी पर है।

इस दुर्घटना की निन्दा सारे संसार ने की। भारत की सरकार और जनता ने भी इस पर अपना रोष और क्षोभ प्रकट किया। इस सम्बन्ध में भारत के विचारों के बारे में कहीं कोई भ्रम नहीं है।

यद्यपि आग लगाने के काण्ड में इसराइल राज्य का कोई प्रत्यक्ष दोष नहीं है, और उसने अपराधी को तुरन्त पकड़कर उस पर मुकद्दमा भी चला दिया, तथापि अरबों को उसके विरुद्ध प्रचार करने का यह ऐसा अवसर मिल गया जिसे वे हाथ से न जाने देना चाहते थे। अतएव सऊदी अरब और मोरक्को ने पहल करके इस काण्ड पर विचार करने के लिए मुस्लिम राष्ट्रों का एक सम्मेलन करने का प्रस्ताव किया। सऊदी अरब इसे अपने यहाँ करना चाहता था किंतु अंत में उसे मोरक्को की राजधानी रबात में करने का निश्चय किया गया।

किन्तु 'अल् अक्सा' की दुर्घटना इस सम्मेलन को करने का बहाना भर थी। वास्तव में कुछ कट्टरपंथी मुस्लिम राज्य (जैसे सऊदी अरब, ईरान, पाकिस्तान आदि) धर्म के आधार पर मुस्लिम राज्य का एक गुट्ट या संघ बनाना चाहते हैं। आज मुस्लिम राज्यों में दो दल हो गये हैं। एक तो ये मध्यकालीन विचारों के राज्य हैं जो इस युग में भी मुस्लिम धर्म को शासन में प्रमुखता देते हैं, और दूसरे वे प्रगतिशील राज्य हैं (जैसे मिस्र, सीरिया, सूडान आदि) जो प्रशासन में भारत की तरह धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त मानते हैं। सऊदी अरब आदि ने कई बार मुस्लिम राज्यों का संघ बनाने की चेष्टा की थी किन्तु प्रगतिशील राज्यों के विरोध के कारण वे सफल नहीं हो पाये। उन्होंने 'अल् अक्सा' के अग्निकाण्ड से उत्पन्न असंतोष का लाभ उठाकर मुस्लिम राज्यों का सम्मेलन करने का निश्चय किया। इस अग्निकाण्ड की निंदा सारे संसार ने की थी, सारे संसार का जनमत उस काण्ड के विरुद्ध था। अतएव उसकी निन्दा के लिए किसी सम्मेलन की आवश्यकता नहीं थी। किंतु उन कट्टरपंथी राज्यों का उद्देश्य ही कुछ और था। कहीं प्रगतिशील मुस्लिम राज्यों ने आरंभ में उसका विरोध भी किया, और सीरिया, इराक तथा इंडोनेशिया तो उसमें सम्मिलित भी नहीं हुए। किंतु मिस्र आदि

प्रगतिशील राज्य इच्छा न रहते हुए भी उसमें सम्मिलित हुए क्योंकि उन्हें भय था कि यदि 'अल् अक्सा' के नाम पर किये गये सम्मेलन में वे सम्मिलित नहीं होते तो कट्टर मुस्लिम राज्यों को मुसलमान जनता में उनके विरुद्ध प्रचार करने का अवसर मिल जायगा।

जो समिति उस सम्मेलन का आयोजन करने के लिए नियुक्त की गयी उसने उन मुस्लिम देशों की सूची बनायी जिन्हें उसमें आने के लिए निमन्त्रण दिया जाने को था। उसमें भारत का नाम नहीं था क्योंकि यद्यपि भारत में कई करोड़ मुसलमान हैं, फिर भी वह "मुस्लिम देश" नहीं है। रूस, यूगोस्लाविया आदि में भी बहुत-से मुसलमान रहते हैं, किंतु वे भी भारत की तरह 'मुस्लिम देश' नहीं है। इसलिए वे भी नहीं बुलाये गये। उन्होंने इस पर कोई असंतोष प्रकट नहीं किया।

किंतु भारत की सरकार, जिसे अरब देशों से विशेष प्रेम है, इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर अरब मुस्लिम देशों से अपनी निकटता प्रकट करने को उत्सुक थी। उसका मत था कि भारत में कई करोड़ मुसलमान रहते है और ऐसे सम्मेलन में उनका प्रतिनिधित्व आवश्यक है। कहा जाता है कि भारत-सरकार ने अपने न बुलाये जाने पर असंतोष प्रकट किया और उसमें सम्मिलित होने की उत्सुकता भी प्रकट थी। परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन होने से एक दिन पूर्व प्रबन्ध समिति ने उसे भी निमन्त्रण दे दिया, और फखरुद्दीन अली अहमद के नेतृत्व में भारत का एक प्रतिनिधि मण्डल दूसरे दिन रबात पहुँच भी गया। पहिले दिन की सम्मेलन की बैठक में मोरक्को स्थित भारतीय राजदूत सम्मिलित भी हुए।

किंतु पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल यहिया खाँ ने वहाँ एक अप्रत्याशित नाटक कर दिया। उन्होंने कहा कि यदि भारत का प्रतिनिधि मण्डल इस सम्मेलन में भाग लेता है तो पाकिस्तान उस सम्मेलन से बहिर्गमन कर जायगा। उनका रुख इतना कड़ा था और उन्होंने ऐसी जिद पकड़ी कि सम्मेलन के आयोजक घबड़ा गये। उन्होंने भारत के प्रतिनिधि मण्डल को सम्मेलन में भाग नहीं लेने दिया। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता एक अलग कोठी में ठहराये गये थे, तथा सदस्य एक होटल में। उन्हे वहाँसे निकलने नहीं दिया गया। जब भारतीय राजदूत अपनी कोठी से सम्मेलन भवन में पहुँचे तो चपरासियों ने उन्हें उसमें घुसने नहीं दिया।

पाकिस्तान का खुला समर्थन ईरान, सऊदी अरब, जार्डन और मोरक्को ने किया। मलाया, सूडान और मिस्र भारत को सम्मेलन से बहिष्कृत नही करना चाहते थे, किंतु वे पाकिस्तान का भी विरोध करने को तैयार न थे। उनमें से किसी ने भी भारत के इस अपमान की सहानुभूति में, अथवा उसके समर्थन में, यह नहीं कहा कि यदि भारत को सम्मेलन में भाग नहीं लेने दिया जाता तो हम भी भाग न लेंगे। उन्होंने पाकिस्तान के दुराग्रह के विरोध के बावजूद न तो उसे नाराज करने का साहस किया, और न भारत के अपमान के विरोध में सिवाय मौखिक सहानुभूति के कोई ठोस कार्रवाई ही की।

इस सम्मेलन में भारत का जो अपमान हुआ उससे सारे देश में रोष और क्षोभ फैल गया है। मौलिक प्रश्न यह है कि भारत जो धर्म निरपेक्ष राज्य है, ऐसे सम्मेलन में क्यों सम्मिलित हुआ जो धर्म के नाम पर एक धर्म-विशेष के राज्यों तक सीमित था। धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार उसे यह चाहिए था कि यदि उसे आरंभ ही में बुलाया जाता तो भी वह उससे सम्मिलित होने से इनकार कर देता। इसके विपरीत उसने उसमें निमंत्रित किये जाने का प्रयत्न किया, और चौबीस घंटे के निमंत्रण में उसने एक वरिष्ठ मंत्री के नेतृत्व में अपना प्रतिनिधि मंडल भेज भी दिया। भारत सरकार ने जो स्पष्टीकरण दिया है उसमें जो कुछ कहा गया है उससे यही ध्वनित होता है कि पाकिस्तान के संभाव्य भारत-विरोधी प्रचार को रोकने के लिए भारत का उसमें सम्मिलित होना आवश्यक समझा गया। इससे क्या यह अर्थ नहीं निकलता कि इस तात्कालिक राजनीतिक सुविधा और लाभ के लिए अपने एक मौलिक सिद्धान्त (धर्म निरपेक्षता) को भी कुछ देर के लिए छोड़ने या भूलने को तैयार हैं ? क्या किसी राज्य के लिए सिद्धान्तों के साथ ऐसा खिलवाड़ उचित या शोभनीय है ? पाकिस्तान के भारत-विरोधी प्रचार का हम कहाँ-कहाँ खंडन करते रहेंगे ? क्या वह पश्चिमी गुट के कई संघों में भारत विरोधी प्रचार नहीं करता ? इसीलिए क्या हम अपनी नीति और सिद्धान्तों के विरुद्ध उन सभी संस्थाओं में चले जायँगे जिनका वह सदस्य है ?

भारत सरकार ने रबात में सम्मिलित होकर पाकिस्तान

को केवल भारत का अपमान करने का ही अवसर दिया। उसके इस निर्णय से हमारे धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को क्षति हुई और देश के बहुत से लोगों को यह शंका होने लगी कि उसकी धर्म निरपेक्षता बहुत लचीली है। सारे देश ने उसकी इस कार्रवाई की निन्दा की है, किन्तु खेद की बात है कि वह अपनी भूल मानने को तैयार नहीं है। उसका यह रुख और भी निराशाजनक है क्योंकि इससे इस बात की आशंका उत्पन्न होती है कि वह भविष्य में भी ऐसी भूलकर सकती है।

आयुर्वेदाचार्य पं० सत्यनारायण शास्त्री का स्वर्गवास—हमें यह सुनकर बहुत दुःख हुआ कि काशी के प्रसिद्ध वैद्यराज पं० सत्यनारायण शास्त्री का कैलासवास गत मास हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु अस्सी वर्ष से अधिक थी। प्रायः दो महीने पूर्व हम जब काशी गये थे तब उनसे मिले थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य इधर कुछ दिनों से गिर गया था और परिवार की एक दुर्घटना के कारण उनका हृदय जर्जर हो गया था तथापि उनकी बातें सुनकर इस बात की कोई आशंका नहीं थी कि उनका अन्त समय इतना निकट है। शास्त्रीजी काशी की विभूति थे। वे आयुर्वेद के महान् पण्डित तो थे ही, साथ ही संस्कृत-साहित्य, व्याकरण और दर्शन में उनकी बड़ी गहरी पैठ थी। किसी भी विषय पर उनसे बात करने में साहित्यिक आनन्द ही नहीं मिलता था, ज्ञान वृद्धि भी होती थी। उनका नाड़ी ज्ञान और निदान अद्भुत और चमत्कारपूर्ण होता था। हमने स्वयं कितनी ही बार देखा कि कोई नया रोगी आया और उन्होंने उससे बिना कोई बात पूछे पहिले उसकी नाड़ी देखी, और एक कागज पर तुरन्त एक श्लोक बनाकर उसका निदान लिख दिया। उसके बाद उससे कहा कि अब अपनी शिकायत बताओ। उसकी शिकायत सुनने के बाद उन्होंने अपना लिखा हुआ निदान उसे सुना और समझा दिया। हमें यह देखकर बार-बार आश्चर्य होता था कि रोगी ने जो शिकायतें बतलायी हैं, वे सब शास्त्रीजी ने केवल नाड़ी देखकर ही, बिना उससे उसकी शिकायत पूछे ही, पहिले ही से लिख दी हैं। आयुर्वेद के उनके अगाध ज्ञान के कारण पूज्य महामना मालवीयजी ने उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत कालिज में आयुर्वेद विभाग में साग्रह निमंत्रित किया और बाद में वे उसके अध्यक्ष भी नियुक्त हुए। स्वर्गीय राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी का उन पर बड़ा विश्वास था और वे राष्ट्रपति के चिकित्सक भी रहे। कई वर्ष पूर्व उनके प्रशंसकों और शिष्यों ने उनका समादर किया था और उन्हें एक बहुत सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया था। भारत-सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' के अलंकार से विभूषित भी किया था, किन्तु जब हिन्दी के विरुद्ध सरकार ने काला कानून बनाया तब उन्होंने उस अलंकरण का त्याग कर दिया था। उन्हें यह सम्मान संस्कृत और आयुर्वेद की विद्वता और सेवा के लिए मिला था, किन्तु उन्हें हिन्दी से इतना अकृत्रिम प्रेम था कि सरकार की उस कार्रवाई से क्षुब्ध होकर उन्होंने विरोध-स्वरूप उसे लौटा दिया। संस्कृत के विद्वानों में ऐसा उत्कट हिन्दी-प्रेम अन्यत्र नहीं देखा।

शास्त्रीजी का जीवन अत्यन्त सरल था। वे बड़े नैष्ठिक ब्राह्मण थे और उनका बहुत-सा समय धार्मिक कार्यों में लगता था। रोगियों के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण होता था और उनकी बात-चीत इतनी मधुर और आत्मीयता लिये हुए होती थी कि गरीब से गरीब रोगी भी आश्वस्त हो जाता था।

हमारे वे बड़े श्रद्धेय मित्र थे और जिन थोड़े-से लोगों की मित्रता को हम अपना सौभाग्य और अपने पूर्वजन्म के सुकृतों का फल समझते हैं, वे उनमें से एक महत्त्वपूर्ण महानुभाव थे। उनकी मृत्यु से भारत का एक श्रेष्ठ विद्वान् चला गया और आयुर्वेद का एक प्रमुख स्तम्भ भग्न हो गया। उनका सादा जीवन जनता की सेवा में बीता। ऐसे धर्मात्मा, सात्विक और परोपकारी महान् पुरुष की मृत्यु से देश की अपार और अपूरणीय क्षति हुई है। काशी उनके जाने से सूनी मालूम पड़ती है। हमें संदेह नहीं कि वे अपने आराध्य भगवान् शंकर के सान्निध्य में पहुँच गये हैं। हम उनके शोक-संतप्त परिवार और असंख्य शिष्यों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं, और आशा करते हैं कि वे शास्त्रीजी के पदचिह्नों पर चलकर आयुर्वेद की सेवा करते रहेंगे। उन्होंने आयुर्वेद और जनता की जो दीर्घकाल तक सेवा की है उसके आभार-प्रदर्शन में उनका कोई अच्छा और स्थायी स्मारक बनाया जाना समीचीन होगा।

श्री सोमपुरा का स्वर्गवास—सौराष्ट्र के प्रसिद्ध मन्दिर-कला के विद्वान् और सोमनाथ के नये मन्दिर के निर्माता

श्री सोमपुराजी का स्वर्गवास एक दुर्घटना में गत मास हो गया। वे श्री बद्रीनाथजी की यात्रा करने गये थे। विष्णु प्रयाग में (जहाँ विष्णु गंगा और अलखनन्दा का संगम है) वे स्नान करते समय बह कर डूब गये। उनकी अवस्था सत्तर वर्ष से अधिक थी।

कई वर्ष पूर्व जब हम सोमनाथजी के दर्शन करने गये थे तब संयोग से वहाँ उनसे हमारी भेंट हो गयी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद गुजरात और सौराष्ट्र के नेताओं ने (जिनमें स्व० सरदार पटेल और श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी प्रमुख थे) सोमनाथ के उस परम प्राचीन मंदिर को फिर से बनवाने का निश्चय किया जो अनेक बार तोड़ा गया और अनेक बार बनाया गया था। अंतिम बार गुजरात के एक नवाब ने उसको तोड़ा था और ऐसा कर दिया था कि वह फिर से काम में न लाया जा सके। पुण्य श्लोका महारानी अहिल्याबाई ने मूल मंदिर से कुछ दूर पर एक नया मन्दिर बनवा दिया था, किन्तु पुराने मन्दिर के कुछ भग्नाविशेष ही बच रहे थे। इन नेताओं ने उस मूल मन्दिर के स्थान पर ही नया मन्दिर बनाने का निश्चय किया और उसके लिए एक ट्रस्ट बना दिया गया; किन्तु प्राचीन शैली के मन्दिर के बनानेवाले नहीं मिलते थे। उस समय श्री सोमपुराजी की सहायता ली गयी। वे मन्दिर-स्थापत्य के महान् विद्वान् थे। उन्होंने एक प्राचीन मन्दिर स्थापत्य के संस्कृत ग्रन्थ 'दीपार्णव' का गुजराती अनुवाद किया था। किन्तु अनुवाद के साथ-साथ उन्होंने उसमें सैकड़ों रेखाचित्र देकर मूर्तियों तथा मन्दिरों के शिल्प को स्पष्ट भी कर दिया था। इसमें हिन्दू और जैन मन्दिरों और मूर्तियों के सम्बन्ध में जितनी विवरणपूर्ण जानकारी दी गयी है, उतनी अत्यन्त दुर्लभ है। उन्होंने हमसे उसका हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने की भी उत्सुकता प्रकट की थी। हमने कुछ प्रयत्न भी किया, किन्तु न तो हमारी हिन्दी संस्थाएँ और न सरकारी समितियाँ ही ऐसे प्रकाशनों में बहुत रुचि लेती है। अतएव वे उसका हिन्दी संस्करण प्रकाशित न कर सके।

सोमनाथ के मन्दिर की उन्होंने जो कल्पना की थी और उसका जो नकशा बनाया था, वह बहुत विशाल था। अभी उसका एक अंश ही बन पाया है, किन्तु जितना बना है वह अपने में पूर्ण है। मन्दिर की प्रतिष्ठा स्वयं तत्कालीन राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने की थी, और उन्होंने मन्दिर के शिल्प और निर्माता की बड़ी प्रशंसा की थी।

सोमपुराजी को मन्दिरों के शिल्प और मूर्तिकला का अपूर्व ज्ञान था। वे इन बातों के चलते-फिरते विश्वकोश थे। इतने विद्वान् होते हुए भी वे बड़े निरभिमान और सरल स्वभाव के थे। हमें उनकी अकाल मृत्यु के समाचार से बड़ा दुःख हुआ। उनकी मृत्यु से भारतीय शिल्प और प्राचीन स्थापत्य की महान् क्षति हुई है।

हिन्दी के दो विद्वानों का निधन—बड़े दुःख की बात है कि दो महीनों के भीतर लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्त और आगरा विश्वविद्यालय के मुंशी भाषा प्रतिष्ठान के निर्देशक डा० माताप्रसाद गुप्त का स्वर्गवास हो गया।

डा० दीनदयालु गुप्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रथम डी० लिट्० थे। वे अलीगढ़ के निवासी थे और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। लखनऊ विश्वविद्यालय में वे स्वर्गीय पं० बद्रीनाथ भट्ट के आग्रह पर आये थे। उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय में स्वतंत्र हिन्दी विभाग न था। वह संस्कृत विभाग का एक अंग मात्र था। आरंभ में भट्टजी एकमात्र प्राध्यापक थे। जब हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी तब भट्टजी स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को और फिर डा० दीनदयालु को बड़े प्रयत्नों के बाद लाये। भट्टजी और डा० पीताम्बर दत्त की मृत्यु के बाद डा० गुप्त ही वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक रह गये। उन्होंने बहुत प्रयत्न करके हिन्दी को संस्कृत विभाग से अलग कराया और उसे स्वतन्त्र अस्तित्व दिया। उसके बाद वे बराबर उसकी उन्नति करते रहे। आज वह विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय के अत्यन्त समृद्ध और महत्त्वपूर्ण विभागों में गिना जाता है। उसे उसका वर्तमान रूप देने का श्रेय डा० दीनदयालुजी ही को है।

डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप के कवियों और ब्रजभाषा काव्य के विशेषज्ञ थे। उनका शोध प्रबंध इसी विषय पर था, और वह अपने विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। वे सफल अध्यापक थे, और अपने स्वभाव और चरित्र के कारण उनके विद्यार्थी उनका बड़ा आदर करते थे। बहुत-से प्रोफेसरों की तरह वे हिन्दी आन्दोलन के प्रति उदासीन नहीं थे। वे हिन्दी के प्रचार और प्रसार में रुचि ही नहीं लेते थे, अपनी शक्ति के अनुसार योगदान भी करते थे। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी के बाद वे उत्तर प्रदेश सरकार की हिन्दी समिति के अध्यक्ष भी नियुक्त किये गये थे, तथा कितनी ही सरकारी और गैर-सरकारी हिन्दी संस्थाओं और समितियों के सदस्य थे। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल ६४ वर्ष की थी।

डा० माताप्रसाद गुप्त मोंगरा, बादशाहपुर जिला जौनपुर के निवासी थे। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। वहींसे हिन्दी में एम० ए० किया और डाक्टरेट ली, तथा उसी विश्वविद्यालय में वे हिन्दी विभाग में लेक्चरर हो गये। बाद में वे वहीं रीडर हुए। इलाहाबाद से वे राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर चले गये, और फिर आगरा विश्वविद्यालय के मुंशी भाषा प्रतिष्ठान के निर्देशक पद पर चले आये।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसीदास का विशेष अध्ययन किया था। वे उनकी जीवनी के विशेषज्ञ थे। उन्होंने कितने ही प्राचीन ग्रन्थों के सुसम्पादित संस्करण निकाले। वे बड़े कर्मठ व्यक्ति थे। उनकी लिखी और सम्पा-

दित पुस्तकों की संख्या तीस के लगभग है। प्राचीन ग्रन्थों के पाठों को शुद्ध करने में उन्हें बड़ी रुचि और बड़ी दक्षता थी। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और अपने अनुभव और प्रौढ़ ज्ञान का उपभोग करने के लिए उन्होंने कई कार्य-क्रम बना रखे थे। किन्तु यकृत के रोग के कारण केवल साठ वर्ष की आयु में, थोड़े ही दिन की बीमारी के बाद, उनकी मृत्यु हो गयी।

इन दो प्रौढ़ विद्वानों के स्वर्गवास से हिन्दी अध्ययन की अपार क्षति हुई है। हम इन दोनों विद्वानों के शोक-संतप्त रिवारों के प्रति अपनी विनम्र समवेदना व्यक्त करते हैं।

'जंतर-मंतर' की दुर्गति—आधुनिक औद्योगिक सभ्यता तनी जड़वादी है कि वह प्रायः संस्कृति-निरपेक्ष हो गयी । हमारे अधिकांश अधिकारी भी अपनी शिक्षा-दीक्षा ौर प्रगतिशीलता के कारण सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तुओं ; प्रति उदासीन रहते हैं। जयपुर के महाराज सवाई ायसिंह को ज्योतिष से बड़ा प्रेम था और उन्होंने जयपुर, ाशी, उज्जैन और दिल्ली में ग्रहों और नक्षत्रों की गति ; अध्ययन के लिए प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर ।धशालाएँ बनवायी थीं। दिल्ली की वेधशाला को ना-ामझ लोग 'जंतर-मंतर' कहने लगे। वह उस समय की ानी वस्ती से दूर, खुले स्थान में, बनवायी गयी थी। जब ाई दिल्ली का निर्माण हुआ तो वह उसके केन्द्रीय बाजार कनाट सर्कस) के निकट आ गयी। उसके चारों ओर ोठियाँ बन गयीं किन्तु फिर भी उसके आस-पास इतना ुला स्थान छोड़ा गया था, तथा पड़ोस के मकान इतनी ़म ऊँचाई के थे कि उसे क्षति नहीं पहुँची। किन्तु आधु-नेक नई दिल्ली संसार के बड़े नगरों से होड़ कर रही ़। अमरीकी भवन उसके आदर्श हैं। अमरीका अपने गगन-ुंबियों (स्काई स्क्रेपरों) के लिए प्रसिद्ध है। ये मकान ामान्यतः तीस-चालीस खंडों के होते हैं, और कुछ में तो ़ससे दुगने खंड भी होते हैं। न्यूयार्क नगर, जहाँ गगन-ुम्बियों का पहिले-पहिल निर्माण हुआ। एक द्वीप पर है। ाहाँ जगह की बहुत कमी थी। सामने, पीछे, दायें और बाँयें ढ़ने की गुंजाइश न होने के कारण लोगों ने आकाश की ोर बढ़ना आरम्भ किया और वे ऊँचे-ऊँचे मकान बनाने ागे। इस प्रकार वहाँ जो गगनचुम्बी बने वे एक वास्त-वेक आवश्यकता की पूर्ति के लिए थे। अब नई दिल्ली में भी अमरीका की नकल पर अपेक्षाकृत छोटे गगनचुम्बी ननने आरम्भ हो गये हैं। दुर्भाग्य से नई दिल्ली के अधि-ारियों ने वेधशाला के निकट गगनचुम्बी बनाने की अनुमति दे दी है। इससे उसके कुछ यंत्र बेकार हो गये हैं क्योंकि भारतीय वेधशालाओं में ग्रहों और नक्षत्रों के अध्ययन के लिए उनको प्रत्येक कोण से देखना होता है तथा उस पर ारे दिन धूप आनी आवश्यक है। वेधशाला के आसपास ऊँचे भवन बन जाने से आकाश का अबाध दृश्य नहीं मिल ाता तथा धूप भी कट जाती है।

यद्यपि दिल्ली में पुरातत्त्व विभाग के मंत्री और सर्वोच्च अधिकारी रहते हैं, वहाँ इतिहास के बड़े-बड़े प्रोफेसरों और विद्वानों का जमाव है, वहाँ देश के कर्णधारों का अड्डा है और अनेक "सांस्कृतिक" अकाडमियाँ, केन्द्र और संस्थान हैं, तथापि किसीने इस ऐतिहासिक वेधशाला को क्षति पहुँचानेवाले गगनचुम्बियों को उसके पास बनाने का विरोध करना तो दूर, उस पर अपनी असहमति भी प्रकट नहीं की। नई दिल्ली निगम के अधिकारियों और सदस्यों से तो ऐसी बातों की ओर ध्यान देने की आशा करना ही मूर्खता हैं किन्तु अभी हाल में भारत के पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व महानिदेशक और संसारप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् सर मॉर्टिमर ह्वीलर भारत में आये। वे सन् १९४४ से १९४८ तक महानिदेशक के पद पर थे। उनका ध्यान इस ओर गया। एक समाचार-पत्र के प्रतिनिधि से उन्होंने कहा—"एक रात मैं जंतर-मन्तर देखने गया। पेड़ों में से छनकर चाँदनी आ रही थी और बड़ा सुन्दर मालूम पड़ रहा था। और तब मैंने आस-पास निगाह दौड़ाई और देखा कि तीन बड़े गगन-चुम्बी उसे घेरे हुए हैं, और मुझे निश्चय है कि शीघ्र ही वहाँ और भी गगनचुम्बी बन जायँगे। जन्तर-मन्तर का काम सूर्य की सहायता से होता है और ये भवन सूर्य का अवरोध करते हैं। जन्तर-मन्तर आकाश की स्थिति का पता लगाने का अपूर्व साधन है। उसके लिए जो एक वस्तु परमावश्यक है—अर्थात् सूर्य, क्या उससे उसे वंचित कर देना उचित है ?" उन्होंने कहा कि प्राचीन स्मारकों के संरक्षण ही पर नहीं, किन्तु उनको ठीक तरह से कार्य करने की सुविधा देने तथा उनके पड़ोस को उनके अनुरूप बनाये रखने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

हम सर मॉर्टिमर के अनुग्रहीत हैं कि उन्होंने 'जन्तर-मन्तर' की दुर्दशा की ओर ध्यान दिलाया। दिल्ली मकानों और मनुष्यों का एक विशाल जङ्गल होती जा रही है। वहाँ कुछ भी कहना सामान्यतः अरण्यरोदन ही होता है। किन्तु दिल्ली में आज भी विदेशियों के 'मत' की कद्र है। सम्भव है कि दिल्ली के महाप्रभु सर मॉर्टिमर की आलो-चना पर कुछ ध्यान दें।

समुद्र पार के हिन्दुओं की धार्मिक आवश्यकताएँ—पिछली शती के मध्य में लाखों भारतवासी समुद्रपार के देशों में, विशेषकर फीजी (पैसिफिक महासागर का द्वीप) मॉरिशस (भारत महासागर का द्वीप), गुयान (दक्षिणी अमरीका का उत्तरी प्रदेश) तथा अफ्रीका के कुछ देशों में ले जाये गये थे। इनके वहाँ जाने की कथा बड़ी दुखद है। इन देशों में गोरे लोगों (विशेषकर अंग्रेजों) ने अधिकार कर लिया था। ये प्रदेश बड़े उर्वर थे और अंग्रेजों ने वहाँ बड़े-बड़े फार्म बनाये, किन्तु वहाँ मजदूरों की बड़ी कमी थी। उन दिनों ट्रैक्टर आदि नहीं बने थे। अंग्रेज वहाँ इतने कम थे कि खेती का काम सँभाल नहीं सकते थे। स्थानीय आदिवासी एक तो संख्या में कम थे, दूसरे खेती

करना नहीं जानते थे। इसलिए उन्होंने भारत से मजदूर मँगाने का प्रबन्ध किया। कोई भारतवासी स्वेच्छा से वहाँ जाना न चाहता था। इन अंग्रेजों के एजेंट गरीब, अपढ़ और भोले-भाले देहातियों को फुसलाकर 'ऐग्रीमेण्ट' पर हस्ताक्षर करा या अँगूठा लगवा लेते थे, क्योंकि भारत सरकार उन्ही लोगों को बाहर जाने देती थी जो जाने की लिखित इच्छा प्रकट करें। इसी 'एग्रीमेण्ट' शब्द के कारण ये मजदूर 'गिरमिटिया' कहलाते थे। इस 'ऐग्रीमेण्ट' के अनुसार ये मजदूर 'दास' नही थे, बल्कि एक निश्चित लम्बी अवधि के लिए निश्चित वेतन पर मजदूरी करने को वाध्य थे। एग्रीमेट की अवधि लम्बी होती थी। उसके बाद कानून के अनुसार वे भारत लौट सकते थे, किन्तु उन्हें लौटने का खर्च स्वय देना होता था, और वे वहाँ इतनी बचत न कर सकते थे कि लौटने का व्यय उठा सकें। वैसे भी वहाँ उनकी दशा अच्छी न थी अन्त में भारत सरकार का ध्यान उधर दिलाया गया और उनकी दशा सुधरी। प्रायः सभी गिरमिटिए मजदूर जिन प्रदेशों में गये वही बस गये क्योंकि जो लौटना चाहते थे वे भी न लौट पाये। कालान्तर में जब वे किसी अंग्रेज के 'फार्म' पर काम करने को वाध्य न रहे तब उन्होंने स्वतन्त्र रूप से खेती करनी आरम्भ कर दी। वे कुशल किसान थे और वहाँ उनकी संतान सुख से रहने लगी। उनमे से कुछ छोटा-मोटा व्यापार भी करने लगे। उनमें कुछ ने अपने बच्चों को शिक्षा दी। आज इन प्रदेशो में मूल जानेवालों की तीसरी, चौथी या पाँचवी पीढी वहाँ बड़े सुख से रह रही है। फीजी में तथा मारिशस मे उनकी संख्या काफी है और वे बहुमत मे है। गुयाना में भी उनकी संख्या दो लाख के लगभग है। इनमे अधिकांश हिन्दू हैं। इन समुद्र-पार के भारतीय वंश के लोगों मे अधिकांश हिन्दीभापी क्षेत्रों (मुख्यकर बिहार और उत्तर प्रदेश) के पूर्वी जिलों के है। उनमें भारत और अपने धर्म के प्रति बड़ा प्रेम है और वे हिन्दी या उसकी कोई बोली बोलते है।

फीजी और मारिशस मे इन लोगों का सामाजिक जीवन अधिक सुसंगठित है और वहाँ हिन्दी की शिक्षा का प्रबंध है तथा धार्मिक कृत्यों और त्योहारों को भी धूमधाम और उत्साह से मनाया जाता है। किन्तु गुयाना भारत से बहुत दूर है तथा वहाँकी परिस्थिति मे उनका सामाजिक और धार्मिक जीवन उतना सुसंगठित नही हो पाया जितनी फीजी या मारिशस में हो गया है।

इस समय गुयाना के दो लाख हिन्दुओं को सबसे बड़ा कष्ट यह है कि वहाँ कोई पुरोहित नही है जो उनके विवाह, मृतक-कर्म, नामकरण आदि का संस्कार करा सके। जो दो-एक पुराने संस्कृत जाननेवाले ब्राह्मण थे वे मर चुके है और जो एक-दो संस्कृत जानने वाले है भी वे उच्च शिक्षित होने के कारण अन्य व्यवसायों में लग गये है। वहाँ संस्कृत नही पढ़ायी जाती। इसलिए कर्मकाण्ड जाननेवाले लोग मिलते ही नहीं। पुरोहितों के विना वहाँ विवाह आदि कराने की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी है। इसलिए वहाँके विद्वत् परिषद् ने भारत के विश्व हिन्दू-धर्म-सम्मेलन से एक पुरोहित भेजने की माँग की है। वह उसे ५०० रुपये मासिक वेतन देने को तैयार है, किन्तु वह पुरोहित संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी भी जानता हो क्योंकि गुयाना में अंग्रेजी ही अधिक चलती है। वह प्रौढ और विवाहित हो, तथा ऐसे चरित्र का हो कि वह वहाँके लोगों मे श्रद्धा उत्पन्न कर सके तथा नवयुवकों को हिन्दू-धर्म का ज्ञान भी दे सके। वह वहाँ बस जाने को तैयार हो। यदि ऐसा व्यक्ति न मिले तो वहाँ दो-तीन वर्ष के लिए कोई कर्मकांडी पंडित चला जाय जो वहाँके कुछ ब्राह्मण बालकों को संस्कृत और कर्मकाण्ड सिखा सके तथा जब तक वह वहाँ रहे पौरोहित्य कर्म भी करता रहे।

गुयाना के हिन्दू सामान्य स्थिति के है। इसलिए वे वहाँ अब तक कोई बड़ा मन्दिर नही बना सके। उन्होंने कुछ छोटे-छोटे शिवाले अवश्य बनाये है किन्तु वे उनकी धार्मिक आवश्यकताओं के लिए अपर्याप्त हैं। एक बड़ा, भव्य और हिन्दू धर्म के गौरव के अनुरूप मन्दिर अपने साधनो से वे नहीं बना सकते। यह तभी हो सकता है जब भारत का कोई धर्मप्रेमी धनी इस ओर ध्यान दे। इसी प्रकार वहाँ हिन्दू धर्म की पुस्तकों की भी बहुत कमी है। संस्कृत न जानने के कारण वे इन पुस्तकों को हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद के साथ चाहते हैं।

इस देश के हिन्दुओं के लिए यह लज्जा की बात है कि हमारे विदेश स्थित सहधर्मी इन कठिनाइयों के कारण अपने धर्म का पालन नही कर सकते और उसके धर्मग्रन्थों से अपरिचित रह जाते है। धर्म के नाम पर इस देश मे अपार धन व्यय किया जाता है। हमारे बड़े-बड़े अखाड़ों, मठों और धार्मिक संस्थानों का मुख्य कर्तव्य धर्म का प्रचार होना चाहिए। वे इधर क्यों ध्यान नही देते। हमारे देश में धार्मिक वृत्ति के धनिकों की कमी नहीं है। प्रतिवर्ष वे लाखों रुपये मन्दिरों, धर्मशालाओं और आश्रमों के बनवाने में लगाते है। उन्हे अपने विदेश में बसे भाइयों की धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति करने में अपने दान का कुछ अंश लगाना चाहिए जिससे उसे पुण्य भी मिलेगी और यश भी।

हमारे देश में पढ़े-लिखे लोगों में 'बेरोजगारी' का रोना बना रहता है। क्या हमारे संस्कृतज्ञ युवकों मे ऐसा कोई नही है जो धर्म की पुकार सुने, और साहस करके दस-पाँच वर्षो के लिए गुयाना में धर्म की सेवा के लिए अपने को अर्पित कर दे? हमारे गुयाना के भाई अधिकतर हिन्दीभाषी है और उनके पूर्वज बिहार-उत्तर प्रदेश से गये है। पूर्व काल में इसके पंडितों ने तिब्बत, लंका, चीन, मध्य एशिया आदि जाकर संस्कृत और बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। क्या उनकी वर्तमान संतानों में दो चार भी ऐसे साहसी, विद्वान् और चरित्रवान् युवक नही निकल सकते जो गुयाना की इस चुनौती को स्वीकार करके हिन्दू-धर्म की सेवा और संस्कृत के प्रचार के लिए अपने जीवन का कुछ भाग अर्पित कर दें?

श्री लक्ष्मी-स्तुति

वन्दे पद्मकरां प्रसन्नवदनां सौभाग्यदां भाग्यदां
हस्ताभ्यामभयप्रदां मणिगणैर्नानाविधैर्भूषिताम् ।
भक्ताभीष्टफलप्रदां हरिहर ब्रह्मादिभिः सेविताम्
पार्श्वे पङ्कज शङ्ख पद्म निधिभिर्युक्तां सदा शक्तिभिः ॥

सरसिजनयने सरोजहस्ते
धवलतरां शुकगन्ध माल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरिप्रसीदमह्यम् ॥

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरीम्
दासीभूत समस्त देववनिताम् लोकैकदीपाङ्कराम् ।
श्रीमन्मन्द कटाक्षलब्ध विभव ब्रह्मेन्द्र राङ्गाधराम्
त्वां त्रैलोक्य कुटुम्बिनीम् सरसिजां वन्दे मुकुन्दप्रियाम् ॥

मातर्नमामि कमले कमलायताक्ष
श्री विष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः ।
क्षीरोदजे कमल कोमल गर्भगौरि
लक्ष्मीः प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
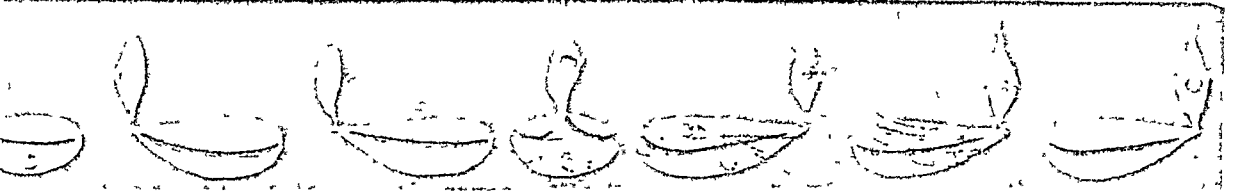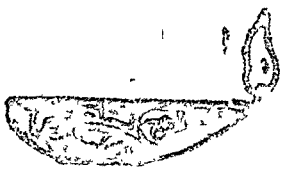
नया प्रदीप जले

प्रो० रामस्वरूप खरे एम० ए०
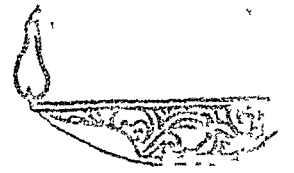
नवयुग के इस नव मन्दिर में, नया प्रदीप जले !

तम का हो अवसान धरा से—
फैले पुण्य - प्रकाश !
विचरें इस असीम नभ में खग—
लेकर नव - उच्छ्वास !!

सभी शृंखलायें टूटें अब, त्रिविध समीर चले !

सत्य - प्रेम समता के खेलें—
शिशु आपस में मिलकर !
स्वतन्त्रता के जल में विकसें—
प्रगति-कंज खिल - खिलकर !!

पाये चिर प्रशान्ति मानवता, विश्व-प्रेम-तरु-तले !

दुख-विषाद-वैषम्य दीनता—
घृणा - अहं भागे !
चेतनता के अरुणोदय में—
श्रम - गौरव जागे !!

विश्व-बन्धुता की बगिया नित, फूले और फले !

प्रण का दीप

श्री आ० शं० प्र० वर्मा

सूनी रात, कड़क बिजली की,
पथ में घोर अँधेरा।
राही एक, अकेला मग में,
तूफ़ानों ने घेरा।
चलता है निर्भय कदमों से
विघ्नों पर मुसकाता;
कंकड़, दलदल, काँटों पर भी
है बढ़ता ही जाता।
मंजिल दूर, समय भी कम है,
पथिक नहीं रुक सकता।
सपनों का संसार नयन में,
प्रण का दीप विहँसता।
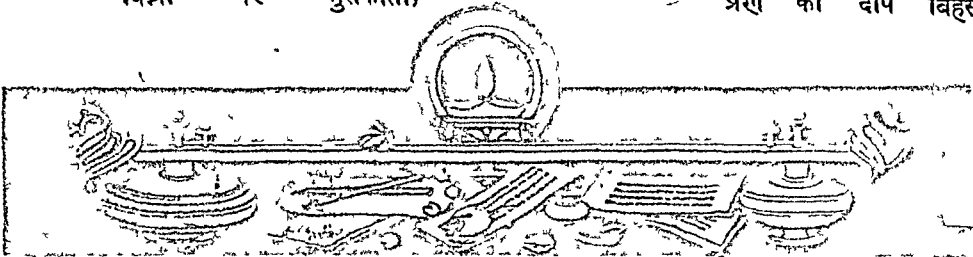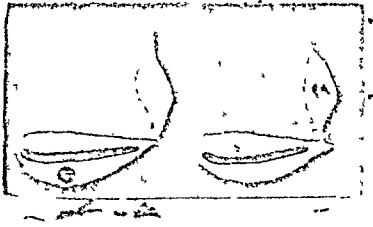
दीपावली की परम्परा

श्री अनवर आगेवान

दीपावली भारत का अत्यंत प्राचीन सांस्कृतिक पर्व है। ज्योति के इस पर्व का महत्त्व आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों दृष्टियों से विशिष्ट है। हमारे पौराणिक साहित्य में दीपावली से सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी ऐसे प्रामाणिक हैं कि दीपावली अपने सर्वोच्च महत्त्व के साथ राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में प्रकट होती है।

दीपावली पर्व के उद्‌गम के सम्बन्ध में एक पौराणिक किंवदंती है कि जब शिवजी ने त्रिपुरासुर का वध अमावास्या के पूर्व चतुर्दशी को किया, दूसरे दिन स्वर्ग में दीप जलाकर उत्सव मनाया गया और शंकर तथा उनके पुत्र कार्तिकेय का अभिनन्दन हुआ। उस समय से दीपावली का उत्सव मनाया जाने लगा।

इन पौराणिक कथाओं में राजा वलि की कथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है जिसकी ओर संकेत करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है—'त्रीणि यदा विक्रमे विष्णुः गोप्तः अदाम्य।' इस कथा के अनुसार असुरराज वलि ने कठिन तपस्या-वल से तीनों लोकों में अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया था। अतः सदैव की भाँति देवराज इन्द्र को स्वर्ग छिन जाने का भय होने लगा। फिर ब्रह्मा और इन्द्र सहित सभी देवता विष्णु के पास गये और सहायता के लिए प्रार्थना की। मूलतः विष्णु वामन के रूप में वलि से त्रिलोक का दान माँगने गये। उन्होंने तीन पग भूमि का दान माँगा। वलि दोनों के षड्यंत्रों को समझ गया था, किन्तु जव स्वयं विष्णु ब्राह्मण के रूप में उससे दान-याचना करने आये, तो आत्मगौरव के आवेश में उसने वामन को अभीष्ट दान दे दिया। विष्णु उसके ओजस्वी औदार्य से वड़े प्रसन्न हुए और साथ ही उसे यह आज्ञा भी दी कि वह प्रतिवर्ष एक दिन भूलोक में आकर मनुष्य-समाज की पूजा स्वीकार करे। दीपावली के दिन ही वलि पाताल से पृथ्वी पर आया था और दीपों की अगणित पंक्तियाँ सजाकर पृथ्वी के निवासियों ने उसका स्वागत किया था।

महाभारत के अनुसार नरकासुर की कथा का संवंध भी दीपावली के साथ है। नरकासुर कामरूप देश (पश्चिमी आसाम) का राजा था। उसके अत्याचार सीमातीत हो जाने से सारा मर्त्य-लोक एवं देवलोक हाहाकार कर उठा! तव मनुष्यों, ऋषियों, देवताओं ने कृष्ण से प्रार्थना की। कृष्ण ने कामरूप जाकर उसका संहार किया; किन्तु मरते समय उसने कृष्ण से यह वरदान माँगा कि उसकी मृत्यु-तिथि को महोत्सव के रूप में मनाया जाए और रात्रि को सर्वत्र प्रकाश के दीपक जलाए जावें। श्रीकृष्ण ने नरकासुर की यह अन्तिम अभिलाषा पूरी की और तव से यह रात्रि भारतवर्ष का व्यापक प्रकाश-पर्व दीपावली वन गयी।

कालिका-पुराण में एक कथा है जिसके अनुसार पाताल लोक से राक्षस निकलकर मनुष्यों पर अत्याचार करने लगे। सारे संसार में आतंक छा गया। इसे देखकर महाकाली क्रुद्ध हो गयीं और वे सिंह पर आसीन होकर राक्षसों का संहार करने में तुल गई। प्रचंड आवेशाभिभूत विकराल महाकाली राक्षसों के विनाश के वाद हिंसक और संहारक प्रेरणाओं से इतनी मदोन्मत्त हो गयीं कि वह प्राणिमात्र के संहार में प्रवृत हो गयीं। दिशायें त्राहि-माम् कर उठीं। शिव ने काली को शांत करने के लिए प्राणों की वाजी लगायी। काली की क्रोधाग्नि शिव के तप्त शरीर का स्पर्श पाते ही वर्फ की तरह पिघल गयी। महाकाली सदैव के लिये शिव-शरणागत हो गयीं। असुरत्व पर यह तपस्या की महान् विजय थी। आसन्न मृत्यु से भयभीत सारे जगत् को सांत्वना मिली। नव-जीवन पाकर प्राणिमात्र के हृदय खिल उठे। घर-घर में आनन्द के दीप जलाये गये। और तव से रुद्र महाकाली के सौम्य रूप लक्ष्मी का पूजन शुरू हुआ।

दीपावली महापर्व की सांस्कृतिक परम्पराएँ अपने युग की महान् युगान्तकारी घटनाएँ रही हैं। भारतीय लोक-कथाओं के अनुसार दीपावली का पर्व राम-राज्याभिषेक के दिन से आरम्भ होता है। चौदह वर्ष के संकटग्रस्त वन-वास के बाद राम अयोध्या आये थे और कार्तिक अमावस्या के दिन ही महर्षि वसिष्ठ के हाथों उनका राज्याभिषेक हुआ था। उस दिन सारे अयोध्या में उत्सव मनाया गया और रात को द्वार-द्वार दीपमालिकाएँ सजाकर प्रकाश किया गया। बाद में यह जन-जीवन में अमर-प्राण त्यौहार बन गया।

दीपावली यम-पूजा के लिए भी प्रसिद्ध है। यह पूजा काफी प्राचीन काल से चली आई है। वैदिक धारणा के अनुसार यम-पूजा, काल-पूजा की प्रतीक है। यम वैदिक साहित्य में जहाँ जीवन के परम सत्य के रूप में वर्णित हैं, वहाँ पौराणिक साहित्य में अत्यंत कुशल शासक के रूप में भी चित्रित किये गये हैं। गीता में विराट् सत्ता की विभूतियों का वर्णन करते हुए स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने को यम का प्रतीक माना है—'पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्। 'अर्थात् पितरों में अर्यमा हूँ और शासकों में यम हूँ।'

सामान्यतः हमारी धारणा एवं स्मृति में यम का रूप विकराल एवं भयावह है, किन्तु उनके स्नेह-सिक्त अंत-राल की झांकी भी हमें वैदिक साहित्य में मिलती है। कठोपनिषद् के अनुसार यमराज कार्तिक शुक्ल द्वितीया को अपनी बहन यमुना से मिलने पृथ्वी पर आये थे। यमुना ने भाई को तिलक लगाकर उसकी मंगल कामना की थी। यमराज के आगमन की खुशी में सारे मृत्युलोक में घर-घर दिये जलाकर प्रकाश-पर्व मनाया गया था। इस दिन से सारे भारत में आज भी 'भाई दूज' का त्यौहार बड़े हर्ष से होता है।

इस प्रकार दीपावली के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रच-लित है। इसी तरह लक्ष्मी के सम्बन्ध में भी है। एक पौराणिक कथा के अनुसार लक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रा है, जो जहाँ भी जाती है अपने आस-पास दैन्य और दारिद्रय ही बिखेरती चलती है। जहाँ उसका पैर पड़ता है, वहाँ अन्धकार की छाया ढल जाती है। मानो, उसका जीवन ही अन्धकार है। एक दिन कार्तिक अमावास्या को ये दोनों बहनें मृत्युलोक की यात्रा के लिये स्वर्ग से अवतीर्ण होती हैं। तब लोगों ने घरों को स्वच्छ सजाकर और दीप जला-कर दरिद्रा का अन्धकार दूर किया और लक्ष्मी का स्वागत किया।

दीपावली का अपना आध्यात्मिक महत्त्व भी है। इसे महारात्रि माना जाता है और इसे सिद्धि रात्रि भी कहा जाता है। यदि इस रात्रि को भौतिक सुख और सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं तो वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का भी प्रतीक है।

इस प्रकार दीपोत्सवों के विशिष्ट पर्व विषयक अनेक पौराणिक कथाएँ अपनी अलग-अलग मान्यताएँ स्थापित करती है। फिर भी जहाँ तक उक्त बहुविध मान्यताओं के निष्कर्ष का सम्बन्ध है, वहाँ यही एकमात्र उद्देश्य प्रति-ध्वनित हो उठता है: असद् पर सद्, तमस पर ज्योति, मृत्यु पर जीवन, अन्याय पर न्याय, कायरता पर शौर्य और अनेकता पर एकता की विजय का यह मंगलकारी महोत्सव, हममें नयी शक्ति, नये भाव एवं नवीन उत्साह का संचार करने आता है।
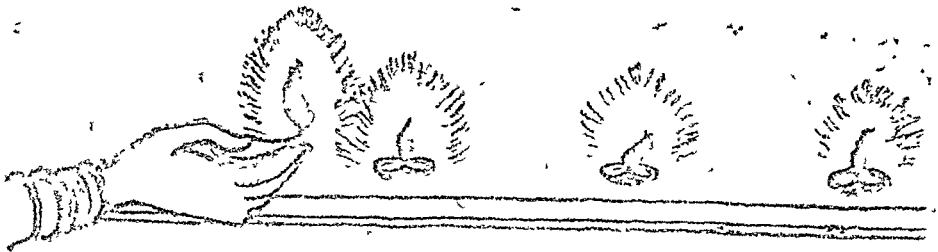
संस्कृत में नारी शब्द*

लेखक डॉ० सुकुमार सेन
अनुवादक--डॉ० रामअधार सिंह

कुछ समय पहले बँगला के एक जाने-माने लेखक का एक मन्तव्य पढ़कर मैं बड़ा ही चकित एवं विस्मित हुआ था। उन्होंने लिखा था कि एक ही वस्तुवाचक शब्द के अनेकानेक पर्याय रहने से संस्कृत भाषा की स्पष्ट भाव प्रकाश की क्षमता (preciseness) कम हो गयी है और इसीलिए बँगला भाषा की कविता संस्कृत की कविता से सुन्दर है। मैं इस मन्तव्य पर विचार करना नहीं पसन्द करूँगा। सिर्फ नारीवाचक शब्दों की ही विवेचना करूँगा। उसीसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि संस्कृत में शब्दों का बाहुल्य किस प्रकार का था और वह व्यर्थ था या नहीं।

पहले साधारण नारीवाचक शब्दों पर विचार किया जायेगा, वे है ग्ना, जनी, जानि, नारी, पुरुषी, महिला, मानवी, योषा (योषित) एवं स्त्री। इसमें ग्ना, जनी और जानि सबसे प्राचीन शब्द हैं। वैदिक संस्कृत के बाहर साधारणतः ये प्रचलित नहीं थे!

'ग्ना,' ऋग्वेद के बाद लुप्त हो गया था। यह कुछ संभ्रम सूचक शब्द था। अंग्रेजी मे स्त्री रोग विद्या के नाम Gynoecology का प्रथम अंश 'ग्ना' के समान रूप वाले ग्रीक भाषा के शब्द gune से आया है। 'ग्ना' से संबद्ध 'जनी' और 'जानि' मूलभाषा (प्रायः ३५०० वर्ष पूर्व) में साधारण नारीवाचक (कहीं-कहीं संभ्रमसूचक भी) शब्द थे।

संस्कृत में 'जनी' शब्द पर 'जन्' धातु से निष्पन्न 'जननी' शब्द का अर्थ आरोपित हुआ और उसके फलस्वरूप यह शब्द संस्कृत में प्रायः लुप्त हो गया। 'जानि' शब्द का समान-शब्द अंग्रेजी में Queen है, परन्तु संस्कृत में इस शब्द का व्यवहार बहुत कम होता है। जो होता भी है वह 'युव-जानि' जैसे दो एक समास-शब्दों के अन्तिम पद के रूप में। संस्कृत में इसका अर्थ 'पत्नी' (संभ्रमसूचक) है।

'जनी' के साथ ही एक और शब्द 'जन्या' भी उल्लेखनीय है। कालिदास ने इस शब्द का प्रयोग परिचारिका या सखी जैसे किसी एक अर्थ में किया है। 'जनी' की तरह ही 'जन्या' का मूल अर्थ नारी था और तब इस शब्द का प्रयोग संभ्रमसूचक भी नहीं था। 'जनी' : 'जन्या' इस रूप-परिवर्तन के साथ ऋग्वेद के 'कनी' (सं० 'कनीनिका' और 'कानीन' शब्दों में प्राप्त) 'कन्या' की तुलना की जा सकती है।*

'नारी' शब्द भी प्राचीन ही है, तब भी मूलभाषा में इसका प्रयोग होता था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। इस शब्द की प्राचीनता ३५०० वर्ष से कम नहीं होगी, क्योंकि यह शब्द 'अवेस्ता' में पाया जाता है। नारी शब्द 'नृ' (नर) के साथ संबद्ध है। इसका पुंलिंग रूप 'नर' नहीं है, संभवतः 'नार' है ('नारायण' में इस शब्द के अस्तित्व का अनुमान कर सकते है) 'नारी' शब्द का मूल अर्थ अद्भुत कर्मा, शक्तिशालिनी स्त्री या वीर नारी था। संस्कृत में पहुँचने के पहले ही यह शब्द साधारण नारी-वाचक अर्थात् नर शब्द के स्त्रीलिंग-रूप में परिणत हो गया।

'पुरुषी' पुरुष का स्त्रीलिंग है। ऋग्वेद के बाहर यह शब्द व्यवहृत नहीं हुआ है। अंग्रेजी female इसका पर्याय है। 'मानवी' मानव का स्त्रीलिंग है और अंग्रेजी human-female इसका ठीक पर्याय है।

'महिला' शब्द संस्कृत में नवागत है, ईसा के बाद की शताब्दियों से (विशेषकर पाँचवीं व छठी) इसका प्रयोग होने लगा है। इसका अर्थ भी संभ्रमसूचक है। मेरा अनुमान है कि इस शब्द का पुल्लिग प्रतिरूप था 'महिल' यानी पूजनीय व्यवित, महान आदमी। तु० परवर्तीकालीन् 'महल्लक'।

'योषा' (योषन्), 'योषित्' शब्दों का प्रयोग ऋग्वेद से ही बराबर मिलता है। दोनों ही शब्द 'यु' धातु से निष्पन्न हैं। असल में 'योषा' 'योषित्' का अर्थ प्रजनन समर्थ नारी था। इसका पुलिंग प्रतिरूप 'युवन्' (युवा) शब्द था। संस्कृत में युवन् का असली स्त्रीलिंग प्रतिरूप 'युवती' था, ('यु' धातु का शतृ प्रत्यान्त रूप)।

*जनसेवक-शारदीया संख्या (बँ० सं० १३७१) से प्रोफेसर सेन की अनुमति से साभार अनूदित।

* ब्रजभाषा में 'जनी' शब्द अब भी प्रचलित है। जैसे, "उहाँ बहुत जनीं आयी हीं।"—सम्पादक, सरस्वती।

'स्त्री' शब्द भी बहुत प्राचीन है। यद्यपि मूल भाषा या किसी शाखा में इसका प्रयोग हुआ था या नहीं ऐसा नहीं जाना जाता। पाणिनि प्रभृति संस्कृत के सभी वैयाकरणों ने निर्विशेष रूप से इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी Female के समानार्थी के रूप में किया है। किन्तु ऋग्वेद में प्रधानतः नारी (मनुष्य या इतर प्राणी) के अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है। शब्द की व्युत्पत्ति 'सू' धातु (सन्तान प्रसव करना) से मानी जाती है। किन्तु भाषा-विज्ञान या संस्कृत व्याकरण के किसी भी नियम (सूत्र) के अनुसार 'सूत्री' से 'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति संभाव्य नही है। स्त्रीलिंग 'स्त्री' शब्द 'स्तृ' ('तारा' अंग्रेजी Star) से अनायास ही व्युत्पन्न हुआ लगता है। किन्तु इसमें भी अर्थगत कठिनाई सामने आती है (किसी अत्यन्त रोमांटिक कवि या सिनेमा-भक्त को छोड़कर कोई भी व्यक्ति नारीमात्र को Female Star नहीं कहेगा)। मेरा अनुमान है, 'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति मूल भाषा के जिस धातु या प्रातिपदिक से हुई है वह प्रायः 'स्तृ' (तारा) का समध्वनि शब्द रहा होगा। तब भी अर्थ तो एकदम भिन्न है। मूल धातु या प्रातिपदिक के दो रूप थे Ster (गुण रूप) Str (संप्रसारण)। गुण रूप अंग्रेजी के Sterile (∠लातिन Sterillis) संस्कृत (वत्स) तर, वत्स (तरी), (अश्व) तर (अश्व) तरी (∠-स्तर,-स्तरी) में मिलता है। संप्रसारण रूप से स्त्रीलिंग शब्द 'स्त्री' आया है। इस शब्द का मूल अर्थ था गर्भधारण के अनुपयुक्त। संस्कृत 'वत्सतर' या 'वत्सतरी' का अर्थ है बड़ा बछड़ा या बछड़ी, जिसने प्रजनन या गर्भधारण की आयु को नहीं प्राप्त किया है। 'अश्वतर' एवं 'अश्वतरी' इस मूल अर्थ से भिन्न एक विशेष अर्थ (mule) में प्रयुक्त होते है। (तु० बँगला—अश्वतरी गर्भेधरे आयनार नाशिते)।

अब मैं विशेष अवस्था एवं सम्पर्कसूचक नारी-वाचक शब्दों पर विचार करूँगा। इन शब्दों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—आयुवाचक, सम्पर्कवाचक, एवं समाजगत सम्पर्कवाचक।

आयुवाचक शब्द है—'अग्रू', 'कन्या', 'किशोरी', 'कुमार'। 'अग्रू' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के बाद नही मिलता। चूँकि यह शब्द 'अवेस्ता' में भी पाया जाता है, इसलिए यह शब्द काफी प्राचीन है। इसका अर्थ था जिसने गर्भ धारण नही किया हो अर्थात् अविवाहित। 'गुरु' शब्द के साथ इसका कोई अर्थगत सम्बन्ध नहीं है, 'गुर्विणी' के साथ है। गुर्विणी का अर्थ है गर्भवती नारी। यहाँ 'गुरु' का अर्थ है भार अर्थात् गर्भभार। 'अवेस्ता' में अधिक उम्रवाली बहुत वृद्धा स्त्री के अर्थ में 'अग्रू' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। स्त्रीलिंग 'अग्रू' (=अविवाहित नारी) शब्द से ऋग्वेद में पुल्लिग 'अग्रू' (=अविवाहित पुरुष) शब्द की सृष्टि हुई थी।

'कन्या' शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ छोटी लड़की है। (कनिष्ठ, कनीयस्, कनीनिका आदि शब्द इसी धातु से बने है)। उसके बाद इसका अर्थ हुआ 'अविवाहित लड़की' इसके बाद इसका और अर्थ हुआ 'विवाह-पात्री', 'कन्या-सन्तान' इत्यादि। बँगला 'कने बो' भोजपुरी 'कनिया' शब्दों में 'कन्या' शब्द का प्राचीनतम अर्थ सुरक्षित रह गया है। ऋग्वेद में अविवाहित कन्या के अर्थ में 'कनी' का व्यवहार मिलता है। 'कानीन' (=कन्या पुत्र) शब्द इसी से निष्पन्न है। 'जनीः' 'जन्या' के साथ 'कनीः' 'कन्या' की तुलना आगे ही की जा चुकी है।

'किशोरी' का अर्थ था घोड़ा का मादा बच्चा। मूल पुल्लिग शब्द 'किशोर' का अर्थ था घोडा का नर बच्चा अर्वाचीन संस्कृत में 'किशोर' 'किशोरी' शब्दों का प्रयोग अल्पवयस बालक-बालिकाओं के लिये किया जाता है। बँगल में वैष्णव पदावली के माध्यम से यह अर्थ प्रचलित हुआ है

'कुमारी' अल्पवयस की अविवाहित कन्या होती है इसीसे इसका अर्थ हुआ अविवाहित नारी (उम्र चाहे ज कुछ हो)।

पति से संबन्धित नारी शब्द है—'जाया', 'पत्नी' 'भार्या', 'दारा', 'अवरोध', 'कलत्र', 'परिवार', (बँगला) और 'विधवा'।

'जाया' का मूल अर्थ है 'बहु-सन्तान-प्रसव-क्षमा नारी। अंग्रेजी Prolific wife इसका प्रतिरूप है। 'पत्नी' शब्द विवाहित नारी के घर और समाज में उच्च स्थान क द्योतक है। धार्मिक अनुष्ठान में पति के साथ पत्नी क समान अधिकार था। बराबर मर्यादा वाली एक से अधिक पत्नियाँ रहने पर वे परस्पर एक दूसरे की सपत्नी होतं थीं। (बँगला-'सतीन', 'सता', हिन्दी 'सौत')। 'भार्या' क अर्थ था पत्नी अथवा उसके स्थान पर कोई अन्य स्त्र जिसका भरण-पोषण करने के लिए पति लोक एवं धर्म वाध्य होता था। 'दार' एवं 'अवरोध' (दोनों ही पुल्लि

शब्द हैं) का असली अर्थ था अन्तःपुर। अन्तःपुर की नारी (जो गृहस्वामी की भोग्या थीं—चाहे वे पत्नी हों या उपपत्नी) 'दार' कहलाती थीं और उनके गर्भ से उत्पन्न संतति 'दारक' (पुत्र) एवं 'दारिका' (पुत्री; प्राचीन बँगला में 'दारिका' से उत्पन्न 'दारी' शब्द वेश्यावाचक है)। बँगला में इस समय 'परिवार' शब्द अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण 'दार' एवं 'अवरोध' की तरह प्रयुक्त होता है।

'विधवा' माने पतिहीना। यह शब्द बहुत प्राचीन है और अंग्रेजी के (Widow) शब्द के साथ मूलतः अभिन्न है। इस शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ था जोड़े से बिछुड़ी नारी। 'विधु' (=चन्द्रमा; रात्रि के समय सूर्य से विरहित चन्द्रमा) शब्द इसका सगोत्र है। बाद में 'वि-धवा' जैसी व्युत्पत्ति की कल्पना करके अर्वाचीन पतिवाचक 'धवा' शब्द की सृष्टि हुई।

विवाह बंधन से इतर यौन संबंधसूचक नारी शब्द है—'असती', 'जारिणी', 'पुंश्चली' (पुंश्चल्), 'गणिका', 'वार-नारी' (वार-कन्यका, वार-विलासिनी, वार-स्त्री आदि) और 'वेश्या' (वेशिका, वेशवधू, वेश वनिता, वेश स्त्री इत्यादि)।

'असती' शब्द वैदिक या अवैदिक संस्कृत साहित्य में चरित्रहीन नारी के अर्थ में नहीं प्रयुक्त होता था, किन्तु अर्वाचीन साहित्य में इसका प्रयोग प्रधानतः इसी अर्थ में होता है। इसका अर्थ है असत् (अर्थात् मिथ्याचारिणी, अविश्वासिनी) नारी। 'जारिणी' का प्रयोग ऋग्वेद के बाद नहीं मिलता। इसका अर्थ था ऐसी स्त्री जिसका 'जार' (उपपति) हो अर्थात् 'गोपन-प्रणयासक्त-नारी।' 'पुंश्चली' और 'पुश्चलू' (पुं० में भी व्यवहृत होता था) शब्द ऋग्वेद के बाद के साहित्य में मिलते हैं। 'पुंश्चली' शब्द संस्कृत साहित्य में भी अपरिचित नहीं है। इसका अर्थ लगाया जाता है पुरुष-प्रणय में जो स्त्री चंचल चित्त वाली हो अर्थात् जो प्रेम में एकनिष्ठ न हो। यह अर्थ लोक-व्युत्पत्तिगत ही प्रतीत होता है। संभवतः मूल अर्थ था पुरुष-शिकारी नारी (तु० अं० Predatory female)। 'गणिका' शब्द वैदिक नहीं है फिर भी प्राचीन है। पहले इसका अर्थ संभ्रान्त वेश्या था। कुछ समय बाद अर्थावनति के कारण इसका आधुनिक अर्थ 'वेश्या' हो गया। पालि एवं प्राचीन संस्कृत साहित्य में (उदाहरणार्थ मृच्छकटिकम्) इस शब्द का प्रयोग प्राचीन अर्थ (अर्थात् राजा महाराजा एवं धनवान् वणिकपुत्रों की भोग्या पण्य-स्त्री) में ही मिलता है। इसका मूल अर्थ था 'जिस नारी का प्रणय अधिक मूल्य में पाया जाय।' यह शब्द गण (जन समूह) से नहीं बल्कि 'गणक' शब्द से निष्पन्न है। पाणिनि के सूत्र (५.१.२२) के अनुसार सिद्ध 'गणक' (पु०) शब्द का एक अर्थ था 'बहुत अधिक मूल्य में खरीदा हुआ।' 'गणिका' इसी अर्थ में प्रयुक्त 'गणक' शब्द का स्त्रीलिंग रूप है।

'वार-नारी' इत्यादि शब्दों में प्रयुक्त 'वार' शब्द का अर्थ 'घेरा', 'जगह', 'अवरोध' है। बाद में इसका अर्थ हुआ राजान्तःपुर को छोड़कर अन्य अवरोध जहाँ स्त्रियों के प्रणय-प्रार्थियों का प्रवेश निषिद्ध नहीं था। अंग्रेजी का (Brothel) अर्थात् वेश्यालय इसका समानार्थी शब्द है।

'वेश्या' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति 'वेश' शब्द से है। 'वेश' के अर्थ-परिवर्तन पर विचार करने पर प्राचीन काल के समाज की एक छोटी झाँकी भी मिल जाती है। विश् धातु का अर्थ था—(दिनान्त में) 'विश्राम करना' 'रात बिताना' या 'उपभोग करना।' (कालिदास ने इसका प्रयोग अंग्रेजी के To enjoy के अर्थ में ही किया है)। इसी धातु से वैदिक 'विश' एवं वैदिकेतर 'वेश' (अर्थ—रात्रि निवास, जहाँ लोग स्थायीरूप से निवास करें अर्थात् ग्राम या गृह) शब्द आये हैं।

प्राचीन काल में वणिकों एवं दूर देश से आये अन्यान्य यात्रियों के लिए रात बिताने या थोड़े दिनों तक रहने के लिए बड़े-बड़े शहरों में आश्रय (सराय rest house) हुआ करते थे। इन्हें 'वेश' कहा जाता था। इन दूर देश से आये लोगों की परिचर्या एवं मनोविनोद के लिए 'वेश' में स्त्रियाँ नियुक्त रहती थीं। 'वेश' की मालकिन भी यथासम्भव स्त्री ही होती थी। 'वेश' की अधिवासिनी भी 'वेश्या', 'वेशिका', 'वेशवधू आदि कही जाती थी।

रक्त-संबंध-वाचक दो नारी शब्द बंगला में कालोचित परिवर्तन को प्राप्त हुए हैं। पहला शब्द है माता—यह पूर्व रूप से परिवर्तित हुआ है। दूसरा है स्वसा (स्वसृ) इसका परिवर्तन आधा ही हुआ है क्योंकि यह शब्द अब पिसे, पिसीमिसो, मासी आदि शब्दों के शेषांश के रूप में पाया जाता है। 'भगिनी' (बहिन) शब्द वैदिक भाषा में नहीं मिलता। परन्तु संस्कृत में इस शब्द ने स्वसा (स्वसृ) को प्रायः हटा दिया है। भगिनी शब्द के द्वारा तत्कालीन सामाजिक इतिहास की एक छाया मिल जाती है। इस शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ था 'सौभाग्यवती' मातृसत्ताक समाज में एवं गृह व्यवस्था के कार्यों में कन्याओं का बालकों से अधिक महत्त्व था, क्योंकि दौहित्र ही मातामह की सम्पत्ति का वास्तविक उत्तराधिकारी होता था। बहरहाल, ऐसा लगता है कि 'भगिनी' का 'स्वसा' के अर्थ में प्रयोग पहले मातृसत्ताक भाषा सम्प्रदाय से ही शुरू हुआ था और बाद में यह सर्वत्र छा गया।

संस्कृत में और भी कई एक रक्त-संबंधवाचक शब्द पाये जाते हैं। जैसे 'अम्बा', (सम्बोधन में अम्बे) 'तत्' (वै०), 'तात' (अवै०), 'नना' (वै०) इत्यादि। ये शब्द वास्तव में शिशुओं को भुलवाने वाले शब्द थे। बँगला में पहुँचने के पहले ही इनका लोप हो गया था।

संवाद पद्धति की परम्परा

(संत रोहल की बानी की संवाद पद्धति के आलोक में)

डा० दशरथराज

संत कवियों की समस्त वाणी मुक्तक स्वरूप की रचना है जहाँ वे अपने आदर्शों के प्रतिपादन के साथ अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्ति देने में सफल हुए है। इन कवियों की रचना का लोकपक्ष अत्यन्त सबल रहा है। वे तो अपने आत्मबल को बाँटते हुए दूसरों को (जन साधारण को) अवलंब देकर उन्हें भी साधना के पथ पर अग्रसर होने का सामर्थ्य प्रदान करते रहे हैं। इन संत कवियों ने कर्मकाण्ड की अवहेला की है और कर्मवाद का समर्थन। बाह्य पूजा उपासना उन्हें अप्रिय रही है और उन्होंने अपने व्यावहारिक जीवन के आदर्शो को निभाने के साथ आत्मिक विकास के मार्ग को प्रशस्त किया है। वे प्रत्येक व्यक्ति को—साधारण से साधारण व्यक्ति को, बिना किसी प्रकार के भेद भाव के, निंदनीय से निंदनीय कार्यक्षेत्र का अवलम्ब लेकर चलनेवाले को भी आत्म-विकास का अधिकारी मानते रहे हैं और उन्होंने सबको ही बिना किसी भेद-भाव आत्मोन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान की है।

संत रोहल की रचना भी इसी वर्ग के संत कवियों की रचना के अन्तर्गत आएगी जिन्होंने कर्मवाद का समर्थन करते हुए मानव मात्र के प्रति उदारता का भाव अपनाते हुए, उस व्यक्ति को ज्ञान द्वारा आत्म-विकास का मार्ग बताया है। जन-साधारण के उन्नायक इन महान चेताओं ने सरलता एवं सरसता के लिए बहुधा दोहों और पदों के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति की हैं। इस वर्णन-पद्धति को सीधी स्पष्ट अभिव्यक्ति के अन्तर्गत रखा जाता है। संत रोहल ने इसी पद्धति को अपनाते हुए तत्कालीन समाज में प्रचलित छन्दों—दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया तथा पदों में अपने सिद्धान्तों को अनुभूति की खरांद पर चढ़ाकर अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक रूप में गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके कारण साधारण से साधारण व्यक्ति के मन में ज्ञान एवं साधना सम्बन्धी जिज्ञासा को परितृप्त करने के साथ ही साथ कवि ने बड़ी सरलतापूर्वक साधक की शंकाओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है।

मध्यकालीन प्रबन्धकारों ने अपने प्रबन्ध-काव्यों में अपने आराध्य-साध्य के प्रति अपने भावों को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कहीं-कहीं प्रबन्ध काव्यों में भी साधकों ने ईशस्तवन अथवा गुण-कथन की ओर अपनी सजगता का परिचय दिया है पर प्रबन्ध-काव्यों में ऐसे प्रसंग अपेक्षतया कम ही आते है। महात्मा तुलसी की भक्ति भावना का ज्वलंत उदाहरण उनकी 'विनय पत्रिका' है 'मानस' नहीं। अतः स्पष्ट है कि इन भक्त कवियों का मन ईश्वर से सीधे सम्पर्क स्थापित करने में अधिक रमा है और इस तरह वे अपने सिद्धान्तों को भी विशेष रूप से अभिव्यक्ति दे सके हैं।

मध्यकालीन धार्मिक भावनाओं में सूफी विचारधारा का अपना महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। इन मुसलमान कवियों ने प्रेम की पीर की सहज अनुभूति को लौकिक अभिव्यक्ति देकर अलौकिक प्रेम के स्वरूप को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। प्रेम मानव-जीवन की प्रमुख और सहज भावना है और नारद आदि तत्त्ववेत्ताओं ने भक्ति को भी प्रेम रूपा कहा है।[1] भारतीय दर्शन तथा ईरानी दर्शन के तत्कालीन प्रभाव के कारण मध्यकालीन समस्त साहित्य पर प्रेममार्ग की साधना पद्धति का भी उतना ही प्रभाव परिलक्षित होता है जितना संत साहित्य पर हठयोग का प्रभाव। समस्त संत साहित्य सूफी साधना पद्धति से विशेष प्रभावित रहा है। बात तो यह है कि भारत में उस समय दोनों विचार धाराएँ साथ-साथ पनप रही थीं, और प्रेम-भाव मानवीय जीवन का प्रधान एवं अविभाजित अंग होने के कारण संत कवियों को भी अपनी ओर आकर्षित किये बिना न रहा। अतः संत कवियों की मुक्तक वर्णन शैली पर भी सूफी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

संत साहित्य एवं भक्ति साहित्य की सम्पूर्ण मुक्तक रचना भावात्मक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आती है जहाँ भक्त एवं संत का उद्देश्य ही अपनी श्रद्धामय, प्रेममय भावना की निश्छल अभिव्यक्ति रहा है और वे अपनी भावावे-

१. नारद भक्ति सूत्र—सानुरागा।

की अवस्था में जो कुछ भी गाते रहे हैं, वह जहाँ गेयत्व को लेकर चला है वहाँ वह हृदय की प्रधानता का भी परिचायक रहा है।

संत-साहित्य में साधनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति वाले अंश अवश्य ही बुद्धिपक्ष से प्रेरित रहे हैं, जहाँ उन्होंने साधना पद्धति को सर्वसुलभ बनाने के लिए अथवा अधिकारी व्यक्तियों के लिए सुलभ करने के लिए व्याख्यात्मक शैली को अपनाया है। ऐसे अवसरों पर भी उनकी रचना में साधनात्मिका, ज्ञानात्मिका भक्ति के साथ भावात्मिका भक्ति का भी योग रहा है।

हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं कि संत रोहल की वाणी का मूल स्वर ज्ञान को सर्व-सुलभ बना रहा है जो वास्तव में सरल बात नहीं है फिर भी कवि ने जिस संवादात्मक शैली का अवलम्ब लिया है उससे निस्संदेह वह आत्मज्ञान जैसे अत्यन्त गूढ़ विषय को अधिक सरल एवं सर्वसाधारण तक पहुँचाने में सफल हुआ है। साधना के क्षेत्र में यह संवादात्मक पद्धति अधिक उपयोगी होने के कारण परम्परा से चलती आई है।

हठ-योग जैसे कठिन विषय को भी संत रोहल ने संवादात्मक शैली में प्रस्तुत करते हुए उस साधना पद्धति के माध्यम से जीवनगत सिद्धान्तों और आदर्शों को ग्रहण करने की शिक्षा देते हुए अन्ततोगत्वा हठ-योग से भी ज्ञान, आत्मज्ञान और अनुभव को श्रेष्ठ बताया है। इसी अनुभव-जनित ज्ञान के द्वारा संत रोहल आत्मानुभूति अथवा आत्म-दर्शन जैसे कठिन पहलू को स्पष्ट करने में सफल हो सका है।

भारतीय साहित्य में संवादात्मक साहित्य की परम्परा अति प्राचीन काल से चलती आ रही है। इस परम्परा का रूप स्पष्ट करने के उपरान्त हम संत रोहल की वाणी की संवाद-पद्धति का विवेचन करेंगे।

भारतीय काव्यों में संवाद पद्धति

संवाद का अवलम्ब किसी भावना को सहज, सरल एवं स्पष्ट करने के लिए लिया जाता है। संवादों एवं प्रश्नोत्तर के रूप में ज्ञान को तर्कयुक्त रूप से हृदयग्राही बनाकर प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में भी संवाद पद्धति का अनुसरण ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। इतना ही नहीं भावनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए भी संवाद पद्धति को अपनाया जाता रहा है। ऋग्वेद में यम-यमी संवाद, उर्वशी-पुरुरवा संवाद, संवादात्मक परम्परा के परिचायक हैं। वेदों में उर्वशी पुरुरवा संवाद, तथा यम-यमी संवाद इस रूप में मिलते हैं :—

१—पुरुरवा और उर्वशी संवाद—पुरुरवा एवं उर्वशी की कथा अपने मूल रूप में ऋग्वेद में संवादमात्र है जिसमें कथातत्त्व के लक्षणों का नितांत अभाव है। वहाँ पुरुरवा जब उर्वशी से मिलता है तब उसकी अवस्था एक आर्त प्रेमी की सी दिखाई देती है और वह उर्वशी से पुनर्मिलन की इच्छा प्रकट करता है। पुनर्मिलन से यह आशय अवश्य निकलता है कि इससे पूर्व उर्वशी एवं पुरुरवा का सम्बन्ध रहा है, किन्तु किन्हीं कारणोंवश वह अब टूट चुका है। उनमे वियोग हो गया है और पुरुरवा उस अवस्था को टालना चाहता है। लगता है कि दोनों के बीच किसी प्रकार के प्रेमानुबन्ध स्वीकृत थे जिनका समुचित पालन न होने के कारण ही ऐसा हुआ है, तभी तो उर्वशी पुरुरवा के साथ लौटना नहीं चाहती और उसकी अनुनय-विनय को ठुकरा देती है।

यही कथानक शतपथ ब्राह्मण में कथात्मक रूप ग्रहण करता है और यही कथानक पौराणिक काल में बहुत थोड़े परिवर्त्तनों के साथ बहुत ही लोक-प्रिय बन गया दिखाई देता है कि इस कथा की एक परम्परा सी चलती दृष्टिगत होती है।

२—यम-यमी संवाद—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने भारतीय प्रेमाख्यान काव्य में पृष्ठ १ पर ही यम-यमी संवाद को भारतीय प्रेमाख्यानों के बीज स्वरूप माना है। ऋग्वेद में यम-यमी का संवाद इस प्रकार आया है :—यमी यम की सगी बहन जो उसके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है और कामासक्त बनकर निश्छल शब्दों में उसे भोग-विलास के लिए आमंत्रित करती है। उसका भाई बहन और भाई में ऐसे सम्बन्ध को अस्वाभाविक ठहराता है और उसके प्रस्ताव को पसंद नहीं करता। वह बड़ी दृढ़ता के साथ उसे उत्तर देता है—'ऐसा करना शाश्वत नियमों के विरुद्ध है और देवताओं ने भी इसका विरोध किया है।' यमी फिर भी नहीं मानती और देवताओं की ही दुहाई देकर कहना चाहती है कि जब देवताओं ने संतान वृद्धि का आदेश दिया है अतः तुम्हारा यह कथन उपयुक्त

भी नहीं और न ही उचित प्रतीत होता है। वह अपनी इच्छा तृप्त होती न देख यम को कायर और निर्बल भी कहती है और साथ ही वह यह भी कहती है कि वह उसे न अपना कर किसी अन्य स्त्री को अपनाने की इच्छा मन में रखता होगा। यम चिढ़कर उसे कहता है—'जाओ और तुम भी किसी अन्य पुरुष का ही आलिंगन करो और उसके साथ वृक्षलता की भाँति चिपक जाओ। तुम उसके हृदय पर अधिकार करो और वह तुम्हारे हृदय पर विजय प्राप्त करले और तुम दोनों एक दूसरे के साथ आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करो।'

ऋग्वेद में यम-यमी संवाद में इससे आगे कोई संवाद नहीं मिलता और न ही किसी प्रकार की कथा ही मिलती है। इस कथानक का कोई विकास भारतीय साहित्य में होता दिखाई नहीं देता।

३. **शुक सप्तति**—शुक सप्तति संस्कृत की एक संवाद-प्रधान रचना है जिसमें शुक द्वारा कही हुई सत्तर कहानियाँ संकलित हैं। संस्कृत की इस रचना का रचनाकाल दसवीं शताब्दी से भी पूर्व प्रतीत होता है और इसके रचयिता का नाम आज भी ज्ञात नहीं है।[१] गैरोलाजी के विचारानुसार इसका फारसी अनुवाद १४वीं शताब्दी में हुआ।[२] किंतु मौलाना नख्शवी की गद्य रचना जिसके आधार पर मुल्ला ग़वासी ने अपनी रचना तूतीनामा लिखी, का रचनाकाल पंडित परशुराम चतुर्वेदी,[३] डा० गोपीचंद नारंग,[४] तथा मीर सआदत अली[५] ने सन् ७३० हि० (सन् १३२९-३० ई०) बताया है। शुक सप्तति की प्रसिद्धि का परिचय उसके विश्व की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध अनेक अनुवादों से भी मिलता है।

यही शुक सप्तति की कथा कुछ परिवर्तन के साथ, शुक-सारिका, शुक-रंभा संवाद, तूतीनामा और किस्सा तोता-मैना, मसनवी सौदागर की बीवी, मसनवी किस्से तोता व मैना, मसनवी रोशन मियाँ सौदागर और शम्सूदद्दा आदि नामों से भारतीय भाषाओं में स्थान पा चुकी है।

४. **दशकुमार चरित**—दण्डीकृत दशकुमार चरित का भारतीय साहित्य में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कल्पना के आधार पर अपने कथानक को अनेक उपकथानकों एवं अंतरकथाओं से भरती हुई यह रचना अलिफ़ लैला और अरैबियन नाइट्स का स्मरण दिलाती है। पुष्पपुर का राजकुमार अपने ९ भाइयों के साथ साहसपूर्ण यात्रा के लिए प्रयाण करता है जो संयोगवश एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और एक लम्बे अर्से के बाद उनकी आपस में भेंट होती है। तब प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन की घटनाओं को अपने भाई राजकुमार को सुनाता है। यह ७वीं शताब्दी की रचना है। भाषा शैली की दृष्टि से इस कथानक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने समासपूर्ण शैली का उपयोग किया है और कुछ वाक्य तो डेढ़-डेढ़ दो-दो पृष्ठों में समाप्त होते हैं।

जैन एवं बौद्ध परम्परा में उपलब्ध संवाद काव्य

पौराणिक साहित्य के युग में बौद्ध जातकों, जैन धर्म कथाओं तथा गुणाढय, क्षेमेन्द्र, सोमदेव जैसे कथाभिज्ञों का कथा साहित्य उपलब्ध होता है जिसका मूल उद्देश्य धर्म प्रचार ही था। जैन धर्मावलम्बी एवं बौद्ध धर्मावलम्बी कथाकारों ने जहाँ अपनी कथाओं में प्रेमतत्व को भी अपनाया है, वहाँ उन्होंने प्रेम की असारता सिद्ध करते हुए आध्यात्मिक चेतना की ओर साधक का ध्यान आकर्षित किया है। वास्तव में ये रचनाएँ धर्मग्रंथों के अन्तर्गत ही रखी जा सकती हैं शुद्ध साहित्य के अन्तर्गत नहीं। इसीसे इन रचनाओं में प्रेम सम्बन्धी विविध व्यापारों को गौण स्थान दिया गया है अथवा उनका आश्रय समझी जानेवाली स्त्रियों के विपक्ष में कहा गया है। इन रचनाओं का उद्देश्य संयम, तपस्या, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा देना रहा है। इस कथा-साहित्य की रचनाओं में जो लोक-सुलभ सरलता और स्वाभाविकता उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ-सी जान पड़ती है और इनमें संवादों की प्रधानता रही है जिनके

---

१. शुक सप्तति के नाम से एक अज्ञातकालीन अज्ञातनामा लेखक की कथाकृति उपलब्ध है। इसका चौदहवीं शताब्दी में एक फ़ारसी अनुवाद हो चुका था। हेमचन्द्र भी इस ग्रंथ से परिचित था। अतः इसका रचनाकाल दसवीं शताब्दी से पहले का प्रतीत होता है।—संस्कृत साहित्य का इतिहास—गैरोला—पृष्ठ ९२१।

२. वही—पृष्ठ ९२१।

३. हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान—परशुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ २१८-१९

४. उर्दू मसनवियाँ—डा० गोपीचंद नारंग—पृष्ठ ५६

५. तूतीनामा—मुल्ला ग़वासी—सम्पादक सआदत अली रिज़वी—पृष्ठ २३ भूमिका भाग।

द्वारा कथाकारों ने पात्रों के मन-परिवर्तन का काम लिया है।

जैन कथाओं में आगमों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आगमों के अंतर्गत ज्ञातृधर्मकथा में निग्रथ-प्रवचन को उद्बोधक अनेक भावपूर्ण कथा कहानियों, उपमाओं और दृष्टांतों का संग्रह जिससे महावीर की सरल उपदेश पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। आचारांग, सूत्र कृतांग, उत्तराध्ययन और देश वैकालिक सूत्रों के अध्ययन से जैन मुनियों के संयम पालन की कठोरता का परिचय प्राप्त होता है। डा० विन्टरनीज ने इस प्रकार के साहित्य को श्रमण काव्य का नाम दिया है जिसकी तुलना महाभारत तथा बौद्धों के धम्मपद और सुनत्तिपात आदि से की गई है।[१]

आगम साहित्य मे जो कथाएँ आई है उनमें संवादों का भी विशेष स्थान रहा है।[२] 'न्याधम्मकहाओ' में तालाब के मेढक और समुद्र के मेढक का संवाद उल्लेखनीय है।[३] उत्तराध्ययन-सूत्र एक धार्मिक काव्य है जिसमें उपमा, 'दृष्टांत तथा विविध आख्यानों और संवादों द्वारा बड़ी मार्मिक भाषा मे त्याग और वैराग्य का उपदेश दिया है।............ रथनेमी और राजीमती का संवाद, केशी-गौतम का संवाद, अनाथी मुनि का वृतात, जयघोष मुनि और विजयघोष ब्राह्मण का संवाद आदि कितने ही आख्यान और संवाद इस सूत्र मे उल्लिखित है जिनके द्वारा निर्ग्रंथ प्रवचन का विवेचन किया गया है।[४]

आगमों की व्याख्याओं में जो कथाएँ आई है उनमें साधु-साध्वियों के प्रेम-संवाद भी जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर हो जाते है।[५] कथाओं को मनोरंजक बनाने के लिए उनमे विविध संवाद, बुद्धि की परीक्षा, वक्कौशल्य, प्रश्नोत्तर, उत्तर-प्रत्युत्तर, हेलिका, प्रहेलिका, समस्या-पूर्ति, सुभाषित, सूक्ति, कहावत, तथा गीत, प्रगीत, विष्णुगीतिका चर्चरी, गाथा, छन्द आदि का उपयोग किया गया है।[१]

जैन कथाओं में हरिभद्र का धूर्ताख्यान तो हास्य, व्यंग्य और विनोद का एकमात्र कथा ग्रन्थ है। हरिभद्र ने भी अपनी कृति को मनोरंजक बनाने के लिए विविध मनोरंजक सम्वादों, प्रतिवादों को परास्त कर देनेवाले मुँहतोड़ उत्तरों, धूर्तो के आख्यानों, सुभाषितों और उक्तियों द्वारा सुसज्जित किया है।[२]

कुवलयमाला के रचयिता उदोतनसूरि का कथा-साहित्य के बारे में दृष्टिकोण उल्लेखनीय है। उनके विचारानुसार 'कथा सुन्दरी को नव वधू के समान अलंकार सहित सुन्दर ललित पदावली से विभूषित, मुदु और मंजु सल्लापों से युक्त और सहृदय जनों के लिए आनन्ददायक होना चाहिए।' लेखक ने अपनी इस अनुपम कृति मे अनेक हृदयग्राही वर्णनों, काव्य कथाओं, प्रेमाख्यानों, सम्वादों और समस्यापूर्ति आदि से सजीव बनाया है।[३]

वसुदेव हिण्डीकार ने लोक-रुचि के अनुसार धार्मिक कथाओं को प्रेमाख्यानों के रूप में प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण का समर्थन किया है।[४] और उसके पश्चात् जैन साहित्य में भी अनेक प्रेमाख्यान लिखे गये है जिनमें सम्वादों का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। बौद्ध और जैन प्रबन्ध कथाओं में विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ है— कट्ठहारि जातक, मणिचोर जातक, शुभा की कथा, मल्ली की कथा, तरंगवती की जैन-धर्म कथा, लीलावती की कथा; पउमसिरी, भविसत कहा।

ईरानी परम्परा में सँम्वाद पद्धति

ईरानी परम्परा में अलिफलैला का कथानक एक ऐसा ही कथानक है जिसके अन्तर्गत अनेक कथाएँ एक दूसरे कथानक के साथ पिरोई हुई है जिसमे पात्र अपनी अवस्था का वर्णन करते करते दूसरे कथानक का वर्णन करने लगते है और अन्तरकथाओं का यह क्रम चलता रहता है। उसी प्रकार ईरानी साहित्य में गुलोबुलबुल की बात-चीत के

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र जैन—पृष्ठ ४३

२. प्राचीन जैन आगमों में कथा साहित्य की दृष्टि से न्याधम्मकहाओ का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ उदाहरण, दृष्टांत, उपमा, रूपक, संवाद और लोक-प्रचलित कथा कहानियों द्वारा संयम तप और त्याग के उपदेशपूर्वक धर्म कथा का विवेचन किया गया है।—वही—पृष्ठ ३५६—५७।

३. वही—पृष्ठ ३५७

४. वही—पृष्ठ ३५७

५. वही—पृष्ठ ३५९

१. वही—पृष्ठ ३६०

२—प्राकृत साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ३६२

३—वही—पृष्ठ ३६२

४—वही— पृष्ठ ३६३-६४

माध्यम से भी प्रेम के स्वरूप पर कवियों ने प्रकाश डाला है। इस दिशा में उस्ताद मुसरंफ़ा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अलिफ़लैला

अलिफ़लैला अरबों की ८वीं शताब्दी की रचना है। इसका प्रथम फ्रेंच अनुवाद गीलार्ड ने (सन् १६४६–१७१५ ई०) किया।[१] और उसके बाद यह रचना—Thousand and one nights' इतनी प्रसिद्ध हुई कि विश्व की समस्त भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। गीलार्ड जन्मजात कथाकार था अतः उसकी वर्णन शैली मूल कथाकार की अरबी रचना अलिफ़लैला से भी अधिक प्रसिद्ध हुई। कथानक में यह बताया गया है कि एक बादशाह हर रोज नया विवाह करता था और सुबह होते ही अपनी पत्नी की हत्या कर डालता था। कोई प्रयत्न उसे इस वृत्ति से बाज न ला सका। आखिर उसकी एक पत्नी जो विदुषी थी, उसने बादशाह को रात्रि में कहानी सुनाना आरम्भ किया और सुबह में कहानी अधूरी छोड़ दी। बादशाह को कहानी का ऐसा चसका लगा कि वह पत्नी की हत्या की बात भूल गया और इस तरह उस विदुषी रानी ने हजार दिनों तक बादशाह को कहानी मे उलझाए रखा। इस ढाई वर्षो के समय में बादशाह के दो बच्चे पैदा हुए और बादशाह अपनी पत्नी का वध करने की वृति से सदा के लिए विमुक्त हो गया।[२]

इस कथानक में दशकुमार चरित की तरह ही साहसपूर्ण यात्रा का वर्णन है जिसमे अनेक उपकथाएँ और अन्तरकथाएँ कथानक में आ जाती है। यह कहना कठिन है कि अलिफलैला दशकुमारचरित से प्रभावित है या दशकुमार चरित अलिफलैला से। किन्तु दोनों मे विचित्र साम्य है। किन्तु इतना अवश्य हुआ कि यह परम्परा भारतीय तथा ईरानी साहित्य मे आगे चलकर विशेष स्थान बना लेती है और दोनों साहित्यों में ऐसे कथानकों के कई उदाहरण मिल जाते है। अलिफ़लैला के कथानक का प्रभाव तत्कालीन प्रेमाख्यान काव्य पर विशेष रूप से पड़ा जिसमें कवियों ने जिन्न-परियाँ, जादू-टोने की बातों का समान रूप से समावेश किया है और अपने पात्रों को दैवी शक्ति के सहारे विजय प्राप्त करवाई है। इस प्रकार के चमत्कारिक वर्णन ईरानी प्रेमाख्यान काव्य की सबसे बड़ी विशेषता रही है। ईरानी प्रेमाख्यान काव्य में अलिफ़लैला की शैली के आधार पर अन्तरकथाएँ भी समावेश पाती रही है।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य पर ईरानी प्रेमाख्यान काव्य का विशेष प्रभाव रहा है। सूफी साधकों ने बहुधा ईरानी प्रेमाख्यानों को आदर्श मानकर अपने कथानकों की सृष्टि की है। कुछ कथानक तो ईरानी प्रेमाख्यानो का हिन्दी रूपान्तर ही है। रूपान्तर कहने से हमारा उद्देश्य कोरे अनुवाद से नहीं है, यहाँ कवियों ने कथानक ईरानी प्रेमाख्यानों के अपनाए है पर उन्हे भारतीय वातावरण में प्रस्तुत किया है। दक्खिनी प्रेमाख्यान काव्य की अधिकतर रचनाएँ ईरानी कथानकों को लेकर चली है। ऐसी भी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है जिनमें मात्र प्रश्नोत्तर पद्धति को ही अपनाया गया है। ऐसी रचनाओं का उद्देश्य इस्लाम के महत्त्व को प्रतिपादित करना रहा है। ऐसे कथानकों में किस्से मलिके मिस्र, किस्से फौरोजशाह बादशाह विशेष उल्लेखनीय है। सूफी प्रेमाख्यान काव्य में सम्वादों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। साधक अथवा प्रेमी को अपने साध्य प्रेमिका का साक्षात्कार करने के पश्चात् उसके प्रश्नों का उत्तर देकर उसे अपनी विद्वत्ता एवं ज्ञान तथा योग्यता से प्रभावित करते दिखाया गया है।

प्रेमाख्यानों मे कई स्थानों पर सम्वाद प्रधान हो उठे है और वहाँ वे सम्वाद कथानक के नैसर्गिक विकास में बाधा भी पहुँचाते है किन्तु अपने उद्देश्य का सिद्धि के लिए कथाकारो ने ऐसे प्रसंगों को निस्संकोच अपनाया है। सिद्धहस्त कवियों ने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया है क्योकि उनका मूल उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार रहा है।

नाथ सम्प्रदाय के साहित्य में सम्वाद पद्धति

सम्वादो की परम्परा का पता गोरखनाथ के नाम पर चलनेवाली पुस्तको से भी मिलता है जहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि दो महात्माओं के सम्वाद रूप मे अपने दार्शनिक मत और धार्मिक विश्वास पद्धति को प्रकट करने की इस पद्धति का बहुत प्रचार नाथपथियों ने ही किया। ऐसा नही कहा जा सकता कि उससे पूर्व सिद्धान्त प्रतिपादन की परम्परा थी ही नही। किन्तु दो साधुओं एवं

१—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका—भाग २२ पृष्ठ १५७

२—उर्दू एनसाइक्लोपीडिया—पृष्ठ १५१

साधकों के प्रश्नोत्तर रूप में सिद्धान्त प्रतिपादन की जिस शैली का प्राधान्य इस पंथ के ग्रन्थों में मिलता है, वह शैली पहले अपरिचित थी। इस पद्धति ने परवर्ती सन्त साहित्य को विशेष प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप सन्त साहित्य में सिद्धान्त प्रतिपादन हेतु सम्वाद पद्धति में अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। 'मछिन्द्र गोरख बोध' अथवा 'गोरख-बोध' ऐसा ही सम्वाद ग्रन्थ है।

सन्त रोहल के रचना काल से पूर्व स्वतन्त्र रूप से नाथ सम्प्रदाय के साहित्य के रूप में और कथा साहित्य के माध्यम से प्रेमाख्यान काव्य में सम्वाद पद्धति का विशेष प्रचलन था जिससे सन्त रोहल की वानी की शैली प्रभावित है। इसका एक कारण और भी है किस सन्त रोहल की वानी में हठ-योग साधना की प्रधानता से यह भी लक्षित होता है कि इस पद्धति का प्रभाव उस पर नाथ-सम्प्रदाय से विशेष रूप में पड़ा हो।

संत रोहल कृत शास्त्र मन-प्रवोध एवं शास्त्र अद्भुत ग्रंथ की संवाद पद्धति

शास्त्र मन-प्रवोध एवं शास्त्र अद्भुत ग्रंथ की संवाद पद्धति नाथ सम्प्रदाय की संवाद पद्धति के अनुसार तथा 'गोरख-वोध' ग्रंथ के अनुरूप सिद्धान्त प्रतिपादन के हेतु अपनायी गयी संवाद पद्धति है। इन ग्रंथों की संवाद पद्धति पर वेदों की संवाद पद्धति तथा गाथा-साहित्य की संवाद पद्धति का कोई प्रभाव नहीं है। वेदों में यम-यमी के संवाद में यम-यमी की मानसिक स्थिति एवं तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन है और उर्वशी-पुरूरवस् के संवाद में उर्वशी एवं पुरूरवस् के प्रेमाकर्षणं के भाव की अभिव्यक्ति है। इन संवादों में अलौकिक प्रेम का स्वरूप अंकित करने अथवा ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित करने का प्रयत्न वेदकार ने नहीं किया है और न ही उन संवादों में अज्ञान सम्बन्धी उठनेवाली शंकाओं एवं ज्ञानमार्ग या योग साधना की कठिनाइयों का सरलीकरण ही हुआ है। वे सहज मानवीय प्रवृत्तियों के परिचायक संवाद हैं। दूसरी ओर गाथा साहित्य की संवाद पद्धति का स्वरूप भी इन ग्रंथों की संवाद पद्धति से नितांत भिन्न है। सूफी विचारधारा से प्रभावित होने पर एवं सूफी साधक का शिष्य होने पर भी संत रोहल ने मुक्तक शैली को अपनाया है, प्रवन्ध कथात्मक साहित्य का निर्माण नहीं किया। शास्त्र मन-प्रवोध एवं शास्त्र अद्भुत ग्रंथ के नाम से भी यही भासित होता है कि कवि ने एक में मन को प्रवोध देने का प्रयत्न किया है और दूसरे ग्रंथ में जीवन के अद्भुत स्वरूप को समझाया है। इन दोनों ग्रंथों में कवि ने संवादों के माध्यम से साधक के अथवा साधारण व्यक्ति के मन में साधना सम्बन्धी उठनेवाली शंकाओं को दूर करते हुए साधना के पथ को प्रशस्त किया है। दक्खिनी प्रेमाख्यान काव्य में मलिके मिस्र[१] तथा किस्से फीरोजशाह वादशाह[२] अवश्य ही दो ऐसी गाथाएँ हैं जिनमें संवादों की ही प्रधानता है और कथानक अत्यन्त गौण है। फिर भी इतना कथानक तो उनमें भी अवश्य ही है कि वाद-विवाद में विजयी होने पर ही साधक अपनी प्रेयसी को पाने का अधिकारी वनता है भले ही यह वाद-विवाद पूर्णतया धार्मिक आधार लेकर चला हो। किन्तु इन दोनों ग्रंथों में कथानक की कहीं गुंजाइश नहीं। अतः हम इन ग्रंथों की पद्धति को नाथ सम्प्रदाय की चलती आयी परम्परा के अन्तर्गत रखेंगे।

संत रोहल ने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया छन्दों एवं पदों के माध्यम से गुरु-शिष्य एवं साधक तथा हठ-योग साधना के चक्रों के अधिष्ठाता देवताओं के संवाद के रूप में वड़ी कुशलतापूर्वक आत्मज्ञान के गूढ़ स्वरूप को सर्व-साधारण के लिए सहज सुलभ करने का सफल प्रयत्न किया है।

गुरु एवं ज्ञान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए संत रोहल ने शास्त्र मन-प्रवोध में सृष्टि के तत्व को स्पष्ट करने के उपरांत मन और चित्त के अन्तर को समझाया है। संत रोहल ने मन को मायाधीन वताया है और मन के कुटुम्व के विस्तारपूर्वक वर्णन के उपरांत चित को वुद्धि का पुत्र वताते हुए उसके कुटुम्व का वर्णन किया है। एक ही देह रूपी नगरी में दो राजाओं—मन और चित्त के कारण जो संघर्ष छिड़ा हुआ है, वह किस तरह शान्त हो यही चिंता उसके सामने है :—

अपने स्वारथ खींचते, कोई न माने हार।
रोहल झगड़ा किमि हटे, दो पुरुषां इक नार॥[१]

चित्त इस अवस्था को देखकर अपनी माता वुद्धि की शरण में जाता है उसे त्रिकुटी के तट पर अमरपुर-निवासी साखी के पास जाने का आदेश देती है :—

---

१. शास्त्र मन प्रवोध—पद ४५

बुद्धि उवाच—

त्रिकुटी तट ऊपर बसे, अमरापुर को गाम ।
तहाँ विराजे देवता, साखी ताको नाम ।।
जागृत सपन ससूपती, ताको साखी एक ।
जाके भेट्यो सुख मिले, भाजें दुःख अनेक ।।

चित्त ने जाकर साखी के सामने अपनी शिकायत पेश की कि शरीर नगरी में मन राजा बन बैठा है, और उसकी कोई नहीं सुनता। साखी चित्त को आत्म रूप होने का ज्ञान देता है और उसी आत्म तत्त्व के दर्शन की ओर अग्रसर करता है पर शिष्य की शंकाएँ बनी हुई हैं। थोड़ा सा संवाद देखिये जिसमें कवि ने बड़े सहज भाव से साधारण व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण किया है और समाधान भी प्रस्तुत किया है :—

शिष्य उवाच—

किस विधि भेटूँ आतमा, भाखूँ अमृत बैन ।
सब घट आतम राम है, किस विधि समझूँ सैन ।।
करि किरपा मो पे कहो, मिलन अड़िगा होय ।
कहु तैसी होवे जथा, बात बतावो मोहि ।।

गुरु उवाच—

आतम भेख अनेक है, सब घट एकौ नाम ।
जो तेरे दिल में बसे, सो जप आतम राम ।।
और देव सब छाँडि दे, पहले सुमिरो आप ।
पांच तत्त गुन तीन के, मिट जावें संताप ।।
पांच तत्त गुन तीन में, जब लग तुमरी दौर ।
तब लग संसा ना मिटे, कबहुँ न पावे ठौर ।।
जब लग आतम ना मिले, तब लग सरै न काज ।
चलो तो भेटें आतमा, अवसर बीत्यो आज ।।

शिष्य फिर भी अपनी कठिनाइयों का वर्णन करता है। साखी उसे योग मार्ग के चक्री के विभिन्न देवताओं के पास ले जाता है और चित्त सबसे अमर पद पाने की आशा व्यक्त करता हुआ हर स्थान से साखी के आदेश से गुण ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ता है। यहाँ महादेव और चित्त का कुछ संवाद प्रस्तुत है :—

महादेव तब गोलिया, सुन हो साखी चित्त ।
अम्मर पद तब पाइये, जीवत मरना नित्त ।।

चित्त उवाच—

किस विधि जीवन मरन हैं, करि किरपा कहुँ मोय ।
तुम जैसा कोई देवता, और ना दूसर कोय ।।

महादेव उवाच—

अमर पंथ हम कहत हूँ, सुन तूँ साखी चित्त ।
ओ हं सो हं समझते, पीछे आनन्द नित्त ।।

चित्त उवाच—

ओ हं सो हं तब लगे, जब लग जिव घट मांहि ।
देह पड़े भवजाल में, पीछे सुमिरूँ काहि ।।

महादेव उवाच—

जितनी हमरी पहुँच थी, सकल कही अब तोहि ।
अमर सदा प्रभु आप है, जो तुम पूछो मोहि ।।

साखी उवाच—

इहां सुँ इक गुन सीख ले, शिव की शक्ति विचार ।
जनम मरण का भेद यह, कह साखी निज सार ।।

इस तरह विभिन्न स्थानों से साखी चित्त को ले जाकर अन्त में इस निर्णय पर पहुँचाता है :—

ऊही मन है, ऊही चित है, ऊही साखी ऊही जीव ।
ऊही आतम, ऊही परमातम, ऊही ईश्वर ऊही सीव ।।
एक उसी के नूर सूँ, दीसत सारो नूर ।
रोहल एकै रमि रहिया, ठाम ठाम भरपूर ।।
जो कोउ मन परबोध कूँ, पढ़े सु अच्छी रीति ।
मन-चित का झगड़ा मिटे, मन आवे परतीति ।।
जो कोउ मन परबोध कूँ, सुने विचारे मांहि ।
दिल दरिया भीतर रहे, निकसन की गम नांहि ।।

शास्त्र अद्भुत ग्रंथ में भी कवि ने इसी प्रकार गु[रु] शिष्य में प्रश्नोत्तर पद्धति के माध्यम से अनुभव एवं आत्म ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट किया है। आरम्भ से ही एव उदाहरण प्रस्तुत है :—

प्रश्न—

सिष्य कह्यो गुरु आपने, तुम जैसा नहिं और ।
हमकूँ इक शंका परी, गुरू बतावो ठौर ।।

[शेष पृष्ठ ३८९ पर देखि[ए]

साहित्य में प्रयुक्त मुक्तामणि

श्री आनन्दमङ्गल वाजपेयी

रत्नगर्भा धरती के अङ्क में अनेक प्रकार के दीप्तिमान रत्न विद्यमान है। यद्यपि उनका अस्तित्व मिट्टी-पत्थर के सिवा और कुछ नहीं है परन्तु उनकी चमक वैभवशाली सम्राटो तक की आँखों मे चकाचौध पैदा करती रही हे। अल्पसंख्या में उनकी प्राप्ति ही महार्घता का कारण है।

भारतीय साहित्य मे जिस रूप मे मुक्ता-मणियों का वर्णन उपलब्ध है, उससे यही सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत के साम्राज्यकालिक एवं सामन्तयुगीन विलासमय जीवन में दीप्ति लाने का काम बहुविध रत्नों ने ही किया है। राजा, सामन्त, श्रेष्ठी और सम्पन्न नागरिक स्वर्ण तथा रत्नों से अपना वैभव प्रदर्शित करते थे। राजाओ तथा सम्राटों के मुकुट में जगमगाते हुए हीरे अप्रतिम प्रभामण्डल की निर्मिति करते थे।[1] वे भुजाओं मे बाजू पर रत्नानुविद्धि अङ्गद [2] तथा कलाई (मणिबन्ध स्थान) पर मणि बाँधते थे। उनके प्रासादों के फर्श में भी इन्द्रनील मणियाँ भास्वर हुआ करती थी।[3] परस्पर स्नेह-प्रदर्शन हेतु अथवा राजनीतिक कारणो से वे 'रत्नोपहार' भी दिया करते थे।

संस्कृत साहित्य में इन विविध रत्नों का विशद वर्णन मिलता है। स्वतन्त्र रूप से इनका शास्त्रीय विवेचन भी हुआ है। रत्न परीक्षा, शुक्र-नीति, अर्थशास्त्र (कौटिल्य का) अभिलषितार्थचिन्तामणि आदि इस सन्दर्भ के आकर ग्रन्थ है। इन्हीके आधार पर साहित्य मे प्रयुक्त मुक्ता-मणियों का रूप-परिचय अत्यन्त संक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

अ—मुक्ता

'मुत्तिय' और 'मोती' 'मुक्ता' शब्द के विकास है। 'मोती' नाम लेने से श्वेत रँग के ओपवाले मुक्ताओं से ही मुख्यतया तात्पर्य होता है। पौराणिक विश्वास है कि जब सीपी के मुँह मे स्वाति का जल पड़ता है, तो वे बूंदें मोती बन जाती है। परन्तु सीपी के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी मोती फलते है, ऐसा विद्वानों का मत हे। वे स्थान हैं— हाथी, वाराह, मछली, सर्प तथा मेढक के[1] शीर्ष भाग और मेघ, शङ्ख, शुक्ति (सीपी) बाँस के गर्भस्थान। पुराने हाथी के मस्तक मे फलनेवाले 'गजमुक्ता' कहे जाते है। वस्तुत. यह कल्पना-मात्र है। व्यवहार मे हाथी के मस्तक से मोती निकलते कभी नही देखे गये, न ऐसे प्रयोग ही सफल हुए।[2] मेघ धारासार वर्षा के साथ मोतियों की भी वर्षा करते है। राजा सोमेश्वर देव का कथन है कि वे मोती मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। आकाश से धरती पर गिरने के बीच मे ही देवता उन्हे ले लेते हैं। ये मोती सूर्य की प्रभा जैसे चमकदार होते है।[3] वाराह के मस्तक मे मोती होते हे जो उसकी दाढ के समान चमकते है। ये दुष्प्राप्य है।[4] शङ्ख से उत्पन्न मुक्ता ओले जैसी ओपवाले होते हे।[5] मोतियो मे ये सर्वाधम माने जाते है।[6] तिमि मछली के शीर्ष भाग मे मोती होते है। वे गुञ्जाफल के आकार के तथा मन्दकान्तिवाले होते है। इन्हे कोई पुण्यवान् ही पाता है।[7] बाँस के मोती का आकार-प्रकार अज्ञात है। उसमे मोती होता है, यह गणना मात्र है। सर्प के पास मणि होती है, यह बात प्रसिद्ध है। उसकी मणि को राजा सोमेश्वरदेव मुक्तावर्ग मे ही रखते है। यह मौक्तिक वर्तुलाकार रम्य नीलाभ और विशद चमकवाला होता है। यह अत्यन्त दुर्लभ है।[8] मेढक के शीर्षभाग मे हल्के पीले रग का मुक्ता आचार्य मुद्गल की कृपा से इन पंक्तियो के लेखक को भी देखने को मिला है। वे अपनी तन्त्राचार की

१—रघुवंश, ६।१९।

२—वही ६।१३।

३—कादम्बरी, एक अध्ययन (वासुदेवशरण अग्रवाल) ६।२३।

१—अभिलापितार्थचिन्तामणि १।२।४२६ हिन्दी साहित्य की भूमिका, कवि प्रसिद्धियाँ, पृ० २६२।

२—कालिदास ग्रन्थावली (सीताराम चतुर्वेदी) परिशिष्ट, पृ० १४५।

३—अभिलषितार्थचिन्तामणिः, १।२।४२७,४३०।

४—वही—१।२।४२६ तथा ४३२।

५—वही—१।२।४३५।

६—गरुणपुराण—अध्या० ६९।४।

७—अभिल०—१।२।४३३।

८—वही—१।२।४३१।

सिद्धियों से सर्पमणि देख सकने में भी समर्थ है परन्तु उनके साथ रहने पर भी मुझे वह कभी नहीं दिखाई पड़ी।

इन सभी मुक्ताओं में शुक्तिज मोती ही सुलभ है। ये मोती सिंहल, चारवाटक, पारशीक के समुद्र में[१] तथा कवियों द्वारा वर्णित ताम्रपर्णी नदी में मिलते हैं।[२]

मोतियों का उपयोग हंस[३] तथा मछलियों को चुगाने[४] और मोती-माला बनाने में वर्णित किया गया है। इनके गुणदोष का वर्णन भी मिलता है। मोती पर मछली की आँख का चिह्न हो, तो उसे धारण करने से पुत्रनाश की आशंका होती है।[५] दीप्तिहीन मोती से दारिद्र्य, मूँगे जैसे लाल मोती से मृत्यु, त्रिकोण के चिह्नवाले मोती से सौभाग्यक्षय, दीर्घ मोती से बुद्धिनाश तथा छेदवाले मोती से निरुद्योग होने की आशंका होती है।[६] इन दोषों से रहित निर्मल, चन्द्रविम्ब जैसा स्निग्ध, व्रणरेखा-विहीन अस्फुटित मोती प्रशस्त होता है।[७] रत्नविद् मोती की आभा पीली, श्वेत, शहद के रंग की तथा नीली चार तरह की मानते हैं। पीत मोती लक्ष्मीप्रद, मधुकान्तिक बुद्धिवर्धक, शुक्ल मोती यश प्रदान करनेवाला तथा नीलाभ मोती सौभाग्य-विनाशक होता है।[८]

आ—मणि-माणिक्य

हीरा—इसे 'व्रज्र' भी कहते हैं। महात्मा सूरदास ने बालकृष्ण के गले में पहने वज्र और केहरी-नख के कँठुले का वर्णन किया है—"कँठुला कंठ वज्र-केहरि-नख राजत है सखि! रुचिर हिए।" यह पाषाणखण्ड अत्यन्त कठोर होता है। 'सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा' उक्ति संगत ही है।

हीरे श्वेत, रक्तिम, पीले और काले रंगोंवाले होते हैं। छः कोनेवाला, हल्का, नुकीला, कान्तिमान निर्मल हीरा प्रशस्त माना जाता है। मलिन, बुँदकियोंवाला, काक पद के चिह्नवाला हीरा अच्छा नहीं माना जाता।[१] कोहनूर हीरा काकपद के चिह्न से युक्त था। जिसके पास रहा, उस पर विपत्ति ही लाता रहा। शास्त्रों के अनुसार हीरा वैराकर तथा सौवीर स्थानों पर मिलता है। मैसूर की सोने की खानों में सम्प्रति यह मिलता है।

पद्मराग—इसकी कान्ति रक्तकमल जैसी होती है।[२] इसे 'लाल' भी कहते हैं। पद्मराग, मणि तीन प्रकार की होती है पद्मराग सौगन्धिक, कुरुविन्द। सौगन्धिक मणि की कान्ति हल्की रक्तवर्ण की होती है।[३] कुरुविन्द की कान्ति सिन्दूर, लोध्रपुष्प, गुमची और किंशुक जैसी होती है।[४] स्निग्ध आभावली गुरु तथा निर्मल पद्मराग मणि धारण करने से आयु, धन तथा धर्म की वृद्धि होती है।[५] भेदी गई, श्वेत दुग्ध जैसे डोरे से लिप्त (शालग्राम से विग्रह प्रायः ऐसे होते हैं।) शहद की बूंद जैसी कान्तिवाली धूम्रायित पद्मराग मणि दुर्भाग्यसूचक है।[६]

राजा लोग इसे न केवल धारण करते थे प्रत्युत अपने आसनों आदि पर जड़वाते भी थे।[७] आजकल प्लास्टिक के रंग-विरंगे पल्लव-पुष्प मिलते हैं। उत्सवों पर राजाओं के यहाँ पद्मराग आदि मणियों को काट-छाँटकर फूल-पत्तियों का रूप प्राचीनकाल में दिया जाता था और इस तरह वातावरण में चकाचौंध पैदा की जाती थी। तुलसीदास ने रामचरितमानस में ऐसा ही वर्णन किया है—

> **हरित मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।**
> **रचना देखि विचित्र अति, मनु बिरंचि कर मूल॥**

यहाँ फूलों की लाली प्रकट करने हेतु 'पद्मराग' का प्रयोग हुआ है।

इन्द्रनील—इसे 'नीलमणि', 'नीलम' आदि भी कहते हैं इसे दूध में डालें तो वह नीलाभ हो जाता है।[८] इसकी प्रभा नीलकमल, अतसी पुष्प, शिवकण्ठ, विष्णुदेह, तथा

१—वही—१।२।४३६, ४३७।
२—काव्यमीमांसा—१४।
३—कवि-प्रसिद्धि है। द्रष्टव्य, 'रसज्ञरंजन' में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का 'हंस का नीर-क्षीर विवेक' लेख।
४—पृथ्वीराज रासो, संयोगिता प्रसंग।
५—अभिलाषितार्थचिन्तामणि, १।२।४४५।
६—वही—१।२।४४७, ४४८, ४५१, ४५२।
७—वही—१।२।४५५, ४५६।
८—वही—१।२।४५९।

१—वही—१।२।४०९।
२. अभिलषितार्थचिन्तामणि, १।२।४८९।
३. वही—१।२।४९३।
४. वही—१।२।४९१।
५. वही—१।२।४८८।
६. वही—१।२।४८२, ४८४, ४८६।
७. कादम्बरी, एक अध्ययन ६।२३।
८. वाचस्पत्यम् भाग २ पृ० ९४९।

भ्रमरपक्ष के समान होती है।[1] यह मणि सिहल के मध्य रावण गगा के तटवर्ती पद्माकर नामक आकर (खान) से प्राप्त होती है।[2] जिसपर अभ्रक का पटल होता है, वह इन्द्रनीलमणि धारण करने से आयु क्षीण होती है, शर्करा जैसे कणोंवाली दारिद्रय और देशत्याग की सूचक है। भिन्न मणि परिवार-विनाश की आशका पैदा करती हे।[3] जिसके मध्य मे मिट्टी हो, वह कुष्ठादि का कारण तथा अश्मगर्भा (जिसके गर्भ मे पत्थर हो) नीलम अनेक आपत्तियों का हेतु है।[4] इन दोषों से मुक्त नीलमणि धारण करने से शनि का प्रकोप शान्त होता है। राजप्रासादों के विशिष्ट स्थानों का फर्श 'कादम्बरी' मे इन्द्र-नीलमणियों से युक्त वर्णित किया गया हे और इन्द्रनील के झरोखो की सृष्टि भी की गई है।[5] जयशकरप्रसाद ने समस्त आकाश को इन्द्रनीलमणि से बने प्याले के रूप मे चित्रित किया है :—

इन्द्रनीलमणि महाचषक था सोमरहित उलटा लटका।
आज पवन मृदु साँस ले रहा, जैसे बीत गया खटका॥[6]

मरकत—इसे पन्ना भी कहते है। यह मणि दूर्वाकुर शिरीष पुष्प, मोरपंख, शैवालवल्लरी, जुगनू के पख जैसी आभा एवं वर्ण वाली होती है।[7] इसीलिए इसे 'हरित-मणि' भी कहा गया है। शान्तिहीन, रुक्ष, शर्करायुक्त फूटी हुई मरकतमणि अशुभ हे।[8] प्रशस्त मरकतमणि पास रखने से सभी प्रकार के विषों का प्रभाव नष्ट होता है।

'कादम्बरी' मे बाणभट्ट ने 'मरकतशिला' का वर्णन किया है। कादम्बरी के लिए बने 'कुमारीपुर प्रासाद' मे एक लतामण्डप के मध्य यह शिला (हारीतहरित) रखी हुई थी। उसके एक ओर झरना प्रवहमान था, जिसकी फुहारे मरकतशिला पर बैठे व्यक्तियो को सुख प्रदान करती थीं।[9]

स्फटिक—इसे बिल्लौरी पत्थर कहते है। यह उज्ज्वल पारदर्शीमणि होती है। इसकी भी सिल्लियाँ (शिलायें) निकलती है। 'कादम्बरी' मे कुमारी अन्त.पुर प्रसग मे ही 'स्फटिकशिला' का भी वर्णन है, जिस पर बैठकर चन्द्रापीड ने भोजन किया था।[1] तुलसीदास ने भी "बैठे फटिकशिला अति सुन्दर" लिखकर इसकी पुष्टि ही की है।

स्फटिकमणि दो प्रकार की होती है—सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त। सूर्य की किरणों के स्पर्शमात्र से आग उगलने वाली सूर्यकान्त है और चन्द्रकिरणो के स्पर्श से सुधा द्रवित करनेवाली चन्द्रकान्त कही जाती है। चन्द्रकान्त इस कलि-युग मे अत्यंत दुर्लभ है।[2] स्फटिक मणियाँ हिमालय, सिंहल विन्ध्य, तापीतट आदि स्थानों पर उत्पन्न होती हे।[3]

पुष्पराग—इसे 'पुखराज' भी कहते है। यह रत्न हल्के पीले रंग का स्वच्छ कान्तिवाला होता है।[4] यह सौभाग्य वर्धक है।

वैदूर्य—यह मणि विदूर नामक पर्वत पर उत्पन्न होती है।[5] इसका रग धूम्रायित बादलों के सदृश्य होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये मणियाँ काली, पीली[6] तथा बिडाल के नेत्रों जैसे रगवाली[7] होती है। पम्पा सरोवर के हल्के धुँधलके निर्मल जल को आदिकवि वाल्मीकि ने 'वैदूर्य-विमलोदका' कहकर वर्णित किया है।

गोमेद—यह रत्न शहद के बूँद या गोमूत्र जैसी आभा वाला होता है।[8] वाचस्पत्यम् मे इसे लोकप्रसिद्ध 'लसुनिया' कहा गया हे।

प्रवाल—इसे 'विद्रुम' 'मूँगा' आदि भी कहते है। राजा सोमेश्वरदेव के अनुसार समुद्र के बीच एक वल्लरी विशेष होती है। उसका नाम है—विद्रुम। प्रकृति से ही वह पत्थर फलती है। ये पत्थर ही गोल चिकने लाल रग तथा मन्द कान्तिवाले मूँगे होते है।[9] कवियो ने रमणियों के अधर प्रवाल से उपमित किए है।

× × ×

इस प्रकार मुक्ता-मणियो के स्वरूप और उनकी महत्ता से किंचिद् अवगत हुआ जा सकता है। हमारे सास्कृतिक जीवन मे इनका बहुत प्रभुत्व रहा हे। साहित्य मे उसी का चित्रा-कन है, अतएव अपने सास्कृतिक जीवन और साहित्य की व्याख्या के लिए इन रत्नों के विषय मे जानना परमावश्यक हो जाता हे।

---

१. अभिल०—१।२।५०४, ५०५, ५०६।
२. वही—१।२।४९४।
३. वही—१।२।४९७, ४९८, ५००।
४. अभिल०—१।२।५०१, २०२।
५. कादम्बरी : एक अध्ययन, ६।२३; ४४, ६१।
६ कामायनी, आशासर्ग
७ अभिल०—१।२।५१८, ५१६, ५२०।
८ वही—१।२।५११, ५१२, ५१३।
९. कादम्बरी : अध्ययन पृ० ३६९।

---

१. वही—पृ० ३७०।
२. अभिल०—१।२/५२४, ५२५, ५२६।
३. वही—१/२/५२२।
४. वही—१/२/५२८।
५. वाचस्पत्यम्—भाग ६, पृ० ४९७३।
६. अभिल०—१/२/५२९।
७. वाचस्पत्यम्—भाग ६/ पृ० ४९७३।
८. अभिल०—१/२/५३०।
९. वही—१/२/५३१-५३२।

वधिर-विलापम्

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

[श्रीवास्तवजी मध्यप्रदेश के पुराने और वरिष्ठ साहित्यकारों में है। केशवदास की तरह उनका भी अब दुर्भाग्य है कि वे "बाबा' कहलाने की श्रेणी में आ गये है। वे वरिष्ठ ही नहीं, उच्च साहित्यकार भी हैं—उनकी ऊँचाई सवा छः फुट के आसपास है। ऊँचाई में ऊँट का बड़ा नाम है। मनुष्य जैसा है, जग जाहिर है। इसके विपरीत ऊँट हृदय का निर्मल, निष्कपट, संतोषी, कष्टसहिष्णु, उपयोगी, कर्मठ और चार सौ बीस तथा दम्भ से एकदम दूर। श्रीवास्तवजी अपने को शायद ऊँट से अधिक निकट समझते है, और सम्भवतः इसलिए उन्होंने अपना उपनाम 'ऊँट' रख लिया है। उनके ऊँट-सुलभ सुरूप के सम्बन्ध में हम "पूरे होशहवास में और खुदा को हाजिर-नाजिर जानकर" उनकी "कमर पतली, सुराहीदार गर्दन" की पूरी तरह 'ताईद' करते हैं। जैसा कि उनके नाम से प्रकट है, वे कायस्थ-कुल-भूषण है। पुराने युग में आभिजात्य वर्ग के कायस्थ अपना "शीन क़ाफ़" दुरुस्त रखने का बड़ा ध्यान रखते थे। 'क़ाफ़' के बारे में तो हम नहीं जानते क़िन्तु 'शीन' को दुरुस्त रखने की परम्परा बनाये रखने का वे सफल या असफल प्रयास अवश्य करते है। इधर कुछ वर्षो से उनकी श्रवण-शक्ति 'फेल' हो गयी है। वे वज्र बहरे हो गये है। अब किसीकी बात नहीं सुनते, पर अपनी बात कहने में चूकते भी नहीं। अगस्त की 'सरस्वती' में उन्होंने पढ़ा कि महाकवि वल्लतोल वृद्धावस्था में बहरे हो गये थे। उन्हें अपने 'गोत' की यह "बढ़त" जानकर यों सुख हुआ "ज्यों बड़री अखियां निरखि आँखिन को सुख होत।" महाकवि वल्लतोल क्या बहरे हुए, श्रीवास्तवजी को वधिरत्व के रूप में "स्टेटस सिम्बल" मिल गया—उनकी पद-मर्यादा बढ़ गयी। उसी आनन्दातिरेक में उन्होने यह लेख लिख डाला। हम इसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं, और आशा करते है कि हमारे रसज्ञ पाठको को भी उसके पढ़ने में आनन्द मिलेगा। सूरदास और मिल्टन ने अपनी नेत्र-ज्योति के चले जाने पर भगवान् के विधान को जिस समर्पण-भावना से स्वीकार किया था, कुछ-कुछ उसी भावना से श्रीवास्तवजी ने भी अपनी वधिरता को ग्रहण किया है। भगवान् की दी हुई वस्तु को प्रसन्नतापूर्वक, बिना किसी शिकायत के और अधीनता से—उसे भगवत्-प्रसाद मानकर—ग्रहण करने के लिए जिस समर्पण की भावना और अटूट विश्वास की आवश्यकता है वह विरले लोगों ही में मिलती है। उसकी एक झलक हमारे मित्र श्रीवास्तवजी में अपनी चमक दे रही है।

सम्पादक सरस्वती।]

अगस्त, १९६९ की 'सरस्वती' मे यह पढकर बड़ी शांति मिली कि मलयाली भाषा के महाकवि, श्री नारायण मेनन वल्लतोल वृद्धावस्था मे वधिर हो गये थे।

मैं भी कवि हूँ। महाकवि केशवदास को ज्ञात नही था कि मुझसे कवियों को 'गटर क्लास' कवि कहा जाता है। इसलिए उन्होने 'कवि खद्योत' कह दिया। इससे क्या? बिरादरी से तो खारिज नही किया। चाहे बारह बिस्वे हों, चाहे बीस बिस्वे; है तो दोनों ब्राह्मण ही। मेरे कवि होने का एक अकाट्य प्रमाण और हे। ४१ साल पुस्तकें वेचकर केवल एक कवि ही मुझसा फटेहाल रह सकता है; जिसके सिर पर फूस का भी छप्पर नही।

बकौल शायर—

'हैफ़ के यह उम्र काटी हमने मज़मूँ बाँध-बाँध।
ऐसी बन्दिश से तो बेहतर था कि छप्पर बाँधते॥

मेरे कवि होने मे एक खराबी आ गयी, अन्यथा एक लाख का पुरस्कार प्राप्त कर, सब चिन्ताओ से मुक्त हो जाता। मै सुरूप हूँ, 'कुरूप' नही। मेरे सुरूप होने का अकाट्य प्रमाण यह है—

कमर हमारी लचलची, गला सुराहीदार।
कहैं असुन्दर 'ऊँट' को वे है निपट गँवार॥

यों तो "जिसकी आँखों ने देखा हे 'ऊँट' सुरूप बाधा" वाली बात है, परन्तु कम-से-कम 'कमर प[तली] सुराहीदार गरदन' की ताईद तो 'सरस्वती' के सम्मान[नीय] सम्पादक भी कर सकते हे। उस एक अदद की बात [छोड़] दीजिए जो ८ जून, सन् १९२४ से कहती आ रही [है] 'जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपत भेल' गला नही छोड़ती।

बात कहाँ-से-कहाँ फिसली जा रही हे। महा[कवि] वल्लतोल के बारे मे कहा जाता है कि वृद्धावस्था मे उ[न्होंने] वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया। वाल्मीकि से ... करने के लिये भगवान् ने उन्हे दड दिया।

मैं इसे ठीक नही मानता। कम-से-कम मेरे साथ

वात नहीं हुई। आराधक में आराध्य का कोई दोप आ जाय, तो आश्चर्य नहीं। अन्वेषक शोध आदिकवि बड़ी घिसी हुई रकम थे। बुढ़ापे में अवश्य हो गए होंगे। उनकी आराधना से वल्लतोलजी को गुण प्राप्त हुआ।

विना अकाट्य प्रमाण दिये मेरी कुछ कहने की आदत नहीं है। स्व० भाई केशवप्रसादजी पाठक ने उमर याम की आराधना की। हिन्दी-साहित्य में हालावाद , रुवाई छन्द आया। साथ ही पाठकजी में उमर याम का वह गुण आ गया कि नाली-भूषण 'ऊँट' को पड़ा—

केसवा देत कलेसवा सब कहँ घोर।
करि-करि कै मधुपनवाँ, उठतहिं भोर॥

आदरणीय पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने भगवान् की आराधना में महाकाव्य 'कृष्णायन' प्रणीत किया, का परिणाम यह हुआ कि अपने ही कुटुम्ब, अर्थात् स के विध्वंसहेतु लँगोट कस ली, और नाली-भूपण को ा पड़ा—

राजनीति की खाड़ी है, चुपचाप मिसिरजी वहे चलो।
पार लगो तव पार, अभी तो दिखता किनारा कोई नहीं॥

डॉक्टर भवानी प्रसादजी तिवारी ने गुरुदेव की आरा- में गीतांजलि का अनुगायन किया और जन, अच्छी- े सम्पादकी छोड़, गुरु वन गये और डॉक्टर भी, तव नाली-भूपण को कहना पड़ा—

वड़े मजे को साज है, कलयुग को या साज।
कविता दै डाक्टर बनो, पुड़िया दै कविराज॥

मिर्जा 'ग़ालिव' का कलाम पढ़ते-पढ़ते जवानी से बुढ़ापा ा। अंधेरे में दूर की जो सूझी तो टीका दे मारी— कवि 'ग़ालिव' की गजलें।" पुरस्कार में वधिरता की। उर्दू दीवान में मिर्जा ने एक ही शैर कहा है—

'वहरा हूँ, मैं तो चाहता हूँ दूना इल्लेफात।
सुनता नहीं हूँ वात मुकर्रर कहे वगैर॥'

सुनते हैं फारसी में उन्होंने पर्याप्त रुदन-विलाप किया उर्दू में मित्रों को जो पत्र लिखे उनमें वहरे होने की, ों में ज्योति की कमी की, दुर्वलता की चर्चा है। पर ा ने ऐसी हास्य-रसज्ञता, ऐसा 'सेन्स ऑफ ह्यमर' पाया था कि कठिन-से-कठिन संकट में भी अपनी ठिठोली से दुख हल्का कर लिया करते थे। जैसे वहरापन दिया, वैसे ही भगवान् मुझे थोड़ा-सा वह 'सेन्स, भी दे देते तो क्या न हो जाता! इधर रोते हैं कि हाथों में अव सत्त नहीं रह गया, उधर कहते हैं :—

'जुंविश नहीं हाथों में, पे आँखों में तो दम है।
रहने दो अभी साग़िरो-मीना मेरे आगे॥'

मिर्जा का वधिर रहे आना तो समझ में आता है, परन्तु इस वैज्ञानिक युग में वल्लतोल जी क्यों वधिर रहे आये? सुनने का यंत्र क्यों नहीं ले लिया? वे तो योरोप भी हो आए थे। वहुत अच्छी चिकित्सा करवा सकते थे— ऑपरेशन तक। या वहुत अच्छा यंत्र ले सकते थे। अपनी वात वे जानें। मेरी वात यह है कि कानों में कोई खरावी नहीं, स्नायुओं में शिथिलता आ गयी है, 'नर्वस डेफनेस' है। यंत्र ऐसे वधिर के लिये वेकाम हैं। कदाचित् २५-३० प्रतिशत सुनाई पड़ने लगे। मंहगी चीज। चार सौ वास से कम की नहीं। हिम्मत कर जाता, यदि दो-तीन मास में वेकाम सावित होने पर २५-३० % मूल्य घटाकर कंपनियाँ यंत्र वापस ले लेने को तैयार होतीं। सव कंपनियाँ कहती हैं कि वेकाम हो तो किसी दूसरे वहरे को वेच लेना। वाइविल की तीन वीसीदस की अवस्था में मक्खियाँ तो हाँक नहीं पाता, वहरा कहाँ तलाशते फिरूँगा?

उस पर एक कटु अनुभव और है। नकली दाँत लगवाए, नकद १२५ रु० देकर। वैठने में वड़ा कष्ट होता है। वैठ भी गये। छः-सात महीने भोजन भी चवाया। फिर ढीले पड़ गये। डॉक्टर कहते हैं कि तुम दिन-प्रति-दिन दुवले होते जा रहे हो। मोटा कव था? जॉन गुंथर ने लिखा था कि भारत में सवसे दुवले सज्जन कायदे-आजम जिन्ना साहव हैं। पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने कहा कि तुम्हें न देख पाने के कारण गुंथर गल्ती कर गया। जिस परिमाण में शरीर दुवला होता है, उसीमें डाढ़ें भी। डॉक्टर कहते हैं कि डाढ़ें वाल वरावर भी सिकुड़ी तो नकली दाँत ढीले हो ही जावेंगे। यह चपत तो सही। चार सौ वीस का हथौड़ा कैसे सँभलेगा? अव सव व्यर्थ है।

वक़ील मिर्ज़ा 'ग़ालिव' :—

'दमे-आखिरी वरसरे राह है।
अजीजो! अव अल्लह ही अल्लाह है॥'

मृत्यु पहुँची। कहा, 'चलो, उत्तर दिया—नहीं ? जाएँगे। न कोई सूचना, न नोटिस, बड़ी आ गयीं—चलो !' मृत्यु ने कहा—'भूल तो हो गयी। जाती हूँ, भाई ! अभी तो तुम्हारे मोती जैसे दाँत रखे हैं। कैसे चल सकते हो ?' उत्तर—'नजर नहीं लगा सकती। असली अमेरिकन है !' 'आँखें तो ठीक है ?' उत्तर—'बड़े शक्तिशाली लेन्स के चश्मे से।' 'और कान ?' उत्तर—'यंत्र कान के पीछे छिपा रक्खा है।' तब मृत्यु ने कहा—'अब और कितने नोटिस चाहते हो ? चलें-चलो, चुपचाप।'

जब मित्र ही सहानुभूति नही करते, तब मृत्यु ही क्यों करे ? स्व० पं० बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' को विरह-विलापम् लिखा तो व्यंग्योक्ति में उत्तर मिला—'जैसे भगवान् यह चाहते थे कि सूरदासजी बाहर न देखें, भीतर देखें, वैसे तुम्हारे बारे में चाहते हैं कि बाहर की न सुनो, भीतर की सुनो। हिप-हिप-हिप हुर्रे !'

ऐसा जी जला कि मैंने यह कतृअ रचकर भेज दिया :—

> **मैं क़तरे से दरया तोल लेता हूँ।**
> **और गँव से भी दो बोल बोल लेता हूँ।**
> **फिर भी कोई राज़ रह गया बातिन,**
> **तो दिल की किताब खोल लेता हूँ॥**

एक बार पूज्य मामा वरोरकर, कविवर भाई नर्मदाप्रसाद खरे के यहाँ पधारे। मात्र वृद्धावस्था के कारण मुझे पास बिठा दिया गया। प्रवचन होता रहा। अंत में मैंने कहा—'मामा साहब, मैं कुछ नही सुन पाया।' पूछा—'क्यों ?' कहा—'बिलकुल बहरा हूँ।' हँसकर बोले—'आप बड़े भाग्यवान है। आज-कल सुनने के योग्य कोई बात नहीं कही जाती।' मैंने कहा—'वह तो मैं नही जानता, पर घर में लड़ाई अवश्य समाप्त हो गयी।'

डॉ० जान्सन से एक महिला ने पूछा—'आपने इतना बड़ा कोश अकेले कैसे बना लिया ?' उत्तर मिला—'वह तो मियाँ-बीबी के झगड़े के समान है। बात पर बात बढ़ती गयी, बतंगड़ हो गया।' जब गाली सुनाई पड़े और उलटी जाय, तब तो अनेक हों। यहाँ तो, बकौल स्व० कृष्णानन्द जी 'सोख्ता' :—

> 'कौन जाने, किस जगह रहता हूँ मैं।
> ख़ुद ही सुनता, और ख़ुद कहता हूँ मैं॥
> **ख़ुद ही दरया, ख़ुद ही तूफ़ां, ख़ुद ही मौज।**
> **आप ही अपनी तरफ बहता हूँ मैं॥'**

मान लिया कि सुनने लायक कोई बात नही होती, पर क्या आजकल सुनने लायक संगीत भी नहीं होता, और क्या मैं ही गुनगुनाने के लिए व्याकुल नहीं रहा करता ? संगीत सीखा नही। मेरे समय मे सीखने के कोई प्रावधान नही थे। मेरे समय में यदि लड़का गाने-बजाने की ओर झुकने लगता तो माँ-बाप कहते कि लौंडा हाथ मे गया, बिगड़ गया। आज जैसे प्रावधान है, वैसे उस समय होते तो मै माँ-बाप से कहता कि बिगड़ना तो मुझे [illegible] हालत में है, कम-से-कम संगीत ही सीख लेने दीजिए। अब जब सुनने के लिए जी मचलता है, तब सोचता हूँ कि क्या अन्धे हो जाना बहरे हो जाने से अच्छा नहीं होता ? एक ओर दाहिनी आँख कहती है कि वह साथ भी पूरी हुई जाती है, मुझमे मोतियाबिन्दु तेजी से बढ़ रहा है। दूसरी ओर बुद्धि कहती है कि बुढ़ापे में कोई पास तो यों भी फटकता नहीं। दिरमो-दाम हो तो तुम पर नहीं, चाभी पर सब की नजर अवश्य रहती है। (यहाँ तो मरने पर कर्ज देनेवाले रोएँगे।) अन्धे होने पर तो लिखने-पढ़ने का जो नाम-मात्र का सहारा रह गया है, वह भी समाप्त हो जाता।

लिखने-पढ़ने में मियाँ की दौड़ तुकबन्दी तक, जिसे नाम दे लेते थे 'गीत' का। जय हो मैया खड़ीबोली की ! वह गीत लिखने में प्राण ही निचोड़ लेती है।' वे दिन गये जब जय गंगे, जलधि-तरंगे; हरे राम, हरे कृष्ण विविध प्रकार से कहते जायँ, और गीत-पर-गीत बनते जायँ। अब तो कोई नवीन, कोमल भाव ढूँढ़ो। मिलता कहाँ है ? 'उस' का करम है, सुझा दे तो सुझा दे। तब उसे एक मीठी-सी पंक्ति में गूँथो, और गुनगुनाओ—सैकड़ों, हजारों बार—हफ़्तों, महीनों। तीन-चार छन्द हो जायँ तो रामजी की कृपा। इस जाँफ़िशानी के कारण भाई रामनाथजी 'सुमन' ने गीत लिखना ही छोड़ दिया।

गुनगुनाएँ अपना सिर ? अपने-आपके ही लिये बेसुरे हो गये हैं। योरोप के तानसेन, बीथोवन ३०-३२ साल की आयु में बधिर हो गये थे। ६०-६२ तक अमर संगीत देते रहे। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के सचिव, स्व० गणेश प्रसादजी द्विवेदी भरी जवानी में बधिर थे, पर चोटी के सितार-वादक थे। अनेक बार मैंने ही सुना है। वे अपने-

आपके लिये वधिर नहीं थे। यहाँ तो हरमुनियाँ मे जो टी-टीं, पीं-पी कर लेते थे, वह बेसुरी है ही; अपना गला ही अपने कानों के लिये बेसुरा है। कितना सुन्दर है यह 'नर्वस डेफनेस !' लाचार, तसल्ली देने के लिए नाली-भूषणजी ने कहा :—

गीत मर गये, मर जाने दो; प्रेम अभी तक नहीं मरा है।
सूख गई तन-मन की बगिया, विरह-कल्प-तरु हरा-भरा है।।

प्रश्न तो बाबा कबीरदास और उनकी कमली का हे। मीरा की — 'अब तो यह छूटै नहि क्योहू, लगी लगन बरियाई' का है। नाली-भूषणजी तो गीत छोड़ दें, गीत उन्हे छोड़ें तब न ? मिर्जा 'गालिब' रोजों को बहलाया करते थे—कभी कुछ खा लिया, कभी कुछ पी लिया। हम भी कभी उल्टा, कभी सीधा लिखकर गीतों की प्यास को बहलाते रहते है, यथा :—

एक गीत तो गाना होगा।

जाने के पहले ठाकुर को एक बिहाग सुनाना होगा।।
इससे क्या ? अब शब्द काँपते, शब्दों के अक्षर हिलते है।
ठाकुर के सम्मुख बैठे तो सब स्वर-ताल आप मिलते है।
फिर भी बिगड़े राग, बिगड़ जाए, वे इतनी बात जानते—
ऐसे में गाएगा जो, वह दिल से दरद-दिवाना होगा।।
एक गीत तो गाना होगा।।

इसके बोल बड़े सादे, पर इसकी धुन तो देखो-भालो।
चाहो तो तुम भी इस धुन में गाओ-नाचो, दुनियावालो !
थोड़े दिन को, अपना-सुपना, नदी-नाव-संयोग हो गया।
अबके बिछड़े क्या जाने, फिर कब, क्यों, कैसे, आना होगा।।
एक गीत तो गाना होगा।।

दुनिया तो चलती आई है, दुनिया तो चलती जाएगी।
बे-चोटी की है चुड़ैल यह, नहीं किसी के बस आएगी।
इसकी गली-गली छानी, पर कहीं न कोई सुखिया पाया—
दुख का राज खतम करके, अब सुख का साज सजाना होगा।।
एक गीत तो गाना होगा।।

क्या देखें ? किसको देखें ? बस आँख मूँद कर टेर लगाएँ।
अपने कानों भले न पहुँचे, उनके कानों तक पहुँचाएँ।
छोटे-बड़े, सभी को देते ठौर, सुर-मीरा के ठाकुर,
क्या चिन्ता ? यदि सबके पीछे अपना कहीं ठिकाना होगा।।
एक गीत तो गाना होगा।।

संवाद पद्धति की परम्परा

[पृष्ठ ३८२ का शेषांश]

उत्तर—

चेतन बहु रूप धरचौ, तामें फिर भूल परचो,
आपनो सरूप देख आप ही भुलानो है।
जोग जप तप करे, आपकी न समझ परे,
हीरो है अमोल सो तो कांच में बिकानो है।
केवल अविनाश हरि, मेरे मन संग परी,
तेरो निरबंध-रूप काहे को बँधानो है।
मैं तो इक बाजी रची, रोहल मत जान कची,
आप ही से आप खेलूँ जगत बहानो है।।

प्रश्न—

ना कछु करनी कर सकूँ, हम सूँ होवे ना जोग।
करि किरपा अस सिख ओ, अमृत रस को भोग।।

उत्तर—

दरपन माँहि न फेर कछु, फेर परचो मुख माँहि।
जैसा मुख करि देखिये, तैस दिखावत ताहि।
तैस दिखावे ताहि, जैस है रूप तुम्हारा।
ब्रह्म भावें तो ब्रह्म नहीं तो फिरता न्यारा।
रोहल भाव सफल फले, सत कर मानो ताहि।
दरपन माँहि न फेर कछु, फेर परचो मुख माँहि।।

इस तरह दोनों ग्रथ इसी प्रश्नोत्तर की पद्धति को अपनाकर ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने के भाव से लिये गये है जो निस्सन्देह यही नाथ सम्प्रदाय वाली गोरख बोध की परम्परा का अनुसरण है। अतः हम शास्त्र मन प्रबोध और शास्त्र अद्भुत ग्रंथ को उसी परम्परा की रचनाओं में स्थान देना उचित समझते है।
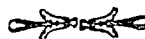
चन्द्रमा पर मनुष्य के चरण

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

चन्द्रमा पर दो पुरुष अन्तरिक्ष-यान की सहायता से उतरे—दो घंटे तक उसके धरातल से लगभग ३० सेर मिट्टी बालू-चट्टान आदि को बटोरते रहे। चन्द्रमा पर इन चीजों का वजन ५ सेर था, पृथ्वी पर ३० सेर हो गया—वजन में दोनों ग्रहों मे ६ गुना का अन्तर है। पृथ्वी का १४ दिन चन्द्रमा के एक दिन के बराबर होता है। विज्ञान ने इसे आज खोज निकाला और चन्द्रमास की हजारों वर्ष पहले रचना करते समय हमारे ऋषि यह जानते थे कि मर्त्यलोक का १५ दिन चन्द्रमा के १ दिन के बराबर है।

जो दो यात्री उतरे, यह उनके पूर्वजन्म का पुण्य प्रताप है। किन्तु वे भी ईश्वर का नाम लेकर गये थे और लौटने पर भी उन्होंने यही कहा कि "हम भगवान् के सहारे थे।" विज्ञान इस समूची यात्रा के कई रहस्यों की थाह नहीं पा सका हे और कई वैज्ञानिक कह रहे है कि कोई दैवी शक्ति सहायता कर रही थी। सबसे बड़ा रहस्य तो यह है कि जब दोनों यात्री उतरे एक क्षण के लिये एक परम सुन्दर प्रकाश पुंज सामने आया और विलीन हो गया। न तो वह कोई तारा था, न उल्का। मानो चन्द्रदेव स्वयं मानव लीला देख रहे थे।

इस चन्द्र यात्रा से चन्द्रलोक की सत्ता, उसकी शक्ति पर विश्वास पुष्ट होता है पर वहाँके देव प्राणी हम या हमारे यात्री कभी न देख सकेंगे। हमारे नेत्र इस योग्य नहीं हैं।

बचपन में हमें चन्दा मामा बड़ा प्रिय लगता था—इसलिये कि यह मामा था। कुछ बड़ा होने पर मैंने अपनी माता से पूछा कि चन्द्रमा से हमारा यह रिश्ता कैसे कायम हुआ। माँ ने बतलाया कि पृथ्वी हम सबकी माता है। चन्द्रमा पृथ्वी का छोटा भाई है। इसीलिए हम सबका मामा है। सम्भवतः इसी सम्बन्ध से पृथ्वी लोक के लोग चन्दा मामा से मिलने के लिए उतावले हो रहे है।

पर चन्द्रलोक की अमेरिका द्वारा "विजय" अथवा शुक्र पर सोवियत रूस का धावा यह कैसे सिद्ध करता है कि ग्रह-नक्षत्र की कोई सत्ता नही है। ग्रह नक्षत्र का पृथ्वीलोक या उसके प्राणियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अभी हाल में एक बच्चे ने भारत के उपप्रधान मन्त्री श्री मुरारजी भाई को पत्र लिखा कि क्या ग्रहों की पूजा करनी चाहिये? मुरारजी भाई तो बड़े आस्तिक हिन्दू हैं। संध्या गायत्री, हठयोग नियमित रूप से करते हैं। अतएव उनके उत्तर से आश्चर्य होता है। उन्होंने उस बच्चे को उत्तर दिया कि ग्रहों की पूजा नही करनी चाहिये। क्या यह उत्तर युक्तिसंगत है?

किसी वैज्ञानिक ने यह नहीं कहा कि हमारे समुद्रों में चन्द्रमा के प्रभाव से ज्वार-भाटा नही आता। २ लाख २६ हजार मील दूर बैठा चन्द्रमा पृथ्वी के समुद्रों में उथल पुथल कर सकता है तो ज्योतिष शास्त्र में वर्णित ग्रह-नक्षत्र का प्रभाव क्यों भ्रमात्मक है जब तक हम यह न मान लें कि जो दिखायी पड़ता है, वही सत्य है, शेष मिथ्या है तब तक चन्द्रलोक, सूर्यलोक आदि को मिथ्या कहना ही मिथ्या है। हमारा धर्म ही नहीं, अब बड़े-बड़े वैज्ञानिक हमें सिखलाते हैं कि स्थूल नेत्रों से दिखायी पड़ने वाली वस्तु से कहीं अधिक बलशाली तथा प्रभावशाली वे वस्तु हैं जो मानव की कल्पना के भी परे है।

मोटे तौर पर हरेक वस्तु का भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप भी होता है। जो कुछ मनुष्य आज कर रहा है उससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि बड़े वैज्ञानिकों के शब्दों में "भगवान् ने मानव को अपार शक्ति दे रखी है। उसकी कृपा से कुछ लोग उस शक्ति का उपयोग कर पाते हैं।" विज्ञान की ज्यों-ज्यों प्रगति हो रही है, ईश्वर की सत्ता पर विश्वास जमता जाता है। ग्रहों का पूजन आध्यात्मिक पूजन है। उनको नेत्रों से न दिखायी पड़नेवाली शक्ति का आवाहन हे। यदि विद्युत्-शक्ति परिचालित यंत्र से मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँच सकता है तो आध्यात्मिक शक्ति परिचालित हनुमान एक छलांग में समुद्र पार कर लंका पहुँच सकते हे।

चन्द्रमा और पागलपन

कैलास पर्वत के यात्रियों ने शंकर भगवान् को कहीं पर बैठे नहीं देखा। उनके वाहन नन्दी का गोबर तक नहीं मिला। इसका अर्थ यह मान लेना पड़ेगा कि कैलासवासी शंकर की युग-पर्यन्त सत्ता केवल कपोल कल्पना है। पर शंकर

भगवान् को देख लेना इतना सरल होता तो आज के युग में घोर से घोर पापी भी हवाई जहाज का टिकट कटाकर कैलास पर बैठे शंकरजी को फूलमाला चढ़ा आते। युगों तक तपस्या करने की रावण की मूर्खता न करते। यही बात चन्द्रमा या अन्य ग्रहों के लिये भी है। पत्थर-पहाड़ से भरे, हिम-शीतल "कलंकी" चन्द्रमा की बात तो हम हज़ारों वर्ष से कहते आये हैं। करोड़ों वर्ष पहले चन्द्रमा पृथ्वी से मिला हुआ था। पृथ्वी का एक टुकड़ा अलग हो गया और हमसे दूर चला गया। यह बात शास्त्र सिद्ध है, इसमें आज की नाप-जोख से कोई नयी बात नहीं निकली। हाँ, पहले ऋषि-मुनियों ने अपने दिव्य चक्षु से जो देखा था, आज हम वही वैज्ञानिक यंत्रों से नाप रहे हैं। क्रिस्टफ अरनाल्ड लिखते है कि आदमी के चन्द्रमा पर उतरते ही उसके विषय में मूर्खता भरे विचार समाप्त हो जायँगे। कौन जाने, इन विचारों को बुद्धिमानी की संज्ञा मिले ?

चन्द्रमा की किरणों का मनुष्य के मन और बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है यह विज्ञान ने सिद्ध किया है। एक पागल-खाने में १० वर्ष तक मरीजों की स्थिति का अध्ययन करने पर यह साबित हो गया कि शुक्ल पक्ष के प्रथम दो-चार दिनों में पुरुषों में उन्माद के रोग अधिक होते हैं तथा स्त्रियों में पूर्णमासी को दो दिन आगे पीछे। स्त्रियों का पूर्णमासी का व्रत केवल हँसी नहीं है। व्रत काल उन्हें चन्द्रमा की किरणों के प्रभाव से बचाता है। ड्यूक विश्वविद्यालय के डा० लियोवार्ड राविज ने अमेरिका में मानव शरीर से निकलनेवाली विद्युत् की धाराओं को नापा-तौला और साबित किया कि चन्द्रमा के उतार-चढ़ाव का मानव शरीर पर बड़ा असर पड़ता है।

एक सिद्धान्त यह भी है कि मस्तिष्क के नीचे एक गाँठ है जिस पर चन्द्रमा की किरणें असर डालती हैं। इसी से दिमाग पर असर होता है। अमावास्या पर सभी रोग भयंकर रूप धारण कर लेते है। पूर्णमासी में अधिकांश हत्या, आत्महत्या या पागलपन का दौरा होता है। सन् १९३० में एक अमेरिकन युवती चन्द्रमा के किरणों के प्रभाव से पागल होते देखी गयी। यूनानियों ने चन्द्रमा को "लून" की संज्ञा दी थी। अंग्रेजी में पागल को ल्यूनेटिक तथा लूनी कहते है। चन्द्रमा पर आदमी के पहुँच जाने पर भी चन्द्रलोक का प्रभाव कोई रोक न सकेगा।

चन्द्रमा की उपासना

कवियों ने चन्द्रमा के विषय में जो कुछ लिखा-पढ़ा है, उसे एक ओर रखिये। चन्द्रमा की उपासना आदिकालीन है। आज भी पश्चिम आफ्रिका में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को ही सुहागरात मनायी जाती है। हिन्दू धर्म में, नये चन्द्रमा के प्रथम दिन को मस्तिष्क के लिये हानिकारक समझ कर ही प्रतिपदा को अनध्याय (पढ़ने से छुट्टी) रखा गया था। दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया, आफ्रिका, कांगो, लंका तथा चीन में भी अनेक स्थानों में चन्द्रदेव की पूजा होती है। न्यू गाइना तथा ऊपर लिखे देशों में अनेक स्थानों में स्त्रियाँ प्रतिपदा (शुक्ल पक्ष) के दिन अपने शिशु को चन्द्रमा के सामने रख देती हैं ताकि चन्द्र की किरणों की शक्ति से वह दीर्घायु हो। बलशाली हो। स्काटलैंड में अभी भी स्त्रियाँ पूर्णचन्द्र को प्रणाम करती है। लंकाशायर (इँगलैंड) में स्त्रियाँ पूर्णमासी के चन्द्रमा को बड़ी स्वादिष्ट रोटी बनाकर चढ़ाती हैं। चन्द्रग्रहण के समय हिन्दू शास्त्रों में भोजन, मैथुन आदि वर्जित है। हमारे इस विश्वास की बड़ी हँसी उड़ाई जाती थी। अब इंगलैंड के वैज्ञानिक ही कह रहे हैं कि ग्रस्त चन्द्रमा को देखने से आँख खराब होती है, उस समय भोजन करने से पेट खराब होता है, सोने से आयु क्षीण होती है, मैथुन करने से नपुंसकता आती है और गर्भ रह जाय तो घटोत्कच पैदा होता है। हिन्दू उस समय पूजा पाठ करता है, हम उसे मूर्ख समझते हैं। आजकल के पढ़े-लिखे लड़के भी अपने बड़े-बूढ़ों की हँसी उड़ाते हैं।

चन्द्रमा की खोज

पश्चिम में सबसे पहले यूनानी विचारक प्लूटार्क (ईसवी सन् ४६-१२०) ने चन्द्रमा की आध्यात्मिक यात्रा का जिक्र किया था। दूसरी शताब्दी में लूसियन नामक एक सिरिया निवासी ने एक कल्पना गढ़ी कि एक जहाज भयंकर तूफान में फँसकर हवा में उड़ गया और चन्द्रमा तक पहुँच गया। प्रसिद्ध इटालियन ज्योतिषी गैलिलियो ने खुर्दबीन से पहली बार चन्द्रमा को निकट से देखने की चेष्टा की। सन् १६३८ में लैंडोफ़ के बिशप फ्रांसिस गौड-विन ने एक कल्पना गढ़ी कि हंसों द्वारा चालित एक रथ पर बैठकर एक यात्री चन्द्रलोक पहुँचा।

सन् १६५६ में सिरानो दो बरगेराक ने "चन्द्रलोक की यात्रा" उपन्यास में वर्त्तमान "राकेट" की प्रथम कल्पना

की थी। इन्हीं दिनों प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा गणितज्ञ जोहान केपलर ने चन्द्रमा के विषय में जो बहुत कुछ बातें लिखी थी वे आज भी सत्य सावित हो रही है—जैसे "यह बड़ा भयानक स्थान है, यहाँ भयंकर सर्दी है, हवा नही है, शरीर में वजन नही रह जाता पर ऐसा झटका पीछे की ओर लगता है कि इस पर आदमी का उतरना सम्भव हो सकता है।" ऐसा ही वैज्ञानिक उपन्यास सन् १८६५ में जूल्स वर्न ने लिखा था—"पृथ्वी से चन्द्रलोक।" उन्होंने कल्पना की थी कि एक घण्टे में २५,००० प्रतिमील की गति से एक यान चन्द्रलोक के लिये उड़ा।

हमारे पहले के यात्री

धीरे-धीरे वैज्ञानिकों मे यह विश्वास भी जमता जा रहा है कि हमारे पहले अन्य लोक से भी चन्द्रलोक यात्री गये थे। अव चन्द्रमा का पूरा नकशा बन गया है। अपोलो यान ने ३,००० मील दूर से चन्द्रमा की तस्वीरें खीच ली है, अव चन्द्र-भूगोल वहुत स्पष्ट हो गया है। उसमें समुद्र है पर जल नही है। ३३,००० बड़ी-वड़ी पर्वतीय दरारें है। इनमें सबसे बड़ी दरार का नाम क्लावियस रखा गया है जो १३० मील लम्बी है। चन्द्रमा का पूरा अंग क्षत-विक्षत है। वर्फ से ढके पहाड़ है या दरारें है। बस्ती, वृक्ष या सब्जी या जल का नामोनिशान नही है। पर इस ग्रह मे इतनी तोड़-फोड़ तथा उत्पात क्यों हुआ? सन् १९४९ में स्पेन के वैज्ञानिक सिकस्टो ओकाम्पो ने बड़े प्रमाण के साथ यह सिद्ध किया कि इस ग्रह पर मानव से भी कही बढ़े चढ़े लोग रहते थे। अणुवम, अद्रवम आदि की उनको पूरी जानकारी थी। उनमे आपस मे भयकर युद्ध हुआ तथा अणुशक्ति के प्रयोग से ग्रह नष्ट हो गया। दरारे इस युद्ध का सवूत है।

एक दूसरा सिद्धान्त है कि अन्य ग्रहों से यात्री चन्द्रमा पर आते रहे है। इसका प्रमाण रूसी वैज्ञानिक डा० अलेक्जेण्डर काजेस्तेव ने एकत्रित किया है। ३० जून, १९०८ को आकाश से एक विशाल भयंकर अग्निपुज साइवेरिया (रूस) की येनेसूसी नदी के निकट तुगुस्का ग्राम मे गिरा। पास के सब प्राणी मर गये। ग्राम उजड़ गया। जमीन धँस गयी। पानी निकल आया। विलकुल जापान के हिरोशिमा के संहार का दृश्य था। काजेस्तेव ने वर्षो यहाँ पर खोज करके यह सावित किया कि यह अग्नि पुंज और कुछ नहीं, कोई तारा नही बल्कि किसी ग्रह से चला हुआ ५०,००० टन वजन का अन्तरिक्ष यान था जो आकाश मे फटकर अग्निपुंज बन कर गिरा था। उस वैज्ञानिक का कहना है कि या तो किसी दूसरे लोक के हमले से चन्द्रमा की वस्ती का संहार हुआ था या साइवेरिया मे जैसे अन्तरिक्ष यान गिरे थे। वैसे अनेक यान यहाँ गिरे जिससे तवाही आई।

चन्द्रमा की स्थिति

सन् १९१७ में ज्योतिषी डी० पी० वियर्ड ने लिखा था कि करोड़ो वर्ष पहले चन्द्रमा में लहलहाते समुद्र थे तथा उनके किनारे चट्टानें थी। पर इनके पहले सन् १९०८ में जर्मन ज्योतिपी फ्रान्श ने लिखा कि यह ग्रह वर्फ से ढका हुआ है। सन् १९२५ में ज्योतिषी फाउन्टेन ने लिखा कि सूर्य की किरणो ने वर्फ से ढंके पहाड़ों पर धूल की चादर ढंक रखी है। इसीसे बर्फ बचा हुआ है। बलगेरिया के ज्योतिषी बोनेफ, नार्वे मे रुद्, फ्रान्स के फिलियास आदि ने लिखा है कि जो दरारें है वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण है या चन्द्रमा का भू-क्षेत्र सिकुड़ रहा है जिससे पपड़ी सूख कर फटती जा रही है।

इस प्रकार गत १५० वर्ष से चन्द्रलोक के बारे में वहुत छानबीन हो रही है। विज्ञान का कहना है कि करोड़ों वर्ष पूर्व चन्द्रमा पृथ्वी से केवल १०,००० मील दूर था। खसकते खसकते पौने दो लाख मील दूर हो गया। अव वह पुनः धीरे-धीरे पृथ्वी के निकट आ रहा है और सौ साल मे १०-१२ फीट निकट आता है। लगभग १०,००,००० वर्ष में पृथ्वी के इतना निकट आ जायगा कि कही पृथ्वी इसे अपने ऊपर खीचकर गिरा ले जिससे उसका एक बड़ा अंश नष्ट हो जायगा या इतनी निकटता के कारण इतनी हाहाकार वर्षा होगी कि धर्मशास्त्रों में वर्णित प्रलय हो जायगा। खैर, शायद दस लाख वर्ष अभी वहुत दूर है। हम आप क्यों चिन्ता करें? विज्ञान के हिसाव से ४५० करोड़ वर्ष लगे है चन्द्रमा को वर्त्तमान रूप धारण करने में। इस अनन्त काल-चक्र में आगे क्या होगा, कौन जाने?

क्या चन्द्रमा पर प्राणी हैं

आज के ११३ वर्ष पहले संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क नगर से "न्यूयार्क सन" (सूर्य) नामक एक टक-

हिया दैनिक निकलता था। उसके मालिक को बराबर घाटा होता रहा। परेशान होकर उन्होंने पत्र के सम्पादक, रिचार्ड लाके (उम्र १८ वर्ष) से कहा कि या तो अखबार की बिक्री बढ़ाओ या अखबार बन्द कर दिया जाय। उस युवक ने एकदम नयी बात सोच ली। उसने २५ अगस्त, १९५६ को अपने अखबार के मुख पृष्ठ पर एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सम्वाद निकाला—"महान् ज्योतिषि क्लोज।" उन दिनों डा० सर जान हर्शेल नामक विश्वविख्यात ज्योतिषी अफ्रीका के एक कोने में "केप आव गुड होप" में बैठे ग्रह नक्षत्रों की खोज कर रहे थे। लाके ने झूठमूठ खबर निकाल दी कि चन्द्रमा का पूरा अध्ययन हो गया है। १६ सितम्बर, १८५६ तक रोज एक एक लेख छपता रहा। लाखों प्रतियाँ अखबार की बिकने लगीं। रातोदिन अखबार छपता। भीड़ की भीड़ अगले अंक की प्रतीक्षा में खड़ी रहती। दुनिया भर में तहलका मच गया और जिसके नाम पर यह सब हो रहा था, वे एकान्त में अपना अध्ययन कर रहे थे। उन्हें कुछ पता भी न था।

क्रमशः इस अखबार में निकला कि चन्द्रमा में सुन्दर वन, पहाड़, नदियाँ है, चौपाये है, पशु हैं, हरे भरे पेड़ हैं, बस्ती हैं, नगर है, वहाँ के रहनेवाले मनुष्यों का सुख तथा हाथ आदमी जैसा है पर शेष शरीर चमागादड़ का है। ये प्राणी पेड़ों पर फुदकते हैं, आपस में बात भी करते हैं, इनकी भाषा भी है।

१६ सितम्बर, १८५६ तक अमेरिका का यह टुटपुंजिया अखबार संसार में सबसे अधिक बिकने वाला अखबार हो गया। लाखों रुपया मालिक ने कमा लिया और तब १६ सितम्बर को सम्पादक जी ने छापा कि "यह सब मेरी गढ़ी हुई कहानी है जिससे मैंने साबित कर दिया कि पाठकों में वैज्ञानिक खोज के बारे में कितनी गलत धारणा है!"

फिर भी आज भी वैज्ञानिकों का ऐसा ख्याल हो रहा है कि किसी न किसी रूप में वहाँ सजीव प्राणी जरूर होगा। कभी-कभी यह भी सन्देह होता है कि वहाँसे पृथ्वी पर सन्देश भेजे जा रहे हैं—तीव्र प्रकाश द्वारा सन् १८२६ में अनेक ज्योतिषियों ने चन्द्रमा के मध्य से टार्च लाइट की तरह तीव्र प्रकाश पृथ्वी पर फेंके जाते देखा था। सन् १९३६ में अत्यधिक प्रकाशवान दो रेखायें दिखाई पड़ीं। सन् १९३३ में चन्द्रमा के मध्य में एक विशाल स्वच्छ स्वास्तिक दिखाई पड़ा जो ६५ मील लम्बा तथा ५०० फ़ीट ऊँचा (मध्य में) था।

जो हो, वहाँ आँख से दिखायी पड़ने वाले प्राणी हैं या नहीं, यह जल्दी मालूम हो जायगा पर संयुक्त राज्य अमेरिका प्रतिवर्ष चन्द्रमा पर यात्री भेजने पर २,२५,००,००,००० रुपया प्रति वर्ष खर्च कर रहा है उसमें एक भौतिक लालच भी है। विज्ञान पंडितों का अनुमान है कि चन्द्रभूमि पर कण-कण में हीरा बिखरा पड़ा है जिसका मूल्य लगभग १,४४,००,००,००,००० रुपया है—इतनी सम्पदा उसके हाथ लगेगी। भौतिक यात्री आधिभौतिक चन्द्रदेव तथा चन्द्रलोक का कभी दर्शन न कर सकेंगे।

अनन्त विश्व—अनन्त माया

इस अनन्त विश्व और उसके अनन्त रचयिता का रहस्य केवल दिव्यचक्षु तथा ब्रह्मज्ञानी ही जान सकेंगे। करोड़ों रुपया खर्च करनेवाले या अपोलो यान के यात्री नहीं। आज इस ज्ञान को प्राप्त करनेवाले केन्द्र "केप केनेडी" में, जहाँ से अपोलो यान अन्तरिक्ष की यात्रा पर जाते हैं, धनी वैज्ञानिकों की बस्ती बढ़ती जा रही है। इस समय इस क्षेत्र में फ्लोरिडा प्रदेश के ब्रेवर्ड नामक ग्राम में, पुराने जमाने के ३०,००० निवासियों के स्थान पर २,५०,००० की बस्ती है। वैज्ञानिकों का वेतन कम से कम ५६,००० रुपया वार्षिक से १० लाख रुपया वार्षिक तक है। पर इनका जीवन इतना हाहाकारमय है कि हर साल १५०० तलाक होते है और अमेरिकन सामाजिक स्वास्थ्य समिति ने इनके सामाजिक जीवन में इतनी वेश्यावृत्ति और दुराचार देखा कि अनुसंधान ही बन्द कर दिया। प्रायः हर परिवार के पास एक वाष्प नौका तथा २ मोटरकार हैं, पर पति-पत्नी की लड़ाई या व्यभिचार का यह केन्द्र है। भला इनसे अनन्त की थाह लग सकती है!

नित्य ६६,५०० मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलकर पृथ्वी सूर्य की चौबीस घंटे में परिक्रमा करती है। समूचा-सौर मंडल ४,८१,००० मील फी घंटे की रफ़्तार से यात्रा करता हुआ २० करोड़ वर्ष में केवल आकाश गंगा की यात्रा पूरी कर पाता है। इस आकाश गंगा के पास लगभग २५०० और नक्षत्र-मंडल हैं। समूचे सौरमंडल के साथ परिक्रमा करने में पृथ्वी की गति ३,६०,००० मील प्रति-घंटा का औसत पड़ता है। यह आँकड़े ४ जुलाई, १९६९ को न्यूयार्क में "टाइम" ने प्रकाशित किये है। अब इस अनन्त गति तथा इसके रचयिता अनन्त परमेश्वर की रचना का रहस्य मनुष्य की समझ के परे है। यह तो उसकी अनन्त कृपा है कि रहस्य के भीतर थोड़ा बहुत झाँकने का हमें अवसर दे देता है।

ग़ालिब : एक और दृष्टि से

श्री वाहिद काज़मी

(इस वर्ष देश में उर्दू के महाकवि ग़ालिब की मृत्यु-शती मनायी गयी है। ग़ालिब मूलतः फ़ारसी के कवि थे, किंतु उन्होंने उर्दू में भी काव्य रचना की थी। उनके फ़ारसी काव्य की जैसी क़द्र होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई, किंतु उनका उर्दू काव्य उर्दूभाषियों में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें संदेह नहीं कि काव्य-कला की दृष्टि से ग़ालिब का कृतित्व बहुत उच्च स्तर का है। उन्होंने उर्दू भाषा को प्राञ्जल करने में बड़ा सराहनीय योगदान दिया। उनकी कविता में भावों की गहराई, अनोखी सूझ और भाषा का अनुपम सौन्दर्य है। उनका युग भारत का संक्रांति काल था। वह मुग़ल वंश जिसने उन्हें संरक्षणता दी थी, उनके सामने ही नष्ट हो गया। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भी उन्हींके सामने हुआ और दिल्ली को अंग्रेजों ने अपने भीषण कोप का जो शिकार बनाया वह भी उन्होंने देखा। उनके सामने ही अंग्रेजों का शिकंजा इस देश में दृढ़ हुआ। उन्हींके सामने पाश्चात्य संस्कृति, पाश्चात्य कला और विज्ञान तथा ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत को अभिभूत करना आरंभ कर दिया था। किंतु वे निरपेक्ष भाव से यह सब दुखद परिवर्तन और कारुणिक दृश्य देखते रहे। उनके मित्र, सहयोगी, परिवार के कितने ही लोग, उनकी प्यारी दिल्ली के असंख्य नागरिक ब्रिटिश हिंसा के शिकार उन्हींकी आँखों के सामने हो गये। किंतु ग़ालिब के काव्य में इन बातों की कोई चर्चा, कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वे काव्य की बारीकियों और जीवन की रंगीनियों, इश्क के विरह-मिलन के वर्णन से आगे न बढ़ सके। लेखक ने इस लेख में यह प्रश्न उठाया है कि एक महान् राष्ट्रीय और मानवता-वादी कवि होने के लिए क्या यह आवश्यक न था कि ग़ालिब अपने देश और समाज की दुर्दशा और व्यापक परिवर्तनों के प्रति जागरूक रहते। इसमें ग़ालिब के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण मौलिक प्रश्न उठाये गये हैं जिनके उत्तर के बिना ग़ालिब का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता।—सम्पादक, सरस्वती)

किसी शायर या कवि का कलाम एक बहुत बड़ी सीमा तक आप-बीती या जग-बीती का ऐसा प्रतिबिम्ब होता है जिसे वह कल्पना एवं अनुभूति दोनों का सहारा लेकर व्यक्त करता है। इसमे न्यूनता-अधिकता और विशेषता शाइर की अपनी परिस्थिति एवं समय के वातावरण पर निर्भर रहता है।

जब हम 'दीवाने-ग़ालिब' का अध्ययन करते है तो गालिब की बहुमुखी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के विभिन्न रूप हमारे समक्ष आते है, जिनमें उर्दू शायरी की सभी विधाएँ अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य और विशेषताओं सहित दृष्टिगोचर होती है। इसके कारण है एक तो गालिब का वह व्यक्तिगत जीवन जो उन्होंने बड़ी कठिनाइयों मे व्यतीत किया और दूसरे उनका गहन अध्ययन जो उन्होंने परिस्थितियों मे सीखा था। वे केवल पाँच वर्ष के थे कि पिता का स्वर्ग-वास हो गया, चाचा ने उनके पालन-पोषण का भार उठाया किन्तु गालिब ने दस वर्ष भी पूरे न किये थे कि चचा की छाया भी सिर से उठ गयी। गालिब निराश्रित होकर भी इस अवस्था मे बड़े साहस से जीते रहे। आगे जाकर एक समय ऐसा भी आया जब कि बादशाह ने पचास रुपये वजीफ़ा नियत किया। वलीअहद ने इस राशि मे वृद्धि करके अपनी ओर से चार सौ रुपया वार्षिक मिला दि[ये] किन्तु दो वर्ष बाद ही वलीअहद भी स्वर्ग सिधार ग[ये।] नवाब वाजिदअली शाह की सहायता प्राप्त हुई, किन्[तु] भी अधिक समय तक साथ न निबाह सके। इस प्र[कार] गालिब ने बड़ा ही संकटपूर्ण जीवन व्यतीत किया। कि[न्तु] इन संकटों, इन अभावों मे भी गालिब ने अपने खान्[दानी] वकर, आन-बान, प्रतिष्ठा, अज्म और इस्तकलाल मे [कोई] कमी न आने दी। कर्ज से पीते ही नहीं, खाते भी र[हे।] यह न सोचा कि परिणाम क्या होगा, और जब माम[ला] बढ़ा तो :—

> क़र्ज की पीते थे 'ग़ालिब' और समझते थे कि हां,
> रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन।

कहकर भरी कचहरी मे अट्टहास किया और अपना मज़[ाक] उड़ाया।

इन संकटों में भी इस प्रकार जीते रहना दुर्दैव [की] फूटी आँखों न भाया और रुष्ट होकर उसने अपना क[ोप] प्रकट कर ही दिया। एक के बाद एक विपत्तियाँ टू[टनी] प्रारम्भ हुईं। पहिले विद्रोह की अग्नि फैली जिसमे देह[ली] जल उठी। फिर अकाल की जिह्वा ने सहस्रों को ब[...]

लिया। जो शेष बचे उन्हें हैजा निगल गया। इसके परिणामस्वरूप घोर अशान्ति व अराजकता। ग़ालिब इन दृश्यों को न केवल अपनी आँखों से देखते रहे, वरन् देखकर जीते भी रहे। वही देहली—जो ग़ालिब का वतन हो गयी थी—इन विपत्तियों से कराह उठी। बड़े-बड़े प्रमुख स्थान जैसे ख़ानम बाजार, ख़ास बाज़ार आदि इस प्रकार मिट गये कि उनका निशान तक देख पाना कठिन हो गया। ग़ालिब के स्वजन, संगी-साथी, मित्रजन, कुछ लुट गये, कुछ मिट गये, कुछ छीने गये, और जो बाक़ी बचे वे बिछुड़ गये। वही व्यक्ति जो शार्गिदों और संगी-साथियों से सदैव घिरा रहता था अब ग़मे फ़िराक़, ग़में हस्ती, गमे रिज़्ब, ग़मे रोजगार, ग़मे इज़्ज़त से बुरी तरह जकड़ा हुआ पत्थर की भाँति निश्चय खड़ा था। किन्तु उसकी धड़कनें कहती थीं :—

> मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था
> दिल भी या रब ! कई दिये होते !

या यह कि: —

> हुजूमे ग़म से याँ तक सिर निगूनी मुझको हासिल है
> कि तारे-दामन-ओ-तारे-नज़र में फ़र्क़ मुश्किल है।
> हो चुकीं 'ग़ालिब' बलायें सब तमाम,
> एक मर्गे—नागहानी और है !

और फिर जब उनका जवान पुत्र आरिफ़ भी उन्हें अकेला छोड़कर सदैव के लिये चला गया तो उनके अन्तःकरण से जो अश्रु प्रवाहित हुए उनके असीम मौन से यही ध्वनित होता था :—

> हां ऐ फ़लक़ पीरे जवां था अभी आरिफ़
> क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और !

किन्तु जीने की उम्मीद न होने पर भी ग़ालिब जीते रहे—और बड़े जीवट से जीते रहे। उन्हें इसमें भी एक सुख ही था, उन्होंने घबराना या हताश होना नहीं सीखा था—केवल जीना सीखा था। वह भी इस प्रकार कि :—

> गर किया नासेह ने हमको क़ैद अच्छा यों सही,
> ये जुनूने इश्क़ के अन्दाज छुट जायेंगे क्या ?

और वास्तव में जुनूने इश्क़ के ये अन्दाज ग़ालिब से कभी न छूट सके क्योंकि इसके बाद ग़ालिब का एक और रूप है—एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें हम देखते हैं कि इस स्थिति में भी वे कभी किसी 'सितमपेशा डोमनी' को मार रखते हैं। कभी किसी 'महजबीं' के रुख़े हिलाल' पर 'जुल्फ़े परेशान' देखते हैं तो दिल मचल उठता है। कभी किसी 'बुते-काफ़िर' या 'निगाहे नाज' के 'तीरे सितम' से 'दिल छलनी' करते है, कभी 'बेताबियेदिल से तंग आकर कूये यार के चक्कर लगा आते हैं। और फ़िर सारी रात 'वादा वफ़ा होने की क़यामत का इन्तिज़ार' करने में व्यतीत कर देते हैं। 'गालियाँ खाने के बाद भी' जब कुछ वस चलता नहीं देखते तो 'छोड़-छाड़ से' 'वस्ल की हसरत जगाने' पर ही नहीं—वरन् धौल-धप्पे पर भी उतारू हो जाते और बाद को स्वयं ही लज्जित भी हो जाते हैं। फ़िर भी 'सोते में उसके पाँव का' चुम्बन लेने का हौसला नहीं खोते किन्तु केवल 'उसके बदगुमाँ' होने के विचार से हाथ आगे नहीं बढ़ पाता है। इससे सम्बद्ध कुछ शेर पढ़िये :—

> लाखों लगाव एक चुराना निगाह का
> लाखों बनाव एक बिगड़ना इताब में
> बे-नयाज़ी हद से गुज़री बन्दापरवर कब तलक
> हम कहेंगे हाले-दिल, और आप फ़रमाएँगे 'क्या'।
> इस सादगी पे कौन न मर जाये ऐ ख़ुदा
> लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।

एक और रूप ग़ालिब का हमारे समक्ष उभरता है। वह है स्वयं के विषय में उनकी अनुभूति। जब ग़ालिब अपने विषय में सोचते हैं उस समय न किसी 'सितम जरीफ़' का उन्हें विचार होता है, न 'फ़लक-नाहिं-जार' से उन्हें कोई 'शिकवा-गिला' होता है। इस समय वे इन सबसे हटकर जो कुछ कहते हैं तो केवल एक शाइर या 'नामुराद आशिक़' की अपेक्षा उनका अन्दाजे बयाँ मात्र मानवीय 'बुजुर्गाना' अधिक होता है, और जो कुछ भी वे कह जाते है वह जीवन तत्त्व, दैर-ओ-हरम, काबा-ओ-बुतख़ाना, तथा शेख-ओ-बरहमन से सम्बद्ध ऐसे मामले होते हैं जिनके विषय में उनका यह कहना :—

> ये मसायले तसव्वुफ़, ये तेरा बयान 'ग़ालिब'
> तुझे हम वली समझते जो न बादाख़्वार होता।

अधिक सत्य प्रतीत होता है। इस प्रकार के कलाम में उनका 'अहं' स्वाभिमान, ख़ुद्दारी और इन्ही भावनाओं

की प्रतिक्रियाएँ प्रबल होती है। नमूने के लिये कुछ शेर प्रस्तुत है—

क्या फ़र्ज है कि सबको मिले एकसा-जवाब
आओ न हम भी सैर करें कोहे-तूर की !
नहीं कुछ.... ...जुन्नार के फन्दे में गर आये
वफ़ादारी में शेख-ओ-बरहमन की आज़मायश है

और न केवल इतना वरन यह रहस्योद्घाटन भी :—

ख्वाहिश को अहमकों ने परस्तिश दिया क़रार,
क्या पूजता हूँ उस बुते-बेदाद-गर को मैं

जब भी गालिब जीने से तंग आ जाते तो बजाये मृत्यु *की प्रतिज्ञा करने के मरने की दुआएँ करने लगते है। मौत* आये तो उसे धोखा देकर साफ़ निकल जाते है, और यह कहकर इलजाम रखते है माशूक के सिर पर कि 'वो सितम-गर मेरे मरने पै भी राजी न हुआ' लेकिन खुदानख्वास्ता 'कत्ल के बाद भी' यदि उस 'जूद पशेमां' की पशेमानी देख कर जी गये तो जोर शोर से फिर यही कहना कि 'नहीं मरना तो जीने का क्या-क्या', अथवा कि वही मृत्यु की प्रतीक्षा में एक-एक पल विताया जा रहा है और अब तो मरने की कामना ही नही वरन मृत्यु मे ही जीवन भी नजर आने लगता है। क्योंकि—'आह ! जी जाऊँ निकल जाये अगर जान वही।'

इस प्रकार हम उनके व्यक्तित्व के विभिन्न साकार रूप देख सकते है जो कभी एक-एक करके, कभी सम्मिलित रूप से हमारे समक्ष उभरने लगते है। किन्तु किसी भी कलाकार का अध्ययन उस समय तक पूर्ण नही कहा जा सकता जब तक उसके साथ उसके युग का अध्ययन भी न कर लिया जाये। वह युग—जिसमे एक कलाकार जन्मा, पला, बढ़ा, और जिसके वातावरण में उसने अपनी कला को श्रेष्ठता की ऊँचाइयों तक पहुँचाया। इसके अनुसार गालिव के अध्ययन के भी तो तरीके हो सकते है। एक तो यही कि बहैसियत केवल एक शाइर के केवल उनकी शाइरी को देखा जाये, कलापक्ष एवं भावपक्ष का समन्वय, संयोग-वियोग, शृङ्गार-सौन्दर्य, भावों का निरूपण एवं अनुभूतियों का चित्रण, कल्पना की शुद्धता, शब्दों का चमत्कारिक प्रयोग, रसानुभूति एवं अभिव्यक्ति आदि-आदि बातों द्वारा उन्हे परखा जाये, काव्य की विधाओं एव विशेषताओं द्वारा उनका मूल्यांकन किया जाये। दूसरा तरीक़ा यह कि उस युग के वातावरण की अनुकूलता, युगीन आवश्यकताओं, समय की माँगों को दृष्टिगत रखते हुए इस बात पर विचार किया जाये कि उन्होंने अपनी कला द्वारा ही समय का, युग का, युगीन आवश्यकताओं का महत्त्व स्वीकार किया या नहीं ? उन्होंने अपने वातावरण को समझने का प्रयत्न किया या नहीं ?

पहिले प्रकार से अध्ययन करने पर गालिब अपनी काव्यगत विशेषताओं और सृजन प्रतिभा के बल पर निःसन्देह सर्वोपरि दृष्टिगोचर होते है। किन्तु जब हम दूसरे प्रकार से उनका अध्ययन करेंगे तो उनका कोई भी ऐसा व्यक्तित्व, ऐसा रूप हमारे समक्ष नहीं होगा, न उनके कलाम में कोई *ऐसी बात ही मिलेगी जिसके आधार पर यह कहा जा सके* कि ग़ालिब ने अपने युग की आवश्यकता को समझा, और उसे पूर्ण करने का प्रयास किया, क्योंकि ग़ालिब का युग एक ऐसा युग रहा जब उनका देश अपने पूरे देशवासियों सहित एक दुखद भविष्य की ओर पग उठा रहा था। न केवल ग़ालिब, वरन सारे भारत का इतिहास एक कठिन समय से गुजर रहा था। वह समय देशवासियों को सचेत करने का समय था। न कि कागज़ के पन्नों पर अपनी काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन मात्र का।

कोई भी ऐसी कलाकृति जिससे रूप और सौन्दर्य, माधुर्य और कोमलता फूटी पड़ रही है, जो दर्शक को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है, कोई विशेष अच्छी दृष्टि से नहीं देखी जा सकती। यदि उसका इतिहास बता रहा हो कि कलाकार ने इसे उस समय स्वीकृत किया है जबकि उसके कलापक्ष से बाहर का संसार आहों मे भस्म हो रहा था, और वह उस ओर से निश्चिन्त, बड़ी ही शान्ति से इसकी रचना में व्यस्त था। सम्भव है कि किसी कला-मर्मज्ञ को उसमें इतनी विशेषताएँ दिखाई दें कि वह शब्दो द्वारा उनकी प्रशंसा भी न कर सके। हो सकता है कि किसी कलाप्रेमी को वह सौन्दर्य की ऐसी प्रतिभा दृष्टिगोचर हो कि वह उसमें खोकर ही रह जाये। किन्तु मानवता के नाते एक व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण से देखने पर उस कलाकृति का कोई विशेष महत्त्व नही रह जाता, क्योंकि जब आसपास का वातावरण इतना भीषण रूप धारण कर रहा हो उस समय मानवता की रक्षा करने की अपेक्षा किसी मानव का केवल अपनी मानसिक सन्तुष्टि के लिए

कागज-कलम, रँग-ब्रुश अथवा छैनी-हथौड़े की दुनिया में खोकर एक ऐसी कलाकृति प्रस्तुत कर देना जिससे कोई प्रेरणा न मिले, एक प्रकार से अनावश्यक ही कहा जायेगा।

ग़ालिब के अध्ययन में सबसे प्रबल प्रश्न यही है। वे लोग जो अपने इस वास्तविक जगत् को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखने में रुचि रखते हैं कि इसमें सिवाय इन्द्रधनुष के सुन्दर रंगों के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखाई नही देता। पायल की झंकार, उल्लासपूर्ण उसके ठहाके, सावन की रिमझिम और दूर से आती किन्हीं क़दमों की आहट अथवा एक मादक संगीत के स्वरों के अतिरिक्त वे कुछ नहीं सुनना चाहते, और जो व्यक्ति यथार्थ के कठोर धरातल पर खड़े होने की अपेक्षा कल्पना के सुकोमल स्पर्श के साथ ही सोचते रहने के आदी हैं, उनके लिये ग़ालिब अपने युग के एक महान् व्यक्तित्व का नाम है क्योंकि इस सत्यता से किसी को इन्कार नहीं कि ग़ालिब की सृजन-शक्ति इतनी विशाल है कि न केवल उस युग में वरन् सौ से अधिक वर्ष बीत जाने के बाद भी यह युग भी उनकी समानता करनेवाला कोई व्यक्ति उत्पन्न न कर सका। कल्पना की जैसी उड़ानें, भावों की जो गहरी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति, संक्षेप में, व्यापक अर्थ आदि के जो चित्रण हम ग़ालिब के यहाँ पाते हैं उस तक कोई नहीं पहुँच सका है। उर्दू काव्यकला के क्षेत्र में उनकी समानता करनेवाला कोई नहीं। किन्तु इस सबके बावजूद भी ग़ालिब को यदि केवल उनके काव्य तक ही सीमित न रखकर, उन्हें एक मनुष्य—और वह भी लेखनी का धनी एक कलाकार—के व्यापक 'दृष्टिकोण से देखा जाये तो असम्भव नहीं कि वही नाम जो केवल शेर-ओ-सुखन' वालों के लिये बड़ा ही गौरवशाली नाम है, इस सामाजिकता के दृष्टिकोण से पतन और दुःख की एक दर्दभारी गाथा का शीर्षक दिखने लगेगा।

मिर्जा ग़ालिब दिस० सन् १७९६ ई० में जन्में, और फिर १८६९ ई० में उनका देहान्त हुआ। यानी तेहत्तर वर्ष चार मास की अपनी आयु में उन्होंने उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ से उसकी सातवीं दहाई तक युग देखा, और खूब देखा। इस अर्द्धशती का समय ही भारतीय इतिहास का एक बड़ा कठिन समय था। यह वही समय है जब मुग़लिया सल्तनत ने अपने अन्तिम दिन बिताये और योरुप की जातियाँ नवीन शक्तियों से लैस होकर भारत पर छाती रहीं। सन् १८१८ ई० में (जब ग़ालिब बाईस वर्षीय युवक थे) देहली के लाल क़िले में अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह 'जफ़र' का दरबार भी देखा। इस समय भारत में अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ और फिर इसके पश्चात् सन् १८५७ ई० के उस युग को भी उन्होंने भलीभाँति देखा जब कि एक विदेशी सत्ता सुदृढ़ होकर पूर्णता को प्राप्त हुई। ग़ालिब की आँखों के सामने एक के बाद एक, कई एक ऐसी घटनाएँ घटीं, जिन्होंने यह साबित कर दिखाया कि एक जाति अपनी सत्ता सहित पतन एवं अवनति के गहरे गढ़े में ढकेली जा चुकी है।

हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय काव्य, साहित्य एवं भाषा के क्षेत्र में जो उन्नति की गई, जो यश अर्जित किया गया, जो नाम पैदा किया गया उसे आज ग़ालिब के नाम से जाना जाता है। किन्तु वे ग़ालिब जिनका प्रारम्भिक एवं अंतिम जीवन शब्दों के रंगारंग और संदरतम चित्रण तैयार करता था, आह! जो लोगों को केवल उतना सबक दे सके कि चाहे सत्य एवं न्याय के निर्णय की समस्या ही क्यों न हो, जीने के लिये आदमी 'साग़र-ओ-मीना' की दुनिया से बाहर नही निकल सकता :—

क्योंकि :—

हरचंद हो मशाहद-ये-हक़ की गुफ़्तगू
बनतीं नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर।

वे ग़ालिब—जिनकी आँख संस्कृति के जलाये जाने, सभ्यता के मिटाये जाने तथा अंग्रेजों द्वारा चलाये गये दमन रूप में विध्वंस चक्र के दृश्यों में यदि कुछ देख सकी तो अधरों की कोमलता, माधुर्य, नाज-ओ-अन्दाज, साक़ी-ओ-शराब, हर ओर मुस्कुराता हुआ रूप और बिखरा हुआ सौन्दर्य हो :—

गुंच-ए-नाशिगुफ़्ता को दूर से यह दिखा कि यूँ
बोसे को पूछता हूँ मैं मुँह से मुझे बता कि यूँ।
इस नज़ाकत का बुरा हो भले हैं तो क्या
हाथ आये तो उन्हें हाथ लगाये न बने।
ख़ते-आरिज़ ने लिखा है ज़ुल्फ़ को उल्फ़त ने अह्द
यक-क़लम मंजूर है जो कुछ परेशानी करे।
कितने शीरीं हैं तेरे लबे-रक़ीब
ग़ालियाँ खा के भी बेमज़ा न हुआ।

अर्थात् कि उन्हें हर प्रकार से 'साक़ी-व-जल्वे दुश्मने ईमान आगही' के सिवा कुछ दिखाई ही न दिया।

पाठ नहीं। प्रयत्न करके यदि कोई ऐसी बात खोजी भी जाये तो वह इसके अतिरिक्त शायद ही कुछ हो सके कि विपम स्थिति में भी वास्तविकता से निश्चिन्त होकर कल्पना की उड़ान में खोये हुए बड़ा ही सुन्दर शब्द-विन्यास करते रहो, और परिस्थितियाँ जब तुम्हें अपना निर्णय स्पष्ट कर दें तो इसी शब्द विन्यास का सहारा लेकर आँसू बहाने लगो।

ग़ालिब के कलाकार और एक श्रेष्ठ कलाकार होने से किंचित् भी इनकार नहीं, क्योंकि कलाकार अभावों से उत्पन्न होता, अभावों मे जीता और अभावों में ही मर जाता है। ग़ालिब का जीवन भी अभावों से प्रारम्भ एवं उन्हीसे समाप्त हुआ। किन्तु उन्होंने अपनी कला का, अपनी, प्रतिभा का उस रूप में उपयोग नहीं किया जिस रूप में युग की आँखें देखना चाहती थी। उन्होंने शायद उन परिस्थितियों पर विचार ही नहीं किया। धीरे-धीरे उठते उस तूफ़ान की ओर उन्होंने देखना ही नहीं चाहा जो बड़ा भयंकर रूप धारण करता जा रहा था। यद्यपि यह सब कुछ अप्रत्यक्ष रूप से नहीं हो रहा था, वरन् प्रत्यक्ष था कि तेजी से आँधियाँ चल रही हैं, बादल काली घटाओं का अँधेरा फैला रहे है, पल-पल बिजलियाँ कड़क रही है, फिर भी आगे की स्थिति से बेख़बर, भविष्य की ओर से निश्चिन्त रहकर उस आँधी-तूफ़ान में भी काल्पनिक बहारों में उड़ते रहना क्या है? और यही ग़ालिब की सबसे बड़ी कमी रही कि उन्होंने समय के तेवर को पहिचानने का प्रयत्न नहीं किया, आँधी में पत्ते की भाँति काँपते हुए अपने नशेमन को वे प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित ही समझते रहे।

उल्लेखनीय है कि ग़ालिब ने उन्नीसवी सदी के तीसरे दशक में अपने जीवन की सबसे लम्बी यात्रा की थी। इस यात्रा का उद्देश्य अंग्रेज सरकार में अपने पेंशन के मुकदमें की पैरवी करना था। इस यात्रा में वे नाव, घोड़ा-गाड़ी आदि द्वारा उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल होते हुए कलकत्ता पहुँचे थे। दिसंबर सन् १८२७ में प्रारम्भ होकर यह यात्रा नवंबर १८२९ में देहली में समाप्त हुई। मिर्जा ग़ालिब साहब ने उस नगर में नये योरुपीय जीवन का दर्शन किया एवं नवीन आविष्कारों जैसे, रेल, तार, वाष्प-चालित यान तथा अन्यान्य कलें एवं यंत्रादि देखे जो उस समय पश्चिम से भारत में प्रवेश कर रहे थे। किन्तु देहली वापसी के उपरान्त कलकत्ते की स्मृति उनके यहाँ किस रूप में शेप रह सकी? इसका अनुमान उनके एक क़तए से होता है जिसके कुछ शेर निम्न है :—

> कलकत्ते का जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं
> इक तीर मेरे सीने पे मारा कि हाय हाय
> वो सब्ज़ःज़ार हाये मुतर्रा: कि है ग़ज़ब
> वो नाज़नीं बुताने खुद आरा कि हाय हाय
> वो मेवः हाये ताज़ा-ओ-शीरीं कि वाह वाह
> वो बादा-हाये नाब गवारा कि हाय हाय

विचारणीय बात है कि कलकत्ता—जो उस समय इस बात का प्रमाण दे रहा था कि तत्कालीन युग में क्या-क्या नवीन खोजें हुई है तथा पाश्चात्य जातियाँ किस प्रकार उनका उपयोग करके धरती पर फैलती जा रही है, वहाँ *ग़ालिब को इस बात से तो कुछ पाठ नहीं मिला, वरन्* कलकत्ते की रंगीनियों की स्मृति ही उनके मन में शेष रह सकी। वे कलकत्ते के उस अत्यन्त शिक्षाप्रद वातावरण में बैठकर भी अपने दोस्त की हथेली पर रखी चिकनी छालियों की शान मे कसीदे कहते रहे, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने एक पत्र में भी किया है।

इस प्रकार अब तक मुग़ल सम्राट् की छत्रछाया किसी न किसी रूप में उन पर रही, वे सम्राट् की शान में :—

> आसिफ़ को सुलेमां की वजारत से शर्फ़ था
> है फ़ख्र सुलेमां जो करे तेरी वज़ारत

आदि जैसे क़सीदे पढ़ने और शेर-वो-सुख़न की बज़्म-आराइयों में लगे रहे। तदुपरान्त जब वे महफ़िलें उजड़ गयी, देहली वीरान हो गयी तो वे दुःख और पीड़ा से भरकर अपने कलाम मे आहो फ़ुगां, नाला-ओ-फ़रियाद, रंज-ओ-अलम के जौहर दिखाने लगे। ग़ालिब के यह दोनों पक्ष उनकी शाइरी व पत्रों—दोनों में—स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। एक रंग तो उनका वह है जिसमें उन्होंने अपने पहिले समय की अनुभूतियों का चित्रण किया है, उदाहरण-स्वरूप कुछ अशआर प्रस्तुत है :—

> नींद उसकी है दमाग़ उसका है रातें उसकी हैं
> जिसके शानों पर तेरी जुल्फें परेशाँ हो गईं
>
> रात के वक़्त मय पिये साथ रक़ीब को लिये
> आये वो यां ख़ुदा करे पर न करे ख़ुदा कि यूँ।
>
> रंगे - शिकस्ता - सुब्ते बहारे नज़ारा है
> ये वक्त है शिगुफ़्त-ए-गुल-हाये-नाज़ का।

लक्ष्मी का वाहन—उल्लू

श्री विनोद 'विभाकर'

यह कितनी विचित्र और आश्चर्य की बात है कि धन-धान्य, सौभाग्य और समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का वाहन होते हुए भी उल्लू को मूर्खता और मनहूसियत का प्रतीक समझा जाता है। अपशकुन और मृत्यु के संदेशवाहक पक्षी के रूप में इसकी गिनती की जाती है। सच पूछो तो उल्लू संसार का सबसे विवादग्रस्त पक्षी है, जिसके बारे में जन-साधारण में बड़ी भ्रान्तियाँ प्रचलित है। यदि उल्लू किसी घर मे घुसकर या मकान की छत या मुंडेरे पर बैठ जाए तो बहुत अशुभ समझा जाता है। जिस घर में उल्लू का वास हो जाता है, उसमें कोई रहना पसंद नही करता। वैसे भी किसी को भूल से उल्लू कह दिया जाए तो वह मरने-मारने को तैयार हो जाता है। कोई भी अपने को उल्लू (मूर्ख) कहलाना पसंद नहीं करता।

विदेशों मे भी बहुत-सी जगह उल्लू के बारे मे अनेक अंधविश्वास प्रचलित है। स्काटलैंड में दिन में उल्लू का दिखना बहुत अशुभ माना जाता है, तो वेल्स में उल्लू की आवाज को ही मृत्यु की पूर्व सूचना समझा जाता है। रोमवासियों में तो प्राचीनकाल से ही उल्लू को घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। कहते है कि रोम के प्रथम सम्राट् आगस्टस की मृत्यु की भविष्यवाणी एक उल्लू ने की थी। कहा तो यहाँ तक जाता है कि सम्राट् आरेलियस की मृत्यु और सीजर की हत्या की पूर्व सूचना देनेवाले भी उल्लू ही थे।

उल्लू, उल्लू नहीं होता!

इस प्रकार उल्लू को मूर्खता और मनहूसियत का प्रतीक तथा अपशकुन और मृत्यु का संदेशवाहक पक्षी माना जाता है। लेकिन वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। यदि आपसे यह कहा जाए कि उल्लू जरा भी उल्लू (मूर्ख) नहीं होता तो आपको सहज विश्वास नहीं होगा। पर यह बात पूर्णतया सत्य है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार यह बहुत बुद्धिमान्, समझदार और चतुर होता है। कौए और बटेर की तरह भविष्य-वक्ता जीवों में इसकी गिनती की जाती है। इसकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वीत-रागी संत की तरह उल्लू भी हर परिस्थिति मे एक-सा रहता है। खुशी में फूला, गम में उद्विग्न और भय की अवस्था में यह अधैर्यशील नही होता। सच तो यह है कि लोभ-लालच से दूर यह हर समय किसी दार्शनिक की तरह शांत मुद्रा मे बैठा गहरे चिंतन और मनन में डूबा रहता है शायद इसी कारण इसे एकान्त बहुत प्रिय है। कहते हैं कि इसकी इसी आदत से चिढ़कर एक बार पक्षियों ने सुलतान सुलेमान से इसकी शिकायत की—'बादशाह सलामत! यह हर समय सबसे अलग खंडहरों के वीराने में छिपा रहता है, किसीके साथ संग-साथ नही करता। जब इससे इसका कारण पूछा जाता है तो वह सिर्फ 'या हू या हू' चिल्ला कर चुप हो जाता है। कोई संतोषजनक उत्तर नही देता।'

सुलेमान ने उल्लू से जवाब-तलब किया तो वह बोला—'जहाँपनाह! मरने के बाद हर किसी को अपने कर्मों का लेखा-जोखा देना पड़ता है। बस यही मेरे चिन्तन का विषय है और इसीलिए मैं हर समय उस खुदा के ख्याल में डूबा 'या अल्लाह' पुकारा करता हूँ।

बादशाह सुलेमान उल्लू के जवाब से बहुत प्रभावित हुए और इस तरह पक्षियों की शिकायत का कुछ नहीं बना।

लक्ष्मी का वाहन

भारतीय साहित्य में उल्लू को लक्ष्मी का वाहन माना गया है। लक्ष्मी ने इसे अपना वाहन बनाना इसकी इन्ही खूबियों के कारण स्वीकार किया है। कहते हैं कि एक बार देवलोक में पक्षियों की एक सभा बुलाई गई और उसमें लक्ष्मी का वाहन चुनने की दृष्टि से सभी पक्षियों के रूप-गुणों के बारे मे विचार किया गया। काफी विचार-विमर्श के बाद उल्लू को ही सबसे अधिक बुद्धिमान, शांत, गम्भीर, एकान्तप्रिय और ईश्वर का सच्चा भक्त समझा गया। उसके इन गुणों को देखते हुए लक्ष्मी ने उसे अपना वाहन बनाना स्वीकार कर लिया।

हमारे देश मे ही नहीं, पश्चिमी देशों में भी उल्लू को ज्ञान का प्रतीक समझा जाता है। इसी कारण वह विद्या की देवी 'मिनर्वा' के कंधे पर बैठा रहता है। अनेक अंग्रेज कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा इसकी प्रशंसा की है।

जो

सुप्रसिद्ध कवि टैनीसन ने उल्लू को तीक्ष्ण बुद्धि के रूप में देखा-परखा है। चंगेजवंशियों में तो उल्लू को पूज्य ही समझा जाता है। कहते हैं कि एक बार एक श्वेत उल्लू ने उनके महान् सम्राट् चंगेज खाँ की प्राण-रक्षा की थी। बस उसी दिन से चंगेजवंशी उल्लू के भक्त हो गए और अपने बच्चों की रक्षा के लिए वे इसे अपने घरों में भी पालते है। पारसियों में भी उल्लू को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। उनमें तो यह विश्वास आज भी प्रचलित है कि यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर को उल्लू के पंखों से रगड़ ले तो शक्तिशाली शत्रु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

रात का राजा : वीराने का बादशाह

उल्लू वीराने का बादशाह और रात का राजा होता है इसीलिए अंधेरे में रहना इसे अत्यधिक प्रिय है और सूर्य की रोशनी से सख्त चिढ़ है। यह अपना घोंसला किसी पेड़ के कोटर या खंडहरों के सूराख आदि में बनाकर दिन भर उसी में छिपा रहता है। अंधेरा होने पर ही यह उसमें से बाहर निकलता है और रात को किसी पेड़ की ऊँची डाल पर तपस्वी की भाँति बैठा हुआ घूरता और 'कच''''कच''''कच' की आवाज करता रहता है।

उल्लू को सुनसान और वीरान खंडहरों का वास कितना पसंद है, इस बारे में एक लोक-कथा बहुत प्रसिद्ध है। बात बहुत पुरानी है। उन दिनों भारत में सुलतान महमूद नाम का एक बादशाह राज्य करता था। वह बहुत अत्याचारी और विलासी था। हर समय उसे अपने वैभव विलास की ही चिंता लगी रहती। रङ्ग-रंलियों में चूर होकर वह मानवता को भूल गया। इस डर से कि कहीं उसका राज्य-कोष खाली न हो जाए, वह अपनी प्रजा पर नित नए कर लगाता रहता था। इस तरह करों के बोझ से प्रजा पिसने लगी। उनकी आवाज सुननेवाला कोई नही था। परिणाम यह हुआ कि लोग अत्याचारों से तङ्ग आकर उसका राज्य छोड़कर भागने लगे और इस तरह गाँव के गाँव उजड़ने लगे।

सुल्तान महमूद के एक वजीर ने अपने बादशाह को समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उन पर कोई असर न होते देखकर वह किसी उपयुक्त अवसर की तलाश में चुप रह गया। जल्दी ही उसे एक अवसर मिल गया। एक दिन शाम को बादशाह उस वजीर के साथ हवाखोरी को निकले। घूमते-फिरते वे देहाती बस्तियों में जा निकले। वहाँ चारों ओर खंडहर ही खंडहर नजर आ रहे थे। पास ही एक पेड़ पर दो उल्लू बैठे थे। उन्हें देखकर बादशाह को मजाक की सूझी। उन्होंने अपने वजीर से पूछा—'एक बार तुमने कहा था कि तुम पक्षियों की बोली समझ लेते हो। आज तुम्हारी परीक्षा का समय आया है। जरा बताओ तो सही कि वे उल्लू आपस में क्या बातें कर रहे हैं ?'

वजीर फौरन अपने घोड़े से नीचे उतरा और कुछ क्षण के लिए पेड़ के नीचे जाकर खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद जब वह वहाँ से लौटा तो बादशाह ने उतावले होते हुए पूछा—"उनकी बातें कुछ समझ में आई ?"

"जी हुजूर ! पर वे बातें आपसे कहने लायक नहीं हैं !"

"पर तुम्हें सब कुछ बताना होगा।" बादशाह ने आज्ञा देते हुए कहा।

वजीर था चतुर। वह स्वयं इसी अवसर की ताक में था। कुछ सोचकर बोला—"जहाँपनाह ! ये दोनों उल्लू आपस में शादी-व्याह की बातें कर रहे है। इनमें से एक उल्लू लड़के का बाप है और दूसरा लड़की का। बातचीत दहेज पर चल रही है। लड़की का बाप २० गाँव खंडहर देने को तैयार है, पर लड़के वाले को इतने गाँव बहुत कम लगे। इस पर लड़की का बाप बोला कि तुम दहेज की चिन्ता न करो। हमारे सुलतान बादशाह की दया से रोजाना गाँव के गाँवं उजड़ रहे है। अगर कुछ दिन यही हाल रहा तो विवाह तक आधा राज्य ही खाली हो जायेगा। उस समय तुम चाहे जितने गाँव दहेज में ले लेना।"

उल्लुओं की ये बातें सुनकर बादशाह अपने वजीर की चतुराई समझ गया। उस समय तो वह चुप रहा, लेकिन अगले दिन उसने राजसभा में करों को आधा करने की घोषणा कर दी और स्वयं राज्य की व्यवस्था करने लगा।

पक्षिराज

उल्लू पक्षियों का राजा भी माना गया है। इस बारे में एक लोककथा इस प्रकार है। बहुत पहले की बात है। दुनिया के सभी जीवों ने अपने-अपने राजाओं का चुनाव कर लिया। पक्षी उस समय तक अपने राजा का चुनाव

राष्ट्रपति निर्वाचन की सफलता का समाचार सुनने पर श्री गिरि और श्रीमती गिरि आनन्दविभोर हो गयीं। श्री गिरि चर्चिल की तरह दोनों हाथों से अंग्रेजी 'वी' (विक्टरी या विजय) का चिह्न बना रहे हैं। यह चिह्न श्लेषात्मक है क्योंकि नाम के अंग्रेज़ी के आद्याक्षरों (वी० वी० गिरि) में भी दो 'वी' हैं।

अरुण आभा अपनी अरुणिमा खोती गई और श्वेत होते-होते ये पर्वत शिखाएँ धीरे-धीरे धूमिल होकर लुप्त हो गई। ये इतने समीप—इतने समीप लग रही थीं, कि लगता था कि जरा हाथों में वढ़ जाने की शक्ति होती तो हम उनको छू ही लेते और हाथ से जरा सहला देते। आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि हनुमान के 'बाल समै रवि भक्षि लियौ' के समान कोई ऐसी किंवदन्ती इस स्थान से सम्बन्धित क्यों नहीं है कि उसकी कांचन प्रभा को भ्रम से लंकापुरी के कँगूरे समझकर हनुमानजी वहाँकी छलाँग लगा गये थे। इस निकट दीखनेवाले पर्वत तक की छलाँग तो बूढ़े जामवंत भी भर सकते थे। या विभीषण के मुकुट के लिये अंगद ने यहाँ से स्वर्ण ले जाकर उसके निर्माण में रावण के कलुषित सुवर्ण का उपभोग होने से बचा दिया था या पाँचों पाँडव राज्य त्याग के बाद स्वर्गारोहिण को जाते समय इसी मार्ग से गये थे और भीम ने सुवर्ण के पाँचों मुकुटों को वहाँ फेंक दिया था। जो पाँच शृङ्ग होकर चमक रहे हैं।

नैनीताल से हम अल्मोड़ा, गरुड़, **बागेश्वर के मन्दिर** कौसानी, और सोमेश्वर होते हुए प्रायः सात घंटे में ग्वालदम पहुँचे। सोमेश्वर से ग्वालदम के लिये मुड़ते समय इस स्थान के नाम के अर्थ पर अपने आप प्रकाश पड़ गया। इस क्षेत्र में पशुओं के लिए चरने के मैदान (गोचरभूमि या चरागाह) काफी हैं। लगता है कभी इसका नाम **ग्वालधाम'** होगा जो अँगरेजों के उच्चारण की करामात से 'ग्वालदम' हो गया। आजकल यहाँ सेना का शिविर है। तिव्वत की सीमा यहाँ से काफी दूर है। हमारे देश के 'गढ़वाल' क्षेत्र का बहुत-सा भाग इन हिमाच्छित चोटियों के पीछे पड़ता है। यही कारण है कि 'नीती पास' (दर्रे) से जाने पर 'नन्दादेवी' शिखर दक्षिण में दिखाई देने लग जाता है। फिर जो पर्वत शिखर आते हैं उनके पीछे पड़ता है प्राचीन 'भोट देश' जिसके वासी 'भोटिया' कहलाते हैं। उधर केवल भोटियों की बस्ती है जो आस्था में हिन्दू संस्कारों के हैं, परन्तु रूप रंग से तिव्वती लोगों से मिलते हैं। अपनी इस आस्था के कारण और उससे भी अधिक तिव्बती लोगों पर चीनियों के अत्याचार के कारण भारत से इनकी सहानुभूति है। उस भाग में भारत सरकार बहुत कुछ उन पर निर्भर है, और उनकी इस सद्भावना का पूरा लाभ उठाने के लिये भारत सरकार सेना और पुलिस में उनकी नियुक्त कर रही है। ये शारीरिक बल में तो अन्य पर्वतीय लोगों से अधिक पुष्ट हैं ही, बुद्धि में भी कुशाग्र हैं। पर्वतीय लोगों की बुद्धि जहाँ एकान्तवास से शान्त और सांसारिक संघर्ष के अभाव में सांसारिक मामलों में कुंठित सी हो गई है, वहाँ तिव्वत और भारत के बीच व्यवसाय करने के कारण इनकी बुद्धि व्यावहारिक और कुशाग्र हो गई है। बर्फ के पहाड़ों की कगारों पर चलना उनके लिए ऐसा है जैसे हमारे लिये समतल सड़क पर चलना; उनके काले बैलों के समान 'याक' भी उन कगारों पर तेजी से भागते हैं और उन पशुओं में रास्ता समझ लेने की इतनी क्षमता है कि एक बार उस मार्ग से चला जाय तो फिर कितनी ही बर्फ पड़े, वह स्वयं रास्ता खोज लेता है।

बात ग्वालदम की हो रही थी और मैं भोटिया वर्णन में बहक गई। ग्वालदम की घाटी में सुन्दर ढलान है। इस लिए एक समय यहाँ चाय बोई जाती थी और चाय के बड़े-बड़े बगीचे थे। इसी कारण यह स्थान अंगरेजों को प्रिय था। यह वन-विभाग का निरीक्षण भवन भी किसी चाय बगीचों के मालिक का था। पर अब यहाँ चाय के बगीचे समाप्त हो चुके हैं। अब तो यहाँ फलों के सरकारी बगीचे हैं; फलों की कैनिंग' करने (डिब्बों में बन्द करना) तथा उनके रस को बोतलों में बन्द करने की शिक्षा दी जाती है। प्रायः साठ पर्वतवासी प्रति वर्ष यह प्रशिक्षण यहाँ लेते हैं। कुटीर उद्योग के रूप में वह सहायक होता है। साथ ही एक बड़ा लाभ इन पर्वतीय ग्रामीणों को उनसे यह होता है कि फल तो ऋतु में आते है, और यात्री बे-ऋतु में। बोतलों में बन्द रस या जैम और जैली आदि बेचकर ये उन्हीं फलों से बे-ऋतु में भी पैसे बना लेते हैं। हमारे देश की पान-बीड़ी की दूकानों के समान चाय की दूकानें तो यहाँ हैं ही। अब स्थान-स्थान पर चलते मार्ग में फलों के रस की दूकानें भी मिलने लगी हैं। दोनों को ही लाभ, थके हुए यात्री को फल का रस, तथा मुद्रा और फलों के उचित प्रयोग का लाभ कृषक को। ग्वालदम की ऊँचाई ६३०० फीट है और यहाँ की सर्दी और वनस्पति बहुत कुछ नैनीताल जैसी ही है। सरकार ने इसका लाभ उठा कर यहाँ पर बकरियों की नस्ल सुधारने के लिए एक फार्म खोल रक्खा है। महिला जगत् में अंगोरा ऊन का नाम ले दिया जाय तो एक सनसनी मच जाती है। सभी को चाहिये विलायती मुलायम चलनेवाली ऊन और सभी समझती हैं

कि वह आस्ट्रेलियन भेड़ों की ऊन है। यहाँ मुझको पता चला कि जो बीसियों स्वीटर मैंने 'अंगोरा ऊन' के अपने हाथों से बिन करके बच्चों को पहनाये, वे भेड़ की ऊन के नहीं थे बल्कि बकरी की ऊन के थे, मुझको लगा मैं बुरी तरह ठगी गयी। मजे की बात यह कि जहाँ तक मुझे याद है ऊन के पैकट पर एक चित्र भी बना रहता है। हम उस बकरी के चित्र को भी भेड़ का चित्र ही समझते रहे। इसमें हमारी समझ की खूबी तो है ही, किन्तु कुछ खूबी उस बकरी की भी है जो देखने में भेड़ सी लगती है; बड़े-बड़े मुलायम बाल, छोटे-छोटे सीधे सींग। ऑस्ट्रेलियन भेड भी देखी थी केदारनाथ के मार्ग में उसके सीग मुड़े हुए थे; सींगों को छोडकर मुझको उन भेड़ों और इन बकरियों में कोई अन्तर नही दीखा। हमारे पर्वतीय प्रान्तों की बकरी के बाल भी बड़े होते है। पर्वतीय लोग उसके कम्बल, कोट आदि भी बुनते है और घरों में उनका रखना आवश्यक समझते है तथा भेड़ के कम्बलों से अधिक उनकी आवश्यकता महसूस करते हैं; कुछ इस कारण भी कि ये कम्बल, कम्बल का काम करने के साथ-साथ बरसाती का भी काम करते है। इन पर पड़ा पानी इनके ऊपर से ढलकर गिर जाता है और यदि कुछ गीले भी हो गये तो सूखते भी जल्दी है। पर्वतीय बकरी के इन्ही लम्बे बालों से 'अंगोरा' ऊन तैयार किया जाता है। परन्तु इसमें समय लगता है; उतना ही समय जितना बकरियों की एक पीढ़ी को बढ़ने में लगता है अर्थात् दो वर्ष। अंगोरा पिता की दूसरी व तीसरी पीढी की संतान सुन्दर मुलायम ऊन देती हे इस प्रकार चार वर्ष व छः वर्ष में वह पीढ़ी सँभलती है। आजकल सरकार द्वारा आयोजित हर काम में अंग्रेजी चलती है और इस प्रकार अपढ़ लोगों में अंग्रेजी का प्रचार कर दिया जाता है। यहाँ भी उनकी श्रेणी भी समय की भाषा के अनुसार अंग्रेजी मे ही निर्धारित की जाती है, जैसे F1. F2. F3. आदि। इन बकरियों की सेवा का आवश्यक अंग है उन्हें प्रति मास पेट से कीड़े निकालने की दवा देना।

सेना के मैस ने हमें अध्याह्न के भोजन के लिए आमंत्रित किया। वहाँ कई ऐसे व्यक्तियों से भेंटें हुई जो हिमशिखरों पर चढ़ चुके थे। 'कौस-मौस' के फूलों से घिरा यह एक चोटी पर बना छोटा सा 'मैस' मुझे बड़ा प्रिय लगा। उस दूर निर्जन स्थान में, मैस के दस पन्द्रह आदमियों में मेरे पुत्र का एक सहपाठी भी निकल आया, एक अन्य अफसर दूसरे का परिवार हमसे परिचित निकल आया। उस अनजानी जगह में भी आत्मीयता आ गयी।

'कौस मौस' फूलों की चर्चा किये बिना तो ग्वालदम की चर्चा अधूरी रह जायगी। इतने बड़े और इतने रंगीन और इतने अधिक 'कौस मौस' फूल तो मैंने कहीं देखे नहीं। जगली घास के समान यहाँ सारे क्षेत्र मे 'कौस मौस' अपने आप ही फूला हुआ है। दूर से ही इनको देखकर चित्त में आह्लाद भर जाता है।

ग्वालदम के लिए कर्ण प्रयाग से 'बसें' जाती है। कार व जीप भी आसानी से जा सकती है। परन्तु ठहरने का प्रबन्ध वहाँ पहले से जंगल विभाग के निरीक्षण भवन में कर लेना चाहिये। पहले पर्यटकों के ठहरने के लिए वहाँ एक 'टूरिस्ट होम' था, पर सेना का पड़ाव बन जाने पर सेना के अधिकारियों की आवास की कठिनाइयों का निवारण इस 'टूरिस्ट होम' ने किया है। अतः अब टूरिस्ट अपने आवास की कठिनाई जंगल विभाग के निरीक्षण भवन से दूर करते है। भोजन के लिए भी सामान साथ ले जाना ही हितकर होगा। इतने रमणीक स्थान पर एक नया टूरिस्ट भवन और उसके साथ एक रसोइया इस स्थान की बड़ी आवश्यकताओं में है। चतुर रसोइया मिलने की यहाँ कोई कठिनाई नहीं है।

टेहरी—टेहरी ही वह स्थान है जहाँ से वास्तव में गंगोत्री व यमनोत्री की यात्रा प्रारम्भ होती है। ऋषीकेश से नरेन्द्रनगर होते हुए टेहरी आकर वहाँसे उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया जाता है। नरेन्द्रनगर स्वयं टेहरी का एक भाग हे, टेहरी के राजाओं में इधर अपने नाम का एक नया नगर बसाने की ओर रुचि हो गयी थी, नरेन्द्रनगर का जन्म इसी रुचि का कारण है। नरेन्द्रशाह ने इसको टेहरी राज्य के एक भाग में बसाया था। टेहरी एक राज्य था। 'महाराजा' की उपाधि से विभूपित भारत मे कुछ ही राज्य थे। टेहरी उनमें से एक था। वहाँ का राज्यवंश बड़ा प्राचीन है। उन राज्यों के वैभव का एक बडा अंग वहाँकी इमारतें हुआ करती थी। टेहरी राज्य भी इसमें पिछड़ा नही था। उस सुदूर पहाड़ी प्रांत में तो ये इमारतें बड़ी भव्य मालूम होती हैं। यह 'सिमला सू' जो टेहरी राज्य का अतिथि गृह था और अब भारत सरकार का अतिथि गृह है, कहा जाता है कि वायसराय के ठहरने के लिए एक मास मे ही बनाकर तैयार कर दिया गया था।

यह बहुत ही रमणीक स्थान पर नदी के तट पर बना है। पास ही महाराज का निवासस्थान और तैरने के तालाब आदि है। इसमें, पर्वतीय प्रदेशों के हिसाब से, बहुत बड़ा खुला मैदान है जिसमें फलों के सुन्दर पेड़ लगे है। जब कभी महाराज वहाँ रहते होंगे उस समय उसकी शोभा अद्वितीय रही होगी। अब तो खुले मैदान में पी० ए० सी० के कैम्प पड़े रहते हैं। स्पष्ट है कि मैदान के खुलेपन ने उन्हें आकर्षित किया। सरकार और महाराज की खींचातानी के कारण राजभवन के आगे के दरबार के कक्ष में सरकारी कार्यालय है और पीछे के भाग में महाराज के कर्मचारी है। 'सिमला सू' (अतिथि गृह) में प्राचीन समय के विशिष्ट अतिथियों के स्थान पर आजकल के सूखे और आधे भूखे अधिकारी ठहरने लगे है। इसका क्षोभ सबसे अधिक वहाँ के चूहों को है जो ऐसी लोट लगाते हैं कि कोई अनजाना अतिथि आ बसे तो रात में उसको 'भुतहा' समझकर वह रातों रात भाग जाय। एक तो टेहरी में भागकर जाने के स्थान कम है, दूसरे लोग भी अब यथार्थवादी अधिक हो गये हैं। तुरन्त 'टार्च' का सहारा लेते है। यहाँके चूहे बिल्लियों के आकर के इतने मोटे और भारी है कि एक बिल्ली भला यहाँके चूहों के झुंड का क्या मुकाबला करेगी! इसलिए कोई बिल्ली उसमें नहीं बसती। गंगोत्री यमगोत्री की यात्रा के बाद हम इतने थके हुए थे कि हमें सोते हुए कोई खींचकर भी ले जाता तो हमें पता न चलता, पर इन चहों ने हमें भी जगा दिया। पैरों की रग-रग दुख रही थी। पर सहसा याद आया कि मैंने मोती की माला गले से उतारकर बाहर ही रख दी है। चूहों के लिए उसका कोई उपयोग न था, पर सोचा ये राज्यों के चहे हैं। राज्य के बड़े-बड़े वैभवशाली अतिथियों से उनका पाला पड़ चुका है। उन्हें रत्नों, आभूषणों आदि के संग्रह की आदत पड़ चुकी होगी। दुखती रगों से उठी, और फिर जब एक चीज बन्द की तो औरों का ध्यान आया। टूथ ब्रश, टूथ पेस्ट तक बन्द करने की नौबत आ गयी——जैसा बन्द सामान लेकर उतरे थे वैसा ही पूरा खुला सामान फिर बन्द करना पड़ा।

'सिमला सू' शब्द से याद आया 'सू' शब्द का प्रयोग पहाड़ी भाषा में अर्थ रखता है 'आयतन' का। 'ज्ञान सू' उत्तरकाशी में एक ग्राम का नाम था। प्रतापनगर दूसरे पर्वत की चोटी पर बसा है। टेहरी में खड़े होकर ऊपर प्रतापनगर की ओर देखें तो टोपी सिर से गिर जाती है। ग्यारह मील का मार्ग है, और सीधी चढ़ाई है। राज्य विलय हो जाने के पूर्व प्रताप भवन में राज्य का हाईकोर्ट था। विलय के बाद वह सरकार को मिल गया। उसमें बहुतेरा बहुमूल्य सामान भरा है जिसे सरकार बेचना चाहती है। क्रय का प्रथम अधिकार महाराज को है। महाराज का अनिर्णय, स्थान की दूरी, दुर्गम मार्ग सब मिलकर बहुमूल्य कालीनों ऐसे सामान को धूल में मिला रहे है। अब सुना गया है कि इस संबंध में निर्णय करने की अन्तिम तिथि सरकार ने महाराज को दे दी है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि इतने दुर्गम स्थानों पर नगर बस गये और राज्य के 'धनौटी' में सुन्दर स्थान केवल अतिथि गृह बनकर ही रह गये। इसी राज्य में मसूरी से बारह मील दूर एक स्थान है 'धनौटी'। इतना सुन्दर कि उसका वर्णन करना कठिन है। एक ओर देहरादून की घाटी है, दूसरी ओर दीखती है स्वच्छ, स्पष्ट तीन मील गोलाकार हिमाच्छादित पर्वत शिखरों की श्रेणी। उनके नीचे हैं जौनसार की रूखी-सूखी पर्वत शृंखला जो अपने रूखे-सूखेपन से पीछे की हिमाच्छादित चोटियों को विचित्र गरिमा प्रदान करती है। धनौटी की उर्वरा धरती, चीड़ के पेड़ों के जंगल और उसकी हरियाली शिमला की याद दिलाती है। धरती की उर्वरता का उपयोग भारत-सरकार ने वहाँ एक फल का बगीचा लगाकर किया है। हमारी समझ में यह नही आया कि यह इतना रमणीक होकर मंसूरी नैनीताल-सा पर्यटक केन्द्र, नगर बनने से कैसे रह गया? अंग्रेजी सरकार का आधिपत्य यदि वहाँ होता तो वह आज अवश्य ही एक अति लोक पर्वतीय प्रिय पर्यटक केन्द्र होता। टेहरी राज्य, जिसने इतने नगर बसाये, वहाँ एक नगर क्यों न बसा सका, इसका उत्तर हम न सोच पाये।

यहाँके निवासियों में भी वे ही गुण आ गये हैं जो प्रायः राज्य निवासियों मे आ जाया करते हैं——एक ओर से अति चतुर और एक ओर से मूर्ख। वाक्पटुता, तिल का ताड़ बना देना, या ताड़ को बात ही बात में तिल का रूप दे देना, प्रशंसा, क्षण भर में ही बातों ही बातों में सबसे बड़ा हितैषी बन जाना, उनके गुण है। दूसरी ओर नैतिक पतन, चाय के समान मदिरा का सेवन, नवीं-दसवीं कक्षा के छात्रों की इस ओर बढ़ती हुई आदत वहाँके दुर्गुण है। सुना है कि एक बार कई अन्य नरेश भी टेहरी राज्य की सुन्दरता से प्रभावित होकर, वहाँ अपने

अपने महल बनवाना चाहते थे। जब सब तय हो गया और केवल हस्ताक्षर होने रह गये तो किसी ने महाराज को सुझाव दिया कि उन भव्य महलों के बीच आपका भवन द्वितीय श्रेणी का मालूम पड़ेगा। अभी तो यहाँ वही सर्वश्रेष्ठ है। हस्ताक्षर उस कागज पर कभी नही हुए।

अपने महाराजाओं के नाम पर कीर्तिनगर, प्रतापनगर और नरेन्द्रनगर नामक नगर बसानेवाला टेहरी शीघ्र ही जलमग्न हो जायगा। हम वह स्थान देखने गये जहाँ बाँध (डैम) बनाने की योजना है। उसका अनुसंधान कार्य प्रारंभ हो गया है। उन गुफाओं में भी गये जो पहाड़ों के अन्दर खोदी जाती है पत्थरों की जल थामने की क्षमता देखने के लिए। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिन्हे हम पत्थर की शिला देखते हे उनमे से बहुत-से अन्दर से स्थान-स्थान पर चूल्हे की राख से गये बीते होते है। दो-दो टार्चो के प्रकाश मे मैं गुफाओं के अन्दर घुसती चली गयी। तीन आदमी साथ-साथ सीधे तन के चल सकें—इतनी लम्बी और चौड़ी ये गुफाएँ खोदी गयी हैं। काफी भीतर जाकर मुझे कुछ भय सा लगने लगा। साथ ही उन गुफाओं का ध्यान आया जो बौद्ध भिक्षुओं के समय मे बनी थी। ये गुफायें बनाना भी बड़े कौशल का काम है, मै तो सोचती थी पर्वत मे खोद दो, गुफा बन गयी। पर यहाँ तो पत्थरो के प्रकार पर विचार करके उसका दिशा निर्देशन करना पड़ता है। स्थान-स्थान पर पत्थरो के ऊपर उनके प्रकार लिखे हुए थे। दो विशाल पर्वतो के बीच एक सँकरे मार्ग मे हम खड़े थे, नीचे पतली सी भागीरथी की पतली धार बह रही थी। पर सुना कि उस जगह जल १६ फुट गहरा था। हमे बताया गया कि ये जो विशाल पर्वत दीख रहे है, बाँध बन जाने पर उनके केवल शिखर ही कुछ-कुछ दीखेंगे, बीच के सारे पर्वत जलमग्न हो जायँगे। टेहरी के बड़े-बड़े महल, यह पूरा टेहरी नगर, ये सारा मैदान, ये सारे खेत १५ वर्ष के अन्दर अपना अस्तित्व खो देंगे। तो मैं बहुत देर तक उन्हीको देखती रही। जानती हूँ कि परिवर्तन जगत् का नियम हे परन्तु जहाँ पर्वत हो, वहाँ सागर बन जाय—यह ऐसा परिवर्तन हे जो मेरे लिए अकल्पित था।

स्वामी रामतीर्थ का समाधि स्थान—डैम की साइट से लौटते-लौटते संध्या हो गयी थी पर स्वामी रामतीर्थ का समाधि-स्थान देखने की तीव्र उत्कंठा थी। वहाँ ध्यान आया कि आज १२ अक्टूबर है, और १७ अक्टूबर को स्वामीजी ने जल-समाधि ली थी। आज का निरीक्षण भवन कभी टेहरी राज्य का अतिथि भवन था, उससे नीचे प्रायः तीन फर्लांग उतरकर भिलंगना नदी के तट पर स्वामी रामतीर्थ का यह स्थान है। स्वामी रामतीर्थ की सेवा का भार टेहरी राज्य ने ले रखा था। यहाँसे प्रायः एक मील दूर एक विशाल गुफा मे वे निवास करते थे, और भिलंगना नदी के इस तट पर वे स्नान-मज्जन तथा ध्यान करते थे। नदी के बिल्कुल तट पर पत्थरों और रेत के ऊपर एक साधारण-सा स्मारक बना है जिस पर कुछ लिखा नही है। वही उन्होने जल-समाधि ली थी। अब तो वह स्थान सूखा है। उससे कुछ दूर, प्रायः चार-पाँच गज दूर पर भिलंगना बहती है। हो सकता है कि उस समय भिलंगना इस ओर बहती हो, और इधर एक कुंड हो जिसे जल के साथ आये पत्थरो और रेत ने भर दिया हो। आश्चर्य नही कि भिलंगना फिर इधर से बहने लग जाय। दो गज ऊपर पर्वत में एक छोटी सी गुफा है—प्रायः पाँच फुट ऊँची। उसीमें स्वामीजी ध्यान करते थे। एक तो संध्या की वेला थी, दूसरे, गुफा के चारो ओर इतनी झाड़ियाँ उग आई थी कि ऊपर उस तक पहुँचना कठिन था। गुफा की यह अवस्था देखकर क्षोभ अवश्य हुआ। समाधि स्मारक साधारण ही सही, पर सुना कि तब बनाया गया जब श्री लालबहादुर शास्त्री यहाँ पधारे थे।

गुफा को एक पगडंडी जाती है। नदी तट की पगडंडियों को देखते हुए यह पगडंडी बहुत साफ थी। इसका कारण पगडंडी के आरम्भ होते पूर्व ही कागज की दफ्ती पर लिखे एक छोटे-से साइनबोर्ड को देखकर लग गया था। उस पर लिखा हुआ था 'इस पगडंडी पर टट्टी करना सख्त मना है।' जिसने भी यह साइनबोर्ड लगाया उसका हमने हृदय से धन्यवाद दिया। अवश्य ही वह सरकार की ओर से न लगा होगा, वरना वह इस प्रकार दफ्ती पर हाथ का लिखा न होता, बढ़िया टीन पर सफेदे के सुन्दर अक्षरों से लिखा होता। उसमे जो आदेश लिखा था उसका पालन भी किया गया था। जहाँ बड़े-बड़े सरकारी आदेशोंवाले बोर्ड उपेक्षित रह जाते है वहाँ इस जरा से कागज के टुकड़े का यह आदर देखकर प्रसन्नता हुई।

यही टेहरी मे ही भिलंगना और भागीरथी का संगम है। इस जिले की भिलंगना पट्टी (क्षेत्र) से निकलने के कारण इस नदी का नाम भिलगना पड़ा, यह हिमालय की

हिमाच्छादित चोटियों से निकलती है। भृगु मुनि ने भी इसीके तट पर तपस्या की थी और कुछ का विचार है के इसका नाम भृगु गंगा था जो विगड़कर भिलंगना ो गया।

स्वामी रामतीर्थ के भिलंगना नदी में जल समाधि लेने ि तीन दिन वाद वहाँ उनके प्रमुख शिष्य आये। वे विकल ोकर लता, द्रुम, वृक्षों से पुकार-पुकार कर पूछने लगे मेरा ाम कहाँ है? तीसरे दिन उनका पद्मासनासीन शरीर भागी- थी और भिलंगना के संगम पर तट से लगा हुआ मिला। ाछलियों ने कहीं-कही शरीर पर आघात कर दिया था। ह कथा प्रमाणित है। परन्तु जो इसे सुनता हे और भलंगना नदी की ओर देखता है वह अचरज ही करता रह ाता है। अक्टूबर में उसका जल इतना कम हो जाता है, ौर पत्थर इतने अधिक है कि उस पर लकड़ी का तख्ता ी वहाया नही जा सकता, कुछ गज जाकर ही वह अटक ायगा। स्वामी रामतीर्थ का पद्मासनासीन शरीर कैसे म्भव है कि बह गया उस जल में जिसमें लकड़ी भी नही ह सकती, और इतने पथरीले जल मार्ग मे कही अटका भी ही और तीन दिन तक भिलंगना के तट पर खोज होने र भी किसीको दीखा नही। फिर, वह मिला केवल उनके शष्य के आ जाने पर भागीरथी के तट पर! जिसने क्टूबर के मास में भिलंगना नदी देखी है, वह केवल ाश्चर्य ही कर सकता है।

दिवाली स्वामी रामतीर्थ का जन्म-दिवस था। हमारे ंगोत्री-यमनोत्री से लौटते समय हमारी दिवाली टेहरी मे ी पड़ी थी। प्रातः ही भक्तों की एक लम्बी पंक्ति हाथों ं फूल लिये हुए स्वामी रामतीर्थ का जय गान करती ुई उनकी समाधि की ओर वढ़ रही थी। प्रेरणादान ी महात्माओं का जीवन है। यदि अभी भी उनके जीवन से प्रेरणा का स्रोत झर रहा है तो वे अभी भी ीवित है।

उत्तरकाशी—उत्तरकाशी के वारे मे जैसा सोच रक्खा ा वह उसके प्रतिकूल निकला। सुन रक्खा था कि उत्तर ाशी में साधु-सन्त जा बसते है मेरे मन में कुछ यह विचार मा गया था कि साधु-संतों को दुर्गम स्थान प्रिय होगा, जिससे आसानी से कोई उनकी शांति भङ्ग न कर सके। जीवन की रसिकता छोड़कर वे उस ओर जाते हैं। अवश्य ी यह स्थान कुछ रूखा-सूखा और पथरीला होगा; परन्तु निकला वह पूर्णतः उसके विपरीत। वहाँ पहुँचने का मार्ग इतना सुगम और रमणीक है कि अगर यह कहा जाय कि पर्वतीय प्रांतो में ऐसा मार्ग मिलना अत्यंत कठिन है तो गलत न होगा। अभी तक जितने मार्ग मिले थे वे सब कगार के ऊपर एक ओर नीचे वहती नदी की तेज धार, और दूसरी ओर ऊँचे पर्वत, स्थान-स्थान पर सँकरे मोड़ और उन पर पड़े बड़े-बड़े पत्थर देखकर जान सूख जाती थी। यहाँ न कगार, न पत्थर, न सँकरे मोड़। टेहरी से ही जो सुदर घाटी के बीच मार्ग मिला वह यात्रा पर्वत वैसा ही चला गया। रमणीयता पर्वतीय प्रदेश की; और सड़क की सुविधा और सुरक्षा नीचे के समान प्रदेशों की। विचार था कि यहाँ की भूमि सूखी, पथरीली होगी, परन्तु यहाँकी भूमि इतनी उर्वरा है कि कभी टेहरी राज्य की अन्नपूर्णा यही धरती मानी जाती थी। आलू हुआ तो दो लाख मन, अखरोट पास के प्रांत में मिलते हैं ६ रु० के एक हजार, धान के लहलहाते खेत, सेव, माल्टा प्रचुर मात्रा में। साधु- सन्त मूर्ख नही होते। व्यावहारिक ज्ञान उनमें हमसे अधिक ही होता है। यहाँ आकर मेरी वहुत-सी पुरानी धारणाए बदल गयीं।

हमारे ठहरने का प्रवन्ध यहाँ 'लॉग केविन' में किया गया; इसका जीर्णोद्धार उस समय किया गया था जब श्रीमती इंदिरा गांधी 'माउण्टेनियरिंग' (पर्वतारोहण सस्था) का उद्घाटन करने यहाँ आयी थीं। 'लॉग केविन' का नाम सार्थक करते हुए, बहुत कुछ दीवारें इसमें लकड़ी की है। विजली की वत्ती पर जो शेड के शेड लगे है वे सूप है, छत पर चटाई की छत है। 'प्लेस' पर चटाई की सजावट है। उत्तरकाशी मे ऐसा निवासस्थान अत्यन्त उपयुक्त और सुरुचिपूर्ण लगता है। परन्तु सेवकगण नाराज हैं। कहाँ टाँग दिया है पहाड़ के ऊपर! न सामान आ सके न जिन्स। ऊपर से भागीरथी काफी दूर। उत्तर काशी आकर भागी- रथी में स्नान भी नही कर सकते।

उत्तरकाशी का इतिहास नया नही, यह तो प्राचीन ऋषियो के आश्रमों की कहानी से ही आरम्भ होता है। अगस्तमुनि आश्रम हरसल के आगे हे। पुराणों के रचयिता व्यास मुनि का जन्म भी यहाँ गंगनानी ग्राम में हुआ था जहाँ उनके पिता पाराशर का आश्रम था। यह गङ्गनानी स्थान उत्तरकाशी से गङ्गोत्री जाते हुए मार्ग में मिलता है। श्रीराम के जन्मकाल तक के समय का इतिहास का सम्बन्ध

यहाँसे अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है। श्री परशुराम का जन्म आजके उत्तरकाशी से प्रायः ४० मील दूर ही हुआ था। वहाँ आज भी उनके पिता का जमदग्नि कुंड प्रसिद्ध है जहाँ उनकी वृद्धावस्था की अशक्तता से द्रवित होकर गङ्गाजी अपने आप फूट आयी थीं। पास ही वहाँ एक सूखा-सा कुंड है, तथा वह शिला है जिसपर बैठे हुए सहस्रबाहु का सिर परशुराम ने काटा था। यहीं जान्हु ऋषि का आश्रम था जिनके कारण गङ्गा का नाम ही जाह्नवी पड़ गया था। यह सब प्राचीन इतिहास के द्योतक है। मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम भी इसी क्षेत्र में है। 'केदार खण्ड' का यह उत्तर-पश्चमीय भाग ही उत्तरकाशी कहलाता है। यहाँ भी 'वरुणा और अस्सी' है, भागीरथी है, तथा प्राचीन विश्वनाथ का मन्दिर है। अतः यह उत्तर की काशी है। ऋग्वेद के युग में 'अतसुतो' का एक राज्य था जो यमुना, परुसनी नदियों से लेकर गङ्गोत्री तक फैला हुआ था। देवोदास उनका प्रथम राजा था जो आर्य था, और वह अनार्य 'शम्भरा' से सदैव युद्ध में उलझा रहता था। कहा जाता है कि यही भाग उत्तर कुरु है।

'उत्तर कुरु' ही देवों को बलि देने का स्थान था, इधर की बहुत-सी रीतियाँ भी इस ओर संकेत करती है। 'कौशकी ब्रह्म' में इसकी चर्चा है कि इस भाग में वैदिक भाषा का ज्ञान अधिक था, और बाहर से लोग वैदिक भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यहाँ आते थे। महाभारत के 'उपायन' में यहाँके लोगों का वर्णन किरात, उत्तर कुरु, खस, **तंगना, प्रातंगन** कुरिदा आदि के नामों से मिलता है। महाभारत में लिखा है कि युधिष्ठिर के राज्यसूय यज्ञ के समय **तंगना,** व **प्रातंगन** जातियों के लोग (जो यहाँ बसते थे) ने सुन्दर भेटें दी थीं जिसमें स्वर्ण, कम्बल व ऊन आदि थे। महाभारत के अनुसार यह भाग उत्तर पांचाल देश था आज का टेहरी राज्य भी उसीके अन्तर्गत आ जाता है। यह राज्य कौरवों के राज्य से कट गया था, और कौरव बार-बार उस पर उस समय तक आक्रमण ही करते रहे जब तक कि दोनों के बीच राज्य बट नही गया। यह भाग जिसे हम गढ़वाल कहते हैं, युधिष्ठिर के राज्य में आया था दूसरी ओर का भाग कौरवों के। इसी ओर ये तंगना व प्रत्यंगन जाति के लोग बसते थे। जब पाँडवों को वनवास मिल गया तब फिर यह भाग भी कौरवों को मिल गया। यही पर अर्जुन और शिव में भयंकर युद्ध हुआ था जिसमे किरात वेषधारी शिव ने अर्जुन को धनुष दिया था। महाभारत युद्ध में भागदत्त, जो इस भाग का राजा था, किरातों की एक बड़ी सेना लेकर हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र की ओर से लड़ा था। अभी तक कुछ गाँवों में दुर्योधन की पूजा होती है। भीम से युद्ध के पश्चात् जंघाओं के आहत हो जाने पर दुर्योधन इसी ओर आकर छिपा था; और इसी हालत में रेंग-रेंगकर इधर–उधर अपनी प्रजा के बीच छिपता फिरा था। इस ओर के गाँव वाले दुर्योधन की जो आधी मूर्ति बनाते हैं उसमें जंघाएँ नहीं होती। वे उसका पूजन करते है और तिथि के अनुसार जिस दिन वह छिपने आया था उसी दिन ढोल और नगाड़े आदि बजाकर उसका जुलूस निकालते हैं, और जहाँ जहाँ वह घिसट-घिसट कर छिपता फिरा था उसी उसी मार्ग से उस जुलूस को ले जाते है। राजा के रूप में उसकी मान्यता अभी भी वहाँ होती है। महाभारत के पश्चात् यह उत्तरकाशी की भूमि पांडवों के पास परीक्षित के राज्यभिषेक तक रही। स्वर्गारोहण के लिए जाते समय पांडव पातागिनि नामक स्थान पर ठहरे थे जो गङ्गोत्री से सवा मील उत्तर मे पड़ता है।

इसके पश्चात् जब तक मौर्य काल ने फिर राज्य को एक सूत्र में नही बाँध दिया तब तक नाग, कुलिंद, किरात, तंगान तथा खस जातियाँ यहाँ अलग-अलग राज्य करती रहीं। अभी भी यहाँ के गाँवों के नामों मे उन जातियो की स्मृतियाँ छिपी हुई है। तंगान जाति के राज्य का भाग 'तंकोर' के नाम से प्रसिद्ध है और नाग नाम से तो यहाँ कई गाँव है: नागपुर परगना, शेषनाग, तंगलनाथ, लोहाँड़ियानाथ। कहा जाता है कि केदारनाथ का नाम उस ओर किरात जाति के रहने के कारण पड़ा।

कुशन काल के बाद यहाँ जन्मेजय के पुत्र राज्यपाल का राज्य हो गया था। उस वंश के बाद उत्तर काशी कत्यूरी राजाओं के राज्य मे आ गयी। कत्यूरी राज्य अलमोड़ा जिले की कत्यूरी घाटी में से बढ़कर इतने शक्तिशाली हो गये थे कि पूरा कुमाऊँ और गढ़वाल राज्य उनके अधीन हो गया था, पाँचवीं शती का एक ताम्रलेख उत्तरकाशी के विश्वनाथ मन्दिर के प्रांगण में खड़े त्रिशूल पर मिलता है। इसमे संस्कृत के तीन श्लोक है जिन पर अंकित है कि राजा ज्ञानेश्वर मन्दिर का निर्माण कराकर सुमेरु पर्वत की ओर वन में चले गये, और उनके पुत्र गुहाने राज्य सम्हाला। उस लेख में गुहा के जीवन की

मंगल कामना की गयी है, तथा उसकी युद्ध वीरता की चर्चा भी है। यह भी कहा जाता है कि ह्यून साँग द्वारा वर्णित ब्रह्मपुरा भी यही देश था। इन सबसे प्रतीत होता है कि कत्यूरी राज्य कितना शक्तिशाली था। कत्यूरी राज्य का विस्तार बढ़ता गया और जन्मेजय के पुत्र राज्यपाल के क्षत्री वंशजों का राज्य उत्तर-पश्चिम की ओर सीमित होता चला गया। वे चंदपुर गढ़ी से कत्यूरी राज्य के अधीन रहकर राज्य करते रहे। राज्यपाल वंशावली का अन्तिम राजा था भानुप्रताप। भानुप्रताप अन्य स्थानीय सामंतों में से सबसे प्रभावशाली गढ़पाल थे। इस प्रकार के ५२ गढ़पाल उस समय वहाँ थे। इन्हीं गढ़पालों के कारण इस क्षेत्र का नाम 'गढ़पाल' पड़ा, जो बाद में बिगड़कर 'गढ़-वाल' हो गया। भानुप्रताप के केवल दो पुत्रियाँ थीं। उनमें से एक का विवाह मालवा के राजकुमार कनकपाल से हुआ था। भानुप्रताप कनकपाल को अपना राज्य देकर अलग हो गये थे। आज के टेहरी राज्य के राजाओं की वंशावली इन्ही राजा कनकपाल से आरम्भ होती है।

कनकपाल ने राज्य को बहुत सुदृढ किया। कहा जाता है कि उनके साथ-साथ और भी बहुत-से प्रमुख परिवार बाहर से आकर यहाँ बस गये थे, और आज के उत्तर-काशी के मुगलगढ़, शंकरीगढ़, इदयागढ़, औतांगगढ़ तभी के बसे हुए हैं। कनकपाल कत्यूरी राज्य पर भी बार-बार आक्रमण करता रहा, और उसने अपना राज्य श्रीनगर तक बढ़ा लिया था। कनकपाल से आज तक के राजा मानवेन्द्र शाह तक की वंशावली पूर्णतः प्राप्त है। आजकल के राजा मानवेन्द्र शाह हमारी लोकसभा के सदस्य है। इसी वंशा-वली में विक्रमपाल के पुत्र विचित्रपाल के राज्य में बाह्य आक्रमण हुए। कहा जाता है कि अनेक मल्ल, जिन्होंने ये आक्रमण किये थे, नैपाली थे। दो ताम्रलेख जिनमें उनके आक्रमणों का उल्लेख है, प्राप्त हैं। एक है गोपेश्वर के मन्दिर के त्रिशूल पर, और दूसरा भी गोपेश्वर में ही है। उसमें इस प्रदेश को दानवों का देश कहा गया है। सम्भवतः तिब्बती और भोट लोगों के निवास के कारण ऐसा कहा गया। इसमें लिखा है कि राजा को हरा कर फिर राज्य देना पुण्य का काम है। इससे यह अनुमानित है कि विचित्रपाल को फिर राज्य दे दिया गया था। अनेकामल्ल या (अनीमल्ल) भुजकामादेव के पुत्र थे, तथा उनवंतामल्ल के पौत्र थे। उन्होंने ३२ वर्ष तक नैपाल में राज्य किया था। इनके राज्यकाल में नैपाल में कुछ देवी प्रकोप हुए। उस क्षति की पूर्ति के लिए वे पास के देशों में घुस आये, और कमाऊँ तथा गढ़वाल के राजाओं को हरा कर उनके राज्य लौटा दिये। उनसे प्राप्त धन से तथा लूट के माल से उन्होंने अपनी क्षति की पूर्ति की।

इस वंश के राजाओं के नामों में 'पाल' की जगह 'शाह' लगने लगा। इसका कारण यह बताया जाता है कि दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी ने प्रसन्न होकर उन्हें 'शाह' की उपाधि दी थी जो कि उनके नामों के पीछे लगने लगी। पर ये राजा स्वतन्त्र ही थे। ये राजा अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थे। इनके एक राजा मानाशाह के वैभव की चर्चा में एक विदेशी यात्री ने ने लिखा है कि ये स्वर्ण पात्रों में भोजन करते थे और इनकी भूमि बड़ी उपजाऊ थी तथा इनकी राजधानी का नाम 'श्रीनगर' (वैभव का नगर) था। भानशाह के पुत्र शाहंशाह, और फिर महीपत शाह ने तिब्बत पर आक्रमण करके तिब्बतियों को पराजित किया था, और उनसे अपने राज्य की तिब्बत से मिलनेवाली सीमा को स्थिर किया था। तिब्बत प्राचीन काल से हमारे द्वारा पराजित किया हुआ देश था। उस पर चीन का प्रभुत्व मान लेना ही एक भूल थी।

अकबर ने यहाँके राजाओं से प्रसन्न होकर उनसे कोई कर या ख़िराज नहीं लिया, और उनको स्वतंत्र ही रहने दिया। यहाँके राजा ने अकबर से कहा था कि आप हमसे क्या लीजियेगा ? हमारा राज्य तो ऊँट की पीठ के समान ऊँचा-नीचा है।" पता नहीं यह अकबर की दूरदर्शिता थी या इस कथन का हास्य कि जिसके कारण अकबर ने इन्हें स्वतन्त्र रहने दिया। अकबर के बाद महाबत खाँ बक्शी ने गढ़वाल पर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीशाह ने पहले तो सेना को घुस आने दिया, और फिर सब पर्वतीय मार्ग बन्द कर दिये। मुगल सेना का कुछ ही दिनों में बुरा हाल हो गया। सबकी नाक कटवाकर पृथ्वीशाह ने अपना इनाम माँगा, और उनके सरदार ने बेइज्जती से बचने के लिए आत्महत्या कर ली। फरिश्ता ने भी १६२३ में इस राज्य की चर्चा में लिखा है कि यह बड़ा विस्तृत राज्य था। यहाँ मिट्टी को धोकर सोना निकला जाता था, ताँबे की खानें थीं, तिब्बत तक यह राज्य फैला हुआ था। उसने यह

भी लिखा है कि यहाँके राजा के पास ८०,००० घुड़सवारों की सेना थी, और अकूत धन था।

यहाँके राजाओं में एक विश्वास चला आता है कि जो पुत्र पिता के अर्जित धन का व्यय करता है उसकी आत्मा पतित हो जाती है। इस कारण प्रत्येक राजा स्वयं अपने बाहुबल ही से धन अर्जित करता था, और पिता के कोष पर मुहर लगा दी जाती थी।

इस राज्य में अंग्रेजों को लानेवाले हरखदेव जोशी थे। वे पूरे चाणक्य थे। कभी गढ़वाल में रहकर कमाऊँ राज्य से मिल जाते थे, फिर कमाऊँ में रहकर गढवाल की खैरख्वाही करने लगते थे। अन्त में वे ब्रिटिश से मिलकर उनको ले आये और यह सब क्यों—केवल अपने हित के लिए। सबको वे उनका ही हित दिखाते थे और साधते थे अपना। ब्रिटिश राज्य में भवानीशाह के बाद राजाओं के नये नगर बसाने का शौक उत्पन्न हुआ। अतः प्रतापनगर, कीर्तिनगर, नरेन्द्रनगर, बसाये गये। वह धरती जिसने यह सब इतिहास देखा है उसका बहुत-सा भाग अब जलमग्न होकर भागीरथी के गर्भ मे समा जायगा और उसका एक नया-सा नाम होगा 'टेहरी डैम।' यह सोचकर एक विचित्र-सी भावना उत्पन्न होती है, परिवर्तन! परिवर्तन ही जगह का नाम है।

परन्तु आज जब कि राज्यों की सीमा जिलों की सीमाओं में परिवर्तित हो गयी है वहाँ टेहरी एक दूसरा जिला है और उत्तरकाशी एक दूसरा जिला।

उत्तरकाशी मे सरकार की ओर से जो उद्योगशाला खुली है उसमें कुछ सुन्दर सामान बनाया जा रहा है। उनके लिए कपड़ों मे 'ट्वीड' की वहाँ बड़ी बिक्री है। ऊन भी बहुत अच्छा बनने लगा है, साथ मे पिपिरी वृक्ष की सफेद सी लगनेवाली लकड़ी का सामान भी अच्छा बनता है। स्कूल के समारोह में कुछ सुन्दर कविताएँ सुनने को मिलीं। उत्तर काशी में जो एक और विशेष रूप से उल्लेखनीय संस्था देखी वह भी नेहरू 'माउण्टेनियरिंग इंस्टिट्यूट' (नेहरू पर्वतारोहण संस्थान)। यह संस्था पर्वतारोहण का प्रशिक्षण देती है। पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों की यहाँ भिन्न-भिन्न समय में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह इसके जन्मदाता है, और वे उसका प्रशिक्षण भी देते है। ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह भारत में ऐसे दो प्रशिक्षण केन्द्र और भी खोल चुके है: एक है मनिला में और दूसरा दार्जिलिंग में। जितनी सुन्दरता से ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह ने संस्था को सजाया है उसका वर्णन करना कठिन है विशेष रूप से इनके दो काष्ठ कुटीर (लौग कैबिन) 'भागीरथी' और 'सनो पंथ' तो इतने रुचि और सावधानी से बनाये गये हैं कि लकड़ी के जरा से हेर-फेर से सुन्दर नमूने निकल आये है। साथ ही आधुनिक निवास स्थान की सारी सुविधायें भी उनमें हैं। नवीनतम स्नानागार बहता हुआ गर्म पानी, सुन्दर रसोई। उसकी सजावट भी उन्होंने भागीरथी में बहकर आई लकड़ियों में नये-नये आकार खोज कर की है। उन्ही सूखी लकड़ियों में कहीं चिड़िया का आकार निकल आया है, तो कही एक नर्तकी का। ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह को एक शिकायत भी है उत्तर प्रदेश से। वे कहते हैं कि यह संस्था खुली तो है उत्तर प्रदेश मे, परन्तु उसमें प्रशिक्षण के लिए प्रायः सभी प्रान्तों के लोग आये, यदि नहीं आये तो उत्तर प्रदेश के! वहाँ हमें पर्वतारोहण की उच्च शिक्षा प्राप्त करती हुई बम्बई प्रान्त की छः लड़कियाँ मिलीं। दो-दो लड़कियों के साथ एक-एक प्रशिक्षक था। अपने कंधों पर सामान लादे वे गंगोत्री की ओर जा रही थी। आवास की उन्हें कमी नही—ऊपर खुला नीला आकाश, और नीचे बर्फ। आग जलाई न, कैम्प लगाये और मंगल मनाया।

उत्तर काशी के विश्वनाथ मन्दिर में हमने मृत्युञ्जय पूजन किया। पूजन में प्रायः घंटा-सवा घंटा तो वहाँ बैठना ही पड़ा। इतने संन्यासियों और गृहस्थों को एक साथ किसी मन्दिर में पूजन करते मैने पहिले नही देखा था। गृहस्थ तो हर मन्दिर में जाते ही हैं। पर संन्यासियों को इस प्रकार पूजन करते मैने पहली बार देखा। जैसे ही कोई सन्यासी मन्दिर में आता मेरा ध्यान उचट जाता। मैं यह देखने लगती कि कैसी पूजा करते हैं—एक दो संन्यासियों को घंटों बैठे और स्तुति करते भी देखा। स्तुति के समय शब्दों के साथ-साथ भाव भी उनके मुख पर बार-बार आये। काशी के बारे में कहा जाता है "राँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी, इनसे बचे तो सेवै काशी" पर वहाँ राँड़, साँड़ तो मन्दिरों और उनके पास बहुतेरे दिखे, संन्यासी यहाँ उत्तर काशी में आकर देखे।
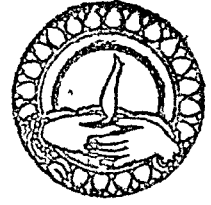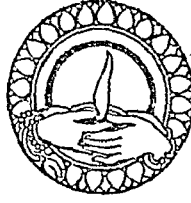
[क्रमशः

लक्ष्मी की वापसी

मूल लेखक—श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

अनुवादक—श्री गुलाबचन्द्र विश्वकर्मा

एक थे ब्राह्मण, बड़े परिश्रमी और अत्यन्त पुण्यवान्। चमकता हुआ विशाल ललाट। उस ललाट में सौभाग्य लक्ष्मी ने स्वयं आश्रय लिया था। उनका हर काम महान् और परोपकारी होता था। हर काम में सफलता मिलती थी उन्हें, क्योंकि उनकी कर्मशक्ति में यश-लक्ष्मी निवास करती थी। उनका कुल निष्कलंक था। पत्नी, पुत्र, कन्या और वधू के गौरव से वह निष्कलंक कुल श्रेष्ठतर हो गया था। इसलिए कि कुल-लक्ष्मी उनके यहाँ वसती थी।

ईर्ष्या से विह्वल पाप ब्राह्मण के घर के चारों ओर अधीर होकर चक्कर काटता रहता। उससे यह सब देखा नहीं जा रहा था। बड़े सोच-विचार के बाद एक दिन वह अलक्ष्मी को अपने साथ लाया और द्वार पर से ब्राह्मण को पुकारा।

'कहिए क्या आज्ञा है?' ब्राह्मण ने पूछा।

पाप बोला—'मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरे कष्टों की गिनती नहीं। आपसे प्रार्थना है कि मेरी संगिनी को कुछ दिनों के लिए अपने यहाँ आश्रय दें।'

'मैं गृहस्थ हूँ। आश्रय माँगनेवाले को आश्रय देना मेरा धर्म है। मुझे कोई आपत्ति नहीं, ये यहाँ खुशी-खुशी रहें। बहू-बेटी के समान ही मैं इनकी देखभाल करूँगा। और चाहो, तो जब तक तुम्हारे कष्टों का अन्त नहीं हो जाता, तुम भी रह सकते हो।' ब्राह्मण बोला।

लेकिन लाख बुलाने पर भी पाप आने का साहस न कर सका, क्योंकि ब्राह्मण के आश्रय में धर्म था।

पर अलक्ष्मी को आश्रय देते ही विचित्र परिवर्तन होने लगे। फल से लदे वृक्षों के फल गिर गये और फूल मुरझा गये।

रात को ब्राह्मण देवता जप कर रहे थे। उसी समय उन्होंने किसीका रोदन सुना। बहुत आश्चर्य हुआ जैसे कोई बिलख-बिलखकर रो रहा था। जप पूरा करके जब उठे तो देखा—उन्हींके ललाट से एक ज्योति निकली। वह ज्योति एक विचित्र नारी-मूर्ति बन गयी। अब तक वही विलाप कर रही थी।

'कौन हो माँ तुम?' ब्राह्मण ने पूछा।

नारी-मूर्ति ने उत्तर दिया—'मैं.........मैं तुम्हारी सौभाग्य-लक्ष्मी हूँ। अब तक तुम्हारे ललाट में रहती आयी। लेकिन आज छोड़कर जाना पड़ रहा है तुम्हें! इसलिए रो रही हूँ।'

ब्राह्मण देर तक चुप रहे फिर बोले—'माँ! क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझसे कौन-सा अपराध बन पड़ा है?'

'तुमने आज जिस स्त्री को आश्रय दिया है वह अलक्ष्मी है। अलक्ष्मी और मैं—दोनों साथ-साथ नहीं रह सकतीं।'

ब्राह्मण ने निःश्वास छोड़ा। भाग्य-लक्ष्मी को उन्होंने प्रणाम किया। वह कुछ बोली नहीं। भाग्य-लक्ष्मी चली गयी।

सवेरे सोकर उठने पर उन्होंने देखा—'वृक्षों के फल झड़ गये हैं। फूल सूख गये हैं। तालाब का पानी सूख गया है। खेतों में फसल नही। गायों के थनों में दूध नहीं। घर श्रीहीन पड़ा है।

रात को फिर वैसा ही रोदन हुआ।

ब्राह्मण के शरीर से एक दिव्यांगना प्रकट हुई। उसने कहा—'मैं तुम्हारी यश-लक्ष्मी हूँ। तुमने अलक्ष्मी को शरण दिया। भाग्य-लक्ष्मी ने इस पर तुम्हें छोड़ दिया। इसलिए मैं भी अब तुम्हारे यहाँ रहने को नहीं।'

ब्राह्मण ने उसे प्रणाम किया। वह भी चली गयी।

दूसरे ही दिन से लोक-निन्दा शुरू हो गयी—यह ब्राह्मण बड़ा ही लम्पट है। उसने जिस स्त्री को अपने यहाँ रखा है उस पर उसकी बुरी नजर है। सुनकर भी ब्राह्मण ने इसका प्रतिवाद नहीं किया। कान में तेल डाल रखा।

उसी रात को फिर एक नारी-मूर्ति ब्राह्मण के शरीर से निकलकर बाहर आयी। वह कुल-लक्ष्मी थी। उसने कहा—'घर में अलक्ष्मी के आने से भाग्य-लक्ष्मी चली गयी, यश-लक्ष्मी भी गयी। लोग तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। ऐसी हालत में तुम्हारे यहाँ कैसे रह सकती हूँ।

कुल-लक्ष्मी भी ब्राह्मण का त्याग कर चली गयी।

अगले दिन ब्राह्मण के शरीर से एक पुरुष-मूर्ति निकली, विशाल शरीर और अनोखी चमक।

'आप कौन हैं ?' ब्राह्मण ने पूछा।

उस दिव्य कान्ति पुरुष ने कहा—'मैं धर्म हूँ।'

'धर्म ? आप धर्म हैं—लेकिन आप मुझे कौन-से अपराध पर छोड़ रहे हैं ?'

'अलक्ष्मी को अपने यहाँ आश्रय दिया है, तुमने।'

'तो क्या इतने से मैंने अधर्म किया है ?'

'नहीं।' धर्म कुछ देर सोचकर बोला।

'तब ?'

'भाग्य-लक्ष्मी तुम्हें छोड़ गयी।'

'आश्रय माँगनेवाले को आश्रय देना जब अधर्म नहीं, तो निःसन्देह ही भाग्य-लक्ष्मी ने मेरे अधर्म के कारण मेरा त्याग नहीं किया है। उसने मुझे इस कारण छोड़ा है कि उसे अलक्ष्मी का साथ असह्य है।'

'ठीक!'

'भाग्य-लक्ष्मी का अनुसरण किया यश-लक्ष्मी ने और उसके पीछे-पीछे गयी कुल-लक्ष्मी; मैंने उफ तक नहीं किया, क्योंकि यह उनकी रीति है। एक के पीछे दूसरी आती है और जाती भी हैं—एक के बाद दूसरी। लेकिन आप मुझे किस अपराध के लिए छोड़ेंगे ?'

ब्राह्मण के इस तर्क पर धर्म स्तम्भित रह गये।

ब्राह्मण ने कहा—'मैं आपको कभी भी जाने नहीं दूँगा। मैं आप ही के सहारे तो अब तक जीवित हूँ। जब तक मैं आपको जाने को नहीं कहता, तब तक आपको जाने का अधिकार नहीं है। मैं ही आपका अस्तित्व हूँ।'

धर्म निरुत्तर रह गये। अपनी भूल उन्हें मालूम हुई। थोड़ी देर बाद वे बोले—'तथास्तु! तुम्हारी जय हो।' इतना कहकर धर्म ने ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश किया।

धर्म के प्रभाव से उसी रात पुनः किसी नारी के रोने की आवाज आयी। ब्राह्मण ने देखा—अलक्ष्मी रो रही है। उसने आकर ब्राह्मण से कहा—'अब मैं जाती हूँ।'

'अपनी इच्छा से जा रही हो ?' ब्राह्मण ने पूछा।

'हाँ, अपनी इच्छा से।' और वह आँखों से ओझल हो गयी।

उसी रात सौभाग्य-लक्ष्मी वापस लौटी। उसके पीछे-पीछे आयी यश-लक्ष्मी और फिर कुल-लक्ष्मी।

प्रियतम

श्री वैकुण्ठनाथ मिश्र "वैकुण्ठ"

प्रियतम! तेरा वह विरागमय प्रेम भरा रस प्याला,
पी न सका भरपेट आह! क्यों हृदय अंध मतवाला!

तेरी नैसर्गिक प्रतिमा वह उर-पट पर अंकित सी,
दिखा रही झिलमिल प्रकाश तमपुंज शांति शंकित सी।

बढ़ता है मस्तक चरणों पर एक बार झुकने को,
रह जाता विभ्रान्त चित्त यह विश्व मोह फँसने को।

बहुत किया छल छलिया! तूने अब उन्माद हटाकर,
दे दे भिक्षा-प्रेम दया कर मुझ दुखिया को आकर।

———

हीरा

श्री रसिकविहारी

साढ़े-दस बजे रात को क्लब से घर लौटकर हाथ-मुँह धोकर खाने की मेज पर आये सुरेश बाबू। रमा, सुरेश बाबू की चौथी लड़की, पिता के भोजन की देख भाल करती है। पास आ बैठी।

भोजन के बाद अपने कमरे में आये। इधर-उधर की बात के बाद उनके सोने को जाने से पहले रमा ने उन्हें ...नाया कि आज घर के छोकरे नौकर हीरा को भाई ने ...त मारा है। भाई कालेज में पढ़ता है।

माँ के मना करने पर भी चुपके से तीन बजे के शो 'पूनम की रात' देखने चला गया था। पड़ोस के छेदी ...र मटरू अहीर के लड़के भोला के साथ। नौकरानी को ...ठमूठ कह गया था कि उसके दूर के रिश्ते की भौजी के ...ड़का हुआ है, खबर पाकर देखने जा रहा है। पर न जाने ...सूने भंडाफोड़ कर दिया और उसने इन्कार नहीं किया।'

'लेकिन मारने-पीटने की क्या जरूरत थी? डाँट दिया ...ता।'

'आजकल डाँट-फटकार का कोई असर नही होता ...स पर। अब सिर्फ सिनेमा-तमाशे की बात ही उसके ...माग में घूमती रहती है हरदम। अभी उस दिन शिवरात्रि ... भी तो माँ ने पैसे दिये थे, 'होल नाइट' शो देखने गया ...। उस पर भी उसकी हविश नहीं मिटी।'

'उसे आज किसने पैसे दिये?'

'पता चला है छेदी ने अपनी माँ से दो रुपये लिये थे। ...सी से सबने सिनेमा देखा है। इसके अलावा कभी-कभार ...से जो कुछ मिलता है जोड़ता जाता है एक टीन के बक्से ...। उसे खर्च करता है सिनेमा पर। न जाने कैसा नशा ...वार हो गया है, उस पर सिनेमा का।'

रमा ऊपर चली गयी। सुरेश बाबू ने एक सिगरेट ...लकर थोड़ा पढ़ने में मन लगाने की कोशिश की। नई ...ाईफ' मैगजीन में तसवीर देखी दो-एक। स्टेनली गार्डनर ... अधपढ़े नावेल को खोलकर पेरी मेसन के कारनामे पढ़ने ...गे, तबीयत नहीं लगी। डी० एच० लारेन्स का 'सन्स ...न्ड लवर्स' को खोला पढ़ने के लिये तबीयत नही लगी ...समें भी।

रात बढ़ने लगी। कहीं कोई आवाज नहीं है, तो भी जैसे किसीके गले की गंभीर आवाज की गमक-सी सुनाई पड़ रही है। कुछ नही है आँखों के सामने, फिर भी लगा जैसे कि वे अनेक घटनाओं के दृष्टा हैं।

हाथ की किताब को मेज पर रखकर हीरा के बारे में सोचने लगे सुरेश बाबू।

पाँच साल पहले हीरा आया था उनके यहाँ। तब किराये के मकान में रहते थे वे, गाय थी एक उनके यहाँ। गिरस्ती का काम तो उनकी स्त्री नौकरानी की मदद से चला लेती थीं, गाय की खबरगीरी के लिये एक छोकरे नौकर की जरूरत थी।

हीरा एक रिक्शेवाले का लड़का है। रिक्शेवाले के घर शायद दूसरी औरत थी और उसके कई बच्चे भी थे। हीरा तभी उसके गले ही हड्डी बना हुआ था। इसीलिये आठ रुपये माहवारी और खुराक के काम पर उसे लगाकर उसके बाप को चैन का एहसास हुआ।

बारह-तेरह साल का था तब हीरा। अपनी उमर के लिहाज से कई गुना ज्यादा मेहनत कर सकता था। गाय की सेवा करता था। किराये के मकान में नल या ट्यूबवेल नही था, कुँआ था—हर रोज कम से कम डेढ़ सौ बाल्टी पानी खीचना पड़ता था उसे। सब काम में अगुआ बनने की आदत थी हीरा में। मेहनत के सारे काम एक-एक करके उसके जिम्मे आ गये। कड़ी से कड़ी मेहनत का काम बड़ी खुशी से कर डालता था छोकरा।

मालकिन में एक अजीब आदत थी। मालिक या लड़का जब बाजार जाते सारे दिन या दो-तीन दिन की जरूरत की छोटी-मोटी चीजें, मिर्च मसाले वगैरह इकट्ठा नहीं मँगवा पाती थीं। इसका नतीजा यह होता कि दिनभर 'अरे, जीरा ले आ छटाँक भर मोड़ की दुकान से या 'जा तो, चट से मिर्च ले आ दो आने का' लगा ही रहता था। मिर्च अगर ले आया, तो पाँच मिनट बाद फिर उसी तरह 'यह देख, हल्दी की बात तो भूल हो गयी। जा तो जल्दी—'

हीरा के सुभाव मे आलस कतई नही था। चरखी की तरह घूमता रहता था। उसी दरमियान फिर, फूल के पौधे और शाक-सब्जी लगाता था, अपने हाथ की बनायी बंसी से मछली पकड़ता था। मालकिन मन ही मन खुश होने पर

भी जवान से जाहिर नही होने देती थीं। गरज यह कि हीरा को वे बहुत चाहने लगी थीं।

सुरेश बाबू की नजर इन बातों पर जाने की बात नहीं, जाती भी नहीं। हीरा उनकी नजर में तब आया जब से उनके सोने के कमरे में उसने हर रोज विस्तर लगाने का काम शुरू किया।

इस काम को कोई बाहरी आदमी करे, इसे वे पसन्द नहीं करते थे। ढीले-ढाले किस्म के आदमी नहीं हैं वे। ताहम अपने ही कमरे में रुपये-पैसे, कागज-पत्तर वगैरह को हर वक्त ताले चाभी के अन्दर रखना भी तो मुमकिन नहीं है एक इनसान के लिये। अब तक कमरे को झाड़ने-पोछने के लिये महरी आती थी एक बार, बाकी सब काम घर की लड़कियाँ किया करती थीं।

अपने शयन-कक्ष में हीरा का इस तरह प्रवेश नही भाया उन्हें। इसके अलावा, जो कुछ हद तक कुदरती भी है और अकसर हर परिवार में देखने को मिलता है—मालकिन की नेकनज़र जिस पर होती है, मालिक को वह फूटी आँख भी नही सुहाता। इसके विपरीत मालिक का प्यारा मालकिन की आँख की किरकिरी बन जाता है।

हीरा के मामले में मालकिन की तरफदारी जाहिर तौर पर न मालुम होने पर भी इसका अन्दाजा लगाने में दिक्कत नहीं हुई। सुरेश बाबू जबान से कुछ न कहने पर भी खुश नहीं थे हीरा से।

एक बार तो उन्होंने करीब-करीब रंगे हाथ ही पकड़ ली थीं हीरा की चोरी। रात को कमीज की जेब में एक रुपयेवाले दो नोट और कुछ रेजगी रखकर सोये थे। सुबह मार्निंग वाक से जब लौटे तब विस्तर उठा लिया गया था। मालकिन ने हीरा को पास के एक म्युनिसपैलिटी के स्कूल में भर्ती करा दिया था, वह स्कूल चला गया था। जाने के पहले घर के सब काम काज कर गया था।

दराज खोलकर लड़के को बाजार जाने के लिए रुपये देकर उन्होंने सोचा कि कमीज की जेब में जो खैरीज है उसे रख दूँ। जेब में हाथ डालकर देखा कि एक रुपया है और एक नहीं है। पहले उन्होंने सोचा कि शायद किसीको दे दिया हो; लड़कियों ने किसी काम के लिये निकाल लिया हो। पता लगा कि उनमे से किसी ने नहीं लिया है।

एक रुपया कोई बड़ी चीज नही है। पर कोई चीज खो जाय और उसें यों ही चुपचाप मान लिया जाय यह भी मुमकिन नहीं। जब इससे पहले इस तरह कभी कोई चीज न खोयी हो।

चाहे जितनी जरूरत पड़े उनके बच्चे बगैर पूछे कोई चीज कभी नहीं लेंगे, यह जानते है वे। मालकिन भूलकर भी इस कमरे में नही आतीं। झाड़-पोछ करनेवाली नौकरानी बहुत पुरानी और विश्वासी है। उसने अभी तक कभी कोई शक का काम नहीं किया। अब अकेला वाकी रहता है हीरा। बेशक यह उसीका काम है।

जैसे ही यह बात उनके मन में आई, एक जिद सवार हो गयी उन पर। उमर भी कम थी कुछ तब, और फिर उन दिनों तरह-तरह की चिन्ताओं से मन भी अशान्त था, हीरा के लौटते ही उसके पीछे पड़ गये। मार-पीट की नौबत आ गयी।

उसने कबूल नहीं किया किसी तरह। पुलिस का डर दिखाने पर में-में रोने लगा। आँखों में पानी देखकर स्वभावतः ही स्त्रियाँ उसके पक्ष में हो गयी। फलस्वरूप सुरेश बाबू को वाक्यबाण सहन करने पड़े।

'कही खर्च कर आये हैं खुद ही, भूल गये हैं। हीरा के बक्स पिटारे की तलाशी लेकर ही देख लें—वह तो स्कूल गया था—छिपायेगा कहाँ ? वगैरह।

उत्तेजना की पहली लहर बीत जाने के बाद उनके मन में भी संदेह हुआ। यह भी हो सकता है कि क्लब में किसी को दिया हो, अब याद नहीं। लेकिन नहीं उन्हें अच्छी तरह याद है कि कमीज खोलते वक्त उनके सामने की जेब से दो नोट ही फर्श पर गिरे थे, उन्होंने फिर उठा कर रख दिया था।

कही उन्होंने यह बात। उन्होंने कहा कि तभी उन्हें याद है कि नोट दो थे, एक नहीं।

हीरा का डर तब दूर हो गया था। उसके तरफदारों की तादाद भी काफी अच्छी थी। हिम्मत लौट आयी उसकी। उसने बताया कि फर्श से एक नोट उठाकर उसने बाबूजी के गद्दे के नीचे रख दिया था।

निकला वहाँ से नोट। सुरेश बाबू को घर के लोगों के सामने नीचा देखना पड़ा। लेकिन उनके मन का शक दूर नहीं हुआ। उनके मन में आया कि हीरा ने चुराने की गरज से ही नोट को गद्दे के नीचे रक्खा था। अगर उनकी नजर में यह चोरी नहीं आती तो मौका तक कर निकाल ले जाता उसे।

पर इस मुतल्लिक और कोई बात नहीं कही उन्होंने। हीरा पर मन ही मन नाराज बने रहे।

दूर के मुकाम से जिस दिन उनके मझले लड़के के दुर्घटनाग्रस्त होने का समाचार आया खुद सुरेश बाबू तब डबल प्लूरिसी से विस्तर पर पड़े थे। एक रिश्तेदार के साथ उनकी पत्नी लड़के के पास चली गयीं। घर में बाकी लड़के-लड़कियाँ और हीरा रहे। गिरस्ती का बोझ, उनकी तीमारदारी की जिम्मेदारी, सब इकट्ठी होकर रमा पर आ पड़ी। इसी मौके पर करीब दसेक दिन तक ऐसी हालत रही कि सुरेश बाबू को याद ही नहीं आता कि वे दुर्दिन कटे कैसे। बिलकुल बेहोशी की हालत में नहीं, अर्द्ध-विस्मृति की कष्टकर अवस्था में व्यतीत हुए उनके ये कई दिन।

तकलीफ और फिक्र की क्या कोई इन्तिहा थी? दूर देश में लड़का अस्पताल में पड़ा था। मोटर एक्सीडेण्ट से सिर में गहरी चोट आयी थी। प्लास्टिक सर्जरी चल रही थी। खबर तो नियमित आ रही थी, उससे कुछ तसल्ली मिलने पर भी मन अशान्त ही रहता था।

रमा को विश्वविद्यालय की परीक्षा देनी थी। पढ़ने-लिखने के दरमियान पिता की सुश्रूषा के बाद समय ही कितना बचता था?

खाना वगैरह कौन पकाता है, सुरेश बाबू को पता नहीं। लड़के-लड़कियाँ अपनी पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ घर और बाहर के सब काम कर रहे हैं, यह वे समझते थे। छोटी लड़की निशा मौका मिलते ही पास आकर बैठ जाती, सिर और बदन पर हाथ फेरती। निशा सबसे छोटी और लाडली संतान है उनकी। वह भी कोई काम अपने आप कर सकती है, पहले सोच ही नहीं सकते थे वे। अब उन्होंने देखा कि मौका पड़ने पर वह भी सब काम में हाथ बँटा सकती है। नौकर-नौकरानियों में कौन क्या करता है, यह जानने की जरूरत नहीं महसूस की उन्होंने।

बीमारी जब कुछ कम हुई तब सुरेश बाबू को पता चला कि उनकी सेवा सुश्रूषा में हीरा का भी भाग है, और निहायत कम नहीं।

दोपहर को लड़के-लड़कियों के स्कूल-कालेज चले जाने पर उनके कमरे के दरवाजे के पास लगातार रहता है हीरा, बेचैनी महसूस करने पर पास आ जाता है। पानी का गिलास, पीकदानी या चेम्बर पॉट जिसकी जब जरूरत पड़ती है, सामने ले आता है। वक्त पर दोपहर को दो खुराक दवा भी पिलाता है, एक बजे और तीन बजे।

लड़के-लड़कियों के लौटने पर चाय या काफी, जिसकी फरमाइस होती है, बनाता है। बाजार से चीजें लाने में उसके उत्साह की बात बतायी ही जा चुकी है। इसी फिराक में रहता है वह कि रमा या निशा फल, बिस्कुट या डबलरोटी मँगवाती हैं या नहीं।

सुरेश बाबू ने सुना कि साइकिल चढ़ना सीख गया है हीरा। पास और दूर के हर काम के लिए मौका मिलते ही साइकिल से भागता है। लड़के से झिड़की भी खाता है इसके लिये, यह भी सुना है उन्होंने।

पता चला है उन्हें कि रसोई का काम रमा अकेले ही करती है। उसकी इम्तहान की पढ़ाई में इससे हर्ज हो रहा है, जानकर भी लाचार हैं वे। तन्दुरुस्त रहने पर घर के बहुत से कामों में वे खुद हिस्सा बँटा सकते, लेकिन कोई चारा नहीं है अब। चुपचाप देखते रहने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते वे, लाख इच्छा रहने पर भी।

निशा से उन्हें मालूम हुआ है कि हीरा रोटी वगैरह बनाना सीख गया है, अकसर बनाता है और अच्छी बनाता है। रसोई के काम में रमा की बहुत मदद करता है। इसका नतीजा यह हुआ कि रमा हीरा की अच्छाई-बुराई से वाकिफ हो गयी है हाल में।

लेटे-लेटे ही उसकी काम करने की सफाई को देखते रहते हैं। एक बार जो काम उसे बताया जाता है फिर दुबारा बताने की जरूरत नहीं पड़ती। फर्नीचर झाड़ना-पोंछना, बिस्तर उठाना, दिन में सुरेश बाबू को सहारा देकर बैठने के कमरे वाले पलंग पर लिटाना, डाक्टर आने पर इन्जेक्शन की सुई के लिये पानी खौलाना, सेरम के टूटे काँच रास्ते के डस्टबिन में डाल आना—ये सब सुरेश बाबू देखते हैं। बड़े ढंग और सिलसिले से हो जाते हैं ये सारे काम।

अपनी तत्परता से उन्हें आकर्षित किया है हीरा ने। आलस्यहीनता से भी। उन्होंने गौर किया कि पहले वह जिस तरह अपने संगी-साथियों के साथ चुपचाप खिसक जाया करता था बाहर अब उसकी यह आदत कम पड़ गयी है।

एक नयी दिलचस्पी पैदा हुई है खेल में उसकी। मुहल्ले के दूसरे शरीफ घराने के लड़कों के साथ शाम को क्रिकेट खेलता है मकान के सामने के मैदान में। उसमें अपनी कुशलता दिखलाता है। कोई भी काम हो, चाहे वह घर का हो या बाहर का, जरूरी हो या खेल का—सबको एक सी एकाग्रता से करने की अद्भुत क्षमता है छोकरे में। एकाग्रता के साथ कर्मनिष्ठा अन्वित होने पर सफलता अवश्यम्भावी होती है, विशेष प्रतिबन्ध उत्पन्न न होने पर।

सुरेश बाबू की सेहत ठीक होने में करीब दो महीने लग गये। अस्पताल में लड़के का खतरा दूर होने पर उनकी पत्नी भी परदेश से वापस लौट आयीं। अभी उसे काफी अरसे तक अस्पताल में ही रहना पड़ेगा, ऐसा पता चला है। विदेश से कृत्रिम खोपड़ी (आर्टिफिशियल स्कल) का अंश मँगवाकर लगाना पड़ेगा। इसमें भी वक्त लगेगा। दुर्घटना के पहले धक्के और भय के दूर हो जाने से मुसीबत को सहने की आदत पड़ गयी है—अच्छे दिनों के आने की उम्मीद में इन्तजार करते रहना पड़ेगा।

मालकिन के लौट आने पर मकान की हालत पहले जैसी हो गयी। यानी, वही डाट-फटकार, चिल्ल-पों, और

झंझट का सिलसिला फिर जारी हो गया। इसी बीच नया मकान भी बनना शुरू हो गया था।

थोड़ी सी जमीन खरीद रक्खी थी पास ही। नीव पड़ चुकी थी, अब दीवारें खडी हो रही थी। ईंट-सीमेंट-लोहा-लक्कड़ का झमेला अपने दस्तखतों से तय करते थे सुरेश बाबू, खबरदारी की सारी जिल्लत भोगनी पड़ती लड़के-लड़कियों को। ठेकेदार, मिस्त्री, मजदूर खटाने के मामले में सुरेश बाबू जाहिरा तौर पर कोई हिस्सा नही लेते। ले नही सकते इसलिये नही, शारीरिक अक्षमता के कारण। फिर, स्वास्थ्य लाभ के साथ साथ अपनी जीवन-यात्रा के धन्धे मे भी लगना पड़ रहा हे। दो-ढाई महीने की अकर्मण्यता से सचित पूँजी क्षीण हो गयी थी। उमर बढ़ने के साथ ही साथ व्यय की परिधि मे भी क्रमशः विस्तार हो रहा है। बाल-बच्चों वाले मामूली आय के आदमी के लिए वक्त के साथ कदम मिलाकर चलने मे हर रोज दिक्कत का सामना करना-पड़ रहा है।

जहाँ तक बस चलता है मेहनत से नही घबडाते सुरेश बाबू। फल के विषय में निरपेक्ष होकर कर्म करने की बात सोचने से प्रसन्नता होती है, पर गिरस्ती नही चलती। गीता के निष्काम कर्म के उपदेश के साथ दैनन्दिन जीवन की नोन-तेल-लकडी का विरोध नही पैदा करना चाहते वे। अपना फर्ज अदा किये जाते है। वे आत्म-विश्वासी है, परिश्रमी भी। दोनों के मेल से अच्छी तरह चल जाते है उनके जिन्दगी के धन्धे।

नया मकान आधा तैयार होते ही वे सब चले जाते है उसमे। बेढंगी सी लम्बी जमीन है। एक कोने में मकान खड़ा करके बाकी हिस्सा खाली छोड़ रक्खा है सुरेश बाबू ने। खपचियो से घिरे एक बाडे मे कुछ फूल के पौधे भी लगाये हैं। पर इससे चौपायों का उपद्रव तो रुक जाता है, लंगूरों का उपद्रव नही रुकता। हीरा ही सहारा है—वही अपनी तीर-कमान और गुलेल से जितना मुमकिन होता है लंगूरों को भगाता है। ये लगूर छोटे बच्चे और औरतों से कतई नही डरते, बुरी तरह मुँह चिढाते है। कभी-कभी तो उन पर झपट कर भयभीत भी कर देते है।

बागवानी के काम मे हीरा उनका दाहिना हाथ बन गया। पहले किराये के मकान मे बेकार के पेड़-पौधे लगाया करता था। अब इस मकान मे बढिया फूल के पौधे लगाने, उनको सीचने, जमीन खोदने-निराने-सब काम मे हीरा आगे रहता हे। कब घर के सब काम निपटाता, गाय को सानी-पानी देता पता नही चलता था सुरेश बाबू को। धीरे-धीरे उनके मन मे हीरा पर निर्भरशीलता की प्रवृत्ति तो होती है, पर पूरी तरह उसका विश्वास नही कर पाते।

वजह है इसकी। खेरीज के इधर-उधर होने पर पता लगना मुमकिन नही। रमा ने एकाध दिन देखा है कि दराज मे चाबी लगाये रखकर सुरेश बाबू के गुसलखाने चले जाने पर हीरा ने दराज खोला है। लिया नही कुछ या ले नही सका। लेकिन हाथ लगाने की आदत नही गयी उसकी। सुरेश बाबू के चाची के बारे मे हमेशा सावधान न रह सकने पर भी रमा सावधान रहती है। क्या हीरा नही जानता इस बात को? जानता है। तो भी जैसे भीतर से कोई अदृश्य शक्ति उसे इस दुष्कर्म की ओर प्रेरित करती है।

इधर मालकिन ने प्रचार करना प्रारम्भ किया है कि मौका पाते ही हीरा खाना, मिठाई, बिस्कुट वगैरह मुँह में भर लेता है। इसे कोई संगीन जुर्म नही मानते सुरेश बाबू। अपने बचपन की बात याद आती है उन्हे। अब इस उमर मे भी कभी-कभी अपने हिस्से से ज्यादा एक आद कलाकन्द चुपके से मुँह में न डाल लेते हों, ऐसी बात नही। कहने का मतलब यह है कि हीरा अब उनकी कृपा-पूर्ण स्नेह का अधिकारी बन गया है।

किसी परिवार के जीवनक्रम के आवर्त में जो फँस जाता है वह अपरिहार्य हो जाता है उस परिवार के लिए। हीरा की भी यही स्थिति हो रही है अनुभव करते है सुरेश बाबू।

सोलह-सत्रह की उमर है अब हीरा की। अब उसके करीब-करीब सभी संगी-साथी आसपास के घरों के कम उमर के भद्र परिवार के लड़के है। सभी अच्छे लडके हों, ऐसी बात नही, स्कूल के भगोडे और आवारे ज्यादा है। वक्त की हवा के मुताबिक सबकी जुबान पर बम्बइया फिल्मों के चालू गाने, पहनावा ड्रेन पाइप और टीशर्ट का। चूँकि हीरा नौकर है—उसके वेश वास मे तभी थोडी बहुत भव्यता अभी तक बनी है। सुरेश बाबू ने उसे गुनगुनाते हुए सुना है। पर रमा का कहना है कि दोपहर को घर से बाहर जाकर वह जोर से 'परदे मे रहने दो, परदा न उठाओ........' की तान अलापता है।

इधर दूसरी मुसीबत और पैदा हो गयी—सहृदय पड़ोसियो की हीरा को बर्गलाने की कोशिश। पहले उन्होने उसके रिक्शेवाले बाप को हथियाया-समझाया कि इस उमर का लड़का अगर रोज मजदूरी भी करे तो हर महीने कम-से-कम पचास-साठ रुपये कमायगा। और वह रुपया मिलेगा उसे। बाप भी रुपया ही पहचानता है। सुरेश बाबू ने सुना कि हीरा की तनख्वाह कभी उसे नही मिली—उसका बाप आकर ले जाता हे। बाप और भी तरह-तरह के रूपक बाँधकर रुपये ऐंठता है। हीरा की माँ बीमार है, दस रुपये की मदद चाहिये, एक नये रिक्शे का बयाना देना है हीरा की तनख्वाह से पेशगी चाहिए पच्चीस रुपये। इसी तरह की बातें लगी ही रहती थी।

उसके गाँव का एक आदमी देशी शराब की दुकान मे काम करता है। वह भी आकर खीचता हे, 'पच्चीस रुपये मिलेंगे। यहाँ तो कुल आठ ही पाता है।'

पड़ोसियो मे से तो फोड़ने की कोशिश होती ही रहती

है, 'चला आ मेरे यहाँ, बारह रुपये दूँगा।' कोई और कहता, 'आ जा पन्द्रह रुपये मिलेंगे।'

प्रलोभनों का अन्त नहीं। पर हीरा पर न जाने क्यों इनका कोई असर नहीं होता। रमा की धारणा है कि वह इस परिवार के लड़के-बच्चों में शामिल हो गया, वह भी इस परिवार का एक सदस्य बन गया है। परिमार्जित जीवन का कुछ स्वाद पा गया है, नौकर की तरह हेय-स्थित में नहीं रहता, सचमुच ही उसे कोई कमी नहीं। खाना-कपड़ा घर के दूसरे लड़के-लड़कियों की तरह पाता है। वह कतई नहीं चाहता ज्यादा माहवारी की मजदूरी करना या शराब बेचना। वह अच्छी तरह जानता है कि [illegible] कामों से खाने-पहनने को नहीं मिलेगा उसे, सिर्फ नकद कमाई है जिसकी पाई-पाई ले लेगा उसका स्वार्थी बाप।

अधिक वेतन का प्रलोभन उसे नहीं लुभा पाता। वयोधर्म के कारण मन बहिर्मुखी हो गया है। नकद पैसा नहीं पाता, इसलिये सिनेमा देखने के लिए रमा की खुशामद करके पैसा माँग लेता है। फिलहाल और कोई व्यसन नहीं है उसे।

हीरा के समाज में अपराध-बोध की भावना बड़ी शिथिल होती है। सरकारी तालाब से चुपके से मछली पकड़ने या किसी के पेड़ों से फल-फूल तोड़ने को जुर्म नहीं समझा जाता। सुरेश बाबू की निगाह पड़ने पर डाँटते हैं। लेकिन उन्हें शक होता है कि घर के दूसरे लोग इन बुरी बातों पर कोई गौर नहीं करते।

× × ×

घड़ी में रात के एक बजने पर चौंक पड़े सुरेश बाबू। सुबह के पाँच बजेवाली ट्रेन से बाहर जाना है उन्हें। बाप रे! आद्योपांत हीरा की कहानी का मन्थन करते-करते कब इतनी रात हो गयी, उन्हें पता भी नहीं लगा।

सूटकेश सँभाला हुआ रखा है। रिक्शेवाले को भी कह दिया है। वक्त पर आकर घंटी बजायगा। फिर, जितने बजे उठना हो इरादा करके सोने पर ठीक वक्त पर नींद खुलती है उनकी।

रुपये कुरते की सामने की जेब में रख कर उसे टाँग देते हैं। एक रुपये की खेरीज बगलवाली जेब में डाल लेते हैं—एक चमकदार अठन्नी भी रखते है रिक्शे के भाड़े के लिए। चाबी तकिये के नीचे रखकर सो जाते है। सोने से पहले मार खाये हीरा का चेहरा उनके आँखों के सामने उभर आता है। अपने ही को दोषी जैसा समझने लगते हैं हीरा की पिटाई के लिए।

भोर के समय नींद खुलने पर गुसलखाने जाते हैं, पर हीरा को नहीं बुलाते। थोड़ी चाय मिल जाती तो अच्छा होता। खैर, न सही।

गुसलखाने से निकलकर देखते हैं कि हीरा निकल रहा है उनके कमरे से दियासलाई लिये। स्टोप जलायेगा।

पूछता है, "चाय या काफी?"

"जो कुछ हो जल्दी कर, ज्यादा वक्त नहीं है।"

कमरे मे घुसते ही उन्हें देख कर हीरा का अकबकाना उनकी निगाह से नहीं चूका है। लेकिन गौर नहीं करते उस पर। कपड़े बदलकर तैयार हो जाते हैं चटपट। हीरा चाय ले आता है।

चाय पीते-पीते, जैसे हीरा को रिश्वत दे रहे हों, उसी लहजे में कहते है, "ले इस रुपये को रख। आठ आने की सरसों की खली लाकर गुलाब के पौधों की जड़ में दो-दो चम्मच देना और यूकिलिप्ट के पौधों की जड़ों में भी। समझा?"

हीरा सिर हिलाता है। रिक्शे में सूटकेश रख देता है, छाता थमा देता है हाथ में। रात के उत्पीड़न के निशान चेहरे पर रहते हुए भी हीरा को इन सब कामों को सहज रूप से करते हुए देखकर जैसे उन्हें राहत मिलती है।

सरसों की खली खरीदने के बाद बचे बाकी पैसे का क्या होगा, उसकी चर्चा नहीं करते। अगर वापस न दे तो, और यह चाहते ही हैं वे मन ही मन, अगर नहीं देता तो न दे। और कल मार भी तो खाई है इतनी बेचारे ने।

स्टेशन पहुँचकर सूटकेश और छाता लेकर उतर पड़ते हैं रिक्शे से। रिक्शा के भाड़े के लिए जेब से पैसे निकालते हैं।

वह चमकदार अठन्नी नहीं है।

हीरा का अकबकाना, रात जग कर पूर्व स्मृति का रोमंथ—सब याद आ जाता है एक साथ।

आश्चर्य। तनिक भी गुस्सा नहीं आया उन्हें। रिक्शे का भाड़ा देकर टिकिट घर की ओर जाते हुए जोर से हँस पड़ते है—अपने आप। प्रशान्ति की हँसी। मुक्ति स्नान की हँसी।

थानेदार

मूल लेखक : **श्री सन्तोखसिंह**

अनुवादक : **श्रीप्रीतपाल विरात**

"देख बे घसीटे, यदि फिर मुझे इस नाम से बुलाया तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा, कहे देता हूँ...हाँ..." उसने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा, जैसे नीम की पत्तियाँ चबा रहा हो।

काला भुजंग और बेढंगा शरीर, सिर से पैर तक जैसे कोलतार में नहाया हुआ, चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े दाग...कुल मिलाकर यह था, नये गाँव के थानेदार हीरा सिंह का व्यक्तित्व। बच्चे उसे देखकर इस तरह दहल जाते जैसे वह कोई दैत्य हो। उसकी देह ऐसी गठी हुई थी, कि आसपास के गाँवों के नामी पहलवान भी उससे दो-दो हाथ करने से घबराते थे। हमेशा बीमार रहनेवाला वैद्य कृष्णदत्त उसे देखकर सोचता : भले ही मेरी दोनों आँखें चली जायँ, पर देह हो तो थानेदार जैसी......।

थानेदार ने न कभी पुलिस की वर्दी पहनी, न कभी अपने कन्धों पर थानेदारी के तमगे सजाये। यहाँ तक कि वह कभी थाने में भी नहीं गया। फिर भी वह थानेदार था। बचपन से थानेदार चला आ रहा था। बात यों हुई थी, कि एक बार वह अपने पशु चराकर वापिस लौट रहा था। रास्ते में, गाँव की चौपाल पर, एक थानेदार किसी कत्ल के बारे में छान-बीन कर रहा था। उसके इर्द-गिर्द बहुत से व्यक्ति खड़े हुए थे। इतनी भीड़ देखकर हीरा के पशु बिदक उठे, जिसको जिधर मुँह मिला, उधर भाग खड़े हुए। एक बूढ़ा व्यक्ति भैंस की टक्कर से कीचड़ में जा गिरा।

थानेदार ने उसकी इस लापरवाही पर दो-तीन चाँटे जड़ दिये। उस वक्त तो हीरा सारी पीड़ा पी गया, लेकिन घर आकर वह माँ के आँचल में सिर छिपाकर बुरी तरह रोने लगा।

उसकी माँ बिफर उठी थी—"कौन होता है वो निपूता मेरे बच्चे को इस तरह मारनेवाला! थानेदार होगा तो अपने घर...मैं उसकी दाढ़ी उखाड़कर उसके हाथ में पकड़ा दूँगी..." फिर उसने बड़े लाड़ से दूध लाकर हीरा को पिलाया था और उसे ममतामयी आँखों से निहारती हुई बोली थी तू भी तो मेरा थानेदार है...अपनी माँ का थानेदार...।

वही दिन, वही बात। उसका नाम थानेदार प्रसिद्ध हो गया था। धीरे-धीरे लोग उसका असली नाम भी भूल चले थे।

माँ जब उसे थानेदार कहकर बुलाती तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगता, उस समय वह अपने आपको किसी थानेदार जैसा ही महसूस करता। चौपाल से गुजरते हुए, जहाँ थानेदार ने उसे चाँटे मारे थे, वह बड़ा अकड़-अकड़ कर चलता।

कई बार उसके पशु किसी खेत में जा घुसते तो खेत का मालिक उसे पुकारता—यार थानेदार! जरा अपने सिपाहियों को तो संभाल। उस समय उसका सीना फूल जाता, आँखों में अजीब सी खुमारी छा जाती...कुएँ पर एक झोपड़ी में रहनेवाला चाचा रुल्दू उसे कहता, हमारा थानेदार भी रामपुर के थानेदार की तरह मेम ब्याह कर लायेगा...मेम...तो उसे लगता जैसे वह आसमान में उड़ रहा है। चाचा रुल्दू के छोटे मोटे काम वह खुशी-खुशी कर देता। कभी कभी वह कहता—"चाचा, मैं कार्य का थानेदार हूँ, मै तो आपका 'सेवादार' हूँ।"

उसकी इस नम्रता पर चाचा रुल्दू की आवाज कुएँ की मीठी-मीठी हवा में घुल जाती—वाह बई थानेदार! क्या कहने तेरे...

थानेदार का संबोधन और फिर जब उसके साथ 'मेम' शब्द जुड़ जाता तो हीरा के दिल में जैसे घण्टियाँ सी बज उठतीं। उसे लगता, जैसे शहतूत के पेड़ों पर पंछी मीठे स्वर में गा रहे हों...।

धीरे-धीरे उसे 'थानेदार' सम्बोधन आग के गोले सा लगने लगा। कोई उसे थानेदार कहकर आवाज देता तो उसे लगता वह उसके मुँह पर थूक रहा है। मारे क्रोध के उसका चेहरा लाल हो आता...."पहली बार यह अहसास

उसे तब हुआ, जब रेशमाँ जैसी सस्ती लड़की बाहर खेतों की ओर जाते हुए उसे देखा अनदेखा करती पास से गुजर गयी थी। उस समय वह दरिया के किनारे खड़ा उसकी केवल परछाँई ही देख पाया था...।

और फिर जब उसकी सगाई (जो उसके चेचक निकलने के पूर्व बचपन में ही हो गयी थी) टूटी तो उसके जेहन में चाचा रुल्दू के शब्द बजे थे—"हमारा थानेदार तो मेम लायेगा...मेम। साथ ही उसे चाचा रुल्दू की आँखों में भरी हँसी छलकती सी दीखी थी और उसकी मुट्ठियाँ भिंच गयी थीं—स्साला अब तक मुझे मूर्ख ही बनाता रहा। उस समय यदि चाचा रुल्दू कहीं दीख जाता तो...पर वह बेचारा तो साल डेढ़ साल पहले ही अपना बोरिया बिस्तर समेटकर इस बेरहम दुनिया से कूच कर गया था......।

और अब 'थानेदार' सम्बोधन उसे जहर-सा लगने लगा था। आदतन कोई उसे थानेदार कह कर बुलाता तो उसका पारा सातवें आसमान पर जा चढ़ता, वह जोर-जोर से बकने-झकने लगता—देख बे, अगर फिर इस नाम से बुलाया तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा कहे देता हूँ...... हाँ...—या कहता—अबे ओ लाट साहब की दुम! मैंने मना किया था न कि मुझे इस नाम से मत बुलाया कर। कहनेवाला जवाब में कुछ कहने को होता, पर उसके लम्बे चौड़े डील-डौल को देखकर खामोशी अख्तियार कर लेता।

पहला रिश्ता टूट जाने के बाद उसकी माँ हाथ पर हाथ धरे न बैठी थी। सम्बन्धियों, परिचितों के घरों के चक्कर काटते-काटते उसकी एड़ियाँ घिस चली थी जिन्हें वह कभी देखना भी पसन्द न करती थी। अब अपने बच्चे के रिश्ते के लिये उनके पाँवों में पड़ी हुई थी पर जैसे शादी हीरा सिंह के भाग्य में लिखी ही न थी....

क्या-क्या नहीं किया था उसके लिये माँ ने। हवेली बेच दी, जमीन गिरवी रख दी और आखिरकार उसके लिए एक पत्नी खरीद ही तो लाई। पर जब उसने थानेदार की शक्ल-सूरत देखी, पहले दिन ही भाग खड़ी हुई......

इसके बाद थानेदार को पता नहीं क्या होता गया। लोगों से बोलना-चालना उसने बिल्कुल बन्द कर दिया। छोटी-छोटी बात को लेकर लोगों से उलझने लगा। पहले जब वह किसी घोंसले से पक्षी के अण्डे गिरे हुए देखता था तो उन्हें वह उठाकर दुबारा घोंसलों में रख देता था। अब वह जान-बूझकर घोंसलें उजाड़ने और अण्डे तोड़ने लगा, अपने पशुओं को मार-मार अधमरा कर डालता......

वक्त उसकी आयु को खाता रहा। हर खिजा उसके बालों का रंग चूसकर उसके चेहरे पर मल देती। माँ का छाया सिर से उठ गया.......लज्जा और अपमान उसके दिल को टुकड़े-टुकड़े करते रहे। जोश, भावनाओं और उमंगों की घुटन उसे भीतर से खोखला कर गयी......खेती करने की इच्छा न होती। जमीन का अधिकांश भाग पहले से ही गिरवी पड़ा था, बची-खुची जमीन भी उसने बेच-बाच दी। दिन भर वह गाँव के बाहर रुल्दू चाचे के कुएँ पर बैठा रहता। एक बार साधुओं की टोली के साथ कहीं चला गया, पर तीसरे दिन ही वापिस लौट आया।

रात के अँधेरे में वह आँसुओं की बाढ़ में डूब-डूब जाता। उसकी सिसकियाँ कमरे की दीवारों से सर फोड़ती रहती।

कई बार ऐसा होता कि कई-कई दिन अपने कमरे से बाहर ही न निकलता। न खाता, न पीता, न हँसता, न रोता......।

और फिर अचानक ही हीरा सिंह के जीवन में एक परिवर्तन आया। बात यों हुई कि उसकी गली में एक सूबेदारनी, पति के जंग में खो जाने के बाद बच्चों समेत आकर रहने लगी। मायके से मिले हुए पशुओं को चराने और खेती की देखभाल के लिये उसे एक आदमी की जरूरत थी। उसने हीरासिंह से इस सम्बन्ध में बात की। वह किसी आपत्ति के बिना इसके लिये तैयार हो गया।

फिर उसके चेहरे की कालिमा धीरे-धीरे घुलने लगी और आँखों में चमक आ गयी।

एक दिन उसने सुबह जल्दी भैंसें आदि दुह कर जाने की आज्ञा माँगी।

सुबेदारनी ने तनिक मुस्करा कर पूछा, "आज कहाँ जाने का विचार है?"

"यहीं जरा शहर तक जाना था.......एक चद्दर खरीदने......"—उसने उत्तर दिया।

"वह तो मैं ला देती तुझे.......अच्छा जा ही रहा है तो मेरे लिए एक पाउडर का डिब्बा लेते आना"—सुबेदारनी ने कहा और कनखियों से उसे देखकर लजाती-सी मुस्करा पड़ी।

"अच्छा!" उसने कहा और उसकी आँखों में फूलों का रंग भर गया। खुशी-खुशी वह शहर जा रहा था। रास्ते मे उसे एक परिचित मिल गया। "और सुना हीरासिंह, कहाँ जा रहा है।"—उसने पूछा।

"जरा शहर तक जा रहा था।" हीरा ने उत्तर दिया, "हाँ, अब मुझे थानेदार, कहकर बुलाया कर.......।"

लौटते हुए उसने घोंसले से गिरा हुआ एक अण्डा देखा उसने बड़ी सावधानी से उसे उठाकर वापिस घोंसले में रख दिया।

तामिल साहित्य और संस्कृति—अवधनंदन, प्रकाशक मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली। मूल्य ३।।) पृष्ठ-संख्या २५०।

तामिल प्रदेश के प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति का एक अध्ययन इस पुस्तक में किया गया है। हिन्दी में इस प्रकार के प्रकाशन होने से दो लाभ हैं: एक तो हिन्दी का साहित्य समृद्ध होता है, दूसरे दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्य से हिन्दीभाषियों को परिचय प्राप्त होता है। सस्ता साहित्य मंडल मलयाली साहित्य पर एक पुस्तक निकाल चुका है। प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान करानेवाली पुस्तकों का हिन्दी में सदैव ही स्वागत होगा।

पुस्तक में आये कुछ वक्तव्यों पर आपत्ति की जा सकती है। 'भारतवर्ष का इतिहास लिखनेवालों ने दक्षिण की ओर विशेषकर तामिल प्रदेश के इतिहास की ओर बड़ी उपेक्षा दिखलाई है। आर्यावर्त में होनेवाली घटनाओं के संकलन तथा वर्णन में वे इतने लवलीन रहे कि दक्षिण की ओर होनेवाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया।' इतिहास लिखा नही जाता, इतिहास अपने आपको लिखवाता है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि जब भारतवर्ष का इतिहास लिखा जाता है तब उसमें उन्हीं घटनाओं का वर्णन होता है जो सारे देश की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है। जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ तामिल प्रदेश में हुई, और जिनका सारे भारत पर प्रभाव पड़ा, तथा भारत के इतिहास में नहीं आई, उनके कुछ उदाहरण दिये जाते तो लेखक के कथन पर हम और विचार कर सकते। हो सकता है तामिल प्रदेश में होनेवाली घटनाएँ स्थानीय महत्त्व की हों; परन्तु सम्पूर्ण भारत पर प्रभाव की दृष्टि से तथा आर्य्यावर्त में घटित होनेवाले संघर्षों की तुलना में, उतनी महत्त्वपूर्ण न हों। जो शिकायत आज तामिल प्रदेश अपने उपेक्षित होने की कर रहा है, इसका ध्यान रखना चाहिए कि उस स्तर प उतर आयें तो भारत का प्रत्येक प्रदेश वही शिकायत कर सकता है। गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, आसाम सभी कर सकते है कि हम उपेक्षित रहे। इस कारण यह न भूलना चाहिये कि यह भारत का इतिहास या जो लिखा जा रहा था और तामिल प्रदेश भी भारत का ही एक अंश है। हमारे शरीर के हाथ और पैर कह सकते है सारा भाजन पेट ही खा लेता है हमें कुछ नही मिलता। या पेट में घोर पीड़ा हो तो पैर कहे हमारी फुंसी नहीं देखी जाती हम उपेक्षित हैं। यह बात लेखक की नहीं है। तामिल प्रदेश में ईसाई पादरियों का यही प्रचार रहा है। परन्तु स्वयं सोच सकने की शक्तिवाले भी उसको ज्यों का त्यों दुहरा दें, यह देखकर खेद होता है।

एक जगह पुस्तक में लिखा है विनसैंट स्मिथ ने लिखा है "अधिकांश इतिहासकारों ने प्राचीन भारत का इतिहास इस प्रकार लिखा है, मानों दक्षिण भारत की कोई हस्ती नहीं है'।" दो सम्प्रदायों, धर्म व देश के भागों में वैमनस्य पैदा करने में सिद्धहस्त अंग्रेज भारत में उस बन्दर की भाँति जो दो बिल्लियों के झगड़े का निबटारा करने बैठा था, बहुत कुछ कर गये हैं। खेद इसका है कि बन्दर को भगा दिये जाने पर भी बिल्लियाँ उसीका उपदेश गा रही हैं।

पुस्तक अंग्रेजी पुस्तकों और अनेक अंग्रेजी लेखकों पर आधारित मालूम होती है। पुस्तक में अंग्रेजों के उद्धरणों तथा उक्तियों की भरमार है। उन्हें लेखक स्वीकार कर लेता है किन्तु जहाँ मनु की उक्ति आ जाती है, वहाँ उसको कपोल-कल्पित कह कर छोड़ दिया है। तामिल प्रदेश क्या भारत के अन्य भागों के समान प्राचीन नहीं है? जब सारे प्राचीन भारत पर मनु की उक्तियाँ लग सकती हैं, तब तामिल प्रदेश के लिए वह कपोलकल्पित क्यों है? हम यह क्यों न कहें कि अमुक बात के संबंध में मनु की भी यह उक्ति है, जिसका पूर्ण अर्थ या तो हम समझे नहीं या आज वह व्यर्थ है। पुराणों में प्राचीन इतिहास मिलता है—इसे अब पश्चिम के विद्वान् भी मानने लगे है। इस देश में तो उनकी बातें बहुत कुछ ऐतिहासिक मानी जाती रही हैं। उनकी शैली और रूपक ऐसे है जिनको समझने से अवश्य ही कठिनाई होती है।

तीसरे अध्याय में लिखा है 'प्राचीन काल में उत्तर भारत की तरह ही दक्षिण में भी इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी। इस प्रकार के कथन से यदि यह कह दिया जाय कि 'भारत में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी इस कारण दक्षिण का इतिहास हमें प्राप्त नहीं' तो बात समझ में आती है। पर भारत को दो भागों में अलग-अलग करके, और उस भेद पर बल देकर विचार करना हमारी सम्मति में अदूरदर्शिता का काम है। दूसरी बात है 'भारत का प्राचीन इतिहास प्राप्त नहीं है' यह एक कथन है 'भारत में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी यह दूसरा कथन है। जिस देश में स्थान-स्थान पर शिलालेख हों, ताम्रपत्र हों, विजयस्तम्भ हों, उसके लिए कहा जाय कि यहाँ इतिहास लिखने की प्रथा नही थी। जिस देश में लिपि का आविष्कार होने के पूर्व का इतिहास कथाओं के रूप में वेदों और पुराणों में अभी भी हमें प्राप्त हो, उसको हम कहें कि वहाँ इतिहास की

प्रथा नहीं थी। हम केवल यह कह सकते हैं कि आधुनिक शैली से प्राचीन काल में लिखा इतिहास हमें प्राप्त नहीं है, क्योंकि उस शैली से वह इस देश में पहिले लिखा नहीं गया। हमारे पुस्तकालयों की धधकती अग्नि महीनों तक शान्त नहीं हुई—इतिहास ही इसका साक्षी है। उन पुस्तकालयों में कितना इतिहास नष्ट हो गया—हम नहीं कह सकते। अँग्रेजों के कहे और रटे-रटाये वाक्य कि भारत में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी, हमें वहुत सोच-समझकर दुहराने चाहिए।

स्पष्ट है कि लेखक ने स्वयं चिन्तन नहीं किया है। ;, जो विदेशी लिख गये हैं, उसको उन्होंने पढ़ा अवश्य है, ोर उन पर उसीका प्रभाव मालूम होता है। इसीलिए ामें भारतीय दृष्टिकोण की कमी है।

जहाँ तक विषयवस्तु का सम्बन्ध है, लेखक ने तामिल देश का समग्र चित्र देने का सफलतापूर्वक प्रयत्न किया । वहाँ की वंशावलियाँ, भाषा, लिपि, साहित्य, भक्ति ाहित्य, संस्कृति तथा देवालय सभी पर विस्तृत रूप से ाखा है। प्राचीन तामिल संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए ाचीन ग्रन्थों का सारांश अत्यन्त रोचक ढंग से दिया या। पुस्तक की भाषा सुबोध और सरल है। तमिल देश का रोचक और स्पष्ट ढंग से तथा संक्षेप में जानारी देने में—लेखक को सफलता मिली है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—डा० वराज उपाध्याय, प्रकाशक : पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली। ष्ठ संख्या १८७; मूल्य १०·०० मात्र।

जैनेन्द्र के दस उपन्यास हैं : परख, सुनीता, त्यागपत्र, ल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध था अनन्तर। इन्हीं दस उपन्यासों के पात्रों को मनोवैज्ञााक दृष्टिकोण को लेकर यह पुस्तक लिखी गई है। परख ो पढ़ने पर पाठक के मन में एक संस्कार जम जाता है ि वह एक अभूतपूर्व लेखक के सम्पर्क में आया है। परन्तु नके अन्य उपन्यासों के पात्र क्या पुरुष क्या स्त्री सव एक ाचित्र रूप से व्यवहार करते हैं। एक अजीव सी उलझन वे फंसे रहते हैं। एक मानसिक उलझन, जो उन्हें कर्मण्य सा वनाकर छोड़ देती है। हर्ष की वात यह है ि जैनेन्द्र के पात्रों की मानसिक उलझन से यह पुस्तक हीं उलझी है। कहा जायगा पुस्तक उस उलझन को देखते ए बहुत सुलझी हुई है।

लेखक ने उपन्यासों को एकांगी दृष्टि से नहीं देखा। थार्थ के आधार पर लेखक की आलोचना चली है। जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नवीन दिशा ो ओर प्रवृत्त किया है, उसमें एक नई चेतना उपस्थित ो है।" "जैनेन्द्र में कथावस्तु नहीं के बरावर है, वह वहुत ी उवड़-खावड़ है, उसमें साफ सुथरा प्रवाह नहीं है। वह लती तो है, पर लंगड़ाती हुई; उसमें कोई क्रमिक ाकास नहीं। आपने मेढकों को देखा होगा, वह रहती है, रहती है बस कूद कर झट एक छलाँग में कूदकर दूसरी जगह, दूसरे सिरे पर। उसका अन्त वड़ा ही आकस्मिक और नीरस भी कह सकते हैं।.........उपसंहार तक आते आते वकील साहव की झुँझलाहट जैनेन्द्र की झुँझलाहट है। न तो कोई योजना है, न उद्देश्य।"

"एक औपन्यासिक की हैसियत से वे सब कुछ कह सकते हैं, सिवा कहानी कहने के।"

"वास्तव में श्री जैनेन्द्रजी तत्ववेत्ता, विचारक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक भी हैं। जीवन के मर्म को समझना और समझने से वढ़कर इसी जीवन में, इसी पृथ्वी पर पा लेना उसका मुख्य लक्ष्य है।"

इस प्रकार एक तुला पर तोलते गुण और दोप दोनों पर विचार करते हुए पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर डा० देवराज ने जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पुस्तक का नाम सुनते ही, पाठकों का विशेषकर उनका जो जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्रों से परिचित हैं, यह धारणा वन उठती है कि जैसे वे पुस्तक नहीं, किसी कँटीली झाड़ी की ओर वढ़ रहे हैं जहाँ हर एक वाक्य नहीं तो हर एक पृष्ठ उनको फँसा कर वार-वार क्यों रुकने को विवश करेगा और देगा क्या? एक उलझन। परन्तु एक वार पुस्तक उठाकर पढ़ने पर वात विल्कुल वदल जाती है। झाड़ी क्या, एकदम सफाचट कटी घास का मैदान है—मनोहर और स्वच्छ, एकदम दौड़ते चले जाओ, भाव स्पष्ट, वाक्य स्पष्ट, भापा स्पष्ट। जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्रों की मानसिक उलझन के साथ लेखक ने पूर्ण न्याय किया है और इतनी सहानुभूति वरती है कि यह उनकी उलझनों को सुलझाने का पूर्ण प्रयत्न करता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों को सर्वांग रूप से देखा गया है। उसीके अनुसार पुस्तक के प्रकरण वाँटे गये हैं। प्रथम है मनोवैज्ञानिक उपन्यास, फिर जैनेन्द्र के उपन्यास और दृष्टिकोण, उसके पश्चात् उनकी भापा, उपन्यासों का टेकनीक, कथा साहित्य, तथा अन्त में उपन्यासों का मनोविज्ञान।

उत्कंठा होती है कि उपन्यासों का मनोविज्ञान क्या है? उदाहरणार्थ जैनेन्द्र के सब पुरुष पात्र नारियों के साथ एक विशिष्ट ढंग से व्यवहार करते हैं। इसे लेखक ने मनोविज्ञान से समझने की कोशिश की है। उनके क्रान्तिकारी पात्रों में अपने को पकड़वा देने की लालसा क्यों है? इसके लिए अपराध भावना का नाम लिया गया है। लोगों में अपराध भावना उनके अचेतन में दुवकी रहती है और किसी न किसी रूप में उसका प्रकाशन कर वे दंड भोगी वनना चाहते हैं। डा० देवराज की सरल, और प्रवाहपूर्ण शैली ने इन जटिल विपयों को भी सरल कर दिया है वास्तव में जैनेन्द्रजी के उपन्यास वहुत से पाठकों के लिए पहेली है। उनकी भापा, उनकी शैली सब अनोखी है। लेखक की यह पुस्तक उनकी व्याख्या या स्पष्टीकरण है। यह आव-

श्यक नहीं है कि पाठक उनकी सब व्याख्याओं से सहमत हों, किन्तु जो लोग जैनेन्द्र के उपन्यासों को केवल मनोरंजन के लिए न पढ़कर उनका गहन अध्ययन करना चाहते है, उन्हें इस पुस्तक से सहायता मिलेगी—विशेषकर इन विद्यार्थियों को जिन्हे उनके उपन्यास पाठ्यपुस्तक के रूप मे पढ़ने पढ़ते हैं।

भारत संगम—लेखक अरुण, प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। मूल्य १० रुपया, पृष्ठ संख्या २६३।

पुस्तक में तीन कथाएँ है, तीनों के आधार अति प्राचीन पृष्ठभूमि पर लिखे गये है—इन कथाओं की पृष्ठभूमि इतनी प्राचीन है कि पौराणिक सीमा पर पहुँच गई है। वे कथायें इस प्रकार है—पुरुरवा और उर्वशी; इन्द्र नहुष और नमुचि; तथा भारत का प्रथम सम्राट् ययाति। इन तीनों कथाओं के पूर्व उनकी वंशावली दी गई है। यह वंशावली न दी गई होती तो ये कथायें भी अन्य पौराणिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गयी कथाओं के अनुरूप ही एक कथा और होती। परन्तु इस प्रारंभ मे दी गई वंशावली ने एक बहुत महान् अन्तर ला दिया है। उस वशावली के कारण इन कथाओं मे एक सजीवता आ गयी है, और वे उस प्राचीन पृष्ठभूमि मे घटित आज की घटनाएँ लगती है। स्वयं वशावली मात्र पढ़ने से उपन्यास पढ़ने का सा आनन्द आता है।

भारत संगम से लेखक की स्थापत्ता है कि भारत में अनेक संस्कृतियों की धाराएँ बहीं। पिशाच, किरात, नाग, यक्ष, असुर, देव, दैत्य, दानव, मानव और राक्षस जातियाँ यहाँ पनपी और उन्होंने अपने कुल और धर्म को यहाँ विकसित किया। धीरे-धीरे ये जातियाँ परस्पर सम्पर्क मे आयीं। प्रारम्भिक युग मे अजनवी का सम्पर्क शत्रुता और भय ही उत्पन्न करता था। आपस के युद्धों ने कुछ जातियों को अपने अधीन कर लिया, और कुछ को मित्र बना दिया। इस प्रकार सम्पर्क बढ़ा, एक दूसरे के जीवन-समाज और धर्म के प्रति ज्ञान बढ़ा। शताब्दियाँ बीतने पर उन्होने एक दूसरे के साथ इस भू पर रहना स्वीकार किया। तभी प्रलय हुई, हिमालय के ऊँचे स्थानों पर इन्होने शरण ली और समस्त संस्कृतियों का संगम हो गया। अनेक जातियों के व्यक्ति स्थान पर रहने लगे। अच्छी बातें अपनाई गयी। देवता अपनाये गये, पूजा तप और यज्ञ का सम्मिश्रण हुआ। प्रयत्न के बाद इन संस्कृतियों का अन्तर्मिलन हुआ और इस सगम के कारण धीरे-धीरे एक भारतीय सस्कृति पनपने लगी। इसी संगम की झाँकी औपान्यिक ढंग से इस पुस्तक में प्राप्त है।

आधुनिक अर्ध शिक्षित समाज में प्रायः सुना जाता है कि भारत में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी। इतिहास लिखना भारत को अंग्रेजों ने सिखाया। पर वे महर्षि वेद व्यास को परम इतिहासकार के रूप में देख पाते तो ऐसा न कहते जिन्होंने सूक्तों को संग्रह कर चार भागों में विभक्त कर वेद रूप में चार शिष्यों को सुनाया, और सूतों द्वारा स्मरण रखनेवाली परम्पराओं को पुराण रूप में एकत्रित करके पाँचवें शिष्य को सुनाया। पुराणों को इतिहास न मानकर इन्हें धर्म के साथ सम्बन्धित कर देने से उनके इतिहास न होकर धर्म ग्रन्थ होने का भ्रम चल पड़ा है। इस कारण कुछ लोग कह उठते है कि भारत में इतिहास लिखा ही नही गया। यह पुस्तक ऐसी भावना रखनेवाले लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि इसमें पुराण के अन्दर दिये इतिहास को खोलकर रक्खा गया है।

इन पूर्वजों का इतिहास पढ़ते समय भूगोल भी ध्यान मे रखना चाहिये। इस समय भारतवर्ष पामीर तक माना जाता था। उस अतिप्राचीन काल में देव और असुर भूमि उत्तरी भारत से लेकर पामीर तक थी, जिसमें ईरान व उत्तरी भाग भी सम्मिलित था। देव इस भूमि के पूर्व मे प्रबल थे और असुर पश्चिम में। हिरण्यकशिपु का महान् साम्राज्य शायद पूरे ईरान मे फैला हुआ था। कश्यप (केस्पियन) सागर मार्कोपालो के समय तक सीरवान या क्षीर सागर पुकारा जाता था। उसीके तट पर बैकुंठ नामक नगर उत्खनित किया गया है।'

'यवन काल के 'क्सैथ्रोई' जो रावी के पास सिकन्दर को मिले आज के खत्री है जो अमृतसर जलन्धर के पास बसे है, कौटिल्य के श्रेणीगण आज के सैनी, समुद्रगुप्त प्रशस्ति के आभीर आज के अहीर; आग्रेय या अग्रगण आज के अग्रवाल; रोहीतकगण आज के रोहतगी, महाभारत के आरह आज के अरोड़ा।'

'सौद्युन पुत्र गय ने गया, उत्कल ने उत्कला बसायी, इच्छवाकु पुत्र मिथि ने मिथिला तथा दण्ड ने दण्डकारण्य बसाया।' इस प्रकार की सूचनाएँ इस पुस्तक में मिलती है और अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक है।

भारतीय संस्कृति से प्रेम रखनेवालों को यह पुस्तक विशेष रूप से पढ़नी चाहिए। साहित्य-प्रेमियों को उस पृष्ठभूमि में लिखे इसके लघु उपन्यास अपनी शैली और सुबोध भाषा, सुन्दर भाव व्यंजना, शिष्ट वार्तालाप तथा परिस्थितियों में सहयता से आये घटना-चक्रों के कारण विशेष रूप से प्रिय लगेंगे।

सौभाग्य से आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने निम्नांकित दो संस्मरण भेजने की कृपा की है। दोनों उन्हीसे सम्बन्धित है, इसलिए मनोरंजक होने के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण भी हैं।

चुटकुले, जो मेरी कलम से निकले

(१)

कानपुर में मारवाड़ी सम्मेलन के अवसर पर कवि-सम्मेलन था। बड़े-बड़े कवि पहुँचे थे। मुझे भी बुलाया था; पर मैंने लिखा कि मैं कविता कभी कर भी लूँ, तो मच पर सुनाता नही हूँ। उत्तर आया कि सुनने के लिए ही आइए। मैं चला गया। उन दिनों बड़ी लड़की के सम्बन्धार्थ 'लड़का' खोज रहा था। सोचा, मुफ्त मे कान्य-कुब्ज-गढ़ मे देख-सुन आऊँगा।

कवि-सम्मेलन मे श्री दुलारेलालजी भी आए थे; विवाह नया होने पर 'भार्गव' लिखना उन्होंने बन्द कर दिया था। शिरोरुह विवाह से पहले खिचड़ी थे, जो इस समय उड़द हो रहे थे। कविताएँ लोग पढ़ रहे थे। मेरे कान मे एक सज्जन ने कहा कि कुछ भी न कहेगे, तो यात्राव्यय में कटौती हो जाएगी। मैंने 'हाँ' कहकर स्वीकृति दी, तो नाम-घोषणा पर जोर से तालियाँ बजी और जब माइक के सामने जाकर खड़ा हुआ, तो फिर मुस्कराहट और तालियाँ।

मैंने कहा—

'सुकवि दुलारेलालजी' तो फिर ठहाका। आगे कहा—'बने पहेली आज'। गम्भीरता आ गयी। आगे कहा—

कवियो बूझो, क्यों लगा—

(हाथ का इशारा) इनके सीस खिजाव ?

खूब ठहाका, देर तक हाहा-हूहू। श्री दुलारेलालजी उठकर चले गए; पर अखाड़ा मेरे हाथ रहा।

(२)

मेरे विद्याशिष्य महन्त शान्तानन्दनाथ साधुओं की बड़ाई कर रहे थे। मैने उस अवसर पर कहा—

सब ते चोखे जगत में,
साधू और बिजार।*
खुले चरैं, पूजा लहै
सरस सुछन्द विहार!

महन्तजी बहुत चिढ़े और खुश भी हुए।

* बिजार = साँड़।
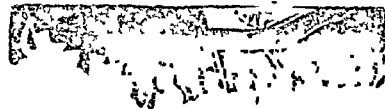
विलायती समाचार-पत्रों का इतिहास

श्री पं० प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला

विलायती समाचार-पत्रों का इतिहास वर्णन करने के पूर्व हम अमेरिका तथा यूरोप के समाचार-पत्रों की उत्पत्ति और उन्नति का संक्षिप्त वृत्तांत सुनाते है।

अमेरिका

सन् १६९० ई० से इस देश में समाचार-पत्रों का प्रचार हुआ। अब इस देश के मुकाबले में किसी देश में इतने पत्र नही निकलते। बास्टन नगर समाचार-पत्रों की जन्मभूमि है। पर न्यूयार्क समाचार-पत्रों का केन्द्रस्थल है। इस विशाल नगर मे सिवा अँगरेजी के, जर्मन और फ्रन्च भाषाओं में भी अखबार निकलते है। इसका कारण यह है कि वहाँ बहुत से जर्मन और फरासीसी जा बसे है। इटली के लोग भी वहाँ बहुत रहते है। पर यह नही मालूम कि उनकी भाषा मे कोई अखबार निकलते हे या नही। सन् १७७५ ई० में अमेरिका की अखबार संख्या केवल १३ थी। सन् १८०० में दो सौ हुई। सन् १९०० मे करीब १८ हजार बढ़ी और अब कोई २० हजार है। इनमे से करीब ढाई हजार दैनिक, तेरह हजार साप्ताहिक और करीब दो हजार मासिक है। शेष पाक्षिक इत्यादि है। न्यूयार्क, शिकागो और फिलाडैलफिया अखबारों के घर है। अमेरिका के प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली समाचार-पत्रों के नाम न्यूयार्क हैराल्ड, ट्राइब्यून, और न्यूयार्क टाइम्स है। न्यूयार्क हैराल्ड के चलानेवाले बैनेट नाम के एक स्काच महाशय थे। यह पत्र सन् १८३५ मे निकाला गया था और आज उन्नति के शिखर पर है। इसकी एक प्रति पैरिस से निकलती है। लन्दन मे भी इसका दफ्तर है। यह बड़ा जोरदार अखबार समझा जाता है। इसकी ठीक ग्राहक-संख्या का हमे पता नही लगा पर कहा जाता है कि कई लाख है। भारत से जाते समय हमने इसके बड़े-बड़े विज्ञापन पैरिस नगर में देखे थे। खेतों मे लकड़ी के तख्तों पर इसके बड़े-बडे विज्ञापन पढ़े थे। प्रति वर्ष यह लाखों रुपये विज्ञापनों मे व्यय करता है। ट्राइब्यून का जन्म सन् १८४१ ई० में हुआ था और अब बहुत योग्यता से चल रहा है। यही हाल न्यूयार्क टाइम्स का है। जो सन् १८५० ई० में निकला था। यह दशा अमेरिकन अखबारों की है जो भारत के सम्मुख कल का बच्चा है। वहाँ विद्या है, धन है, उत्साह है, जाति-प्रेम है, देशाभिमान है। यहाँ विद्या हे तो दरिद्रता है। धन है तो विद्या नही। कहीं धन और विद्या है तो उत्साह नहीं—शौक नही। पाश्चात्य देशों मे दूसरे से अखबार माँग कर पढ़ना अपमान समझते है। अकसर रेलों मे मुसाफिर पढ़े हुए अखबार छोड़कर चल देते हे। पर दूसरे मुसाफिर इन लावारसी अखबारों की परवा नही करते। अपना अलाहदा अखबार लेकर पढ़ते है। नही तो चुपचाप बैठे रहते है। हमारे यहाँ माँगमूँग कर काम चला लेते हे। कभी-कभी लौटाने की याद तक भूल जाते है। मुफ्त का मिल जाय और भी अच्छा। कई कहते है हमे दैनिक पत्र पढने का समय नही। इससे दैनिक नही साप्ताहिक मँगाते है। जो साप्ताहिक मँगाते है उनमें से कुछ लोग ऐसे होते है जो उसे हफ्तों तक नही खोलते। संसार मे क्या हो रहा है, उन्हे कोई खबर नही। यही दशा मासिक पत्रों की है। यह हाल बड़े-बड़े नगरों का है। गाँव खेडों मे तो अमावस की पूरी अँधेरी छाई रहती है।

यूरोपीय अखबारों की उत्पत्ति

यूरोप मे अखबारों के जन्मस्थान जर्मनी और इटली कहे जाते है। पन्द्रहवी सदी मे उनका प्रचार वहाँ हुआ। प्रथम एक छोटे पर्चे पर संग्राम तथा व्यापार-सम्बन्धी हस्त-लिखित समाचार नगर के किसी विशेष भाग मे सुनाये जाते थे। श्रोताओं को एक गजैटा देना पड़ता था। यह एक प्रकार का छोटा-सा सिक्का था। इसी सिक्के के नाम पर, पीछे से समाचार-पत्रों को भी गजटा कहने लगे, जो बिगड़ते बिगड़ते गजट कहलाने लगा। इन परचो की क्रमशः खूब बिक्री होने लगी। इस भारी माँग की पूर्ति करने को अखबारों मे उन्नति होने लगी और वे शीघ्र ही कलों द्वारा छपने लगे।

फ्रांस में समाचार-पत्र चलने की विचित्र कहानी है।

वहाँ सन् १६३१ ई० से समाचार-पत्रों का चलना शुरू हुआ। इसके प्रचारक एक डाक्टर थे। वे बहुत लोकप्रिय थे। रोजगार भी उनका अच्छा चलता था। अपने मरीजों का मन बहलाने को वे एक परचे पर नित्य कुछ समाचार लिखकर ले जाया करते थे। मरीज उन्हें सुनकर बहुत खुश होते थे। थोड़े समय बाद उन्होंने उसकी कीमत नियत कर दी। लोग इन पर्चों को बड़े चाव से लेने लगे। कुछ काल में वही पर्चा समाचार-पत्र बन गया। उसकी देखादेखी और भी अखबार निकले। परन्तु फरासीसी गदर के समय से फ्रांस के अखबारों की ग्राहक-संख्या एक दम बढ गई। [illegible]ग गदर के समाचार जानने को बहुत इच्छुक थे। बडे-बड़े विद्वानों को असीम कष्ट झेलने पड़े। सम्पादकों की दुर्दशा की सीमा न रही पर सर्वसाधारण की सहानुभूति गदर से थी। इसी कारण समाचार-पत्र सभी कठिनाइयाँ झेलते रहे। उनका उत्साह तनिक भी ठंडा न हुआ। आपत्तियों ने उन्हें दृढ़ बना दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज फरासीसी समाचार-पत्रों की संख्या अनुमानतः पाँच हजार है। फ्रांस में विद्या का अच्छा प्रचार है। जाते समय हम मारसैल्स नामक बन्दरगाह मे उतरे। शहर का चक्कर लगाया। रास्तों में फूल और साग बेचनेवाली स्त्रियों को बड़े शौक से समाचार-पत्र पढते देखा। बहुत आश्चर्य हुआ। अपने देश के स्त्री-पुरुषों की याद आई। मन मे कहा, यहाँ देखो अदना से अदना आदमी अखबार का शौकीन है। हमारे यहाँ न पढ़े-लिखों में न अमीरों मे यह बात है।

खैर, फरासीसी समाचार-पत्रों की एक दो कहकर आगे बढ़ेंगे। हम ऊपर कह चुके है कि फरासीसी अखबार बहुत बढे-चढे है। पैरिस नगर मे उनके आफिस आकाश से बातें करते है। सहस्रों स्त्री-पुरुष उनमें रात-दिन काम करते है। करोड़ों की उनकी पूंजी है। फ्रांस के 'टेम्स' और 'जरनल' नामक दो बहुत प्रसिद्ध दैनिक समाचार-पत्र है। प्रत्येक की दैनिक ग्राहक संख्या १५ लाख से कम नही है। लोगों में इनका बड़ा आदर है। इनकी छपाई और कागज की प्रशंसा करने को जरा जी हिचकता है। ये मोटे घटिया कागज पर छपते है। टाइप बड़ा है। पर सुन्दर नही। एकाएक पढने को जी नही चाहता। इनकी कीमत आध आना प्रति है।

जर्मनी के समाचार-पत्रों की संख्या करीब साढ़े पाँच हजार है। प्रसिद्ध अखबारों के नाम लिखने की आवश्यकत[ा] नही। क्योंकि वे बहुत लम्बे और अटपटे है। इनकी भ[ी] छपाई वगैरह ठीक नही। अकेले बर्लिन नगर से करीब ५० दैनिक निकलते है।

इटली की समाचार-पत्र-स्थिति सन्तोष-दायक नही। हमें वहाँ के समाचार-पत्रों की संख्या ठीक मालूम नही। ट्राइब्यूना वहाँ का मुख्य दैनिक है। वह रोम नगर से प्रकाशित होता है। कहा जाता है कि इसकी दैनिक संख्या अनुमान पाँच लाख है। इसका दाम आध आना है। जापान के समाचार-पत्रों की एक हजार और भारत के समाचार-पत्रों की संख्या करीबन ८०० है। पर भारत से गया बीता चीन है। वहाँ केवल १०० ही समाचार-पत्र निकलते है। अफीमचियों को पत्र पढ़ने की फुर्सत कहाँ ?

विलायती समाचार-पत्र-

विलायत में अखबार निकलने की चर्चा महारानी एलिजाबेथ के समय से चली। उस समय इंगलैंड और स्पेन के बीच घोर संग्राम चल रहा था। स्पेन की जल-शक्ति संसार मे सबसे अधिक थी। इस महाभारत का समाचार जानने के लिए विलायतवासी उत्कण्ठित रहते थे। इसलिए इंगलिश मरक्यूरी नामक समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया। यह एक छोटा सा पर्चा था, जिसमें केवल संग्राम समाचार रहते थे। इसके बाद और कई समाचार-पत्र निकले। फिर विलायती पार्लिमेन्ट के झगडे शुरू हुए। अखबारों को जोर पहुँचा। प्रजा तथा पार्लिमेन्ट दोनों पर इनका अच्छा असर पड़ा। चलते-चलते क्राम्वेल का समय आया। पर नियमित रूप से कोई समाचार-पत्र न निकला, कभी कभी अखबारों का लोप हो जाता। कभी कभी समाचारों के अभाव से नाममात्र को अखबार निकलते थे। लोगों से समाचार भेजने की प्रार्थना की जाती थी। विज्ञापन, जिनके द्वारा आज सहस्रों रुपये की आमदनी है, उस समय मुफ़्त छापे जाते थे। वे भी केवल पुस्तकों के विज्ञापन थे : कभी कभी जगह भरने को बाईबिल की बातें छाप दी जाती थी। यों करते करते सन् १७०९ में, डेली कूरान्ट नामक दैनिक समाचार-पत्र निकला। उस समय समाचार-पत्रों को न कुछ आमदनी ही थी और न उनकी संख्या ही अधिक थी। तिस पर भी सन् १८१२ ई० में उन पर 'टैक्स' सवार हो गया। नतीजा यह हुआ कि अख-

वारों का मूल्य बढ़ गया। और ग्राहक संख्या घट गई। बहुत घाटा पड़ा। कई समाचार-पत्र बन्द हो गये। टैक्स उठा देने के लिए बहुत आन्दोलन हुआ। और सन् १८६१ में बड़ी कठिनाइयों के बाद टैक्स उठा। अखबार फिर निकले। ग्राहक संख्या बढ़ी। उन्नति होने लगी और बराबर होती गई।

लन्दन की फ्लीट स्ट्रीट

लन्दन की फ़्लीट स्ट्रीट का समाचार-पत्रों से ऐसा घना सम्बन्ध है जैसा छाया का मनुष्य से। फ़्लीट स्ट्रीट का नाम लेते ही लन्दनी समाचार-पत्रों की याद आ जाती है। यों तो लन्दन के कई मुहल्लों में समाचार-पत्र छपते हैं; फ़्लीट स्ट्रीट उनका केन्द्र समझा जाता है। यह सड़क शहर के बीचों बीच है और बहुत तंग है। इसके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे महलनुमा मकान हैं। इन्हीं में लन्दन के प्रसिद्ध समाचार-पत्र के दफ़्तर हैं। अख़बार छपने की जगह इनके अगल बगल हैं। इस सड़क पर कपड़े और जेवर की कुछ दूकानें भी हैं। कहीं कहीं भोजनालय भी हैं। कुछ दूर चलकर टामस कुक का दफ़्तर है। यहाँ एक बहुत बड़ा चौराहा है। उसे लडगेट-सरकस कहते हैं। फ़्लीट स्ट्रीट के दूसरे छोर पर ला-कोर्टस अर्थात् कचहरियाँ हैं उसी से चानसरी लेन और लन्दन के विद्यालय-इनर तथा मिडिल टैम्पिल—लगे हुए हैं। इस सड़क पर दिन को इतना आवागमन रहता है कि निकलना कठिन हो जाता है। समाचार-पत्रों के दफ़्तरों पर बड़े-बड़े सुनहरे अक्षरों में उनके नाम लिखे हैं। किसी किसी अखबार की ग्राहक-संख्या भी लिखी है, कई दफ़्तरों पर बड़ी-बड़ी घड़ियाँ लगी हैं। जिनमें अखबारों के नाम लिखे हैं। रात को ये विशेष शोभा देती हैं। डेली टेलीग्राफ, डेलीमेल, डेली न्यूज, डेली क्रानिकिल, मैनचेस्टर गार्जियन इत्यादि प्रसिद्ध दैनिकपत्रों के दफ़्तर इसी सड़क पर हैं। इन्हीं के आस-पास कुछ दूरी पर, डेली एक्सप्रेस, स्टार, ईवनिंग न्यूज और टाइम्स वगैरह के दफ़्तर हैं। प्रत्येक दफ़्तर की दरवाज़े और खिड़कियों में बड़े बड़े काँच लगे हैं। इन शीशों के पीछे, अर्थात् भीतर दफ़्तर में, बेचने के लिए अनेक प्रकार की छोटी बड़ी पुस्तकें रक्खी हैं। भीतर हर कोई जा सकता है। वहीं बड़े बड़े तख्तों पर दैनिक समाचार-पत्र लटके हैं जिन्हें बिना दाम दिये पढ़ सकते हैं। पर सम्पादक या मैनेजर से भेंट होना कठिन है। यह काम पहले बिना लिखा-पढ़ी के नहीं हो सकता। बाहर दरवाज़े पर सन्तरी खड़े रहते हैं। वे एडीटर या जिस कर्मचारी से मिलना है उसे कार्ड द्वारा खबर भेजते हैं। तब कहीं किसी से भेंट हो सकती है। यही नियम दफ़्तर देखने का भी है।

फ़्लीट स्ट्रीट के विषय में एक दो बातें और कहनी हैं। दिन को, अन्य सड़कों की तरह फ़्लीट में खूब धूम रहती है। पर रात को भी यह सड़क देखने योग्य हो जब सम्पूर्ण नगर रात को घोर निद्रा में सोता है तब दिन सा दिखाई देता है। यह दृश्य देखने योग्य है। विशेषकर पार्लिमेन्ट के चुनाव के समय रात को यहाँ कलों की भरभाहट से कान फूटे जाते हैं। लोग काम करते समय जहाँ तहाँ कठपुतली से नाचते फिरते हैं। एक दूसरे से बात करने की फ़ुर्सत नहीं। सब कर्मचारी इसी फिराक में रहते हैं कि उनका पत्र सबसे पहले छपकर निकल जाय। उधर बाहर सड़कों पर मोटर और घोड़ागाड़ियाँ अख़बार ले जाने को खड़ी हैं। इनके मारे लड़के खचाखच भरी हैं। ये गाड़ियाँ अख़बार भर रेल की ओर भागती हैं। अखबार ले जानेवाली रेलें तैयार खड़ी रहती हैं। प्रत्येक स्टेशन पर रेलें अख़बार बाँटती जाती हैं। स्टेशनों पर अखबार ले जाने को मोटरें तैयार रहती हैं। सवेरा होते ही सारे देश में लन्दन के दैनिक अखबार 'ब्रेकफ़स्ट' के पहले ही पहुँच जाते हैं। ब्रेकफस्ट—सवेरे के कलेऊ के समय लोग अपने अपने पत्र पढ़ते दिखाई देते हैं।

विलायत के प्रत्येक नगर में एजन्सियाँ हैं, जिनके द्वारा घर बैठे समाचार-पत्र मिलते हैं। डेली-मेल सिवा लन्दन के पैरिस और मानचेस्टर में भी छपता है। पैरिस, लन्दन और मानचेस्टर के दफ्तरों का परस्पर तार और टेलीफून से सम्बन्ध है। इनके द्वारा एक स्थान की खबर दूसरे स्थान को तुरन्त आती जाती है। तार और टेलीफून डेली-मेल की निजी चीजें हैं। जिनके लगाने में उसे लाखों रुपये खर्च करना पड़ा है। प्रत्येक नगर में डेलीमेल की ग्राहक संख्या लाखों है। यही हाल डेलीन्यूज़ का है। हर डेलीन्यूज़ केवल लन्दन और मानचेस्टर में छपता है। इसके भी निज के तार और टेलीफून हैं। मानचेस्टर में मानचेस्टर गार्डियन के रहते भी डेलीन्यूज़ और डेलीमेल की लाखों कापियाँ रोज़ बिकती हैं।
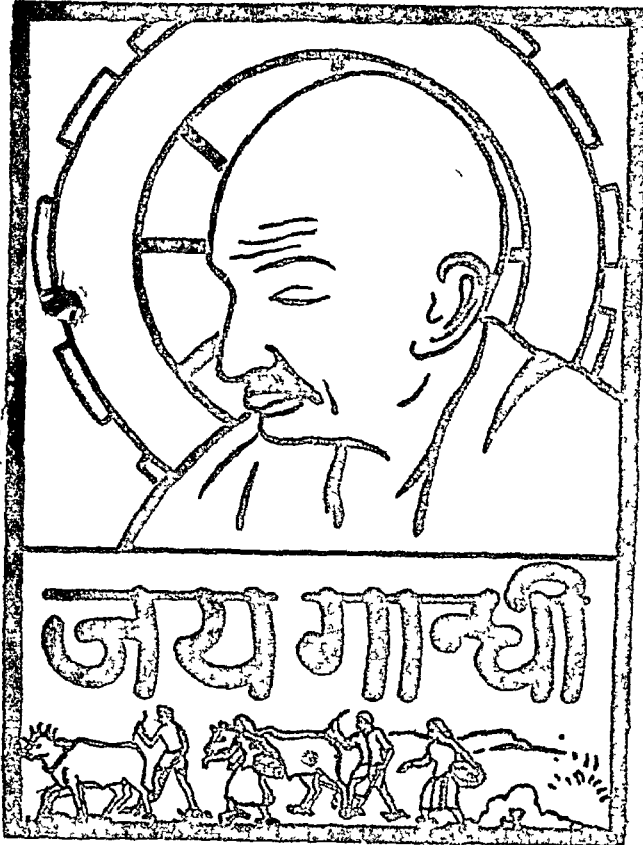
प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारा गांधी साहित्य

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वांग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय मे रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार मे दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल २०) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपू विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५०, मू० ४) रुपये।

जगदालोक

रचयिता : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१ मू० ६) रुपये।

युगाधार

रचयिता : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने मे मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी है। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ४·२५ पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रंथ

सम्पादक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी है, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७·५० पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारे रामायण साहित्य

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल पन्द्रह रुपये।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनो और सस्ता है। टीका बड़े काम की हैं। दुरं तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति मूल्य ८·०० रु०।

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३ रु०।

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृ का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद स भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये ग हिन्दी अनुवाद का मूल्य ७·५० रुपये प्रति औ है।

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की कृतियाँ

१. **रानी दुर्गावती**—ओजपूर्ण और लोकप्रिय खण्डकाव्य का तीसरा संशोधित संस्करण। मूल्य २.०० रुपये।

२. **उड़ते पत्ते**—सामाजिक क्रान्ति का सन्देशवाहक सशक्त उपन्यास। मूल्य ३.५० रुपये।

३. **अपना-पराया**—मनोरंजक और कौतूहलप्रद उपन्यास। मूल्य ३.०० रुपये।

४. **हवा का रुख**—उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत कलात्मक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य २.२५ रुपये।

५. **रङ्गीन डोरे**—मार्मिक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य ३.०० रुपये।

६. **धरती-आकाश**—वैज्ञानिक निबन्धों का ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक संग्रह। मूल्य २.०० रुपये।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी की कृतियाँ

१. **मधुमास**—उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत ललित गीतों का संग्रह। मूल्य २.०० रुपये।

२. **रङ्गीन पर्दा**—सामाजिक, कलात्मक और अभिनेय एकांकी-संग्रह। मूल्य २.०० रुपये।

३. **बुन्देलखण्डी लोकगीत**—मानवमात्र को गुदगुदानेवाले सरस बुन्देली गीतों का सव्याख्या संकलन। मूल्य ०.७५ पैसे।

४. **गल्प-गवाक्ष**—श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों का सम्पादित संकलन। मूल्य २.२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज़ का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—विरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन वर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अदभुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महन्त-दमन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६—मोहन का प्रतिदान।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुवम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोवियत रूस में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर वन में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनविहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—वन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rs. 7.50 November 1969 SARASWATI—Reg No. L 248
Single Copy : Rs. 0.65

विषय-सूची

सावनी तीज (काँगड़ा कलम)

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७० पूर्ण संख्या ८३८ | इलाहाबाद : अक्टूबर १९६९ : आश्विन २०२६ वि० | खण्ड २ संख्या ४

सम्पादकीय

गांधी जन्मशती—२ अक्टूबर सन् १८६९ को महात्माजी का जन्म हुआ था। अतएव इस २ अक्टूबर को उनके जन्म को पूरे सौ वर्ष हो रहे है। सामान्य बड़े आदमियों का जन्मदिवस एक दिन मनाया जाता है, किन्तु कृतज्ञ राष्ट्र ने सारे वर्ष को जन्मशती वर्ष के रूप में मनाने का निश्चय किया है। २ अक्टूबर इस वर्ष-कालीन उत्सव का चरम विन्दु है। इस अवसर पर 'अर्चना' के अगणित स्वरो मे 'सरस्वती' भी अपना स्वर मिलाकर आधुनिक भारत के राष्ट्रपिता और इस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष और महामानव की वन्दना करती है।

गांधीजी के सम्बन्ध में इतना लिखा गया है—गद्य मे भी और पद्य में भी, तथा इतने महान् पुरुषों, विचारकों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों और पत्रकारों ने लिखा है कि उनके सम्बन्ध में हम जो कहेगे वह पिष्ठपेषण ही होगा। आज उनकी महत्ता जन-जन को विदित है, वह स्वयं प्रकाशवान है। अपने लघुदीपक से हम प्रकाशपुंज की आरती उतारने का हास्यास्पद प्रयत्न नही करेंगे। भारत ने उन्हें अपना 'राष्ट्रपिता' घोषित कर जो सर्वाधिक सम्मान वह दे सकता था, वह दे दिया। आज संसार के प्रायः सभी देशों में उनकी जो जन्मशती मनायी जा रही है, वह इसका प्रमाण है कि ससार उनके व्यक्तित्व और विचारों का कितना प्रशंसक है। एशिया और अफ्रीका के अनेक परतन्त्र देशों को तो उनसे प्रेरणा मिली ही, योरोप और अमरीका के भी अनेक देशों ने उनके सत्य, अहिंसा और मानवता-प्रेम के सन्देश में अपनी कितनी ही समस्याओं का हल देखा। सारा संसार इस बात का कायल है कि यदि इस अति उन्नत मानवता को (जो अति विज्ञानवाद और उससे उत्पन्न हृदयहीनता से बुरी तरह पीड़ित है) विनाश से

मार्ग पर ... किया, और उनके नाम क... भड़कदार उत्सव और कुछ ईंट-पत्थर के स्मारक बनाकर ही रह गये, तो उनसे उनकी आत्मा को सन्तोष न होगा।

महात्माजी राजनीतिक नेता थे, किन्तु राजनीति में उनकी रुचि भारत की विशेष और विषम परिस्थिति के कारण थी। दासता एक घोर लांछन है, वह मानवता के लिए अभिशाप है और उसका सबसे बड़ा अपमान है। भारत को अपने अधिकार में रखने के लिए अंग्रेजों को मार्ग में पड़नेवाले अनेक देशों पर भी अधिकार बनाये रखना आवश्यक था। अतएव भारत की पराधीनता कितने ही अन्य देशों की पराधीनता का प्रत्यक्ष या परोक्ष कारण हो गयी थी। गांधीजी ने भारत की स्वतन्त्रता में केवल भारत ही की मुक्ति नहीं देखी, प्रत्युत एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों की भी मुक्ति देखी। और इसकी सचाई तब स्पष्ट हो गयी जब भारत के स्वतन्त्र होते ही वे अनेक देश भी स्वतन्त्र हो गये। भारत का स्वतन्त्रता-आन्दोलन पराधीनता की शृंखला में जकड़े एशिया और अफ्रीका के करोड़ों नर-नारियों की मुक्ति का आन्दोलन भी था। इस दृष्टि से महात्माजी की राजनीति और भारत की स्वतन्त्रता का प्रयास संकुचित राष्ट्रीयता से प्रेरित न होकर सारे संसार की पराधीन जनता को मुक्त कर उनमें मानवोचित आत्मसम्मान प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयत्न था।

गांधीजी को अपने राजनीतिक लक्ष्य में आशातीत सफलता मिली, यद्यपि देश के बँटवारे ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के हर्ष और आह्लाद को बहुत कुछ हल्का कर दिया था। विभाजन के बाद जो भीषण और अनावश्यक रक्तपात हुआ और जो कटुता उत्पन्न हुई उसने रहे-सहे उल्लास और उत्साह को भी बहुत क्षीण कर दिया। यह सर्वविदित है कि वे विभाजन के विरुद्ध थे किन्तु उनके सहयोगियों ने उसे स्वीकार करके उन्हें उससे सहमत होने को विवश कर दिया था।

...नका रचनात्मक कार्यक्रम—किन्तु राजनीतिक स्व... को अनिवार्य समझते हुए भी वे जानते थे कि केवल ...भारत की जनता को 'वह रामराज्य' नहीं मिल ... जिसको लाना उनका चरम लक्ष्य था। 'दरिद्र...' और 'हरिजन' का कल्याण और उनमें मानवीय ...न उत्पन्न कर उन्हें ऊँचे से ऊँचे नागरिकों के ... खड़ा करना उनका स्वप्न था। देश और समाज ...की उन्नति के लिए उन्होंने कितने ही रचनात्मक कार्यों की योजना बनाई थी जिनमें मुख्य थे—

मद्य-निषेध
अछूतोद्धार
हिन्दू-मुस्लिम एकता
चरखा-खद्दर
गो-सेवा
नई (बुनियादी) शिक्षा
राष्ट्रभाषा

यदि हम ठंडे दिल से विचार करें तो मालूम होगा कि हम चाहे जितने जोर से उनके नाम की दुहाई देते हों, उनके रचनात्मक कार्यों में बहुत कम दम रह गया है। मद्य-निषेध में जो थोड़ी बहुत प्रगति हुई थी, वह पिछले कुछ वर्षों में समाप्तप्राय हो गयी। कई कांग्रेसी सरकारों ने ही मद्य निषेध के नियमों को ढीला कर दिया है। यही नहीं, कई कांग्रेस सरकारों ने तो मद्य बनाने के आधुनिक ढंग के कारखाने भी खोल दिये हैं। मद्य के कर से जो प्रचुर आय होती है, या जो और अधिक आय होने की आशा है, उसका लोभ वे बापू के सिद्धान्त के निहोरे भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। उसके जो भीषण सामाजिक और नैतिक दुष्परिणाम हैं, उनकी ओर से उन्होंने आँखें मूँद रखी हैं। इस समय भारत में केवल दो राज्य हैं जो मद्यनिषेध के हृदय से समर्थक हैं। वे हैं गुजरात और तमिलनाडू। इनमें गुजरात में कांग्रेसी सरकार है, और तमिलनाडू में ग़ैर कांग्रेसी (द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम) सरकार। सारे देश की स्थिति देखते हुए मद्य-निषेध का कार्यक्रम किसी भी दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। अछूतोद्धार के लिए संविधान में प्राविधान है। कुछ कानून और भी बने हैं। उनका औपचारिक पालन होता भी है, किन्तु वास्तव में, विशेषकर गाँवों में, हरिजनों की अवस्था में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा अवश्य है, किन्तु वह एकता

इतने कमजोर आधार पर है कि छोटी से छोटी बात भी उसको भंग कर देती है, और साम्प्रदायिक दंगों का ताण्डव होने लगता है। वह वास्तविक एकता—हृदयों की एकता—जो बापू चाहते थे, अभी भी स्वप्न है। शासकगण अपना सिरदर्द और परेशानी बचाने के लिए उसे रोकने और झगड़ों को बचाने का प्रयत्न अवश्य करते हैं, किन्तु राजनीतिज्ञ तथा अन्य लोग क्षुद्र स्वार्थ साधन के लिए विलगाव की भावना को अपने हित में भड़काने में संकोच नही करते। खद्दर का हाल यह है कि उसकी लोकप्रियता दिनोंदिन कम होती जा रही है। यदि 'लोकलाज' के कारण सरकार उसकी खरीद न करती रहे और उसके उत्पादन में सहायता न देती रहे तो आज जितनी खद्दर उत्पन्न होती है, उतनी भी न हो। कुछ लोग पुरानी आदत के कारण उसे आज भी पहनते है, किन्तु स्वयं उनके परिवारवाले भी उनका अनुकरण प्रायः नहीं करते। वह एक विशेष राजनीतिक विचार धारा के लोगों की 'वर्दी' बनकर रह गयी है। गोसेवा के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। यह बड़ा करुण और अप्रिय विषय है। उनकी बुनियादी शिक्षा आज गत इतिहास की वस्तु हो गयी है। उन्हींके शिष्यों की सरकारों ने उसको समाप्त कर दिया, और जहाँ कहीं उसका नाम रखते हुए जो शिक्षा दी भी वह गांधीजी की बुनियादी शिक्षा नहीं थी। राष्ट्रभाषा (हिन्दी-हिन्दुस्तानी) का हाल यह है कि अब स्वयं कांग्रेस के अधिवेशनों में उसका अवमूल्यन हो गया है। राजभाषा (हिन्दी) संविधान ने स्वीकृत की थी। किन्तु उसके साथ भी जो खिलवाड़ हो रहा है, वह जागरूक नागरिकों को भली भाँति विदित है। कहने का तात्पर्य यह है कि गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की लकीर अवश्य पीटी जाती है, किन्तु वह निर्जीव हो गया है।

यदि हम बापू की इस जन्मशती के वर्ष में आत्म-निरीक्षण कर और इस बात का लेखा जोखा ले कि उनके शिष्यों के ही लंबे प्रशासन मे उनके रचनात्मक कार्यक्रम की क्या दशा हुई तो हमे प्रसन्न होने या गर्व करने का कोई विशेष कारण न मिलेगा। इसके विपरीत, कार्यक्रमों का ह्रास देखकर दुःख और निराशा ही होगी।

और अंत में हम उनके 'सत्य और अहिंसा' के उपदेश पर विचार करें। आज प्रत्येक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा का ज्वलन्त अभाव देखकर आदमी आश्चर्य चकित रह जाता है। वह सोचता है कि क्या यह वही देश है, जहाँ केवल बीस-बाईस वर्ष पूर्व गांधी नाम के एक अवतारी पुरुष ने उसके निवासियों को त्याग, बलिदान, कष्ट सहन और सत्य के आग्रह का पाठ पढ़ाया था? क्या यह वही देश है जिसके निवासियों ने उन्हें अपना 'राष्ट्रपिता' घोषित कर परोक्षरूप से उनके उपदेशों को स्वीकार किया था? क्या क्षुद्र स्वार्थो के दैनिक नग्न नृत्य तथा देहातों और नगरों में व्याप्त हिंसा का वातावरण गांधी का प्रभाव रहते सभव है?

यह कहते हुए हार्दिक दुःख होता है, किन्तु जो बात हमे दीखती है वह यह है कि बापू की रचनात्मक योजनाएँ और कार्यक्रम विफल हो गये हे। यदि इस जन्मशती-वर्ष मे हम विनम्रता और गंभीरता से इस विफलता के कारणों पर विचार कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें, तो इस धूमधाम से मनाये जानेवाले वर्ष का कुछ फल भी हो सकता है। नहीं तो जिस प्रकार इस देश में अनेक सरकारी आयोजन, प्रदर्शिनियाँ, मेले और तमाशे होते है जिनमें फेनिल भाषणों और सैकड़ों टन प्रचार साहित्य के कागजों से वातावरण बोझिल हो जाता है, उसी प्रकार कुछ महीनों बाद जनता इस जन्मशती वर्ष को भी भुला देगी—और किसी दूसरे तमाशे की प्रतीक्षा करेगी।

गांधीवाद जनता में न फैलकर कुछ उन थोड़े से लोगों मे सीमित हो गया है जो अपने को सर्वोदयी कहते हैं—क्योंकि बापू का लक्ष्य सर्वोदय था। किन्तु उनका गांधीवाद जनता की वस्तु न रहकर एक प्रकार का 'सम्प्रदाय' हो गया है। हमें उनकी सद्भावना और सच्चाई में तनिक भी संदेह नही है। उनमें कुछ ऐसे लोग है जिनके उच्च चरित्र और महान् व्यक्तित्व के सामने मस्तक अपने आप नत हो जाता हे। किन्तु जनता के जीवन में उनका क्या प्रभाव है? क्या कबीरपंथ, दादूपंथ आदि पंथों से अधिक उज्ज्वल उनके पंथ का भविष्य है? फिर भी बापू के जीवन दर्शन, उनके आध्यात्मिक मूल्यों और उनके विचारों और कार्यक्रमों को जीवित रखने और उनके प्रचार के प्रयासों के लिए हम उनकी प्रशंसा करते है। वे बापू की इस जन्म वर्ष-शती के मनाने के वास्तविक अधिकारी हें। हमें देखना हे कि वे इसे किस प्रकार मनाते है।

बुद्ध और बापू—पाठक जानते है कि दो हजार वर्ष

से अधिक हुए, इस देश में भगवान् बुद्ध ने जन्म लिया था। दो हजार वर्षों के अन्तर के कोहरे और धुन्ध के बावजूद बुद्ध का व्यक्तित्व आज भी महान् और आकर्षक लगता है। एक समय था जब सारे देश में उनका संदेश फैल गया था और सारा देश बौद्ध हो गया था। उनका संदेश विदेशों में भी दूर दूर तक गया, और आज भी कितने ही देश भगवान् बुद्ध के अनुयायी हैं। किन्तु बौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया। यहाँ वह जो इतने दिनों ठहरा उसका मुख्य कारण राज्य का सहयोग और संरक्षण था। यदि अशोक उसके संरक्षक न हो गये होते तो कहना कठिन है कि वह इस देश में कितने दिनों ठहरता।

आज के युग में धर्म या मत उस प्रकार नहीं फैलते जैसे प्राचीन काल में फैला करते थे। आज अनेक देशों के प्रवुद्ध वर्गों में गांधीवाद के प्रशंसक और अनुयायी हैं। अमरीका के जो नीग्रो मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं उन्होंने भी महात्माजी के सिद्धान्तों और उपायों—सत्य और अहिंसा—को स्वीकार किया। किन्तु अपने देश के झगड़ों और विवादों में हम गांधीजी के सिद्धांतों और उपायों के विपरीत चल रहे हैं। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि बौद्ध धर्म की तरह गांधी-वाद भी अब हमारे जीवन को प्रभावित नहीं करता ? यह सब देखकर बरबस यह प्रश्न उठता है कि क्या गांधीवाद भी बौद्धधर्म की तरह इस देश से लुप्त हो जायगा ?

बापू और श्रीगणेशजी—इस देश की जनता प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में गणेशजी का पूजन करती है। व्यापारी अपनी वही, और जनता अपने पत्र आदि के आरम्भ में 'श्रीगणेशजी सहाय' या "श्रीगणेशाय नमः' लिखती है। किन्तु इस आरंभिक स्मरण के बाद जीवन में कभी गणेशजी याद नहीं आते। हमारे नेताओं ने भी गांधीजी को आधुनिक गणेशजी बना लिया है। वे अपने भाषणों के आरम्भ में—और कभी-कभी बीच में भी—गांधीजी का स्मरण कर लेते हैं, उनको नमन कर लेते हैं और उनकी जय भी बोल देते है, किन्तु प्रशासनिक कार्य कलाप में गांधीजी के सिद्धान्तों, उनके शुद्ध उपायों, उनकी सत्य-अहिंसा के उपदेश को भुला देते है। यदि देखा जाय तो व्यवहार में वे गांधीजी की अपेक्षा मार्क्स के अनुयायी अधिक हैं। गांधीजी के सिद्धान्त व्यवहार के लिए और जीवन में उतारने के लिए हैं। यदि उनके नाम का उपयोग केवल श्रीगणेशाय नमः के आधुनिक संस्करण के रूप में ही रह जाता है तो इस देश में गांधीवाद का भविष्य बहुत धूमिल है।

हम चाहते हैं कि हमारी शंका निर्मूल हो। किन्तु बापू की जन्मशती के अवसर पर आत्मचिन्तन और आत्म-परीक्षण के क्षणों में जो विचार आये, उन्हें यथार्थरूप से पाठकों तक पहुँचाना हम अपना कर्तव्य समझते है। बापू ने इस देश में जिस रामराज्य की कल्पना की थी वह तभी साकार हो सकता है जब देशवासी उनके उपदेशों और सिद्धान्तों को भाषण और लेखों तक सीमित न रखकर उन्हें अपने व्यवहार और आचरण का आधार बना लें। तभी इस जन्मशती की सार्थकता है।

राष्ट्रपति हो ची मिन्ह का स्वर्गवास—गत मास ७९ वर्ष की आयु में उत्तरी वियतनाम के राष्ट्रपति हो ची मिन्ह का स्वर्गवास हो गया। वे कट्टर कम्यूनिस्ट नेता थे किन्तु फिर भी अपने उच्च चरित्र, कर्मठता, संगठन की अप्रतिम प्रतिभा, अपराजेय इच्छा शक्ति, त्यागमय सादे जीवन तथा मिलन-सार स्वभाव के कारण उन्होंने कम्यूनिस्ट-विरोधियों का भी हार्दिक आदर ही नहीं, बहुतों का तो स्नेह भी प्राप्त कर लिया था। लेनिन, स्टालिन और माओसे तुंग के समान महान् कम्यूनिस्ट नेताओं से उनकी तुलना की जा सकती है, किन्तु मानवीय चरित्र तथा लोकप्रियता की दृष्टि से उनकी तुलना केवल लेनिन से हो सकती है। अपने समय में लेनिन को अपने देश के लोगों तथा अन्य कम्यूनिस्टों का अपरिमित स्नेह और आदर प्राप्त था, किन्तु अपने समकालीन विरोधियों का वे उतना आदर नहीं प्राप्त कर सके थे। राष्ट्रपति हो ची मिन्ह को अपने जीवनकाल ही में अपने विरोधियों से मुक्त प्रशंसा, आदर और स्नेह मिला। महान् कम्यूनिस्ट नेताओं में वही एक व्यक्ति थे जो अपनी मातृ-भाषा के अच्छे कवि भी थे।

उनका जीवन उपन्यास की तरह मनोरंजक और घटना-पूर्ण रहा। उनका जन्म मई, १८९० में एक सामान्य सर-कारी कर्मचारी के परिवार में हुआ। उसी समय फ्रांसी-सियों ने वियतनाम पर अधिकार कर लिया और उनके पिता की नौकरी चली गयी। उनका नाम रखा गया ङुयेन तात थान्ह। वे अपनी शिक्षा समाप्त न कर सके। २१ वर्ष

की अवस्था में उन्हें एक जहाज़ पर रसोइए की नौकरी मिल गयी। लंदन पहुँच कर उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी और वहाँ रहने लगे। वे वहाँ छः वर्ष रहे। उन्हें वहाँ एक हौटल में विलायती मिठाइयाँ बनाने का काम मिल गया था। उस समय तक उन्हें राजनीति में विशेष रुचि नहीं थी। अपने अवकाश का समय वे कविता रचने में बिताते थे। वह समय प्रथम महायुद्ध का था। युद्ध समाप्त होने पर वे पेरिस चले गये। वहाँ वे अपनी देशभक्ति के कारण राजनीति में घुस पड़े और लेनिन के सिद्धान्तों और सफलताओं से आकृष्ट होकर वे कम्यूनिस्ट हो गये। यहाँ उनकी आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय रही और कभी-कभी तो उन्हें उपवास तक करना पड़ता था। किन्तु वे नाटक लेख आदि लिखकर कुछ उपार्जन कर लेते और अपना समय राजनीतिक कार्यो में लगाते थे। यहाँ उन्होंने वियतनाम की स्वतन्त्रता के लिए भी आन्दोलन किया तथा कई प्रदर्शनों में प्रमुख भाग लिया। इसी समय फ्रांस की कम्यूनिस्ट पार्टी से उनका सम्पर्क हुआ और वे उसके लिए प्रचार साहित्य लिखने लगे। पेरिस में जिस मकान में वे रहते थे वहाँ एक चीनी नवयुवक भी रहता था जिसका नाम चाऊ एन लाई था और जो अब चीन का प्रधान मन्त्री है।

१९२३ में वे पहिली बार मास्को गये। वहाँ वे कम्यूनिस्ट किसान अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में गये थे, और उसके अध्यक्षमंडल (प्रिसीडियम) के सदस्य भी चुन लिये गये थे। १९२४ में वे मास्को में लेनिन की शवयात्रा में सम्मिलित हुए, तथा उसी समय उनका परिचय स्टालिन से हुआ। वहाँ से वे चीन भेजे गये जहाँ उन्होंने 'अनाम (वियतनाम का एक प्रान्त) क्रान्तिकारी नवयुवक समाज' की स्थापना की जिसका उद्देश्य वियतनाम को स्वतन्त्र करना था।

१९३० में वे चीन से थाईलेण्ड आये और वहाँ उन्होंने हिन्द-चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना की। वहाँ नगर पर आक्रमण करने के लिए उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया, किन्तु वे पकड़े नहीं जा सके। वे हांगकांग चले गये जहाँ किसी नियम को भंग करने के लिए उन्हें डेढ़ वर्ष का कारावास का दण्ड मिला और वे जेल भेज दिये गये। बाद में जब वे चीन गये तो वहाँ भी वे जेल में बन्द कर दिये गये। जेल से छूटने पर सन् १९४१ में २८ वर्ष बाद स्वदेश लौट आये, और वहाँ उन्होंने 'स्वतन्त्रता-मोर्चा' स्थापित किया। इसका उद्देश्य वियतनाम को फ्रांसीसियों से मुक्त करना था। कुछ दिन बाद ही फ्रांसीसियों की शह पाकर चीनी वियतनाम में घुस आये, किन्तु ड्युेन तात थान्ह के जवानों ने उनकी नाक में दम कर दी। चीनी अधिकारी जब उन्हें पकड़ने में असफल हो गये तब उन्होंने कहा कि 'ड्युेन तात थान्ह' हमारा शत्रु है। यदि तुम अपना नाम बदल लो तो हम तुम्हारा नाम अपने उन शत्रुओं की सूची में से काट दें जिन्हें पकड़ने के हमें आदेश हैं। उस समय उन्होंने अपना पुराना नाम छोड़कर नया नाम—हो ची मिन्ह—धारण किया जिस नाम से वे संसार में प्रसिद्ध हुए।

१९४५ में हो ची मिन्ह ने वियतनाम के स्वतन्त्र जनतंत्रात्मक प्रजातन्त्र की स्थापना की घोषणा की। उस समय वियतनाम पर जापानियों ने फ्रांसीसियों को भगाकर अधिकार कर लिया था। इसके कुछ दिनों बाद ही अंग्रेजी सेना ने आकर जापानियों को निकाल दिया, किन्तु उन्होंने वियतनाम फिर फ़ांसीसियों को सौंप दिया। पहिले तो हो ने इस बात का प्रयत्न किया कि फ्रांसीसियों से समझौता हो हो जाय, किन्तु जब वे वियतनाम छोड़ने को राजी न हुए तब हो ने उनके विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। यह युद्ध कई वर्ष चला। अन्त मे जब टानकिन के किले में फ्रांसीसियों की बुरी तरह पराजय हुई तब फ्रांसीसियों ने वियतनाम छोड़ दिया।

इस बीच (१९४९ में) फ्रांसीसियों ने दक्षिणी वियतनाम में सम्राट् बाओ दाई की अध्यक्षता में एक राज्य बना दिया था। हो ची मिन्ह उत्तरी वियतनाम में लड़ रहे थे। वियतनाम से फ्रांसीसियों के चले जाने के बाद जिनेवा में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें फ्रांस, इंग्लैण्ड और रूस आदि सम्मिलित हुए। अमरीका और दक्षिणी वियतनाम इसमें नहीं थे। इस सम्मेलन में उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम की सीमा निर्धारित की गयी तथा सारे वियतनाम की स्थायी व्यवस्था करने के लिए दो वर्षो के भीतर चुनाव कराने का निश्चय किया गया। इन चुनावों का प्रबन्ध एक आयोग को सौंपा गया जिसके भारत, कनाडा और पोलैण्ड सदस्य बनाये गये।

उत्तरी वियतनाम में कम्यूनिस्टों का राज था। दक्षिण वियतनाम के लोग कम्यूनिस्ट नही थे। हो की प्रेरणा से दक्षिण में दक्षिणी वियतनाम की मुक्ति के लिए एक राष्ट्रीय

मोर्चा बनाया गया। इसके सदस्य 'वियतकांग' कहलाते है। वे लोग दक्षिण वियतनाम मे संगठन करने लगे।

दक्षिण वियतनाम के प्रधान मन्त्री ने १९५८ मे घोषणा की कि चूँकि दक्षिणी वियतनाम ने जिनेवा के सम्मेलन के करार पर हस्ताक्षर नहीं किये और न उसे स्वीकार किया, इसलिए वह चुनाव कराने को तैयार नही हे। यहीसे उत्तर और दक्षिणी वियतनाम का वर्तमान युद्ध आरम्भ हुआ। उत्तरी वियतनाम को हो के प्रयत्नों से रूस और चीन के सैनिक सामान की प्रचुर सहायता मिल रही है और दक्षिणी वियतनाम को खुलकर अमरीका सहायता दे रहा हे।

उत्तरी वियतनाम एक बहुत छोटा राज्य है। १९६४ मे उसकी जनसख्या एक करोड़ सत्तर लाख के लगभग थी, और इसमे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की सख्या अधिक थी। प्रायः ९३ प्रतिशत लोग गाँवो मे रहते है। फ्रासीसियों के राज्यकाल मे यहाँ आधुनिक उद्योग-धधे भी नही फैले। साधनहीन हो ची मिन्ह ने ऐसे निर्धन और पिछड़े देश को आधुनिक युद्ध के लिए संगठित करने का असंभव कार्य हाथ में लिया, और उसे सभव कर दिखाया। इतना ही नहीं, उन्होने फ्रास के समान आधुनिक शक्ति को पराजित किया और अमरीका के छक्के छुडा दिये। इसके साथ यह वात भी याद रखनी चाहिए कि वे लगातार तीस वर्ष से अधिक भयंकर युद्ध करते रहे। ऐसे छोटे देश मे इतने वड़े राष्ट्रों से इतनी लम्वी अवधि तक सफलतापूर्वक लोहा लेने की अदम्य इच्छा और शक्ति उत्पन्न करने का अपूर्व श्रेय उन्हीं को है। वे जिस फौलाद के वने थे वह फौलाद प्रकृति के भडार में भी वहुत ही कम है, और उसका उपयोग कभी-कभी ही, युगों का अन्तर देकर, वड़ी कंजूसी से, करती है।

उनका व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त उच्च था। उनका जीवन वहुत सादा था। वे अपनी सरलता, त्यागमय और सादे जीवन के कारण साधु-संत के समान लगते थे। वे मानवता के पुजारी थे और देशभक्ति के साकार रूप थे। ऐसे अनुपम वीर पुरुष का निधन सारी मानवता की क्षति है।

हमारी विचित्र धर्म निरपेक्षता—जेरूसलम मे अल-अक्सा नाम की एक संसारप्रसिद्ध मस्जिद है। पवित्रता और महत्व की दृष्टि से मुसलमानो की निगाह मे उसका तीसरा स्थान है। कहा जाता है कि जिस स्थान पर यह मस्जिद वनी है वहाँ प्राचीन काल में प्रसिद्ध यहूदी नरेश सुलेमान ने जिहोवा का एक विशाल मन्दिर वनवाया था जो यहूदियों में वड़ा पूज्य था। यह मस्जिद पेलेस्टाइन को जीतने वाले अरवों ने सातवी या आठवीं शती में वनायी थी।

जेरूसलम नगर के दो भाग है—पुराना और नया। नये भाग पर इसराइल का अधिकार था और पुराने भाग पर जार्डन का। पुराने नगर में ईसाई, मुसलमान और यहूदी धर्मो के अनेक प्राचीन स्मारक और पवित्र स्थान है। यह नगर तीन धर्मो के तीर्थो का संगम हे। प्राचीन काल में वह यहूदी राज्य की राजधानी था। इसलिए इसराइल इस पर अधिकार करना चाहता था। वर्तमान अरव-इसराइल युद्ध में उसने जार्डन से उसे छीन लिया।

कुछ दिन पूर्व अलअक्सा मस्जिद के एक भाग में आग लग गयी। वह अरव-मुसलमानों की देख-रेख में थी, किन्तु नगर पर इसराइल का अधिकार था। अरवों का कहना है कि इस अग्निकांड के पीछे इसराइल का हाथ है, और इसराइल का कहना है कि आग लगानेवाला आस्ट्रेलिया-वासी एक ईसाई युवक है जिसने धर्मान्धिता के कारण यह कुकृत्य किया। वह पकड़ भी लिया गया है और इसराइल उस पर मुकदमा भी चला रहा है।

किन्तु अलअक्सा के इस अग्निकांड से सारे मुस्लिम जगत् में रोष और उत्तेजना फैलना स्वाभाविक था। वर्तमान अरव-इसराइल युद्ध ने मुसलमानों के रोष को और तीव्र कर दिया, और अलअक्सा की मरम्मत कराने के लिए उसके नष्ट करने के प्रयत्न के विरोध में रोष व्यक्त करने तथा जेरूसलम को इसराइल से छीन लेने के लिए सारे संसार के मुसलमान आन्दोलन कर रहे है।

इस सम्वन्ध मे हमने समाचार-पत्रों मे यह समाचार पढ़ा—

कल तेहरान में ईरान के शाह ने मुस्लिम राष्ट्रों (मुस्लिम नेशन्स) के राजदूतों से अलअक्सा मस्जिद की मरम्मत के लिए संयुक्त प्रयत्न करने के सम्वन्ध में विचार-विमर्श किया। राजदूतों में भारत के राजदूत श्री मोहम्मद अताउर्रहमान भी थे।

इस भेंट में जो सादाबाद के ग्रीष्म महल में हुई थी

शाह ने संसार के मुसलमानों में एकता बनाये रखने का आह्वान किया।

राजदूतों ने अपनी-अपनी सरकारों की ओर से वचन दिया कि वे मस्जिद की मरम्मत के संयुक्त प्रयत्नों का समर्थन करेंगी।"

जब हमने यह समाचार पढ़ा तब हमे यह बात खटकी कि भारत तो "मुस्लिम राष्ट्र" नही है, उसका राजदूत मुस्लिम राष्ट्रों के सम्मेलन मे क्यों सम्मिलित हुआ।

किन्तु "छोटे मियाँ तो छोटे मियाँ, बड़े मियाँ सुभान अल्लाह!" वाली कहावत तब चरितार्थ हुई जब रबात (मोरक्को) में होनेवाले मुस्लिम राष्ट्रों के सम्मेलन में भारत को निमंत्रित नहीं किया गया और भारत सरकार ने इस पर अपना असंतोष और विरोध व्यक्त किया। यह सम्मेलन अलअक्सा मस्जिद के सम्बन्ध मे हो रहा है।

यह सही है कि भारत में छः करोड़ मुसलमान रहते है, और संसार के देशों की मुस्लिम संख्या की दृष्टि से भारत का स्थान तीसरा है। किन्तु यहाँ चालीस-पैंतालीस करोड़ हिन्दू भी रहते है। तब भारत 'मुस्लिम राष्ट्र' कैसे हो सकता है? रूस में भी बहुत से मुसलमान रहते है। ग्रीस और यूगोस्लाविया में भी वे भारत की तरह, अल्पसंख्या में हैं। किन्तु इस कारण ये देश 'मुस्लिम राष्ट्र' नही माने जाते और न माने जा सकते है। उन्हें भी रबात के सम्मेलन में नहीं बुलाया गया।

फिर भारत तो 'धर्मनिरपेक्ष' राज्य है। उसका कोई राजधर्म नहीं है। मिस्र, सऊदी अरब, इराक, सीरिया, जार्डन, ईरान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान का राजधर्म इस्लाम है। वे मुस्लिम राष्ट्र हैं। भारत सरकार और हमारे नेता हमें नित्य यह याद दिलाया करते हैं कि भारत 'धर्मनिरपेक्ष' है। जब वह धर्मनिरपेक्ष है तब वह मुसलमान राष्ट्रों के ऐसे सम्मेलन मे जो एक धार्मिक समस्या के निराकरण करने के लिए हो रहा है, क्यों सम्मिलित होने को उत्सुक है?

फ्रांस में कार्डिनल रिशलू के समय में कहा जाता था कि उसकी 'गृहनीति कैथलिक मत से पक्ष में, और विदेश-नीति प्रोटेस्टेण्ट मत के पक्ष में" थी। क्या भारत भी उसी पूर्व दृष्टान्त के अनुसार 'घर' में 'धर्म निरपेक्ष' और 'बाहर' मुसलमान है?

इंडोनेशिया और तुर्की मुस्लिम-बहुल राज्य है, किन्तु उन्होंने अपने को धर्मनिरपेक्ष घोषित कर रखा है। उन्होंने रबात (मोरक्को) के इस्लाम धर्म के आधार पर किये जानेवाले इस सम्मेलन में, मुसलमान होते हुए भी, सम्मिलित होने से इनकार कर दिया है। और हमारा देश मुस्लिम बहुल न होते हुए भी, तथा धर्मनिरपेक्षता का डंका पीटते रहने के बावजूद, उस सम्मेलन मे सम्मिलित होने को आतुर है! क्या भारत सरकार ने सोचा है कि संसार मे उसके इस तर्कविरुद्ध और असंगत कार्य का उसके धर्मनिरपेक्षता के दावे पर क्या प्रभाव पड़ेगा, तथा भारत के बहुसंख्यकों पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? वह एक बड़े वर्ग मे, अपने मुस्लिम तुष्टीकरण के लिए, सही या गलत, बदनाम है। उसकी इस कार्रवाई से लोगों की इस धारणा की पुष्टि होगी तथा उसके धर्मनिरपेक्षता के उपदेश थोथे मालूम पड़ेंगे।

हिन्दी के मामले में द्रमुक के सामने भारत-सरकार ने घुटने टेक दिये!—सेना में कई वर्षो से परेड और कवाइद के कुछ आदेश-संकेत हिन्दी में दिये जाते है। इन संकेतों का अनुपात (हमें बतलाया गया है) बीस-पचीस प्रतिशत से अधिक नहीं है। कालिजों में विद्यार्थियों को आरम्भिक सैनिक शिक्षा देने के लिए सेना की ओर से नेशनल कैडट कोर (एन० सी० सी०) बनायी गयी है। सारे देश में इसकी शाखाएँ है और लाखों विद्यार्थी यह प्रशिक्षण लेते है। इसकी परेडों और कवाइद में सेना के आदेश-संकेतों ही का प्रयोग होता है। तामिलनाडू (मदरास) में जब द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम की सरकार बनी तब उसने खुलकर हिन्दी का विरोध आरम्भ कर दिया, और भारत-सरकार से यह माँग की कि उसके क्षेत्र में एन० सी० सी० में आदेश-संकेत हिन्दी में न दिये जायँ। जब उसकी यह बात नही मानी गयी तब उसने अपने राज्य के कालिजों में एन० सी० सी० बन्द कर दी। वह एक साल से कुछ अधिक समय तक बन्द रही। भारत-सरकार अखिल भारतीय संगठन के आदेश-संकेतों में एकरूपता रखना आवश्यक समझती थी, इसलिए उसने द्रमुक की माँग नही स्वीकार की। द्रमुक अपनी माँग पर अड़ा रहा। अन्त मे भारत-सरकार ने अखिल भारतीय एकरूपता का सिद्धान्त ताक पर रखकर द्रमुक की हठधर्मी के सामने घुटने टेक दिये

और यह मान लिया कि तामिलनाडू में एन० सी० सी० के आदेश-संकेत अंग्रेजी में दिये जायेंगे। अपनी इस मेरुदंड-हीनता से उसने देश के समझदार लोगों में अपनी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाई। उसने इस कार्य से यह स्पष्ट कर दिया कि इस देश में हठधर्मी के द्वारा भारत सरकार से वे काम भी कराये जा सकते है जिन्हें वह सिद्धान्त की दृष्टि से नही करना चाहती। हम इस कार्य को देश की एकता और हित के विरुद्ध समझते हैं, और भारत सरकार को उसके लिए बधाई नही दे सकते।

श्री जगजीवनराम का अनोखा भुलक्कड़पन—इस देश में आये दिन हमारे नेता कर न देने वालों की निन्दा किया करते है। आयकर छिपाने या न देने के सैकड़ों मामले प्रति वर्ष होते है और पकड़े जाने पर उन्हे बहुत कड़ा आर्थिक दंड देना पड़ता है। श्री मुरारजी देसाई भारत के वित्त-मन्त्री थे, और उनके सामने यह मामला आया कि केन्द्रीय वरिष्ठ मन्त्री श्री जगजीवनराम ने दस वर्ष से अपना आयकर नहीं दिया, तथा चार वर्ष से सम्पत्तिकर का विवरण नहीं भेजा। देसाईजी जरूरत से ज्यादा बेमुरव्वत और 'सूखे काठ' है। उन्होंने तुरन्त वसूली और अधिक से अधिक आर्थिक दंड देने के आदेश दे दिये। यह मालूम होने पर श्री जगजीवनराम ने तुरन्त ही अपना दस वर्षो का आयकर एक मुश्त में जमा कर दिया। दस वर्षो का आयकर एक साथ जमा करने में उन्हें जो कठिनाई हुई होगी, उसकी कल्पना की जा सकती है। किंतु इस कठिनाई के बावजूद उन्होंने सारा पिछला आयकर चुकता कर दिया। आयकर समय पर न देने वालों, आय छिपानेवालों और आय अथवा सम्पत्ति का विवरण समय पर न देने वालों पर कुछ अर्थदंड भी लगाया जाता है। प्रतिवर्ष सैकड़ों लोगों पर वह अर्थदंड लगता है। जनता में यह जानने का स्वाभाविक कुतूहल है कि इस मामले में आयकर विभाग जो अर्थदण्ड सामान्य नागरिकों पर लगाता है, वह एक बड़े मंत्री पर लगाने का साहस करेगा या नही। संक्षेप में, क्या जो कानून जनता पर लागू है वह प्रभावशाली मंत्रियों पर भी लागू किया जायगा या नहीं? किंतु अभी तक जनता का कुतूहल शान्त नहीं हुआ है।

कुछ पत्रकारों ने जब प्रधान मंत्री से इस मामले की सत्यता जाननी चाही तो उन्होंने कहा कि उसमें कुछ तथ्य है, किंतु मंत्री महोदय इतने व्यस्त रहते हैं कि वे कर चुकाना और नियमानुसार सम्पत्ति कर का विवरण भेजना भूल गये। किसी ने उन्हें याद ही नहीं दिलायी।

अवश्य ही मंत्रीगण बहुत व्यस्त रहते है। किंतु संसद में प्रतिवर्ष आयकर और सम्पत्तिकर की चर्चा इतनी बार होती है कि यदि मंत्री समाधिस्थ होकर ही वहाँ न बैठें तो वर्ष में न मालूम कितनी बार उन्हें उस चर्चा से अपने आयकर की याद हो आती होगी। कोई भी मंत्री प्रधान मंत्री से अधिक व्यस्त नहीं रहता। किंतु स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू इस मामले में बहुत सतर्क रहते थे और सदैव समय से अपने कर और विवरण भेज दिया करते थे। फिर, बड़े आदमियों, मंत्रियों आदि के सचिव इन बातों में (कर के विवरण का प्रपत्र भरने, आयकर विभाग को पत्र और चेक आदि भेजने में) उनकी सहायता करते हैं। अतएव दस वर्ष की दीर्घ अवधि तक आयकर और चार वर्ष तक सम्पत्तिकर का विवरण जमा न करने का कारण सिवाय सामूहिक 'भुलक्कड़पन' के और क्या हो सकता है!

अब यदि आयकर विभाग एक मंत्री के भुलक्कड़पन और व्यस्तता के कारण उसका यह नियमभंग क्षमा कर दे तो बहुत से ऐसे लोगों का कल्याण होगा, क्योंकि 'महाजनो ये न गतः स पन्था' नीति के अनुसार इस देश में 'भुलक्कड़-पन' केवल मंत्रियों तक ही सीमित नही है। वह संक्रामक रोग का तरह फैल भी सकता है। और अब आशा है कि इस रोग के कारण आयकर अधिकारी उन पर अवश्य ही वैसी दया करेंगे जैसी एक मंत्री पर की जायगी।
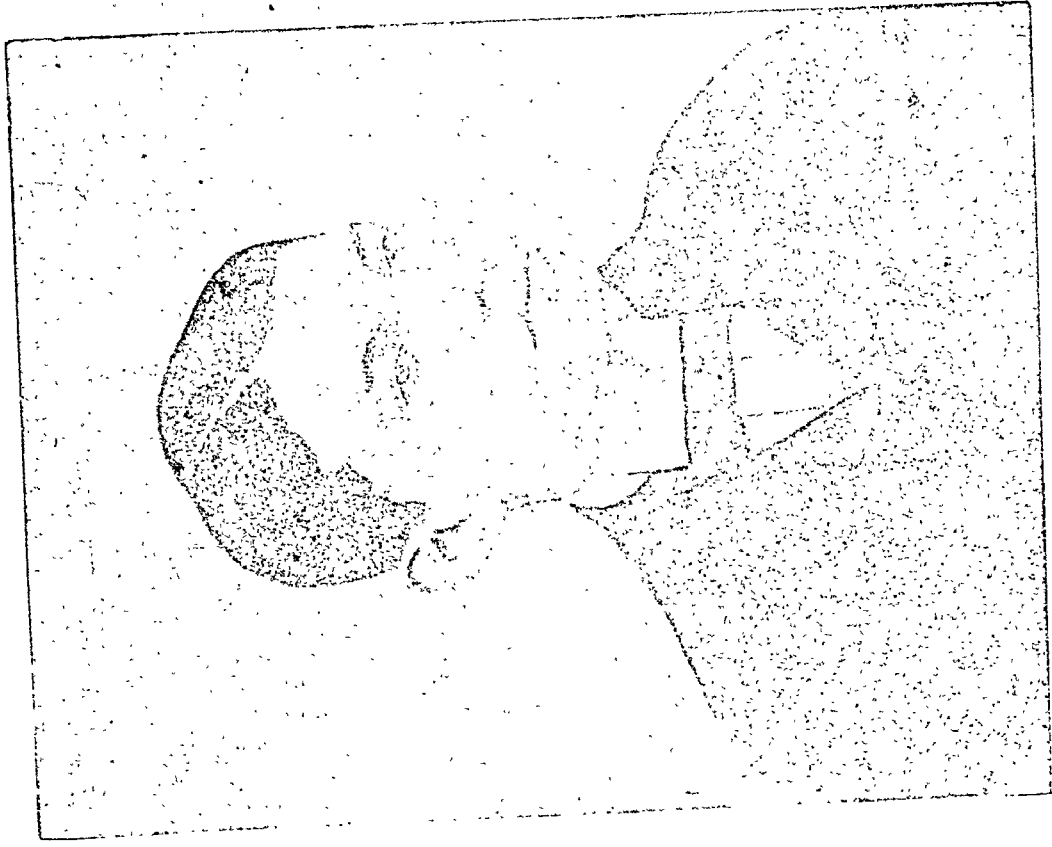
गांधीजी सात वर्ष की अवस्था में

गांधीजी लंदन में बैरिस्टरी के विद्यार्थी
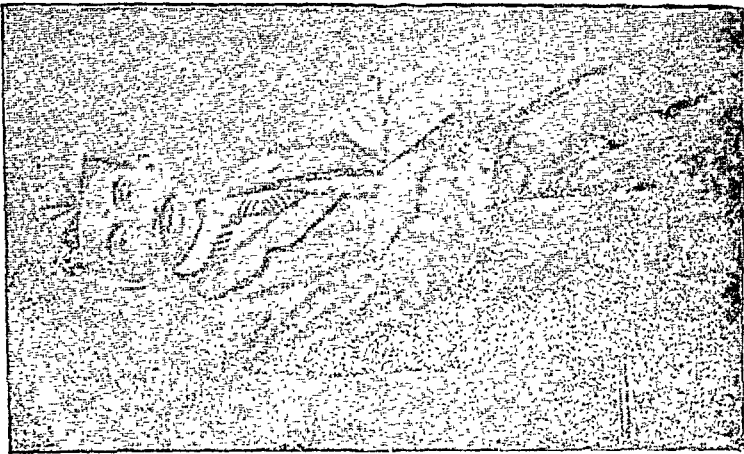
बैरिस्टर गांधी दक्षिण अफ्रीका में

गांधीजी और गुरुदेव

गांधीजी-महामना वात करते हुए

गांधीजी खान अब्दुल ग़फ्फारखां के साथ भाषण देते हुए
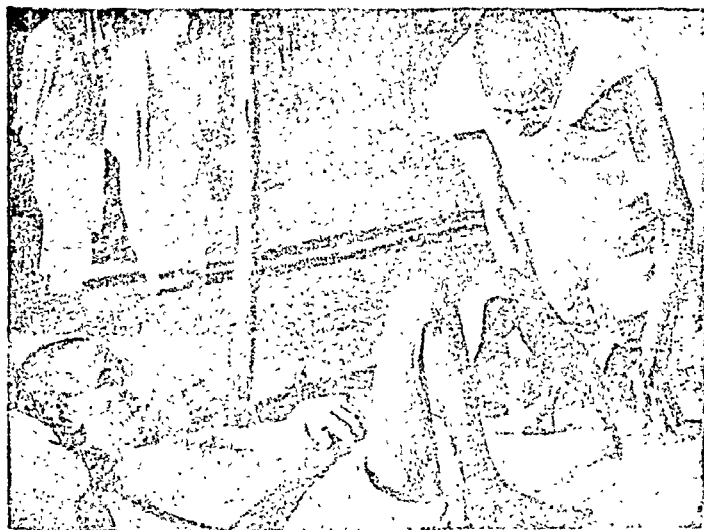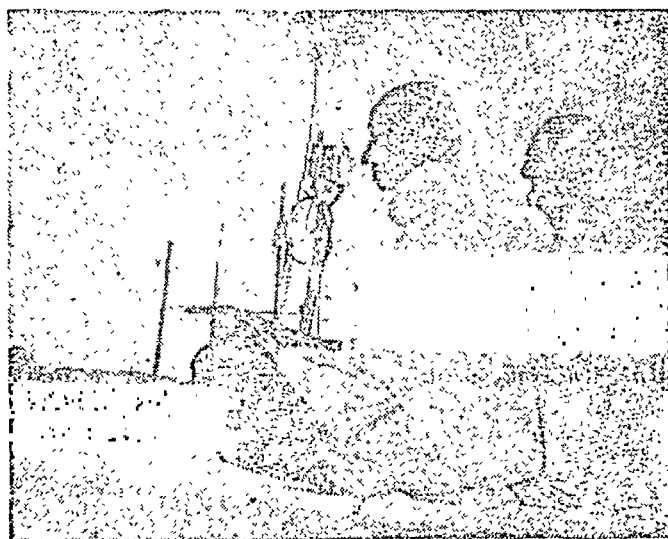
वापू एक कुष्टरोगी की सेवा करते हुए
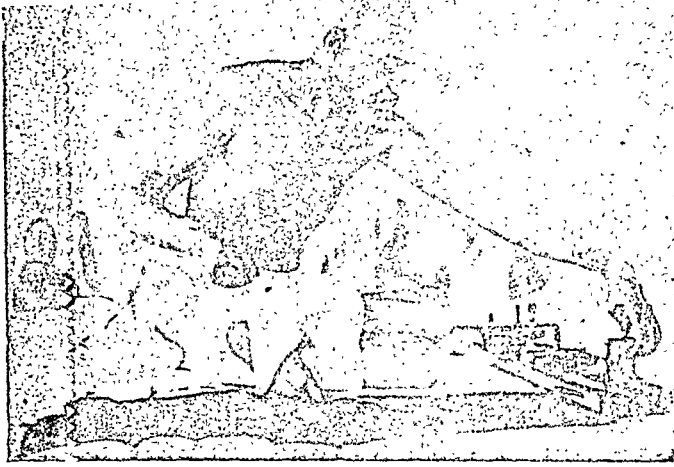
गांधीजी चर्खा कातते हुए

गांधीजी राजेन्द्र बाबू के साथ
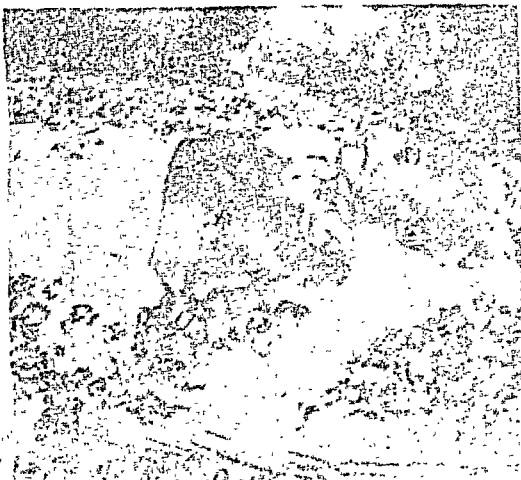
अनन्त निद्रा में

जनक और अष्टावक्र

श्री मण्डन मिश्र

अष्टावक्र उद्दालक मुनि के शिष्य कहोड़ या कहोल के पुत्र थे। उनकी माता गुरु उद्दालक की कन्या सुजाता थी। वामदेव, शुकदेव आदि की तरह गर्भवास काल में ही अष्टावक्र को जन्मान्तर में लब्ध ज्ञान और विद्या-संस्कार उद्‌बुद्ध हो गये थे। गर्भ में रहते हुए ही उन्होंने अपनी जननी के प्रति पिता की अध्ययन में अभिनिवेशवश होने वाली, सर्वरजनीव्यापी अवज्ञा को लक्ष्य-कर एक दिन पिता के स्वाध्यायाध्यन में कुछ भूल दिखलायी, जिससे पिताजी के आत्माभिमान एवं विद्याभिमान को ठेस पहुँची, और चकमक पत्थर की चिनगारी की तरह वे बोल उठे—'तुम अष्टावक्र (आठ जगह से टेढ़े) शरीर को लेकर उत्पन्न होगे।' कहोड़ आसन्नप्रसवा अपनी भार्या के प्रसवकालीन व्ययनिर्वाहार्थ धन की भिक्षा के लिये पत्नी द्वारा प्रेरित होकर राजद्वार पर जा पहुँचे। वहाँ जनकराज के सभासद वादवेत्ता वरुणपुत्र वन्दी ने उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त कर, जल में निमग्न कर, अपने पिता वरुण द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में ऋत्विक या सदस्य बनने के लिए वरुणलोक में भेज दिया। इधर बालक ने गर्भमुक्त होकर अष्टावक्र (आठ स्थान पर टेढ़े) देह के सहित 'अष्टावक्र' यह नाम भी पाया। किन्तु उन्हें अपने पिता का वृत्तान्त मालूम न था, इसलिये उद्दालक ऋषि को पिता एवं श्वेतकेतु को अपना भाई समझने लगे और तद्रूप ही उनसे व्यवहार भी करते हुए उन्होंने बारहवें वर्ष में पदार्पण किया। माता सुजाता और पिता उद्दालक की आज्ञा से अष्टावक्र अपने पिता का वृत्तान्त सुनने से वंचित रखे गये थे। किन्तु एक दिन ऐसी घटना हुई कि अष्टावक्र को उद्दालक की गोद में बैठा देखकर पितृस्नेह का हिस्सेदार समझकर ईर्ष्यावश श्वेतकेतु से रहा न गया। वे बोल ही तो उठे—"यह गोद तुम्हारे बाप की नहीं है।" यह सुनते ही अष्टावक्र को बहुत बड़ा क्षोभ हुआ और माता सुजाता के पास जाकर अपने पिता का असली वृत्तान्त बतलाने का उन्होंने आग्रह किया। पुत्र के प्रति पति के शाप की अमोघता (अव्यर्थता) देखकर सुजाता ने सोचा कि उनके औरस पुत्र का शाप भी वैसा ही भयावह होगा। इसीसे सुजाता ने अपने पुत्र अष्टावक्र से सब वृतान्त ज्यों का त्यों कह डाला। सुनकर अष्टावक्र ने पिता को छुड़ाने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया और जब राजा जनक एक यज्ञ कर रहे थे उसी समय मामा श्वेतकेतु के साथ राजधानी में जा पहुँचे। एक तो देखने में भद्दा स्वरूप, दूसरे उम्र भी बहुत कम थी। इसीसे राजसभा में प्रवेश कर राजा से साक्षात्कार करने में उन्हें बहुत क्लेश उठाना पड़ा। अन्त में किसी तरह द्वारपाल की कृपा से राजा के पास पहुँचकर उन्होंने अपने पिता के शत्रु बन्दी से शास्त्रार्थ करने का अवसर देने की प्रार्थना की। वन्दी की असाधारण वाद-शक्ति एवं तत्कर्तृक पराजय से अष्टावक्र की विपदांश का वर्णन करते हुए राजा ने उन्हें इससे निवृत्त करने की चेष्टा खूब की। किन्तु अष्टावक्र ने जब कहा कि 'मैं वाद-शक्ति की कथा एवं तत्कर्तृक पराजय से जैसी विपत्ति की आशंका है, वह सब सुन चुका हूँ। मैं आया हूँ आपके यज्ञ में उपस्थित ब्राह्मणगणों के आगे अद्वैत ब्रह्म-वार्ता का प्रतिपादन करने के लिये।' तब उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिए जनक ने स्वयं उनसे तीन प्रश्न किये।

जनक का पहला प्रश्न—'तीन का समष्टि रूप, बारह अंश युक्त चौबीस पर्वविशिष्ट तीन सौ साठ अर द्वारा जो गठित पदार्थ है, उसका प्रयोजन जो जानते हैं वे ही यथार्थ पंडित हैं।' उसके उत्तर में अष्टावक्र ने कहा—'चौबीस पर्वयुक्त, छः नाभिविशिष्ट, बारह नेमिलवैलित एवं तीन सौ साठ अरसंगठित—सदा गति चक्र आपकी रक्षा करे।' प्रश्न का अभिप्राय यही है कि जो लोक सौर संवत्सर, चान्द्र संवत्सर और सावन संवत्सर के यथा काल विहित अनुष्ठेय धर्म समूह को जानते हैं, वही पण्डित हैं। अष्टावक्र ने उत्तर द्वारा यह दिखलाया कि उन्होंने केवल प्रश्नकर्ता के अभिप्राय को सम्पूर्णतया समझ लिया है। इतना ही नहीं, अपितु क्षत्रिय राजा को ब्राह्मणोचित आशीर्वाद देकर उसके द्वारा यह सूचित किया कि जिससे वे भी धर्मानुष्ठान द्वारा श्रेय लाभ करें।

जनक का दूसरा प्रश्न—"रथ में जुते हुये दो घोड़ों की तरह एक साथ विचरण करनेवाले श्येन पक्षी (बाज) की तरह अचानक झपटनेवाले, ऐसे कौन से दो पदार्थों को कौन देवता अपने गर्भ में धारण करता है? एवं वे दोनों

ही किस पदार्थ का प्रसव करते हैं।" अष्टावक्र ने उत्तर में कहा—'राजन्! वह वस्तु आपके घर में न पड़े। मेघ इन दोनों पदार्थों का प्रसव करता है और ये भी मेघ का उत्पादन करते है।' उत्तर का आशय यहां है कि मेघ जैसे विद्युत्-अशनि का प्रसव करता है, वैसे ही विद्युत्-अशनि भी गृह, वृक्षादि को जलाकर "धूम, ज्योति, सलिल, और मरुत के सन्निपात" मेघ का उत्पादन करते है। अथवा अग्नि रूप मेघ विद्युदादि द्वारा अग्नि का ही उत्पादन करता है।

जनक का तीसरा प्रश्न—"बिना आँखें मूँदे कौन सोता है? कौन जन्म लेकर भी हिलता-डुलता नहीं? किसके हृदय नही है? कौन वस्तु वेग से बढ़ती है?" अष्टावक्र ने उत्तर दिया—"मत्स्य, अण्डा, पत्थर, और नदी।" तीसरे प्रश्न के सम्बन्ध में वे कहते है कि तृतीय प्रश्नोत्तर द्वारा यह दिखलाया गया है कि दृष्टा आत्मा का विपरिलोप (नाश) नहीं होता, समस्त दृश्य प्रपंच अचेतन या जड़ है। देहादि में आसक्तित्याग करनेवाले को मुक्ति लाभ होता है, एवं संसार मन का ही विकार-विशेष है। उसके आंतरिक और कुछ नहीं है। इस तरह प्रश्नोत्तर द्वारा वेदोंके कर्मकाण्ड का, एवं द्वितीय और तृतीय प्रश्नोत्तर द्वारा वेदों के ज्ञानकाण्ड का तात्पर्य संगृहीत हुआ। उपासना काण्ड के नाम से कोई-कोई वेदों के जिस तीसरे काण्ड की बात उठाते है वह उपासनाकाण्ड कर्म-काण्ड के ही अन्तर्गत है। ज्ञानकाण्ड के लक्ष्यभूत ब्रह्म-ज्ञान के साथ उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। अष्टावक्र के उत्तर को सुनकर जनक दृष्टि पाकर माया पाश विमोचन में समर्थ हुए क्योंकि उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य उपदेश काल में ही आत्मदर्शन का लाभ कर लेते है। एवं उस विकट देह निवासी (अष्टावक्र) को असाधारण मानव जान-कर वन्दी के साथ प्राथित वाक्युद्ध (शास्त्रार्थ) का उन्होंने अनुमोदन किया। इंगित और संकेत में ही वह वाक्युद्ध प्रारम्भ हुआ। अर्थात् १ से १३ तक संख्या द्वारा सूचित प्रसिद्ध वस्तुओं के उल्लेख द्वारा जनक के प्रति उपदिष्ट सिद्धान्त और बौद्ध मीमांसक आदि परपक्षवालों के आरोपित दूषणों का खण्डन-मण्डन चलने लगा। चौदहवें में वन्दी निरुत्तर हो गये, और पराजय के परिणामस्वरूप जल में गोता खाने के पहले वरुण पुत्र के रूप में अपना परिचय देकर, वादविजित विप्रगणों के साथ कहोड़ को पितृगृह (वरुणलोक) से ले जाकर अर्पण कर दिया। कहोड़ ने भी पुत्र पर प्रसन्न होकर अपने शाप से हुई अंगवक्रता की परिशुद्धि करने के लिए उन्हें खमंगा नदी में स्नान करने का आदेश दिया। वही अष्टधा विकृत शरीर खमंगा में अवगाहन करने से सम तो हो गया किन्तु 'अष्टावक्र' नाम का परिहार न हो सका। इनका पूर्ण वृत्तान्त महा-भारत में वर्णित है। उनकी रचना अष्टावक्र गोता के नाम से प्रसिद्ध है।

आवर्त-प्रत्यावर्त

श्री सर्वेश्वर अवस्थी

(१)

चूर्ण कर पृथ्वी बना दे धूलि-सी,
उड़े नभ में भूतनाथ-विभूति-सी,
तोड़ प्रति अणु मुक्त कर वह शक्ति भी,
जो किये आकृष्ट अणु-अवयव सभी।

(२)

रूप हों सब नष्ट, संज्ञायें सभी,
नष्ट हों सब भेद, सीमायें सभी,
काल का आभास भी न रहे कहीं,
सब दिशायें लुप्त हो जायें कहीं।

(३)

प्रकृति अपना धर्म करती ही रहेगी,
सूक्ष्मतमता स्थूल होती ही रहेगी,
तत्त्व होंगे घनीभूत पुनः सभी,
पुनः धरती बनेगी, फिर सजेगी।

(४)

नाम रूप अनेक फिर हो जायेंगे,
पुनः वाद-विवाद हम फैलायेंगे,
मूल सबका एक है, विसरायेंगे,
मूर्ख हैं, ज्ञानी परन्तु कहायेंगे।

—

सावनी तीज और झूला

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

'दीरघ दाघ निदाघ' से पीड़ित मानव जब, वर्षारम्भ में, आषाढ़ के पहले बादलों को देखता है तो उसका हृदय आनन्द से भर उठता है। 'घेराव' से मुक्त हुए किसी कारखाने के मैनेजर की भाँति वह एक दीर्घ निःश्वास लेता है, मुक्ति का, एक लम्बे कष्टपूर्ण जीवन से छुटकारे का, और उसके हृदय में उल्लास की एक लहर दौड़ जाती है। इसका परिचय वह तरह-तरह के व्यवहारों से देता है; उदाहरणार्थ, उत्तर भारत के पुरुष पंचम स्वर में बिरहा और बारहमासा गाना शुरू कर देते हैं, मिर्जापुर और उसके अड़ोस-पड़ोस का नारी-समाज कजरी गाने में तल्लीन हो जाता है और व्रज तथा राजस्थान की स्त्रियाँ झूला झूलना आरम्भ करती हैं। सावन का महीना खासतौर पर झूला के लिए प्रसिद्ध है। 'झूला झूलत राधा प्यारी'—लगता है कि व्रजेश्वरी राधा को झूला अतिशय प्रिय था और शायद यही कारण है व्रज-मण्डल में इसकी लोकप्रियता का। वैसे तो सारे उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में बरसात में झूला झूलना और कजरी या उससे मिलते-जुलते अन्य गाने गाना शतियों से औरतों के मन-बहलाव तथा विनोद का एक लोकप्रिय साधन बना रहा है, पर जीवन में आज कठिनाइयाँ बहुत हैं। नोन, तेल, मिर्च का सवाल हर आदमी के ऊपर हावी है, उसे परेशान किये रहता है। बढ़ती हुई महँगाई द्रौपदी के चीर की तरह अनन्त रूप धारण करती जा रही है। विलासिता के दल-दल में फँसा हुआ शासकवर्ग जन-जीवन की दिक्कतों को समझने में या तो असमर्थ है, या उससे आँखें मूंद लेना चाहता है। स्वयं सरकार हर चीज की क़ीमतें बढ़ाती जा रही है—डाक के टिकट, रेल का भाड़ा आदि-आदि—जिससे सर्वसाधारण के जीवन की कठिनाइयाँ दिन-ब-दिन और भी गहन होती जा रही हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी परिस्थिति में झूले और कजरी धीरे-धीरे अपनी लोकप्रियता खोती जायँ। जिसे पेट की चिन्ता है वह 'नहिं आये घन-श्याम, घिरि आये बदरा' किस दिल से गाये ?

बरसात के दिन कितने सुहावने होते हैं! खासकर जब आकाश में घनघोर घटाएँ छा जाती हैं, बगुलों की उड़ती हुई पंक्तियाँ ऐसी लगती हैं मानों घन-बाला ने मोतियों का हार पहन लिया हो, और पपीहा किसी वृक्ष के शीर्ष-भाग पर बैठा हुआ 'पी-कहाँ' की रट लगाये रहता है। तभी कभी गाँव-गाँव में झूले टँग जाते थे और बारहमासा के गीतों का स्वर फूट पड़ता था। पर आज न वह राम हैं, न वह अयोध्या। वर्षा आती है, चली जाती है, पर गाँवों की मुर्दनी ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

पर इस लेख का सम्बन्ध उन दिनों से है जब जीवन में इतना संघर्ष न था, देश में खुशहाली थी और लोग शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के आदी थे। कविता-बाला का क्रीड़ास्थल बना हुआ था यह देश; कवि की क़लम में ज़ोर था; व्रजभाषा (खड़ीबोली तब तक साहित्यिक रूप न धारण कर सकी थी) की ओजभरी कविताएँ जो हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं, अधिकांशतः उन्हीं दिनों लिखी गई थीं। देखिए, कविवर 'तोष' ने किस सुन्दर ढंग पर झूला झूलने का वर्णन किया है—

> दोऊ कमबूल[१] झूलि-झूलि मखतूल,[२] झूला लेत
> सुख-मूल, कहि "तोष" भरि बरसात,
> झूमि-झूमि अलक कपोलन पैं छहरात,
> फहरात अंचल, उरोजन उघरि जात;
> रहौ, रहौ, नाहीं, नाहीं, अब ना झुलाओ लाल,
> बाबा की सौं, मेरे ये युगल जंघ थहरात,
> ज्यों-ही-ज्यों मचत[३] त्यों-त्यों लचत लचीलो लङ्क,
> संकित मयङ्कमुखी, अङ्क मैं लपटि जात।

और देखें, "पद्माकर" ने किस सरस ढंग से इसकी चर्चा की है—

---

१. कम उम्र की, २. रेशम, ३. झोंका, झटका।

फूली फूल बेली-सी नवेली अलबेली बधू
झूलति अकेली काम केली-सी बढ़ति है,
कहै "पद्माकर" झमङ्क की झकोरनि सों
चारौ ओर सोर किंकिनीन[१] को मढ़ति[२] है।
उर उचकाय मचकीन[३] की मचामचि मैं
लङ्क ह्वी लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है,
रति बिपरीत की पुनीत परिपाटी मनौ
हौसन[४] हिंडोरे की सुपाटी[५] मैं पढ़ति है।
तीर पर तरनितनूजा के तमाल तरे
तोज की तयारी ताकि आई तखियान[६] मैं,
कहै "पद्माकर" सो उमगि उमंग उठी
मेहदी सुरंग की तरंग नखियान[७] मैं।
प्रेम रंग बोरी गोरी नवलकिसोरी भोरी
झूलति हिंडोरे यों सोहाई सखियान मैं,
काम झूलै उर मैं, उरोजन मैं दाम झूलै,
स्याम झूलैं प्यारी की अन्यारी[८] अँखियान मैं।

हिंडोरे ने जिस प्रकार कवियों को, काव्य-सृजनार्थ, आकर्षित किया था, उसी प्रकार चितेरों को, चित्र आँकने के लिए भी। इस अंक के आरंभ में एक चित्र प्रकाशित किया जा रहा है जो १८वीं शती (उत्तरार्द्ध) की उपज है तथा कांगड़ा-शैली का एक उत्तम उदाहरण है। चित्र की उपलब्धि मुझे हिमाचल-प्रदेश के एक पहाड़ी राजा से, भेंट-रूप में, हुई थी और एक विदेशी पर्यटक इसकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ था कि इस पर हजारों रुपये खर्च करने को तैयार हो गया था। जिस 'फूली फूल बेली-सी नवेली अलबेली बधू झूलति अकेली' का पद्माकर ने उल्लेख किया है, लगता है मानो किसी कुशल चितेरे ने उसीका इसमें अंकन किया हो।

१. सशब्द करधनी, २. ढाँकती, ३. झोंक, ४. लालसा, ५. तखती, पटरी, ६. उस समय, ७. नाखूनों, ८. कटीली।

सावन में झूला झूलने की परिपाटी, जिसकी मैंने ऊपर चर्चा की है, यद्यपि पहले की अपेक्षा अब बहुत कम हो गयी है, फिर भी इस देश के कई हिस्सों में यह आज भी प्रचलित है। मनुष्य—खासकर नारी समाज—स्वभावतः आमोदप्रिय होता है और परिस्थितियों की विवशता उसकी विनोदप्रियता को सम्पूर्णरूप से कुंठित नहीं कर पाती है। यही हमारे देश के साथ भी हुआ है। आज भी होली खेली जाती है, पर्व-त्यौहार मनाये जाते हैं, पूर्वी और कजरी के स्वर गूँजते है, पर एक संकुचित परिमाण में।

और जहाँ तक झूले का सवाल है, व्रज, राजस्थान और हरियाणे में, बावजूद सारी आर्थिक कठिनाइयों के, यह अब भी काफी लोकप्रिय है। हिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों में सावन का तीज औरतों का एक ऐसा पर्व है जिसे वे आज भी पूरे जोशो-खरोश के साथ मनाती हैं और इस अवसर पर सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों से सुशोभित हिंडोरे पर झूलना उनका मानों एक आवश्यक कर्म होता है। तीज व्रत या पूजा का सम्बन्ध पति से होता है, यानी कुमारियाँ उसकी प्राप्ति के लिए पार्वती से प्रार्थना करती हैं, विवाहिताएँ उसके मंगल के लिए। और हर-एक नारी की यह आकांक्षा होती है कि उस दिन उसे पति का खास प्यार प्राप्त हो। कविवर बिहारीलाल के इस सुन्दर दोहे में इसीकी झलक है—

तीज परब सौतिन सजे भूषण बसन सरीर,
सबै मरगजे मुँह करी वहै मरगजी चीर।

प्राचीन राष्ट्रीय कवि और सरकार

पंडित सूर्यनारायण व्यास

"सरकार ने प्राचीन राष्ट्रकवियों की सूची तैयार नहीं की है।"

प्रो० के० आर० वी० राव

पिछले महीने में हमने 'सरस्वती' में 'सरकारी साहित्यानुराग' शीर्षक एक लेख लिखकर ग़ालिब शताब्दी के संदर्भ में सरकारी साम्प्रदायिक-प्रवृत्ति की तीखे शब्दों में आलोचना की थी, उसकी प्रतिक्रिया पार्लमेंट में भी प्रकट हुई। १ अगस्त को संसद् के जनसंघी सदस्यों ने पार्लमेंट में प्रश्न पूछा कि ग़ालिब-शताब्दी समारोह में कुल कितना व्यय हुआ? इसके लिखित उत्तर में प्रो० के० आर० वी० राव ने बतलाया कि 'ग़ालिब शताब्दि समिति को सहायता-अनुदान के रूप में भारत-सरकार कुल २० लाख रुपये की रकम देने को राजी हुई थी, जिसमें से १५ लाख रुपये १९६८-६९ के वर्ष में दिये गये थे, और बाकी के ५ लाख रुपये चालू वित्त वर्ष में दिये जायेंगे।' इस पर सदस्य ने पुनः प्रश्न किया कि—"क्या सरकार का विचार कालिदास, तुलसी, रहीम, कबीर आदि अन्य महाकवियों की स्मृति में समारोह आयोजित करने के लिए सहयोग देने का है?" इसके उत्तर में कहा गया कि "ऐसे प्रत्येक प्रस्ताव पर उसके महत्त्व को ध्यान में रखकर विचार किया जाता है। सरकार ने इन प्राचीन राष्ट्रकवियों की सूची तैयार नहीं की है," (दैनिक हिन्दुस्तान पृ० पन्ना ३ अगस्त ६९)

शिक्षा-मन्त्री जैसे उच्चपदस्थ व्यक्ति का पार्लमेंट में उक्त उत्तर कितना लचर और हास्यास्पद है? उन्होंने राष्ट्रकवियों की अभी सूची नहीं बनाई, और शायद उसके बनाने के लिए कोई कमीशन बिठलाना पड़ेगा उसके पूर्व ही ग़ालिब का गौरव करने के लिए सरकार को अनायास सूझ आ गयी थी, और २० लाख का नाम-मात्र का व्यय (?) सूची बनाने के पूर्व ही कर दिया गया!

यदि प्रो० राव अपने पूर्ववर्तियों का पिछला रिकॉर्ड ही देखने का कष्ट कर लेते, और जिसके लिए प्रतिवर्ष उनके विभाग में जाने वाले प्रस्तावों पर भी सरसरी निगाह डाल लेते तो शायद महाकवि राष्ट्र और विश्व के कवि कालिदास को ही प्रथम स्थान प्राप्त होता, परन्तु गालिब के गौरव को अग्रस्थान देनेवाली सरकार राजनीति की राह से कैसे भटक सकती थी?

कालिदास के स्मृति समारोह के लिए वर्षों से प्रयत्न होता रहा है। प्रो० राव के पूर्ववर्ती शिक्षामन्त्री मौलाना आज़ाद ने राज्यसभा में बहुमत प्राप्त होने वाले प्रस्ताव को भी "सरकार इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ है" कहकर ठुकरा दिया था, और श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय (एम० पी०) एवं श्री कृष्णकांत व्यास को उस समय प्रस्ताव वापिस लेना पड़ा था। मौलाना की ओर से उनके छोटे मौलाना श्रीमालीजी ने दूसरे सदन में प्रस्ताव अस्वीकृत करने की सूचना दी थी। उस समय पूरी राज्यसभा प्रस्ताव के अनुकूल थी। दिल्ली के एक सदस्य ने ही मतभेद व्यक्त किया था। उस समय राज्यसभा के सदस्य महामहोपाध्याय प्रो० काणे भी थे। उन्होंने कालिदास के समय को लेकर कुछ चर्चा की थी, और उसका सफल तर्कसंगत उत्तर हमने 'सरस्वती' में दिया था, तथा उसकी प्रतियाँ राज्यसभा में भी वितरित की गयी थी, श्री श्रीमालीजी के दिमाग में उस विवाद की कोई स्मृति रह गई होगी। एक बार श्री जगजीवनरामजी अस्वस्थ हो गये थे और उन्होंने मुझे सहसा स्मरण किया, जिस रोज मैं उनके निकट बैठा हुआ था, सहसा उन्हें देखने श्री श्रीमालीजी और श्री भगत वहाँ पहुँच गये। मैंने इस विषय में चर्चा की तो भारत के एक शिक्षा-मन्त्री के मुँह से यह निकला कि 'अभी कालिदास के विषय में बहुत मतभेद है, उनकी स्मृति के लिए कैसे कुछ किया जाये?' मुझे उत्तर सुनकर साश्चर्य खेद हुआ। मैंने बड़े संयमपूर्वक इतना ही कहा कि "श्रीमालीजी! कालिदास के सम्बन्ध मे मतभेद नहीं है, केवल 'काल' के विषय में मतभेद है, और उस पर विचार विश्लेषण करना विद्वानों का ही काम है। आप तो इतना ही सोचें कि कालिदास चाहे दो हज़ार वर्ष पूर्व हुआ हो या कल हुआ हो, वह सारे विश्व की विभूति, एवं हमारे राष्ट्र का महत्वपूर्ण सर्वस्वीकृत कवि है। ऐसी हालत में आप उसका सम्मान करना चाहते हो या नहीं?" इस पर श्रीमालीजी मौन साध गये थे।

यही क्यों, जिस समय प्रो० हुमायूं कबीर सांस्कृतिक

मंत्रालय के मंत्री थे, संसद् सदस्य श्री राधेलाल व्यास (आर० एच०) ने भी पार्लमेंट में इस विषय में प्रश्न प्रस्तुत किया था। पहिले तो टालटूल हुई, परन्तु अध्यक्ष श्री अनंत शयनम् आयंगार के स्वीकार करने पर प्रस्ताव पर चर्चा हुई, और प्रो० कबीर को पार्लमेंट में आश्वासन देना पड़ा कि विचार करेंगे। अ० भा० कालिदास परिषद् के द्वारा म० प्र० शासन के माध्यम से मंत्रणा भिजवाई गयी, परन्तु वर्षो बीत गये। इस क्षण तक केन्द्र के सांस्कृतिक-मंत्रालय से एक कानी कौड़ी तक प्राप्त नहीं हुई, सदैव स्मरण-पत्र भिजवाए जाते रहे हैं। परन्तु पता नहीं वे कहाँ 'डेडलेटर' बनकर अपना अस्तित्व समाप्त कर लेते है, और ग़ालिब शताब्दी के लिए आनन्-फानन् २० लाख की लम्बी रकम दे दी जाती है, और सरकारी मशीन देश भर में ही नहीं, बाहर भी ग़ालिब की अर्चना में तत्पर हो जाती है, आश्चर्य तो यही कि प्रो० राव सा० (शिक्षा-मंत्री) इस समय तक यही कहते हैं कि 'अभी कोई सूची बनाई नही गयी है, और प्रस्ताव का महत्त्व देखकर विचार किया जाएगा।' जब कि वर्षो से 'कालिदास स्मृति' का प्रस्ताव उनके विभाग में इस क्षण तक अनुत्तरित, अविचारित, उपेक्षित पड़ा हुआ है। विचार करने का मुहूर्त ही नहीं मिल पाता है। कैसी विडम्बना है? प्रो० रावजी का जो विभाग गालिब-शती के लिए एक क्षण में २० लाख मुहैया कर देता है, वर्षो से कालिदास के नाम पर एक कानी कौड़ी की सिफारिश नहीं कर पा रहा है! ग़ालिब-शती मनवाकर केन्द्र ने चाहे किसी वर्ग विशेष को संतुष्ट बनाने का स्वप्न देखा हो, और अपने को अल्प वर्गो का आश्रयदाता भले ही प्रचारित कर लिया हो, कहाँ ग़ालिब और कहाँ तुलसीदास? कालिदास की बात तो सर्वथा भिन्न ही है। तथापि उनकी एक ही रचना शकुंतला के महज अनुवाद मात्र ने शताब्दी पूर्व ही विदेश प्रवास कर उस दुनिया को विस्मित-विमुग्ध बना दिया था, और भारत की सांस्कृतिक-गरिमा की यश-पताका को सहज फहरा दिया था। जो काम एक हजार नेता, निरंतर प्रचार से प्राप्त नहीं कर सकते थे वह कालिदास के शकुंतला के अनुवाद ने कर दिया था, और जर्मन महाकवि गेटे को नतमस्तक बना दिया था। आज शायद ही ऐसी विश्व की कोई आभागी भाषा होगी जिसमें कालिदास के मेघदूत और शाकुंतल के एकाधिक अनुवाद न हुए हों! बिना किसी सरकारी सहायता-प्रचार के स्वयं कालिदास केवल अपनी अमर कृतियों को लेकर विश्व का वंदनीय प्रिय-कवि बना हुआ है। समस्त प्रतिभाएँ उसके समक्ष अपना गर्वोन्नत मस्तक झुकाए हुए हैं। कालिदास की कृतियों के मोह में मुग्ध विदेशी विद्वान् मूलतः संस्कृत में उसकी रचनाएँ पढ़ते है, वह देव-नागरी लिपि में पढ़ते है, और अपनी राष्ट्रभाषा में अनुवादित कर साहित्य को समृद्ध करने का अभिमान अनुभव करते हैं। भारत का तो वह राष्ट्रकवि है ही, किन्तु विश्व का भी वह सर्वाधिक प्रिय कवि बना हुआ है। परन्तु हमारी केन्द्र की सरकार ग़ालिब का गुण गाकर सन्तुष्ट है, ऋषि कवियों की अभी तक कोई लिस्ट भी बना नहीं पाई है!!

१९५९ में उज्जैन के कालिदास समारोह के प्रमुख अतिथि होकर प्रधान मंत्री पं० नेहरूजी उज्जैन आए थे, समारोह की भावना से बहुत प्रभावित हुए थे। चित्र-कला प्रदर्शनी को देखकर मुग्ध हुए थे। जब दूसरे दिन कालिदास स्मारक की एक मीटिंग उनके समक्ष हुई, तब हमने यह सुझाव प्रस्तुत किया था कि हमारे देश के जहाँ-जहाँ विदेशों में दूतावास है वहाँ उनका सम्पर्क केवल राजनीतज्ञों तक ही सीमित रह जाता है और वह राजनीति की रुख को देखकर बनता-विगड़ता रहता है। यदि हम अपने दूतावासों के माध्यम से उन-उन देशों के स्कॉलरों को वर्ष में एक बार भी जुटाकर सम्पर्क स्थापित करते रहें तो वह अधिक स्थायी, और महत्त्वपूर्ण हो सकता है और उसके लिए एकमात्र हमारे और उनके लिए यह माध्यम कालिदास ही बन सकता है। दूतावास यदि प्रतिवर्ष कालिदास समारोह आयोजित करे, उनके चित्रों को (उज्जैन के कालिदास समारोह में आयोजित चित्र-प्रदर्शन से प्राप्त कर) प्रदर्शित करे, तथा संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ अभिनय करनेवाले दलों को अभिनय के लिए भिजवाये तो भारतीय संस्कृति एवं महत्त्व का विस्तार होगा, आकर्षण होगा तथा कलाकारों को भी लाभ होगा। कालिदास ही एकमात्र ऐसा राष्ट्रकवि है, जो समस्त भारतीय भावात्मक एकता तथा समस्त आर्य संस्कृति का प्रमुख-प्रतिनिधित्व कर सकता है, जिसे विश्व के हर कोने का समादर सहज ही प्राप्त है। पंडितजी को यह सुझाव पसन्द आया था, और एक-दो वर्षो तक कुछ चुने हुए चित्रों को प्राप्त कर प्रदर्शित भी किया गया था परन्तु जिस ढाँचे में हमारा विदेश-विभाग ढला हुआ है उसे इन प्रवृत्तियों में क्यों रस रहने लगा?

काश हमारे प्रो० राव साहब को यह ज्ञात होता

कि प्रधान मंत्री नेहरूजी ने उस समय देश की सभी प्रादेशिक सरकारों को विशेष परिपत्र भेजकर यह आग्रह भी किया था कि—'उज्जैन के कालिदास स्मारक, और समारोह को पूरी तरह सहायता करें' तो आज प्रो० राव साहब को राष्ट्रकवियों की नई सूची बनवाने में कालिदास का नया नाम जुटाने का कष्ट नहीं करना पड़ता, और ग़ालिब की गौरव-गाथा गाने के पूर्व कालिदास को इस तरह भुलाने को विवश नहीं होना पड़ता।

मैं अपने एक लेख में यह पहिले ही बतला चुका हूँ कि ग़ालिब से हमें कोई 'गिला' नहीं है। उनकी महत्ता-प्रतिभा का हम भी उतना ही समादर करते हैं जितना कि और; परन्तु सरकारी पक्षपात की प्रवृत्ति से हमें सख्त शिकायत हैं। प्रो० राव सा० के इस कथन पर गंभीर रूप से आपत्ति है कि उनके समक्ष कोई प्रस्ताव नहीं था और उनकी सरकार अभी तक ऐसी कोई सूची नहीं बना सकी है? जब कि वर्षों से उनके विभाग में कालिदास न जाने किन फाइलों में उपेक्षित भटकता-भूला हुआ पड़ा है।

जहाँ पशु-पक्षी 'राष्ट्र' के प्रतीक बनकर प्रमुख प्रचार के पात्र बनाये जाते हों, वहाँ उस देश का विश्ववन्द्यता प्राप्त राष्ट्रकवि कालिदास 'सरकारी-सुची' का भी अब तक एक विषय नहीं बन सका—कैसी विडम्बना, कैसा दुर्भाग्य!!!

यही क्यों! जो सरकार 'द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम' के नेता की मौत पर दुखी होकर, भागकर, मद्रास में मातम मनाने पहुँचे, आँसू का अर्घ्य अर्पित करे, और एक निष्ठावान् देशभक्त तथा सर्व भारतीय प्रतिष्ठाप्राप्त मुख्य मंत्री तथा राज्यपाल के पद पर प्रविष्ठित डॉ० सम्पूर्णानंदजी की उपेक्षा करे उस सरकार की प्रवृत्ति को सभी समझदार पक्षपातपूर्ण समझें तो आश्चर्य नहीं है, परन्तु आश्चर्य और दुःख तो उस प्रदेश के उन समझदारों-विचारकों के प्रति होता है जो न लखनऊ में इस क्षण तक किसी स्मारक की बात सोचने का अवसर पा सके है। वे सभा-संस्थाएँ, संस्कृत विश्वविद्यालय, आदि भी जिनका पोषण-पालन बाबूजी ने किया, कैसे मौनावलम्बन धारण किए हुए हैं! क्या उत्तर प्रदेश की विवेक-कृतज्ञता बुद्धि केन्द्र की उपेक्षा-पक्षपात-वृत्ति को चुनौती नहीं मानती?

मौसम ले अँगड़ाई

डा० श्री कमलाकान्त हीरक

स्वर्णपरी किरणों की
पोखर में मुसकायी
गन्ध उठी पुरवे की
ऊब गयी तरुणायी।

मौसम के पृष्ठों पर फूलों के अक्षर
उदित हुये सौरभ से गीत बने झरझर
सूनी घाटी गूँजी
लता लता हरियायी।

सतरंगे पर वाले विहगों के जोड़े
छूने को अकुलाते सूरज के घोड़े,
ओठों पर हँसी खिली
झूम उठी अँगनाई।

नये-नये बिरवों का पात-पात गाये,
नशा चढ़ा आँखों में उतर नहीं पाये,
अंशु-केतु लहराए
मौसम ले अँगड़ाई।

वैंकों का राष्ट्रीयकरण

श्री शंकरसहाय सक्सेना

चौदह बड़े व्यापारिक वैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश में जैसी उग्र प्रतिक्रिया हुई वैसी प्रतिक्रिया सम्भवतः किसी भी अन्य आर्थिक निर्णय से नहीं हुई। जव इम्पीरियल वैंक तथा देशी राज्यों के व्यापारिक वैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जीवन-वीमा-कम्पनियों को सरकार द्वारा अपने अधिकार में ले लिया गया, हवाई जहाजी कम्पनियों का तथा सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण किया गया तब उसके विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठी। एक प्रकार से सरकार के उक्त निर्णय का लोगों ने स्वागत किया। किन्तु कई वर्गों में वैंकों के राष्ट्रीयकरण की गहरी और उग्र विरोधी प्रतिक्रिया हुई। इस तीव्र प्रतिक्रिया के राजनीतिक और आर्थिक कारण हैं। एक वर्ग की मान्यता है कि जनतंत्र को निर्वल कर साम्यवादी व्यवस्था को स्थापित करने की यह भूमिका है। अन्य राजनीतिक आशंकाएँ भी इसके साथ जुड़ी हुई हैं। उनकी चर्चा करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। दूसरा मुख्य कारण आर्थिक आशंकाएँ है। हम केवल उनके सम्वन्ध में यहाँ अध्ययन करेंगे और यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इन वैंकों का किस प्रकार संचालन किया जावे कि जिन-दुष्परिणामों की आशंका आज वहुतों को हो रही है वह दूर हो और राष्ट्रीय वैंकों से देश की अर्थव्यवस्था को सहायता मिले।

अंशधारियों को क्षतिपूर्ति

जवकि चौदह वैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया तो साधारण अंशधारियों को यह भय हो गया था कि उनको अपने अंशों (शेयर्स) की उनकी वास्तविक कीमत से कम दी जावेगी। परन्तु जो वैंकिंग कम्पनी कानून वनाया गया उससे स्पष्ट हो गया कि इन वैंकों के अंशधारियों को उनके अंकित मूल्य अथवा जिस दिन वैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ उस दिन उनके अंशों का प्रचलित वाजार मूल्य न दिया जाकर वास्तविक मूल्य दिया जावेगा। अंशों का वास्तविक मूल्य उन वैंकों की सम्पूर्ण परिसम्पत्ति (Assets) और उनकी सम्पूर्ण देयता (Liability) के आधार पर निश्चित किया जावेगा। क्षतिपूर्ति के इस उदार दृष्टिकोण का रहस्य इस वात में छिपा हुआ है कि इन वैंकों के एकतिहाई अंश दो सरकारी संस्थाओं (१) जीवन-वीमा-निगम (२) तथा यूनिट-ट्रस्ट के पास थे, और १९ जुलाई के अध्यादेश में क्षतिपूर्ति का जो आधार सरकार ने घोषित किया था उसके विरुद्ध इन दोनों सरकारी संस्थाओं ने अपना कड़ा विरोध प्रकट किया था।

वैंकों के राष्ट्रीयकरण के बिल के साथ जो वित्तीय-ज्ञापन संलग्न था उसमें सरकार ने ७५ करोड़ रुपये की क्षतिपूर्ति की रकम का अनुमान लगाया है। परन्तु कामर्स के शोध विभाग ने हिसाव लगाकर यह कहा है कि सरकार को डेढ़ सौ करोड़ रुपये क्षतिपूर्ति-स्वरूप देना होगा। 'कामर्स' ने डेढ़ सौ करोड़ की रकम का नीचे लिखे आधार पर अनुमान लगाया है :

चौदह वैंकों की प्रदत्त साधारण पूँजी २७ करोड़ ९४ लाख रुपये है, पूर्वाधिकार अंश पूँजी ५४ लाख तथा सुरक्षित कोष ३७ करोड़ ८२ लाख रुपये है। अर्थात् वैंकों की ३१ दिसम्वर १९६८ को कुल पूँजी ६५ करोड़ ८२ लाख रुपये थी। ३१ दिसम्वर १९६८ और १९ जुलाई १९६९ (जवकि वैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ) के बीच पूँजी में कुछ करोड़ रुपयों की और वृद्धि हो गयी होगी।

परन्तु क्षतिपूर्ति की रकम इससे कहीं अधिक होगी। इसका कारण यह है कि वैंकों की परिसम्पत्ति में सरकारी प्रतिभूतियाँ (सरकारी सिक्यूरिटी) एक महत्त्वपूर्ण वित्तयोग हैं। राष्ट्रीयकरण के अधिनियम में उनका मूल्य निर्धारित करने के लिए यह आधार निश्चय किया गया है कि अंकित मूल्य तथा वाजार मूल्य में से जो भी अधिक होगा वह मूल्य स्वीकार किया जावेगा। सभी वैंक अपने वार्षिक विवरण-पत्र में सरकारी प्रतिभूतियों को वाजार मूल्य से वहुत कम मूल्य पर दिखलाते है जिससे कि वे गुप्त रक्षित कोष (Secret Reseive) संचय कर सकें। मोटे रूप में हम कह सकते है कि वैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों को उनके अंकित मूल्य से ६ प्रतिशत कम मूल्य पर दिखलाया है। इन सभी वैंकों का सरकारी प्रतिभूतियों में लगभग ७३५ करोड़ रुपया लगा है। यदि उन्होंने ६ प्रतिशत कम पर उनको अपने विवरण-पत्र में दिखलाया है तो इन १४

बैंकों की क्षतिपूर्ति की रकम में ४५ करोड़ रुपया और जोड़ना होगा।

इसके अतिरिक्त इन १४ बैंकों ने ५० करोड़ रुपये की धन राशि कम्पनियों के अंशों में लगा रक्खी है। बैंक इस प्रकार के विनियोग का मूल्य अपने विवरण-पत्र में और भी अधिक कम दिखलाते हैं, और जब बैंकों का राष्ट्रीय-करण हुआ था तो उस समय कम्पनियों के अंशों के मूल्य बहुत ऊँचे चढ़े हुए थे। अतएव यह अनुमान गलत नहीं होगा कि बैंकों के अंशों का वास्तविक मूल्य निर्धारित करते समय उनके मूल्य में पाँच करोड़ रुपये की वृद्धि की जावे।

बैंक अपनी इमारतों के मूल्य को भी उनके बाजार मूल्य से बहुत कम रखते हैं। इन १४ बैंकों की इमारतों का १९६८ के अन्त में मूल्य ३३ करोड़ था। यह इमारतें बहुत बढ़िया है और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थानों पर हैं। बैंकों ने उन पर १७ करोड रुपये का अवमूल्यन किया हुआ है। यह स्पष्ट है कि आज भूमि और भवनों का बाजार मूल्य बहुत ऊँचा हो गया है। अस्तु यह अनुमान किया जाता है कि इन इमारतों का मूल्य बैंकों के विवरण-पत्र में लिखे हुए मूल्य से दुगना अर्थात् ६६ करोड़ रुपये होगा। इन सब आँकड़ों को जोड़ने से बैंकों को १५० करोड़ की क्षतिपूर्ति देनी होगी।

यदि बैंकों के अंशधारियों को १५० करोड़ की क्षति-पूर्ति ४·५ प्रतिशत सूद के दसवर्षीय बौंडों के रूप में दी गयी तो सरकार को उस रकम पर प्रतिवर्ष ६ करोड़ ७५ लाख सूद देना होगा। जबकि १९६८ के वर्ष में इन बैंकों के अंशधारियों को केवल ४ करोड़ ३७ लाख रुपए लाभांश के रूप में मिला था। यदि क्षतिपूर्ति की रकम १०० करोड़ भी हुई तो भी उस पर ४ करोड़ ५० लाख सूद प्रति वर्ष सरकार को देना होगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जहाँ तक बैंकों के अंशधारियों को उनके अंशों के मूल्य मिलने का प्रश्न है वे घाटे में नहीं रहेंगे।

आज देश मे ऐसे विचारवान व्यक्तियों का एक समूह भी है जो सिद्धान्त रूप से राष्ट्रीयकरण का विरोधी नहीं है परन्तु उसको भय है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश के औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध होगी। हम यहाँ उन आशंकाओं का अध्ययन करेंगे।

उद्योगों के लिए कार्यशील पूंजी का अभाव

आज नये उद्योग स्थापित करने में सबसे बड़ी कठिनाई पूंजी की व्यवस्था की है। पूंजी बाजार की स्थिति अच्छी नहीं। जब कोई नया कारखाना स्थापित किया जाता है और उसके लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है तो भारतीय उद्योगपति विदेशी उद्योग-पतियों से साझेदारी कर लेता है और विदेश से जितने मूल्य का संयन्त्र आदि खरीदना होता है उतने मूल्य के अंश उस विदेशी फर्म को दे दिये जाते है। इस प्रकार विदेशी विनिमय की समस्या हल हो जाती है। रुपया पूंजी के लिए भारत में अंश बेंचे जाते हैं। परन्तु जो भी पूंजी अंश बेंचकर एकत्रित की जाती है वह कारखाने की इमारत बनाने, जमीन खरीदने, संयन्त्र मोल लेने तथा अन्य आवश्यक सामग्री खरीदने के काम आती है। कार्यशील पूंजी के लिए कारखाने व्यापारिक बैंकों पर ही निर्भर रहते है। उदाहरण के लिए, प्रति सप्ताह लाखों रुपये मजदूरी चुकाने और कच्चा माल खरीदने के लिए जो कार्यशील पूंजी चाहिए वह तो थोड़े समय के लिए ही आवश्यक होती है वह व्यापारिक बैंकों से ही ली जाती है। क्योंकि कुछ समय बाद ही उसको कारखाना अपने तैयार माल को बेंचकर चुका देता है।

व्यवसायियों को आशंका है कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो जाने पर बड़े उद्योगों को इन बैंकों से साख मिलना कठिन हो जावेगा। कार्यशील पूंजी को भी अंश बेंचकर प्राप्त किया जावे—न तो यह सम्भव ही है और न कोई कारखाना उस दशा मे लाभ पर चल सकता है क्योंकि कार्यशील पूंजी तो थोड़े समय के लिए ही अपेक्षित होती है। यदि कारखाना अंश बेंचकर उतना मूलधन प्राप्त भी कर ले जो कि सम्भव नहीं है तो वह पूंजी अधिक समय बेकार रहेगी और वह कारखाने के लिए भारस्वरूप हो जावेगी। यह आशंका इस कारण बलवती हो उठी है कि राष्ट्रीयकरण के पक्ष में बार-बार यह तर्क उपस्थित किया गया कि व्यापारिक बैंक किसानों, छोटे धंधों तथा छोटे व्यापारियों को बहुत कम साख देते हैं। यदि वास्तव में व्यापारिक बैंकों से बड़े उद्योगों को कार्यशील पूंजी साख के रूप में मिलना बंद हो गयी अथवा बहुत कम हो गयी तो देश के औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध हो जावेगी।

अतएव सरकार को इन व्यापारिक बैंकों को बड़े उद्योगों को कार्यशील पूंजी देने की व्यवस्था पूर्ववत् करने देना चाहिए। हाँ, अनावश्यक साख तथा सट्टे के लिए साख बिलकुल भी न दी जावे। व्यापारी तथा उद्योगपति जो किसी वस्तु-विशेष को बैंकों से साख लेकर भर लेते थे और इस प्रकार उस वस्तु की कीमत ऊँचा करने में सफल हो जाते थे अथवा बैंकों से साख लेकर किसी कम्पनी के अंशों को खरीदकर उसमें सट्टा करते थे, यह दोषपूर्ण प्रवृत्ति अब बंद हो जावेगी परन्तु उद्योग-धन्धों की साख की आवश्यकता पूरी होनी चाहिए।

बैंकों पर राजनीतिक प्रभाव पड़ने का भय

बहुत से लोगों को भय है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का परिणाम यह होगा कि उनके संचालन में राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप होने लगेगा। उनके संचालक मंडल में राजनीतिज्ञों का प्रभाव बढ़ जावेगा और सत्ताधारी दल के कृपापात्रों को इन बैंकों से साख मिलेगी। उसका परिणाम भयंकर होगा। सहकारी साख समितियों, सहकारी बकों, और भूमि विकास बैंक की जो दशा आज हो रही है वही दशा व्यापारिक बैंकों की होगी। सहकारी साख समितियों द्वारा दिये हुए ऋण वसूल नहीं होते। जिन ऋणों को चुकाने की अवधि समाप्त हो गयी है उनका प्रतिशत तेजी से बढ रहा है और तीस प्रतिशत से ऊँचा हो गया है। लोगों को भय है कि कहीं व्यापारिक बैंकों की भी दशा ऐसी ही न हो जावे। यदि दुर्भाग्यवश व्यापारिक बैंकों पर राजनीतिज्ञ प्रभावशाली हो गये और ऋण देने में अथवा पूँजी का विनियोग करने मे पूँजी की सुरक्षा का ध्यान न रक्खा गया तो इन बैंकों की साख गिर जावेगी और वे निक्षेप (डिपाजिट) भी आकर्षित नहीं कर सकेंगे।

कार्यक्षमता में हानि

अधिकांश जन मे यह आशंका गहरी पैठ गयी है कि राष्ट्रीयकरण का परिणाम यह होगा कि बैंकों की कार्य-क्षमता कम हो जावेगा। आचार्य कृपलानी ने इस सम्बन्ध में एक वक्तव्य मे सत्य कहा था कि जब मैं स्टेट बैंक आफ इंडिया मे जाता हूँ तो मुझे अनुभव होता है कि जैसे बैंक मुझ पर बहुत भारी कृपा कर रहा है जो मेरा काम कर रहा है परन्तु जब मैं निजी स्वामित्ववाले बैंक में जाता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मैं बैंक पर अनुग्रह कर रहा हूँ। इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि स्टेट बैंक आफ इंडिया तथा उसके सहायक बैंकों में बैंक-कर्मचारियों की ग्राहकों के प्रति उतनी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि नहीं होती जितनी कि निजी स्वामित्व वाले बैंकों के कर्मचारियों की होती थी।

यदि सरकार इन चौदह बैंकों को मिलाये नहीं उन्हें पृथक् रक्खे और एक दूसरे से सेवा में प्रतिस्पर्द्धा करने दे तो बहुत कुछ पूर्व कार्यक्षमता को बनाये रक्खा जा सकता है। परन्तु यदि आगे चलकर इन सब बैंकों को मिला दिया गया और उनका संचालन एक केन्द्रीय संचालक मंडल को सौंप दिया गया तो लोगों को जिस बात की आशंका है वह सत्य होगी।

यही नही कि ग्राहकों को बैंक पूर्ववत् सुविधाएँ प्रदान करते रहें वरन् इस बात पर भी बल दिया जाना चाहिए कि यह बैंक पूर्ववत् लाभ भा देते रहें। इन चौदह बैंकों में से "सेंट्रल बैंक आफ इंडिया' 'बैंक आफ इंडिया', 'पंजाब नेशनल बैंक', 'बड़ौदा बैंक' 'यूनाइटेड कमर्शियल बैंक' का लाभ २० प्रतिशत से अधिक था। अन्य बैंक के लाभ का प्रतिशत उससे कुछ कम था जो वह अंशधारियों को बाँटते थे। यह ध्यान मे रखने की बात है कि कुल लाभ का कम से कम बीस प्रतिशत सुरक्षित कोष मे रखकर ही अंश-धारियो में लाभ बाँटा जाता था। अस्तु इन बैंकों का वास्तविक लाभ जितना अंशधारियों में बाँटा जाता था उससे कहीं अधिक होता था। बैंकों की कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए उनको पृथक् रहकर स्वतन्त्र रूप से प्रतिस्पर्द्धा करने देना तो आवश्यक है ही इस बात की भी आवश्यकता है कि वे जो अभी तक लाभ प्राप्त करते रहे है आगे भी प्राप्त करते रहे। इन बैंकों के संचालकों तथा वरिष्ठ अधिकारियों को इसके लिए उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक बैंक दूसरे बैंक से स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा करे। कर्मचारियों को लाभ पर प्रोत्साहन बोनस दिया जावे। जो बैंक पूर्वा-पेक्षा अधिक लाभ अर्जित करे उसके कर्मचारियों को तद-नुसार प्रोत्साहन बोनस बाँटा जावे।

बैंकों की कार्यक्षमता को और अधिक बढ़ाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि बैंकों में नीचे से नीचे पद पर भी नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर ही हों। राजनीतिक प्रभाव से बैंक दूर रहे। लेखक का मत है कि एक "बैंक

सेवा आयोग" की स्थापना की जावे जो विभिन्न पदों के लिए प्रतिस्पर्द्धा-परीक्षाओं की व्यवस्था करे और विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षण संस्था स्थापित की जावे। राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों को कर्मचारियों को योग्यता के आधार पर भर्ती करने और उनको प्रशिक्षित करने की पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा है। परन्तु यदि बैंकों पर राजनीतिज्ञों का वर्चस्व स्थापित हो गया जिसकी आज लोगों को आशंका है तो बैंकों की कार्यक्षमता को आघात लगेगा।

इन बैंकों के संचालक मंडलों में उद्योग, वाणिज्य और कृषि का प्रतिनिधित्व तो होना ही चाहिए परन्तु रुपया जमा करनेवालों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना अत्यन्त आवश्यक है। दुर्भाग्य की बात है कि जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया तब किसी ने भी इन बैंकों में रुपया जमा करनेवालों के विचारों को जानने की आवश्यकता नहीं समझी। आज जबकि बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो गया है तो ताँगेवालों, रिक्शेवालों, मजदूरों, विद्यार्थियों, और किसानों पर बैंकों के राष्ट्रीयकरण की क्या प्रतिक्रिया हुई है इसको महत्त्व दिया जा रहा है। किसी भी राजनीतिज्ञ ने यह जानने का यत्न नहीं किया कि जिन लोगों ने इन बैंकों में अपनी बचत को जमा किया है उनका इस सम्बन्ध में क्या विचार है। बैंकों के भावी संचालन में अपना रुपया जमा करनेवालों का भी हाथ होना चाहिए।

सरकार केवल नीति निर्धारित करे

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उपरान्त एक सबसे बड़ा खतरा यह उपस्थित हो गया है कि अमुक व्यवसायी को ऋण दिया जाय अथवा नहीं इसमें सरकारी हस्तक्षेप होने की सम्भावना हो गयी है। यदि ऐसा हुआ तो यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण होगा और इसके भयानक परिणाम होंगे। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि यह परम्परा डाल दी जावे कि सरकार केवल साधारण नीति निर्धारित करेगी किसी पक्ष को ऋण दिया जावे या नहीं इस सम्बन्ध में कोई निर्देश कभी नहीं देगी। केवल सरकार द्वारा बैंक के संचालकों को बैंक की कार्यशील पूंजी का निर्धारित नीति के अन्तर्गत विनियोग करना तथा कार्य करने की स्वतन्त्रता देना ही यथेष्ट नहीं होगा वरन् बैंक के शाखा मैनेजरों को भी स्वतन्त्रता प्रदान करनी होगी। नहीं तो स्थानीय राजनीतिक नेता बैंक की शाखा के मैनेजरों पर अनुचित दवाव डालने का प्रयत्न करेंगे। यह तभी सम्भव होगा कि जब बैंकों के संचालक मंडल में राजनीतिज्ञों को कोई स्थान न दिया जावे।

बैंकों को प्रदेशवाद से बचाया जावे

जैसे ही चौदह बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया कई राज्यों ने यह माँग करना आरम्भ कर दिया है कि—क्योंकि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक उद्देश्य जो आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्ग है उसको सहायता पहुँचाना है—विभिन्न प्रदेशों का आर्थिक विकास करना भी उसका उद्देश्य होना चाहिए। अतएव राज्यों का भी उनके संचालन में हाथ होना चाहिए। यह माँग अत्यन्त खतरनाक है। आगे चलकर राज्य सरकारें यह दवाव डालेंगी कि राज्यों की जनसंख्या के आधार पर अथवा अन्य ऐसी ही किसी आधार पर बैंकों के पास जितनी धन राशि जमा है उसका कितना प्रतिशत किस राज्य में विनियोजित किया जावेगा यह निर्धारित कर दिया जाना चाहिए। राज्यों की इस माँग को कि बैंकों के संचालन और उनकी नीति-निर्धारण में उनका भी हाथ हो कभी भी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यदि बैंकों में स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा रही तो उन सभी क्षेत्रों में जहाँ पूंजी को लाभदायक ढंग से विनियोजित किया जा सकता है बैंक शाखाएँ खोलेंगे और ऋण देंगे।

जब बैंकों के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में अधिनियम पर लोकसभा में बहस हुई तो प्रधान मन्त्री इंदिरा गांधी ने कतिपय प्रश्नों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि वे चौदह बैंक शिड्यूल बैंक रहेंगे और उनके सम्बन्ध में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को जो अधिकार प्राप्त हैं वे केवल पूर्ववत् बने ही न रहेंगे वरन अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किये जावेंगे। उन्होंने लोकसभा को यह भी आश्वासन दिया था कि प्रत्येक बैंक के पृथक् अस्तित्व और स्वायत्तता को अक्षुण्ण रक्खा जावेगा। बैंकों के निदेशकों और निदेशक मंडलों के सुनिश्चित अधिकार होंगे। सरकार केवल नीति के सम्बन्ध में तथा सामान्य प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्देशन करेगी। किसी ऋण-विशेष के सम्बन्ध में सरकार कोई निर्देश नहीं देगी।

यह आश्वासन बहुत उत्साहवर्धक है। और यदि

[शेष पृष्ठ २९२ पर देखिए

कैप्टन पृथ्वीसिंह डागर की वीरता

श्री सीताराम जौहरी, मेजर (अवकाशप्राप्त)

चीनियों का लक्ष्य सिक्किम जनता में आतंक फैलाना है। इसलिये चीनी सैनिक सीमा पर छेड़छाड़ कर भारतीय फौज में अव्यवस्था पैदा करना चाहते हैं, जिससे वहाँकी जनता अपने को असुरक्षित अनुभव करे और उसका विश्वास भारतीय सेना से उठ जाय। भारतीय सेना की कार्रवाइयों का वहाँकी जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार पाकिस्तान भी काश्मीर पर आक्रमण कर इसे अपनाना चाहता है। इसी उद्देश्य से वह वार-वार सीमा पर आक्रमण करता है, और भारतीय सेना दृढ़ता से उन आक्रमणों को विफल करती रही है और उसके इन इरादों को सफल नहीं होने देती।

हमारी सेना के वीरों को इन दोनों से भारतीय सीमा की रक्षा वड़ी सतर्कता से करनी पड़ती है। वीरवर कैप्टन पृथ्वीसिंह की कहानी से पाठकों को केवल उनकी अपूर्व वीरता और वलिदान का ही ज्ञान न होगा, किन्तु उन्हें यह भी मालूम होगा कि सीमाओं की रक्षा करने में हमारे जवानों और सैनिक अफसरों को कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सेना के साथ जनता की सच्ची सहानुभूति ही नहीं अपेक्षित है, उसे उसका पूरा समर्थन भी मिलना चाहिए। तभी सेना का उत्साह और

कैप्टेन पृथ्वीसिंह डागर

मनोवल ऊँचा रहेगा। यदि यह और ऐसी कहानियाँ जनता को सेना के शानदार कामों का कुछ परिचय देने में सफल हों तो हमें अपने परिश्रम से संतोष होगा।

१ जून १९४२ को पृथ्वीसिंह डागर का जन्म दिल्ली के पास मिलखपुर गाँव में हुआ था। विद्यार्थी जीवन में एक होनहार छात्र के रूप में पृथ्वीसिंह का विकास होता गया। उसने दिल्ली के एक विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा

वैंकों का राष्ट्रीयकरण

[पृष्ठ २९१ का शेषांश]

सरकार इन आश्वासनों को कार्य रूप में परिणत कर सकी तो वैंकों की कार्यक्षमता को वनाये रखने में वे वहुत सहायक सिद्ध होंगे। यह तो भविष्य ही वतलायेगा कि सरकार कहाँ तक इनको कार्यान्वित कर सकेगी। आज यह प्रश्न कि वैंकों का राष्ट्रीयकरण उचित था अथवा नहीं महत्त्वहीन है क्योंकि वैंकों का राष्ट्रीयकरण हो गया। परन्तु लेखक वैंकों के राष्ट्रीयकरण के समर्थकों के इस तर्क को सुनकर हैरान है कि उससे निर्धन और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। देश की निर्धनता को दूर करने का एकमात्र उपाय कृषि, उद्योग और वाणिज्य का विकास है। जव तक देश में धनोत्पत्ति अधिक नहीं होती तव तक निर्धनता का अभिशाप दूर नहीं होगा। वैंकों के राष्ट्रीयकरण के उपरान्त उनका संचालन यदि राजनीति से प्रभावित हुआ तो निश्चय है कि उससे देश के आर्थिक विकास को भयंकर हानि पहुँचेगी। इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक शक्तियाँ सक्रिय हैं और यह भय समाप्त नहीं हो गया है कि वैंकों का संचालन केवल सर्वाधिक आर्थिक हित की दृष्टि से न किया जाकर राजनीतिक दृष्टि से किया जावेगा। खेद है कि राष्ट्र की शक्ति राष्ट्र के निर्माण में न लगकर नेताओं द्वारा अपना राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने में नष्ट की जा रही है।
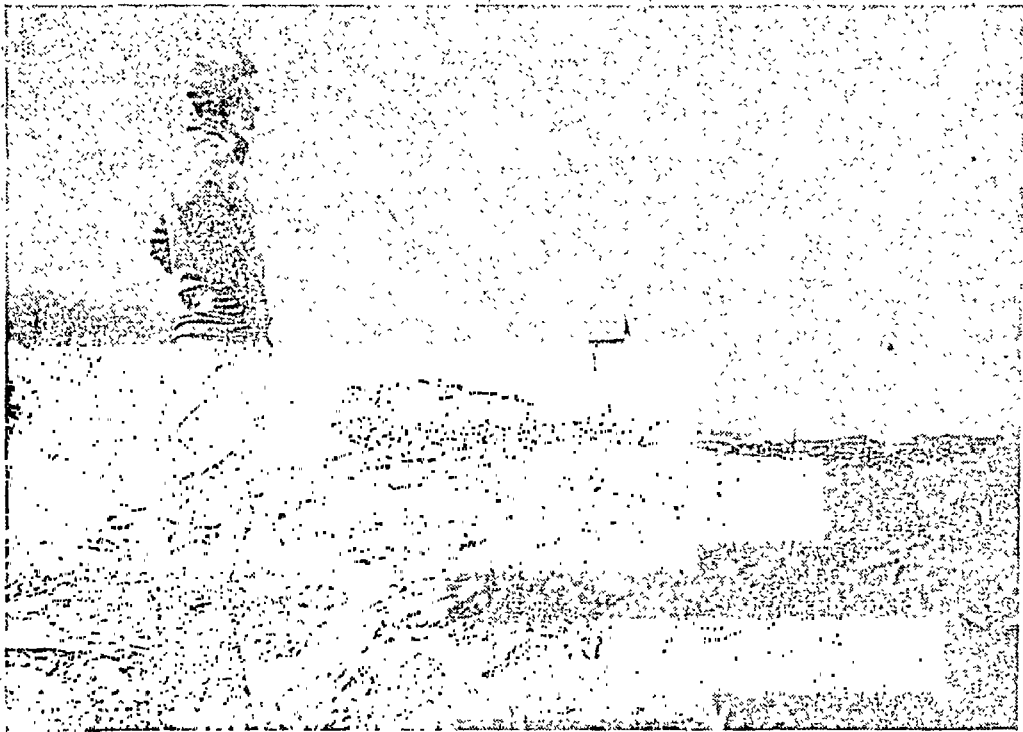
नाथूला दर्रा

उत्तीर्ण की। सन् १९६३ में रामजस कालेज से स्नातक हुआ। पृथ्वीसिंह छात्र जीवन में शिक्षा, खेलकूद के अतिरिक्त एन० सी० सी० में भी सम्मिलित हो गया था। पृथ्वीसिंह वचपन ही से युद्ध की गाथाएँ सुनता आया था और वह सैनिक होना चाहता था। संयोग से उन्हीं दिनों चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया और नवयुवकों को अल्प-कालीन सेवा के लिए सेना में भर्ती किया जाने लगा। पृथ्वीसिंह तो यह चाहता ही था। उसने सेना में प्रवेश के लिए प्रार्थनापत्र दिया। भाग्य एवं परिस्थितियों ने साथ दिया। पृथ्वीसिंह चुनाव में सफल हुआ तथा मद्रास में प्रशिक्षण के लिए भेज दिया गया। १ फरवरी १९६४ को प्रशिक्षण की समाप्ति पर पृथ्वीसिंह को कमीशन मिल गया। संयोग से पृथ्वीसिंह की नियुक्ति दूसरी ग्रिनाडियर वटालियन में हुई जो उस समय लद्दाख में सीमा की रक्षा पर तैनात थी। इस प्रकार सैनिक सेवा के प्रारम्भिक दिनों ही में पृथ्वीसिंह को पर्वतीय क्षेत्रों के दुर्गम स्थानों का अनुभव हो गया। स्वस्थ और खिलाड़ी होने के कारण पृथ्वीसिंह को यह अनुभव पसन्द आया। इतने ऊँचे पहाड़ों पर पहली वार जाने से वहुत से लोगों के हृदय पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु पृथ्वीसिंह को कोई परेशानी या शिकायत नहीं हुई। बड़ी कुशलता और उत्साह के साथ वह उस क्षेत्र में अपना कर्तव्य करता रहा। कभी-कभी तो उसे १९,००० फुट की ऊँचाई पर रातें वितानी पड़ती थीं।

उधर पाकिस्तान भारत के विरुद्ध आक्रमण की तैयारियाँ कर रहा था। पाकिस्तान को अमरीका से वहुत से आधुनिक अस्त्र-शस्त्र मुफ्त ही मिल गये थे। इनमें शक्तिशाली पैटन टैंक और सेवर जैट विमान आदि भी थे। सभी प्रकार से तैयार होकर उसने भारत पर आक्रमण करने का निर्णय किया। पाकिस्तान अपेक्षाकृत एक छोटा राष्ट्र है। अतएव भारत जैसे वड़े राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उसने सभी प्रकार की तैयारी की और सभी तरह की सम्भावनाओं पर विचार किया। वह भारत पर तभी आक्रमण करके सफलता की आशा कर सकता था जव उसके पास भारत की अपेक्षा अधिक उन्नत अस्त्र-शस्त्र हों, उसके पास अधिक और अधिक शक्तिशाली गोला-

बारूद हो, तथा उसकी सेना की कुशलता और मनोबल भारतीय सेना से अधिक हो। सबसे पहले उसने तरह-तरह के बहाने बनाकर अमरीका के समान उन्नत और धनी देशों से बहुत से उन्नत अस्त्र-शस्त्र और प्रचुर सैनिक सामान और बहुत बड़ी मात्रा में गोला-बारूद प्राप्त किया। मुख्य आक्रमण के पहिले वह भारत के सैनिकों के युद्ध-कौशल के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना चाहता था। उसने देखा कि कच्छ के रन का क्षेत्र भारतीय सैनिक अड्डों से दूर है तथा वहाँ भारत अपने सैनिकों को आवश्यक युद्ध-सामग्री भी आसानी से नहीं पहुँचा सकता। इसलिए यहाँ यदि युद्ध छेड़ा जाय तो वह बढ़ेगा नहीं। अतः पाकिस्तान ने इसी स्थान में भारतीय सेना के युद्ध-कौशल के स्तर को परखने का उपयुक्त क्षेत्र समझा। ६ अप्रैल १९६४ को पाकिस्तानी सेनाएँ बड़े पैमाने पर भारतीय सीमा का अतिक्रमण करके तथा अमरीका के बहुत से शक्तिशाली पेटन टैंकों को लेकर कच्छ के रन में घुस आयीं। भारत ने कभी ऐसे खुले आक्रमण की बात भी न सोची थी, और कच्छ की सीमा पर आक्रमण होने का तो उसे गुमान भी न था। इस सीमा पर भारतीय सेना नहीं थी। उसकी सामान्य देख-भाल पुलिस दल के लोग ही करते थे। यद्यपि पुलिस दल की इस सेना के जोरदार आक्रमण से अपार क्षति हुई, फिर भी अपूर्व साहस, दृढ़ता और युद्ध-कौशल से भारतीय पुलिस दल के रक्षकों ने हमले को आगे बढ़ने से रोक दिया। इस प्रकार इस विशाल आक्रमण को, जो बिना किसी चेतावनी के और बड़े पैमाने पर किया गया था, और जिससे पाकिस्तानी सेना भारत के भीतर कुछ मीलों तक घुस आने में सफल भी हो गयी थी, आगे बढ़ने से रोकने में हमारी पुलिस सफल रही। दो-तीन दिन के भीतर ही हमारी सेना की कुछ बटालियनें भी वहाँ पहुँच गयीं। इनमें ग्रिनाडियर्स की दूसरी बटालियन भी शामिल थी जिसकी एक कम्पनी में पृथ्वीसिंह डागर नियुक्त था।

इस क्षेत्र में २४ अप्रैल को पाकिस्तान का एक बड़ा आक्रमण ८४ नम्बर के मोर्चे पर हुआ। पृथ्वीसिंह डागर की कम्पनी भी रन के उस क्षेत्र में डटी हुई थी। जिस युद्ध में पृथ्वीसिंह डागर जैसे भारतीय अफसर अपनी जान की बाजी लगाये हुए थे, उसमें पाकिस्तानियों को कैसे सफलता मिलती! वे भारतीय सेना का व्यूह तोड़कर आगे न बढ़ सके। इसके विपरीत पाकिस्तानियों को भारतीय सेना के प्रत्याक्रमणों (जवाबी हमलों) का सामना करना पड़ रहा था। इसी बीच युद्ध-विराम हो गया। पाकिस्तानियों को बड़ी सैनिक क्षति उठानी पड़ी थी। ५ जुलाई को बड़े उत्साह सहित पृथ्वीसिंह डागर अपनी कम्पनी सहित बम्बई वापस आ गया। इस युद्ध में अपूर्व साहस, कुशलता एवं वीरता दिखाने के कारण सरकार ने पृथ्वीसिंह डागर को 'सैन्य सेवा पदक' प्रदान किया।

भारतीय सेना के लिए यह क्षेत्र दुर्गम और उपेक्षित था। पाकिस्तान को यहाँ अपनी सेनाएँ और सेनाओं को कुमक और सामान भेजने का सुभीता था। उसके कई बड़े सैनिक अड्डे इस क्षेत्र के निकट थे। इसके विपरीत, भारतीय सेना के अड्डे दूर थे, तथा वहाँ पहुँचने के लिये सड़कें भी न थीं। रेगिस्तान में होकर वहाँ पहुँचना होता था जहाँ पीने का पानी भी मुश्किल से मिलता है। अतएव पाकिस्तानी भारतीय सीमा के भीतर घुस आये। पाकि-स्तानियों को आगे बढ़ने से रोक तो दिया, पर वे तुरन्त उन्हें पीछे ढकेल कर पाकिस्तान में नहीं घुस सके। उसके लिए पाकिस्तान पर पार्श्व (बगल) से (राजस्थान होकर) आक्र-मण करना आवश्यक था। इससे युद्ध बढ़ जाता और भारत सरकार युद्ध को कच्छ के रण तक ही सीमित रखना चाहती थी। किन्तु मार्शल अयूब ने इसका गलत अर्थ लगाया। उन्होंने सोचा कि उनके सैनिक भारतीय सैनिकों से अधिक कुशल हैं। साथ ही उनको पूरी तरह विश्वास हो गया कि यदि उन्होंने बड़े पैमाने पर अचानक कश्मीर पर खुला हमला कर दिया तो निश्चय ही वे एक-दो सप्ताहों में उस पर अधिकार कर लेंगे। उन्होंने जो योजना बनायी और जो हिसाब लगाया उससे उन्होंने सोचा कि भारत युद्ध को कश्मीर तक ही सीमित रखेगा और पंजाब की ओर से पाकिस्तान में घुसने का प्रयत्न न करेगा, और यदि वह उधर हमला करे भी तो निश्चय ही पाकिस्तानी बख्तर-बन्द गाड़ियाँ और टैंक इतने अधिक और इतने मजबूत हैं कि वे पंजाब पर जवाबी आक्रमण करके भारत में घुसते चले जायेंगे और सात दिन में वे दिल्ली की सड़कों पर घूमते दिखायी देंगे। वास्तव में उस समय पाकिस्तान के पास आधुनिक युद्ध-सामग्री बहुत बड़ी मात्रा में थी, और उसने अपने सैनिकों को उसके उपयोग का प्रशिक्षण भी बड़ी मेह-नत से दिया था। अतएव अपनी सेना की शक्ति और योग्यता के बारे में मार्शल अयूब का विचार बहुत गलत

था। परन्तु भारतीय जवानों की शक्ति, दृढ़ता एवं उनकी राष्ट्रप्रेम की गहरी भावना तथा सेनानायकों की योग्यता और युद्ध-कौशल को भली भाँति न समझ सकना ही उनकी भूल थी। इसी भ्रम में उन्होंने भारत पर आक्रमण कर दिया। यदि उन्होंने भारतवासियों की वीरता और शान्ति-प्रियता को ठीक तरह से समझा होता तो शायद पाकिस्तानी आक्रमण न होता। लेकिन ऐसा कहा जाता है कि जब गीदड़ की शामत आती है तब वह गाँव की ओर भागता है। यही अयूब के साथ हुआ। परिणामस्वरूप उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ी। और उनके मनसूबे पूरे न हुए।

पहिली सितम्बर को आधी रात में (१२ बजकर ५० मिनिट पर) एक पाकिस्तानी डिवीजन ने टैंकों तथा भारी तोपखानों की सहायता से कश्मीर के छम्ब के क्षेत्र पर आक्रमण करके कश्मीर में घुसने का प्रयत्न किया। इस अचानक आक्रमण से प्रारम्भ में यहाँ भी भारतीय सेना की बड़ी क्षति हुई। पाकिस्तानी सेना कई मील हमारी सीमा में घुस भी आयी। परन्तु ३ सितम्बर तक हमारी सेना ने उनका आगे बढ़ना रोक दिया। भारतीय सेना ने टैंकों और बड़ी तोपों के न होते हुए भी अपनी दृढ़ता, साहस और युद्ध-कौशल तथा बलिदान से पाकिस्तानी सेना को (जो प्रायः बड़ी तोपों और १०० टैंकों से लैस थी) आगे बढ़ने न दिया। हमारी सेना उनका मार्ग रोके खड़ी थी और उसे आगे न बढ़ने देती थी। इस अवस्था में दोनों फौजें एक दूसरे पर दिन-रात गोलाबारी किया करती थीं। पाकिस्तान की योजना अखनूर पर अधिकार करके पूँछ के यातायात को छिन्न-भिन्न करके कश्मीर और भारत के बीच की सड़क बन्द कर देने की थी। परन्तु भारतीय सैनिक टुकड़ियाँ उन्हें छम्ब-जौड़ियाँ रेखा से आगे नहीं बढ़ने देना चाहती थीं। ऐसी दशा में भारतीय जवानों को दिन-रात चौकन्ना रहना पड़ता था।

इधर २ सितम्बर को दूसरी ग्रिनाडियर बटालियन भी छम्ब-जौड़ियाँ के रण-क्षेत्र में पहुँच गयी। इस समय वहाँ जोरों से लड़ाई हो रही थी। पाकिस्तानी पूरी शक्ति से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। पृथ्वीसिंह डागर भी अपनी कम्पनी सहित मोर्चे पर डटा हुआ था। १० सितम्बर को सवेरे तीन बजे (जब कि रात ही थी) पाकिस्तानी सेना ने उस मोर्चे पर अकस्मात् एक भीषण आक्रमण कर दिया। डागर के जवानों ने उसका ऐसा मुँहतोड़ जवाब दिया कि उनका आक्रमण नाकाम हो गया। बाद में दोनों ही पक्षों से भीषण गोलाबारी प्रारम्भ हो गयी। साढ़े पाँच बजे सवेरे शत्रु की तोप के एक गोले का टुकड़ा (स्प्रिण्टर) डागर के माथे में बायीं ओर लगा। गोले का वह टुकड़ा इतना बड़ा था, तथा इतने वेग से लगा कि सिर पर लगे फौलाद के टोप को भेदते हुए उसने उसके माथे में एक गहरा घाव कर दिया। रुधिर की धारा फूट चली। वह रक्त-रंजित हो उठा। परन्तु वीर डागर ने परवाह न की। उसने घाव में रूमाल ठूँसकर ऊपर से हैलमेट (फौलादी टोप) लगा लिया। मस्तक से रक्त बह रहा था, परन्तु वीर डागर अपनी कम्पनी का नेतृत्व करता रहा। कुछ समय बाद गरजती पाकिस्तानी तोपें शान्त हो गयीं। परन्तु इस समय तक बहुत रक्त बह जाने के कारण डागर मूर्च्छित हो गया था। ऐसा लगता था कि मानों वह इस दुनिया को छोड़कर चल बसा हो। जब उसके साथियों ने वहाँ जाकर उसे देखा तो मालूम हुआ कि वह संज्ञाहीन हो गया है, और शरीर गर्म है। उसे शीघ्र ही अस्पताल पहुँचाया गया। घाव तो ठीक हो गया, परन्तु दुर्भाग्य से उसकी बायीं आँख का प्रकाश जाता रहा। सेना ने उसे पठानकोट के अस्पताल से आपरेशन के लिये पूना भेज दिया। ईश्वर की असीम कृपा से आपरेशन सफल हुआ, और उसकी आँख में फिर ज्योति आ गयी। अस्पताल से छूटने पर वह अपने घर आया। यहाँ १२३ दिन का अवकाश बिताकर वह मातृभूमि की रक्षा में लड़ने के लिये अपनी यूनिट में फिर उपस्थित हो गया।

डेढ़ वर्ष की सेवा में ही उसे 'सैन्यसेवा पदक' तथा 'सुरक्षा पदक' (डिफेन्स मेडल) प्राप्त हो चुके थे। जैसे ही उसने अपनी सैनिक सेवा के २ वर्ष व्यतीत किये, वह पूरा लेफ्टिनेंट बना दिया गया। इस बीच उसकी बटालियन सिक्किम भेज दी गयी थी। अभी लेफ्टिनेण्ट पद के दो फूल ही उसने लगाये थे कि उसकी फिर पदोन्नति हुई। अब वह कैप्टेन हो गया था। निरन्तर सफलताओं से उसकी प्रगति के मार्ग और दृढ़ हो गये थे। अब वह अपनी यूनिट का क्वार्टर मास्टर था। उसे अपने जवानों से स्नेह था और वे उसका बड़ा आदर करते थे। जब जुलाई १९६७ में चीनियों ने सिक्किम सीमा का वाद-विवाद आरम्भ किया तो डागर की कम्पनी नाथूला दर्रे में उस सीमा की रक्षा के लिए भेज दी गयी।

नाथूला १४,००० फुट से भी अधिक ऊँचा दर्रा है। यह

चित्र में दिखाया गया है। चित्र में ग्रिनाडियर की दूसरी बटालियन का एक अफसर दर्रे को देख रहा है। यहाँ एक पत्थर लगा है जो इस बात की याद दिलाता है कि कभी यहाँ प्रधान मंत्री नेहरू आये थे। अफसर के दायी ओर दर्रे का दक्षिणी उठान (शोलडर) तथा बायीं ओर उत्तरी उठान है। दर्रे की लम्बाई लगभग ८० गज है। इस लम्बाई के लगभग मध्य मे सिक्किम-तिब्बत सीमा की रेखा है। यहाँ पर कँटीले तार लगे है जिससे दोनों देशों की सेनाओं के जवान अपनी सीमा को पहचान लें। इस तार के नीचे से लेटा हुआ मनुष्य रेंगकर निकल सकता है। अफसर के दायें पैर के सामने भारतीय मोर्चा है। अफसर के सामने जहाँ एक चौखटे में माओ का चित्र लगा है, वहाँ चीनियों की एक चौकी है। यह दक्षिणी उठान में है। यहाँ चीनियों की २ मशीनगनें चढ़ी हुई हैं, तथा उनके २० जवान एक अमलदार (एन० सी० ओ०) के नेतृत्व में तैनात थे। इसी प्रकार उत्तरी उठान पर भी उनकी दूसरी चौकी है। यदि चित्र को ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिणी उठान वाली चीनियों की चौकी अधिक ऊँचाई पर है। इस स्थान से ३-४ मील भारतीय क्षेत्र स्पष्ट दिखायी देता है। इसलिये यहाँ जमीन नीची होने के कारण ३-४ मील तक अपने ही क्षेत्र मे भारतीय सैनिक चीनियों की मार में है। दक्षिणी उठान के पश्चिम में कुछ नीची भूमि है। उसके बाद की भूमि का एक पठार सा बन जाता है। इसी पठार पर पृथ्वीसिंह डागर का एक प्लाटून दक्षिणी उठान की देख-भाल और सुरक्षा करने के लिए नियुक्त था।

भारतीय सैनिक सीमा नियमों का भली भाँति पालन करते थे तथा सीमा का अतिक्रमण नहीं करते थे। परन्तु यह बात चीनियों के साथ कभी लागू न होती थी। वे इस सीमा को तो मानते ही न थे, अतएव सदैव इसके अतिक्रमण की बात ही सोचा करते थे। इधर भारतीय जाट, राजपूत आदि सैनिक सीधे-सादे थे तथा प्रायः उत्सव भी आयोजित किया करते थे। इधर सावन का महीना आया, और उधर भारतीय सैनिक गले में ढोलक लटकाकर गाने-बजाने में व्यस्त हो उठे। चीनी सैनिक कँटीले तार के नीचे से रेंग कर हमारी सीमा में आ जाते तथा तमाशा देखा करते थे। भारतीय सैनिक कुछ न कहते थे। वे राजनीतिक दाँव-पेचों से दूर थे। इसी बीच रक्षा-बंधन का त्योहार आया। प्लैटून में भारतीय सैनिक अपनी बहनों द्वारा भेजी गयी राखियों को बाँधकर भाव-विभोर हो उठे। उस दिन शानदार भोज हुआ। एक समारोह आयोजित हुआ जिसमें बड़े-बड़े भारतीय अफसर आये। उन्होंने देखा कि चीनी सैनिक बिना किसी हिचक के हमारी सीमाओं में प्रवेश कर लेते हैं। अतएव डिवीजन कमांडर ने गम्भीरता से विचार कर भारतीय सैनिकों को आदेश दिया कि वे प्लैटून के सम्मुख कन्सर्टीना नामक तार फैला दें। यह तार लच्छेदार होता है। इसको काटना या इसके नीचे से निकलना प्रायः असम्भव है।

९ सितम्बर को दूसरी ग्रिनाडियर के कमाण्डिंग आफिसर ले० कर्नल राजसिंह जी आये। उनके आते ही २ चीनी सैनिक हमारी सीमा में घुस कर राजसिंहजी से एक अनजाने मामूली व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगे। जब वे उनके सामने अधिक बड़बड़ाने लगे तो एक भारतीय सैनिक ने एक चीनी सैनिक को धक्का देकर हटा दिया। इस पर वे चिल्लाते-चीखते हुए चले गये, और १५-२० चीनियों के साथ उस स्थान में पुनः आकर (जो चित्र में भारतीय अफसर के सम्मुख है) शोर मचाने लगे। अतः राजसिंहजी ने पृथ्वीसिंह डागर को यह आदेश दिया कि झगड़ा करने से क्या लाभ, कल या परसों प्रातः अँधेरे ही में सीमापर नये तार लगा देना।

११ सितम्बर को प्रातः साढ़े चार बजे भारतीय सैनिकों ने यह कार्य प्रारम्भ कर किया। ६ बजे सूर्योदय हो गया (सिक्कम में भारतीय समय की अपेक्षा सूर्योदय जल्दी होता है)। इतने में ५-७ चीनी सैनिक भारतीय सीमा में आकर कार्य में बाधा डालने लगे। उन्होंने तार लगाने का काम रोकना चाहा, परन्तु हमारे सैनिकों ने कार्य जारी रखा। कै० पृथ्वीसिंह डागर के बहुत समझाने पर भी वे न माने और अपनी भाषा में बकने लगे जो किसी की समझ में न आया। इतने में वर्षा होने लगी और इस वर्षा के मध्य ही अचानक चीनी मशीनगनें खुल गयीं, तथा पानी के साथ मौत की वर्षा भी होने लगी। जो दो-चार चीनी बहस करने आये थे, वे भी मारे गये। भारतीय सैनिक पीछे हट आये।

मौत की वर्षा हो रही थी। यह कार्य केवल मशीनगनों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि ७ बजे तो चीनियों ने तोपें दागना भी आरम्भ कर दिया। भारतीयों की बड़ी क्षति हो रही थी, परन्तु इस पर भी डागर के जवान घबड़ाये नहीं। डागर अपने जवानों को एक-एक करके आड़ में

कर रहा था। परन्तु वहाँ का प्राय: सभी स्थान खुला था। वहाँ आड़ ऐसे स्थानों में थी जहाँ जाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। फिर भी डागर घबड़ाया नहीं। वह स्वयं एक-एक सैनिक को आड़ में पहुँचाता जाता था। डागर बिना आड़ लिये अपने सैनिकों को सुरक्षित स्थानों में पहुँचा रहा था कि उसके बाएँ कन्धे पर मशीनगन की एक साथ कई गोलियाँ लगीं। रक्त की धारा फूट उठी। परन्तु वह घायल होते हुए भी जवानों को सुरक्षित स्थानों में हटा रहा था। शत्रु की तोपें एवं मशीनगन दहाड़ती रहीं। लगभग ९½ बजे भारतीय तोपों ने भी जवाबी कार्रवाई प्रारम्भ की। ३ दिन तक दोनों ओर की तोपें गोले उगलती रहीं। दोनों पक्षों की निरन्तर क्षति हो रही थी। इसलिये अंत में डागर ने सोचा कि अपनी सेना को इस प्राय: खुले स्थान में शत्रु की गोलियों की वर्षा से बचाने के लिए आवश्यक है कि चीनियों की मशीनगनें बन्द या नष्ट कर दी जायँ। कन्धे में घाव हरा था और पट्टी बँधी हुई थी, फिर भी उसने शत्रु के मोर्चों को नष्ट कर देने का निश्चय किया। उसने ५-७ जवानों के साथ आग उगलती हुई शत्रु की मशीनगनों पर हमला बोल दिया। डागर स्वयं ६ फुट का २३ वर्ष का जवान था, और उसके साथ के जवान भी चुने हुए वीर तथा कार्य-कुशल सैनिक थे। इन लोगों ने झोलों में हथगोले भर लिये, राइफलों में संगीनें लगा लीं और गोलियाँ चलाते, संगीनों से चीनियों को गिराते हुए वे आगे बढ़ते चले गये और अन्त में मशीनगनों तक पहुँच ही गये। वहाँ उन्होंने तुरन्त ही शत्रु की मशीनगनों को नष्ट कर डाला। जोश से भरे सैनिकों ने डागर के नेतृत्व में उन स्थानों से भागते हुए चीनियों का पीछा किया। यह नहीं कहा जा सकता कि किस समय में जवान चीनियों के बंकरों में पहुँच गये। यहाँ जो चीनी भाग कर छिपे थे, उन्हें भी इन्होंने अपने हथगोलों से भून दिया। हमारे जवानों ने पचासों चीनियों को मौत के घाट उतार दिया। एक सैनिक से जब मैंने यह पूछा कि कितने चीनी मारे गये, तो उसने कहा—"ठीक संख्या बतलाना कठिन है, पर अकेले डागर साहब ही ने पन्द्रह-सोलह चीनियों को मेरे सामने ही मारा था।" यह वह भाग्यशाली जवान था जो उस मृत्यु की घाटी से जीवित लौट आया था। इसने डागर पर बीती गाथा सुनायी। डागर की लगभग पूरी टोली वहाँ काम आयी। परन्तु अपने जीवन को राष्ट्र की वेदी पर न्यौछावर करके हमारे गौरवशाली सैनिकों ने चीनी मशीनगनों के ठिकानों को नष्ट करके उनके अपवित्र इरादों को नष्ट कर दिया। डागर और उनके साथियों को सीमा की रक्षा करते हुए वीर गति मिली। उस समय वहाँ युद्ध इतना भयानक हो गया था कि या तो वे वहाँ से पीछे हटते हुए मारे जाते, (क्योंकि वे खुले मैदान में चीनियों की मार में थे) या आगे बढ़कर कुछ करके मरते। डागर ने आगे बढ़कर लड़ते हुए मृत्यु का वरण किया। वीर डागर ने प्राणों की परवाह न करके आगे बढ़ जिस वीरता से युद्ध-कौशल का प्रदर्शन किया, वह अकथनीय है। हमारा मस्तक उसकी वीरता के सामने श्रद्धा से नत हो जाता है। राष्ट्र के उन वीरों ने अपनी जीवन-लीला हँसते-हँसते समाप्त कर दी, परन्तु उन्होंने देश और सेना की शान न घटने दी। जब तक डागर जैसे सेनानी भारत माँ की कोख में जन्मते रहेंगे, चीन और पाकिस्तान क्या, कोई भी शक्ति हमारी सजग सीमाओं की ओर आँख नहीं उठा सकती। राष्ट्र को कै० पृथ्वीसिंह डागर जैसे सेनानियों पर गर्व है।

डागर के बलिदान का परिणाम यह हुआ कि इस युद्ध में चीनी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो गये। उस समय उनकी मशीनगनों का अड्डा नष्ट हो गया। यही नहीं, इतनी वीरता से सिक्किम की सीमा की रक्षा करने से सिक्किम की जनता में भारतीय सेना के अफसरों और जवानों की योग्यता में अटूट विश्वास पैदा हो गया। उन्होंने यह भी देख और समझ लिया कि भारतीय सेना उनकी रक्षा करने में पूर्णरूप से सक्षम है, और उनके वहाँ रहते सिक्कम की सीमा में शत्रु नहीं घुस सकता।

सरकार ने कैप्टेन डागर को मरणोपरान्त उसकी अपूर्व वीरता और बलिदान के लिए 'वीर चक्र' देने की घोषणा की।

भारत को कैप्टन पृथ्वीसिंह डागर के समान कर्त्तव्य-परायण तथा साहसी वीरों की आवश्यकता है, और हमें सन्देह नहीं कि देश के तरुणों में उनकी कमी नहीं है।

———

दुर्ग-प्रशस्ति

(राठोड़ वीर दुर्गादास सम्बन्धी एक संस्कृत काव्य)

श्री अगरचन्द नाहटा

राठोड़ वीर दुर्गादास राजस्थान के ही नहीं, भारत के महान् वीरों में है, जिन्होंने मारवाड़ राज्य और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की वलि चढ़ा दी। महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के वाद औरंगजेव इसी ताक में था कि मारवाड़ राज्य को हड़प लिया जाय। उसने जसवन्तसिंहजी की दो गर्भवती रानियों के पुत्र होने पर जोधपुर का राज्य उन पुत्रों को देना पड़ेगा, इस वात को ध्यान में रखते हुए उन जन्मनेवाले पुत्रों को ही समाप्त करने की योजना वना ली। गर्भवती रानियों को अपने पास रखने का प्रवन्ध किया। इन सब वातों से राठोड़ वीरों के हृदयों में यह आशंका पूरी तरह बैठ गयी कि यदि रानियों के राजकुमार हुए भी तो औरंगजेव उन्हें जीवित नही छोड़ेगा, और मारवाड़ का राज्य हथिया लेगा। तव उन्होंने वड़ी सूझ-वूझ से काम लिया। वीरवर दुर्गादास ने वड़ी कुशलता से नवजात वालक अजितसिंह को वहाँसे ऐसे सुरक्षित स्थान में भेज दिया कि लाख प्रयत्न करने पर भी औरंगजेव उस स्थान का पता नहीं लगा सका। अन्त में मौका मिलते ही अजितसिंह को जोधपुर का स्वामी वना दिया गया। पर खेद है कि अजितसिंह, वीरवर दुर्गादास को उसके योग्य सम्मान नहीं दे सके और तिरस्कृत होकर दुर्गादास को मारवाड़ छोड़कर उदयपुर चले जाना पड़ा। **अन्तिम समय में दुर्गादास उज्जैन तीर्थ में पहुँचे और वहीं उनकी मृत्यु हुई। क्षिप्रा नदी के तट पर उनका अग्नि-संस्कार किया गया, जहाँ आज भी उनकी छतरी बनी हुई है।**

दुर्गादास के सम्वन्ध में समकालीन अनेक चारणादि कवियों ने डिंगल गीतों की रचना की है, और वे अधिकांश प्रकाशित भी हो चुके हैं। समकालीन जैन कवि धर्मवर्द्धन ने भी दुर्गादास का गुण-वर्णन चार पद्यों में किया है वह वहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अतः नीचे दिया जा रहा है—

मौड मुरधर तणा खलां दल मौड़ता,
दौड पतिसाह सुं करै दावा।
रौड़ रमतां थकां चौड रिम्म चूरतां,
ठौड ही ठौड राठौड़ ठावा ॥१॥

छात ढलतै जसू हुइ नाका छिली,
सांक तजि साह सुं करै साका।
दाव पाका कीया सुजस डाका दिया,
जोध वांका करै नाम जाका ॥२॥

आगला भूप श्री अजीतसिंह आगला,
डागला दौड़ ज्यूं दिली कति दूर।
भागलै भुजां वल खलां करि खागलें,
सागलैं कीध जस सूर हर सूर ॥३॥

खीजीया यवन ल्यै जीजीया खूटिवै,
खेचलाँ वीजीयाँ रैत खाखी।
प्राण जोधाण रै पाजीया पी जीया,
रेख दूर्गदास राठौड़ राखी ॥४॥

राठोड़ दुर्गादास के सम्वन्ध में समकालीन कविवर हरिद्विज ने संस्कृत में एक काव्य वनाया था पर वह अभी तक अप्रकाशित है। उसकी एकमात्र प्रति कवि के वंशज बीकानेर निवासी पंडित वद्रीप्रसादजी के संग्रह में है। इस काव्य का नाम है—दुर्ग-प्रशस्ति। अभी तक इस काव्य का परिचय कही भी किसी ने प्रकाशित नहीं किया है। मैंने इसकी प्रेस कॉपी करवा ली है। यह काव्य २८० श्लोकों में है। इसके रचयिता कविवर हरिद्विज की और भी अनेक रचनायें संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी में मिलती हैं जिनके सम्बन्ध में 'राजस्थान भारती', 'विश्वम्भरा' आदि पत्रों में मेरे व अन्य विद्वानों के लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कवि जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़ता का निवासी था। दुर्ग-प्रशस्ति के श्लोक ६० से ६६ में कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

विप्रः पार्यङ्क जाति-विमल कुल चणः श्रीभरद्वाज गोत्रे,
व्यासोऽभूद् गोलवालः शिवचरणरतिः सामगानां वरिष्ठः।
श्रीमान् यागेश्वराख्यः क्षितिविबुधगणान्प्रत्यहं भूरिभोज्यै-
रम्यर्च्याम्यर्च्य नानाक्रतुनिचय समं पुण्यमासे दिवान्धः ॥६०॥

ज्येशाख्यस्तस्य सूनुर्जगति विपुलयन्तुज्वलां स्वां समाज्ञा-
मुर्वी मुर्वी शदत्तामपि विपुलतमां नैव योऽङ्गीचकार ।
तत्पुत्रौ द्वावभूतां विमलतरमती वेदवेदांग विद्या-
विद्वांसौ ब्रह्मचर्य व्रत चरणपरो मोहनः सुन्दरश्च ॥६१॥

गीतातत्वमवाकलय्य मनसा सम्यग्विरज्य व्रतं,
त्यक्त्वा स्वप्नमिवोत्थितो गृह सुखं भूत्वा परं निर्ममः ।
काशीवास मुपास्य वासव पदेप्युद्वास्य कामं चिरा-
न्मज्जन ब्रह्मणि सौरसैन्धवजले देहं जहौ सुन्दरः ॥६२॥

स्वच्छ स्वान्तः स्वीय वंशे विशिष्टः,
शिष्टैरिष्टः शेवधिः सद्गुणानाम् ।
ज्योतिर्विद्वान्मोहन स्यात्मजन्मा,
श्रीमद्गङ्गाराम नामा द्विजेन्द्रः ॥६३॥

त्रयः पुत्रास्तस्य श्रुतिविहित धर्मैकशरणा,
नवल्लाख्यो ज्येष्ठो हरिरिति च तस्मादवरजः ।
तृतीय स्तन्नाम प्रथम पद देवः शुचिमना,
अनूचानो गङ्गा पुलिन रूरदभ्रग्रिधिषणः ॥६४॥

विरिञ्चेर्निदेशात् कृतान्तर्निवेशः,
पुरे मेडताख्ये द्विजो विज्जनेशः ।
हरिर्नाम सोऽयं शुचिः सज्जनीनं,
नमत्यंघ्रि पद्मं मुने तावकीनम् ॥६५॥

कृताञ्जलि पुट स्ततः प्रकट वाष्प पर्यक्तदृक्,
प्रमोद पुलकांकितस्त्रिदशनेभलक्षीकृतः ।
समद्गदगिरा गृणन् सगुण सामगीति स्तुतिं,
बृहस्पति पदाम्बुज प्रणति कर्म शर्माध्यगाम् ॥६६॥

(अर्थात्—पारीक जाति, भरद्वाज गोत्र में गोलवाल व्यास यागेश्वर हुए । यागेश्वर के पुत्र जेशा हुए । जेशा के दो पुत्र हुए—१ मोहन और २ सुन्दर । सुन्दर ने गीता तत्त्व को प्राप्त कर काशी में निवास किया और वहीं देह त्याग किया । मोहन का पुत्र गंगाधर हुआ । गंगाधर के तीन पुत्र हुए—१ नवल, २ हरि और ३ हरिदेव । यह मैं हरि (कवि) ब्रह्मा के निदेश से इस समय मेडता मे निवास करता हूँ और मैं सुरगुरु की स्तुति करने लगा ।)

दुर्ग प्रशस्ति में कवि-कल्पना का चमत्कार भी देखते ही वनता है । रचना का प्रारम्भ करते हुए कवि ने लिखा है कि जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह का स्वर्गवास हो गया । मैने मन्दाकिनी के मन्दिर में नारायण का ध्यान करते हुए निद्रावस्था में जसवंतसिंह जी को देखा और कहा कि आपके चले जाने से 'हम आर्य-पामरों की क्या गति होगी । कवि के इस वाक्य को सुनकर राष्ट्रकूटेश्वर ने कहा कि चित्त को व्याकुल न बनाओ, विष्णु का अंश यादवी रानी के गर्भ से अवतीर्ण होगा । इसी समय वृहस्पति प्रकट हुए । मरुधरेश ने उनसे अपने वंश का परिचय दिया । मंडोवर दुर्ग के रक्षक महाराजा चूंडा से लेकर अपने पिता गजसिंह तक के नाम बतलाते हुए नवकोटि मारवाड़ का परिचय दिया । सुरगुरु ने इतना ही कहा कि जसवंतसिंह रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से यह भूतल औरंगजेब रूपी तिमिर से ध्वस्त हो गया । कवि ने बृहस्पति की स्तुति की । इसी समय आंगिरस महर्षि प्रकट हुए । अन्त में ययाति ने दुर्गादास का अवतार ग्रहण किया और इन्द्र ने अजितसिंह का अवतार लिया ।

श्लोक २५० से दुर्गादास का वर्णन प्रारम्भ होता है उसीका सारांश नीचे दिया जा रहा है—

"पातिसाह औरंगजेब के घमंडरूपी समुद्र का शोषण करने के लिये अगस्त्य के समान परमेष्टि के अनुशासन से राजा कुंभ के पुत्र रूप में दुर्गादास अवतीर्ण हुआ ।२५०।

पद्य २५१ से २७७ तक २७ पद्यों में दुर्गादास की यशोगाथा का उल्लेख है ।

हे दुर्गदास ! तेरे निर्मल यश के सन्मुख कुन्द, मकरन्द, कौमुदी, चन्दन, चन्द्र, कुमुद की श्वेतिमा भी फीकी है । तेरी कीर्ति कौमुदी निष्कलंक है । तेरी कीर्ति में लांछित होकर चन्द्र प्रतिदिन कालिमा (अन्धकार) को धारण कर रहा है, तथा प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है ।

हे दुर्ग ! भूपति जसवन्तसिंह के यश को सुरक्षित रखनेवाले और बढ़ानेवाले तुम ही हो । म्लेच्छों का नाश करनेवाले हो । देवताओं के प्रिय हो । तुम्हारी कीर्ति से विश्व धवलीभूत हुआ है । क्षीर समुद्र, हंस, शेषनाग की कैंचुली, सारस्वत कमल, मन्दाकिनी का फेन, चामर इत्यादि की श्वेतिमा से भी अधिक निर्मल तुम्हारी यशकीर्ति है ।

राठोड़वंश की राज्यलक्ष्मी जो औरंगजेब के कारण कम्पित हो चुकी थी उसको निर्भय करनेवाले गरिमा के दुर्ग तुम ही हो । हे दुर्ग ! तुम्हारे नाम श्रवण से ही यवन स्त्रियों के गर्भ गिर जाते है ।

श्याम कवच, विद्युत् असिलता, वायु सौवीराश्व का श्वास, वाणरूपी घनघोर वर्षा, धनुष का टंकारण रूपी गड़-गड़ाहट ऐसे मेघ स्वरूप तुम विश्व में विजयशाली हो। औरंगजेब के रंग को भंग करने में गरुड़, शत्रुओं की राज्य सम्पदा नाश करने में दिग्गज, क्रूरों का नाश करने में कालपाश, तथा क्षत्रियों की ३६ जाति की रक्षा करने में तुम दुर्गा के सदृश हो। तुम अपने कुल में ध्वजा, कीर्ति मे छत्र, कुपुरुषों की परिषद् का नाश करने में यन्त्र दण्ड, विद्वानों के दारिद्र्य को दण्ड देनेवाले, शत्रुदल का नाश करने मे चक्रदण्ड, वैरियों के लिये मृत्युदण्ड के सदृश हो।

औरंगजेब के पुत्र को शरणागत समझकर तुमने ही शरण दी थी। तुम्हारे निर्मल यश के फैलाव से वैद्य लोग भ्रान्ति में मरिच (काली मिर्च) के स्थान पर मुक्ताफल (मोती) ग्रहण करते है। मानिनियाँ अंजन लगाने के लिए अंजन के स्थान पर भ्रान्ति से कर्पूर का उपयोग करती है।

तुमने संग्राम में अपनी असिधारा से शत्रुओं को अस्थि-पंजर के रूप मे परिणत कर दिया। शत्रुओ के नाश से उनकी पत्नियों के रोदन जल से समुद्र का जल वढ़ने लगा है। तुमने शत्रुओं के हस्ति समूह का और सेना समूह का नाम शेष कर दिया है। तुम्हारे भय से वचे शत्रु-पुत्र घोर तथा विकट जंगलों में मारे-मारे फिरते है और भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर चाण्डालों के घरों मे आश्रय पाते है।

गंगा के समान गौर द्युतिवाले हे दुर्ग! तुम साक्षात् त्रिपुर के समान प्रतीत होते हो।

हे दुर्गादास! तुम्हे ब्रह्मा वृद्धि, सूर्य तेज, श्रीपति लक्ष्मी, शम्भु सुख-कल्याण, चन्द्र या अग्नि धन, राजा यश तथा स्वयं दुर्गा विजय प्रदान करें। (२७८)

क्षुरमतनय (शाहजहाँ के पुत्र) औरंगजेब के द्वारा दीनों का नाश देखकर, करुणा रस को प्राप्त हुई देवी हिंगुला के निदेश से, म्लेच्छों के नाश हेतु इन्द्र का अंश धारण किया है ऐसे महाराजा अजितसिंह अनुज के साथ राज्य का शासन करें। (२७९)

सुधामय के सदृश विशद एवं श्रेष्ठवाणी सज्जनो के मोद के लिए वर्धित हो। खल के मोद के लिये रचना नही करता हूँ, ऐसी वाणी उनके लिये उचित नहीं है क्योंकि वे कलंकदायी है। (२८०)"

श्लोक २७९ में महाराजा अजितसिंह अनुज के साथ राज्य का शासन करें—कवि ने कहा है। इससे इस काव्य के रचनाकाल का आभास मिल जाता है। इसी तरह औरंगजेब के पुत्र को शरणागत समझ कर दुर्गादास ने शरण दी, इस उल्लेख से इस काव्य की रचना इस घटना के वाद हुई, यह सिद्ध होता है।

दुर्गादास की जयन्ती प्रतिवर्ष जोधपुर में मनाई जाती है और जयपुर से प्रकाशित 'संघशक्ति' मासिक पत्र के कई विशेपाक दुर्गादास के सम्वन्ध में प्रकाशित हो चुके है। कुछ महीने पहले डा० रघुवीरसिंहजी का एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख 'मध्यप्रदेश सन्देश' में प्रकाशित हो चुका है। वैसे दुर्गादास के सम्वन्ध में जोधपुर, मारवाड़ राज्य के इतिहास आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त कई स्वतन्त्र जीवन-चरित्र और नाटक प्रकाशित हो चुके है। पर संस्कृत मे उनकी विद्यमानता में मेड़ता के कवि हरिद्विज ने काव्य वनाया, यह अवश्य ही उल्लेखनीय है।

दुर्गादास का जन्म मारवाड़ में हुआ और स्वर्गवास मालवदेश के उज्जैन में। अतः मध्यप्रदेश के लिये भी यह गौरव की बात है कि ऐसे महान् वीर का स्मारक, मध्य-प्रदेश में महान् राष्ट्रीय व्यक्तित्व की कीर्ति-पताका आज भी फहरा रहा है।

दकनी हिन्दी के महाकवि वली की काव्य-कला

प्रो० मुहम्मद आज़म, एम० ए०, एम० एड०

महाकवि वली मुहम्मद औरंगाबाद के निवासी थे। 'वली' आपका काव्य-नाम है। आप दकनी हिन्दी के युग-निर्माता महाकवि माने जाते हैं। आपको दकनी का 'चॉसर' कहा जाता है।

आपके काव्य-वैभव के निम्नलिखित पहलू है—

१—सरलता

वली ने अपने भावों की अभिव्यक्ति स्पष्टता तथा सरलता के साथ की है। आपके शब्द संगीत को लिये हुए है। आपकी स्पष्टता, सरलता तथा संगीतात्मकता का लोहा महान् साहित्यकारों को मानना पड़ा है। फारसी तरकीबें और हिन्दी शब्दों के सम्मिश्रण से आपका काव्य सुन्दरता का उत्कृष्ट नमूना बन गया है। आपके कुछ पद इतने सरल है कि इन पर आधुनिक युग के कलाम का धोखा हो जाता है—

"हर एक माहरू के मिलने का नहीं शौक़
सुख़न के आशना का आशना हूँ
जिंदगी जाम-ए-ऐश है लेकिन
फ़ायदा क्या अगर मदाम नहीं"
"वायस-ए-रुसवाई-ए-आलम वली
मुफ़लिसी है मुफ़लिसी है मुफ़लिसी"
"ये रेख्ता वली का जाकर उसे सुना दो
रखता है फिक्र रोशन जो अनवरी के मानिंद"
"ऐ बेखबर अगर है बुजुर्गी की आरजू
दुनिया की रहगुजर में बुजुर्गों की चाल चल"
"शुक्र वह जान गई फिर आई
ऐश की आन गई फिर आई"

अंतिम पद की सरलता और छोटी बहर, उस पर रंगीनी खयाल ऐसी वस्तु है कि उस पर दकनी हिन्दी को सदैव अभिमान तथा गव रहेगा। शेष अवतरणों की भी सरलता द्रष्टव्य ही है!

२—संगीतात्मकता

आपके कलाम में जो संगीतात्मकता है उसमें जादू का-सा आकर्षण भरा हुआ है। सच तो यह है कि काव्य में यदि संगीतात्मकता न हो तो वह निष्प्राण देह के समान लगता है। इस सम्बन्ध में कालडिल का दृष्टिकोण प्रसिद्ध है—'काव्य में संगीतात्मकता अवश्य होनी चाहिए।' हीगेल कहते है कि किसी साहित्यिक रचना में यदि संगीतात्मकता का पुट हो तो वह काव्य की कोटि मे आती है।

यह सर्वपरिचित बात है कि संगीतात्मकता के कारण ही एक सामान्य विचार उच्च कोटि तक पहुँच जाता है। वली के रचना की सगीतात्मकता आज भी असंख्य दिलों को लुभाती है और भविष्य में भी लुभाती रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

"तुझ लब की सिफ़त लाल-ए-बदख्शां से कहूँगा
जादू हैं तेरे नैन ग़ज़ाला सूँ कहूँगा"

आपके प्रस्तुत ग़जल के प्रत्येक शब्द से संगीत की तान फूट निकलती है। इसे पढ़कर आश्चर्य तो यही होता है कि जो शब्द हमारे कानों को भले नहीं लगते और जो सामान्य मात्र होते है, वे ही वली की रचना मे संगीत के माधुर्य को कूट-कूट कर भर लेते हुए दिखाई देते है।

३—अनूठी उपमाएँ तथा सुन्दर रूपक

वली को उपमाओं का सम्राट् कहा जा सकता है। आपने अपने काव्य मे अनेक अछूती उपमाओं का उपयोग किया है। आपके बुद्धि की पहुँच को देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे एक ही वस्तु के लिए विभिन्न प्रसंगों पर विभिन्न उपमाओं का प्रयोग किया है। वे भी ऐसी सुन्दर तथा अनोखी कि मानों आसमान से मोती लुटा दिये हो। उनमें से कुछ तो अद्वितीय है। यही हाल रूपकों की राशियों का है। उपमा तथा रूपकों का अद्वितीय भंडार विश्वास दिलाता

है कि आपका दिमाग सुन्दर शब्दों का एक बृहत् कोष था। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

"अपस घर में रकीबाँ कूँ न दे बार
चमन में काम क्या है खार व खस का"

प्रेमी के घर को 'चमन' से तथा रकीबों को 'खार व खस' से उपमा दी है और इतनी चतुराई से दी है कि लगता है, यूँ ही एक बात कह दी है।

"मौज दरिया की देखने मत जा
देख उस जुल्फ़ अंबरीं की अदा"

कितनी सुन्दर उपमा है! इसमें भी वही बात है जो ऊपर के शेर में है। लगता है कि बातों-बातों में उपमा का कारण बता दिया है और फिर दूसरे ही क्षण लगता है कि कुछ कहा ही नहीं।

"यूँ दोस्ताँ के हिज्र सूँ दाग़ाँ हैं सीने पर वली
सहरा के दामन के ऊपर ज्यूँ नक्श-ए-पाए-रहरवां"

मित्र-वियोग के दाग़ों के आधिक्य को नक्श-ए-पा-ए-रहरवाँ से स्पष्ट करना वली के शक्तिशाली कल्पना की एक आश्चर्यकारक बात है।

निम्नलिखित उदाहरण इस सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य है—

"लख्त-ए-दिल पर खत लिखा हूँ यार कू
दाग़-ए-दिल मुहर सर-ए-मक्तूब है"

दिल को ख़त से, मुहब्बत को मज़मून से (यह अत्यन्त ही सुन्दर कल्पना है) और दाग़-ए-दिल को उस मुहर से उपमा दी है जो लिफ़ाफे या खत के ऊपर लगाई जाती है। यह एक अत्यन्त ही उत्कृष्ट उपमा है और राज़दारी की ओर भी अत्यन्त सुन्दर इशारा है।

अब कुछ रूपकों का रूप निरख लीजिए—

"किया है अब्र ने रहमत से गोहर अफ़शानी"

यहाँ बरसात की बजाय 'गोहर अफ़शानी' कहा गया है।

"अव्वलन् रेहाँ व आखिर लाला रंग
जाहिर अब रग-ए-हिना शमशीर है।"

रेहान से शमशीर की सब्ज़धार और इसका परिणाम लाला रंग हो जाना—हिना (मेंहदी) के गुणधर्म का शमशीर पर आरोप किया गया है।

आपके रूपक का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण देखिए—

"इश्क़ नहीं ये हुनर बर आया
दुश्मन-ए-होश व सबर आया।"

४—सुन्दर कल्पना

महाकवि वली सुन्दर कल्पनाओं के स्रष्टा भी हैं। आप कहते हैं—

"माह के सीने उपर ऐ शमा रू
दाग़ है तुझ हुस्न के झलकार का"

चंद्रमा में दाग़ कौन नहीं देखता और इस सम्बन्ध में न जाने कितनी ही कल्पनाएँ की जाती हैं। कोई कहते हैं कि वह तो पृथ्वी की छाया है, तो कोई उसे गुफाएँ, वृक्ष और पर्वत बताते हैं। बड़ी बूढ़ियाँ चर्खेवाली बुढ़िया की कहानी सुनाती हैं। किन्तु वली कुछ और ही कल्पना करते हैं। दकनी कहावत है 'जो मनमें बसे सो सपने में दिसे।' आपके प्रेम के सपने में चाँद के दाग़ ईर्ष्या के दाग़ नजर आते हैं, जो कि आपकी प्रेमिका के सुन्दरता की "झलकार" देखकर आपके सीने में पड़ गए।

"यहाँ पेम के दरिया में गर्द। है कश्ती-ए-अक़्ल
इस मौज-ए-शोलाज़न में क्या आसरा है खस का।"

कथन है कि 'डूबते को तिनके का सहारा।' कवि कहता है कि प्रेम के तूफानी समुद्र में बुद्धि की नौका डगमगाती है। प्रेम के सम्मुख बुद्धि की वही स्थिति है जो कि शोलाजन तरंगों के सामने तिनके की। बस प्रेम के समन्दर में डूबनेवालों को बुद्धि भी नहीं बचा सकती।

"दिल को गर मर्तबा हो दर्पन का
मुफ्त है देखना स्रीजन का॥"

प्रस्तुत शेर द्वयर्थी है। इसमें यदि सूफ़ी मत के प्रभाव को देखा जाय तो कहा जा सकता है कि मारिफ़त में इसका यही अर्थ होगा कि यदि दिल पाक है और प्रलोभन का गुब्बारा दुनिया से दर्पण की तरह साफ़ है तो नूर-ए-इलाही का मज़हर बन जाता है। दूसरा अर्थ यह है कि प्रियकर के

हृदय-दर्पण में प्रियतमा की तस्वीर दिखाई दे तो फिर हर वक्त दीदार ही दीदार है।

"दिल के आईने में है तस्वीर-ए-यार !
जब ज़रा गर्दन झुका ली देख ली ॥"

५—भारतीयता का पुट

वली की सुन्दर कल्पनाओं से कहीं अधिक महत्त्व उनके भारतीय विचारों का है। इससे आपकी रचना में एक विशेष आकर्षण निर्माण हुआ है। यह विशुद्ध भारतीय रंग वली के परवर्ती कवियों में कहीं नहीं पाया जाता। उन कवियों का काव्य फ़ारसी आब व रंग में रंगा हुआ नजर आता है। उनकी शायरी फ़ारसी के साँचे में ढली हुई थी। अतएव उनमें भारतीय वातावरण एवं विशेषताओं का अभाव पाया जाता है।

आइये, इस दृष्टिकोण से वलीकृत भारतीय नायिका के दो-एक मनमोहक चित्रों को देख लीजिए—यहाँ भी काव्योचित कैफ़ व मस्ती तथा सुन्दरता का वही आलम है।

गुजरात का हुस्न और सूरत की मूरत सर्वप्रसिद्ध ही है। इसकी गहराइयों में वली के मातृभूमि-त्याग का रहस्य भी छिपा है। भला वली जैसे फक्कड़ मस्तमौला तथा सुन्दरता के पुजारी व्यक्ति के लिए औरंगाबाद और विशेषकर औरंगजेब काल के औरंगाबाद में दिलचस्पी का क्या सामान हो सकता है? सुन्दरता के हंगामे को रखने के लिए उसका दिल छटपटाता रहता है। वह तो आराधना के साथ नज़ारावाजी भी चाहता है। उसकी आँखें तो काव्योचित सुन्दरता की खोज में रहती हैं। अतएव औरंगज़ेब युग का यह कन्हैया सुन्दरता की खोज में गुजरात के मंदिरों, पनघटों तथा अन्य पवित्र स्थलों की भी सैर करता हुआ नजर आता है। गुजराती पुजारन की सुन्दरता का विस्तृत विवरण तो देख लीजिए—

"मत गुस्से के शोले सूँ जलते कूँ जलाती जा
टुक मेहर के पानी सूँ यो आग बुझाती जा ॥
तुझ चाल की क़ीमत सूँ दिल नें है मेरा वाक़िफ़
ऐ मान भरी चँचल टुक भाव बताती जा ॥
इस रात अंधारी में मत भूल पड़ूँ तुझ सूँ
टुक पांव के झाँझे की झंकार सुनाती जा ॥
मुझ दिल के कबूतर कूँ पकड़ा है तेरी लट ने
यह काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा ॥
तुझ मुख की परिस्तिश में गई उम्र मेरी सारी
ऐ बुत की पुजनहारी टुक उस कूँ पुजाती जा ॥
तुझ इश्क़ में जल जल कर सब तन कूँ किया काजल
यो रोशनी अफज़ा है अँख्यां को लगाती जा ॥
तुझ नेह में दिल जल जल जोगी की लिया सूरत
यक बार उसे मोहन छाती सूँ लगाती जा ॥
तुझ घर की तरफ़ सुन्दर आता है वली दायम
मुश्ताक़ दरस का है टुक दरस दिखाती जा ॥"

ये देखिए ठस्सेदार गुजराती साड़ी, वो घेरदार घूँघट और वह दिलकश सूरती अदाएं। इसके साथ भाषा का प्रवाह भी देखा जाय। भाषा की बंदिश और चुस्ती का ये आलम है कि आंत्यअनुप्रास ('क़ाफ़िये') चरणों पर गिर कर कहते हैं कि बाँधो हमको—

"मुझ घट में ऐ निघर घट है शौक़ तुझ घूँघट का
देख्या सो लुट गया दिल तेरी ज़ुल्फ़ का लटका ॥
कर याद तुझ कपट कूँ पड़ते हैं अश्क टप टप
मुख बात बोलता हूँ शिकवा तेरी कपट का ॥
तुझ नयन के देखन का दिल घाट कर चल्या था
ग़म्ज़े के देख घट कूँ नाचार होके ठटका ॥
तुझ खत के बिन तवज्जु खुलना है उसका मुश्किल
हल्क़े में तुझ ज़ुल्फ़ के जो जीव जाके अटका ॥
हर्गिज़ वली किसी कन शाकी तेरा न होता
गर तुझ में ऐ हटीले होता न तौर हट का ॥"

भारतीय नज़ाकत और हया की प्यारी तसवीर का एक और नमूना देख लीजिए—

"सजन तुम मुख सती (सेती ?) खोलो नक़ाब आहिस्ता आहिस्ता
के ज्यूँ गुल सूँ निकसता है गुलाब आहिस्ता आहिस्ता ॥
हज़ारां, लाख खूबां में सजन मेरा चले यों कर
सितारों में चले महताब ज्यूँ आहिस्ता आहिस्ता ॥
सलोने सांवरे पीतम तेरे मोती की झलकां ने
किया अक्द-ए-सुरैया कूँ खराब आहिस्ता आहिस्ता ॥"

६—काव्योचित स्वाभिमान तथा श्रेष्ठता

वली इस क्षेत्र में भी पीछे न रहे। आपने कई जगह अपने कवित्व की श्रेष्ठता को बड़े स्वाभिमानी ढंग से व्यक्त किया है—

१—"यो शेर तेरे ऐ वली मशहूर हैं आफ़ाक़ में
मशहूर है ज्योंकर सुख़न उस बुलबुल-ए-'तवरीज़' का ॥
२—"यह रेख़्ता वली का जाकर उसे सुनाओ
रखता है फ़िक्र-ए-रोशन जो 'अनवरी' की मानिंद ॥"
३—"हम पास बात आके 'नज़ीरी' की मत कहो
रखते नहीं नज़ीर अपस के सुख़न की हम ॥"
४—"तेरे अशआर ऐसे नहीं 'फिराक़ी'
के जिस पर रश्क आवेगा वली कूँ ॥"
५—"वली ईरान व तूरान में है मशहूर
अगर्चे शायर-ए-मुल्क-ए-दक्कन है ॥"

इन पदों के अतिरिक्त निम्नलिखित ग़ज़ल में वली ने अनवरी, जाभी, फिरदोसी, ग़ज़ाली, साहब, बेदिल आदि महान् कवियों के गुणों को स्वयं में बनाया है। ग़ज़ल इस प्रकार है—

"तेरा मुख 'मशरक़ी' हुस्न 'अनवरी' जल्वा 'जमाली' है
नयन 'जाभी' जवीं 'फिरदोसी' व अबरू 'हिलाली' है ॥
'रियाज़ी' फ़हम, 'गुलशन' तवा, दाना दिल 'अली' फिचत
ज़वां तेरी फ़सीह और सुख़न तेरा 'जलाली' है ॥
निगाह में 'फौज़ी' व 'कुदसी' सरिश्त-ए-'तालिब' व 'शैदा'
कमाली 'वदर' दिल 'अहली' व अंख्यां सूँ 'ग़ज़ाली' है ॥
तू ही है 'खुसरो' रोशन ज़मीर व 'साहब' व 'शौकत'
तेरी अबरू यो मुझ 'वेदिल' कूँ तुगरा ए 'विसाली' है ॥
'वली' तुझ क़द व अबरू का हुआ है 'शौकी' व 'मायल'
तू हर इक वैत-ए-'आली' और हर मिसर-ए-'खयाली' है ॥

सारांश यह कि जो गुण एक महान् कवि में पाये जाने आवश्यक होते है वे सभी वली में विद्यमान थे। किसी कवि की श्रेष्ठता उसके काव्य वैभव के साथ ही उसके काव्योचित आत्मगौरव तथा श्रेष्ठता में भी होती है। इस दृष्टि से वली अद्वितीय ठहरते है। 'मिट्टी का स्नेह तथा लगाव' भी साहित्यकार की श्रेष्ठता का प्रमाण होता है। वली न तो फ़ारस (ईरान) के दीप्तिमान काव्य वैभव से चकित होते है और न ही उससे दीप्त होते है। वरन् इसके विपरीत वे उसे हेय समझते है, और अपनी मातृभूमि दकन के रजकण को पवित्र मानते है। अतः यह निःसदेह है कि वली औरंगाबादी एक अग्रणी तथा मूर्द्धन्य महाकवि थे।

एक हताश माँ

श्री रामनिवास शर्मा मयंक

धीमी धीमी चाल
जिसके तन पर रेंगतीं,
बूंदें पसीने की
रेंगा करतीं जैसे
सड़ी-गली पंक्तियाँ
कविता की।

तपते मरुस्थल की
चिलचिलाती धूप में
उठती, गिरती, वैठती
एक हताश मां
अपने भूखे बच्चों को साथ लिए
दवाए सिकुड़ी आंतों में चीख
मांगती है भीख।

सहती हुई
राहगीरों की
कही-अनकही
बुरी........
या
ठीक!

कर्नाटक के श्री कनकदास की भक्ति साधना

श्री एस. केशवमूर्ति, एम. ए. (हिन्दी) एम. ए. (संस्कृत) साहित्यरत्न

"उत्पन्न द्राविडे चाहं वृद्धिं कर्नाटके गता।" "भक्ति का कथन है कि मैं मद्रास में उत्पन्न होकर, कर्नाटक में फूली और फली।" हाँ! कर्नाटक में सैकड़ों की संख्या में भक्त पैदा हुए और भक्ति की श्रीवृद्धि करने लगे। उनमें कनकदास भी एक हैं। कन्नड़ भाषा के हरिभक्त कवियों में कनकदास का वैसा ही विशिष्टि स्थान है जैसा कि अष्ट-छाप के कवियों का। कनकदास की भक्ति साधना की सीढ़ियों पर चढ़कर देखने से पूर्व, उनका पूर्व-वृत्तांत थोड़ा-सा जान लेना असंगत न होगा।

कनकदास का जन्म धारवाड़ जिले के 'बाड़' गाँव में एक गड़रिये (कुरुव) के वंश में सोलहवीं शती में हुआ था। उनके माता-पिता बचम्म और वीरप्प थे। उनके बचपन का नाम तिम्मप्प था। पिता के मरने के बाद, विजयनगर साम्राज्य काल में, अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में तिम्मप्प सेना-नायक एवं सरदार बने। इनको कहीं गड़ा हुआ खजाना मिल गया। अतः लोग उसे 'कनककप्प नायक' (सुवर्णाधिकारी) कहकर पुकारने लगे। कुछ दिनों के लिए वे आनंद से जीवन बिताने लगे। पिता-माता तथा पत्नी के मरने से उनके मन में वैराग्य अंकुरित हुआ। युद्ध में सैनिकों की दारुण मृत्यु देखकर, ये विरक्त हुए। कागिनेले में उन्होंने आदि केशव का मंदिर बनवाया। उनके इष्ट देवता ये ही कागिनेले के आदि केशव थे। पहले वे श्री वैष्णव थे, बाद में माध्व संप्रदाय के अनुयायी बने। वैराग्य धारण कर एकनाद (तानपूरा) को बजाते हुए, उडुपि, बेलूर, नरसीपुर आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए, इष्टदेव का गुणगान करने लगे। अपने कीर्तनों का अंत, आदि केशव के नामांकन से विभूषित किया। तब से वे 'कनकदास' बने। उन्होंने देवता की प्रेरणा से 'हंपे' में आकर व्यासराय से दीक्षा ली। तब तक वे पहुँचे हुए ज्ञानी बन चुके थे। शूद्र को अपना शिष्य बनाते देख, व्यासराय के ब्राह्मण शिष्यों में कोलाहल मच गया। कनकदास को कई परीक्षाएँ देनी पड़ीं। वे सब में सफल हुए। इनके बारे में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं।

कनकदास भक्त ही नहीं कवि भी हैं। सकल शास्त्रों का अध्ययन कर, अपने अट्ठानवे वर्ष के जीवन के अनुभवों को उन्होंने निम्नलिखित काव्यों में उतार दिया था। उनके काव्य हैं—

१. मोहन तरंगिणि २. नलचरित ३. राम-धान्य चरित ४. नृसिंहादिस्तव ५. हरिभक्ति सार तथा ६. कनकदास र कीर्तने गल्लु। उनके काव्य में विचार स्वातंत्र्य हैं। अन्य कवियों की अपेक्षा उन्हें जनभाषा का अधिक ज्ञान है। दुनिया का परिपक्व ज्ञान, अनुभव तथा विवेक के दर्शन होते है उनके काव्य में।

कनकदास प्रथमतः भक्त हैं, बाद में कवि। उनके भक्त हृदय के दर्शन हरिभक्तिसार तथा कीर्तनों में होते हैं। वे भगवान को हमेशा अपने हृदय मंदिर में बसाना चाहते हैं। उनका कथन है—

"हृदयदलि सदन माडु मुददि श्रीधर।"

"हे श्रीधर! आनंद से मेरे हृदय को अपना सदन बनाओ।"

कनकदास के इष्टदेव आदि केशव, और कोई नहीं, श्री हरि ही हैं। कनकदास भागवत धर्म के अनुयायी थे। हरि-हर में भेद भाव नहीं रखते थे। उनके अनुसार हरि, विशिष्ट गुणवाले, वैष्णवों से पूजित हरि नहीं; अनादि, अनंत, अखण्ड, निराकार परब्रह्म हैं। वे ही सगुण में नारायण, गोविंद, गोपाल, राम, कृष्ण वासुदेव, सदाशिव, दामोदर, नरसिंह का रूप लेते हैं। उनके अनुसार भगवान एक है, भक्त की इच्छा से वह विविध रूपों को धारण करता है। ये अवतारवाद के समर्थक थे। उन्होंने दशावतार का सविस्तर वर्णन किया है।

भक्ति मार्ग में परमात्मा का साक्षात्कार ही भक्त का ध्येय होता है। गुरु ही परमात्मा के दर्शन करानेवाले हैं। गुरु आसानी से नहीं मिलते। उसके लिए हरिकृपा चाहिए। हरिकृपा प्राप्त करने के लिए, हरि को पहले प्रसन्न करना पड़ता है। उनका कथन है—

"हरि तेरे चरणारविंद की कृपा से
मिली गुरु सेवा यह मुझे
गुरु मंत्र ही मूल मंत्र है
तू ने ही हरि, छोड़ा था मुझे
सद्गुरु मूर्ति के पास।"

बाद में, गुरु कृपा से हरि मिलते हैं। उसका वर्णन यों करते हैं—

केशवनोलुमे आगुव तनक हरि
दासरोळिरुतिरु हे मनुज ॥

"हे मनुष्य ! जब तक केशव तुम पर नहीं रीझता, कम से कम तब तक हरिदासों के साथ रहो।" हरिदास ही सच्चे गुरु होते हैं। हरि कृपा मिलने पर कोई चिन्ता नहीं। उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता—

आव बलविद्दरेनु दैवबलविल्लदवगे।
श्री वासुदेवन नल निजवागि इल्लदनक ॥

अर्थात् यदि श्री वासुदेव के कृपाबल रहित व्यक्ति के पास सब प्रकार के बल होने पर भी उनका क्या प्रयोजन है ?"

परमात्मा की कृपा प्राप्त करने के लिए भक्त गण तो रीतियों से उसकी उपासना करते हैं। यह नवधा-भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। यथाक्रम—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं च आत्मनिवेदनम् ॥

विष्णु की उपासना श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चना, वन्दना, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन द्वारा होती है।

यद्यपि कनकदास ने नवधा भक्ति से परमात्मा की उपासना की है फिर भी उनका मन वंदना, दास्य, आत्म-निवेदन तथा आर्त भक्ति की ओर ज्यादा उन्मुख है। अब यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि वे भक्ति मार्ग की साधना सीढ़ियों पर कैसे अग्रसर होते हैं।

पादसेवन भक्ति में भक्त परमात्मा की याद (चरण) पूजा एवं सेवा करता है। वह हमेशा हरि के चरणों को हृदय में बनाये रखना चाहता है। कनकदास ने कहा है— "मैं अत्यन्त हर्ष के साथ पहले तुम्हारी पाद-पूजा करता हूं। हे मधुसूदन ! कामदेव के जनक ! मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो जिससे तुम्हारी महिमा हमेशा मेरे हृदय में बनी रहे तथा मुँह में हमेशा (तुम्हारा नाम) नाचता रहे।"

तोरेदु जीविसबहुदे, हरि निम्न चरणगळ।
बरिय मात्याकिन्नु, कुरितु पेळुवनु ॥
तायि तंदेयनगलि तपव माडलिबहुदु
दायादि बंधुगळ बिडलि बहुदु।
राय मुनिदरे मत्ते राज्यवनु बिड्बहुदु
कायजपित निन्नडियनरगळिगे बिडलागदु ॥

"हे हरि ! तुम्हारे चरणकमलों की सेवा किये बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। और अधिक क्या कहूँ ? सुनो—माँ-बाप को छोड़कर तप कर सकते हैं, बंधुओं को हमेशा के लिए छोड़ भी सकते हैं, राजा के कुपित होने पर राज्य को छोड़कर, और कहीं जाकर, बस सकते हैं, पर तुम्हारे चरणकमलों को मैं आधे क्षण तक भी छोड़ नहीं सकता।"—उनकी चरणसेवा करते की उत्कट इच्छा देखते ही बनती है।

कीर्तन भक्ति द्वारा कनकदास हरि महिमा का संकीर्तन करते है। उनके अनुसार कीर्तन भक्ति आत्मोद्धार का साधन है। कीर्तन से भवबंधन छूट जाते हैं, कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। परमात्मा सर्वव्यापी है। जहाँ भक्त कीर्तन द्वारा बुलाता है, वहाँ प्रकट हो जाता है—

एल्लिरुवनो रंग एम्ब संशय बेड।
एल्लिभक्तरु करेये अल्लि बंदोदगुवनु ॥

"तुम यह संदेह मत करो कि भगवान इधर है कि नहीं ? वह तो सर्वव्यापी है। जहाँ भक्त बुलाता है वहाँ आकर उसकी रक्षा करता है।"

उनके अनुसार नारायण से भी उनके नाम की महिमा अधिक अपार है। अर्थात् स्वयं नारायण भी, नाम की बराबरी नहीं कर सकते। उनके अनन्य भक्तियुक्त नाम महिमा का कीर्तन सुनिए—

नारायण निन्न नामवोंदिरुतिरे।
बेरोंदु नाम विन्नाकय्या ॥
नेट्टने दारियु बट्टेयोळिरुतिरे।
बेट्टव बळसलिन्याकय्या ॥
अष्टैश्वर्यवु मृष्ठान्नविरुतिरे बीदि।
बिट्टि कूळनु तिन्नल्याकय्या ॥

हे नारायण ! जब तुम्हारा नाम है तब अन्य ना लेकर कीर्तन करने की क्या जरूरत ? जहाँ पहुँचने के लिए सीधा रास्ता है, वहाँ पहाड़ की परिक्रमा करने की क्या जरूरत ? अष्टैश्वर्य तथा मिष्टान्न के रहते रास्ते का

भिक्षान्न खाने की क्या जरूरत ?" अर्थात् हरि नाम कीर्तन की मुख्य रूप से मुक्ति देनेवाला है।

अपने मन को संबोधित कर कहते हैं—

संसार सागर वनुत्तरिसुवडे।
कंसारि नामवोंदे साकुमनवे ।।

हे मन! संसार रूपी सागर को पार करने, कंस के शत्रु श्री हरि का नाम लेना मात्र काफी है। उसका भजन सदा कर, तू तर जाएगा।

स्मरण भक्ति द्वारा भक्तगण मनसावाचा कर्मणा हरि का ध्यान करते हैं। कनकदास का कथन है कि हरि नाम स्मरण से सकल पाप दूर हो जाते हैं। सदा स्मरण करने से हृदय पवित्र वनता है तथा ज्ञान का उदय होता है। नाम स्मरण मात्र से ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, द्रौपदी, हाथी आदि का कष्ट दूर हुआ था। नाम स्मरण करने से, न उपवास, स्नान तथा तप करने की जरूरत है, न वैरागी वन, वन में विचरण करने की आवश्यकता। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

नीर मुणुगलु याके नारियळ बिडलेके
वारकोंदुपवास माडलेके।
नारसिंहन दिव्य नामवनु नेनेदरे
घोरपातकवेल्ल तोलगिहोगुवुदु ।।

अर्थात् पुण्य तीर्थों में जाकर स्नान करने की आवश्यकता नहीं, पत्नी को छोड़ संन्यास ग्रहण करने की जरूरत नहीं, न हफ्ते में एक दिन उपवास करने की ही जरूरत है। नरसिंह के दिव्य नाम का स्मरण करने से घोर पाप भी दूर हो जाते हैं।" अतः वाह्याडंबर को छोड़कर हृदय में हरि का स्मरण करो। स्मरण मात्र से वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है।

हरि कथा श्रवण से मन का कलुष मिटता है। अनवरत श्रवण से हरि हृदय-मंदिर में बस जाते हैं। तिर्यक-जाति-जीव भी श्रवण मात्र से सद्गति प्राप्त करता है। कनकदास ने कहा है—

"जहाँ, हरि कथा कही जाती है वहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, तथा सिंधु का संगम होता है। अर्थात् सब तीर्थ एकत्र होते हैं। अतः हरिकथा श्रवण से सब पाप मिट जाते हैं।

मुक्ति के लिए वंदना भी एक साधन है। कहा है—

"हे मनुज! परलोक जाने के लिए हरि ही सखा है। अतः उसकी वंदना करो। दूसरों की निंदा न करो, क्योंकि निन्दा करने से दूसरों का पाप हमारे पल्ले में पड़ जाता है।

भक्त कभी परमात्मा को सर्वशक्त, सर्वव्यापी, अचिंत्य तथा अभेद्य मानकर भजन करता है तो कभी अपना सखा मानकर, उसका हास-परिहास भी करता है। इस तरह परमात्मा को सखा मानकर जहाँ उपासना की जाती है, वहाँ सख्य भक्ति मानी जाती है। सखा वन भक्त कभी परमात्मा को चिढ़ाता है तो कभी चेतावनी देता है, कभी परिहास करता है तो कभी उपदेश देने लगता है। कनकदास श्री हरि को कैसे चिढ़ाते हैं देखिए—

"इवग्याके शृंगार, इवग्याके परिमळ;
नवनीत चोर नारुव गोल्लगे ?"

"इसको अलंकार क्यों तथा सगंध लेपन क्यों ? यह तो माखनचोर, दुर्गंधयुक्त ग्वाला है।"

कनकदास परमात्मा पर कितने जोरदार शब्दों में कटाक्ष करते हैं, देखिए—

सिरिय मदवे मुकुंद निन्न
चरण सेवकन बिन्नह पशकेलो देव।"

"हे मुकुंद! क्यों संपत्ति के मद में पड़कर इठलाते हो ? क्यों मुझ चरणसेवक की कुछ भी नहीं सुनते।"

शायद परमात्मा घमंडी वन गया है। उसके घमंड को कनकदास दूर हटाना चाहते हैं—

"तुम ऐसा मानकर कि मेरे समान इस दुनिया में कोई नहीं है, क्यों घमंडी वने हो ? मेरी वातें तुम्हारे कानों में क्यों सुनायी नहीं पड़तीं ?"

"यदि मेरी रक्षा करने की क्षमता मुझमें नहीं है तो अपनी उपाधि "भक्तवत्सल" को छोड़ दो। झूठ-मूठ उपाधि लिए क्यों फिरते हो ? यदि उसे छोड़ना नहीं चाहते हो तो मेरी रक्षा आसानी से कर दो।"

भक्त कभी परमात्मा को माता-पिता मानकर भक्ति करता है तो कभी वालक मानकर उसे नहलाता है खिलाता है, सुलाता है तथा उसके साथ स्वयं खेलता है। वाल-लीला का सुन्दर वर्णन करता है। इसे वात्सल्य भक्ति

कहते है। कनकदास से वर्णित बाल-लीला का वर्णन देखिए—

मगुवु काणिरय्य, माद मगुवु काणिरय्य
सगुण वादिराजरे मू
जगवन तन्नुदरदोळिट्ट।

"सगुणोपासक वादिराज जी! क्या आपने ऐसे बच्चों को देखा? वह मायाजाल दिखानेवाला बच्चा है। उसने अपनी माँ को, अपने मुँह में तीनों लोकों को दिखाया, जो उसके पेट में बसा हुआ है।"

"गोपी का बेटा बड़े सुन्दर ढंग से नाचता आया। विकराल पूतनी को मारकर शकटासुर को पैरों तले कुचल कर धिकिट-धिमि-धिकिट-ताल के साथ नृत्य करते हुए, घर आया। क्या आपने उसको नही देखा?"

गोवर्धन पर्वतवन्नेत्ति, गोवुगळ काय्द तन्न।
मान कंसन कोन्दु, आव कूडि पाडुत मनेगे॥

"गोवर्धन पर्वत को उंगली से उठाकर उसने गायों की रक्षा की। मामा कंस को मारकर, गायों के साथ उछलते कूदते-नाचते घर आया। क्या आपने उसे नहीं देखा?"

यशोदा के भाग्य की सराहना कैसे करूँ? उस जगदोद्धारक श्रीकृष्ण को अपना बेटा मानकर कभी चूमती है तो कभी ऊखल में बाँधती है।

भगवान को मालिक तथा स्वयं को उसका सेवक मानकर जो भक्ति की जाती है, उसको दास्य भक्ति कहते है। सब हरि भक्तों ने अपने को परमात्मा का दास माना है। साथ ही अपने नाम के साथ 'दास' शब्द जोड़कर, दास्य भक्ति की श्रेष्ठता को दर्शाया है। दास्य भक्ति की उत्कृष्ट-स्थिति कनकदास में पायी जाती है। उन्होने कहा है—

"हमे सदाशिव श्री हरि का दास बनना चाहिए। दास बनने से क्लेशपंचक मिट जाते हैं। इच्छा को त्यागकर मन मे हमेशा हरि की सेवा करते हुए, दास बनना चाहिए।

दास्य भाव मे ही शरणागति की चरम सीमा छिपी है।—

"हे हरि! तुम जो कुछ भी करो, मै तो तुम्हारा सेवक हूं। वैष्णवों के घर में काम करनेवाली, आजन्म दासी का पुत्र हूं। सृष्टि के मालिक कागिनेले आदि केशव! मै हरिदासों की कसम खाकर कहता हूं कि मुझ दास को कभी मत छोड़ो।

जब भक्त अपने को दास मानकर सब कुछ मालिक को अर्पण कर देता है, तब उसका अपना कुछ भी बचा नहीं रहता। सब कुछ परमात्मा का हो जाता है। यही दास्य भक्ति की चरमसीमा है। भक्त उस समय निष्काम जीवन बिताने लगता है। कनकदास की स्थितप्रज्ञ स्थिति को देखते ही बनता है—

तनु निन्नदु, जीवन निन्नदु स्वामी
अनुदिनदलि बाह सुख-दुःख निन्नदय्य।

"हे मालिक! यह शरीर तुम्हारा है, मेरा जीवन भी तुम्हारा है। मैं जो सुख-दुख नित्य भोग रहा हूं, सब तुम्हारा ही है। मेरा कुछ है ही नहीं।" सर्वार्पण की पराकाष्ठा है। इतना ही नही—

"माया पाश के जाल मे फँसकर दुख भोगनेवाले शरीर तथा पंचेंद्रियों की गति तुम्हारी है। कागिनेले आदि—केशव! तुम्हारे बिना क्या नर स्वतंत्र है? अर्थात् इस दुनिया मे कोई स्वतंत्र नही है। सब तुम्हारी आज्ञा के अनुसार चलनेवाले सेवक तथा परतंत्र जीव है।"

इस तरह की स्थिति तक पहुंचने के लिए अहं को छोड़ना पड़ता है। कनकदास का कथन है—

मैं-मैं, तू-तू मत कहो, अरे तुच्छ मानव!
ज्ञान की आँखों से अपने आपको पहचान लो॥
सोना, माटी, स्त्री तीनों क्या तुम्हारे हैं?
अन्न से उत्पन्न काम (इच्छा) क्या तुम्हारी है?
कर्ण से जो घोष सुनते हो, क्या तुम्हारा है?
तुझे छोड़कर चलनेवाला तन, क्या तुम्हारा है?

जब भक्त अहं को छोड़ देता है तब उसके हृदय में ही नही, इसे सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होते है। इसे पहुंचे हुए, ब्रह्म ज्ञानी मानते है। कनकदास भी भक्ति मार्ग की साधना सीढ़ी पर धीरे-धीरे चढ़कर ब्रह्म ज्ञानी बने। उसका वे स्थिति का वर्णन यों करते है।

एल्लि नोडिदरल्लि राम
इद बल्ल जाणर देहदलि नोडण्ण!
कण्णे कामन बीज। ई
कण्णिणदले नोडु मोक्ष साम्राज

कण्णिन मूरति विगिदु । ओळ
कण्णिदले देवर नोडण्णा ॥

"हे भाई ! जहाँ देखो वहाँ, सर्वत्र राम दिखाई दे रहे हैं। उस ब्रह्म ज्ञानी के शरीर में भी उसके दर्शन कर सकते हो। आँख ही इच्छा का वीज है। इन आँखों से ही मोक्ष का साम्राज्य देखो। आँखों की पुतली को मूँद कर, ज्ञान रूपी अन्दर की आँखों से, हृदय में स्थित श्रीराम के दर्शन करो।"

जब भक्त अंतर्मुखी हो जाता है तब ज्योतिस्वरूप भगवान के दर्शन होते हैं। उस स्थिति का वर्णन यों करते है—

आरु चक्रदि मेरेव अखण्डन
मूरु गुणव तिळिदु
आरु, मूरु, हदिनारु तत्वन मीरि
तोरुव कागिनेलेयादिकेशवनडि ।

"सात्विक, राजस, तामसादि गुण त्रयों को जानकर, पंचेंद्रिय तथा मन को काबू में रखकर, सोलह तत्वों से परे, षड्चक्रों के ऊपर अखण्ड ज्योंति के रूप में शोभायमान श्री केशव का दर्शन करो।"

जब भक्त को परमात्मा के दर्शन नहीं होते तब आर्त-भाव से परमात्मा से निवेदन करता है। अपने हृदय के भावों को परमात्मा के सामने खोलकर रख देता है। उसे आत्मनिवेदन भक्ति कहते है। कनकदास का आत्म-निवेदन सुनिए——

कायो करुणाकरने कडुपापि नानु
न्यायवेंबोंदु एन्नोळेळ्ळिनष्टिल्ल ॥

"मैं तो वड़ा पापी हूँ, हे करुणानिधि ! मेरी रक्षा करो। मुझमें तिल भर भी अच्छे गुण नही है।"

आत्मनिवेदन में भक्त अपने को छोटा, तुच्छ, पापी और वदमाश तथा परमात्मा को वड़ा, सर्वशक्त, जग-दोद्धारक जग-रक्षक के रूप में वर्णन करते है। दैन्य भाव उसमे कूट कूट कर भरा हुआ है कनकदास की दीनता देखिए—

अति दीन हूँ मैं, समस्त लोक में
अति दानी तू है, बुद्धि विचार से
अति हीन हूँ मैं, तू महामहिम कैवल्यपति
मैं अज्ञानी हूँ अति, सुज्ञानी है मूर्ति तेरी,
कौन सम है तेरे, देव सदा रक्षा करो हमारी ।

परमात्मा के विरह में तड़पनेवाले अपने मन को कितने सुन्दर ढंग से आश्वासन देते हैं देखिए——

"अरे मन ! क्यों तड़पते हो ? परमात्मा जरूर तेरी रक्षा करेगा। सव की रक्षा करनेवाला है, श्रीनिवास। पहाड़ में रहनेवाले मयूर को कितने सुन्दर पंख दिये ? प्रवाल (मूँगा) लता को किसने लाल रंग दिया ? मिठ-वोले तोते को किसने हरा रंग दिया ? इन सवकी रक्षा करनेवाला परमात्मा क्या तुम्हारी रक्षा नहीं करेगा ? चिन्ता करने की जरूरत नही।"

जब मन शान्त हो जाता है तव शून्य में परमात्मा के दर्शन करने लगता है। शून्य एवं परमात्मा की स्थिति अनवूझ पहेली है। उसकी दशा विचित्र है। वीज वृक्ष न्याय के समान, कौन आदि और कौन अन्त, इसे पहचान नही सकते। उसका वर्णन कनकदास के शब्दों में सुनिए——

नी मायेयोळगो निन्नोळु मायेयो ।
नी देहदोळगो निन्नोळु देहवो हरिये ॥
क्या तू माया के अंदर है या माया तुझ में ?
क्या तू शरीर के अंदर है या तुझ में शरीर ?
क्या शून्य में मंदिर है या मंदिर में शून्य ?
अथवा शून्य और मंदिर दोनों, नेत्रों में ?
क्या नेत्र बुद्धि में है या बुद्धि में नेत्र ?
अथवा नयन तथा बुद्धि तुझ में, वताओ जरा ।

कनकदास की भक्ति साधना में जाति वाधा उपस्थित नही कर सकती। उनके अनुसार सव जाति के लोग भक्ति के अनुग्रही है—

"चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न क्यों न हो जो हरि को सर्वोत्तम, सर्वेश्वर मानकर, सर्व हरिमयं जगत् मानते हुए, श्री कागिनेले आदि केशव के चरण कमलों का कीर्तन करता है, वहीं कुलवान (उच्चकुलवाला) है।"

साधारण जनता भी कनकदास के भक्ति मार्ग की अनयायी वन सकती है। उनके अनुसार वेदशास्त्र पुराणों की पढ़ने की जरूरत नहीं, स्नान, जप, तप, उपवासादि नियमों के पालन करने की आवश्यकता नहीं, केवल हरि का गुणगान करने से हा मुक्ति प्राप्त कर सकते है—

"न वैराग्य धारण कर यति बनने की जरूरत है, न यह अहंकार मन में धारण करने की, कि मैंने हमेशा व्रत उपावासादि का पालन किया। यह घमंड करने की जरूरत नहीं कि मैंने श्रुति स्मृतियों का अध्ययन किया है। रति पति के पिता श्रीकृष्ण का ध्यान करना ही काफ़ी है। हे मन! पहाड़ के ऊपर नुकीले गरम पत्थर पर बैठ कर तप द्वारा शरीर को दण्ड देने की जरूरत नहीं, अथवा रोज ठण्ढे पानी में डूबकर कांपने की भी जरूरत नहीं। पार्थ सारथी कागिनेले आदि केशव का कीर्तन करके ही सुख प्राप्त कर सकते हो।"

कनकदास के अनुसार यह शरीर नश्वर है, यह संसार माया से आवृत्त है। इससे छटने का एक ही उपाय है, अच्युत का नाम स्मरण।

"पथियाओ मत यह संसार, नश्वर है यह तन
सुख पाओ, अच्युत के नाम स्मरण से।"

कर्म के अनुसार ही सद्गति या दुर्गति मिलती है। अतः कनकदास भक्त को अच्छे कर्मो द्वारा सद्गति प्राप्त करनी चाहिए—

"मुत्यु के बाद कोई हमारे साथ नही आता। हमने जो पुण्य और पाप कर्म द्वारा कमाये है, वे ही थाती बन हमारे साथ जाएँगे।"

कनकदास का कथन है कि हमें कर्म से मुँह मोड़ना नही चाहिए। सब कर्मो को भगवद् अर्पण कर देना चाहिए कनकदास ने वैसे ही करके दिखाया है—

"मन वचन कर्म द्वारा किये गये पाप पुण्यों को उसी समय मैं तुम्हे अर्पण कर देता हूँ।"

कनकदास हमेशा सज्जनों की संगति में रहा करते थे। उनके अनुसार सज्जनों की संगति आध्यात्मिक साधना में सहायक है। उन्होंने कहा है अज्ञानियों के साथ अधिक स्नेह करने से ज्यादा सुखदायक है ज्ञानियों के साथ झगड़ा करना।

कनकदास हरि कीर्तन करते-करते उडुपि गये। उडुपि में कृष्ण मन्दिर है। उन दिनों ब्राह्मणों को छोड़ और किसी को मन्दिर में प्रवेश नहीं मिलता था। निचली जाति के होने से कनकदास को मन्दिर में प्रवेश नही मिला। रात में मन्दिर (का द्वार) बन्द हुआ। कनकदास निराश हो कीर्तन करने लगे मन्दिर के पिछवाड़े बैठकर—

बागिलनु तेरेदु सेवेयनु कोडो हरिये
कूगिदरु ध्वनि केळलिल्लवे नरहरिये॥

"हे नरहरि! मैं कब से आर्त बन पुकार रहा हूँ। क्या तुम्हें मेरी आवाज़ सुनाई नही पड़ती। द्वार खोलकर मुझे सेवा करने का सौभाग्य दो।"

आखिर भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली। मन्दिर का द्वार पश्चिम की ओर था। मूर्ति भी उसी ओर थी। अचानक मन्दिर के पीछे की दीवार टूट पड़ी। भगवान की मूर्ति ने पश्चिम से पूर्व की ओर घूमकर, जहाँ कनकदास थे, वहीं दर्शन दिये। आज भी मूर्ति वैसी की वैसी ही है। भगवान के दर्शन मुख्य द्वार से नहीं "कनक की खिड़की" से करने पड़ते हैं। इस तरह भगवान के दर्शन कर उनका जन्म सफल हुआ। वे स्वयं कहते हैं—

बदुकिदेनु बदुकिदेनु भव एनगेहिंगितु
पदुमनाभन पाददोलुमे एनगायितु॥

मैं आखिर बच गया। भवसागर सूख गया। पद्मनाथ के चरणकमलों की कृपा मुझ पर पड़ी। अर्थात् भगवान के साक्षात्कार से मेरा जन्म सफल हुआ।

इस तरह अपने जीवन को सफल बनाने के बाद उस सफलता की कुंजी को किसान की भाषा में जनसामान्य के लिए कितने सुन्दर ढंग से पेश करते हैं देखिए—

नारायण एम्न नामद बीजवनु नालिगेया।
कूरिगेय माडि बित्तिरय्या॥
हृदय होलवनु माडि तनुव नेगिलु माडि
तन्विरा एम्ब एरडेत्त हूडि।
ज्ञानवेंबो मिगिय कण्णिहग्गव माडि
मनवेंब धरणिय तोडि बित्तिरय्या॥
काम क्रोधगळेंब गिडगळनु तरियिरय्या
मद मत्यरवेंब पोदेय इरियिरय्या।
पंचेंद्रियगळेंब मंचिकेय हाकिरय्या
चंचलवेंब हक्किय ओडिसिरय्या॥
उदयास्तमानवेंब एरडु कोळगव माडि
आयुष्यद राशियनु अळेयिरय्या।
इडु कारण कागिनेलेयादिकेशवन
मुदर्दि नेने नेनेडु सुखियागिरय्या॥

अर्थात् "नारायण नाम रूपी बीज को जीभ रूपी बीज बोने के यंत्र द्वारा बोइए। हृदय को खेत, शरीर को हल श्वास-प्रश्वास को दो बैल तथा ज्ञान को रस्सी बनाकर, मन रूपी भूमि पर खेतीबारी कीजिए। काम क्रोध रूपी पौधों को निराइए तथा मद-मत्सर रूपी झगड़ों को काटकर दूर हटाइए। पंचेंद्रियों का मचान बनाकर, चंचलता रूपी पक्षी को दूर भगाइए। जन्म-मरण रूपी दो कोळग (चार सेरवाला मापने का एक बर्तन) से आयुरूपी ढेर को मापिए। इस तरह साधना करते हुए आदि केशव का स्मरण करने से परमसुख को प्राप्त कर सकते है। अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।"

इस तरह हम देखते हैं कि कनकदास के कीर्तनों में भक्ति का प्रवाह उमड़ रहा है। उन्होंने भक्ति मार्ग से कंटकमय नियमों को दूर हटाकर उसे अपनी साधना पद्धति द्वारा जनसामान्य के लिए भी आसान बनाया। अतः हम कह सकते हैं कि कनकदास अपनी भक्ति-गंगा, वैराग्य यमुना तथा ज्ञानरूपी सरस्वती के संगम में जनता को नहलाकर, मुक्तिमार्ग की ओर ले चले।

एकता के कट्टर समर्थक मरहूम अनवर खाँ साहब 'अनवर'

श्री वाहिद काज़मी

नगर लश्कर केण्टोनमेंट रोड (कम्पू) स्थित एक सुनसान और उजाड़ सा बाग़, पुराना; जैसे अतीत की धुँधली स्मृतियों को याद करने की चेष्टा कर रहा हो। बाग़ में बना एक प्राचीन मक़बरा। कौन कह सकता है कि इस मक़बरे के शुष्क एवं शीतल पत्थरों के नीचे एक ऐसी विभूति की अस्थियाँ दफ़न हैं जिनकी सुरक्षा में एक ऐसा हृदय धड़कता था जिसमें हिन्दी-प्रेम और हिन्दू-मुस्लिम एकता का असीम सागर लहराया करता था। एक ऐसा मुस्लिम सन्त यहाँ शान्त, चिरनिद्रा में निमग्न है जो हिन्दी साहित्य के आंचल को अपनी रचनाओं के पुष्पों से भरकर इन निजाव पाषाणों में सदा-सदा के लिए मौन हो गया है। यह मक़बरा ग्वालियर के एक मुस्लिम सन्त मरहूम अनवर खाँ साहिब 'अनवर' का है और बाग़ भी उन्हींका है। आइये, इन पृष्ठों द्वारा उनसे और उनके हिन्दी-प्रेम से आपको परिचित कराऊं।

मरहूम अनवर खाँ 'अनवर' अपने समय के ग्वालियर के उच्च कोटि के हकीम तथा महाराजा सिंधिया के चिकित्सकों में से एक थे। हिकमत सम्बन्धी अपनी योग्यताओं के आधार पर उन्हें 'अफ़सरुल्-अतव्वा' 'मुख्य चिकित्सा अधिकारी' का पद प्राप्त था। चिकित्सा ही अपका व्यवसाय था। परिवार में आपकी एक पत्नी तथा एक सुपुत्र का होना पाया जाता है। पत्नी बड़ी ही पतिभक्ता तथा पुत्र, जिनका नाम अकबर खाँ था, अपने पिता के पदचिह्नों पर चलनेवाले एक गुणी हकीम थे। 'अनवर' साहब न केवल किसी एक भाषा वरन् उर्दू, हिन्दी, अरबी एवं फ़ारसी चारों भाषाओं पर समान और इतना ऊँचा अधिकार रखते थे कि इन चारों में से किसी भी भाषा में गद्य या पद्य समान रूप से रच सकते थे। उर्दू शाइरी के क्षेत्र में उनका प्रमुख स्थान रहा है। उनके समकालीन उर्दू और फ़ारसी शाइरों में उच्च कोटि के शाइर शाह ग़मगीन हज़रत जी साहब के अतिरिक्त हाफ़िज़ वहीउद्दीन खाँ, स्व० लाला जुगल किशोर, मुन्शी नजर मोहम्मद आदि का नाम उल्लेखनीय है। अनवर खाँ ने सैकड़ों गजलों, नज्मों, क़त्आत के अतिरिक्त लगभग चार सौ रुबाइयाँ भी लिखी हैं। शाइरी के अतिरिक्त उनका मुस्लिम आध्यात्म एवं दर्शन का ज्ञान भी विशाल था। इल्मे तसव्वुफ़ में आपका विशेष आकर्षण था, तथा आपने अन्तिम समय में सांसारिकता त्याग कर सन्तों की श्रेणी में आ गये थे। इन्हीं सब बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व विभिन्न प्रकार के ज्ञान एवं योग्यताओं का एक ऐसा स्रोत था कि जिसकी मधुरता एवं शीतलता से आकर्षित होकर सैकड़ों ही व्यक्ति आपकी शिष्यता में सम्मिलित होने का लोभ संवरण न कर सके, तथा उनके शिष्य होकर अपनी ज्ञानपिपासा की शान्ति एवं सन्तुष्टि करते रहे।

हिन्दी-साहित्य को अनवर साहब की देन, उनके द्वारा रचित वे चार सौ कुण्डलियाँ हैं जो उन्होंने अपने एक प्रिय शिष्य अब्दुल क़ादिर के प्रेमपूर्ण आग्रह एवं उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कही थीं। ये सभी कुण्डलियाँ हिन्दी (भाषा) में रची गई हैं। यद्यपि इनको उर्दू-लिपि में लिपिबद्ध किया गया है, शब्द और भाषा ठेठ हिन्दी ही है। उर्दू-लिपि में लिपिबद्ध करने का कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु इनके प्रकाश में आने के मार्ग में सबसे प्रबल बाधा यही थी। कुण्डलियों को लिपिबद्ध करने का श्रेय इनके सुपुत्र अकबर खाँ को है। यह हस्तलिखित मूल ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर लेखन में अच्छे ढंग से सजिल्द अवस्था में शाह ग़मगीन एकेडमा, ग्वालियर में सुरक्षित है। इस बृहद् ग्रन्थ में उर्दू रुबाइयाँ और हिन्दी की कुण्डलियाँ, दोनों ही, लिपिबद्ध की गयी हैं। इन कुण्डलियों का रचना-काल उन्होंने सं० १९०८ वि० दिया है।

कुण्डलियों की संक्षिप्त विवेचना के लिए इतना कह देना पर्याप्त होगा कि विद्वान् कवि ने बड़े परिश्रम एवं कौशल द्वारा गागर में सागर भरा है, तथा इसमें उसे एक बड़ी सीमा तक सफलता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत ग्रन्थ से अनवर खाँ का न केवल हिन्दी-काव्य-कला में कुशल होने का परिचय मिलता है, वरन् इनकी रचनाओं को पढ़कर स्वीकार करना पड़ता है कवि केवल कवि न होकर आध्यात्म का भी विद्वान् है। किसी-किसी स्थान पर तो कवि ने भारतीय आध्यात्म का कोई ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है कि हैरान रह जाना पड़ता है। जैसे—

सरगुन को छोड़े नहीं, निरगुन को पहचान
जब निरगुन तू जान ले, लगा उसीसे ध्यान।
लगा उसीसे ध्यान, ज्ञान सरगुन की सीढ़ी
विना सहारे चढ़ सकै, इक कदम न कीड़ी।
निरगुन सरगुन एक है, 'अनवर' कहा तू मान
सरगुन को छोड़ि नहीं, निरगुन को पहचान !

हकीम अनवर खाँ भारतीय आध्यात्म के अच्छे ज्ञाता थे, तथा वेद, पुराण आदि का भी आपको ज्ञान था। गीता एवं शास्त्रों आदि का भी उन्होंने अध्ययन किया था। इन तमाम वातों की पुष्टि उनकी कुण्डलियों द्वारा स्वयं ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त वे योग, योगाभ्यास एवं प्राणायाम आदि की क्रियाओं के विषय में भी जानकारी रखते थे, तथा उनके विभिन्न रूपों से भली भाँति परिचित थे। यही कारण है कि उनकी कुण्डलियों में प्राणायाम सम्वन्धी कई विधियों के साथ-साथ 'अनहद' 'त्रिकुटी' एवं 'तुर्य' आदि यौगिक क्रियाओं का उल्लेख भी मिलता है। जड़ एवं चेतन-परिभाषा एवं व्याख्या, इनका पारस्परिक सम्वन्ध, आत्मा व शरीर का पारस्परिक सम्वन्ध, मन एवं शरीर की क्रियाएँ, आत्माकी शुद्धि, आत्मोन्नति, पारलौकिक एवं लौकिक सुखेच्छा, ब्रह्म की परिभाषा, एवं उसकी उपस्थिति का ज्ञान, ईश्वर का अस्तित्व एवं उसकी आवश्यकता, परमेश्वर एवं जगत का पारस्परिक सम्वन्ध, इत्यादि, एक नही सैकड़ों ही विषय इन कुण्डलियों के हैं जो आध्यात्म से गहरा सम्वन्ध रखते है।

आध्यात्म के अतिरिक्त अनवर साहव भारतीय दर्शन से भली भाँति परिचित थे। इसी कारण किसी-किसी स्थान पर दार्शनिकता की स्पष्ट झलक पाई जाती है। साथ ही एक वात जो और हम उनकी वाणा में पाते है वह है समानता की अटूट भावना। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दोनों दलों को समान दृष्टि से देखा है। अनवर साहव की कुण्डलियों से यह वात पूर्णतः उजागर होती है कि वे भारतीय आध्यात्म, एवं हिन्दी-भाषा के साथ-साथ मुस्लिम दर्शन, तसव्वुफ़ एवं उर्दू दोनों में ही अच्छी योग्यता रखते थे। इस आधार पर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके मन में दोनों के प्रति समान स्नेह एवं आदर की भावनाएँ थीं, और न केवल यही, वल्कि इन दोनों सम्प्रदायों में जहाँ भी उन्हे कोई वुराई दृष्टिगोचर हुई उन्होंने उसे मिटाने और दूर करने का भरपूर प्रयत्न किया है। वे सदैव ही इस ओर प्रयत्नशील रहे कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही अपने-अपने धर्म उथा उसमें फैले अन्धविश्वासों, वाह्याडम्वरों, एवं कुप्रथाओं का त्याग कर सत्य और सही पाठ पर अग्रसर हों।

जहाँ उन्होंने मुस्लिमों में फैले धार्मिक अन्धविश्वासों एवं दिखावे को कटु आलोचना का निशाना वनाया, वहाँ हिन्दुओं में फैले वाह्याडम्वरों एवं प्रपंचों पर भी वे व्यंग्य वाण चलाने से न चूके। वे इन दोनों के ही शुभचिन्तक एवं दोनों भाषाओं के सेवक रहे। ऐसी दिव्य विभूतियों के वहुत कम उदाहरण देखने में आ सकेंगे जो इस्लाम और हिन्दू दोनों धर्मो का समान आदर करते रहे हों, तथा उनकी उन्नति में समान रूप से सहायक होकर यथोचित सहयोग देते रहे हों। यही वह कारण था कि जहाँ उनके शिष्यों मे उर्दूभाषी एवं मुस्लिम मतानुयायी थे, वहाँ हिन्दीभाषी एवं हिन्दू धर्मानुयायी भी उनके शिष्यों में सम्मिलित थे।

अनवर सहव की कुण्डलियों की सवसे वड़ी विशेपता यह है कि एक-एक जिस विषय को लेकर रची-कही गई है, वह सूक्षमतर रूप मे होकर भी अपने में पूरी है। उर्दू काव्य में जो स्थान रुवाई का है, हिन्दी-काव्य में वही स्थान इन कुण्डलियों का जानना चाहिए; क्योंकि इनके द्वारा भी लगभग वही रस एवं आनन्दनुभूति होती है जो रुवाई द्वारा सम्भव है। प्रत्येक कथन केवल उपदेशात्मक होकर नहीं रह गया, वरन् ध्यान यह रक्खा गया है कि प्रत्येक कुण्डलिया इतनी सात्विक एवं सरलतम हो कि जिसमें सभ्यता की छाप एवं भावों की गहराई स्पष्ट दिखाई पड़ सके जिसमें वह मन पर अपना यथाशीघ्र प्रभाव कर सके। कुण्डलियों का अध्ययन करते समय उनकी पंक्तियों में सँजोया गया ज्ञान एवं सत्य का कुछ ऐसा प्रभाव होता है कि हमारी चेतन-शक्ति को एक विचित्र निमन्त्रण का आभास होता है। अनायास ही कुछ सोचने, कुछ मनन करने के लिये।

इन कुण्डलियों को सुगमता से समझने के लिये हम उन्हें विषयानुसार अलग-अलग विभाजित कर लेते है। यहाँ कुछ कुण्डलियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है—

वाह्याडम्वर एवं पाखण्ड—इस वर्ग के अन्तर्गत आनेवाली कुण्डलियों का विषय हिन्दू-मुस्लिम दोनों के धार्मिक अंधविश्वास, दिखावटी पूजा-पाठ, रोजा-नमाज,

हज-तीर्थ आदि का वर्णन करते हुए कड़ी आलोचना की गयी है।

जैसे :—गेरू में कपड़े रंगे और जटा बढ़ावे
झोली मारे क.ख में घर घर फिर आवें
घर घर फिर आवें, पेट को राम न जाना
उन मारे से पेट में, नहिं हुआ ठिकाना
'अनवर' ऐसे लोग जहाँ ग्यानी कहलावें
गेरू में कपड़े रंगे और जटा - बढ़ावें

सबका साहब एक है, मजहब हुए हजार
हर मजहब के बीच में, आन पड़ी तकरार
आन पड़ी तकरार, और हो गये सब न्यारे
भटकत भटकत फिर रहे अग्यान के मारे
'अनवर' सबके बीच में एक ही जोत निहार
सबका साहब एक है मजहब हुए हजार

ज्ञान की महिमा—आत्मिक लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का एकमात्र साधन ज्ञान, ज्ञानी कौन, अज्ञानी की दशा, आदि विषयों पर रची कुण्डलियाँ इस वर्ग में आती है—

हैं सिगरे दरयाव भरे काया के अन्दर
बहते हैं भरपूर तुझी में सात समन्दर
सात समन्दर बीच में जब गोता खावे
तब तू मुक्ता ग्यान का लेकर के आवे
बड़े कठिन से आत हैं वह हाथों में 'अनवर'
हैं सिगरे दरियाव मेरे काया के अन्दर।

गुरु की महिमा—बिना योग्य गुरु के सत्य-ज्ञान अप्राप्य, कौन सा मार्ग अनुकरणीय, कौन विधि पालनीय, इन बातों के बताने हेतु गुरु आवश्यक है। सच्चा गुरु कौन, गुरु-सेवा का महत्त्व, आदि जिन कुण्डलियों के विषय हैं वे इस वर्ग की है जैसे—

बिना गुरू कब दूर हों मन के सब खटके
पत्थर को पूजत फिर और सर को पटके
सर को पटके नायके मसजिद के माँहि
और मंदिर के बीच नहिं कब मिल हैं साईं
'अनवर' चारों देस में कितना कोई भटके
बिना गुरू कब दूर हों मन के सब खटके

तत्त्व एवं जीव—जिन कुण्डलियों के मुख्य विषय तत्त्व जीव एवं अजीव आदि विषय है वे इसी वर्ग की हैं। उदाहरणार्थ—

पाँच तत्त्व के अन्दर सुन्दर चिरिया राम बनाई
जी का सोना डाल दिया, प्रेम आग भड़काई
प्रेम आग भड़काई, सुहागा नाम का डाला
स्वाँसों की कर खाल खूब सोने को गाला।
ग्यान कसौटी में कसा फिर कीमत पाई
पाँच तत्त्व के अन्दर सुन्दर चिरिया राम बनाई

सदाचार एवं सद्व्यवहार—परस्पर ऐक्यभाव, सदाचरण एवं सदाचार, सत् संगत, कुसंग का परित्याग, मिष्ठभाषी होना, कुकर्मों एवं कुव्यसनों का बहिष्कार, सात्त्विक गुण एवं वृत्ति, आदि विषयों का उल्लेख जिन कुण्डलियों में किया गया है वे इसी वर्ग की है। जैसे—

कहीं पौन ठण्डी चले, कहीं गरम हो जाये
जैसी संगत वह करे, वैसे ही गुन पाये
वैसे ही गुन पाये, पवन में सब लिपटावें
बदबू और खुशबू दुई उसके हो जावें
'अनवर' वह संगत तुझे तब निरमल दिखलाये
कहीं पवन ठण्डी चले, कहीं गरम हो जाये।

जिसका इस संसार में खोटा हुआ सुभाव
उस खोटे से दूर रह, पास न उसके जाव
पास न उसके जाव, पेट काँटों से भर लो
बोझा लकड़ी काट लाओ, और सर पै धर लो।
'अनवर' जब लग हो सके, उससे करो बचाव
जिसका इस संसार में खोटा हुआ सुभाव।

मन की चंचलता—जिन कुण्डलियों का विषय मन की चंचलता, मन पर नियंत्रण, मानव मन की क्रियाएँ, क्रोध, लोभ, मोह आदि का विवेचन है, उनको इस वर्ग में रखा जा सकता है।

प्रेम आँच भड़काय के मन चंचल को जार
मन पारा दुई एक हैं इन दोनों को मार
इन दोनों को मार, गुरु जन जुगत चलावे
मन पारा मर जाय, तभी अक्सीर कहावे
तब 'अनवर' राजा बने परजा है संसार
प्रेम आँच भड़काय के मन चंचल को जार।

काम क्रोध और लोभ ने मन को लिया पछाड़
मोह मुहब्बत जान लो इनका हुआ—पहाड़
इनका हुआ पहाड़, गिरा दह मन में भाई
इन चारों से जन बचे, तब दे दिखलाई
'अनवर' मन से दूर कर सब खोटों की आड़
काम क्रोध और लोभ ने मन को लिया पछाड़।

राम नाम की महिमा—भगवन्नाम का स्मरण, प्रभु की याद, राम नाम जपना, ईश्वर महिमा गान, आदि विषय जिन कुण्डलियों के विषय है वे इस वर्ग मे सम्मिलित की जा सकेंगी—

बिना प्रेम भगवान के मानुस बैल समान
खावे पीवे और जिये और रखे है जान।
और रखे है जान, ग्यान कब बैल को आवे
लाखों पोथी ग्यान की जो उसे सुनावे
'अनवर' बिन कुछ प्रेम के नहीं मिले भगवान
बिना प्रेम भगवान के मानुस बैल समान।

ब्रह्मज्ञान—ब्रह्मज्ञान, ब्रह्म तक पहुँचने के उपाय, ब्रह्म की परिभाषा, कार्य-कारण, आत्मा-परमात्मा का पारस्परिक सम्बन्ध, आदि पर जो कुण्डलियाँ कही गयी हे वे इस वर्ग मे सम्मिलित की जायगी—

काया तो इक सीप है, मन को मोती जान
मोती की जो झलक है, उसे ब्रह्म पहिचान
उसे ब्रह्म पहिचान, झलक मोती से आई
मोती - झलक के बीच कब होय जुदाई
मोती की जो आब है, 'अनवर' उसी को मान,
काया तो इक सीप है मन को मोती जान।

जड़ एवं चेतन—जिन कुण्डलियो का विषय जड़ एव चेतन, इनमे अन्तर, उनकी परिभाषा, उनका पारस्परिक सम्बन्ध, जीव की व्याख्या आदि है उन्हे इस वर्ग मे सम्मिलित किया गया है—

ख़ाक पवन के बीच में गिरह पड़ी है आन
नाम बगूला हो गया चला तरफ़ आसमान।
चला तरफ आसमान, गिरह जबही खुल जावे,
मिट्टी में मिट्टी मिले कब पवन - दिखावे?
जड़ चेतन को इस तरह 'अनवर' तू पहिचान
ख़ाक पवन के बीच में गिरह पड़ी है आन।

सांसारिकता—ससार का मोह, जग-माया, इसका मोह व्यर्थ हे। ससार का जीवन कर्म-प्रधान जीवन है। पारलौकिक सुखो की अपेक्षा लौकिक सुख साधनों की कामना करना मूर्खता है। इन विषयों पर रची कुण्डलियाँ जैसे :—

इस झूठे संसार ने बहुत दिखावे छल
इसमें सब रोते रहे, गये हाथ को मल
गये हाथ को मल, रही सब मन की मन में,
काल से बस्ती में बचे और बचे न वन में।
पेड़ से इस संसार के खाये न 'अनवर' फल
इस झूठे संसार ने, बहुत दिखाये छल।

आध्यात्म सम्बन्धी अन्य—इन विषयों के अतिरिक्त अन्य विविध आध्यात्म विषयों सम्बन्धी कुण्डलियाँ इस वर्ग मे आती हे :—

आपी आप[1] बनायकर काया का दह कोट
नैनन से झाँकत रहे, पलको की कर ओट।
पलकों की कर ओट, रहे नयनों के अन्दर,
मन से अपने जान ले उसको तू 'अनवर'
भीतर आपी बैठकर बाहिर मारे - चोट
आपी आप बनायकर काया का यह कोट।

राम राम सब में रमा, राम करे सब काम
अपने को हर दम जपे, मोहि दिया बिसराम
मोहि दिया बिसराम, राम हर घट पे छाया
वही राम हर दूर तुझे सब ठौर दिखाया।
रोम रोम में रम रहा, 'अनवर' तेरे राम,
राम राम सब में रमा, राम करे सब काम।

यह था मरहूम अनवर साहब की हिन्दी काव्य कला के प्रेम मे सराबोर वाणी का नमूना। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अनवर साहब का यह हिन्दी-प्रेम केवल उनके द्वारा रची गई कुण्डलियों तक ही सीमित नही। उन्होने अन्य रचनाएँ भी की है। वे सगीत से भी रुचि रखते थे तथा स्वर सगीत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होने शास्त्रीय स्वर सगीत पर आधारित कई राग रागनियो जैसे ठुमरी, दादरा, राग कल्याण आदि तथा भजन, होली, सावन, आदि भी लिखे हे। सगीत सम्बन्धी रचनाओ का उनका मूल ग्रन्थ तो अभी खोजा नही जा सका, किन्तु प्रस्तुत

[1] आपी आप = आपही आप।

ग्रन्थ में भी उनकी कुछ इस प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। स्थानाभाव के कारण उन्हें उद्धृत नहीं किया जा सका।

मरहूम अनवर खाँ साहब के समाधिस्थल (मक़बरे) के विषय में पाठक यह पढ़कर कदाचित् आश्चर्य करेंगे कि उन्होंने यह मक़बरा अपनी मृत्यु से लगभग बीस वर्ष पूर्व ही निर्मित करा लिया था। मक़बरे के निर्माण से सम्बद्ध उनके समकालीन उर्दू शाइरों ने जो ऐतिहासिक क़तए कहे हैं उनके द्वारा इसके निर्माण के तीन सन् प्राप्त होते है। हिजरी सन् तीन संख्यायों में ज्ञात होता है। स्वयं अनवर साहब ने इस विषय में जो अशआर या कतए कहे है उनसे ठीक-ठीक सन् १२७६ हि० सन् १२७७ हि० एवं सन् १२७८ हि० निकलते है। इसका तात्पर्य यह है कि इस मक़बरे का निर्माण कार्य दो वर्ष तक चलता रहा है, अर्थात् कुछ शेर आधार-शिला रखे जाने पर, तथा कुछ निर्माण कार्य समाप्त हो जाने पर कहे गये है। इसी कारण इनमें में दो वर्ष का समय है। अधिकांश शाइरो ने फ़ारसी में ऐतिहासिक क़तए कहे है। केवल स्वय अनवर साहब के शेर उर्दू में मिलते हैं। अनवर साहब का देहावसान सन् १२९५ हि० (तदनुसार सन् १८७६ ई० में) हुआ। मरणोपरान्त उनकी इच्छानुसार उन्हें उनके उसी बाग में बने इस मक़बरे में दफ़ना दिया गया। उनकी मृत्यु के ठीक एक वर्ष और चौदह दिन पश्चात् उनकी जीवन रागिनी भी इस लोक से विदा हो गई।

आज भी हकीम अनवर खाँ साहब का यह बाग़ और बाग के मध्य में बना यह मकबरा कम्पू (लश्कर या ग्वालियर) मे मौजूद है, किन्तु दुर्भाग्य है कि ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तित्व को एक साहित्यसेवी, विज्ञान एवं एकता के कट्टर समर्थक के रूप में आज कोई जानता तक नही है। लिहाजा उनके मजार की ओर न शासन का ध्यान जा सका है, न जन साधारण का। मेरे विचार से यही कम नहीं कि उनकी स्मृति की निशानियाँ यह दोनों अब तक विद्यमान है, और सही सलामत-भी है—कदाचित् इस प्रतीक्षा में कि कभी कोई पथिक उधर गुजरता हुआ वहाँ क्षण भर के लिए रुक सके और उनका वह असीम मौन संदेश सुने और समझे।

काग उचर, नित बोली

डा० कमलाकान्त हीरक

आज हँसे हँसे
आंगन में
बिरवा का पात पात
बगिया में मुसकाती
बेला गुलाब की कली।

उतर रही
अम्बर से
ताल-पोखर के जल में
चाँदनी दूध-सी धुली।

अगरु-धूप
औ चंदन
की भीगी गंध
बंद पलकों में लाख लाख
सुधियों की वर्त्तिका जली।

काग उचर
नित बोले
सांझ-भोर घर आंगन
लौट रहे घर अपने
अब तो वे रूप के छली।

—
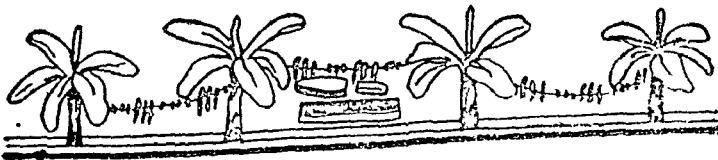
लतीफे मुल्ला नासरुद्दीन के

श्री रसिक बिहारी

(परिचय—मुल्ला नासरुद्दीन मध्ययुगीय लोककथाओं के एक विख्यात नायक हैं। शताब्दियों से उनकी कथाओं ने मध्य एशिया और तुर्की, ग्रीस, सिसिली, रूस, स्पेन, फ्रांस आदि योरोपीय देशों के लोगों का हमारे देश के बीरबल की तरह, मनोरंजन के साथ ही साथ ज्ञानवर्द्धन भी किया है।

प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि मुल्ला एक अत्यन्त सरल, किन्तु ज्ञानी, विनोदी तथा अलौकिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति थे। उनकी सरलता से कभी-कभी मूर्खता की गंध आने लगती थी। इस बहुमुखी प्रतिभा के अधिकारी पुरुष का जन्म कब हुआ था, कोई नहीं जानता। उनकी जन्मभूमि के विषय में भी बहुत मतभेद है। बहुत से देश मुल्ला नासरुद्दीन की जन्मभूमि अपने यहाँ मानते हैं। यहां तक कि तुर्की में लोगों ने उनकी एक कब्र भी ढूँढ़ निकाली है जहाँ हर साल उर्स मनाया जाता है। सूफी मतावलम्बी उन्हें अपना एक सिद्ध पुरुष मानते हैं। विद्वानों ने नासरुद्दीन के विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे है। पर इस दानिशमंद मुल्ला ने खुद अपने बारे में एक अटपटी सी बात कह कर ही आत्म-परिचय की रस्म अदा की है: उलटा आदमी हूँ मैं एक —मेरा सिर नीचे है और पैर ऊपर।")

सत्य का स्वरूप

शाहनशाह-ए-तुर्की राजाज्ञा द्वारा अपनी प्रजा मे सत्य का प्रचार करके उनके चरित्र को उन्नत बनाना चाहते थे। इस पर नासरुद्दीन ने शाहनशाह को समझाया, 'मेरा सत्य और तुम्हारा सत्य अलग चीजें है। केवल कानून से मनुष्य को सत्यवादी और चरित्रवान नही बनाया जा सकता। सत्य की उपलब्धि आसान बात नहीं। इसके लिये बहुत कुछ करना पड़ेगा। साधारणतया हम जिसे सत्य कहते है वह सत्य का वाह्य स्वरूप मात्र है। अतः आंशिक सत्य है।'

पर शाहनशाह अड़े रहे अपने निश्चय पर। उन्होंने स्थिर किया कि वे प्रजा को सत्य भाषण और आचरण में पटु बना कर ही रहेंगे।

शाहनशाह के राज्य में प्रवेश करने के लिये एक पुल पार करना पड़ता था। पुल के मुहाने पर एक फाँसी की टिक्ठी लगायी गयी। एक फौजी अफसर कुछ सिपाहियों के साथ वहाँ तैनात हुआ आने वालों की जाँच के लिये।

घोषणा की गयी कि हर एक से कुछ सवाल पूछे जायेंगे, जो सच बोलेगा उसे अन्दर आने दिया जायगा, जो झूठ बोलेगा उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा।

नासरुद्दीन आगे आये सबसे पहले।

सवाल हुआ, 'कहाँ जा रहे हो?'

शान्त भाव से नासरुद्दीन ने कहा, 'फाँसी पर लटकने।'

'हमें तुम्हारी बात पर यकीन नही।'

'ठीक है, अगर मैंने झूठ कहा है तो मुझे फांसी पर लटका दो।'

'वाह, हम अगर तुम्हें इस तरह झूठ बोलने के लिये फाँसी पर लटका दें तो तुम्हारी कही बात ही सच हो जायेगी।'

'यह तो होगी। अब देख लिया न सत्य के स्वरूप को, सत्य के दो रूप हें: मेरा सत्य और तुम्हारा सत्य।'

अचकन

एक दिन नासरुद्दीन के पुराने मित्र जलाल आये उनके यहां। मुल्ला उन्हें देखर खुशी से बोल उठे, 'अरे आओ, आओ। बहुत दिन बाद आये। मैं बाहर निकल रहा था। कई जगह जाना है। चलो न तुम भी मेरे साथ। चलते-चलते बातें होंगी।'

जलाल ने कहा, 'तब भाई, मुझे कोई अच्छा कपड़ा दो पहनने को। क्योंकि मेरे ये कपड़े किसी भले आदमी के यहाँ जाने लायक नहीं है।'

नासरुद्दीन ने दोस्त को पहनने के लिये एक बढ़िया सी अचकन दी।

पहले जिस मकान में नासरुद्दीन गये वहाँ मित्र का

परिचय कराते हुए बोले, 'ये मेरे बचपन के मित्र जलाल हैं। पर जो अचकन ये पहने हुए हैं वह मेरी है।'

वहां से निकलने पर रास्ते में जलाल ने कहा, 'बड़े नासमझ हो दोस्त, तुम।' जो अचकन ये पहने हुए हैं वह मेरी है, 'ऐसा कहीं कहा जाता है। अब ऐसी बात फिर मत कहना।'

मित्र की बात मान ली नासरुद्दीन ने।

नासरुद्दीन दूसरी जगह पहुँचे। वहाँ इतमीनान से बैठकर बोले, 'ये हैं जलाल, मेरे बचपन के दोस्त। मेरे यहाँ आये थे, मैं पकड़ लाया अपने साथ। लेकिन वह अचकन—वह उन्हीं की है।

वहाँ से निकलकर जलाल ने बिगड़ कर कहा, 'यह सब क्या कहा तुमने? दिमाग खराब हो गया है क्या तुम्हारा? ऐसी बेतुकी बातें नही कहनी चाहिये।'

नासरुद्दीन ने कहा, 'मैंने तो सिर्फ अपनी गलती को सुधारा था अच्छा ठीक है, अब ऐसा नहीं होगा।'

जलाल ने कहा, 'भाई बुरा न मानना। तुम्हें अचकन के बारे में कोई भी बात नहीं कहनी चाहिये।'

नासरुद्दीन ने मित्र की सलाह मान ली।

तीसरी जगह पहुँचकर नासरुद्दीन बोले, 'ये है मेरे प्यारे दोस्त जलाल। और वह अचकन जिसे वे पहने हुए है—जाने दो उसके बारे में यानी अचकन के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। क्यों भाई जलाल क्या ख्याल है तुम्हारा?'

मछली ने मुल्ला के प्राण बचाये

नासरुद्दीन भारत में आये भ्रमण के लिये। एक कुटिया के सामने से गुजरते हुए उन्होंने देखा कि उसमें एक साधु शान्त समाहित मुद्रा में बैठे है। नासरुद्दीन को उनसे परिचय प्राप्त करने की इच्छा हुई।

नासरुद्दीन साधु के पास जाकर बोले, 'आप जैसे सन्त से अनेक ऐसे विषयों पर विचार-विनिमय हो सकता है जो हम दोनों के लिये समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगा।'

साधु ने कहा, 'मैं एक योगी हूँ। मछली, पक्षी आदि प्राणियों की सेवा में अपने को समर्पित कर दिया है मैंने।'

मुल्ला ने कहा, 'तब तो मेरे और आपके विचारों में बहुत समानता है। इसका अन्दाज मुझे पहले से ही था। मछली ने तो एक बार मेरे प्राण बचाये थे।'

योगी ने कहा, 'बड़े आश्चर्य की बात है। आप जैसा महान् पुरुष तो मैंने अपने जीवन मे कभी नहीं देखा। इतने दिन से प्राणियों की सेवा में लगा हूँ। पर मछली ने किसी के प्राण बचाये हों, ऐसी बात कभी नही सुनी। ऐसी घटना घटते भी नहीं देखा। तब मेरा मत ठीक मालूम पड़ता है, सब प्राणियों में एक पारस्परिक संयोग है।'

कई हफ्ते साथ-साथ काटे दोनों ने। एक दिन योगी ने कहा, 'अब तो हम एक दूसरे से काफी परिचित हो चुके है। आपकी भी यात्रा की थकावट दूर हो गयी है। यदि आपको आपत्ति न हो तो अपने अनुभव से मुझे भी अवगत कराने का अनुग्रह करें।'

मुल्ला ने कहा, 'हाँ, अब मैं आपके क्रियाकलाप से परिचित हो चुका हूँ। लेकिन पता नहीं, आपको मेरे अनुभव की बात कैसी लगेगी? ऐसी दशा मे क्या उसे बताना उचित होगा?'

'प्रभु, आप मुझसे छल न कीजिये, यह कहकर योगी उनके पैरों पर गिर कर रोने लगे।

तब नासरुद्दीन ने कहा, सुनना ही जब चाहते हैं तो सुनिये। मेरी उपलब्धि से कहाँ तक आप सहमत होंगे, मैं नहीं जानता। मछली ने मेरे प्राण बचाये थे। मैं भूखा मर रहा था। कई दिन के फाके के बाद मैंने एक मछली पकड़ी, जो इतनी बड़ी थी कि मुझे तीन दिन तक भोजन की फिक्र नहीं करनी पड़ी। कहिये मछली ने प्राण बचाये कि नहीं।'

ब्रजभाषा के अज्ञात समर्थ कवि अयोध्याप्रसाद मिश्र

श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी

रीतिकाल की समाप्ति के बाद भी लक्षरग-ग्रन्थों की परम्परा चलती रही। रीतिकाल में लक्षरग-ग्रन्थों की बाढ़ सी आ गयी थी पर शुक्लजी के मतानुसार कोई आचार्य नही हुआ। शताधिक कवियों ने लक्षरग-ग्रन्थ लिखे पर प्रामारिगक विवेचन किसीका न बन पाया। संस्कृत के कुवलयानन्द या चन्द्रालोक के अनुकरण पर अनेक कवियों ने लक्षरग-ग्रन्थ लिखे पर प्रामारिगक ग्रन्थ नही बन पाया। लक्षरगों में परस्पर मतभेद पाया जाता है। उस युग मे महाराज जसवन्तसिंह ने 'भाषा भूषरग', दासजी ने 'काव्य-निर्णय' या श्रीपति का 'काव्य-सरोज' महत्त्वपूर्ण लक्षरग-ग्रन्थ रचे पर आचार्यत्व के योग्य कोई ग्रन्थ न बन सका। ये सारे लक्षरग-ग्रन्थकार कवि पहले थे लक्षरग-ग्रन्थकार बाद को। बिहारी जो कवि ही थे उन पर भी लाक्षरिगकता का आरोप शुक्लजी ने लगाया—"दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षरगो पर अवश्य था।" इससे यही निश्चित होता है कि केवल कवि भी उस युग में लक्षरग-मनन से अलग नही था। यह परम्परा आगे भी चलती रही। अयोध्याप्रसाद मिश्र ऐसे ही कवि थे। इन्होंने लक्षरग-ग्रन्थ लिखे पर ये बिहारी की ही भाँति आचार्य बाद में, कवि प्रथम थे।

बिहारी के भान्जे 'रसरहस्य' के प्रणेता कुलपति मिश्र के ये वंशज थे। अयोध्याप्रसाद का जन्म संवत् १९१० वि० अर्थात् सन् १८५३ ई० मे हुआ। आपके पिता का नाम श्री रामगोविन्दजी था जैसा कि उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

तहाँ स्रोश्रवस मिश्र है माथुर कुलपति वंश।
तनय रामगोविन्द कर जिनकी जगत प्रसंस॥

अयोध्याप्रसादजी कविता में अपना नाम अवधिप्रसाद लिखते थे। इनके कृतित्व मे भूषरग भवन, नायिका-भेद, बिहारी सतसई की टीका, शिव ताण्डव स्तोत्र का अनुवाद, गगालहरी का अनुवाद, अष्टपदी आदि कृतियों के अतिरिक्त अनेक चित्रकाव्य भी है जैसे, चमराकार बंध, कपाट बंध, अग्निकुंड बंध, कदलीवृक्षकार चित्र, कमठाकार चित्र आदि।

अयोध्याप्रसादजी अज्ञात कवि है। इनके दो ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ हमने देखी है—भूषरग भवन, तथा नायिका भेद, और कुछ चित्रकाव्य भी देखने का अवसर मिला है। भूषरग-भवन लक्षरग-ग्रन्थ है जिसमे सोलह सौ त्रेपन (१६५३) दोहे है और दूसरा ग्रंथ नायिका-भेद पर है जिसमें कवित्त, सवैये, दोहे सभी कुछ है। जैसे बिहारी दोहा लिखने में सफल रहे, उसी प्रकार इन्हे भी दोहों मे काफी सफलता मिली है। 'भूषरग भवन' के दोहे बिहारी के दोहों की याद दिला देते है। कुछ दोहे तो सूक्तियों जैसे है। इनके 'नायिका-भेद' ग्रंथ में कवित्त, सवैयों का प्रयोग किया गया है। रीतिकाल मे दानशीलता और सूमता पर अनेक कवियों ने लिखा है। अयोध्याप्रसादजी ने भी एक चुटकी ली है। सूम के धन को सती नारी के समान बताया है—

छिपी रहति निज सदन में, परसि न पावत कोय।
सुन्दर संपति सूम की, सती नारि सी होय॥

भारतीय संस्कृति में अङ्गों के 'फड़कने से शकुन और अपशकुन का ज्ञान होता है। नारी की बाँह फरकना या उरोजों का उमगना शकुन समझा जाता है। कौवे का बोलना भी शकुन समझा जाता है और नायिका अपने प्रेमी के आगमन का अवसर मानती है—

वर वर बोलत काग वर, फर फर फरकत बाँह।
तर तर तरकत कंचुकी, अब घर ऐहैं नाह॥

नायिका की नकारात्मक स्वीकारोक्ति का कवि ने वर्णन किया है जो बिहारी की याद दिलाता है। एक ही दोहे में अनेक स्थितियों का वर्णन करना यह बिहारी की भाँति इनकी भी विशेषता है। ऐसे अनेक दोहे है जो बिहारी की ही भाँति लगते है—

आँखिन जोरि मरोरि भ्रुव, तोरि अंग अरसाय।
हाँ करि ना करि हेरि हँसि साँकरि रही लगाय॥

इसी प्रकार का एक दोहा और प्रस्तुत है। नायिका की प्रकट-अप्रकट कई स्थितियों का वर्णन है—

भौं मटकावति, मुख नटति, जोरति दृग जगुहाति।
पकरत कर नहिं नहिं करत, आगे सरकत आति॥

अनुप्रास अलङ्कार का भी इन्होंने खूब प्रयोग किया है। रूपवती नायिका की कसौटी वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। कमल जैसे नयन, तोते जैसी नाक, कोयल जैसे वचन, कनक-कलस जैसे उरोज, केहरी जैसी कमर और कुएँ जैसी गहरी नाभि को सुन्दरता की कसौटी बताया है—

कमल करि कोकिल कनक कलस केहरी कूप।
नयन नासिका वचन कुच कमरि नाभि तिय रूप॥

कवित्त और सवैये जितनी सफलता से रीतिकाल मे लिखे गये बाद में प्रायः नहीं। शृंगार, वीर और करुण रस का कवित्त और सवैयों में सफलता से प्रयोग हुआ। अयोध्याप्रसादजी ने भी कवित्त-सवैया सफलतापूर्वक लिखे। नायिका के सौन्दर्य का इस कवित्त में कैसा वर्णन किया है—

उज्ज्वल सुवासन में अतर सुगन्ध उठे,
केसरि सौं अङ्ग राजै आंखिन में कजरा।
मन्द मुसक्यावै महा मीठी तान गावै, बीन-
सुन्दर बजावै सप्त-तालन के मजरा।
अवधिप्रसाद राखै आनन प्रसन्न सदा,
नाजुक वदन निरखत जात कजरा।
मालती की माल उर केस गुथे कुंदकली,
गोरे-गोरे हाथनु गुलाब मुल गजरा।

एक कवित्त यहाँ और प्रस्तुत करते हैं। फूलों से नायिका सजी हुई है। उसने पुष्प शृंगार कैसे किया है या कहिये कवि नायिका को पुष्पों से सजा किस प्रकार देखना चाहता है, फूलों के ऐसे शृङ्गार का वर्णन नन्ददास ने भी किया है पर इनका अपनी जगह है—

फूलन की बेनी बार-बार गुथे फूलन सों,
फूलन को शीशफूल ताकी छवि आला है।
फूलन के कर्णफूल झुनका सुफूलन के,
फूलन की बारी बीच फूलन को बाला है।
अवधिप्रसाद नासिका में लोंग फूलन की,
× × × ×
फूल दुकूल सजे फूलि-फूलि झोंका लेति,
फूल के हिंडोरा चढ़ी फूल ही सी बाला है।

रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भी राधा-कृष्ण का चिन्तन किया है और उनकी सौन्दर्यमय मूर्ति का चित्र अपने ढङ्ग से आँका है—

सोहति राधे फाग में मनमोहन के सङ्ग।
सुरँग-सुरँग है चूनरी गोरे-गोरे अङ्ग॥

अवधिप्रसाद के विचार प्रगतिशील भी थे। राजा और रङ्क दोनों ही को वे समानता की दृष्टि से देखते थे। प्रकृति की दृष्टि में वे राजा और प्रजा दोनों को समान ही मानते थे—

भूपति हूँ के भवन में भरत चाँदनी चन्द।
चांडलहु के सदन में करत परत नहिं मन्द॥

कहते है इनके पूर्वज कुलपति मिश्र को मिर्जा राजा जयसिंह आगरा से जयपुर ले गये थे और १२ गाँव की जागीर बसुआ गोविन्दपुर में दी थी। बिहारी कुलपति जी के कारण ही जयपुर गये। इन १२ गाँवों में से शेष २ गाँव ही अयोध्याप्रसाद को मिले। ये तीन भाई थे—एक हकीम, एक पहलवान, और एक थे स्वयं कवि। इनका निधन ५९ वर्ष की आयु में संवत् १९६९ वि० अर्थात् सन् १९१२ ई० मे हुआ। यह अज्ञात कवि रीतिकाल के बाद के समर्थ कवि हैं जिनसे साहित्य जगत् अपरिचित है।
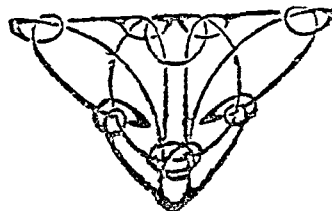
'सिंह-द्वार का कवि-प्रेत' (२)

श्री कुबेरनाथ राय

यूरोप में क्लासिकल साहित्य का अर्थ है ग्रीक और लैटिन साहित्य और इसमे लैटिन साहित्य की नाक, लैटिन काव्य का स्वर्णचञ्चु राजपक्षी मैं हूँ। मै ही अम्बर से अमृत-कुम्भ छीन कर लाया था। पाताललोक से स्वर्णपत्रों की शाखा मै उखाड़ लाया था और लैटिनम के हाथों (स्वर्ग और पाताल का प्रवेशपत्र) अपने महाकाव्य के रूप मे मैने थमा दिया। इसी प्रवेशपत्र को लेकर दान्ते नरक, वैतरणी और स्वर्ग तक घूम आया। परन्तु क्लासिकल साहित्य का स्वर्णचञ्चु राजपक्षी होते हुए भी मेरे साहित्य का स्वभाव रूमानी है—मेरी शैली मे सर्वत्र रोमाण्टिकता का आग्रह है। मेरा प्रथम काव्य-सग्रह 'वनानी' या 'आरण्यकी' अर्थात् व्यूकोलिक्स' (या 'इकलोग्स') है जो गोप-काव्य है। गोप-किशोरो के और गोपियों के सरल प्रेमगीत और प्राकृतिक सौन्दर्य की श्री सुषमा, यही इसका विषय है। मेरा प्रेमोन्माद में उन्मत्त गोपकिशोर 'प्यार' से ही प्रेम कर बैठा और अन्त में पाया कि प्यार वनफूल सा या फूटती पत्ती के टूसे सा नही, कठोर शिला-खण्ड सा है। मैने इस गोप-काव्य मे थियोक्रिटस की परम्परा का अनुगमन किया हे। दरअसल मैं इतालवी वाणी में वही करना चाहता था जो थियोक्रिटस सिसली की ग्रीक वाणी में करता है। परन्तु मैने ग्रीक पद्धति की नकल नहीं की है बल्कि ग्रीक पद्धति का लातीनीकरण किया है, अतः मेरी रचना सर्वथा स्वतंत्र रचना हो गयी है। बीच-बीच में स्थानीयता का रंग और गाढ करने के लिए तत्कालीन राजनीति (उदाहरण के लिए प्रथम गीत को ही लें) और आगस्टस का उल्लेख करता गया हूँ। इससे रागात्मक प्रभाव की अन्विति में कुछ बाधा जरूर पड़ी है। पर ग्रीक काव्य की 'पैस्टोरल' कविता-पद्धति के भीतर इतालवी का स्थानीय रंग इससे और चटक हो उठता है तथा इतालवी (इटली) का चेहरा-मोहरा नाक-नक्शा और साफ-साफ उभर आता है। मेरे काव्य का उद्देश्य ही है ससार की साम्राज्ञी इतालवी का चेहरा प्रस्तुत करना—कोमल नारी मुखमण्डल पर प्रशस्त ललाट, तेज दीप्त सिह-नयन जिन्हे देखकर लगे कि एक क्षण सौन्दर्य की वर्षा हो रही है तो दूसरे ही क्षण प्रखर भर्य की। इसीसे मेरे इन वनानी-गीतों के गोप-काव्य में स्थानीयता का सदर्भ निस्संकोच डाला गया हे। प्रथम तथा नौवें गीत में समसामयिक जीवन पर एक दृष्टिपात प्रस्तुत है। परन्तु द्वितीय, तृतीय, पचम और अष्टम गीतों मे शुद्ध प्रणय-कथा है जो परम्परागत रस की परिपाटी का पालन करती है। यद्यपि यत्र-तत्र सामयिक सन्दर्भो के भी सकेत है। चतुर्थ और षष्ठ गीत तो समूचा ही सामयिक परिवेश में है और मूलतः आश्रयदाता गण की कीर्ति का गान है। परन्तु चौथे मे ही वह प्रसिद्ध पक्ति आ गयी है जिसमे भविष्य मे "एक महाप्रतापी देव शिशु" के जन्म लेने की घोषणा है, जो सबका त्राणकर्त्ता और नियति-नियामक होगा। ईसाई लेखको ने इसे "ईसा मसीह" (जेसस) के आगमन की पूर्व सूचना मानकर ग्रहण किया है और मुझे इसी संदर्भ के कारण ऋषि दृष्टि सम्पन्न (पैगम्बरी) कवि माना है। १० वी गीत फिर एक प्रणय कथा है—एक पुरानी ग्रीक मिथक के समानान्तर गालस और लिकोरिस की प्रणय कथा। पर ग्रीक शैली में यह वस्तु तटस्थ वस्तुनिष्ठ तथा यथार्थ शैली में अभिव्यक्त हुई जब कि मैंने रूमानी भाव विस्तार, तरलता और रोमाण्टिक कल्पना-बिम्बों से समृद्ध करके रखा है। यह भावभूमि का सर्वथा नया विस्तार है, नये आयामों का अन्वेषण है।

मेरा दूसरा काव्य ग्रन्थ है 'ग्राम जीवन' यानी 'ज्याजिक्स'—यों इसका शाब्दिक अर्थ होगा 'भूमि-कर्षण'। परन्तु विषय सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन को स्पर्श करता है केवल जुताई से ही नही। इसके चार भाग है: (१) भूमि-कर्षण और मौसम तथा नक्षत्र, (२) वृक्ष और लताएँ (जैतून और अंगूर विशेष रूप मे), (३) पशु-पालन, (४) मधुमक्षिका और मधु-संचयन। इसी के अन्तिम भाग समुद्र के जीवों, हरितवर्णी आँखोंवाले जलचरों का वर्णन है। पर मैं तो धरती का कवि हूँ—मेरा विषय तो इतालवी की धरती ही है, समुद्र का कवि तो होमर है। यूरोप के क्लासिकल साहित्य के अन्दर समुद्र का कवि होमर है, धरती का मैं वर्जिल स्वयं और आकाश का कवि है दान्ते—हम तीनो मिलकर यूरोपीय साहित्य के क्लासिकल विश्व की रचना

करते हैं। मेरे आश्रयदाता सामन्तों की राय थी कि मैं सम्राट् आगस्टस के 'महान् रोम' के स्वप्न को साहित्यिक बल प्रदान करूँ। फलतः महान् रोम के मिथक की रचना में मैंने अपने हृदय और बुद्धि के दीपकों को साथ-साथ जलाया और कर्म एवं श्रम के महाकाव्य की रचना की। लोगों ने इस रचना को 'श्रम का महाकाव्य' कहा भी है। सीधी-सादी रोजमर्रा की बाज़ारू गद्यगन्धी बातें भी मेरी काव्य-शैली के पावक में पड़ कर स्वर्ण-मुद्राओं जैसी दमक उठी हैं, उनका चेहरा कुछ और हो गया है। 'ज्यार्जिक्स' के प्रारम्भ में ही मैंने विषय-वस्तु का संकेत कर दिया है: 'किसके कारण फसलों के मुखमण्डल पर हँसी का उल्लास आता है ? किन नक्षत्रों की छाया में मिट्टी की अच्छी जुताई होती है ? कब कोमल अंगूर की लता और मजबूत जैतून के प्रणय का वांछामय काल आता है ? पशुओं के वंश-विस्तार की क्या विधि है ? मिताचारी मधुमक्षिका के पालन में कौन-से अनुभव मूल्यवान् है—आज मेरा कवि इन्हीं का गान प्रस्तुत करेगा।" वास्तव में श्रम का महत्त्व, रोम की महानता का स्वप्न, इतालवी की शोभा का त्रिभुवन-व्यापी केशपाश जिसमें सृष्टि के सर्वोच्च संस्कार-पुष्प और मणियाँ बनाकर गूँथे गये; प्रकृति, खेत-मैदान-चरागाह, हल-धर और गोप, गरम रोटी और अंगूर, प्रकृति की सन्तानों का सरल निर्मल चित्त तथा नगर-सभ्यता का क्रूर कूट विदग्ध मन—ये सभी तसवीरें मौके-बेमौके इस काव्य में उतर आयी हैं। परन्तु कवि दृष्टि अधिकतर ग्रामश्री, कार्य, श्रम तथा मौसम की ओर ही उन्मुख रही है। संक्षेप में यह काव्य ग्रामीण जीवन का, घरेलू जीवन का 'ऋतु-संहार' है। होमर के बाद ग्रीक साहित्य दूसरा श्रेष्ठ वीर-गाथा कवि 'हेसिअद' एक ऐसी ही रचना कर गया था। इसके बाद मैंने उसी आदर्श पर, पर नयी रूमानी पद्धति में, परिश्रम के इस महाकाव्य की, दैनिक जीवन के इस ऋतु-संहार की रचना की है। मेरे बाद और किसी ने शायद ऐसा नहीं किया है। इधर सोवियत देश में कोयला-पानी फैक्टरी और कारखानों पर काव्य लिखा गया है। पर वह काव्य नहीं—वह गद्य से भी बदतर है। सोवियत कवि मेरे 'ज्यार्जिक्स' को देखें तो पता चले कि किस तरह घरेलू और नीरस विषय भी काव्यमय बनाये जा सकते हैं—वैसे ही जैसे फूलों के तोरण में यदि हम फलों के गुच्छे सजा दें—अंगूर और आम की घौर लटका दें, तो भी तोरण की शृंगारिकता दूषित नहीं होगी। परन्तु सोवियत कवि तोरण न सजा कर फलों की टोकरी और बोड़े सजाता है—इसीसे उसमें काव्य नहीं फूहड़पन है।

मेरी कविता में मिट्टी के भेद, प्रकार, बीज तथा किसानी कहावतें, घाघ-भड्डरी जैसे वचन, पशुओं की नस्लें यहाँ तक कि उनके रोग और क्षतों तक को काव्य-भाषा दी गयी है। लय, ध्वनि और उपमाओं के सहारे इनकी विषय-गत गद्यात्मकता का मार्जन किया गया है, चाहे वह घास में लुपलुपाते साँपों का वर्णन हो, या शूकर शावकों की "उर्ध्व साँस हाँफती" मुद्रा हो "नासिका निसृत काले खून की बूँदों" का वर्णन हो। शैली और शब्द-ध्वनि के जोर से मेरी भाषा में ये काव्य बन जाते है। खेद है कि भाषान्तर में वह शब्द-शक्ति वह लय नहीं उतारी जा सकती और अनुवाद में ये चीजें एक पशु-चिकित्सक की डायरी जैसी लगेंगी। इसके आस्वादन के लिए लैटिन पढ़ना जरूरी है। ध्वनि के साथ, उच्चारण में अन्तर्निहित जो भाव-संस्कार हैं वे अनुवाद में नहीं आ पाते। फिर भी अभिव्यक्ति-भंगिमा के नमूने के तौर पर जंगली क्रुद्ध साँड़ के आक्रमण के इस गतिमान चित्र को लिया जा सकता है:—"क्रुद्ध वृषभ शत्रु पर ऐसे टूट पड़ता है मानो वह समुद्र की तरंग हो, जो मंझधार में जन्म लेती है, श्वेताभ से श्वेत एवं श्वेततर होती हुई, चक्राकार गति से, तने हुए हवा भरे पाल-सी झपटती किनारे की ओर चढ़ती चली आती है और घोर गर्जन के साथ शिलाखण्डों के बीच ऊँचे पाषाणखण्डों पर टूट पड़ती है और गुत्थम-गुत्थ द्वन्द्व में जमीन पर लुढ़कती जाती है।" साँड़ का हँकड़ना, टूट पड़ना और गुत्थम-गुत्थ द्वन्द्व को अत्यन्त गतिमान उपमा से व्यक्त किया गया है। आलोचकों ने कहा है कि जिस प्रकार होमर का ओडेसी समुद्र का काव्य है वैसे ही 'ज्यार्जिक्स' धरती का। ग्रीकों के संस्कार आदिम लालसा से संपृक्त हैं। उनमें मदिरा नील समुद्र के प्रति प्रबल आकर्षण है। होमर बार-बार समुद्र को "सुरा-नील" या "मदिरावर्णी नील समुद्र" कहकर आनन्द लेता है। लालसा का रंग नीला होता है। और, दूसरी बात यह कि होमर अंधा था, अतः नीलवर्ण उसके मन और प्राण के निकट था। परन्तु इतालवी संस्कार खुली धूप सूर्य-स्नात हरीतिमा के मैदानी संस्कार है। इसी से समुद्र की अपेक्षा मेरे काव्य में सूर्य-स्नात हरी-भरी धरती का ही आकर्षण प्रबल है।

डिप्टी की डायरी (५)

एक अवकाशप्राप्त डिप्टी

(शरबत और भूने मटर—चंदावसूली—प्रचार का अनोखा उपाय—एक स्वाभिमानी अफसर—सतयुगी अफसर—रोब गाँठनेवाला अफसर।)

उन दिनों मैं नया-नया डिप्टी कलक्टर हुआ था। मुश्किल से दो तीन साल काम करते हुए थे। उस जिले के जिलाधीश एक वयोवृद्ध सज्जन थे। पर स्वास्थ्य अटूट था। विपत्नीक थे। पूजा पाठ आदि जितना करते थे उससे कहीं अधिक प्रचार था। उन्होंने मुझे ज़िले का मनोरंजन कर अधिकारी (Entertainment and betting tax officer) का भार दे रक्खा था। अतः सिनेमा, सरकस आदि सभी तमाशेवाले मेरी खुशामद में लगे रहते थे। वहाँ एक सर्कस आया और महीने भर के लिये तमाशे दिखाने का निश्चय किया। पहिले दिन जिलाधीश एवं अन्यान्य अफसरान आमन्त्रित होकर खेल देखने गये। जिलाधीश के बगल में ही मेरी सीट थी। सरकसवालों ने तो मेरी 'इज्जत अफजाई' करने के लिये उनके बगल में मुझे जगह दी थी, पर मेरे लिये बड़ी ही असुविधाजनक रही वह जगह, क्योंकि सरकस में केवल जन्तु समारोह होता तो कोई बात न थी। पर बीच-बीच में युवती तथा किशोरियों का अपर्याप्त कपड़ों में, करीब-करीब उलंग नृत्यादि चित्ताकर्षक भले ही हों—पितृतुल्य जिलाधीश के साहचर्य्य तथा निकट सान्निध्य में आनन्ददायक कदापि न थे। मैं पानी पीने के बहाने, अथवा थूकने के बहाने, ऐसे खेलों के समय उठ जाया करता था। जब 'एक चक्के' की साइकिल की बारी आई तो जिलाधीश बोले," अजी! क्या तुम उठ उठकर चले जाते हो! देखो यह खेल कितना शिक्षाप्रद है।"

एक पहिये की साइकिलों को नाना प्रकार से परिचालित करके अपने करतब के साथ-साथ अर्धनग्न शरीर के अवयवों का कामोत्तेजक रूप से प्रदर्शन किस अर्थ मे 'शिक्षाप्रद' है, यह मेरी समझ में नही आया। करबस देखता रहा। जिलाधीश बोले 'दो पहियेवाली साइकिल की तुलना में इस एक चक्रयान को किसी भी जगह सुगमता से परिचालित किया जा सकता है और इसका प्रयोग सरकारी नौकर भी कर सकते है।'

इन शब्दों के द्वारा उन्होंने दूर की कौड़ी फेंकी थी इसका अनुमान उस समय मेरे लिये लगाना दुःस्साध्य था।

× × ×

उस दिन क्लब में जिलाधीश महोदय 'ब्रिज' खेलते समय एक वरिष्ठ डिप्टी से बोले" "अजी! यह मोनो साइकिल भी मजे की चीज है।"

—"इसमे क्या शक है" अन्यमनस्क डिप्टी साहब बोले। वे ताश के खेल में पारदर्शी थे, और उस समय उसीके विश्लेषण में तल्लीन थे। जिलाधीश फिर बोले, "मेरी राय में हम लोगों को भी उसे चलाना सीखना चाहिये। इसी क्लब में लोग उसे सीख सकते हैं!"

"जी हाँ" बोले एक अन्य पुरमज़ाक डिप्टी। आजकल वे एक जिले के जिलाधीश पद को सुशोभित कर रहे हैं। उनका उस दिन का मजाक उनके लिये बड़ा महँगा पड़ा था। उन्ही दिनों उनकी पदोन्नति होनेवाली थी, परन्तु जिलाधीश के कोपभाजन होने के कारण कई साल के लिये तरक्की रुक गई थी। मोनो साइकिल के प्रसंग मे उत्साहित होकर उन्होंने मुझसे कहा, "हाँ, हाँ, यही ट्रेनिंग लेंगे। और डगमगाते ही खूंटी पकड़कर सम्भल जायेंगे।"

—"डिप्टी साहब, आप अश्लील हो रहे हैं" गरज उठे क्रुद्ध जिलाधीश महोदय!

—"सरकारे वाला, इस बरामदे में मोनो साइकिल पर सवार होने से शुरू-शुरू में डगमगाना लाजमी है—तब खूँटी पकड़ कर (उन्होंने टोपी टाँगनेवाली खूँटियों को दिखाते हुये कहा) सम्हल जाऊँगा—मैंने कोई गन्दी बात तो—"

—"आप चुप रहिये" बोले जिलाधीश। और डिप्टी साहब चुप हो गये। लोग सभी मुस्करा रहे थे—केवल मेरी समझ में कुछ नहीं आया। निर्बोध की तरह कुछ देर तक मैं ताकता ही रह गया। जिलाधीश बोले, "अब मैं नहीं खेलूंगा।" उसके बाद मेरी ओर ताककर—"आओ मेरे साथ," और हम दोनों क्लब से निकल कर उनकी कोठी की ओर चल दिये।

कोठी पर जाकर उन्होंने मुझसे मोनो साइकिल सीखने

की अभिलाषा प्रकट की और एक मोनो साइकिल और बंगले पर ही प्रशिक्षण का इन्तज़ाम करने को कहा।

मैंने उसी रात जब सरकस के मालिक से कहा तो वह बेचारा बड़ी मुश्किल में पड़ गया क्योंकि मोनो साइकिलें इच्छानुसार खरीदी नहीं जा सकती थीं, और खेल तमाशे में उनकी उसे जरूरत थी। पर चूंकि मुझसे उसे रोजाना काम पड़ता था--वह मजबूरी से राजी हो गया। उसने मुझे मोनो साइकिल भी दी और दूसरे दिन सवेरे से जिलाधीश के बँगले पर अपने साइकिल के कसरतों के उस्ताद को जिलाधीश के प्रशिक्षण के लिये भेज दिया।

दूसरे दिन प्रातः मुझे जिलाधीश के चपरासी के दर्शन मिले और उसने सलामी बजाकर सूचना दी कि बड़े साहब ने सलाम कहलाया है। मैं तुरन्त चल दिया। सोचा, कोई बहुत ही अवश्यक काम होगा। जब जिलाधीश के बंगले पहुंचा तो देखा बाहर एक यमदूताकार नाटा मद्रासी घूम रहा है। उसकी मांस पेशियाँ इतनी उभरी हुई थीं मानों शरीर से विच्छिन्न हो जाने पर उतारू हों! जिलाधीश का दैनिक नियम था कि प्रातः दतौन करके थोड़ी देर दफ्तर में बैठकर आवश्यक कागज निबटाते थे। उसके बाद स्नान करके पूजा पाठ में बैठते थे। पूजा करने के बाद फिर दफ्तर में बैठा करते थे।

उस दिन जैसे ही तड़के वे दफ्तर में बैठे कि चपरासी ने इत्तिला दी कि सर्कसवाले आये है।

'सर्कस वाला' सुनकर और ब्राह्म मूर्त्त मे उस विकटाकार मद्रदेशीय को देखकर जिलाधीश का पारा चढ़ गया। 'यहाँ क्यों आया है वह भूत'...'बुलाओ अमुक डिप्टी को' ...केवल यही दो वाक्य कहकर जिलाधीश भीषणाकार चेहरा बनाये गुमसुम बैठे हैं और तब से कुछ बोले नहीं। मैं भी सहमा हुआ अन्दर गया। मुझे देखते ही जिलाधीश बरस पड़े, "आप की अक्ल क्या घास चरने गई है? आप चाहते हैं मैं गिरकर मर जाऊँ या अपाहिज हो जाऊँ? यही अक्ल लेकर आप मुकदमा सुना करते हैं?"

मेरी समझ में नही आया कि बात क्या है? बहुत सोचकर भी ख्याल नही आया कि कौन सी गलती हो गई है। पर जिलाधीश का गुस्सा अभी शान्त नही हुआ था। बोले, "मैने कहा था मुझे मोनो साइकिल पर लादकर उस दानव से ढकेलवा दो ताकि मैं गिरकर घायल हो जाऊँ? तभी तुम लोगों को शान्ति मिले!"

इसका भला मैं क्या जवाब देता। चुप रहा। जिलाधीश ने फिर डाँटा, "जाइये आप अपने शागिर्द को लेकर! मुझे मोनो साइकिल नहीं सीखनी है!"

--मैं विमर्ष तबियत से उठा। इसी को कहते हैं नौकरी! हाकिम का मिजाज! कल खुद ही मोनो साइकिल सीखने की इच्छा प्रकट की थी और मैंने कितनी मुसीबत से इन्तजाम किया तो बजाय प्रशंसा पाने के मुझे इतनी कड़ी भर्त्सना मिली।

घर के बजाय मैं वापसी में अपने एक वरिष्ठ सहयोगी के बँगले पहुंचा। बड़े पुरमजाक और हँसोड़ थे वे! मुझे मुँह लटकाये आते देखकर बोले, "क्या हाल है दोस्त? सवेरे-सवेरे मुहर्रमी चेहरा बनाये क्यों फिर रहे हो?"

उन्हें कुल हाल कह सुनाया। उन्होंने एकाएक पूछा, "डी० एम० ने तुम्हें एकाध झापड़ नहीं मारा? इसे अपना सौभाग्य समझो।"

"क्यों" साश्चर्य मैंने पूँछा।

"इसलिये कि डी० एम० ने तुमसे माँगा शरबत, और तुमने उन्हें दिया भूना मटर?"

"मैं नहीं समझा" विमूढ़ होकर मैंने पूछा। वे हँसे और फिर बोले "सरकस की परियों का नाच तो तुमने नहीं देखा क्योंकि हर बार उन्हें देखते ही तुम्हें खखारना या पानी पीना सूझता था। मगर डी०एम० बेचारे ललचा गये। मोनो साइकिल के बहाने उन परियों के बाहुपाश में झूम-झूम कर उन्होंने मोनो साइकिल चलानी चाही, और जहाँ लड़खड़ाते तो उन तन्वी सुन्दरियों के सहारे अपने को संतुलित कर लेते! पर तुमने उनकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। उनकी स्कीम ही चौपट कर दी! तुम क्या समझ बैठे! जरा सोचो कि कितनी आशा लेकर उन्होंने सुन्दर मछलियों के लिए जाल डाला और तुम्हारी बदौलत जाल में फँसा भीमकाय कछुआ! मैं डी० एम० से सहमत हूँ कि आप निहायत गधे है—आपसे डिप्पटीगीरी का काम भला कैसे होता होगा।"

मैं 'हे भगवान्!' कहकर मौन हो गया।

× × ×

उस जिले में रामलीला नहीं होती थी! जिलाधीश ने तै किया कि उस वर्ष से होनी चाहिये। उसकी जो कमेटी बनी उसके वे सभापति बने और मैं उप-सभापति। उन्होंने मुझसे कहा—'चन्दा इकट्ठा करवाना है।'

मैंने भी चन्दा जमा करने का काम शुरू करवा दिया। जब सरकस वालों से एक हजार एक रुपये माँगे गये तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। पर मनोरंजन कर इन्स्पैक्टर के सहारे उन्हें मजबूर किया गया कि वे रुपये दे दें! कहना व्यर्थ है कि यह सब कुछ जिलाधीश महोदय की राय-मशवरे से ही किया गया। रामलीला से पहिले ही वे लोग उस जिले के एक बड़े कस्बे में चले गये।

उस दिन क्लब में जिलाधीश बैठे थे कि मैं पहुँचा। शासन से जवाब तलब हुआ था कि सरकसवालों से क्यों जबर्दस्ती रुपये वसूल किये। नीचे यह भी लिखा था कि जिलाधीश ने उनसे एकचक्री (मोनो साइकिल) क्यों ली, फौरन जवाब दें। जिलाधीश ने पूरा कागज नहीं पढ़ा था। सोचा था कि वह केवल मेरे ही बारे में है। इसलिये मेरे नाम जवाब तलबी लिखकर मुझे भेज दिया था क्लब में मैं सबके सामने बातें नही करना चाहता था, इसलिये मैंने डी० एम० से कहा—'सर, जरा दो मिनट बातें करनी थीं।'

"कहो—कहो—यही कहो?" वे बोले। मातहत का मानापमान भला क्या?

"जवाब तलब हुआ है सर्कस वालों की शिकायत पर" बीच में ही वे बोले, "ठीक है। जवाब दीजिये कि आपने क्यों चन्दा देने पर उन्हें मजबूर किया था। मैंने तो कह दिया था स्वतः जो कुछ दें सो ले लेना।"

मुझे उनकी बातों से बड़ा गुस्सा आया। मैंने कहा—"सर, इसमें आपके खिलाफ भी मोनो—"

'अरे! जरा सुनना इधर—' कहकर वे उठ पड़े। अब अपने कलंक की आलोचना उन लोगों के सामने उचित नहीं समझी यद्यपि हमारे बारे में सबके सामने चर्चा करना चाहते थे।

जब देखा कि स्वयं भी फँसे हैं तो बोले—'अब क्या करना चाहिये?"

मैंने कहा—"मुझे अपनी जीप दे दें। मैं अभी उस कस्बे में जाकर उनसे लिखवा लूंगा कि उन्होंने स्वेच्छा से चन्दा दिया था तथा आपकी रुचि देखकर मोनो साइकिल भेज दी थी जो आपने इस्तेमाल नहीं की।"

तुरन्त जीप दे दिया। मैंने भी सीधे सर्कस पर पहुँचकर चेकिंग की। छोटी मोटी अनेक अनियमिताएँ मिलीं। मैंने दबाव डाला तो बड़ी मुश्किल से उसके मालिक ने लिखकर दे दिया कि उसने स्वयं अपनी खुशी से चन्दा दिया था, और उसे कोई शिकायत नहीं है! लोगों के सिखाने में पड़कर उसने दरख्वास्त दे दी थी—उसे अब कोई शिकायत नहीं है।

दूसरे दिन सुबह ही मेरे घनिष्ठ मित्र जो वहाँ पुलिस कप्तान थे, मुँह लटकाये मेरे पास आ पहुँचे। बोले 'अरे भई......सुना तुम्हें गवर्नमेंट ने जवाब देने को कहा है?

'हाँ' मैंने संक्षेप में कहा क्योंकि समझ में नही आ रहा था उनसे उनका क्या सम्बन्ध है।

"मुझसे भी पी० एच० क्यू० (पुलिस हेड क्वार्टर्स) ने पूछा है पुलिस क्लब के चन्दे के लिये! तुम्हें ख्याल होगा उसने अजखुद दिया था?"

"यार! अजखुद कोई धेला भी नहीं देता—यह तो तुम भी जानते होगे। पर मैं कल शाम ही को उससे लिखवा लाया हूँ।" कहकर उन्हें दिखा दी सर्कस वाले की तहरीर।

कप्तान साहब ने चाय का प्याला भी समाप्त नहीं किया, और उसी हालत में जीप में जा बैठे। 'मैं चला! वे बदमाश आज ही शायद डेरा-डंडा लेकर जिले से विदा हो रहे हैं, मुझे सुबह एस० ओ० (थानेदार) से इत्तिला मिली है। एक बार जिला छोड़ देने के बाद हाथ से निकल जायँगे।"

बाद में मालूम हुआ था कि सरकसवाले अपना कुल सामान लाद कर चलने ही वाले थे कि कप्तान साहब बाज जैसे उन पर झपट पड़े थे, और करीब-करीब संगीन की नोक पर मुझ जैसी तहरीर प्राप्त कर सके थे।

वह सरकसवाला लोगों से कह गया था कि अब इस जिले में कभी नहीं आऊँगा। और उसकी वितृष्णा स्वाभाविक भी थी।

× × ×

उन दिनों नियोजन का काम शुरू हुआ था। शायद पहली योजना चल रही थी। सरकार कृषि पर जोर दे रही थी। गाँवों में उसका प्रचार करना जरूरी था। पर देहाती लोग कोट-पतलूनधारी अफसरों से खेती के विषय में कुछ सुनने को तैयार न थे। इसलिये श्रोताओं का अभाव रहता था। पर श्रोता इकट्ठा करने की जो तरकीब हमारे जिलाधीश ने निकाली वह सर्वथा नवीन थी।

उस समय एक कर्तव्यपरायण अनुभवी और पुराने

सज्जन मेरे जिलाधीश थे। वे नियोजन के प्रचार में रुचि लेने लगे। जाड़े के दौरे में अब वे अपने साथ एक अलग ट्रक पर सूचना अफ़सर और सूचना के प्रोजेक्टर को लेकर जाने लगे। उस प्रोजेक्टर के सहारे सिनेमा दिखाने का इन्तजाम करते थे। खुले मैदान में पर्दा टाँगकर फिल्म दिखाया जाता था। फिल्म देखने के लिये असंख्य देहातियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। एक वार मैं भी साथ में था।

सिनेमा आरम्भ हुआ सन्ध्या के अन्धकार में। जाड़े मौसम में अँधेरा जल्द ही हो जाता था। उसी अँधेरे मे मफ़लर बाँधकर अँधेरे में छिपकर चुपचाप प्रोजेक्टर मशीन के पास आ बैठे जिलाधीश !

जब भीड़ खचाखच देखी तो अचानक सिनेमा रोककर लाउड स्पीकर पर जिलाधीश ने बोलना आरम्भ किया : "भाइयो और बहनों, आप जानते ही है हम लोग कितने गरीब है। हमें अपनी खेती का तरीका बदलना पड़ेगा। गावदान में केले लगाइये! खेतो मे मूँग बोकर, फली तोड़ने के बाद पौदा समेत जोत दीजिये—पौदा सड़कर—"

"अरे, फिर आय गवा केला-मूँगवाला बुढ़वा—भाग-भाग !"

कहकर देहाती लोग भागे। जिलाधीश कुनैन की टिकिया की भाँति वक्तृता की खुराक दिये जा रहे थे, "नाली का पानी सड़ता है—वेकार जाता है—"

तब तक मैदान आधे से अधिक खाली हो गया था क्योंकि लोग जानते थे कि उनकी वक्तृता लम्बी होगी, और अब आज 'पिक्चर' नहीं दिखायी जायगी। यह देख उन्होंने सूचनाधिकारी से कहा, "रोशनी बुझाइये, रोशनी बुझाइये– पिक्चर शुरू! फ़ौरन ! आप बड़ी देर करते हैं!"

वत्ती गुल की गयी और नरगिस, राजकपूर पर्दे पर फिर आ पहुँचे। जो लोग उठ रहे थे वे बैठ गये। जो कुछ दूर चले गये थे वे भी लौट आये! फिर से भीड़ इकट्ठी हो गयी और कुछ देर पिक्चर चली। लोग तन्मय होकर मुफ़्त की फिल्म देख रहे थे कि फिर वत्ती जली, पिक्चर बन्द हुई, और लाउड स्पीकर पर 'बुढ़वा' का स्वर सुनाई दिया "तो भाइयो, उस जमीन मे मूँग न बोइये जहाँ पानी भरता हो—"

"अरे फिर मूँग! ई सार पिच्चर का लालच दय के हम सब का मूँग-केला सुनाई !" बोला एक आधुनिक युवक।"

और लोग फिर भागने लगे, और उसी भगदड़ के बीच जिलाधीश पूर्ण उत्साह से सूचना विभाग द्वारा प्रचारित बुलेटिन से रटी हुई बातें उनके कानों में उड़ेलते रहे ? बोले, 'चाहे ससुरे भागें, कान मे रुई तो ठूँसे नहीं हैं—हमारी बातें सुनी तो होंगी ही—"

इस प्रकार असीम धैर्य्य से श्रीमान जिलाधीश ने उन वक्तृता-विमुख लोगों को थोड़ा-थोडा करके सिनेमा के अनोपान के साथ साथ नियोजन औषधि सेवन करवाकर ही छोडा। मैं उनके धैर्य्य, अध्यवसाय और हठ को देखकर दंग रह गया।

× × ×

उसी जिले की एक घटना और बताऊँ क्योंकि वह भी फिल्म से सम्वन्धित है। उस जिले में ईसाई धर्म्मावलम्बी लोगों ने एक कानफ्रेन्स बुलायी। उसमें पाश्चात्य देशों से धर्मप्रचारक आये थे। उनके साथ महिलायें भी थी। ऐसा नियम है कि किसी चित्र को प्रदर्शित करने से पहिले वहाँके मनोरंजन-कर अधिकारी (जो जिले का कोई न कोई डिप्टी ही नियुक्त किया जाता था) से इजाजत लेनी पड़ेगी। उसे उस पिक्चर को, यदि जरूरत समझे, तो प्रदर्शन से पहिले देखने का भी अधिकार है! अतएव मुझ पर यह भार पड़ा कि मैं उस ईसाई सम्मेलन समारोह में प्रदर्शित किये जाने वाले चित्रों को पास करूँ! मैंने और सदर परगना के हाकिम ने उसका पूर्व प्रदर्शन देखने का निश्चय किया। ये हाकिम परगना विश्वविद्यालय में मेरे सहाध्यायी थे। निर्मल चरित्र, सिद्धान्त के पक्के अफसर! अँगरेजी में एम० ए० किया था, और उसमें प्रथम श्रेणी में द्वितीय या तृतीय स्थान भी प्राप्त किया था। पर अत्यन्त सादे ढंग से वे रहते थे।

उनमें से एक पिक्चर देखकर हम दोनों चिन्तित हो उठे! उसमें यह दिखाया गया था कि हिन्दू धर्मावलम्बी बड़े गन्दे और मूर्ख होते है। गन्दगी से जब हैजा फैला तो वजाय सफ़ाई के, अथवा दवा के, वे लोग झाड़ फूँक मे लग गये। गाँव महामारी के कारण उजड़ने लगा। इतने में एक पादरी वहाँ आया और सफ़ाई वगैरह करवा कर इलाज शुरू किया तो महामारी वन्द हो गई!

स्थानीय जनता की दरिद्रता का फायदा उठाकर कुछ

दिनों पूर्व कुछ मिशनरियों ने कुछ लोगों का धर्म परिवर्त्तन करवाया था—उसका हल्ला था और जनता में भी क्षोभ था। ऐसी परिस्थिति में उस प्रकार के चित्र का प्रदर्शन, मुझे आशंका थी कि आग में घी का काम कर सकता था।

अतः हमने उनके आयोजक से वातें करना शुरू किया। वे एक अत्यन्त शरीफ, मिष्ठभाषी सज्जन थे। उनसे हम लोग वातें कर ही रहे थे कि दो-तीन विदेश से आयीं मिशनरी आ पहुँचीं। उन्होंने समस्वर में पूछा, "क्या है ?" "कुछ नहीं। इन्हें इन पिक्चरों को दिखाने में आपत्ति है।" कहकर उसने परगनाधीश की ओर अँगुलिनिर्देश किया।

"Oh dear! why ?" (हमारे राम ! क्यों ?) कहकर उस महिला ने जब आँखें विस्फारित करके परगनाधीश से पूछा तो उनका चेहरा कड़ा हो गया। पाश्चात्य देशीय लोगों की एक आदत मैंने देखी है। भाव को अधिक प्रकाश करते है। आश्चर्य, प्रसन्नता या शोक आदि वे अत्यधिक प्रदर्शित करते है। कम से कम शब्दों से ऐसा ही दिखाते है। मेरे सहयोगी ने विनम्र स्वर में शुद्ध हिन्दी में कहा, "श्रीमतीजी, हमारे धर्म की निन्दा न करके अपने धर्म का आप प्रचार—" वाधा देकर वह रमणी अँगरेजी में वोली "आपकी वातें मेरी समझ में नहीं आ रही है—क्या आप अँगरेजी नही जानते ?"

"अँगरेजी में ये एम० ए० हैं" मैंने कहा। अब तो उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही! वे बोलीं, "तो आप अँगरेजी में क्यों नही वातें करते ?"

"क्या आप लोग अपने देश मे विदेशी आगन्तुक से उसकी मातृभाषा में वार्त्तालाप करते है ? अगर नहीं करते तो अपने देश में मैं क्यों करूँ ?"

फिर द्विभाषी के सहारे हम लोगों का वक्तव्य स्पष्ट हुआ, और वे भी हमारी वातों को समझीं और वोलीं, "हम अपने महान् काम मे सवका सहयोग चाहते है। किसीकी विरक्ति उत्पादन करने की इच्छा नहीं है। सवका प्रेम भाव वांछनीय है। उन पिक्चरों का प्रदर्शन नहीं करेंगे।"

उन्हें हार्दिक धन्यवाद देकर और उनके समारोह की सफलता की कामना करके हम लोग चले आये। मेरे हृदय में अपने सहयोगी के प्रति श्रद्धा का भाव जाग उठा। आजकल जरा सी अँगरेजी जाननेवाले को भी देखता हूँ कि अँगरेजी बोलने के लिये कितने उत्सुक रहते हैं। सैकड़ों वर्ष के दासत्व ने हमारी मानसिकता को गुलाम वना दिया है।

× × ×

एक वार उस ज़िले में जो पुलिस कप्तान आये वे नवयुवक और अविवाहित थे। वहींसे उनका विवाह तय हुआ दिल्ली के एक वहुत उच्चपदस्थ अधिकारी की लड़की के साथ! मेरे वे परम मित्र थे। इसलिये उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मै वारात में साथ चलूँ। मैं सानन्द सहमत हो गया। उन्होंने मुझसे कहा कि "मै अपने पुलिस के डिप्टी को साथ नहीं ले जाऊँगा क्योंकि एक तो मेरी अनुपस्थिति में वे यहाँ का काम देखेंगे, और दूसरे शादी-विवाह में जरा बेतकल्लुफी अधिक होती है। किसी मातहत के लिये वह वहुत उपादेय नहीं होगा और मेरे लिये भी संकोच की वात होगी!"

पर मुझे अच्छा नहीं लगा। यद्यपि पुलिस के जिन डिप्टी की वात हो रही थी वे वहुत उच्च व्यक्ति नही थे, फिर भी मैंने उन्हें साथ ले जाने के लिये इसलिये कहा कि वे आसरा लगाये वैठे थे कि साहव की शादी में वारात में चलगे! आगे चलकर मुझे अपनी भूल पर पछतावा हुआ था। पर उस समय क्या मालूम था कि वे इस प्रकार गुल खिलायेंगे! रास्ते में एक वड़ा जंकशन पड़ता था—वहाँ जिस गाड़ी पर सवार होनेवाले थे उसमें माननीय राष्ट्रपति का सैलून लगा था। हम लोगों ने एक खाली प्रथम श्रेणी के डव्वे मे अपना सामान रखवा दिया।

मुझे मालूम न था कि डिप्टी कप्तान शरावी हैं। इसका सन्देह मुझे इस जंक्शन स्टेशन पर हुआ जब वे दो रेल कर्मचारियों से इस वात पर उलझ गये कि उन्हें डव्वा वदलने को क्यों कहा जा रहा है। उन वेचारों ने वतलाया कि उस डव्वे के समस्त वर्थ पहिले ही से उस स्टेशन से आरक्षित हैं। और चूँकि रिजर्वेशन उसी जंक्शन से होता है इसलिये अव उन्हें वह डिव्वा खाली करना पड़ेगा। वह आगे के एक दूसरे प्रथम श्रेणी के डव्वे में हमें जगह दे रहे थे। मै सहमत हो गया क्योंकि रेल कर्मचारी अकारण किसीको स्थानच्युत नहीं करते, और सो भी प्रथम श्रेणी के यात्री को! पर डी० एस० पी० साहव ने सुरा देवी के प्रभाव से जिस भाषा का प्रयोग उन कर्मचारियों के प्रति किया उसे अशिक्षित गँवार भी न करता। उन

दोनों ने भी आगे तकरार न करके जी० आर० पी० को इनका सामान डिब्बे से हटवाने के लिए बुलाया। डिप्टी साहब इसी क्षण के इन्तजार में थे कि पुलिसवाला आये और उन्हें सैल्यूट दे तो यह रेलवेवाले कर्मचारी समझें कि किससे वे गुस्ताखी कर रहे थे।

दरोगाजी आये और सैल्यूट भी दी, पर नम्र स्वर में बोले "सरकार, प्रेसिडेण्ट साहब के साथ ए० आई० जी० रेलवे एवं चीफ सिक्योरिटी अफसर आर० पी० एफ० साहब भी इसी गाड़ी से सफर कर रहे है—उन्हीके लिये इस डब्बे की जरूरत है। कहें तो आपका सामान इसी में रहने दें—"

पर डिप्टी साहब फुर्ती से कुलियों का इन्तजार किये वगैर सामान लेकर वहाँसे ऐसे भागे मानो साँप आ गया हो।

मैंने सुना कि दरोगाजी उन रेलवे अधिकारियों से आँख मीचकर कह रहे थे—"देखा, कैसी दवा दी! वेटा हम लोगों पर रोब गालिब कर रहे थे—अब करें अपने अब्बा लोगों पर।"

× × ×

बारात के साथ जब हम चले थे तो यह तय हुआ था कि हम लोग अगले जंकशन से (जहाँ से गाडी सीधी दिल्ली जाती थी) एक रिजर्व तृतीय श्रेणी की बोगी मे चलगे। वड़े-बूढ़े एक ओर—और नवयुवक लोग दूसरी ओर रहेगे। कुछ विशिष्ट लोग फर्स्ट क्लास में जानेवाले थे।

पुलिस के डिप्टी को यह इन्तजाम पसन्द नही आया और वे कप्तान साहब के वड़े भाई जो आई० सी० एस० थे, और उन दिनों किसी मण्डल के आयुक्त थे, के सामने असन्तोष प्रकट करने लगे। वे सज्जन एक अत्यन्त धीर, नम्र एवं चरित्रवान् अफसर थे। मैंने इतने उच्च पदस्थ आई० सी० एस० अफसर को इतना सौम्य, शान्त एवं निरभिमान शायद ही देखा हो।

उन्होंने नम्रता के साथ अपने पिताजी के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा कि यदि सब लोग इधर भी प्रथम श्रेणी में सफर करें तो अच्छा होगा। तीसरे दर्जे के किराये का और प्रथम श्रेणी के भाड़े का जो अन्तर होगा उसे मै दे दूँगा।

इतना कहना था कि मानों आग्नेय गिरि से अग्न्युत्पात आरम्भ हो गया।

"तू रुपये दे देगा! अमीरी दिखाता है मुझको? कमिश्नर बन गया है तो तेरी यह मजाल!" वृद्ध ने उस योग्य सुपुत्र को इस प्रकार डाँटा मानों किसी बालक को कोई अत्यन्त गर्हित काम करते पकड़ लिया हो।

पर धन्य उन कमिश्नर साहब को! एक शब्द प्रतिवाद में नही बोले। जब तक खुले प्लेटफार्म पर पिताजी डाँट रहे थे वे सर नीचा किये खड़े रहे—हिले भी नहीं ताकि पिताजी के प्रति किसी प्रकार का असम्मान प्रकट न हो।

मै तो उनके आचरण को देखकर श्रद्धा से नत-मस्तक हो गया। त्रेता नहीं, द्वापर नही, घोर कलियुग का राज्य! सो भी भारत में नौकरी की कल्पना जिस उँचाई तक जा सकती है उस शिखर पर समासीन रहकर भी इस प्रकार नम्र और निरहंकार!! आज भी उस दृश्य की कल्पना करता हूँ तो यही सोचता हूँ कि यह हमारे भारत में ही सम्भव था। कदाचित् दूसरे देश मे ऐसा सम्भव न था।

× × ×

इस घटना से मुझे उसी जिले के एक दूसरे डिप्टी की बात याद आ गई। वे इन्ही डिप्टी एस० पी० के पहले इसी जिले मे पुलिस के डिप्टी थे। अपनी कोठी पर से ही हाथी पर सवार होकर वे किसी जलूस की ड्यूटी पर जा रहे थे। रास्ते में हाथी ने एक साहब के बाग में अपनी सूँड़ डाल दी। उद्यान में एक वृद्ध सज्जन छोटा जाँघिया पहिनकर नंगे बदन फलों की क्यारियाँ सँवार रहे थे। तेज स्वर मे पीलवान से बोले, "अबे! अंधा है क्या!"

डिप्टी साहब ने फौरन हाथी रोक दिया, और बोले, "क्यों बे बुड्ढे, बड़ा तेज बोल रहा है—मिजाज़ ठीक कर दूँ?"

संयोग से उसी समय उसी रास्ते से शहर कोतवाल साइकिल पर आ रहे थे। इन दोनों की तकरार सुनकर वे वही रुक गये, और उन्होंने डिप्टी साहब को सलाम किया। इतने में वृद्ध सज्जन डिप्टी साहब से बोले, "तू कौन है? ज़रा बता तो मै तेरी गर्मी का इलाज करवा दूँ।" तब तक लपककर कोतवाल ने डिप्टी साहब से कहा, "गुस्ताखी माफ हो सरकार—ये अमुक एम० पी० के पिताजी है। बड़े भले और शरीफ है।"

"अरे, पहले क्यों नही बताया? माफ करियेगा श्रीमानजी—आप तो मेरे पिता जैसे है" आदि कहते हुए वे जल्द हाथी लेकर वहाँ से विदा हो गये।

× × ×

[क्रमशः]

समाधान

श्री सौमेन्द्रनाथ घोष 'श्रीनाथ'

मीना को लेकर सोमनाथ कॉफी पीने आया है। मीना का अभी सातवाँ महीना चल रहा है......सारे वदन को दुशाला मे छिपा लेने पर भी यह तथ्य नही छिपता! डॉक्टर ने कहा है शाम को कुछ देर तक टहलने के लिये! आते-जाते बड़े रास्ते के नर्सिंग होम पर नजर पड़ जाती है। नर्सिंग होम के सामने झलमलाती निअ्रोन की वत्ती, पीछे अन्धकारमय आकाश, और उस पर सरसों के फूल से अनन्त तारे.... । राह चलते सोमनाथ ने एकवार अपने सिर के वालों पर खुद ही हाथ फेरा। कल ही अचानक उसने आईने मे देखा था कि अभी से उसके वाल पकने लगे है।

रास्ते में जरा-जरा कोहरा था। मीना पीछे रह गई थी। सोमनाथ को अच्छा लग रहा था। नर्सिंग होम पीछे छूट गया था। सामने कोहरा। कोहरा के उस पार अस्पष्ट सा निअ्रोन का प्रकाश। पहचाना हुआ 'एअ्रर कंडिशण्ड रेस्टोरेण्ट के सामने आकर सोमनाथ ने सोचा कितने दिनों से एक वार भी नही गया है वहाँ! एक जमाना था जव कि सोमनाथ की शामे वही वीतती थी। पर विवाह के वाद इन दो वर्षो मे शायद हा कभी गया है। मीना पसन्द नही करती। वड़ी हिसावी है। गिन-गिनकर पैसे खर्च करती हे। वेकार का खर्च किसी भी तरह नही करने देती।

वही मीना जब आज पूँछ बैठी, "जरा कॉफी पिओगे?" तो सोमनाथ ने अनायास ही अवाक् होकर पूछा—'कॉफी?'

रास्ते का प्रकाश पीछे छूट गया है। एक मुट्ठी अँधेरे के वीच हल्के प्रकाश की छाया मे मीना का चेहरा गलत फोकस में खीचे फोटो की तरह लगा। वह नीरस कण्ठ से बोली—'अच्छा रहने दो। घर लौटते ही तो फिर हॉरलिक्स लेना होगा।'

पर सोमनाथ ने उत्साह दिखाते हुए कहा—'नही, नही। उससे क्या? चलो। मेरा भी आज कॉफी पीने का मन कर रहा है।'

शीशे का दरवाजा धकेलकर वे अन्दर गये। वाहर जनवरी की ठण्डक है। पर अन्दर काफी गर्म है। लोग कोई खास नही है। नजदीक के टेवुल पर एक पूरा परिवार जमा बैठा है। दूसरे दो-तीन टेवुलों पर दो-तीन आदमियों की कॉफी और हल्की गपशप चल रही है। बीच-बीच में एक-एक पुरुष के साथ एक-एक संगिनी।

एक कोने के एक टेवुल पर अगल-बगल वैठे सोमनाथ की पत्नी मीना और मीना के पति सोमनाथ।

—'केवल कॉफी'—सोमनाथ ने वेयरा से कहा और फिर मीना की ओर ताक कर कहा—'और कुछ लोगी?'

विपण्णा-सी दीखी मीना। धीरे से नकारात्मक सिर हिला दिया। सोमनाथ ने एक सिगरेट सुलगायी। मीना एक वार चारो ओर ताकी।

सोमनाथ कुछ अनमना सा था। अचानक लगा, मीना शायद कुछ वोल रही है। पूछा—'कुछ कह रही हो?'

—'हाँ, मैं कह रही थी कि सभी यहाँ पति-पत्नी ही नही है!'

—'ओ'

दोनों फिर कुछ देर चुप वैठे रहे। सोमनाथ धीरे-धीरे सिगरेट का कश लेता रहा। मीना कॉफी मे चीनी मिलाती रही।

दरवाजा धकेलकर फिर दो व्यक्ति आये। एक नलनाली पैंट और काला फुलओवर पहिने हुए और दूसरी गाढ़ी नीली साड़ी मे। सोमनाथ ने निरासक्त दृष्टि से एक वार उनकी ओर देखा और फिर कॉफी पर ध्यान दिया। पर मीना ताकती रही।

जरा देर वाद कॉफी की चुस्की लेती हुई मीना वोली—'मेरे पिताजी लड़कियों का रेस्टोरेंटों मे जाना पसन्द नही करते थे।'

—'अच्छा?'—कहकर सोमनाथ ने एक जम्हाई ली। और तभी उसकी निगाहें दूर की एक टेवुल पर गई। आकर्षक सी सजी एक महिला और सूट पहने एक सज्जन आमने-सामने वैठे हुए है। पुरुप की पीठ सोमनाथ की ओर है। उसका चेहरा नही दीख रहा। महिला की ओर ताका

सोमनाथ ने । सत्ताईस-अट्ठाईस की । शायद उसने उसे ऑफिस में कहीं देखा भी है ।

सोमनाथ की देखादेखी मीना भी उधर ही ताकने लगी । बोली—"देखने में तो कुछ खास नहीं, पर उसका सजना तो ज़रा देखो ! पर वे लोग भी पति-पत्नी नहीं है !"

—"किसने कहा ?"

"देखो न......कैसी बन बनकर ताक रही है और बातें कर रही है ।"

सोमनाथ ने एक बार तिरछी नजरों से मीना के सात महीने के पेट की ओर ताका । उसके बाद बोला—'पर हम लोगों को देखकर जरूर ही सोचने में कोई ऐसी गलती नहीं करेगा ?'

मीना क्या समझी ! कौन जाने । पर लगा कि कुछ खुश हुई है वह । कॉफी की एक चुस्की के साथ बोली 'हाँ । पर भई, मैं कभी बनी नही हूँ वैसी, और न कभी बन सकूँगी !

सोननाथ ने कोई ज़वाब नही दिया । मीना फिर बोली—'उसकी साड़ी दूर से काफी चमक रही है । पर ज़ानते हो ? वह कीमती नहीं है । पिछले साल इस साड़ी का काफी फैशन था । अब विरली ही कोई पहनती हैं ।'

'हो सकता है ।' सोमनाथ ने कोई आग्रह नहीं दिखाया । लड़की कितना हँस-हँसकर बोल रही है अपने साथी से । सोमनाथ को लगा कि उसकी निगाहों में प्राण हैं । सोमनाथ को वह अचानक काफी अच्छी लगी ।

मीना उसे ध्यान से देख रही है। इच्छा नहीं हुई मीना की ओर ताकने की । आँखें बन्द कर वह कुर्सी पर पीठ लगाकर निढाल हो गया । मन ही मन उसने कल्पना करने की कोशिश की कि मानों वह अकेला बैठा है ।

पर मन ही मन अकेले रहने का भी उपाय नहीं है । 'सुना', मीना पूछ रही है—'क्या हुआ है तुम्हें ?'

—'यही ज़रा सा आराम करने की कोशिश कर रहा हूँ । ऑफ़िस में आज काफी खटना पड़ा है ।'

मीना और कुछ नहीं बोली । सोमनाथ आँखें मूँदे रहा । मन ही मन अकेला हो जाने की सोच रहा है । किन्तु मन में वहाँ भी फुटकर चित्र, छोटी-छोटी यादें उठ रही हैं । उस लड़की की तरह एक लड़की थी—सुनन्दा ! उसी के ऑफिस में काम करती थी । उसी की तरह हँसती थी, उसी की तरह बातें करती थी । ऑफिस के सामने के रेस्टोरेंट में आमने-सामने बैठते थे । एक बार पचास रुपये सोमनाथ से उधार लिये थे । रुपये लौटा नहीं पायी कि उसके पिताजी मर गये और उसके बाद उसका विवाह हो गया । विवाह के बाद वह नौकरी पर नहीं लौटी । और उससे भेंट भी नहीं हुई ।

उसकी याद आज सोमनाथ को आ रही है । याद आने पर अच्छा ही लग रहा है । उसके साथ एक टेबुल पर आमने-सामने बैठ गप-शप करने में काफी अच्छा लगता था। आज अगर वह पचास रुपया लौटा दे तो सोमनाथ की काफी मदद हो जाती । मीना को 'स्पेशलिस्ट' के पास ले जाना है । लन्दन का एम० आर० सी० ओ० जी० । अपने चेम्बर में बीस रुपये फीस लेता है ।

सुनन्दा के साथ कहीं भेंट हो जाने पर काफी अच्छा लगेगा । पर उससे वह पचास रुपया माँगा नहीं जा सकेगा। मीना के लिये अगले हफ्ते में अस्सी रुपये खर्च करना है । महीने के अन्तिम भाग हैं । किसी दोस्त से उधार लेना होगा । शायद नारायण से मिल जाय ।

अभी वह सब सोचने की इच्छा नहीं हो रही । आँखें फैलाकर दूर के टेबुल की उस लड़की की ओर ताकने का मन कर रहा है । अपने को उसके साथी उस पुरुष की जगह रख कर सोचने की इच्छा हो रही है । अगर ऐसा होता, तब शायद उसे याद नहीं पड़ता कि सामने कोई समस्या भी है। स्पेशलिस्ट के पास दो बार ले जाने के चालीस रुपये । कुछ दवा और टॉनिक.......पचीस-तीस रुपया.......। शायद उस लड़की ने आइसक्रीम खायी है....हो सकता है कि साथ में और भी कुछ लिया हो.. । वेयरा के बिल लाने पर उन्हें मालूम होगा कि छः-सात रुपये के लगभग हुआ है । उसके पाकिट में जरूर एक दस रुपये का नोट है । उसे निकाल कर वह मस्ती से वेयरा के हाथ में दे देगा । जब बाकी पैसे लौटा लायेगा तो खुदरा पैसों की ओर वह देखेगा भी नहीं ।

पर आधी रात को....या उसके भी बहुत बाद याद पड़ेगी .. चालीस रुपया और तीस रुपया कुल सत्तर रुपया ! अन्धेरा कमरा । मीना के सिर के तेल के गन्ध से कमरे की हवा भारी हो उठी है । विस्तर के एक किनारे मीना सोई हुई है । बहुत दिन पहले चिड़ियाखाना में देखे हुए तालाब के बगल में निद्रा मग्न उस जलहस्ती की जैसी . । सोमनाथ मुँह फिरा करवट बदलेगा । उस समय तन्द्रावस्था में याद

आयेगी उस सुनन्दा की बात या आज शाम को देखी दूर के टेबुल की वह लड़की।

....

—'अरे, ये तो तुम्हारे वही मित्र हैं।' मीना की बात पर सोमनाथ का ध्यान भंग हुआ।

—'मेरा मित्र ? कौन ?'

—'वही...जो उस लड़की के साथ बैठा है।'

सोमनाथ ने इस ओर ताका। वह सज्जन इसी ओर मुँह करके बेयरा से कुछ कह रहे थे। शायद और दो कप कॉफी लाने को कहा है। अब सोमनाथ ने पहचान लिया.........'अरे! यह तो हम लोगों का सुशोभन है।'

—'वह लड़की जरूर ही उसकी पत्नी नही है ?" मीना ने पूछा।

"नहीं। उसकी पत्नी तीन-चार वर्ष पहले मर चुकी है। तब से उसने दूसरी शादी नहीं की।'

—'और अब........बान्धवी को लेकर रेस्तोराँ में बैठकी कर रहे है!' मीना अपने शब्दों में कुछ व्यंग्य का पुट देकर बोली—'मानना होगा कि काफी मजे में है।'

सोमनाथ ने जम्हाई लेकर जवाब में कहा—'हम लोग ही भला खराब क्या है ?'

—'हम लोग'.........जरा सी फीकी मुस्कान के साथ मीना बोली—'हम लोगों के आगे कितने खर्चे है। तुम्हारे मित्र को तो वैसा कुछ नहीं.........।'

'पर भई, एक बार कभी न कभी तो सभी की बारी आती है।'

मीना ने इस बार चारों ओर ताककर देखा। उसके बाद एकबारगी ही पूछ बैठी—'अच्छा जी, यहाँ बैठकर क्या एक बार भी लगता है कि हम लोगों के देश के लोगों को कोई दुःख-तकलीफ भी है ?'

सोमनाथ ने कहा—'वे लोग हम लोगों को भी देखने पर यही बात कहेंगे।'

और फिर सोमनाथ ने कुछ नहीं कहा। सोमनाथ ने कुरसी से टिककर फिर आँखें मूँद लीं। मीना ताक-ताक कर देख रही है। सुशोभन को देखकर ईर्ष्या करने की उम्र अब नही रही। मीना नहीं जानती कि सोमनाथ के मन में कितनी चिन्ताएँ एक साथ चक्कर काट रही हैं। कम्पनी का एक डाइरेक्टर बम्बई से आ रहा है। सुनने में आरहा है कि छटनी की जायगी। कुछ लोगों की कानपुर के ऑफिस में बदली कर दी जायेगी। सोमनाथ को अपनी नौकरी जाने का डर नहीं है, पर उड़ती खबर है कि बदली होने वालों में उसका भी नाम है। अब कुछ तरकीब करनी होगी। डाइरेक्टर के पा० ए० को किसी अच्छे 'बार' में ले जाकर शराब पिलाना होगा। वैद्यनाथन को अगर बदलवा दिया जा सके तो सोमनाथ को एक प्रोमोशन भी मिल सकता है। और सामने यह एक खर्च...और...मीना को इस खर्च का हिसाब दिया नहीं जा सकता। वह यह सब एकदम नापसन्द करती है।

सोमनाथ ने आँख खोल फिर सुशोभन की संगिनी उस लड़की की ओर ताका। उस तरह की किसी लड़की से जान-पहचान होती तो डाइरेक्टर के पी० ए० से उसका परिचय करा दिया जाता। उससे काम होता। और यह सुशोभन....। इसे कोई चिन्ता नही....दुर्भावना नही....बदली होने का डर नहीं....। और ऐसे एक आदमी के साथ उस लड़की की घनिष्ठता! और मैं अपनी सारी चिन्ताओं का बोझ सिर पर ले अपनी स्त्री को, मीना को. लेकर चुपचाप बैठा हूँ।

सोमनाथ ने कॉफी का एक घूँट लिया।

मीना बोली—'मुझे लग रहा है कि तुम्हारा मित्र उस लड़की से शादी करेगा।

'लग रहा है ? क्यों ?'

'देखो! न वह लड़की कैसी मीठी मुस्कान के साथ लगातार बोले जा रही है ?....और वह जो कह रही है, तुम्हारा मित्र केवल सिर हिला-हिलाकर उसी से अपनी सहमति दिये जा रहा है।'

सोमनाथ ने मन ही मन सोचा, एक जमाना था कि मैं भी खूब सिर हिलाकर किसी की बातों पर इसी प्रकार सहमति देता था जो ठीक इसी तरह से मीठी मुस्कान के साथ लगातार बोलती जाती थी, और जिससे मैंने शादी नही की।

सोमनाथ ने सुशोभन और उस लड़की की ओर ताक कर देखा। सुशोभन उन लोगों की ओर पीठ किये बैठा है उसका चेहरा नही दीख रहा। अब वह कुछ बोल रहा है—सामने की ओर झुक।

'सुनो, तुम मुझसे शादी करोगी ?' अचानक मीना बोली....!

'क्या ?'...... सोमनाथ ने विस्मित दृष्टि से देखा मीना को ?

मीना बोला—'नहीं, यानी मैं कह रही थी क्या... कि तुम्हारा मित्र जरूर उस लड़की से कह रहा है... 'तुम मुझसे शादी करोगी ?'

सोमनाथ ने फिर उस ओर ताका। लड़की सिर झुकाए बैठी है। थोड़ी देर बाद उसने निगाह उठाई और ताकी सुशोभन की ओर देखकर जरा-सा मुस्कायी और फिर सर हिला दिया।

'हाँ, करूँगी।' बोली मीना।'

'क्या बचपन कर रही हो!'—सोमनाथ कह उठा। मीना ने जवाब में कहा—'मैं ठीक ही कह रही हूँ, वह लड़की कह रही है—'हाँ करूँगी।'

'तुम्हारी जितनी कल्पनाएँ हैं सब विचित्र है। क्या मनुष्य के जीवन में और कोई समस्या नहीं है ?

'तुम्हारी और मेरी समस्याएँ। पर उनकी भी कोई समस्या है—ऐसा तो नहीं लग रहा।'

सोमनाथ ने फिर कुर्सी से पीठ टेककर आँखें मूँद लीं। मन ही मन सोचा—मीना नहीं है। वह बहुत दिन पहले ही मर गई है—उस सुशोभन की तरह। और वह खुद तथा वह लड़की एक टेबुल पर आमने-सामने बैठे हैं, और इधर बैठ कर ताक रहे हैं... सुशोभन और उसकी पत्नी कल्पना की जाय कि वह अभी जीवित है।

तभी सोमनाथ को लगा, मीना कुछ बोल रही है।

मीना की ओर ताका सोमनाथ ने—'क्या कह रही हो ?'

—'नहीं, कुछ नहीं।'—मीना ने यह कहकर सिर झुका लिया।

—'अरे सुनूँ भी तो ?'

कहूँ ? मीना तिरछी नजरों से ताक सलज्ज मुस्कान से दीप्त हो उठी।

मीना हौले से बोली—'मैं कह रही थी क्या... कि... मान लो मेरी तुम्हारी भी अभी उन लोगों की तरह शादी नहीं हुई है। हम लोग भी चुपचाप यहाँ आ बैठे हैं।'

सोमनाथ ने एकबार मीना के सारे शरीर की ओर ताका। उसके बाद आँख मूँदकर सोचने लगा कि अगले मंगल को मीना को स्पेशलिस्ट के पास ले जाना होगा, उसके चेम्बर में। बीस रुपया फीस।

'चुप क्यों हो ?'

सोमनाथ आँखें खोलकर जरा-सा मुस्करा दिया और बोला, 'क्या कहूँ ?' मीना बहुत नरम गले से बोली—'कुछ भी।'

सोमनाथ धीरे-धीरे बोला—'मैं सोच रहा था कि तुम्हारे पिताजी लड़कियों का रेस्टोरेन्ट में जाना पसन्द नहीं करते हैं ?'

मीना हँस पड़ी। दूर सुशोभन की ओर ताककर बोली—'पर वह जिस तरह सुशोभन से बातें कर रही है, उससे लगता है उनका मत बहुत कुछ ठीक ही है।'

'क्या मैं भी यही नहीं कहता !' सोमनाथ ने पूछा।

मीना जरा देर चुप रही। उसके बाद जरासी म्लान हँसी हँसकर बोली—'कैसे जानूँगी ? शादी से पहले तो तुमसे भेंट नहीं हुई ?'

स्तब्ध हो गया सोमनाथ। एकबार लगा, मानो उसका दम घुट रहा है। काफी जोरों से दो-तीन बार श्वास लिया इच्छा हुई वहाँ से भाग जायँ। अब यहाँ अधिक ठहरने का साहस नहीं रहा। पर, सोचा कि लौटना है ही, दो कमरे के उस फ्लैट में...जिन कमरों की हवा आज दो सालों से भारी हो उठी है। उससे अच्छा यही है—सोमनाथ ने सोचा जब तक बैठा रह जाया जा सके यहाँ बैठे रहो....। वहाँ तो लौटकर जाना ही है—यहाँ जितनी देर बैठा रहा जा सके, समस्याओं से कुछ राहत मिलेगी। और कुछ न हो, कम-से-कम सुशोभन को तो देख पा रहा है उसकी संगिनी के साथ। मैं सोमनाथ नहीं हूँ। सोचा सोमनाथ ने इस थोड़े से समय के लिये मैं मन ही मन सुशोभन हूँ ? मन ही मन बैठा हूँ उस लड़की के साथ।

सोमनाथ ने मीना की ओर ताका। देखो वह टकटकी निगाहों से दूर के उस टेबुल को देख रही है। उसके दोनों कान जरा लाल हो उठे हैं। मीना ने सोमनाथ की ओर देखा और निगाहों से निगाहें मिलते ही आँखें झुका ली।

सोमनाथ ने भी मुँह घुमा लिया। उसे लगा—इस क्षण हम लोग दोनों एक दूसरे के आगे अपराधी हैं, पर किसी के मन में कोई आक्षेप नहीं है इसके लिये।

दोनों ने फिर एक ही साथ दूर की उस टेबुल की ओर ताका। बेयरा बिल का रुपया ले, बखशीश पाकर सलाम कर रहा है। उठ खड़ा हुआ है सुशोभन और वह

लड़की। दोनों ही का मुस्कुराता चेहरा। दोनों दरवाजे की ओर बढ़े।

....इसी समय सुशोभन ने सोमनाथ और मीना को देखा। देखकर उसने साथ की लड़की से कुछ कहा। लड़की हँसते हुए कुछ जवाब देकर दरवाजा खोलती हुई बाहर चली गई। सुशोभन, सोमनाथ और मीना के टेबुल पर चला आया।

आकर सुशोभन ने सोमनाथ से कहा—तुम्हें देख ही नहीं पाया था यार! देख पाने पर बहुत पहले ही उठकर चला आता। उस लड़की ने तो मुझको एकदम 'बोर' कर दिया।'

सोमनाथ अवाक् होकर बोला—'ऑय? मुझे तो लगा था कि तुम एकदम उसके साथ रमे हुए हो!'

सुशोभन ने मुस्काकर कहा—'तब तो अच्छी बात है। अब उसे मैं तुम्हारे पास भेज दूँगा। तुम भी रम जाना?'

'बात क्या है कहो तो?'—सोमनाथ ने जानना चाहा।

सुशोभन ने जवाब दिया—'कोई खास बात नहीं। वह लड़की लाईफ इन्श्योरेंस कम्पनी की एजेन्ट है। मेरे एक मित्र के मार्फत परिचित होकर मुझे पचास हजार की एक पॉलिसी लेने के लिये फँसाना चाहती है। अभी तक वही समझा रही थी। मै मान ही नही रहा था। पर यह क्यों छोड़े! अन्त में, मजबूरन मुझे थक-हार कर पाँच हजार की पॉलिसी लेने की हामी भरनी पड़ी है। और उसी-में वह राजी हुई है।'

माँ

श्री वैकुण्ठनाथ मिश्र "वैकुण्ठ"

हृदय पटल पर अंकित है वह तेरी मधुर-मधुर मुसुकान,
वीणा की झंकार मनोहर भावमयी अति रुचिकर तान।
उस अतीत स्मृति में तेरी है उमड़ा हुआ हृदय का ज्वार,
नाच रहा आँखों में मेरे बजा-बजा हृत्तन्त्री तार।
लोल हिलोरें इधर-उधर से गातीं कुछ उन्मत्त विराग,
लय हो जाता उनकी लय में लेकर यह अनंत अनुराग।
खो जाता माँ! खो जाता, आकुल बन रह जाता अनजान,
कर दूँ क्या उत्सर्ग चरण पर कैसे करूँ मान सम्मान?

सुशोभन के चले जाने के बाद भी कुछ देर तक सोमनाथ और मीना चुपचाप बैठे रहे। न कोई किसी की ओर ताका न किसी से बोला....।

उसके बाद एक समय सोमनाथ ने देखा कि मीना टेबुल के नीचे उसके हाथ की ओर अपना हाथ बढ़ा दी है सोमनाथ ने चारों ओर देखा...कोई ताक रहा है, या.... नही। उसके बाद मीना का हाथ अपने हाथ में ले जरा-सा दबा दिया। दोनों के चेहरे पर मुस्कान खिल आई। फिर कोई किसी की ओर आँख उठा ताक न सका।

एकांकी
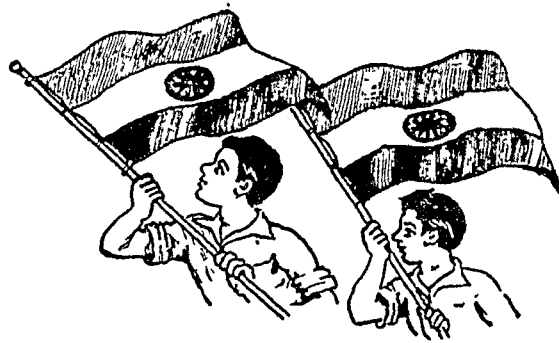
अहल्या

श्री रामेश्वरदयाल दुबे

[गौतम ऋषि का आश्रम। निस्तब्ध वातावरण। गुरुदेव विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का प्रवेश]

राम—गुरुदेव ! क्या यही गौतम ऋषि का आश्रम है ?

विश्वामित्र—हाँ, यही वह आश्रम है, राम ! जहाँ कभी गौतम ऋषि की वाणी से उद्घोषित ऋचायें वातावरण में गूंजती रहती थीं। खगों का कलरव, और मृगों की उछल-कूद देखते ही बनती थी, किन्तु आज, आज यह उजड़ा हुआ आश्रम, निस्तब्ध वातावरण, मौन वृक्ष और जड़ शिलायें........।

राम—गुरुदेव ! नीरव निस्तब्धता तो शान्ति की जननी होती है, किन्तु यहाँकी निस्तब्धता कण-कण पर अवसाद की छाया डाल रही है।

विश्वामित्र—एक अघटित घटना जो यहाँ घट चुकी है। गौतम ऋषि और सुन्दरी अहल्या का सुखमय दाम्पत्य जीवन यहीं पर बिखर गया है।

लक्ष्मण—गुरुदेव ! क्या उन्हीं गौतम ऋषि का यह आश्रम है, जिनसे आपने परसों ही परिचय कराया था।

विश्वामित्र—हाँ लक्ष्मण, वही गौतम ऋषि, जिनकी पत्नी अहल्या थीं।

लक्ष्मण—[आश्चर्य-चकित होकर] पत्नी थीं ! क्या आज अहल्या देवी उनकी पत्नी नहीं हैं ?

विश्वामित्र—बेटा लक्ष्मण ! संसार में कभी-कभी अनोखी घटनायें घट जाया करती है। भावावेश में मानव-मन संज्ञाहीन होकर कहाँका कहाँ वह जाता है और जब पुनः संज्ञा प्राप्त होती है, तब तट पर पड़ी उस मछली की भाँति तड़फड़ाता है, जो ज्वार में बहकर जल से दूर जा गिरती है।

राम—आप ठीक कहते हैं गुरुदेव ! भावावेग ऐसा ही प्रबल होता है। भावों का महत्त्व कम नहीं है, किन्तु उसके साथ प्रज्ञा का रहना परम आवश्यक है।

विश्वामित्र—सुन रहे हो, लक्ष्मण ? राम की वाणी में तुम्हारे लिये भी कुछ है।

लक्ष्मण—सब समझता हूँ गुरुदेव ! किन्तु जब भावावेग होता है, तब प्रज्ञा लज्जाशील बन जाती है।

राम—गुरुदेव ! कुटी सूनी-सी पड़ी है। लगता है, अहल्या देवी कहीं बाहर गई हैं।

लक्ष्मण—नहीं आर्यश्रेष्ठ ! अहल्या देवी कुटी में ही है। मैंने दूर से एक महिला को कुटी में प्रवेश करते देखा था।

विश्वामित्र—अहल्या देवी कुटी में नहीं है। यदि होतीं, तो हम लोगों के यहाँ आने पर वे अवश्य बाहर आतीं। सामान्य शिष्टाचार तो निभाती हो !

[भीतर से ही आवाज आती है]

अहल्या—सामान्य शिष्टाचार नारी-स्वभाव के अनुकूल नही पड़ता। दुहरे जीवन का भार नारी नहीं उठा सकती। एक समय था, जब मैंने अपना सर्वस्व एक पुरुष के चरणों में अर्पण कर दिया था। आज मैं सम्पूर्ण पुरुष जाति के प्रति दूसरा ही भाव रखती हूँ। तुम तीनों पुरुष हो, इसलिये कुटी के आँगन में तुम्हें उपेक्षा ही मिलेगी।

लक्ष्मण—चक्रवर्ती कोशल-नरेश के राजकुमार की उपेक्षा ? आत्मज्ञानी ऋषि प्रवर गुरुदेव की उपेक्षा ?

अहल्या—अपना नाम क्यों भूल गये ? हाँ, हाँ, उपेक्षा ! पुरुष मात्र के प्रति मेरे मन में उपेक्षा का ही भाव है। वह घृणा में परिवर्तित न हो जाय, यही मनाती रहती हूँ।

राम—अहल्या देवी ! कोशल-नरेश दशरथ का पुत्र राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ आपको प्रणाम करता है।

अहल्या—प्रणाम करके मेरा उपहास तो नहीं कर रहे हो ? राम !

राम—देवी अहल्या ! शंकाकुल हृदय शान्ति नहीं दे सकता। एक ही दृष्टिकोण से सबको देखने में न्याय नही हो सकता है।

अहल्या—पुरुषों के मुख से 'न्याय' शब्द सुनकर मैं क्षोभ अनुभव करती हूँ। उनका 'न्याय' सापेक्ष होता है।

राम—देवी अहल्या ! ऐसा प्रतीत होता है कि आपका मन बहुत ही मर्माहत हो चुका है, उसीका यह परि-

णाम है कि व्यंग्य भरी शैली नारी-सुलभ वाणी माधुर्य को कुंठित बना रही है।

अहल्या—अपने इस दोष को स्वीकार करती हूँ, किन्तु इसका श्रेय भी पुरुष को ही है।

लक्ष्मण—पुरुषों पर आक्षेप करनेवाली यह महिला विचित्र प्रतीत होती है। बाहर आने का भी सौजन्य नहीं दिखाती।

राम—लक्ष्मण! तुम मौन रहो! जिसका हृदय टूट जाता है, उसके स्वभाव में, यदि दर्प रहा, तो रुक्षता आ ही जाती है।

विश्वामित्र—बेचारी अबला सदैव दयनीय है।

अहल्या—नारी को 'अबला' समझनेवाले, 'दयनीय' समझने वाले, अपनी शक्ति के अभिमानी पुरुषों का यह भाव ही तो असहनीय है। 'अबला' समझकर ही तो आज तक पुरुषों ने उसके ऊपर अत्याचार किये है।

राम—उसके लिये पुरुष-वर्ग का एक प्रतिनिधि होने के नाते मैं लज्जित हूँ और आपसे क्षमा चाहता हूँ।

अहल्या—[चकित भाव से] पुरुष होकर नारी से क्षमा याचना!

[बाहर आते हुये] तब ऐसे पुरुष के सम्मुख आने में कोई संकोच नहीं।

[आसन देती हुई] इधर बैठिये रघुकुल तिलक राम! ऋषिप्रवर! आप इस आसन पर विराजें। [तीसरा आसन देती हुई] आप, आप इधर।

[सब बैठते हैं। अहल्या स्वयं भी एक शिला पर बैठती है]

विश्वामित्र—हम लोग जनकपुर जा रहे थे। कोशल-नरेश के इन राजकुमारों को अरण्यासन बहुत प्रिय है। ऋषियों-मुनियों को अपनी प्रणाति अर्पित करते हुये, आज ये दोनों राजकुमार यहाँ आ पहुँचे हैं।

अहल्या—ऋषिप्रवर! आपका और आपके शिष्यों का यह उजड़ा आश्रम स्वागत करता है।

विश्वामित्र—परसों हम गौतम ऋषि के समीप थे। वहीं इन राजकुमारों को वह घटना सुनने को मिली, जिसके कारण दो उजड़े आश्रमों की सृष्टि हुई है।

अहल्या—दो ही क्यों? ऋषि प्रवर! पुरुषों की इस अहमन्यता के कारण, कि पुरुष अपराध नहीं कर सकते, न जाने कितने स्वर्ग आज नर्क बन चुके हैं। कैसी विचित्र बात है कि दो व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार से घटनेवाली घटना का सारा दोष अबला पर डाल कर सबल पुरुष अलग खड़ा हो जाता है। और 'अबला' को 'अवगुण खानि' कहना न्याय मानता है। और पुरुष, इसके लिये लज्जा भी अनुभव नहीं करता।

लक्ष्मण—पुरुषों के लिये क्या आपके शब्दकोश में केवल कठोर ही शब्द हैं?

राम—लक्ष्मण! मर्माहत व्यक्ति हमारी करुणा का अधिकारी होता है। उसके कटु वचनों को भी हमें प्रसाद रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये। सन्देह के आधार पर भावावेश में न करने योग्य कार्य का कर जाना कभी भी उचित नहीं होता। इस घटना में भी ऐसा ही कुछ घटा है। मेरे प्रश्नों का ठीक-सा सन्तोषप्रद उत्तर गौतम ऋषि नहीं दे सके थे।

लक्ष्मण—फिर भी मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं, कि सारा दोष पुरुष का होता है।

अहल्या—कैसे मानगे? उसी पुरुष जाति के आप एक प्रतिनिधि हैं न! दाम्पत्य जीवन के लिये क्या एक पुरुष, एक नारी पर्याप्त नहीं है? किसीकी तीन-तीन मातायें होना किस बात का द्योतक है? अप्सराओं को प्रेम-भाजन बनाकर उनके मधुर फलों को किस ऋषि ने स्वीकार किया है? युग-युग से यही कथा चलती आ रही है।

लक्ष्मण—[आवेश में] आप यह क्या कह रही हैं?

राम—[एक तरफ हटकर] लक्ष्मण, इधर आओ।

[लक्ष्मण से कुछ कहते हैं। लक्ष्मण बाहर चले जाते हैं]

विश्वामित्र—देवी अहल्या! तुम अपने सौन्दर्य के लिये ही नहीं, अपने मीठे स्वभाव के लिये भी लोक-प्रसिद्ध थीं। तुम कितनी मृदु थीं, अब कितनी कठोर!

अहल्या—ऋषि प्रवर! आप ठीक कह रहे हैं। पहले मैं मृदु थी, आज मैं कठोर बन गयी हूँ, शिला बन गयी हूँ। क्यों न बनूँ? इस जन ने कितने आघात सहे हैं।

मैं अपने स्वर्ग में विहार करती थी। मेरे लिये तब सोने के दिन थे, चाँदी की रातें। एक पुरुष की छाया में मैं वल्लरी की भाँति विकसित और मुकालित हो रही थी। गोदी में पुत्र शतानन्द को पाकर मेरा जीवन सफल हो गया था। स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया था।

[रोने लगती है]

राम—देवी अहल्या·······

अहल्या—नहीं मुझे रोको मत। जब कहने चली हूँ, तो मुझे कह लेने दो। जी का भार कुछ तो हलका होगा!

भाई दिवोदास का मित्र, देवजाति का नृपति इन्द्र मुझे किशोरावस्था में देख चुका था। वह एक बार यहाँ आया। उस समय शतानन्द के साथ उसके पिता समिधा के लिये बाहर गये थे।

इन्द्र उस देव जाति का प्रतिनिधि था, जिसमें विवाह का कोई महत्त्व नहीं होता। उसने दुर्बुद्धि से मेरे सामने एक अनोखा और अनुचित प्रस्ताव रखा। मैं आर्य-ललना थी, आज भी हूँ। मैंने आर्योचित वाणी में उसे दुत्कारकर कुटी से बाहर निकल जाने के लिये कहा।

हताश उसे बाहर जाना पड़ा। इतने में शतानन्द के साथ प्राणेश्वर लौटे। इन्द्र को कुटी से निकलते उन्होंने देख लिया और कुशंका के सर्प ने उन्हें डस लिया।

फिर क्या हुआ—मत पूछो। इतना क्रोधावेश कभी न देखा था। नेत्रों से चिनगारियाँ झर रहीं थीं। इसी शिला पर उन्होंने मुझे पटक दिया था। शतानन्द का हाथ पकड़ा और चले गये। चले गये और नहीं लौटे।

[रोने लगती हैं]

म—शान्त हो देवी! शान्त हो।

ल्या—[आवेश में] शान्त होऊँ? मैं शान्त होऊँ? आप कह क्या रहे हैं और किससे कह रहे है? उस अहल्या से, जिसके रोम-रोम में सौ-सौ बिच्छुओं ने डंक मारे हैं, जिसने उस समय से लेकर आजतक, इसी शिला पर बैठे-बैठे दिन नहीं, मास नहीं, वर्ष नहीं, युग बिता दिये हैं। उस अहल्या को आप शान्त होने के लिए कह रहे हैं, जिसके वाम कक्ष में अब भी नारी का हृदय धड़क रहा है और जो केवल पति-वंचिता ही नहीं, पुत्र-वंचिता भी हो गयी है!

स्वामित्र—लगता है, देवी अहल्या! तुम्हारे साथ अन्याय हो गया है।

ल्या—[उपेक्षा के साथ] ल···ग···ता···है। नारी के वचनों पर पुरुष क्यों विश्वास करेगा? हाय री अभागी नारी!

विश्वामित्र—नहीं-नहीं मेरे कहने का अर्थ इतना ही था कि सन्देह और कुशंका इस दुर्घटना का मूल कारण बन गयी।

राम—देवी अहल्या! अतीत को वर्तमान बनाये रखना उचित नहीं। जो गत है, उसे विगत ही समझना चाहिये। वर्तमान की भूमि पर खड़े होकर भविष्य की ओर निहारना ही तो जीवन है।

अहल्या—मेरा वर्तमान तो मेरी यह शिला है, जिस पर मैं बैठी हूँ। इस शिला और मेरे जीवन में है कितना साम्य, कितना साम्य! वर्षों से यह शिला ही मेरे शरीर का आधार बनी हुई है। यही मेरा जीवन है, यही मेरा वर्तमान। भविष्य एकदम अन्धकारमय, इसीलिये तो अतीत की घटनाओं में अपना मन उलझाये रहती हूँ। चारा भी क्या है?

राम—जीवन से कभी भी इतना निराश नहीं होना चाहिये। देवी अहल्या! कठोर वर्तमान को हम मृदु बना सकते हैं और अन्धकार को प्रकाशमय!

निश्चय ही नारी के प्रति नर अन्याय करता आया है। उसे न्याय मिलना ही चाहिये। नर और नारी के पवित्र सम्बन्ध के बीच किसी भी तीसरे प्राणी का आना अनुचित है। अमानवीय है। देवी अहल्या! आप इसे अन्यथा न समझें! इस आँगन की पवित्र रज मुझसे एक वचन की प्रतीक्षा कर रही है कि यह जन आजीवन एक पत्नीव्रत का व्रती रहेगा।

विश्वामित्र—राम!. तुम धन्य हो! दूसरे की मुक्ति के लिये तुम स्वयं बन्धन में बँधते हो।

राम—गुरुदेव, इसमें धन्यता की कोई बात नहीं। प्रकृति में आई हुई विकृति को दूर करना ही तो संस्कृति है। गौतम ऋषि भी पश्चात्ताप की अग्नि में तप कर शुद्ध हो गये हैं।

विश्वामित्र—तब क्यों न देवी अहल्या से प्रार्थना की जाय कि वे ऋषि के सूने मन्दिर में प्रेम की प्राण-प्रतिष्ठा करने चलें।

अहल्या—विश्वामित्र जी, अहल्या तो शिला है शिला। वह जड़ है, जंगम नहीं। वह कहीं नहीं जावेगी, कहीं नहीं जावेगी।

राम—गुरुदेव, देवी अहल्या को कहीं न जाना होगा। वे अपने घर में ही रहेंगी। जो घर छोड़कर चला गया है, उसे ही आना चाहिये। मैने लक्ष्मण को भेजा है। वह आ ही रहा होगा और सम्भवतः उसके साथ गौतम ऋषि भी।

विश्वामित्र—गौतम ऋषि भी ? यदि ऐसा हो जाय तो अहोभाग्य, अहोभाग्य !

अहल्या—पुरुषोत्तम राम ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ?

राम—देवी अहल्या ! जिसे आप अभी सुन रही है, उसे अव आप देखेंगी भी। अभी, यही, इसी आँगन में।

विश्वामित्र—राम, चिरंजीव राम ! तुम्हारे अलौकिक काम मुझे चकित कर देते है !

[लक्ष्मण और गौतम का प्रवेश]

राम—[उठकर] आइये गौतम ऋषि !

गौतम—मेरा सब को प्रणाम।

विश्वामित्र—[विनोद मे] सब मे तो अहल्या भी है, ऋषि गौतम !

गौतम—नारी तो और अधिक वन्दनीय है।

[अहल्या विह्वल होकर गौतम के चरणों मे झुक जाती है। गौतम स्नेहपूर्वक उसको उठाते है]

राम—यदि यहाँ मेरे पास अनन्त मणि-रत्न होते, तो उन्हे मैं इस पावन झाँकी पर न्योछावर कर देता !

[लक्ष्मण से] लक्ष्मण ! सामने के कुंज से कुछ फूल तो चुन लाओ। इस युगल-जोड़ी पर उन्हे बरसा कर मैं धन्यता अनुभव करना चाहता हूँ।

[लक्ष्मण फूल लेने जाते हैं]

विश्वामित्र—गौतम ऋषि ! तुम इतनी सरलता से आ जाओगे, मुझे ऐसी आशा नही थी।

गौतम—मैंने भी ऐसा कब सोचा था ? किन्तु ऋषिवर ! आपके इस शिष्य राम मे अलौकिक आकर्षण है। जब परसों उसके दर्शन हुए थे, तब मैंने पावनता का अनुभव किया था। वह अन्तर के तार खीचता रहा और मैं खिचता हुआ यहाँ आ पहुँचा।

राम—पश्चाताप की अग्नि में तप कर जीवन कंचन-सा ही कान्तिवान बन जाता है। अपनी भूलों पर पैर रखकर उठने मे ही तो जीवन की धन्यता है। लगता है जैसे दो अभिशाप अब एक वरदान में परिणत होकर सुगन्धि फैला रहे है। गौतम ऋषि और अहल्या देवी को एक साथ देखकर हर्ष स्वय आह्लादित हो रहा है।

गौतम—पुरुषोत्तम राम ! यह मंगल घड़ी आप की ही प्रेरणा से प्राप्त हुई है। मेरा विनत प्रणाम स्वीकार करें।

अहल्या—ऋषि प्रवर ! मै आपकी भी जन्म-जन्म भर ऋणी रहूँगी। आपकी ही कृपा से पुरुषोत्तम राम यहाँ पधारे। उनकी चरण-रज से यह कुटी, यह आँगन पवित्र और धन्य बन गया है। कण-कण की जड़ता मिट गयी है। नव जीवन का संचार हो गया है।

मेरी चिरसंगिनी शिला जैसे सजीव हो गई है। लगता है जैसे तापसी तमिसा का अन्धकार विगत-कहानी बन गया है। और प्रभापूर्ण प्राची किरण-करों से मांगल्य का अभिषेक कर रही है।

विश्वामित्र—आज की यह घड़ी कितनी पावन है, कितनी धन्य है, कितनी मगलमय है ?

[लक्ष्मण का प्रवेश]

अहल्या—[लक्ष्मण से] राजकुमार ! ये पुष्प मुझे दो।

[लक्ष्मण ने पुष्प लेकर ऋषि गौतम को भी देती है]

इन फूलों का सदुपयोग हम करेंगे

[राम पर फूलों की वर्षा करती है]

अहल्या-गौतम—

रघुपति राघव राजाराम। जन उद्धारक करुणा धाम ॥
रघुपति राघव राजाराम। जन उद्धारक करुणा धाम ॥
रघुपति राघव राजाराम ॥

नवल किरण, कवि—राजपति दुबे 'बालेन्दु', प्रकाशिका—श्रीमती रानी देवी दुबे, द्वारा—श्री विश्वेश्वरदयाल शर्मा, हर्षनगर, इटावा (उ०प्र०)

अपने प्रिय शिष्य श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु' जी के सम्बन्ध में उनके साहित्यिक-गुरु, पिंगल-शास्त्र के आचार्य श्री राधा वल्लभ दीक्षित 'वल्लभ' जी ने जो कुछ लिखा है सर्वप्रथम उसे जान लेना आवश्यक है, 'यह देखकर और भी प्रसन्नता होती है कि वे (बालेन्दु जी) काव्य के प्रति आधुनिकता के चक्कर में नहीं पड़े है। फलत. उनकी रचनाओं का सम्बन्ध भारतीय चिरन्तन काव्य-धारा से अविच्छिन बना हुआ है। वे लोकगीतों की रचना में तो अद्वितीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाएँ भी भाव-प्रवणता, मधुर व्यंजना शैली और रसानुकूलता में निराली हैं।" संग्रह कविताएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में कवि का काव्यादर्श व्यक्त हुआ है:—

भावना सुकुमार दे दो,
प्रणय पारावारा दे दो,
स्वप्न था कोई सलोना, याद अब भी आ रहा है।

गेयता का बाहुल्य बालेन्दुजी की विशेषता हो सकती है और उसी के अनुकूल उनकी भाषा भी प्रस्तुत हुई है, किन्तु कुछ स्थानों पर अशुद्ध वाक्य-रचना अखरती है। जैसे—'छोड़कर मझधार में जब चल दिए मैने पुकारे', 'लहर बन चूमूँ पुलिन, जिस ठाँव आ प्रिय पाँव फेरा'। इसी प्रकार पृष्ठ १४ पर 'आशा की निर्मल पवनों में' पवन का बहुवचन 'पवनो' अशुद्ध है और पवन शब्द स्त्रीलिंग नहीं है।

कवि ने लोकगीत लिखने का भी प्रयास किया है। किंतु लोक-भाषा, लोक-भाव, लोक-प्रकृति के बिना वे कसे सफल हो सकते हैं? भला इन पक्तियों में लोक-गीत कहाँ है?

बिरहा के गीत जगे, डोली परछाइयाँ।
कूक भरी कोयल ने, उमँगी अमराइयाँ।
लाज भरी चितवन में डूबी गहराइयाँ।
पुलक भरे तन-मन में, गूँजी सहनाइयाँ।

प्रस्तुत संग्रह में स्मृति, प्रकृति, जीवन, स्वप्न दीपावली, प्रगति, राजघाट, नेता, मानव और ईंट, पद्रह अगस्त, सैनिक, जवाहरलाल नेहरू, एटम, युद्ध, मैं और तुम, राष्ट्र, राष्ट्रकवि, प्यार, विरह-वेदना, जय जवान जय किसान आदि अनेकानेक विषयो पर कविताएँ लिखी गयी है। कवि में भावुकता है। उसमें विकास की भी सभावनाएँ है।

अनुभूतियों के घेरे, कवि—बालकृष्ण मिश्र, प्रकाशक—गोपाल कृष्ण मिश्र, रफीनगर, रायबरेली।

'अपनी कलम से' शीर्षक के अन्तर्गत श्री बालकृष्ण मिश्र ने लिखा है, "मेरी धारणा है—विज्ञान भौतिक दृष्टि से भले ही किसी परिवर्तन में समर्थ हो किन्तु मनोभावों की सृष्टि में उसका प्रभाव सदैव नगण्य रहेगा। मानवीय मनोदशाओं की रेखाएँ और उनके संवेग अपनी सत्ता, अपनी इकाई, अपना लक्ष्य अलग ही रखेंगे। हाँ, शैलीगत वैचित्र्य को लेकर उनका बाह्य रूप विभिन्न परिधानों में अपना आकार बदलता रहे यह दूसरी बात है।"

कवि आन्तरिक दृष्टि से सम्पन्न और भावानुकूल भाषा का धनी ज्ञात होता है। वह बहिर्मुखी कम, अन्तर्मुखी अधिक है। उसने हर विषय पर गम्भीरता से विचार किया है। वह भावना का पुजारी है। 'एक ताजमहल—अनेक भावनाएँ, शीर्षक कविता मे निम्न पक्तियाँ देखिए:—

ढह जाता निर्माण
अनश्वर सदा भावना
ढह जाएगा ताज—
अगर है ताज-कल्पना

श्री बालकृष्ण मिश्र की वे कविताएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं जिनमे प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद अथवा विरोधी वस्तुओ का सम्वाद व्यक्त करने की स्थिति आयी है। कवि ने कई जगह निगमन शैली अपनाई है, सूत्र को विस्तृत

वर्णन बना देने में वह पारंगत है। 'अस्पताल, एक मन्दिर' इसका सफल उदाहरण है। इस कविता की दो पंक्तियाँ हृदय को गहराई तक छू लेती है :—

निर्धन धनवान सभी का एक बिछौना है,
पीड़ा के घर में ऊँच-नीच का क्या विवेक ?

कवि चूँकि यथार्थ का पोषक है, इसलिए वह 'रेंगता हुआ यथार्थ' में विवश होकर कहता है :—

मैं अब पहले की तरह प्यार का भावुक न रहा,
मेरा आदर्श बहुत दूर खड़ा रोता है।
ये मुकदमे, ये फायलें, ये पाँच-दस के नोट,
रोज उठ-उठ के चाटते हैं जिन्दगी मेरी।

'स्वीकृत सत्य' में कवि लिखता है :—

हँस कर बोली वह "नाम हमारा ठोकर है,"
छेड़ती न उसको राह देख जो चलता है।
मैं उसे सचेत किया करती रे कवि केवल,
जो व्योम देखता हुआ धरा पर चलता है।

'स्थविर की व्यथा-कथा' पढ़कर संकेत मिलता है कि श्री बालकृष्ण मिश्र में खण्डकाव्य अथवा प्रबन्धकाव्य लिखने की पर्याप्त क्षमता है। विषय-वैविध्य और भाषा की सादगी ही उनकी सफलता का आधार है।

स्वगता, कवयित्री—कुमारी मधु, प्रकाशक अलफा-बीटा पब्लिकेशन्स, पोस्टबाक्स २५३९, कलकत्ता—१

'हर लहर में ही किनारा मिल गया मुझको' कहने वाली कवयित्री के तथाकथित नवगीतों का संग्रह है 'स्वगता'। कुमारी मधु लिखती हैं, "आत्मनिष्ठा का विकास ही आस्था का सघटन है, जिसके फलस्वरूप कुंठित, पराजित और विरक्त व्यक्तित्व को भी पुनः प्राण-वत्ता की उपलब्धि होती है। अनुभव की सुपरिणत और समन्वित जीवन-दृष्टि से आत्मबोध ही व्यापक और जीवन्त मानव-बोध से अभिन्न हो जाता है।"

मेरे मन्दिर का भी कण-कण
है दिव्य ज्योति से आलोकित,
ईश्वर बदला, पूजा बदली, ...
पर नहीं समर्पण बदलेगा !

कुमारी मधु के गीत अपनी भावाभिव्यक्ति में सशक्त हैं, किन्तु उन्हें नवगीत कहना उचित नहीं क्योंकि उनमें नवीनता का कोई चिह्न नहीं, उनके विषय पुराने है और शैली में भी कोई नवीनता नहीं। फिर भी उनका आत्म-विश्वास प्रशंसनीय है :—

...किन्तु जो उठता, भला वह कब झुका है ?
बढ़ चले जिसके कदम, वह कब रुका है ?

उनकी सद्भावनात्मक प्रतिज्ञा पूरी हो सकेगी, इसमें कोई सन्देह नही :—

समय की तृषित आत्मा के अधर पर
अभी तो सुधा-बूँद बनना मुझे है।

संग्रह की अधिकांश कविताएँ छायावादी संस्कारों से प्रभावित हैं। ('सपनों का सार' आदि), किन्तु सभी गीतों में कवयित्री की अपनी सवेदना अवश्य जुड़ी हुई हैं। वह आवाहन करती है :—

एक बार मेरे गीतों में आकर देखो;
जीवन का संगीत स्वयं बन जाओगे।

सचमुच ! प्रेम, मिलन, विरह आदि के प्रति कवयित्री की संवेदनात्मक अभिव्यक्तियाँ जीवन का अपना सगीत रचती है। वह प्रकृति से अपना तादात्म्य स्थापित करती हुई बादल से कहती है :—

फूलों से भर जाए आँगन,
वह रङ्गीन बहार मुझे दो।

कवयित्री की निम्नलिखित पंक्तियाँ पढ़कर न जाने क्यों लोककथा का वह अंश याद आ जाता है जिसमें बताया जाता है कि अमुक राक्षस के प्राण सात समुद्र पार किसी पिंजरे में बन्द तोते में स्थित है। यह सोचकर बड़ा अच्छा-अच्छा लगता है :—

दूर होकर भी किसी के प्राण की आधार हूँ मैं !
दूर कहीं बदली में मेरे भोले प्राण सिसकते रहते।

कुमारी मधु प्रकृति की सार्थक चितेरी हैं, वे प्रकृति के अनेकानेक दृश्यों को अर्थ देने में समर्थ है। ऐसा लगता है कि सुधि उनकी चिरसगिनी है और वेदना उनकी शक्ति। तभी तो वे कहती है :—

वेदना में डूबकर संवेदना जागी हृदय में,
इसलिए मैं प्रीति का सागर वहाए जा रही हूँ !

'साथी, अब तो केवल अपने चलने पर विश्वास है' कहनेवाली कवयित्री की अनेक कविताओं में सहज ओज भी दिखाई पड़ता है ।

चाँदनी भी धूप—कवयित्री-मनोरमा 'मधु', प्रकाशक-ओम प्रकाश, १०/४९०, एलनगंज, कानपुर ।

श्रीमती मनोरमा दुबे 'मधु' की अभिव्यक्तियाँ कितनी प्रामाणिक और परिवेशजन्य है । यह निम्न पक्तियों से ही सिद्ध है :—

युग युग चमके कोहिनूर मेरे सुहाग का
ऐसा अनुपम शीशमहल कब बन पाएगा ।
मेरे सुहाग का चिह्न-'प्रेम की असफलता'
अब नहीं भ्रमित होने दूँगी मन को छल से ।

'चांदनी भी धूप' मनोरमा 'मधु' के गीतो, मुक्तकों और उनकी कविताओ का मधुर सग्रह है । इस सग्रह के सम्बन्ध में मैं श्री शरद् के विचार का पूरी तरह समर्थन करता हूँ कि "मधु जी के स्वनिर्मित शब्द उनकी भाषा और सृजन की मौलिकता के बोलते प्रतिबिम्ब है जिन्होने इस सग्रह को रस-ध्वनि, सुन्दरता और सजीवता का एलवम बना दिया है । ये कुछ शब्द किसे प्रभावित करने में असफल होगे—साँसे हिमानी, ओस के अनुवाद, लाज के स्तूप, वायु के खंडहर, नयनो की चित्रकला, लज्जा के प्रथम पृष्ठ, ओसाली निद्रा के निकुंज, नीले सपनो वाले अतीत, सुहाग की शेफाली आदि ।

मधु जी में अभिव्यक्ति की कोई जटिलता नही, उनके भाव-गुम्फन में कोई उलझाव नही, वरन् स्पष्टता की पर्याप्त मात्रा है । उनके गीतों में एक नया आकर्षण है । भाषा, शैली आदि सादगी के सन्दर्भ में निम्नलिखित उद्धरण देखे :—

मैं स्वयं नहीं सरका पाई अवगुंठन अपने भावों का,
पूरा रच सका न जीवन भर अधरचा महावर पाँवों का ।
लज्जा के आँचल में वन्दी रह गये अछूते अलंकार ।

कवयित्री की कविताओं में नये प्रयोग, मुक्तको में चुस्त संक्षिप्तता और गीतों मे भाव-विह्वलता सर्वत्र मिलती है । उसकी रचनाएँ कई अर्थों में प्रौढ़ और पुष्ट है । 'मेरे सुख की अन्तिम सीमा' में सम्बोधन-लालित्य देखते ही बनता है । इसी प्रकार कई अन्य रचनाओ में भावाकुलता और अभिव्यक्ति की मिठास पाठक को प्रभावित किए विना नही रहती । पूरा सग्रह पढ़कर ही कवयित्री की काव्यकला का पूरा-पूरा आनन्द लिया जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य—वृन्दावनदास, सुषमा पुस्तकालय दिल्ली ३१ । पृष्ठ—संख्या ३५१, मूल्य १० रु०

श्री वृन्दावनदासजी हिन्दी के उत्साही लेखक और कार्यकर्ता हैं । इस पुस्तक मे उनके समय-समय पर लिखे गये ५१ लेख संग्रहीत हैं । विषयानुसार इन लेखों का विभाजन भिन्न-भिन्न शीर्षकों मे कर दिया गया है, सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा विविध । यह लेख बहुत ही पुराने है । १९३०,-१९३२ के मध्य में उस समय की प्रकाशित पत्रिकाओ सुधा, माधुरी व भविष्य व्रजभारती आदि में छप चुके है । विविध के अन्तर्गत अधिकतर उस समय के साहित्यकारों पर छोटे-छोटे लेख हैं । सामाजिक विचार-क्षेत्र मे आने वाले लेख उस समय के समाज के लिये प्रभावशाली रहे होंगे जिस समय कि वे लिखे गये थे । सामाजिक क्षेत्र मे परिवर्तन आता रहता है । अब अवश्य ही वे उतने आवश्यक नही प्रतीत होते । परन्तु फिर भी उनमे कही-कही जो प्रमाण दिये गये है वे आज भी मान्य है । इनमे 'भविष्य' मे प्रकाशित '१९३०' मे लिखे 'विधवा विवाह' शीर्षक लेख के प्रमाण विशेष कर उल्लेखनीय है । ये प्रमाण वेदों से दिये गये है तथा कुछ मनुस्मृति से । आज विधवा-विवाह की समस्या की गंभीरता अपेक्षाकृत कम हो गयी है । अतःतर्क उतने तीखे नहीं लगते है, परन्तु उतने ठोस प्रमाण और तर्क उस समय में देना बड़े साहस का कार्य प्रतीत होता है । ऐतिहासिक शीर्षक मे लिखे-लेख भारतीय गौरव और अतीत की महिमा का गान करते हैं । सांस्कृतिक लेखों मे धर्म को कई पहलुओं से देखा गया है, और उन पर विवेचना की गयी है । श्री वृन्दावनदासजी का सम्बन्ध व्रजभूमि से है । अतः व्रज-सम्वन्धी स्वामी हरिदासजी तथा श्रीकृष्ण की भगवतगीता का समय आदि पर भी लेख इसमें प्राप्त है । कई लेख काफी रोचक है ।

लेखों के विचार बहुत स्पष्ट और भाषा बहुत सरल है । लिखने की शैली बहुत कुछ ऐसी हैं जैसे कि कोई सम्पादकीय हो । इन लेखों मे से लेखक का व्यक्तित्व झलकता है; भारत की संस्कृति और इतिहास का प्रेमी, भारतीय गौरव का पुजारी, सामाजिक अवगुणों को दूर करने को आतुर, भारत के प्रत्येक बड़े साहित्यिक को पुस्पाजलि अर्पित करने को लालायित इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का चित्र सामने आ जाता है । फुटकर लेख सदैव खो जाते है उनको आवद्ध करवा देना उनको नवजीवन देना होता है अतः पुस्तकाकार हो जाने से ये लेख ऐसे लेखों के पाठको को एक बार फिर प्राप्त हो गये हैं ।

नायक या नायिका

पंडित सोहनलाल द्विवेदी उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय मे बी० ए० में पढ़ते थे। वह विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का स्वर्णयुग था। अध्यक्ष थे बाबू श्यामसुंदरदास, और अध्यापक वर्ग मे थे ऐसे महान् साहित्यिक विद्वान् जैसे पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, पंडित केशवप्रसाद मिश्र आदि। उस समय की काशी चाहे विश्वविद्यालय के गीत के अनुसार 'ब्रह्मविद्या' की राजधानी न भी रह गयी हो, पर उस समय वह हिन्दी की राजधानी तो थी ही। उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त उस समय उसे विभूषित कर रहे थे डा० भगवानदास, प्रसादजी, रत्नाकरजी, सम्पूर्णानन्दजी, रायकृष्णदास, ब्रजरत्नदासजी, पंडित रामनारायण मिश्र, अन्नपूर्णानन्द, पराड़करजी, और इन सबसे निराले हिन्दी भक्त दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्त। उग्र, पंडित विश्वनाथ मिश्र, बेढब बनारसी, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि क्षितिज पर उदित हो चुके थे और साहित्याकाश मे उठ रहे थे। उन दिनों वहाँ जो साहित्यिक वातावरण था वह मानों भारतेन्दु के प्रयत्नों की चरम परिणति थी।

उन दिनों नयी छायावादी कविता 'फैशन' मे थी। प्रसादजी के 'आँसू' ने नवयुवको पर जो जादू फेंका था, वैसा हमारे अनुभव मे किसी कविता ने नहीं फेंका। 'आँसू' युवको के कंठ मे उतर चुका था, और वह पढ़ाया भी जाने लगा था।

किन्तु सोहनलालजी द्विवेदी को उसे पढ़कर बड़ी उलझन हुई। अपनी शका का समाधान कराने का उन्हे अपने गुरुजनों से साहस नही हुआ। किन्तु वह शंका उनके मानस को त्रस्त कर रही थी। अतएव एक दिन वे प्रसादजी के निवास-स्थान पर जा पहुँचे। प्रसादजी में सहज आभिजात्य था। वे उनसे बड़ी हार्दिकता से मिले। थोड़ी देर में द्विवेदीजी का संकोच जाता रहा और उन्होने कहा कि 'आँसू' के सम्बन्ध मे मुझे एक शंका हे। उसका समाधान यदि आप कर दें तो बड़ी कृपा हो। प्रसादजी ने सहज भाव से कहा कि समाधान करने का मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा।

द्विवेदीजी ने अपनी उलझन इस प्रकार रखी: 'आँसू' में आपका एक छन्द है।

> **शशिमुख पर घूंघट डाले,**
> **अंचल में दीप छिपाये,**
> **जीवन की गोधूली में**
> **कौतूहल से तुम आये!**

आपने इसमे नायक का चित्र दिया है या नायिका का? एक ओर तो 'घूंघट' 'अंचल' का वर्णन है, और दूसरी ओर "तुम आये" है। इससे स्पष्ट नही होता कि यह चित्र स्त्री का है या पुरुष का। आपका तात्पर्य क्या है?"

प्रसादजी एक क्षण मौन रहे, और फिर अंग्रेजी मे उन्होने द्विवेदीजी को संक्षिप्त उत्तर दिया—Love has no gender".

द्विवेदीजी आज भी अपने मानस मे 'जेंडर-हीन' प्रेम का चित्र बनाने का प्रयत्न कर रहे है!

भास्कराचार्य की जन्मभूमि

श्री गोवर्द्धन शर्मा

कुछ समय से पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ज्योतिष-ग्रन्थकारों की लेखमालिका सरस्वती में प्रकाशित कर रहे है। गत अगस्त मास की सरस्वती में आपने भास्कराचार्य के विषय में एक लेख लिखा है। लेख अच्छा और मनन करने योग्य है। उसका कुछ अंश स्वर्गीय पण्डित सुधाकर जी गणक तरङ्गिणी के आधार पर लिखा गया जान पड़ता है। भास्कराचार्य के विषय मे पण्डित गिरजाप्रसादजी के कुछ विचारों से हम सहमत नहीं। भास्कराचार्य ने अपनी जन्मभूमि और कुल-वृत्तान्त के विषय में अपने सभी ग्रन्थों एवं सिद्धान्त शिरोमणि के अन्त में स्पष्ट लिखा है :—

आसीत्सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जलविड़े शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।

इस श्लोक का यथार्थ पर्यालोचन न करके पन्डित सुधाकरजी ने अपनी तरङ्गिणी में लिखा है :

सह्यकुलाचलाश्रितपुरे विज्जड़विड़नाम्नि सम्प्रति वीजापुर नामतः प्रसिद्धे। इत्यादि। तथा यस्मात् क्षुब्धप्रकृति पुरुषाभ्यामित्यादि श्लोकस्य गोलाध्यायभुवनकोषारम्भरूपस्य व्याख्यायां मिताक्षरायां "त एते वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धा इति मूर्ति-भेदा वैष्णवागमे विशेषतः प्रसिद्धाः" इत्यादि लेखतोऽयं कार्णाटक-ब्राह्मणो वैष्णवः प्रतिभाति सर्वत्र विष्णुपुराणीय वचनोपादानाच्च।

भावार्थ यह कि सह्याद्रि पर्वत के कुल पर्वतों (छोटी-छोटी पहाड़ियों) के आश्रित विज्जलविड़, अर्थात् वर्त्तमान वीजापुर नामक प्रसिद्ध नगर, में भास्कराचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने गोलाध्याय के भुवन को प्रारम्भ के प्रथम श्लोक "प्रकृति-पुरुपाभ्याम्" इत्यादि की मिताक्षरा टीका में जो यह लिखा है कि वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन मूर्तियों के भेद वैष्णवागम में विशेष प्रसिद्ध हैं, इससे तथा विष्णुपुराण के वचनों का सर्वत्र उल्लेख करने से भास्कराचार्य वैष्णव प्रतीत होते है।

आश्चर्य है कि पण्डित सुधाकरजी जैसे प्रसिद्ध विद्वान् ने इन मूर्तियों तथा विष्णुपुराणीय वचनों का विशेष उल्लेख करने ही से भास्कर को कर्णाटकीय ब्राह्मण और वैष्णव कैसे मान लिया। क्या कर्णाटकीय देश के सिवा अन्य देश-निवासी वासुदेव, सकर्पण आदि नामों का उल्लेख नही कर सकते? यदि किसी शैव ज्योतिषी को ग्रन्थ लिखने के समय शैव शास्त्रों में अपनी अभीष्ट सामग्री न मिले, अतएव यदि वह वैष्णवागमों से उसे लेकर अपने ग्रन्थ की पूर्ति कर ले तो क्या वह शैव से वैष्णव हो जायगा? खेद की बात है कि पण्डित गिरजाप्रसाद जी ने भी, इस विषय मे, पूर्ण विचार नही किया। आपने लिखा है :—
"भास्कराचार्य का जन्म, १०३६ शालिवाहन शक, अर्थात् ११२४ ईसवी में हुआ था। कर्नाट-देश में सह्याद्रिपर्वत के पश्चिम प्रान्त में, विज्जड़विड़ (आधुनिक वीजापुर) उनकी जन्मभूमि है।"

सुधाकरजी ने तो भास्कराचार्य को कर्णाटक ब्राह्मण ही लिखा था, परन्तु आपने उनको कर्णाटक देशान्तर्गत वीजापुर का निवासी भी कह दिया।

भास्कराचार्य के पूर्वोक्त श्लोक—

आसीत सह्यकुलाचलाश्रितपुरे इत्यादि

का अर्थ सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचि नामक संस्कृत टीका के कर्त्ता मुनीश्वराचार्य इस प्रकार लिखते हैं :—

आसीदिति। विज्जलविड़म्। विड़मिति नामैकदेशे प्रसिद्धम्। तत्कुत्रेतिचेत्, सह्यनामककुलपर्वतान्तर्गतभूप्रदेशे महाराष्ट्रदेशान्तर्गतविदर्भापरपर्यायविराटदेशादपि निकटे गोदावर्या नातिदूरे नाम समीपे यस्मात्पञ्चक्रोशान्तरे— 'गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये' इति लीलावत्यामारम्भ उक्तगणेशस्य प्रतिमा प्रसिद्धाऽस्ति। सा तृतीयवर्णा नाम कृष्णवर्णास्ति।

इस मुनीश्वराचार्य की उक्ति से आचार्य की जन्मभूमि वीड़ नामक नगर है। वह सह्याचल के कुल पर्वतों के भूमि प्रदेश में, महाराष्ट्र-देशान्तर्गत विदर्भ अर्थात् वरार के पास, गोदावरी नदी से कुछ ही दूर है। गोदावरी से पांच कोस

पर, बीड़ नामक नगर के समीप ही, (लिंबग्राम में) आचार्य के उपास्य देवता श्री गणेशजी की प्रतिमा है। उसका वर्ण कृष्ण है। उसीका स्मरण आचार्य ने लीलावती नामक गणित ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया है।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि मुनीश्वराचार्य ने बीड़ के साथ जो विज्जल शब्द आदि में लगा हुआ है उसकी व्याख्या क्यों नही की ? उसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि मरीचि-टीका का रचनाकाल शक १५५७ अर्थात् सन् १६३५ ईसवी है। उस समय लोगों में इतिहास की अनभिज्ञता से, मुनीश्वराचार्य ने विज्जल शब्द की व्याख्या नही की। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए मैं प्रसिद्ध ज्योतिष-शास्त्रवेत्ता पण्डित वेंकटेश बापूजी केतकर के बनाये उन संस्कृत-पद्यों को नीचे देता हूँ जिनको उन्होंने अपने ज्योतिर्गणित नामक ग्रन्थ के अन्त में भास्कराचार्य के विषय मे लिखा है—

सह्याचलाज्जुन्नरसन्निधौ या,
सह्यस्य शाखेन्द्र-दिशि प्रयाता।
गोदावरी दक्षिण-रोधसा सा,
समं चलित्वा बिडसंहिताऽभूत ॥१।

सह्यस्य शाखासु महत्तमाऽपि,
नात्युद्गमोऽस्यां च महानदी नाम्।
प्रसिद्धयभावात्किल भास्करार्यैः,
संज्ञापिता सह्यकुलाचलेति ॥२॥

शिरोमणिग्रन्थसमाप्तिकाले,
बिडाग्निदिश्यभ्रकु (१०) योजनानि।
कल्याणनाम्नी जिनराजधानी,
तन्मण्डले विज्जल ईश आसीत् ॥३॥

कल्चूर्यवंश्यः परमादिपुत्रः
चालुक्यराण्माण्डलिकः प्रतापी।
सेनेश इत्युल्लिखितं शिलायां,
विजापुरेत्र्यद्रिदिशो (१०७३) न्मितेऽब्दे ॥४॥

चालुक्यसाम्राज्यसुकर्णधारः,
स्वस्वामिनं हन्त तृतीयतैलम्।
विजित्य लोभात् किल विज्जलोऽयं,
कल्याणसिंहासनमारुरोह ॥५॥

पद्मावतीं रूपवतीं विलोक्स्य,
व्यामोहितस्तां महिषीं चकार।
भ्रात्रैव तस्या बसवेन पश्चात्,
स घातितो मान्त्रिपदस्थितेन ॥६॥

संस्थापितं श्री बसवेन शैवं
मतं पुराणे बसवाभिधेच
जैनैस्तथा बिज्जलनाम्नि काव्ये
संकीर्त्तितं विज्जलभूपवृत्तम ॥७॥

पुरं स्थितं विज्जलराज्यमध्ये,
तस्माच्च तन्नामविशेषपूर्वम्।
श्री भास्करार्यैः स्वपुरं यथार्थं
संकीर्तितं विज्जलबीड़-नाम्ना ॥८॥

भावार्थ—बम्बई नगर के जुन्नर नगर के पास से सह्याद्रि पर्वत की जो शाखा पूर्व दिशा की ओर गई है वह गोदावरी नदी के दक्षिण तट के साथ-साथ चलकर बीड़ नगर के समीप पहुँची है। यद्यपि सह्याद्रि पर्वत की शाखायें बड़ी-बड़ी हैं तथापि उनसे महानदियों का उद्गम नहीं हुआ। अतः अपनी प्रसिद्धता का अभाव देखकर भास्कराचार्य को "आसीत्सह्यकुलाचलाश्रितपुरे" अर्थात् सह्याद्रि के कुल पर्वतों के आश्रित नगर मे यह वाक्य लिखना पड़ा। सिद्धान्त शिरोमणि के समाप्ति-काल में, अर्थात् शक १०७२ में, बीड़ नामक नगर से अग्निदिशा की ओर १० योजन (४० कोस) पर कल्याण नामक नगरी जैनियों की राजधानी थी। उस समय उस मण्डल का अधिपति विज्जल राजा था। इस बात की सत्यता उस शिलालेख से सिद्ध है जो शक १०७३ में बीजापुर में लिखा गया था। उक्त शिलालेख का कुछ भाग इस प्रकार है—'कल्चूर्यवंश्यः परमादिपुत्रश्चालुक्यराण्माण्डलिकः प्रतापी। सेनेश इत्यादि।" पूर्वोक्त विज्जल राजा पद्मावती को रूपवती देख उस पर मोहित हो गया। उसके पति कल्याणसिंह को जीतकर उसने उसके राज्यासन पर अधिकार कर लिया। फिर पद्मावती को उसने अपनी रानी बनाया। किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् पद्मावती के भाई बसव ने जो मन्त्री के पद पर नियत था, विज्जल को मारकर शैव मत की स्थापना की। यह वृत्तान्त बसव पुराण में और विज्जल का वृत्तान्त जैनियों ने बिज्जल काव्य में लिखा है।

भास्कराचार्य का बीड़ नामक नगर अब तक विद्वानों से पूर्ण है। वह दक्षिण हैदराबाद-प्रान्त का एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर है। वह गोदावरी से दक्षिण की ओर थोड़ी ही दूर पर है। उस समय (शक १०७२) विज्जल भूपति के राज्य में था। इसी लिए आचार्य ने उसे विज्जल बीड़ नाम दिया है। (विज्जलस्य विड़म विज्जलविडम्) विज्जल राजा का बीड़ विज्जलबीड़ ही कहलावेगा; इसमें सन्देह नही। यह सिद्ध है कि भास्कराचार्य की जन्मभूमि यही बीड़ नगरी है। जिसका पता मुनीश्वराचार्य ने अपनी बनाई शिरोमणि की टीका मरीचि मे दिया है।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

राष्ट्रचेता कवि सोहनलाल द्विवेदी

जिसकी कविता जीवन, उत्साह, वेग और बलपूर्ण हैं और जो लोगों की शिराओं में नवजीवन का संचार करती हैं—जिसकी वाणी बिजली सी हृदय में उतरती है—जिसने राष्ट्रीय चेतना को काव्य का सच्चा रूप दिया है—और जिसमें बालकों की सी मृदुता और बच्चों की सी सरलता है निम्न कविता पुस्तकें लिख चुके हैं :—

राष्ट्रीय चेतना और बाल-मनोरंजन की कविता पुस्तकें

जय गांधी—लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सजधज से प्रकाशित संग्रह २०·००

गांधी अभिनन्दन ग्रंथ—गांधीजी के संबंध में विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट कवितायें एकत्र संग्रहीत ७·५०

कुणाल—राजकुमार कुणाल की कारुणिक पर शान्त रस सफल खंड काव्य ३·७५

भैरवी—राष्ट्रीय जागरण के गीत जिनमें जनता रसमग्न हो उठती है। चार संस्करण हो चुके हैं। ३·५०

पूजागीत—जीवन में स्फूर्ति का संचार करनेवाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह २·७५

वासवदत्ता—प्रेम, कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द्वयुक्त बौद्ध आख्यान पर आधारित खंड काव्य ५·००

विषपान—समुद्रमंथन की पौराणिक कथा के आधार पर प्रवाह और ओजपूर्ण खंड काव्य १·५०

शिशु भारती—बालकों के लिए सरस और शिक्षाप्रद गीतों की रोचक पुस्तक १·५०

झरना—इस पुस्तक की कवितायें पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ते हैं १·५०

बाँसुरी—नन्हें पाठकों के लिए लिखी मनोहर विचित्र कवितायें ३·००

युगाधार—चुनी हुई कवितायें स्वतन्त्रता की प्रेरणा और स्फूर्ति देने वाली ४·५०

चित्रा—ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रण युक्त कविताओं और भावपूर्ण गीतों का संग्रह २·७५

वासन्ती—स्फुट कविताओं का सुन्दर और सरस संग्रह ३·००

बच्चों के बापू—गांधीजी और सब नेताओं का परिचय करानेवाली बहुरंगी छपी कविता पुस्तक २·५०

बाल भारती—बच्चों में नवीन उत्साह उत्पन्न करनेवाली सरल मनोरंजक कवितायें १·७५

चेतना—गांधीजी को आराध्यदेव मानकर रची हुई उत्प्रेरक कविताओं का संग्रह २·२५

दूध बताशा—दो रंगों में छपे बालकों के लिए मधुर कविता गीत १·७५

हँसो हँसाओ—बच्चों को गुदगुदी और हँसी पैदा करनेवाली कवितायें १·७५

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, इलाहाबाद

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ८·०० रुपये।

धर्म निरपेक्ष राज्य का मतलब एक ऐसा राज्य है जो सब तरह के धर्मो और मजहबों का आदर करता है और उन्हें फलने फूलने का एक-सा मौका देता है। भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत से धर्म और मिजहब हैं, धर्म निरपेक्षता की बुनियाद पर ही सच्ची राष्ट्रीयता कायम की जा सकती है। अगर कोई संकीर्ण दृष्टि रक्खी गई तो उस हालत में भारत में हमें हिन्दू राष्ट्रीयता, मुस्लिम राष्ट्रीयता, सिक्ख राष्ट्रीयता या ईसाई राष्ट्रीयता का खयाल रखना पड़ेगा, भारतीय राष्ट्रीयता का नहीं। ये संकीर्ण राष्ट्रीयतायें पुराने जमाने की बातें है। ये पिछड़े हुए और पुराने जमाने के नकशे हैं।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में कस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते है। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातंत्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ६·०० रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४, मूल्य १२·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

स्त्रियों के लिए शिक्षा-प्रद कुछ पुस्तकें

आदर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन है। पृष्ठ २६८; मूल्य ३·०० रुपये।

ठाकुर दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

नारी-जीवन—बहू-बेटियों को उपयुक्त गृहस्थ-जीवन विताने की विधियाँ मनोरंजक शैली में समझाई गई है। पृष्ठ २५१; मूल्य ३·५० रुपये।

पतिव्रता—इसमें छः पतिव्रताओं के चरितों का शिक्षाप्रद और मनोरंजक संग्रह है। पृष्ठ २४०; मूल्य १·५० रुपये।

पं० देवीदत्त शुक्ल (संकलनकर्त्ता)

पंचसती—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या, चिन्ता आदि रमणी रत्नों का आदर्श-चरित्र वर्णित है। पृष्ठ १५४; मूल्य २·०० रुपये।

डाक्टर बोधराज चोपड़ा

माँ और बच्चा—इस पुस्तक में बच्चों का पालन-पोषण करने, उन्हें स्वस्थ-सबल बनाने आदि आवश्यक बातों पर, सुन्दर प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ २५९; मूल्य ३·०० रुपये।

पतिव्रता गांधारी—कौरवों की माता पतिव्रता गांधारी का जीवनचरित, जो प्रत्येक नारी के लिए पठनीय है। पृष्ठ १३४; मूल्य १·५० रुपये।

श्री भगवानदीन पाठक

दमयन्ती—दमयन्ती की रहस्य और रोमांच से ओत-प्रोत कहानी जो उसके अडिग पातिव्रत पर प्रकाश डालती है। पृष्ठ ३७; मूल्य ०·५० पैसे।

सीता—इस पुस्तक में सीताजी की रोचक और शिक्षाप्रद कहानी बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य ०·५० पैसे।

सुशील कन्या—इस पुस्तक में कहानियों के रूप में कन्याओं को शिष्टाचार, गृहप्रबन्ध, देशप्रेम आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा दी गई है। पृष्ठ १३५; मूल्य १·२५ रुपये।

श्रीमती दुर्गादेवी और मायादेवी

शिशु-पालन—इस पुस्तक में प्रसूत-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण तक की कई आवश्यक बातें बताई गई है। पृष्ठ २४०; २·५० रुपये।

श्री संतराम

सुन्दरी सुबोध—गृहणियों को गृहस्थी की गुत्थियाँ सुलझाने मे सहायता देनेवाली पुस्तक। पृष्ठ ३१६; मूल्य ३·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rs. 7.50
Single Copy : Rs. 0.65
October 1969
SARASWATI—Reg. No. L. 2

सरस्वती
सितम्बर १९६९

अलकपरी
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश
हर जगह मिलता है
केशों को
आश्चर्यजनक
गति से बढ़ाने वाला
केशतेल
अलकपरी — नया कटरा
इलाहाबाद

हमारा गांधी साहित्य

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वांग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल २०) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५०, मू० ४) रुपये।

जगदालोक

लेखक : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१, मू० ६) रुपये।

युगाधार

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ४·२५ पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रंथ

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७·५० पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

विषय-सूची

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७०
पूर्ण संख्या ८३७

इलाहाबाद : सितम्बर १९६९ : भाद्रपद २०२६ वि०

खण्ड २
संख्या ३

सम्पादकीय

भारत के चौथे राष्ट्रपति—श्री वाराहगिरि वेङ्कट गिरि भारत के चौथे राष्ट्रपति चुन लिये गये। श्री गिरि इसके पूर्व भारत के उपराष्ट्रपति पद पर आसीन थे जिससे उन्होंने राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए त्यागपत्र दे दिया था। अभी तक प्रथम राष्ट्रपति के बाद जो दो राष्ट्रपति चुने गये थे (डा० राधाकृष्णन् और डा० जाकिर हुसेन) वे भी चुनाव के पहिले उपराष्ट्रपति के पद पर थे। कुछ लोगों का मत था कि उपराष्ट्रपति ही को राष्ट्रपति बनाने की एक अलिखित परम्परा बन गयी है, और इसलिए श्री गिरि ही को इस पद के लिए अधिकृत प्रत्याशी बनाया जाना चाहिए था। किन्तु कुछ अन्य लोग इसे परम्परा के रूप में स्वीकार नहीं करते। इसका एक मुख्य कारण यह है कि उपराष्ट्रपति का चुनाव केवल संसद के दोनों सदन करते है, जबकि राष्ट्रपति का चुनाव देश की सारी विधानसभाएँ और संसद मिलकर करते है। यदि उपराष्ट्रपति को ही राष्ट्रपति बनाने की परम्परा मान ली जाय तो राष्ट्रपति के वास्तविक निर्वाचन का अधिकार व्यवहार में केवल संसद के हाथ में रह जायगा। इसके अतिरिक्त, यह भी संभव है कि पाँच वर्ष बाद नया संसद ही उसे द्वारा उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति बनाना न पसंद करे। संविधान का मंशा इस परम्परा के पक्ष में नही मालूम होता क्योंकि उसने राष्ट्रपति के चुनाव की विधि ऐसी बनायी जिसमें निर्वाचन का अधिकार सारे देश के चुने हुए प्रतिनिधियों को दिया है। जो भी हो, इस बार कांग्रेस ने उपराष्ट्रपति को अपना प्रत्याशी नही बनाया। श्री गिरि ने इसके विरोध में चुनाव लड़ने का निश्चय किया और कुछ विरोधी दलों ने, जिनमें कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, द्रमुक और अकाली प्रमुख थे, उन्हें अपना प्रत्याशी मान लिया। कांग्रेस मे भी मतभेद हो गया,

और श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कुछ कांग्रेसियों ने भी कांग्रेस के निर्णय को न मानकर उनका समर्थन किया। इस प्रकार श्री गिरि को काफी समर्थन मिल गया। कुल निर्वाचक मत साढ़े आठ लाख थे। श्री गिरि १४६५० मतों से विजयी हुए। जनतंत्र में बहुमत का आदर किया जाता है। वह बहुमत अधिक है या अल्प, यह निःसार है। श्री गिरि को भारतीय संविधान के अनुसार चुना गया है और देश ने उन्हें राष्ट्रपति पद पर आसीन किया है। हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करते है।

श्री गिरि का जन्म अगस्त, १८९४ में बरहामपुर में हुआ था। यह नगर पहिले तत्कालीन मदरास प्रान्त में था, किन्तु उड़ीसा से मिली हुई सीमा पर था। यहाँके बहुसंख्यक निवासी उड़ियाभाषी है। मदरास प्रान्त में उत्तरी क्षेत्र में तेलगूभाषी आंध्र, और दक्षिण में तामिलभाषी द्रविड़ या तमिल लोग रहते थे। जब भाषावार प्रान्त बने तब बरहामपुर उड़ीसा में चला गया। श्री गिरि का परिवार तेलगूभाषी आंध्र है। उनके पिता साधारण वकील थे। श्री गिरि उच्च शिक्षा के लिए आयरलैण्ड गये थे, किंतु उन दिनों आयरलैण्ड अंग्रेजों के शासन मे था और वहाँके लोग अंग्रेजों से मुक्त होने के लिए उग्र आन्दोलन कर रहे थे। श्री डि वैलरा उसके नेता थे। आयरलैण्ड में श्री गिरि ने उस आन्दोलन मे इतना सक्रिय भाग लिया कि अंग्रेज सरकार ने आयरलैण्ड से उनका निष्कासन करके उन्हें भारत लौटने को बाध्य किया। यहाँ आकर वे महात्माजी के सम्पर्क में आये और उनकी सलाह से उन्होंने श्रमिक आन्दोलन में काम करना आरंभ किया। उन्होंने अखिल भारतीय रेल कर्मचारी संघ संगठित किया, और उसे एक बड़ी शक्तिशाली संस्था बना दिया। वे दीर्घकाल तक उसके सर्वेसर्वा रहे। बाद में वे मदरास विधानसभा के लिए चुनाव लड़े, सफल हुए और मंत्री बने। वे संसद के सदस्य भी रहे। स्वतंत्रता के बाद वे भारत के उच्च आयुक्त बनाकर श्रीलंका भेजे गये, जहाँ उन्होंने भारत और लंका के संबंधों को सुधारने में बड़ा काम किया। बाद में वे उत्तर प्रदेश, केरल और मैसूर के राज्यपाल बनाये गये, और डा० जाकिर हुसेन के राष्ट्रपति चुने जाने पर कांग्रेस ने उन्हें उपराष्ट्रपति के लिए अपना प्रत्याशी बनाया, और वे चुनाव में सफल होकर उपराष्ट्रपति हुए।

श्री गिरि मध्यवित्त परिवार के हैं और उनका गृहस्थ-जीवन बड़ा सुखी और आदर्श है। उनके १६ सन्तान हुई जिनमें ११ जीवित हैं। वे आस्थावान व्यक्ति हैं और धर्म-निरपेक्षता में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी अपने धर्म में उनकी श्रद्धा है। राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के एक दिन पूर्व वे रामकृष्ण पुरम् (नई दिल्ली) में हाल ही में बने श्री वेङ्कटेश्वर भगवान् के मन्दिर में दर्शनार्थ गये थे। उनका व्यक्तिगत चरित्र निर्मल और उच्च है। वे हिन्दी के विरोधी नहीं है, किन्तु उन्हें हिन्दी में कोई विशेष रुचि भी नही है। वे अंग्रेजी ही में भाषण देते रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रपति-पद की शपथ भी अंग्रेजी ही में ग्रहण की थी और अपना पद-ग्रहण-भाषण भी अंग्रेजी ही में दिया। स्व० डाक्टर ज़ाकिर हुसेन हिन्दी में भाषण देते थे। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी के कार्यकाल में राष्ट्रपति भवन और कार्यालय में राजभाषा हिन्दी को जो स्थान मिल गया था वह उनके उत्तराधिकारियों के समय में नहीं रहा।

यद्यपि राष्ट्रपति का यह चुनाव सबके मध्य में हुआ है, तथापि संविधान के अनुसार उनका कार्यकाल पूरे पाँच वर्ष का होगा। श्री गिरि की अवस्था ७५ वर्ष की है, किन्तु वे बहुत स्वस्थ, क्रियाशील और कर्मठ हैं। उनके विचार संतुलित और उदार है। उनका सारा जीवन देश और देश के मेहनतकश लोगों की सेवा में बीता है। उन्होंने अपने को भारत की सेवा के लिए समर्पित कर दिया है। अपनी योग्यता, उदार विचारों, दीर्घ अनुभव और उच्च चरित्र के कारण वे सारे देश के हार्दिक सम्मान और आदर के पात्र है। हमें विश्वास है कि वे भारत के राष्ट्रपति-पद की गरिमा और गौरव को बढ़ाएँगे। हम एक बार फिर उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए उनकी सफलता और उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

घटनाबहुल और उत्तेजनापूर्ण दो पखवारे—हम प्रत्येक मास की १५-१६ और २०-२१ तारीखों के बीच ये टिप्पणियाँ लिखते है, इस मास हम उन्हें कुछ देर से लिख रहे हैं, किन्तु जब हम टिप्पणी लिखने के लिए जुलाई के उत्तरार्द्ध और अगस्त के पूर्वार्द्ध के इन दो पखवारों की घटनाओं में से उपयुक्त विषय चुनने लगे तो असमंजस में पड़ गये। इन दो पखवारों में एक साथ नाना प्रकार की इतनी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी है कि उनमें से टिप्पणियाँ

लिखने के लिए घटनाओं का छाँटना बहुत कठिन हो गया। इन्हीं पखवारों में भारत के राष्ट्रपति का चुनाव हुआ और उससे सम्बन्धित राजनीतिक उथल-पुथल हुई जिसका अंतिम परिणाम देश के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। संसद् ने स्वर्ण-नियन्त्रण (संशोधन), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) और लोकपाल एवं लोक आयुक्त अधिनियम पारित कर दिये जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भारत सरकार ने देश के १४ बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके एक अभूतपूर्व, साहसिक एवं ऐतिहासिक कार्य कर दिखाया। बंगाल की विधानसभा में वहाँकी पुलिस ने घुसकर अनुशासनहीनता का जो दुर्भाग्यपूर्ण प्रदर्शन किया उसकी गूँज तब तक शान्त नहीं हुई थी। राष्ट्रपति के अतिरिक्त, इसी बीच लोकसभा के अध्यक्ष पद पर श्री ढिल्लन का चुनाव भी हुआ। संसद में गृहमन्त्री ने स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की जाँच के लिए एक न्यायिक आयोग बनाने की घोषणा की। संसद के सदस्यों ने अपना दैनिक भत्ता २१ रु० प्रतिदिन से बढ़ाकर ५१ रु० प्रतिदिन कर लिया। अन्य देशों में भी कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। अमरीका ने चन्द्रमा पर मनुष्य को उतार कर, और सकुशल वापिस लाकर एक ऐसा गौरवशाली और महत्वपूर्ण कार्य किया जो अन्तरिक्ष-अन्वेषण के इतिहास ही में नहीं, मानव की प्रगति के इतिहास में सदैव याद किया जायगा। फ्रांस ने अपनी मुद्रा (फ्रैंक) का अवमूल्यन कर दिया। उत्तरी आयरलैण्ड के उस भाग में जो अब भी अंग्रेजों के अधिकार में है, रोमन केथलिकों और प्रोटेस्टेण्टों में भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हो गया। रूस के एक प्रसिद्ध लेखक ने इंग्लैण्ड में शरण ली। भूचालों की भूमि जापान में एक असाधारण रूप से भयंकर भूकम्प आया जिसमें धन-जन की बड़ी हानि हुई। अमरीका के नये राष्ट्रपति श्री निक्सन ने फिलिपाइन्स, थाईलैन्ड, भारत, पाकिस्तान तथा रूमानिया का तूफानी दौरा करके अमरीकी विदेश नीति को एक नया मोड़ दिया। इसराइल की राजधानी जेरूसलम के उस भाग में जो उसने जार्डन से छीन लिया है, मुसलमानों की परम पवित्र अक्सा नामक मस्जिद के एक भाग में आग लग जाने से सारे मुस्लिम संसार में उत्तेजना फैल गयी और जगह-जगह इसराइल के विरुद्ध 'जिहाद' छेड़ने की माँग की जाने लगी। इनके अतिरिक्त कितनी ही और महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई। भारत में अनेक क्षेत्रों में नदियों के उफन आने से भयंकर बाढ़ें आयीं। इतने घटनाबहुल चार-पाँच सप्ताह कम ही होते है। ये सभी विषय ऐसे हैं जिन पर हम कुछ कहना चाहते थे, किन्तु स्थानाभाव से हम इन सब पर अपने विचार प्रकट करने में असमर्थ हैं।

चन्द्रमा पर मनुष्य—मनुष्य में प्रकृति ने अपार जिज्ञासा और कुतूहल भर दिया है। नवीनजी ने इस संबंध में कहा था :

पंख नोच, पटका मानव को किसी खिलाड़ी ने पृथ्वी पर,
पर होती रहती है उसके अन्तर में पंखों की फर-फर।
पृथ्वी माता ने पहिनायीं उसे बेड़ियाँ आकर्षण की;
और, किसीने सुलगा दी है हिय में चिनगी संघर्षण की,
परवश है, पर, चाह रहा है वह करना रहस्य-उद्घाटन,
यह आकुल मन, यह अति लघुजन, पंखहीन यह, यह संश्लथ तन !

निगड़बद्ध मानव के युग पद, पाशबद्ध मानव के युग भुज,
और सतत आक्रान्त किये है उसे एक अभिशाप-ताप-रुज;
जिसे मेदिनी ने जकड़ा है, तुच्छ समझता जिसे प्रभंजन,
और नियति ने डाल दिये हैं जिसके रोम-रोम में बन्धन,
उसी द्विपद को नील गगन ने भेजा है उड्डीन-निमन्त्रण !
गूँज रही है उसके हिय में पंखों की सन्-सन्-सन् सन्-सन्।
मानव की जिज्ञासा की है साक्षी स्वयं प्रकृति कल्याणी
युग-युग से हुंकारें करता चला आ रहा है यह प्राणी !
ये भीषण दिक्-काल-प्रहर उस ध्वनि-ध्यान से कंपित हैं,
लख मानव के यत्न निरंतर प्रखर प्रभाकर भी स्तम्भित हैं !
देख देख इस वामन को अमित चकित हैं नभ तारकगण,
यह रहस्य-उद्घाटन-रत-जन चला जा रहा है संश्लथ तन।

इसी दुर्दमनीय जिज्ञासा और कुतूहल से प्रेरित होकर उसने पर्वतों के दुर्गम श्रृंगों का आरोहण किया, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बर्फीले वीरानों का अनुसंधान किया और महासागरों का संतरण किया। फिर उसने विमान का निर्माण करके व्योम-विहार किया और अब वह अंतरिक्ष-गामी हो रहा है। उसने अंतरिक्ष यात्रा में विजय पाकर अब सौरमण्डल के ग्रहों के अनुसंधान की चेष्टा आरम्भ की है। चन्द्रमा पर उसका पदार्पण इस महान् प्रयास का पहला चरण है।

अमरीका को चन्द्रमा पर मनुष्य के सर्वप्रथम उतारने का श्रेय मिला है। इसके लिए सारे संसार ने उसकी प्रशंसा

की है। उसने अंतरिक्ष यान (अपॉलो ११) की यात्रा का जो कार्यक्रम बनाया था उसका शत-प्रतिशत पालन किया गया। इसके लिए यान के बनानेवालों और उसके चालकों की प्रशंसा मुक्तकंठ से करनी पड़ती है। अपॉलो ११ और उसके रॉकेटों, इंजिनों, चन्द्रमा पर उतरनेवाले छोटे यान (ईगल) तथा उसे छोड़नेवाले 'सेटर्न' राकेट आदि को मिला-कर, इन सबमें, प्रायः पचास लाख पुर्जे लगे थे, यदि इनमें से एक प्रतिशत पुर्जे भी खराब होते तो उनकी संख्या ५०० होती, और इनके बिगड़ने से सारी योजना ध्वस्त हो जाती। इससे स्पष्ट है कि इसके बनानेवाले कारीगरों ने कितनी दक्षता और कुशलता से काम किया होगा। अमरीका की वैज्ञानिक और तकनीकी दक्षता का यह यान (अपॉलो) सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। किन्तु यह तभी संभव हुआ जब इसके लिए अमरीका ने दिल खोलकर पानी की तरह रुपया बहाया। इस एक योजना में उसने २४ अरब डालर (एक खरब अस्सी अरब रुपये) खर्च किये। इस देश में इतने धन की कल्पना करना भी कठिन है। अंतरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रमा पर उतरते समय जो परिधान (कपड़ों का जोड़ा) पहिना था उनमें से प्रत्येक का मूल्य चार लाख डालर (३० लाख रुपये) था। जो देश इतना व्यय कर सकता है वह यदि संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक और कारीगर भी तैयार कर लेता है तो कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है।

यह यान (अपॉलो ११) 'सैटर्न' नामक रॉकेट (प्रक्षेप्य) से छोड़ा गया था। उसने इस यान को जिस वेग से आकाश में फेंका उसके धक्के की शक्ति ७५ लाख पाउन्ड थी। इस धक्के से अपॉलो ६००० मील प्रति घंटे की गति से आकाश मे ३८ मील ऊपर फेंक दिया गया। इस ऊँचाई पर पहुँच-कर उसमे लगा दूसरा राकेट छोड़ा गया। इसने उसे १४,००० मील प्रति घंटे की गति से ११४ मील ऊपर पहुँचा दिया। यहाँ पहुँचने पर तीसरा रॉकेट थोड़ी देर के लिए चलाया गया। जिससे अपॉलो की गति बढ़कर १७,५०० मील प्रति घंटे हो गयी, और वह पृथ्वी के कक्ष मे जाकर उसकी परिक्रमा करने लगा। दो बार पृथ्वी की परिक्रमा करने के बाद तीसरा रॉकेट फिर चलाया गया। उसके चलाने से उसकी गति बढ़ कर प्रायः २४,३०० मील प्रति घंटे हो गयी और वह पृथ्वी की कक्ष में से निकलकर चन्द्रमा की ओर चल दिया। किंतु ज्यों-ज्यों वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से दूर होता जाता था उसकी गति कम होती जाती थी, और अंत में वह प्रायः २,१०० मील प्रति घंटे रह गयी। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी प्रायः २,४०,००० मील है। जब अपॉलो चन्द्रमा से ३०,००० मील दूर रह गया तब उस पर चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पड़ने लगा जिससे उसकी गति बढ़ने लगी, और वह ५,७०० मील प्रति घंटे तक पहुँच गयी। चन्द्रमा से साढ़े पाँच हजार मील दूर पहुँचने पर चालकों ने अपॉलो की गति घटाकर ३,७०० मील प्रति घंटे कर दी जिससे वह चन्द्रमा की कक्ष में पहुँचकर उसकी परिक्रमा करने लगा।

चन्द्रमा की कक्षा में पहुँचने पर और उसकी कई परि-क्रमाएँ करने के बाद इस अभियान के नेता आर्मस्ट्रांग और उनके सहयोगी मुख्य यान (कोलम्बिया) से निकलकर उससे लगे उस छोटे यान (ईगल) में सवार हुए जिसमें बैठकर उन्हें चन्द्रमा पर उतरना था। इस चन्द्रयान (ईगल) में दो इंजिन थे: एक उसे उतारने के लिए और दूसरा उसे चढ़ाने के लिए। इस चन्द्रयान के दो भाग थे; एक बैठकी, जिसके नीचे पाये लगे थे जिनके सहारे उसे चन्द्रतल पर खड़ा होना था; और दूसरा वह भाग जिसमे वे बैठे थे। इसे मुख्य यान से अलग करके उसे चन्द्रतल पर उतारना आरंभ किया गया। उसकी गति कम करने के लिए उतरनेवाला रॉकेट चलाया गया। चन्द्रतल पर पहुँचकर इन दोनों व्यक्तियों ने वहाँ अमरीका का झंडा फहराया, भूकम्पमापी यंत्र लगाया और 'लेसर' की एक मीनार खड़ी की जिसकी रश्मियों से पृथ्वी और चन्द्रमा की ठीक-ठीक दूरी नापी जा सकती है। इसके बाद उन्होंने वहाँकी धूल और बिखरे हुए पत्थरों के नमूने एकत्र करके थैलों में बन्द किये। इसके बाद वे यान मे लौट आये और विश्राम करके उन्होने चन्द्रयान चढ़ानेवाले रॉकेट को चलाकर उसे ऊपर उठाया और वे मुख्य यान से जा मिले जो इस बीच चन्द्रमा की परिक्रमा लगा रहा था। चन्द्रतल से उठते समय चन्द्रयान की बैठकी वहीं छोड़ दी गयी, केवल ऊपर का भाग ही, जिसमे दोनों चालक बैठे थे, ऊपर उठ कर मुख्ययान से मिला था, चन्द्रयान (ईगल) के मुख्य यान (कोलम्बिया) से जुड़ जाने के बाद उसे (ईगल को) भी अंतरिक्ष में छोड़ दिया गया, और मुख्य यान का रॉकेट इंजिन चलाकर उसकी गति बढ़ा दी गयी जिससे वह चन्द्रमा के आकर्षण से निकलकर पृथ्वी की ओर चल पड़ा। पृथ्वी पर उतरते समय मुख्ययान का केवल वह कक्ष जिसमें यात्री बैठे थे, नीचे उतारा गया। उसका शेष भाग

अंतरिक्ष में परिक्रमा करने के लिए छोड़ दिया गया। उतरते समय वायुमंडल की रगड़ से इसका वाहरी तापमान ५०० अंश सेन्टिग्रड हो गया, किंतु उसके वाहरी तल पर ऐसा आवरण लगा था जो इस गर्मी को भीतर जाने से रोके रहा जिससे यात्रियों को वह गर्मी नही मालूम हुई। निर्धारित स्थान पर वह उतरा जहाँ अमरीकी जलसेना के जहाज यात्रियों को लेने को तैयार खड़े थे। इस वात की आशंका थी कि चन्द्रमा पर कही ऐसे विषैले कीटाणु न हों जो मनुष्य के लिए हानिकारक हों। इसलिए प्रायः दो सप्ताह इन यात्रियों और उनके द्वारा लाये गये चन्द्रमा के पत्थरों और धूल को वन्द कमरों में रखा गया जिनमें परीक्षा करके देखा गया कि उनके साथ चन्द्रमा से कोई कीटाणु तो नहीं चले आये।

मानव की आज तक की वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति का यह यात्रा चरम विन्दु है। साथ ही यह अमरीका के दृढ़ संकल्प की पूर्ति भी है। सन् १९६१ में तत्कालीन राष्ट्रपति कैनेडी ने यह आदेश दिया था कि वर्तमान शतक में अर्थात् १९७० के पहिले अमरीका द्वारा चंद्रमा पर मनुष्य उतार दिया जाय। उस समय यह काम अत्यन्त दुष्कर समझा जाता था, किन्तु अमरीकी वैज्ञानिक और कारीगर प्राणपण से इस काम में जुट गये और अंत में—निर्धारित समय के भीतर ही—उन्हे विजयश्री मिल गयी।

प्रश्न उठता है कि सिवाय इस संतोष के कि मनुष्य चंद्रमा पर पहुँच गया और अमरीका की साख वैज्ञानिक जगत् में वहुत ऊँची हो गयी, तथा उसका मनोवल वढ़ गया, इस अपार व्यय से क्या लाभ हुआ? वह लाभ मुख्यरूप से वैज्ञानिक जगत् को होगा। चंद्रमा पर वेधशाला और प्रयोगशाला वनाकर मनुष्य व्राह्मण्ड के अनेक उन रहस्यों को जान सकेगा जो पृथ्वी के वायुमंडल के कारण यहाँसे नहीं जाने जा सकते। व्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पृथ्वी और ग्रहों की उत्पत्ति, उनके वय आदि के अध्ययन को चंद्रमा की विजय से सहायता मिलेगी। सूर्य से आनेवाली अनेक सूक्ष्म राश्मियों, व्रह्माण्ड किरणों (कॉस्मिक रेज), चुम्वकीय क्रिया आदि के वारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा जिससे पृथ्वी की ऋतुओं और मौसम के परिवर्तनों के कारण मालूम हो सकेंगे। चंद्रमा से अन्य ग्रहों, जैसे मंगल, शुक्र आदि की यात्रा अपेक्षाकृत सरलता से की जा सकेगी। ये सव कार्य धीरे-धीरे होंगे और वड़े व्ययसाध्य होंगे। अनुमान किया जाता है कि चंद्रमा ~ जाते व्यक्तियों की एक प्रयोगशाला चलाने में प्रति वर्ष ७५ अ~ रुपये खर्च होंगे?

चंद्रमा का दुरुपयोग भी हो सकता है। दुर्भाग्य से मनुष्य ने प्रायः सभी वैज्ञानिक अनुसंधानों का दुरुपयोग किया है। वहाँसे पृथ्वी पर संहार के भयंकर अस्त्र छोड़े जा सकते है। किन्तु आशा है कि मनुष्य चंद्रमा का ऐसा दुरुपयोग नहीं करेगा।

भारत में चंद्रमा एक देवता माना जाता है। ज्योतिष में चंद्रमा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रह है। कुछ पंडितों ने कहा कि मनुष्य के चरण पड़ने से वह अपवित्र हो गया और अव पूजनीय नहीं रह गया। एक पंडित ने तो यहाँ तक कह दिया कि जिस चंद्रमा पर मनुष्य पहुँचा है, वह ज्योतिष का चंद्रमा ही नही है। इन वातों में कोई सार नहीं है। इस देश मे हिमालय भी देवता माना जाता है, किन्तु अगणित मनुष्यों के चरण पड़ने पर भी उसका देवत्व ज्यों का त्यों वना हुआ है। चंद्रमा का पृथ्वी पर जो प्रभाव पड़ता है वह मनुष्य के जाने से कम नही हुआ। आज भी उसके कारण समुद्र में ज्वार-भाटा आता है। जव उसके स्थूल प्रभाव में कोई कमी नही हुई तो ज्योपित में जो उसका सूक्ष्म प्रभाव माना जाता है, वह कैसे कम हो सकता है? चद्रमा आकाशीय पिंड और अपनी गठन तथा अपने स्थान के कारण वह पृथ्वी और पृथ्वी-निवासियों को प्रभावित करता है। वह निर्जन, वीरान और चट्टानी होने पर भी सृष्टि के आदि से अपनी चाँदनी द्वारा मनुष्य के हृदय को प्रफुल्लित करता रहा है, और आज भी—मनुष्य के चरण पड़ने के वाद भी उसकी स्निग्ध-धवल चाँदनी उतनी ही विमल, मनोरम और आह्लाददायिनी है। मनुष्य के चरण पड़ने से कोई ग्रह अपवित्र नही हो सकता।

भारतीय भाषाओं के माध्यम का विरोध—वहुत से हिन्दीप्रेमियों की यह धारणा है कि अंग्रेजी की वकालत करनेवाले लोग हिन्दी-विरोधी होने के कारण देश में अंग्रेजी का प्रचार चाहते है। वास्तव में वात ऐसी नहीं है। इस देश के अंग्रेजी परस्त राजकाज और विश्वविद्यालयों में अनन्त काल तक अंग्रेजी चलाना चाहते हैं, और वे इन कामों के लिए हिन्दी ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं का विरोध करते हैं। उत्तर प्रदेश के अंग्रेजीपरस्त जिस प्रकार

की है। ...द्यालयों और सरकारी कामकाज में सरकारी आदेशों जो क... वावजूद अंग्रेजी को हठधर्मी से चलाये चले जा रहे हैं, उसी प्रकार दूसरे क्षेत्रों के अंग्रेजीपरस्त अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों और सरकारी कार्यालयों में नहीं घुसने देना चाहते। हिन्दी प्रेमियों को इस तथ्य को समझ लेना चाहिए जिससे वे स्थिति का ठीक मूल्यांकन कर सकें। जव अंग्रेजीपरस्त इन कामों में अपनी-अपनी मातृभाषाओं और क्षेत्रीय भाषाओं के भी व्यवहार का विरोध करते है तब उनसे हिन्दी के समर्थन की आशा करना व्यर्थ है क्योंकि न तो वह उनकी क्षेत्रीय भाषा है और न मातृभाषा। अंग्रेजीपरस्त इस देश में व्याप्त सांस्कृतिक मानसिक दासता की उपज और मैकाले की भाषा नीति की सफलता के जीवित प्रमाण है। यह प्रसन्नता की वात है कि अब इस देश के राज्य अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को अपनी राजभाषा वनाने का निश्चय कर चुके है और वे विश्वविद्यालयों में भी उन्हें शिक्षा का माध्यम वनाना चाहते है। इस मामले में उन्हे केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय और शिक्षा आयोग का समर्थन भी मिला है। केन्द्रीय शिक्षा-अधिकारी चाहते है कि कम से कम पाँच, और अधिक से अधिक दस वर्षो में, सारी उच्च शिक्षा अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में देने का कार्यक्रम पूरा हो जाना चाहिए।

तमिलनाडू (मदरास) में हिन्दी विरोध ने उग्र रूप ले लिया था, और आज भी वहाँ की द्रमुक सरकार हिन्दी के नाम से चिढ़ती है। उसने सरकारी स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा एकदम वन्द कर दी है। अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी के विरोध में अंग्रेजी का पक्ष वड़ी कट्टरता से लेने के कारण वहाँके निवासियों को अंग्रेजी की उपयोगिता और महत्त्व का आवश्यकता से अधिक अनुभव होने लगा। द्रमुक सरकार अपने राज्य में एकमात्र तमिल भाषा चाहती है। यदि भाषायी कट्टरता का नमूना देखना हो तो द्रमुक के नेताओं और कार्यकर्ताओं से मिल लें। विश्वविद्यालयों मे अंग्रेजी को हटाकर तमिल को एकमात्र माध्यम वनाने का उनका ध्येय है, किंतु इसका वहाँके लोगों ने—जिनमें हिन्दी-विरोध के कारण अंग्रेजी के महत्त्व का इतना प्रचार किया गया था—विरोध किया। तव सरकार ने प्रत्येक कक्षा के एक सेक्शन में अंग्रेजी माध्यम चलाने की अनुमति दी। शेष सेक्शनों में तमिल माध्यम का प्रयोग करने के आदेश थे। किंतु अधिकांश विद्यार्थी वहाँ अंग्रेजी माध्यम चाहते है। तमिल माध्यम से पढ़नेवाले विद्यार्थियों को अनेक प्रलोभन और सुविधाएँ दी गयी, किंतु उनमें पढ़नेवालों की संख्या वहुत अल्प रही। अत्यधिक अंग्रेजी प्रचार का परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थी अपनी मातृभाषा के माध्यम से पढ़ने को तैयार नहीं हैं! अंग्रेजी की माँग इतनी है कि एक सेक्शन उसे पूरा नही कर सकता। वहाँका विद्यार्थी समझता है कि तमिलनाडू के वाहर केवल तमिल जानने से उसे कोई नौकरी नही मिल सकती, और तमिलनाडू में वैसे ही नौकरियों की कमी है। हिन्दी से उत्तर भारत मे काम चल सकता था। किंतु वह वहाँ वर्जित है। यदि उन्हे अंग्रेजी में भी दक्षता प्राप्त नही करने दी जाती तो उनका भविष्य अंधकारमय हो जायगा। इसलिए वहाँ काफी असंतोष है और वहाँकी सरकार को 'एकमात्र तमिल' की कट्टर नीति को नरम करना पड़ेगा। वहाँके अंग्रेजीपरस्त स्वभावतः इस स्थिति का लाभ उठा रहे है।

अन्य राज्यों में क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम का ऐसा विरोध नहीं है, किन्तु वहुत से स्थानों के विश्वविद्यालयों में उन्हें माध्यम बनाने में प्राध्यापक के विरोध का सामना करना पड़ रहा है। इन विरोधियों में कुछ तो अंग्रेजी-परस्त होने के कारण विरोध करते हैं, और कुछ इसलिए विरोध करते है कि उनका अपनी भाषा का ज्ञान इतना कम है कि उन्हे उसमें शिक्षा देना कठिन हो जायगा। पाठ्यपुस्तकों की कमी आदि अन्य कारण भी वताये जाते है, किन्तु सरकार उन कठिनाइयों का हल निकाल रही है। शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन करने से आरम्भ में प्राध्यापकों को अवश्य ही कठिनाई होगी। वे उस कठिनाई का सामना नहीं करना चाहते। इसीलिए क्षेत्रीय भाषाओं को उच्चशिक्षा का माध्यम वनाने मे प्राध्यापकों और विश्वविद्यालयों की प्रशासनिक एवं शैक्षणिक समितियों द्वारा रोड़े अटकाये जाते है। ये प्रोफेसर और संस्थाएं अपनी 'अप्रगतिशीलता' को वनाये रखने के लिए वार-वार "विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता" (यूनिवर्सिटी ऑटॉनमी) की दुहाई देती है। महाराष्ट्र के कुछ विश्वविद्यालयों की इस अड़ंगेवाजी के कारण (जिससे उनमें मराठी माध्यम आरम्भ करने में विलम्ब हो रहा है) सम्पूर्ण महाराष्ट्र समिति के अध्यक्ष श्री उद्धवराव पाटिल ने कहा है कि मराठी माध्यम चलाने के लिए यदि आवश्यक हो तो 'विश्व-

विद्यालयों की स्वतन्त्रता' को सीमित या कम कर दिया जाय। महाराष्ट्र ही में नहीं, उत्तर भारत के भी बहुत से विश्वविद्यालयों में अंग्रेजीपरस्त और अंग्रेजीप्रिय अधिकारी हिन्दी माध्यम नहीं चलने देना चाहते। संयोग से तामिल-नाडू की तरह यहाँ अंग्रेजी का वैसा प्रचार नहीं हुआ, और यहाँका अधिकांश विद्यार्थीवर्ग हिन्दी माध्यम चाहता है, किन्तु उनके प्रोफेसर उसे नहीं चलने देते। वे हिन्दी को माध्यम होने से रोक तो सकते नहीं, केवल देर कर सकते हैं। यदि राज्य सरकारें केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय और शिक्षा आयोग से सहमत हों कि शीघ्र ही क्षेत्रीय भाषाएँ उच्चशिक्षा का माध्यम बनायीं जायँ, तो उन्हें ऐसे उपाय करने चाहिए कि मुट्ठीभर अंग्रेजीपरस्त और थोड़े से प्रोफेसर इस महत्वपूर्ण और परमावश्यक योजना की राह में रोड़े न अटका सकें।

चलचित्रों में चुम्बन के दृश्य और खोसला समिति—पंजाब हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज श्री खोसला की अध्यक्षता में चलचित्रों के सम्बन्ध में भावी नीति पर विचार करने के लिए जो समिति बनायी गयी थी, उसने अपनी सिफारिशें दे दी हैं। उनमें एक सिफारिश यह भी है कि यदि चलचित्र में प्रदर्शित कहानी को ठीक तरह से व्यक्त करने के लिए स्त्री-पुरुष के चुम्बन का दृश्य दिखलाया जाना आवश्यक हो तो उस पर रोक न लगायी जानी चाहिए। ऐसे दृश्य दिखाने की चलचित्र-निर्माताओं को स्वतंत्रता रहे। इस सिफारिश ने चलचित्र जगत् ही में नहीं, देश के बहुत-से समझदार व्यक्तियों में असंतोष उत्पन्न कर दिया है।

अधिकांश विचारशील लोगों का यह मत है कि अधिकांश भारतीय चित्र सस्ते ढंग के, यौन भावनाओं को उत्तेजित करनेवाले तथा सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न कोटि के होते हैं। तरुण और तरुणियों पर उनका अस्वस्थ प्रभाव पड़ता है। यह शिकायत मुख्यरूप से हिन्दी चलचित्रों के विरुद्ध है। बँगला चलचित्र संयत और सांस्कृतिक दृष्टि से संतोषजनक होते हैं। अभी भी बहुत-से हिन्दी चलचित्र ऐसे आते हैं जिन्हें सुसंस्कृत व्यक्ति अपने परिवार—पुत्र-पुत्रियों को साथ लेकर नहीं देख सकता। अब यदि उनमें चुम्बन के दृश्य भी दिखलाये जाने लगे तो कल्पना की जा सकती है कि वे कितने अशिष्ट हो जायेंगे और हमारी नई पीढ़ी पर उसका क्या दूषित प्रभाव पड़ेगा।

पाश्चात्य चलचित्रों में चुम्बन के दृश्य दिखलाये जाते हैं, किंतु वहां की संस्कृति और वहाँका शिष्टाचार भिन्न है। वहाँ जब रेल, सड़क या बाजार में पति-पत्नी मिलते या एक दूसरे से विदा होते हैं तो खुले आम चुम्बन करते हैं। भारत ही नहीं, एशिया की किसी भी संस्कृति में ऐसा व्यवहार शिष्ट और श्लील नहीं माना जाता। भारतीय संस्कृति के मानदंड ऐसे नहीं हैं। हमारा सामाजिक शिष्टाचार भिन्न है। किंतु दुर्भाग्य से हमारे यहाँ चलचित्र ही नहीं, बहुत-से सांस्कृतिक संस्थानों में भी 'भारत में बने अंग्रेजों या अमरीकनों' का प्रभुत्व है। वे पाश्चात्य देशों में चलनेवाली प्रत्येक अच्छी बुरी बात की नकल करना ही 'उन्नति' और 'प्रगति' समझते हैं। यदि सरकार ने खोसला समिति का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो हमारे समाज पर उसका नैतिक प्रभाव बहुत अकल्याणकर होगा। उससे हमारा समाज व्यापक रूप से दूषित हो जायगा, और हमारी संस्कृति और शिष्टाचार के मानदंड नष्ट हो जायँगे।

यद्यपि राजकपूर और देवआनन्द के समान पंजाबी प्रगतिशील अभिनेताओं ने इस सुझाव का समर्थन किया है, तथापि यह देखकर संतोष हुआ कि नरगिस, नन्दा और आशा पारिख के समान अभिनेत्रियों ने उसका कड़ा विरोध किया है। नरगिस ने कहा है : "मैं इसके बहुत विरुद्ध हूँ। यह प्रस्ताव वास्तव में हमारे सार्वजनिक व्यवहार में 'अश्लीलता' (इनडीसेंसी) का प्रचार करेगा। मुझे आश्चर्य है कि अपने सुझाव से उत्पन्न होने वाले गंभीर सामाजिक परिणामों की ओर खोसला की निगाह क्यों नहीं गयी। यदि आज रजतपट पर अश्लीलता (ऑवसीनिटी) दिखाने की अनुमति दे दी गयी तो कल उसकी नकल सड़कों और रेलवे स्टेशनों के प्लेटफार्मो पर की जाने लगेगी। इन परिस्थितियों में कोई भी स्वाभिमानी महिला चलचित्र में काम करने न आवेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस 'चुम्बन' और 'नग्नता' का सहारा लिये बिना ही अच्छे रूमानी और कलात्मक चलचित्र बना सकते है।" आशा पारिख का कहना है : "पाश्चात्य चलचित्रों की यौनि शैली अनुकरण के बिल्कुल ही अयोग्य है। भारत की जलवायु में यह परिकल्पना ठीक नही बैठती। कौन यह देखना पसंद करेगा कि उसकी पुत्री, बहिन या पत्नी का चलचित्र पर चुम्बन लिया जा रहा है या उसके वस्त्र उतारे जा रहे है ? मैं इसके एकदम विरुद्ध हूँ और इसके विरोध में अंत तक

संघर्ष करती रहूँगी।" नन्दा ने कहा : "मै ऐसी बाजारू (वल्गर) भूमिकाएँ स्वीकार करने के बजाय चलचित्र मे काम छोड़ देना ही अधिक पसन्द करूँगी, यह चीजें हमारे आदर्शों मे नही आती। यह हमारे आध्यात्मिक मूल्यों को नष्ट कर देंगी और हमे कहीं का नही रखेंगी।"

आश्चर्य है कि हमारे नेताओं और बुद्धिजीवियों ने इस सिफारिश की ओर उदासीनता दिखलायी है। हमारे बुद्धिजीवियों—विशेषकर साहित्यकारों से—इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर (जिसका संबंध सुरुचि, शिष्टता, सौन्दर्य बोध, कला, नैतिकता तथा संस्कृति से है) जनता और शासकों का मार्गदर्शन करने की अपेक्षा की जाती है।

रूस में भी भ्रष्ट परीक्षक—अपराध-प्रवृत्ति भी अंतर्राष्ट्रीय है। कुछ लोगों का कहना है कि धन संग्रह 'पूंजीवादी' व्यवस्था की विशेषता है। साम्यवादी देशों में, जहाँ सबको रोजी-रोटी मिल जाती है। और जहाँ राज्य की ओर से उनके बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा आदि का प्रबन्ध है, जहाँ बुढ़ापे में पेंशन मिलती है, वहाँ रुपये-पैसे की ईमानदारी है और वहाँ रिश्वत आदि भ्रष्टाचार नही है, क्योंकि वहाँ मनुष्य को बेईमानी करके धन कमाने की आवश्यकता ही नही है। वे यह भी कहते है कि मनुष्य स्वभाव से ईमानदार है और वह तभी बेईमानी करता है जब परिस्थितियाँ उसे विवश कर देती है। इसलिए हमें यह समाचार पढ़कर आश्चर्य हुआ कि रूस के विश्वविद्यालय के कुछ परीक्षकों को रिश्वत लेकर परीक्षार्थियों को अधिक अंक देने के अपराध में दण्ड दिया गया है। समाचार इस प्रकार है :

"मास्को, जुलाई २६—चिकित्सा (मेडिकल) विद्यालयों में भर्ती होने के लिए परीक्षा में बैठनेवाले परीक्षार्थियों को उत्तीर्णता बेचने के अपराध में विश्वविद्यालय के (कुछ) प्राध्यापकों और अधिकारियों को कारावास का दंड दिया गया है, और उनके इस भ्रष्टाचार दल को तोड़ दिया गया है। ए० एफ० पी० ने यह समाचार सोवेत्स्काया लाटविया से उद्धृत किया है।

रूस के उच्चतम न्यायालय ने उच्च शिक्षा सचिवालय के निदेशक श्री सैमयान मोइसेविच लिबमैन को नौ वर्ष का और दो परीक्षकों को क्रमशः छः और आठ वर्षों का कारावास दण्ड दिया है।

परीक्षार्थियों ने परीक्षा में उत्तीर्ण होने योग्य अंक प्राप्त करने के लिए २५० डालर (१८७५ रुपये) तक दिये थे।"

इस देश में भी परीक्षाओं में भ्रष्टाचार, नकल करने आदि की अनेक घटनाएँ होती रहती है। कुछ परीक्षार्थियों को एक-दो वर्ष परीक्षा से वंचित कर दिया जाता है, या कुछ उन केन्द्रों को तोड़ दिया जाता है जिनमें अनुचित कार्य की शिकायतें होती है। किन्तु हमारे पास जो समाचार आते है उनसे यही मालूम होता है कि भ्रष्टाचार बढ़ ही रहा है। रूस अपनी परीक्षाओं की शुद्धता और पवित्रता का कितना ध्यान रखता है, यह इन दंडों से प्रत्यक्ष है। यदि हम भी अपनी परीक्षाओ की शुद्धता रखना चाहते है तो हमारी सरकारों को भी ऐसे ही कड़े कदम उठाने पड़ेंगे।

मक्खी मारो!—पूर्वी पाकिस्तान के कुछ नगरों में मक्खियाँ बेतरह बढ़ गयी है। उन्हें नष्ट करने के लिए वहांके अधिकारियों ने एक सर्वथा मौलिक उपाय किया है। यह काम जनता के सहयोग के बिना नही हो सकता, और इस उपमहाद्वीप की जनता—चाहे वह पाकिस्तान में हो और चाहे भारत में हो—अत्यन्त 'निरपेक्ष' है। बिना लाभ की आशा के वह 'बेगार' करना पाप समझती है। उसकी इस मनोवृत्ति को समझकर वहांके अधिकारियों ने यह घोषणा की है कि जो एक किलो मक्खियाँ मारकर लावेगा उसे १६ रुपये पुरस्कार दिये जायँगे। इस घोषणा से आशा की जाती है कि कितने ही बेकार लोग यह पुण्य का काम करके अपने नगर के स्वास्थ्य को सुधारने में सहायता देंगे। इस देश में भी कुछ हिंसक पशुओं को मारने पर पुरस्कार दिया जाता है। किंतु मक्खी, मच्छर आदि सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक जीवों को मारनेवालों को कुछ नहीं दिया जाता। अलंकारिक रूप से इस देश में बहुत-से लोग 'मक्खी मारा करते है।' यदि इस देश की सरकार पूर्वी पाकिस्तान की सरकार के एक अच्छे काम का अनुकरण करके इसी प्रकार की विज्ञप्ति निकाल दे, तो स्वास्थ्य-सुधार के अतिरिक्त बहुत-से बेरोजगार और 'मक्खी मारो' का काम भला हो सकता है। हमारी योजनाओ का एक प्रमुख उद्देश्य बेकारी दूर करना भी है। अतएव इसे पचवर्षीय योजना मे भी सम्मिलित किया जा सकता है।

आद्याशक्ति और स्वरूप

श्री अनवर आगेवान

अनादि-काल से आर्य-जाति का विश्वास है कि सृष्टि के प्रारम्भ में शक्ति की विभूति का आनन्द लेने के हेतु 'एक' अक्षर-वल 'अनेक' रूप होकर प्रकट होता है। ऐसा करने के लिए उसे प्रकृति के जड़ रूप को सुसंगठित करना होता है। वह उसमें स्वयं व्याप्त रहकर, अपनी उन्नतिशील शक्ति के वल से, उस जड़ प्रकृति को सजीव करके उन्नति के मार्ग पर ले जाकर स्वयं अपनी ही शक्ति का विकास किया करता है। जब जड़-प्रकृति ग्रहण-शील वन जाती है, तव 'शक्ति' सजीव मूर्तरूपों में प्रकट होती है। यह मूर्त रूप जब और अधिक विकासशील हो जाते हैं तव 'मानव' जन्म लेता है जो मनस्तत्व की विशेष शक्ति लेकर आता है और अपनी विचारशील प्रकृति के कारण अन्य जीवधारियों से भी उसी प्रकार भिन्न होता है जिस प्रकार जड़-वस्तुओं से अन्य जीवधारी भिन्न होते हैं।

प्रकृति की आत्मा—मानव

पशु आदि जीव वह प्रयोगशाला है जिसमें परीक्षण करके प्रकृति ने मनुष्य का आविष्कार किया। 'मनुष्य' भी उसी प्रकार 'प्रकृति' की वह प्रयोगशाला है जिसके द्वारा 'प्रकृति' मानव को 'देवता' वनाने का प्रयत्न करती रहती हैं। 'प्रकृति' का गुण ही उन्नति-अग्रगामित्व है। इसीलिए अपूर्ण मानव को पुनः पूर्ण 'देव' अथवा अक्षर-ब्रह्म के निकट ले जाना इसका कार्य है।

मनुष्य से देवता

मानव को देवत्व के लिए प्रस्तुत करने पर 'प्रकृति' का कर्तव्य समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् परा-प्रकृति अथवा 'आदि-शक्ति' का क्षेत्र आरम्भ होता है। देवत्व का अध्याहार करना उसीका काम है। उसीके प्रकाश से मानव देवता वनकर परब्रह्म के निकट पहुँचता है। अज्ञान के तीनों लोकों के ऊपर ज्ञानलोक है और उसके ऊपर भी ईश्वरीय प्रकाश का लोक है जहाँसे यह आदि 'शक्ति' समस्त विश्व की उत्पत्ति और संचालन किया करती है। 'प्रकृति' तो उस शक्ति की एक कार्यकारिणी प्रतिनिधि मात्र है।

देवों की माता जगज्जननी

वास्तव में माँ 'शक्ति' इन सभी लोकों से परे है। वह अपनी अनादि अनन्त चेतना में 'पर-ब्रह्म' को उसी प्रकार गर्भस्थ किये रहती है जिस प्रकार माता अपने शिशु को। और इसीलिए वह जगदम्वा कहलाती है। अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में परब्रह्म उसीसे प्रकट होता है और अपूर्ण मानव को पूर्ण देवत्व की ओर ले जाता है। समस्त ब्रह्माण्ड और अनेक लोक उसीके पिण्ड हैं। वह देवों की माता है और इस विश्वरूप प्रपंच की जननी है। इस अपूर्ण और अज्ञानमय संसार को देवत्व की ओर ले जानेवाली शक्ति वही आदि-शक्ति रूप में जड़ प्रकृति के विकास, इस जगत् को अक्षर-ब्रह्मत्व के लिए प्रस्तुत करती है।

जगदम्वा के चार रूप

वैसे तो आदि-शक्ति के अनन्त और अनेक रूप तथा कार्य हैं किन्तु जगत्-कल्याण के हेतु चार महारूपों में वह प्रकट होती है। महामाया, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती।

महामाया

यह प्रथम रूप में ब्रह्मज्ञान की अधिष्ठात्री है, जो मानव की चेतना-बुद्धि और मन को उदात्त वनाकर वह उसे ब्रह्मज्ञान की ओर ले जाती है। इस रूप में उसे किसी वाहन की आवश्यकता नहीं रहती। जीव के साथ सीधा सम्वन्ध रख कर वह उसे उदात्त वनाती है। मानव के सात्विक रूप का वह संचालन करती है।

महाकाली

महाकाली रूप में वह मानव की पाशविक-वृत्तियों का दमन करके वल, कामनाओं तथा शक्ति का संचालन

करती है। मानव का शौर्य उसीके द्वारा संचालित होता है। सिह पाशविक शक्ति का प्रतीक है। मानव की पाशविक वृत्ति को वश में करके उसे उदात्त शौर्य की ओर ले जाने के कारण ही महाकाली को सिह-वाहिनी कहा गया है। भैंसा पशु का सबसे वलवान् किन्तु निर्बुद्धि, महाक्रोधी और हठीला रूप है। जव मानव प्रकृति महिष का आसुरी रूप धारण करने लगती है—अर्थात् उसकी पाशवी वृत्तियाँ निकृष्टतम् स्तर पर आ जाती है तभी आदि शक्ति का महाकाली रूप जगत्-कल्याण के लिए 'महिषासुर' का मर्दन करके मानव को फिर उदात्त शौर्य और विक्रम के लिए उद्यत करता है। महिषासुरमर्दिनी तथा सिह-वाहिनी दुर्गा इसीलिए जगदम्बा कहलाती है।

महालक्ष्मी

तृतीय रूप में महालक्ष्मी सौन्दर्य, ऐश्वर्य तथा कला की अधिष्ठात्री रहकर मानव के निःश्रेयस की सिद्धि करती है। ऐश्वर्य और सौन्दर्य यदि किसी निर्बुद्धि के हाथ पड़ जाय तो वह कहाँ तक अनिष्टकारी हो सकता है यह किसीसे छिपा नहीं है। अज्ञान का सबसे वड़ा प्रतीक 'उल्लू' कहा जाता है जो जान बूझकर भी प्रकाश का उपयोग नही करना चाहता। उलूक वृत्ति के ऐसे व्यक्तियों के हाथ मे सौन्दर्य और ऐश्वर्य की दुर्दशा न हो और उन पर नियन्त्रण रहे जिससे समस्त जगत् का कल्याण हो, ऐसी व्यवस्था करने के कारण महालक्ष्मी उलूकवाहिनी कही गयी है। कमल-पत्र पर पड़ा हुआ जलबिन्दु जिस प्रकार उसका उपयोग करके भी निर्लेप रहता उसी प्रकार सौंदर्य तथा ऐश्वर्य का उचित उपयोग करके उसमें लिप्त न होना ही उनकी सच्ची उपासना है। इसीलिए तो महालक्ष्मी, कमलालया, कमलदल-विहारिणी कही गयी है। महालक्ष्मी के सहयोगी गण तथा कमल क्रमशः ऐश्वर्य और नैसर्गिक सौंदर्य के लाक्षणिक चिह्न है।

महासरस्वती

अपने चतुर्थ महासरस्वती रूप में शारीरिक बुद्धि के यान्त्रिक उपयोग की अधिष्ठात्री बनकर आदि शक्ति अपना कार्य करती है। विद्या और बुद्धि के क्रियात्मक प्रयोगों द्वारा जगत्कल्याण के लिए अनेकों प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कारों, यान्त्रिक प्रयोग तथा विद्याविभागों का इस रूप में समावेश है। किन्तु विद्या और बुद्धि का निष्कलंक, विवेकपूर्ण तथा ताल, मूर्छना और लय से एक-स्वर उपयोग ही मानव-कल्याण कर सकता है—पापमय अविवेकी तथा विशृंखल रूप नही। इसीलिए महासरस्वती का वाहन नीर-क्षीर विवेकी हंस है। स्वयं भगवती का रूप शुभ्र निष्कलंक है, और वीणा की स्वर-लहरियों से वे जगत् को एक-लय मुग्ध करती हुई चित्रित की जाती है।

जगदम्बा, आदिशक्ति, अपने इन्हीं प्रसिद्ध चार रूपों द्वारा जगत्कल्याण का साधन करती है, मानव-चरित्र को उदात्त बनाकर देव-चरित्र का अध्याहार करती है और उसे अन्ततः ब्रह्म-पद प्राप्ति के योग्य बनाती हैं। माँ यदि इतनी कृपा न करें तो वह तुरन्त मानव से दानव, और दानव से राक्षस बनकर इस जगत् को ही खा जाय। मानव की माँ, तुम्हें सहस्रशः प्रणाम!!

साकेत की उर्मिला और गांधीजी

(अथवा दद्दा, बापू और हम)

श्री कृष्णानन्द गुप्त

सरस्वती के मार्च, १९६९ के अंक में डॉ० परमलालजी गुप्त का 'हिन्दी काव्य में उर्मिला' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसकी ओर हमारा विशेष ध्यान गया। उसमें लेखक ने 'साकेत' की उर्मिला के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, और उसके 'रुदन' का भी जिस ढङ्ग से समर्थन किया है उससे हमें कोई मतलब नहीं। वह सब लेखक की अपनी साहित्यिक मान्यताओं और मनोभावनाओं का प्रश्न है। जिन्हें लेकर उससे झगड़ा नहीं किया जा सकता। किन्तु अपने उस लेख के अन्त में उसने उस सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख करते हुए कि कन्नड़ के महाकवि कुवेम्पु ने एक तपस्विनी के रूप में उर्मिला का चित्रण किया है, एक दो वाक्यों के पश्चात् ही तुरन्त ये शब्द लिखे है कि "गांधीजी ने 'साकेत' में उर्मिला के आँसुओं को देखकर एक ऐसी ही (अर्थात् जैसी महाकवि कुवेम्पु ने चित्रित की है) दृढ़ और संयमी नारी का रूप प्रत्यक्ष करने के लिए कवि को (अर्थात्, श्री मैथिलीशरण जी गुप्त को) लिखा था, परन्तु गुप्त जी का कवि अपनी करुणा का आग्रह नहीं छोड़ सका।" लेखक के इन शब्दों को पढ़कर हम चौंक गये। और बहुत-सी बातों की ओर हमारा ध्यान चला गया। हमें पूज्य दद्दा की—श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की—याद आ गयी। हम कह नहीं सकते लेखक ने उक्त बात कैसे और किस आधार पर लिख दी। उस पत्र-व्यवहार से जो 'साकेत' के सम्बन्ध में गांधीजी और गुप्तजी के मध्य हुआ, हमारा थोड़ा सम्बन्ध रहा और उसकी प्रतिलिपियाँ भी हमारे पास सुरक्षित है। जहाँ तक हम समझते है हिन्दी जगत् उस ऐतिहासिक पत्रव्यवहार से विशेष परिचित नहीं है। कम से कम गांधीजी के उस पत्र की कोई चर्चा हमने नहीं देखी जो 'साकेत' के सम्बन्ध मे उन्होंने दद्दा को लिखा था; और जिसमें उर्मिला विषाद और दशरथादि के रुदन के सम्बन्ध में अपने विचार उन्होंने प्रकट किये। साहित्य और साहित्य के इतिहास की दृष्टि से उनका वह पत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसलिए उसे हम दद्दा के एक पत्र के साथ जो उन्होंने हमें लिखा था, पाठकों की भेंट करते है। किन्तु उसके पहले उस पत्र-व्यवहार की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाल देना, और यह बता देना कि उसकी प्रतिलिपियाँ हमें कैसे प्राप्त हुई उचित होगा।

सन् १९३२ की बात है। बापू—विश्ववंद्य गांधीजी—उन दिनों यरवडा सेंट्रल जेल में थे। दद्दा ने उनके पास अपनी 'साकेत', 'झंकार', 'पञ्चवटी' आदि कुछ काव्य-कृतियाँ भेजी थीं और उन पर उनकी सम्मति भी चाही थी। बापू ने उन सब पुस्तकों की पहुँच देते हुए 'साकेत' के संबंध में विशेष रूप से अपने अभिप्राय लिख भेजे थे। उर्मिला-विलाप और दशरथ रुदन भी उन्हें नहीं रुचा था। संक्षेप में वह बात उन्होंने कवि को लिख दी और उसके कारण भी बता दिये। मैं उन दिनों अपने निवास-स्थान गरौठा में था। 'साकेत' के सम्बन्ध में कहाँ क्या चर्चा हो रही है दद्दा प्रायः हमें इस विषय से सूचित करते रहते थे। कभी कोई विशेष साहित्यिक घटना घटित होती तो यह सोचकर कि कृष्णानन्द को उसका पता नहीं होगा, उससे भी अवगत करा देते थे। अतः अपने उसी अभ्यास के अनुसार उन्होंने हमारे पास बापू के उस पत्र की प्रतिलिपि भेजने की कृपा की जो 'साकेत' के सम्बन्ध में उनके पास से उन्हें मिला था; साथ ही बापू के उस पत्र के उत्तर में अपनी सफाई देते हुए उन्होंने उन्हें जो लम्बा पत्र लिखा उसकी टाईप की हुई कापी भी भेजी, और उस पर हमारा मन्तव्य चाहा। हमने बापू का वह पत्र जब पढ़ा तो यह देखकर अतीव हर्ष हुआ कि साकेत के नवम सर्ग के सम्बन्ध में, जो उर्मिला-विरह से सम्बन्धित है, बापू ने ठीक वही सम्मति प्रदान की—बड़े सहज और रोचक शब्दों में—जो करीब-करीब मैं रखता था, वास्तव में 'साकेत' का नवम सर्ग विशेष कर अपनी स्थान स्थिति के कारण हमें कभी विशेष पसन्द नही आया। स्वयं में काव्य की दृष्टि से वह उच्चकोटि का हो सकता है, जैसा कि बापू ने लिखा; किन्तु 'साकेत' की उस बृहत् पृष्ठभूमि में जिसमे और भी अनेक पात्र है उस पूरे के पूरे नवम सर्ग के लिए वास्तव में कोई स्थान नही। उसके कारण पूरे काव्य की धारावाहिकता में बाधा पड़ती है। आठवें सर्ग के बाद कथा रुक जाती है और पाठक को ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह

पूर्व-वर्णित सम्पूर्ण घटनाओ के साथ आगे बढ रहा है। स्वयं उर्मिला 'साकेत' की प्रमुख नायिका के पद पर प्रतिष्ठित हो नही सकती और न लक्ष्मण ही उस पूरे काव्य के नायक है। नवम सर्ग को यदि 'साकेत' से बिल्कुल अलग कर दिया जाये तो पूरे काव्य के रचना-सौन्दर्य को कोई आघात नही पहुँचता, बल्कि पूरा काव्य अधिक उत्कृष्ट बन जाता हे। एक प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से 'साकेत' का यही सबसे बड़ा दोष हे। 'साकेत' के सम्बन्ध मे दद्दा मेरे इस प्रकार के विचारो से परिचित थे। किन्तु उस सम्बन्ध मे जब उन्होने मेरा स्पष्ट मन्तव्य जानना चाहा तो बापू के विचार का समर्थन करते हुए मैने उन्हे एक विस्तृत पत्र लिख भेजा। उसके उत्तर मे दद्दा ने फिर मुझे एक पत्र लिखा जो हमारे प्रति उनकी आत्मीयता का ही सूचक नही था, बल्कि साहित्यिक दृष्टि से भी बहुत उत्कृष्ट है। उन दोनों पत्रो की प्रतिलिपियो के साथ दद्दा का वह पत्र भी हमारे पास सुरक्षित है। हमे जाने दीजिए। हम तो जबर्दस्ती उस विषय मे एक पाँचव सवार बन गये। किन्तु बापू का साकेत के सम्बन्ध मे दद्दा को लिखा गया पत्र तो बहुत ही मूल्यवान् है। वह इस बात का ज्वलत उदाहरण है कि आवश्यकता पडने पर बापू कला और साहित्य के विषय मे भी कितनी मार्मिकता और सूक्ष्मदर्शिता से अपनी सम्मति प्रकट कर सकते थे। उनके उस पत्र को यहाँ हम देते है। पाठक अब स्वयं देख लेंगे कि 'उर्मिला' के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध मे बापू ने क्या लिखा और लेखक ने कितना गुड़-गोबर कर दिया।

लीजिए वह पत्र। बापू ने लिखा :

यरवडा सेंट्रल जेल
५ अप्रैल

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र मिला था। 'साकेत', 'अनघ', 'पंचवटी' और 'झंकार' सब रसपूर्वक पढ़ गया। बहुत अच्छे लगे। परंतु टीका करने की मै अपनी कुछ भी योग्यता नहीं समझता हूँ। तो भी आपने मेरे अभिप्राय पूछे है और क्योंकि जैसे पढ़ता गया वैसे विचार भी आते रहते थे, इसलिये जैसे आये वैसे ही आपके सामने रखता हूँ। उर्मिला का विषाद अगरचे भाषा की दृष्टि से सुदंर है, परंतु 'साकेत' में उसको शायद ही स्थान हो सकता। तुलसीदासजी ने उर्मिला के बारे में

दद्दा स्लेट पर लिखते थे।

बहुत कुछ नहीं कहा है, यह दोष माना गया है। मैंने इस अभाव को दोषदृष्टि से नहीं देखा। मुझको उसमें कवि की कला प्रतीत हुई है। मानस की रचना ऐसी है कि उर्मिला जैसे योग्य पात्र का उल्लेख अध्याहार में रखा गया है और उसी में काव्य का और उन पात्रों का महत्त्व है। उर्मिला इत्यादि के गुणों का वर्णन सीता के गुण · विशेष बताने के लिये ही आ सकता था। परंतु उर्मिला के गुण सीता से कम थे ही नहीं। जैसी सीता वैसी ही उसकी भगनीआं। मानस एक अनुपम धर्मग्रन्थ है। प्रत्येक पृष्ठ में और प्रत्येक वाक्य में सीता राम का ही जप जपाया हे। 'साकेत' में भी मैं वही चीज़ देखना चाहता था। इसमें कुछ भंग उपरोक्त कारण के लिये हुआ। एक और चीज़ भी कह दूँ। दशरथादि का रुदन तुलसीदास के मानस में पढ़ने से आघात नहीं पहुँचा था। तुलसीदासजी से दूसरा कुछ नहीं हो सकता था। परंतु इस युग के पुस्तक में ऐसा रुदन अच्छा नहीं भाता है। उसमें वीरता को हानि पहुँचती हे। और इधर, भक्ति को भी। जो ऐहिक भोग को क्षणिक माननेवाले है, आत्मा में जिनका विश्वास है उनको मृत्यु का और वियोग का असह्य कष्ट हो ही नही सकता है। क्षणिक मोह भले

आ जावे। परंतु उनसे करुणाजनक रुदन की आशा हम कैसे रखें ?

यह सब लिखने का मेरा उद्देश हरगीज़ यह नहीं कि आप दूसरे संस्करण के लिए कोई सुधारणा करें। हाँ यदि मेरे लिखने में आपको कुछ योग्यता प्रतीत हो तो दूसरी बात है।

महादेव मेरे पास आ गये हैं। और क्योंकि मेरे दाहिने हाथ में लिखने से कुछ कष्ट होता है और बायें हाथ से लिखने में कुछ देर होती है। इसलिए यह पत्र मैंने उनसे लिखवाया है।

आपका
मोहनदास

पाठक देखेंगे कि अपने पत्र में बापू ने कही भी उर्मिला को एक दृढ़ और संयमी नारी के रूप में चित्रित करने के लिए कवि को नहीं लिखा; न उन पर अपनी कोई अन्य राय ही लादी, बल्कि स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि हमारे लिखने का यह उद्देश नही कि उसके अनुसार कोई संशोधन किया जाय।

इसके उत्तर में दद्दा ने अपनी सफाई में बापू को जो पत्र लिखा वह उनकी सहज विनम्रता, उनके बड़प्पन और गांधीजी के प्रति उनकी असीम श्रद्धा और भक्ति का द्योतक है। हम तो यह कहेंगे कि बापू के 'रौब' में आकर वे अपने कवि का 'आग्रह' और आत्मविश्वास एक हद तक छोड़ बैठे। दशरथादि के रुदन के संबंध में अपनी भूल उन्होंने स्पष्ट स्वीकार कर ली। उर्मिला विषाद के संबंध में उन्होंने जो कुछ लिखा उससे शायद स्वयं उन्हें संतोष नही हुआ। अपने हृदय में वे कहीं बापू के तर्क की प्रबलता का अनुभव कर रहे थे। अतः इन शब्दों में उन्होंने बापू से समझौते की प्रार्थना की कि "आप उर्मिला के 'विषाद' को 'साकेत' में स्थान रहने दीजिए और मैं दशरथ के जितने आँसू पोंछ सकूँ 'साकेत' के अगले संस्करण तक पोंछने का प्रयत्न करूँ।" हमें खेद है कि उनके उस पत्र को हम स्थानाभाव के कारण नहीं दे पा रहे हैं।

किन्तु दद्दा ने हमें जो पत्र लिखा, उसे प्रकाशित करने का लोभ हम नहीं छोड़ पा रहे हैं। हमने उन्हे क्या लिखा था, अब इतने दिनों बाद स्मरण नहीं; किन्तु इतना तो कह ही दें कि हम उनसे प्रायः गद्य में कुछ लिखने का अनुरोध किया करते थे। किन्तु वे हँसकर सदैव यही कहते कि अरे भाई गद्य लिखने में हमें बड़ा श्रम पड़ता है और हम लिख नहीं सकते। किन्तु गांधीजी को जिस रूप में उन्होंने पत्र लिखा उसके द्वारा अपने उक्त कथन को उन्होंने स्वयं ही झुठला दिया। वे यदि चाहते तो उच्च कोटि के परिमार्जित गद्य का सृजन कर सकते थे। मैं यह बात उन्हें लिखे बिना नही रह सका। उसीकी चर्चा उन्होंने पत्र के प्रारम्भ में ही की। पूरे पत्र से 'साकेत' के नवम सर्ग के संबंध में स्वयं कवि के विचारों का अच्छा परिचय हमें मिल जाता है। लीजिए उसे। वह इस प्रकार है :—

श्रीरामः

चिरगाँव
२५-४-३२

भाई कृष्णानन्द,

अध्याहार में ही कला नहीं है, निबंध भी उसका एक रूप है। यह तुम्हारे इस वाक्य से ज्ञात हुआ कि 'दद्दाजी हमारी बातें क्यों सुनें ?' इसने मेरा ध्यान तुम्हारी बातों की ओर और भी आकृष्ट कर लिया ! फिर भी यह नहीं जान पड़ता कि मैं उन्हें सुनकर समझ गया हूँ ! जिसे तुमने पीछे के लिए रख छोड़ा था मैं उसी को पहले ग्रहण करता हूँ। मैं गद्य लिख लेता हूँ इसका विश्वास तुमने मुझे दिलाया, इसके लिए तुम्हें धन्यवाद नहीं दूँगा। तुम्हें उसकी अपेक्षा भी नहीं। मेरे निकट तुम और तुम्हारे निकट मैं भी दोनों इस 'शिष्टाचार' से ऊपर पहुँच चुके हैं। रही वाक्य-संयम की बात, सो तुमने सुना ही होगा कि 'कवयः किं न जल्पन्ति'। अन्य प्रकार से मैं कवि नहीं हो सकता तो इसी का प्रयोग करके क्यों न देखूँ। परन्तु मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए इस बार उसकी चेष्टा करूँगा। अप्रसन्न न होना।

'दशरथादि के रुदन' में उर्मिला का 'विषाद' सम्मिलित है, ऐसा तो मैं नहीं कहता। परन्तु वह विषाद ऐसा अवश्य है जिसका स्थान 'साकेत' में अनिश्चित है। तुम समझ लो कि उसी के सम्बन्ध में मेरा वक्तव्य है। इसी दृष्टि से तोलकर देखो कि वह कहाँ तक ठीक है। अवश्य ही मेरी योग्यता का भी विचार रखना, जो तुमसे छिपी नहीं। जब मैंने पत्र (बापू को) लिखा तब तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे खली थी, इसका कहना ही क्या ?

मेरा यही कहना है कि उर्मिला के विषाद के लिए प्रदर्शित कारणों से 'साकेत' में स्थान है और होना ही चाहिए। तुमसे इतना और कह देने में मुझे कोई बाधा नहीं कि वह स्थान पहले से ही था। परन्तु हमने उसे बहुत पीछे देखा। मैं तो यह भी नहीं मानता कि रवि ठाकुर ने न दिखाया होता तो मैं उसे न देख पाता।

जो हो, 'कला की दृष्टि से ही उर्मिला के विषाद को वह अच्छा नहीं मान रहे हैं' जब तुम ऐसा समझते हो तो बताओ भाई, कला की रक्षा कैसे की जाय ? नवम सर्ग निकालकर ? यह तो धब्बा धोने के लिए कपड़े से ही हाथ धो लेना हुआ ! हुआ न ?

किन्तु मैं इसके लिए सहज ही सम्मत न हूँगा। भरसक प्रयत्न करूँगा कि वह बना रहे। हाँ, यदि मेरा हृदय (मस्तक नहीं) सम्मत हो जाय तो बात ही दूसरी है; परन्तु विचार मैं मस्तक से ही करने का प्रयत्न करूँगा। तुम मेरा वक्तव्य देखकर बताओ मैंने जो हेतु उस विषाद के लिए दिये है वे कहाँ कला के विरोधी होते हैं। केवल उपयोग की ही दृष्टि से नहीं 'कला के लिए कला' के लिए विचार से भी।

मेरी कला का केन्द्र कहाँ है, इसका विचार न्यायतः तुम्हें अवश्य रखना होगा। सीता और राधा की सम्मिलित मूर्त्ति की कल्पना ही उसका केन्द्र है। यह सम्मेलन वांछनीय है या अवांछनीय, यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है, परन्तु उर्मिला के रूप में वह मूर्त्ति ठीक उतरी या नहीं, इसी का विचार किया जा सकता है।

यदि कहा जाय, कथामूलक काव्य में नवम सर्ग की उतनी क्या आवश्यकता है तो मैं कहूँगा कि ऐसे काव्यों में जो यत्र-तत्र प्राकृतिक वर्णन आते हैं उनकी भी क्या आवश्यकता ? यदि वे कथा पर प्रकाश डालने के लिए आते हैं तो मेरा उद्देश सिद्ध हो जाता है। चौदह वर्ष की लम्बी अवधि में उसकी प्रकृति के साथ कैसी निभी इसका दिग्दर्शन करने का प्रयत्न है नवम सर्ग। तुम नित्य अपनी डायरी के पन्ने रँगो और मैं 'अष्टयाम' न लिखूँ तो क्या इतना भी न करूँ ?

'मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो' तथापि तुम तो विचारासन पर बैठे हो, वज्र बनकर ! तुमसे ऐसी आशा कैसे की जाय ? अच्छी बात है, उर्मिला भी तुम्हारे समक्ष इसे विनय के रूप में न कहेगी। 'क्षणिक भोग' और 'क्षणिक मोह' की तो तुम भी उसे छुट्टी देते हो। दूसरे ही क्षण उससे सुन लो। परन्तु तुम सुन चुके हो। 'क्षणिक' छूट भी उसे न दोगे ? तब वह उर्मिला न होकर एक मूर्त्ति ही होगी, जिसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की गई।

दशरथ के विषय में मिलने पर।

मैंने चतुर्वेदी जी को एक पत्र लिख दिया है। उसकी प्रतिलिपि तुम्हें भेजता हूँ। खत्री जी के लेख से मुझे अपने ही विचारों की पुष्टि मिली है।

तुम्हारा
मैथिलीशरण

पुनश्च :—
मैंने वाक्य संयम की चेष्टा की है, परन्तु तुम ऐसा न करना। नहीं मुझे रस न आयगा।

मै०

उक्त दोनों ही पत्र हिन्दी पत्र साहित्य की एक मूल्यवान् निधि माने जाने चाहिए। उनके प्रकाशन के लिए पाठक श्री परमलालजी गुप्त को धन्यवाद दें।
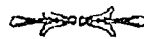
भूल सुधार

सरस्वती के जून के अंक में 'गधा बनना और बनाना, शीर्षक लेख में भ्रमवश लेखक का नाम श्री भ्रमरानन्द छप गया है। वास्तव में वह लेख डा० श्याम तिवारी का है। इस भूल के लिए हमें खेद है।

—सम्पादक, सरस्वती

स्वर्ण-निर्माण-विद्या—कीमिया

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

लव और कुश ने भले ही भगवान् रामचन्द्र के देते हुए सोने को अस्वीकार कर दिया हो, यह कहकर कि 'हिरंण्येन सुवर्णेन किं करिष्यामहे वने' (वन में सोना-चाँदी लेकर हम क्या करेंगे ?) पर वास्तविकता तो यह है कि सभ्यता के आदिकाल से ही मानव का एक आकर्षण सोने के प्रति तीव्र बना रहा है और युगयुगों से वह सोना बनाने की कोशिशों में लगा रहा है। संस्कृत के हमारे कई प्राचीन ग्रंथों में इसकी विधि दी हुई है पर उसे समझने में कठिनाइयाँ हैं, वर्ना आज इस देश के घर-घर में सोना बनाने के छोटे-मोटे कारखाने खुले होते। कहते हैं, सोना बनाने मे जिन द्रव्यों और वनस्पतियों की अवाश्यकता होती है वे केवल हिमालय पर रहनेवाले इने-गिने साधुओं को ही ज्ञात है। पता नही इसमें कहाँ तक सचाई है, पर अभी कुछ दिन पहले दिल्ली के एक हिन्दी दैनिक समाचार-पत्र में प्रकाशित मुझे एक पत्र पढ़ने को मिला जिसमें एक साधु का जिक्र था जो 'कीमिया-गर' था तथा जिसने लेखक को सोना बनाकर तो नही दिखाया, पर बनाने का नुस्खा बता दिया, किन्तु नुस्खे का अर्थ नहीं कहा। नुस्खा इस प्रकार है—

तोरस, मोरस, गंधक, पारा
इनहिं मार एक नाग सँवारा;
नाग मार नागिन को देय,
सारा जग कंचन करि लेय।

मैं चकित रह गया इस नुस्खे को पढ़कर, और आज से प्राय: ५०-५२ साल पहले की एक घटना मेरी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। वह यों है :

मेरे पिताजी तब जीवित थे। तभी एक दिन किसीने आकर उन्हें बताया कि दरभङ्गा में, जो मेरे गाँव से ज्यादा दूर नहीं है, एक वृद्ध हकीम ने कहीसे आकर डेरा डाला है जिनके हाथों में जादू है, यानी वे पीयूषपाणि है, वे कठिन-से-कठिन रोग भी अच्छा कर देते हैं। पिताजी को आवश्यकता थी एक अच्छे चिकित्सक की, सो तुरत उन्होंने एक आदमी उन्हें बुला लाने को भेजा। वे आये, महीनों हमारे घर पर ठहरे। दवाइयाँ बनती रहीं और पिताजी की फुआ (रानी साहिबा) का इलाज होता रहा। हजारों रुपये खर्च हुए दवाओं के बनाने में। इस संबंध की एक घटना उल्लेखनीय है।

हकीम साहब ने एक दवा बनायी, जिसमें तीन हजार रुपये खर्च हुए। दवा की गोलियाँ बनाकर धूप में सूखने को डाल दी गयी थीं। एक पालतू हिरण आकर उसकी कुछ गोलियाँ खा गया। फिर तो उसके भीतर इतनी गर्मी पैदा हुई कि वह बेचैन होकर सामने के तालाब में कूद पड़ा और डूब कर मर गया। जब रानी साहिबा को यह पता चला तो उन्होंने इन्कार कर दिया हकीम साहब का इलाज आगे चालू रखने से, और उनकी आज्ञा से वे सारी गोलियाँ जमीन के भीतर गाड़ दी गई और इस तरह तीन हजार रुपये पानी में फेंक दिये गये।

पर हकीम साहब का पाँव जमा रहा। एक लम्बे अर्से तक हमारे घर पर उनका कयाम बना रहा और वे चमेली और बेले के तेल बनवाते रहे। इसमें शक नहीं कि इस हुनर में भी उनका अच्छा दखल था। उनके बनाये हुए तेल सचमुच ही बड़ी उच्च श्रेणी के थे।

पर जो सबसे बड़ी विशेषता उनमें थी वह था उनका कीमिया—स्वर्ण निर्माण कला—का ज्ञान। वह कीमियागर थे और आपको सुनकर तज्जुब होगा कि उन्होंने वास्तव में सोना बनाकर, हमारी आँखों के सामने, इसका परिचय दिया था। वह इस तरह—सर्वप्रथम वह पड़ोस के जंगल से—हिमालय की तलहटी में होने के कारण हमारे गाँव के अड़ोस-पड़ोस में छोटे-मोटे जंगल काफी संख्या में थे—बहुत सी वनस्पतियाँ उखाड़ लाये, पर उनका परिचय नहीं दिया। फिर गोंयठे की आग जलवाई जो छः दिनों तक अहर्निशि जलती रहा। आग पर उन्होंने एक कड़ाह चढ़ाया, उसमें लोहे का एक टुकड़ा डाला और उपर्युक्त वनस्पतियों का रस उसमें छोड़ा। इसके बाद और भी तरह-तरह के रासायनिक पदार्थ इसमें डाले जिनका नाम अप्रकटित रखा। वनस्पतियों में तरल तेल-जैसा एक पदार्थ था जिसे वे बार-बार डालते रहे, सूखने नहीं दिया। कड़ाह में इतने पदार्थ डाले कि लोहा कभी नजर नहीं आया। छः दिनों तक पूर्वोक्त प्रक्रियायें चलती रहीं। बीच-बीच में वे स्वयं जाकर जंगल से तरह-तरह की वनस्पतियाँ, बूटियाँ लाते रहे और

उन्हें कड़ाह में झोंकते रहे। अंतिम दिन उन्होंने कई चीजें अपनी झोली से निकाल कर उसमें डाली जिन्हें किसीको देखने नहीं दिया।

आग को और भी तेज किया उन्होंने, और घंटों उसे उसी दशा में रखा। फिर धीरे-धीरे प्रज्ज्वलित वह्नि शान्त हुई और लोहे का वह टुकड़ा जो पहले दिन कड़ाह में डाला गया था, बाहर निकला। वह दीप्तिमान सोने में परिवर्तित था। सुनार बुलाये गये, परीक्षाएँ हुईं पर वह खरा सोना ही साबित हुआ, लोहा नहीं। स्मरण रहे कि कड़ाह के पास चौबीस घंटों का पहरा रखा गया था ताकि लोहे के टुकड़े को सोने से बदला न जाय और उसके आकार-प्रकार की पूरी माप-तोल कर ली गयी थी। गरज यह कि सन्देह की कतई गुञ्जायश न थी। लोहा सोने में बदल गया, इसमें जरा भी शक नहीं रहा।

हकीम साहब ने हमारे सामने सोना बनाकर दिखा दिया। उनके कथनानुसार जिस गुरु से उन्होंने यह ज्ञान प्राप्त किया था उसका यह सख्त आदेश था कि वे इस ज्ञान के द्वारा धनोपार्जन की चेष्टा न करें।

मैं आरम्भ में ही कह चुका हूँ कि दिल्ली के पूर्वोक्त संवादपत्र में छपे हुए नुस्खे को पढ़कर मैं चकित रह गया। इसका कारण सुनें।

हकीम साहब ने सोना बनाने के जिस नुस्खे को हमें बताया था वह हू-बहू वही था जो पूर्वोल्लिखित पत्र में उद्धृत है—तोरस, मोरस, गंधक, पारा आदि। केवल अंतिम चरण में थोड़ा-सा अन्तर था, 'सारा जग कंचन करि लेय' के स्थान पर 'जग कंचन-कंचन करि लेय' था। बाकी तीन चरण वही थे जो पत्र में हैं। प्रायः छः वर्ष हुए मेरी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—'बिहार का गौरव।' निबन्धों के उस संग्रह में एक लेख कीमिया पर है, उसमें मैंने इस नुस्खे को उद्धृत किया है।

हकीम साहब हिन्दू साधू नहीं, एक मुसलमान थे। सांवला रंग, लम्बा, छरहरा बदन, गाल धँसे हुए, पाँव में कामदार जूते, अर्ध खालता पाजामा, शरीर पर एक झूल, सर पर कामदार टोपी, गले में विभिन्न प्रकार के पत्थरों की माला—यही उनकी वेशभूषा थी। उम्र सौ से कम नहीं। पूछने पर वह अपनी उम्र न बताकर एक सूची बता डालते थे कि कितने वर्ष उन्होंने कहाँ, किस देश में, गुजारे और इन्हें जोड़ने पर मीजान ढाई-तीन सौ बरसों का होता था। उनकी बातों से लगता था कि जीवन के काफी दिन उन्होंने पूर्व बंगाल में, दिगपनिया के आसपास बिताये थे। साथ ही तिब्बत और मध्य एशिया के देशों में भी कुछ काल बिताया था। बकौल उनके, सोना बनाना उन्होंने सर्वप्रथम अरब में सीखा था, फिर तिब्बत में, किसी हिन्दू साधू से।

जिस तरह अकस्मात् वह दरभंगे पधारे थे, उसी तरह पाँच-छः साल बिताकर वह एक दिन अचानक वहाँ से चलते बने। अपने सारे सरो-सामान वहीं छोड़ गये। फिर उनका कोई पता न मिला। एक अजीब रहस्यपूर्ण व्यक्ति थे वह; और इसमें शक नहीं कि उनमें कई विलक्षणताएँ थीं—ऐसे हुनर थे जो आमतौर पर देखने को नहीं मिलते।

लोहा अथवा किसी अन्य द्रव्य से स्वर्ण-निर्माण की आकांक्षा मनुष्य को सदा से ग्रसित करती रही है, पर यह एक ऐसा ज्ञान है जिसका भेद कोई आसानी से खोलना नहीं चाहता। और यही कारण है कि इसके नुस्खे सदा एक रहस्यपूर्ण भाषा में हुआ करते थे या हैं जिसकी एक मिसाल ऊपर दी जा चुकी है; और इस रहस्य के कारण ही कीमियागर और जादूगर पर्यायवाची शब्द बन गये। हमारे यहाँ सोना बनाने की विद्या—जिसे अरबी में 'अल कीमिया' लैटिन तथा अंग्रेजी में 'अलकेमी' कहते हैं—का उल्लेख 'रुद्र-यामल' और 'महाकालसंहिता' नामक संस्कृत ग्रंथों में है जहाँ सोना बनाने के नुस्खे भी दिये हुए हैं, पर उन्हें समझ पाना उतनी ही टेढ़ी खीर है जितनी पूर्वोल्लिखित 'तोरस-मोरस' वाले नुस्खे को। पर चाहे वह नुस्खा संस्कृत, हिन्दी में, अथवा हिब्रू या और किसी भाषा में हो सर्प का जिक्र इसमें किसी-न-किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। ऐसा लगता है कि कीमिया में साँप का लाक्षणिक रूप किसी वस्तु-विशेष का द्योतक माना जाता था—किसी द्रव्य या वनस्पति का—पर वह वस्तु क्या थी, यह इस विद्या के जाननेवाले गुप्त रखते थे, यह ज्ञान केवल कीमियागरों के बीच ही सीमित था। इस सम्बन्ध में एक घटना उल्लेखनीय है और इस कथन की पुष्टि करती है। वह यों है—

बहुत दिनों की बात है सन् १३५७ की। फ्रांस में एक आदमी था, फ्लामेल; जिसकी प्रबल आकांक्षा थी कीमियागर बनने की। पर उसे कोई ऐसा आदमी न मिल रहा था जिससे वह यह ज्ञान प्राप्त करे। तभी एक दिन उसने स्वप्न देखा कि एक परी (ऐंजल) उसे एक पुस्तक दिखला रही है और कहती है—फ्लामेल! देखो इसे, इसमें तुम्हारा मनवांछित

ज्ञान लिखा हुआ है पर तुम इसे स्वयं न समझ पाओगे, किन्तु एक समय आयेगा जब तुम इसमें एक ऐसी वस्तु पाओगे जो किसी और को नसीब नहीं है, और न होगी।

उसका स्वप्न टूट गया जब उसने पुस्तक लेने को हाथ बढ़ाया।

कुछ दिनों में वह इस स्वप्न को भूल-सा गया, पर एक दिन अचानक एक पुरानी किताबें बेचनेवाला उसके घर आया और उसे वही पुस्तक दिखाई जिसे उसने स्वप्न में देखा था। फौरन उसे याद आ गयी बरसों पहले देखे हुए सपने की, और उसने दो फ्लोरिन देकर पुस्तक खरीद ली। बड़े आकार की और अति प्राचीन पुस्तक थी, इसकी जिल्द सुनहली तथा पृष्ठ किसी वृक्ष की पतली छाल के थे। छाल पृष्ठों पर लैटिन अक्षर खुदे हुए थे। पुस्तक के सात पृष्ठ तीन बार आते थे पर हर बार सातवाँ पृष्ठ कोरा' अलिखित, छोड़ा हुआ था। पहली सिरीज के सातवें पृष्ठ पर एक डंडा बना हुआ था और दो सर्प, जो एक दूसरे को निगल रहे थे। दूसरी सिरीज के सातवें पन्ने पर एक 'क्रास' बना हुआ था जिस पर एक सर्प फाँसी पर लटकाया हुआ था। अंतिम सिरीज के ७वें पृष्ठ पर एक रेगिस्तान अंकित था जिसके बीचोबीच से कुछ झरने निकले हुए थे जिनमें से अनेक सर्प बहिर्गत होकर इतस्ततः विचर रहे थे। पुस्तक के पहले पृष्ठ पर अनेकों अभिशाप लिखे हुए थे ऐसे लोगों के लिए जो बिना गुरु की इजाजत के इसे पढ़ने या समझने का यत्न करें।

पुस्तक के चित्र सांकेतिक है, यह तो वह समझ गया पर उसे कोई ऐसा गुरु न मिला जो उसे इनका अर्थ बताता और न उसके पास वह परी ही पुनः लौटकर आई। उसकी अन्त-प्रेरणा ने कहा कि पुस्तक कीमिया से सम्बन्धित है, और उसकी व्यग्रता दिनानुदिन बढ़ती गयी। वह एक बेचैनी की दशा मे समय काटने लगा।

तभी उसे एक दिन 'इलहाम' हुआ। पुस्तक का लिखनेवाला एक अब्राहम नामक यहूदी था। उसने सोचा, क्यों न किसी यहूदी से इसकी व्याख्या पूछी जाय। स्पेन मे उन दिनों यहूदी कीमियागरों के होने की बात फैली हुई थी। सो वह स्पेन के लिए रवाना हो गया। वहाँ उसकी भेंट एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो उसका देशवासी और पूर्व परिचित था। वह उसे कांशे नामक एक प्रसिद्ध कीमियागर के पास ले गया। उसने उस पुस्तक के वे पृष्ठ दिखाये जिन्हे वह अपने साथ लेता आया था। वह उन्हें देखते ही उछल पड़ा, बोला,—"यह पृष्ठ तो हिब्रू भाषा के उस महान् ग्रंथ के है जिसे राबी अब्राहम ने लिखा था, जो अब अप्राप्य है और जिसकी खोज बहुत दिनों से यहूदी-संसार करता आया है।" और फिर उसने धड़ाधड़ उसके अर्थ बताने शुरू किये।

मूल पुस्तक फ्रांस में, फ्लामेल के घर पर थी, अतएव कांशे उसके संग फ्रांस के लिए चल पड़ा, पर रास्ते में दैवदुर्विपाक से उसकी मृत्यु हो गयी। फ्लामेल हतास-सा हो गया, फिर भी वह पुस्तक के सांकेतिक चित्रों के समझने में लगा रहा, कांशे के बताये हुए अर्थो के सहारे।

तीन साल के अथक परिश्रम के बाद सफलता की कुँजी उसके हाथ आई। उसने प्रयोग जारी रखा और तब १७ जनवरी, १३८२ की रात में आधा पौंड 'लेड' सहसा चमकती हुई चाँदी के रूप में निकल आया। धड़कती हुई छाती से तब उसने उस पर वह दवा, अल-अक्सीर, जिसे उसने पुस्तक के सहारे तैयार की थी, छोड़ी। तपाना जारी रखा, धातु ने एक के बाद दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवा रंग बदलना शुरू किया और अंत में वह सुर्ख रंग का गोला बन गया। आधी रात बीत चुकी थी जब आध-पौंड 'पारे' मे उसने उसे रखा। देखते-देखते पारे के साथ मिलकर वह गोला स्वच्छ सोना बन गया। और उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा पूरी हुई।

फ्लामेल ने काफी सोना बनाया और इनकी कीमत से अपने जीवन में १४ अस्पताल, तीन गिर्जाघर और अनेक संस्थाएँ स्थापित की।

इस घटना के संदर्भ में यदि हम उपर्युक्त 'तोरस, मोरस' वाले नुस्खे को देखें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी बातें अनर्गल नही, सारगर्भित है तथा सोने के निर्माण मे पारे का, जिसकी उसमें चर्चा है, काफी बड़ा हिस्सा है। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि नाग और नागिन सांकेतिक—लाक्षणिक शब्द हैं—किन्ही द्रव्य अथवा वनस्पतियों के लिए। फ्लामेल ने यदि इस विषय पर पुस्तक लिखकर यह बताया होता कि कीमिया के नुस्खों में सर्प का अर्थ क्या है तो इसे समझने मे आज हमें दिक्कत नही होती, पर परम्परा के पथ पर चलते हुए उसने भी इस भेद को खोला नहीं; खोल भी नही सकता था जब

वह स्वयं सोना बना-बना कर करोड़पति बनने के प्रयास में लगा हुआ था।

गरज यह कि कीमिया एक सच्ची कला या विद्या है और उस पर अविश्वास करना उचित नहीं। अभी उस दिन की घटना है। नेपाल से असम जाते हुए एक नंग-धड़ङ्ग साधु मेरे एक ग्रामीण मित्र के, जो एक अच्छे साधक हैं, घर पर रात में ठहरे। मेरे मित्र के पास उस दिन पैसों की कमी थी, साधु इसे भाँप गये, तुरन्त अपनी झोली से सौ-सौ के कई नोट निकाल कर उन्हें दिये कि इनसे काम चलाओ। मेरे मित्र ने कहा कि "महाराज! आप तो एक अवधूत हैं, साधु, आपके पास पैसे कहाँ से आये?" वे हँसे, बोले, "बच्चा! हम साधुओं को सोना बनाने का ज्ञान प्राप्त होता है। हम यदा-कदा सोना बनाकर केवल काम के लायक पैसा पैदा कर लेते हैं पर हम इस ज्ञान से धन इकट्ठा नहीं करते, यदि ऐसा करें तो हमारा नाश हो जाय।"

और रात के बीतते-न-बीतते वे अपने गंतव्य की ओर चल पड़े।

पता नहीं, इस देश के लोकपालों की इस विद्या में कितनी अभिरुचि थी और न महाराज विक्रमादित्य के दरबार के "नौ-रत्नों" में किसी कीमियागर के होने का कहीं उल्लेख मिलता है। पर लगता है कि प्राचीन इस्लामी और यूरोप के देशों में प्रस्तुत विद्या का प्रचार, राजा से रंक तक में बड़े पैमाने मे था। खलीफा हारूँ-अल-रशीद, जर्मनी का बादशाह फर्डिनेंड तृतीय, इङ्गलैंड का चार्ल्स द्वितीय, बेकन, न्यूटन, आदि सभी इसके पीछे पागल थे—और कीमियागरों ने उन्हें सोना बना-बनाकर दिया जरूर पर बनाने की प्रक्रिया का भेद नहीं खोला। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो आज संसार सुवर्णमय हो गया होता, और न मेरे मित्र पारसनाथसिंह को १९२६-२७ में जब भारत में स्वर्ण-मुद्रा के स्थान पर चाँदी की मुद्रा जारी की गयी, तो यह लिखने की आवश्यकता हुई होती कि—

सोने के सर पर बैठेगा यह चांदी का सिक्का,
मोटर को भी मात करेगा अब पटने का इक्का।

पर देश का दुर्भाग्य तो देखिए, सोने की बात तो दर किनार, आज चाँदी की मुद्रा भी यहाँ से अन्तर्हित है कागज का नोट, जो कुछ है बस यही है, और यह भ रोज दिन गिरगिट की तरह, रंग बदलता जा रहा है।

सोना बनाने की विद्या—कीमिया की सचाई प बावजूद इस बात के कि इसके बनाने की एक नहीं, अनेक प्रदर्शन दिये जा चुके हैं हमेशा शंका की जाती रही है एक समय था जब कीमियागरों को अपनी जान बचाने लिए वेशभूषा तक बदल डालनी पड़ती थी। पर इसकी सत्यत पर शंका करना अज्ञानता का ही द्योतक है। यह ए मान्य बात है कि संसार की सभी वस्तुएँ पाँच तत्त्वों व बनी हुई है। इन तत्त्वों के समिश्रण से धातु विशेष क सृष्टि होती है, जिसमें हर-एक का अनुपात निश्चित है लोहा लोहे का रूप तभी तक धारण कर सकता है जब त इन तत्त्वों का वह अनुपात है जो इसे लोहा बनाता अक्षुण्ण बना हुआ है। अनुपात में परिवर्तन कर हम य गंधक, पारा, तूतिया आदि द्रव्यों और वनस्पतियों के सहा इसमें पाँच तत्त्वों का वह अनुपात पैदा कर सकें जो सोन बनाता है, तो लोहे को हम सोना क्यों नहीं बना सकते? पर ऐसा करने के लिए हमें इसकी विधि का समुचि ज्ञान होना चाहिए।

पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, य भी एक प्राचीन धारणा है। यह सच भी हो सकता असत्य भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि इ पत्थर में पूर्वोक्त पाँच तत्त्वों के बदलने की कहाँ तक क्षमत है। यह तो पारस पत्थर की वैज्ञानिक परीक्षा करके ह कहा जा सकता है, पर वह स्वयं ही एक ऐसी वस्तु जिसका अस्तित्व संदिग्ध है। फिर भी सदियों से हमारे दे में यह धारणा बनी रही है कि—

'पारस गुन अवगुन नहिं चितवत, कंचन करत खरो!'

---

*आणविक विज्ञान की नयी शोधों के अनुसार अणु परमाणुओं की संख्या अथवा संगठन के परिवर्तन से एक धा दूसरी धातु में परिवर्तित हो सकती है। सम्पादक सरस्व

चतुर्थ योजना

(विचारणीय प्रश्न)

श्री शंकरसहाय सक्सेना

लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त योजना आयोग ने चतुर्थ योजना को तैयार कर देश के समक्ष उपस्थित किया है। विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार के अनुसार उसकी आलो-ना की है। कोई इस योजना को वहुत महत्त्वाकांक्षी तो छ उसको देश की आवश्यकताओं को देखते छोटा मानते । लेखक इस विवाद में न पड़कर केवल इस तथ्य का ध्ययन करेगा कि चतुर्थ योजना में उत्पादन गति की द्धि के जो अनुमान निर्धारित किए गए हैं उनको प्राप्त रने की क्या सम्भावनाएँ है और उनको प्राप्त करने में या-क्या वाधाएँ हैं।

चतुर्थ योजना के अनुसार १९६७-६८ से १९७३-७४ काल में विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में जो देश के अन्दर शुद्ध उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है वह नीचे लिखे अनुसार है :—

चतुर्थ योजना के अनुसार शुद्ध आन्तरिक उत्पादन का अनुमान

(करोड़ रुपयों में) (१९६७-६८ और १९७३-७४)

आर्थिक क्षेत्र	१९६७-६८	१९७३-७४	प्रतिशत वृद्धि
१. कृषि तथा सम्वद्ध कार्य	१४९७३	१८९९०	२६.९%
२. खनिज वड़े निर्माण उद्योग तथा लघु उद्योग आदि	५१०९	८२१६	६०.४%
३. वाणिज्य यातायात तथा संचारण	४१२१	६३२९	५३.६%
४. अन्य सेवाएं	३९९५	४९१६	२३.१%
५. शुद्ध आन्तरिक उत्पादन (१+२+३+४)	२८१९८	३८४५९	३६.४%

ऊपर लिखी उत्पादन वृद्धि का वास्तविक महत्त्व हम तभी समझ सकते हैं कि जव हम पिछले वर्षों की उत्पादन वृद्धि से उसकी तुलना करें।

उत्पादन वृद्धि का आकार—हम पहले 'कृषि और उसके सम्वद्ध' क्षेत्र को लेंगे। १९६०-६१ से १९६४-६५ के वर्षों में शुद्ध आन्तरिक उत्पादन में प्रतिवर्ष २.५ प्रतिशत की गति से वृद्धि हुई। उसके उपरान्त १९६४-६५ से १९६८-६९ के काल में वार्षिक उत्पादन वृद्धि की गति का प्रतिशत घटकर केवल १.३ प्रतिशत रह गया जो कि देश में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि का केवल आधा था। भारत की जनसंख्या के प्रतिवर्ष २.५ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। दूसरे शब्दों में कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि की गति देश की संख्या में जितनी वृद्धि हो रही है उसकी केवल आधी हुई।

इसकी तुलना में चौथी योजना-काल में उत्पादन वृद्धि का वार्षिक प्रतिशत ४ अनुमानित किया गया है। इस सम्वन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिए कि १९६८-६९ में कृषि उत्पादन में वृद्धि एक प्रतिशत से भी कम हुई है। चौथी योजना के इस प्रथम वर्ष में उत्पादन में हुई इस कमी को पूरा करने के लिए योजना-काल के शेष वर्षों में वार्षिक उत्पादन वृद्धि चार प्रतिशत से भी अधिक होनी चाहिए। योजना आयोग ने 'ड्राफ्टप्लान' में शेष वर्षो में ४.५ प्रतिशत वृद्धि का प्रावधान किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि पिछले आठ वर्षो में (१९६०-६१ से १९६८-६९) तो वार्षिक उत्पादन वृद्धि केवल १.३ प्रतिशत हुई परन्तु अव योजना आयोग चौथी योजना काल में उसको तिगुने से भी अधिक कर देने का स्वप्न देखता है।

इसी प्रकार खनिज और औद्योगिक क्षेत्र में १९६०-६१ से १९६४-६५ के काल में ७.५ प्रतिशत वार्षिक उत्पादन वृद्धि हुई। १९६४-६५ से १९६८-६९ के काल में उत्पादन वृद्धि की गति घटकर केवल १.८ प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई। अर्थात् पिछले आठ वर्षो के काल में उत्पादन वृद्धि ४.६ प्रतिशत वार्षिक हुई।

उसकी तुलना में चौथी योजना में इस क्षेत्र में वार्षिक उत्पादन वृद्धि ८.२ प्रतिशत होने की आशा की गई है। इस सम्वन्ध में हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि चौथी योजना के प्रथम वर्ष अर्थात् १९६८-६९ में वास्तविक उत्पादन वृद्धि केवल ५ प्रतिशत ही हुई। इस कमी को पूरा करने के लिए शेष वर्षो में उत्पादन-वृद्धि १० प्रतिशत वार्षिक होना चाहिए। कहने का अर्थ यह हुआ कि पिछले आठ वर्षो में खनिज और औद्योगिक क्षेत्र में प्रतिवर्ष उत्पादन की गति में जितनी वृद्धि हुई चौथी योजना के शेष वर्षों में योजना-आयोग दुगनी वृद्धि की आशा करता है।

जहाँ तक वाणिज्य, यातायात और संचारण क्षेत्र का प्रश्न है, चौथी योजना में उत्पादन वृद्धि की गति में ७.४

प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान किया गया है। जब कि १९६०-६१ से १९६४-६५ के काल में ७·२ प्रतिशत और १९६४-६५ से १९६८-६९ के काल में केवल ३·४ प्रतिशत ही हुई।

अन्य सेवाओं के क्षेत्र में चौथी योजना में केवल ३·५ प्रतिशत वार्षिक उत्पादन वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। १९६४-६५ से १९६८-६९ के काल मे जो आर्थिक दृष्टि से बुरा काल था, उसमें भी वार्षिक उत्पादन वृद्धि ३·९ प्रतिशत हुई थी। अतएव इस क्षेत्र में विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि चतुर्थ योजना का लक्ष्य पूरा होगा।

संकुल उत्पादन वृद्धि गति—ऊपर हमने विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि की गति का अध्ययन किया। परन्तु यदि हम समस्त भारतीय अर्थ व्यवस्था की उत्पादन गति की वृद्धि को लें जो कि लगभग वार्षिक राष्ट्रीय आय के बराबर होती है तो पिछले आठ वर्षो के काल में १९६०-६१ से १९६४-६५ तक वार्षिक उत्पादन वृद्धि की गति ४·६ प्रतिशत थी और १९६४-६५ से १९६८-६९ के चार वर्षो के काल में वह घटकर केवल १·६ प्रतिशत रह गई। दोनों ही कालों को यदि हम एक साथ लें तो वार्षिक उत्पादन वृद्धि की गति ३·१ प्रतिशत रही।

इसकी तुलना में योजना आयोग ने चौथी योजना में वार्षिक उत्पादन वृद्धि में ५·३ प्रतिशत की आशा की है यदि हम इस बात का ध्यान करें कि १९६८-६९ में वार्षिक उत्पादन में केवल ३ प्रतिशत की ही वृद्धि हुई तो शेष वर्षो में ५·५ प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हो तभी योजना आयोग द्वारा निर्धारित वृद्धि का लक्ष्य पूरा हो सकेगा। अर्थात् पिछले आठ वर्षो में जितनी वार्षिक उत्पादन में वृद्धि हुई है (३·१ प्रतिशत) उससे लगभग दुगनी उत्पादन वृद्धि की योजना आयोग ने आशा की है।

इस समय यह एक विवाद का विषय बन गया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि पिछले आठ वर्षो के पहले चार वर्षो में वार्षिक उत्पादन वृद्धि की गति ४·७ प्रतिशत थी उसको देखते ५·५ प्रतिशत की वृद्धि अधिक नहीं है। इसके विपरीत अन्य विद्वानों का कहना है कि दूसरे चार वर्षो की स्थिति तुलना करने के लिए अधिक उपयुक्त है। १९६४-६५ से १९६८-६९ तक उत्पादन वृद्धि केवल १·६ प्रतिशत हुई थी, अतएव चौथी योजना में जो ५·५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की आशा की गई है वह बहुत अधिक अर्थात तीन गुने से भी अधिक है। हम यहाँ इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

चतुर्थ योजना का आकार—योजना आयोग ने ऊपर लिखे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चतुर्थ योजना २४,३९८ करोड़ रुपये की बनाई है। मोटे तौर पर कहें तो चतुर्थ योजना पर २४,४०० करोड़ रुपया व्यय होगा। जिसका नीचे लिखे अनुसार बँटवारा किया गया है। इसमें १४४०० करोड़ रुपये का व्यय सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् राजकीय क्षेत्र में होगा और १०,००० करोड़ रुपये का व्यय निजी क्षेत्र मे होगा।

चतुर्थ योजना में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में नियोजन

(करोड़ रुपयों में)

विकास कार्य	कुल व्यय	कुल व्यय का प्रतिशत
कृषि	४,०१७	१६·५
सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण	९६४	३·९
ग्रामीण तथा लघु उद्योग	७९५	३·३
बड़े उद्योग तथा खनिज	५२४०	२१·५
शक्ति	२,१३५	८·७
यातायात तथा संचारण	४,१८३	१७·२
शिक्षा	८५२	३·५
वैज्ञानिक शोध	१३४	०·५
स्वास्थ्य	४३७	१·८
परिवार नियोजन	३००	१·२
जल प्रदाय तथा स्वच्छता	३३९	१·४
गृह निर्माण नगर विकास	२,८५१	११·७
पिछड़े वर्गो के लिए कल्याण कार्य	१३४	०·५
समाज कल्याण	३७	०·२
श्रम-कल्याण तथा दस्तकारी प्रशिक्षण	३७	०·२
अन्य कार्य-क्रम	१८२	०·७
अन्य सामग्री की सूची	१,७६०	७·२
	२४·३९८	१००%

यदि हम चतुर्थ योजना में विभिन्न क्षेत्रों पर प्रस्तावित व्यय की पिछली योजनाओं में हुए व्यय से तुलना करें तो हमें एक बात स्पष्ट हो जावेगी। चतुर्थ योजना का ढाँचा ठीक पहली तीन योजनाओं जैसा ही है। उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जावेगा।

योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल व्यय का विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिशत व्यय

	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	तीन वार्षिक योजनाएँ १९६६-६७ से १९६८-६९	चतुर्थ योजना
कृषि	३०·८	२१·०	२०·४	२४·१	२२·१
उद्योग-धंधे	४·९	२४·१	२३·०	२५·४	२३·५
शक्ति, यातायात और संचार	४०·२	३६·६	३९·२	३५·८	३६·५
समाज कल्याण	२४·१	१८·३	१७·४	१४·७	१७·९

कहने का तात्पर्य यह है कि कुल व्यय का प्रत्येक क्षेत्र में जो प्रतिशत व्यय करने का चतुर्थ योजना में प्रस्ताव किया गया है वह पिछली योजनाओं जैसा ही है। उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि १९६५-६६ के वर्ष में योजना पर जितना व्यय हुआ वह 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' का ९·६ प्रतिशत था। उसके उपरान्त यह प्रतिशत घटता गया। यहाँ तक कि १९६८-६९ में देश में जितना उत्पादन हुआ उसका योजना पर केवल सात प्रतिशत व्यय हुआ। चौथी योजना में योजना आयोग ने योजना पर 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' का ७·३ प्रतिशत व्यय करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। पिछले आठ वर्षों में सकल राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में योजना पर व्यय का प्रतिशत आठ के लगभग रहा है अर्थात् चौथी योजना में सकल राष्ट्रीय उत्पादन का पहले की अपेक्षा कम प्रतिशत व्यय होगा।

विरोधाभास—यदि हम इस स्थिति का ध्यान से अध्ययन कर तो हमें स्पष्ट एक विरोधाभास दिखलाई पड़ता है। पिछले वर्षों की तुलना में 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' की तुलना में हमारा योजना पर व्यय आठ प्रतिशत से घट कर केवल ७·३ प्रतिशत होगा; परन्तु हम आशा करते हैं कि हमारी राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि की गति जो पिछले वर्षों ३·१ प्रतिशत वार्षिक रही है बढ़कर ५·५ प्रतिशत हो जावेगी। यह वास्तव में एक पहेली जैसी दिखलाई पड़ती है कि हम पहले की अपेक्षा योजना पर 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' का कम प्रतिशत व्यय करें परन्तु राष्ट्रीय उत्पाद वृद्धि की गति पहले से लगभग दुगनी हो जावे।

परन्तु चतुर्थ योजना के निर्माता यह कह सकते हैं कि यह असम्भव या अनहोनी बात नहीं है। क्योंकि देश में धनोत्पादन की परिस्थितियों में तेजी से विकास हुआ है और कम पूँजी लगाकर अधिक उत्पादन किया जा सकता है। हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस तर्क में सत्यता है। इस तर्क के पक्ष में नीचे लिखी बात कही जा सकती है।

(१) देश में 'हरित-क्रान्ति' हो रही है। कुछ महत्त्वपूर्ण फसलों के 'संकर-बीज' उत्पन्न कर लिये गये हैं जिनकी पैदावार प्रति एकड़ पहले की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। अर्थात् कम पूँजी लगाकर अधिक उत्पादन होता है। भविष्य में और फसलों के भी 'संकर-बीज' उत्पन्न किये जा सकते हैं। अतएव यह सम्भव है कि कम व्यय करके भी उत्पादन-वृद्धि की गति को तेज किया जा सके।

(२) यदि कृषि का उत्पादन जैसा कि योजना आयोग ने आशा की है बढ़ जाता है, तो देश के उद्योग-धंधों में जो उत्पादन क्षमता आज बेकार पड़ी है उसका पूरा उपयोग हो सकेगा और जिन कारखानों में दो पाली काम होता है वहाँ दिन में तीन पाली काम करके कम पूंजी में अधिक उत्पादन किया जा सकेगा।

(३) हमारे अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में शिक्षा, प्राविधिक प्रशिक्षण और उत्तम संगठन के द्वारा श्रमिकों द्वारा उत्पादन बढ़ेगा।

संक्षेप में योजना-आयोग की मान्यता है कि प्राविधिक उन्नति के फलस्वरूप उत्पादन की तुलना में पूँजी व्यय का अनुपात गिरेगा अर्थात् कम पूँजी के द्वारा अधिक उत्पादन सम्भव होगा। वास्तव में यह आशा कितनी सीमा तक पूरी

होगी यह कह सकना कठिन है परन्तु सिद्धान्त रूप में यह स्वीकार करना होगा कि यह सम्भावना है।

बाधाएँ—परन्तु हमें उन बाधाओं और कठिनाइयों को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर देना चाहिए कि जो कि हमारे आर्थिक विकास के मार्ग में दृढ़ दीवार की भाँति खड़ी हैं। योजना आयोग ने सम्भवतः इनकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया है।

कृषि-उद्योग की कठिनाइयाँ—इसमें दो मत नहीं हैं कि कृषि ही इस देश की अर्थ-व्यवस्था का आधार है। यदि कृषि विकास करता है तो देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था गतिशील होती है और यदि कृषि के विकास की गति रुक जाती है तो सारी अर्थ-व्यवस्था की प्रगति रुक जाती है। अतएव यह स्वीकार करना होगा कि चतुर्थ योजना की सफलता कृषि में सफलता पर निर्भर रहेगी। अतएव यदि कृषि में ४.५ प्रतिशत वार्षिक उत्पादन वृद्धि हुई तभी राष्ट्रीय उत्पादन में ५.५ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य पूरा होगा अन्यथा नहीं।

प्रश्न यह है कि कृषि में क्या यह ४.५ प्रतिशत वार्षिक उत्पादन वृद्धि सम्भव है? 'संकर-बीज' केवल कुछ ही फसलों के विकसित किये जा सके हैं। जिन फसलों के 'संकर-बीज' विकसित किये गये हैं इनका मूल्य संकुल कृषि उत्पादन का पच्चीस प्रतिशत अर्थात् एक चौथाई है। अन्य फसलों के 'संकर-बीज' तैयार करने में बहुत वर्ष लगेंगे। यह कार्य आसान नहीं है और इसमें दीर्घकाल तक प्रयत्न करने पर ही सफलता मिलती है।

संकर-बीज को पैदा करने के लिए साधारण बीज की अपेक्षा बहुत अधिक नियमित जल की आवश्यकता होती है। अर्थात् सिंचाई की बहुत अधिक आवश्यकता होगी। अभी तक देश की सम्पूर्ण खेती की भूमि की कुल बीस प्रतिशत भूमि पर सिंचाई की सुविधा है। सिंचाई की सुविधाओं में कोई आश्चर्यजनक तेजी से वृद्धि हो जावेगी ऐसी सम्भावना नहीं है।

जो आज हमारे देश में बहुत से भूस्वामी बटाई पर खेती करवाते हैं और भूमि पर खेती करने वालों का अधिकार न हो जावे इस कारण एक दो वर्ष बाद उन्हें हटाते रहते है इसके कारण बहुत सी भूमि पर संकर-फसलें पैदा ही नहीं की जावेंगी।

अतएव यह कल्पना करना कि खेती में वार्षिक उत्पादन वृद्धि ४.५ प्रतिशत होगी आवश्यकता से अधिक आशावान बनना है। कुछ विद्वानों का कहना है कि खेती में वार्षिक उत्पादन वृद्धि की गति ३ प्रतिशत होगी। यदि खेती में उत्पादन वृद्धि ४.५ प्रतिशत न होकर ३ प्रतिशत हुई तो वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि की गति ५.५ प्रतिशत न होकर केवल ३.५ प्रतिशत होगी।

यदि हम खेती में तेजी से विकास करना चाहते हैं तो जो प्रयत्न आज हो रहा है उसके अतिरिक्त हमें सिंचाई की सुविधाओं को अधिक तेजी से बढ़ाना होगा, उस पर और अधिक व्यय करना होगा। सूखी खेती के सम्बन्ध में अधिक खोज और प्रयत्न करना होगा। और बटाई की खेती को बन्द करना होगा।

योजना के लिए वित्तीय साधनों की समस्या—अब प्रश्न यह है कि योजना को कार्यान्वित करने के लिए योजना-आयोग ने जो वित्तीय साधनों को जुटाने का प्रस्ताव रक्खा है क्या वह ठीक है। चौथी योजना के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में जो १४३९८ करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान किया गया है उस रकम को नीचे लिखे अनुसार जुटाया जावेगा।

१. चालू राजकीय आय में आधिक्य तथा राजकीय उद्यमों से लाभ ७०५९ करोड़ रुपये।
२. निजी व्यक्तियों की बचत जो ऋणों तथा लघु बचतों द्वारा प्राप्त की जावेगी—३९७५ करोड़ रुपए
३. विदेशों द्वारा हमारे विकास-कार्य में मिलनेवाला ऋण और सहायता—२५१४ करोड़ रुपये।
४. घाटे की वित्त व्यवस्था (अर्थात् अधिक नोट छाप कर) ८५० करोड़ रुपये।

हमारी सरकार नासिक के नोट छापने के प्रेस पर निर्भर रहकर जो पिछले वर्षों में अनाप-शनाप नोट छाप कर काम चलाती रही उसके भयंकर दुष्परिणाम उसके सामने आये। वस्तुओं की कीमतें अकाश छूने लगीं। देश में कल्पनातीत महँगाई बढ़ गई। अस्तु चौथी योजना में कुल वित्तीय साधनों का केवल ५.९ प्रतिशत (८५० करोड़ रु०) ही घाटे की वित्त-व्यवस्था अर्थात् नोट छाप कर प्राप्त किया जावेगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि पिछली योजनाओं को देखते यह बहुत कम है। द्वितीय योजना में

३०·५ प्रतिशत, तीसरी योजना में १६·३ प्रतिशत तथा ११·३, १०·३ और २०·५ प्रतिशत घाटे की वित्तीय व्यवस्था तीन एकवर्षीय योजनाओं (१९६७ से १९६९ तक) में की गयी थी। परन्तु फिर भी यह अधिक है क्योंकि राष्ट्रीय उत्पादन के जो लक्ष्य चौथी योजना में रक्खे गये हैं, उत्पादन उनसे कम होगा।

योजना-आयोग ने इस बार एक प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने विदेशी सहायता की राशि को बहुत कम कर दिया है। पिछले आठ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र में योजना पर होनेवाले कुल व्यय का ४० प्रतिशत विदेशी सहायता से प्राप्त हुआ था। उसको घटा कर चौथी योजना में १७·५ प्रतिशत कर दिया गया है।

जहाँ तक ऋणों और लघु बचतों से ३९७५ करोड़ रुपये प्राप्त करने की बात है वह ठीक है। इतनी रकम निजी क्षेत्र से मिल जाने की सम्भावना है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लाभ से और सरकारों की चालू आय के आधिक्य से जो ७०५९ करोड़ रुपये प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है वह पूरी हो सकेगी इसमें बहुत संदेह है। राज्य सरकारें अधिक कर लगाना नही चाहतीं क्योंकि अब खेती की आय पर ही कर लगाया जा सकता है। अतएव वे घाटे का बजट बनाती हैं और रिजर्व बैंक से अधिविकर्ष (ओवर ड्राफ्ट) लेकर काम चलाती है। राजकीय व्यय घटाने का तो कोई साहस ही नहीं करता। अतएव राजकीय आय के आधिक्य की कल्पना करना अपने को धोखा देना है। रहा सार्वजनिक उद्यमों से लाभ तो उसकी भी अधिक आशा करना व्यर्थ है। अभी तक जो सार्वजनिक क्षेत्र में कारखाने खड़े किये गये है उनमें लाभ के स्थान पर अधिकतर घाटा हुआ है। १९६७-६८ में सार्वजनिक उद्यमों में कुल ४६७५ करोड़ ३४ लाख रुपये की पूँजी पर ४२ करोड़ ५८ लाख रुपये का घाटा हुआ था। १९६८-६९ में सब मिलाकर ३५ करोड़ रुपए का घाटा हुआ। १९६९-७० के बजट में अनुमान लगाया गया है कि ५१३७ करोड़ ४८ लाख रुपये की पूँजी पर आधा प्रतिशत लाभ होगा। यह अनुमान वास्तव में सत्य होगा, कौन कह सकता है। अस्तु यह बहुत संदेहास्पद है कि सरकारों की चालू आय के आधिक्य तथा सार्वजनिक उद्यमों के लाभ से यह रकम प्राप्त हो सकेगी। इसका परिणाम यह होगा कि अन्ततः और अधिक घाटे की वित्तीय व्यवस्था करनी होगी, नोट छापना होगा, जिसका परिणाम भयंकर होगा।

यदि हम यह भी मान लें कि योजना-आयोग ने चौथी योजना के लिए जो वित्तीय साधन जुटाने का प्रस्ताव रक्खा है वह सही है तो भी एक गम्भीर प्रश्न का उत्तर हमें देना होगा। चौथी योजना के लिए यह वित्तीय साधन तभी प्राप्त हो सकगे जब कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में बचत की दर आठ प्रतिशत से बढ़कर १२·६ प्रतिशत हो जावे। आज भारत में राष्ट्रीय आय की आठ प्रतिशत बचत होती है। योजना-आयोग देशवासियों से आशा करता है कि वे अपने उपभोग को कम करके अधिक बचत करें। इसमें कोई संदेह नहीं कि देश के आर्थिक विकास के लिए देशवासियों को त्याग करना पड़ता है। बिना त्याग किये आर्थिक विकास की गति तेज नहीं हो सकती। त्याग दो ही दशाओं में हो सकता है—या तो देश में अधिनायकवाद स्थापित हो जिससे सरकार बल द्वारा जनता को त्याग करने पर विवश कर दे। अथवा देश में इतनी गहन देशभक्ति हो कि देश के आर्थिक विकास के लिए प्रत्येक देशवासी स्वेच्छा से त्याग करने को तैयार हो। आज देश की जो राजनीतिक स्थिति है उसको देखते यह कह सकना कठिन है कि देशवासी इतने अधिक त्याग के लिए तैयार होंगे। परन्तु यह सही है कि बिना त्याग किए आर्थिक विकास की गति को तेज नही किया जा सकता। सच तो यह है कि जनतंत्र में योजना तभी सफल होगी जब उसको देशवासियों का हार्दिक समर्थन प्राप्त हो, वे उसमें विश्वास रखते हों, उसके लिए उनके मन में उत्साह हो, और वे उसके लिए आवश्यक त्याग करने के लिए तैयार हों। दुर्भाग्यवश देश में योजना के लिए आज अनुकूल परिस्थिति नही है।

सूत, मागध, बंदी और चारण

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

वैदिक वाङ्मय में 'परनिन्दक' और 'नर्त्तक' के अर्थ में क्रमशः 'मागध' और 'सूत' शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये यजुर्वेद के ३० वें अध्याय के ५ वें मन्त्र में 'अति क्रुष्टाय मागधम्,[१] और छठे मन्त्र ने 'नृत्ताय सूतं'[२] शब्दों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में अत्यधिक निन्दा करने में प्रवृत्त (अति क्रुष्टाय) मागधों या भाटों को दण्ड देने की प्रार्थना ईश्वर से की जाती थी। और 'नृत्ताय सूतं' के अनुसार सूतों का व्यवसाय गाथाओं की रचना करना नहीं, नाचना था। अथर्ववेद १६।४।६ के अनुसार वैदिक काल में मागधों या भाटों का काम स्तुति-पाठ करना था, और यजुर्वेद अध्याय ३०, मन्त्र ५ से ज्ञात होता है कि निन्दा करने में प्रवृत्त मागध या भाट लोकदृष्टि में दण्डनीय थे। पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार वेदकालीन सूत शब्द का अर्थ—'भाट, रथ चलानेवाला सारथी और शूरवीरों की कथाओं को सुनानेवाला है।'[३] डा० काशी प्रसाद जायसवाल ने मॉरिस ब्लूमफील्ड के अनुवाद के आधार पर अथर्ववेद ३।५।७ में उल्लिखित 'सूत' शब्द का अर्थ रथ हाँकनेवाला किया है।[४]

वृहदारण्यकोपनिषद् में हय गज के निरीक्षणकर्त्ता को सूत कहा गया है।[५] उपनिषत्कालीन भारत में जब राजा कहीं प्रस्थान करना चाहता था, तब विदा करने के लिये उग्र (पुलिस), प्रत्येनस। (दण्डाधिकारी,) सूत (घोड़े, हाथी आदि वाहनों के प्रबन्धकर्त्ता) और ग्रामणी (ग्रामनायक) उसके सामने उपस्थित होते थे।[६]

१. क्रुष्टाय मागधम्। यजुर्वेद अ० ३०, मंत्र ५
२. नृत्ताय सूतं यजुर्वेद अ० ३०, मंत्र ६
३. रुद्र देवता, सम्पादक पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर पृष्ठ १९, स्वध्यायमण्डल, पारडी (सूरत)
४. ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये,
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सवनि कृण्वभितो जनान्।
अथर्ववेद ३।५।७
५. तद्यथा राजानमायान्तमुग्नाः प्रत्येनसः
सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्ते।
वृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४, ब्राह्मण ३, कण्डिका ३७
६. तद्यथा राजानं प्रयियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः
सूतग्रामण्योऽभिसमायन्ति। अ० ४, ब्राह्मण ३, कण्डिका ३८

अमरकोष काण्ड २, वर्ग ८ में राजाओं की प्रशंसा करनेवाले, घण्टा बजानेवाले और विशिष्ट अवसरों पर राजाओं की वंशावलियों का वर्णन करनेवाले के लिये क्रमशः वैतालिक (बंदी), चाक्रिक और मागध शब्दों का उल्लेख मिलता है।

वैतालिका बोधकराश्चाक्रिका घाण्टिकार्थकाः
स्युर्मागधास्तु मगधा वन्दिनः स्तुतिपाठकाः
अमरकोष काण्ड २, वर्ग ८, श्लो० ९७

कौटिल्य अर्थशास्त्र[१] से पता चलता है कि पौराणिक सूत और मागध क्षत्री वर्ण के पुरुष से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत[२], और वैश्य वर्ण के पुरुष से क्षत्राणी में उत्पन्न मागध[३] से भिन्न हैं। पौराणिक युग में पुराणवक्ता के लिये सूत, वंश का वर्णन करनेवाले के लिये मागध और समयानुकूल उक्तियों से स्तुति करनेवाले के लिये 'भाट' शब्द प्रयुक्त होते थे।

'सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंश शंसकाः,
वन्दिनस्त्वमल प्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः।'

याज्ञवल्क्य का कहना है कि ब्राह्मण वर्ण की स्त्री और क्षत्रिय वर्ण के पुरुष से उत्पन्न संतान का नाम रथ चलानेवाला सूत, और क्षत्रिय वर्ण की स्त्री तथा वैश्य वर्ण के पुरुष से अर्थात् अनुलोमज-प्रतिलोमज जात्युत्पन्न संतान का नाम मागध है।[४] आचार्य क्षीर स्वामी के मत से राजा की वंशावली का वर्णन और उसकी स्तुति करनेवाले के अर्थ में प्रयुक्त क्रमशः 'मागध' और बन्दी दोनों शब्द एकार्थक हैं। अमरकोष द्वितीय काण्ड, वर्ग १०, श्लोक १२ में उल्लिखित

१. पौराणिकस्तु अन्यः सूतो मागधश्च,
क्षत्वाद् विशेषः। कौटिल्य अर्थशास्त्र ३।७।३१
२. ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः, अमरकोष काण्ड २, वर्ग १०, श्लोक ३
३. मागधः क्षत्रियाविशोः
अमरकोष, काण्ड २, वर्ग १०, श्लोक २
४. ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वै देहिकस्तथा,
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः।
क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च,
शूद्रा दा योगवं वैश्या जनयामास वै सूतम्।
याज्ञवल्क्य स्मृति, १।९३-९४

'चारणास्तु कुशीलवाः' से ज्ञात होता है कि 'चारण' और 'कुशीलव' कत्थक के दो भिन्न-भिन्न नाम हैं।[1]

रामायण और महाभारतसंहिता-काल में सूतगण जन-सभा में शूरवीरों और नृपतियों का चरित्र-गान करते थे। वे स्मरणशक्ति से सम्पन्न, प्रगल्भ वक्ता और उत्तर-प्रत्युत्तर करने में समर्थ होते थे। वाल्मीकि ने लव-कुश को रामायण का अध्ययन कराया था। लव और कुश संगीत शास्त्र के तत्वज्ञ और स्थान तथा मूर्च्छना के जानकार थे। 'तौ तु गान्धर्वतत्वज्ञौ स्थानमूर्च्छन कोविदौ।' वाल्मीकि, बालकाण्ड, चतुर्थ सर्ग। वे दोनों रामायण महाकाव्य को कंठाग्र कर मार्गविधान की रीति से जनसमुदाय में उसका गान किया करते थे। वाल्मीकिकृत रामायण, वालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ११ में उल्लिखित 'सूतमागध सम्बन्धां' के अनुसार अयोध्या में स्तुति-पाठ करनेवाले सूत और वंशावली का बखान करने वाले मागध भरे हुए थे। महाभारत, शान्तिपर्व, ३७ वें अध्याय के अनुसार वैतालिकों, सूतों और मागधों-द्वारा सुन्दर वाणी में अपनी प्रशंसा सुनते हुए युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया था।[2] आदि पर्व के चौथे अध्याय की टीका में महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री का कहना है कि कथावाचक होने के कारण ही उग्रश्रवा को सूत कहा गया है। यदि पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री के तर्क प्रमाणयुक्त कथन को सत्य मान लिया जाय, तो महाभारत संहिता-काल में आधुनिक भाटों और चारणों के समान ही सौति ब्राह्मणगण राजाओं के शौर्य-औदार्य की गाथाओं का जनसभा में व्याख्यान करते थे।

निर्दिष्ट शास्त्रीय प्रमाणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सूत, मागध और वंदी गाथाओं अथवा छन्दोवद्ध आख्यानों की रचना नहीं करते थे; बल्कि विवाह-संस्कार, यज्ञानुष्ठान अथवा सामरिक विजयोत्सव के अवसर पर प्रतापी और विख्यात नृपतियों की वंश-तालिकाओं, प्रशस्तियों और मौखिक परम्परा के रूप में प्रचलित कीर्त्ति-कथाओं का गान करते थे। जब विदर्भ राजकुमारी रुक्मिणी अपनी सहेलियों के साथ अम्बिका देवी के मन्दिर के लिये चलती है तो सूत, मागध और बन्दी उसके चारों ओर जयजयकार करते-विरद बखानते जाते है। उसका समर्थन श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ५३ और श्लोक ४३ के निम्नलिखित वाक्यों से होता है।

'गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः,
परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः।'

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक १४ के अनुसार चारणगण रण-क्षेत्र में विजय प्राप्त करनेवाले वीर पुरुषों की विजय के गान गाते थे। शाल्व को मारकर द्वारका में श्रीकृष्ण के प्रवेश करने पर चारणों ने उनके गौरव का गान किया था।[1] महाभारत, उद्योग पर्व के अन्तर्गत ९० वें अ०, श्लोक १६ में कुन्ती श्रीकृष्ण से कहती है कि सूतों, मागधों एवं वंदीजनों-द्वारा की गई स्तुति सुनकर जिन पाण्डवों की नींद टूटती थी, वे बड़े-बड़े जंगलों में हिंसक जन्तुओं के कठोर शब्द सुन कर किस प्रकार नींद तोड़ते रहे होंगे।[2] श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ८७, श्लोक १३ से ज्ञात होता है कि प्रातःकाल होने पर अनुजीवी वंदीजन सोते हुए सम्राट् को जगाने के लिये उसके पास जाते थे, और उसके पराक्रम का गान कर उसको जगाते थे।[3] पौराणिक युग में वंश का वर्णन करने वाले मागध और समयानुकूल उक्तियों से स्तुति करनेवाले वंदीजन आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ५, श्लोक १५ से विदित होता है कि व्रज में श्रीकृष्ण के प्रकट होने पर सूतमागधवंदीजनों, नृत्य-वाद्यादि विद्याओं से जीवन-निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनों को नन्द ने मुँहमाँगी वस्तुयें देकर उनका सत्कार

---

१. शैलालिनस्तु शैलूपा जायाजीवाः कृशाश्विनः,
भरता इत्यपि नटाश्चारणास्तु कुशीलवाः
अमरकोप, काण्ड २, वर्ग १०, श्लोक १२

२. ततो वैतालिकैः शूतैर्मागधैश्च सुभाषितैः,
स्तूयमानो ययौ राजा नगरं नागसाव्वयम्।
महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३७, श्लोक ४३

१. मुनिभिः सिध्यगन्धर्वैर्विद्याधर महोरगैः,
अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः।
श्रीममद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक १४

२. वन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम्,
महावनेस्व वोध्यन्त श्वापदानां रुतेन च।
महाभारत, उद्योगपर्व, अ० ९०, श्लोक १६

३. यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः
प्रत्यूपेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्वोधयन्त्यनुजीविनः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ८७, श्लोक १३

किया था।[1] पर ऐसे और भी अनेक प्रमाणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अब्राह्मण सूत, मागध, वंदी और चारणगण अपेक्षित योग्यता के बावजूद ब्राह्मणोचित सम्मान के अधिकारी थे। महाभारत, शान्तिपर्व, ३६ वें अध्याय, श्लोक ३० से जाना जाता है कि जो व्यक्ति वंदी, चारण या भाट का काम करते थे, उनका अन्न ग्रहण करने योग्य नही था।[2]

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक २८ के अनुसार बलराम ने व्यासगद्दी पर आसीन व्यास के शिष्य रोमहर्षण को समयानुकूल धर्म का पालन नहीं करने के कारण मार डाला था।[3] और नैमिपारण्यनिवासी ऋषियों के विधानानुसार उस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त भी किया था।[4] इससे निष्कर्ष निकलता है कि रोमहर्षण सूत जाति के वंशधर नहीं थे। बलराम के द्वारा ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया जाना और श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध १०, अ० ७८ श्लोक ३० के अनुसार नैमिपारण्यवासी ऋषियों के द्वारा रोमहर्षण का व्यासासन पर बैठाया जाना उसके ब्राह्मणत्व का प्रमाण है।[5] श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक ३१ में उल्लिखित 'अजानतैवाचरित-स्त्वया' से प्रमाणित होता है कि बलराम ने अनजान मे ही पुराणप्रवक्ता रोमहर्षण को प्रतिलोमजातीय मानकर मृत्यु-दण्ड दिया था।[6] भागवत स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक २३ में कहा गया है कि रोमहर्षण सूत जाति में उत्पन्न होने पर भी उच्चासन पर आसीन था।[1] इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि पौराणिक युग में सूत जाति में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मणोचित आसन पर बैठने के अधिकारी नहीं माने जाते थे।

महाभारत, शान्तिपर्व के अन्तर्गत राजधर्मानुशासनपर्व, अ० ८५वें मंत्रिमण्डल के संघटन का जो उल्लेख मिलता है, उसमे पुराणविद्या का ज्ञाता एक सूत भी सम्मिलित है। राज्य की व्यवस्था के लिए मंत्रिमण्डल में ३७ सदस्य—४ ब्राह्मण, ८ क्षत्रिय, २१ वैश्य, ३ शूद्र और १ सूत रहते थे।[2] सेवा करने के लिये तत्पर रहना, कही हुई बात को ध्यानपूर्वक सुनना, उसको ठीक-ठीक समझना, समझकर स्मरण रखना, कार्य के परिणाम के विषय में तर्क करना, विश्लेषण के द्वारा कर्त्तव्य-निश्चय करना, शिल्प-व्यवहार का ज्ञान रखना और तत्त्ववेत्ता होना ये आठ गुण पौराणिक सूत में होते थे। मत्रिमण्डल मे सदस्यता की प्राप्ति के लिये सूत की आयु ५० वर्ष निर्धारित थी। वह प्रगलभवक्ता, दोषदृष्टि से रहित, श्रुति-स्मृति के ज्ञान से सम्पन्न, विनीत, समदर्शी, वादी-प्रतिवादी के अभियोगों का न्यायविचार करने में समर्थ, लोभरहित और शिकार, जुआ, स्त्री-सेवन, मदिरा पान, हिंसा और वाणी तथा दण्ड की कठोरता इन सात प्रकार के दुर्व्यसनों से दूर रहता था। महाभारत, शान्तिपर्व के ४१वें अध्याय के अनुसार युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के अधीन रहकर कृत-अकृत कार्यो की देख-भाल करने और

---

१. नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम्,
सूतमागधवन्दिभ्यो योऽन्ये विद्योपजीविनः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ५, श्लोक १५

२. गणग्रामाभिशस्ताना रंगस्त्रीजीविनां तथा,
परिवित्तीनां पुंसां च वन्दिद्यूतविदां तथा।
महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३६, श्लोक ३०

३. एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि,
भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक २८

४. किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ,
अजानतस्त्व पचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक ३७

५. अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन,
आयुश्चात्मा क्लमं तावद् यावत् सत्रं समाप्यते।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक ३०

६. अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा,
योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योऽपि नियामकः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक ३१

---

१. अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृत प्रह्वणाञ्जलिम्,
अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चकोपोद्वीक्ष्य माधवः।
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० ७८, श्लोक २३

२. चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगलभान् स्नातकाञ्शुचीन्,
क्षत्रियाश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशति संख्यया,
त्रीश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्व के।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा,
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगलभमनसूयकम्।
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्,
कार्येविवदमानानां शक्तमर्थेश्चलोलुपम्।
वर्जितं चैव व्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम्,
अष्टानां मंत्रिणां मध्ये मंत्रं राजोपधारयेत्।
महाभारतसंहिता, शान्तिपर्व, अ० ८५ (७—११)

आय-व्यय पर विचार करने के लिये सर्वगुणसम्पन्न वृद्ध संजय को नियुक्त किया था।[1]

गवलगण नामक सूत का पुत्र संजय मंत्रिपद पर नियुक्त होकर राज्य-भार का वहन करते हुए कौरवों के मंत्रणा-कार्य में प्रवृत्त रहता था, और राज्य के हित के लिये धृतराष्ट्र के अनुचित कार्यो का प्रतिवाद भी करता था। महाभारत, सभापर्व, अ० ३५, श्लोक ६ 'राज्ञां तु प्रति-पूजार्थ संजयं सन्ययोजयत्' से यह बात सिद्ध होती है कि संजय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, राजाओं की सेवा के कार्य में नियुक्त किया गया था। उद्योग पर्व, अ० २५, श्लोक ४ और उद्योग पर्व अ० ३२, श्लोक १६ के अनुसार संजय ने संदिष्टार्थ दूत के रूप में संधि-कार्य की सिद्धि के लिये युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र का शान्ति-सन्देश सुनाया था।[2] और युधिष्ठिर के पास से हस्तिनापुर लौटकर धृतराष्ट्र के अनुचित कार्यो की निन्दा की थी।[3] महाभारत, उद्योगपर्व, अ० ५४, श्लो० २०-२१ से मालूम होता है कि संजय ने धृतराष्ट्र को उसके दोष बतलाकर दुर्योधन पर उसके साथियों सहित शासन करने का परामर्श दिया था।

डा० काशीप्रसाद जायसवाल का कहना है कि 'अर्थ-शास्त्र ५।३।९१ में मौर्य राज कर्मचारियों की जो सूची दी गई है, उसमें सूतों की गणना छोटे पौराणिक राज्या-धिकारियों में की गई है, जिन्हें प्रतिवर्ष १००० चाँदी के पण वेतन-रूप में मिलते थे। वृहदारण्यक उपनिषद् ४।४।३७ से सूचित होता है कि प्रत्येक प्रान्तीय राजनगर का एक पृथक् सूत हुआ करता था। आगे चलकर यही सूत कदा-चित् इतिहास-लेखक हो गया था, जिसे श्यूआन् चुआङ्ग ने हर्षवर्धन के साम्राज्य में देखा था। इसका काम यही होता था कि अपने प्रान्त की सभी अच्छी-बुरी घटनायें और शुभ-अशुभ कार्य लिखा करे। खारवेल आदि के शिला-लेखों से सूचित होता है कि एक-एक वर्ष की घटनायें अलग-अलग लिखी जाती थीं।[1]

ऊपर कही गई बातों से निष्कर्ष निकलता है कि यथार्थ में वेदकालीन सूत-मागध और पुराणकालीन सूत-मागध, बंदी और चारण वेद-मंत्रों के द्रष्टा, वीरचरितात्मक गाथाओं या पौराणिक आख्यानों के प्रणेता नहीं थे। जीविका के साधनों की प्राप्ति के लिये नृत्य करना, निन्दा-स्तुति करना, रथ चलाना, राजाओं की सेवा करना, उनके आय-व्यय का निरीक्षण करना, कृत-अकृत कार्यो की देख-भाल करना, विरद बखानना, युद्ध का आख्यान सुनाना और सोते हुए सम्राट् को उसके पास जाकर जगाना सूतों, मागधों, बंदी जनों और चारणों का व्यवसाय था। पौराणिक कथाओं का प्रवक्ता होने से ही कोई उनका रचयिता नहीं माना जा सकता है। उग्रश्रवा ने वैशम्पायन से और वैशम्पायन ने कृष्णद्वैपायन व्यास से महाभारत की कथा सुनी थी। उग्रश्रवा ने नैमिषारण्यनिवासी महर्षियों को भार्गव वंश की वीर गाथा सुनायी थी। सूत-पुत्र संजय ने व्यास की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर भरतवंशी नरेश धृतराष्ट्र को महा-भारत के रोमाञ्चकारी युद्ध का आख्यान सुनाया था। पर कोई बुद्धिमान् यह स्वीकार नहीं कर सकता है कि उग्रश्रवा, वैशम्पायन और सूत-पुत्र संजय महाभारत संहिता के कृति-कार है। प्रो० फ़ान्सिस गमीअर का कहना है कि 'न केवल चारणों को परम्परागत लोकगाथाओं का प्रणेता प्रमाणित करना असंभव है, वल्कि निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि जनसाधारण के साथ लोक गाथाओं का निश्चित रूप से सम्बन्ध रहा है।[2]

---

१. कृताकृतपरिज्ञाने तथाऽऽयव्ययचिन्तने,
संजयं योजयामास वृद्धं सर्वगुणैर्युतम्।
महाभारतसंहिता, शान्तिपर्व, अ० ४१, श्लो० ११

२. शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्द-
न्न योजयत् त्वरमाणो रथं मे।
स भ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञ-
स्तद् रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु।
महाभारत संहिता, उद्योगपर्व, अ० २५, श्लो० ४

३. हन्तात्मनः कर्मनिबोध राजन्
धर्मार्थ, युक्तादार्यवृत्तादपेतम्।
उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन्
भूयश्च पापं प्रसजेदमुत्र।
महाभारत संहिता, उद्योगपर्व, अ० ३२, श्लो० १६

---

१. हिन्दू राज्य तंत्र, दूसरा खण्ड, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २७-२८ डा० काशीप्रसाद जायसवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

2. 'Not only it is impossible to connect the *traditional* ballads with minstrel author-ship, but we find that they belong demons-trably and absolutely to the people'.

The Popular Ballad, page 10
Francis B. Gummere

निजामुद्दीन औलिया की हिन्दी रचनाएँ

डा० शालिग्राम गुप्त

चिश्तिया सम्प्रदाय के वंशवृक्ष को देखने से ज्ञात होता है कि शेख फरीद के प्रमुख शिष्यों में दिल्ली के हजरत निजामुद्दीन औलिया तथा हजरत मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साविर थे। चिश्ती सम्प्रदाय के यहींसे दो उप-सम्प्रदाय हो गए—निजामुद्दीन औलिया से निजामी सम्प्रदाय और अली अहमद से साविरी सम्प्रदाय।

निजामुद्दीन औलिया का वास्तविक नाम मुहम्मद विन अहमद विन दानियल अल बुखारी था। ये वदायूँ के निवासी थे। वहीं पर इनका जन्म सन् १२३८ ई० में हुआ था। निजामुद्दीन शेख फरीद के अत्यन्त प्रिय शिष्यों में थे। कहा जाता है कि इनके कुछ ही दिनों में सूफ़ी साधना में अत्यन्त सफलता प्राप्त कर लेने पर शेखफरीद इनसे इतने प्रभावित हुए कि २० वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने निजामुद्दीन को अपना खलीफा चुनकर दिल्ली भेजा था। अपनी लोक-प्रियता के कारण दिल्ली के बादशाहों की आँखों में निजामुद्दीन बराबर खटकते रहे। सन् १३२५ ई० में इनकी मृत्यु हुई और ये दिल्ली के पास गियासपुर में दफनाये गए। इनके शिष्यों में अमीर खुसरो, अमीर हसन दिहलवी एवं विख्यात इतिहासज्ञ जियाउद्दीन प्रमुख थे।

निजामुद्दीन उच्च कोटि के सूफ़ी साधक होने के साथ ही साथ एक सफल संगीतज्ञ भी थे जिसका प्रमाण विविध राग-रागिनियों में बँधे हुए उनके वे १० पद हैं जो आज केवल 'संगीत राग कल्पद्रुम (भाग १, २, ३) में पाये जाते हैं। 'संगीत राग कल्पद्रुम' उदयपुर महाराणा के अन्यतम संगीताचार्य कृष्णानंद व्यास देव (जीवन काल ई० सन् १७९४—१८८८ के लगभग) विरचित एक महान् ग्रंथ है जिसके उपलब्ध तीनों खण्डों की संयुक्त पृष्ठसंख्या (तृतीय खण्ड के बंगला अंश को छोड़कर) १४४८ एवं संकलित पदों तथा गानों की संख्या १२८३० के लगभग है। प्रस्तुत ग्रंथ में १२वीं शती उत्तरार्द्ध से लेकर १९वीं शती के प्रथम चार दशक तक के ४४३ पदकर्ताओं एवं गायकों (१३५ मुस्लिम एवं ३०८ हिन्दू पद कर्ता हैं) के पदों को संकलित किया गया है। समस्त ज्ञात पदकर्ताओं एवं गायकों में से सूरदास पूर्व पदकर्ताओं एवं गायकों की संख्या ६२ है जिनमें से निजामुद्दीन औलिया को लेकर १८ मुस्लिम हैं, जिनके विवरण कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं—

(१) शेख फरीद (जीवनकाल ११४९–१२६५ ई०), (२) नसीर उद्दीन (उपस्थित काल १२३८–१२६८ ई०), (३) निजामुद्दीन औलिया (जीवनकाल १२३८–१३२४ ई०) (४) अमीर खुसरो (जीवनकाल १२५४–१३२४ ई०), (५) बक्सू नायक (जीवनकाल १४५६–१५३५ ई० के लगभग), (६) तानसेन (जीवनकाल १५१६–१५८९ ई०), (७) काजम (उ० काल १५१८–१६८७ ई० के मध्य किसी समय), (८) आदिल पिया (जन्मकाल १५२४–२५ ई०), (९) दरिया खाँ (उ० काल १५२५–१५५५ ई०), (१०) शाह हुसेन फकीर (जीवनकाल १५२८–१६३९ ई०), (११) दौलत खाँ (जीवनकाल १५३०–१६०० ई०), (१२) बाज बहादुर (जीवनकाल १५३०–१५९४ ई०) (१३) रानी रूपमती (जीवनकाल १५३३–१५६१ ई०), (१४) सुरतसेन (जीवनकाल १५३५–१६१० ई०), (१५) धोंधी खाँ, नायक (उ० काल १५४१–१५८५ ई०), (१६) तान तरंग (जन्म १५४०–४२ ई०, मृत्यु १६०० ई० के पश्चात्) (१७) विलास खाँ (जन्म १५४७–४८ के आस पास, मृत्यु १६१० के पश्चात्) और (१८) अहमद अली (उ० काल १५६१ १६२७ ई०)

निजामुद्दीन की रचनायें

(१) टौड़ी जलद तिताला

जो सांवरी सो अब में तोरे रंगराती माती होंरे।
ख्वाजे मौनदीन ख्वाजे कुतवदीन निजामदीन औलिया संगराती होंरे॥

(२) कहरवा

आज रंग मोरी माए रंग है
सजन मिलाबरा आनंद बधावरा मेरे धरू ।
निजामदीन औलिया जग ऊजियारो
जो मागो वर पर सनेंह आज वरू ॥

(३) सु अब रंग घुलीया
माए सजन मिलावरा भइला ।
निजामदीन औलिया सुख आनंद सो हेला
माए जनम जनम दुख भुलिया ॥

(४) टौड़ी जौनपुरी ताल सवारी

अव मैं तोरे संग माती हूँ रे
चुन चुन कलियाँ सेज बनाऊँ
निजामदीन औलिया संग राती हूँ रे ॥

(५) मुलतानी ताल सवारी

सो अरे अरे मैं सुरजन पाइला रावरे ।
शेख फरीददीन जाके निजामदीन
धन धन भावते मोहे चावरे ॥

(६) पूरवी तिताला

चरण परसत आनंद सुख भइला मोरे तन मन ।
ऐसो पीर जरा जरी जर बकसन
निजामदीन औलिया ए धन धन ॥

(७) तेरी वलैया लेहूँ रे मन के भवनवा सुरजनवा रे ।
निजामदीन औलिया मौपै कहा पढ़ डारो जंतर मंतर टौनवा रे ॥

(८) भैरवी-ठुमरी

परबत बास मँगाव मोरे बाबुल नीका मड़वा छवाबौ री ।
सोना दीना रूपा दीना बाबुल दिल दरियाव री ॥
हाथी दीना घोड़ा दीना दीना बहोत मन चाव री ।
डोलीया फन्दय पिया ले चले हैं तब[१] संग कोई नहीं आव री ॥
गुड़िया खिलौना ताक में रह गए नहीं खेलन को दाव री ।
निजामदीन औलिया वँहिया पकर चले धरिहों नीके[२] पाँव री ॥

(९) पीलू भैरवी

होरी खेलत हो-हो लला बहियां न गहो तुम जावो चला ।
काहू को लपट और झपट काहू को पकरत हो जू चपला ॥
अबीर गुलाल कुमकुमा केशर पिचकारन मार दाई है भला ।
नंद महर के ढीठ लंगरवा सुन्दर रूप देखाय छला ॥
आज रंग होरी मा रंग है साजन मिला बुरा भला ।
निजामुदीन औलिया जग ऊजियारा मुँह मागे वर मला ॥

(१०) विहाग तिताला

बाजत तुरई मन्दिलरा शिरछत्र धरे ब्याहन आयोरी बना ।
जग उजियारे अलह सवारो निजामदीन औलिया
शिर सेहरा सोहे कर सोहे कँगना ॥

पाठान्तर (१) अब, (२) वाके ।

'सिंह-द्वार का कवि-प्रेत' (१)

श्री कुबेरनाथ राय

मुझे तो आशंका भी नही थी कि अपने विश्वविद्यालय के भग्नगौरव पार्क के बीच विद्यासागर की पद्मासन प्रतिमा के पास बैठा जो व्यक्ति मिलेगा वह वर्जिल ही होगा। यह हठात् साक्षात्कार किसी दुर्घटना जैसा लगा और क्षण भर के लिए मैं किंकर्त्तव्यविमूढ-सा हो गया। मैंने देखा वही परिचित नाक-नकशा वही रेखांकित ललाट और भावहीन दृढ़ चुप होंठ तथा राजपक्षी के स्वर्णचञ्चु-सी नुकीली रोमन नाक। रोमनों और हिन्दुओं ने गरुड़ को राजपक्षी माना है। दोनों आर्य जातियाँ हैं और कम-बेश सारे आर्य कबीले गरुड़ध्वज रहे है। गरुड़ मूर्ति की नुकीली चञ्चुवत् नाक आर्यनासिका की द्योतक है—दिग्विजयी आर्यनासिका! और दिग्विजय का राजपक्षी गरुड़। दोनों मे रूपसाम्य का संकेत समूह चेतना का सर्वोच्च मनोवैज्ञानिक कार्ल यग कर चुका है। पर युग भूल गया कि हिन्दुओं के राजपक्षी की आँखों में वैष्णव वीरता और वैष्णव करुणा दोनो है। उसके नेत्र प्रायः शान्त या निमीलित रहते हैं। वैष्णव मूर्ति-कला में यह तथ्य बड़ी सावधानी से प्रस्तुत किया गया है, जब कि रोमन आँखें या तो लालसा-दीप्त, लक-लक शिकार-लोभी और चंचल रहती है अथवा वे भावहीन वैराग्यशुष्क 'स्तोइक' दार्शनिक की आँखें होती है। प्रायः रोमन मूर्ति-कला मे गौतम बुद्ध और गाधी की जैसी करुणामय आँखें नही मिलती है। उनकी आँखें या तो दीप्त लालसामयी है, नहीं तो तटस्थ। पर करुणा संपृक्त और सृष्टि-संलग्न आँखों का रोमन मुखाकृतियों में अभाव-सा ही है। अतः रोमन चेहरे पर रेखांकित दुःखभोगी ललाट, स्वर्णचञ्चुवत् नासिका के ऊपर जड़ी दृढ़-तटस्थ, 'स्तोइक' दार्शनिक आँखों को देखकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ और मैं कुछ कहने ही वाला था कि मेरे पास आकर बैठते हुए वह छायापुरुष स्वयं ही बोलने लगा, गोया मेरे मन की बातें वह पढ़ चुका हो और मेरे प्रश्नों का समाधान करने को स्वयं ही उत्सुक हो :

"मैं कवि वर्जिल ही हूँ। तुमने ठीक पहचाना है। मै सिंह-द्वार का कवि हूँ। उस काल का, जब 'ईसापूर्व' की शताब्दियो का अंत हो रहा था और सन् ईसवी का काल-प्रवाह जन्म-यन्त्रणा की प्रक्रिया भोग रहा था। मैं युगान्त और युगजन्म के मध्यकाल में (७० ई० पू०—१९ ई० पू०) गोपुरम् पर खड़ा रहनेवाला लातीनी कवि हूँ। इसी से आलोचकों ने मुझे 'सिंह-द्वार का कवि' कहा है। और मेरी आदत है कि इतिहास में जहाँ कहीं, जब कभी युगान्त और युगजन्म का सम्मिलित काल-तोरण तन जाता है मैं वहाँ जाकर तमाशा देख आता हूँ और तुलना करता हूँ अपने समवयस्क महान् रोमनों से जिनकी तलवार और कविता की धार पर चढ़कर सारी दुनिया लाल हो गयी थी। तुम्हारे देश में भी वही क्षण आया समझ कर यहाँ आ गया, पर यहाँ पर न तो कोई काल-तोरण तना हुआ मिला और न कही अपने को जलानेवाली मशाल मिली। यहाँ तो सारा देश नेताओं की प्रतिमाओं से भरता जा रहा है और आदमी के रहने की जगह घटती जा रही है। आसेतु-हिमाचल कोई नही मिला जो साहस का गीत लिखता हो। मालिक धृतराष्ट्र है और विचारक उसकी बीबी के गान्धारी-दर्शन से आक्रान्त है। दो-चार बच्चे अवश्य ईंट-बाजी करते नजर आये—'हम क्रुद्ध हैं' का विज्ञापन भी बीड़ी और सिगरेट की दूकानों पर लगा हुआ देखा। किसी भी जाति के गौरव के रक्त कमल-प्रस्फुटन-क्षण देखने में जो अवर्णनीय आनन्द कवि और इतिहासकार को आता है उसे तुम कवि होते तो समझ पाते। तुम समझ ही नही सकते कि तुम्हारे यहाँ आकर कितना खाली हाथ, कितना उदास वापस जा रहा हूँ।" कहते-कहते वर्जिल कुछ क्षण के लिए चुप हो गया—शायद वह मुझसे कुछ समाधान पाना चाहता था। पर मैं क्या कहूँ? मेरे ऊपर तो सारे राष्ट्र की लज्जा का बोझ आ पड़ा था, मैं तो पानी-पानी हो गया था और चुप रहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। भाखड़ा नंगल और इन्दिरा गाधी का नाम लेकर अपनी आत्म-वंचना या अपना गम गलत कर लूँगा पर महान् दिग्विजयी शस्त्रधारी रोमनों के ऋषि-कवि को तो इससे उल्लू नहीं ही बनाया जा सकता है। अतः मै चुप ही रहा।

फिर वर्जिल आगे कहता गया—"मेरा जन्म ७० ई० पू० में हुआ था जब महान् जूलियस सीजर तीस वर्ष का पट्ठा था। प्रेम-कवि कैटुलस मुझसे १५ वर्ष बड़ा था जो

अल्पायु में ही एक पुंश्चली, किन्तु समृद्ध रोमन महिला के प्रेम में मृत्यु को प्राप्त कर गया। कवि होरेस और इतिहासकार लिवी मेरे समवयस्क थे और महान् व्यंग कवि जुवेनल की तो वह पंक्ति ही लातीनी जगत् में प्रसिद्ध है—"मैं तो वर्जिल की एक झलक भर ही देख पाया था।" क्लियोपात्रा मेरी समवयस्क थी। सीजर की दिग्विजय, पाम्पी की हत्या, सिसरो की हत्या, सीजर की हत्या, प्रजातन्त्र का अन्त, एण्टोनी क्लियोपात्रा का प्रेम-प्रसंग, सीजर के दत्तक पुत्र आक्टेवियस का आगस्टस सीजर की उपाधि लेकर सम्राट् बनना और साम्राज्य के भीतर एक नयी राजनीतिक-सामाजिक परम्परा का बीजारोपण—आदि कालजयी घटनाएँ मेरी आँखों के सम्मुख हुई हैं। मेरा बाप स्वयं प्रजातंत्रवादियों की तरफ़ से ब्रूटस के सेनापतित्व में लड़ा था। परन्तु सिद्धान्त में प्रजातंत्र चाहे जो रहा हो, व्यवहार में यह प्रजातंत्र मुट्ठी भर सूदखोरों और अभिजात मुखियों की मिल्कियत बन गया था। ब्रूटस स्वयं ही एक बड़ा सूदखोर रईस था। इससे कही अच्छा साबित हुआ राजतंत्र और सम्राट् आगस्टस सीज़र का अनुशासित समृद्ध राष्ट्रधर्म। इसीसे जो कुछ मैंने लिखा है प्रकारान्तर से उस महान् लैटिन राष्ट्रीयता या रोमन राष्ट्रीयता की व्याख्या है जो आगस्टस के नेतृत्व में अपने चरम बिन्दु पर स्थित हो गयी और आनेवाली शताब्दियों के लिए राजमार्ग बना गयी। मैं प्रजातंत्र के अंत और साम्राज्य के आरम्भ का साक्षी कवि हूँ। पर साथ ही अनजाने रूप से भविष्यवक्ता हूँ उस काल की एक अत्यन्त अज्ञात घटना का—और तथ्य तो यह है अपने निजी रूप में घटना इतनी मामूली रही कि कोई इतिहासकार या कोई भी अन्य व्यक्ति इसकी साँस भी न पा सका। पर घटना घटी रोमन साम्राज्य के एक एशियाई कोने में। यह घटना थी सन् ४ ईसवी में जेरूजलम में एक 'जेसस' नामक बच्चे का जन्म*—जिसे कुछ वर्षों बाद एक रोमन मजिस्ट्रेट ने ही सूली पर चढ़ाया था। पर कौन जानता था कि मनुष्य का इतिहास ही इस घटना से एक जबर्दस्त मोड़ ले लेगा ? पर मुझे स्वयं आश्चर्य है कि मेरी कविप्रतिभा ने कैसे अपने 'वनानी-गीत' ('ब्यूकोलिक्स' : (४)) में इसकी भावी सूचना दे दी है। शायद स्वयं आदित्य 'अपोलो' और सरस्वती ने तीनों लोकों के महान् सम्राट जैसे महिमामय शिशु को भावी के कालप्रवाह पर खेलता देखा और मेरे छन्दों में प्रविष्ट होकर एक दैवी संकेत दे दिया। लोगों ने सोचा था कि वर्जिल सम्राट् आगस्टस के भावी पुत्र की बात लिख रहा है। परन्तु मैंने तो कल्पना की थी सारी मनुष्य जाति के पापशोधक, ऋणशोधक एक त्राणकर्त्ता शिशु की—किसी शिशु-विशेष की नहीं। यह संयोग की बात है कि ऐसा देवशिशु मेरी मृत्यु से कुछ पूर्व ही जन्म पा गया था जेरूज़लम में। और इसी एक पंक्ति के सन्दर्भ के कारण ईसाई भी मुझे 'सिंह-द्वार का कवि' या 'कालतोरण का कवि' कहते थे, क्योंकि प्राचीन 'पेगन' संस्कृति और उत्तरकालीन ईसाई संस्कृति के मध्य बिन्दु पर मुझे विधाता ने खड़ा कर दिया था, और ईसाई मठों में जहाँ अरस्तू-अफलातून वर्जित थे, मात्र मै ही ग़ैरईसाई लेखक था जो अत्यन्त सम्मानित था। मुझे चर्च फादर्स पढ़ते थे, यहाँ तक कि हजारों वर्ष तक मेरी पंक्तियों को देवप्रसूत मानकर लोग शकुन निकालते रहे—वैसे ही जैसे 'मानस' की रामशलाका-चौपाइयों से भारत में शकुन निकाला जाता है। तथ्य तो यह है कि आधुनिक योरपीय मन की रचना में मेरा हाथ होमर-सोफ़ोक्लीज़, अफलातून-अरस्तू से ज्यादा है। आधुनिक योरोप ईसाई योरोप है, और ईसाई मत की रचना तीन उपादानों से होती है : पवित्र बाइबिल, मेरा महाकाव्य और सर टामस अक्विनस का ग्रन्थ 'सुम्मा' जो मेरे बहुत बाद लिखा गया। यद्यपि मेरे काव्यों में ईसाईपन जैसा कुछ नहीं है, फिर भी चर्च के पण्डितों का कथन है कि ईसा का प्रसिद्ध और बाइबिल का मूल्य सम्पादक सेण्टपाल रोम आया था, और मेरी कब्र पर एक बूंद आँसू गिरा गया, और उसी करुणा के अश्रु से मेरा महाकाव्य पवित्र हो गया। सज्जन पुरुष का एक बूंद आँसू सारे जीवन को धो-पोंछकर पवित्र कर सकता है, जब कि दुर्जन सम्राटों, कमीने वज़ीरों और कुटिल प्रधान मंत्रियों की दी हुई स्वर्ण-राशि और खिलअत हमें आजीवन निरन्तर गहरे-से-गहरे पाप में डुबोती जाती है। अतः उस देवदूत 'एपॉसिल' पॉल के उस बूंद भर आँसू की कीमत तौली नहीं जा सकती।"

वर्जिल कुछ क्षण के लिए श्रद्धावनत-सा रहा—फिर कहने लगा—"मेरा निजी जीवन कोई बहुत घटनाबहुल नहीं रहा, पर मेरा युग घटनाओं का वात्याचक्र था। मेरा

* वर्जिल की मृत्यु १९ ई० पू० हुई और मसीहा जेसस क्राइस्ट का जन्म ४ ईसवी में। (ईसवी की शुरूआत ४ वर्ष पूर्व ही भूल से मान ली गयी है।)

जन्म उत्तर में हुआ था—'पो' नदी के उत्तर में, मैण्टुआ से तीन मील दूर 'पीतोल' (पाइतोल) नामक ग्राम में, सत्तर-ईसापूर्व १५ अक्तूबर को। यह भी एक अद्‌भुत बात है कि कवि इन्निअस और मै, हम दोनों रोम की नियति के सर्वोच्च गायक होते हुए भी जन्मतः रोमन नागरिक नहीं थे। रोम की 'राष्ट्रीय नियति' की व्याख्या, उसे काव्यात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आधार मेरे ही महाकाव्य 'ईनीड' (ईनियास-गाथा) से प्राप्त होता है—मेरे ही महाकाव्य और स्फुट काव्यों 'वनानी' (व्यूकोलिक्स) और 'ग्रामजीवन' (ज्यार्जिक्स) से रोमन जातीयता को ऊर्जा और रागात्मक जीवन प्राप्त होता है। मेरे काव्य का उद्देश्य ही है 'रोम की महान् नियति' का आदर्श जनमानस में संस्कारबद्ध कर देना और इताली (इटली) की प्रकृति ('वनानी') तथा हरे-भरे चरागाहों, बागों और खेतों के गीतों ('ग्रामजीवन') द्वारा उनमें रागात्मकता के उदात्त संस्कार पैदा कर देना। पर इतना करने के बावजूद यह तो नही भूल सकता कि मै 'टाइबर' की नहीं, 'पो'-नदी की सन्तान हूँ। उत्तरी लैटिनम् (इताली) दक्षिणी लैटिनम् से जिसमें 'रोम' है, कही अधिक आर्द्र और प्राणमयी है—यह अपेक्षाकृत अधिक निसर्ग समृद्ध और कल्पना-प्रवण वातावरण से सजी है। मैंने इस तथ्य की झलक अपने 'वनानी' गीतों में ('व्यूकोलिक' या 'पैस्टोरल' या 'इकलॉग') प्रस्तुत की है। यह भूमि वसन्त काल आ जाने पर हरे-भरे पत्तों से ढक जाती है; काल-पुरुष का चेहरा कोमल और सुन्दर हो जाता है, गोप-किशोर उन हरे-भरे जंगलों में वन-कन्याओं और माया-विनियों के प्रति अपने तृषा कुल-संतप्त प्यार की आग में दुःख भोगते है, डालें फलों के भार से लद जाती है; नीचे हरी-हरी, सम्मोहक आमन्त्रण भरी घास में छिपा कोई साँप लुप-लुप जीभ करता है और उसका फण मात्र रह-रहकर बाहर आ जाता है; निर्मल स्रोत अदृश्य रूप से अविराम लय में वहते है, सारा जंगल छक कर जल का पान करता है, पर यात्रीगण मात्र कोमल ध्वनि पीते है और स्रोत-रूपा कोई अप्सरा शरीर में निरन्तर प्रवाहित काम-वासना की तरह सघन दुर्गम वनानी में अदृश्य गान गाती रहती है—पर कोई जान नही पाता कि कहाँ, किस एकान्त में वह वर्त्तमान है, उसकी क्रीड़ाभूमि किधर है। ऐसे ही सघन वनों के निर्मल-दुर्गम, रम्यदारुण, जल-तटों पर डायना देवी अपना धनुप-तरकस उतार कर निरावरण स्नान करती है, और नग्न रूप-राशि से सारा नील श्यामल वन उद्‌भासित हो जाता है। परन्तु मनुष्य की आँखें इस अपरूप-अपूर्व दृश्य को देखने में असमर्थ हैं—मात्र कवि को ही यह विशेषाधिकार या यह शाप मिला है कि इस रूप-राशि की निरावरण तलवार पर असिधाराव्रत की महा-यन्त्रणा भोगे। औरों के अन्दर यह सामर्थ्य नहीं। और लोग तो धार पर चढ़ते-चढ़ते दो टुकड़े हो जायेंगे।

मैं तो जीवन भर निसर्ग प्रेम में आबद्ध रहा, और रोम के रघुवंशम् का महागायक होकर भी मैंने रोम की नगर-सम्यता और नगर जीवन से दूर गाँव-देहात में ही जिन्दगी काट दी। मुझे नगर-बोध की जीभ-लपलपाती, हाँफती कामासक्त तृषा से वितृष्णा थी और वह सारा हंगामा जुलूस मुझे पसंद नहीं था जिसे नगरवासी शान-शौकत और संस्कृति की संज्ञा दिया करते हैं। उस युग का रोम कैसा था, यह इतिहासों में नहीं मिलेगा। इतिहास घोषित करता है—'रोम! रोम! रोमा, संसार की स्वामिनी, रोमा संसार की राजधानी रोमा, महानगरी, महारानी!' पर रोम का तौर तरीका जानना हो तो पूछो कवि मित्र होरेस से किसी भोज, किसी पानगोष्ठी, किसी विचारगोष्ठी या किसी संभ्रान्त रोमन परिवार का असली रूप। कवि होरेस समस्त जीवन अन्तःसन्तुलन की तपस्या करता रहा, क्योंकि बाहर-बाहर जो था वह अति उच्छृंखल, उद्दाम और सन्तुलन-अनभिज्ञ था। उदाहरण के लिए प्रीतिभोजों को ही लें। ग्रीकों के प्रीतिभोज मूलतः विचार-गोष्ठी थे—सादा बढ़िया खाना और मदिरा के साथ हल्की मौज भरी शैली में विचार-विनिमय चलता था और वहाँ पर आधुनिक वाद-विवाद प्रतियोगिता के द्वन्द्वमय संघर्ष-प्रवण मनोविज्ञान को भोजन की थाल के सम्मुख कोई जगह नही थी—इसी से दुराग्रही तर्क बहुत कम अभिव्यक्त होता था। परन्तु रोमन भोज का उद्देश्य था आतिथेय द्वारा शान-शौकत का प्रदर्शन और अतिथि के द्वारा अपार असंयम के साथ उच्छृंखल भक्षण। भुना मुर्ग पुनः कृत्रिम रूप से पूरी पाँख और दुम के साथ सजाकर ऐसे प्रस्तुत किया जाता था मानो जिन्दा ही परात पर उतर बैठा हो। समूचा का समूचा तोड़-मोड़कर बड़ी सी परात पर चार गुलाम जो चीज ढोकर ला रहे है वह है उबालकर फिर घी में पूरा भुना हुआ सूकर और वह मेहमानों की मेज के बीचोबीच रख दिया गया है। मेहमान चाकू से और कभी-कभी दाँतों से ही उस पर टूट पड़े है।

गोया वे बाघ-चीता हों। यद्यपि उनमें कोई पेटमरू या दरिद्र मेहमान नहीं। वे बड़े-बड़े अधिकारी और राजपुरुष हैं। जंगली सूअर का मांस अचार, केकड़े और चटनी, तरह-तरह की मछलियाँ कुछ शराब में उबाली गयीं और कुछ मसालेदार भी, सफेद बतख के कलेजे और अंजीर के गूदे का हलवा, खरगोश का उबाला हुआ कंधा, जंगली कबूतर और भारतीय मिर्च के साथ भुने हुए कृष्णपक्षी; अन्त में विभिन्न फलों का दौर—रोमन नागरिक डकार रहा है और खा रहा है। एक बार वमन करके फिर आसन पर बैठकर तुरन्त खाने लगता है। पानी का उपयोग सिर्फ हाथ धोने के लिए है। स्पेनी और ग्रीक मदिरा के पीपे खाली हो रहे हैं। होरेस कहता है—"खाते खाते हमारे चेहरे पीले पड़ जाते हैं, माथे की नसें फूल आती हैं।" ये लोग तब तक खाते जाते थे जब तक नशे में लटक न जायँ, या आतिथेय की ओर से काली जामुनों का ठण्डा प्लेट न सामने पेश कर दिया जाय जिसके ऊपर भारतीय नमक छिड़का रहता था। यह तो एक भोजन की ही बात हुई। जीवन के अन्य भोग-व्यापारों में भी यही उद्दाम उच्छृंखलता थी। पर यही भोगी, पेटू, कामासक्त पशु—रोमन जब बिगुल बजता था, जब 'रोम महान् है' 'और सम्राट् की जय हो!' की ध्वनि उठती थी, तो कुछ दूसरा ही हो जाता था। हाथ में नंगी तलवार या भाला लेकर रणभूमि की ओर बढ़ने वाला रोमन वीर इतिहास का सर्वश्रेष्ठ अनुशासित संयमी जीव बन कर सामने आता है—यह उसका दूसरा रूप है, पहले रूप के ठीक प्रतिकूल। खान-पान और रति-क्रिया का उच्छृंखल उद्दाम भोग एक ओर, और दूसरी ओर सैनिक अनुशासन और कानून की व्यापक प्रतिष्ठा। रोमन सभ्यता के ये दो चेहरे हैं और असली खाँटी रोमन दोनों चेहरों को रखता था और दोनों से निरपेक्ष भी रहता था। रोमन ही एक जाति है जिसने हिन्दुओं की तरह ही स्नान को एक महत्त्वपूर्ण भोग के रूप में स्वीकारा है। रोमन स्नानागार में उनका शरीर नित्य धुलकर निर्मल होता रहता था, और 'स्तोइक' दर्शन में उनका मन रोज प्रक्षालित होकर सुख-दुख-निरपेक्ष और राग-तटस्थ होता रहता था।

मैं तो नेपुल्स की खाड़ी के पास की देहात में रहता था। एकाध बार सम्राट् के निमन्त्रण पर राजधानी गया भी। पर हर बार "आवत जात पनहियाँ टूटीं बिसरि गयो हरि

पुराना घर तो मैण्टुआ में था। वही कवि होरेस की भी पितर-भूमि थी। जिस समय सीजर की हत्या के बाद रोम में प्रजातंत्र-पंथियों और सीजरपंथियों में घनघोर गृह-युद्ध हुआ उस समय हमारे प्रदेश के लोगों ने प्रजातंत्रवाद का साथ दिया था। मैं १८ वर्ष का था तभी से ऐपिक्यूरियन दार्शनिक सायरन के यहाँ छात्र बन कर रहता था। बाद में मैंने क्रीमोना, मिलान, रोम और नेपुल्स में भी शिक्षा ग्रहण की। पिता की इच्छा थी कि मैं वकील बनूँ। पर मैं बुद्धिमान होते हुए भी स्वभाव से भीरु था और वकालत में कुछ कर न पाता। २६ वर्ष की अवस्था पर पहुँचकर मैंने चरम राष्ट्रीय संकट का साक्षात्कार किया। दार्शनिक गद्य-कार सिसरो का शीश काटकर सीजरवादियों ने सीनेट में लटका दिया, तो कुछ मास बाद ही प्रजातंत्रवादियों ने महान् जूलियस सीजर की हत्या कर डाली—फिर गृह-युद्ध सम्मुख आया और दो वर्ष तक चला। अंत में फिलिप्पी के मैदान में प्रजातंत्र पंथी नेता ब्रूटस मारा गया। आक्टेवियस एण्टोनी और लिपीडस का 'त्रिक' शासनारूढ़ हुआ। धीरे-धीरे आक्टेवियस, जो मृत जूलियस का दत्तक पुत्र था, शक्ति हाथ में केन्द्रीकृत करता रहा। उधर वीर एण्टोनियो नील नदी की काली नागकन्या क्लियोपात्रा के प्रेम-पाश में पड़कर तेजहीन होता गया। अन्त में एण्टोनी मारा गया और आक्टेवियस जीता, और जीतकर आगस्टस सीजर प्रथम की उपाधि ले सम्राट् बना और रोमन नियति और रोमन सभ्यता का नये पथ पर आरोहण हुआ—पुराना रास्ता, पुराना झंडा और पुराने जीवन-दर्शन पर अतीत का पर्दा पड़ गया।

मैं भी युद्ध के दिनों में तलवार पकड़ सकता था। २६-२७ का पट्ठा गभरू जवान था। पर उन दिनों मेरे हाथ में कविता की वंशी थी। यद्यपि मेरे पिता बैठे नहीं थे। जहाँ तक हो सका प्रजातंत्र के पक्ष पर लड़े। फलतः पराजय के बाद अन्य लोगों की तरह इन्हें भी सम्पत्ति से वंचित होना पड़ा—और अपने लगाये बाग, उठाये मकान, अपने ढोर और खेत खड़ी फसल के साथ छोड़कर देश-बाहर जाना पड़ा। यह कितनी बड़ी व्यथा है, इसका अनुभव तुम मेरे वनानी गीत—प्रथम और द्वितीय पढ़ते समय अनुभव करोगे, पिता भी मेरे शिक्षा गुरु के यहाँ शरणापन्न हुए। धीरे-धीरे समय बीता और हम लोग समझ गये कि प्रजातन्त्र अस्ता-

का है, और बुद्धिमानी है उगते सूर्य को पूजने में। सीजर एक मशाल होता तो भी फूंक मारकर बुझाने का साहस करते—पर सीजर सूर्य है और सूर्य को फूंक मार कर बुझाया नहीं जा सकता। अतः मैंने निश्चय किया कि इस आगस्टस सीजर की जय बोलूं, और इसी को, चाहे यह भला हो या बुरा, एक प्रतिमा बनाकर उसे राष्ट्र के मन की मानसिक ऊर्जा के स्रोतीकरण (चैनलाइजेशन) का साधन बनाऊँ। मूर्ति चाहे जिस शकल की हो—रोम का कल्याण लाने वाली हो, तो सब कुछ ठीक ही है। इसी विचार से आगस्टस के मुख्य सचिव मीसिनस (Maecenus) से मैंने मैत्री की। होरेस पहले से ही उसके आश्रय में था। होरेस के साथ खूब अच्छे ढंग से मेरी पटरी बैठती थी। मेरी और सबकी राय हुई कि मैं जो वनानी गीतों के महान् गीतकार के रूप में स्वीकृत हो चुका हूँ, काव्य के माध्यम से रोमन इतिहास के इस महान् क्षण को मनोवैज्ञानिक ऊर्जा और तेज प्रदान करूँ। **इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं जब विरोध का दर्शन चाहे अपने में लाख सत्य हो आत्मक्षय के सिवाय और कुछ नहीं लाता है। युग धर्म युग मानस और इतिहास की गति के प्रतिकूल कोई सर्वोदय-दर्शन, देवोपम दर्शन, एवं ऋत और अमृत की शूक्तियाँ सही से सही होने पर भी कमजोर और क्षयशील सिद्ध होती हैं। मुझे भय है कि तुम लोग भी इस तथ्य का अनुभव अपने भारत में अगले दशक में ही करोगे।** मेरा भी यही आत्मसंघर्ष था, यही नैतिक ट्रैजडी थी। पर इस नैतिक ट्रेजडी की यन्त्रणा के ऊपर उठकर शुद्ध सुख-दुःख निरपेक्ष 'स्तोइक' भाव से (गो कि स्तोइक दर्शन की एकाडेमिक शुरुआत तो रोम के अन्दर मेरे बहुत बाद हुई है) मैंने सोचा कि इस सीमित संकीर्ण स्थिति को ही वरण कर रोम के लिए और लैटिनम् साहित्य तथा ,संस्कृति के द्वारा कुछ करूँ। फलतः सीजरपंथी मुझे मित्र मानने लगे। मेरी जायदाद लौटा दी गयी। पर मैं फिर स्वदेश में न रह कर नेपुल्स के पास ही डेरा बाँध कर रहने लगा। वहाँ पर मैं अपने दृढ़ चरित्र के लिए विख्यात था। गो कि मरने के बाद मेरे कई प्रेमी पाठकों ने अपने विदग्ध रंगीले स्वभाव के अनुरूप मुझको- भी अपने चुटकुलों का नायक बनाया और चतुर विट की नारी-छली विदग्ध शृंगारिकता के साथ मुझे पेश किया। नारियों के प्रति अनेक विद्रूपों और मजाकों में मै अब भी याद किया जाता हूँ। पर असलियत तो यह है कि मैं आजीवन उदासी का पान इस रूप में करता रहा कि नारी के प्रति अति लालसा का उसमें अधिक अवसर नहीं था। स्वस्थ एवं साधारण ढंग के काम-भोग के अतिरिक्त कोई विशिष्ट आसक्तिमय प्रेम-व्यापार मेरे जीवन में घटित नहीं हो सका। यहाँ तक कि मेरी नारी-भीरुता और नारी-निरपेक्षता देखकर मित्र लोगों ने मेरा नाम दे रखा था "छोकरी।" पर वास्तव में मैं एक उदास व्यक्ति था और मेरे चारो ओर उदासी के बादल छाये थे जिन पर कविता के इन्द्रधनुष रँगने से ही मुझे फुरसत नहीं थी। और फिर जहां रहता था वह सरल देहात था, वहाँ न तो कुत्सित व्यभिचार-बलात्कार के लिए अवसर था और न विदग्ध प्रेमाचार के लिए।

यों भी मेरा जीवन बहुत घटना-बहुल नहीं। फिलिप्पी-युद्ध के पाँच वर्ष बाद रोम में होरेस के साथ-साथ कुछ दिनों तक सामन्त मीसिनस के दरबार में रहा। पर तुरन्त बाद में नेपुल्स मे कम्पैनिया नामक गाँव में एक 'विल्ला (बँगला) बनाकर रहने लगा। इस शान्त जीवन-यापन की लय में मात्र दो बार यति भंग आया जब कि मैंने ग्रीक सभ्यता के मूल केन्द्र एथेन्स की यात्रा की थी। परन्तु मेरा युग अत्यन्त घटनाबहुल रहा है। चटपटी वार्त्ता—चटनियों और क्रूर निर्मम प्रेम व्यापारों-बलात्कारों और महान् विजयों का ऐसा युग इतिहास में बहुत बार नहीं आता है। मैं तमाशबीन ही रहा तो क्या? तमाशा देखने के लिए और ज्यादा मजबूत कलेजा चाहिए। मैं कवि-धर्मी, मैं तमाशबीन, मै माध्यम, मैं साक्षी-यन्त्र, सारी यंत्रणा भोगता रहा और जीता रहा। जिस समय ब्रूटस और एण्टोनी संघर्षरत थे 'वनानी गीत' (ब्यूकोलिक्स) लिख रहा था। ३७ ई० पू० वे पूरे भी हो गये। सारा लैटिन जगत् उस पर मुग्ध हो गया। फिर उतने ही परिश्रम से ७ वर्षों में मैंने ३७ ई० पू० से ३० ई० पू० के बीच दूसरा काव्य 'ग्राम जीवन' (ज्याजिक्स) लिखा जो इतालवी के दैनन्दिन ग्राम जीवन की गाथा है तथा नवयुग के लिए सृजनशील होने की प्रेरणा से सम्पृक्त एक राष्ट्रीय सन्देश भी है। फिर जीवन के शेष ११ वर्षों को मैंने अपने महाकाव्य 'ईनीड' या 'ईन्नीड' (Aeneid) के लेखन मे लगा दिया। पर वह अन्त तक अनगढ़ रह गया। मुझे भय हुआ कि यह अनगढ कविता मेरी पूर्वार्जित कीर्त्ति को नष्ट कर डालेगी। अतः मृत्युशय्या पर मैंने आदेश दे दिया था कि इसकी पाण्डुलिपि जलाकर खाक कर दी जाय। मेरी मृत्युकाल की इच्छा का समादर नहीं किया गया। वह

पाण्डुलिपि पड़ गयी सम्राट् आगस्टस सीजर के हाथों। उसने हठपूर्वक उसकी रक्षा की और आज मुझे मनुष्य समाज इसी 'ईन्नीड' के महाकवि के रूप में पहचानता है। इसी महाकाव्य के कारण जनता मुझे होमर के समकक्ष रखने लगी। कहाँ देवताओं से मशविरा-सलाह करने वाला ऋपिकवि होमर और कहाँ मैं मामूली रोमन। पर आदित्य 'अपोलो' का आशीर्वाद! अपोलो के जहाँ पाँव पड़ते है वहाँ निर्जीव माटी भी गान बोलने लगती है। कभी-कभी मै सोचता हूँ कि यदि इसे जला दिया गया होता तो क्या सच-मुच मनुष्य जाति के भाग्य में यह 'दुघर्टना' होती। या मैं इस कीर्त्तिभार से रहित होकर अधिक मुक्त अधिक सुखी रहता? यह कीर्त्ति अयाचित कीर्त्ति है। मैंने कीर्त्ति के लिए नहीं लिखा। एक मुट्ठी जौ और एक गुच्छा अंगूर पर जीने वाले मुझ जैसे कवि को कोई नहीं कह सकता कि मैं कीर्त्ति-व्यवसायी था या मान-सम्मान और स्वर्ण के लिए कविता का पुतलीघर खोलकर बैठा था और थान पर थान तैयार कर रहा था। मैंने 'ईन्नीड' को रोम की नियति राष्ट्रीय काव्य मानकर लिखा था और उसकी पंक्तियाँ अनगढ रह गयी थीं और वह अधूरा था। उस युग में अनगढ़ पंक्ति, लिखना कितना दोप कितना बड़ा साहित्यिक अपराध था, यह बात आज के युग की समझ में नही आयेगी जिसमें साहित्य की श्रेष्ठता का मानदण्ड है समाचार-पत्र। पर हमारे युग का नारा था—"संक्षिप्त, सुन्दर, सारवान"—अर्थगर्भी पर संक्षिप्त बनो। उदाहरण है होरेस। होरेस लैटिन का महाकवि है। पर क्या छोड़ गया है? कुछ 'ओड', कुछ पत्र और थोड़े से साहित्यिक सिद्धान्त जो एक क्षीणकाय पुस्तिका भर भी नहीं। पर जो है उसका एक-एक अक्षर हीरा-मोती है। होरेस कभी-कभी एक पंक्ति पर सप्ताह-सप्ताह भर खर्च कर देता था। ऐसे युग में मैं एक अनगढ़ महाकाव्य छोड़ कर मरूँ, यह मेरी मृत्यु-पथ पर पाँव देती आत्मा कैसे मंजूर करे? पर भावी पीढ़ियों ने देखा कि जिसे मैं अपनी समझ से अनगढ़ कहता था, वह किसी की भी सुन्दर से सुन्दरतर है।

मेरी मृत्यु एथेन्स की दूसरी यात्रा (१९ ई० पू०) में हुई। इसके पहले भी (२३ ई० पू०) एक बार होरेस के साथ गया था। दूसरी यात्रा में एशिया का दो तीन वर्ष तक यायावर बनकर आस्वादन करने और होमर की महा-काव्य भूमि का दर्शन करने की आकांक्षा लेकर बाहर निकला था। पर मीगारा में लू लग गयी और एथेन्स में ही बीमार पड़ गया। सम्राट् ने लौटने को कहा, पर देवताओं का आदेश आ गया था; आत्मा न चाहते हुई भी शरीर छोड़ कर अतललोक की ओर चल पड़ी, और तभी काल-प्रेयसी प्रॉसरपीनी ने अपने सुनहले बालों में से एक को तोड़कर फेंक दिया। उस अनादि तमस् लोक का सन्थन तो एक बार मैंने महाकाव्य के पष्ठ सर्ग लिखते समय ही किया था—मैं मृत्युलोक की गहन कालिमा के अन्दर अपने नायक ईनियास को घुमाकर लौटा लाया था। मेरी कल्पना ने तभी अनुभव कर लिया था कि सृष्टि के सारे वर्ण, सारा इन्द्रधनुप इसी व्यक्तित्वहीन रंग काले की ही सन्तान हैं और इन सबका एक न एक दिन इसी काले में अन्तर्भाव हो जाता है। जीवन का स्वामी सूर्य, प्राणों का सहचर सोम और ये रंगदार मौसमी रंग सब काले से लड़ते-लड़ते हार खा जाते हैं। और हमारी मानवीय गरिमा इसी निरन्तर लड़ते रहने में ही है—हार-जीत में नहीं। (क्रमशः)
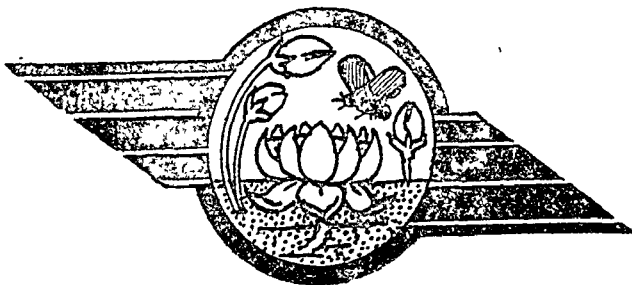
और तब से गांधीजी महात्मा कहलाये

श्री कैलाशनाथ मेहरोत्रा

इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि संसार में समय-समय पर महान् आत्माओं ने उत्पन्न होकर अपनी अमृतवाणी से जगत् को प्रेम और शान्ति का सन्देश दिया। भगवान् राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, कन्फ्यूसियस, जीसस क्राइस्ट आदि ने अपने चरित्र से तत्कालीन संसार पर प्रभाव डाला।

बीसवी शताब्दी में गांधीजी का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने युग को जो नया मोड़ दिया वह इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके विचारों का अनेक देशों के राजनीतिक विकास में प्रभाव पड़ा है।

राजनैतिक संघर्षों के सेनानी के रूप में उनके सार्वजनिक जीवन को दो कालों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) दक्षिण अफ्रीका काल :—
जो सन् १८९३ से सन् १९१४ तक रहा।

(२) हिन्दुस्तान काल :—
जो सन् १९१५ से सन् १९४८ तक रहा।

दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए उन्होंने प्रवासी भारतीयों की दयनीय दशा सुधारने के लिए 'सत्याग्रह' के द्वारा जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उससे वे प्रसिद्धि में आये और सन् १९१४ के मध्य तक एक सत्याग्रही नेता के रूप में सुप्रतिष्ठित हो गये।

हिन्दुस्तान में बुद्धिजीवी लोग उन्हें साधारण श्रेणी के मनुष्यों से अलग, एक कल्याणकारी सन्त के रूप में मानने लगे।

१८ जुलाई १९१४ को गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका छोड़ दिया और अपने गुरु गोपालकृष्ण गोखले से मिलने, इंग्लैण्ड गये। वहाँ कई माह रहने के पश्चात् वे ९ जनवरी १९१५ को बम्बई आये।

जनवरी के द्वितीय सप्ताह में वे काठियावाड़ गये। वहाँ राजकोट, पोरबन्दर और धोराजी की १० दिवसीय यात्रा करते हुए उन्होंने २४ जनवरी को गोंडल पहुँचकर वहाँ ४ दिनों तक ठहरने का निश्चय किया।

गांधीजी के गोंडल पहुँचने की पूर्व सूचना राज्य के दीवान श्री रणछोड़दास, वृन्दावनदास तथा वैद्यराज श्री जीवराम कालीदास (वर्तमान आचार्य श्री चरणतीर्थ महाराज) को यथासमय प्राप्त हो गयी।

जिस प्रकार गांधीजी ने अपने असीम साहस, त्याग एवं विजय-दृढ़ता आदि गुणों से, दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के प्रति अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर, राजनीति क्षेत्र में सफलता प्राप्त की, उसी प्रकार वे भविष्य में, हिन्दुस्तान में, महान् कार्य साधेंगे और देश का गौरव बढ़ायेंगे—ऐसी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होने पर आचार्य श्री चरणतीर्थ महाराज ने गांधीजी को एक महापुरुष के रूप में आँका और शीघ्र ही उन्हें 'महात्मा' पदवी से विभूषित करना उपयुक्त समझा। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने गांधीजी का विशिष्ट रूप से सम्मान करने के लिए, मानपत्र छपवाया, जिसमें 'महात्मा' पदवी का समावेश हुआ। यह निश्चय हुआ कि यह मानपत्र, गांधीजी को, रसशाला औषधाश्रम में एक स्वागत समारोह में २७ जनवरी १९१५ को भेंट किया जाये।

२४ जनवरी १९१५ को गोंडल रेलवे स्टेशन पर दर्शकों की बड़ी भीड़ थी। डिब्बे से उतरते ही गांधीजी को पुष्पमाला पहनायी गयी। तदोपरान्त स्टेशन से बाहर आकर वह अपनी धर्मपत्नी कस्तूर बा और बच्चों के साथ चार घोड़ोंवाली बग्घी में बैठ गये। कोचवान ने घोड़े हाँके। राज्य का बैंड और पुलिस आगे-आगे चले।

यह दल मुख्य सड़कों पर चलता हुआ, कन्याशाला के समीप आकर रुका, जहाँ गोंडल के महाराज श्री भगवतसिंहजी सपरिवार गांधीजी से मिलने आये।

गांधीजी और महाराज साहब अपनी-अपनी बग्घियों से उतर पड़े और वे एक दूसरे से गले मिले। सात्विकी प्रकृति और राजसी प्रकृति के दो महानुभावों का वह मिलन अपूर्व था। कुछ समय तक वार्त्तालाप होने के पश्चात् दल पुनः चला और डेढ़ घण्टे में दीवान साहब के बँगले में पहुँच गया।

गांधीजी ने उपस्थित जन-समुदाय की ओर मुस्कराते हुए देखा और दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते किया। तत्पश्चात् दल विसर्जित हुआ।

२५ जनवरी को राज्य के उच्च कर्मचारियों और विशिष्ट व्यक्तियों ने गांधीजी से भेंट की।

२६ जनवरी को महाराज साहब ने गांधीजी को राजमहल में दावत दी। इसी दिन सायंकाल ६ बजे श्री पटवारीजी के बँगले पर गोंडल राज्य और जनता की ओर से गांधीजी का अभिनन्दन हुआ।

२७ जनवरी १९१५ को गोंडल की सुप्रसिद्ध रसशाला औषधाश्रम में गांधीजी के अभिनन्दन और उनको मानपत्र भेंट करने का कार्यक्रम आयोजित हुआ।

५००० श्रद्धालु जन, जिनमें १००० महिलाएँ भी सम्मिलित थीं, रसशाला औषधाश्रम में एकत्रित हुए।

जैसे ही घड़ी में १० बजे चारों ओर शान्तमय वातावरण हो गया। गांधीजी अपनी धर्मपत्नी कस्तूर बा और बच्चों के साथ सभा में आये।

सभा का कार्य पटवारीजी की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। पहले पटवारीजी ने गांधीजी के स्वागत में भाषण दिया। फिर अन्य सम्मान्य व्यक्तियों ने प्रासंगिक रूप से भाषण दिये।

तत्पश्चात् वैद्यराज जीवराम कालीदास शास्त्री ने नीचे छपे हुए महात्मा पदवी के साथ मानपत्र को पढ़ा।

२७वीं जनवरी १९१५

महात्मा

की पदवी और मानपत्र

॥ हरिहरो कुरुतां भवतां शिवम् ॥

भारत भूषण, दीन दुःखहर, पुण्यश्लोक
महात्मा श्री मोहनदास करमचन्द गांधीजी
के चरण कमलों में समर्पित

जगद्वंदनीय महात्मा

आप तथा आपकी अखंड सौभाग्यवती धर्मपत्नी श्री कस्तूर बा इस संस्था में पधारे, जिससे रसशाला और विशेष रूप से आयुर्वेद का मान बढ़ा—इस हेतु आप श्रीमन् का तथा पूज्य श्री कस्तूर बा का अन्तःकरण से उपकार मानता हूँ।

इस प्रसंग में लम्बा भाषण देकर आपका समय नष्ट करना अभीष्ट नहीं है। आपका पराक्रम, आत्म-भोग, और आपके जीवन के प्रत्येक प्रसंग का अवलोकन, मनन करने से ज्ञात होता है कि पूर्व काल के जिन हरिश्चन्द्र, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महाराणा प्रताप, शिवाजी महाराज आदि शिरसा वंद्य विभूतियों का गुणगान भारतवासी गाया करते हैं, उन्हीं में आपका एक चरित्र उभरता है। हिन्द में दश दिशाओं में आपका जीवन-चरित्र गाया जा रहा है। इतना ही नहीं सारी दुनिया के प्रत्येक देश में आपके चरित्र को आदर मिला है। इस छोटे से मानपत्र में इसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? हिन्द की सारी जनता आपकी ऋणी है, यही कहना उचित है। मैं आपके गुणों से प्रभावित हो कर संस्कृत में श्लोक रचना कर आपके गुणानुवाद करने को प्रेरित हुआ हूँ। और ब्राह्मण रूप से आपको आशीर्वाद देता हूँ।

पुण्यश्लोक देशवत्सल "महात्मा" श्री मोहनदास करमचन्द गांधी महोदयानां सपत्नीकानां चरणकमलेषु सन्मानपत्रकम्।

मल्लीमंगलमाल्यवत्तव यशो दिक्केलिहास्थायितं
कंठं खेलति विश्वतो नवगुणस्यूतं गिरां शिल्पिनाम् ॥
दग्ध्वा शंकर भालदृष्टिवदथो तेजस्छटैषा शुमा
विद्वन् काममरीन्करोत्यदयितास्तेषां स्त्रियः सत्वराः ॥१॥

कुसुममभिनवं वा भाति यद्वद्वसंतेऽ-
सितरजनिमुखे वा चन्द्रिकोदेति यद्वत् ॥
स्फुरति शुचि यशस्ते कर्मचन्द्रात्मजन्मन्
परम विमल धाम्ना गांधि तादृग् दिगन्ते ॥२॥

माधुर्येण सुधारसं परिमलेनामोदिना सारसं
वैमल्येन विधोः करं तरलया कांत्या च मुक्तारसं।
क्षुद्रे कर्णविले नृणां तव यशो जित्वा कथं लीयते
गांधी मोहनदास नाम विद्वषो वीराय पत्नी सखे ॥३॥

स्वर्गात्पीयूषधारा क्षरति किमथवा स्वर्गिणां पीतशेषा
स्रस्तो गंगाप्रवाहः शिशिरयति धरामीशमौलेः किमेषः।
किं वा श्चोतंति कल्पद्रुमकुसुमरसास्तुण्डतः षट्पदानां
इत्थंनाना विकल्पान् विदधति कवयः स्वादयन्तो यशस्ते ॥४॥

यथा शीतभानुं हि दृष्ट्वा चकोरा
यथा चण्ड भानुं च कोका प्रहृष्टाः।
तथा गांधिराजं हिदृष्ट्वा भवन्तं
परानन्द सिन्धौ निमग्ना मनुष्याः ॥५॥

महाभाग्यमेतद्धि गांधीजि नृणां
सुविख्यात सौराष्ट्र खण्ड स्थितानाम् ।
यतः शौर्य धैर्याद्युपेतोऽनवद्यः
सदाभारतीयाऽवने लब्धदीक्षः ॥६॥

यावदस्ति त्रयी लोके चतुर्मुख मुखोद्गता
यावद्वा रामचरितं वाल्मीकि कवि चित्रितम् ॥७॥

व्यासस्य सूक्तयो यावत् श्रीकृष्ण चरितामृताः
वाग्देव्याः श्रेष्ठपुत्रस्य कालिदासस्य वा गिरः ॥८॥

यावच्च वंशोस्त्यार्याणां सतीनां चरितानि च
तावत्सुकीर्तिर मला देश सेवोद्भवास्तु ते ॥९॥

इस प्रकार रसशाला औषधाश्रम और "आयुर्वेद रहस्यार्क" मासिक के सहस्रों ग्राहक, मैं और गोंडल की जनता परमात्मा से प्रार्थना करती है।

आज, आपके महान कार्यों से प्रेरित होकर, मैं अपनी संस्था की ओर से आपको 'महात्मा' पदवी और मानपत्र समर्पित करता हूँ।

महात्मा गांधीजी, आपके शरीर का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, किन्तु फिर भी यहाँ पधारने का कष्ट किया, इसका मैं आपका उपकार मानता हूँ।

इस अवसर पर आपके अभिनन्दन समारोह में सहयोग प्रदान करने में, दीवान साहब श्री पटवारीजी, महाराज साहब के सेक्रेटरी श्री प्राणशंकर भाई जोशी, प्राइवेट सेक्रेटरी श्री पानाचन्द भाई, श्रीमान देवचन्द भाई पारेख बारिष्टर श्री गौरीशंकर प्राणशंकर व्यास आदि व्यक्तियों का आभार मानता हूँ। आपको मानपत्र और महात्मा की पदवी के साथ संस्था की ओर से औषधियों की पेटी और पुस्तकें भी समर्पित करता हूँ।

आज मैं इस बात से गर्व और गौरव प्रतीत करता हूँ कि दक्षिण अफ्रीका में आपका अभियान सफल हुआ। इससे भारत के यश और सन्मान में अभिवृद्धि हुई है। अब स्वदेश वापस आने पर आप अपना शेष जीवन देश-सेवा और कल्याण में व्यतीत करें।

हिन्दुस्तान वापस आने पर आपको सर्वप्रथम मानपत्र समर्पित करने में, मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। और भी हिन्दुस्तान में पैर रखते ही, इस देश हितकारिणी संस्था में पहले पहल पधार कर इसका मान बढ़ाया, इसका मैं, आपका और श्री कस्तूर बा का आभार मानता हूँ।

आपका

विक्रम संवत् १९७१, राजवैद्य जीवराम कालीदास शास्त्री
माघ शुदी १२ ता० २७ अध्यक्ष, रसशाला औषधाश्रम
जनवरी १९१५, बुधवार और आयुर्वेद रहस्यार्क
प्रातः ९·३० बजे

जब वैद्यराज ने मानपत्र पढ़कर उसे चाँदी की मंजूषा में रखकर गांधीजी के हाथ में दिया, तो उपस्थित जन-समुदाय बड़े प्रेम से "महात्मा गांधीजी की जय" बोल पड़ा। इसके पश्चात् गांधीजी ने अपने अभिनन्दन के सम्बन्ध में सबको धन्यवाद दिया और कहा—

"मैं गोंडल से थोड़ा परिचित हूँ, परन्तु अपने घनिष्ठ मित्र रणछोड़दास भाई और अपने सहाध्यायी प्राणशंकर भाई जोशी के सम्पर्क से विदेश में गोंडल की याद बनी रहती थी। वहाँ रहते हुए धन की आवश्यकता के समय महाराज साहब की भेजी हुई रकम हजारगुणा उपयोगी हुई। दक्षिण अफ्रीका में जो सफलता मिली उसका श्रेय गोंडल महाराज को है। आपकी मदद मुझे समय पर न मिली होती, तो परिणाम क्या होता, मैं कह नहीं सकता। यह देश-सेवा का एक उज्ज्वल उदाहरण है, जिसका अनुसरण अन्य राजा, महाराजा को करना चाहिए। मैं पटवारी जी, प्राणशंकर भाई और वैद्यराज के मेरे अफ्रीका प्रवास में सहायक होने पर, उनको धन्यवाद देता हूँ।

"वैद्यराज, संस्कृत और आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान् हैं। उनके द्वारा स्थापित रसशाला, आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा कर रही है। रसशाला की ओर से प्रकाशित साहित्य जनता के लिए बहुत उपयोगी है। मैं कुछ साहित्य अफ्रीका में पढ़ता रहा। ऐसे प्रकांड विद्वान् ने मानपत्र में मेरे लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनसे मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है। उन्हें मैं सदा याद रखूँगा।

"आयुर्वेद के लिए मेरे मन में बड़ा स्थान है। यह हिन्द की प्राचीन विद्या है, जो हिन्द के लाखों गाँवों में बसनेवाले करोड़ों मनुष्यों को नीरोग बनानेवाली विद्या है। मैं जनता को आयुर्वेद के आधार पर जीवन बिताने के लिये संस्तुति करता हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि रसशाला औषधाश्रम और वैद्यराज, आयुर्वेद के द्वारा अधिकाधिक सेवा करने में समर्थ हों", आदि।

तत्पश्चात् श्री पटवारीजी के समयोनुकूल समापन भाषण के उपरान्त सभा विसर्जित हुई, और लोग 'महात्मा गांधी की जय' बोलते हुए, अपने-अपने घर गये।

इस प्रकार अभिनन्दन समारोह समाप्त हुआ, और तब से गांधीजी महात्मा कहलाये।

पंडितराज जगन्नाथ और भक्तिरस की मान्यता का प्रश्न

डा० जगलनारायण गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत के उद्भट विद्वान् तथा साहित्य-शास्त्र के अन्तिम प्रतिभाशाली आचार्य थे। इनका पाण्डित्य अगाध तथा प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी थी। इनके द्वारा रचित 'रसगंगाधर' काव्यशास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ में इन्होंने न केवल परंपरागत साहित्य शास्त्रीय विषयों का सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन किया है, वरन् नवीन विषयों पर भी अपनी विद्वत्तापूर्ण लेखनी चलाकर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। ऐसे ही विषयों में भक्तिरस की मान्यता का प्रश्न भी है, जिस पर हम यहाँ संक्षेप में विचार कर रहे हैं।

इन्होंने काव्य में रसों की संख्या परम्परागत नौ मानते हुए भी भक्ति रस की मान्यता के प्रश्न को उठाया है तथा भक्ति के रसत्व की उत्कटता को स्वीकार करते हुए उसकी काव्यगत सामग्री का स्पष्ट उल्लेख किया है। वे कहते हैं:- "जब भगवद्भक्त लोग भागवत आदि पुराणों का श्रवण करते है, उस समय वे जिस भक्तिरस का अनुभव करते है, उसे आप किसी तरह छिपा नहीं सकते। उस रस के आलम्बन भगवान् है, भागवत्-श्रवण आदि उद्दीपन हैं, रोमांच, अश्रु आदि अनुभाव हैं और हर्ष आदि संचारी है तथा इसका स्थायी भाव है भगवान् से प्रेम रूप भक्ति।"[1] इतना ही नहीं इन्होंने अपने विवेचन में भक्ति के शान्त, शृंगार एवं अद्भुत रसों से पार्थक्य का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त, विश्वनाथ आदि अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन करते हुए ये कहते हैं कि भक्तिरस का शान्तरस में अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि प्रेम वैराग्य से विरुद्ध है :—

न चासौ शान्तरसेऽन्तर्भावमर्हति अनुरागस्य वैराग्यविरुद्धत्वात्।[1]

इसी प्रकार ये भक्ति और शृंगार के वैषम्य से भी परिचित थे। ये अपने पूर्ववर्ती उन आचार्यों से सहमत नहीं थे जो भक्ति का समावेश रति भाव में ही कर देना चाहते थे। इनके द्वारा गीत-गोविन्दकार जयदेव के राधा-कृष्ण-विषयक उद्दाम शृंगार की निन्दा से इस कथन की पुष्टि होती है।[2] भक्ति और अद्भुत रसों की पृथक्ता का भी इन्होंने प्रतिपादन किया है। मम्मट के काव्य-प्रकाश से एक अद्भुत रस का उदाहरण लेते हुए ये सिद्ध करते हैं उसमें भक्ति की प्रधानता है, विस्मय गौण है।[3]

भक्तिरस का इतना विवेचन करने के वाद भी ये केवल परम्परागत रुढ़िवादिता के कारण उसे स्वतन्त्र रस के रूप में मान्यता न दे सके और आचार्य मम्मट की भाँति उसे केवल भाव की कोटि में ही प्रतिष्ठित करते हैं :—

उच्यते। भक्तेर्देवादिविषयरतित्वेन भावांतर्गततया रसत्वानुपपत्तेः। रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः। भावः प्रोक्तः।

ऐसा करने के लिये इन्होंने बड़े विचित्र तर्क दिये है। इन्हें भय है कि कहीं कामिनी-विषयक प्रेम को केवल संचारी भाव मान लेने तथा भक्ति को स्थायी भाव के रूप में ग्रहण करने से साहित्यशास्त्र में अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाय। उन्हें इस वात की भी आशंका है कि ऐसा करने पर फिर कुछ लोग पुत्रादिविषया रति को स्थायी मानने का आग्रह करेंगे और कुछ जुगुप्सा तथा शोक को स्थायी भाव न मानने के लिये कहेंगे, अतः काव्यशास्त्र की परम्परा भङ्ग हो जायगी। ये भरतादि मुनियों द्वारा स्थापित रस और

---

१. पं० राज जगन्नाथः रस गंगाधर, पृ० ५६ :—

भगवदालम्बनस्य रोमांचाश्रुपातादिभिरनुभावितस्य हर्षादिभिः परिपोषितस्य भागवतादि पुराण श्रवणसमये भगवद्भक्तैरनुभूयमानस्य भक्तिरसस्य दुरपह्नवत्वात्। भगवदनुरागरूपा भक्तिश्चात्र स्थायिभावः।

१.—वही—, वही—, पृ० ५६।

२. रस गंगाधर, प्रथम आनन, शृंगार प्रकरण।

३. —वही— पृ० ५२-५३

भाव की व्यवस्था को तोड़ना नहीं चाहते और नौ रसों की संख्या से ही चिपटे रहना चाहते हैं।[१]

प्रश्न उठता है कि पण्डितराज ने भक्तिरस को मान्यता क्यों नहीं दी ? केवल परम्परागत शास्त्रीय व्यवस्था को ही एकमेव कारण नहीं माना जा सकता। हमारे विचार में इसके दो कारण और हो सकते हैं :—

(१) भक्ति द्वैतवाद पर आधारित है, जबकि रस सिद्धान्त की व्याख्या अभिनवगुप्त ने शैवाद्वैतवाद के द्वारा और पंडितराज ने शांकर वेदान्त के अद्वैतवाद से की थी। अद्वैतवादियों के लिये भक्ति की अपेक्षा शान्तरस अधिक अनुकूल पड़ता है। ये आनन्द मात्र की कल्पना आत्मा की अद्वैतमयी स्थिति में मानते हैं। भक्ति को रस रूप में मान्यता देने से रस सिद्धान्त की समुचित व्याख्या में व्याघात पड़ सकता था।

(२) पंडितराज ने भक्तिरस के खण्डन के समय रस संख्या को लेकर जिस साहित्यिक अव्यवस्था की आशंका प्रकट की है, वह बहुत कुछ सत्य है। उनसे पूर्व संस्कृत साहित्य शास्त्र में रस संख्या संकोच तथा रस-संख्या-विस्तार के सम्बन्ध में बड़ा ऊहापोह चल रहा था। अतः ऐसी स्थिति में उन्होंने मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा।

आलोचना

(१) केवल भरत या मम्मट कथित न होने के कारण भक्ति-रस को मान्यता न देकर पंडितराज जैसे सूक्ष्मचेता एवं उद्भट विद्वान् ने स्वस्थ एवं प्रगतिशील मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया। उनके समक्ष साहित्यशास्त्र की एक दीर्घ परम्परा थी जिसमें भारत के सिद्धान्तों को तोड़-कर अनेक नवीन सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने के लिये भरत या मम्मट का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक नहीं है।

(२) लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर ही लक्षण ग्रन्थ रचे जाते हैं—इस नियम के अनुसार भी पंडितराज के लिये यह आवश्यक था कि वे भक्ति रस को मान्यता प्रदान करते क्योंकि उनके समक्ष संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं के अनेक भक्तिरस से पूर्ण काव्य थे। इनसे पूर्व १५वीं तथा १६वीं शती में भक्ति आन्दोलन अपने चरम रूप में समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो चुका था। वे स्वयं भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त थे, अतः इनकी भक्तिपरक कविताएँ रसात्मकता से भरपूर थीं। रस गंगाधर के प्रारम्भ में ही इन्होंने भगवान् की अपूर्व सुषमा से मंडित एक मनोरम पद्य लिखा है।[१] भक्ति रस की अपूर्व मन्दाकिनी प्रवाहित करनेवाली ५ लहरियों—करुणा लहरी, गंगालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, सुधा लहरी—के ये स्वयं प्रणेता थे।

इसके अतिरिक्त इनसे पूर्व रूप गोस्वामी अपने 'हरि भक्ति-रसामृत सिन्धु' में तथा मधुसूदन सरस्वती अपने 'भक्ति रसायन' में भक्ति रस की दृढ़तापूर्वक स्थापना कर चुके थे। यद्यपि उनके प्रयास में साम्प्रदा-यिकता का गहरा रंग था तथापि उसको आधार बनाकर साहित्य शास्त्रीय ढंग से भक्ति रस की प्रतिष्ठा की जा सकती थी।

(३) पंडितराज की यह आशंका निर्मूल है कि यदि देव विषयकरति को भक्तिरस के रूप में मान्यता दे दी जायगी तो कुछ लोग मुनि, गुरु, पुत्र आदि की रति से सम्बन्धित भावों को भी रस मानने का आग्रह करेंगे। एक तो ये भाव ईश्वर विषयक रति की भाँति इतने उत्कट आस्वाद्य नहीं हैं और दूसरे इनसे सम्बन्धित साहित्य भी अधिक नहीं है, अतः इन्हें भाव मानना ही ठीक है। पुत्रविषयक रति अवश्य चमत्कारजनक एवं उत्कट आस्वाद्य होने के कारण रस रूप में ग्रहण करने योग्य है।

(४) पंडितराज का यह भय भी निराधार है कि भक्ति रस की मान्यता मिलने पर शृंगार रस के महत्त्व में

---

१. —वही—पृष्ठ ५७ :—

भरतादि मुनिवचनानामेवात्र रसभावत्वादि व्यवस्था-पकत्वेन स्वातन्त्र्ययोगात्। अन्यथा पुत्रादिविषयाया अपि रतेःस्थायिभावत्वं कुतो न स्यात्। न स्याद्वा कुतःशुद्ध भावत्वं जुगुप्साशोकादीनाम् ? इत्यखिलदर्शन वैयाकुली स्यात्। रसानां नवत्वगणना च मुनिवचननियन्त्रिता भज्येत, इति यथाशास्त्रमेव ज्यायः।

१—रस गंगाधर १।१

स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणाम-
भंगुरतनुत्विषां वलयिता शतैर्विद्युताम्।
कलिन्दगिरिनन्दिनी तटसुरद्रुमालम्बिनी,
मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥

कुछ कमी आ जायगी। श्रृंगार का महत्त्व अक्षुण्ण एवं निर्विवाद है। भक्ति को सर्वश्रेष्ठ रस कह कर उसकी प्रतिष्ठा करनेवाले रूप गोस्वामी एवं मधुसूदन सरस्वती भी श्रृंगार रस के महत्त्व को कम न कर सके। इन लोगों ने श्रृंगार-मिश्रित भक्तिरस को मधुर रस कहकर उसे सर्वाधिक प्रभावशाली वतलाया है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि पंडितराज ने केवल परम्परागत रूढ़िवादिता के आधार पर भक्तिरस को मान्यता ही दी। वैसे इस प्रश्न को उठाकर उनकी हार्दिक अभिलाषा उसे स्वीकृति देने की थी, पर रूढ़िवादिता उनके मार्ग मे बाधक बन गयी। फिर भी भक्ति रस अपना व्यापक प्रभाव जमाए बिना न रहा और वात्सल्य रस की भाँति उसे भी रस रूप में मान्यता दी गयी है। हिन्दी के अनेक विद्वानों ने भक्ति के रसत्व का प्रवलता से समर्थन किया है। वी० राघवन ने अपने ग्रन्थ 'दि नम्बर ऑफ रसाज' में स्पष्ट कहा है कि इस देश के लिये यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि यहाँ भक्ति को व्यापक रस के रूप में स्वीकार किया जाता।[१]

१. V. Raghavan : The Number of Rasas, P. 129 ;—It is natural that in this land this sentiment of devotion should have been accepted as a Rasa.

गरल पिया है

श्री जनकराज पारीक

हाँ, मैंने ही आँजा है धरती की आँखों में यह काजल,
जो मन बहला सके नहीं, मुझको ऐसा इंसान दिखा दो।

मैंने सदा उर्मिला सा बन,
लम्बी एक साध है साधी।
मैंने बीहड़ की झंझा में,
टिम-टिम करती जोत जलादी।

फिर मैंने ही दीप बुझा कर थाम लिया है तम का आँचल,
जो न वहक जाये राहों में, मुझको वह तूफान दिखा दो।

हाँ, मैंने ही नीलकण्ठ बन,
एक साँस में गरल पिया है।
युग की अनव्याही इच्छा को
परिणय का विश्वास दिया है।

फिर मैंने ही पाञ्चजन्य बन घोर प्रलय का नाद कर दिया,
जो रचकर न नष्ट कर डाले मुझको वह भगवान दिखादो !

मेरी भोली अभिलाषाएँ
जग में सस्ते दाम विकी हैं।
मेरी विधवा खुशियों पर ही
दुष्ट दुखों की आँख टिकी हैं।

हाँ, मैंने ही मन के भावों को छन्दों में कैद किया है,
जो न रहा हो बन्दी मेरा मुझको वह अरमान दिखा दो।

राष्ट्रभाषा की समस्या और भारतेंदु हरिश्चंद्र

·प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

भाषा का प्रश्न आज हमारे लिए प्रभूत विवादों का अखाड़ा बना हुआ है। हमारे नवोदित राष्ट्र के कर्णधारों की ढुलमुल नीति और शासकीय दुर्बलता के कारण यह समस्या दिनानुदिन उलझती जा रही है। लेकिन हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि आज से लगभग नव्वे वर्ष पूर्व भारतेन्दु की अतल-भेदिनी दृष्टि किस प्रकार इस समस्या की तह तक जा सकी थी और अपने ढंग से उन्होंने इसका समाधान भी ढूँढ़ लिया था। हम चाहें तो आज भी इस जटिल समस्या को सुलझाने में उनका दिशानिर्देश स्वीकार कर सकते है, सिर झुकाकर उनसे सीख ले सकते है।

भारतेन्दु ने बलिया के प्रसिद्ध ददरी मेले में देशोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित समारोह के लिए एक निबंध लिखा था—'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है ?' इस निबंध में उन्होंने सबसे अधिक बल स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार पर दिया है। वे अपनी सहज व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं—"देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली है, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड, फॅरासीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। जरा अपने ही को देखो। तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है। जिस लंकलाट का तुम्हारा अंगा है, वह इंगलैंड का है। फँरासीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हौ। और जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है। यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकरे मँगनी का कपड़ा पहनकर किसी महफिल में गए। कपड़े को पहचान कर एक ने कहा—"अजी अंगा तो फलाने का है।" दूसरा बोला—"अजी टोपी भी फलाने की है।" तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि घर की तो मूछैं-ही मूछैं हैं।" और तब निबंध का समापन करते हुए भारतेंदु कहते है—"जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रक्खो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।"

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेंदु ने गांधीजी से लगभग आधी शताब्दी पूर्व यह अनुभव किया था कि देश की सर्वागीण उन्नति स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार, आत्मनिर्भरता से ही संभव है और साथ ही यह भी कि स्वभाषा का प्रयोग इसका प्रथम सोपान है। उन्होंने हिन्दी की उन्नति पर दिये गये अपने एक अन्य भाषण में बड़ी स्पष्टता से कहा है—

> **निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।**
> **बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥**

भाषा केवल अभिव्यक्ति का जड़ माध्यम नही, वह विचारों की जीवंत वाहिका है और उससे भी आगे बढ़कर हमारे व्यक्तित्व का अंग है। मनुष्य को यदि सामाजिक प्राणी कहा जाता है तो भाषा उसकी सामाजिकता का प्रमाण है। यह हमारी सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति है। भाषा ही वह साधन है, जिसके द्वारा अपने परिवेश के साथ हम संबंध जोड़ने का प्रयास करते है। प्राचीन काल में भारत में जो एकता स्थापित हुई थी और उसका संगठन सुदृढ़ हुआ था, उसके पीछे बहुत दूर तक संस्कृत भाषा की प्रेरणा वर्त्तमान थी, उस संस्कृत की, जो कभी सारे देश के शिष्ट-समुदाय के विचार-विनिमय का एकमात्र माध्यम थी। यह सर्वथा आकस्मिक नही कि सुदूर दक्षिण के शंकराचार्य, काश्मीर के क्षेमेन्द्र और कल्हण तथा अपेक्षाकृत पूर्वी भू-भाग के जयदेव—सब अपनी जनपदीय बोलियों को छोड़कर संस्कृत में ही ग्रंथ-रचना करते थे और इतिहास साक्षी है कि जिस दिन से संस्कृत की इस सार्वदेशिक महत्ता को चुनौती दी गई, उसी दिन से देश में अंतर्विरोध और क्षेत्रीय जोश ने भी सिर उठाना आरंभ कर दिया। भारतेंदु का कथन है:—

> **इक भाषा, इक जीव, इक-मति घर के सब लोग।**
> **तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग ॥**

लेकिन देश को एक सूचित करनेवाली उसकी कोई अपनी ही भाषा हो सकती है। यह कार्य किसी विदेशी साधन से सभव नही। विदेशी भाषा की कठोर साधना के बाद भी उसमें न तो हम अपने हृदय को खोलकर दूसरों के सामने रख सकते है और न उसकी खिड़की से अपने पड़ोसी के दिल में ही झाँक सकते है। हमारे सुख-दुःख, अश्रु-हास जितनी सचाई और मार्मिकता से हमारी अपनी भाषा मे व्यंजित होते है, उतनी मार्मिकता मे किसी बाहरी भाषा का सहारा लेकर कभी नहीं प्रकट किये जा सकते। मसल मश-

दूर है कि तोता चाहे लाख राम-नाम रटे, मगर जब बिल्ली उसका गला दबोचती है तो वह टें-टें ही बोलता है, 'मानस' की चौपाई नहीं दुहराता। मुझे नहीं मालूम पिछले दिनों देश पर जो दो बड़े आक्रमण हुए, उसकी संप्रभुता को चुनौती दी गई, उसकी प्रतिक्रिया में अँग्रेजी में एक भी उस जोड़ की कविता, कहानी या नाटक की सृष्टि हो सकी, जिस कोटि की रचनाएँ हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में सहज भाव से और अनुपेक्षणीय मात्रा में सामने आई है। भारतेंदु ने कहा है—

अँगरेजी पढ़िकै जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन॥
यह सब भाषा काम की जब लौं बाहर बास।
घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास॥

अध्ययन का अर्थ यदि उपलब्ध ज्ञान का संरक्षण मात्र हो, तब तो यह अन्य भाषाओं के मार्ग से भी संभव है। किन्तु इसका उद्देश्य अगर ज्ञान का विकास और स्वाधीन चिंतन की प्रेरणा भी हो, तब यह विजातीय भाषा के माध्यम से दुःसाध्य ही रहेगी। हम जिस क्षण विदेशी भाषा को अपनाते हैं उसके साथ ही लिपटी हुई वैदेशिक विचार प्रणाली भी चली आती है। भारतेंदु ने इस खतरे को बहुत पहले समझ लिया था। इसीलिए अपनी भाषा के माध्यम से मौलिक चिंतन पर बल देते हुए उन्होंने कहा—

पढ़ो लिखो कोउ लाख विध भाषा बहुत प्रकार।
पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार॥

पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपनी भाषा की सीमाओं से अपरिचित थे। उन्होंने अँग्रेज जाति की इसलिए दिल खोलकर दाद दी है कि उसने अपनी भाषा को हर प्रकार से समुन्नत और समृद्ध बनाने की साधना की। यह उसके ही अथक प्रयत्नों का सुफल है कि आज अँग्रेजी संसार के समस्त ज्ञान-विज्ञान का आकर मानी जाती है। अपने देशवासियों को अँग्रेजी की इस विशेषता से अवगत कराते हुए भारतेंदु कहते हैं—

लखहु न अँगरेजन करी उन्नति भाषा माँहि।
सब विद्या के ग्रंथ अँगरेजि माँहि लखाँहि॥

और

आल्हा बिरहहु को भयो अँगरेजी अनुवाद।
यह लखि लाज न आवई तुमहिं न होत विषाद॥

अतएव यदि हम अँग्रेजी को अपदस्थ कर उसके स्थान पर अपनी भाषा को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो इसके लिए हमें भी कुछ वैसे ही अध्यवसाय और तप का परिचय देना होगा, जैसा अध्यवसाय अँग्रेजों ने अपनी भाषा के लिए प्रदर्शित किया। जो कुछ आदर योग्य और संग्रहणीय विदेशी भाषा में है, उसे वहाँ से लेकर अपना घर भरने में भारतेंदु को संकोच नहीं—

विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माँहि प्रचार॥

वे और आगे बढ़कर कहते हैं—

अँगरेजी अरु फारसी अरबी-संस्कृत ढेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर॥

विविध कलाओं और ज्ञान को अपनी भाषा में भरने का अर्थ केवल इतना नहीं कि हिन्दी में कुछेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद हो जायँ और थोड़े-से पारिभाषिक शब्द गढ़ लिये जायँ, जिनसे प्राविधिक (तकनीकी) विषयों में ग्रंथ-रचना में सुविधा हो। यह काम भी आवश्यक है। पर वास्तविक महत्त्व शब्द का नहीं, उसके अर्थ का होता है। जैसा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने एक भाषण में कहा था कि यदि हमने विदेशी शब्दों के पर्याय गढ़ लिए पर अर्थ (वस्तु) हमारे पास न हो तो शब्द का मूल्य ही क्या है? 'राकेट' का अनुवाद 'प्रक्षेपणास्त्र' तब तक बेमानी है, जब तक वह वस्तु उपलब्ध न हो। हमें शब्द गढ़ने के साथ अर्थ भी पैदा करना है। लेकिन देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा कि आज चारों ओर केवल 'शब्दों की खेती हो रही है।

इस प्रकार भारतेंदु ने निज भाषा की उन्नति को जो तमाम उन्नतियों का मूल घोषित किया था, वह कोरी भावुकता या आवेश की स्थिति में नहीं। उन्होंने भाषा की बुनियादी ताकत को पहचाना था और साथ ही इस बात को भी देख लिया था कि हमारी पराधीनता की जड़ कहाँ पर कितनी गहराई में प्रवेश कर गयी है। भाषायी उन्नति उनके लिए संपूर्ण देश की जनता के सांस्कृतिक-सामाजिक विकास का पर्याय थी। इसीलिए उनका संदेश था—

करहु बिलंब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल॥

भारतेंदु के समय भी ऐसे लोग थे, जो हिन्दी के अभावों

का आस्फालन किया करते थे। कभी वे हिन्दी में तकनीकी साहित्य की कमी की शिकायत करते थे तो कभी यह रोना रोते थे कि हिन्दी में शिक्षा देने से शिक्षा का स्तर गिर जायगा। भारतेंदु ने ऐसे दुराग्रही पंडितों के आक्षेपों का न केवल करारा जवाब दिया है, बल्कि स्वयं भाषा की सर्वांगीण उन्नति की साधना की है। २३ अगस्त १८७३ की 'कवि-वचन-सुधा' में हिन्दी-विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था—"बहुत से लोग बिना समझे-बूझे दाढ़ी हिला-हिलाकर कहा करते थे कि हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रंथ नहीं लिखे जा सकते और भाषा में इतने शब्द नहीं कि वैज्ञानिक भावना प्रकाश की जाय। पर हम लोग यह जलपनेवाले लोगों को सचेत करते हैं कि वे इस निद्रा से जागें और टुक आँख खोलकर देखें कि अब हिन्दी भाषा की उन्नति चाहनेवाले जो कहते थे सो कर दिखाते है.......काशिस्थ राजकीय पाठशाला के गणित विद्या के मुख्य अध्यापक पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० ने हिन्दी भाषा में गणित विद्या की पूरी श्रेणी बनाने का संकल्प किया है तथाच उक्त महाशय ने सरल त्रिकोणमिति (प्लेन ट्रिगॉनमेट्री) हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर ली।"

भारतेंदु ने एक ओर हिन्दी की अनेक प्रचलित शैलियों के उदाहरण देते हुए उसकी जातीय शैली की, जिसमे बुनियादी शब्द बोल-चाल की भाषा के हों और आवश्यकता पड़ने पर पारिभाषिक शब्द संस्कृत से ग्रहण किए जायँ, प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया। दूसरी ओर गणित, त्रिकोणमिति तथा अन्य तफनीकी विषयों की ग्रन्थ-रचना को प्रोत्साहन दिया। उनका महत्त्व केवल अंगुलि-निर्देश के कारण नहीं, एक सीमा तक उपलब्धियों की कसौटी पर भी अक्षुण्ण है। उनका स्मरण हमें अपनी भाषा की प्रगति के लिए प्रतिबद्ध करता है, उसकी समृद्धि का व्यावहारिक आदर्श उपस्थित करता और शिथिल पड़ते स्वदेशानुराग को ठोकर मारकर जगाता है।

मन के कालिदास को अम्बर तले

श्री देवनाथ पाण्डेय 'साल'

नील मेघ के पत्र तुम्हारे
उत्तर खुलते मोरपंख के
मन के कालिदास को अम्बर तले उचाट नहीं होने दो!
मन के बंजारा असाढ़ की स्नेहिल गाँठ नहीं खुलने दो!

भींग रहा हूँ कब से लेटा
मैं रिमझिम में, घास-फूस पर;
बजते 'जलतरंग' की ध्वनियों
में खोजता झूम-झूम कर
इन्द्रधनुष बाँहों में भरकर
महकी हर उमंग से क्षण भर
नीली छायाओं के घर के बन्द कपाट नहीं रहने दो!
बूँदों की घंटियाँ बजा सतरंगे घाट नहीं बहने दो॥१॥

यह जलमुँही रसीली
बूँदाबाँदी होती हवा चटोरे
नीले-नीले उठे शिखर
के तले डालती जादू-डोरे
बिजली के सब ताप जलाकर
मन में मीठी चाह जगा कर
किसी एक पल की ले मुहलत ज्यादा बाट नहीं तकने दो!
छोटी-सी ही बिन्दी देकर व्योम-ललाट नहीं भरने दो॥२॥

ये छवियाँ, ये श्याम घटाएँ
नीला अम्बर, श्याम दिशाएँ
फिसलन भरी डगर से निकलीं
मंत्र परोरी हुई हवाएँ
बरखा भरी नदी के जल का हर्गिज पाट नहीं घटने दो!
उठे नयन के किसी क्षितिज नीलम की हार नहीं बिकने दो!३!

बेगुनाह को फाँसी

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

सन् १९६२ में ससार के १४६ सभ्य देशों में से १८ में मृत्युदंड कानूनन मना था। मेक्सिको की केन्द्रीय सरकार ने उसके २५ प्रदेशों ने, आस्ट्रेलिया के एक प्रदेश क्वीसलेंड में तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के पाँच प्रदेश अलास्का, हवाई, मेन, मिन्नेसोटा और विसकौंसिन मे प्राणदंड वर्जित था। कानून से किसीकी जान नही ली जाती है।

८९ देशों मे प्राणदड कानून पूरी तरह से लागू था फिर भी उनमें से ३६ ऐसे देश थे जहाँ प्राणदड की सजा तो दी गई पर सन् १९५८-१९६२ के बीच में किसीकी जान नही ली गयी। सजा को आजन्म कारागार में बदल दिया गया। लिखतोनस्तीन नामक छोटे से देश में सन् १७९८ से यानी सवा सौ साल से अधिक हुए एक भी जान नहीं ली गयी। बेल्जियम में घोर से घोर अपराध पर भी बिरले ही फांसी की सजा होती है और अगर कभी कोई सजा ऐसी सुना भी दी गयी तो उसे आजन्म कारागार में बदल दिया जाता है। सन् १८६१ से १९६२ की अवधि में वहाँ केवल एक व्यक्ति को फांसी हुई।

अनेक देश ऐसे हैं जहाँ कानूनन फांसी या मृत्युदंड को रखा गया है ताकि उसका डर रहे—और वह भी तीन-चार अपराधों के लिए जैसे देश के विरुद्ध मुखबिरी करना, राज्य के प्रधान की हत्या, देशद्रोह या जेल के भीतर बन्द अपने साथी बन्दी की जान लेना। कुछ जगह बलात्कार पर भी प्राणदंड होता है। पर बिरले ही किसी अपराधी की जान ली जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मिचिगन प्रदेश ने सन् १९६३ तक देशद्रोह के लिये ही प्राणदंड रखा था। पर अब उसे भी समाप्त कर दिया है। नीचे लिखे देशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया पर कुछ विशेष अपराधों के लिये रख छोड़ा है :—

देश	अपराध या अपराध की परिस्थिति
अर्जेंटाइना	केवल सैनिक सेवा के अपराध मे
आस्ट्रिया	सैनिक अदालत द्वारा ही
ब्राजिल	राजद्रोह तथा खुफियागिरी के लिए
डेन्मार्क	केवल युद्ध काल में
फिनलेंड	फौजी कानून में, मार्शल लॉ में
हिन्द एशिया	राजद्रोह, देश के विरुद्ध खुफियागिरी, राज्य के प्रधान पर हमला
इजरायल	जाति-उन्मूलन, राजद्रोह, खुफियागिरी
नेपाल	राज-परिवार के किसी सदस्य या राजा की हत्या करने की चेष्टा
नीदरलेंड्स	युद्ध काल मे
न्यूजीलेंड	राजद्रोह
नार्वे	फौजी कानून मे ही
स्वेडन	युद्ध काल में
स्विट्जरलेंड	युद्ध काल में, सैनिक अपराध में
सयुक्त राज्य अमेरिका का प्रदेश उत्तरी डेकोटा—	राजद्रोह, हत्या के अपराध में आजन्म कारावास भोगने वाले की हत्या में
रोड द्वीप	आजन्म कारागार भोगनेवाले बन्दी की हत्या करने पर।

नीचे लिखे देशों ने प्राणदंड एकदम समाप्त कर दिया है :—

देश	प्राणदंड समाप्त करने का वर्ष
बोलिविया	१९६२
कोलम्बिया	१९१०
कोस्टारिका	१८७०
डोमिनिकन प्रजातंत्र	१९२४
एक्वेडार	१९०७
पश्चिमी जर्मनी	१९४९
होंडुराज	१९५७
आइसलेंड	१९२८
इटली	१९४४
मोनाको	१९६२
मोजाम्बिक	१८६७
पनामा	कभी प्राणदंड नही हुआ न कानून में है।
पुर्तगाल	१८६७
पोर्टोरिको	१९२९
सानमेरिनो	१८६५
उरुगुआ	१९०५
वेनेजुएला	१८४८
क्वीसलेंड—आस्ट्रेलिया	१९२२
मेक्सिको—केन्द्रीय सरकार	१९३१
अलास्का—सं० राज्य अमेरिका	१९५७

हवाई—सं० राज्य अमेरिका			१९५७
मेन	,,	,,	१८८७
मिन्नेसोटा	,,	,,	१९११
विसकौसिन	,,	,,	१८५३
मिचिगन	,,	,,	१९६३

इस सूची के अनुसार छोटा सा राज्य लिखतेस्तीन (सन् १७९८) को छोड़कर सबसे पहले प्राणदंड समाप्त करनेवाला राज्य (प्रदेश) विसकौसिन (संयुक्त राज्य अमेरिका) था।

कम से कम प्राणदंड

जिन देशों में मृत्यु की सजा मिलती है वहाँ भी चेष्टा की जाती है कि कम से कम को मारा जाय। ८९ देशों की सन् १९५८-१९६२ के पाँच साल की सूची से पता चलता है कि इनमें कुल मिलाकर औसतन ५३५.८ व्यक्तियो को हर साल मारा जाता है यानी प्रति मुल्क ६ व्यक्ति का औसत पड़ा। पर इनमें से ३६ देशों में ५ साल में एक को भी फाँसी नहीं हुई तथा ६ देशों में ५० या अधिक अपराधियों को मौत के घाट उतारा गया। कहीं-कहीं १०० से भी अधिक व्यक्ति फाँसी लटके जैसे भारतवर्ष में (लगभग २२५ सन् १९६२ में)। १३ देश ऐसे हैं जहाँ एक व्यक्ति प्रतिवर्ष का औसत पड़ा। २४ देशों में १ से ५ व्यक्ति का औसत पड़ा। इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि प्राणदंड बहुत कम हो गया हैं।

मौत की सजा के लिये उम्र और तरीके

पुराना जमाना चला गया जब सार्वजनिक स्थानों पर फाँसी होती थी। केवल ९ देश ऐसे हैं जहाँ खुले आम फाँसी होती है—कम्बोडिया, कैमेसन, दक्षिण अफ्रीका गणतंत्र, एथिओपिया, हैती, ईरान, लाओज, निकारागुआ और पैरागुए। ९ देश ऐसे हैं जहाँ यदि सरकार चाहे तो खुले आम जान ले सकती है। खुले आम फाँसी इसलिये दी जाती थी कि देखने वालों पर असर पड़े और वे अपराध न करें, पर इगलैंड में जेबकटी के लिए खुले आम फाँसी होती थी, भीड़ में खूब जेबें कटतीं थीं—तब जनता पर असर क्या हुआ? और देशों में भी देखा गया कि सार्वजनिक फाँसी के समय शराबखोरी, बलवा, बेहूदगी, औरतों की छेड़छाड़, भद्दी गालियों की बौछार वगैरह बहुत होती थी। अतएव ८२ प्रतिशत देशों में जेलों में एकान्त मे फाँसी होती है।

६२ ऐसे देश हैं जहाँ कम से कम १८ वर्ष की उम्र वाले को ही मौत की सजा देते हैं। इससे नीचे की उम्र के अपराधी को प्राणदंड नहीं मिलता। दो देशों में कम से कम उम्र २१ साल है। एक में २२ वर्ष। अब ज्यादातर देश १८ वर्ष की उम्र मान रहे है। पहले ७-८ वर्ष के बच्चों को भी फाँसी होती थी।

अब जान लेने के तरीके में भी सुधार हो रहा है। पुराने जमाने में बड़े भीषण तरीके थे। चीन में शरीर के एक हजार टुकड़े करते थे या डंडे से मार कर भरता बना देते थे। भारत में मुगल शासन काल में जहाँगीर के समय में नूरजहाँ ने यह प्रथा बन्द करायी। भैंस को मार कर उसकी ताजी खाल का कोट तथा चुस्त पाजामा बना कर अपराधी को पहनाकर धूप में छोड़ देते थे। ज्यों-ज्यों खाल सिकुड़ती थी अपराधी का मांस नोचती जाती थी। वह पानी से तड़पता था पर एक बूंद पानी भी नहीं देते थे। अब समय बदल गया है। भारत में गले की फाँसी से डेढ़ सेकेंड में प्राण निकल जाते हैं इँगलैंड में भी फाँसी होती है। सन् १९६२ में ५४ देशों में गले में फाँसी लगा कर प्राण लेते थे। ३५ देशों में गोली मार देते हैं, ८ देशों में सर काट देते हैं, स्पेन में गला घोंट कर मारते है, सऊदी अरब में पत्थर मारकर जान लेते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा फिलप्पीन में बिजली या गैस से प्राण लेते हैं। फिलप्पीन में यदि प्राण-दण्डित व्यक्ति चाहे तो उसे बेहोशी की दवा सुँघा कर बेहोश करके तब बिजली से जान लेते हैं। इस प्रणाली में मरने वाले को कोई कष्ट नहीं होता।

प्राणदंड के अपराध भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न भी हैं जैसे अलबामा, केंटकी ऐसे प्रदेशों में सेंधमारी के लिए जान देनी पड़ती है। अलबाया, नेवादा आदि में रेलवे ट्रेन में डकती के लिये फाँसी होती है। हत्या के अपराध में झूठी गवाही देने वाले को भी फाँसी का नियम कहीं पर है।

यद्यपि हर देश में अपराध बढ़ रहे हैं, हत्या आदि में वृद्धि हो रही है पर यह धारणा बढ़ती जा रही है कि जान लेने से अपराध कम नहीं होता—बल्कि प्राण की मर्यादा कम होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में जहाँ अब प्रति ३५ मिनट पर एक हत्या होती है, प्राणदंड एक प्रकार

से समाप्त हो रहा है। सन् १९३० में वहाँ १५५ व्यक्तियों के प्राण लिये गये। सरकार के द्वारा सन् १९६० में ५६ के तथा सन् १९६२ में केवल २ के। सन् १९६० में उस देश में २१० को प्राणदंड हुआ पर ५६ की जान ली गयी। सन् १९६६ में ४०६ व्यक्ति मृत्युदंड पा चुके थे पर सन् १९६७ में केवल दो के प्राण लिये गये। सन् १९३० से ६७ के बीच में उस देश में २० गोरी तथा १२ नीग्रो स्त्रियों की जान सरकार ने ली। भारतवर्ष में स्त्रियों को फाँसी नहीं होती। अब संयुक्त राज्य अमेरिका में भी स्त्रियों की जान नहीं लेने का संकल्प हो रहा है।

क्या प्राणदंड से हत्या कम होती है ?

प्राणदंड की सजा रखने से हत्या कम नही होती तथा इस सजा को समाप्त करने से बढ़ती नहीं। इसका उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका के उन प्रदेशों के आँकड़े से मिलता है जहां यह सजा है और जहाँ नही है।

(सन्-१९६७ में फी १,००,००० आबादी पीछे)

प्राणदंड नहीं है	हत्या का औसत
अलास्का	९·६
हवाई	२·४
ओरीगान	३·१
मिन्नेसोटा	१·६
प्राणदंड होता है—	
वाशिंगटन	३·१
इआहो	४·१
मेरीलैंड	८·०
कैलिफोर्निया	५·४

जिन प्रदेशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है वहाँ सन् १९६२-६७ के छः साल में एक लाख आबादी पर हत्या का औसत नीचे दिया जाता है :—

प्रदेश	वर्ष जब प्राणदंड था		वर्ष जब प्राणदंड है	
इओवा	१९६३	१·३०	१९६७	१·५
न्यूयार्क	१९६३	३·८	१९६७	५·४
ओरीगान	१९६३	३·०	१९६७	३·१
वेस्ट वर्जिनिया	१९६३	३·७	१९६७	४·६

अपराध की इतनी अधिक चतुर्दिक वृद्धि बहुत साधारण सी वृद्धि कोई भी महत्त्व नही रखती।

कनाडा देश में आँकड़ों का अध्ययन कर समाजशास्त्री आँमन का कथन है कि "प्राणदंड की सजा समाप्त करने से कनाडा के जेलों में जिन हत्यारों या अपराधियों को कारावास की लम्बी सजा दी गयी उससे न तो जेलों के प्रशासन में कोई समस्या बढ़ी, न जेलों में उत्पात बढ़ा और न समाज में हत्या या भीषण प्रहार के अपराध उसी अनुपात में बढ़े जितना कि प्राणदंड वाले देशों में बढ़े हैं। थार्स्टेन सेलिन ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि यह सोचना भी भूल है कि प्राणदंड समाप्त करने से पुलिस की जान का खतरा बढ़ जायगा। सन् १९१९-१९५४ के बीच में संयुक्त राज्य अमेरिका के २६४ नगरों ने १२८ म्युनिसिपिल पुलिसमैन मारे गये। फी १ लाख की आबादी पीछे इस हत्या का औसत प्राणदंड वाले प्रदेशों में १·३ था तथा प्राणदंड रहित प्रदेशों में १·२ था।

क्लोरेंस एच० पैट्रिक तथा जेम्स ए० मैककर्फी ने वर्षों की खोज के बाद यह नतीजा निकाला है कि अपराध की गतिविधि में प्राणदंड की सजा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पैट्रिक की रिपोर्ट सन् १९६८ में प्रकाशित हुई है।

बेगुनाह को फाँसी

इस सजा का विरोध सबसे अधिक इस कारण किया जा रहा है कि "यदि १०० अपराधी अदालत से बिना सजा दिये छूट जायँ तो उतनी हानि नहीं है, पर *एक भी बेगुनाह यदि फाँसी पर लटक गया तो समाज तथा* सरकार के लिये अक्षम्य अपराध है।" चूँकि फाँसी की सजा दे देने के बाद कानून की भूल को सुधारा नहीं जा सकता इसीलिये यह सजा रद्द होनी चाहिये।

न्यूयार्क के नगर विश्वविद्यालय में दंडशास्त्र के प्रोफेसर ई० जे० मैकनमारा ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

'न्याय की भूल—चाहे अदालत की गलती हो चाहे पुलिस ने जबर्दस्ती गुनाह कबूल करा लिया हो, चाहे असली अपराधी के बजाय गलत आदमी की सिनाख्त हो गयी हो, चाहे अनायास अपराध जिम्मे मढ़ दिया गया हो, या जैसा कि अक्सर होता है, सही तरीके से मुकदमे का सचालन न हो—उसे सुधारने का क्या उपाय है ? दंडशास्त्र के विद्यार्थी के सामने यह कठिन सवाल है। बहुत से ऐसे मामले सामने आते हैं जिनमें बेगुनाह साबित हुए या जिनके गुनाह पर गहरा सन्देह है—उन्हें या तो

प्राणदड की सजा सुना दी गयी है या उनकी जान ले ली गयी है। चूँकि इस सजा में भूल को सुधारा नही जा सकता इसीलिये इस सजा को समाप्त करना चाहिये।"

संयुक्त राज्य अमेरिका के सन् १९६६ में अटार्नी जनरल (सबसे बड़े सरकारी वकील) रामजे क्लार्क ने एक कमेटी के सामने अपनी गवाही में कहा था :—

"हमारा इतिहास साबित करता है कि हमने बहुतों को अन्यायपूर्वक प्राणदंड दिया है। इस सजा को सुधारा नहीं जा सकता। इसीलिये फ्रेंच राजनैतिक लफम्मा ने कहा था कि जब तक यह न सिद्ध किया जा सके कि इन्सान से गलत निर्णय नहीं हो सकता है, मै इस दंड का विरोध करूँगा। गरीब, अपढ़, कमजोर या जिनसे लोग घृणा करते हैं वे बेचारे मारे जाते है, अदालतों में रंग-भेद भी काम करता है।

अमेरिकन सीनेट के सदस्य फिलिप हार्ट ने प्राणदंड हटाने के लिए मई १९६७ मे प्रस्ताव पेश किया था। ११ मई, ६७ के अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि कैलिफोर्निया में जॉन हेनरी फ्राई ने अदालत में स्वीकार कर लिया था कि शराब के नशे में उसने अपनी स्त्री को मार डाला। पर असली हत्यारे का पता एक साल बाद चला। उससे झूठा बयान दिलवाया गया था। अदालत से ऐसी भूलें बराबर होती रही हैं। सन् १८८९ से १९२७ के बीच में सिंग सिंग के जेल में ४०६ व्यक्तियों को मौत की सजा में मारा गया पर बाद में पुनः विचार करने पर पता चला कि उनमें से ५० निर्दोष थे। बेगुनाह मारे गये थे।"

मरने के बाद बेगुनाह

विलियम सीगल ने अपनी किताब में लिखा है कि अदालतों से बहुत ज्यादा असली हत्यारे अपनी चालाकी और कानून की चालाकी से छूट जाते हैं और समाज में वापस लौटकर और भी अत्याचार करते है। इनको छोड़ कर समाज पर अपराध की विपत्ति लादने की जिम्मेदारी अदालत की है।"

प्रो० मैकनमारा लिखते है कि अदालतें निश्चय बड़ी सावधानी बरतती है मौत की सजा सुनाने में। बेगुनाहों को दड देने की उनकी कोई नीयत नही होती। फिर भी आँकड़ों से साफ जाहिर है कि आज के जमाने में भी अदालतों से भूल हो सकती है। आखिर अपील पर जिनकी सजा रद्द हो जाती है या राष्ट्रपति या गवर्नर जिनकी सजा माफ कर देते हैं उससे भी यही साबित होता है कि अदालत से भूल होती है।

एडविन एम० बोर्स्चार्ड ने ६५ व्यक्तियों की कथा प्रकाशित की है जिन्हें मारे जाने के बाद निर्दोष पाया गया। डबल्यू० नार्टन ने टाम मूनी तथा वारेन बिल्गिस की अभागी घटना दी है जिनमें दोनों बेगुनाह थे पर अदालत की आज्ञा से प्राण से हाथ धो बैठे। हैरी गोल्डन ने "अभागी लड़की मर गयी" शीर्षक पुस्तक में एक अबोध स्त्री की अनुचित, अन्यायपूर्ण मृत्युदंड की करुण कहानी लिखी है।

राजनैतिक विरोधियों को भी केवल राजनैतिक मत-भेद के कारण फाँसी दी जाती है। क्या उसमें न्याय होता है। नाजी अपराधियो के जो मुकदमे हुए क्या वे अदालत के लिये शोभनीय हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैरल्ड जे० लास्की तथा ओटोकिरटीमर ने राजनैतिक प्राणदड को केवल "राजनैतिक विरोधियों को समाप्त करने का उपक्रम" कहा है।

क्षमा पर भी फाँसी

प्रो० मैकनमारा ने न्यू हैम्पशायर नगर की भयंकर जाड़े वाले दिसम्बर, १७६० की एक घटना लिखी है जिनमें कोतवाल टामस पैकर ने नवयुवती रूथब्ले को ज्यों ही फाँसी पर लटका दिया, गवर्नर साहब का दूत बेतहाशा घोड़ा दौड़ाता हुआ वहाँ पहुँचा—गवर्नर ने फाँसी की सजा माफ कर दी थी। लोग कहेंगे कि अब तो घोड़े पर सन्देश भेजने का जमाना चला गया। अभी हाल की बात है कि कैलिफोर्निया में एक अभागे को गैस के धुएँ से मारा जा रहा था और उसी समय टेलीफोन बार-बार चीख रहा था—गवर्नर ने "क्षमा" प्रदान कर दी थी पर जान लेने के जोश में जेल वाले टेलीफोन उठा तक नही रहे थे। जब जान लेकर टेलीफोन उठाया—गवर्नर का आदेश सुनायी पड़ा। बेकार था।

निरपराधी पर विपत्ति

सन् १९६८ की बात है रिओ डिजेनेरिओ में कालोज फास्तिनो २३ महीने तक अपनी स्त्री की हत्या के अपराध

में प्राण खोने की प्रतीक्षा करता रहा, एकाएक समाचार मिला कि उसकी स्त्री जीवित है, मरी ही नहीं, अगर समय पर यह बात न मालूम हो जाती तो वह तो समाप्त हो ही गया होता।

दक्षिण केरोलिना के रोगर डेडमौंड नामक एक युवक को मई १९६७ में अपनी स्त्री की हत्या के अपराध में १८ वर्ष की सख्त कैद की सजा हुई। एक साल बाद पता चला कि वह बेगुनाह था—असली अपराधी लिराम मार्टिन था। फ्लोरिडा के रोबर्ट वाटसन को हत्या करने के लिये सजा हुई पर एक पत्र सम्वाददाता ने असली अपराधी का पता लगा लिया तब वह छोड़ दिया गया। पेनसिलवानिया में १८ वर्ष से कम उम्र के तीन लड़कों को एक हत्या के लिये आजन्म कैद की सजा हुई। १६ साल सजा भोगने के बाद १३ फरवरी, १९६८ को एक जज ने फैसला दिया कि "हत्या की बात ही झूठी है। जिसकी जान लेने की बात थी, वह मारा ही नही गया।"

न्यूयार्क में पाल ए० फीफर को सन् १९५३ में एवर्ड-वेट्स की जान लेने के अपराध में सजा हुई पर सन् १९५४ में ही असली अपराधी जान फिलिप रोशे पकड़ा गया।

जून १९५६ में जेम्स फोस्टर को चार्ल्स ड्रेक की हत्या के लिये पकड़ा गया। ड्रेक की विधवा ने दो बार शिनाख्त किया कि फोस्टर ने, ही उसके पति की जान ली। उसे प्राणदंड की सजा मिली पर फाँसी पर लटकने के पहले ही असली अपराधी ने; जो एक रिटायर्ड पुलिस कर्मचारी था, अपना अपराध कबूल कर लिया था।

सन् १९५७ में कैलिफोर्निया ने जान रेविसगर को "घोर यातना देकर एक स्त्री के साथ बलात्कार करने के लिए" पकड़ा गया और शिनाख्त भी हो गयी। पर एक सप्ताह बाद ही असली अपराधी पकड़ा गया। उसी प्रदेश में जान फ्राई नामक व्यक्ति से पुलिस ने स्वीकार करा लिया था कि उसने स्त्री को मार डाला। उसे मृत्युदंड हुआ; पर मारे जाने के पहले ही असली अपराधी पकड़ लिया गया।

कोलम्बिया जिला में कार्ल्स बर्नस्टीन को एक हत्या के अपराध में फाँसी हुई। पर उनके मारे जाने के कुछ मिनट पहले गवर्नर का सन्देश मिला कि आजन्म का समय वास हो। पर दो साल बाद पुलिस को पता चल गया जर वह निरपराध है।

प्राण लेना बन्द हो

फ्रेंच राज्यक्रान्ति के दिनों में फ्रांस में किस रोज किस राजनैतिक व्यक्ति को "गिलोटिन" होगी—गला काटा जायगा, यह हमेशा अनिश्चित था। जनता की सनक का क्या ठिकाना। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के नेता राबस्पियर स्वय २७ जुलाई, १७९४ को गिरफ्तार कर लिये गये और दूसरे दिन ही सवेरे इनका गला काट दिया गया। इस महापुरुष ने स्वयं सन् १७९१ में फ्रांस की पार्लमेंट (असेम्बली) में प्राणदंड का विरोध करते हुए कहा था—

"न्याय की, बुद्धि की पुकार सुनिये,। ये दोनों पुकार-पुकार कर कहती हैं कि मनुष्य की बुद्धि कभी भी इतनी निश्चित नहीं मानी जा सकती कि वह दूसरे मनुष्य के विषय में सही फैसला कर सके। आप अपने को ऐसे अवसर से क्यों वंचित करते हैं कि अपनी भूल सुधार सकें? आप ऐसा अवसर क्यों आने देते हैं जब आपको पता चले कि आपने बेगुनाह को दंड दिया है और अब वह भूल सुधारी नहीं जा सकती।"

संयुक्त राज्य अमरीका के मेन नामक प्रदेश के गवर्नर एडमंड मस्की ने २० मार्च, १९६८ को कहा था—

"निर्दोष व्यक्ति को फाँसी पर लटकते देखकर ही हमने निश्चय किया कि इस दड को समाप्त करें।"

जिन देशों में पुलिस-विज्ञान बहुत उन्नत है, जहाँ अपराध तथा अपराधी की छानबीन के नये से नये साधन हैं यदि वहाँ पर निर्दोष व्यक्ति फाँसी पर लटक सकते हैं तो भारत ऐसे देश में जहाँ पुलिस के पास वैज्ञानिक साधन का अभाव है, जहाँ पुलिस अपने कर्त्तव्य को भी पूरी तरह से नहीं समझती या उतनी शिक्षित नहीं है या कम वेतन के कारण प्रशिक्षित व्यक्ति पुलिस में भर्ती नही होते वहाँ कितने बेगुनाह फाँसी के तख्ते पर लटक जाते होंगे, यह सोचकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आँखों में आँसू आ जाता है।

प्राणः
गयी
स

डिप्टी की डायरी (४)

एक अवकाशप्राप्त डिप्टी

रेल की यात्राओं के कुछ अनुभव

(१)

एक बार निर्वाचन के सिलसिले में मेरी एवं और बहुत से अफसरों की नियुक्ति तराई के एक कस्बे में कर दी गयी। मैं एक दिन पहिले चला और रास्ते में पड़नेवाले एक छोटे जंक्शन स्टेशन पर शिकार खेलने के लिए रुक गया, क्योंकि उस जंगली क्षेत्र में बहुत शिकार था। साथी लोगों से तय किया था कि वे रातवाली गाड़ी से चलें और आधी रात के बाद वहीं से मैं भी उनके साथ हो लूँगा।

जिस समय वह ट्रेन स्टेशन पर पहुंची तो सुबह होने में थोड़ी देर थी, पर पानी बरस रहा था। तेज न सही, पर भिगा देने के लिए पर्याप्त था। मैं छाता लिये जब प्लेटफार्म पर पहुँचा तो गाड़ी आ चुकी थी। वहाँ गाड़ी बहुत देर रुकती थी। इसलिए मैं निश्चित था। ट्रेन के पास एक जगह भीड़ देखकर मुझे कुतूहल हुआ और मैं उस ओर बढ़ा। देखा कि एक प्रथम श्रेणी के डिब्बे के सामने एक शीर्णकाय प्रौढ़ ए० एस० एम० (असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर) खड़ा है, और खिड़की से दो-तीन सज्जन धुआँधार अंग्रेजी और हिन्दी में उस मरियल रेलवे कर्मचारी पर अग्नितप्त भाषण उड़ेल रहे है। भाषण देनेवाले मेरे सहकर्मी लोग थे। खिड़की से ही एक सहकर्मी को सिर पर पट्टी बाँधे देखा।

"आप जानते हैं हम लोगों ने फर्स्ट क्लास सफर क्यों किया?" एक बोले "इसलिए कि आराम से सफर कर सकें! मगर इस डिब्बे की छत चू रही है, और क्या अब फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट में भी छाता लगाकर सफर किया करें?" दूसरे सज्जन ने टिप्पणी की।

"और तिस पर इस किस्म की शन्टिग?" गर्ज उठे पुलिस के डिप्टी, "जी० आर० पी० वाला कहाँ गया? उस ड्राइवर को लापरवाही से गाड़ी चलाने के जुर्म में गिरफ्तार क्यों न कर लिया जाय!"

"certainly! देखते हो! इन डिप्टी साहब के चोट आई इसी शन्टिग से!" अब मैं आगे बढ़ा और मैने उन चोटियल मित्र से पूछा "क्या बात है? बहुत चोट आई क्या?"

'हाँ' भिनभिनाकर बोले डिप्टी कलक्टर साहब "मैं पाखाने में था—शन्टिग से दरवाजा मेरे सिर से टकरा गया भाई"।....

—"क्या दरवाजा भीतर से बन्द न था?" मैने पूछा। पर उसका जवाब 'कोरस' में साथियों ने दिया, "दरवाजा बन्द हो चाहे न हो, पर क्या दरवाजा शन्टिग से उड़कर मुँह पर झपट्टा मारेगा?—यह शख्स समझता है अपनी लापरवाही की सीरियसनेस!"

उनके सम्मुख जो कृशकाय और परेशान व्यक्ति खड़ा था वह ड्राइवर न था, यह बात भी वे लोग भूल गये। एक जूनियर डिप्टी ट्रेनिंग ले रहे थे। वे बोल कम रहे थे पर मुद्रा ऐसी बनाये हुए थे मानों भयंकर काण्ड हो गया है, और एक-एक शब्द द्वारा भाव प्रकाश कर रहे थे—'हॉरिबिल' 'मोस्ट केयरलैस' 'स्कैण्डलस' आदि। इन शब्दों का ठेका वे इस अन्दाज से लगा रहे थे जैसे गाने के साथ तबलची तबले का ठेका लगाया करता है!

हर एक के धैर्य्य की सीमा होती है! वह शीर्णकाय, गरीब सहायक स्टेशन मास्टर भी जब उकता उठा तो वहाँसे 'अभी आया, सरकार!' कहकर चल दिया। उसने भर्त्सना के बीच कम से कम बीस बार माफी माँगी थी, पर कौन सुनता उसकी क्षमा-प्रार्थना? एक-एक बार डाँट-फटकार की झड़ी लगती और क्षण भर जहाँ अफसरान रुकते कि वह बेचारा एक बार करबद्ध क्षमा-याचना कर लेता।

—पर थोड़ी देर के बाद बन्धुवर्ग की शिकायत का जो हल रेलवे विभाग ने निकाला वह अत्यंत रोचक, उपयुक्त और मौलिक था। रेलवे के दो विशालकाय कर्मचारी वहाँ आ पहुँचे, और निहायत अदब के साथ बोले, "सरकार! आप साहबान थोड़ी देर के लिए 'वेटिंग रूम' में इन्तजार कर लें। आपका सामान, हम लोगों की हिफाजत में रहेगा। इस डिब्बे को 'कण्डम' 'Condemn' करके अलग कर दिया जायगा, और आप लोगों को दूसरे डिब्बे में जगह दी जायगी!"

—"Yes. Do it" (हाँ यही करो) कहकर सबसे पहिले बचकाना डिप्टी कूदकर उतरे, और उस पानी में यथासाध्य फुर्ती का प्रदर्शन करते हुए प्लेटफार्म की उस ओर

बढ़े जो वेटिंग रूम के विपरीत था। जब उन्हें यह बताया गया तो बोले, "मुझे मालूम है। मैं तो इधर का भी हाल-चाल ले रहा हूँ"—उन्हें उस प्लेटफार्म का हाल मालूम न था। यह वहाँ उनका पहिला आगमन था और प्लेटफार्म का कौन सा हिस्सा किधर है, यह न जानना कोई लज्जा की बात न थी। पर फिर भी अत्यन्त हास्यकर ढंग से उन्होंने बहाना बनाया कि वर्षासिक्त प्लेटफार्म के अँधेरे भाग का अन्धकार में निरीक्षण करने की आवश्यकता उन्होंने उस परिस्थिति में अनुभव की।

खैर, आगे-आगे वही डिप्टी जहाँ तक सम्भव है 'साहबी चाल' से झूमते हुए, सीटी बजाने का व्यर्थ प्रयास करते हुए प्रतीक्षालय की ओर बढ़े, और पीछे-पीछे अन्य हाकिम लोग पदोचित गाम्भीर्य बनाये हुए अपने-अपने पतलून की जेबों में हाथ डाले जनवासे की चाल से चले। बड़ा हाकिम दौड़ा नहीं करता। पानी धीरे-धीरे बरस रहा था, और यदि तेज चलते तो कम भीगते। मगर उन आत्मगरिमा से ओतप्रोत, अहंकारपूर्ण, सचेतन, अफ्सर मण्डली को कौन सुझाव देने का दुस्साहस करता ?

सामान रेलवे वाले 'हिफाजत' से हटा रहे थे। हमारे अर्दली उनकी निगरानी में लगे थे। अतः सिक्त-वसनधारी अधिकारी वर्ग अपनी झूठी शान की गर्मी से ही अपने कपड़ों को सुखाने का प्रयत्न करने लगे।

पर अभी दुर्गति बाकी थी। जब वह भींगा कपड़ा जिस्म पर ही सूखकर शरीर को एक अवांछित अधसूखे पसीने की अनुभूति दे रहा था उसी समय गाड़ी के चलने की घंटी हुई, और ये बड़े अफसर अपनी गजगति से जब ट्रेन के पास पहुँचे तो गाड़ी का "स्टार्टर" हो गया था और गाड़ी चलने ही वाली थी। डिब्बे को देखकर लोग हतबुद्धि से ठिठककर खड़े हो गये। एक तीसरा दर्जे का पुराना डिब्बा! नये मॉडल का आरामदेह तीसरा दर्जा का डिब्बा भी नहीं। बाबा आदम के जमाने का टुटहा, जीर्ण, तकलीफ-देह पिंजड़ानुमा तीसरे दर्जे का डिब्बा अपना उन्मुक्त द्वार और अन्दर भी धीमी रोशनी लिये मानों हम लोगों को ग्रास करने के लिए मुँह बाये खड़ा था। मानों कटे पर नमक छिड़का गया था। उस अत्यन्त बदशक्ल डिब्बे पर एक कागज का टुकड़ा चिपकाया गया था जिस पर लिखा था 'प्रथम श्रेणी में परिवर्तित"·········मानों काना बेटे का नाम पद्मलोचन।

लड़ने-झगड़ने अथवा किसी और डिब्बे में जाने का समय न था। लाचारी से उसी डिब्बे में घुसे। वह गाड़ी पैसेन्जर थी। प्रत्येक स्टेशन पर देर तक ठहरती थी। हर स्टेशन पर मुसाफिरों की बाढ़ हम लोगों पर बार-बार हल्ला बोल देती, कौन सुनता नक्कारखाने में तूती की आवाज ? गाड़ी में गठरी-मोटरी तथा बाल-बच्चों के साथ स्थान ग्रहण करने को व्याकुल देहातियों को यह समझाना कि वह बाह्य रूप से तीसरा दर्जा कानूनी रूप से प्रथम श्रेणी है—असम्भव, हास्यकर और बेकार था। एकाध बार के व्यर्थ प्रयास के बाद बैठने भर की जगह को बनाये रहने के कठिन कार्य में हम सब लगे, और हर एक स्टेशन पर यात्रियों के प्रबल आक्रमण का धक्का सँभालते हुए जब अपने स्थान पर पहुँचे तो किसी में दम बाकी न था, और उस सहायक स्टेशन मास्टर को अकारण गाली देने के पाप का पूरा प्रायश्चित्त हम सब कर चुके थे।

(२)

वापसी के समय मैं अकेले लौटा क्योंकि काम समाप्त होने के बाद मैं घड़ियाल का शिकार खेलने चला गया था, और मित्रवर्ग लौट गये थे। संयोग से मेरे साथ मेरा भतीजा भी था। सात या आठ वर्ष का बालक था और जिन्दा जानवर जंगल में देखने के लिए आया था। हिरन वगैरह देख चुका था। अब घर वापिस जा रहा था। हम दोनों ने स्टेशन पहुँच कर जैसे ही टिकट लिया कि गाड़ी आ गयी। स्थानीय थाने के दारोगाजी, विशालाकार व्यक्ति थे। लम्बाई एवं चौड़ाई दोनों में वे अतुलनीय थे। लम्बाई की तुलना में चौड़ाई अधिक होने के कारण वे बहुत मोटे लगते थे। पर शरीर विशाल होने पर भी उनकी चुस्ती में कमी न थी, और इस प्रकार फुर्ती के साथ वे काम करते थे कि लोग आश्चर्य्यचकित हो जाते थे। वे एक अत्यन्त योग्य पुलिस अफसर थे। मैं जब अपने भतीजे को लेकर स्टेशन चला तो साथ और कोई न था क्योंकि चपरासी को मैंने कागजात के साथ सदर भेज दिया था। सरकारी काम छोड़कर अपने व्यक्तिगत काम के लिए उसे रोक रखना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ था। इसीलिए मैंने अपनी इस यात्रा की सूचना दरोगाजी को भी न दी थी।

गाड़ी में प्रथम श्रेणी का एक ही डब्बा था। उसीमें चचा भतीजे दोनों जा घुसे और देखा कि हमारे अतिरिक्त

एक और सहयात्री है। गर्मी का जमाना था। पानी बरस-कर रुक जाने के कारण उमस थी। तराई की हवा में नमी की अधिकता के कारण, वहाँ की उमस बड़ी भयंकर होती है। डिब्बे के दोनों पंखे बिगड़े थे। देखकर बड़ी ही निराशा हुई। इतनी लम्बी सफर बिला पंखे के करना—विशेष कर बच्चे को लेकर—मैं समझ गया कि रास्ते भर 'चाचा, पानी पिऊँगा', 'चाचा, गर्मी लग रही है', "चाचा, बरफ खरीद दो—" आदि उलाहनों और फर्माइशों का सामना करना होगा।

पर सहयात्रीजी ने जो काण्ड आरम्भ किया उसे देखकर मै घबरा गया। देखा कि उनका नौकर एक बाल्टी-वाली अँगीठी लाकर हमारे और उनके बर्थ के बीच के संकीर्ण स्थान मे रख गया। उस अँगीठी के पत्थर के कोयले तब तक जले नही थे। इसलिए उनसे धुआँ भी निकल रहा था। नौकर ने चूल्हे के पास पीसा हुआ मसाला, कटी हुई सब्जी, कढाई आदि सामग्री रख दी। उसके मालिक शायद अपने हाथ से भोजन बनाने के अभ्यस्त थे। जाड़े का मौसम होता तो मैं शायद इसे सहन भी कर लेता, पर अँगीठी के धुएँ ने मेरा धैर्य समाप्त कर दिया। मैंने दुर्बल स्वर मे उनसे उलाहना दिया, "क्षमा कीजियेगा अगर इस अँगीठी को दरवाजे के पास रखकर द्वार खोल दें तो धुआँ भी निकल जाय, और ठीक से वह जल भी जाय।"

—"धन्यवाद! पर फर्श पर बैठकर मुझसे रसोई नही बन सकती!" बोले सहयात्री।

—"पर इस अँगीठी से मुझे तो बड़ी असुविधा होगी।"

—"तो किसी और डिब्बे मे चले जाइए—" बोले अभद्र सहयात्री जी।

—"दुर्भाग्यवश और कोई प्रथम श्रेणी का डिब्बा नही है—नही तो मैं आपको तकलीफ न देता, खुद ही चला जाता।" मैने कुछ विरक्त होकर कहा।

—"सुनिये जनाब", बोले सहयात्री महोदय,' 'डिब्बे मे तीन बर्थ है।"

—"दो हमारे आपके और बेंड़े वाला बर्थ बच्चे का! मैं अपने हिस्से मे जो चाहे सो करूँ, आपसे मतलब?"

उन सज्जन ने तो 'जो चाहूँ सो करूँ' कहकर चालू-भाषा मे मल-मूत्रादि त्याग करने की मिसाल दी थी। मैंने भी तौलकर जवाब दिया, "जनाब, मैंने प्रथम श्रेणी का टिकट इसलिए खरीदा था कि आराम से सफर कर सकूँगा—इस तरह नरक भोग करने के लिए नही!"

मेरी बातों पर ध्यान न देकर उन्होंने अँगीठी पर कढाई चढ़ा दी और फिर एक अलूमिनियम की तश्तरी को पंखे की तरह आन्दोलित करके उससे जो हवा करना शुरु किया तो डिब्बा धुएँ से भर उठा। मैने उन्हे अँगीठी जरा हटा लेने को कहा तो बोले, "एक इंच नही हटेगी—जो कुछ करते बने करो।"

उनका 'आप' से 'तुम' पर उतर आना और दुर्योधन का सा मनोभाव देखकर मुझे बहुत बुरा लगा। मैं डिब्बे से उतर कर गार्ड के पास पहुँचा, और उसे कुल हाल कह सुनाया। वह मुझे जानता था। फौरन मुझे आश्वासन देकर बोला, "आइये, चलकर बताइये, मै उन्हें निकाल बाहर करता हूँ। क्या कम्पार्टमेण्ट उनके घर का चौका है।"

मै भी सीना फुलाये गार्डरूपी "हौवा" को लेकर उस सहयात्रीरूपी दानव का संहार करने को बढा। पर जैसे ही उस डिब्बे के नजदीक पहुँचा, और थोडी दूर से गार्ड साहब को सहयात्री का चेहरा दिखाई दिया कि उसके हाथ-पाँव ढीले पड़ गये, और मेरे शत्रु विताड़न की सारी योजना कपूर की तरह उड़ गयी। वह किंकर्तव्यविमूढ स्वर मे बोला—"मुझे क्षमा करें सरकार! वे तो मेरे ही ए० टी० एस० है। आप होंगे नाराज तो रिपोर्ट कर देंगे। अधिक से अधिक मेरी बदली हो जायगी। किंतु यदि वे बिगड गये तो मेरी नौकरी पर बीत सकती है।" कहकर वह दूर से ही उल्टे पाँव लौट गये। अब तो मै बड़े धर्मसंकट में पड़ा। अब किस मुँह से चलूँ? मैंने मन ही मन तय कर लिया कि इस गाड़ी से न जाकर दूसरी से जाऊँगा।

इसी समय अलिफ लैला के चिराग वाले जिन्द की तरह हमारे स्थानीय दरोगाजी का दैत्याकार स्वरूप दिखाई पड़ा। "गुस्ताखी मुआफ हो सरकार! मुझे पता ही नही चला कि सरकार आये है। मैंने तो सोचा था टहलने जा रहे होंगे। हूजूर कुछ परेशान दीख रहे है।"

मैंने दरोगाजी को परेशानी का कारण बताया। बोले, "अभी चलकर साले को दो लात—"

मै सहमा। बोला "नही वे शरीफ आदमी है, उनके साथ शराफत का वर्त्ताव होना चाहिए।"

—"जरूर, जरूर! सरकार माफ करें—दरोगा की नौकरी में गाली की आदत पड़ ही जाती है। जैसे बनारस में

रह कर भँग व पान की आदत, या बाँदा-फतेहपुर में रहकर 'बटुआ' रखने की लत !"

हम दोनों डिब्बे के सामने पहुँचे। भतीजेराम रुँआसे से बैठे थे। पसीने से तरबतर, धुएँ से परेशान, तिस पर चाचा अन्तर्धान, और एक अत्यन्त रूखे आदमी का सहचर्य बड़े-बड़े पस्त हो जाते—फिर वह तो बेचारा बच्चा था। दरोगा ने डिब्बे में सवार होकर उस भोजन बनाने वाले अफसर से बड़े ही रूखे शब्दों में पूछा, "यह सब क्या हो रहा है ?" बड़े मुश्किल से 'बे' शब्द को उन्होंने मुँह से निकलने से रोका !

अचानक यमदूत से पुलिस के दरोगा को देखकर और उसकी भाषा और प्रश्न को सुनकर उन रेलवे के विधाता का चेहरा सूख सा गया, पर फिर भी बोले—"आप तो देख ही रहे हैं !"

—"सो तो देख ही रहा हूँ ! अभी तेरा तड़ी-तोमड़ा उठा कर बाहर फेंक रहा हूँ और—"

—"जरा जुबान सँभालकर बोलना मुझसे" वे जरा अँकड़े ! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई थी कि थानेदार से सहयात्री का परिचय नहीं बताया था। पर अब तो समय न था। थानेदार साहब सुर्ख हो उठे। शेर को उसकी माँद में घुसकर छेड़ता है यह गीदड़ !

—"अबे लाट साहब की औलाद। अभी तुझे मैं हवालात में बन्द करके तमीज सिखाता हूँ—मुझसे अकड़ता है !—"देखिये, कानून-कायेदे की बात कीजिए—"

—तब तक मैंने आगे बढ़कर कहा, "दरोगाजी, इनसे शराफत से बोलिए, ये ए० टी० एस० साहब हैं !"

—"गुस्ताखी माफ हो, ए० टी० एस० साहब, अपना चूल्हा-चौका लेकर नीचे प्लेटफार्म पर आइए—हम आप कानून समझें। साहब बहादुर को जाने दीजिए !"

दरोगा के श्रीमुख-निःसृत "साहब बहादुर" ने तो अमोघ अस्त्र का काम किया।

"अब तक आपने क्यों नहीं कहा था। अबे ओ पल्टू ! जल्दी चूल्हा ले जा। यहाँ क्यों रख गया बदमाश !"

नौकर को गुहारा, और फिर मेरी ओर मुड़कर बोले, "माफ करिएगा डिप्टी साहब ! हमको क्या मालूम कि इलाके के हाकिम जा रहे हैं ? अरे भई ! हम तो रेलवे अफसर हैं, आपको आराम देना ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य है।"

नौकर तुरन्त सब कुछ हटा ले गया। मुझे दो कारणों से शर्मिन्दगी मालूम हो रही थी। एक तो दरोगाजी ने उनसे उस प्रकार का वर्त्ताव किया था, और दूसरे एक भूखे व्यक्ति के भोजन मे मैने बाधा डाली थी। मैंने उनसे कहा भी कि दरवाजे के पास चूल्हा रखकर वे अपना भोजन बना लें, पर वे राजी नहीं हुए, बोले "अजी ! क्या होता है एक समय न खाने से। हम उस देश के निवासी हैं जहाँ के अधिकतर लोगों को दिन में सिर्फ एक ही बार खाना नसीब होता है। इस गर्मी में चूल्हा कमरे को और भी गर्म कर देगा। मैं अगले जंकशन पर पहुँचते ही पंखा ठीक करवा दूँगा—तब तक के लिए मजबूर हूँ।"

थानेदार साहब ने हल्के से मुस्कराकर मुझे सैल्यूट किया, और कटे पर नमक छिड़कने की तरह उन्हें भी सैल्यूट करके चले गये। मन ही मन मुझे दरोगाजी का एहसान अनुभव हुआ। बिला इत्तिला के चुपचाप मै स्टेशन आ गया था। मै नहीं चाहता था कि लोग मुझे विदा करने स्टेशन पर इकट्ठे हों, पर इस थानेदार की सूझबूझ और सतर्कता की दाद देनी पड़ी कि वह तुरन्त मेरे पीछे आ पहुँचे। मोटापा उसमें तनिक भी आलस नहीं ला सका था, और वह किसी भी छरहरे पुलिस अफसर से अधिक मेहनत करता था।

मैंने भतीजे को खिलाने के बहाने टोकरी में से फल, बिस्कुट आदि निकाले। सहयात्री ने बिस्कुट तो नहीं ली, परन्तु फल जरूर खाये और मुझे सन्तोष हुआ कि उन्हें अपना दोपहर का भोजन त्यागकर कोरा उपवास नहीं करना पड़ा। उनकाकुछ तो नाश्ता हो ही गया। इसके बाद हमारी उनकी मित्रता हो गयी, और जब अगले जंक्शन पर उतर कर उन्होंने मेरे डिब्बे का पंखा दुरुस्त करवाकर विदा माँगी तो उस विदाई से मुझे दुःख भी हुआ और मैंने कंठित स्वर में बार-बार उनसे माफी माँगी ! वे भी क्षमा माँगते रहे।..........

मैंने यह अनुभव किया है कि सरकारी नौकरी में अपनी शक्ति का अहंकार लोगों में हो जाता है और अनजाने में ही लोग दुर्विनीत हो उठते है। सरकारी पदाधिकारियों में कुछ देवतुल्य लोग भी है, पर वे ऐसे वातावरण में रहते है कि कभी-कभी वे भी कुछ हद तक शिष्ट व्यवहार करने से चूक जाते हैं।

मैं सोचता हूँ कि उस दिन मैंने भी तो उन्हीं सहयात्री की तरह अपने पद का दुरुपयोग किया था। क्या हर्ज था यदि मैं पास के किसी इंटर क्लास या थर्ड क्लास में चला जाता। मिथ्या आडम्बर और झूठे दम्भ के कारण कितनी अशान्ति हम लोग मोल लिया करते हैं इसका हिसाब-किताब नहीं है, और यदि हम लोग कभी-कभी अपने आचरण पर ठंडे दिल से विचार करें तो हमें पता चलेगा कि दूसरों को ठीक करने से पहिले हमें अपने आपको ठीक करने की ही अधिक आवश्यकता है।

पेट, पेट और पेट

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास

पेट अपने आपमें एक बहुत बड़ा पचड़ा है। संसार के न जाने कितने प्रपंच, इस पेट के कारण, आदमी को सहन करने पड़ते हैं। संभवतः संसार के सर्वाधिक प्रपंच पेट के कारण ही हैं।

पेट के लिए आदमी क्या नहीं करता! पेट के लिए पेट से पेट टकराता है, पेट को पेट काटता है और दूसरों के पेट पर लात मार कर किसी के पेट का 'पेटा' भारी-भरकम हो जाता है। अपने पेट के लिये आदमी दूसरों के पेट पर लात मारने में भी संकोच नहीं करता।

पेट पालने के लिये आदमी ग़ैरत को चाटता है; गुनाहों को स्वीकारता और जलालत में जीता है। चोर पेट के लिये चोरी करता है, साहूकार पेट के नाम पर बटोरता है और शासन अपनी प्रजा के पेट की चिन्ता में पड़ोसी देश की जमीन धर दबाता है। साधु हो या असाधु, पेट सबके साथ लगा है। एक भूखे रहकर भजन नही कर सकता, और दूसरा भूख के नाम पर ऐसा कोई पाप नहीं, जो न करता हो। सबकी अपनी-अपनी लाचारी है क्योंकि सबका अपना अपना पेट है। सच पूछिये तो विधाता की सृष्टि की विविधता इस पेट के कारण ही है। पेट न होता तो शायद सृष्टि में वह सब कुछ न होता जो आज विविध रूप धारण कर अनेकानेक प्रकार से संसार के रंगमंच पर घटित हो रहा है।

भारतीय मनीषियों ने जिसे सिद्धि-सदन, विद्या-वारिधि, मुद मंगलदाता माना है, वह लम्बोदर होने के कारण ही प्रथम पूजनीय ठहराया गया है। विघ्नों का विनाश करने के लिए उसकी सर्वप्रथम पूजा करने का अर्थ ही यही है कि जिसने लम्बोदर की पूजा कर ली अर्थात् पेट के भरण-पोषण का सरंजाम जुटा लिया, उसके विघ्नों का नाश हो जाता है। विद्या, आनंद और सिद्धियाँ उसके करतल-गत होती है।

रहीम ने मनुष्य की परेशानियों की जड़ को पहचाना। उसकी अनन्त भूख को पेट की सारी बदनामी का कारण समझकर उसे समझाया था कि

रहिन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाये रहै, तो सौं को अनखाय?

मगर पेट लाख समझाने के बाद भी 'अनखाया' नहीं रह सकता और इसीलिए सब उसे 'खाते' है याने पेट पेट के बीच निरंतर देवासुर-संग्राम चलता रहता है। परिणाम-स्वरूप कभी सुर-संस्कृति अपनी सुवास की छटा बिखेरने लगती है और कभी आसुरी-सभ्यता वातावरण को विषाक्त करती रहती है। वस्तुतः संसार के संपूर्ण वाद-विवाद पेट की परिधि के आसपास चक्कर काटते रहते हैं।

पेट केन्द्र-विन्दु है, भूख अर्धव्यास है और संसार का सारा खटराग-अनुराग इसका वृत्त। इसकी परिधि में सब कुछ समा जाता है। जगत् में जो धुकधुकी है वह पेट के कारण। धक्का-मुक्की का कारण भी पेट ही है, और जमाने की जो धज्जियाँ बिखर रही है वह भी पेट के कारण। सच पूछिए तो पेट ही वह धुरी है जिसके आस-पास विश्व की संपूर्ण गतिविधियाँ संघटित-विघटित होती रहती है।

विज्ञों ने बड़े विश्वास के साथ यह विचार व्यक्त किया है कि पेट भरने के साधनों पर जिनका प्रभुत्व होता है वे ही मनुष्य की इच्छा-शक्ति के भी स्वामी होते है। अर्थात् आदमी जिसका आटा खाता है, उसीके गीत गाता है और उसकी अन्तरात्मा की आवाज भी आटा खिलाने वाले के अंकुश का अनुशासन मानती है। मनुष्य को इस असहाय स्थिति में ले जाने वाला पेट है। आटे की चिन्ता अच्छे-अच्छों को आटे-दाल का भाव याद करा देती है और आदमी की सारी अकड़ पेट की आग में पिघलकर पानी माँगने लगती है।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की *गौरव-गाथा* अथवा कलुष-कथा पेट पर ही आधारित है। भूखा पेट व्यक्ति को दीन, समाज को हीन, और राष्ट्र को अधीन बनाता है। भरा पेट व्यक्ति को दीनता से, समाज को हीनता से और राष्ट्र को अधीनता से दूर रखता है। विकास और विनाश के मार्ग पेट से ही प्रारभ होते है। मुख का मुखिया मिल

जावे तो वितरण-विवेक से विकास का मार्ग प्रशस्त हो उठता है—राष्ट्र की शिराओं में नवीन रक्त का संचार होता रहता है और समता का स-र-ग-म समाज को सर्वतो-मुखी प्रतिभा से सम्पन्न करता है। पेटार्थी के हाथ में अगर राष्ट्र की बागडोर आ गयी तो समझ लीजिए कि सर्वनाश सुनिश्चित है। जहाँ पेट, पेट की पीड़ा को पहचानता है और रन्तिदेव की परंपरा का अनुसरण करता है वहाँ त्याग, नीति और बंधुत्व के बीज बंजर जमीन में नहीं पड़ते। परन्तु जहाँ पेट, दूसरों के पेट को काटकर अपने पेट का पेटा बढ़ाता है वहाँ असहिष्णुता, अनीति और वैमनस्य 'रक्तबीज' की परंपरा का पोषण करते हैं। इसका उपचार केवल क्रांति-कालिमा की लपलपाती जिह्वा से ही संभव है।

पेट का पामराचार सदैव से ही समझदारों के सिर का दर्द रहा है। वे स्वयं से पूछते रहे हैं कि आखिर यह पेट है क्या? चूल्हा है, भट्टी है या भाड़ है कि इनमें जो भी झोंका जाता है वही स्वाहा हो जाता है? यह थल है, वापी है या सागर कि जितना भी जल पड़ता है सभी समा जाता है? इसे दैत्य कहा जावे अपना भूत, प्रेत, या राक्षस क्योंकि उसके सिर पर 'खाँऊँ-खाँऊँ' की ही सनक सागर है! वह कौन सा पाप था जिसने आदमी के पल्ले यह पेट बँधवा दिया? सुन्दरदास ने प्रभु से यही जानने के लिए तो लिखा है—

किधौं पेट चूल्हो, कीधौं भाठि, किधौं भाड़ आहि,
जोइ कछु झोंकिये सो सबै जरि जातु है।
किधौं पेट थल, किधौं वापि, किधौं सागर है,
जेतो जल परै ते तो सकल समातु है।
किधौं पेट दैत, किधौं भूत प्रेत राच्छस है,
खांऊं-खाऊँ करै कछु नेक न अघातु है।
सुन्दर कहत प्रभु कौन पाप लायो पेट,
जब ही जनम भयो तब ही सों खातु है॥

यह पेट खाता ही रहता तो गनीमत थी! परन्तु यह खाता ही नहीं, खाने की व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर तिजोरी भी भरता है और तिजारत भी करता है। तिजोरी-तिजारत की सुरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में भी लीन है, और दो-दो महायुद्धों की भीषण ज्वाला, इसकी जठराग्नि को शांत नहीं कर पायी। शीतयुद्ध के शीतल छींटे इसे पुनः भभका रहे हैं!

काश, इस पामर पेट के गले में कोई यह कबीर-कंठी लटका पाता—

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाय।
ना मैं ही भूखा रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

सिर दर्द का इससे अच्छा अन्य समाजवादी नुस्खा है क्या?

निर्गंधित जले कपूर

श्रीराजेन्द्र मिलन

कल तक भारत मेरा था सुख-स्वप्नों से भरपूर
किंतु आज लगता ऐसा निर्गंधित जले कपूर
स्वर्ग हो गया जैसा धू-धू करता हुआ स्मशान
क्यों बौना होता जाता है मेरा देश महान?
तन-मन-धन बलिदान करूँ मैं, तन-मन-धन बलिदान।

सदियों पहले उड़ा चुके हम पुष्पक महा विमान
अग्नि बाण छोड़े, जल-थल-नभ पल में बने मसान
अमृत-संजीवनी कि मुर्दा नव जोवन पा जाये
चन्द्रलोक-मंगल क्या, राजा इन्द्र तलक घबराये
किंतु हो गये गुण सब अपने आज स्वप्न-से चूर

मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारों पर जड़े पड़े हैं ताले
मदिरालय-फिल्मों के जमघट जाते नहीं सम्हाले
बढ़ती आबादी दिन दूनी, उपज निपट बंध्या-सी
नहीं तेज रोशनी, जवानी लगती है संध्या-सी
भ्रष्टाचार-जखीरेबाजी पनपी खूब जरूर।

भागीरथ फिर गंगा लायें मरुथल भी हरियाए
हीरा-मोती की जोड़ी हो खड़ी फसल मुस्काए
धुआँ उगलती रहें चिमनियाँ झर-झर कंचन बरसे
रोटी-रोजी मिले सभी को, जन-जन का जी हरषे
छैला रसिया तान उड़ावें आँखों भरे सरूर।

अथ सात की कथा

श्री सौमेन्द्रनाथ घोष 'श्रीनाथ'

जाने कब बचपन में पढा था कि समुद्र सात होते है। उस समय "सात समुन्दर" का अर्थ भी बहुत सहज था। पर बड़े होने के बाद यह जाना कि सात समुद्र की कल्पना केवल इसी देश की सम्पत्ति नही हे। संसार की अन्य बहुत जगहों की कथाओं और उपकथाओं मे भी सात समुद्र वर्त्तमान है। केवल सात समुद्र ही नही, वरन् साथ ही उसके बगल में सात आकाश ने भी जगह बना ली है। सप्त स्वर्ग की बात केवल हमारे पुराणों में ही नही है, वरन् संसार के बहुत से देशो की कथाओं, पुराणों एवं लोककथाओं में भी विद्यमान है। वेद से ज्ञात होता है कि आर्य पहले-पहल जिस जगह में आ बसे थे उसका नाम है सप्तसिन्धु। पण्डितों के अनुसार सप्तसिन्धु का अर्थ मूल सिन्धु नदी एवं सिन्धु की पाँच सहायक नदियों तथा सरस्वती या विकल्प में अक्षु नदी से हे। किन्तु "सप्तसिन्धु" को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से न देखकर कल्पना की सात नदियों के रूप मे देखना ही अच्छा है।

पुराणों मे कहा गया है कि यह पृथ्वी सात द्वीपों द्वारा गठित–सप्तद्वीपा वसुमती–है। पुराणकथित सात द्वीप है—जम्बु, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शक एवं पुष्कर। पुराणकारों के मतानुसार ये द्वीप क्रमशः लवण, इक्षु, सुरा, सर्प, दधि, दुग्ध एवं जल—इन सात समुद्रों द्वारा समान रूप से वेष्ठित है। केवल सात द्वीप एवं सात सागर ही नही, पुराणों के अनुसार प्रकृत पर्वतो की संख्या भी सात है: मेरु, हिमवान, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, और शृगी ये सात पहाड़ इन सात द्वीपों के केन्द्र है। जम्बु द्वीप को भी पुराणकारों ने सात भाग में विभाजित किया है। इन अंशों को "वर्ष" कहा जाता है। "वर्ष" सात है—इलावृत, भारत, किम्पुरुस, हरि, रम्यक, हिरण्मय और उत्तर कुरु।

अब देख रहे है कि पुराणों मे भी सात की ही जय जयकार है। इसीलिए कौतूहल होता है कि सात संख्यक वस्तुओं के इस तरह के प्राधान्य का क्या कारण है! संसार की सभी जातियों के अनुसार ही 'वार' की संख्या सात है। प्राचीन ग्रीक, मिस्रीय, भारतीय, चैनिक सभी प्राचीन देशो का सात दिन का सप्ताह होता है। और भी आश्चर्य की बात है कि सातों दिनों के नाम के मामले मे भी सभी जातिया एकमत है। ससार के सब देशो मे ही सप्ताह का प्रारम्भ सोमवार से होता है जो दिन चाँद के नाम पर रखा गया है। सोम शब्द का अर्थ चन्द्रमा है, 'मन्डे' शब्द भी 'मून' या 'चाँद' से ही आया है। जर्मन भाषा मे उस दिन को "मन टैग" कहा जाता है, फ्रेंच भाषा मे "लूँजि"। इन सबका अर्थ 'चाँद का दिन' है।

वर्त्तमान में जिस पद्धति से महीने के हिसाब से साल को बाँटा जाता है, उसमें यथेष्ट असंगति है, क्योंकि हर महीना समसंख्यक दिनों को लेकर गठित नही होता। पर दूसरी ओर, सप्ताह के हिसाब से साल का विभाग अति स्वाभाविक है। यह मनुष्य को सर खपा कर ठीक नही करना पड़ा है, मनुष्य ने मानों उसकी सहजता स्वभाव वश ही मान ली हे कि सात दिन मे एक टर्म पूरा होना चाहिए।

सात का प्रभाव इतने मे ही सीमित नही है। संगीत के स्वर ग्राम भी सात है। भारतीय–सा–रे–गा–मा–पा–धा–नि, पाश्चात्य–डो–रे–मि–का–मा–ला–सी। इन सात मूलस्वरों से ही अन्य स्वरों का उद्भव हुआ हे। रङ्ग के क्षेत्र में भी वही बात है। सूर्य की किरणें सात रङ्गों से बनी है। इन्ही सात रङ्गों के संयोग से हमे प्रकाश मिलता है। प्राचीनकाल के दार्शनिकों की धारणा थी कि सात मूल उपादान से जगत् का सब कुछ बना हे। उदाहरणस्वरूप ग्रीक दार्शनिक एम्पिडोक्लेश का नाम लिया जा सकता है।

बाईबिल मे लिखा हे कि ईश्वर ने सात दिनों मे जगत की सृष्टि की थी।

बाइबिल मे और भी है कि ईश्वर ने जगत मे सात पवित्र आत्माओं को भेजा था। अपने यहाँ भी सप्तर्षि माने ही जाते हैं। प्राचीन चाल्दीय (Chaldians) लोगों का विश्वास कि सात देवदूत सदा ही जगत् की निगरानी

कर रहे हैं। हिन्दू ज्योतिष के अनुसार प्रकृत ग्रहों की संख्या सात है, राहु और केतु को हिन्दू ज्योतिषीगण पूर्ण ग्रह नहीं मानते हैं।

सात का स्थान अन्य दूसरी संख्याओं की तुलना में गुरुत्वपूर्ण है। विवाह को "सात-फेरा बंधन" कहा जाता है क्योंकि उसमें वर-वधू अग्नि की साथ भाँवरें (परिक्रमाएँ) करते है।

कोई खूब भयानक गंडगोल की बात होने पर हम कहते है कि "मानों सातों काण्ड रामायण" हो गयी। असल रामायण ६ काण्डों में रची गयी थी, पर सात के प्रति मनुष्य के मनस्तात्विक आकर्षण के फलस्वरूप ६ काण्ड को बढ़ाकर सात काण्ड करने पड़े थे। रामायण में है कि "वाली" को मारने के पहले सुग्रीव को अपनी शक्ति दर्शाने के लिए राम ने एक ही तीर से सात ताड़ के वृक्षों को भेद डाला था। ताड़ के वृक्ष छः भी हो सकते थे और आठ भी हो सकते थे, पर सात के महत्त्व के कारण सात ही रखने पड़े, क्योंकि सात साधारण होने पर भी विशिष्ट है। कुरुक्षेत्र के युद्ध मे अधिकतर वीर तीर या गदा के आघात सप्तधा हुए थे; षष्ठधा, अष्टधा, या नवधा नहीं हुए थे।

पहले ही कह आया हूँ कि पुराणकारों के अनुसार लोक सात है। भुः, भुवः, स्वः, जन, महः, तय, सत्य। स्वर्ग की तरह पाताल भी सात है, जैसे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल एवं पाताल। पुराण के मतानुसार मातृका देवी की संख्या भी सात हैं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी कुमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा।

महीने की सात तारीख भी बहुत से विख्यात व्यक्तियों का जन्मदिन है। रानी प्रथम एलिजाबेथ सात सितम्बर को जन्मी थीं। उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स जन्मे थे सात फरवरी को, कवि वर्डसवर्थ जन्मे थे सात अप्रैल को, कवि ब्राऊनिंग और रवीन्द्रनाथ का जन्मदिन है सात मई।

अरी ! प्रकृति

श्री नित्यनाथ तिवारी

अरी प्रकृति तू मुझे छिपा ले अपनी बाहों में कस।
चिंताओं से मुक्त हो सकूँ, सो लूँ दो क्षण भर को,
जीवन का सौन्दर्य जगा लूँ मैं भी अपने मन में,
ज्योत्स्नावाली रातों में मैं भी स्वप्नों में डूबूँ॥

विधु की किरणें प्रीति जगाएँ, मुझसे हिलमिल खेलें,
चपल छटा मुझपर छा जाए श्री-सुषमा हरियाली
मैं भी किन्नरियों-परियों की चितवन में खो जाऊँ
और उन्हींकी प्रणति बिखेरे मुझपर ऊषा लाली॥

मुझमें इच्छा होती है बहुधा मैं, सुमनों का रस पीकर
नूपुर की रुनझुन में अपने चंचल पंख पसारूँ
पता नहीं कब कौन-कौन सी कुत्साएं आ घेरें ?
इसीलिये मैं आज किसीके सन्मुख जाकर हारूँ॥

सच कहता हूँ, कभी-कभी इतना उन्मन रहता हूँ,
मुझसे मेरी व्यथा न रुकती, सघन तमस छा जाता,
कह डालूँ, कहने में मुझको हिचक न बिल्कुल लगती
जीवन की इस तरुणाई में मुझसे रहा न जाता॥

हमारे मुहाविरों और कहावतों में भी 'सात' का महत्त्व है। दुर्लभ वस्तु "सात तालों या सात कोठों में बन्द" कही जाती है। किसी-किसी के 'सात खून भी माफ, होते है।

सात की जय-जयकार सब जगह है, पर मेरी तरह जो (एक बँगला कहावत के अनुसार) 'सात हाट की कानी कौड़ी' है, उनकी बात अलग है।

'छ' और 'ल' का पत्र

श्री रमेश गुप्ता 'चातक

प्रिय पाठकवृन्द !

हम दोनों का संयुक्त प्रणाम !

पहली बार हम दो अक्षर आपको आपबीती सुनाने जा रहे हैं। यह सही है कि हमने आपसे 'छल' किया ! यह भी सही है कि आपके पाँवों को 'छाले' भी हमने दिये हैं। लेकिन क्या करें, हम तो सिर्फ इतना जानते हैं कि 'छिमा बड़न को चाहिये······।' हम दोनों की जोड़ी के क्या कहने! जिस प्रकार राम-सीता या सीताराम में कोई भेद नही, उसी प्रकार हम भी भेद-रहित है। वो तो हम ही है जिन्होंने मन को 'लछमन' बना दिया। हमारे ही कारण सीताजी 'छली' गई ! सूर्पणखा की 'लच्छेदार' बातों में भी हमारा ही हिस्सा है ! हमारा सहारा लिये बिना अंजनिसुत हनुमान 'छलाँग' लगा ही नहीं सकते थे। हम आपके सामने अपना अपराध भी स्वीकारते है; हमारे ही कारण एक धोबी ने मर्यादा पुरुषोत्तम पर 'लांछन' लगाया। यह तो हुई हमारी त्रेता कालीन राम-चर्चा ! द्वापर में भी हम छाये रहे ! कृष्ण को 'छलिया' स्वरूप किसने दिया ? कृष्ण-वियोग में राधा और गोपियों की आँख किसने 'छलछलाई' ? हमने ! कंस के 'छल-छंद' भी हम पर आश्रित थे !— कुसुम-ऋतु के आगमन पर पीपल के 'ललछौहे' ताँबिये पत्तों का महत्त्व और उनका आंतरिक सौंदर्य हमसे ही तो है। श्रृंगार काव्य-परम्परा में जो नायक-नायिका पान-दान प्रक्रिया होती है, उस पान का सारा मजा 'छाल्या' या 'छाली' में ही निहित हैं; और प्रथम भेंट पर 'छल्ला' निशानी रूप में दिया ही जाता है ! आपने हमारी मस्ती अभी कहाँ देखी है ?

हम भी इच्छा रूप देव है। किसी भी मेले में चले जाइये, हम आपको 'छैले' बने हुए मिलेंगे या फिर चाटवाले की दुकान पर आपके मुँह का जायका बदलने के लिये 'छोले' का रूप धारण कर लेंगे। जब तक हम अनुमति न दें, कोई भी साक़ी किसी भी जाम को 'छलका' नहीं सकती!

बच्चों की 'उछलकूद' के बीच भी हम ही है! संन्यासियों की 'मृगछाला' निर्माण बिना हमारे संभव नहीं! हम जिसे चाहे 'उछाल' दें, या उच्छृंखल' बना दें। रबड़ी का 'लच्छेदार' होना बहुत कुछ हम पर निर्भर है ! प्रजातंत्र के मसीहाओं के 'लच्छेदार' भाषण हमसे ही तैयार होते है। सदन में जो विरोधी सदस्यों द्वारा सत्ता पक्ष की 'छिलाई' की जाती है उसका बहुत कुछ श्रेय हमको है। राजनीति के साथ-साथ साहित्य मे भी हमारी घुसपैठ है। नई कविता के प्रतिनिधि कवि श्री विजयदेव नारायण साही का काव्य संकलन 'मछली घर' के प्रकाशन में हमारा भी कुछ योगदान है। कृश्न चंदर का 'मछली जाल' भी हमने ही बुना है ! हम कहाँ नहीं है ? नारियों को 'लक्ष्मी' नाम देनेवाले हम ही है और हम ही उसे 'कुलच्छनी' भी बनाते है। आपका हृदय 'छलनी' न हो, इसीलिए कटु-उक्तियाँ नही कही ! इस आत्मकथा में तो भाव-'छिलके' ही 'छीले' हैं ! किसकी सामर्थ्य है जो हमे या हमारे रहस्यो को 'छू लें' !

बस आपके

'छ' और 'ल'

मेरी परिभाषाएँ

श्रीमती कविताश्री

वह भी सुमन भला क्या, जो सुकुमार लतर पर खिल मुरझाए!
मैं तो उसको सुमन कहूँगी, हँस-हँस काँटों बीच खिले जो।

वह ज्वाला भी क्या, जो सूखी लकड़ी-तिनकों में बल पाये!
मैं तो ज्वाला उसे कहूँगी। सागर के उर-बीच बले जो।

वह सरिता भी क्या, जो अड़ते शिला खंड देख रुक जाये !
मैं तो सरिता उसे कहूँगी, चट्टानों को पीस चले जो।

वह मोती क्या, जो बिंध-छिद कर सुंदर कंठहार बन पाये !
मैं तो मोती उसे कहूँगी, नयन-सीप के बीच ढले जो।

वह मानव भी क्या, जो आती विपदा देख लगे घबराने !
मैं तो मानव उसे कहूँगी, हारों को भी जीत चले जो।

वह जीवन भी क्या, जो आहें भरते और सिसकते बीते !
मैं तो जीवन उसे कहूंगी, हँसते-गाते बीत चले जो।

वह क्षमता क्या, जो सुविधाएँ पाकर ही कुछ कर धर पाये!
मैं तो क्षमता उसे कहूँगी, कुंठाओं के बीच पले जो।

वह दीपक भी क्या, जो केवल आँचल ओट छिपे जल पाये!
मैं तो दीपक उसे कहूँगी, झंझाओं के बीच जले जो।

वह कविता भी क्या, जिसको रच, बैठ अकेले गाया जाये!
मै तो कविता उसे कहूँगी, उतरे सौ-सौ कंठ-तले जो।

बहू

मू० ले० : श्री इन्दर सिंह

अनुवाद : श्री प्रीतपाल विरात

मघर घर लौटा तो उसके कन्धे के लगी रोती हुई बच्ची देख कर माँ ने पूछा :

"अरे ! इसे कहाँसे उठा लाया ? देख तो, कैसे बुरी तरह रो रही है। जा इसकी माँ को लौटा आ, अपने आप चुप करायेगी वह......"

"माँ कहाँ है बेचारी की ! इसे तो मैं नहर से लाया हूँ। ले चुप करा इसे......" मघर ने बच्ची को माँ की तरफ बढ़ाते हुए कहा।

नहर का नाम सुनते ही करमी को जैसे साँप सूँघ गया। कुछ देर तक वह निरपेक्ष रूप से बच्ची को ताकती रही, फिर चौंककर बोली :

"मैं क्या करूँ ? इसको छोड़ आ वहीं, जहाँसे लाया है। पिछले दस दिनों से आकाश सर पर उठा रखा था, बेबे ! तुझे बहू ला के दूँगा !"

"आकाश मैंने सर पर उठा रखा था या तूने ? कहती थी, 'बेटे ! कहीं से चाहे मुस्लमानी ही ले आ पर मेरे मन की साध पूरी कर दे। मरने से पहले मैं एक बार बहू का मुँह देखना चाहती हूँ। मेरा क्या है, आज हूँ तो कल नहीं। मैं तो ऐसे घिनौने काम के पास फटकना भी नहीं चाहता था। तूने ही तो जबदस्ती भेजा था।" मघर का पारा चढ़ गया।

"पर यह बीमारी कहाँसे खरीद लाया है ?" माँ के गुस्से को और हवा लगी।

"बताने तो जा रहा था। बीच में ही हाय-तोबा मचानी शुरू कर दी तूने।"

"अच्छा बता !" माँ शान्त होते हुए बोली।

"मैं अपने गाँव की टुकड़ी के साथ सीधा नहर पर पहुँचा। वहाँ निहंगों[१] की एक टोली मुस्लमानों का सफाया कर रही थी। मेरे देखते-देखते कई मुसलमान काट कर नहर में फेंक दिये गये। मुझसे यह अमानुषिक कृत्य देखा नहीं गया। बिना किसीको बताये मैं नहर के किनारे-किनारे वापिस लौट पड़ा। अभी थोड़ी दूर ही आया था कि सामने से एक स्त्री बदहवास-सी दौड़ती आती दीख पड़ी। बछियों से लैस दो-तीन निहंग उसका पीछा कर रहे थे। मुझे सामने देखकर वह बुरी तरह घबरा गयी। अपने गोद की लड़की को फेंककर उसने पानी में छलाँग लगा दी। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या करूँ। निहंग काफी पास आ चुके थे। मैंने लपक कर बच्ची उठा ली और सिर पर पैर रख-कर भाग खड़ा हुआ। गाँव आकर ही दम लिया।"

मघर की बातें सुनकर माँ सहम गयी। "यह बित्ते भर की लड़की क्या सिर मे मारनी है ? यदि निहंग तुझे पकड़ लेते ?" उसकी आँखों में गुजर चुके खतरे की परछाइयाँ थीं, और इन परछाइयों की कालिमा में लड़की उसे मौत का रूप दिखाई दी।

लड़की अभी तक रोये जा रही थी। मघर ने एक बार फिर लड़की को माँ की तरफ बढ़ाते हुए कहा "बेबे ! इसका रोना नहीं देखा जाता, ले चुप करा इसे। बच्चे तो भगवान् का रूप होते हैं।"

"मुझसे नहीं होगा यह सब।" माँ की आँखों में दया-ममता लेश मात्र को भी नहीं थी।

"बेबे, तू बातें तो ऐसे कर रही है जैसे खुद कभी मरेगी ही नहीं। भगवान ने यदि पूछा कि तूने जग में क्या-क्या भलाइयाँ की हैं तो क्या कहेगी ?"

"कहूँगी अपना सिर" स्वभावानुसार माँ के मुँह से यह बात निकल तो गयी पर उसका क्रोध धीरे-धीरे शान्त होने लगा।

"पर इसका हम करेंगे क्या ?"

"करना क्या है बेबे ! अपने आप चलती-फिरती जवान हो जायगी। बाद में इसे अपनी बहू बना लेना।" कहते-कहते मघर शर्मा-सा गया।

करमी का चेहरा सुबह की धूप-सा कोमल हो आया। उसे अपनी अभिलाषा का अंकुर उगता-सा दीख पड़ा। एक रंगीन सपना रूप बनकर उसकी आँखों में उतर गया।

---

१. निहंग—सिक्खों की एक जाति।

उसने बड़े प्यार से बच्ची को गोद में ले लिया और मुस्कराते हुए बोली, "तू तो मेरी किस्मत है।"

उस दिन से बच्ची का नाम 'किस्मत' हो गया।

मघर की मा का नाम था—करमी।

करमी के अनुसार मघर में कोई ऐब न था। आस-पास की स्त्रियों से बातें करती हुई करमी कई बार कहा करती थी कि मघर तो लड़कियों जैसा बेटा है। मजाल है कि किसी की बहू-बेटी को मैली नजर से देख जाय! नहीं तो आजकल के लड़के तो सौ-सौ कूएँ खोदते हैं......"

"बेटा अब सुख से जवान हो गया है। उसकी शादी की फिकर करनी चाहिए" रत्नी उसकी दुखती रग को छू देती।

करमी को जैसे कोई भीतर से मथ कर रख देता।

"नियति से कौन टकरा सकता है बहिन! यदि इसका भाग्य अच्छा होता तो क्यों इसका बाप मरता!........" इससे आगे करमी कुछ न कह पाती। उसका गला भर जाता और भीतर दबा दर्द आँखों के रास्ते बाहर छलक पड़ता।

"बस कर बहिन रोने से क्या होगा! शुक्र कर बेटे ने अपनी जिम्मेवारी सम्भाल ली। मघर तो हीरा है..... हीरा.....!" रत्नी ढाढ़स बँधाती।

एक दिन इसी तरह करमी और रत्नी दुख-सुख की बातें कर रही थीं कि करमी ने अपने मन का गुबार निकाला :

"मैंने मघर से कहा और लोग तो मुस्लमानियाँ लिये आ रहे हैं, तू भी कहीं से कोई ले आ। कम से कम तेरा चूल्हा तो जलेगा। पहले तो वह माना ही नहीं, फिर बोला, अच्छा चला जाऊँगा लड़कों के साथ।"

"हाँ, बहिन क्या फर्क पड़ता है! मुस्लमानियाँ तो स्वयं हाथ जोड़ती है कि हमें काटो नहीं जो जी चाहे कर लो। किसी बेचारी की जान भी बच जायगी और मघर का घर भी बस जायगा।" रत्नी की बात सुनकर करमी का खून एक सेर बढ़ गया।

करमी ने निश्चय किया कि वह 'किस्मत' के सम्बन्ध में मौन ही साधे रहेगी। पर अधिक समय तक बात पचा पाना उसके लिए बड़ा कठिन हो गया। उसने सोचा, रत्नी को बता देने में क्या बुराई है! बात उन दोनों के बीच ही तो रहेगी। उसने सारी बात उगल दी।

रत्नी करमी के भोलेपन पर मन ही मन हँसी, पर वह करमी की भावनाएँ अच्छी तरह जानती थी इसी उसने कहा :

"यह तो बड़ी अच्छी बात है। जिन लोगों में ग भैंसें खरीदने की सामर्थ्य नहीं होती, वे बछड़े आदि ख.. , कर ही पाल लेते है।" रत्नी का व्यंग्य करमी भाँप नहीं पायी। वह खुश हो गयी। उसे लगा, रत्नी ने उसके मन की बात कह दी है......

शाम होते-होते सारे गाँव में करमी की बहू का जिक्र था।

"करमी! तेरे घर बहू आई है, और तूने मुँह मीठा तक नहीं करवाया! भला सूखी बधाई कैसे दूँ?" बिशनी हँसते हुए बोली।

बिशनी को डर था, कहीं करमी भड़क न उठे। पर उसके अनुमान के विपरीत करमी दौड़कर गाँव के बनिये से एक थाल शक्कर का उधार भरवा लाई, एकत्रित महिलाओं में बाँटती हुई बोली—

"आज मघर की सगाई हुई समझ लो शादी बड़ी धूम-से करूँगी। मेरे कौन-से पाँच-सात बेटे है!"

करमी शक्कर बाँटकर घर लौट आई। इस बात को लेकर महिलाओं में कई दिनों तक हँसी-मजाक होता रहा। हँसी-हँसी मे बिशनी ने किस्मत का नाम 'छड़े की बीबी' रख दिया।

मघर को पशु पालने का शौक था। यही उसकी जीविका भी थी। हर साल मेले से बछड़े आदि खरीद लाता। दो-तीन साल में जब वे जवान हो जाते, बेच देता।

कुछ दिनों में किस्मत करमी और मघर के साथ हिल गयी। दिन भर पशुओं से खेलती रहती, शाम को मघर पशु चरा कर लौटता तो दौड़ कर वह उसकी टाँगों से लिपट जाती। उसकी गोद में चढ़ने के लिये जिद करती। उसके कन्धों पर बैठने के लिये शोर मचाती। कभी-कभी मघर उसे भैंस की पीठ पर बिठा देता, किस्मत तालियाँ बजाकर अपनी खुशी प्रकट करती।

मघर दूध दुहने बैठता तो वह नन्हा सा गिलास लेकर उसके पास जा खड़ी होती और दूध पीकर ही मानती। कभी-कभी वह मघर की दाढ़ी के बाल खींचती और बच्चों की देखादेखी कभी वह मघर को चाचा कहती, कभी बापू। करमी कई बार उसे झिड़कती, पर उसकी नासमझी को देखकर चुप लगा जाती।

एक दिन मघर पशु चराने बाहर जाने लगा तो किस्मत उसके साथ जाने के लिये मचल गयी। करमी ने टालने का बहुतेरा यत्न किया, पर वह जमीन पर गिरकर जोर-जोर से रोने लगी। मघर के समूचे जिस्म में एक सिरहन सी दौड़ गयी और अनायास ही उसकी आँखों का एक कोना गीला हो आया। लाठी दीवार के सहारे टिकाने के बहाने उसने आँखें पोंछ लीं और किस्मत को पुचकार कर गोद में उठा लिया और पशुओं को हाँकता हुआ चल पड़ा।

उसे लगा, जैसे वह अचानक बाप बन गया हो और किस्मत उसकी अपनी बेटी हो। उसके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे। गली के बच्चों ने जब किस्मत को मघर की गोद में देखा तो उन्होंने हँसना शुरू कर दिया। एक शरारती बच्चा चिल्लाया; "छड़ा अपनी बीवी को गोद में उठाये जा रहा है।"

मघर को लगा, जैसे किसी ने लाठी मार कर उसके सपने शीशे की तरह तोड़ दिये हों। उसे बहुत क्रोध आया। वह बच्चों के पीछे दौड़ पड़ा। उसके बाद वह कभी किस्मत को बाहर नहीं ले गया।

दिन हफ्तों में बदले, हफ्ते महीनों में और महीने वर्षों में। अब किस्मत सोलह वर्ष की युवती थी। करमी की झुंझलाहट से उसके मन में अनेकों प्रश्न उठ आते। बहुत से प्रश्नों के तो उत्तर उसे मिल जाते। पर 'छड़े की बीवी' वाली पहेली उसके गले में मछली के काँटे की तरह फँस कर रह जाती। उसकी समझ में नहीं आता कि क्यों उसे मघर की बीवी कहा जाता है। इस सम्बन्ध में करमी की ओर से दी गयी व्याख्या उसकी समझ में न आती। जब से उसने होश सँभाला था, अपने आस-पास के घरों में उसने कई बहुएँ आती देखी थीं। उनको लाने के लिए बाजे बजे थे, दूल्हों ने सेहरे बाँधे थे, बारातें गयी थी ...... किस्मत लाख याद करने के बावजूद भी स्वयं को बहू के रूप में देखने में असमर्थ पा रही थी।

किस्मत में एक अजीब-सा परिवर्तन आ गया। उसने लोगों से मिलना-जुलना बिलकुल बन्द कर दिया। घण्टों अपने कमरे में चुप बैठी रहती। न हँसती, न रोती। करमी हैरान थी कि आखिर उसे हो क्या गया?

किस्मत के हृदय से एक धुआँ-सा उठता और दिमाग में चढ़ जाता। वह चीख मारकर बेहोश हो जाती। जब होश आता तो सिरहाने करमी को बैठा हुआ पाती। कई बार रात को वह चौंक कर उठ बैठती और इतनी जोर से चीखती कि पड़ोसियों की भी नींद खुल जाती। करमी ने कई तरह के जादू-टोने करवाये। गाँव के वैद्य को दिखाया, शहर के डाक्टरों के पास ले गयी, पर मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की......

करमी किस्मत को पूरी तरह अपनी बहू समझती थी। वह पोते का मुँह देखने की अभिलाषा सँजोये हुए थी। लेकिन मघर उसके रूप और युवा अवस्था को देखकर कतराने लगा था। किस्मत की बीमारी के लिए किसी सीमा तक वह स्वयं को दोषी मानता था। वह किस्मत की बीमारी का इलाज भी जानता था; पर माँ को दिल की बात कैसे समझाए, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

एक दिन किस्मत की बीमारी को लेकर करमी देर तक मघर से बातें करती रही। अन्त में बोली, "बेटा! रात को बहू के पास सोया कर। गुरुद्वारे के 'भाईजी' ने बताया है कि बच्चा हो जाने के बाद वह अपने आप ठीक हो जायगी।"

"भाईजी यों ही कहते है। उन्होंने शायद तुझसे मजाक किया है बेबे। बिना सोचे-भाले हर एक की बात न मान लिया कर।" मघर का मुँह कड़वाहट से भर गया, जैसे किसी ने आक खिला दिया हो उसे।

उसकी इच्छा हुई कि वह अपने निर्णय से माँ को अवगत करा ही दे, पर चाह कर भी कुछ न कह पाया वह।

"अरे, तुझे हो क्या गया है? तू सोता क्यों नहीं, बहू के पास। इतनी लड़कियाँ तो दो-दो बच्चों की माँएँ बनी बैठी है।"

जैसे आग पर फूस पड़ गया हो, बिलकुल ऐसी ही स्थिति हो आई मघर की। "माँ! तू बच्चों को रोये जा रही है। वह कल की लड़की मेरी बहू कैसे हो सकती है? कहाँ वह सोलह वर्ष की सुकुमार और कहाँ मै पैंतालीस वर्ष का खूसट!"

"मेरी तो आँखें पथरा चली है इन दिनों की प्रतीक्षा करते-करते, और आज तू चौदह साल के बाद कह रहा है वह मेरी पत्नी कैसे हो सकती है!" करमी सिसकने लगी।

"बेबे! तू समझती क्यों नहीं? बेकार एक जिन्दगी नष्ट हो जायगी। मैंने उसे अपने हाथों से पाल-पोस कर बड़ा किया है, बेटी की तरह प्यार किया है।"...मघर का गला भर आया।

"नासपीटे! तुझसे टकराते-टकराते मेरे सिर की ठीकरियाँ-ठीकरियाँ हो गयी हैं। कभी कोई सीधी बात भी की है सारी आयु में?" करमी को अपने सारे हथियार खाली जाते दीख रहे थे।

माँ की बातों की गर्मी में मघर के दिल का फैसला उसके ओंठों पर आ बैठा।

कोई अच्छा-सा लड़का देखकर बेबे मैं बहुत जल्दी किस्मत के हाथ पीले कर दूँगा।

करमी के तन-बदन को जैसे आग लग गयी, "अरे मूर्ख! कभी बहुओं की भी शादी होती है? मेरे सफेद सिर में अच्छी तरह मिट्टी डालने का काम कर रहा है। किसने तुझे उल्टी पट्टी पढ़ाई है? उसका मै कलेजा निकाल कर खा लूँगी।"

करमी दोनों हाथों से अपना माथा पीटने लगी।

नई गृह-लक्ष्मी

श्री महेशचन्द्र जोशी

'पिताजी यदि मुझे पता होता कि मेरी शादी पर आपका अनादर होगा तो मैं कदापि इसके लिए तैयार न होती।' दीनदयाल के चरणों पर बिलखती हुई रेणु बोली। दीनदयाल के चेहरे की कठोरता ज्यों की त्यों बनी रही। वे खामोशी से पुत्री की पीठ थपथपाते हुए, रुक-रुककर, उसी कठोरता से, अपने सबंधी चरनदास की ओर देखते रहे।

बाहर शोर हुआ कि बस आ गई है। तभी माँ और कुछ युवतियों ने रेणु को उठाया और शैलेश के पीछे-पीछे उसे लाश की तरह घसीटकर बस मे ला बैठाया।

इस बीच वहाँ का वातावरण इतना उदासीपूर्ण हो गया था कि उधर से गुजरता अनजान व्यक्ति हैरत मे पड़ जाता कि शादी की सी सजावट मे किसी का जनाजा कैसे उठ रहा है।

बस रवाना होने के कुछ क्षणों पूर्व दीनदयाल ने रेणु के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'चिन्ता न करना बेटी। मेरे होते हुए बिलकुल न घबराना।' पास मे खड़ी माँ ने भी बहुत कुछ कहना चाहा; समझाना चाहा, पर जब वे मुँह खोलती, शब्द उनके अश्रुसागर मे ही डूब जाते। उत्तर मे भी रेणु के पास आँसुओं के अलावा कुछ न था। हाँ, अभी-अभी पिता के कहे ठोस शब्दों से उसे अवश्य कुछ हिम्मत बँध चली थी। उसने पलकें उठाकर माता-पिता, भाई-बहन व सगे सम्बन्धियों की ओर ऐसे देखा, जैसे कह रही हो—'मेरी बात सुनने को सावधान हो जाओ।' उसी क्षण जब बस सबको मूर्तिवत खड़ा छोड़कर रवाना हो गयी, तो रेणु की हिचकियाँ बँध गयी।

'यह क्या······?' शैलेश क्रुद्ध स्वर मे बोला। रेणु ने पल भर को आँसुओं से भरी आँखों से शैलेश की ओर आश्चर्य से देखा। दूसरे ही पल वह पलकें झुकाए विचारो के सागर मे डूब गयी।

करीब डेढ वर्ष पूर्व की तो बात है, जब चरनदास दीनदयाल के घर आकर रेणु के साथ, शैलेश की शादी की बात पक्की कर गये थे। सयोगवश कुछ महीनों बाद ही शैलेश की बदली यही इलाहाबाद मे हो गयी थी। कहने को शैलेश ने दूसरा मकान ले रक्खा था, पर वह रहता अधिकतर रेणु के घर पर ही था। सास-ससुर पुराने रीति रिवाजो में ढले होते हुए भी, बेटी के सुख के लिए अपने को नये रीति-रिवाजों मे ढालने का सफल प्रयत्न कर रहे थे।

शैलेश आता तो घर मे खुशियाँ बिखर जाती, जाता तो उदासी छा जाती। रेणु की दशा तो शैलेश के आते ही एक प्रेमिका की सी हो जाती—वैसे ही छुपकर देखना बात-बात पर शरमा जाना, अनजान बनकर अपने मोहक हाव-भाव दिखला देना। आश्चर्य की बात तो यह थी कि रेणु ने कभी सोचा ही न था कि उससे भी कभी कोई वैसा ही प्रेम करेगा, जैसे उसने पढ़ा व देखा है। सच तो यह था कि उसे इस विषय मे सोचने की ज्यादा फुर्सत ही न मिलती थी। तभी वह सदा प्रथम श्रेणी मे उतीर्ण होती। इतने पर भी जब उसका कोई परीक्षा-फल निकलता तो वह खूब रोती, क्योकि सदा उसकी कुछ ही नम्बरों से 'फर्स्ट पोजीशन' रह जाती। एम० ए० मे भी जब उसके साथ यही घटना घटी तो उसने रो-रो कर पडोसी इकट्ठे कर लिये थे। शैलेश ने जब उसे उसके इस पागलपन पर टोका तो उसने उल्टा उसीके ऊपर इस दुःख का दोष मढ दिया था। शैलेश को इस बात का काफी दुःख व आश्चर्य हुआ था।

अब चरनदास का पत्र दीनदयाल के पास आया कि वे अब जल्दी ही शुभ कार्य को सम्पन्न करना चाहते हे। शुभ दिन, पंडितो से पूछकर, जल्दी सूचित कर दिया जायेगा। उत्तर मे दीनदयाल ने लिखा था कि, वे तब तक अपनी पुत्री का विवाह नही करना चाहते, जब तक वह पी-एच० डी० न कर ले। इस बात को सुनकर रेणु के ससुराल वालो के बीच ऐसी खलबली मच गई, जैसे, सुनसान रात्रि मे किसीने सोये लोगों के पास कोई धमाका कर दिया हो।

दीनदयाल के उस उत्तर पर चरनदास ने विरोध किया। लेकिन दीनदयाल ने शान्त भाव से अपना निर्णय दोहरा दिया। कई महीनो तक पत्राचार होता रहा। कारण पूछने पर दीनदयाल ने कहा कि वे नही चाहते, उनकी बड़ी बेटी की तरह उनकी छोटी बेटी की पढाई भी, उनकी इच्छा के अनुकूल न हो। शादी के बाद लडकियो का पढ़ना

काफी कठिन हो जाता है। रेणु का मन अभी पढ़ाई में लगा हुआ है, शादी से पूर्व वह पी-एच० डी० कर लेगी तो हम सबके हित में यह अच्छा होगा।

रेणु के ससुराल वाले तो झुंझलाते हुए चुप हो गये, पर शैलेश रेणु पर वाण छोड़ता रहा—"क्या इसी बूते पर वफादार पत्नी बनोगी तुम ?......आज मेरे दु:ख-दर्द की जब चिन्ता नहीं करतीं तो कल क्या करोगी ?......पी-एच० डी० करके ही कौन सी तीसमार खाँ बन जाओगी ?...... "यों कहो पिता का घर अच्छा लगता है।......"

इस तरह कई दिनों तक रेणु शैलेश के वाक्‌बाणों की चुभन सहती रही, पर एक दिन वह भी आया जब उसकी सहन शक्ति ने जवाब दे दिया। उसे माता-पिता पर क्रोध आने लगा, लेकिन क्रोध निकालती भाई-बहनों पर। किसी भी बात को लेकर झगड़ा खड़ा कर देती और अंत मे कहती—'यदि तुम्हें मेरा घर मे रहना अखरता है तो क्यों रोक रक्खा है मुझे यहाँ ? क्यों नही धक्का दे देते हो ?.... देखना, जाने के बाद यहाँ झाँकूँगी भी नहीं।......तब याद आयेगा अपना अन्याय तुम लोगों को......।'

इन वाणों को सह-सहकर माँ दु:खी हो गयी। वह पति के कान कुरेदने लगी। एक दिन तो वह दीनदयाल पर गरज भी पड़ी—'तुमने भी यह कैसे जिद ठान रक्खी है ? खूब बढ़ा दिया है उसे। लड़का भी अच्छा पढ़ा-लिखा, अच्छी नौकरी वाला मिल गया है। उसके पी-एच० डी० करने से ही, उसे ऐसी कौन-सी निधि मिल जायेगी जिसके बगैर उसका साँस लेना कठिन हो रहा है।'

'तुम क्या समझो नारी की शिक्षा के महत्त्व को ? हमारे तुम्हारे समय में नारी के लिए ये बाहरी डिग्रियाँ पाना आवश्यक न था, पर आज तो नारी की हर सुख की साँस के साथ शिक्षा का, इन बाहरी डिग्रियों का, इतना गहरा सम्बन्ध है, जैसे प्राणों का शरीर के साथ।......वीणा (बड़ी लड़की) को भी अच्छी शिक्षा दिला दी होती तो वह क्यों आज पति के छोड़कर चले जाने पर एक मामूली नौकरी कर दु:ख भोगती !'

'दुनिया में क्या सब एक से निकलते है ?'

'आज के इन छोकरों का कोई भरोसा नहीं......।'

बातें होती रहीं। बहसें चलती रहीं। पर चिनगारी बुझने के बजाय सुलगती गयी। कहने को रेणु को पी-एच० डी० के लिए स्कॉलरशिप मिलने लगा, पर वह भी उतनी लगन से काम न कर पा रही थी जितनी उसे स्वयं से व दूसरों को उससे आशा थी।

कुछ माह और तनावपूर्ण बीते। आखिर दीनदयाल ने अपनी इच्छा पूर्ण होने से पूर्व चरणदास को शादी का मुहूर्त निकलवाने को लिख दिया। फिर एक दिन वह भी आया जब रेणु का घर शहनाई के मधुर स्वर में डूब गया।

दीनदयाल ने बड़ी बेटी की शादी के कटु अनुभवों का लाभ उठाकर, छोटी बेटी की शादी को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने का भरसक प्रयत्न किया, पर बारातियों ने चरणदास की त्योरियाँ चढ़ी देखकर, वहाँके सुखमय कोलाहल को ऐसा घुटनपूर्ण बना दिया कि प्रत्येक घराती यह सोचने को विवश हो गया कि कब वे लोग विदा लें।

उस समय तो आश्चर्य की सीमा न रही जब शादी सम्पन्न हो जाने के बाद, शैलेश ने भी अपना रुख पलट लिया। किसी भी घराती का अनादर करते हुए वह न झिझक रहा था, यहाँ तक कि उन सास-श्वशुर को भी उसने कटु वाक्य कह दिये, जो बेटे से बढ़कर डेढ़ वर्ष से उसकी सेवा कर रहे थे।

रेणु को स्वयं रह-रह कर आश्चर्य के साथ शैलेश का हर कार्य कचोट रहा था। उसे वे क्षण याद आये, जब उसके पिता ने उसके पी-एच० डी० करने के बाद उसकी शादी करने के निश्चय को प्रकट किया था, तब इसी शैलेश ने उसके पैर पकड़ कर कहा था—'चलो रेणु कोर्ट में चलकर शादी कर लें। सच अब एक पल भी तुम्हारे बगैर नहीं काटा जाता......।'

उस समय रेणु अपने को कितना धन्य समझ रही थी। लेकिन आज तो उसे लग रहा था जैसे विधाता ने ही विकराल रूप धारण कर लिया हो।

एक ओर चरणदास की निगरानी में दहेज का सामान समेटा जा रहा था, दूसरी ओर रेणु स्वयम् की छोटी-मोटी चीजें समेट रही थी जैसे, इस घर से उसका कुछ ही मिनटों का वास्ता और हो।

न जाने कैसी-कैसी मधुर कल्पनायें रेणु ने इस शुभ घड़ी के लिए की थी। लेकिन केवल सोचने से तो कुछ नहीं होता। जो तूफान, उठ गया है वह अपनी यात्रा पूरी करेगा ही, भले ही उसकी थपेड़ें खानेवाला उसे सहन करे या न करे।

रेणु ससुराल पहुँची। पहली बार घर में बहू आई थी।

खूब ग्रावभगत हुई उसकी। लेकिन एक सप्ताह वाद, जव शैलेश ग्रपने तवादले की कोशिश करने हेतु लखनऊ चला गया तो रेणु की सास व ननदों ने उसे नोचना शुरू कर दिया: वात-वात पर उसे झिड़कियाँ व ताने सुनने को मिलते। दो सप्ताह वाद जव शैलेश लखनऊ से तवादले का ग्रार्डर वरेली के लिए लेकर लौटा तो रेणु ने संतोप की साँस ली। एकान्त में उसने शैलेश से विनती भरे स्वर में कहा'—ग्रब तो मुझे इलाहावाद पहुँचा दो।

'क्या यहाँ से मन भर गया ?'

'ऐसा क्यों कहते हो······?'

'तो फिर ?······ग्रव मेरा चार्ज देने का प्रश्न भी नहीं रहा। शादी से पहले ही दे ग्राया था।'

'ग्रौर तो कोई चार्ज देकर नही ग्राये।' रेणु ने नीम के रस में चीनी घोलने की कोशिश की।

'वहाँ से सब तरह के सम्बन्ध तोड़ ग्राया हूँ। मुझसे वहाँ के वारे में कुछ न कहा करो।' लेकिन जब कभी पीड़ा उठती, रेणु, शैलेश से एक विश्वास के साथ ग्रपना दुःख प्रकट करती, पर वह भी रूखा सा उत्तर दे देता—'मै क्या कर सकता हूँ ?'

रेणु खून की-सी घूंट पीकर रह जाती।

एक दिन एकान्त में रेणु के देवर सुधीर ने उसके कंकाल से शरीर को सम्वोधित करते हुए कहा—'भाभीजी! यह दिन-प्रतिदिन ग्रापको क्या होता जा रहा है ? कुछ तो ग्रपने शरीर का ख्याल रक्खो।' रेणु ने उसे ग्रपने सास-ससुर का गुप्तचर समझ कर कहा—'जो भाग्य में लिखा है, वही हो रहा है सुधीर जी।'

'इतनी पढ़ी-लिखी होकर भी ग्राप रूढ़िवादियों की सी वात क्यों कर रही हो ?' रेणु ने पलकें उठाकर सुधीर की ग्रोर देखा, उसके चेहरे पर दया के भाव देखकर वह चकित रह गयी।

उदासी भरे स्वर में वह वोली—'मैं कर भी क्या सकती हूँ ? पराया धन हूँ, जो जैसा चाहे इस्तेमाल करे।'

'कैसी वुजदिलों की सी वातें कर रही है भाभी जी ग्राप भी। जानती नहीं ग्राज की नारी ग्रवला नहीं, सवला है। दासी नहीं, स्वामिनी है ग्रौर फिर ग्राप जैसी पढ़ी-लिखी··············।'

'मुझे पढ़ने कौन देता है ? तीन महीने वीतने को ग्रा गये है। मै एक दिन के लिए भी इलाहावाद न तो ग्रपने माता-पिता, भाई-वहन व ग्रन्य सम्वन्धियों से मिलने जा सकी, न पी-एच० डी० के कार्य हेतु मिस रस्तोगी से मिलने पायी।'

'यह तुम्हारी कमजोरी है भाभी जी।' दृढ़ स्वर में सुधीर वोला।

'ग्राप पढ़ाई के साथ सर्विस कर समाज के इन स्वार्थी लोगों के मुँह पर तमाचा मार सकती हो, ये कुछ न कहेंगे। कुछ न वोलेंगे। तुम्हारी विनती करेंगे। ग्रारती उतारेंगे। पैर छुएँगे······।'

कुछ क्षणों रुककर गहरी साँस खींचता हुग्रा सुधीर ग्रागे वोला—'ग्राज की गृह-लक्ष्मी घर में बैठी शोभा नहीं देती। वह तो सव दुःख झेलती हुई पैसे लाती ही शोभा देती है।' रेणु फैली-फैली ग्राँखों से सुधीर की ग्रोर देखती रह गयी। कुछ देर में ही उसके मस्तिष्क में यह वात वैठ गयी कि उसके ससुराल वाले उससे क्या चाहते है। पर वह पी-एच० डी० किये वगैर नौकरी करे क्यों ? क्या वह ग्रपने पिता के स्वप्न को साकार न करेगी ? एक सप्ताह तक रेणु के मस्तिष्क में इन वातों को लेकर ही ग्रन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। ग्राखिर उसमें इतना साहस ग्रा गया कि वह उस सुनसान रात्रि को वातें करती हुई, शैलेश से कह उठी—'मुझे कुछ समय के लिए पीहर पहुँचा दो। मेरा मन व काया यहाँके ग्रन्याय सहने की शक्ति खो चुके है। विलम्ब करोगे तो फल ग्रच्छा न होगा।'

जैसे ही सास-ससुर के कानों में यह वात पहुँची, उनकी मुरझाई काया ग्रौर सिमट गयी। उन्होंने शैलेश को तुरन्त ग्राज्ञा दी—'वहू को इसके वाप के घर पहुँचा दो। इसे वही घर प्यारा है तो फिर वुलाने की भी क्या जरूरत है ? लड़कियों का कोई ग्रकाल थोड़े ही पड़ गया है।' वैसे रेणु ससुराल ग्राने के वाद से न जाने कितने विष के प्याले पी चुकी थी, पर यह विप का घूंट उसके गले से नीचे न उतर पा रहा था। लेकिन जैसे ही उसके मस्तिष्क में ग्रपने देवर का ग्रभी हाल के दिनों मे दिया छोटा-सा भापण ग्राकर घूम गया तो उसने ग्रपने में, इस विप घूंट को पचा लेने की शक्ति प्रतीत की। तभी शैलेश के इतना ही कहने पर कि 'तैयार हो जाग्रो' वह तैयार हो गयी।

रेणु जव शैलेश के साथ पीहर पहुँची तो घर के सब सदस्यों की ग्राँखों में ग्राँसू छलछला ग्राये। दीनदयाल ने जिनकी ग्राँखों में कभी ग्राँसू न देखे गये थे, रेणु का सिर ग्राँसुग्रों से धो दिया।

शैलेश सुबह आया और शाम को लौट गया। सबने रोकने का भरसक प्रयत्न किया, पर वह न रुका। रेणु के आग्रह को भी उसने सदा की तरह ठुकरा दिया। माता-पिता के काफी पूछने पर रेणु ने संक्षेप में अपनी दर्द भरी कहानी सुना दी। पिता गरज कर बोले—

'ऐसी बात थी तो तूने हमें क्यों न लिखा ? तेरे तो सदा यही पत्र आते रहे कि तू बहुत खुश है। तुझ जैसा भाग्यशाली दुनिया में शायद ही कोई हो।'

'क्या करती ? मुझे सास-ससुर को दिखाये बगैर कोई पत्र भेजने की आज्ञा न थी।'

'आह !' माँ आह भरते हुए बोली—'हम तो सदा यही सोचते रहे कि तू सचमुच शैलेश के साथ सैर-सपाटे कर रही है।'

रेणु ने पल भर को आँख मूँदकर पलकों तक आये अश्रु-कणों को गिरा दिया। फिर आँखें फैलाये शून्य में निहारती हुई दृढ़ स्वर में बोली—'अब मेरे लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मैं पी-एच० डी० के साथ-साथ नौकरी भी करूँगी।'

'क्यों ?' दीनदयाल बोले।

बस मेरा यह दृढ़ निश्चय ही समझिए। मैं आज ही मिस रस्तोगी से मिलूँगी। अपने इस निश्चय को उनके सामने रखूँगी। तीन महीने की अनुपस्थिति के लिए क्षमा माँगूंगी।'

'मैं मिल लिया था उनसे।' दीनदयाल बोले—'चिन्ता की कोई बात नहीं। हाँ, आगे जितना कार्य किया है, वह अवश्य दिखला देना उन्हें।'

'मैं अभी जाती हूँ।' कहकर रेणु उठ गयी।

करीब तीन सप्ताह बाद रेणु की नियुक्ति विश्वविद्यालय में एक लेक्चरर के पद पर हो गयी। उसे लगा जैसे उसे एक नई जिन्दगी मिल गयी हो। उसने यह खुशखबरी शैलेश को देनी चाही, पर जैसे ही उसने कागज पर, 'प्रियतम·······!' लिखा तो यह विचार कर कि यहाँसे जाने के बाद उन्होंने ही कौन-सा पत्र मुझे लिखा, उसकी कलम रुक गयी। उसके ससुरजी का भी पत्र उसकी शादी के बाद कभी यहाँ नहीं आया था। न उनका ही आया—क्यों ? सोच-सोचकर उसके मन का बोझ बढ़ने लगा। उजाले को अँधेरा निगलने लगा।

वैसे तो रेणु अब काफी व्यस्त रहती फिर भी मौका पाकर एकान्त के क्षण उसके पास आ जाते तो वह बड़बड़ाने लगती—'क्यों आयेंगे वे।····दूसरी शादी कर ली उन्होंने।···· अच्छा है उनकी दुनिया में उजाला हो गया····।' जो कोई रेणु की पागलपन भरी ये बातें सुनता, उसके भाग्य पर आँसू बहाता। जब घर का कोई सदस्य उससे यह अशुभ बातें न करने को कहता तो वह चीखकर उससे कह देती—'यदि भारी पड़ रही हूँ तो दूसरा मकान यदि कोई हूँ।' ऐसे तीखे बाण सह-सह घर वाले भी उससे तकरता गये। जहाँ बिना बोझ सी, बाइस तेइस वर्ष तक, उसने जिन्दगी बितायी थी, वहाँ अब छः-सात मास भी ठीक तरह न निभ पा रहे थे।

उस दिन जैसे एक आशा की किरण ने रेणु की अँधेरी दुनियाँ में प्रवेश किया, जब बरेली से उसके नाम एक पत्र उसके हाथ में आया। तेज धड़कते हृदय के साथ उसने पत्र खोला, देखा पत्र सुधीर का था। उसे लगा जैसे उसकी आशा की किरण पर बादल मँडरा गये हों। लेकिन जब उसने पढ़ा—'भाई साहब उदास-उदास से रहते है। किसी काम में दिलचस्पी नहीं लेते। घर में बढ़े हुए खर्चों के कारण यहाँ सदा कलह ही रहता है। आपकी एकदम खामोशी देखकर किसीकी आपत्ति किये जाने की चिन्ता किये बगैर आज कलम उठा ही ली है····।' उसे कुछ राहत मिली। उसने बिना विचारे अपनी जमा-पूँजी में से एक हजार रुपये शैलेश को भेज दिये। उत्तर में शैलेश का बड़ा भावुक पत्र आया—उसमें, उसने अपनी उदासीनता के लिए क्षमा माँगी और पूछा—'तुमने यह पैसा क्यों भेजा ? किससे लेकर भेजा ?' रेणु ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। इस तरह उन दोनों मे पत्र-व्यवहार का सिलसिला जारी हुआ।

अब रेणु प्रतिमास अपने वेतन का अधिक से अधिक शैलेश को भेज देती।

अभी उन दोनों के सुखद सम्बन्ध हुए तीन माह ही बीते थे कि शैलेश फिर अपना तबादला कराकर इलाहाबाद आ गया। पर इस बार वह अकेला न था, बल्कि उसके घर के सब सदस्य उसके साथ थे।

इस बार रेणु का ससुराल में वह स्वागत हुआ, जैसे दीपावली के दिन लक्ष्मीजी का।

पहले ही दिन रात्रि को घर में पहली बार, सबके एक साथ बैठकर भोजन करते समय सुधीर, रेणु की ओर देखता हुआ हसता सा बोला—'भाभीजी ! अब मुझे आपके कालिज में एडमिशन लेना होगा।·······क्या पढ़ाओगी ?'

'मैं ?·······यही कि आज की शिक्षा में क्या दोष हैं। उन्हें·······।'

'क्या मतलब ?' शैलेश बीच में ही बोल उठा।

'आज की शिक्षा में यदि दोष न होते तो क्या आज का पढ़ा-लिखा मानव डिग्रियाँ पाकर भी व्यावहारिक जीवन में ठोकर खा सकता ?' शैलेश आश्चर्य भरी दृष्टि से रेणु की ओर खामोशी से देखता रहा, चरनदास को लगा जैसे उनके मुँह के ग्रास में कोई मोटी सी कंकड़ी आ गयी हो, सास व ननदों की गर्दनें झुक सी गयीं, पर सुधीर जूठे हाथ की चिन्ता किये बगैर, ताली पीट-पीट भाभी के सुन्दर विचार की दाद देने लगा।

खूब ग्र
शैले
गर

श्री घनश्याम--प्रेम पुष्पांजलि, ('घनश्याम' को संशोधित गेय पद्यों का संग्रह), लेखक रा० क० पं० रामनारायण त्रिपाठी "मित्र", सीतापुर, प्रकाशक वही, पृष्ठ संख्या ७०, मूल्य ०.७५ पै० । पुस्तक के अंत में इन पदों का राग भैरवी में गायन करने के लिए उपादेय स्वर लिपि भी दी गयी है जिससे ज्ञात होता है कि कवि संगीतज्ञ भी है । यही कारण है कि इन पद्यों में यत्र-तत्र मात्रा की कमी या अधिकता है । परन्तु गाते समय मात्रा भंग का आभास नहीं होता । सरल भाषा में अच्छे सरस भावनात्मक पदों का यहाँ संग्रह मिलता है । पुस्तक कुल बारह गुच्छकों में विभाजित है और प्रत्येक गुच्छक में ४ से ५ तक पुष्प हैं ।

बरिबंड-बावनी---(खडीबोली में विरचित वीर रस प्रधान ५२ कवित्तों का संग्रह), लेखक भाषा भूषण 'कवि पुष्कर' शास्त्री, प्रकाशक राजा बरिबंड सिंह हीरक-जयन्ती समारोह समिति वाराणसी, पृष्ठ संख्या ४१, मूल्य ०.६० पै० । यह पुस्तक उस पुरानी परंपरा में जब कि संसार के प्रायः सभी देशों के साहित्य में वैद्यक, ज्योतिष, गणित, इतिहास और जीवन चरित्र भी पद्य या कविता में लिखे जाते थे, यह बरिबंड-बावनी आधुनिक युग के काशीराज की रामनगर में स्थापना करनेवाले महाराज बलवन्त सिंह का जीवन चरित्र मात्र है । बलवन्त सिंह के वंश का पूरा इतिहास "बलवन्त नामह" नामक फ़ारसी ग्रन्थ में द्रष्टव्य है । बरिबंड-बावनी के छन्द गठीले और भाषा चुस्त है ।

स्वास्थ्य रहस्य---लेखक उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' प्रकाशक सरस्वती वाणी प्रकाशन, फूलपुर, प्रयाग, पृष्ठ-संख्या ५५, मूल्य रु० १.०० । लेखक ने "किस वस्तु के साथ कौन वस्तु न खाई जाय", "भोजन के पूर्व की सावधानियाँ", "खाते समय अधिक जल न पीजिये" आदि छोटे-छोटे शीर्षकों में आरोग्य-विषयक बहुत सी उपयोगी जानकारी प्रस्तुत की है, यद्यपि विस्तार में विवेचन भोजन के विषय में हुआ है । कुल मिलाकर पुस्तक मूल्य की दृष्टि से सस्ती और उपयोगी है तथा एक अनुभवी वैद्य की रचना होने के कारण उपादेय भी है ।

पालि मोग्गल्लान व्याकरण---टीकाकार या भाष्यकार भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रकाशक विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, होशियारपुर (पंजाब), मूल्य सजिल्द रु० ५.५० पै०, पृष्ठसंख्या ३६९ । प्रस्तुत ग्रंथ प्राचीन मोग्गल्लान व्याकरण का हिंदी टीका समेत एक आधुनिक संस्करण है । इस व्याकरण का मुख्य भाग सूत्रग्रंथ है जो छः खण्डों में विभक्त है । मूलग्रंथ के साथ अन्त में लगभग १०० पृष्ठों में तीन परिशिष्ट ग्रंथ भी---गणपाठ, सूत्रपाठ और सूत्र-वृत्ति---संयुक्त हैं ।

पालि-व्याकरणों के रचयिता संस्कृत वैयाकरणों के सदा आभारी रहे हैं क्योंकि उन्होंने संस्कृत व्याकरणों के ही आदर्श पर पालि व्याकरणों का निर्माण किया है । प्रायः सभी पालि वैयाकरणों ने पालि-सूत्रों को माँजने-सँवारने की शैली संस्कृत वैयाकरणों से ही सीखी है । भदन्ताचार्य मोग्गल्लान ने भी पाणिनि का आभार स्वीकार किया है ।

शास्त्र के नियमों को सुरक्षित रखने के लिये और कठस्थ कर रखने की सुविधा के लिये हमारे प्राचीन मनीषियों ने अपनी बात को सूत्र रूप में कहने की पद्धति चलाई थी, जिस प्रकार एक विद्यार्थी अपने तैयार किये हुए 'संक्षेप' (नोट्स) तो आसानी से समझ लेता है किंतु दूसरे उतनी आसानी से एवं उतनी स्पष्टता से उन्हें नही समझ पाते; उसी प्रकार कालान्तर में जब सूत्रों का ठीक-ठीक अर्थ समझ पाने में कठिनाई हुई तब वार्ताओं (या वृत्तियों) का जन्म हुआ; और जब वृत्तियों के विद्यमान होने पर भी सूत्रों के अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद उपस्थित होने लगे तब वृत्तियों के भाष्य बने । प्रस्तुत ग्रंथ भदन्त 'कोसल्लान' द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत भदन्ताचार्य मोग्गल्लान के पालि व्याकरण का एक प्रकार का भाष्य ही है । यह ग्रंथ निस्सं-

देह पालि अध्ययन-अध्यापन में प्रभूत सहायता प्रदान करेगा।

मछलीघर—(नयी कविताओं का संकलन), लेखक श्री विजयदेव नारायण साही, प्रकाशक भारतीय भंडार, इलाहाबाद, मूल्य पाँच रुपये, पृष्ठ संख्या १२३। कविता-संग्रह का नाम 'मछलीघर' प्रतीकात्मक जान पड़ता है, क्योंकि शब्द 'मछलीघर' नया ही नहीं, असामान्य भी है। मछरियाई, मछरहट्टा, मछरखड्डा आदि शब्दों से तो हम परिचित हैं, किंतु चिड़ियाघर, पोथीघर, बिजुलीघर, फाँसीघर के तुकताल पर मछली के 'मछलीघर' शब्द का प्रयोग हमने पहले सुना नहीं है। जान पड़ता है यह 'मछलीघर' अँग्रेजी के 'अक्वेरियम' शब्द का हिंदी रूपान्तर है। पुस्तक के वेठन के भीतर उल्लेख है—'उनके (साहीजी के) काव्य की भाषा सहज और बोलचाल के निकट है लेकिन उसमें एक विशेष प्रकार का सयम और कलात्मक संचय है जो अन्यत्र दुर्लभ है।'-मैं समझता हूँ कि भाषा ही में नहीं, विषय और कवि की चिंतन प्रणाली में भी वही 'अक्वेरियम' वाला संयम (पानी की मात्रा सचित और सीमित होने में) और कलात्मक संचय है जो अन्यत्र दुर्लभ है। 'अक्वेरियम' में भी प्रायः उन छोटी मछलियों का संचय और संग्रह होता है जो सामान्य नदी-नालों या गड़हियों में नहीं पाई जाती है।

श्री विजयदेव नारायण साही की हिन्दी कविता (आधुनिक या नई हिन्दी कविता) के प्रमुख और प्रौढ़ कवि कहा गया है और उनकी कविता में 'सघनता' तथा ताजगी ये दो गुण वहुत बखाने गये हैं। 'सघनता' और 'ताजगी' ऐसे शब्द हैं जिनके स्पष्ट रूप को समझना और समझाना दोनों ही कठिन है। साहीजी की अधिकांश कविताओं के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। इनकी कविता के विषय सर्वथा नये और अछूते हैं और यही कारण है कि प्रायः इन्हें परिचित अर्थ और परिचित परिधि में बाँध सकना कठिन हो जाता है। सर्वत्र कवि की भावुकता के ऊपर उसकी संकल्प शक्ति हावी दिखाई पड़ती है :—

पर ओ नदी! अब तुम नहीं हो तीर्थ
तीर्थ तो है बर्फ सा उजला सरोवर वही
छोड़कर हम तुम
जिसको चले थे साथ

साहीजी की कविताओं को पढ़ने के बाद यदि कोई छन्द-बद्ध रचनाओं को ही कविता कहने का आग्रह करता है तो मानना पड़ेगा कि वह आधुनिक साहित्य के मर्म से ही नहीं जीवन के अनेक जीवन्त पक्षों से भी अपने को असंपृक्त कर लेता है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं के रचयिता में जीवन की विविधता को आँकने और उनका सजीव चित्रण कर सकने की अद्भुत क्षमता है। इन कविताओं को पढ़ने के बाद हम विज्ञप्ति के इस वक्तव्य से सहमत हैं कि 'यह सग्रह उन लोगों को भी आश्वस्त करेगा जो हिन्दी कविता के भविष्य के बारे में भ्रमवश आशंकित हैं।'

हमें साहीजी के शब्द-संचय के बारे में इतना जरूर कहना है कि एक ही कविता में ('बार बार' में) बमानी, छलावा, बदहवास, अबरू, पेशानी, गोश्त, बेअख्तियार, परखचे, इन्तहा आदि आदि शब्दों का प्रयोग कविता की लोकप्रियता में बाधक हो सकते हैं। इनमें से कितने ही शब्द बचाये जा सकते थे।

मेघदूत—(कालिदास के मेघदूत का हिन्दी पद्यानुवाद) अनूदक श्री तिलकधारी सिंह 'तिलक', प्रकाशक विद्यावती प्रकाशन, आजमगढ़, मूल्य रु० ३·५० पैसे, पृष्ट-सख्या १०८ प्रस्तुत ग्रंथ कवि 'तिलक' द्वारा कालिदास के मेघदूतम् का खड़ीबोली के २२० छन्दों या पदों में अनुवाद है। अच्छा हुआ होता कि कुछ काल तक रुककर अनूदित छन्दों को माँज-सँवार कर कुछ पद्यो का औहड़पन दूर कर दिया गया होता। उदाहरणार्थ तीसरे ही पद्य की अंतिम इन दो पंक्तियों को देखिये—

था एक वर्ष तक प्रिया-प्रणय
विरही रह सहना अनुशासन।'

यदि इनको इस प्रकार कहा जाता तो छन्द को अधिक स्पष्टता मिल सकती :—

'था एक वर्ष तक प्रिया-प्रणय
से विरहित रहना अनुशासन।'

अनुवाद के उद्देश्य और उसके स्वरूप के प्रति अनूदक का दृष्टिकोण निश्चित एवं स्पष्ट न हो सकने के कारण भाषा में समानरूपेण सारल्य, समन्वय, और स्पष्टता की स्थापना नहीं हो पाई है। उदाहरणार्थ जो लेखक—

सच है स्वभाव से ही होते; उन्मत्त प्रणय से प्रणयी जन।
रहता इसका भी ज्ञान नहीं, उनको क्या है जड़ क्या चेतन।

में उपयुक्त सरल शब्दावली का प्रयोग कर सकता है पता नहीं क्यों निम्नांकित कोटि की शब्दावली का प्रयोग करने के लिये विवश हुआ है :—

तदवधि पर्यन्त हुआ कृशतनु, विस्मृत विपन्न सब थे मण्डन,
निर्बल उसके दुर्बल कर से, संसित थे शिथिल कनक-कंगन

यह 'निर्बल दुर्बल' अनूदक की 'निर्बल दुर्बल' भाषा-शक्ति का भी प्रमाण है। और राय देवीप्रसाद पूर्ण ने मेघदूत की जिस मूल पंक्ति के लिए जैसी सरस, सार्थक

घाम धूम नीर औ' समीरन कौ सन्निपात ऐसो
जड़ मेघ कहा दूत काज करिहै ?'

पंक्ति अपने ब्रजभाषा में किये हुए अनुवाद में प्रस्तुत की है उसीके लिये 'तिलक' जी ने—

सलिलाग्नि समीकरण-धूमों का जड़ सन्निपात जलवाह कहाँ।
चेतन पटु जन ही हो सकते, संदेश विषय के वाह कहाँ ?

कहकर इन पंक्तियों के भाव और सौंदर्य के साथ अन्याय कर दिया है। फिर भी अनूदक ने इस कार्य द्वारा अपने साहस, लगन, धीरज और साहित्यिक अभ्यास का अच्छा परिचय दिया है, और उसका यह श्रम सराहनीय है।

असम की हिन्दी कवितायें—(असम के ८ हिन्दी कवियों की कुछ कविताओं का सग्रह), प्रकाशक भारती प्रकाशन, नलबाड़ी, असम, मूल्य रु० १'०० पै०, पृष्ठ संख्या ३६।

प्रस्तुत संग्रह में हिन्दी में कविता लिखने वाले आठ असम निवासी कविता लेखकों—सर्व श्री श्याम सुन्दर जालान, धरमचन्द काला 'शिव', चिरंजीलाल जैन, प्रफुल्ल कुमार शर्मा, दामोदर जोधानी, नन्दलाल जोधानी तथा सुश्री उषादेवी जैन एवं सुमनलता जालान की कुल २७ कविताओं का संग्रह है। सत्ताईस में से केवल दो कविताओं में—'आओ शोणितपुर चलें !' तथा 'बहते रहो ब्रह्मपुत्र !' में—असमिया संस्कार का स्पर्श हुआ है। शेष कविताओं के विषय और स्वर हिन्दी की आज की अधिकांश कविताओं के ही समान है। आश्चर्य है कि इन सत्ताईस कविताओं में एक भी असमिया भाषा का शब्द कहीं भी आया नहीं है; जबकि माहौल, एहसास, जैसे शब्द फारसी के और ओक्टोपश (?), डौनक्युक्जोट जैसे योरपीय भाषा के शब्द निधड़क प्रयुक्त हुए हैं। कवितायें सामान्यत: अच्छी हैं और कई कविताओं में प्रतिभा और कल्पना की झलक मिलती है। हम इन कवियों की प्रशंसा करते हैं किंतु उनसे यह आशा करते हैं कि वे असम और हिंदी क्षेत्रों को निकट लाने में सेतु का काम करेंगे तथा अपने काव्य के द्वारा हमें प्राग्ज्योतिष तथा कामरूप के सौंदर्य और वहाँ के निवासियों के जीवन, सुख-दुख एवं आकांक्षों का परिचय देंगे। कविताओं का स्तर काफ़ी ऊँचा है। असम के ये हिन्दी कवि सुदूर प्रदेश में हिन्दी की जो सेवा कर रहे हैं, वह स्तुत्य है।

अनुरागनी कुब्जा—(एक लंबी कविता), लेखक ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, प्रकाशक विन्ध्य केसरी प्रेस, सागर (म० प्र०), मूल्य रु० १'०० पै० पृष्ठ ४२। इस लंबी कविता में कवि ने वियोगिनी राधा की मानसिकता का बड़ा ही मौलिक एवं वास्तविक चित्रण किया है। वियोगिनी राधा को कवि ने अनुरागिनी राधा का व्यक्तित्व प्रदान करने में विशेष मौलिकता का परिचय दिया है। समस्त व्यथाओं को भोग लेने के गाद अंत में जब वियोग का चरम परिपाक हो जाता है तब ज्योतिषीजी की राधा भी, 'हरिऔध' की राधा जैसी सयाजसेविका न बनकर, सूर की ही राधा के समान जीवन भर अनुरागी बनी रहना ही अपने अस्तित्व की सफलता तथा अपना सौभाग्य मान लेती है, कवि के निम्नांकित शब्दों में :—

जा सको तो जाओ सुमन
मैंने तो मन में तुम्हारी गंध भर ली !
चाँद जहाँ जी चाहे जाओ छिप जाओ तुम ?
चन्द्रिका है मैंने दगों में बन्द कर ली।

श्री ज्योतिषीजी हिन्दी के बड़े विद्वान् कवि और अध्यापक (इस समय एक महाविद्यालय के प्राचार्य) हैं। आप लोक-सभा के दो बार निर्वाचित सदस्य रह चुके हैं। जैसे कविता में वैसे ही सहिष्णुता एवं भावुकता आपके व्यक्तित्व के प्रधान अंग है।

फ़िराक़ और निराला

श्री रघुपतिसहाय 'फ़िराक़' इस समय उर्दू के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि माने जाते हैं। किन्तु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वे अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। जिन दिनों दूसरे-तीसरे साल बी० ए० में कहीं एक-दो विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे, उन दिनों फ़िराक़ साहब ने प्रथम श्रेणी में बी० ए० किया था और बाद में अंग्रेजी में सम्मानपूर्वक एम० ए० किया। वैसे तो वे सिविल सर्विस में आ गये थे पर अन्त में प्राध्यापकी पसन्द की, और सारा जीवन इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बिता दिया।

फ़िराक़ साहब संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के विरोधी हैं और हिन्दी काव्य की आधुनिक शैली और रूप के प्रशंसक नहीं हैं। उर्दू का रंग उन पर इतना गहरा चढ़ा हुआ है कि वे आधुनिक हिन्दी की आत्मा और उसके लक्ष्य के प्रति उनकी सहानुभूति बहुत कम है। वे स्पष्ट वक्ता भी हैं और अपने विचारों के कारण हिन्दी संसार में बहुत लोकप्रिय नहीं हैं।

किन्तु वे सच्चे कवि और कवि-हृदय हैं। हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ शैली के विरोधी होते हुए भी वे निरालाजी की प्रतिभा के कायल हैं और निरालाजी से उनके सम्बन्ध बड़े मधुर थे। निरालाजी भी फ़िराक़ की तरह 'मुक्त' पुरुष थे। एक बार निराला और जोश मलीहाबादी फ़िराक़ साहब के यहाँ एकत्र हुए थे। संयोग से हम भी पहुँच गये थे। तीनों बोतल-प्रेमी, फक्कड़ और कवि। वह गोष्ठी हमें सदैव स्मरण रहेगी।

एक बार अपनी मृत्यु से प्रायः दो वर्ष पूर्व जब निरालाजी बीमार पड़े, तब उनकी बीमारी का समाचार फ़िराक़ साहब को भी मिला। संयोग से एक दिन दोपहर में उनसे मिलने गोपेशजी पहुँच गये। महीना जून का था। इलाहाबाद में जून का महीना काफी गर्म होता है। फ़िराक़ साहब ने गोपेशजी से कहा कि मैं निरालाजी को देखने चलना चाहता हूँ। तुम मुझे उनके घर ले चलो। गोपेशजी ने दोपहर की गर्मी की ओर ध्यान दिलाया, किन्तु फ़िराक़ साहब न माने और एक रिक्शा पर बैठकर दारागंज पहुँचे जहाँ निरालाजी उन दिनों रहते थे।

मकान भीतर गली में था। सड़क पर रिक्शा छोड़ दी और दोनों गली में घुसे। उन दिनों निरालाजी को अंग्रेजी बोलने की सनक थी। फ़िराक़ साहब को आगाह करने के लिए गोपेशजी ने उनसे कहा कि आजकल निरालाजी केवल अंग्रेजी बोलते हैं। फ़िराक़ साहब मुस्कुरा दिये। इस पर गोपेशजी ने कहा, "लेकिन बहुत गलत अंग्रेजी बोलते हैं।" इतना सुनते ही फ़िराक़ साहब सहसा रुक गये। उन्होंने अपनी छड़ी पीछे कर ली और उसे कमर से लगाकर खड़े हो गये, तथा गोपेशजी से कुछ तैश से बोले—"साहबज़ादे, आपने तो बी० ए०, एम० ए० तक तालीम हासिल की है। ज़रा दो सेंटेंस अंग्रेजी के बोलिए तो मैं देखूँ कि आप कितनी सही अंग्रेजी बोलते हैं।" गोपेशजी सन्नाटे में आ गये। उनकी बोलती बंद! फ़िराक़ साहब फिर बोले—"बोलिए, बोलिए, जरा आपकी सही अंग्रेजी सुनूँ!" गोपेशजी ने माफी माँगकर अपनी जान छुड़ाई।

निरालाजी ने तो हाईस्कूल परीक्षा भी उत्तीर्ण न की थी। उनका अंग्रेजी ज्ञान स्वअर्जित था। ऐसे व्यक्ति और विशेषकर अपने मित्र निरालाजी की ऐसी आलोचना वे एक नवयुवक के मुँह से बर्दाश्त न कर सके।

सरकार और भाषा

श्री कामताप्रसाद गुरु

कुछ वर्ष पहले एक विनोदशील लेखक ने वम्बई सरकार से यह प्रार्थना की थी कि यदि सरकार मराठी भाषा और व्याकरण मे से "कर्त्तरि", "कर्मणि" आदि "प्रयोग" निकाल दे तो मराठी शिक्षकों और विद्यार्थियों का वड़ा उपकार हो, क्योकि इन 'प्रयोगों' के सीखने और सिखाने मे वड़ी तकलीफ होती है, वम्वई सरकार ने कदाचित् यह वात अपनी शक्ति से वाहर समझ कर इस विषय में कोई हुक्म जारी नही किया। पर जो वात एक मझले लाट को कठिन जान पड़ी वही वात एक छोटे लाट के लेखे कुछ भी नही है। उनकी समझ में प्रजा को वह भाषा वोलना और लिखना चाहिए जो सरकार निश्चित कर दे और लोगों को वतावे कि यही तुम्हारी भाषा है।

कुछ समय हुआ संयुक्त प्रान्त के छोटे लाट ने ऐसा ही मत प्रकट किया है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने आपको एक अभिनन्दन पत्र दिया था। उसका उत्तर देते हुए श्रीमान् ने जो कुछ कहा उसका उत्तर यह है कि "आप लोगो के इस निश्चय दिलाने पर मैं विशेष प्रसन्न हूँ कि आप लोग मौके वे-मौके सव जगह और सव प्रकार से उच्च हिन्दी का अन्ध पक्षपात नही करते। विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती या तो व्यर्थ मानसिक काम कर रहे है या ऐसा काम कर रहे है जिसका उद्देश्य झगड़ा करना है।"

श्रीमान् के मुख से ये वचन सुनकर मुझे मध्यप्रदेश की मर्दुमशुमारी के एक सुप्रिटेंडेंट की याद आती है। ये महाशय एक वार कुछ पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को लेकर जाति-सम्वन्धी तहकीकात कर रहे थे। नातेदारों के विषय में वातचीत करते हुए एक महाशय ने आपसे कहा कि अमुक नातेदार हम लोगों में "पूज्य" समझा जाता है। "पूज्य" शब्द सुनते ही साहव वहादुर वहुत ही चिढ़े और वोले, पूज्य क्या? (सा० व० ने सव को हिन्दी मे वातचीत करने की आज्ञा दी थी) वेचारे हिन्दुस्तानी ने सुपरिटेंडेंट साहव का रुख देखकर झट अपना वाक्य वदलकर कहा कि हम लोग अमुक नातेदार की "इज्जत" करते है। इस वात पर सा० व० ने उनके अन्तिम दो शब्दों को दुहरा कर तिरस्कारपूर्वक कहा—"इज्जत करते है।" आगे को उनकी जीभ ही वन्द हो गई। साहव की कदाचित् यह इच्छा थी कि ये (उर्दू न जाननेवाले) महाशय "काविले इज्जत" कहें।

नागरी-प्रचारिणी सभा ने लाट साहव को जो निश्चय दिलाया है वह वहुत ही ठीक है। जिस सभा ने हिन्दी को स्थान और नाम दिया है यदि वही सभा भाषा को स्थिरता न देगी और स्वाभाविक भाषा का प्रचार न करेगी तो सर्व साधारण को उसके परिश्रम से क्या लाभ होगा? हिन्दी के कुछ लोगों ने सचमुच ही ऐसी जिद पकड़ी है कि उनके कारण ठेठ हिन्दी शव्दों का लोप ही हो रहा है। ऐसे लोगों के विषय मे लाट साहव का कहना वहुत ही उचित है कि ये लोग व्यर्थ मानसिक काम कर रहे है। चिन्ता केवल इस वात की है कि इनके इस व्यर्थ मानसिक काम मे झगड़े का कौन सा उद्देश्य है। इन लोगों की भाषा से केवल यह हानि होगी कि केवल पण्डितों की समझ में आवेगी। यदि ये लोग मुसलमानो या कायस्थों की देखा-देखी अरवी और फारसी शव्दो की लम्वाई के शव्दों का उपयोग करते हों तो भी इसमें झगड़े का कोई कारण नही दीखता। जान पड़ता है कि जो वात उर्दू में साधारण समझी जाती है वही हिन्दी मे असाधारण दिखाई देती है।

भाषा और सरकार से घना सम्वन्ध रहता है। यद्यपि सरकार लोगों को किसी विशेष भाषा के वोलने या लिखने से रोक नही सकती, तथापि वह आश्रय देकर एक भाषा को वढ़ा सकती है और उदासीनता दिखाकर दूसरी भाषा की वढ़ती को घटा सकती है। मुसलमानी राज्य मे हिन्दी का प्रचार न होने पर भी कवि लोग हिन्दी-कविता करते थे और मुगल वादशाह उसका आदर करते थे। आज भी जिन प्रदेशों में लोगों की भाषा कचेहरी की भाषा है उनमे देशी भाषा की उन्नति मे कोई रुकावट नही है। पर दुर्भाग्यवश हिन्दी को न केवल राजाश्रय ही प्राप्त नही है वरन् उसकी उन्नति में, औरों की वात तो दूर है जिनकी वह मातृ-भाषा है वही उसकी उन्नति नही होने देते। यदि मुसलमानी राज्य में हिन्दी का प्रचार नही था तो इस वात का अनुकरण समदर्शी अंग्रेजी राज्य में होने की आवश्यकता

नहीं है। मध्यप्रदेश में कचहरी की भाषायें हिन्दी और मराठी हैं। इसी प्रकार जिन प्रदेशों में हिन्दी और उर्दू का प्रचार है वहाँ भी ये दोनों भाषायें कचहरी की भाषायें होनी चाहिएँ। मध्यप्रदेश के उड़िया जिलों में हिन्दी का प्रचार होने से जो दुर्दशा (सर ऐण्ड्रू फ्रेजर की पुस्तक के अनुसार) उड़िया लोगों की हुई थी वही दुर्दशा आजकल उन लोगों की हो रही है जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है और जिन्हें मुकद्दमा चलाने के लिए कचहरी के द्वार पर उर्दू सीखनी पड़ती है। उर्दू हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा और हिन्दुस्तानियों की मातृ-भाषा कही जाती है। पर जिस रूप में वह पुस्तकों और अर्जियों में लिखी जाती है उस रूप में वह हाकिमों की भी समझ में नहीं आती। फिर भला उसे गाँव के अपढ़ लोग कैसे समझ सकते हैं? ऐसी अवस्था में सरकार ने नागरी लिपि के प्रचार का जो हुक्म दिया है वह क्या कम है।

जिस उच्च हिन्दी पर संयुक्त-प्रदेश के छोटे लाट ने आक्षेप किया है उसका उद्देश्य ठीक-ठीक न समझे जाने के कारण इस भाषा के सम्बन्ध में कई मतभेद दिखाई देते हैं। कुछ लोग चाहे इसे मौके बे-मौके सब जगह और सब प्रकार से काम में लाते हों पर हिन्दी के अधिकांश लेखक इसे उसी रूप में लिखते है जो समाज के हित के विचार से उन्हें उपयोगी जान पड़ता है। सभी लेखक उच्च हिन्दी के अन्ध पक्षपाती नहीं हैं। शिक्षित और अशिक्षित लोगों में विचारों की संख्या का अन्तर रहता है और विचारों की बढ़ती के अनुसार शब्दों की संख्या बढ़ती है। एक अपढ़ किसान ३०० शब्दों से अपना काम चला सकता है पर एक साधारण शिक्षित नगरवासी को कम से कम ३००० शब्दों की आवश्यकता होती है। यदि किसी भाषा में इतने शब्द न हों तो उसे ये शब्द दूसरी भाषा से अवश्य ही लेने पड़ेंगे। भाषाओं की बढ़ती बहुधा इसी प्रकार हुआ करती है। अब प्रश्न यह है कि हिन्दी में इस प्रकार के शब्द किस भाषा से लिये जायँ? केवल कचेहरी या बाज़ार में प्रचलित उर्दू शब्दों के लेने या निकाल देने से तो इस भाषा की सर्वाङ्ग उन्नति हो नहीं सकती। और न प्रचलित हिन्दी शब्दों के बदले खोज-खोज कर संस्कृत शब्द रख देने से ही उन्नति हो सकती है। साहित्य, न्याय, गणित, इतिहास, व्याकरण आदि विषयों में जिन विचारों और शब्दों का काम पड़ेगा वे हिन्दी को अवश्य संस्कृत से लेने पड़ेंगे। क्योंकि हिन्दी की शब्दावली में संस्कृत शब्दों का अनुपात नव दशमांश है। साधारण लोग 'त्रिकोण' या 'त्रिभुज' समझ सकते हैं या 'मुसल्लस'? गो-रक्षा पर व्याख्यान देनेवाला उपदेशक 'गो हत्या' शब्द का उपयोग करेगा या 'गाय को मार डालना' या 'गावकुशी' कहेगा? स्वयं डॉक्टर सर ग्रियर्सन, जिनके हिन्दी-सम्बन्धी विचारों के विषय में हम आगे कुछ कहेंगे, "Unthorough forcesomeness" of stuff के बदले "Impenetrablity of matter" कहना पसन्द करते हैं। ऐसी अवस्था में, मौके पर विशेष जगह और विशेष प्रकार से उच्च हिन्दी का अन्ध-पक्षपात अन्याय नहीं है।

श्रीमान् लाट साहब का दूसरा आक्षेप स्कूली किताबों की भाषा पर है। श्रीमान् की समझ में छोटे-छोटे बच्चों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे हिन्दू-मुसलमान सभी समझ सकें। जिन पाठ्य-पुस्तकों का उल्लेख किया गया है वे मेरे पास नहीं हैं। इसलिए उनकी भाषा के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता; पर मध्यप्रदेश में जो उर्दू पाठ्य-पुस्तकें प्रचलित हैं उनमें छोटे बच्चों के लिए और और कठिन शब्दों के साथ 'कौआ' के लिए 'ज़ाग़' और 'पड़ोसी' के बदले 'हमसाया' लिखा है। क्या मुसलमानों के सात-आठ बरस के बच्चे 'कौए' को 'ज़ाग़' कहते हैं और पड़ोसी का अर्थ समझकर उसके बदले हमसाया बोलते हैं? यदि ऐसा है तो हिन्दुओं और मुसलमानों के लड़कों को एक ही भाषा कैसे उपयोगी हो सकती है? लखनऊ में भी कदाचित् शाही घरानों के बच्चे 'ज़ाग़' न कहते होंगे फिर पुस्तक में इन शब्दों की आवश्यकता क्यों हुई? यदि कविता में यह 'ज़ाग़' आता तो उसकी रक्षा मात्राओं की बचत की दृष्टि से हो सकती थी। इससे जान पड़ता है कि यह 'ज़ाग़' या 'हमसाया' या तो इसलिए आया है कि लेखक महाशय 'कौआ' या 'पड़ोसी' शब्द का उपयोग नहीं करते या उसका उद्देश केवल बच्चों की शब्दावली बढ़ाना है, जो शिक्षा-शास्त्र का एक विषय है और जिसके विषय में यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता है।

बच्चों को या विद्यार्थियों को भाषा सिखाने के जो कई उद्देश हैं उनमें से एक, उनकी शब्दावली बढ़ाना, और दूसरा उनको अपना साहित्य पढ़ने के योग्य बनाना है। इन उद्देशों की पूर्ति के लिए बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में जान-बूझकर प्रत्येक पाठ में कुछ कठिन शब्द और वाक्य रक्खे जाते हैं।

यदि किसी पुस्तक में लड़कों के शब्द और विचार बढ़ाने की सामग्री न हो तो उसके पढ़ने से विद्यार्थियों को कोई लाभ नहीं। बच्चों को पहले पहल केवल उन्हीं शब्दों का पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है जिन्हें वे बोलते हैं अर्थात् अपनी माँ से सीखते है। स्कूल में इन शब्दों के स्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण पर अवश्य ध्यान दिया जाता है। इस दृष्टि से पहले 'ज़ाग़' नहीं पढ़ाया जाता, किन्तु 'कौआ' पढ़ाया जाता है, 'कौआ' शब्द सुनकर लड़कों को तुरंत उस पक्षी का बोध हो जाता है, पर 'ज़ाग़' को वे लोग नहीं जानते कि यह किस चिड़िया का नाम है। परिचित शब्द पढ़ाने के पीछे ऐसे शब्द पढ़ाये जाते है जिनसे सम्बन्ध रखनेवाले विचार तो लड़कों के मन में रहते हैं, पर वे उन्हें प्रकट नहीं कर सकते। फिर अन्त में, वे शब्द आते हैं जिनके समानार्थी शब्द लड़के पढ़ चुके हैं या जिनका अर्थ वे केवल बुद्धि या दृष्टान्त से समझ सकते हैं। इसी प्रकार लड़कों को सहज वाक्यों से कठिन रचना का अभ्यास कराया जाता है। स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें लिखना बच्चों का खेल नहीं है—इस विषय में मत-भेद होना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिनको शिक्षा का अनुभव है वे पाठ्य-पुस्तकों की रचना में अथवा मौखिक पाठ में विशेष सावधानी से शब्दों को चुनते हैं। वे इस बात को विचारने की चिन्ता नहीं करते कि लड़कों की भाषा हिन्दी है या उर्दू। उनका उद्देश लड़कों में वह रुचि और योग्यता उत्पन्न करना है जिससे वे अपने विचार स्पष्टता और शुद्धता से प्रकट कर सकें, तथा उस ज्ञान से लाभ उठावें जो उनके साहित्य में भरा पड़ा है। बम्बई सरकार ने देशी भाषाओं की जो पाठ्य-पुस्तकें तैयार करवाई हैं उनकी रिपोर्ट से प्रकट होता है कि सरकार ने भाषा बनाने का अधिकार अपनी शक्ति से बाहर समझा है। इन पाठ्य-पुस्तकों की रचना में किस-किस योग्यता और जाति के लोग थे इसका पता उक्त रिपोर्ट देखने से लग सकता है।

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में ग्रियर्सन साहब के विचार भी कुछ विचित्र हैं। यहाँ हम उनके केवल उन विचारों के विषय में कुछ लिखते है जो उन्होंने 'खड़ीबोली' की कविता के विषय में प्रकट किये हैं। इन विचारों का कुछ खण्डन 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' में द्विवेदीजी ने किया है। ग्रियर्सन साहब का भाषा-सम्बन्धी ज्ञान और योग्यता अगाध है। तथा भाषा-सम्बन्धी प्रश्नों में सरकार पर उनके मन का प्रभाव अटल है। आप लिखते हैं कि हिन्दी (खड़ीबोली) में अच्छी कविता नहीं हो सकती, क्योंकि कुछ लोग इस काम में सफल नहीं हुए। आपकी राय से हिन्दी को अकारण ही कलङ्क लग रहा है और उसके कवियों को अनुत्साह हो रहा है। जो लोग अपने जन्म अधिकार को एक लोट पर बेच सकते हैं वे भले ही साहब बहादुर के मत से अपने मत की पुष्टि समझ लें; पर विचारवान् लोगों की समझ में यह बात नहीं आती कि क्यों हिन्दी में अच्छी कविता नहीं हो सकती? क्या संसार में हिन्दी ही एक ऐसी निरुपयोगी भाषा है जिसमें यह दोष पाया जाता है? जब संसार की प्रायः सभी भाषाओं में कविता लिखी जाती है, तब इस बात का अनुमान कैसे हो सकता है कि हिन्दी में अच्छी कविता नहीं बन सकती। यदि यह बात ठीक भी हो तो भी इससे कवियों का अभाव या अयोग्यता ही सूचित होती है, भाषा की हीनता सूचित नहीं होती। क्या केवल 'ओ' के बदले 'आ' और 'हि' के बदले को आ जाने से ही 'भौंडापन' आ जाता है। साहब बहादुर को 'खड़ीबोली' की सब कविताएं एक बार फिर पढ़ लेना चाहिए।

"खड़ीबोली" की कविता के सम्बन्ध में एक बात और विचारने योग्य है। प्राथमिक श्रेणी के बालकों को पुरानी कविता पढ़ने और समझने में बड़ी कठिनाई होती है। इस कविता में शब्दों के रूप इतने विकृत रहते हैं कि वह एक नई ही भाषा-सी जान पड़ती है। पुरानी अँग्रेजी ऊँची कक्षाओं में पढ़ाई जाती है; पर पुरानी हिन्दी की विपत्ति अबोध बालकों पर पड़ती है। इस विचार से कुछ स्कूलों में खड़ीबोली की सहज कविता सफलतापूर्वक पढ़ाई जा रही है, मध्यप्रदेश की हिंदी पाठ्य-पुस्तकों में, बहुत कुछ आन्दोलन होने पर भी जिनका संशोधन आज तक नहीं हुआ, पुरानी भाषा की बुरी से बुरी कविता पाई जाती है; पर उनमें खड़ीबोली की अच्छी से अच्छी कविता को स्थान नहीं मिला। जहाँ सरकार हिन्दी भाषा का रूप स्थिर कर रही है वहाँ वह हिन्दी कविता की भाषा भी नियत कर दे तो बड़ी अच्छी बात है।

प्रकाशक—श्री० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रॉबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

[illegible] ने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन मुख्य रूप से किया है। साथ ही अनेक राजवंशों और ऋषियों का वर्णन किया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होगा कि उस समय भारत में असुरों ने और स्वार्थी लोगों ने कैसा उपद्रव मचा रक्खा था, जिसको दूर करके समाज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। उस अवतार में बालकृष्ण ने दुष्टों का दमन ऐसी युक्तियों से किया कि किसी को पता भी नहीं चला कि इन असम्भव कार्यों को कौन किस रूप में करके हमारी रक्षा कर रहा है। महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी से केवल सात दिन में इस ग्रन्थ को सुनकर राजा परीक्षित कृतकृत्य हो गये। बढ़िया जिल्द है, चित्रों की अधिकता है। पुस्तक के दो खंड हैं। प्रत्येक खंड का मूल्य १० रुपये।

श्रीमद्भगवतगीता—गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता माहात्म्य आरंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ०·५० पैसे मात्र रक्खा गया है।

ज्ञानेश्वरी—ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा में गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। [illegible] संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rs. 7.50
Single Copy : Rs. 0.65
September 1969
[S]ARASWATI–Reg. No. L. 2

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूल्स वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

अद्भुत अतिथि—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

[illegible]—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूल्स वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएं—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ३·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार रॉबिसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २:५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स। मूल्य ३:२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले मातापिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।......'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।......'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

पापुलर इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
६) रुपये

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक--इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

प्रधान मंत्री की जापान के सम्राट् से भेंट

गत मास जापान की यात्रा में श्रीमती इंदिरा गांधी ने जापान के महामहिम सम्राट् से भेंट की। चित्र में महामहिम समाट् हीरोहीतो, श्रीमती गांधी और महामहिम सम्राज्ञी क्रम से खड़ी हैं।
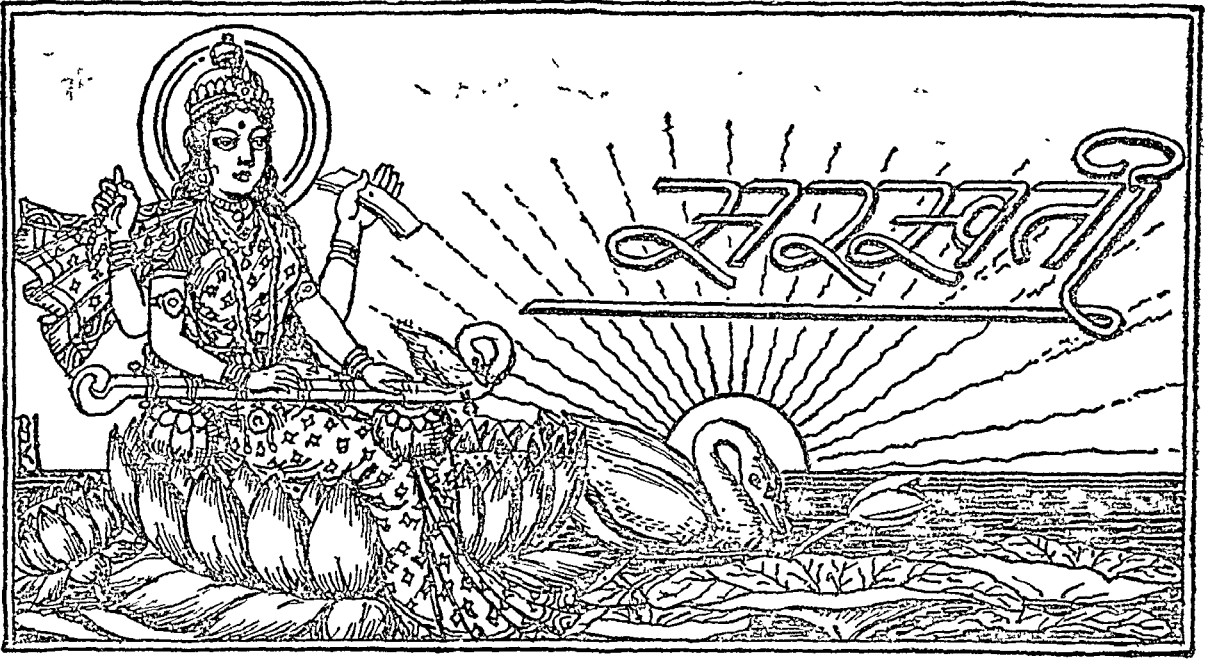
श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७०
पूर्ण संख्या ८३६

इलाहाबाद : अगस्त १९६९ : आषाढ़ २०२६ वि०

खण्ड २
संख्या २

सम्पादकीय

मोहनजोदड़ो-हड़प्पा की मुद्राओं की लिपि के पढ़ने के प्रयास—जब किसी प्राचीन लिपि के पढ़नेवाले नष्ट हो जाते हैं या वे एक नयी लिपि को अपना कर पुरानी लिपि छोड़ देते हैं तो कुछ ही पीढ़ियों बाद वह प्राचीन लिपि दुरूह हो जाती है, और बाद में आनेवाले शोधकर्ताओं के लिए पहेली बन जाती है। इसी देश में अशोक के समय की लिपि भुला दी गयी थी, और अशोक के शिलालेख पढ़े ही नहीं जाते थे। उनके न पढ़े जाने के कारण लोग अशोक को भी भूल गये थे। कहते हैं कि किसी ने एक विद्यार्थी से प्रश्न किया कि अशोक के पिता का क्या नाम था ? उसने इतिहास में पढ़ा हुआ नाम बता दिया, प्रश्न-कर्त्ता ने कहा—नहीं, अशोक का आधुनिक पिता प्रिन्सैप है। पाठकों को मालूम होगा कि प्रिन्सैप ने सबसे पहिले अशोक की लिपि को पढ़ने में सफलता प्राप्त की थी, और उसीके फलस्वरूप वर्तमान युग को अशोक की महानता का परिचय मिला और इतिहास में वह फिर से जीवित हो गया।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो मिट्टी की मुद्राएँ मिली हैं उनमें एक प्राचीन लिपि में कुछ शब्द लिखे हुए हैं। मोहनजोदड़ो की खुदाई इस शती के प्रथम दशक में हुई थी, और तब से पुरातत्ववेत्ता और प्राचीनलिपि-शास्त्री उस लिपि को पढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे मित्र डा० प्राणनाथ विद्यालंकार ने तृतीय दशक में उसे पढ़ने का प्रयत्न किया था और उस पर काफ़ी काम किया था। बम्बई सेंटजेवियर कालिज के इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् फ़ादर हैरास ने भी इस सम्बन्ध में प्रयत्न किये। स्मिथ, गैड, लैंग्डन, हंटर, शंकरानन्द, एस० के० राय आदि देशी-विदेशी विद्वान् इस काम में लगे रहे, किन्तु अभी तक किसी ने इस लिपि की ऐसी कुंजी नहीं निकाल पायी थी जो विद्वानों में सर्वमान्य हो सके।

इधर विद्वानों ने अपनी खोज फिर आरम्भ कर दी है। क बात तो यह हुई कि मोहनजोदड़ो की जो सभ्यता सके आसपास ही सीमित समझी जाती थी, और इसलिए जसे "सिन्धुघाटी की सभ्यता" का नाम दिया गया था, ह आधुनिक खोजों के कारण सिन्धुघाटी से बहुत दूर के थानों में भी पायी गयी है। राजस्थान के कालीबंगा और जरात के लोथल में उसके विस्तृत अवशेष मिले हैं, और ब विद्वानों का मत यह होने लगा है कि वह गुजरात, ध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि में दूर दूर तक फैली ई थी। अब आश्चर्य न होगा कि उसके चिह्न देश के न्य स्थानों में भी मिलें। अतएव इस सभ्यता को जो ाम आरम्भ में (सिन्धुघाटी की सभ्यता) दिया गया था, ह ही अनुपयुक्त हो गया है। दूसरे, यह समझा जाता था के वह द्रविड़ वंश के लोगों की सभ्यता थी। यह बात भी अब संदिग्ध हो गयी है। अतएव इस सभ्यता को ठीक तरह से समझने के लिए उसकी लिपि का पढ़ना और भी अधिक आवश्यक हो गया है।

इस सम्बन्ध में पिछले कुछ महीनों में ऐसे तीन प्रयत्नों के समाचार प्रकाशित हुए है। इसमें पहिला प्रयत्न तो सुदूर फिनलैण्ड के चार विद्वानों का है। उनके नाम हैं—पिटी आल्टो, सिपो कॉसकैनिमी, सिमी पारपोला तथा आस्को पारपोला। इनका दावा है कि उन्होंने उस लिपि को पढ़ने में सफलता प्राप्त कर ली है, किन्तु अभी हमें उनका विस्तृत स्पष्टीकरण देखने को नहीं मिला। इसलिए उनके कार्य का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

दूसरा प्रयास भारतीय पुरातत्व विभाग के श्री एम० वी० एन० कृष्णराव ने किया है। उनका कहना है कि इस लिपि का आरम्भ चित्रलिपि के रूप में हुआ किन्तु बाद में ज्यों ज्यों उसका प्रयोग बढा चित्रों के बहुत से भाग लुप्त हो गये, ऐसे चिह्नों की संख्या उनके मतानुसार प्रायः २०० है। उन्होंने अपनी प्रणाली से मोहनजोदड़ो की पशुपति वाली मुद्रा के शब्दों को 'मखनासन' (Makhanasan) पढ़ा है। यह खोज भी विद्वानों के सामने है किन्तु अभी विद्वानों ने इस पर अपना निर्णय नहीं दिया।

तीसरा प्रयास जोधपुर के प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के निदेशक डा० फतेहसिंह का है। यह प्रयास इन सब प्रयासों में सबसे अधिक विवरणपूर्ण और सफल मालूम होता है। डा० फतेहसिंह की सम्मति में यह लिपि चित्रलिपि नहीं है। देवनागरी की तरह उसमें अलग वर्णों के लिए अलग अलग चिह्न हैं। उन्होंने इस लिपि की कुंजी प्रकाशित भी कर दी है और इस कुंजी की सहायता से उन्होंने मोहनजोदड़ो-हड़प्पा आदि की प्रायः २०० मुद्राओं में अंकित लेख पढ़े हैं। इस लिपि के पढ़ने में अब तक जो सबसे बड़ी बाधा थी वह यह कि विद्वान् यह नही जानते थे कि इस लिपि में कौन सी भाषा लिखी गयी है। डा० फतेहसिंह ने इन मुद्राओं के जो लेख पढ़े हैं वे उन्हें वैदिक संस्कृत भाषा के मालूम हुए। डा० फतेहसिंह के इस आविष्कार से, यदि यह मान्य हो जाय, उस सभ्यता के द्रविड़ सभ्यता होने की धारणा समाप्त हो जाती है। तब मोहनजोदड़ो-हड़प्पा की संस्कृति वैदिक संस्कृति मानी जायगी। डा० फ़तेहसिंह ने अपने मत के समर्थन में जो तर्क और प्रमाण दिये हैं वे विचारणीय हैं। पुरातत्त्व के विद्वान् बिना अच्छी तरह विचार किये उनके मत को स्वीकार नहीं करेंगे, किन्तु डा० फतेहसिंह के प्रमाणों और तर्कों को अस्वीकार करने के लिए अकाट्य तर्कों की आवश्यकता होगी। जो भी हो, अब ऐसा मालूम होता है कि मोहनजोदड़ो की मुद्राओं की लिपि का रहस्योद्घाटन होने में अधिक विलम्ब नहीं है, और उसके पढ़ने के बाद निश्चय ही उस सभ्यता के बारे में हमारी जानकारी अधिक स्पष्ट हो जायगी। संभव है कि इस नयी जानकारी के आधार पर हमें इससे सम्बन्धित कितनी ही मान्यताओं को बदलना पड़े।

बामियान की बुद्ध-मूर्तियों की मरम्मत—अफगानिस्तान में किसी समय बौद्ध-धर्म प्रचलित था। उस समय के बौद्ध स्तूपों और विहारों के अवशेष सारे देश में बिखरे पड़े हैं। सीमान्त प्रदेश और अफगानिस्तान में मूर्तिकला की एक विशेष शैली का विकास हुआ था जिसे गांधार शैली कहते हैं, और जिसके नमूने कितने ही भारतीय संग्रहालयों में भी देखे जा सकते है। लाहौर के संग्रहालय में तो इनका बहुत अच्छा संग्रह है। अफगानिस्तान में बामियान नाम की एक घाटी है। इस घाटी में बौद्ध-काल के सबसे अधिक और सबसे प्रसिद्ध अवशेष पाये जाते हैं। यहाँ एक बड़ा बौद्ध विहार था जो सारी घाटी में फैला हुआ था। इस घाटी में कई जगह चट्टानें

दीवार की तरह प्राय: सीधी खड़ी हैं। उनमें बौद्ध भिक्षुओं ने अनेक गुफाएँ बना ली थीं। चट्टान की दीवार में उन्होंने भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की थीं। इनमें एक खड़ी हुई बुद्ध की मूर्ति तीसरी शती में बनायी गयी थी। वह ११५ फुट (३५ मीटर) ऊँची है। दूसरी मूर्ति पाँचवीं शती में निर्मित हुई थी और यह इससे भी बड़ी है अर्थात् उसका आकार १७४ फुट (५३ मीटर) है। यहाँ जो गुफाएं हैं उनमें भित्तिचित्र भी बने हैं तथा उनमें उत्कीर्ण अलकरण भी हैं। इन चित्रों और उत्कीर्ण अलंकरणों में ग्रीक, ईरानी और भारतीय शैलियों का प्रभाव दिखलाई पड़ता है क्योंकि अफगानिस्तान में ग्रीक और ईरानी शासन भी काफी दिनों रहा, और इस कारण उनकी कला वहाँ काफी फैल गयी थी। अफगानिस्तान कुशान साम्राज्य में भी बहुत दिनों रहा। बौद्ध-धर्म के साथ वहाँ भारतीय कला ने प्रवेश किया था।

बामियान समुद्रतल से प्राय: पौने नौ हजार फुट (२८६५ मीटर) की ऊँचाई पर स्थित है और यहाँ कड़ाके की सर्दी पड़ती है। वर्ष में कई सप्ताह तक यहाँ बर्फ गिरती रहती है। अतएव इन गुफाओं, मूर्तियों और भित्तिचित्रों को इतने दिनों में काफी क्षति पहुँची है। इनको देखने-भालनेवाला कोई न था। इसलिए इनकी कभी मरम्मत भी नहीं हुई। इस प्रदेश में प्रतिवर्ष गर्मियों में यायावर लोग अपने पशुओं को लेकर आते हैं। वे इन गुफाओं में ठहर जाते थे और उनने भी इन्हें काफी क्षति पहुँचायी। धर्मांध मूर्तिभंजक भी यहाँ पहुँचे थे और वे भी मूर्तियों को हानि पहुँचा गये। अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि यदि इनकी मरम्मत और देखभाल नहीं की जाती तो ये अमूल्य कलाकृतियाँ एक दम नष्ट हो जायँगी।

भारत ने अफगानिस्तान सरकार से इनकी रक्षा में सहयोग देने का प्रस्ताव किया था जिसे उसने स्वीकार कर लिया। भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक बामियान गये भी थे और मरम्मत का कार्यक्रम भी बना आये हैं। गुफाओं में रिसते हुए पानी को रोकने तथा चट्टानों के उखड़ते हुए भागों को दृढ़ करने के अतिरिक्त मूर्तियों की मरम्मत तथा भित्तिचित्रों को रासायनिक पदार्थों से स्पष्ट करने तथा उन्हें सुरक्षित रखने का कार्य हाथ में लिया जायगा। अनुमान है कि इस काम की पहिली किश्त में बीस लाख रुपये व्यय होंगे। अभी हाल में जब प्रधान मंत्री श्रीमती गाँधी अफगानिस्तान के राजकीय दौरे पर गयी थीं तब उन्होने बामियान की घाटी में जाकर इन गुफाओं और मूर्तियों को भी देखा था। उनकी इस यात्रा का एक परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने बामियान की मरम्मत के व्यय का आधा व्यय देना स्वीकार कर लिया है। भारत के पुरातत्व विभाग के अभियन्ता और विशेषज्ञ मरम्मत का काम करेंगे। बामियान की इन कलाकृतियों के संरक्षण कार्य में भारत और अफगानिस्तान का सहयोग दोनों देशों को सांस्कृतिक क्षेत्र में निकट लावेगा और वह अभिनंदनीय है।

मलेशिया में भी अँग्रेजी माध्यम समाप्त—मलेशिया और सिंगापुर भी कुछ दिनों पहले तक ब्रिटिश साम्राज्य के अङ्ग थे और अंग्रेजों ने वहाँ भी माध्यमिक और उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बना दिया था। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद मलेशिया निवासियों ने इस अस्वाभाविक स्थिति की विडबना को समझा और वे अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के पद से हटाने का प्रयत्न करने लगे। वहाँकी राष्ट्रीय सरकार को भी इस माँग से पूरी सहानुभूति रही है और अब वहाँके शिक्षा मन्त्री श्री दातो अब्दुल रहमन याकूब ने अंग्रेजी को हटाकर उसके स्थान पर "भाषा मलेशिया" को शिक्षा का माध्यम बनाने का एक कार्यक्रम घोषित किया है। (मलेशिया में 'भाषा' शब्द ही चलता है।) अग्रेजी के माध्यम से अन्तिम माध्यमिक परीक्षा १९७७ में होगी और १९८३ से विश्वविद्यालयों में भाषा मलेशिया में पूरी तरह पढ़ाई होने लगेगी। शिक्षा मन्त्री ने यह घोषणा करते हुए कहा कि भाषा मलेशिया हमारी राष्ट्रभाषा है और देश में एक भाषा हो जाने से सामुदायिक अवरोध दूर हो जायँगे।

मलेशिया में तीन समुदायों के लोग रहते हैं: मलेशियायी, चीनी और भारतीय। सब अंग्रेजी उपनिवेशों की तरह वहाँ भी सब सरकारी काम अंग्रेजी में होता रहा है। इसीलिए भी माध्यमिक स्कूलों के आधे लड़के अंग्रेजी-माध्यम वाले स्कूलों में पढ़ते हैं।

जो भारतीय वहाँ बस गये हैं और जिन्होंने वहाँकी नागरिकता ले ली है वे अधिकतर तमिलभाषी हैं। संभव है कि इनमें से कुछ भारतीय तथा कुछ चीनी राष्ट्रभाषा

मलेशिया का विरोध करें। किन्तु बहुसंख्यक मलेशियायी और सरकार राष्ट्रभाषा को अपने देश में उसका उचित स्थान दिलाने के लिए कृत संकल्प है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि किसी देश की तब तक पूर्ण उन्नति नहीं हो सकती और न उसका राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही विकसित हो सकता है जब तक वह किसी विदेशी भाषा का गुलाम बना हुआ है—चाहे वह अंग्रेजी हो (जैसे ब्रिटिश साम्राज्य के भूत-पूर्व देशों में) अथवा फ्रेंच या पुर्तगाली (जैसे ये फ्रांस और पुर्तगाल अधिकृत अनेक एशियायी और अफ्रीकी देशों में थीं।) हम मलेशिया के इस शुभ और शिव संकल्प की पूरी सफलता चाहते हैं।

पाकिस्तान को रूसी, अमरीकी और चीनी हथियार—पाकिस्तान में फील्ड मार्शल अयूब खाँ के स्थान पर जनरल यहिया खाँ राष्ट्रपति बन गये हैं। दोनों ही सैनिक हैं और दोनों का दृष्टिकोण एक है। इसलिए पाकिस्तान की विदेश-नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि पाकिस्तान की कूटनीति बहुत सफल रही है। दो परस्पर विरोधी शक्तियों को एक साथ संतुष्ट रखना और उन दोनों से अपना काम निकाल लेना सहल काम नहीं है। पर कमाल यह है कि पाकिस्तान ने तो तीन परस्पर विरोधी शक्तियों—रूस, चीन और अमरीका—पर ऐसी जादू की लकड़ी फेरी है कि तीनों ही उसे सहायता देने को आतुर हैं। पहले उसने सबसे अधिक सहायता अमरीका से ली, किन्तु, जब भारत-पाक युद्ध के बाद अमरीका ने उसे शस्त्रास्त्र देने पर रोक लगा दी, तब वह अमरीका से बिगड़ उठा। अमरीका ने पेशावर में एक महत्त्वपूर्ण हवाई अड्डा करोड़ों रुपये लगा कर बनाया था। उसका पहला पट्टा समाप्त होते ही उसने अमरीका से अपना बोरिया-बस्ता समेटने को कह दिया, और अमरीकियों को वह छोड़ना पड़ा। 'मेरे शत्रु का शत्रु मेरा मित्र' तर्क के अनुसार भारत को अपना शत्रु समझने वाले चीन और पाकिस्तान निकट आने लगे, और कुछ ही दिनों में निमक और पानी की तरह आपस में घुल गये। चीन ने पाकिस्तान को भारी संख्या में शास्त्रास्त्र ही नहीं दिये, उसकी कई सैनिक महत्व की सड़कें भी बनाकर पाकिस्तान में अपने प्रभाव और सम्पर्क का रास्ता दृढ़ कर लिया। ताशकन्द में पाकिस्तान रूस के निकट सम्पर्क में आया। रूस उसे चीन से अलग करने और स्वयं अरब सागर में पहुँचने को उत्सुक था। दोनों में सांठ-गांठ हो गयी। रूस ने पाकिस्तान को भारी संख्या में नये और घातक हथियार, टैंक, वायुयान आदि देने आरंभ किये, और बराबर दिये जा रहा है। चीन से तो वह पाकिस्तान का विग्रह न कर सका किन्तु बलूचिस्तान के सागर तट पर स्थित ग्वाडर नामक छोटे से बंदरगाह को एक शक्तिशाली नौसेना अड्डा बनाने का काम उसे मिल गया। हिन्द महासागर में रूस अपना जहाजी बेड़ा रखना चाहता है क्योंकि अंग्रेजों के हटने के बाद इस महासागर में अमरीकी नौसेना के आ जाने का भय है। जो शक्ति हिन्द महासागर पर प्रभुत्व स्थापित कर लेगी वह दक्षिणी एशिया और पूर्वी अफ्रीका से लेकर मलेशिया और हिन्दीचीन तक के देशों की राजनीति को प्रभावित कर सकेगी। रूसियों को अभी तक इस क्षेत्र में कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिल रहा था। उनकी यह उच्चाभिलाषा पूरी हो गयी।

अमरीका और पाकिस्तान से पुरानी मैत्री थी, किन्तु बीच में दोनो में कुछ गलतफहमी हो गयी थी। अमरीकी सेना के मुख्याधिकारी वर्ग को पाकिस्तान के प्रति विशेष मोह है, और वे पाकिस्तान से मैत्री का संबंध बनाये रखना चाहते हैं। उधर पाकिस्तान भी अमरीकी शास्त्रास्त्र प्राप्त करने को उत्सुक है क्योंकि कुछ दिनों पहिले तक उसके सभी शास्त्रास्त्र अमरीका से आते थे। उसके पास सैकड़ों अमरीकी टैंक, तोपें, विमान आदि हैं। इनकी टूट-फूट होती रहती है और इनके लिये नये पुर्जे चाहिए। इन तोपों आदि के लिए अमरीका का ही गोला बारूद चाहिए उनके न मिलने से वे बेकार हो जायंगे। इसके अतिरिक्त, अधिकांश सैनिक अमरीकी शास्त्रस्त्र चलाने के अभ्यस्त हैं। इसलिए यदि अमरीका से हथियार, उनके पुर्जे आदि उनका गोला-बारूद मिलता रहे तो पाकिस्तानी सेना को बड़ी सुविधा होगी। इसलिए यद्यपि उसने भारत-पाक संघर्ष के बाद अमरीकनों को अर्द्धचन्द्र दे दिया था, तथापि वह उनसे लाभ उठाने को उत्सुक है। उधर, अमरीकी भी नहीं चाहते कि वह उनके प्रतिद्वन्द्वियों के हाथ में एकदम चला जाय। इसलिए दोनों समझौता करने को भीतर से उत्सुक हैं। और जहाँ चाह है, वहाँ राह निकल ही आती है।

कई राजनीतिक कारणों से अभी अमरीका पाकिस्तान

को प्रत्यक्ष रूप से-सीधे-सीधे—हथियार नहीं देना चाहता। इसलिए उसने 'द्राविड़ी प्राणायाम' का सहारा लिया है। तुर्की उस सैनिक संघ का सदस्य है जो योरोप के कम्यूनिस्टों के आक्रमण से बचाने के लिए बनाया गया है। इसके सदस्यों को अमरीका ने हथियार दिये हैं। प्रस्ताव यह है कि तुर्की तथाकथित पुराने एक सौ पेटन टैंक पाकिस्तान को दे देवे, और उनकी जगह अमरीका तुर्की को नये टैंक दे देगा। इस प्रकार पाकिस्तान को ये टैंक तुर्की से मिलेंगे। किन्तु इन क्षुद्र चालों से वास्तविकता नहीं छिपायी जा सकती। भारत ने इस सौदे का विरोध किया है और कहा है कि इससे भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बढ़ेगा, दोनों में शास्त्रास्त्रों की होड़ बढ़ेगी और शांति खतरेमें पड़ जायगी। किन्तु अमरीका पर भारत के इस विरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। इसलिए हमें प्रसिद्ध और प्रभावशाली अमरीकी दैनिक 'न्यूयार्क टाइम्स' की एक सम्पादकीय टिप्पणी पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उस टिप्पणी का अनुवाद इस प्रकार है :—

"१९६५ के अनुभव के बाद और पाकिस्तान द्वारा अमरीकन अड्डों को निकाल देने तथा सोवियत रूस और चीन से गठबंधन के बावजूद पाकिस्तान को १०० अमरीकन टैंक देने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस बार उन्हें तुर्की की मार्फत दिया जा रहा है।

और यह सब किया जा रहा है उस आश्वासन के बावजूद जो हाल ही में सेक्रेटरी आफ स्टेट (प्रधानमंत्री) मिस्टर विलियम पी० राजर्स ने नई दिल्ली के नेताओं को दिया था कि पाकिस्तान को निकट भविष्य में हथियार देने का इरादा नहीं है।

गत वर्ष पाकिस्तान को पश्चिम जर्मनी और इटली के द्वारा जान्सन की सरकार ने हथियार भेजने चाहे थे किन्तु ससद सदस्यों (सिनेटरों) के लगातार विरोध के कारण वे नहीं भेजे जा सके। किन्तु पैंएटागन (अमरीकन सेना के मुख्य कार्यालय) में जो सैनिक अधिकारी इस सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि 'हथियारों की सहायता देने से प्रभाव बढ़ता है' वे और गृह मंत्रालय (स्टेट डिपार्टमेएट) अपने प्रयत्नों में बराबर लगे हुए हैं।

कोई कारण नहीं है कि आज किसी भी बहाने से अमरीका पाकिस्तान को हथियार भेजे। पाकिस्तानी कुछ भी सोचते हों किन्तु यह स्पष्ट है कि रूसियों और चीनियों के विरुद्ध (ये) टैंक काम न आवेंगे। इन टैंकों से भारत को खतरा है जिसके पास इस समय प्राय: उतने ही टैंक हैं। जितने पाकिस्तान के पास हैं। इससे उस महाद्वीप में केवल हथियार बढ़ाने की दौड़ बढ़ जायगी। यह एक ऐसी बात है जो न तो पाकिस्तान, न भारत और न संसार ही के हित में है।

'न्यूयार्क टाइम्स' ने थोड़े ही में बड़ी सुन्दरता से स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। ठीक यही दृष्टिकोण भारत का है। अमरीका में ऐसे समझदार लोगों की कमी नहीं है जो उसकी इस कार्रवाई के दुष्परिणाम समझते हैं, और संतोष की बात है कि उसके संसद में भी इस खतरे को समझनेवाले सदस्य हैं। किन्तु अमरीका के जनरल और गृह विभाग मनमानी पर तुले हुए हैं। देखना है कि अमरीका का समझदार जनमत कब उनकी इन खतरनाक हरकतों को रोकने में समर्थ होता है।

रेलों में बिना टिकट के यात्री और सरकार का कड़ा रुख—अभी जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं उससे मालूम होता है कि भारतीय रेलों में प्रति वर्ष २२००० लाख (२ अरब बीस करोड़ व्यक्ति यात्रा करते हैं। यह संख्या उनकी है जो टिकट लेकर चलते हैं। किन्तु कुछ लोग बिना टिकट के भी रेल की यात्रा करते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। पहिले उनकी संख्या नगण्य होती थी। किन्तु इधर कुछ वर्षों से उनकी संख्या बढ़ रही है और वे लोग भी तो टिकट खरीद सकते हैं, कभी-कभी टिकट खरीदना आवश्यक नहीं समझते। रेल-अधिकारियों का ध्यान जब इधर गया तो उन्होंने उन्हें पकड़ने के लिए टिकट निरीक्षकों के विशेष दल बनाये, और धीरे-धीरे उनके पकड़ने के अभियान को तेज करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रतिवर्ष पहिले से अधिक बिना टिकट के यात्री पकड़े जाने लगे। पिछले तीन वर्षों में बिना टिकट यात्रा करते हुए जो लोग पकड़े गये उनकी संख्या इस प्रकार है :—

१९६६-६७ में ८१,२९,६६६

१९६७-६८ में ९०,४९,१६८

१९६८-६९ में १११,७५००० (लगभग)

रेल अधिकारियों का अनुमान है कि बिना टिकट चलनेवालों के कारण रेलों को प्रतिवर्ष २० से २५ करोड़ रुपये की हानि होती है।

सब रेल प्रणालियों में यह रोग एक समान नहीं है। एक वर्ष हुए, एक विशेष सर्वेक्षण करके देखा गया था कि किस रेल प्रणाली में बिना टिकट चलनेवालों का क्या अनुपात है। उस सर्वेक्षण का फल यह है :—

उत्तरपूर्व सीमान्त रेलवे	—११·२ प्रतिशत	यात्री बिना टिकट
उत्तरपूर्व	” —९·३	”
दक्षिण-पूर्व	” —६·९	”
पूर्व	” —५·६	”
उत्तर	” —५·१	”
दक्षिण	” —५·०	”
दक्षिण मध्य	” —४·५	”
पश्चिम	” —४·५	”
मध्य	” —३·३	”

इससे स्पष्ट है कि पूर्व भारत में बिना टिकट यात्रा अधिक होती है। सामान्यतः पूर्वी क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से कमजोर भी सबसे अधिक है। और यहाँकी आबादी भी अधिक है। शायद इन क्षेत्रों में यात्रियों की सख्या भी अपेक्षाकृत अधिक है।

सरकार इस २०-२५ करोड़ वार्षिक आय की हानि को कैसे सहन कर सकती थी। उसने पहिली जून को एक अध्यादेश निकालकर इसे रोकने का प्रयत्न किया है। अभी तक बिना टिकट या अनुपयुक्त टिकट लेकर यात्रा करने वाले पर किराये के अतिरिक्त न्यूनतम ५० पैसे का हर्जाना लगाया जाता था। अब इस न्यूनतम को बढ़ाकर दस रुपये कर दिया गया है। जो लोग हर्जाना समेत किराया नहीं देते वे रेल मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये जाते हैं। अभी तक वह उन पर यात्रा की लम्बाई तथा अन्य बातों को देखकर किराये के अतिरिक्त एक, दो, या ५-७ रुपये जुर्माना कर देता था। उसे अधिक से अधिक १०० रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार था। किन्तु इस अध्यादेश के अनुसार अब मजिस्ट्रेट १० रुपये से कम का जुर्माना नहीं कर सकेगा। अब उसे अधिक से अधिक ५०० रुपये जुर्माना करने का अधिकार दे दिया गया है।

पहिले ऐसा होता था कि यदि किसी कारण से गाड़ी छूटते समय यात्री स्टेशन पर पहुँचा और टिकट न ले सका तो गार्ड को सूचित करके गाड़ी में बैठ जाता था, और गार्ड बाद में उसे एक प्रमाणपत्र दे देता था जिसके आधार पर टिकट निरीक्षक उसका टिकट बना देते थे। किन्तु अब यह आदेश निकाला गया है कि गार्ड तब तक यह प्रमाणपत्र न देगा जब तक यात्री के पास प्लेटफार्म टिकट न हो। सोचने की बात यह है कि यात्री के पास यदि इतना समय हो कि वह प्लेटफार्म टिकट खरीद सकता है, तो अपने गंतव्य स्थान का ही टिकट क्यों न खरीद ले? फिर, छोटे स्टेशनों पर तो गाड़ी आने के कुछ मिनटों पूर्व ही टिकट बाँटना बंद कर दिया जाता है।

इस अध्यादेश में एक और आपत्तिजनक बात है। उसके अनुसार बिना टिकटवाले से ही १० रुपये दंड नहीं लिया जायगा किन्तु उससे भी जिसके पास टिकट तो हो किन्तु उपयुक्त टिकट न हो। अर्थात् यदि कोई यात्री तीसरे दर्जे का टिकट लेकर गाड़ी में घुसने नहीं पाता और आवश्यकता के कारण दूसरे दर्जे के डिब्बे में घुस जाता है और उसे टिकट बदलवाने का समय नहीं है तो उसे अतिरिक्त किराये के साथ दस रुपये दण्ड भी देना होगा। यही नहीं, यदि पैसेंजर का तीसरे या दूसरे दर्जे का टिकट लेकर वह डाक या ऐक्सप्रेस से यात्रा करे तो भी उस पर किराये के साथ दस रुपया दण्ड पड़ेगा। एक ऐसी घटना हमने स्वयं देखी। बदायूँ से एक संभ्रांत पति-पत्नी ने हाथरस का टिकट लिया। चूँकि वे पैसेंजर से चले, उन्हें पैसेंजर के टिकट दिये गये। कासगंज में उन्होंने गाड़ी बदली और डाक में बैठ गये। टिकट-चैकर ने उनसे किराये के अतिरिक्त २० रुपये दण्ड लिये। यह संयोग की बात थी कि सब रेजगारी इत्यादि मिला कर २० रुपये पूरे हो गये, नहीं तो वे रोककर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये जाते और तत्काल रुपया न देने के कारण उन्हें जेल जाना पड़ता।

हम बिना टिकट चलने वालों पर कड़ाई करने के पक्ष में हैं। किन्तु इस अध्यादेश ने उपर्युक्त प्रकार के यात्रियों को भी, जिनका मंशा रेल को धोखा देने का नहीं है, अपराधी बना दिया है। हम इसके विरुद्ध हैं। अध्यादेश तैयार करनेवालों को यात्रियों की असुविधाओं और परिस्थितिजन्य विवशताओं का ध्यान रखना चाहिए। सभी प्रकार के यात्रियों को एक साथ बेईमान और अपराधी समझ कर इस प्रकार दण्ड देना उचित नहीं है। इससे सरकार और रेल-विभाग भले आदमियों की भी सहानुभूति खो देंगे। हमारे प्रतिनिधि संसद-सदस्यों को इस

मामले में दिलचस्पी लेकर इस अध्यादेश की इन असंगत और अनुचित बातों का परिहार कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

मध्यप्रदेश सरकार की धर्मनिरपेक्षता—इंदौर की 'नई दुनिया' में हमने यहा समाचार पढ़ा :—

५ जुलाई को—इन्दौर जिले में सार्वजनिक अवकाश

> इन्दौर ४ जुलाई। इन्दौर कलेक्टर श्री प्रतीपकुमार लाहरी ने सूचित किया है कि शासन आदेशानुसार हिज होलीनेस डाक्टर सैयदना अबुल कवाहद जौहर मोहम्मद बुरहानुद्दीन वोहरा समाज के धर्मगुरु के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में, दिनांक ५ जुलाई ६९ को इन्दौर जिले के लिए सार्वजनिक छुट्टी घोषित की जाती है। यह अवकाश कोषालय तथा उपकोषालयों में लागू न होगा।
>
> इन्दौर नगर निगम में भी अवकाश रहेगा।

फिर उज्जैन के एक दैनिक में यह समाचार देखने को मिला—

> उज्जैन ४ जुलाय। इन्दौर के संभागायुक्त महोदय ने ५ जुलाय शनिवार को वोहरा समाज के धर्मगुरु हिज होलीनेस डा० सैयदना व मौलाना अबुल कईद मोहम्मद बुरहानुउद्दीन साहेब के जन्म दिन के उपलक्ष में उज्जैन जिला स्थित समस्त शासकीय एवं अर्धशासकीय कार्यालयों के लिए सार्वजनिक अवकाश घोषित किया है।
>
> यह अवकाश कोषालय, उपकोषालय तथा वैंकों के लिए प्रभावशील न होगा।

इंदौर के दैनिक के समाचार से हमने समझा था कि यह छुट्टी इंदौर जिले ही में मनाई गयी, किन्तु उज्जैन के समाचार से स्पष्ट हो गया कि यह छुट्टी संभाग (डिवीजन) के आयुक्त (कमिश्नर) की आज्ञा से शायद सारे संभाग में की गयी।

हम यह समाचार पढ़कर आश्चर्यचकित रह गये। मध्यप्रदेश के इंदौर संभाग से हमारा थोड़ा परिचय है। उज्जैन में वोहरा समुदाय के कई सौ परिवार है। इंदौर और मऊ में भी इनके कुछ घर हैं, किन्तु वहुत नहीं। वोहरा लोग मुसलमानों के एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। उनके धर्मगुरु बंबई में रहते हैं। इसके पहले वोहरा समाज के गुरु, क्या, किसी जीवित धर्मगुरु के जन्म दिवस पर छुट्टी नहीं की गयी। आगरे में 'राधास्वामी' नामक एक सम्प्रदाय है। उसके धर्मगुरु वहीं रहते हैं। इस सम्प्रदाय के लोग थोड़े हैं किन्तु बड़े शिक्षित और समृद्ध हैं। उनके धर्मगुरुओं ने विकास-कार्य में भी श्लाघनीय सहयोग दिया और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा रही है। किन्तु उनके जन्मदिवस पर आगरे संभाग की तो वात दूर' आगरे जिले या नगर में भी कभी छुट्टी करने की किसीने कल्पना नहीं की। तव मध्यप्रदेश के धर्म-निरपेक्ष कांग्रेसी शासन ने एक सम्प्रदाय विशेष के जीवित धर्मगुरु के जन्म-दिवस को इतना महत्त्व और यह शासकीय मान्यता क्यों दी? हमारी सरकार धर्मगुरुओं के प्रति सदैव निरपेक्ष रही है। यही नहीं, जैसा कि हम संसद में देख चुके हैं, आवश्यकता होने पर वह उनकी मर्यादा का तनिक भी न विचार करके, उनकी कटु आलोचना और भर्त्सना तक करने में जरा भी मुरव्वत या लिहाज नहीं करती। संसद में गोवर्धन पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्यजी के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया वह इसका साक्षी है। वोहरा सम्प्रदाय के धर्मगुरु की ऐसी कौन सी नयी अलौकिक खूबी मध्यप्रदेश शासन ने आविष्कृत कर ली कि उनके जन्म-दिवस पर सारे संभाग के सरकारी और अर्ध सरकारी कार्यालयों को छुट्टी दे दी गयी? क्या यह सरकार का एक सम्प्रदाय के तुष्टीकरण का भोंड़ा प्रयास नहीं है, और क्या इससे उसने एक अस्वस्थ पराम्परा का सूत्रपात नहीं किया? कल यदि हिज होलीनैस मेहर वावा के अनुयायी महाराष्ट्र में उनके जन्मदिवस पर, या मध्यप्रदेश ही में साईं वावा के भक्त उनके जन्मदिवस पर, सार्वजनिक छुट्टी की माँग करें तो उनकी माँग को मध्यप्रदेश के इस कार्य से पूरा वल मिलेगा। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी हैं और धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करते हैं। किन्तु हम किसी सम्प्रदाय के तुष्टीकरण के भी विरोधी हैं। इस प्रकार के तुष्टीकरण से दूसरे सम्प्रदायों में प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है। उससे साम्प्रदायिक भावना उत्पन्न होती और पनपती है तथा सरकार की निष्पक्षता पर भी संदेह किया जाने लगता है।

इस देश में यह आम शिकायत है कि यहाँ छुट्टियाँ बहुत दी जाती हैं। सरकार वरावर राजपत्रित छुट्टियों

की संख्या कम करती जा रही है। एक दिन की छुट्टी में जनता के लाखों रुपये लग जाते हैं और उसे जो असुविधा होती है वह अलग। जीवित नेताओं के जन्म-दिवसों पर भी छुट्टी नहीं दी जाती। पंडित जवाहरलाल नेहरू के जन्म-दिवस पर भी सार्वजनिक कार्यालयों में छुट्टी नहीं होती थी, और राष्ट्रपति तक के जन्म-दिवस पर आज भी छुट्टी नहीं होती। जीवित व्यक्तियों के जन्मदिवस को इस प्रकार सार्वजनिक अवकाश देकर मनाने का हमें कोई औचित्य नहीं मालूम होता।

हमें मध्यप्रदेश शासन के इस विचित्र कार्य का कोई तर्कसंगत कारण नहीं मिल रहा। बोहरा समाज बड़ा धनी समाज है और उसने पिछले चुनाव में कांग्रेस का समर्थन अवश्य किया था। किन्तु हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि यह कार्य मध्यप्रदेश की कांग्रेसी सरकार ने उसीकी कृतज्ञता में किया है। जो भी हो, म०प्र० शासन को अपने इस कार्य का स्पष्टीकरण करना चाहिए, नहीं तो लोगों में गलतफहमी फैल सकती है।

हमें विश्वास है कि मध्यप्रदेश सरकार इस भूल की पुनरावृत्ति न करेगी।

यहाँ एक और बात कह देना आवश्यक है। हमारी यह मान्यता है कि जिस व्यक्ति से हजारों-लाखों नर-नारियों को आध्यात्मिक प्रेरणा, आत्मिक सान्त्वना और शान्ति मिलती हो, वह सभी लोगों के लिए आदरणीय है। अतएव हम प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के धर्मगुरु को आदर की दृष्टि से देखते हैं, और डा० सैयदना साहब के लिए भी हमारे हृदय में बड़ा आदर और सम्मान है। वे धर्मगुरु तो हैं ही, देश के सांस्कृतिक और शिक्षा की गतिविधियों में भी रुचि लेते हैं। हमें बताया गया है कि वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के चांसलर भी रह चुके हैं और उन्होंने उसे प्रचुर आर्थिक सहायता भी दी है। अतएव उनकी दिलचस्पी अपने सम्प्रदाय और समुदाय तक ही सीमित नहीं है। उनका स्थान देश के सार्वजनिक जीवन में भी उल्लेखनीय है। यह लिखना यह स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हो गया है कि हमें उनके व्यक्तित्व के प्रति आदर-भाव है। हमने जो कुछ लिखा है उसका उनके व्यक्तित्व से कोई संबंध नहीं है। हमने तो केवल सार्वजनिक दृष्टि से एक सिद्धान्त की बात उठायी है।

रेल-दुर्घटनाएँ—इधर देश में लगातार कई रेल-दुर्घटनाएँ हुई हैं। इनमें धन-जन को भारी हानि हुई है। विशेष चिन्ता का विषय यह है कि इनमें से कई दुर्घटनाओं का कारण असामाजिक तत्त्वों द्वारा तोड़-फोड़ बतलाया गया है। तोड़-फोड़ का सरल उपाय 'फिश प्लेटों' को खोल देना या पटरी के नीचे बिछे स्लीपरों में मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा देना है। 'फिश प्लेट' वे लोहे की मोटी पट्टियाँ हैं जो दो रेलों के सिरों में बोल्ट्र द्वारा कस दी जाती हैं। इनसे दोनों पटरियाँ एक साथ कसी रहती हैं। इन फिश प्लेटों के खोल देने से गाड़ी आने पर पटरियाँ अपने स्थान से हट जाती हैं, और रेल का पहिया स्लीपरों या धरती में घुस जाता है और वेग से चलने वाली गाड़ी इस सहसा अवरोध के कारण उलट जाती और उसके डिब्बे एक दूसरे में घुस जाते हैं। फिशप्लेट खोलना कठिन भी नहीं है क्योंकि वह बड़ी रिंच से आसानी से खुल जाता है। इधर रेल में जो सुधार हुए हैं उनमें एक सुधार यह भी है कि कई रेलें झलाई करके जोड़ दी जाती हैं। उसी प्रकार 'फिश प्लेट' को बोल्ट से न कस कर उन्हें पटरियों में झलाई (वैल्ड) करके क्यों नहीं जोड़ा जा सकता? तब उनका खोलना इतना सरल न रह जायगा! इसी तरह लकड़ी के स्लीपरों की जगह धीरे-धीरे लोहे के स्लीपरों का उपयोग बढ़ाया जाना चाहिए—विशेषकर पुलों आदि पर तो उन्हें तुरन्त बदल देना चाहिए। हम जानते हैं कि इनकी व्यावहारिकता का *निर्णय योग्य अभियन्ता ही कर सकते हैं, किन्तु यदि* इन सुझावों को कार्यान्वित करने में कोई तकनीकी कठिनाई हो तो वह जनता को बतलायी जानी चाहिए।

किन्तु सब सावधानी करने के बाद भी असामाजिक तत्त्व कुछ न कुछ तोड़-फोड़ करेंहीगे। हमारा पहला उद्देश्य तो तोड़-फोड़ को भरसक कठिन बनाना होना चाहिए। वास्तविक उपाय तो असामाजिक तत्त्वों की गतिविधियों पर कड़ी निगाह तथा स्थानीय जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त करना ही है। नौकरशाही के लिए जन सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि जब तक जनता में रेलों के लिए अपनत्व की भावना उत्पन्न नहीं की जाती तब तक वह सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। फिर उसे कौन प्राप्त कर सकता है? हमारे नेता और सामाजिक कार्यकर्ता यदि चाहें तो इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकते हैं। किन्तु आज की परिस्थिति में उनसे कितनी आशा की सकती है!

अब भी यह होने लगा!—कुछ दिन पहले तक यदि किसीके यहाँ कुर्की आ जाय तो वह समझता था कि उसकी इज्जत धूल मे मिल गयी। सरकारी और अर्द्ध सरकारी संस्थाओं का इतना रोब था कि उन पर क़ुर्की निकलाने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। किन्तु अब समय बदल गया है, और जिन बातों की पहले कल्पना भी नहीं की जाती थी, वे घटित हो रही हैं। सरकार पर यदि किसी का पावना होता था तो उसके निकालने की जटिल विधि के कारण कुछ विलम्ब भले ही लग जाय, किन्तु वह बिना अधिक झंझट के मिल जाता है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद अनुशासन की ढिलाई के कारण सरकारी कार्य में जो अदक्षता उत्पन्न हो गयी है, वह सर्वविदित है कभी-कभी सरकारी कार्यालय ही उसके शिकार हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, हम कितने ही कार्यालयों को जानते हैं जिनके टेलीफोन समय पर टेलिफोन-बिल भुगतान न करने

[शेष पृष्ठ १६५ पर देखिए

बत्तीस विद्याएँ और चौंसठ कलाएँ (२)

श्री मण्डन मिश्र

शुक्र नीति के अनुसार कलाएँ अनन्त हैं। इनके नाम भी नहीं गिनाये जा सकते परन्तु उनमें मुख्य ६४ हैं, और उन्हीका यहाँ दिग्दर्शन-मात्र कराया जायगा। वात्सायन प्रणीत "कामसूत्र" के टीकाकार जयमंगल ने दो प्रकार की कलाओं का उल्लेख किया है—पहली "काम शास्त्रांग भूता" और दूसरी "तन्त्रा वापऊपैकी"। इन दोनों के प्रत्येक में ६४ कलाएँ है। इनमें कई कलाएँ समान ही हैं और बाकी पृथक्। पहले प्रकार में २४ कर्माश्रया, २० द्यूताश्रया, १६ सहनोपचारिका, और ४ उत्तर कलाएँ, इस तरह ६४ मूल कलाएँ हैं। इनकी भी अवान्तर और कलाएँ है जो सब मिलाकर ५१८ होती हैं। दूसरे प्रकार की भी सर्वसाधारण की उपयोगिनी ६४ कलाएँ हैं। श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने श्रीभागवत के दशम् स्कन्ध के ४५ वें अध्याय के ६४ वें श्लोक की टीका में प्रायः दूसरे प्रकार की कलाओं का नाम निर्देश किया है। किन्तु शुक्राचार्य ने अपने "नीतिसार" में जिन कलाओं का विवरण दिया है उनमें कुछ तो उपर्युक्त कलाओं से मिलती हैं पर बाकी सब भिन्न है। यहाँ पर जयमंगल के टीकोक्त साधारण कलाओं का केवल नाम ही पाठकों की जानकारी के लिए लेकर उसके बाद "शुक्रनीतिसार" के क्रमानुसार कलाओं का दिग्दर्शन कराया जायगा। जयमंगल के मातानुसार ६४ कलाएँ ये हैं: १ गीत, २ वाद्य, ३-४ आलेख्य, ५ विशु विशेपवय छेद्य "मस्तक पर तिलक लगाने के लिए कागज, पत्ती आदि काटकर आकार या साँचे बनाना", ६ तन्दुल कुसुम वलिदिकार "देव आदि पूजन के अवसर पर तरह-तरह के रँगे हुए चावल, जौ आदि वस्तुओं की तथा रंग-बिरंगी फूल विधित प्रकार से सजाना", ७ पुष्पास्तरण, ८ दश नव सनांग राग "दाँत, वस्त्र, शरीर के अवयवों का रँगना, ९ "मणिभूमिका कर्म" घर के फर्श के कुछ भागों को मोती. मणि आदि रत्नों से जड़ाना, १० शयन रचना, "पलंग लगाना", ११ उदक् वाद्य "जलतरंग", १२ "उद्गाघात" दूसरों पर हाथों या पिचकारी से जल की चोट मारना", १३ चित्रास्च योगा : "जड़ीबूटियों के योग से ऐसी विविध चीजें तैयार करना या ऐसी औषधियाँ बनाना अथवा ऐसे मन्त्रों का प्रयोग करना जिनसे शक्ति निर्बल हो या उसकी हानि हो", १४ माल्य ग्रथन विकल्प "माला गूँथना", १५ शेखर कपिण "योजन स्त्रियों की चोटी पर पहनने के अलंकारों के रूप में पुष्पों का गूंथना", १६ नेपथ्य प्रयोग "शरीर को वस्त्र, आभूपण, पुष्प आदि से सुसज्जित करना", १७ कर्णपत्र भंग शंख "हाथीदाँत आदि के अनेक तरह के कान के आभूषण बनाना", १८ गन्धयुक्त "सुगन्धित घूप बनाना", १९ भूषण योजन "गहनों से सजाना", २० ऐन्द्रजाल "जादू के खेल", २१ कौचमार योग "वल वीर्य बढ़ानेवाली औषधें बनाना", २२ हस्त लाघव "हाथों का काम करने में फुर्ती तथा सफाई", २३ विचित्र साक् यूष भक्ष्य विकार क्रिया" तरह-तरह के शाक, कढ़ी, रस मिठाई आदि बनाने की क्रिया, २४ "पानक् रस रागासव योजन" विविध प्रकार के शर्बत, आसव आदि बनाना, २५ सूची वान कर्म "सुई का काम" जैसे सीना, रफू करना, कशीदा काढ़ना, मोजे-गंजी आदि बुनना", २६ सूत्र पथ क्रीड़ा" तागें या डोरियों से खेलना "जैसे कठपुतली के खेल में", २७ वीणा डमरूक वाद्य, २८ प्रहेलिका "पहेलियाँ जानना", २९ प्रतिमाला "श्लोक आदि कविता पढ़ने की मनोरंजक रीति", ३० "द्वाचक योग" ऐसे श्लोक आदि पढ़ना जिनका अर्थ और उच्चारण दोनों कठिन हो, ३१ पुस्तक वाचन, ३२ नाटकाख्यायिका दर्शन, ३३ काव्य समस्या पूरण ३४ पट्टीका वेत्र वाण विकल्प "पीढ़ा, आसन, कुर्सी, पलंग, मोढ़े आदि चीजें वेंत आदि से बनाना" ३५ तक्ष कर्म "लकड़ी, धातु आदि वस्तुओं को अभीष्ट विभिन्न आकारों में काटना", ३६ "तक्षण वढ़ई का काम", ३७ वास्तु विद्या. ३८ रूप्य रत्न "परीक्षा सिक्के रत्न आदि की परीक्षा करना", ३९ धातुवाद "पीतल आदि धातुओं को मिलना, शुद्ध करना आदि", ४० मणिरागाकार ज्ञान "मणि आदि का रंगना, खान आदि के विषय का ज्ञान, ४१ वृक्षायु वेद योग, ४२ मेप कुक्कट लावक युद्ध विधि मेढ़े, मुर्गे, तीतर आदि लड़ाना, ४३ शुक सारिका प्रतापन—तोता-मैना आदि की बोली सीखना, ४४ उत्सादन सम्वाहन केश मर्दन कौशल" हाथ, पैरों से शरीर दबाना, केशों का मलना, उनका मैल दूर करना आदि, ४५ अक्षर मुष्टिका कथन "अक्षरों को ऐसी युक्ति से कहना कि उस संकेत का जानने वाला ही उनका अर्थ समझे दूसरा नहीं", ४६ मलेच्छित विकल्प "ऐसे संकेत से लिखना जिसे उस संकेत का जानने वाला ही समझे, ४७ देश भाषा

विज्ञान, ४८ पुष्पवाटिका, ४९ निमित्त ज्ञान "शकुन जानना", ५० यन्त्र मात्रिका "विविध प्रकार के मशीन, कल, पुर्जे आदि बनाना, ५१ धारण मात्रिका "सुनी हुई बातों का स्मरण रखना", ५२ समपाठ्य, ५३ मानिसी काव्य क्रिया" "किसी श्लोक में छोड़े हुए पद को मन से पूरा करना", ५४ अविधानकोष, ५५ छन्दों का ज्ञान, ५६ क्रिया कल्प "काव्यालंकारों का ज्ञान", ५७ छलिकत योग "रूप और बोली छिपाना", ५८ वस्त्र गोपन शरीर के अंगों को छोटे या बड़े वस्त्रों से यथायोग्य ढकना, ५९ द्यूत विशेष ६० आकर्ष क्रीड़ा "पासों से खेलना", ६१ बाल क्रीड़न, ६२ वैनेकी ज्ञान अपने पराये से विनय पूर्वक शिष्टाचार करना,६३वैजेकी ज्ञान विजय प्राप्त करने की शस्त्र विद्या और ६४ व्यायाम विद्या।

शुक्राचार्य का कहना है कि कलाओं के भिन्न-भिन्न नाम नहीं हैं अपितु केवल उनके लक्षण ही कहे जा सकते हैं क्योंकि क्रिया के पार्थक्य से ही कलाओं में भेद होता है। जो व्यक्ति जिस कला का अवलम्बन करता है उसकी जाति कला के नाम से कही जाती है। पहली कला है नृत्य। हाव-भाव आदि के साथ गति नृत्य कहा जाता है। नृत्य में करण, अंगहार, विभाव, भाव, अनुभाव और रसों की अभिव्यक्ति की जाती है। नृत्य के दो प्रकार हैं—एक नाट्य और दूसरा अनाट्य। स्वर्ग, नरक या पृथ्वी के निवासियों की कृति का अनुकरण नाट्य कहा जाता है। अनुकरण विरहित नृत्य, अनाट्य। यह कला अति प्राचीन काल से बड़ी उन्नत दशा में थी। भगवान् शंकर का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है। आज तो इस कला का पेशा करने वाली एक जाति ही कथक नाम से प्रसिद्ध है। वर्षा ऋतु में घन गर्जना से आनन्दित मोर का नाच बहुतों ने देखा होगा। नृत्य एक स्वाभाविक वस्तु है जो हृदय में प्रसन्नता का उद्रेक होते ही बाहर व्यक्त हो उठती है। कुछ कलाविद् पुस्तकों ने इसी स्वाभाविक नृत्य को अन्यान्य अभिनव विशेषणों से रँगकर कला का रूप दे दिया है।

जंगली से जंगली और सभ्य से सभ्य समाज में नृत्य कला एक प्रधान सामाजिक वस्तु हो गई है। प्राचीन काल में इस कला की शिक्षा राजकुमारों तक के लिए आवश्यक समझी जाती थी। अर्जुन द्वारा अज्ञातवास काल में राजा विराट् की कन्या उत्तरा को बृहन्नला रूप में इस कला की शिक्षा देने की बात महाभारत में प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत में यह कला अब भी थोड़ी बहुत मौजूद है। "कथाकलि" में उसकी झलक मिलती है। श्री उदयशंकर आदि कुछ कलाप्रेमी इस कला को फिर जाग्रत करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। २. अनेक प्रकार के वाद्यों का निर्माण और उनके बजाने का ज्ञान कला है। वाद्यों के मुख्यतया ४ भेद हैं—१. तत्, २. सुखीर, ३. अवन्ध, ४. घन। तार अथवा ताँत का जिसमें उपयोग होता है वे वाद्य तत् कहे जाते हैं जैसे—वीणा, तंबूरा, सारंगी, बेला, सरोद आदि। जिसका भीतरी भाग पोला हो और जिसमें वायु का उपयोग होता हो उसे सुपर कहते हैं। जैसे—बाँसुरी, अलगोजा, शहनाई, शंख, हारमोनियम आदि। चमड़े से मढ़ा हुआ वाद्य अवन्ध कहा जाता है, जैसे—ढोल, नगाड़ा, तबला, मृदंग, ढप, खँजड़ी आदि। परस्पर आघात से बजाने योग्य वाद्य 'घन' कहलाता है जैसे—झाँझ, मजीरा, करताल आदि। यह कला गाने से सम्बन्ध रखती है। बिना वाद्य के गान में मधुरता नहीं आती। प्राचीनकाल में भारत के वाद्यों में वीणा मुख्य थी। इसका उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः आता है। सरस्वती और नारद का वीणा-वादन, श्रीकृष्ण की वंशी, महादेव का डमरू प्रसिद्ध ही हैं। वाद्य आदि विषय के संस्कृत में अनेक ग्रन्थ है। उनमें वाद्यों के परिमाण, उनके बनाने और मरम्मत करने की विधियाँ आदि मिलती हैं। राज्याभिषेक, यात्रा, उत्सव, विवाह, उपनयन आदि मांगलिक कार्यों के अवसरों पर भिन्न-भिन्न वाद्यों का उपयोग होता है। युद्ध में सैनिकों के उत्साह-शौर्य आदि बढ़ाने के लिए अनेक तरह के बाजे बजाये जाते हैं।

३. स्त्री और पुरुषों को वस्त्र एवं अलंकार सुचारु रूप से पहनाना 'कला' है।

४. अनेक प्रकार के रूपों का अविर्भाव करने का ज्ञान 'कला' है। इस कला का उपयोग हनुमानजी ने श्री रामचन्द्रजी के साथ पहली बार मिलने के समय ब्राह्मण वेश धारण करने में किया था।

५. शय्या और आस्तरण—बिछौना सुन्दर रीति से बिछाना और पुष्पों को अनेक प्रकार से गूँथना 'कला' है।

६. द्यूत 'जुआ' आदि अनेक क्रीड़ाओं से लोगों का मनोरंजन करना 'कला' है। प्राचीन काल में द्यूत के अनेक प्रकारों के प्रचलित होने का पता लगता है। उन सब में अक्षक्रीड़ा "चौपड़" विशेष प्रसिद्ध थी। नल, युधिष्ठिर, शकुनि आदि इस कला में निपुण थे।

७. अनेक प्रकार के आसनों द्वारा सुरत का ज्ञान 'कला'

है। इन सात कलाओं का उल्लेख 'गान्धर्व वेद' में किया गया है।

८. विविध प्रकार के मकरन्दों 'पुष्परस' से आसव, मद्य आदि का बनाना 'कला' है।

९. शल्य 'पादादि अंग में चुभे काँटे' की पीड़ा को कम कर देना, या शल्य को अंग में से निकाल डालना, शिरा 'नाड़ी' और फोड़े आदि की चीर-फाड़ करना 'कला' है। हकीमों की जर्राही और डाक्टरों की सर्जरी इसी कला के उदाहरण हैं।

१०. हींग आदि रस 'मसाले' से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों का पकाना 'कला' है। महाराज नल और भीमसेन जैसे पुरुष भी इस कला में निपुण थे।

११. वृक्ष, गुल्म, लता आदि लगाने, उनसे विविध प्रकार के फल, पुष्पों को उत्पन्न करने एवं उन वृक्षादि का अनेक उपद्रवों से संरक्षण करने का नाम 'कला' है। प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में सुरम्य उद्यान्, उपवन आदि का बहुत उल्लेख प्राप्त होता है। इससे मालूम होता है कि बहुत प्राचीनकाल में भी यह कला उन्नत दशा में थी।

१२. पत्थर, सोना, चाँदी आदि धातुओं को 'खान में से' खोदना, उन धातुओं की भस्म बनाना 'कला' है।

१३. सभी प्रकार के इक्षु (ईख) से बनाये जा सकनेवाले पदार्थ जैसे—राब, गुड़, चीनी, मिसरी, कन्द आदि बनाने का ज्ञान 'कला' है।

१४. सुवर्ण आदि अनेक धातुओं और अनेक औषधियों को परस्पर मिश्रित करने का ज्ञान (खिनथिसिस) 'कला' है।

१५. मिश्रित धातुओं को उस मिश्रण से अलग-अलग कर देना (अनालिसिस) 'कला' है।

१६. धातु आदि के मिश्रण का विज्ञान 'कला' है।

१७. लवण (नमक) आदि को समुद्र से या मिट्टी आदि पदार्थों से निकालने का विज्ञान 'कला' है। इन दसों कलाओं का आयुर्वेद से सम्बन्ध है। इसलिए ये कलाएँ आयुर्वेद के अन्तर्भूत हैं। इनमें आधुनिक बॉटनी, माइनिंग, मेटालर्जी, केमस्ट्री आदि आ जाते हैं।

१८. पैर आदि अंगों के विशिष्ट संचालनपूर्वक 'पैंतरा बदलते हुए' शस्त्रों का लक्ष्य स्थिर करना और उनका चलाना 'कला' है।

१९. शरीर की सन्धियों (जोड़ों) पर आघात करते हुए भिन्न-भिन्न अंगों को खींचते हुए दो मल्लों (पहलवानों) का युद्ध कुश्ती 'कला' है। इस कला में भी भारत प्राचीन काल से अब तक सर्वश्रेष्ठ रहा है। श्रीकृष्ण ने कंस की सभा के चाणूर, मुष्टिक आदि प्रसिद्ध पहलवानों को इस कला से पछाड़ा था। भीमसेन और जरासन्ध की कुश्ती कई दिनों तक चलने का उल्लेख महाभारत में आया है। आज भी गामा आदि के नाम जगद्विजयी मल्लों में है। पंजाब, मथुरा आदि के मल्ल अभी भी इस कला में अच्छी निपुणता रखते हैं। इस युद्ध का एक भेद 'बाहुयुद्ध' है। इसमें मल्ल लोग किसी शस्त्र का उपयोग न कर केवल मुष्टि से युद्ध करते हैं। इसे 'मुक्की' मुक्काबाजी 'किंग्स बाक्सिग' कहते हैं। काशी के दुर्गाघाट पर कार्तिक में होने वाली मुक्की प्रसिद्ध है। बाहुयुद्ध में लड़कर मरनेवाले की शुक्राचार्य ने निन्दा की है। वे लिखते हैं 'मृतस्य तस्य न स्वर्गो यशो नेहापि विद्यते, बरदर्पविनाशन्तं नियुद्ध यशसे रिपोः, न कस्यासीद्धि कुर्यादै प्राणान्तं बाहुयुद्धकम्।' बाहुयुद्ध में मरनेवाले को न तो इस लोक और न परलोक में स्वर्ग-सुख मिलता है। किन्तु मारनेवाले का यश अवश्य होता है क्योंकि शत्रु के बल और दर्प 'घमण्ड' का अन्त करना ही युद्ध का लक्ष्य होता है। इसलिए प्राणान्त 'शत्रु के मर जाने तक' बाहुयुद्ध करना चाहिए। ऐसे युद्ध का उदाहरण मधुकैटभ के साथ विष्णु का युद्ध है, जो समुद्र में पाँच हजार वर्ष तक होता रहा था। 'मधुकैटभ भी दुरात्मानावतिवीर्य-पराक्रमौ, क्रोधरक्तेक्षणावंतु ब्राह्मणं जनितोद्यमी। समुत्थाय ततस्ताभ्यौ युयुधे भगवान्हरिः पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ सप्तशती, १ अध्याय।

२०. कृत और प्रतिकृत आदि अनेक तरह के अति भयंकर बाहु—मुष्टि—प्रहारों से अकस्मात् शत्रु पर झपट कर किये गये आघातों से, एवं शत्रु द्वारा किये गये ऐसे आघातों को 'निपीड़न' कहते हैं और शत्रु द्वारा किये गये ऐसे 'निपीड़न' से अपने को बचा लेने का नाम प्रतिक्रिया है। अर्थात् अपना बचाव करते हुए शत्र पर केवल बाहुओं से भयंकर आघात करते हुए युद्ध करना 'कला' है।

२१. अभिलक्षित देश (निशाने) पर विविध यन्त्रों से अस्त्रों को फेंकना और किसी 'बिगुल, तुरही आदि' वाद्य के संकेत से व्यूह रचना, 'किसी खास तरीके से सैन्य को खड़ा करने की क्रिया करना 'कला' है। इससे पता लगाता है कि यन्त्रों से फेंके जानेवाले शस्त्र—आजकल के बन्दूक, तोप, मशीनगन, तारपीडो आदि की तरह—प्राचीनकाल में

भी उपयोग में लाये जाते होंगे। किन्तु उनसे होने वाली भारी क्षति को देखकर उनका उपयोग कम कर दिया गया होगा। मनु ने भी महायन्त्र-निर्माण का निरोध किया है।

२२. हाथी, घोड़े और रथों की विशिष्ट गतियों से युद्ध का आयोजन करना 'कला' है। १८ से २२ तक की पाँच कलाएँ 'धनुर्वेद' से सम्बन्ध रखती है।

२३. विविध प्रकार के आसन 'बैठने के प्रकार' एवं मुद्राओं जैसे दोनों हाथों की अँगुलियो से बननेवाली अंकुश पद्म, धनु आदि से देवताओं को प्रसन्न करना 'कला' है। इस कला पर आधुनिकों का विश्वास नही है, तो भी कहीं कहीं इसके जाननेवाले व्यक्ति पाये जाते है। इसका प्राचीन समय में खूब प्रचार था। संस्कृत में अनेक तंत्र एवं आगम के ग्रन्थों मे मुद्रा आदि का वर्णन देखने में आता है। हिपनटिज्म जाननेवालों में कुछ मुद्राओं का प्रयोग देखा जाता है। वे मुद्रा द्वारा अपनी शक्ति का संक्रमण अपने प्रोयोज्य विधेय में करते हैं।

२४. सारथ्य—रथ हांकने का काम—कोचवानी एवं हाथी घोड़े को अनेक तरह की गतियों, चालों की शिक्षा देना 'कला' है। इसकी शिक्षा किसी समय सभी राजकुमारों के लिए आवश्यक समझी जाती थी। यदि इस कला में निपुण न होते तो जब दुर्योधन आदि विराट् की गौओं का अपहरण करने के लिए आये उस समय अर्जुन का सारथ्य उसका प्रतिकार कैसे कर सकता था? भारत युद्ध में श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ कैसे हांक सकते, या कर्ण का सारथ्य शल्य कैसे कर सकते? आज भी शौकीन लोग सारथि (ड्राईवर) को पीछे बैठा कर स्वयं मोटर आदि हाँकते हुए देखे जाते हैं।

२५. मिट्टी, लकड़ी, पत्थर और पीतल आदि धातुओं से बर्तनों का बनाना 'कला' है। इसका अनुमान जमीन की खुदाई से निकले हुए प्राचीन बर्तनों को 'वस्तु संग्रहालय' (म्युजियम) में देखने से हो सकता है।

२६. चित्रों का आलेखन 'कला' है। प्राचीन चित्रों को देखने से प्रमाणित होता है कि यह कला भारत में किस उच्चकोटि तक पहुँची हुई थी। प्राचीन मन्दिर और बौद्ध विहारों की मूर्तियों और अजन्ता आदि गुफाओं के चित्रों को देखकर आश्चर्य होता है। आज कई शताब्दियों के व्यतीत हो जाने पर भी वे ज्यों के त्यों दिखलाई पड़ते हैं। उनके रंग ऐसे दिखलाई पड़ते हैं कि जैसे अभी कारीगर ने उनका निर्माण कार्य समाप्त किया हो। प्रत्येक वर्ष हजारों विदेशी यात्री उन्हें देखने के लिए दूर-दूर से आते रहते हैं। प्रयत्न करने पर भी आज के लोग वैसे रंगों को नहीं बना सके। यह कला इतनी व्यापक थी कि देश के हर कोने में, घर-घर में, इसका प्रचार था। अब भी घरों के द्वार पर गणेशजी आदि के चित्र बनाने की चाल प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। कई सामाजिक उत्सवों के अवसरो पर स्त्रियाँ इस कला में बहुत निपुण होती थीं। बाणासुर की कन्या ऊषा की सखी चित्रलेखा इस कला में बड़ी सिद्धहस्त थी। वह एक बार देखे हुए व्यक्ति का बाद में हु-बहू चित्र बना सकती थी। चित्र-कला के ६ अंग हैं—रूपभेद—रंगों का मिलावट २. प्रमाण चित्र में दूरी और गहराई आदि का दिखलाना और चित्रगत वस्तु के अंगों का अनुपात, ३. भाव और लावण्य की योजना ४. सादृश्य, ५. वर्ण क्रम—'रगों का सामजस्य' और ६. भंग—'रचना कौशल'।

२७. तालाब, बावली, कूप, प्रासाद, महल और देव-मन्दिर आदि का बनाना और ऊँची-नीची भूमि को सम अर्थात् बराबर करना 'कला' है। 'सिविल इंजीनियरिंग' का इसमें समावेश किया जा सकता है।

२८. घटी (घड़ी) आदि समय का निर्देश करनेवाले यन्त्रों का एवं अनेक वाद्यों का निर्माण करना 'कला' है। प्राचीन समय में समय का माप करने के लिए जलयंत्र, बालु, यन्त्र, धूपघड़ी आदि साधन थे। अब घड़ी के बन जाने से यद्यपि उनका व्यवहार कम हो गया है, तो भी कई प्राचीन शैली के ज्योतिषी लोग अब भी विवाह आदि के अवसर पर जल यन्त्र द्वारा ही सूर्योदय से इष्टकाल का साधन करते हैं, एवं कई प्राचीन राजाओं की डेवढ़ो पर अब भी जलयंत्र बालुकायंत्र या धूपघड़ी के अनुसार समय निर्देशक घन्टा बजाने की प्रथा देखने में आतो है। आश्चर्य है कि इन्हीं यन्त्रों की सहायता से प्राचीन ज्योतिषी लोग सूक्ष्मातिसूक्ष्म समय के विभाग का ज्ञान स्पष्टयता प्राप्त कर लिया करते थे, और उसीके आधार पर बनी जन्मपत्री से जीवन की घटनाओं का ठीक-ठीक पता लगा लिया जाता था।

२९. कतिपय रंगों के अल्प, अधिक या सम संयोग "मिलावट" से बने विभिन्न रंगों से वस्त्र आदि वस्तुओं का रंगना भी कला है। पहले यह कला घर-घर में थी, किन्तु इसका भार मालूम होता है कि रंगरेजों के ऊपर ही छोड़ दिया गया है। यहाँके रंग बड़े सुन्दर और टिकाऊ होते थे। यहाँके रंगों से रँग वस्त्रों का बाहर देशों में बड़ा आदर

था। अब भी राजपूताने के कई नगरों में ऐसे-ऐसे कुशल रंगरेज है कि जो महीन से महीन-मलमल को दोनों ओर से विभिन्न रंगो मे रग देते हैं। जोधपुर में कपड़े को स्थान-स्थान पर बाँधकर इस तरह से रंग देते है कि उसमें अनेक रंग और वेलवूटे रंग जाते हैं।

३०. जल, वायु और अग्नि के संयोग से उत्पन्न वाष्प "भाप" के निरोध (रोकने) से अनेक क्रियाओं का सम्पादन 'कला' है। "जलवायवग्निसंयोगनिरोधश्च क्रिया कला।" इससे तो यह बात स्पष्ट रीति से जानी जा रही है कि प्राचीन भारत के लोगों को भाप के यन्त्रों का ज्ञान था और वे उन यन्त्रों से अपने व्यावहारिक कार्यो मे आज की तरह सहायता लिया करते थे।

३१. नौका, रथ आदि जल-स्थल के आवागमन के साधनों का निर्माण करना "कला" है। पहले के लोग स्थल और यातायात के साधनों का—अच्छे से अच्छे उपकरणों से सम्पन्न अश्व, रथ, गौ, बैलों के रथ आदि का—बनाना तो जानते ही थे, साथ ही अच्छे से अच्छे सुदृढ़, सुन्दर, उपयोगी सर्वसाधनो से सम्पन्न बड़े-बड़े जहाजों का बनाना भी जानते थे। जहाजों के उपयोग का वर्णन वेदों में भी मिलता है। जहाजों पर दूर-दूर के देशों के साथ अच्छा व्यापार होता था। नौ-यानों से आने-जाने वाले माल पर 'कर' आदि की अच्छी व्यवस्था थी। पाश्चात्य की तरह यहाँ के मल्लाह भी बड़े साहसी और यात्रा मे निडर होते थे। किन्तु आधुनिक शासनों की कृपा से अन्यान्य कलाओं की तरह भारत में यह कला भी बहुत क्षीण हो गयी है।

३२. सूत्र, सन आदि तन्तुओ से रस्सी का बनाना 'कला' है।

३३. अनेक तन्तुओं से पटबन्ध 'वस्त्र की रचना' कला है। यह कला भी बहुत प्राचीन समय से भारत में बड़ी उन्नत दशा मे थी। भारत ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के शासन के पहले यहाँ ऐसे सुन्दर, मजबूत, बारीक वस्त्र बनाये जाते थे कि जिनकी बराबरी आज तक कोई दूसरा देश नहीं कर सका है। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के समय यहाँके वस्त्र-निर्माण एवं वस्त्र-निर्यात के व्यवसाय को पाश्चात्य स्वार्थी व्यापारियों ने कई उपायों से नष्ट कर दिया।

३४. रत्नों की पहचान और उनमें वेध 'छिद्र' करने की क्रिया का ज्ञान 'कला' है। प्राचीन समय से ही अच्छे-बुरे रत्नों की पहचान, उनके धारण से होने वाले शुभाशुभ फल का ज्ञान यहाँके लोगों को था। ग्रहों के अनिष्ट फलों को रोकने के लिए विभिन्न रत्नों को धारण करने का फल आज भी प्रत्यक्ष दिखलाई देता है। पर आज तो भारतवर्ष की यह स्थिति है कि अधिकांश लोगों को उन रत्नों का धारण करना दूर रहा, दर्शन भी दुर्लभ है।

३६. सुवर्ण, रजत आदि के याथात्म्य 'असलीपन' का जानना 'कला' है।

३७. नकली सोना-चाँदी और हीरा-मोती आदि रत्नों को निर्माण करने का विज्ञान 'कला' है। पुराने कीमियागरों की बातें सुनने में आती है। वे कई वस्तुओं के योग से नकली सोना-चाँदी आदि बना सकते थे। अब तो केवल उनकी बाते ही सुनने में आती हैं। रत्न भी प्राचीन काल में नकली बनाये जाते थे। मिश्री से ऐसा हीरा बनाते थे कि अच्छे जौहरी भी उसको जल्दी नही पहचान सकते थे। इससे मालूम होता है कि 'इमिटेशन' हीरा आदि रत्न 'कलचर' मोतियों का आविष्कार पाश्चात्यों ने कुछ नया निकाला हो, यह बात नहीं है। किन्तु यह भी मानना ही पड़ेगा कि उस समय इन नकली वस्तुओं का व्यवसाय आजकल की तरह अधिक विस्तृत नहीं था। देश के सम्पन्न होने के कारण उन्हें नकली वस्तुओ से अपनी शोभा बढ़ाने की आवश्यकता ही क्या थी ? पर आज की स्थिति कुछ और है, इसीसे इन पदार्थों का व्यवहार अधिक बढ़ गया है।

३८. सोने-चाँदी के आभूषण बनाना एवं लेप मुलम्मा आदि 'मीनाकारी' करना 'कला' है। 'स्वर्णाद्यलंकारकृतिः कला लेपादिसत्कृतिः।'

३९. चमड़े का मुलायम करना और उससे आवश्यक उपयोगी सामान तैयार करना और—

४०. पशुओं के शरीर पर से चमड़ा निकालकर अलग करना 'कला' है—'मार्दवादिक्रियाज्ञानं चर्मणांतु कला स्मृता पशुचर्मांगनिर्हारक्रियाज्ञानं कला स्मृता।' आज तो यह कला भारत के लोगों के हाथ से निकलकर विदेशियों के हाथ में चली गयी है। यहां चमारों के घरों में कुछ अवशिष्ट रही है किन्तु वे चमड़ों को कमाकर विदेशियों के मुकाबले में उन्हें मुलायम करना नहीं जानते।

४१. गौ, भैंस आदि को दुहने से लेकर दही जमाना, मथना, मक्खन निकालना, घी बनाने तक की सब क्रियाओं को जानना 'कला' है। इसे पढ़कर हृदय में दुःख की एक टीस उठ आती है। वह भारत का सौभाग्य-काल कहाँ, जब

घर-घर में अनेक गौओं का निवास था ? प्रत्येक मनुष्य इस कला से अभिज्ञ होते थे। दूध, दही की मानों नदियाँ बहती थीं। दूध के पौसरे बैठाये जाते थे। जहाँ लोग पानी की तरह दूध मुफ्त पी सकते थे। और वहाँ आज का हतभाग्य समय ? घी, मक्खन का तो दर्शन दूर रहा, बच्चों को दूध मिलना भी कठिन है। कहाँ वह श्रीकृष्ण के समय का व्रज-वृन्दावन का दृश्य, कहाँ आज बड़े-बड़े शहरों के पास बने बूचड़खानों में प्रतिदिन हजारों की संख्या में वध किये जाने-वाली गौ-माता और उनके बच्चों का करुणक्रन्दन !

४२. कुर्ता आदि कपड़ों को सीना 'कला' है—

४३. जल में हाथ, पैर आदि अंगों से विविध प्रकार से तैरना 'कला' है। तैरने के साथ डूबते हुए व्यक्ति को कैसे बचाना चाहिये, थका या डूबता हुआ व्यक्ति यदि उसको बचाने के लिए आये और व्यक्ति को पकड़ ले तो वैसी स्थिति में किस तरह उससे अपने को छुड़ाकर और उसे लेकर किनारे पर पहुँचना चाहिये, इत्यादि बातों का जानना भी बहुत आवश्यक है।

४४. घर के बर्तनों को माँजने का ज्ञान 'कला' है। पहले यह काम घर की स्त्रियाँ ही करती थीं, आज भी कई घरों में यह बात है। परन्तु अब बड़े घराने की स्त्रियाँ इसमें अपना अपमान समझती हैं।'

४५. वस्त्रों का समार्जन अच्छी तरह धोकर साफ करना 'कला' है।

४६. क्षुर कर्म हजामत बनाना 'कला' है। आजकल यह बड़ी उन्नति पर है। गंगा-यमुना के घाटों, बाजारों में चले जाइये, आपको इस कला का उदाहरण स्वयं देखने को मिल जायगा। कोई पढ़ा-लिखा आधुनिक सभ्य पुरुष प्रायः ऐसा न मिलेगा जिसके आन्हिक में अपना 'क्षुरकर्म सम्मिलित न हो। 'वस्त्रसम्मार्जनश्चैव क्षुरकर्मह्युभे कले।'

४७. तिल, तीसी, रेड़ी आदि तिलहन पदार्थ और मांसों में से तेल निकालने की कृति 'कला' है। 'कॉड लिव्हर आइल' 'व्हेल आइल' इत्यादि की तरह पुराने जमाने मे भी चरबी का व्यवसाय होता था, यह बात इससे स्पष्ट विदित होती है।

४८. हल चलाना जानना और

४९. पेड़ों पर चढ़ना जानना भी 'कला' है। हल चलाना तो कृषि मात्र का प्रधान अंग ही है। पेड़ों पर चढ़ना भी एक कला है। सभी केवल चाहने मात्र से ही पेड़ों पर चढ़ नहीं सकते। खजूर, ताड़, नारियल, सुपारी आदि के पेड़ों पर चढ़ना कितना कठिन है, इसे देखनेवाला ही जान सकता है। इसमें जरा सी भी असावधानी हो जाने पर मृत्यु यदि न हो तो भी अंग-भंग होना मामूली बात है।

५०. मनोनुकूल—दूसरे की इच्छा के अनुसार उसकी सेवा करने का ज्ञान 'कला' है। राजसेवक, नौकर, शिष्य आदि को इस कला का जानना परमावश्यक है। इस कला को न जाननेवाला किसी को प्रसन्न नहीं कर सकता।

५१. बाँस, ताड़, खजूर, सन आदि से पात्र, टोकरी, झाँपी आदि बनाना 'कला' है।

५२. काँच के बर्तन आदि बनाना 'कला' है। मालूम होता है कि यह कला भारत में प्राचीन समय से ही थी, किंतु मध्यकाल में यहाँसे विदेशियों के हाथ में चली गयी। स्त्रियों का सौभाग्य चिह्न चूड़ियाँ तक विदेशों से आने लगीं अब इस ओर फिर ध्यान दिया जा रहा है।

५३. जल से संसेचन, 'अच्छी तरह खेतों को सींचना' और—

५४. संहरण—अधिक जलवाली या दलदलवाली भूमि में से जल का बाहर निकालना अथवा दूर से जल को आवश्यक स्थान पर ले जाना 'कला' है।

५५. लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने का ज्ञान 'कला' है।

५६. हाथी, घोड़े, बैल और ऊँटों की पीठ सवारी से उपयुक्त पलयाण बनाना 'कला' है।

५७. शिशुओं का संरक्षण और

५८. धारण करना एवं

५९. बच्चों के खेलने के लिए तरह-तरह के खिलौने बनाना 'कला' है। 'शिशोः संरक्षणे ज्ञानं धारणे क्रीड़ने कला।'

६०. अपराधियों को उनके अपराधों के अनुसार ताड़न 'दण्ड' देने का ज्ञान भी 'कला' है। अपराधानुसार कोड़े मारना, बेतों से पीटना, ऊँची जमीन से नीचे फेंकना, हाथी के पैरों के तले रौंदवाना, सूली पर चढ़ाना, फाँसी पर टाँगना आदि कई प्रकार की सजाएँ दी जाती थीं।

६१. भिन्न-भिन्न देशों की लिपि सुन्दरता से लिखना 'कला' है। भारत इस कला में बहुत उन्नत था। ऐसे सुन्दर अक्षर लिखे जाते थे कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। लिखने के लिए स्याही भी ऐसी सुन्दर बनती थी कि सैकड़ों वर्षों की लिखी पुस्तकें आज भी नई सी मालूम पड़ती हैं।

छापने के प्रेस, टाइपराइटर आदि साधनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है, इससे लोगों के अक्षर बिगड़ते जा रहे हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी तो अपने ही हाथों के अक्षर पढ़े नहीं, जाते ।

पहले यह कला इतनी उन्नत थी कि महाभारत जैसा सवालाख श्लोकों का बड़ा पोथा आदि से अन्त तक एक सांचे के अक्षरों में लिखा हुआ देखने में आता है । कहीं एक अक्षर भी छोटा-बड़ा नहीं पाया है, स्याही भी एक जैसी ही है, न कहीं गहरी और न कहीं हल्की है । विशेष आश्चर्य तो यह है कि सारी पुस्तकों में न तो एक अक्षर गल्ती लिख कर कहीं काटा हुआ है और न कहीं धब्बा ही पड़ा है ।

६२. पान की रक्षा करना, ऐसा उपाय करना कि जिससे पान सूख न पाये और बहुत दिनों तक सड़ने-गलने न पाये । यह भी 'कला' है । आज भी बहुत-से ऐसे तमोली है, जो मघई पान को महीनों तक ज्यों का त्यों रखते हैं । इसी तरह ये ६२ कलाएँ अलग-अलग हैं किन्तु दो कलाएँ ऐसी हैं जिन्हें सब कलाओं का प्राण कहा जा सकता है । यही सब कलाओं की गुण भी कही जा सकती हैं । इन दो में पहली है ६३. आदान और दूसरी ६४. प्रतिदान । किसी काम को करने आशुकारित्व 'जल्दी-फुर्ती' से करना 'आदान' कहा जाता है, और उस काम को चिरकाल 'बहुत समय' तक करते रहना 'प्रतिदान' है । बिन इन दो गुणों के कोई भी कला अधिक उपयुक्त नहीं हो सकती । इस तरह ६४ कलाओं का यह संक्षिप्त विवरण है ।

यह पाठ्यक्रम कितना है ? इसमें प्रायः सभी विषयों का समावेश हो जाता है । शिक्षा का यह उद्देश्य माना जाता है कि उससे ज्ञान की वृद्धि हो, सदाचार में प्रवृत्ति हो, जीविकोपार्जन में सहायता मिले । इस क्रम में तीनों का ध्यान रखा गया है । इतना ही नहीं, पारलौकिक कल्याण भी नहीं छोड़ा गया है । संक्षेप में, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को ध्यान में रख कर ही शिक्षा का यह क्रम निश्चित किया गया है । इससे पता लगता है कि उस समय की शिक्षा का आदर्श कितना उच्च तथा व्यावहारिक था । श्रीकृष्णचन्द्र को इन सभी विषयों की पूरी शिक्षा दी गयी थी और वे प्रायः सभी में प्रवीण थे । अर्जुन नृत्य कला, नल-भीम आदि पाक विद्या में निपुण थे । परशुराम, द्रोणाचार्य सरीखे ब्राह्मण धनुर्वेद में दक्ष थे । इससे जान पड़ता है कि गुरुकुलों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के बालकों को प्रायः इन सभी विषयों की थोड़ी-बहुत शिक्षा अवश्य दी जाती होगी । परन्तु, इस शिक्षा से ऐसा न हो कि जो काम जिसके जी में आवे करने लगे, जैसा कि आजकल होता है, इसका भी ध्यान रक्खा गया था । क्योंकि ऐसा न होने से सारी समाज व्यवस्था ही बिगड़ जाती थी, वर्ग संघर्ष और बेकारी की उत्पत्ति होती है, जैसा कि आजकल देखने में आ रहा है । सब मनुष्यों का स्वभाव एक सा नहीं होता, किसीकी प्रवृत्ति किसी ओर, तो किसीकी किसी और ओर होती है । जिसकी जिस ओर प्रवृत्ति है उसीमें अभ्यास करने से कुशलता प्राप्त होती है । इसीलिए शुक्राचार्य ने लिखा है कि—'यां यां कला समाश्रित्य निपुणो यो हि मानवः, नैपुण्यकरणे सम्यक् तां तां कुर्यात् स एवहि ।' वंशागत कला के सीखने में कितनी सुगमता होती है, यह प्रत्यक्ष है । एक बढ़ई का लड़का जितनी शीघ्रता से और सुगमता के साथ सीखकर उसमें निपुण हो सकता है उतना दूसरा नहीं, क्योंकि वंश परम्परा और बालकपन से ही उसके उस कला के योग्य संस्कार बन जाते हैं । इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर प्राचीन शिक्षाक्रम की रचना हुई थी । उसमें आजकल की सी धाँधली न थी । जिसका दुष्परिणाम आज देख पड़ रहा है । प्रायः सभी विषयों में चचु-प्रवेश और किसी एक विषय की, जिसमें प्रवृत्ति हो, योग्यता प्राप्त करने से ही शिक्षा और यथोचित ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है । आज पाश्चात्य विद्वान् भी प्रचलित शिक्षा पद्धति की अनेक त्रुटियों का अनुभव कर रहे हैं परन्तु हम उस दूषित पद्धति की नकल करने के ही धुन में लगे हुए हे । वर्तमान शिक्षा से लोगों को अपने वंशागत कार्यों से घृणा तथा अरुचि होती चली जा रही है, और वे अपने बाप-दादा के व्यवसायों को बड़ी तेजी से छोड़ते चले जा रहे हैं । शिक्षित युवक आफिस में छोटी-छोटी नौकरियों के लिए दर-दर दौड़ते हैं, अपमान सहते हैं, दूसरों की ठोकरें खाते हैं, और जीवन से निराश होकर कई तो आत्मघात कर बैठते हैं । यदि यही क्रम जारी रहा तो पूरा विनाश सामने है । क्या ही अच्छा होता यदि हमारे शिक्षा-आयोजकों का ध्यान एक बार हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति की ओर भी जाता !

(समाप्त)

मध्यपूर्व में पुनः विस्फोट की आशंका

श्री शंकरसहाय सक्सेना, भूतपूर्व शिक्षा निदेशक—राजस्थान

जिस प्रकार मस्जिद की ऊँची मीनार से मुअज्जिन की आजान नियमित रूप से निश्चित समय पर प्रत्येक मुसलमान को प्रार्थना के लिए आमंत्रित करती है, ठीक उसी प्रकार कैरों के एक रेडियो स्टेशन से रात्रि में निश्चित समय पर एक आवाज प्रत्येक अरब को इजराइल के विरुद्ध जिहाद करने के लिए आवाहन करती है। यह "एल फाताह" की वाणी है। यह उस अरब छापामार सैनिक संगठन की वाणी है जो प्रत्येक रात्रि को अपने योद्धाओं को इजराइल की सीमा में भेजकर वहाँ विध्वंस और विनाश का जोखिम भरा खेल खेलते हैं।

प्रत्येक अरब चाहे वह कैरो के बाजार में हो, या अमन या बैरूत के जापान गृहों तथा विश्वविद्यालयों में हो, अथवा उन शरणार्थियों के शिविरों में हो जहाँ इजराइल से निकाले हुए अरब पड़े हुए हैं, यह वाणी एक आशा और स्वाभिमान का संदेश लाती है। जब "एल-फाताह" रेडियो पर बोलता है तो प्रत्येक अरब वह फिर चाहे किसी भी देश में क्यों न हो अत्यन्त उत्सुकता और उत्साह से उसे सुनता है। वह वाणी अरबों से कहती है कि जून १९६७ की अरब राज्यों की अत्यन्त अपमानजनक पराजय के उपरान्त भी अरबों का इजराइल से युद्ध अबाध गति ये चल रहा है। प्रत्येक रात्रि को कोई नया योद्धा इज़राइल के विरुद्ध छापामार युद्ध के लिए इज़राइल में प्रवेश करता है और अपने साथियों के साथ इज़राइल में कुछ न कुछ विध्वंस कार्य करके लौटता है या धराशायी हो जाता है। "एल फाताह" की वाणी उसका यशोगान करती है। वह अरब जगत में पूजनीय और वंदनीय बन जाता है। साथ ही उस वाणी से बीच-बीच में गुप्त संदेश भी प्रसारित होते रहते हैं। जिन्हें उस छापामार युद्ध के संगठन में कार्य करने वाले ही समझ सकते हैं।

'फाताह' के संकेत पर यह अरब छापामार योद्धा रात्रि को ट्रेक्टरों के टायरों से बने हुए बेड़ों पर जार्डन नदी पार करते हैं। अपनी रूसी निर्मित राइफिलों तथा अन्य हथियारों को वे मोमजामें की खोली में सावधानी से छिपा लेते हैं। रात्रि के अंधकार में वे इज़राइल के तट पर उतरते हैं। किसी बड़ी इमारत को उड़ाने के लिए विस्फोटक पदार्थ या बम रख देते हैं, कहीं माइन बिछा देते हैं, कभी इजराइली संतरियों पर बम फेंकते हैं, या किसी इमारत को उड़ा देते हैं। यह करने के उपरान्त वे भागकर जार्डन नदी को पार-कर वापस अपने क्षेत्र में पहुँचने की कोशिश करते हैं। बहुत बार इज़राइली सैनिक उन्हें पकड़ लेते है अथवा संघर्ष में वे छापामार सैनिक मारे जाते हैं। इसका कारण यह है कि इज़राइली सैनिक बहुत कुशल और अपने देश के प्रति असीम भक्ति और निष्ठा रखने वाले हैं। परन्तु इससे इन छापामार योद्धाओं में तनिक भी निराशा या घबराहट उत्पन्न नहीं होती। अगली रात्रि को पुनः दूसरी टोली इसी प्रकार इजराइल में घुसती है और विध्वंस का घातक खेल खेलती है। बात यह है कि यदि इजराइल में कोई विध्वंस कार्य कर सफलतापूर्वक वापस लौट आता है, तो उसका यशोगान होता है, वह महान् वीर और देशभक्त बन जाता है, उसकी विरुदावलि गाई जाती है और समस्त अरब जगत् में उसका यश फैल जाता है। और यदि वह वीरगति प्राप्त करता है तो उसके चित्र समस्त अरब जगत् के समाचार-पत्र प्रकाशित करते हैं, वह शहीद और बलिदानी होने के नाते पूजित और आदृत होता है। अक्टूबर १९६७ में ३४ देशों के मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इजराइल के विरुद्ध 'जिहाद' की घोषणा कर दी थी अतएव जो इस धर्मयुद्ध में वीरगति को प्राप्त होता है उसे पैगम्बरों के समान आदर और श्रद्धा प्राप्त होती है और उनके विश्वास के अनुसार सीधे स्वर्ग (जन्नत) में जाता है। इस कारण इज़राइल के कुशल सैनिकों द्वारा जो छापामार योद्धाओं को पकड़ा या मार दिया जाता है उससे वे निराश या हतोत्साहित नहीं होते। उनकी संख्या में कमी नहीं आती। नये युवक इस सगठन में निरन्तर आते रहते हैं। संसार उन्हें "फैदाईन" अर्थात् बलिदानी के नाम से जानता है।

इस प्रकार छापामार योद्धाओं के कई गुप्त संगठन आज अरब देशों में काम कर रहे हैं। उनमें "एल फाताह" सबसे बड़ा और प्रभावशाली संगठन है। १९६७ में तीसरी बार इज़राइल ने ६ दिन के भयंकर युद्ध में सभी अरब देशों की सेनाओं को जिस तीव्रता से नष्ट कर दिया और अरब राष्ट्रों की अत्यन्त अपमानजनक पराजय हुई उससे संयुक्त अरब प्रजातंत्र के राष्ट्रपति नासर से लेकर जार्डन के बादशाह, इराक, सीरिया के नेताओं और सौदी अरब

आदि अरब देशों के शासकों की अरब जगत् की दृष्टि में प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी है। अरब का जन-साधारण यह जान गया है कि इन राज्यों की सम्मिलित सेनाएँ छोटे से इजराइल की कुशल सेना को रणभूमि में परास्त नहीं कर सकतीं। इजराइली सैनिकों की कुशलता, रणचातुर्य और देश-भक्ति के कारण जब-जब सब अरब देशों ने मिलकर इज़राइल से युद्ध किया तब-तब उनकी अत्यन्त अपमानजनक पराजय हुई। अतएव जनसाधारण अरब इन राज्यों की सरकारों और उनके शासकों से निराश हो चुके हैं। उनकी आशा और दृष्टि इन छापामार युद्ध करनेवाले संगठनों पर लगी हुई है।

'फिदाईन' की शक्ति का मुख्य स्रोत वे पंद्रह लाख पैलेस्टाइन के शरणार्थी हैं जो बीस वर्ष पहले पैलेस्टाइन से निकाल दिये गये थे और तब से वे विभिन्न शिवरों में पड़े हुए हैं। जब १९४८ में इज़राइल बना तब से पैलेस्टाइन के शरणार्थी मध्यपूर्व में जार्डन और गाजा के शिविरों में रह रहे हैं। उन्हें बराबर अरब राज्य यह आशा दिलाते रहे कि उनको पैलेस्टाइन में जाकर रहने का अधिकार मिलेगा। किन्तु जून १९६७ के ६ दिन के युद्ध के फलस्वरूप ३ लाख ५० हजार और अरब शरणार्थी पैलेस्टाइन से भागकर इन शिविरों में आ गये हैं। इन शरणार्थियों का न तो कोई देश है और न वे किसी राष्ट्र के नागरिक ही हैं। इन शिविरों में रहनेवाले अरबों में घोर निराशा और क्षोभ है। 'फिदाईनों' की भर्ती इन्हीं शिविरों में से की जाती है।

एक छापामार 'फिदाईन' के इज़राइलियों द्वारा मारे जाने पर जब उसकी माँ से पूछा गया कि फिदाईन छापामार सैनिकों के इस प्रकार मारे जाने की प्रतिक्रिया उसके मन पर क्या है तो उसने कहा "मुझे प्रसन्नता और गौरव है कि वह इस शिविर में नहीं मरा। इन शिविरों में हम भिखमंगों का जीवन व्यतीत करते हैं। यह कोई जीवन है। मैंने अपने दूसरे लड़के को बड़े भाई के मरने पर उसका स्थान लेने के लिए भेज दिया है और छोटे लड़के को जो अभी केवल आठ वर्ष का है उस दिन के लिए तैयार कर रही हूँ जब वह भी युद्ध करने जावेगा। यह अरब शरणार्थी ही 'फिदाईन' की शक्ति के मुख्य स्रोत हैं।

जून १९६७ की अपमानजनक पराजय के उपरान्त 'फिदाईन' ही अरब जनता की श्रद्धा और आदर के केन्द्र बन गये हैं। वही इज़राइल से निरन्तर युद्ध कर रहे हैं। अतएव साधारण अरब के स्वाभिमान को यदि कहीं आश्रय मिलता है और वह गौरव अनुभव करता है तो 'एल-फाताह' के फिदाईन बलिदानी योद्धाओं के वीरोचित कार्यों से ही मिलता है। एल-फाताह का नेता 'मुहम्मद अराफत' समस्त अरबों का आराध्य बन गया है। वे उसे अत्यन्त आदर और श्रद्धा से देखते हैं और अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए वे उसे आधुनिक 'सलादीन' कहते हैं।

वास्तव में जून १९६७ में सम्मिलित अरब राज्यों की अपमानजनक पराजय ने एल-फाताह के फिदाईनों की लोकप्रियता और प्रभाव को एक साथ बढ़ा दिया। विश्वविद्यालय तथा कालेज के छात्रों ने अपनी कक्षाओं को छोड़ दिया और वे फिदाईनों में भर्ती हो गये। कैरो, बैरूत तथा अन्य बड़े केन्द्रों में डाक्टरों ने अपनी डाक्टरी छोड़कर जार्डन में एल-फाताह के छिपे हुए गुप्त शिविरों में जख्मी फिदाईनों की सेवा करना आरम्भ कर दिया। अरब व्यापारी तथा धनी-मानी व्यक्ति फिदाईनों को आवश्यक सामग्री तथा हथियार खरीदकर देते हैं। मध्यपूर्व के विभिन्न अरब राष्ट्रों के अरब तथा जो अरब विदेशों में रहते हैं व्यक्तिगत रूप से एल-फाताह को नियमित रूप से धन भेजते हैं। यहाँ तक कि खनिज तेल के धनी अरब राज्य जो अभी तक जार्डन को सहायता देते थे उस राशि को एल-फाताह को देने लगे हैं।

आज एल-फाताह का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि अरब देशों में स्कूलों में छात्रों से खुले आम अध्यापक जो फिदाईन इजराइल में विध्वंसक कार्य करने में मारे जाते हैं उनके बच्चों के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं। जार्डन में इस्लाम के धर्माचार्य रमज़ान के पवित्र महीने में जो धनराशि मस्जिदों को दान देना अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाता था उस धनराशि को एल-फाताह को देने के लिए फतवा निकालते हैं। आज एल-फाताह को न धन की कमी है, न हथियारों की, न युवक फिदाईनों को जी अपने जीवन को खतरे में डालकर भी इजराइल के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं।

सौदी अरब के बादशाह फैसल की मलका ने 'एल-फाताह' को ४५०० डालर भेजे। यह इस बात का प्रमाण है कि इस छापामार युद्ध करनेवाले संगठन का प्रभाव कितना बढ़ गया है और अरब जगत् में उसकी प्रतिष्ठा कितनी ऊँची है। बैरूत के जलपान-गृहों में अरब युवक आपको

'एल-फाताह' के टिकिट बेंचते हुए दिखलाई देंगे। उन टिकटों पर छापामार फिदाईन शहीद का चित्र होगा और यह घोषणा होगी कि इस टिकट के धन से फिदाईनों के लिए हथियार और गोलियाँ खरीदी जावेंगी। यह केवल जार्डन में ही नहीं प्रत्येक अरब देश में देखा जा सकता है।

विभिन्न अरब देशों के राजकीय विभाग भी इस संगठन की सब प्रकार से सहायता करते हैं। 'अमन' के हवाई अड्डे पर जबकि बड़े-बड़े क्रेट जिनमें युद्ध सामिग्री तथा अन्य आवश्यक सामिग्री होती है, हवाई जहाजों से उतारे जाते हैं तो काला सूट पहने हुए युवक कस्टम अधिकारी के पास आकर उसके कान में कहता है "यह फिदाईन के लिए है" तो कस्टम अधिकारी बिना देखभाल या जाँच-पड़ताल किये उन क्रेटों को ले जाने देता है। देखते-देखते वे बड़े क्रेट वहाँ से ट्रकों में डालकर 'एल-फाताह' के गोदामों में ले जाये जाते हैं।

फिदाईनों ने गुप्त अस्पताल, स्टोर तथा डिपो स्थापित कर रक्खे हैं जहाँ घायलों की चिकित्सा की जाती है और आवश्यक युद्ध सामग्री एकत्रित की जाती है। जून १९६७ के युद्ध के उपरान्त फिदाईनों की केवल लोकप्रियता ही नहीं बढ़ी उन्हें बहुत बड़ी राशि में अस्त्र-शस्त्र भी प्राप्त हुए हैं। जब उस युद्ध में अरब राष्ट्रों की सेनाएँ पराजित होकर भागीं तो अपने हथियार वहीं छोड़ आईं। सिनाई का रेगिस्तान युद्ध-सामग्री तथा हथियारों से पटा हुआ था। जैसे ही अरब राष्ट्रों की सेनाएँ हथियार छोड़कर भागीं 'एल-फाताह' की सैकड़ों टुकड़ियाँ अपने ऊँटों को लेकर सिनाई की मरुभूमि में दौड़ पड़ीं और दो सप्ताह तक वे जितने हथियार बटोर सके उन्होंने इकट्ठे कर लिये। असंख्य मशीनगनें, राइफिलें, बम तथा अन्य सामान उनके हाथ लगा। जब तक इजराइल के सैनिक उस प्रदेश में पहुँचे तब तक फिदाईनों ने बहुत बड़ी राशि में हथियार इकट्ठे कर लिए थे।

अगस्त १९६७ तक 'एल-फाताह' की स्थिति इतनी मज़बूत हो गयी कि ६ दिन के युद्ध में इजराइल ने जार्डन नदी के पश्चिम तट पर जो प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था वहाँ उसने एक भूमिगत विद्रोह कराने का प्रयत्न करने का साहस किया। सैकड़ों की संख्या में छापामार फिदाईन जार्डन नदी को पार कर उस प्रदेश में घुसे। परन्तु इज़राइली सैनिक इतने कुशल और सतर्क थे कि उन्होंने उन्हें पकड़ लिया। यही नहीं इजराइल के सैनिकों ने उन अरबों के मकानों को ही उड़ा दिया जो कि इन छापामार फिदाईनों को अपने यहाँ शरण देते थे। उसके उपरान्त 'एल-फाताह' ने अपनी युद्ध-पद्धति में परिवर्तन कर दिया। वे फिदाईनों की छोटी टुकड़ी भेजते जो या तो उनसे सहानुभूति रखनेवाले अरबों के यहाँ छिप जाते अथवा पहाड़ों और गुफाओं में छिपे रहते। रात्रि को निकलकर वे कहीं टाइम बम रख देते, कहीं माइन बिछा देते। इज़राइल की सेना ने जार्डन नदी के समीप इन छापामार फिदाईनों के शिवरों पर भयंकर बमवर्षा करके उनको विध्वंस कर दिया तो 'एल-फाताह' ने अपने शिविरों को जार्डन के भीतरी भाग में जार्डन नदी से दूर हटा लिया। इजराइली सेना बहुत कुशल और कार्यक्षम है, उसमें गहन देशभक्ति की भावना काम करती है अतएव वह बहुधा इन फिदाईनों को पकड़ लेती है और उनके साथ कठोर व्यवहार करती है फिर भी वे एक दिन में दो दर्जन विध्वंसक कार्य कर ही डालते हैं। अरब फिदाईन केवल सेना के विरुद्ध ही विध्वंसक कार्य नहीं करते बल्कि साधारण नागरिकों के विरुद्ध उनके विध्वंसक कार्य अधिक होते हैं। वे बहुधा सिनेमा पर बम फेंकते हैं, स्कूलों में हथगोले फेंक देते है, जहाँ अधिक लोग आते-जाते हैं वहाँ माइन बिछा देते हैं। परिणाम यह होता है कि इन विध्वंसक कार्यों से इज़राइल में सैनिक हानि तो बहुत कम होती है अधिकतर नागरिकों के जीवन को खतरा उत्पन्न हो गया है। इस कारण इजराइल में बहुत रोष और कटुता उत्पन्न हो गयी है। इजराइल की सेना समीपवर्ती अरब प्रदेशों पर हवाई आक्रमण करती है।

फिदाईन बनने और छापामार युद्ध तथा विध्वंसक कार्यों का प्रशिक्षण लेने के लिए 'एल-फाताह' के पास निरन्तर अरब युवकों का एक प्रवाह आता रहता है और अपने को इस धर्म युद्ध के लिए अर्पित कर देना चाहता है। भर्ती होने के लिए इतने अधिक युवक आते हैं कि 'एल-फाताह उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं कर सकता। विशेषकर उन विश्वविद्यालयों से बहुत बड़ी संख्या में युवक भर्ती होने आते हैं जहाँ कि पैलेस्टाइन से भागे हुए उत्साही अरब अध्यापक प्रशिक्षण का कार्य करते है। 'एल-फाताह' उन सबको तो ले नहीं सकता अतएव वह प्रार्थियों में से छाँटकर अधिक साहसियों को ही लेता है। अधिकतर पैलेस्टाइन से आए हुओं को ही लिया जाता है। उनकी

भी कठोर जाँच की जाती है। मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ तथा डाक्टर प्रार्थी की कड़ी जाँच करते है और जब वह उस कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे एक अत्यन्त क्रूर सहनशीलता की परीक्षा देनी होती है। एक कुत्ते या किसी अन्य जानवर को तुरन्त मारकर एक संदूक में बंद कर दिया जाता है, उसमें छेद होते है जिनसे खून टपकता रहता है। उस सदूक को उस युवक को दिया जाता है कि उसमें एक जख्मी साथी का शरीर है तुम इसको सर पर रखकर ले जाओ और शिविर के चारों ओर घूमकर वापस लौट आओ। नये प्रवेशार्थी को कोई प्रश्न पूंछने की आज्ञा नही होती। यदि उसको वमन हो जाता है, वह घबरा या वेहोश हो जाता है तो उसे वापस घर भेज दिया जाता है, और गुप्तचर के रूप में काम करने का आदेश दिया जाता है। अथवा उसको संदेशवाहक जैसा सरल कार्य दिया जाता है। यदि वह इस परीक्षा में सफल हो जाता है तो जार्डन, सीरिया, लैवनान, इराक आदि अरव देशों में जो 'एल-फाताह' के दर्जनों प्रशिक्षण केन्द्र हैं वहाँ छापामार युद्ध करने तथा विध्वसक कार्य करने का प्रशिक्षण लेने के लिए भेज दिया जाता है।

केवल युवकों को ही शिक्षा नही दी जाती। आठ से वारह वर्ष की वालिकाओं और वालकों को भी प्रशिक्षण दिया जा रहा है। उन्हें बम फेंकना, वंदूक तथा मशीनगन चलाना, तथा विध्वंसक कार्यो का प्रशिक्षण तो दिया ही जा रहा है, उन्हें कठोर जीवन का अभ्यस्त वनाया जा रहा है। यही नही उन्हें मनुष्य के शरीर की रचना का ज्ञान भी कराया जाता है। उन्हें वतलाया जाता है कि हृदय, फेफड़े, जिगर, तथा आँतें शरीर में कहाँ होती है और किस स्थान पर खंजर या छुरा घुसेड़ देने से तुरन्त मृत्यु हो सकती है।

जो फिदाईन मर जाते हैं उनकी लड़कियों को स्कूलों में भेजा जाता है। वे स्कूल के वालकों के सामने गाती हैं "मैं एक फिदाईन की पुत्री हूँ हम सभी छापामार, फिदाईन है।" इजराइल से आई हुई शरणार्थी महिलाओं को प्रथम उपचार, नर्सिंग तथा हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

वात यह है कि एल-फाताह के नेता अराफत का कहना है कि यह युद्ध पीढ़ियों का युद्ध है। यदि हम अपने जीवन-काल में इजराइल का अस्तित्व न मिटा सके तो हमारे वच्चे इस कार्य को करेंगे और यदि वे भी सफल न हो सके तो उनके वच्चे इजराइल का अस्तित्व समाप्त करेंगे। यही कारण है कि केवल युवकों के ही नहीं आठ से वारह वर्ष के वालकों और स्त्रियों को भी प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

'एल-फाताह' के नेता यह जानते हैं कि इजराइल की सेनाएँ इतनी शक्तिवान और कुशल हैं कि सभी अरव देशों की सम्मिलित सेनाएँ उन्हें परास्त नहीं कर सकतीं। अतएव छापामार युद्ध के द्वारा ही इजराइल को विध्वंस किया जा सकता है। उनका मानना है कि इज़राइल जितना अधिक प्रदेश अपनी सीमाओं में मिलाता जावेगा उतनी ही अधिक उसके लिए कठिनाई बढ़ती जावेगी। क्योंकि वहां के रहनेवाले अरब छापामार युद्ध में सम्मिलित होते जावेगे।

वास्तव में 'एल-फाताह' संगठन इतना शक्तिशाली हो गया है कि वह एक राज्य के अन्तर्गत एक दूसरी सरकार है। कुछ समय पूर्व मिस्र, इराक़, जार्डन, सीरिया आदि की सरकारे उन्हें रोकती थी, फिदाईनों को कैद करती थीं, उनके संगठन पर प्रतिबंध लगाती थीं, परन्तु जून १९६७ की अरब पराजय के उपरान्त अव 'एल-फाताह' इतना प्रभावशाली हो गया है कि वह अपना कार्य खुले रूप में करता है, सरकारों का साहस नहीं है कि उन पर कोई रोक लगावे। यही नहीं सरकारें उन्हें हथियार आदि देकर सहायता करने पर विवश हैं।

इधर इजराइलियों का भी रुख कड़ा होता जा रहा है। अभी तक वे छापामार फिदाईनों के शिविरों को ही विध्वस करते थे परन्तु अब इजराइली बम-वर्षक विमान उन सभी देशों के हवाई अड्डों तथा सैनिक केन्द्रों पर विध्वंसकारी बम वर्षा करते हैं जहाँ से छापामार फिदाईन इजराइल में विध्वंसक कार्य करते हैं। इजराइल का कहना है कि या तो उन देशो की सरकारें इन छापामार फिदाइनों को रोकें अन्यथा इज़राइल उनके विरुद्ध कार्यवाही करेगा। स्थिति यह है कि आज जार्डन के वादशाह, सीरिया और इराक के नेता और यहाँ तक कि संयुक्त अरव गणराज्य के राष्ट्रपति नासर का भी यह साहस नहीं हो सकता कि वे 'एल-फाताह' की कार्यवाहियों को रोक सकें। आज 'एल-फाताह उनके राजनीतिक कार्यो में हस्तक्षेप नही करता है परन्तु वह इतना शक्तिवान हो गया है कि वह इन देशों की वर्तमान सरकारों को उखाड़कर फेंक सकता है। अतएव कोई भी अरब

सरकार उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का साहस नहीं कर सकती।

अरब राष्ट्रों की सरकारें सम्भवतः आज इस स्थिति में भी नहीं हैं कि इज़राइल के अस्तित्व को स्वीकार कर उससे संधि कर लें। पहले तो अरब राज्यों की सरकारें इज़राइल के अस्तित्व को ही स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थीं परन्तु जून १९६७ के युद्ध में पराजित होने के उपरान्त राष्ट्रपति नासर तथा जार्डन के बादशाह ने इस शर्त पर इज़राइल के अस्तित्व को स्वीकार करने का प्रस्ताव किया है कि जून १९६७ के युद्ध में विजित प्रदेशों को इज़राइल छोड़ दे और शरणार्थियों को ले ले। परन्तु एल-फाताह ने अरबों में इज़राइल के विरुद्ध ऐसी घृणा और कटुता उत्पन्न कर दी है कि जो अरब राज्य इजराइल के अस्तित्व को स्वीकार करने की पहल करेगा उसकी जनता विद्रोह करेगी।

मध्यपूर्व की राजनीति के कुछ विशेषज्ञों का तो यह निश्चित मत है कि यदि स्थिति एक वर्ष तक ऐसी ही बनी रही तो फिर कोई भी अरब राष्ट्र चाहे तो भी इज़राइल से संधि नहीं कर सकेगा। 'एल-फाताह' इतने समय में इतना शक्तिशाली और प्रभावशाली बन जावेगा कि मध्यपूर्व में जो वह चाहेगा वह होगा। अरब राष्ट्रों की सरकारें पंगु बन जावेंगी। जो भी राजनीतिक नेता 'एल-फाताह' की नीति और इच्छा के विरुद्ध कार्य करेगा उसको सत्ता से हटना होगा। वास्तविक बात तो यह है कि जहां फिदाईन इज़राइल के लिए एक खतरा है वहाँ वह अरब राष्ट्रों के शासकों के लिए भी एक महान् खतरा बन गया है। वे उसकी अवहेलना नहीं कर सकते अतएव मन ही मन अरब राष्ट्रों के प्रशासक 'एल-फाताह' से सशंक और भयभीत हैं।

एल-फाताह का नेता 'अराफत' जो 'अबू अमर' भी कहलाता है अपने मुख्य कार्यालय में बैठा हुआ इस संगठन और छापामार युद्ध का संचालन करता है। फिदाइनों के कार्यों की रिपोर्ट उसके पास जाती है और नया विध्वंस कार्य कहाँ होगा, कौन-कौन फिदाइन जावेगा इसकी आज्ञा वही प्रचारित करता है। अपनी प्रशंसा सुनने से उसे चिढ़ है। यदि कोई उसकी प्रशंसा करता है तो वह कहता है "कृपया व्यक्ति-पूजा को बढ़ावा न दीजिए। मैं केवल एक सैनिक हूँ। हमारा नेता पैलेस्टाइन है। हमारा मार्ग मृत्यु का मार्ग है। हम अपने वतन को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। यदि हम न कर सके तो हमारे बच्चे करेंगे और वे भी न कर सके तो उनके बच्चे करेंगे। आज अरब जगत् में 'अराफत' सबसे अधिक जनप्रिय और शक्तिवान व्यक्ति है।

जहां एक ओर अरब लोग इज़राइल के अस्तित्व को ही समाप्त कर देना चाहते हैं वहाँ दूसरी ओर इज़राइल भी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध है। इज़राइलियों में गज़ब की देशभक्ति है। वह जाति जो दो हज़ार वर्ष पूर्व पैलेस्टाइन छोड़ने पर विवश हो गयी थी अपने देश, धर्म और भाषा को नहीं भूली और प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त पुनः उस देश में बसने का अधिकार प्राप्त कर उसने १९४८ में इज़राइल के स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण किया। संसार के पचास से अधिक देशों के यहूदी वहाँ आकर बसे हैं और कल्पनातीत कष्ट, श्रम और जोखिम उठाकर उन्होंने मरुभूमि में लहलहाता उद्यान खड़ा कर दिया है। देखते-देखते इज़राइल एक अत्यन्त प्रगतिशील समृद्धिशाली राष्ट्र बन गया। इजराइल के चारों ओर उसके शत्रु अरब राज्य हैं जो उसके अस्तित्व को समाप्त कर देने पर कटिबद्ध हैं। शत्रु देशों से घिरा हुआ वह एक छोटा-सा परन्तु शक्तिवान देश है। तीन बार वह समस्त अरब देशों की सम्मिलित सेना को परास्त कर चुका है और यदि अरब शासकों ने चौथी बार भी युद्ध करने की भूल की तो उन्हें पुनः पराजय का मुंह देखना होगा।

आज इज़राइल में अरब राष्ट्रों के विरुद्ध तो घृणा और कटुता है ही संयुक्तराष्ट्र संघ के विरुद्ध भी वैसी ही कटुता और क्षोभ है। जब फिदाईनो के विध्वंसक कार्यो के प्रतिशोध स्वरूप इज़राइल ने बैरूत और अमन के हवाई अड्डो पर भीषण हवाई आक्रमण कर उन्हें विध्वंस कर दिया तो संयुक्तराष्ट्र संघ तथा अन्य देशों ने उसकी निन्दा की। इज़राइल का कहना है कि जब अरब छापामार प्रतिदिन इजराइल के निरीह नागरिकों को मारते है तब संयुक्त-राष्ट्रसंघ चुप रहता है और उन अरब देशो की निन्दा नहीं करता जो उनको खुले आम सहायता देते हैं। परन्तु जब इज़राइल इसका प्रतिशोध लेता है तो संयुक्तराष्ट्र संघ सक्रिय हो उठता है। आज इजराइलियो की मनोदशा यह बन गयी है कि "किसी देश का भरोसा न करो, स्वावलम्बी बनो और देश की रक्षा करो।"

मध्यपूर्व की आज स्थिति ऐसी भयावह हो उठी है कि यदि शीघ्र ही अरब राष्ट्रों की सरकारों ने इजराइल से संधि न कर ली और इजराइल ने कट्टरता को छोड़कर अरब राष्ट्रों के प्रस्ताव को स्वीकार न कर लिया तो सम्भवतः कुछ समय के उपरान्त 'एल-फाताह' का संगठन इतना शक्तिवान हो जावेगा कि अरब देशों की सरकारें इज़राइल के अस्तित्व को स्वीकार करने की स्थिति में ही नहीं रहेंगी। 'एल-फाताह' ही वहाँ सर्वशक्तिवान होगा और इज़राइल को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर पीढ़ियों तक युद्ध करना होगा।

वल्लतोल महाकवि

श्री आलोक प्रभाकर

आधुनिक युग में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महाकवि इकबाल के बाद वल्लतोल ही ऐसे भारतीय कवि हुए जिनकी ख्याति राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज को छूती है। वारसा के शांति सम्मेलन में विश्व के प्रमुख देशों के प्रतिनिधियों के सम्मुख वल्लतोल ने जब अपनी मेघ-गम्भीर आवाज में विश्वशांति सम्बन्धी कविता का पाठ प्रारम्भ किया, तब समस्त प्रतिनिधियों ने खड़े होकर भारत के इस महाकवि के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया था।

वल्लतोल का पूरा नाम नारायण मेनन वल्लतोल था। सन् १८७९ ई० में त्रिचूर के समीप चेरुतुरत्ती गाँव में भारत पुला नदी के किनारे महाकवि का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम मल्लिसेरी दामोदरन इलयत था, और वे 'कथकली' के बड़े प्रेमी थे। वल्लतोल किसी स्कूल या कालेज मे पढ़ने के लिए कभी नहीं गये। उन्होने मामा रामुण्णि मेनन से संस्कृत और मलयालम भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था।

लेखनी पर अवलम्बन

अल्पायु में ही वल्लतोल ने अपनी काव्य-प्रतिभा से बड़े-बड़े साहित्यिकों को प्रभावित किया। उनकी प्रारम्भिक प्रवृत्तियों मे तरुणों की अध्ययन गोष्ठी का संचालन करना भी एक मुख्य प्रवृत्ति थी। उन गोष्ठियों में विभिन्न विषयों पर चर्चा होती थी और भाषण-कला तथा लेखन-कला की प्रारम्भिक पाठशाला के रूप में उनका बड़ा महत्त्व था। छब्बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्रेस सम्हाला। बाद में कई पत्रिकाओं का संपादन भी किया। अपनी पैतृक सम्पत्ति वे अपनी बहिनों को दे चुके थे, अतः जीविका के लिए वे लेखनी पर ही अवलम्बित थे।

राष्ट्रीय चेतना के कवि

वल्लतोल राष्ट्रीय चेतना के कवि थे। "भारत छोड़ो" आन्दोलन से वर्षो पहले उन्होंने एक कविता में कहा था—"काला धुआँ उड़ाने वाले विदेशी जलयानों को बिना बुलाये हमारे देश में आने की आवश्यकता नहीं। हम चाहते हैं कि तुम हिन्दुस्तान छोड़ दो।"

एक दूसरी कविता में उन्होंने देशसेवकों का उत्साह बढ़ाते हुए कहा था—"....जो राष्ट्रीय ध्वजा को अपने हाथों में धारण करते हैं, उनके लिए हथकड़ियाँ आभूषणों के समान और जेल क्रीड़ा-भवन के समान है।....हम सब एक साथ मिल कर राष्ट्रीय ध्वज को थामने के लिए आगे बढ़ें।

'मेरे गुरुदेव' वल्लतोल की सुप्रसिद्ध कविता है। उसमें महाकवि ने गांधीजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। उन्होंने लिखा—"भारत की तोपों में गुरुदेव बापू वैर–भावना की नही, बल्कि स्नेह-भावना की बारूद भरते हैं। हिंसा का हम हिंसा से सामना नहीं करते। मारने वाले को मारना वीर-धर्म भले ही कहलाता हो; किन्तु हम उसकी जगह (उससे भी बड़े) वीर-धर्म का पालन करेंगे।"

वल्लतोल संकुचित राष्ट्रीयता के समर्थक नहीं थे। उनकी राष्ट्रीयता विस्तृत और व्यापक थी। उनके लिए अन्तराष्ट्रीयता का विशाल क्षेत्र खुला था। वे महान् मानवतावादी थे। विश्व-मानव के प्रति उनका प्रेम उनकी इन काव्य-पंक्तियों में स्पष्ट झलकता है।

भारत मद् गजं चङ्ङल पोट्टिप्पतु
पारिने कलिपोट्टक्कु चविट्टित्तालत्तानल्ला।

अर्थात् 'भारत रूपी मत्त गज का अपना बंधन तोड़ना अन्य देशों को गिराने और कुचलने के लिए नहीं है, बल्कि दलितों को सहारा देकर ऊपर उठाने के लिए है।'

केरल का 'झंडा-अभिवादन' भी वल्लतोल की रचना है। केरल का ऐसा कोई समारोह नही, जहाँ राष्ट्रीय ध्वजारोहण के समय यह 'पोरा-पोरा' झंडा-अभिवादन न गाया जाता हो। कवि कहता है :—

"अभी काफी नहीं,
अभी काफी नहीं
आजादी का झण्डा और ऊँचा उड़ने दो।

शोषण के विरोधी

मानवतावादी होने के कारण वल्लतोल के मन में शोषण-व्यवस्था के विरुद्ध व्यापक घृणा एवं शोषित-पीड़ित वर्ग के प्रति अपार सहानुभूति थी। एक भिखारी की मृत्यु

का कारुणिक वर्णन करते हुए कवि कहता है—"अपनी पैशाचिक तृष्णा के वशीभूत होकर पूँजीपति वर्ग अनन्त काम कराने के पश्चात् जिन मानव-शरीरों को दूर फेंक दिया, उन्हींमें से एक है यह। जिन मजदूरों ने अपने हाथों से बड़े-बड़े पूँजीपतियों के लिए रेशमी शय्याएँ निर्मित कीं, उन्हींको सूखे घास-पत्तों पर लेटे-लेटे मरना पड़ता है।"

सामाजिक मान्यताओं के प्रति वल्लतोल आधुनिक थे। जाति-भेद के वे जबर्दस्त विरोधी थे। एक स्थल पर वल्लतोल कहते हैं :—

"जहाँ ब्रह्मर्षियों में से एक को
किसी मछुए की स्त्री ने जन्म दिया था।
हाय, उसी देश में
एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से
सम्पर्क करना पाप हो गया।"

सामाजिक चेतना के स्रष्टा

केरल की नई सामाजिक चेतना उदय का बहुत कुछ वल्लतोल की ही वाणी का चमत्कार है। शताब्दियों से नारी के प्रति पुरुष वर्ग के अत्याचारों के विरुद्ध भी वल्लतोल ने आवाज बुलन्द की। "शिष्यनुम मकलुम" (शिष्य और पुत्र), "अल्लाह", "कर्म-भूमि यूडै", "मग्दलन मरियम", "अच्चनुम मकलुम" आदि कितने ही उनके प्रसिद्ध कथा-गीत हैं जिन्होंने केरल की जनता को अनुप्राणित किया। उनके मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थों की संख्या सत्तर से ऊपर है।

मलयाली कविता में वल्लतोल एक युग-प्रवर्त्तक कवि के रूप में सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे। उनका साहित्य एक अमूल्य थाती है। केवल केरल के लिए ही नहीं, प्रत्युत हमारे सारे देश के लिए। उन्होंने जीवन-भर अनथक साधना की। अनुवाद के क्षेत्र में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण एवं अंतिम देन 'ऋग्वेद' का मलयाली में रूपान्तर है।

'वाल्मीकि रामायण' का अनुवाद मलयाली में करते समय दुर्भाग्यवश वल्लत्तोल की श्रवण-शक्ति जाती रही। लोग कहते हैं कि वाल्मीकि की वाणी को अपनी वाणी बनाने के अपराध में भगवान् ने वल्लतोल को दण्ड देना आवश्यक समझा और उन्हें बहरा बना दिया। वल्लतोल ने उस समय दुखी होकर 'बधिर-विलापम्, काव्य की रचना की। वल्लतोल की काव्य-प्रतिभा का असाधारण विकास देख कर तथा उनसे प्रभावित होकर विद्वान् आलोचकों ने उन्हें महाकवि स्वीकार किया। कोचीन के महाराजा ने 'वीर शृंखला' भेंट में देकर उनका सम्मान किया, और त्रावनकोर के महाराजा ने उन्हें 'कवि सार्वभौम' की उपाधि दी। सन् १९५४ ई० में उनकी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें पद्म-विभूषण की उपाधि प्रदान की गई।

भारत पुला नदी के किनारे चेरुतुरत्ता में सन् १९२७ ई० में 'केरलकला-मण्डल' की स्थापना करते हुए कवि ने साहित्य और कला-साधना का मार्ग निश्चित किया। यह वही संस्था है जहाँ उदयशंकर ने नृत्य की शिक्षा प्राप्त की और कथकलि की नृत्य-मुद्राओं को भारत ही नहीं, अपितु समूचे विश्व में फैलाया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का समर्थन—

वल्लतोल के विचार राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में सुस्पष्ट थे। उनका कहना था—'हमारे देश में जनता बड़ी निर्धन है। उसमें इतनी क्षमता कहाँ कि अँग्रेजी भाषा खरीद सके और वह भी राष्ट्रभाषा के रूप में। नहीं-नहीं, यह बात बिल्कुल गलत हो जाएगी। वैसे यह भी गलत है कि हम सोचने लगें कि अब जब अँग्रेज चले गये, हम अँग्रेजी को भी समुद्र-पार पहुँचा कर दम लें। मैं अँग्रेजी नहीं जानता, पर यह कहने का दुस्साहस नहीं कर सकता कि हमारे स्कूल, कालेजों में अँग्रेजी की शिक्षा को एकदम तिलांजलि दे दी जाय। विश्व के साथ सम्पर्क बनाये रखने के लिए भी एक माध्यम चाहिए। यही अँग्रेजी का महत्त्व है। हमारी राष्ट्र-भाषा होगी हिन्दी, संस्कृत भी नहीं, क्योंकि राष्ट्र-भाषा के लिए एक जीवित भाषा होना जरूरी है। अन्य प्रान्तों में हिन्दी के विरुद्ध जो तर्क उठाये जाते हैं, उन्हें मैं एकदम असंगत समझता हूँ। क्योंकि मेरे विचार से प्रान्तीय भाषाओं की प्रगति में हिन्दी कोई बाधा उपस्थित नहीं करेगी। हिंदी को गांधीजी ने अपनाया ही नहीं, बल्कि अनेक अवसरों पर स्वतन्त्रता के उपदेश का माध्यम भी बना दिया। बुढ़ापे ने मेरी आँखों को अभी इतना धुंधला नहीं कर दिया कि मैं हिंदी के उज्ज्वल भविष्य की ओर न देख सकू।"

मानवता के कवि—

वल्लतोल की साहित्य-साधना ने संकुचित सीमाओं में बँध कर चलना स्वीकार नहीं किया।

ऋग्वेद के मलयाली अनुवाद का कार्य करने के पश्चात् और उसके अंतिम अंश का प्रूफ देखने के बाद चिकित्सार्थ वे अर्नाकुलम् गये हुए थे। काफी अर्से से वे जलोदर रोग से पीड़ित थे। अर्नाकुलम् में ही अचानक १३ मार्च, १९५८ के दिन उनका देहान्त हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु ७९ वर्ष की थी।

भारत पुला नदी के किनारे कला मण्डलम् के अहाते में ही महाकवि की पार्थिव देह का अन्तिम संस्कार किया गया। वल्लतोल किसी एक प्रदेश या एक देश के नहीं, बल्कि मानव-मात्र के कवि थे। वल्लतोल की प्रतिभा पर भारत को सदा अभिमान रहेगा। आनेवाली पीढ़ियाँ उन्हें कभी भूल नहीं पाएँगी।

सर मोहम्मद इक़बाल और पाकिस्तान (२)

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

७ मई १९३७ को सिविल मिलिटरी गजटमें मियाँ अहमद यार खाँ दौलतानाका एक मज़मून शाया हुआ था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि कांग्रेस हाई कमानने पंजाबके मुसलमानोंमें कांग्रेसका प्रोपेगण्डा करनेके लिए ढाई लाख रुपया खर्च करनेका फ़ैसला किया है और अनकरीब मौलाना अबुल कलाम आज़ाद लाहौर तशरीफ़ लायेंगे, ताकि मौलाना अब्दुल क़ादिर कसूरी और डाक्टर मुहम्मद आलम बैरिस्टर एट ला के मशविदेसे उस प्रोपेगण्डाका खाका तैयार किया जाये। यह रुपया डाक्टर मुहम्मद आलम्की तहवीलमें रहेगा। जिससे वह उर्दूका एक रोज़-नामा अखबार जारी करेंगे, और बहुतसे तनख्वाहदार आदमियोंको प्रोपेगण्डाके लिए मुलाज़िम भी रखेंगे।

डाक्टर आलम अपनी शुहरत और नेकनामीके बारे-में बहुत जकीउलहिस[1] वाक़ये[2] हुए थे। उन्होंने यह मज़मून पढ़नेके बाद सिविल मिलिटरी गज़टसे अंग्रेज एडीटर और मियाँ अहमद यार खाँ दौलतानाके खिलाफ़ इजालए-हैसि-यत नुर्फ़ीका इस्तगासा[3] दायर कर दिया और पण्डित ज़वाहरलाल नेहरूको बतौर गवाह तलब किया। चुनांचे पण्डित नेहरू इस मुक़दमेमें शहादत देनेके लिए लाहौर तशरीफ़ लाये और मियाँ इफ्तखारुद्दीन के दौलतकदे पर फ़रोकश हुए।

अल्लामा इक़बालने उन्हें पैग़ाम भेजा कि मुझसे मिलते जाइयेगा। चुनांचे पण्डित नेहरू उस पैग़ामकी तामीलमें डाक्टर साहबकी ख़िदमतमें हाज़िर हुए। पण्डित नेहरूने उस वाक़येका ज़िक्र अपनी किताबमें भी किया है। फ़र्माते हैं—

"...... अपने इन्तक़ालसे चन्द महीने क़ब्ल जब कि वह बिस्तरे अलालत पर दराज़ थे। उन्होंने मुझे याद फ़र्माया और मैं निहायत ख़ुशीसे इस इर्शादकी तामीलमें उनकी खिदमत में हाज़िर हुआ। मैंने महसूस किया कि इख्तलाफ़ात के बावजूद हमारे दरमियान किसी क़दर बाहमी इश्तराक[4] मौजूद था और मुझे यह भी महसूस हुआ कि उस शख्स के साथ काम करना कितना सहल है, वह उस वक्त पुरानी यादें ताज़ा कर रहे थे और गुफ्तगू मुख्तलिफ़ मौजूआत पर होती रही, जिसमें मैंने खुद बहुत कम हिस्सा लिया, बल्कि ज्यादातर उन्हीं की बातें सुनता रहा। मैं उनकी शइरीका मद्दाह[1] हूँ और मुझे यह मालूम करके बेहद खुशी हुई कि वह भी मुझे पसन्द फ़र्माते और मेरे मुतल्लिक़ अच्छी राय रखते है।"

पण्डित नेहरूने अपनी किताबमें जहाँ इस मुलाक़ातका ज़िक्र किया है वहाँ यह भी लिखा है कि—

"अपनी जिन्दगीके आखिरी बरसों में इक़बाल का रुझान[2] सोशलिज्म की जानिब बढ़ गया था। इश्तराकी[3] रूसने जो ज़बरदस्त तरक्क़ी की है उसने इक़बालकी तव-ज्जहको अपनी जानिब मबज़ूल[4] कर लिया था, यहाँ तक कि उनकी शाइरीमें भी अब एक नया रंग पैदा हो गया था।"

यह वाक़िया है कि डाक्टर साहब रोज़-ब-रोज इस मसलेकी तरफ़ ज्यादा मायल होते जा रहे थे, यहाँ तक कि उन्होंने २८ मई १९३७ ई० को मिस्टर जिनाहको भी एक खतमें लिखा था कि—

"रोटीका मसला रोज़-ब-रोज़ ज़्यादा अहमियत इख्ति-यार करता जा रहा है और मुसलमान यह महसूस करने लगा है कि वह गुज़िश्ता[5] दो सौ साल से बतदरीज[6] नीचे गिरता चला जा रहा है। मुसलमान के ख़याल में उसका इफ़लास[7] हिन्दू साहूकारों और सरमायादारों की कोशिशों का नतीजा है। यह पहलू अभी उसकी आँखोंसे ओझल है कि इस इफ़लासकी एक बहुत बड़ी वजह विदेशी हुकूमत भी है। ताहम ज़ूद या ब देर[8], इस हक़ीक़तका अहसास[9] उसे होकर रहेगा। जहां तक जवाहरलालके उस सोशलिज़्मका ताल्लुक़ है, जिसकी बुनियाद दहरियत[10] पर है। मुसलमान उस तरफ़ चन्दाँ तवज्जह नहीं करेंगे। अब सवाल यह रह जाता है कि फिर मुसलमानोंका इफ़लास दूर करने की और तद्बीर क्या हो सकती है?

याद रखिये! मुस्लिमलीगके सारे मुस्तक़बिल का

---

१. विकृत, २ जिसकी सम्वेदन शक्ति बढ़ जाय, ३. मान हानि का दावा, ४. परस्पर साम्य।

१. प्रशंसक, २. झुकाव, ३. साम्यवादी, ४. आकर्षित, ५. गुजरे हुए, ६. अधिकता, ७. दरिद्रता, ८. शीघ्र व देर में, ९. वास्तविकता का ज्ञान, १०. अनीश्वरवाद।

इनहसार[1] सिर्फ़ इस बात पर है कि लीग उस सवालका कोई तसल्लीबख़्श हल तलाश करे, अगर लीग ऐसा कोई हल तलाश करने में कामियाब न हुई तो मुसलमान अवाम हस्ब साबिक़[2] लीगसे बेताल्लुक़ और ग़ाफ़िल रहेंगे।"

डाक्टर साहब की तबीयतमें उन दिनों एक और भी जज़्बा पैदा हो रहा था, जिसे जज़्बए-सरफ़रोशी[3] कहना चाहिए। एक ज़माना यक़ीनन ऐसा भी गुज़रा था, जब इक़बाल की आफ़ियत पसन्दी और ऐतदाल मिज़ाजी[4] ज़रबुल मिस्ल[5] बन गई थी और उन्होंने एक ख़त के जवाब में अपने एक दोस्त को भी लिख दिया था कि—

यह उक़्दः हामे-सियासत तुझे मुबारक हो
कि फ़ैज़े-इश्क़से नाख़ुन मेरा है सीना ख़राश

[यह राजनैतिक भेद ऐ दोस्त ! तुझे ही मुबारक हो कि तू समझ रहा है कि इश्क़ की बदौलत मेरे नाख़ुन सीने को खरोंचने के क़ाबिल हो गये हैं]

अव्वल तो वह अर्सए-दराज़[6] तक सियासियात से किनाराकश[7] रहे और जब सियासत में आये भी तो हद दर्जा ऐतदाल पसन्दी और मियाना रवी और आफ़ियत कैशीके[8] साथ, लेकिन अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी दो बरसों में इक़बाल वह पुराना इक़बाल नहीं रहा या जो उस ख़ारज़ार[9] में फूंक-फूंककर क़दम रखने का आदी था ! अब इक़बाल सिविलनाफ़रमानी[10] में शरीक होने, क़ैदो बन्दके शदाइद[11] बरदाश्त करने और सीनेपर गोली खानेको आमादा था। यह इन्क़िलाब क्योंकर आया, इसके पीछे बहुतसे नाफ़िसयाती असबाब कार फ़र्मा थे। मसलए–फ़िलिस्तीन पर बहस करते हुए डा० इक़बाल ७ अक्तूबर १९३७ को मिस्टर जिनाह को लिखते हैं—

"मसलए फ़िलिस्तीनने मुसलमानोंको सख़्त परेशान कर रखा है········जाती तौर पर मैं एक ऐसे मसलेकी ख़ातिर, जिसका ताल्लुक इस्लाम और हिन्दुस्तान के साथ है, जेल जाने को तैयार हूँ, मशरिक़के दरवाज़ों[1] पर, मग़रबी इस्तामार के इस अड्डे की तामीर[2], इस्लाम और हिन्दुस्तान दोनों के लिए ख़तरे का बाइस है।"

अब २६ जनवरी १९३८ ई० को हाईकोर्ट के फ़ुल बेंच ने मसजिद शहीदगंजकी अपील ख़ारिज कर दी तो मुसलमानों में सख़्त हेजान[3] पैदा हो गया था और बड़े-बड़े एहतजाजी[4] जलूस निकालने शुरू हो गये थे। उसी शाम गुलाम रसूल ख़ाँने डाक्टर साहबकी ख़िदमतमें हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि अब क्या करना चाहिए, तो डाक्टर रो पड़े और कहने लगे—मुझसे क्या पूछते हो, मेरी चारपाईको अपने कन्धों पर उठाओ और उस तरफ ले चलो जिधर मुसलमान जा रहे हैं। अगर गोली चली तो मैं भी उनके साथ मरूँगा।

यह सब बातें ज़ाहिर कर रही हैं कि इक़बाल अपनी ज़िन्दगीके आख़िरी दौरमें किस हद तक बदल गये थे। शेर वह अब भी कहते थे। गिरयए बेइख़्तियार अब भी उन पर तारी[5] होता था। लेकिन अजीब बात है कि ज्यूं-ज्यूं बीमारी उनपर ग़ालिब आ रही थी उसी निस्बत से वह सियासियातमें इन्तहा पसन्द[6] बनते जा रहे थे।

यह इक़्तबासात[7]-ओ-वाक़ियात डाक्टर आशिक़ हुसैन बटालवी की ताज़ा तसनीफ़ "इक़बाल के आख़िरी दो साल" से लिये गये है। जिनके देखने से मालूम होता है कि हर चन्द इक़बालने सिर्फ़ शाइरी ही नहीं बल्कि अमली हैसियत से भी सियासत में नुमायाँ हिस्सा लिया था। और अव्वल अव्वल सियासी मसाइलसे दिलचस्पी नहीं ली। लेकिन जब बादको वह मुस्लिम लीगमें शामिल हो गये तो उसके बड़े पुरजोश नक़ीब[8] बन गये और आख़िर वक़्त तक वह उसके हामी रहे।

इसमें शक नहीं कि अमली सियासतकी जद्दोजहद और तगोदौ[9] इक़बाल बक़ौल ख़ुद "किरदार का ग़ाज़ी बन न सका"[10] लेकिन जिस हद तक फ़िकरी रहनुमाई-ओ-ज़हनी

---

१. भविष्यका दारोमदार, २. सर्वसाधारण वर्तमान की तरह, ३. मुस्लिम क़ौम पर प्राण न्योछावर करने की भावना, ४. सुख-चैन से रहने की आदत और संतुलन स्वभाव, ५ उदाहरण, प्रसिद्धि ६. बहुत दिनों तक, ७. राजनीतिसे दामन बचाते रहे, ८. संतुलन-स्वभाव और मध्यमार्ग को अपनाते हुए निहायत सुख-चैन के साथ, ९. कण्टाकीर्ण, १०. सत्याग्रह, ११. बन्दी जीवन के कष्ट।

१. पूर्वीयद्वार २. पश्चिमी अड्डे का निर्माण, ३. बेचैनी और रोष, ४. निर्णय के विरोध में, ५. रुदनका अकस्मात दौरा, ६. राजनीतिमें अधिक से अधिक, ७. उद्धरण, ८. प्रचारक. ९. सघर्ष, १०. यह पूरा शेर इस प्रकार है—
'इक़बाल' बड़ा उपदेशक है, मन बातों में मोह लेता है।
गुफ़्तार का यह ग़ाज़ी तो बना, किरदारका ग़ाज़ी बन न सका
[पहले मिसरे का भाव स्पष्ट है। दूसरे मिसरे का आशय है कि इक़बाल उपदेश देने और अपने मनोभाव स्पष्ट

तश्कील का ताल्लुक[१] है, उन्होंने सियासियातमें जिस हैअत इजतमाईकी तबलीग़[२] की, वह मुस्लिम क़ौमियत थी और वतन के तसव्वुर को मुसलमानों के लिए उन्होंने मुफ़रत रसां[३] खयाल किया।

इन ताज़ा खुदाओं में बड़ा सबसे वतन है
जो पैरहन इसका है, वह मज़हब का कफ़न[४] है

बाज का ख्याल है कि सियासियाते-हिन्दमें[५] इक़बालने अपना यह नज़रिया[६] बाद में क़ायम किया था, पहले वह वतनियत हीके हामी[७] थे, जैसा कि उनकी बाज़ नज़्मोंसे जाहिर होता है। हो सकता है कि यह एक हद तक सही हो लेकिन १९३० ई०में वह यकीनन इस्लामी कौमियतके मुबल्लिग़[८] बन गये थे चुनांचे अपने खुतबए-सदारत[९] (मुस्लिमलीग मनविकदा इलाहाबाद)) में उन्होंने साफ़-साफ़ जाहिर कर दिया कि—

"अगर आज आप अपने तमाम तसव्वुरात और खयालात[१०] को इस्लामके नुक्तए मास्कपर मरकूज[११] कर दें और उसके ज़िन्दा-ओ-पायन्दा, क़ायम-ओ-दायम[१२] नज़रिये हयातसे[१] नूरे-बसीरत[२] हासिल करें तो अपनी मुन्तशिर कूवतों को[३] फिरसे मुतजमा[४] कर लेंगे और अपने आपको तबाही ओ बर्बादी के मुहीबे-जहन्नुम[५] से बचा लेंगे।"

"इस मुल्कमें इस्लाम बहैसियत एक तमद्दनी कूवतके[६] इसी सूरतमें जिन्दा रह सकता है उसे एक मखसूस इलाकेमें मरकूज[७] कर दिया जाये।" "यह मुतालिबा[८] मुसलमानों की इस दिली ख्वाहिश परमबनी[९] है कि उन्हें भी कहीं अपने नश्वोनमाका[१०] मौक़ा मिले; क्योंकि वहदते कौमी के निजामें-हुकूमतमें[११] जिसका नक़्शा हिन्दु-अरबाबे-सियासत अपने ज़हनमें लिए बैठे[१२] हैं कि जिसका मक़सद-ओ वहीद[१३] यह है कि तमाम मुल्क में उनको ग़लबा तसल्लुत[१४] हो जाये। इस क़िस्मके मवाक़अ[१५] हासिल होना करीब-करीब नामुमकिन हैं।"

इस मशविरे के बाद उन्होंने उसका अमली हल भी पेश किया और वह यह था कि—

"पंजाब, सूबासरहद, सिन्ध और बिलोचिस्तान को मिलाकर एक वाहिद[१६] रियासत क़ायम की जाये।" और उसीके साथ यह पेशगोई[१७] भी की—

"हिन्दुस्तान को हुकूमते-खुद-इख्तियारी ज़ेरे-सायए-बरतानिया मिले या उससे बाहर[१८], मुझे तो यही नजर आता है कि शुमाली-मग़रबी हिन्दुस्तान में एक मुतहदा इस्लामी रियासत[१९] का क़याम इस इलाक़ेके मुसलमानों-के मुक़द्दरमें लिखा जा चुका है।"

ये हैं इक़बालके वे खयालात, जिनकी बिना पर कहा जाता है कि क़यामे-पाकिस्तानके मुहर्रिक[२०] अव्वल वही थे।

करने में बहुत दक्ष और-पेश-पेश हैं, किन्तु उन्हें कार्य रूप में परिणित करके कभी नहीं दिखाया। उनकी स्थिति "पर उपदेश कुशल बहुतरे" जैसी है]

अल्लामा इक़बाल की जिन्दगी अमली जिन्दगी नहीं थी। उनकी कथनी और करनी में पृथ्वी और आकाश का अन्तर था। खिलाफ़त आन्दोलन के दिनों में मौलाना मुहम्मद अली उनके यहाँ गये तो बहुत अधिक लानत-मलामत करते हुए फ़र्माया "ज़ालिम! तूने अपने कलम से लोगोंको गर्मा-कर उनकी ज़िन्दगीमें एक तड़प पैदा कर दी है। मगर खुद न तड़पता है और न किसी अमली काम में हिस्सा लेता है।" इक़बालने मुस्कराते हुए जवाब दिया—"तुम भी अजीब बेसमझ आदमी हो। तुम्हें मालूम है कि मैं अपनी क़ौमका क़व्वाल हूँ। अगर कव्वाल को खुद वज्द और हाल आ जाये और वह भी हू-हक़ करने लगे तो क़व्वाली फिर कौन गायेगा?"

१. सच्चे मनसे पथ-प्रदर्शकता और मानसिक विचार-धारा का सम्बन्ध, २. सामूहिकता की हिमायत, ३. अ-धिक हानि पहुँचानेवाला, ४. आजकल वतन परस्ती को ही खुदा समझा जा रहा है। वतनपरस्तीका जो लिबास (रूपरेखा) है, वह मज़हब (मुस्लिम धार्मिकता) का अहित-कर कफ़न है, ५. भारतीय राजनीति में, ६. दृष्टिकोण, ७. देश के ही समर्थक थे, ८. प्रचारक, ९. अध्यक्षीय भाषण। १०. चिन्तन और विचारधाराओं को, ११. इस्लामी उन्नति के लिए केन्द्रित, १२. जीवन और स्थायित्व की।

१. ज़िन्दगी के दृष्टिकोण से, २. दिव्य दृष्टि, ३. बिखरी हुई शक्तियों को, ४. एकत्र, ५. रव-रव नरक में गिरने से, ६. संगठित शक्ति, ७. विशेष प्रान्तों में केन्द्रित, (पाकिस्तान प्राप्त किया जाय), ८. अधिकार, डिमाण्ड, ९. आधारित, १०. विकास, ११. सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाने में, १२. जिसकी रूप-रेखा अपने मस्तिष्क में हिन्दू नेता (राष्ट्रीय नेताओं को इक़बाल भी जिनाह की तरह हिन्दू नेता कहते थे) अंकित किये हैं। १३. उद्देश्य एवं तात्पर्य्य, १४. एकाधिकार और बहुमत, १५. अवसर, १६. एक रियासत (पाकिस्तान) १७. भविष्यवाणी, १८. भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिले या औपनवेशिक स्वराज्य, १९. उत्तरी पच्छिमी भारत में एक संगठित मुस्लिम राज्य, २०. प्रस्तावक।

इससे इनकार मुमकिन नहीं कि इक़बाल बड़े रासखुल अक़ीदा[१] मुसलमान थे, लेकिन उनको इस मजहबी पुख़्तगीका ताल्लुक शिआरे-इस्लामी[२] या इख़्लाकी तालीमसे[३] इतना ज्यादा न था, जितना तारीखे इस्लाम और इस्लामी फ़तूहात[४] से। उनके यहाँ हमको अहदे-सआदत की इख़्लाक़ी जिन्दगी का दर्स[५] बहुत कम मिलता है और मुसलमानों के मलूकाना तजल्लुत-ओ-इक़्तदार[६] का जिक्र ज्यादा। यहाँ तक कि कभी-कभी वे इस जज्बे से[७] इस क़दर मग़लूब[८] हो गये कि खुद शमशीर की सना-गुस्तरी पर उतर आये[१]। यही वह चीज थी जिसने उनके यहाँ शाहीन की तख़लीक़ की।[२]

इसमें शक नहीं इक़बाल बड़ा मुजाहिद शाइर[३] था, और बड़ा दर्दमन्द दिल उसने पाया था, लेकिन उस दर्द-मन्दी का ताल्लुक़ इस्लाम से ज्यादा मुस्लिम क़ौम से था, वे यह तो जरूर चाहते थे कि मुसलमान एक बार फ़िर दुनिया पर छा जायें, लेकिन इस्लाम फिर क्यों कर जिन्दा हो, इस पर उन्होंने कम ग़ौर किया[४]।

---

१. दृढ़ विश्वासी, २. मुस्लिम धर्मके आचरणका, ३. इस्लामी धर्मकी शिक्षासे, ४. मुस्लिम इतिहास और उसकी विजय यात्रा, ५. मुसलमानोंके प्राचीन सदाचारी जीवनका उल्लेख, ६. बादशाहों की विजय-यात्रा और अधिकारका उल्लेख अधिक किया है, ७. इस मजमून के बतौर नमूना चन्द शेर दिये जा रहे हैं—

थे हमीं एक तेरे मअ़ारका आराओं में!
खुश्कियोंमें भी कभी लड़ते, कभी दरियाओं में
दीं अजानें कभी यूरुपके कलीसाओंमें
कभी अफ्रीका के तपते हुए सहराओंमें
शान आँखोंमें न जचती थी जहाँदारोंकी
कलमा पढ़ते थे हम छावोंमें तलवारोंकी
हम जो जीते थे, तो जंगोंकी मुसीबत के लिए
सर बकफ़ फिरते थे क्या दहरमें दौलतके लिए?
क़ौम अपनी जो जरो माले-जहाँ पर मरती
बुतफ़रोशीके एवज बुतशिकनी क्यों करती?
टल न सकते थे, अगर जंगमें अड़ जाते थे
पाँव शेरोंके भी मैदाँसे उखड़ जाते थे
तुझसे सरकश हुआ कोई तो बिगड़ जाते थे
तेग क्या चीज है? हम तोपसे लड़ जाते थे!
नक़्स तौहीदका हर दिल पै बिठाया हमने
जेरे खंजर भी यह पैग़ाम सुनाया हमने

८. प्रभावित।

१. मैं तुमको बताता हूँ तक़दीरे-उमम क्या है?
शमशीरो सना अव्वल, ताऊसो-रबाब आख़िर

[ऐ मुसलमानों तुम्हारा भाग्य किस पर अवलम्बित है, मैं बताता हूँ। तुम्हारे हाथों में तलवार और भाले होंगे तो शाही तख़्त और सुख-भोग के साधन क़दम चूमेंगे। लेकिन शमशीरों-सनाको प्राथमिकता न देकर तुमने राजसिंहासन और संगीत को प्राथमिकता दी तो नष्ट हो जाओगे।]

२. बाज पक्षीका यत्र-तत्र अपनी नज़्मों में उल्लेख किया और उसके आक्रमणकारी स्वभाव को सराहाया है जैसे—

उक़ाबी रूह जब बेदार होती है जवानों में
नज़र आती है उनको अपनी मंजिल आसमानों में
जो कबूतर के झपटने में मजा है ऐ पिसर!
वह मजा शायद कबूतर के लहूमें भी नहीं
अफ़सोस सद अफ़सोस कि शाहीं न बना तू
देखे न तेरी आँखने फ़ितरतके इशारे
हुमाओ-कबूतरका भूखा नहीं मैं
कि है जिन्दगी बाजकी जाहिदाना

३. मुस्लिम क़ौमके लिए संघर्षशील, ४. अर्थात्—इक़बाल मुस्लिम मजहबके प्रचारको गौण और मुस्लिम क़ौमकी उन्नतिको मुख्य समझते थे। उनका यह विश्वास ठीक ही था कि मुस्लिम क़ौम उन्नत होगी तो मुस्लिम मजहबका प्रचार अनायास हो जायगा और अगर मुसलमान कुरान, नमाज, रोजोंके प्रचारके गोरखधन्दे में फँस गये तो सामूहिक उन्नति नहीं हो सकेगी। उनका यह दृढ़ विश्वास था "न धर्मो धार्मिकैर्बिना"

कबीर की उलटवासियाँ सिद्धों की देन

डॉ० विद्यावती 'मालविया' एम० ए०, पी-एच० डी०

कबीर की वाणियों में जो उलटवासियाँ मिलती हैं, उनका मूल स्रोत बौद्ध साहित्य है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य से भी उनकी परम्परा बतलाई है किन्तु कबीर की उलटवासियाँ सिद्धों की देन हैं जो भगवान् बुद्ध की वाणियों में भी मिलती हैं। इन उलटवासियों का प्रभाव सिद्धों के समय में बढ़ा और उसके पश्चात् नाथों तथा सन्तों ने उसे अपने उपदेश का एक अंग बना लिया। भगवान् बुद्ध ने कबीर की उलटवासियों के समान ही अपने उपदेश में अनेक स्थलों पर गाथायें कही हैं तथा कहीं कहीं गद्य में भी उलटवासियों की भाषा का प्रयोग किया है। 'धम्मपद' में कहा है—

अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो।
हतावकासो वन्तास स वे उत्तम पोरिसो॥

अर्थात् "जो श्रद्धाहीन, अकृतज्ञ, सेध मारनेवाला, अवकाशहीन, निराश है वही उत्तम पुरुष है।" किंतु इसका वास्तविक अर्थ है "जो अन्धश्रद्धा से रहित है, अकृत (निर्वाण) को जाननेवाला है और संसार की सन्धि का छेदन करनेवाला है, उत्पत्ति रहित है तथा जिसने सारी तृष्णा को वमन (त्याग) कर दिया है वही उत्तम पुरुष है।"

वनं छिन्दथ मा रुक्खं, वनतो जायती भयं।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च, निब्बना होथ भिक्खवो॥

इसका शाब्दिक अर्थ है—"भिक्षुओ! वन को काटो, किन्तु वृक्ष को मत काटो। वन से भय उत्पन्न होता है। झाड़ को काटकर वन रहित हो जाओ।" इसका वास्तविक अर्थ है—"भिक्षुओं तृष्णा को काटो, किंतु शरीर को मत नष्ट करो। तृष्णा और अकुशल चैतसिकों को काटकर (नष्ट कर) तृष्णा-रहित हो जाओ।"

मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो॥

इसका शाब्दिक अर्थ है—"माता-पिता, दो क्षत्रिय राजाओं तथा अनुचरों के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की हत्या करके ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है।" वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—"तृष्णा (माता), अहंकार (पिता), शाश्वत और उच्छेद दृष्टि (दो क्षत्रिय राजा) तथा संसार की आसक्तियों (अनुचरों के साथ सारा राष्ट्र) को नष्ट कर क्षीणाश्रव (ब्राह्मण) दुःख-रहित हो जाते हैं।"

ये सभी गाथायें उलटवासियाँ हो है। इसी प्रकार मज्झिमनिकाय के वम्मिक सुत्त में पन्द्रह उलटवासियों का उत्तर दिया गया है। त्रिपिटक में ऐसे उपदेशों की संख्या यद्यपि बहुत नहीं है किन्तु उन्हींका विकसित रूप सिद्धों एवं नाथों में पाते हैं, जिन्हें सन्तों ने अपनाया। बुद्धकाल में इन उलटवासियों का प्रचार बहुत कम था, इनका प्रचार सिद्धों के समय में बढ़ा। राहुलजी ने इनका आरम्भ सरहपा से ही माना है किंतु वास्तविकता इतनी ही है कि बुद्धोपदिष्ट उलटवासियो का वाहुल्य सिद्धों के समय में हुआ और इन्हीं का प्रभाव नाथों तथा सन्तो पर पड़ा। यही कारण है कि सिद्धों की अनेक उसटवासियाँ उन्हीं शब्दों एवं रूपों में कबीर की वाणी में भी मिलती हैं। 'दोहाकोशगीति' में सरहपा ने कहा है कि बँधा हुआ दसों दिशाओं में दौड़ता है और छूट जाने पर निश्चल खड़ा रहता है—

बद्धो धावइ दस दिसाहि,
मुक्को णिच्चल ट्ठाअ।

कबीर ने इसे ही इस प्रकार कहा है—

आछै रहै ठौर नहिं छाड़ै,
दस दिसिहीं फिर आवे।

सिद्ध टेण्ढणपा की भी उलटवासियाँ कबीर-वाणी में अक्षरशः मिलती हैं। ढेण्ढणपा ने कहा है—

बदल बिआइल गविआ बाँझे,
पिटा दुहिये ये तिन साँझे।

कबीर ने इसी को इस प्रकार कहा है—

बैल बियाइ गाइ भई बाँझ,
बछरा दूहै तीन्यूं साँझ।

ऐसे ही ढेण्ढणपा ने कहा है—

निति निति पिआला पिहे षम जूझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले बूझअ।

इसी उलटवासी को कबीर ने इस प्रकार कहा है—

नित उठि स्याल स्यंघ सूँ जूझै
कहैं कबीर कोई बिरला बूझै।

गोरखनाथ की उलटवासियाँ भी कबीर-वाणी में मिलती हैं एक पद में गोरखनाथ ने कहा है—

डूंगरि मंछा जलि सुसा पांणी मैं दौं लागा।

कबीर ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा है—

समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भईं।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूपां चढ़ि गईं॥

गोरखनाथ और कबीर की उलटवासियों में अनेक ऐसी हैं जो एक-दूसरे से पूर्ण प्रभावित हैं। तात्पर्य यह कि गोरखनाथ द्वारा व्यक्त भाव ही उन्हीं शब्दों में कुछ विपर्यय के साथ कबीर-वाणी में मिलते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

गोरखनाथ—

सहज पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगांम चित्त चवका।

कबीर—

कबीर तुरी पलांणियाँ, चावक लीया हाथि।

गोरखनाथ—

मन मकड़ी का ताग ज्यूँ, उलटि अपूठौ आंणि।

कबीर—

ताकू करै सूत ज्यूं, उलटि अपूठा आंणि।

गोरखनाथ—

चंद विहूंणां चांदिणां, तहाँ देख्या श्री गोरख राइ।

कबीर—

देख्या चंद विहूंणां चाँदिणां, तहाँ अलख निरञ्जन राइ

गोरखनाथ—

उनमनी तांती बाजन लागी, यहि विधि तृष्णां पांढी।

कबीर—

सुषमन तंती बाजण लागी, इहि विधि तृष्णां पांढी।

गोरखनाथ—

तत वेली लो तत वेली लो, अवधू गोरखनाथ जांणीं।
वेलड़ियाँ दौं लागी अवधू, गगन पहूँती झाला।
काटत वेली कूंपल मेल्ही, सींचतड़ां कुमलाये।

कबीर—

रांमगुन वेलड़ी रे अवधू गोरखनाथि जांणीं।
वेलड़िया द्वै अणीं पहूँती, गगन पहूँती सैली।
काटत बेली कूपले मेल्ही, सींचताड़ी कुमिलाणीं।

इस प्रकार सिद्धों और नाथों की वाणियों में आई हुई उलटवासियों का कबीर की उलटवासियों के साथ तुलनात्मक ढङ्ग से विचार करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि कबीर की उलटवासियाँ सिद्धों की देन हैं। डॉ० भरतसिंह उपाध्याय का कथन है कि 'वस्तुतः सहजयानी बौद्ध इस प्रकार की उलटवासियों का प्रयोग अधिकता से किया करते थे और कबीर ने इन्हें उन्हीं की परम्परा से सुनकर रुचिपूर्वक प्रयोग किया था।' यह यथार्थ है कि बुद्धकाल में उलटवासियों का जो प्रवचन हुआ था, उसका बाहुल्य सिद्धकाल में हुआ और नाथों तथा सन्तों पर उसीका प्रभाव पड़ा, किंतु कबीर की भाषा सिद्धों की भाषा से कुछ दूर होती हुई भी उलटवासियों में समता दीखती है और ऐसा ही ऊपर दिये गये उदाहरणों से प्रकट है कि अनेक सिद्धों की उलटवासियाँ अपने मूल स्वरूप में ही कबीर-वाणी में विद्यमान हैं, अतः कबीर की उलटवासियाँ सिद्धों की ही देन मानी जाएँगी।

अफगानिस्तान की बामियान की घाटी
(बीच में छोटे बुद्धि की मूर्ति की गुफा है।)

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अध्यक्ष पंडित कमलापति त्रिपाठी ने गत मास सभा-द्वारा प्रकाशित प्राचीन रसलीन का काव्यसंग्रह कार्यकारी राष्ट्रपति श्री गिरि को भेंट किया।

भारत सरकार गांधी जन्मशती के उपलक्ष्य में चार स्मृति डाक-टिकट निकाल रही है।
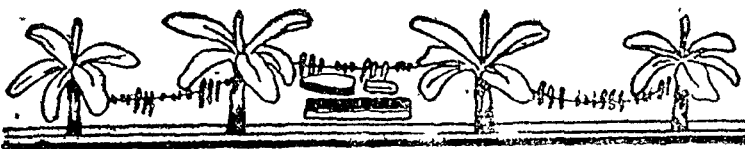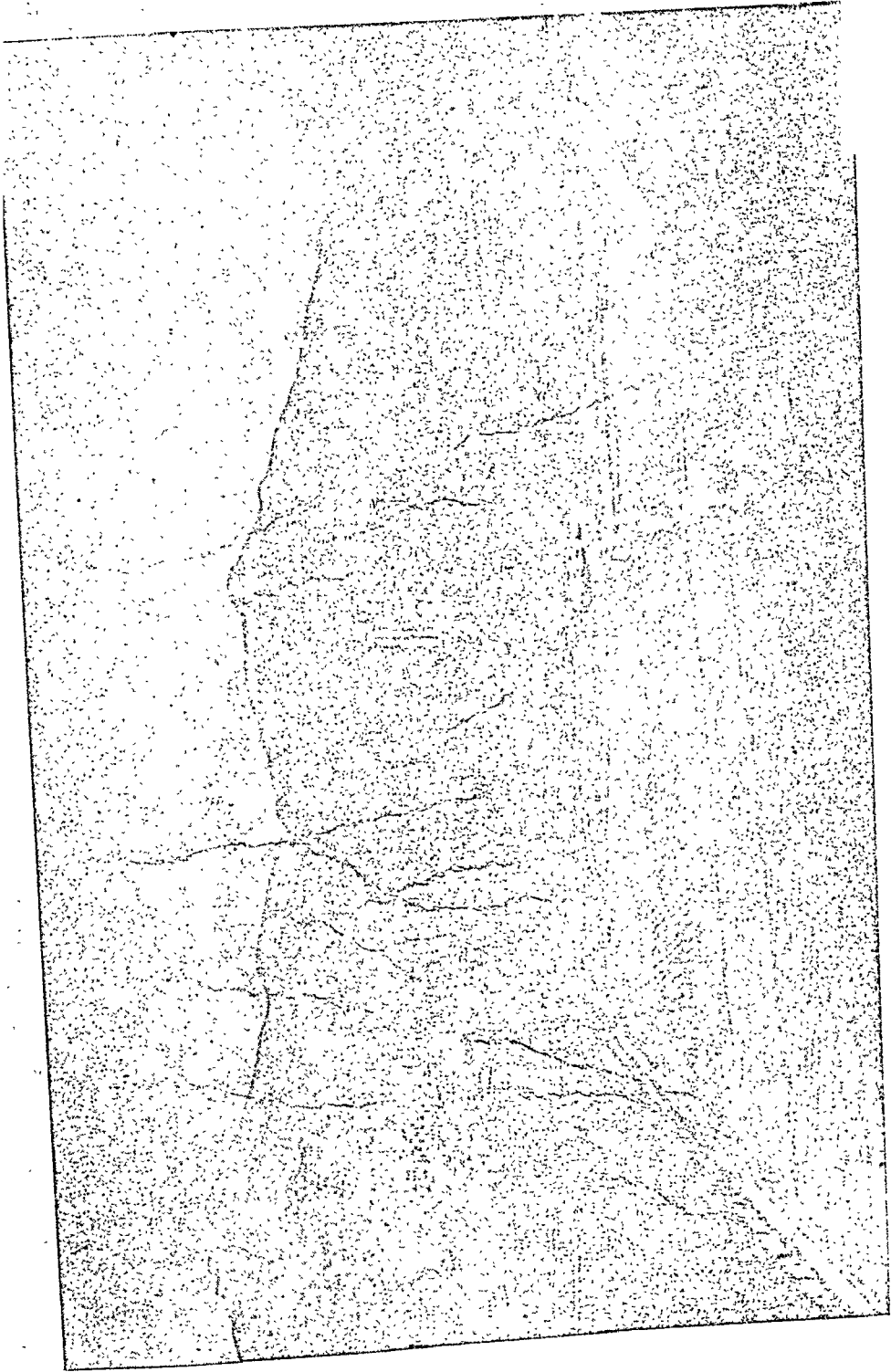
"कुमाऊँनी भाषा के मुहावरे"

श्री कैलाश चन्द्र लोहनी

मुहावरा का अर्थ है लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो (हिन्दी शब्दसागर)। इसका एक अन्य अर्थ है "अभ्यास" (हिन्दी शब्दसागर)। जो वाक्य अथवा शब्द दैनिक जीवन में प्रयोग के कारण किसी विशेष अर्थ की व्यंजना करते हैं वे मुहावरे कहलाते हैं। वास्तव में मुहावरों का कार्य अत्यन्त विस्तृत भावों को कम से कम शब्दों द्वारा व्यक्त करना है। मुहावरों के निर्माण में बुद्धि कार्य नहीं करती अपितु वे स्वाभाविक रूप से निर्मित होते हैं। वहाँ न तो व्युत्पत्ति-शास्त्र ही कार्य करता है, न व्याकरण और न तर्क ही। मुहावरों द्वारा किसी भी भाषा की शब्द शक्ति, विकसित होती है। मुहावरों से ही भाषा की अभिव्यंजना शक्ति, मार्मिकता, संवेदनशीलता, प्रेषणीयता, अर्थबोध की विशिष्टता तथा सजीवता का ज्ञान होता है। इस प्रकार मुहावरे किसी भाषा की महत्त्वपूर्ण निधि होते हैं।

मुहावरों का सम्बन्ध लोक-जीवन से है। मुहावरे लोक-जीवन की परिस्थितियों में जन्म लेते हैं, विकसित होते हैं और अपनी अर्थ गरिमा व्यक्त करते हैं। इसी कारण लोक-जीवन के निकट सम्पर्क वाली भाषा में मुहावरों की संख्या सर्वाधिक होती है। कुमाऊँ में मुहावरों का प्रयोग व्यापक है और इनकी संख्या अत्यन्त विस्तृत है। दैनिक जीवन की क्रियाओं, अनुभूतियों, कृषि, घरेलू उपयोग की वस्तुओं, शरीर के अंग-उपांगों, प्रकृति के विविध तत्त्वों आदि से मुहावरे संबंधित हैं। इस प्रकार वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हैं। कुमाउंनी भाषा के मुहावरों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

कुमाऊँ में बेल को ऊपर लगाने के लिए जो पेड़ की डाल काटी जाती है वह ठाङर कहलाती है। इसी आधार पर सहारा देने के लिए ठाङर दिण मुहावरे का प्रयोग होता है। बकौल एक सफेद फूल है जो बंजर भूमि में पैदा होता है। बकौल फुलण मुहावरे का प्रयोग वीरान के अर्थ में होता है। व्यर्थ वस्तु के भाव में भी यह प्रयुक्त होता है। इसी अर्थ में भङौव फुलण और भटूयौल जायण मुहावरे का प्रयोग होता है। खेत को आबाद करने के अर्थ में कसुन करण मुहावरा बोला जाता है। इस मुहावरे का प्रयोग गाय-भैंस आदि के गर्भवती करने के अर्थ में भी होता है। खेत के झाड़-झंखाड़, काँटे आदि जलाने के लिए केड़ लगूँण मुहावरा है। बल्ट-पल्ट का मूल अर्थ है उलटना-पलटना किन्तु जन-प्रयोग में यह खेती में परस्पर हाथ बँटाने के अर्थ में आता है। केले आदि के पेड़ को सहारा देने के अर्थ में ट्यक लगूँण मुहावरा प्रयुक्त होता है। कुमाऊँ में प्राय: सीढ़ीनुमा खेत हैं और उनमें सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है, जिस कारण आकाश पर ही निर्भर रहना पड़ता है और इस प्रकार की उपज बोई जाती है जो अल्प जल की अपेक्षा रखे। इस प्रकार के दो अनाज हैं मडुड़ और मानिरो। इन दोनों शब्दों के योग से बना हुआ मुहावरा है मडुड़ मानिरो हुँण (मडुआ-मानिरा होना) अर्थात् अत्यल्प खेती होना।

शकुन विचार में मुहावरों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। आँख वल्कण मुहावरा शुभाशुभ का द्योतक है। कौऽऽबाशण मुहावरे से किसी अतिथि के आगमन की सूचना मिलती है। स्याव (स्याळ) बाशण अशुभ सूचक है। काँकड़ बाशण मुहावरे से कार्य की असफलता व्यक्त होती है। बिराउक् बाँट काटण से भी असफलता व्यक्त होती है। छीं ऊँण मुहावरा भी अशुभ की सूचना देनेवाला है। गोरूक पुछड़ पकड़न में समाज की यह भावना छिपी है कि मृत्यु के समय यदि गाय की पूंछ पकड़ ली जाय तो व्यक्ति परलोक को जाता है।

कोई कार्य न करने की इच्छा होने पर भी यदि किसी कारणवश करना पड़े तो थूक गौंल लागण मुहावरा बोला जाता है। आश्चर्यचकित होने की भावना कान ठाड़ लागण में व्यक्त होती है। यदि कहीं कोई झूठी बात कही जा रही है और कोई व्यक्ति यह जानता है कि यह बात झूठी है तो उसको उसका उद्घाटन न करने के लिए आँखों का संकेत

किया जाता है—यह अभिव्यक्ति आँख टपटपूँण मुहावरे में है। किसी व्यक्ति की आँखों में यदि कोई चढ़ जाता है तो उसके लिए आँखम ऊँण शब्द है। निद्रा, प्रेम होने अथवा नजर लगने के लिए आँख लागण मुहावरा है। आँख में किसी वस्तु के चले जाने अथवा दर्द के लिए आँख पिड़ान है। आँख झपकीण, आँख मारण, आँख नाँक हुँण, आँख चिमचिमान्, आँख देखूँण तथा आँखम धरण मुहावरों से क्रमशः नींद, आँख मारना, बुरी दृष्टि होना, खराब आँखें, क्रोध दिखाना तथा उसके अधिकार में रखने का अर्थबोध होता है। वाल खापन जाँण मुहावरे से झगड़े अथवा खाने की अभिव्यक्ति होती है। खरखरि लागण से यह अनुभूति होती है कि कोई किसीको गाली दे रहा है। हथगलि खुजाण, खुट खजाँण, नाखम ड्वार हालण, नाख कान बुज्यूँण, खुट नि सरूँण, मुहावरों से क्रमशः रुपये-पैसे आने जाने, कहीं यात्रा करने, बलपूर्वक कार्य कराने, गहनों के परित्याग करने तथा आराम करने की अनुभूति व्यक्त होती है।

खुट अलजाँण तथा हात पिङाव करण मुहावरे विवाह कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। चौखुटी हूँण भी इसीका व्यंजक है। खुट भारि हुँण और पेट बढ़न ये दोनों ही मुहावरे स्त्री के गर्भवती होने का भाव व्यक्त करते हैं। असजिलि मुहावरा भी इसीकी व्यंजना करता है। यज्ञोपवीत संस्कार के लिए गाँव में जन्यो डालण मुहावरा है। गणेश पुँज हुँण प्रथम रजोदर्शन का सूचक है। शुभ कार्य में स्त्री-पुरुष का एक साथ बैठना चौख भैटँण है। शाँख बजूँण का अर्थ है संतानोत्पत्ति होना और शाँख घाँट बजूँण का तात्पर्य है कोई मांगलिक कार्य प्रारम्भ करना।

टिल फोड़न से बिगाड़ना, लस्यै लस्यै घेर पर्यूँण से यातना, ध्वे पोछँण से पूर्णरूपेण नष्ट करना, फुटि हानिंक नौ निधरण से सर्वस्व अपहरण, घरैंकि बौराणीयैं फसक मारण से कायरता, सौल कठौल से इधर की उधर लगाना, पेट जाण से गर्भ गिरना, उचेड़ि खाण से परेशान करना, प्राण पीण से चिंतित करना, माड़ बगूँण से त्यागना, खोरि सखीँण से मन्दबुद्धि होना तथा छाँल घाम लगूँण से किसीकी सबके सामने निंदा करना व्यंजित होता है। नाड़ि छुटण, धार लागण, और अदिन ऊँण मृत्यु से सम्बन्धित हैं। आँख ठाड़ लागण मुहावरे से अचेतनावस्था अथवा मृत्यु की ओर उन्मुख अवस्था का ज्ञान होता है। धारक दिन वृद्धावस्था का सूचक है। खापड़ि उड्यार फेरण मुहावरा यह सूचित करता है कि वृद्धावस्था का आगमन होना प्रारम्भ हो गया है। शारीरिक शक्ति की सूचना देने वाला मुहावरा तड़ि में तराण है। दृढ़ निश्चय के अर्थ में पाणि पाड़ि लिहण मुहावरा है। इस मुहावरे का मूल अर्थ पूजादि कार्य में प्रारम्भ में हाथ में जल रखकर छंद लेना है। दूसरे के सहारे ऊँचा उठना टुँग में चढ़ि उँच्च हुँण मुहावरे से व्यक्त होता है।

समाज में कुछ व्यक्ति होते हैं जो अपनी क्षति स्वयमेव करते हैं ऐसे व्यक्तियों के संदर्भ में जिन मुहावरों का प्रयोग होता है। वे हैं: खोर में खाड़ खानण (सिर में गड्ढा खोदना), चर फुक्कू हुँण (घर फूंकने वाला होना) खोर फोड़न (सिर फोड़ना—सर्वनाश करना)। किसीको बददुआ देने के संदर्भ में लुण जश गलण, निर्लज्ज व्यवहार के संदर्भ में छुरड़ि करण और नाखम माट पड़न देवमंदिर में किसीके नुकसान की कामना में घात हालण, लालच देकर धोखा देने के प्रसंग में माँछि-माँछि भेकानि नीचा दिखाने में मट्टी पलीद करण, अन्याय के भाव में गाँव घोटण, दुःखी करने में छाँल उधेड़ि खाण और गाँवम बुज लागण से अत्यन्त दुःख की व्यंजना होती है। कुमाऊँ में यह लोक प्रसिद्ध है कि चींटी के मरते समय पख उग जाते हैं। चींटी के लिए किरमाँड शब्द है। इसी आधार पर किरमाँडँक पाँख जामण मुहावरे से विनाशकाल की सूचना मिलती है। सन् १७९० से सन् १८१५ तक कुमाऊँ में गोरखा शासन रहा। गोरखाओं का अमानुषी अत्याचार कुमाऊँ को सहना पड़ा। लोकमानस आज भी गोरखा शासन के अत्याचारों को लोकोक्तियों में सुरक्षित रखे हैं। एक कहावत "जाणीं कौ गोरख्योल है रैं" इसी भावना को व्यक्त करती है। अन्याय और अत्याचार के अर्थ में 'गोरख्योल' मुहावरा प्रयुक्त होता है। गढ़वाली भाषा में भी यह मुहावरा है—गोरख्याणी करणीं।

बिना किसी लाभ की दृष्टि से किया जानेवाला कार्य कुमाऊँ में बची हौलदारी है। भोजन में संदेहात्मक व्यवहार और अशुद्धि के लिए लसपस हुँण तथा सकपक हुँण मुहावरे प्रयुक्त होते हैं। धूर्तों के मेल के लिए मुहावरा है नगठगनको व्योपार। घर में जब लड़की विवाह योग्य हो जाती है तो उसका भाव चेलिंक गाल चढ़ि मुहावरा से व्यक्त होता है।

सामान्य सेवा के लिए यहाँ लॉटकॉलि स्याव का प्रयोग किया जाता है। जो व्यक्ति अपनी पत्नी का दास होता है उसे ज्वैक बल्द कहते हैं। रूपवान के लिए डेकर जस शब्द का प्रयोग होता है। बहाना बनाने के लिए ख्वार कन्यूँण कहते हैं। समस्या उत्पन्न करने के संदर्भ में आग जस हालण मुहावरा है। विदाई देने के लिए टिक्-पिठ्या लगूँण होता है। बहुत याद करने के लिए यहाँ मुहावरा है नरै लागण। गढ़वाली भाषा में इसी भाव को व्यक्त करने के लिए खुद लागण है। कठोर परिश्रम की अभिव्यक्ति हाड़ टोड़न से होती है। किसी समय लगातार हिचकियां लगे तो उससे यह अर्थ लगाया जाता है कि कोई याद कर रहा है। इसे व्यक्त करने के लिए बॉटुइ लागण मुहावरा प्रयुक्त होता है। स्वार्थ सिद्धि में लगे व्यक्ति के लिए रिंशिक्-जस मुहावरा बोला जाता है। तीर्थयात्रा के लिए हाड़-खकोलण शब्द बोला जाता है। असहाय अवस्था के व्यक्तीकरण के लिए अगास चाण मुहावरा है।

किसी घर में कोई दुबला-पतला नौकर हो और वह कुछ समय बाद मोटा-ताजा हो जाय तो उसके लिए भड्डू दाल लागण शब्द व्यवहृत होता है। र्वाट लागण (रोटी लगना) मुहावरा भी इसी भाव को अभिव्यक्त करता है। अच्छे भोजन के अर्थ में ध्यूकि अध्याण चढ़न मुहावरा है। चाय कुमाऊँ के घर घर-वर पहुँच गई है उसके लिए तॉतपाणि प्रयुक्त होता है। किसी खाद्य वस्तु के लिए ललचाने का भाव जिबड़ सलबलूण से व्यक्त होता है। अच्छा पदार्थ खाना जुडा-चुपड़ करण हैं।

ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक कोटि के मुहावरों की भी कुमाउँनी में कमी नहीं है। फट-फट हुँण टक-टक हुँण सटर बटर करण, कचर-कचर करण, रंग ढंग देखण तू ता हुँणि यथकै, उथकै करण, गुगाट करण आलगालकरण, खितखितार करण, अलबलाट मचूँण, कलकलि लागण इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

क्वीड़ करण और फसक मारण दो एक ही अर्थ के मुहावरे है, किन्तु इनमें कुछ अंतर है। क्वीड़ करण स्त्रियों को गपशप के अर्थ में प्रयुक्त होता है और फसक मारण सामान्य गप के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मुनींण का अर्थ है जादू टोने के वशीभूत होना। इसीसे विकसित मुहावरा है मुँनी जाण जिसका अर्थ है हक्का-बक्का हो जाना। रणीं जाण का भाव है किसी वस्तु के प्रति पागल सा हो जाना। कफ्फू वासण मुहावरा ऋतु विशेष का ज्ञान कराने वाला है। कफ्फू नामक पक्षी विशेष से ग्रीष्म ऋतु के आते ही बोलना प्रारम्भ करता है। कफ्फू बासण से ग्रीष्म ऋत का बोध होता है।

यहाँ कुमाउँनी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें अर्थगरिमा और शब्द शक्ति का विस्तृत परिचय मिलता है। ये उदाहरण जहाँ एक ओर कुमाउँनी मुहावरों का परिचय देते हैं वहाँ दूसरी ओर हिंदी भाषा को भी शब्द शक्ति बढ़ाने में पर्याप्त सहायता देंगे।
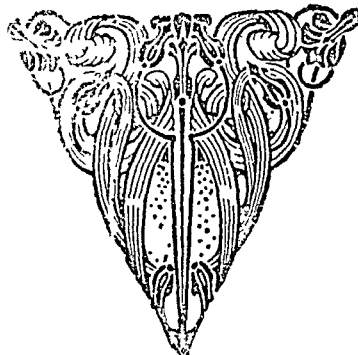
यमुनात्रा का यात्रा

श्रीमती शीला शर्मा

[यह यात्रा संस्मरण असाधारण है क्योंकि यह यात्रा न तो सैलानी की तरह की गयी थी और न तीर्थ-यात्री के रूप में। कई वर्ष पूर्व श्रीमती शीला के पति श्री कश्यप कृष्ण शर्मा कुमाऊँ के आयुक्त (कमिश्नर) थे। आजकल वे आगरा संभाग के आयुक्त हैं। अब तो उत्तराखंड में कुमाऊँ और गढ़वाल दो संभाग बना दिये गये हैं, किंतु जब श्री शर्मा आयुक्त थे तब सारा उत्तराखंड एक ही आयुक्त के अधीन था। आयुक्त को अपने अधीनस्थ जिलों का दौरा करना पड़ता है। श्री शर्मा भ्रमणप्रिय अधिकारी हैं, और उन्होंने उत्तराखंड के प्रायः सभी दुर्गम क्षेत्रों का दौरा किया था। इस दौरे में श्रीमती शर्मा भी उनके साथ थीं। उन्होंने 'सरस्वती के लिए उत्तराखंड के अपने इस दौरे के संस्मरण लिखे हैं। उन्हें हम यथा अवसर प्रकाशित करेंगे। नमूने की तरह हम इस अंक में उनके यमनोत्री की यात्रा का विवरण पाठकों के मनोरंजनार्थ दे रहे हैं। इस क्षेत्र की वर्तमान अवस्था पर इन संस्मरणों से बड़ा प्रकाश पड़ता है तथा बड़ी उपयोगी जानकारी मिलती है। साथ ही वहाँकी समस्याओं और स्थिति का एक विदग्ध, संवेदनशील और शिक्षित व्यक्ति पर जो प्रतिक्रिया होती है, उसका आभास भी हमें मिलता है। इस कम आवादी के क्षेत्र में परिवार नियोजन के भीषण परिणामों पर उनके विचार सभी देश-प्रेमियों को सोचने विचारने के लिए विवश करेंगे। सम्पादक, सरस्वती।]

यमनोत्री और गंगोत्री दोनों ही नाम गंगा और यमुना के उत्तरवाहिनी होने के कारण पड़े हैं। गंगा व यमुना-दोनों ही—अपने उद्गम से निकलकर थोड़ी दूर तक उत्तर-वाहिनी होकर के बहती है। बहुत से लोग तो इनका अर्थ 'गंगा उतरी' या 'यमुना उतरी' (उतरी अर्थात् उनका अवतरण हुआ) कर के संन्तुष्ट हो जाते है।

उत्तर काशी से हम बड़कोट गये। मोट—मार्ग से ५० मील से थोड़ा सा अधिक। यमनोत्री जाने के लिए बड़कोट जाने की आवश्यकता नहीं है, पर हमको वहीं होकर जाने में सुगमता पड़ती थी। बड़कोट का डाक बँगला बड़ा सुन्दर और साफ है और वहाँकी घाटी भी विस्तृत और उर्वरा है। उत्तर काशी के प्राचीन इतिहास में बड़कोट का बड़ा महत्त्व है। यही वह स्थान है जहाँ परशुराम के पिता यमदग्नि रहा करते थे। डाकबँगले से नीचे कुछ दूर पर एक सूखा ताल है और वहाँ एक पत्थर की शिला है। सहस्रबाहु-वध इसी शिला पर हुआ था। यहीं पास ही एक गाँव में रेणुकादेवी (परशुराम की माँ) का मन्दिर है, और उनके सिर काटने वाली कथा इसी मन्दिर के साथ जुड़ी हुई है। कुछ मील दूर यमनोत्री के मार्ग पर बड़कोट डाकबँगले से जाने पर हमको एक कुंड मिला जिसका नाम है 'जमदग्नि कुंड' या 'जमदग्नि गगा'। कथा के अनुसार यमदग्नि प्रतिदिन गगा का जल लेने नकुरिग्राम जाते थे, जो यहाँसे पैदल मार्ग से ९ मील पड़ता है। यमदग्नि के वृद्ध हो जाने पर गंगा अपने प्रति उनकी यह निष्ठा देखकर उनके निवास के पास ही स्वयम् प्रगट हो गई। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि बड़कोट यमुना तट पर है। इस कुंड से कुछ गज दूर ही यमुना की कृष्ण वर्ण जलधारा बहती है, और उसके समीप ही यह कुंड है जिसका जल यमुना के कृष्ण जल से बिलकुल भिन्न है। कुंड के अन्दर स्रोत है और जल निरन्तर बहता है। इस स्रोत के विषय में यह तो मानना ही होता है कि उसका जल यमुना से नहीं आता। अब गंगा जल का स्रोत माना जाय या एक भिन्न जल स्रोत, यह बात दूसरी है। यमुना जल से पृथक् होने की बात तो स्वीकार करनी ही पड़ती है। उसे गंगाजल का ही स्रोत माननेवाले इसका यह प्रमाण देते है कि जैसा रंग ऋतु के अनुसार गंगाजल का होता है वैसा ही रंग इस कुंड के जल में भी होता है। यह अपने में ही बड़ा प्रमाण है। दूसरी बात यह है कि गंगाजी पर्वत मार्ग से यहाँसे नौ मील की दूरी पर हैं। पर्वत का मार्ग बहुत कुछ ऊपर की चढ़ाई और उतराई में भी नप जाता है। जल धरती के नीचे ही होगा। इस कारण उसमें यह कृत्रिम दूरी न होगी, और गंगाजी के इतने पास होने के कारण उसका जल किसी भूगर्भीय मार्ग से पहुँचकर यहाँ स्रोत के रूप में फूट भी सकता है। वैसे यहाँ प्रत्येक जलधारा को 'गंगा' कहकर पुकारते सुना गया है। यह भी हो सकता है कि यह एक पृथक् जलस्रोत हो। वैसे यह कहा गया है कि इस स्थान पर यदि गंगा कुछ मुड़ न गयी होती तो गंगा और यमुना का संगम प्रयाग में न होकर

यहीं हो गया होता। इसका श्रेय भगीरथ को दिया जाय (जिनके रथ के पीछे पीछे गंगाजी भाग रही थीं) या बीच में आ जानेवाले पर्वत को, यह कहना कठिन है। अगर भगीरथ को इंजिनियर मान लिया जाय जो अयोध्या निवासी राजा सगर के पुत्र थे और जिनकी तपस्या का उद्देश्य यही था कि अपने प्रान्त को राजस्थान सी मरुभूमि बनने को रोकने के लिये निरन्तर बहनेवाली जलधारा से उसे तृप्त करके उर्वर बनाया जाय तो यह कथन कि गंगा उनके रथ के पीछे-पीछे ही भाग रही थीं, सत्य का अंश हो सकता है, क्योंकि वे एक निर्देशित मार्ग से ही गंगा लाने के अभिलाषी थे। उस मार्ग से गंगा को लाये बिना उनकी तपस्या विफल थी। यदि यह सत्य है तो यहाँ बड़कोट के गंगा-यमुना संगम हो जाने से उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। उन्हें तो प्रयाग की भूमि तक, समतल स्थल पर, गंगा की धार चाहिये थी। इस कारण गंगा का वर्तमान मार्ग वही है जो भगीरथ ने बनाया था। यमुना तो पहले ही वहाँ बह रही थी। यमुना के अवतरित होने की कोई ऐसी तिथि निश्चित नहीं है जिस प्रकार गगाजी की है। इस कारण सम्भव हो सकता है कि यमदग्नि कुंड मे गंगा की हो धार आ गयी हो। यह कुंड बहुत बड़ा तो नहीं है। ऐसा है कि दास बारह आदमी सुविधा से उसमें नहा-धो सकें। चारों ओर से खुला, कमर तक की गहराई तक का जल। जल की दो धाराएँ दो ओर से, नीचे से, निकल कर यमुना की ओर बहती रहती हैं। इस कुंड को टेहरी राज्य की एक रानी ने बड़ी-बड़ी काले पत्थर की शिलाओं से पक्का कराया है। यह काम इतनी कुशलता से किया गया है कि कुंड की सुन्दरता में चार चांद लग गये है। एक तो पर्वतीय वातावरण, फिर स्वच्छ जल की धार, फिर पत्थर से घिरा सुन्दर कुंड बहुत ही रमणीय लगता है। वहाँसे जाने की इच्छा नहीं होती। गज भर ऊँची एक काली शिला एक ओर को लगी है। ध्यान दिलाने पर ही उसकी ओर ध्यान जाता है। उसको यमदग्नि की मूर्ति कहते हैं। उसमें केवल हल्की सी चेहरे की आकृति निकाली गयी है। कुंड से लगा हुआ एक मन्दिर है। उसमें गंगा यमुना की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। परशुराम के वंशजों का यही क्षेत्र था, और इसी भूमि को उन्होंने कई बार क्षत्रिय-विहीन किया था। यहाँके लोगों का कथन है कि उत्तरकाशी में गंगा तट पर प्रातः पौ फटने के पूर्व, परशुरामजी को कभी-कभी अभी भी श्वेत घोड़े पर आरूढ़ फरसे के साथ देखा जाता है। यह कथन ऐसा नहीं कि एक साथ गले के नीचे उतर जाय। इसके विषय में यही कहा जा सकता है कि क्रोध (परशुराम की भावना) प्रतिरोध (अश्वत्थामा की भावना) आदि ऐसी भावनाएँ हैं जो उत्पन्न होने पर सूक्ष्म शरीर को बाँधकर रखती हैं।

बड़कोट के देवी मन्दिर में एक ताम्र लेख की भी चर्चा सुनी थीं, पर शीत अधिक होने और कुछ देर पहले ही उपल वृष्टि और वर्षा के कारण हम उसे न देख सके।

राम युग ही नहीं कृष्ण युग का इतिहास भी बड़कोट के साथ भली भाँति गुँथा हुआ है। बड़कोट के नाम का अर्थ हम न निकाल पाये। अवश्य ही यह नाम सार्थक लगता है। बड़कोट के समीप के गांव में एक लाक्षागृह मन्दिर है। मन्दिर की दीवारें लाख की बनी बतायी जाती हैं। यह नाम सुनते की पांडवों के लाक्षागृह की याद आ गयी। विदित हुआ कि यह भाग कौरवों और पांडवों की लड़ाई में कभी एक को मिल जाता था, कभी दूसरे को। कभी एक ही पहाड़ी कौरवों की होती थी और दूसरी पाँडवों की। अभी भी यहाँ एक ओर पांडव पुजते हैं, दूसरी ओर कौरव। वह लाक्षागृह जो पांडवों के लिये बनाया गया था उसके अवशेष भी यहाँ से दूर नहीं हैं। इस क्षेत्र में लाक्षागृह कोई अनोखी चीज नहीं है। वे जमाने से बनते आ रहे हैं। यह तो इतिहास ही बता रहा है। चीड़ के वृक्ष से तारपीन का जो तेल निकलता है, उसमें ही एक वस्तु मिलाकर दीवारें खड़ी कर दी जाती हैं और उसमें अन्दर से बड़े-बड़े भीत चित्र बनाकर सुन्दरता ला दी जाती है। उसमें तारपीन का तेल होने से दीवार पर चित्र सुगमता से बनते हैं, और अग्नि ग्राह्य होने से शीघ्र ही प्रज्ज्वलित हो उठता है। इस भाग में सुन्दर चित्रमय भवन देखकर पांडवों का शंकित हो उठना भी स्वाभाविक था। राम और कृष्ण के युग से इस प्रकार सम्बन्धित इस स्थान में आकर बड़ी प्रसन्नता हुई। एक इन्हीं बातों का अध्ययन करने के लिए यहाँ आने की तीव्र उत्कंठा है। इस बार यात्रा का ध्येय दूसरा था। शीत काल इस तेजी से इस क्षेत्र में आता है और कार्यक्रम इतना मिश्रित होता है कि यात्रा में दो चार दिन का भी फेर करना भी सम्भव नहीं था। यमदग्नि कुंड के दर्शन करके हमें चढ़ाई पर चलना पड़ा, और तब हमने मोटर पकड़ी और कुथनौर ग्राम तक हम मोटर से गये। यमुना यहाँ

यहाँ से तीन मील ऊपर थीं। कार वहाँ तक जा सकती थी। परन्तु वर्षा के कारण वहाँ का रास्ता अबतक आधा ही साफ हुआ था। इस कारण यहाँसे सामान और यात्री कुलियों और खच्चरों पर यथासम्भव लादे गये। कुथनौर गाँव में आलू से भरी हजारों बोरियाँ पड़ी थीं। बाहर से आये कुछ व्यापारी आल्यूमूनियम के बहुत बर्तन बेचने को लाये थे।

कुथनौर से मोटर से सुविधापूर्वक यमुना चट्टी तक तीन मील हमको पैदल ही तय करने पड़े। आगे ६ मील और चलकर हम सयाना चट्टी पर निरीक्षण भवन में जाकर रुक गये। निरीक्षण भवन यहाँ भी अच्छा है। प्रातः हम फ़िर फूल चट्टी, हनूमान चट्टी होते हुये बीफ और फिर जानकी चट्टी की ओर बढ़े।

इस यात्रा में कई ऐसी चीजें देखीं, और कई ऐसी बातें हुई जो आजीवन हृदय पर अंकित रहेंगी। कमिश्नरों के दौरे से यमनोत्री न जाने कैसे अभी तक छूटी रह गयी थी। सबसे कठिन चढ़ाई और सबसे कम धार्मिक महत्त्व ही उसका कारण हो सकते हैं। चढ़ाई वास्तव में जितनी विकट यहाँ की है, उतनी इधर के भूखंड में और कहीं नहीं है। गंगोत्री की भैरव घाटी की चढ़ाई जो अपनी कठोर चढ़ाई के लिये प्रख्यात है, तथा गोमुख यात्रा का अन्तिम भाग जहाँ पत्थरों पर से कूद-कूदकर ही चलना पड़ता है इसके सामने कुछ नहीं हैं। अतः अभी भी इस ओर अफसरों का दौरा एक नई बात है। हम सयानी चट्टी पहुँचे तो खबर फैल गई 'दौरा सयाना चट्टी पहुँच गया"। हम प्रातः ही चल पड़े तो 'दौरा छूट गया', 'दौरा आ गया', 'दौरा बैठ गया,' 'दौरा सो रहा है।' यह नये-नये वाक्य-विन्यास यहाँ सुनने को मिले। मार्ग भर में—वैसे, गाँव यहाँ दूर-दूर हैं—गाँव ऊपर थे और उनके नीचे पड़ने वाली सड़कों पर पर्वतीय बाँसों के छोटे-छोटे फाटक बना रक्खे थे। उन पर जो जिस को मिला था लाल, हरी, पीली एक-दो झंडियाँ बाँध रक्खी थीं। मैं देखती थी कहीं काली झंडी तो नहीं है, पर काली कहीं थी नहीं। उसके विशेष गुण का इनको भी पता था। सारा गाँव उस गेट के पास खड़ा मिलता था। हाथ में दो-दो गेंदे के फूल और बन तुलसी। साथ में लोटा भर दूध और चाय के गिलास। हमको आता देखकर दूर से ही, फाटक से आधे फर्लांग आगे से ग्राम का नगाड़ा बजानेवाला अपना नगाड़ा सम्भाल लेता था। आगे-आगे वह नगाड़ा बजाते हुये, पीछे-पीछे हम। इस तरह डंकों पर चोट करते हुये हम गाँव के आगे पहुँचते थे। महीपतियों को यह स्वागत विधि शोभा देती होगी, हमें तो लज्जा आने लगती थी। टट्टुओं पर हम, आगे नगाड़े। यह लज्जा आगे जाकर और बढ़ जाती थी जब हम टट्टुओं पर से उतरते थे तो वे पर्वतीय ग्रामीण नतमस्तक हो दोनों हाथ जोड़ बड़ी श्रद्धा से कहते थे 'पृथ्वीनाथ! दरबार! वे पृथ्वीनाथ कहते थे और मुझे लगता था धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। बड़ी आशा और श्रद्धा से वे अपनी प्रार्थना करते थे, और तत्काल ही उसका समाधान चाहते थे। अपने घर के कते भेड़ के बालों के बुने ऊनी कपड़ों में लिपट ग्रामीण हाथ जोड़कर प्रायः यही कहते थे—"इधर एक पुल बनवा दो।" एक ग्राम का ऐसा मिलन मेरे हृदय को स्पर्श कर गया—"पृथ्वीनाथ! भालू हमारी खेती खराब कर रहा है, हमारे फल के बेड़ बरबाद कर रहा है।" उनको सुझाव दिया गया, "तुम इतने और भालू एक।" उत्तर आया "हम तो कुछ करेंगे ही, घायल हो जायेंगे। गाँव के दस बीस आदमी हैं, भालू कई हैं। एक जायगा, दूसरा आयगा।" उस समय मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। वास्तविक पृथ्वीनाथ होते तो वहीं डेरा डाल कर भालू मार कर ही जाते। फिर सरकारी हुक्म हुआ—इधर ऐसा पटवारी नियुक्त करो जो अच्छा शिकारी हो, और गाँववालों को बारूद भरने वाली बन्दूक रखने की सलाह दी गई। एक बार इन आवेदनकर्त्ताओं में एक स्त्री भी थी। सबके बीच वह भी अपना प्रार्थना-स्वर उठाती थी किन्तु कोई ध्यान न देता था। उसने जब देखा कि उसकी सुनवाई नहीं हो रही है, तो उसने आँसुओं का सहारा लिया। वह मेरे पास खसक आई, और मेरे पीछे खड़े होकर आँसुओं का उपक्रम करके 'सूँ! सूँ!' करके रोने लगी। उसे मेरी ओर आया देखकर जिलाधीश महोदय की उधर खिसक आये। 'तुझे क्या हो गया है?" का उत्तर आया कि "गाँव वाले मुझको रात में डराते हैं कि कुल्हाड़ी से काट कर फेंक देंगे।" उसका पति भी शिकायत करने लगा। जब बात खुली तो मालूम हुआ कि वह 'मिड-वाइफ़' है, टेहरी निवासी है और उसका स्थानान्तर टेहरी कर दिया जाय। हम चल पड़े, बहुत दूर तक वे पहाड़ी भाषा में हमारी यात्रा की मंगल कामना करते हुए हमारे साथ-साथ आगे चलते रहे। हनुमान चट्टी पर बहुत आग्रह करने पर वे लौटे। लौटते समय वे फिर हनूमान

चट्टी पर स्वागतार्थ मौजूद थे। साथ थीं बन्दूक आदि की दरखास्तें। 'दौरा लौट रहा है,' उनको पता चल गया होगा। जब कभी भी उनका स्मरण आ जाता है मन बड़ा भारी हो जाता है। उनकी श्रद्धा, उनके मुख की आशा, उनका विनय-व्यवहार; और जीवन-यापन में उनकी कठिनाइयाँ, शीत, वन्य जन्तु भय, दुर्गम पथ और उनसे उनका अकेला जूझना; और इन सबके साथ उनका मुक्त संतोषी, हँसमुख स्वभाव और उस निर्धनता में भी आवभगत करने का उत्साह! अन्य पर्वतीय प्रान्तों से निर्धनता इस ओर अधिक है, परन्तु आवभगत का यह हाल है कि लौटते समय एक गाँववालों ने सड़क पर दूध गर्म कर रक्खा था। मेरे पति जो पड़ाव से ही एक गिलास दूध पीकर चले थे, आगे बढ़ गये। अधिक दूध पीना उन्होंने हानिकार समझा। मेरे आते-आते सारे गाँव ने मुझको घेर कर यही पूछा 'क्या दरबार नाराज हो गये?' मैंने उनकी भावना के खातिर कसर पूरी की। इच्छा न होते हुये भी दो गिलास दूध पिया। बादाम, मेवा जो कुछ दिया सिर से लगा-लगा कर जेब में रक्खा। पर वे मुझसे प्रसन्न होकर भी कहते यही रहे,—'दरबार नाराज हो गये।' नीचे के प्रांतों के समान जो भेंट वे देते थे वह बड़ी-बड़ी थालियों की भेंट नहीं होती थी। दो-चार जंगली बादाम, अखरोट आदि ही होते थे; परन्तु वे बड़े प्रेम और श्रद्धा से भेंट में दिये जाते थे।

जाते समय मार्ग में हमें एक मृत सर्प मिला, तो चर्चा सर्पों पर चल उठी। इस पर जो रहस्योद्घाटन हुआ वह सुनकर मैं काफी भयभीत हो उठी। पता चला कि ये नन्हें बाँसों की सुन्दर झाड़ियाँ विषैले सर्पों का घर हैं। टोकरी आदि बनाने के लिए उनको बड़ी सावधानी से काटा जाता है। यह 'निगाल' उनके जीवन की एक परम आवश्यक वस्तु है। दैनिक व्यवहार की बहुत सी वस्तुएँ वे इसीसे बनाते हैं। गृहस्थ किसान के घर बाँस की टोकरी कितनी उपयोगी है, कौन नहीं जानता? फिर जहाँ बर्तन न हों, जहाँ उन्हीं टोकरियों की सवारी (कंडी) तक बनती हो, वहाँ वह कितनी अधिक उपयोगी होगी, यह सहज में सोचा जा सकता है। इन कारण बाँस काटे बिना तो वे रह नहीं सकते। इन विषैले सर्पों के घरों से उनका नित्य का सम्बन्ध है। फिर हमारे पर्वतीय ग्रामीण दूसरी ओर के पर्वतों को दिखाकर कहने लगे कि उस ओर तो (पेड़ के तने को दिखा कर वे बोले) इतने मोटे और इतने लम्बे-लम्बे सर्प हैं। देवदार के वृक्षों के तनों की ओर उनका संकेत था जो लम्बे एक से गोलाकार ऊपर तक चले गये थे। वे कहने लगे जब पानी पीने वे अपनी गुफा से निकलते हैं तो धरती में गहरी दरार सी पड़ जाती है। सभी एक साथ बोलने लग गये थे। उनके कथन का सार यह निकला कि वैसे तो वे वर्षा में वहीं जल पीते हैं, और शीत में हिम के कारण छिपे रहते हैं, पर गर्मियों में वे कभी-कभी नीचे यमुना तट तक रेंग आते हैं। "उनका सामना होने पर तो हम कहें क्या, धरती की दरार देखकर ही हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उधर ही के चूहे, खरगोश, अन्य पशु-पक्षी इनका आहार हैं।" वे पर्वत जिनकी ओर ये संकेत कर रहे थे, मार्ग में बाईं ओर पड़ते थे। पर्वतीय मार्ग जिस पर हम थे, उसके बाद यमुना और उसके उस पार ये पर्वत। इन्हीं पर्वतों पर जाने के लिए ग्रामीण पुल की प्रार्थना किया करते थे। वे पर्वत, वृक्षविहीन थे। पर उधर इनकी खेती अवश्य थी। मेरे यह पूछने पर ये जो पर्वत हमारी दृष्टि में आ रहे हैं, उनमें कितने अजगर होंगे, तो उत्तर मिला कि दस जोड़े तो होंगे ही एक-एक पर्वत में।

दूसरी बात जो इस मार्ग की विशेष रूप से उल्लेखनीय है वह है मार्ग के विचित्र अकल्पनीय रंगों के पत्थर। ऐसा लगता है कि अभी कोई रंगसाज भिन्न भिन्न रंगों से उन्हें रंग उठा है। एक ही पत्थर हल्का बैंगनी और आकाश सा नीला। ऐसे पत्थरों के संचय करने की कुछ लोगों की रुचि हो गई है। मैंने एक सज्जन के घर ऐसे पत्थरों का संचय देखा था। मैंने सोचा था कि ऐसे पत्थर प्राकृतिक हो ही नहीं सकते, अवश्य ही उन पर रंगों का प्रयोग किसी न किसी रूप से किया ही गया है। परन्तु यहाँ देखा कि ये पत्थर जिसने भी प्राप्त किये थे, यहीं से प्राप्त किये थे। क्या मणियों का रंग होगा जो इन पत्थरों का था? मार्ग की दुर्गमता और भीषणता इन्हीं पत्थरों की सुन्दरता के सहारे कुछ कम हो जाती थी।

हमारे जिलाधीश श्री देसराजजी ने दोनों ओर के पर्वतों की ओर संकेत करके कहा—श्रीमती शर्मा! आपने हमारे दक्षिण भारत के मन्दिर देखे हैं। उनकी प्राचीन खुदाई कैसी लगी आपको? इन पर्वतों से उनका कितना साम्य है? वास्तव में उन्होंने समानता बहुत ही उपयुक्त देखी थी। रंग बिलकुल वही धूल-धूसरित स्थान-स्थान पर प्राचीनता की कालिमा लिये हुए और उसी प्रकार छोटी-छोटी तहों में नीचे

से ऊपर की ओर छोटे होते हुए। दाएँ-बाएँ चारों ओर वैसी ही पर्वतश्रेणियाँ जैसी दक्षिण के मन्दिर समूहों के बीच ही से हम जा रहे हों। बीच बीच में कई स्थान काफी दूर तक मन्दिरों के समूह की रूपरेखा से मालूम होते हैं। अपनी ही आँखों से उन्हें न देखा होता तो मैं विश्वास न करती कि मन्दिरों की बाह्य आकृतियों और इन पर्वतों की आकृतियों में इतनी समानता है।

एक और आवश्यक विषय इस ओर का है जिसने मेरे हृदय को झकझोर दिया। वह है सरकार की परिवारनियोजन योजना और इस ओर के पर्वतीय प्रदेश। सरकार की योजना जब चालू होती है तो बवंडर के रूप में चालू होती है। गेहूँ और घुन में भेद करने का समय वहाँ नहीं होता। गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है, परिवार नियोजन से अवेर और अनर्थ हो सकता है। एक तो इस ओर के परिवार वैसे ही बहुत छोटे होते हैं। ये दो या तीन व्यक्तियों के होते है। जो सरकार का प्रतिबन्ध है, वह यहां पहले से ही प्राकृतिक रूप से उन परिवारों पर लगा हुआ है जो यहाँ बच्चों वाले कहे जाते हैं। वैसे २५ प्रतिशत दम्पति निःसन्तान ही हैं। ऊपर से भयानक शीत, वन्य जंतु, और दवा-दारू की असुलभता। इन परिवार में तीन-चार व्यक्तियों को भी बनाये रक्खें तो बहुत है। इनके बढ़ने का प्रश्न ही नहीं है। इनके क्षीण होने का ही प्रश्न रहता है या उतने ही बने रहने का। इस विरल, जनसंख्या के निर्धन और अज्ञान के कारण धन के प्रलोभन में नसबन्दी का प्रचार ग्रामों मे काफी हो रहा है। इससे यहाँ की जनसंख्या बहुत घट जायगी, तब अगर बाहरी लोगों को इधर बसाने की आवश्यकता पड़ गई तो वे इस सुदूर प्रान्त में बस सकेंगे, इसमें बड़ा संदेह है। सुदूर बस्ती का तो इधर यह हाल है कि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित कुछ हिंदू यहाँ भाग आये और उन्होंने खोज कर इतनी दूर दुर्गम स्थान पर अपनी बस्ती बसाई कि मुसलमानों की पहुँच वहाँ तक न हो सके। ये स्थान अभी भी इतने दुर्गम हैं कि दुधारू गाय ऊपर तक नहीं चढ़ाई जा सकती, नीचे उतर कर लोग बछिया खरीद कर ले जाते है उसे किसी भांति ऊपर ले जाते हैं और वहाँ पल कर ही वह गाय बनती है। इस प्रकार उनको गाय का दूध प्राप्त होता है। पर ये बस्तियां बसी हैं और उनको उधर रहने की विधि आ गई है। अब यह सरकारी योजना उनको धन के प्रलोभन में नेस्तनाबूद कर सकती है। वैसे भी पर्वतीय ठण्डे देशों में सन्तान कम होती है। यही कारण यौरप में छोटे परिवार होने का बतलाया जाता है। तरुण होने की आयु भी ठण्डे प्रदेशों में गर्म प्रदेशों से अधिक है। तपस्या के लिये ठण्डे प्रांत खोजने का कारण भी यही बताया जाता है कि 'हारमोन सिक्रीशन' ठण्डे स्थानों पर उष्ण स्थानों की अपेक्षा बहुत कम होता है।

यात्रा की बात करते-करते मैं इधर बहक गई। फूल चट्टी पर हमें एक संस्कृत पाठशाला मिली, जो टेहरी राज्य ने किसी समय पंडों के पुत्रों की शिक्षा के लिए खोल दी थी, उस पाठशाला को देखकर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उससे भी अधिक प्रसन्नता यह देखकर हुई कि सरकार की समय-समय पर आनेवाली आर्थिक सहायता की कटौती में आने से भाग्य से यह संस्कृत पाठशाला अब तक बची हुई है। करीब सात-आठ लड़के यहाँ संस्कृत का शाकुन्तलम् पढ़ रहे थे। उनसे कुछ हटकर बैठे दो-चार लड़के आधुनिक पद्धति की छठवीं कक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ रहे थे। वहाँ न इसके आगे कोई कक्षा थी और न पीछे। फूल चट्टी में चाय आदि पीकर हम जानकी चट्टी की ओर बढ़े जहाँ हमें रात बितानी थी। यहाँ मार्ग में ही हमने सबसे पहले पूर्ण रूप से उन हिमाच्छादित चोटियों को देखा जिनमें यमुना का उद्गम स्थान हैं। हमारे साथ यहाँ से पंडे लोग हो लिये थे। उन्होने उसका नाम 'जम्बू पर्वत' समूह बताया, और हाथ से बताया कि वे ही जो हिमाच्छादित चोटियाँ दिख रही हैं, उन्हींके नीचे जो सघन वन है उसीमें होकर आप को जाना है। एक बार तो उसको देखकर हिम्मत हार गई; फिर सोचा यहाँ कम से कम वृक्ष तो दिख रहे हैं; 'गोमुख' में तो वह भी नहीं था। अब जो राय करेगा सो होगा यह सोचकर मन को बल दिया, और काफी देर तक अपने मन के भय के साथ मैं जूझती रही। मार्ग में हमें 'बीफ' गाँव पड़ा; इस गाँव की अपूर्व सुन्दरता स्मरण करने की वस्तु रह गई है। इसके दुमंजले लकड़ी के मकान बड़े भव्य मालूम पड़े। हमारे वहाँ पहुँचते-पहुँचते मध्याह्न हो गया था। अतः प्रायः सभी स्त्रियाँ अपने द्वार के सामने अपनी कटी फसल का खलियान लगाये हुए अनाज रौंद रही थीं। उनका डील-डौल पतला लम्बा हृष्ट पुष्ट, पर्वतीय लोगों के शरीर से भिन्न, नाक, नक्श सीधे खिंचे हुए जैसे किसी कलाकार ने अलग पेन्सिल से खींच रक्खे हों; और रंग कश्मीरी अमरी सेब की झलक। उनके पहनावे और आभूषण भी अन्य पर्वतीय स्त्रियों के आभूषणों से भिन्न थे और बहुत कुछ काश्मीरी रीति के

थे। आभूषणों से ही मेरा ध्यान उस ओर गया कि इनकी शारीरिक बनावट, नाक नक्श, रंग सब काश्मीरियों जैसे ही हैं। उनकी सुन्दरता देख कर मैं थोड़ी देर को वहीं रुक गई और बहुत देर तक उनका वह रूप मेरी आँखों में बसा रहा। बाद में पता चला वे लोग युगों पूर्व काश्मीर से ही आकर वहाँ बसे थे। वीफ गाँव में उत्पन्न होता है उग्गल और रामदाना। उग्गल बहुत कुछ हमारे कूटू के समान है। उसकी रोटी मैंने खाई। उसमें इतना लस था कि अच्छी नहीं लगी। वीफ से थोड़ा ही आगे थी जानकी चट्टी। जानकी चट्टी नाम सुनकर मैंने पूछा कि क्या जानकी जी यहाँ भी आई थीं, तो पता चला मध्य प्रदेश की किसी महिला के नाम पर इस स्थान का नाम जानकी चट्टी पड़ा है। इन्होंने यहाँ के तप्त स्रोत पर एक कुंड बनवाया है, और पास ही ठहरने का स्थान। इस मार्ग में जानकी चट्टी पर यह दूसरा तप्त कुंड हमें मिला, एक इसके पूर्व बांई ओर पड़ने वाले पर्वतों पर था। कुछ यात्री किसी समय वहाँ ही स्नान करके लौट जाया करते थे। हम गाँव के आगे सरकारी निरीक्षण भवन में बढ़ गये थे। सामने ही पंडों का डंडाल गाँव पर्वतों के आश्रय मे बसा बड़ा सुहावना लग रहा था। यही यमुना की मूर्ति का पूजन शीत काल में होता है और यहीं पंडों का निवासस्थान है। यही जानको चट्टी पर सर्व-प्रथम मैंने चकोर को बोलते सुना—चक् चक् चक्! काफ़ी तेज आवाज। यह कबूतर के बराबर होता है। भोजन है इसका पत्थर की कंकड़ी। घरों में यह पाला जा सकता है। हो सकता है मेरी भी इसको पालने की अभिलाषा कभी पूरी हो। यहाँ आते समय मार्ग में पड़ा श्रीकृष्ण का मंदिर यमुना जिन की प्रमुख पटरानी थीं, फिर पड़ा सोमेश्वर का मंदिर जो यमुना के एक भाई माने जाते हैं। दूसरे भाई यमराज का स्मरण हमको जानकी चट्टी से आगे यमनोत्री के मार्ग में बराबर बना रहा।

प्रातः ही उठ कर हम यमनोत्री की ओर चल पड़े। जानकी चट्टी से यमनोत्री प्रायः पांच मील पड़ती है। आरंभ में तो मार्ग सुगम ही नहीं, लुभावना भी है। मार्ग में वैसे ही वृक्ष हैं जैसे वीफ में देखे थे। उनमें जंगली 'पीच' के वृक्ष है जिनमें फल आते हैं जो स्वाद में खट्टे होते हैं। यहाँ उनको चुल्लू कहते हैं। उनका अचार पड़ता है और लकड़ी की बड़ी कठौती में उनका रस निकाल कर, लकड़ी के बाँस के से पोंगों से उसे बहा कर वे चटाइयों पर उसको सुखा कर अमरस सा बनाते हैं। थोड़ी देर के बाद चढ़ाई प्रारंभ होती है। चढ़ाइयाँ भी आरंभ में ठीक मार्ग बने होने के कारण पर्वतों की मोटर मार्ग की चढ़ाई सी लगती हैं। अधिक कष्टदायक नहीं लगतीं। किंतु तीन या चार कैंची चढ़ाई के बाद यमनोत्री का असली रूप प्रारम्भ होता है। चढ़ाई के मोड़ों को ये लोग 'कैंची' और 'धुरी' की संज्ञा देते हैं। आकारों के अनुसार—'अभी मार्ग दो कैंची एक छुरी है।' यह चढ़ाई कठिन हो जाती है, यात्री थक जाता है तब पीछे से लोग अपनी जबान की कैंची और छुरी चलाते चलते है तो बड़ा अप्रिय लगता है। "अभी दो कैंची और—" उन्होंने कहा—और यहाँ दम सूखा। बहुत दिनों तक घर की कैंची भी उन कैंचियों की याद दिलाती रही। अब आगे जो मार्ग प्रारम्भ होता है उसका कुछ कहना ही नहीं। हमारा बिना सवारी का खाली घोड़ा भी उनको देखकर एक ठन्डी साँस छोड़ता था। अब तो आश्चर्य होता है कि कैसे उनको पार करके हाथ-पैरों को सही सलामत वापिस भी ले आये। हमारे जाने का समय ऐसा था कि वर्फ गिर चुकी थी। जानकी चट्टी में ही वर्फ रात में गिरी थी। फिर आगे की दशा क्या बतलायी जाय! यही बहुत था कि उस समय बदली नहीं थी। रास्ते भर में कच्ची वर्फ, शीत की गिरती सुखी पत्तियाँ (इधर पतझड़ शीतकाल के पूर्व हो जाता है) पर ध्यान केंद्रित था। वर्फ में भीगकर ये पत्तियाँ फिसलन बढ़ा रही थी। लौटते समय तो यह मार्ग और असाध्य हो गया था क्योंकि धूप ने जमी वर्फ को आधा पिघला डाला था, और इस प्रकार फिसलन दूनी बढ़ा दी थी। रास्ते भर पंडा जी कह रहे थे यमुना यमराज की बहन इसीलिये मानी गई है। बड़ा-बड़ा यमत्रास दिखाती है यह। इस यमत्रास से भयभीत होकर बहुत से यात्री मार्ग से ही लौट जाते है। भैरवजी का मन्दिर पड़ने के साथ साथ लोगों ने मनौती की धज्जियाँ बांध रक्खी थीं जो रंग विरंगी झन्डियों के समान यात्रियों का स्वागत कर रही थीं। मै जानती हूँ यह मनौतियाँ क्या होंगी, सबने जीवन की मनौती मानी होगी कि यमुना मइया सही सला-मत घर पहुँच जायँ। भैरवजी का मंदिर द्वार रहित मिट्टी की झोपड़ी में स्थित था। शिव की काले पत्थर की सुन्दर मूर्ति उसमें विराजमान थी। मूर्ति इस प्रकार अरक्षित रक्खी थी कि मुझे उसके खो जाने का एक साथ भय हुआ।

अंत में मार्ग तय हुआ। हम यमनोत्री पहुँचे। पहुँचने

के पूर्व जल की मोटी धार सामने से ही गिरती दीखी। पंडों ने बताया कि यह हिम का टिघलता जल है। यमुना भी ऐसी ही टिघलती जलधार मानी गई है। यमनोत्री मन्दिर के स्थान को छोड़कर सारा यमनोत्री बर्फ से ढका था। मन्दिर और तप्त कुंड यमुना की जलधारा के दूसरी ओर था और ठहरने का स्थान इस ओर। जब मैं वहाँ पहुँची तो देखा कि मेरे पति वर्फ से ढकी एक छप्पर के नीचे एक सूखे स्थान पर कम्वल विछाये बैठे हैं।

ठहरने की चट्टियाँ हैं। यमुना की जलधार का जल नेत्रों पर लगाया तो शरीर पुलकित हो गया। सारे मार्ग भर मार्ग-प्रदर्शिका के समान यह जलधार हमारे साथ ही नीचे बह रही थी, सारे मार्ग भर जैसे गंगा तट के पत्थर श्वेत थे, इसके श्याम थे। जैसे वह धवलवर्णी लगती थी, यह श्याम-वर्णी लगती थी। इसकी मनोरम छवि स्थान-स्थान पर हमें कृष्ण कन्हैया की मुरली और कदम्व का स्मरण कराती थी। यमुना पर्वत से निकलने के कारण यह यमुना और कालिन्द गिरि के कालिन्द वामक (ग्लेशियर) का हिम जल लाने के कारण यह कालिन्दी कहलाती है। वास्तव में यहाँ एक वड़ा पर्वत शिखर-समूह है। उसीमें यमुन पर्वत है, और उसीमें कालिन्द्र गिरि। सूर्यरश्मियों से टिघले हुए हिम की जलधार से यमुना निकली है, और शायद इसी कारण यह सूर्य्य-तनया भी है। इसका वास्तविक उद्गम-स्थान किसीने नही देखा है। एक अग्रेज ने, और वहाँ छोटी सी कुटी में २४ वर्ष से निवास करनेवाले एक स्वामी ने ऊपर जाकर उसे देखा है। दोनों का कथन है कि सीधे खड़े हिम-पर्वतों में से एक जलधार बहकर आती है जो नीचे एक मनोरम कुंड मे गिरती है। उस कुंड से फिर यह जलधार निकलती है जो यमुना के रूप में हमें प्राप्त है। इसकी जलधार पर पड़े एक लकड़ी के तख्ते के पुल को पार कर हम उस ओर पहुँचे। चढ़ाई, चढ़कर मन्दिर तक पहुँचे। यहाँ एक छोटा सा कुंड देखा। इसे 'सूर्यकुड' कहते हैं। एक आराम-कुर्सी की चौड़ाई या कुछ इंच अधिक उसका जल इस तरह खौल रहा था जैसे कड़ाह में गन्ने का रस गुड़ बनने के लिए खौलता है। खौलते पानी के बड़े-बड़े वुलवुले से उठ रहे थे। हमारे साथियों ने कपड़ों में बाँधकर आलू, खिचड़ी और रोटियाँ डालनी प्रारम्भ कीं, अतः हमने भी अनुकरण किया। रोटी फूलकर ऊपर आ जाती हैं। आलू और चावल पक गये थे। स्वाद में कोई अन्तर नहीं था। उसके नीचे ही दूसरा कुंड था जो 'तप्त कुंड' कहलाता है। यहाँ से ऊपर बहकर नीचे तीसरे कुंड में एक जलधार जाती और स्नान का काम वहीं होता था। यहाँ पहुँचते-पहुँचते पानी की उष्णता सहने योग्य हो जाती है। इस कुड का नाम जानकी कुड था; और यह भी उन्हीं धर्मात्मा जानकीदेवी का बनवाया हुआ था। दोनों कुंडों से घनी गर्म भाप उड़ रही थी और आस-पास के वातावरण को उष्ण बनाये हुए थी। मैंने भी उसमें स्नान किया। कुंड में बड़ी फिसलन थी। इच्छा हुई कि पंडा समुदाय से उसकी सफाई की ओर थोड़ा ध्यान देने को कहूँ।

तप्त कुंड के सन्मुख एक शिला ऊपर को निकली थी, मन्दिर वन्द होने पर यमुना का रूप मानकर उन्हीं का पूजन होता था। हमारे जाने के एक सप्ताह पूर्व मन्दिर के पट वन्द हो चुके थे। अतः मैंने भी इसी शिला को देवी-स्वरूपा मान कर पूजन किया। सामने ही शिला पर मोटी हरी काई जमी थी। ध्यान वार-बार उस ओर जाता था। पूजन के बाद पंडितजी से कहा, पडित जी! कम से कम यह काई तो दस-पन्द्रह दिन के बाद साफ कर दिया करिये। यहाँका पूजन देवी के पूजन की विधि से होता है। मन्त्रोच्चारण की ध्वनि उस वातावरण में वहुत सुन्दर लगती है। मन्दिर की खिड़की से झाँककर अन्दर दर्शन किये। देवी का विग्रह श्याम वर्ण की शिला का था और प्राचीन मालूम होता था। शिल्पकारी के लिये नहीं, वरन् अपनी प्राचीनता के लिये ही वह उल्लेखनीय है। मन्दिर भी बहुत छोटा और साधारण है।

इस यात्रा की मनोरम दृश्म, दुर्गम पथ तथा पत्थरों के रंगों की विमल छाया और दक्षिणी मन्दिरों के प्रतिरूप पर्वत हृदय में एक विचित्र स्थान कर गये हैं। वहाँ वैठी बहुत देर यही सव देखती और सोचती रही। संध्या आते-आते यहाँ जलवृष्टि और तुषार का भय बढ़ जाता है अतः उसके पूर्व ही हमें वहाँ से चल देना था। पडा जी किसीको समझा रहे थे "कि ये पर्वत हिन्दी में जम्बू पर्वत-शिखर कहलाते हैं, और अँग्रेजी में इनको 'बंदर पूंछ' कहते है।" वास्तव में यह पर्वत श्रेणी 'बन्दर पूंछ' के नाम से भी विख्यात हैं। पर पंडाजी की बात सुनकर अपनी हँसी रोकने को मुँह दूसरी ओर किये हम लौटने वाले मार्ग पर आ पहुँचे।

आध्यात्म के महाकवि हज़रत 'औन' शाह

(परिशिष्ट)

श्री वाहिद काज़मी

पिछले अंक में हजरत औन शाह के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक लेख छापा गया था। परिशिष्ट रूप में हम यहाँ उनकी कविता के कुछ नमूने दे रहे हैं।

(१) श्री भगवद्-प्रसाद से :—

महा बलिष्ठ हरि सक्त है काल रूप पहचान
काल विनासे सकल को कछू न राखे ध्यान
कछू न राखे ध्यान वरस सौ वरसै अति जल
ताते रहे न देह बूड़ जावे यह सव थल
'औन' जीव छोटे बड़े मिले बीज में आन
महा बलिष्ठ हरि सक्त है काल रूप पहचान

देह मिले सव बीज में, बीज भूम मिल जाय
भूम गंध में होय लीन जल में गंध समाय
जल में गंध समाय मिले जल रस याहिं
रस मिल है जब तेज रूप में तेज समाहिं
रूप पवन में माह फिर 'औन' मिलत दिखलाय
देह मिले सव बीज में, बीज भूम मिल जाय

पवन मिले तब दरस में दरस गगन में यार
गगन मिले तब सबद में सब्दन पौ अहंकार
सब्दन पौ अहंकार मिले राजस अहंकारा
इन्द्री राजस अहं 'औन' सत अहं में सारा
देवरु मन सन अहंकार यह तत याहि विचार
पवन मिले तव दरस में दरस गगन में यार

महतत मिले प्रकृत में प्रकृति काल में छीन
काल पुरुष माहिं मिले, पुरुष पुरुषोत्तम लीन
पुरुप पुरुपोत्तम लीन पुरुपोत्तम आय न जांय
भेद अभेद नाहिं रहे, मक जब केवल सांय
'औन' ग्यान चेतन अनंत रहैंत रहित इम चीन
महतत मिले प्रभूत में प्रभूत काल में लीन

—सत्तरहवाँ-अध्याय

इससे अधिक श्रेष्ठ और सूक्ष्म, सृष्टि विध्वंस का चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

(२) स्वयं परकास :—देखिये कुछ चौपाई दोहे और सोरठे।

जिनको नहीं कोई अभिमाना। मुक्त भये पाया जब ग्याना॥
सब विराट सुपना सम जाना। ऐसा नन्द रहे निरवाना॥
दरस परस बैठत या डोलत। भोजन वसन शयन चुप बोलत॥
पूर्व कर्म आधीन सरीरा। जानत मुक्त भये बुध धीरा॥
इन्द्री तन मन कर्म मिल सारे। यह दुख सुख भोगत हैं सारे॥
मुक्त भये जु ले ब्रह्म ग्याने। इत में वास किया नहिं जाने॥

—गीतानुसार बंधयुक्तनिषद्‌ग्यान पाचवाँ प्रकाश

नदी की सोभा जल सुखदाई। निरमल मीठा वहे सदाई॥
रैन की सोभा चाँदनी भाई। ग्रीष्म आदि बहुत सुखदाई॥
खातिर पान अमीर की सोभा। साधु की सोभा है निरलोभा॥
कामिन की सोभा पति होई। विप्र की सोभा वेद से होई॥
ग्यान सील सुन्दर सुखदाई। सो सोभा सब ही की भाई॥
तप की सोभा सील सुभावे। जा को क्रोध कबहुँ नहिं आवे॥
समदम सोभा ग्यान की भाई। धनी की सोभा सज्जनताई॥
भूल चूक को देखत नाहीं। न्याय की सोभा है समताई॥

—आदि सिद्धान्त ग्यात-आठवाँ प्रकाश

प्रभु से बाहर कोउ-नहिं, हैं सब प्रभु के साथ।
जैसे जल में बुदबुदे यौं सव सिष्ट दिखाय॥
सच्च दिखावत सुप्त में सुप्त को भोग व्यवहार।
जागे मैं मिथ्या सकल भौ जग प्रभु विचार॥

सैंतीसवाँ प्रकाश

कंचन कारन निराकार भूषन काज अकार
यौ ब्रह्म कारन निराकार काज रूप संसार॥
सोने गहने में कछू भेद नहिं है कोय।
निरगुन कंचन जानिये सरगुन गहना सोय॥

इकतालीसवाँ प्रकाश

(३) उपदेश हुलास से प्रस्तुत एक कुंडलिया

अन्त समै हरि याद में, मरे सो हरि को पाय
मरे और जो याद में, सो पावत है ताय
सो पावत है ताय अन्त जो सुमरन होई
ताते अरजुन ऐन नित्य सुमरन कर भोई
सो सब तज प्रभु को भजै मिला जो ब्रह्महिं चाय
अन्त समै हरि याद में मरे सो हरि को पाय

× × ×

(४) सिद्धान्त सारिका :—कहीं-कहीं परमात्मा के वियोग में तड़पती आत्मा की मनोदशा का भी बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है, विरह और विनय की इस दशा का नमूना देखिए इन कुण्डलियों में :—

विनती विनसै करत हैं मन की जानत नाहिं
तुम तो व्यापक हो रहे तुम से छिपी कहाँहिं
तुम से छिपी कहाँहिं आप जो मालक साईं
मेरे व्याधि उपाय छुपे तुमसे कछु नाहिं
साईं अरजी आप से 'ऐन' करत सकुचाहिं
विनती विनसै करत हैं मन की जानत नाहिं

हम नाहीं हम हैं नहिं हौ तुम ही करतार
जब हम थे तब तुम न थे अब तुम हौ दुखत्यार
अब तुम हौ दुखत्यार करो जो चाहो साईं
चाहो दुख में रहो चाहो रहो सुख के माईं
तुम हरि अपना आप से 'ऐन' करत व्योहार
हम नाहीं हम हैं नहिं हौ तुम ही करतार

व्हाँ भगवत मोहि लै चलो जहाँ भगतन का वास
जिन्हें कथा हरि भजन से और न हो कछु पास
और न हो कछु पास, संग उत्तम जन—पाऊँ
या कोई जंगल बीच अकेला ही गुन—गाऊँ
'ऐन' जहाँ व्यापै नहिं, लोभ मोह का त्रास
व्हाँ भगवन मोहिं लै चलो जहाँ भगतन का वास

मन घबराये कुसंग से भगवत सला बताउ
कहा करैं जावै किधर यह मन भरम मिटाउ
यह मन भरम मिटाउ भजन निरभय बन आवे
सिवा आपके ध्यान मोह मन में नहिं आवे
या माया के जाल से जन को 'ऐन' छुड़ाउ
मन घबराये कुसंग से भगवन सला बताउ

(५) ऐनानन्द सागर से प्रस्तुत हैं कुछ चौपाई दोहे और सोरठे :—

जैसे बिना पांव का होई। गिर पर चढ़ा चहत है सोई ॥
तौ अचरज दुरलभ है जोई। सुरलभ प्रभु कृपा से होई ॥
ज्यौं गूगां प्रभु गुन कहा चाई। प्रभु कृपा से सब बन आई ॥
अंधे आँख कृपा से पावे। रोग दोष दुख भ्रम मिट जावे ॥
नेत नेत कह वेद सदाई। प्रभु का अंत छोर कछु नाहीं ॥
सुर नर रिप ग्यानी पुनि जो जो। अगम अपार कहत सब सो सो।
सेस हजारन दुख गुन गावे। तौऊ प्रभु गुन अंत न पावे ॥
नये-नये गुन गावत रहई। प्रभु अथाह मो थाह न लहई ॥

द्वितीय अध्याय

दोहे :—

निरवाया प्रभु के तईं वेद वेदान्त बताय।
गूंगे कैसे सैन हैं 'ऐन' पाय सो पाय ॥
वेद सासतर पुरान मुनि सुर नर ग्यान विचार।
समझ समझ कह कह थकत, ऐन रहे लाचार ॥

सोरठे :—

चैटीं कैसी प्यास, मम बुध प्रभु गुन कहन की।
प्रभु गुन सिंधु सुवास, केती प्यास पपील की ॥
प्रभु है सचदानद, कारन कारज सै परै।
'ऐन' कृपा सुख कंद, निराधार सब के आधार ॥

तृतीय अध्याय

भूल सुधार

खेद है कि गतांक में "आध्यात्म के महाकवि हज़रत ऐनशाह" शीर्षक लेख में लेखक का नाम 'श्री वाहिद काजमी' की जगह 'श्री याहिद काज़मी' छप गया है।

पृष्ठ ४१ के दूसरे स्तम्भ में १६वीं पंक्ति से आरम्भ होनेवाले वाक्य में "सिद्धान्त समरिका" का वर्णन है—'सिद्धान्त सार' का नहीं।

इसी पृष्ठ के प्रथम स्तम्भ के अन्त के वाक्यों में "स्वयं प्रकाश" का वर्णन है। उसका सम्बन्ध 'सिद्धान्त सारिका' से नहीं है।

—सम्पादक सरस्वती

साईं ऐनानन्द

श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

सरस्वती के जुलाई १९६९ ई० के अङ्क में श्री वाहिद काज़मी का 'अध्यात्म के महाकवि हजरत 'ऐन' शाह' शीर्षक लेख पढ़कर हर्ष और आश्चर्य मिश्रित भावनाएँ उत्पन्न हुईं।

हर्ष इसलिए हुआ कि आखिरकार साईं ऐनानन्द पर शोध-कार्य, जो कि बहुत पहले हो जाना चाहिए था; अब एक विद्वान् द्वारा किया जा रहा है। आश्चर्य इसलिए हुआ कि इन उत्साही शोधकर्ता ने हिन्दी-साहित्य के सम्बन्धित ग्रन्थों का पूरी सावधानी से अनुशीलन किये बिना ही यह घोषणा कर दी कि उनकी शोध के पूर्व ऐन साहब हिन्दी-जगत् में अज्ञात ही रहे। किन्तु तथ्य इसके विपरीत है।

'मिश्र बन्धु विनोद' चतुर्थ भाग पृष्ठ ८४ पर यह विवरण प्रकाशित है :—

"नाम—(११९९/१) ऐनानन्द कवि, ग्वालियर रचना काल—सं० १८७०

विवरण—आप मुसलमान फकीर थे। महाराजा दौलतराव सिंधिया के समय में आपका होना पाया जाता है। अभी तक आपकी समाधि ग्वालियर-किले पर विद्यमान है। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था।

उदाहरण—

ऐनानन्द फकीर हैं, परमहंस निर्वान,
डाढ़ी-मूँछ मुड़ावते, भसम करें असनान।
भसम करें असनान, रखें पीतांबर सारा,
जानहिं एकहि ब्रह्म, तुरक हिन्दू नहिं न्यारा।
भिक्षुक दोऊ दीन के, 'ऐन' एक ही आन,
ऐनानन्द फकीर हैं, परमहंस निर्वान।

यह ग्रन्थ सं० १९९१ वि० में प्रकाशित हुआ था और प्रामाणिक माना जाता है।"

'बुन्देल-वैभव' अथवा 'बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों का साङ्गोपाङ्ग इतिहास' तृतीय भाग के पृष्ठ ६९१ पर विवरण है :—

"२५८. ऐनानन्द

श्री ऐनानन्द 'ऐनकवि' दतिया का जन्म और कविता-काल अनुमानतः क्रमशः सं० १९२० वि० और १९४० वि० है।

आपका जन्म-स्थान तो ग्वालियर था किन्तु जीवन-पर्यन्त आप दतिया में ही रहे। दतिया में आपके शिष्य अब भी विद्यमान हैं।

उदाहरण—

गुड़िया खेलत छोकड़ी, जब तक पति नहिं पाय;
जब अपने पति सों मिले, गुड़ियों पास न जाय।
गुड़ियों पास न जाय, खेल जब साँचा पावे;
एसेई हरि को पाय, भक्त फिर कछू न चावे।
पूजा सारी एन जो, गुड़ियों तरह दिखाय;
गुड़िया खेलत छोकड़ी, जब तक पति नहिं पाय।

—इत्यादि"

यह ग्रन्थ* सं० २०१० वि० में प्रकाशित हुआ था।

सम्पादकाचार्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित पाक्षिक-पत्र 'मधुकर' टीकमगढ़ के अङ्क १२ वर्ष २ दिनाङ्क १६ मार्च १९४२ ई० में इस लेखक का साईं ऐनानन्द जी पर एक लेख प्रकाशित हुआ था।

× × ×

१७ नवम्बर १९६२ ई० के 'मध्यप्रदेश सन्देश' ग्वालियर के अङ्क में इन पंक्तियों के लेखक ने साईं ऐनानन्द पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए लिखा था :—

"ऐनानन्द का जन्म सं० १८४९ वि० (सन् १७९२ ई०) में ग्वालियर में हुआ था। वे बंगस-पठान थे। ऐन साईं के पिता ग्वालियर में सिंधिया-सरकार की फौज में नौकर थे।

पिता की मृत्यु के पश्चात् उनके ही स्थान पर ऐन साईं की नियुक्ति हो गयी किन्तु कुछ वर्ष ही नौकरी करके सं० १८६९ वि० में उनने नौकरी से छुटकारा ले लिया। उनके परिवार में उनकी केवल वृद्धा माँ ही बच रही थीं। उनके अनुमति लेकर वे अजमेर शरीफ होते हुए दिल्ली पहुँचे।

ऐन साईं साधना का उद्देश्य लेकर ग्वालियर से चले थे। दिल्ली में हज़रत फिदाहुसैन को उनने अपना गुरु बनाया और साधक बन गये।

---

*बुन्देल-वैभव-ग्रन्थमाला शङ्कर-निवास, झाँसी से प्राप्य।

ऐन साईं को कविता लिखने का अभ्यास बचपन से ही हो गया था। एक दिन उनने अपनी कुछ कविताएँ गुरु को भी सुनाईं। कविताएँ सुन कर गुरु अधिक प्रसन्न हुए और उनने कहा कि किसी एक ग्रन्थ का रूपान्तर कुण्डलियों में करो, जिसको उनने नतमस्तक होकर स्वीकार किया।

सं० १८७३-७४ वि० में वे दिल्ली से ग्वालियर आये। ग्वालियर में उनने पहले उर्दू, अरबी और फारसी ही पढ़ी थी, इस बार आकर उनने नागरी-भाषा भी पढ़ी और उसमें अच्छी गति प्राप्त कर ली।

ग्वालियर और दतिया (म० प्र०) दोनों ही नगरों में उनने अपने आश्रम बनाये और साधना के साथ ही साथ, कविता-ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। उनके रचित-ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है :—

ग्रन्थ		रचना-काल	
१. गुरु-उपदेश-सार	(पद्य)	१८७३-७४	वि०
२. सिद्धांत-सार	(,,)	१८८४	,,
३. भक्त-रहस्य	(,,)	१८८४	,,
४. इनायत-हजूर	(,,)	१८८४-९१	,,
५. सूर-रहस्य	(,,)	१८८४	वि०
६. अनुभव-सार	(,,)	१८८६	,,
७. ब्रह्म-विलास	(,,)	१८८७	,,
८. सुख-विलास	(,,)	१८८८	,,
९. भिक्षुक-सार	(,,)	१८८८	,,
१०. भगवद् प्रसाद	(,,)	१८८८	,,
११. श्याम हितकर	(,,)	१८८९	,,
१२. हित उपदेश	(,,)	१८९१	,,
१३. हरीप्रसाद	(,,)	१८९१	,,
१४. ऐन-विहार	(गद्य)	१८९२	,,
१५. नर चरित्र	(पद्य)	१८९६	,,

ऐन-विहार ही गद्य में है। अवशेष १४ ग्रन्थ सब पद्य में हैं। भाषा सब ग्रन्थों में मध्यदेशीय—भाषा-बुन्देली है, विषय अध्यात्म और दार्शनिक।

ऐन साईं अपने माथे पर 'ओ३म्' लिखा करते थे और उनने अपना पन्थ चलाया था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित हो सकते थे। फलस्वरूप ग्वालियर और दतिया दोनों ही स्थानों पर उनके शिष्य थे।

ग्वालियर में राजा जनकोजीराव सिंधिया के पुत्र और भाई दौलतराव सिंधिया, भाऊ फालके, बालाजी यादव और दतिया के किशनदास गोस्वामी उनको गुरु मानते थे।

जयपुर के शिष्यों में सुन्दरलाल, सुखलाल और श्यामलाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ग्वालियर और दतिया दोनों ही राज्यों में उनको सम्मान प्राप्त था।

ऐन साईं का अन्तिम ग्रन्थ नर-चरित्र सं० १८९६ वि० में समाप्त हो गया था। उसके पश्चात् उनने किसी और ग्रन्थ की रचना की हो, ऐसा शोध नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि वे अपनी ५१-५२ वर्ष की अवस्था में ही गोलोकवासी हो गये थे।"

इन पंक्तियों के लेखक ने उनके कितने ही ग्रन्थ उनके दतिया-आश्रम पर देखे थे। ऐसा अवसर भी आया था जब दतिया के तत्कालीन दीवान खान बहादुर ऐनुद्दीन ने लेखक से आग्रह किया था कि वह उन ग्रन्थों का सम्पादन कर दे। उसने अपनी स्वीकृति भी दे दी थी इस शर्त के साथ कि ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ तैयार करवा कर दे दी जावें—बिना पारिश्रमिक लिये सम्पादन कर दिया जायेगा।

दीवान ने प्रायः बीस हजार रुपये प्रकाशन-व्यय के लिए निश्चित कर दिये थे किन्तु पाण्डुलिपियाँ तैयार न हो सकीं और वह काम पूरा न हो सका। शोध-शास्त्री अब भी यत्न करके उन ग्रन्थों को देखकर लाभ उठा सकते हैं।

ऐन साईं ने श्री मद्भगवद्गीता का भी सरल, सरस छन्दों में रूपान्तर किया है—अन्त में उसका भी एक उदाहरण पाठक पढ़ने की कृपा करें :—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजय से धृतराष्ट्र ने, यहि विधि पूँछी बात;
धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, कहौ युद्ध की घात।
कहौ युद्ध की घात, किये ममसुत किम्र काजा;
अरु पाण्डव की कहौ, कौन विधि तिन दल साजा।
तब संजय ने ऐन सब, कहा भिन्न विख्यात;
संजय से धृतराष्ट्र ने, यहि विधि पूँछी बात ॥१॥

× × ×

दुर्योधन ढिग आयके; पंडन को दल जोय;
मुख्याचारज द्रोण से, पूँछन लागे सोय।
पूँछन लागे सोय, बड़ा दल पंडुन भारी;
धृष्टदुमन दल रच्यो, शिष्य तुम्हरो हुस्यारी।
सूर 'ऐन' अर्जुन सम, बहुत दिखावत सोय,
दुर्योधन ढिग आय के पंडुन को दल जोय।

लेखक की आन्तरिक अभिलाषा है कि श्री वाहिद काजमी, साईं ऐनानन्द सम्बन्धी शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता प्राप्त करें जिससे राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भण्डार में उस अमर साधक की अमूल्य कृतियाँ उचित सम्मान प्राप्त करके जन-जन का हित कर सकें।

सौर ऊर्जा का उपयोग

श्री। श्याम मनोहर व्यास एम० एस्-सी०

सूर्य अनन्त शक्ति का भण्डार है।

यह हमारी पृथ्वी से ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है! उसके चारों ओर हमारी पृथ्वी के समान अन्य ग्रह बुध, शुक्र, मंगल और वृहस्पति आदि चक्कर लगाते हैं।

सूर्य के आन्तरिक भाग में अपार ऊर्जा (ऐनर्जी) का उत्पादन होता रहता है, और दानी सूर्य वह ऊर्जा अपने परिवार के सदस्यों को दे रहा है। इसीके कारण पृथ्वी पर जीवन सम्भव है।

सूर्य की सतह का तापमान ६०००° सेंटिग्रेड है, और उसके भीतर, गर्भ का तापमान लगभग बीस लाख डिगरी सेंटीग्रेड है।

सूर्य का अधिकांश भाग हाइड्रोजन गैस से घिरा हुआ है। सूर्य जलती हुई गैसों (प्रमुखतः हाइड्रोजन एवं हीलियम) का बना हुआ एक गोला है।

सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में केवल आठ मिनट का ही समय लगता है।

आज के वैज्ञानिक शक्ति के भण्डार सूर्य की ऊर्जा का अधिक से अधिक उपयोग में लाने के प्रयत्नों में लगे हैं।

पाठकों को अवश्य ही जिज्ञासा होगी कि सूर्य के आन्तरिक भाग में इतनी अपार ऊर्जा कैसे उत्पन्न हो रही है?

अनुकूल परिस्थितियों में हाइड्रोजन संलयनित होकर हीलियम गैस में बदल जाता है। इस रासायनिक परिवर्तन के फलस्वरूप अपार ऊर्जा विसर्जित होती है। इसी ऊर्जा का एक अल्प सा अंश सूर्य के प्रकाश एवं ऊष्मा की किरणों के रूप में हमारी पृथ्वी पर आता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य में प्रति सैकण्ड ५६ करोड़ ४० लाख टन हाइड्रोजन जलकर ५६ टन हीलियम बन जाता है, और शेष ४० लाख टन गैस ऊर्जा में परिणत होती है। एक 'ग्राम' पदार्थ से ९×१०^{२०} अर्ग ऊर्जा उत्पन्न होती है। अब कल्पना की जा सकती है कि सूर्य के गर्भ में प्रति सेकण्ड कितनी अपार ऊर्जा उत्पन्न हो रही है। इस ऊर्जा का $\frac{१}{२,००,००,००,०००}$ वाँ भाग ही हमारी पृथ्वीपर पहुँच पाता है।

घरों में कोयला तथा तेल जलाने के काम में लाया जाता है। यह सब सूर्य की ऊर्जा की देन हैं। सूर्य का विकिरण ही प्राचीन दबे हुये पदार्थों को रासायनिक ऊर्जा में बदल देता है। समस्त यातायात के साधन उन कोयलों, तेल और पैट्रोल से ही चलते हैं जिनको सूर्य की ऊर्जा ने पृथ्वी के गर्भ में हजारों वर्षों में तैयार करके एकत्रित कर रखा है।

विद्युत् ऊर्जा भी सूर्य ऊर्जा के ही कारण उत्पन्न होती है। सूर्य की ऊर्जा का हमारे दैनिक जीवन में बड़ा महत्त्व है। पेड़-पौधे इसी ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से प्राप्त कर पनपते हैं। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के ही कारण समुद्र का पानी वाष्पित होता है। सौर ऊर्जा एक प्रकार से परमाणु ऊर्जा ही है। अर्थात् सूर्य में परमाणु के विकीर्ण होने से उत्पन्न होती है।

सौर ऊर्जा के प्रयोग—सौर ऊर्जा का प्रयोग हम जल को गरम करने, घरों को वातानुकूलित बनाने, जल के वाष्पन, भोजन पकाने, ऊष्मा इंजिनो द्वारा यांत्रिक एवं विद्युत् शक्ति उत्पन्न करने आदि में कर सकते हैं।

विश्व में २ अरब ऐसे लोग हैं जिन्हें बिजली की सुविधा उपलब्ध नहीं है। बहुत से रेगिस्तानी इलाकों में जल का अभाव है। वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों का दायित्व है कि वे सौर-ऊर्जा का उचित उपयोग कर विश्व के सभी क्षेत्रों में पानी एवं बिजली की व्यवस्था करें।

रूस, फ्रांस, इटली, अमरीका और इजरायल आदि देशों में सौर ऊर्जा पर काफी शोधपूर्ण कार्य हो रहे हैं। अमरीका में सन् १९५५ में "सौर-ऊर्जा परिषद्" की स्थापना भी हुई थी।

राकेटों तथा अन्तरिक्ष यानों में शक्ति के स्रोत के रूप में भी सौर ऊर्जा का उपयोग हुआ है।

सौर विकिरण—प्रति मिनट प्रति वर्ग सेंटीमीटर पर एक कैलोरी सौर विकिरण पड़ता है। प्रतिदिन यह मात्रा प्रति वर्ग से० मी० पर ५०० कैलोरी होगी।

यदि किसी घर की छत जिसका क्षेत्रफल १००० वर्ग मीटर हो, सूर्य का प्रकाश पाती रहे तो वह प्रति घन्टे ६०० किलोवाट ऊष्मा ग्रहण करेगी।

इस ऊष्मा को यदि बिजली (विद्युत्) में परिणत कर दिया जाय तो घर में समस्त वैद्युतिक उपकरण संचालित हो सकेंगे। किंतु और ऊर्जा को एक स्थान पर संग्रहीत करना कठिन कार्य है। ऊष्मा को मापने के लिये थर्मोकपल,

फोटो वोल्टेक सैल, और कैलारीमापी उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

सौर ऊर्जा का संचय :—सूर्य की उर्जा को दो प्रकार से संचित किया जा सकता है :—

(१) समतल पट्टिका संग्राहक।

(२) संकेन्द्रक संग्राहक।

प्रथम प्रकार के संग्राहक में विकिरण अवशोपक पट्टिकायें काले रंग की होती हैं जिनके ऊपर काँच लगे रहते है। इनसे लगभग १००°C तक का ताप मिलता है।

दूसरे प्रकार के सग्राहक सौर विकिरण को एक लघु लक्ष्य पर संकेन्द्रित करते है। इनसे १००°C तक ताप उत्पन्न किया जा सकता है।

प्रयोग द्वारा सौर ऊर्जा का प्रमाण मिल सकता है। एक उत्तल लेन्स को धूप में रखकर उसमें आने वाली धूप को फोकस पर लाने से वहाँ एक वहुत तेज विन्दु वन जाता है। वहाँ पर यदि कागज अथवा कोई ज्वलनशील वस्तु रखी जाय तो वह जलने लगेगी। लैन्स के थोड़े से क्षेत्रफल पर जो थोड़ी सी धूप पड़ती है उसमें इतनी ऊर्जा होती है कि वह नीचे रखी हुई रुई या कागज को जला दे।

सौर ऊर्जा का उपयोग हम तभी तक कर सकते हैं। जव तक सूर्य चमकता है। कठिनाई यह है कि सूर्य २४ घण्टों में से किसी स्थान पर अधिक से अधिक १० घण्टे ही ठीक तरह से चमकता है। इसलिये निरन्तर सौर ऊर्जा संग्रह करना कठिन है। वैज्ञानिक इसे संग्रह करके इच्छानुसार उपयोग करने के उपायों की खोज कर रहे हैं।

जापान व इजरायल में पानी गर्म करने के लिये सौर हीटरों का निर्माण हो गया है। सौर ऊर्जा द्वारा भोजन पकाने का काम भी सम्पन्न हो सकेगा।

अनाज सुखाने का काम सौर ऊर्जा द्वारा होता है। कृषक अन्न, भूसा आदि धूप में रखकर ही सुखाते हैं। सौर ऊर्जा द्वारा जल का आसवन भी सम्भव हो सकेगा। अमरीका में कई मकानों को सौर ऊर्जा द्वारा गरम रखा जाता है।

आज देश-विदेश के वैज्ञानिक सौर-ऊर्जा पर नियन्त्रण करने के उपाय खोज रहे है।

सौर-ऊर्जा द्वारा पानी गर्म करने के उपकरण तथा सौर-भट्ठियों के निर्माण की दिशा में भी प्रयोग किये जा रहे हैं।

अमरीका और रूस में सौर ऊर्जा के विद्युत् उत्पन्न करने के प्रयोग व्यापक पैमाने पर हो रहे हैं।

अमरीका के अणु शक्ति संस्थान ने एक ऐसा यन्त्र तैयार किया है जो सूर्य की धूप में पड़ा रह कर २०००° फहरेनाइट ताप उत्पन्न कर देता है और धातुओं को पिघला देता है। इजरायल में सौर-ऊर्जा के संचय के लिये रेत का उपयोग किया जा रहा है।

रेत की वजरी में ऊष्मा को धारण करने की शक्ति निहित है। लोहा, ताँवा, अल्यूमिनियम भी अच्छे चालक होने के कारण ऊष्मा धारण कर सकते हैं।

कुछ यौगिकों में भी यह शक्ति पाई जाती है।

सूर्य की विकिरण ऊष्मा को थर्मोकपल के एक सिरे को गरम करके तथा दूसरे को ठंडा करके सीधे विजली में परिणत किया जा सकता है। थर्मोकपल दो भिन्न धातुओं को जोड़कर वनाये जाते हैं।

सौर ऊर्जा से चालित इंजिन सिंचाई, रेडियो तथा ग्रामीण उद्योगों में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। सौर ऊर्जा का सदुपयोग कई असाध्य रोगों के इलाज में भी हो सकता है।

अमरीका में आर० सी० ए० कम्पनी द्वारा उत्पन्न सिलीकोन फोटोसेल को सूर्य-वैटरी की तरह से टेलीफोन लाइनों में काम में लाया जाता है।

राकेट, अंतरिक्ष-स्टेशन, अथवा अंतरिक्ष यान को चलाने के लिये शक्ति की काफी मात्रा अंतरिक्ष में ही सूर्य विकिरण से उत्पन्न की जा सकती है।

रूस में अंतरिक्ष अनुसन्धानशाला द्वारा अन्तरिक्षयान को फोटो-सैलों से सुसज्जित कर दिया जाता है जो सूर्य ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में परिणत करते रहते हैं।

ऐसे भी प्रयत्न किये जा रहे हैं जिससे सूर्य-ऊर्जा को रेडियो, एवं जहाज आदि चलाने के काम में लाया जा सके।

हमारे देश में भी राष्ट्रीय प्रयोगशाला में इस दिशा में प्रयोग हो रहे हैं।

फ्रांस में प्रो० फीलिक्स दाम्बे ने सौर ऊर्जा से ५०००° सेंटीग्रेड ताप उत्पन्न करनेवाला एक यन्त्र बनाया है।

आशा है भविष्य में सौर-ऊर्जा को संचय कर उससे इच्छानुसार समय पर बिजली आदि शक्ति प्राप्त की जा सकेगी।

प्राचीन भारत में पशु-युद्ध

डा० शिवनन्दन कपूर

प्राचीन भारतीय मनोरंजन के अनेक साधनो में पशु-युद्ध भी प्रमुख था। पशुओं के पारस्परिक युद्ध के अतिरिक्त, उनमें मानव तथा पशु का बल-परीक्षण भी होता था। वीर-पूजा के उस युग में, वह शक्ति-प्रदर्शन, शौर्य, साहस, दाँव, और चातुर्य के साथ मस्तिष्क की स्थिरता का भी परिचायक था। अप्रतिम वीर की शक्ति, तथा स्थिरता इससे परखी जाती थी। कंस ने कृष्ण का अवरोध 'कुवलयापीड़' से किया था।

मोहनजोदड़ो के फलक

मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयो में ऐसे अनेक फलक मिले हैं, जिनसे प्राचीन भारत में पशु-युद्ध की पुष्टि होती है। एक फलक पर बैल से लड़ता मानव है (फलक २१)। एक मुद्रा पर भी यही दृश्य अंकित है (२०, छ १) उसी मुद्रा के दूसरी ओर एक मनुष्य मारे गये व्याघ्र की ओर देख रहा है। कुछ मुद्राओं पर व्याघ्र को गले से पकड़ कर पछाड़ने का दृश्य है। कतिपय फलकों पर एक मनुष्य दो व्याघ्रों के मध्य दिखाया गया है (फलक ८४-२५; तथा ९३)।

वृषभ, और व्याघ्र के अतिरिक्त कहीं-कहीं, मनुष्य और भैंसे के द्वन्द्व भी चित्रित हैं (मुद्रा २७९, फलक २७-७४)। मनुष्य का एक पैर जमीन पर, दूसरा भैंसे की थूथन पर है। एक हाथ से सींग पकड़कर, दूसरे हाथ से वह उसकी पीठ में भाला भोंक रहा है। मुद्राओं पर वृषभ और भैंसे को फाँदने के भी चित्र हैं। संभवत: उन्हें चिढ़ाकर उत्तेजित किया जाता था (फलक ३७-५, तथा २० ख)। ३५०० वर्ष पूर्व क्रीट में भी इसी प्रकार तरुण, एवं तरुणियाँ वृषभों को सींग पकड़कर फाँदते एवं क्रीड़ा करते थे। अन्त में वे उनकी वलि चढ़ा देते थे। दक्षिण भारत में इस प्रकार के युद्ध पर्याप्त समय तक प्रचलित रहे। तरुणियाँ ऐसे वृषभ-विजेताओं का वर-माला से वरण करती थीं। वर-यिता को विजय-माला, और वर-माला 'विजय-लक्ष्मी के' साथ मिल जाती।

रामायण तथा महाभारत काल

'रामायण' में ऐसे अनेक वीर उल्लिखित हैं, जो पशुओं को शस्त्र या शरीर-बल से पराभूत कर सकते थे (१-५-२१)। 'महाभारत' में लड़ते वीरों की तुलना, सींग से चोट खाये सांड़ों से की गयी है (कर्ण पर्व २६-३२)। ऐसे वीर को 'महायोद्धा' कहा जाता था (द्रोण पर्व अ०-१२८)। भीम ऐसे ही योद्धा थे। विराट पर्व में 'जीमूत' को पछाड़कर भीम अप्रतिद्वन्द्वी हो जाते हैं। कोई विरोधी न मिलने पर उमंग में वे सिंह तथा व्याघ्रों को पछाड़ने लगते हैं (१३, ४०-४१)

समाह्वय

बाजी लगाकर होने वाला पशु-युद्ध प्राचीन काल में 'समाह्वय' कहलाता था। (याज्ञवल्क्य स्मृति २-१९९,२००) राज्य की ओर से भी समाह्वयों का प्रबंध होता था। 'दीघ निकाय' में हाथी, भैंसे, आदि पशुओं के, मनोरंजक युद्धों के आयोजन का वर्णन है। 'ब्रह्मजाल सुत्त' में भी गजो, अश्वों, बैल, बकरे, भैंसे, मेढ़े आदि के युद्ध का उल्लेख है (१।३३६, २।८२)। गुप्त-काल में ऐसे आयोजन 'समाज' कहलाते थे। चंद्रगुप्त को वृषभ, मेढ़े, गैंडे और हाथियों की टक्करें देखने का शौक था। ऐसे प्रदर्शनों में जनता दर्शक के रूप में एकत्र होती थी। अशोक ने इन 'समाजों' का प्रदर्शन बंद करा दिया था।

गज-युद्ध

गज-युद्ध का वर्णन मनोरंजन तथा युद्ध दोनों ही अवसरों पर मिलता है। 'महाभारत' में भी उनके युद्ध का चित्रण है (द्रोण पर्व-२० अ०)। वे देह से देह सटाकर, दांत टकराते हैं। रण-कुशल शाल्व का हाथी तो तीव्र-गति तथा आवर्तन के कारण एक से अनेक प्रतीत होता है (सहस्रशो वे विचर-न्तमेक-शल्यपर्व-२०-७)। 'हर्षचरित' में भी इसका वर्णन है (२-९३)। भीम 'अंजलिका-वेध' विद्या के द्वारा गज के शरीर में प्रविष्ट होकर उसे मार डालते थे। (महा०, द्रोण पर्व २५।२१-२५)। कृष्ण भी गज-युद्ध में पारंगत थे (हरिवंश-पुराण २।२९।१७-४४)। सोमेश्वर ने इसे 'गजवा-ह्यालिविनोद' कहा है।

पशु-युद्ध के लिए तेज धावक ही आमंत्रित होते थे। 'आलोकमंदिर' नामक विशेष रण-स्थल ४०० हाथ लंबा, और २४० हाथ चौड़ा बनाया जाता था। चारों ओर गहरी

खाई रहती थी। 'परिकारक' कहलानेवाले योद्धा दण्ड या असि लेकर गज से युद्ध करते थे (मानसोल्लास २-२११)। 'मानसोल्लास' में गजों की, सूँड़, दाँत आदि से की जाने वाली कर्त्तरीघात, तलघात, अजघात आदि १४ चोटों का वर्णन है। विजयी शासक से पुरस्कार भी पाता था। 'पाणिनि' ने गज से युद्ध करनेवाले को 'हस्तिघ्न' कहा है (३-२-५४)। बाण ने उसे 'बंठ' का नाम दिया है।

वृषभ-युद्ध

बैलों का युद्ध भारत ही नहीं, यूनान, रोम आदि में भी प्रचलित रहा। 'पद्म' तथा 'स्कंद' पुराणों में दीपावली के दूसरे दिन, प्रतिपदा को इनके युद्ध के प्रचलन का उल्लेख है। (१०-३२)। 'मत्स्य-पुराण' में भी इसका वर्णन है (२२७।१५५)। कृष्ण जी शरत् पूर्णिमा पर इसका आयोजन करते थे (हरिवंश २-२०-१६)। कभी-कभी गोप बैलों से स्वयं लड़कर उन्हे उत्तेजित करते थे, फिर उन्हें परस्पर भिड़ा देते थे (स्कंदपुराण)। 'मानसोल्लास' में भैंसों के युद्ध का भी उल्लेख है (पृ० २६१, ६२)।

मेष-युद्ध

मेष-युद्ध रविवार को होता था। 'स्कंदपुराण' मे इसे 'मुंड युद्ध' कहा गया है। उसे एक दिन पूर्व अँधेरे में रखते। मद्य पिला कर उनकी सींगों पर लोहे के पत्तर मढ़ देते थे। सिकन्दर ने भारतीय कुत्तों और शेर का युद्ध देखा था। मार्कोपोलो ने भी शेर से लड़नेवाले भारतीय कुत्तों का उल्लेख किया है।

मुग़ल-काल

पशुओं, विशेषकर हाथियों की लड़ाई में मुगल-बादशाहों की भी काफी रुचि रही। अकबर के लड़ाकू हाथियों में 'आसमान शकोह,' 'दलसिंगार,' 'औरंग गज,' 'फतह गज' आदि विख्यात थे। अकबर के आदेश से पशु-युद्ध के लिए विशेष अखाड़ा बना था। आगरे के किले के दर्शनी फाटक के ऊपर से उसका दृश्य देखा जाता था। एक बार वहाँ सलीम के हाथी 'गिरानबर,' तथा खुसरो के 'आबरूप' में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में 'गिरानबर' विजयी रहा। (आइन-५२०, ५२१)।

हाथियों की लड़ाई का ज़िक्र बर्नियर, और पीटर मुंडी के यात्रा-विवरणों में भी है। इसके लिए ४ फीट चौड़ी, ६ फीट ऊँची दीवार बनायी जाती थी। दीवार के दोनों ओर से मस्त हाथी आते। सूँड़ें लड़ती। कुछ उत्तेजक धक्कों के बाद बीच की दीवाल धराशायी हो जाती। गज महावत के संकेतों पर, पिल पड़ते। यदि कोई हाथी पराजित होने लगता तो उसकी सहायता के लिए 'टवांचा' सहायक हाथी, लाया जाता। (आइन पृ०-५२१)। वह हारते हाथी की मदद करता था। कभी-कभी मेढ़े भी चीते की खाल से ढककर, हाथियों की ओर छोड़े जाते। हाथी पहले तो चौंकते। कुछ डरते, पर बाद में उन्हें कुचल डालते थे।

प्रायः मनुष्य भी हाथियो से लड़ाये जाते थे। आत्म-रक्षार्थ उन्हें कटार दे दी जाती थी। विजयी होने पर उनका मनसब बढ़ा दिया जाता था। एक बार जहाँगीर ने फाँसी की सजा पाये एक राजपूत को हाथी से लड़वाया। विजयी होने पर मुक्त कर देने का वचन दिया। पर शायद उस राजपूत को विश्वास न था। अतः वह विजयी होने पर भी भागा। जहाँगीर ने उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मरवा डाला। आसफुद्दौला केवल पशु-युद्ध के लिए १००० हाथी रखता था।

अकबर ने नाव से गज-युद्ध देखते अपना चित्र अंकित कराया था। ऊँटों, और हरिणों की लड़ाई के चित्र भी मिलते हैं। पालतू हिरन ही नहीं लड़ाये जाते थे, उन्हें जंगल में जंगली मृगों से भी भिड़ाया जाता था। एक बार जहाँगीर ने एक पालतू हिरन छोड़ा। वह जंगली हिरन को दो-तीन टक्करें मार कर लौट आया। जहाँगीर उसकी सींगों में रस्सी बाँध कर छोड़ना चाहता था। इससे लड़ते समय सींग उलझ जाते, और जंगली मृग फँस जाता। शिकार का यह भी एक तरीका था। मगर इसके पहले ही वह जंगली हिरन २-३ टक्करें खुद देकर भाग गया। (जहाँगीरनामा)

अंग्रेज और पशु-युद्ध

अंग्रेजों को भी पशु-युद्ध में अत्यधिक रुचि रही। इसका वर्णन अनेक जेसुइट पादरियों ने किया है। अकबर के निमंत्रण पर वे इसे देखने आते थे। बाद में यह शौक अनेक नवाबों की राजधानियों में अतिथियों तथा जनता का मनोरंजन करता रहा। अयोध्या के नवाब के यहाँ निमंत्रित चैंपियन ने ऐसे पशु-युद्ध का आँखों देखा वर्णन किया है।

उसने लिखा, वाघ के साथ भैंसे के युद्ध की खवर से सारा शहर उमड़ पड़ा था। उसीके साथ, हाथी तथा गैंडे, और दो ऊँटों का युद्ध भी आयोजित था।"

"एक वर्ग विस्तृत क्षेत्र वेड़े से घिरा था। यही अखाड़ा था। उसके बीच में कटे द्वार से ६ लोग ६ भैंसों को लेकर आये। लाल-लाल आँखोंवाले साक्षात् यम के वाहन से भैंसे। इसके वाद एक वाघ छोड़ा गया। लेकिन पता नहीं क्यों, इतना स्वादिष्ट भोजन सामने देखकर भी वाघ ने आक्रमण नहीं किया। इसके विपरीत एक भैंसा ही उस पर चढ़ दौड़ा। रंग नहीं जमा। अतः एक वाघ और युद्ध-क्षेत्र में लाया गया। आकार में वड़ा होने पर भी वह दव्वू था। एक भैंसे ने उसे भी सींगों से फेंक दिया। तव भी वह शान्त रहा।" 'लगता है, उन पशुओं को विचित्रता के लिये अफीम खिला दिया जाता था।

उसके पश्चात् ऊँटों की लड़ाई हुई। वह भी चैम्पियन को नीरस सी लगी। उसी बीच एक युद्ध का हाथी छूट निकला। पाँच लोग कुचल कर मारे गये। वह छूट कर अखाड़े का वेड़ा तोड़ने का प्रयास करने लगा। अन्त में महावतों ने मिलकर उसे वश में किया। एक गैंडा भी लड़ाई के लिये लाया गया। किन्तु वह भी नहीं जम सका। कर्नल चैम्पियन को तो पशु-युद्ध में न जाने क्यों रस नहीं आया। इसके विपरीत मूडी साहव मनुष्य से वाघ की लड़ाई देखकर उछल पड़े थे। वाद में उनके मन में विचार भी उठा, क्या ऐसे वीर देश पर हमारा शासन स्थायी रह सकेगा?"

इस प्रकार पशु-युद्ध की वह क्रूर किन्तु रोचक, साथ ही शौर्य-वर्धक परम्परा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। राजस्थान में अव भी सीमान्त पर, मेलों में ऊँटों की लड़ाई आयोजित होती है। पहले मेलों में मेष-युद्ध की व्यवस्था होती थी, पर अव वह भी लुप्त होती जा रही है। वे प्राचीन मनोरंजन अतीत की वस्तु बनकर इतिहास के पन्नों में ही सिमटते जा रहे हैं।

वर्तिका मैं बनूँ

प्रो० रामस्वरूप खरे, एम० ए०

स्नेह वन तुम रहो, वर्तिका मैं बनूँ
दीप-जीवन जले जो बुझे फिर नहीं!
नीर वन तुम बहो शुष्क मरुभूमि में
प्रीति-कलिका खिले जो झरे फिर नहीं!!

तोड़ नाता गरल से सका हूँ नहीं,
चाहता यह नहीं तुम सुधा बाँट दो!
होड़ में जिन्दगी की थका हूँ नहीं
चाहता यह नहीं उर-व्यथा छाँट दो!!

बीर वन तुम रहो, डूवती नाव का
डाँड़ ऐसा उठे जो गिरे फिर नहीं!
नीर वन तुम रहो शुष्क मरुभूमि में
प्रीति-कलिका खिले जो झरे फिर नहीं!!

प्राण वन तुम रहो एक, हों देह दो
हाथ में हाथ दो तय करूँगा सफर!
प्रेरणा वन रहो, साधना मैं वनूँ
साथ दो मैं चलूँगा थकेगी डगर!!

पीर वन तुम रहो, गीत ऐसा रचूँ
घाव जग के भरें, जो मरे फिर नहीं!
नीर वन तुम वहो, शुष्क मरुभूमि में
प्रीति-कलिका खिले, जो झरे फिर नहीं!!
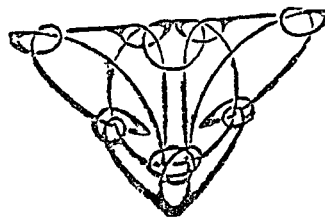
धर्मराज का धर्म संकट

श्री युगल

इस मध्यावधि चुनाव में जब कांग्रेस ने जनता के घनघोर विरोध के कारण माननीय रामरक्षण सिंहजी को चुनाव का टिकट नहीं दिया, तो उन्हें लगा कि उनका घोर अपमान किया गया है। उन्होंने निजलिंगप्पा को अंगूठा दिखलाया, और कांग्रेस को लात-मार अपने बाहुबल के भरोसे लंगोट कस चुनाव के दंगल में आ जुटे। कुछ लोगों को जाति के नाम पर फँसाया, कुछ को रुपये बाँटे और अन्त में चुनाव केन्द्रों पर लाठी की बदौलत मुहरें लगवायीं। सब कर्म-अपकर्म के बाद भी फल जो होना था, वही हुआ। रुपये लेकर भी लोगों ने उन्हें धता बता दी, और जातिवालों ने भी अच्छा उल्लू बनाया।

चुनाव का फल सुनते ही उनकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। बिजली का तार छू जाने से जो दशा होती है वैसी दशा में वे निष्प्राण से होकर अपने महल में जाकर सोफे पर गिर गये, और कई घंटे तक उसी प्रकार सुन्न पड़े रहे। फिर सहसा उन्हें लगा कि चारों ओर जो अथाह पानी था, एकाएक सूख गया है और वे तपती बालू पर मछली की तरह छटपटा रहे हैं।

पिछले तीन साल से वे मंत्री थे। न जाने कितने इंजिनियरों और ठेकेदारों को उन्होंने मालामाल कर दिया था और उन वफादार लोगों ने भी माननीय रामरक्षण सिंहजी को निहाल करने की जी-जान से कोशिश की। आठ लाख की लागत से बना उनका राजमहल आज उनकी नजर में बिलकुल सूना लग रहा था। प्रातःकाल से ही जब मिजाजपुरसी करनेवालों की भीड़ बढ़ने लगी, तो उन्होंने चिढ़कर अपने ड्राइंग रूम का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर अपने सोनेवाले कमरे को बन्द कर कटे पेड़ की तरह पलंग पर आ गिरे। जी में आ रहा था कि धाड़ें मार-मार रोयें। लेकिन अपने को सम्हाले रहे। फिर अपने को चारों ओर से चद्दर से लपेट कर आँखें बन्द कर लीं।

उन बन्द आँखों के भीतर न जाने उन्होंने क्या देखा कि उठ बैठे। पलंग के सिरहाने लगे 'शैल्फ' से गीता निकाली। धीरे-धीरे पन्नों को पलटते रहे। फिर उनके मन में उत्कट वितृष्णा का भाव जागा—व्यर्थ है यह गीता-बीता। जिस कांग्रेसी गद्दी के लिए इस गीता को गले लगाया, वही जब गला छुड़ाकर अलग हो गयी, तो इसे गले में बाँधे फिरने से क्या लाभ? उन्होंने मरी चिड़िया की तरह पंख पकड़ कर गीता को अपनी खिड़की से बाहर फेंक दिया और कई क्षणों तक उसकी लाश को देखते रहे, इस विचार से कि वह अपने डैने फैला कर उड़ जाये और उन गांधी और तिलक के पास चली जाये, जिन्होंने इसको इतना सिर चढ़ा रखा था। लेकिन न तो वह उड़ी और न उसमें कोई हरकत ही हुई। वे लौट आये। योगवाशिष्ठ निकाला। लेकिन मन वहाँ भी न रमा। महाभारत खोला और शान्ति पर्व में कुछ ढूंढ़ने लगे। फिर महाभारत को उसी प्रकार खुला छोड़ सोफे से पीठ टिका सिर को पट्टी पर डाल छत की ओर देखा। वहाँ नाच रहे पंखे के साथ मन नाचता रहा। धीरे-धीरे उनकी आँखें बन्द हो गयीं। तब उन्हें लगा कि कोई अदृश्य शक्ति उन्हें वहाँ से उठाकर लिये जा रही है। वह उठ आये। तिजोड़ी से निकालकर उन्होने अपने ब्रीफकेस में कुछ रखा और बाहर निकल आये। पोर्च में गाड़ी खड़ी थी, जिसे उन्होंने अभी कुल चार महीने पहले खरीदा था—लम्बी आरामदेह इम्पाला। तीन साल पहले जो कैडलक खरीदी गयी थी, वह गैरेज में से झाँक रही थी। महाभिनिष्क्रमण के समय गौतम ने जिस नजर से गोपा और राहुल को देखा होगा, कुछ उसी अन्दाज से रामरक्षणजी ने अपनी गाड़ियों को देखा, दोमंजिले भवन को देखा और चुपचाप अहाते के बाहर निकल आये।

बदरीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, उसके आगे हिममंडित चोटियाँ, पहाड़ों के उठान। लेकिन रामरक्षणजी बढ़ते ही गये। नहीं, उन्हें लौटना नहीं है। कुरुक्षेत्र की लड़ाई के बाद शान्ति की खोज—पाण्डवों की सदेह स्वर्गयात्रा। रामरक्षणजी ने देखा, उनके आगे एक मरियल कुत्ता चला जा रहा है। बर्फ पर उन्होंने अपने को फिसलने से सम्हालकर गौर से देखा। युधिष्ठिर के आगे भी एक कुत्ता इसी प्रकार जा रहा था। कुत्ते के वेश में स्वयं धर्म। हे राम! बल दो। वह कुत्ते का अनुसरण करते आगे बढ़े। उन्हें लगा कि उनके पीछे-पीछे भी कोई चला आ रहा है।

कौन है, यह देखने के लिए उन्होंने अपना सिर घुमाया, तो एक स्त्री पर नजर पड़ी। सफेद सर्फ-सी धुली साड़ी, नीची घूँघट। यह कौन हैं? क्यों उनका पीछा कर रही है?

युधिष्ठिर के पीछे शायद इसी तरह द्रौपदी चल रही होगी। ठमककर उन्होंने पूछा—'कौन?'

उस स्त्री ने घूँघट जरा ऊँचा किया। एक तीखा नक्श रामरक्षणजी की आँखों के सामने उजागर हो गया—अरे? यह तो उनके गाँव की मेहतरानी है—द्रौपदी। उन्होंने पूछा—'द्रौपदी, तू कहाँ?'

'मुझे छोड़कर आप अकेले कहाँ जा रहे हैं नाथ?' द्रौपदी रो पड़ी।

रामरक्षणजी ने देखा, नीचे दूर वर्फ पर उछलते-कूदते दो बच्चे चले आ रहे हैं। दोनों बच्चे शायद द्रौपदी के हैं। रामरक्षणजी के पाँव काँपे। लगा कि वह गिर जायेंगे। द्रौपदी ने उन्हें अपनी बाँहों में थाम लिया।

यह सब क्या हो रहा है? इस निर्जन सुनसान वर्फ पर क्या यह भूत-लीला हो रही है? रामरक्षणजी की समझ में कुछ नहीं आया। उनके आगे से एक पर्दा हट गया—

× × ×

भैंस दुहता अहीर का छोटा बच्चा रक्खू, गन्दा नीकर पहने, बिना जूतों के स्कूल जाता रक्खू। रक्खू मैट्रिक में एक के बाद एक, चार साल तक फेल होता गया, तो बाप ने खूब लताड़ा और घर से निकाल दिया। रक्खू को अपने बाप से घृणा हो गयी। बाप ने जो दूध में पानी मिला-मिला कर रुपये इकट्ठे किये थे, उसके दूध का दूध और पानी का पानी करने के लिए रक्खू रात में चुपचाप घर में घुस आया और विक्टोरिया तथा एडवर्ड के चाँदीवाले रुपयों की पोटली लेकर चलता बना। सबेरे गाँव के लोगों ने जाना कि झक्खी अहीर का बेटा रक्खू बाप की जिन्दगी-भर की कमाई लेकर चम्पत हो गया है। दिन उठते-उठते लोगों ने यह भी जाना कि गाँव के छोर पर बने मिसरी मेहतर की बेटी द्रौपदी भी सुबह से ही लापता है। द्रौपदी उसका असली नाम था या तीन वर्षों में ही पाँच पतियों के छोड़ देने के कारण लोगों ने प्यार से उसका नाम द्रौपदी रख दिया था, बतलाना मुश्किल है।

रक्खू के भाग्य ने कलकत्ते में पलटा खाया। चार भैंसें खरीदीं। जिस विधवा के घर के अहाते में रहता था, तीन वर्ष के बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। विधवा की मृत्यु के बारे में कई लोग कई तरह की बातें कहते रहे, लेकिन मृत्यु का रहस्य भगवान् के बाद रक्खू ही जानता था। लोगों के देखने में इतना ही आया कि साल लगते न लगते रक्खू की डेयरी काफी चल निकली। उसकी डेयरी के मक्खन डिब्बों में बन्द होकर दूर-दूर के बाजारों में भेजे जाने लगे। रक्खू कुछ ऐसी तरकीबें जान गया कि उसकी डेयरी में वनस्पति भी खालिस घी के दाम पर बिकने लगा। मलाई निकला दूध 'पेस्चुराइज्ड मिल्क' लेबुलोंवाली बोतलों में भरकर कलकत्ते के सेठों और बाबुओं के घर पहुँचने लगा।

कुछ काइयाँ यारों को रक्खू की यह चलती अच्छी नहीं लगी। उन्होंने स्वास्थ्य विभाग के अफसरों को भड़काया और एडल्टरेशनवाले मामले में रक्खू को फँसा दिया। आड़े वक्त में मित्र को परखने का मौका मिला। उसका एक लँगोटिया साथी न जाने किस तिकड़म से मंत्री बना बैठा था। उसीकी सिफारिशों ने रक्खू की जान साँसत से निकलवायी।

जब उसके मंत्री दोस्त ने जाना कि यह रक्खू वनस्पति को घी बना रहा है और उसकी मिट्टी सोना बनती जा रही है, तो वह भी चुनाव में रक्खू की आर्थिक सहायता लेने लगा। उसने रक्खू को पोलिटिक्स के गुर भी बतलाये—

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सुजन को काम॥

रक्खू चुनाव के मौकों पर पार्टी को उलीच-उलीचकर चन्दा देने लगा। फिर एक दिन क्या हुआ कि रक्खू कांग्रेस का एम० एल० ए० बन गया और उसका मंत्री दोस्त जब मुख्यमंत्री बना, तो रक्खू माननीय रामरक्षणजी सिंह बन गया और मंत्री बना दिया गया।

उसके बाद रामरक्षणजी ने मिसरी मेहतर की बेटी द्रौपदी को ऐसा चरका दिया कि वह अपने दोनों बेटों को उंगलियों का सहारा दिये कोठे पर जा बैठी और रामरक्षणजी कलकत्ता छोड़कर मिनिस्टरी की गद्दी सम्हालने आ गये।

हाय री किस्मत! आज जब रामरक्षणजी ने सदेह स्वर्ग की यात्रा की, तो वह द्रौपदी पोलाव में हड्डी की तरह दाँत के नीचे आ पड़ी। अब यह धर्मराज के आगे जा सब पर्दाफ़ाश करेगी। ब्रीफकेस से उन्होंने नोटों का बंडल निकाला और द्रौपदी की ओर बढ़ाते हुए प्रार्थना के स्वर में कहा—'द्रौपदी, तू लौट जा। वर्फ में तू भला मेरे साथ

गलने क्यों आयी है ? जरा बच्चों की ओर देख, वर्फ के मारे वे कैसे सफेद हो रहे हैं।'

अब तक उन्होंने नोटों की महिमा और करतब खूब देखे थे। उसी विश्वास से उन्होंने द्रौपदी की ओर देखा। द्रौपदी ने नोटों का बंडल आँचल में बाँधा, रामरक्षणजी के पाँवों को छुआ और बच्चों को लेकर वापस मुड़ गयी। जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गयी, उनके मन में संदेह बना रहा—औरत के मन का क्या ठिकाना ! न जाने वह कब अपना निर्णय बदल दे और सच्ची जीवन-संगिनी की तरह उनके पीछे लग जाये !

रामरक्षणजी उठे और टूटे कदमों से आगे बढ़े। कुत्ता आगे-आगे चल रहा था। एक जगह अचानक उनके पाँव फिसले। उन्होंने सहारे के लिए कुत्ते की पूँछ पकड़ी, मानों वैतरनी पार उतरने के लिए गाय की पूँछ पकड़ रहे हों। कुत्ते ने मुड़कर अपनी पूँछ पकड़नेवाले को देखा, नाक सिकोड़ी, बड़े-बड़े दाँत दिखलाये और गुर्राकर उन पर झपट पड़ा।

रामरक्षणजी ने एक क्षण में उस कुत्ते को पहचान लिया। अरे ! यह तो अपने ही गाँव का कुत्ता है। गाँव से जब वह द्रौपदी को लेकर भागे थे, यह कुत्ता राह रोक जोर-जोर से भूँकने लगा था। रक्खू ने उस कटखने कुत्ते के सिर पर लाठी सीधी कर दी थी। कुत्ता एक बार सिर्फ जबड़ा खोलकर ठंडा हो गया था।

आज यहाँ वर्फ पर उस मरियल कुत्ते ने रामरक्षणजी को असहाय पाकर ऐसा झिंझोरा कि उनकी आत्मा नश्वर देह छोड़कर अलग जा खड़ी हुई।

रामरक्षणजी की आत्मा ने अपने शरीर को उसी प्रकार देखा जैसे कोई गरीब अकस्मात् फट गये अपने पुराने वस्त्र को देखता है। छोड़ना चाह कर भी जैसे उसके मोह में बँधा हो। इतने ही में तीस पैंतीस लड़कों का झुंड हाथ में झंडियाँ और फूल-मालाएँ लिये आया। लड़कों ने बड़े ही आदर भाव से रामरक्षणजी के गले में मालाएँ डालीं। गले में मालाएँ ऊँची होती गयीं और लड़कों के नारे ऊँचे होते गये—'परम उद्धारक रामरक्षणजी महाराज की जय ! रामरक्षण बाबू जिन्दाबाद !' आदि। लड़कों ने आत्मा-रामरक्षणजी को हाथों-हाथ उठा लिया। जब तक रामरक्षणजी समझें तब तक लड़के उन्हें उठाये-उठाये यमलोक ले आये।

द्वार पर जय-घोष का शोर बहुत बढ़ने लगा, तो धर्मराज खड़ाऊँ पहने द्वार पर आ खड़े हुए। उन्होंने जानना चाहा कि वे लोग कौन हैं ?

चित्रगुप्त जी भागे-भागे आये। उन्होंने वही का पन्ना खोला। सेवक दौड़कर मंच ले आये। धर्मराज ने मंच को उपेक्षा से देखा और चित्रगुप्त से पूछा—'ये लोग कौन हैं ?'

चित्रगुप्त ने कई बार वही पलटी, लेकिन कुछ पता नहीं चला, तो उन्होंने उन लड़कों की ओर देखकर पूछा—'अरे अपना कुछ अता-पता तो बतलाओ !'

लड़कों ने बतलाया—'चार साल पहले हम सब एक स्कूल में पढ़ते थे। उस स्कूल को रामरक्षणजी ने अपने साले के ठेके में बनवाया था। मकान बनने के एक साल बाद ही बरसात में उसकी छत बैठ गयी और पैंतीस लड़के बाबू रामरक्षणजी की कृपा से जीवन-मुक्त हो गये। पढ़ने-लिखने के बाद बेकारी का तौक गले में डालकर आफिसों के चक्कर लगाने पड़ते, 'नो वेकेंसी' की जिल्लत उठानी पड़ती, भूखी आँतें सूखी रोटी के लिये तरसतीं, जीवन के इन सारे दुखों से इन्होंने हमारा उद्धार कर दिया है। हम इन्हें हाथों-हाथ उठाकर आपके द्वार तक ले आये हैं।' और लड़कों ने जयकार का वह उद्घोष किया कि धर्मराज को अपने कानों में उँगलियाँ डाल लेनी पड़ीं।

चित्रगुप्त महाराज ने बतलाया—'इन लड़कों की अकाल मृत्यु हुई है। अभी यमलोक में इनका प्रवेश वर्जित है।'

धर्मराज ने कड़ी नजर से अपने यमदूतों की ओर देखा—'आखिर ये लोग यहाँ कैसे चले आये ?'

एक यमदूत ने निवेदन किया—'धर्मराज, अपराध क्षमा हो। हमने इन्हें रोका था। लेकिन इन लोगों ने पथराव शुरू कर दिया। वाहनों और विमानों को क्षति पहुँचाना आरम्भ कर दिया। तोड़-फोड़ और शोर का आन्दोलन इतना बढ़ा कि......

धर्मराज कड़के—'नहीं, छात्रों की अनुशासनहीनता यहाँ नहीं चलेगी। यह भी क्या कोई पृथ्वी पर का स्कूल-कालेज है ? ये सब चुपचाप यहाँसे चले जायें और अपनी मियाद पूरी होने का इन्तजार करें।'

कुछ छात्रों की तो इच्छा हुई कि बूढ़े धर्मराज का सिंहासन खींचकर उन्हें उलट दिया जाये। लेकिन कुछ तो धर्मराज का रोब और कुछ अपनी परिमित संख्या देखकर वे वहाँसे चुपचाप खिसक गये।

अब रामरक्षणजी की ओर धर्मराज ने देखा। चित्रगुप्त ने वहीं पर से अपनी नजर उठायी और रामरक्षणजी की ओर घूमकर देखा—'तू रक्खू अहीर है?—झक्खी अहीर का बेटा?'

रामरक्षणजी भीतर-ही-भीतर सकपकाये। जैसे किसी विरोधी सदस्य ने एसेम्बली में उन पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया हो, उसी लहजे में बोले—'माननीय धर्मराजजी! भूतपूर्व मंत्री आप से जानना चाहते हैं कि चित्रगुप्तजी ने जो बात करने का अनपार्लियामेंटरी तरीका अपनाया है, वह क्या यमलोक की आचारनिष्ठा के विरुद्ध नहीं है? मैं चाहूँगा कि चित्रगुप्तजी महाराज पहले बात करने का ढंग सीख लें।'

चित्रगुप्त का चेहरा पत्नी की फटकार खाये बाबू के चेहरे की तरह बन आया। झेंप मिटाने के लिए उन्होंने फिर से वही देखनी शुरू कर दी। लेकिन रामरक्षणसिंहजी का नाम कहीं दर्ज नहीं था। उन्होंने असहाय दृष्टि से धर्मराज की ओर देखा। धर्मराज डाँटते हुए बोले—'देखता हूँ, चित्रगुप्तजी, अब आपसे यह काम नहीं होनेवाला है। जैसे-जैसे आप बूढ़े होते जा रहे हैं, आपकी स्मरण-शक्ति क्षीण होती जा रही है। कई बार कहा कि आप इस पद पर किसी नये आदमी को आने दीजिए। लेकिन आप तो गद्दी से बूढ़े मिनिस्टर की तरह चिपके हैं। पृथ्वी पर आबादी तेजी से बढ़ रही है। न तो आप अपने नीचे कुछ डिप्टी, सब-डिप्टी और ऐसिस्टेंट बढ़ा लीजिए।'

चित्रगुप्त हैरत में थे कि लाख चेष्टा करने और सतत सचेष्ट रहने पर भी ऐसी गलती उनसे कैसे हो गयी? बाबू रामरक्षणसिंहजी की ऐंट्री कैसे छूट गयी? उन्होंने नये पन्ने पर रामरक्षणसिंहजी का नाम दर्ज किया। पूछा—'आपने कोई पुण्य-कार्य किया हो तो नोट करा दें।'

रामरक्षणजी ने कहा—'मैं हर साल कांग्रेस को दस हजार चन्दा दिया करता था।'

धर्मराज का एक चमचा यमदूत बीच में टपक पड़ा—'नहीं महाराज, यह तो अपने रुपये कांग्रेस के बैंक में जमा करता था, जो बाद में एम० एल० ए० के आर्डर चेक के रूप में इसे लौटा दिया। फिर मिनिस्टर होकर इसने ओवर ड्राफ्ट भी बहुत लिया है।'

चित्रगुप्त ने अपने पुराने फ्रेमवाले चश्मे की टूटी डंडी ठीक की और बीच में बोलने के कारण तीखी नजर से उसे यमदूत की ओर देखते हुए रामरक्षणजी से पूछा—'और कोई पुन्य-कार्य?'

'जब मैं मंत्री था, तो डिस्क्रेशनरी फंड से कई गरीबों की सहायता की है।'

वह यमदूत चित्रगुप्त का कोई रोब न मानकर बीच में फिर बोल पड़ा—'खता माफ हो। बोले बिना रहा नहीं जाता, इसीलिए बोलता हूँ। जिस डिस्क्रेशनरी की बात यह कर रहा है, वह केवल भाई-भतीजों और भानजों को देता रहा है। पिछले ही हमने द्रौपदी के भाई को हरिजन के नाम पर मिलनेवाले बहुत सारे ग्रांट दिलवाये हैं, डिस्क्रेशनरी के पैसे दिये हैं। यह तो कोई पुन्य कार्य—'

धर्मराज ने मीठी झिड़की में कहा—'तुमसे चुप नहीं रहा जाता जी? कितनी बार तो कहा कि बड़ों के बीच में न बोला करो।'

वह बूढ़ा यमदूत कई कदम पीछे हट गया।

चित्रगुप्तजी रामरक्षणजी की ओर मुखातिब हुए—'और कोई पुन्य?'

रामरक्षणजी बोले—'छोटी-बड़ी कई संस्थाओं का उद्घाटन किया है। जन-कल्याण के लिए भाषण दिया है ठीकेदारों और इंजीनियरों की थैलियाँ भरने में मदद की है। सेठ-साहूकारों के घर भोजन कर उन्हें कृतार्थ किया है।'

दूर खड़ा यमदूत अपनी हँसी रोके खड़ा रहा। चित्रगुप्तजी ने सब नोट कर गहरी नजर से रामरक्षणजी की ओर देखा। उन्होंने अपने मन उठती शंकाओं का समाधान ढूँढ़ना चाहा—'आप रक्खू अहीर नहीं हैं?'

'मैंने बतलाया न कि मेरा नाम रामरक्षण सिंह है?'

'झक्खी अहीर आपके पिता नहीं थे?'

'मेरे पिता झक्खी किस्म के जरूर थे।'

'आप द्रौपदी को जानते हैं?'

'जी हाँ, मैंने महाभारत पढ़ा है। द्रौपदी के पाँच पति थे।'

'द्रौपदी महाभारत की नहीं। मेहतरानी द्रौपदी।'

'हो सकता है, वह मेहतरानी हो गयी हो।'

धर्मराज ने अधीर भाव से कहा—'पहचान के लिए झक्खी अहीर को बुलाया जाये।'

यमदूत ने कहा—'धर्मराज, झक्की अहीर अपने भागे बेटे के इन्तजार में रो-रोकर पृथ्वी पर ही अपने दिन काट रहा है। वह अभी यहाँ नहीं आ सकता।'

'धर्मराज ने चित्रगुप्त से पूछा—'भक्खी के यमलोक पहुँचने में और कितनी देर है ?'

'पांच वर्षों के बाद उसकी मियाद पूरी होगी।'

'तो द्रौपदी को ही बुलवाइए।'

वही यमदूत बोला—'महाराज, वह तो इन्हीं के साथ आ रही थी। लेकिन इन्होंने उसे फिर पृथ्वी पर वापस भेज दिया है। उसके आने में अभी काफी विलम्ब है।'

धर्मराज ने तब जैसे अपने से ही पूछा—'तब ?' और फिर निर्णय दिया—'भक्खी और द्रौपदी के यमलोक पहुँचने तक इन्तजार किया जाये।'

चित्रगुप्त ने पूछा—'तब तक रामरक्षणजी कहाँ रहेंगे ?—स्वर्ग में या नरक में ?'

धर्मराज झुँझला उठे—'यह सब अव्यवस्था आपके कारण हुई है। लोगों का हिसाब-किताब आप ठीक से नहीं रख पाते।'

चित्रगुप्त ने निवेदन किया—'धर्मराज भारत में रुपयों के अवमूल्यन और अतिमूल्यन के कारण लोगों के नाम में बहुत हेर-फेर हो जाता है। इसके प्रभाव से धन्नू धनपत हो जाता है और फिर धनराज भी कहलाने लगता है। लेकिन जब अवमूल्यन की गर्दिश में पड़ता है, तो धनराज भी धन्नू बन जाता है और फिर लोग घिस-घिस कर उसे धनुआ बना डालते हैं। ऐसी हालत में एक ही आदमी का एकाउंट अलग-अलग नाम से—'

वितृष्णा के मारे धर्मराज के ओठ बाहर निकल आये। जब तक सकूनत ठीक-ठीक मालूम न हो, क्या व्यवस्था दी जा सकती है ? न्याय तलवार की पैनी धार की तरह होता है। जरा-सी चूक होने पर अच्छा अंग भी कट सकता है। न्याय दूध का दूध और पानी का पानी चाहता है। इस रामरक्षण के बारे में क्या व्यवस्था दी जाये ? धर्मसंकट में पड़े धर्मराज कुछ नहीं सोच सके। उद्विग्न भाव के उठ गये।

रामरक्षणजी ठठाकर हँस पड़े—'लोग सेक्रेटेरिएट की अव्यवस्था पर उंगली उठाते हैं। देखो, सब जगह यही हाल है।

× × ×

इसी समय उन्हें लगा कि कोई दरवाजे को जोरों से पीट रहा है। उन्होंने द्वार खोला। सामने उनकी पत्नी खड़ी थी। पूछ रही थी—'आप भीतर अकेले में हँस क्यों रहे थे ? मैं तो समझी, इस मुए इलेक्शन ने सदमा दिया कि दिमाग का कोई पुर्जा-उर्जा—'

और रामरक्षणजी ने फिर अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। न जाने वह भीतर किसे गालियां दे रहे थे।

पावस

अर्जुनलाल 'अरविंद'

पावस की फुहारों में मगन होकर निशा फूली।
सरस होकर दिवस फूला कि जीवन की दिशा फूली।
लताओं की शिराओं ने कि फैला दीं हरित बाहें,
भटकते मानवों के यूथ ने पहिचान लीं राहें,
सरसता का मधुर कर पान अपने को उषा भूली।
लहरते देख पुष्पों को धरा भी आपको भूली।
किसी ने चूमकर करदीं सजीली साँझ सी आँखें,
किसी ने प्यार बरसा कर भिगो दीं नव अरुण पाँखें,
अधर ने आज हो मदहोश मधु की प्यालियाँ छू लीं।
गगन झूला, बहारों को उठाकर डालियाँ झूलीं।
सुना कर गीत भौंरों ने बिता दीं ये मधुर रातें,
किसी ने जागकर कर लीं दफ़न मृदु प्यार की बातें,
घटा से कर प्रणय की बात राहों में पवन भूली।
मुखरता में समाकर आज फिर मंडराई गोधूली।

———

नागार्जुन सागर

श्री ऋषि रामचन्द्र कौशिक

अभी तक भारत सरकार ने सिंचाई के लिए बांध-निर्माण की जो योजनाएँ बनाई हैं, उनमें नागार्जुन सागर की योजना सबसे बड़ी और महत्त्व-पूर्ण है।

यहाँ बांध कृष्णा नदी पर बनाया गया है। कृष्णा महाराष्ट्र से निकलकर उस भूभाग को सींचती है जो पहिले हैदराबाद राज्य और उत्तरी मद्रास में था। इस पर बांध बनाने की कल्पना काफ़ी पुरानी है। आंध्र और हैदराबाद के सहयोग से १९५४ में इसकी मूल योजना तैयार हुई। १९५५ में इस योजना के लिए कंट्रोल बोर्ड बनाया गया तथा बांध का शिलान्यास रखा गया। किंतु वास्तव में १९५७ में इसके निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ और अब यह योजना प्रायः पूरी हो गयी है।

कृष्णा नदी में जिस स्थान पर इस बांध को बनाने का निश्चय किया गया वह नागार्जुन कोंडा के नाम से विख्यात था। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य और भिक्खु नागार्जुन के जीवन से उस स्थान का सम्बन्ध था और किसी समय वह दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का बहुत बड़ा केन्द्र था। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने बहुत पहले ही उसके महत्त्व को समझ लिया था और वहाँ प्रायोगिक खुदाई भी की थी जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं। बांध बनने पर नागार्जुन कोंडा का जलमग्न हो जाना निश्चित था। इसलिए बांध में जल आने के पहिले ही उस स्थान की खुदाई करके इतिहास और कला की दृष्टि से जो सामग्री मिली वह निकाल ली गयी थी।

नदी पर जो बांध बनाया गया है वह पक्का है और उसकी ऊँचाई ४०९ फुट है। इसके आधार की चौड़ाई ३२० फुट है। यह बांध एक मील लम्बा है। इस मुख्य बांध के दोनों ओर एक-एक सहायक बांध हैं। ये भी एक मील लम्बे हैं किंतु उनकी ऊँचाई ८५ फुट ही है। बांध के ऊपर २८ फुट चौड़ी सड़क बनायी जा रही है।

इस बांध के बनने से जो जलाशय बनेगा उसका नाम नागार्जुन सागर रखा गया है। इस सागर का क्षेत्रफल लगभग ११० वर्गमील है। यह भारत की सबसे बड़ी कृत्रिम झील है। संसार में आकार की दृष्टि से यह तीसरी

नागार्जुन सागर से सुरंग द्वारा जल निकालने की एक प्रणाली

बड़ी कृत्रिम झील है। इसमें ३६०० लाख एकड़ फुट पानी भरने की क्षमता है। भाखड़ा-नंगल झील से यह क्षमता कई गुना अधिक है।

इस झील के जल से दो काम लिये जायंगे। एक तो सिंचाई और दूसरा बिजली उत्पादन।

इस बांध की दाहिनी और बाईं ओर से एक-एक नहर निकाली जा रही है। दाहिनी नहर अपेक्षाकृत अधिक लंबी है। इसकी लम्बाई ११२६ मील होगी। बाईं ओर की नहर केवल १११ मील लम्बी बनेगी। इन नहरों से साढ़े इक्कीस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। सिंचाई-क्षेत्र में धान, गन्ना, कपास, मक्का और ज्वार की खेती मुख्य रूप से होती है। इस सिंचाई से इस क्षेत्र की उपज अनुमानतः साढ़े सत्रह लाख टन हो जायगी।

बिजली उत्पन्न करने के लिए बांध के पास आठ विद्युत्-उत्पादक (जनरेटर) लगाये गये हैं। प्रत्येक विद्युत्-उत्पादक ५० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार पूरी योजना कार्यान्वित हो जाने पर इस योजना से आंध्र को चार लाख किलोवाट बिजली मिल
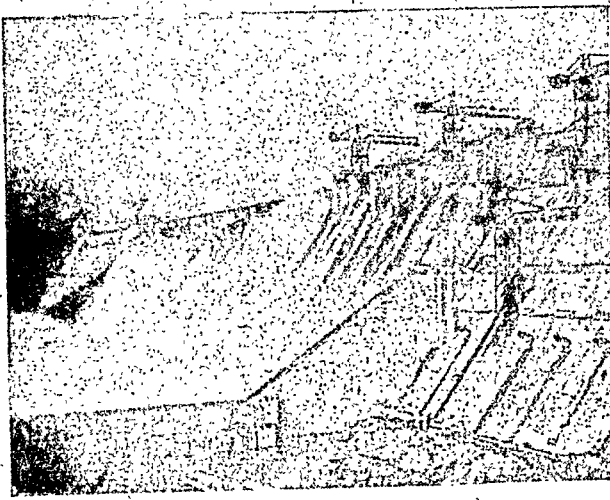
नागार्जुन सागर बाँध से जल-प्रवाह

सकेगी। इससे उस प्रदेश के उद्योग-धंधों तथा जनता को बड़ी सुविधा हो जायगी।

इस नहर का लाभ आंध्र प्रदेश के गुंटूर, कर्नूल, नीलोर, नलगुण्डा, खम्भम और कृष्णा जिलों को विशेषरूप से होगा।

इस योजना की सिंचाई से किसान पूरा लाभ उठा सकें, इस उद्देश्य से उन्हें आर्थिक सहायता के लिए आंध्र प्रदेश के लैंड मॉर्गेज बैंक ने उन्हें ऋण देने के लिए आठ करोड़ रुपये की राशि निश्चित कर दी है जिसमें से बहुत सा ऋण दिया भी जा चुका है।

इस योजना के फलस्वरूप इस क्षेत्र में सरकार ने कृषि अनुसंधान के लिए कई प्रयोगशालाएँ भी स्थापित की हैं। इन प्रयोगशालाओं में अच्छी फसल उत्पन्न करने के लिए खाद, उर्वरक और सिंचाई के लाभ-दायक उपयोग की विधियों पर प्रयोग किये जाते हैं तथा इसका भी अनुसंधान किया जाता है कि सिंचाई के पानी का कृषि पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सरकार चाहती थी कि इस योजना में जनता का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त किया जाय। इस आशय से भारत सेवक समाज को मुख्य नहर की खुदाई का बहुत कुछ काम दिया गया। अधिकांश कैदी ग्रामीण होते हैं और जेल से मुक्त होने पर फिर किसानी करने लगते हैं। इसलिए नहर की खुदाई में उनका भी सह-योग लिया। इस उद्देश्य से वहाँ हुजूर नगर गाँव में उसी प्रकार की खुली जेल बनायी गयी जैसी उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में चुर्क के पास है।

यह योजना आंध्र प्रदेश सरकार की है किंतु इसमें केन्द्रीय सरकार ने भरपूर सहायता दी है। आरंभ में अनुमान किया गया था कि इसे पूरा करने में ९१'१२ करोड़ रुपये लगेंगे, किंतु अब संशोधित लागत का अनु-मान १३९'५३ करोड़ रुपये है। बाँध बन गया है और नहरों की खुदाई का काम भी बहुत कुछ पूरा हो गया है।

इस योजना से आंध्र प्रदेश की कृषि बहुत उन्नत हो जायगी। आज भी आंध्र प्रदेश में उसकी आवश्यकता से अधिक उपज होती है और वह दूसरे प्रदेशों को प्रचुर मात्रा में चावल भेजता है। इस योजना से उसकी उत्पादन-क्षमता बढ़ जायगी। इससे वहाँकी सरकार और किसानों को तो लाभ होगा ही साथ में देश की खाद्य समस्या के हल करने में भी बड़ी सहायता मिलेगी। बिजली के उत्पादन से उस प्रदेश के उद्योग-धंधों को प्रचुर मात्रा में शक्ति मिल सकेगी और नये कारखाने खुल सकेंगे।

१९५५ में स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इ[स] बाँध का शिलान्यास किया था। उस अवसर पर उन्हों[ने] कहा था कि "मैं जो स्थापना कर रहा हूँ वह मेरे लि[ए] एक पवित्र कार्य है। यह भारत की मानवता का ए[क] मंदिर है। यह उस नये मंदिर का प्रतीक है जो हम भार

स्तूप का पूजन

नागार्जुन सागर बाँध की खुदाई से प्राप्त बौद्ध शैली की एक कलाकृति जो वहाँ के संग्रहालय में सुरक्षित है

में निर्माण कर रहे हैं।" उनके ये वाक्य इस योजना की भावना और उद्देश्य की बड़ी सुंदर व्याख्या हैं।

नागार्जुन सागर संग्रहालय

हम ऊपर बतला चुके हैं कि जलाशय बनाने के पहले पुरातत्त्व विभाग ने नागार्जुन कोंडा की खुदाई करके वहाँ की पुरातत्त्व महत्त्व की सामग्री निकाल ली थी। यह सामग्री नागार्जुन कोंडा पर्वत के शिखर पर एक संग्रहालय बनाकर उसमें सुरक्षित रख दी गयी है। जलाशय में जल भर जाने से यह पर्वत बहुत कुछ डूब गया है और इसका शिखर एक द्वीप बन गया है। इसी द्वीप पर यह संग्रहालय स्थित है।

इस संग्रहालय में जो सामग्री संग्रहीत है उससे इस स्थान के दो हजार वर्ष पूर्व का महत्त्व प्रकट होता है। उस समय यहाँ इक्ष्वाकु वंश का राज्य था और बौद्ध धर्म का बोलबाला था। इस सामग्री से उन दोनों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसमें जो मूर्तियाँ आदि हैं उनमें अधिकतर बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। ९० प्रतिशत सामग्री बौद्ध, ७ प्रतिशत हिंदू और ३ प्रतिशत जैन है। इनमें स्तूप हैं जिनके आकार साँची के स्तूपों से कुछ भिन्न हैं, बुद्ध भगवान् के जीवन से संबंधित अनेक मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। जातकों की अनेक कथाओं पर आधारित भी बहुत सी मूर्तियाँ हैं। अनेक प्रकार के सुंदर और उत्कीर्ण खंभों का बड़ा सुंदर संग्रह है। इनमें कपिलवस्तु को लौटते हुए बुद्ध, वैशाली में बुद्ध, महाभिनिष्क्रमण, धर्म-चक्र-प्रवर्तन और महापरिनिर्वाण की मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

हिन्दू मूर्तियों में भगवान् विष्णु, शिव, त्रिविक्रम, नृसिंह, महिषासुरमर्दिनी और श्री रामराज्याभिषेक तथा हनुमान की मूर्तियाँ बड़ी सुंदर कलाकृतियाँ हैं। कुबेर, कार्तिकेय, आदित्य आदि की मूर्तियाँ भी दर्शकों को आकर्षित करती हैं।

किंतु अभी पुरातत्त्व विभाग ने द्वीप में दर्शकों के पहुँचाने का कोई संतोषजनक प्रबंध नहीं किया। इसे देखने के लिए प्रायः तीन घंटे चाहिए। इन असुविधाओं के कारण बहुत से दर्शक इस महत्त्वपूर्ण संग्रहालय को देखे बिना ही, केवल बाँध देखकर लौट आते हैं। पुरातत्त्व विभाग या आंध्र प्रदेश सरकार को ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि दर्शक सुविधापूर्वक और समय को नष्ट किये बिना द्वीप में जाकर इस महत्त्वपूर्ण संग्रहालय को देख सकें।

डिप्टी की डायरी (३)

एक सेवामुक्त डिप्टी

हमने जनवरी और फरवरी के अंकों में इस डायरी के कुछ अंश छापे थे और फिर उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए उनके अगले अंशों का प्रकाशन रोक दिया था। कई एक सामान्य और ऐसे व्यक्तियों ने जिनकी सम्मति का हम आदर करते हैं, हमसे आग्रह किया कि हम उसे जारी रखें। हमने उनकी पांडुलिपि अपने एक अनुभवी और सफल आई० ए० एस० सेवा निवृत्त जिलाधीश को भी दिखायी। उनकी प्रतिक्रिया उतनी अनुकूल नहीं थी, किन्तु हम उनकी सम्मति का बड़ा आदर करते हैं, अतएव उसके अनुसार हमने इस डायरी का भरसक सतर्कता से सम्पादन कर दिया है। सामान्य लोगों के लिए अफसरों की दुनिया अनजानी और अलग है। हम उसकी गतिविधियों से प्रायः अपरिचित रहते हैं। किन्तु उसका परिचय प्राप्त करना मनोरंजक ही नहीं उपयोगी भी है, क्योंकि तब हम समझ सकते हैं कि हमारे शासक वर्ग किन परिस्थितियों में रहते और काम करते हैं तथा उनमें जहाँ एक ओर तेजस्विता, न्यायप्रियता और कठोर कर्त्तव्यपरायणता के उदाहरण मिलते हैं, वहाँ मानवीय दुर्बलताएँ भी देखने को मिलती हैं। आजकल यथार्थवादी कहानियों का बोलबाला है। वे कहानियाँ अधिकतर कल्पनाप्रसूत होती हैं, किन्तु जैसा कि किसीने अंग्रेजी में कहा है Truth is Stranger than fiction (सत्य कल्पना से अधिक विचित्र है।) सत्य अधिक विचित्र ही नहीं, मनोरंजक भी होता है।

ये संस्मरण पुराने हैं और उस संक्रान्ति काल के हैं जब अंग्रेजों का शासन समाप्त हो रहा था और नये-नये स्वराज्य का आगमन हो रहा था। अंग्रेज अफसर जा रहे थे और उनसे निम्न श्रेणी के बहुत से अधिकारी पदोन्नति प्राप्त कर उनका स्थान ले रहे थे। अतएव पाठक यह ध्यान रखें कि ये घटनाएँ उस संक्रान्ति काल की हैं और उनका आज मुख्यत: ऐतिहासिक महत्त्व है। आज की स्थिति तब से भिन्न है। इस पर मतभेद हो सकता है कि वह सुधरी है या नहीं। किन्तु उसे जानने के लिए हमें अभी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इन संस्मरणों से जनता को तत्कालीन अधिकारी संसार के जीवन के कम ज्ञात पहलू की एक झलक देना ही मुख्य उद्देश्य है। आज के युग में जनता को—जो देश की वास्तविक स्वामी है—उससे अनजान रहना ठीक नहीं है। उसे जानने पर ही वह अधिकारियों की सीमाएँ समझ सकती और उनके प्रति सहानुभूति रख सकती है।

हम समय-समय पर, यदि प्रति मास नहीं तो दूसरे मास; इस डायरी से पाठकों का मनोरंजन कुछ दिनों करते रहेंगे, तथा अन्य विभागों के कुछ सेवानिवृत्त अधिकारियों को ऐसे संस्मरण लिखने के लिए भी प्रेरित करने का प्रयत्न करेंगे।

सम्पादक, सरस्वती]

निरर्थक मीटिंगें—शराब पीने से बचे—शुंभ-निशुंभ—गाली निरपेक्ष जनसेवक—जननायक और सैनिकों का सम्पर्क।

राज्य के एक दूसरे जिले को मेरी बदली हुई। जिस दिन सुबह मैं वहाँ पहुँचा तो मालूम हुआ कि जिलाधीश महोदय आज मीटिंग कर रहे हैं। उस समय सुबह के आठ बजे थे। महीना दिसम्बर का था। ठिठुरन की सर्दी थी। सुबह के समय मीटिंग रखने का तात्पर्य नहीं समझा। सोचा, यह मीटिंग सुबह को इसलिये रक्खी गयी होगी कि दस ग्यारह बजे तक समाप्त हो जाय; और वहाँ से घर जाकर घंटे आध घंटे में अधिकारी लोग खा पीकर कचहरी पहुँचकर काम शुरू कर सकें! अतएव मैं बिना कुछ खाये पिये ही मीटिंग में जा बैठा। पर वहाँ जाकर मैंने जो हाल देखा वह विचित्र था। एक विशाल कमरे में प्रत्येक विभाग के गेजेटेड अफसर उपस्थित थे। (तब गेजेटेड अफसर बर्साती मेढक जैसे नहीं बढ़ गये थे। अब तो छोटे से छोटे जिले में भी उसके कुल गजेटेड अफसर एक कमरे में नहीं आ सकते हैं।) उस कमरे में जिले के समस्त विभागों के अफसरान उपस्थित थे, और प्रत्येक विभाग की समस्यायें, काम, त्रुटि, विच्युतियाँ इस प्रकार विशद रूप से आलोचित हो रही थीं कि मीटिंग के शीघ्र समाप्त होने के लक्षण नहीं दिखायी पड़े। समय के इस निरर्थक अपव्यय को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। समझ में नहीं आया कि सड़क के पुल अथवा पंचायतघर के निर्माण से जुडिशियल अफसरों को क्या लेना-देना है। अथवा मुकदमों में कम या अधिक दंड दिये जाने से नहर विभाग के अधिशासी अभियन्ता का क्या सम्बन्ध है। पर उस समय की सरकार को इस प्रकार की मीटिंगें इतनी उपयोगी

प्रतीत हुई कि राज्य भर के जिलाधीशों को आदेश भेज कर कहा गया था कि वे उसी प्रकार की मीटिंग किया करें।

उस मीटिंग की एक और विशेषता थी। उस लम्बी और न समाप्त होने वाली मीटिंग से जब जो चाहे उठकर चला जाता था। नाश्ता अथवा भोजन करके फिर लौट आता था। जिलाधीश तो वहीं अपना खाना मँगवाकर खा लेते थे। वे भला इसकी कार्यवाही एक क्षण को भी कैसे छोड़ सकते थे।

जिलाधीश शायद शराब पीना अफसरी के लिए आवश्यक समझते थे। खुद तो पीते ही थे, नये अफसरों को पियक्कड़ बनाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। मैंने उनके एक भोज में दारू पीने से इनकार कर दिया तो वे इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने एक शराबी अफसर को आदेश दिया कि मुझे पटककर वह मेरे मुँह में मद्य उड़ेल दे! वह अफसर वैसे यह काम न करता पर उस समय सुरा देवी के प्रभाव में होने के कारण वह मेरी ओर बढ़ा। मैं उस समय अनुभवहीन नवयुवक था। २४-२५ साल की अवस्था। रगों में खून की रवानी तेज थी। मुझे क्रोध आ गया और मैं उठ खड़ा हुआ, और बोला "अगर मुझे जबर्दस्ती कोई शराब पिलाने की कोशिश करेगा तो मै बिला चोट उसे नहीं छोड़ूँगा। मेरा आरक्त चेहरा, विस्फारित दृष्टि और मुष्टिबद्ध हाथों को देखकर वह अफसर तो आगे नही बढ़ा, पर 'डिनर' का वातावरण क्षुब्ध हो उठा। वहाँ के जिलाजज जो कि एक आई० सी० एस० सज्जन थे, वहाँ मौजूद थे। उन्होंने मुझे बुलाकर अपने पास बिठाल लिया और जिलाधीश से बोले, "जब यह नहीं पीता तो उसे क्यों पीने पर मजबूर करते हो! मैं इस प्रकार के तमाशे पसद नहीं करता।"

जिलाधीश खून का घूँट पीकर रह गये। वे जिलाजज के सामने निरुपाय थे, क्योंकि जिलाधीश जब डिप्टी थे तो इन्हीं जिलाजज के नीचे काम किया था जो उस समय उनके जिलाधीश थे!

उन दिनों जिलाजज की बड़ी इज्जत थी। इसका भी एक उदाहरण वहाँ देखने को मिला था।

वहाँ एक अस्थायी अतिरिक्त सेशन जज था। उसकी बदली हो गयी किन्तु उनके स्थान पर किसी की नियुक्ति के आदेश कुछ दिनों नहीं आये। अतएव वह बँगला जिसमें वे रहते थे, कुछ दिनों खाली पड़ा रहा। वहीं जिले में एक ज्वण्ट (नया आई० ए० एस० अफसर कहलाता है) और एक ए० एस० पी० (छोटे कप्तान) गृहहीन पड़े थे। मकान के खाली होने का इन्तजार था। ज्वण्ट अविवाहित तथा ए० एस० पी० विपत्नीक विधुर थे। अस्तु जज साहबवाली कोठी में दोनों अच्छी तरह रह सकते थे। जिलाधीश ने कोठी इन दोनों को 'एलाट' कर दी। पर यह बात जिलाजज को बुरी लगी। उन्होंने जजी के वजीर से कहा कि वह जाकर उस मकान में ताला बन्द कर आवे! जिलाधीश ने ज्वंट और छोटे कप्तान को सलाह दी कि वे ताला तोड़कर उस कोठी पर कब्जा कर लें, पर स्थानीय जिलाजज वरिष्ठ आई० सी० एस० थे। उनसे भिड़ने का इन्हें साहस नहीं हुआ।

जिलाधीश ने रैण्ट कन्ट्रोल अफसर को बुलाया और उनसे सलाह की। सरकारी वकील ने भी राय दी कि मकान एलॉट करना जिलाधीश का अधिकार है। जज साहब उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। उस समय जिलाधीश के कमरे में कोई मीटिंग चल रही थी। सबके सामने जिलाधीश महोदय ने रेंट कट्रोल अधिकारी से कहा :—

"देखो, घबड़ाने की जरूरत नहीं। तुम जज साहब से मिलकर कह दो कि मकान खाली है, कोई जज आ नहीं रहा है। ये दोनों 'क्लास वन' अफसर महीनों से मकान की प्रतीक्षा में हैं। इसलिये मकान इन्हीं को मिलेगा। जज साहब को ताला बन्द करने का कोई अधिकार नहीं। क्यों अपनी इज्जत गँवायेंगे।"

रेण्ट कन्ट्रोल अफसर चला गया। करीब घंटे भर बाद लौट आया। कलक्टर साहब का दरबार चल रहा था। उन्होंने उत्सुकता से पूछा क्या हुआ ?

—साब वे नहीं मानेंगे! अपनी जिद पर अड़े हुए हैं!

—तुमने उन्हें बता दिया था जो कुछ मैंने कहा था ? उन्होंने फिर पूछा।

—'जी' संक्षिप्त उत्तर देकर उसने टालना चाहा, पर साहब उसे कब छोड़ते! विरक्त होकर बोले, "हाँ 'न' 'अच्छा'? क्या मामला है जो इस तरह एक शब्द का जवाब दे रहा है? बताता क्यों नहीं कि उन्होंने—क्या कहा।" उत्सुक जिलाधीश जवाब सुनने को व्यग्र थे।

विवश होकर उसने कहा, "गुस्ताखाना जवाब दिया है!"

—"अरे तू तो पहेली बन गया है। गुस्ताखाना, फलाना दिया था ! बतलाते क्यों नहीं कि क्या कहा।"

—"जी उन्होंने कहा" Tell......." इतना कह कर कह फिर चुप हो गया।

—"हाँ, हाँ, tell him that—" रुका क्यों—बताओ भी तो अधीर जिलाधीश जिलाजज का उत्तर जानने को अत्यन्त व्याकुल थे।

—उन्होंने कहा, "tell....that he is a fool

—जैसे बम फूटा। निस्तब्धता छा गयी। जिलाधीश का चेहरा झेंप से विकृत हो गया। इतने की आशा उन्होंने नहीं की थी। झट झेंप सँभालकर बड़ी जोर से हँस पड़े "पागल है पागल ! समझा ! पागल है ? पागल कुछ भी कह सकता है ?"

—'जी'.......

फिर सारे किस्से को लिखकर जिलाधीश ने लखनऊ भेज दिया।.......

—इधर इसी झगड़े में प्रायः दो महीने बीत गये। जिलाधीश ने मकान मालिक को बुलाकर कहा कि तुम दुबारा अपनी कोठी का किराया माँगो। जब उसने किराये की लिखित माँग की तो उस पत्र के आधार पर सरकार को लिख भेजा कि जिला जज की अवैध कार्यवाही के कारण मकान का किराया सरकार को देना पड़ेगा, अन्यथा सरकार जिलाधीश को अपने पास से उसका भुगतान करने का आदेश दें।

सरकार का उत्तर आया। उसका सारांश यह था: सरकार जिलाधीश से सहमत है कि मकान का एलाटमेंट करना न करना उनके क्षमता की बात है, जिला जज उसमें बाधा नहीं डाल सकते। पर इस मामले में सरकार यह आशा करती है कि जिलाधीश जिलाजज की इच्छा की कद्र करेंगे। और हाल ही में जो नये अतिरिक्त सैशन जज उस जिले में नियुक्त किये गये हैं उन्हें वह मकान, जिला जज की पूर्व सम्मति से, एलाट कर देंगे।

इसी के साथ मकान के दो महीने का किराया भुगतान करने के लिये विशेष अनुदान की मंजूरी भेज रही है।"

इस प्रकार शुम्भ निशुम्भ के खण्ड युद्ध की समाप्ति हुई। हँसकर गाली की बात से मुझे एक और को टाल जाना बड़ी ऊँची कला है। इन जिलाधीश के अतिरिक्त मैंने इनसे भी ऊँचा एक कलाकार देखा था।

मैं घर के लिए यात्रा कर रहा था। रातवाली गाड़ी के जिस फर्स्ट क्लास में मैं घुसा उसमें नीचे का एक बर्थ मेरे लिये आरक्षित था और दूसरे पर एक 'एयर फोर्स' (वायु सेना) का अफसर था। ऊपर की शायिका में से एक खाली था, और मेरे ऊपर वाले शायिका पर एक खद्दरपोश नेता थे। वे अभी नीचे मेरी शायिका पर समासीन थे।

मैंने चाय और टोस्ट का आर्डर दिया। उन्होंने केवल 'एक चाय' माँगी। 'एक चाय' का अर्थ 'एक पॉट चाय' समझा जाता है—एक प्याली नहीं। थोड़ी देर में बेयरा दोनों को ट्रे दे गया। वे बोले, "देखिये जनाब, मैं सिर्फ एक प्याली चाय पी रहा हूँ।" मेरी समझ में नहीं आया कि मुझसे क्या मतलब वह कितना खा रहे हैं, या क्या पी रहे हैं ? मैं चुप रहा।

जब बेयरा वर्त्तन लेने आया तो मैंने उसका उचित मूल्य और दो आने और ट्रे पर रख दिये। उसने सलाम किया और वर्तन उठा लिया। इसके बाद उन सज्जन का बर्तन लेकर नीचे उतरा। नेताजी ने झटपट कमरे का दरवाजा बन्द किया और फिर खिड़की से दुअन्नी उसके ट्रे में डाल दी। वह चौंका, "यह क्या है सरकार ?"

—"क्यों ठीक तो है" निर्विकार भाव से बोले नेताजी ! वह बोला, "एक पॉट चाय की कीमत छः आने है साब !"

—"होगी—तुम पीपा भर के चाय लाते तो कीमत पचास रुपये होते, पर पी तो है मैंने सिर्फ एक प्याली। उसके दो आने दे दिये।

—"बाकी चाय मैं क्या करूँगा ?" असहाय बेयरा ने पूछा।

—"जो जी चाहे करो—मैं क्या बताऊँ ? इनसे पूछो कि मैंने सिर्फ एक प्याली ही चाय पी है ?" अब समझा चाय पीते समय उन्होंने जान पहिचान न होते हुए भी क्यों मेरा ध्यान अपनी चाय की ओर दिलाया था।

—"हुजूर ! मैं गरीब आदमी हूँ—मर जाऊँगा। बाल-बच्चे मरेंगे। रहम कीजिये !"

—"ऐसा रहम करना शुरू कर दूँ तो मेरे बाल-बच्चे

कहाँ जायँगे ?" मृदु स्वर से प्रसन्न मुद्रा में बोले विधायक महोदय।

थोड़ी देर उस लंबे तड़ंगे बेयरा ने खुशामद की, गिड़गिड़ाया पर जब देखा गाड़ी चलने को है और ये पैसे नहीं देंगे तो उसने पुरानी परम्परावादी और रूढ़गत तथा ईजाद कर करके वैसी नई-नई गालियाँ इनको देनी आरंभ किया, जैसी गालियाँ सुनने से कदाचित् मुर्दा भी कफन छोड़कर उठ बैठता, पर हमारे सहयात्री का धैर्य हिमालय जैसा अचल था। समस्त गालियों का विष नीलकंठ की भाँति पीकर वे आत्म समाहित भाव से बैठे रहे। बोले "गालियों से क्या होता है! गालियाँ सुनने की तो हमें आदत पड़ गयी है। जब से जनसेवा का व्रत लिया है तब से गालियों को गले का हार बना लिया है!" बेयरा उनकी माँ. बहिन आदि से अपना काल्पनिक अवैध घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता हुआ चुनौती दे रहा था कि दरवाजा खोलकर नीचे आ जाओ तो नेतागी ठीक कर दूं? एकबार यह भी कहा (मेरी ओर अंगुलि संकेत करके) ये न बैठे होते तो "मै तेरे मुँह पर केतली की बाकी गर्म चाय दे मरता हरामी का बच्चा!"

मैं डरा, कहीं वह धमकी को कार्यान्वित न कर बैठे। मेरा बिस्तर खराब हो जायगा। मैंने झट चार आने पैसे उसकी ओर बढ़ाकर कहा, "अरे भाई! लो अपने पैसे, काहे को गालियाँ दे रहे हो!"

—"नहीं बाबूजी, आपसे क्यों लूंगा? लूंगा तो इस बेईमान के बच्चे से लूंगा।" डिब्बे के सामने एक भीड़ यह तमाशा देखने को इकट्ठी हो गयी थी। मैं संकोच से गड़ा जा रहा था कि लोग कहीं मुझे ही गालियों का लक्ष्य न समझ ले! उसी नगर में अफसर रहने के कारण वहाँ के कितने ही लोग मुझे पहिचानते थे। खैर, गाड़ी सीटी देकर चल दी तो एक बार दुगने गुस्से से खानसामा बरस पड़ा, और हाथ पाँव का अश्लील संचालन करते हुए अन्तिम गालियों को उसने अपने लक्ष्य पर मानो फेंक कर दे मारा।

गाड़ी चल दी। मैंने आराम की साँस ली। इतने ही में सहयात्री ने स्मित हँसी से कहा 'देखा आपने? और हमारे साथी इन्हें 'मेहनतकश इन्सान' और न जाने क्या-क्या कहते है, इनकी मजदूरी बढ़ाने के लिए आन्दोलन करते हैं! हमारे देश की उन्नति भला हो सकती है?

—"हरगिज नहीं" बोला सामने बैठा युवक सैनिक अफसर, अपना पाइप जलाता हुआ, 'आप जैसे लेजिसलेटर जिस अभागे देश की बागडोर सँभालेंगे उस देश का सर्वनाश होकर ही रहेगा।'

—"क्या कहा आपने? मालूम है कि मैं एम० एल० ए० हूँ? तुम्हें कोर्ट मार्शल करवा दूँगा।"

—"क्या?" वह तरुण अफसर उठ खड़ा हुआ, "देखो जी नेता, मैं बेयरा नहीं हूँ—और मैं डब्बे के बाहर भी नहीं—अन्दर हूँ। अभी एक चाँटा मारूंगा तो तुम्हारे दाँत खुलकर गिर पड़ेंगे और फिर दो लात मारकर गाड़ी से नीचे फेंक दूँगा।"

मैं शकित हुआ। हे भगवान्! आज किसका मुँह देख कर उठा था जो एक के बाद दूसरे संकट का सामना करना पड़ रहा है! इस बार जननायक ने बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। सीधे अपनी शायिका पर चढ़ गये, कुछ बोले नहीं। और तरुण सैनिक अपना पाइप सुलगा कर बड़े निश्चिन्त भाव से धूम्रपान करने लगा। किंतु नेता और सैनिक अफसर की एक दूसरी मुठभेड़ का भी मुझे अनुभव है जिसका अंत दुर्भाग्य से सुखान्तक नहीं हुआ।

आज़ादी के बाद सरकार का ख्याल हुआ कि सेना के लोगों में और सिविलसाइड वालों में संपर्क नहीं हैं, इसलिये एक दूसरे को अच्छी तरह से समझ नहीं पाते और दोनों में कभी-कभी ग़लतफहमियाँ हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त, परिवर्तित दशा में असैनिकों में सेना के प्रति सहानुभूति, और सेना में भी अपने असैनिक भाइयों के प्रति प्रेम उत्पन्न करना भी बड़ा आवश्यक है। इसलिए आदेश आया कि समय-समय होने वाले अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमादि में एक दूसरे को निमंत्रित किया करें। इसी आदेश के अनुसार एक नगर के (जिसमें सेना रहती थी) स्थानीय कर्नल ने अपने यहाँ व्यायाम, खेल-कूद तथा परेड के आयोजन में स्थानीय सिविल अफसरों और नगर के विशिष्ट व्यक्तियों को, जिनमें जिला-परिषद् और नगर पालिका के अध्यक्ष, स्थानीय विधायक भी थे आमन्त्रित किया।

कन्टूनमेंट में आयोजन था। वहाँ एक जगह साइकिल रखने का प्रबन्ध था, और कई सन्तरी उन साइकिलों को वहाँ रोक कर सुरक्षित ढंग से रखने के लिये नियुक्त थे, हम लोग अन्दर गये और अभी साइकिल रख ही रहे थे

कि जिला-परिषद् के अध्यक्षजी घुसे। वे साइकिल लिये थे। आजकल की तरह हर एक पदाधिकारी तब जीप देकर अकर्मण्य नहीं, बनाया गया था, सन्तरी ने उसे नम्रभाव से साइकिल रखने का अनुरोध किया, पर अपने को डिप्टी सिप्टी से ऊपर सिद्ध करने की गरज से वे साइकिल पर सवार आगे बढ़ चले। पर मिलिटरी का कायदा ही और होता है। वहाँ आदेश आदेश होता है। वहाँ उसके उल्लंघन करने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर हमारे नेता का ख्याल था कि चूँकि उन दिनों रक्षा विभाग के, मंत्रालय के एक विशिष्ट अधिकारी उनके मित्रों में थे, इसलिए उनका अधिकार सामान्य डिप्टियों आदि से उस जगह अधिक था। उस सन्तरी ने उन्हें रोक लिया, और कहा, 'सरकार, आपकी साइकिल मैं हिफाजत से रख दूँ वर्ना उसके खो जाने का डर हैं!" विरक्त नेता ने कड़ुए स्वर में कहा "तुम जानते हो कि मैं इसी साइकिल पर तुम्हारे कर्नल के पलंग-कमरे तक जा सकता हूँ।"

—"जी नहीं" दृढ़ स्वर में बोला सन्तरी, "आफिसर कमांडिंग साहब का सन्तरी आपको पलंग-कमरे से फर्लाङ्ग भर पर ही रोक देगा!"

तकरार व चिल्लाहट से आकृष्ट होकर एक मेजर वहाँ आ पहुँचा और बात सुनकर उसने बड़े विनम्र स्वर में कहा "श्रीमानजी! आप लोगों की सहूलियत के लिए ही यह प्रबन्ध किया गया है ताकि साइकिलें चोरी न चली जायँ!"

—"क्या पल्टन वाले साले चोर हैं?" नेता बोले।

— 'चोर साले पल्टन में भी हैं, बाहर भी" मुस्करा कर मेजर ने उस बदतमीजी को मजाक में टालना चाहा, पर आजादी के थोड़े ही दिनों बाद जननायक, विशेष कर सुरक्षा मंत्रालय के एक विशिष्ट अधिकारी के मित्र भला कहाँ माननेवाले थे! उन्होने मेजर को गालियाँ दीं और बोले, "अशोक स्तम्भ कँधे पर धरे फिरता है! उसे नुचवा कर जूते के नीचे रौदूँगा और तुझे देख लूँगा—"

अभी वाक्य समाप्त भी नही हुआ था कि एक "भयंकर और जोर का शब्द हुआ—प्रबल तमाचे के आघात से नेता को धराशायी करके मेजर ने स-बूट पाद प्रहार से उन स्फीतोदार नेता का ऐसा सत्कार किया कि वे संज्ञा-शून्य हो गये।

लोग दौड़ पड़े। मेजर ने कहा, "जिस अशोक स्तम्भ-के सम्मान की रक्षा के लिये जान देने की शपथ हमने ली है, उसे पाँव तले रौंदने की धमकी सुनकर भी यदि मैं निष्क्रिय रहता तो मैं इस 'फोर्स' के सर्वथा अयोग्य था।"

किन्तु उनकी काफी मरम्मत हो गयी थी, और यह भी सर्वविदित था कि रक्षा-मन्त्रालय के उन वरिष्ठ अधिकारी से उन नेता का गहरा परिचय है। अतएव मेजर का कोर्टमार्शल होना अनिवार्य था। वह हुआ। कोर्ट मार्शल ने उस मेजर को निर्दोष घोषित कर दिया।

—एक सदस्य ने संसद में इस संबंध में प्रश्न किया क्योंकि सेना केन्द्रीय सरकार के अधीन है। उस पर वहाँ सुरक्षा मन्त्री महोदय ने अपने विभाग के अफसर के काम के लिए खेद प्रगट किया। संवाद-पत्रों में यह संवाद आया भी। तेजस्वी मेजर साहब ने तुरन्त ही सुरक्षा-मन्त्रालय को लिखा—उसने ऐसा कोई काम नहीं किया हैं जिसकी वजह से उसके विभागीय मन्त्री को खेद प्रगट करना पड़े, और फिर कोर्ट मार्शल में दोषमुक्त अफसर के काम के लिये खेद प्रगट करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है! पर अभी हमारे देश में इतना ऊँचा मानदंड कहाँ!

संसद में सुरक्षा-मंत्री द्वारा उसके काम के लिए खेद प्रकट करने से स्वाभिमानी मेजर के स्वाभिमान को बड़ी ठेस लगी। उसने विरक्त और दुखी होकर त्याग-पत्र दे दिया जो तुरन्त स्वीकार कर लिया गया। मुझे नहो मालूम कि वे मेजर अब कहाँ है, और क्या कर रहे हैं, किन्तु वे जहाँ कही भी हों मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अशोक-स्तंभ के सम्मान में उन्होंने जो तेजस्विता दिखायी और जो त्याग किया। उसके लिए उनके देशवासी—विशेषकर वे लोग जो इस घटना के जानकार है तथा उस नगर की आम जनता—उनका आदर और सम्मान करती हैं तथा उन्होंने उनके काम को किसी भी प्रकार निन्दनीय नहीं समझा।

यह परिवर्तन क्यों ?

मूल कथा—तमिल — सुश्री आर० चूडामणि

अनुवाद — श्रीमती वी० पद्मासिनी

मदरास से रवाना होते ही वृद्ध मित्र ने गंगाधर से कहा था :

"मैंने कभी यह सोचा तक नहीं कि तुम्हारे पिताजी इतने बदल जायेंगे। दुबारा विवाह करने में न जाने क्या जादू है कि मनुष्य की बुद्धि ही फिर जाती है ! जब देखो नवेली पत्नी की ही स्तुति ! 'रमा ! तुम बैठ जाओ', 'रमा, इतना परिश्रम मत करो', 'रमा, तुमने पेट भर खाया कि नहीं ?' यही 'रमा' की रट ! क्या तुम्हारी माँ के जीवन-काल में ऐसा कभी हुआ था ? वह कैसे रहीं, अपना जीवन किस तरह बिताया, इसका पता तक किसीको नहीं था। मुझे अब भी याद है गंगाधर ! उस ज़माने में जब तुम्हारे पिता जगदीश ऐय्यर केवल साधारण दंत-डाक्टर रहे, उस समय भी तुम्हारी माँ घोर दरिद्रता में कितनी खुशी से उनका साथ दिया करती थीं ! हूँ ! वह चल बसीं। ज़माना बदला, मदुरई शहर में एक सरकारी दंत-क्लिनिक खोला गया, जिसके तुम्हारे पिताजी, प्रमुख डाक्टर नियुक्त किये गये। भाग्य खुल गया और अच्छे दिन आये। तभी आ गयी, कहीं से यह गरीब औरत उनके घनी जीवन का सुख भोगने के लिए।"

गंगाधर मदुरई जाना ही नहीं चाहता था। मित्रों की सहायता से उसने मदरास में ही कानून पढ़ा, और अब वहीं वकालत कर रहा था। चौबीस साल का युवक। भविष्य बहुत होनहार। उसकी छोटी बहन वसुमती भी मदरास में ही पढ़ रही थी। स्कूल की पढ़ाई पूरी करके वह मदुरई गयी थी। लेकिन जब पिछले साल उसके पिताजी ने दूसरी बार विवाह कर लिया, तो गंगाधर ने यह इच्छा प्रकट करके कि वह अपनी बहन को मदरास में अपने साथ रखना चाहता है, वसुमती को ले आया था। फिर दोनों पिता के पास बहुत दिनों गये ही नहीं। लेकिन पिताजी तो बार-बार लिख रहे थे 'बेटे गंगाधर ! तुम दोनों को देखने को जी बहुत चाहता है। यदि हो सके तो दस दिन की छुट्टी लेकर वसुमती के साथ एक बार मदुरई आ जाओ। गंगाधर ऐसे निमन्त्रण को कितनी बार टालता ? लेकिन वसुमती ने तो जाने से साफ़ इनकार कर दिया था।

"तो क्या तुम यही समझती हो कि मैं सौतेली माँ को देखना चाहता हूँ ? पगली ! लेकिन पिताजी तो वहाँ हैं, और उनकी खातिर हमें मदुरई जाना ही पड़ेगा। तुम चिन्ता मत करो वसु ! हम चार ही दिनों में लौट आयेंगे।" ऐसी सान्त्वना देकर ही गंगाधर वसुमती को लिए मदुरई आया था।

× × ×

"रमा, तुम जाकर थोड़ी देर आराम करो। सवेरे से तुम काम करती रही हो। थक गयी होगी। जब जगदीश ऐय्यर ने पत्नी से मृदु स्वर में यह कहा तो गंगाधर को बड़ी हँसी आ गयी। घर में जो पुरानी मेजें और तख्त पड़े हुए थे इनको लेकर बढ़ई एक नयी आलमारी बना रहा था। यह काम घर के पिछवाड़े में हो रहा था। रमा उधर जाकर दो एक बार निरीक्षण कर आयी थी। बस, उसी 'काम' के लिए पिताजी उससे आराम करने का इतना आग्रह कर रहे है !

"चित्ती ! (सौतेली माँ) थोड़ी देर के लिए क्या, आप जाकर दो घंटे आराम कीजिए" गंगाधर बोला।

रमा ने गंगाधर को एक क्षण देखा। उसका मुख हमेशा की तरह अपना अर्ध-विकसित मंद हास लिए खिला हुआ था। क्या उसने गंगाधर का व्यंग्य ताड़ लिया था ?

"थकी तो नही हूँ.........यहाँ ही बैठ जाऊँ ?" अधीर दृष्टि से रमा ने पिता-पुत्र को देखते हुए पूछा।

"आपके घर में आपको अनुमति देनेवाले हम कौन होते हैं चित्ती ?" गंगाधर बोला। बगल में बैठी वसुमती ने एक बार रमा को अपनी विष भरी आँखों से घूर कर देखा और सिर झुका लिया।

"यह लो, इस आराम-कुर्सी पर बैठ जाओ" कहते हुए ऐय्यर ने आराम-कुर्सी से उठकर उसे रमा की ओर सरका दिया।

"मेरे लिए.........आप.........आप क्यों उठते हैं ? रमा विचलित होकर हकलाने लगी।

"कोई बात नहीं। तुम बैठो रमा।"

रमा ने सहमते हुए चारों ओर देखा, फिर आराम-

कुर्सी पर बैठ गयी। उसके हाथ धीरे-धीरे काँप रहे थे। उसने अपने दायें हाथ से बायें कलाई को थाम लिया।

"क्यों रमा, चूड़ियों का यह डिज़ाइन क्या हाथ में चुभता है ?" जगदीश ऐय्यर ने स्नेह से पूछा।

"नहीं तो !" भय-मिश्रित हँसी के साथ उत्तर आया। उन चिकनी नयी चूड़ियों को गंगाधर ने देखा।

सोने की चूड़ियाँ ! और माँ कलई की चूड़ियाँ पहनती थीं !

माता की जगह पर यह दूसरी स्त्री पिताजी की जीवन साथिन ! इस विचार से भाई बहन दोनों ही मन ही मन ईर्ष्या से जलने लगे।

"अगर चुभती हों तो बताओ, कोई मुलायम डिज़ाइन की चूड़ियाँ बनवा दूँ", जगदीश ऐय्यर अपनी धुन रटते गये।

"जी नहीं। ये कहाँ चुभती हैं ?"

ऐय्यर बोलते गये—"उस दिन मैंने कुछ रेशमी साड़ियाँ घर भिजवायी थीं। उनमें से तुम्हें कोई पसन्द आयी रमा ?"

रमा झेंपते हुए बोली, "वसुमती ने उन्हें नहीं देखा है। उसे भी एक खरीद लें।"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं ? लेकिन पहले यह तो बताओ कि तुमने कौन सी साड़ी पसन्द की है ? जहाँ तक मुझे याद है तुम्हें एक हरे रंगवाली साड़ी पसन्द आयी थी।"

"हाँ ! लेकिन एक और साड़ी भी सुन्दर है। पीले रंग की।"

"अच्छा !"

"आपको जो बेहतर लगे उसी को मैं ले लूँगी।"

"साड़ी के बारे में मैं क्या जानूँ ? तुम्हें जो पसन्द आवे ले लो। तुम्हारा चुनाव मुझे भी अच्छा लगेगा।

"यह मैं निश्चय नहीं कर पाती।"

"तब तो दोनों ही ले लो।"

"जी·······नहीं तो।"

जगदीश ऐय्यर उसे देखकर इस तरह मुस्कराये मानों वे पत्नी की अधीरता को शांत करना चाहते थे। पचास वर्ष के बूढ़े; और वैसा ही आकार ! बाल पूरे-पूरे पक गये थे। चेहरे में बाकी थे केवल चश्मे और दाँत ! यौवन में वे कितने सुन्दर और आकर्षक लगते थे। किन्तु अब ? और इसी अवस्था में सौत का मोह ! गंगाधर असह्य वेदना से तड़प उठा। "पिताजी ! मैं थोड़ी देर बाहर घूमने जाना चाहता हूँ" वह झट बोला।

"कॉफी पीके जाना" कहते हुए रमा उठकर अन्दर चलने लगी।

"आओ बेटे, हम सब मिलकर कहीं बाहर चलें। क्या तुम दोनों अपने बाबूजी के साथ कुछ समय नहीं बिताओगे ?" पूछते हुए जगदीश ऐय्यर ने बेटे-बेटी को अत्यन्त वात्सल्य से देखा।

अब तक निर्जीव सी पड़ी रही वसुमती नये उत्साह से बोल उठी, "अच्छा पिताजी हम मीनाक्षी-मंदिर जाकर देवी के दर्शन करें।"

"हाँ, वैसा ही करेंगे बेटी। क्यों बेटा, तुम क्या कहते हो ?"

"आपकी जैसी मर्जी पिताजी।"

इतने में रमा कॉफी के प्यालो को एक तश्तरी में लिये आई। और बोली—"रसोइया दूसरे काम में लगा हुआ था। इसलिए मैंने खुद काफी बना ली।"

एक घूंट काफी पीकर जगदीश ऐय्यर ने रमा को देखा और बोले' "काफी बहुत अच्छी बनाई है।"

भाई-बहन दोनों ही को यह प्रशंसा अत्यन्त अनावश्यक लगी।

"रमा ! हम लोग बाहर जा रहे हैं। तुम भी चलोगी ?"

"हाँ जरूर ! अब शहर में अभिनेत्री जलजा का एक फिल्म चल रहा है। मुझे उसे देखने की इच्छा बहुत दिनों से है। हम उसी को देखने चलें ? तुम क्या कहती हो वसुमती ?"

"मैंने उसे, पहले ही मदरास में देख लिया है। आज मन्दिर ही जाना चाहती हूँ।"

"अच्छा, अगर यही तेरी इच्छा है तो हम मन्दिर ही चलेंगे। आखिर मदुरई का मीनाक्षी-मन्दिर तो जगत प्रसिद्ध है।" रमा सौजन्य भाव से मुस्कुराई।

कॉफी पीकर ऐय्यर उठे।

"सब जल्दी तैयार हो जाओ।"

"पिता जी, मैं रेशमी साड़ी पहनकर अभी आई।"

"जल्दी करो। पन्द्रह मिनट में सिनेमा शुरू हो जायगा।"

"सिनेमा ?"

तीनों ही चौंक पड़े।

"हाँ वही, जलजावाला सिनेमा।"

"मैंने तो कह दिया न पिताजी कि मैं उसे पहले ही देख चुकी हूँ। आज मन्दिर ही चलें।"

"मन्दिर कहीं भाग तो नहीं जायगा बिटिया," बेटी के बाल को लाड़ से सहलाते हुए वे आगे बोले, "आज सिनेमा ही सही।"

"नहीं जी ! आज मन्दिर ही हो आवें।" रमा के मुख में वेदना छा गयी। उसे रुलाई सी आ गयी।

ऐय्यर मुस्कुराये। "रमा, तुमने मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा कि तुम्हें यह सिनेमा देखने की लालसा है ?"

चोट खाये अभिमान से वसुमती ने सिर उठाकर देखा। उसकी आँखों में गुस्से के आंसू छलक आये।

सौत की छोटी से छोटी अभिलाषा को भी इस तरह सिर-आँखों पर लेकर पूरा करने की ऐसी कौन-सी आवश्यकता थी, यह गंगाधर की समझ में नहीं आया। उसे वह पहेली सी लगी। कुछ नहीं सूझा। और पिताजी का बर्ताव ऐसा लग रहा था मानों वे अपनी इस नवेली दूसरी पत्नी से मीठा वार्तालाप करने, तथा उस पर अपनी संपूर्ण संपत्ति न्योछावर करना अपना पवित्र कर्तव्य समझ रहे हों। और एक वह भी समय था जब""वह विषय गंगाधर के मस्तिष्क में इतना ताजा था मानो वह अभी कल ही, हुआ हो।"'एक बार मां एक साड़ी, केवल सूती साड़ी खरीदने निकली थीं। पिताजी ने भी उसके साथ हर दूकान जाकर कैसा हुल्लड़ मचाया था ! 'यह अच्छी नहीं है,' 'यह तुम्हें सुन्दर नहीं लगेगी,' 'यह नहीं चाहिए' ऐसे कितने ही आक्षेप करके माँ को लाचार कर दिया था।.... किन्तु आज की यह परिवर्तित परिस्थिति ? 'तुम्हें जो पसन्द आये ले लो,' 'दोनों ही को क्यों नहीं ले लेती ?' एक भी आक्षेप नहीं, बहस नहीं।"'लेकिन ये ही पिताजी माँ से छोटी-छोटी बात पर भी कैसे झगड़ते थे ! माँ से सम्बन्धित वह दूसरी घटना"'

उस वक्त गंगाधर छः साल का बालक था। इन लोगों का घर शहर की किसी तंग गली में था। पिताजी का वेतन पचहत्तर रुपये मासिक था, और इसी में, भाग्य के कभी खुल जाने की आशा लेकर कुटुम्ब चल रहा था। ऐसी हालत में गृहस्थी दरिद्र न होकर और कैसी होगी ? तब वसुमती एक साल की मासूम बच्ची थी।

माँ बच्ची को गोद में लेकर शंख से दूध पिला रही थीं। घर के सामने गली में गंगाधर दूसरे बालकों के साथ गेंद खेल रहा था। लड़कों की शोरगुल से कान फटे जा रहे थे। माँ की नजर बार-बार अपने बेटे पर अधीरता से चली जाती थी क्योंकि गेंद तो पुराना था, मगर बाकी बालक भी गरीब थे। यदि उनमें से कोई गेंद छीनकर भाग जाय तो ? गेंद के खो जाने से उसे कोई विशेष आपत्ति नहीं थी, लेकिन उसके पति जगदीश ऐय्यर ऐसे छोड़नेवाले कहाँ थे ? उनकी नजर में वस्तुओं को खो देना भयंकर अपराध था। गेंद खो जाय तो गजब हो जायगा। माँ को यही आशंका सता रही थी।

बच्ची मुँह से दूध थूकने लगी।

"अरी, मुन्नी का छोटा सा पेट इतनी जल्दी भर गया ?" कहती हुई उसने अपनी हथेली बच्ची के नन्हें से पेट पर रखकर देखा। फिर बच्ची को दुलारते हुए लोरियाँ गाने लगी।

"माजी !" दरवाजे के बाहर एक भिखारी बालक खड़ा दीख पड़ा; "एक पैसा दीजिए माजी…"

"जा जा, यहाँ देने के लिए कुछ नहीं है। इधर जीवद लड़खड़ा रहा है तुझे दूँगी क्या ?"

"एक कौर भात दीजिए अम्माजी !"

"कुछ नहीं है भाग जा।"

"एक पैसा तो सही…।"

"जा जा। मैं कहती हूँ तू चला जा।"

"माजी, कुछ न कुछ दीजिए, आपके बाल-बच्चों का भला होगा।"

माँ झट उठी। बच्ची को जमीन पर लिटाकर पैसा लाने अन्दर गई।

जब वह बाहर आई तो भिखारी बालक को वहाँ न पाकर वह लौटी।

हाय राम ! दूध पिलाने वाला वह शंख कहाँ चला गया ?" माँ ने घर के कोने-कोने को छान डाला। किन्तु शंख का पता कहीं नहीं लगा। जो भिखारी बालक बच्चों की दुहाई देते हुए आया था उसके पास शंख कभी का शरण पा चुका था ! माँ भय के मारे थर-थर काँपने लगी। घर लौटकर जब जगदीश ऐय्यर ने खबर सुनी तो वे रुद्रमूर्ति बन गये। चिल्लाये "तेरी ऐसी असावधानी ! तुम्हारे रहते ऐसा अनर्थ ! ऐसे घर की भलाई भी होगी

कभी ? कम्बख्त ! उड़ाऊ ! मेरी बला ! कहती हो अपने को प्रौढ़ स्त्री, और तेरे देखते-देखते ऐसी हानि ?"

"मैं ··मैं क्या करूँ ?"

"क्या करोगी ? जाके उस दीवार पर सिर दे मारो और बार-बार रटो 'मुझे बुद्धि नहीं है, बुद्धि नहीं है'।"

"हाँ बुद्धि तो नहीं है, मैं मानती हूँ। मगर उसे कहने से क्या लाभ ?"

"लाभ ?" तुम्हारे हाथ लगने से लाभ कहाँ से होगा ?

"पैसा लाने के लिए मैं जरा अन्दर गयी थी। बस एक ही क्षण के लिए।"

"तुम इस घर की मालकिन हो, सबकी जिम्मेदार हो। इस गृहस्थी को सँभालने में मेरी सहायता करनेवाली हो। मगर होता क्या ? खाती हो धोखा हर एक के हाथ से मूर्ख, पगली ! कौन सहेगा ऐसी मूर्खता ?"

तीन दिन तक उनका गुस्सा बुझा नहीं। और उस दिन उन्होंने कुछ खाया नहीं, खाने से साफ इन्कार कर दिया। माँ ने भी अनशन किया। किन्तु भूख से भी ज्यादा उसे यही चिंता खल रही थी कि पति का कोप कब शांत होगा। इधर भूख बढ़ी तो उधर ऐय्यर का कोप बढ़ता गया। वे आँखें मूँदे बरतनों को चारों ओर फेंकने लगे। पत्नी के गाल पर एक तमाचा भी मार दिया और उठकर धड़ाधड़ बाहर निकल पड़े। जब वे रात तक घर न लौटे तो माँ बिलकुल घबड़ा गयी। उसे कुछ नहीं सूझा। बच्चों को पड़ोसिन के पास छोड़कर वह रोती हुई सड़क पर उतरी और पागल सी पति को ढूँढ़ने लगी। जब अन्त में ऐय्यर घर लौटे, तो उन्होंने पत्नी के इस व्यवहार पर नये सिरे से गालियाँ सुनायी।····वह था एक जमाना। लेकिन अब ? नवेली पत्नी की सुविधा और आराम का सदा सर्वदा विचार; उसे देखते ही आँखों में असाधारण कोमलता।

'बेवकूफों का राजा होता है बूढ़ा बेवकूफ।' यह उक्ति कितनी सच है ?

गंगाधर ने मन में तय कर लिया कि वह कल ही यहाँ से रवाना हो जायगा। फिर वह सोने की तैयारियाँ करने लगा। कुछ फासले पर वसुमती के बिसूरने की आवाज सुनायी पड़ी।

"रोओ मत वसु।"

"आखिर पिताजी को अपनी पत्नी की इच्छा ही तो प्रधान लगी।"

"युवती पत्नी, तिस पर खूबसूरत !"

"पिताजी दंत-वैद्य थोड़े ही हैं। ये दूसरों के दाँत निकालने का काम क्या करेंगे ? स्वयं इनके दाँत निकाले जा रहे हैं प्यारी पत्नी से।"

अन्त में किसी प्रकार वसुमती सो गयी।

× × ×

"रमा, तुमने पेट भर खाया ?" स्नेह भाव से पूछते हुए जगदीश ऐय्यर ने पत्नी द्वारा बढ़ाई चाँदी की डिबिया से कुछ सुपारी लेकर मुँह में डाल ली।

"हाँ, खाया।" रमा के चेहरे पर उसी पुरानी मुस्कान की झलक। लेकिन क्या यह वास्तव में मुस्कान थी या रोना ?

"अच्छा, मै जाता हूँ। देखो रमा, तुम आराम करना। मैं शाम को जल्दी आने की कोशिश करूँगा।"

उनके चले जाने पर रमा ने डिबिया मेज पर रखी और अन्दर गयी। गंगाधर अपना हाथ पोंछकर तौलिये को खूँटी पर लटका रहा था।

"क्या आपको आज ही रात जाना है ?" रमा ने उससे पूछा।

गंगाधर ने उसकी ओर देखकर कहा, "यह 'आप' का सम्बोधन सुनकर मैं एक मिनट के लिए संदेह में पड़ गया। इस 'आप' का मतलब क्या है चित्ती ? शायद आप वसुमती और मुझे दोनों को मिलाकर कह रही थी।"

"हाँ, मैं·····मैं भी यही समझती हूँ।"

"समझती क्यों ? आपको इस मामले मे संदेह काहे का ? आप ही सोचिये मुझ अकेले के लिए यह 'आप' का प्रयोग लागू कैसे होगा ? मैं रिश्ते में ही नहीं, उमर में भी आपसे छोटा हूँ चित्ती।"

"फ़िर भी·····"रमा अनिश्चित भाव ने कुछ मिनटों तक सोचती रही। तब बोली "मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं आप सबों के साथ कैसा व्यवहार करूँ !"

"मुश्किल बात जरूर है, लेकिन पिताजी से कैसे व्यवहार करना यह तो आप खूब जानती है।"

पता नहीं कि रमा इस व्यंग्य को समझी कि नहीं वह बोली "क्या वसुमती मुझसे नाराज है ? वह तो दिल खोलकर बातें नहीं करती।"

"ऐसा कुछ नहीं है चित्ती ! होगी कोई छोटी सी बात पर········ ।"

"आपकी माँ कैसी थीं ?"

अचानक निकला यह अनमेल प्रश्न गंगाधर पर वज्रपात सा गिरा ।

"क्या ? मगर क्यों ?"

"अगर मैं उनकी तरह रह सकूँ तो सम्भव है कि आपके पिताजी ज्यादा पसन्द करेंगे ।"

न जाने क्यों, गंगाधर को अभी, पहली बार, रमा पर तरस आया ।

"अब भी आप पिताजी को कुछ कम पसन्द नहीं हैं चित्ती" यह कहते हुए उसके स्वर और हृदय में मित्रता की छाया दौड़ पड़ी ।

रमा ने गंगाधर को चिन्तित आँखों से देखा । उसकी फड़फड़ानेवाली आँखें मानों उससे कुछ प्रश्न करना चाहती थीं ।

"भैया, इधर आकर बताओ तुम्हारे कपड़े कौन-कौन से हैं, मैं उन्हें बक्से में रखना चाहती हूँ, कहते हुए वसुमती बाहर आई । वह रमा की ओर देखे बिना ही वापस कमरे में चली गयी । गंगाधर बहन के पीछे-पीछे हो लिया। रमा वहीं आराम कुर्सी पर बैठ गयी ।

"माजी !" पिछवाड़े दरवाजे पर एक लड़का दिखायी पड़ा ।

"कौन है तू ?"

"बढ़ई का छोकरा हूँ । वे एक पेंसिल माँगते हैं । घर से लाना भूल गये ।

"इसके पहले तुझे इधर कभी देखा नहीं ?"

"आज ही मुझे पहली बार यहाँ लाये हैं ।"

पिछवाड़े के आँगन के चारों ओर खस की टट्टियाँ लगी हुई थीं । उनसे बाहर खुले मैदान में, एक पेड़ की छाँह में, बेंत की ओट के पीछे बढ़ई काम कर रहा था । रंदा करने की आवाज घर के अन्दर स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी ।

"थोड़ा ठहर । मैं पेंसिल लेकर अभी आई ।

रमा उठकर कमरे में गयी । पेंसिल को ढूँढ़ निकालने में उसे लगभग दस मिनट लग गये । वापस आकर देखने पर लड़का वहाँ नहीं दिखायी पड़ा । खस के पर्दे को उठा कर उसने पुकारा "बढ़ई !"

"क्या माजी ?"

"उस लड़के को भेजकर पेंसिल मँगा लेना ।"

"कौन सा लड़का माजी ?"

"अरे वही जिसको तुमने भेजा था ।

"लेकिन माजी ! मैंने तो किसी को भेजा नहीं !"

सब कारीगर घबड़ाये उधर इकट्ठा हो गये । रमा चौंक पड़ी , थोड़ी देर में जब यह बात प्रकट हुई कि लड़के के साथ सुपारीवाली चाँदी की डिबिया भी लापता हो गयी है तो चारों ओर खलबली मच गयी ।

"हाय-हाय ! चीज चली गयी । उस चोर और लंपट ने धोखा दिया ।" रमा के मुख पर भीति छा गयी । उसका शरीर अचानक पसीज उठा । वह अपने हाथ मलने लगी ।

नौकरों के साथ बढ़ई और उसके सहायक कर्मचारी भी इधर उधर भागकर ढूँढ़ने लगे । बगीचे के कोने-कोने, झाड़ियों के पत्ते-पत्ते तलाश किये गये । गंगाधर ने भी बाहर जाकर पड़ोसियों से लड़के का पता लगाने की कोशिश की । किन्तु नतीजा ? दो घंटे का व्यर्थ परिश्रम ।

"इसके पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था ।" रमा घबड़ाहट से बोली । पास में, दीवार के सहारे खड़ी वसुमती की आंखें संतोष और तृप्ति से उस पर पड़ी हुई थीं । चित्ती ! ऐसी गलती हर घर में हुआ करती है उसने कहा ।

"हाँ, वह भी सही है ।" रमा इसमें थोड़ी सी सान्त्वना पाकर दीनता से हँसी ।

"पिताजी स्वभाव के बहुत सरल हैं । लेकिन चीजों को खोना वे कभी माफ नहीं करते" वसुमती ने धीरे से बाण छोड़ा । रमा का मुँह विवर्ण हो गया ।

"हाय, तब मैं क्या करूँ ?

वसुमती मौन रही ।

"मैं········मैं मानती हूँ कि मेरी असावधानी के कारण ही डिबिया की चोरी हुई । लेकिन मैं क्या जानती थी कि दुनिया में ऐसा अन्याय भी हुआ करता है ।"

'खूब ! क्या कमाल ! ऐसी भी क्या बात है जो आप नहीं जानतीं !" भय से विस्फारित रमा की आँखें भाई बहन के ऊपर बार-बार पड़ रही थीं ।

'मैं जितनी जल्दी हो सके लौट आई । पेंसिल मेज के खाने में नहीं थी । मैंने उसे भूल से कहीं और रख दिया था

इसलिए ढूँढ़ना पड़ा ।" वह स्पष्टीकरण देती गई । उसके अधर फड़फड़ाने लगे ।

गंगाधर ने बहन को गुस्से से देखा । रमा का पतन उसे भी न्याय ही लगा । लेकिन नीचे गिरे हुओं को मारने की आवश्यकता क्या थी ?

"छोड़िए चित्ती !"

"क्या तुम्हारे पिताजी बहुत नाराज होंगे ? बताओ न ? चुप क्यों हो दोनों ?......मैंने जानबूझकर तो उसे नहीं खोया । उस लड़के को तुम किसीने नहीं देखा । कितना भोला-भाला दीखता था ।" रमा हताश होकर कुर्सी पर गिर पड़ी और उसने अपने हाथों से अपना मुँह ढक लिया ।

वसुमती मुस्करायी ।

"उस डिबिया की कीमत कितनी होगी ? पुलिस में खबर देने में क्या वह मिलेगी ?" आँखों में याचना लिये रमा ने पूछा ।

"हम कुछ न कुछ करेंगे । आप चिन्ता मत कीजिए चित्ती ।" गंगाधर ने ढाढ़स बँधाया ।

"क्या वे बहुत चिढ़ेंगे ? हाय ! मैं क्या करूँ ? अब क्या होगा ?"

वसुमती का दिल जीत की भावना से उभर आया । क्या माँ को पिताजी के कोप के लिए डरने तक की स्वतंत्रता थी ? बेचारी, पति के अत्याचारों को चुपचाप सह लेती थीं । मगर यह ?......प्यारी सौत, आज रो रही है ! न जाने क्यों, वसुमती के मन में यह विश्वास उठा कि यदि पिताजी सौत को डाँटेंगे तो माँ पर किया अन्याय कुछ कम हो जायगा ।

जब जगदीश ऐय्यर घर लौटे तो रमा की चंचलता बढ़ी । भाई-बहन दोनों ने उत्सुकता से बगीचे में झाँका ।

रमा पिछवाड़े के बाग के काँटेदार घेरे के पास ऐसी छिपकर खड़ी थी मानों वह मानव-दर्शन से ही डर रही हो ।

"रमा, उधर अकेली क्यों खड़ी हो ? तबियत ठीक तो है न ?" जगदीश ऐय्यर ने स्नेह से पूछा और आँखों में कोमलता लिये उसके पास गये ।

वसुमती सब कुछ देख रही थी । उसने रमा को अपनी कातर दृष्टि पति की ओर उठाते हुए देखा । उसने यह भी देखा कि अधीरता के कारण रमा के काँपते हाथ इधर-उधर फटक रहे हैं, और बात करते हुए उसके अधर हिल रहे हैं ।

"अब आरम्भ होगा तमाशा ! पिताजी अब गुस्से से पागल होकर गरजते हुए रमा पर गालियों की बौछार करेंगे ।" बड़ी दिलचस्पी के साथ वसुमती इसकी प्रतीक्षा करने लगी । लेकिन......जगदीश ऐय्यर के मुख पर रत्ती भर भी परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ा । वही मंद हास ! उनकी बातचीत वसुमती तक स्पष्ट सुनायी पड़ी । "पगली कहीं की ! डिबिया खो गयी तो खो जाने दो । क्या इसी लिए इतनी बेचैन हो रही हो ?" उन्होंने रमा के सिर को सहलाया ।

वसुमती की आँखों से कोपाग्नि की चिनगारियाँ फूट पड़ीं । "कैसा अन्याय ! माँ से यह किस बात में उत्कृष्ट है, जो पिताजी अम्मा से गुस्सा कर सकते थे, मगर सौत से नहीं ? भैया ! ऐसी निर्दयता !"

"वसुमती ! चित्ती को देने के लिए पिताजी के पास गुस्सा भी नहीं है !"

गंगाधर के मुँह से आश्चर्य के साथ निकले इन शब्दों को सुनकर वसुमती ने तुरन्त उसे देखा ।

बाग में खड़े उन वृद्ध और उनके पास की उस युवती को गंगाधर देर तक अपलक देखता रहा । माँ के स्थान को यह छीन ले । असंभव ! पिताजी में जो श्रेष्ठ था, चरम था, उनका पूरा अनुभव करके माँ चल बसी थीं । वह उनकी सहधर्मिणी थी, सम और बराबर थीं । वहाँ पारस्परिक प्रेम प्रकृतया पनप सकता था, उस प्रेम में तीव्रता थी । प्रेम की इसी तीव्रता के कारण माँ को पिताजी के कोप-ताप, वाद-प्रतिवाद, टीका-टिप्पणी सब कुछ भी मिले थे । लेकिन इस दूसरी स्त्री को क्या पुरस्कार मिला ?......हाय दुर्भाग्य ! पिताजी ने अपने सौंदर्य और यौवन से पहली को जो दिया, उसे अब केवल धन और दया से दूसरी को देने की कोशिश कर रहे थे । जिस अमूल्य वस्तु को देने में वे अब असमर्थ थे, इस कमी की पूर्ति कर रहे थे स्नेह, सहानुभूति और करुणा से !...... गंगाधर पत्थर बनकर गड़ सा गया ।

तो क्या रमा भी इस सत्य को कुछ-कुछ ताड़ गयी थी, और इसी को गंगाधर से सूचित करने का उसने प्रयत्न किया था ? हाय बेचारी !......लेकिन जब वह पति के साथ अंदर घुसी उसका चेहरा सदा की तरह विकसित दीख पड़ा ।

"गंगाधर ! क्या वसुमती और तुम यहाँ और दस दिन नहीं ठहर सकते ?" पूछते हुए रमा सौजन्य भाव से गंगाधर से बातें करने लगी ।

कुपित वसुमती के मुख से शब्द ही नहीं निकले । किन्तु गंगाधर ने मुस्काते हुए उत्तर दिया "क्यों नहीं चित्ती ! हम जरूर ठहरेंगे ।"

"रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृतित्व और व्यक्तित्व", (जीवनी) लेखक श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक भारत सरकार, सूचना और प्रसारण मंत्रालय। पृष्ठ संख्या १३१, मूल्य रु० २ २५ पै०।

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र बँगला भाषा और साहित्य के ज्ञाता एवं हिन्दी के विख्यात वयोवृद्ध लेखक हैं। इस पुस्तक में विश्वकवि के प्रशस्त जीवन और उनके विपुल कृतित्व को सक्षेप में निरूपित करने में विद्वान् लेखक ने शैली की कुशलता एवं सारग्राहिणी क्षमता का पूर्ण परिचय दिया है। यद्यपि अत्यधिक सामग्री में से कम से कम तथ्य छाँटने के प्रयास में विवेचनात्मकता से अधिक इतिवृत्तात्मकता का उत्थान हुआ है; फिर भी कवि के काव्य में प्रयुक्त शब्दावली, और यत्रतत्र मौलिक बँगला की उनकी कविताओं की पंक्तियों के प्रयोग द्वारा इतिवृत्तात्मकता के सूखेपन का पर्याप्त परिहार हुआ है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें हमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्बन्ध में कितनी ही सामान्य किन्तु नई बातें ज्ञात होती है जिनके कारण हमारे सामने उनके व्यक्तित्व का एक स्पष्ट और यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत होता है। उदाहरणार्थ :—

१—"अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ के वह चौदहवीं सन्तान थे।" (पृष्ठ ५)

२—"१४ अप्रैल १९४१ को शान्तिनिकेतन में कवि की ८०वीं वर्षगाँठ मनाई गयी। ३० जुलाई को कलकत्ता में कवि के "वासभवन" पर उनकी शल्य-चिकित्सा हुई। वृहस्पतिवार ७ अगस्त को दिन में १२ बजे ८१ वर्ष की अवस्था में कवि की अविनश्वर आत्मा ने महाप्रयाण किया।" (पृष्ठ २५)

३—"रवीन्द्रनाथ एक साथ ही कवि, नाट्यकार, कथा-साहित्यकार, एवं समालोचना, दर्शन, इतिहास, विज्ञान एवं धर्मतत्त्व व्यख्याता, चित्रशिल्पी, विद्याव्रती, समाजसुधारक, राष्ट्रीयतावादी एवं विश्वप्रेमिक थे।" (पृष्ठ २७)

४—"शब्दों का रंगीन जाल बुनना, कल्पना के पख लगाकर आकाश में विचरण करना, भाव विलासी बनकर मानसिक आनन्द प्राप्त करना उनके कवि जीवन का लक्ष्य नहीं था। वह जीवन की उन्नततर प्रेरणा, तपस्या एवं विचित्र साधना द्वारा अपनी वाणी को नित्य गतिशील बनाने के प्रयास में दत्तचित्त रहते थे। (पृष्ठ ३१)

५—"नोवेल पुरस्कार प्राप्त करने के पूर्व रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा को अपने देशवासियों से जो स्वीकृति एवं सम्मान मिलना चाहिये था वह नहीं मिला था। १३ नवम्बर १९१३ को नोवेल पुरस्कार प्राप्त होने का शुभ समाचार प्रकाशित हुआ। इसके दस दिनों के बाद २३ नवम्बर को कलकत्ता से स्पेशल ट्रेन के द्वारा पाँच सौ विशिष्ट स्त्री-पुरुष कवि का अभिनन्दन करने के लिए शांति निकेतन आये। कवि ने अपने भाषण में कहा था :—

"आज पश्चिम ने मेरी शक्ति को स्वीकार किया है इसलिए वे (हमारे देशवासी) उत्फुल्ल हो रहे हैं। अतः सम्मान का जो प्याला वे लाये हैं उसे होठों तक ही ग्रहण कर रहा हूँ, उसे पान करने में असमर्थ हूँ।" (पृष्ठ ७४)

यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ में "भूमिका", या वक्तव्य कुछ भी न होने से यह ज्ञात नहीं होता कि ग्रन्थ मौलिक है अथवा किसी बँगला ग्रन्थ का अनुवाद है, फिर भी यह बात निश्चय के साथ कही जा सकती है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्बन्ध में इतने कम पृष्ठों में इतनी अधिक सुव्यवस्थित जानकारी देनेवाली यह हिन्दी में एक अद्वितीय पुस्तक है।

रा० ना० पां०

कुछ उथले कुछ गहरे (ललित निबन्ध-संग्रह)—लेखक डाक्टर इन्द्रनाथ मदान, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या १३९, मूल्य रु० ३·००। पुस्तक के वेठन में मुद्रित विज्ञप्ति के अनुसार यह डाक्टर इन्द्रनाथ मदान के पुरजोर लेखों का सग्रह है जिनमें डाक्टर मदान ने यदि किसीका मजाक उड़ाया है तो केवल अपना। "कुछ उथले : कुछ गहरे" डाक्टर इन्द्रनाथ के ऐसे ३४ चुटकुले-निबन्धों का संग्रह हैं जिनका आकार मुद्रण में तीन-साढ़े तीन पृष्ठों से अधिक नहीं है किन्तु देखने में केवल उथले उतरनेवाले ये निबन्ध "सतसैया के दोहरे घाव करें गंभीर" जैसे गहरे उतरनेवाले हैं। यह बात नहीं हैं कि इन ३४ निबन्धों में से कुछ तो उथले हैं और बाकी गहरे हैं। वास्तव में प्रत्येक निबन्ध में जहाँ उथलापन है वहीं गहराई भी है। संग्रह का सर्वप्रथम निबन्ध है "समस्याओं के घेरे में"। लेखक के शब्दों में "छोटी समस्या कभी बड़ी से अधिक परेशान कर देती है। आज तेल का न होना भगवान् के होने या न होने से अधिक हैरान कर डालता है, चावल का न मिलना मोक्ष के मिलने या न मिलने से अधिक तंग कर देता हैं "किन्तु इसके आगे ही लेखक गहरे में उतरता है और कहता है, "मध्ययुग में जब व्यक्ति मर जाता था तो यह कहा जाता था कि वह वास्तव में मरा नहीं है। उसकी अमर आत्मा ने नया चोला पहिन लिया है। लेकिन आज आत्मा अपना सूट नहीं बदल सकता। चोला ढीला था और सबके काम आ जाता था, लेकिन सूट यदि फिट न हो तो बेकार हो जाता है। यह विचार कितना खूबसूरत था कि जिन्दगी असली है और मौत

नकली। आज इस विचार का भी गला घोंट दिया गया है। आज मृत्यु को वास्तविक कहा जाता है।" इसी प्रकार "आवाजों के घेरे में" शीर्षक निवन्ध में एक ही वाक्य में लेखक 'उथले' और 'गहरे' दोनों का साथ ही साथ परिचय इस प्रकार देता है :—

"पुराना अखबार खरीदनेवाला, फल बेचनेवाला, जूता गाँठनेवाला, खाट बुननेवाला, कुलफी (कुफ़ली ?) वेचनेवाला अपनी-अपनी आवाज़ देता है; जिसको शब्दों से नहीं उसके लहजे से पहचानना होता है। फलवाला पुरानी आदत से मजबूर होकर इस मँहगी के जमाने में भी मुझे अमीर समझता है। उसका मुँह और अपनी इज्जत रखने के लिये कभी-कभी फल खरीदना पड़ता है। इसे खाता कम हूँ, सँभालकर अधिक रखता हूँ ताकि दोबारा आने पर कह सकूँ कि अभी यह मेरे पास है।"

भाषा के प्रयोग में भी लेखक 'उथले' और 'गहरे' की गंगा-जमुनी बहाने में काफी सफल हुआ है। उदाहरणार्थ :—"मैं सचमुच मरने से इतना नहीं डरता हूँ जितना बीमार पड़ने से घबराता हूँ। इसकी एक वजह तो यह है कि मौत एक बार आती है और बीमारी बार-बार" (पृष्ठ ७४); तथा "मुझे बचपन से गालियाँ खाने का अवसर तो कम मिला है, लेकिन दूसरों को खाते सुनने का शौक बराबर रहा है;" (पृष्ठ १३२) के साथ लेखक का वाक्य-पदों में अनुप्रास लाने का मोह (उदाहरणार्थ— "आज यदि मैं अतीत में जीना चाहता हूँ तो इसे वैसाखियों के सहारे जीना कहा जाता है, जीवन से पलायन का नाम दिया जाता है, आधुनिक बोध के खिलाफ बताया जाता है, विज्ञान का अस्वीकार घोषित किया जाता है।" (पृष्ठ २) कुछ-कुछ उसने पारसी-कम्पनी के नाटकों में सुने संभाषणों के संस्कार प्रमाण देता है। पुस्तक में उल्लेख है कि लेखक "जन्म : सरकारी १ मार्च १९१० और गैर सरकारी १ सितम्बर १९१० को ! यानी हर हालत में साठ से कम।" होने के कारण अभी ३१ अगस्त १९७० तक सठियानेवाला नहीं है। पर अपने राम तो "साठा तब पाठा" में विश्वास रखते हैं, अतः हमें मदानजी से जीवन के अंतिम क्षणों तक कुछ "उथले" कुछ "गहरे" सुनने की प्रबल आशा बनी रहेगी।

रा० ना० पा०

युग-संगम (दो श्रेष्ठ नाटकों का संग्रह) लेखक एन० चन्द्रशेखरन नायर, प्रकाशक श्री निकेतन प्रकाशन, त्रिवेन्द्रम, पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य रु० १.५० पैसे। वस्तुतः युग-संगम, 'द्विवेणी' तथा "युग संगम" शीर्षक दो लघु नाटकों का संग्रह है। संगम की कथा-वस्तु नितान्त मौलिक है। नाटककार ने वर्तमान के साथ त्रेता और द्वापर इन दो युगों का भी संगम किया है जिसके परिणामस्वरूप मंच पर श्रीराम, श्रीकृष्ण, लक्ष्मण और अर्जुन के साथ गान्धी की भी अवतारणा होती है। नाटककार ने पौराणिक कथानक की दिव्यता का आधुनिकता के साथ कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है। भाषा नितान्त प्रांजल और कर्ण सुखद है। दूसरा नाटक भावनाट्य है जिसमें युग पुरुष, शास्त्र पुरुष, धर्मकन्या, भक्ति, अनुकम्पा, उदारता आदि पात्र और पात्रियों का रंगमंच पर पदार्पण होता है। केरल प्रदेश निवासी श्री चन्द्रशेखरन नायरजी अभिनंदनीय हैं जिन्होंने मौलिक रूप से इन दोनों नाटकों की हिन्दी में रचना की है। रा. ना. पां.

निराला (बाल जीवनी माला), लेखक डाक्टर राम विलास शर्मा, प्रकाशक पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा० लिमिटेड) नई दिल्ली, पृष्ठसंख्या ७०, मूल्य सजिल्द रु० १.५० पै०। विद्वान् लेखक ने अपनी बच्ची सेवा के माध्यम से हिन्दी के वरिष्ठ कवि निरालाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व की बड़ी ही मनोरम झाँकी हिन्दीभाषी प्रत्येक बालक और बालिका के समक्ष बहुत ही सरल, सुबोध और स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत की है। अँग्रेजी के शेक्सपियर के ओथेल्लो, ऐज़ यू लाइक इट, टेमिंग आफ ए श्रू जैसे नाटकों तथा चार्ल्स डिकेन्स के डेविड कौपर फील्ड जैसे उपन्यास के चौथी या पाँचवीं श्रेणी में पढ़नेवाले बच्चों के लिए उपयोगी संस्करण मैंने देखे हैं। अपने महान् साहित्यकारों से वे अपने बच्चों को बचपन में ही परिचित कराते रहते हैं और इसी कारण उनके समाज में साहित्यिक बोध का स्तर इतना ऊँचा रहता आता है। हिन्दी साहित्य में इस तरह के अनेक ग्रन्थों का सृजन होना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक बालकों के लिए बहुत उपयोगी है और हिन्दी में बाल साहित्य की रचना करने वाले साहित्यकारों के लिए विशेष रूप से मननीय तथा अनुकरणीय है। रा. ना. पां.

आलोक (लेखक के १५ निवन्धों का संग्रह)—लेखक सतीशचन्द्र रस्तोगी, "सरस", प्रकाशक ओमकार शरण "ओम्", रामपुर, पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य रु० १.००। तरुण लेखक ने अधकचरी कविताएँ न रचकर "समाज और व्यक्ति", "संस्थाओं का महत्त्व" जैसे गंभीर विषयों के साथ-साथ वह "ज्योति", "माली", "दीपक ज्योति" जैसे भावनात्मक विषयों पर भी लेख लिखकर अपनी चिन्तन-शक्ति की अनेकरूपता का प्रमाण दिया है। लगन और अध्यवसाय के साथ गद्य रचनाएँ पढ़ते और लिखते रहने से भविष्य में "सरस" जी समय पाकर सरस गद्य-लेखक के रूप में समादृत हो सकते हैं।

सम्पादकीय

[शेष पृष्ठ १०४ का शेषांश]

के कारण कट गये और महीनों कटे रहे। इनके कट जाने से जनता को जो कष्ट हुआ वह उसे चुपचाप सहना पड़ा। जब एक सरकारी विभाग के पावने का भुगतान करने में कुछ कार्यालय इतने लापर्वाह हे तब यह अनुमान किया जा सकता है कि वे निजी व्यक्तियों को उनका पावना देने में कितने सावधान होगे।

किन्तु अब जनता भी 'प्रबुद्ध' होने लगी है। सरकार के सही या गलत आदेशों के विरुद्ध हाईकोर्टों में समादेश याचिकाओं (रिट आफ मैण्डमस) की जो बाढ़ आयी है, वह जनता की इस नयी मनोवृत्ति की सूचक है। स्वतन्त्र भारत में न्यायपालिका के प्रति विश्वास बढ़ गया है और अधिकारियों के उल्टे-सीधे आदेशो से छुटकारा पाने को लोग अब उसकी शरण में जाने लगे हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सरकार के किसी कार्यालय पर किसी का पावना है और लिखा-पढ़ी करने से कुछ फल नहीं निकला। तब लोग अदालत में जाते हैं। यदि उनकी डिक्री हो गयी तो सामान्यतः कार्यालय भुगतान कर देता है। किन्तु कुछ कार्यालय तब भी माँग की उपेक्षा करते रहते है। बहुत कम लोगों का साहस होता है कि वे सरकारी कार्यालय के विरुद्ध कुर्की निकलवाएँ।

किन्तु कलकत्ते के स्टेट्समैन ने ऐसी तीन घटनाओं का वर्णन प्रकाशित किया है। पहिली घटना में कलकत्ते के नामी एडवोकेट श्री स्नेहाशु आचार्य का कुछ रुपया सरकार पर निकलता था। जब वे थक गये तब उन्होंने मुकदमा चलाकर डिक्री प्राप्त कर ली, और कलकत्ते के एक विशाल सरकारी भवन ('एण्डर्सन हाउस' जिसमें दामोदर घाटी कार्पोरेशन का कार्यालय) कुर्क करा लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हे रुपये का भुगतान तुरन्त कर दिया गया। इसी प्रकार एक सज्जन का रुपया रेल पर चाहिए था। उन्होंने भी डिक्री करा के कुर्की निकलवा दी, और वर्दवान का रेल स्टेशन कुर्क करा दिया। तीसरी घटना सबसे मनोरंजक है। कलकत्ता कार्पोरेशन (नगर निगम या नगर महापालिका) इस समय अपनी दक्षता के लिए बहुत प्रसिद्ध नही है। अधिकांश नगरपालिकाओं की तरह उसमें भी काम बड़ी फुर्सत से किया जाता है। सन् १९६५ में तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री कलकत्ते पधारे थे, और कार्पोरेशन ने उनके स्वागत में कई स्वागत-द्वार बनवाये थे। उन्हें बनाने का ठेका एक ठेकेदार को मिला था। किन्तु जब बहुत दिनों से रुपया न मिला तो उसने अदालत से डिक्री प्राप्त की, और गत माह वह अदालत के अमीन को लेकर कार्पोरेशन के कार्यालय में जा पहुँचा और उसने वहाँ मेयर (महापौर) तथा उपमहापौर के कमरों के सामान को कुर्क करने को कहा। कार्पोरेशन के सचिव ने कुछ देर ही में रुपये की चैक देने का वचन दिया, किन्तु अमीन ने कहा कि केवल नगद रुपया ही लिया जा सकता है। अन्त में किसी तरह सचिव ने दो घण्टों में डिक्री का पूरा रुपया देकर महापौर और उपमहापौर के कमरों के सामान को बचा पाया।

इन घटनाओं में हास्य का काफी मसाला है, किन्तु साथ ही इनका एक गम्भीर पहलू भी है। ये घटनाएं हमारे सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों की कार्य-कुशलता पर जो प्रकाश डालती हैं उससे चित्त मे खिन्नता उत्पन्न होती है। शासन-तन्त्र की दक्षता और कार्य कुशलता के बिना उससे जनता का हित-साधन ठीक तरह से नहीं हो सकता इसलिए शासन तन्त्र में कसाव लाने की इस समय बड़ी आवश्यकता है।

पुर्निया (विहार) के स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह-जी बड़े उदार, विद्याप्रेमी तथा कविता के रसिक थे। वे आधुनिक हिन्दी के आरंभिक उत्थान काल के उन्नायकों में थे। उन्होंने बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास आनन्दमठ का हिन्दी में पहला अनुवाद किया था जो श्री वेंकटेश्वर प्रेस से छपा था। वे बड़े काव्यरसिक थे और 'सरोज' उपनाम से कविता भी करते थे। किन्तु उनके गाँव का वातावरण साहित्य-संगीत-कला से हीन था। इसलिये वे कवियों को बहुधा निमंत्रित किया करते थे। उस समय अयोध्या के लछीरामजी कविता के आचार्य माने जाते थे। वे 'द्विजदेव' (अयोध्या के महाराज मानसिंह) के मित्र और आश्रित थे और बाद में रसकुसुमाकर के प्रणेता महाराज प्रतापसिंह के यहाँ भी रहे। वे पुर्निया भी गए थे और राजा कमलानन्दसिंहजी ने उनका बड़ा सम्मान किया। लछीरामजी ने उनकी कविता की प्रशंसा की थी। शायद उसी समय कमलानन्दसिंहजी ने यह छंद लिखा था।

घोर अरण्य, गँभीर जलाशय,
ऐसे कुदेस में वास है रोज कौ।
पास में भेक समाज रहै
तब कैसें बढाय सके निज ओज कों।
नेकु दया कमला की रहै
तेहितें नित फूलि करे मन मौज कों
जो सुकबी न बिराजें कहो तब
कौन सराहतो आज 'सरोज' कों?

लछीरामजी के साथ उनके शिष्य यज्ञराज भी गये थे। वे भी अच्छे कवि थे। राजा कमलानन्दसिंहजी ने उन्हें अपने पास रोक लिया और वे उनके पास बहुत दिन रहे। राजा साहब ने उन्हें वहीं बस जाने को कहा, तथा वृत्ति और जमीन भी देनी चाही, किन्तु यज्ञराजजी वहाँ स्थायी रूप से रहने को राजी न हुए। फिर भी वे राजा साहब के पास कई वर्ष रहे।

एक बार राजा साहब शिकार के लिये किसी जंगल में गये। पाँच दिन बराबर प्रयत्न करने पर भी शेर न मिला। रात में राजा साहब ने यज्ञराजजी से कहा कि इतने दिन हो गये, शेर नहीं मिल रहा। इस पर यज्ञराज जी बोले—कल मिल जायगा। दूसरे दिन हाथी पर सवार होकर राजा साहब फिर जंगल में गये। पीछे-पीछे दूसरे हाथी पर यज्ञराजजी भी थे। तीन बार हाँका किया गया, पर शेर न निकला। तब राजा साहब ने यज्ञराजजी से कहा कि कविजी, आपतो कहते थे कि शेर आज मिलेगा, पर वह नही मिला। यज्ञदत्तजी बोले—बंदूक सम्हालिए, शेर आने ही वाला है। और यद्यपि शेर के शिकार में बोलना एकदम मना है, तथापि यज्ञराजजी ने शेर की ललकार में यह छन्द जोर से बढा—

तोर्‌यौ तेरौ सदन, बिथोर्‌यौ तेरौ पात-पात
कीन्हो भारी उत्पात यों दलामल महा छई।
कहै जग्यराज तेरी कुदरत देखिबे कों आयों
तू तो लुकान्यो जाय जैसे अबला नई।
दुरब[1] तिहारौ, चा चौगुनो सिकारिन कौ,
'नाहीं' ज्यों नवोढा की, परम सुखदा भई।
हरिन हजारन में, सूकर मझारन में
बब्बर कहावै, आज बीरता कहाँ गई?

संयोग की बात कि उसी समय हाँका करनेवालों ने आवाज़ दी कि शेर निकल आया है। राजा साहब बड़े पक्के शिकारी थे। उन्होंने हाथी ही पर से गोली मार कर उसे धराशायी कर दिया। उस पर उसी समय यज्ञ-राजजी ने उनकी दुनाली बन्दूक की प्रशंसा में यह छद पढ़ा—

'कछु दिन वासव के बज्र में बसी जो शक्ति
फेरि चंडिका के चंड तेग की उताली में,
बेस[2] हनुमान के गदा में होय गर्क रही
भारत में पारथ के बान की बहाली में।

१. दुरब (दुरजाना)—छिप जाना।
२. बेशी—अधिक।

[शेष पृष्ठ १६७ के नीचे

भगवान् बुद्ध के धातु

(Corporeal Relics)

श्री हीरानन्द शास्त्री

अभी वहुत समय नहीं हुआ जब तार्किक लोग यह कहा करते थे कि बुद्ध एक काल्पनिक नाम है। इस नाम का कोई मनुष्य हुआ ही नहीं। योरप में ईसा मसीह और शेक्सपियर के संबंध में भी आजकल कभी-कभी ऐसी ही बातें सुनने में आती हैं। परन्तु पुरातत्त्वान्वेषक पंडितों ने अब इस बात को सिद्ध कर दिया है कि बुद्ध भगवान् वास्तव में ऐतिहासिक महापुरुष हो चुके हैं। उनका जन्म-स्थान भी मालूम हो गया है। वहाँ पर महाराज अशोक का गाड़ा हुआ पत्थर का एक बड़ा भारी खंभा आज तक विद्यमान है। वह खंभा उच्च स्वर से कह रहा है :—

हिद बुधे जातें शाक्यमुनिति हिद भगवान जातेति

अर्थात् यहीं पर बुद्ध शाक्यमुनि पैदा हुए, यहीं पर भगवान् उत्पन्न हुए। यह लेख बुद्ध की ऐतिहासिक सत्ता का सुदृढ़ प्रम ण दे रहा है। यह स्तंभ नेपाल की तराई में लूमिनी या रोमनदेई नामक स्थान में है। उसे देखने के लिए सैकड़ों बौद्ध यात्री हर साल जाते हैं। बुद्ध के जन्म-स्थान के ज्ञात होने पर भी उनके शरीर त्याग अथवा निर्वाण प्राप्त करने का स्थान विवादास्पद अथवा अज्ञात ही रहा। कारलाइल और कनिंगहम ने इस बात की सूचना दी कि यह स्थान गोरखपुर प्रान्त में है, जो आजकल कसिया नाम से प्रसिद्ध है। विनसैण्ट स्मिथ साहिब ने, जो पुरातत्त्व दर्शकों में अग्रसर हैं, इसका खण्डन किया और कहने लगे कि यह स्थान कहीं नेपाल में होना चाहिए। मगर इसके साथ ही वे कसिया के खँडरात की पूरी-पूरी खोज करने की सिफारिश भी करते रहे। उसका फल यह हुआ कि संयुक्त प्रान्तों की गवर्नमेएट ने उदार चित्त से हजारों रुपये खर्च करके उस स्थान की खोज कराई। कई साल तक वहाँ खुदाई करने पर इस बात का पूरा प्रमाण मिल गया कि वहीं बुद्ध भगवान् ने शरीर छोड़ा था। इस प्रमाण को ढूंढ़ निकालने का सौभाग्य इस लेखक को ही प्राप्त हुआ जिसका वर्णन किसी समय और लेख में किया जायगा। इस जगह, जिसे प्राचीन काल में लोग कुशनगर कहते थे, भगवान् बुद्ध का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया और उनके शरीर धातु अर्थात् अस्थि और भस्म आदि आठ भागों में बाँटे गये। वे भिन्न-भिन्न स्थानों में पहुँचे और उन पर 'स्तूप' वनाये गये। काल-क्रम से इन्हीं में से कोई भाग या उसका कुछ अंश पश्चिमोत्तर देश में महाराज कनिष्क की आज्ञा से जा पहुँचा और उस पर एक बड़ा भारी चैत्य या स्तूप निर्माण किया गया। उसीके सम्बन्ध में यहाँ कुछ निवेदन करना है।

भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रान्त, या साधारण तौर पर पेशावर का जिला पहले गान्धार नाम से प्रसिद्ध था। इसी प्रान्त में आर्य्यावर्त के विद्वानों के शिरोरत्न भगवान्

मनोरंजक संस्मरण

[पृष्ठ १६६ का शेषांश]

कलि के करन[1], कमलानन्द ! साँची यह
कहै 'जग्यराज' सुन परम खुसाली में।
अरिदल गंजन कों, शेरन के भंजन को
सोई[2] शक्ति आनि वसी रावरी दुनाली में।

यज्ञराजजी ग्राम नुनरा (पो० वनी) जिला सुलतानपुर से निवासी थे। उन्होंने अमरकोश का हिन्दी में 'कोशकली' के नाम से अनुवाद किया था तथा अन्य कई ग्रंथ रचे तथा असंख्य स्फुट छंद वनाये थे। खेद है कि उनका साहित्य जो उच्चकोटि का है, विस्मृति के गर्भ में पड़ा है। अवध, विशेषकर सुलतानपुर जिले के हिन्दी प्रेमियों को चाहिये कि उनकी कृतियों को खोज कर उन्हें प्रकाश में लावें। उनकी भाषा में कितना प्रवाह है उसका एक उदाहरण पर्याप्त है। केवट भगवान् राम की नाव पर चढ़ाने से पहले अपने परिवारवालों से कहता है :—

निज परिवार सों निषाद कहै ऊँचे स्वर
मेरे वैन मानि कोऊ गाफिल न होओ रे !
सब मिलि धाओ, यहि नैया को वचाओ,
जासों मिलै नित भोजन-वसन सुख सोओ रे !
मानुखीकरन भूरि धूरि इन पाँयन में,
ता तें 'जग्यराज' कहै जीविका न खोओ रे !
मलि मलि धोओ, फेरि नैंनन तें जोओ,
फेरि धोओ, फेरि जोओ; फेरि धोओ, फेरि जोओ रे !

---

१. करन—कर्ण, २. सोई (सो ही)—वही।

Yearly Subscription : Rs. 7.50
Single Copy : Rs. 0.65
August 1969
SARASWATI—Reg. No. L. 2

हमारा गांधी साहित्य

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वांग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल २०) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५०, मू० ४) रुपये।

जगदालोक

लेखक : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१ मू० ६) रुपये।

युगाधार

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी है। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ४·२५ पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रंथ

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी है, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७·५० पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती

जुलाई १९६१

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', द्वारा संकलित।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इस कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नये अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अँगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य इस कोश में है।

इस कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथा-स्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गये हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किये गये हैं। इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों के पर्याय की दो शब्दावलियाँ भी दे दी गई हैं। इससे इस कोश की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी इस कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका

मूल्य १६·००

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज का प्रत्येक उपन्यास स्वत: पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फांसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन वर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५ मित्र मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का सूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिवाद।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ भ्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीभक्त स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

सीमान्त गांधी खाँ अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ से श्रीमती इंदिरा गांधी की भेंट

सीमान्त गांधी महात्माजी के घनिष्ठ सहयोगी थे। वे सीमान्त प्रदेश को, जिसमें पख्तून लोग रहते हैं, स्वतंत्रता दिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे पाकिस्तान से निर्वासित होकर काबुल में रह रहे हैं। श्रीमती गांधी गत मास राजकीय यात्रा पर काबुल गयी थीं। वहाँ उन्होंने उनसे भेंट की।
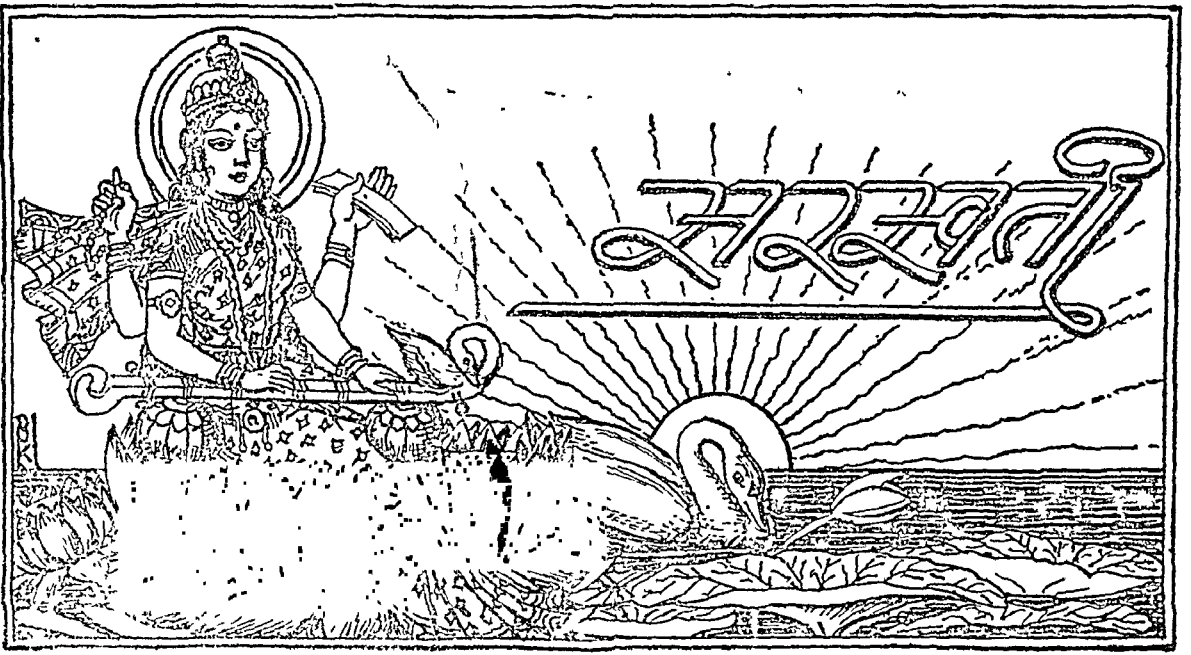
सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७० पूर्ण संख्या ८३५ | इलाहाबाद : जुलाई १९६९ : श्र० अषाढ़ २०२६ वि० | खण्ड २ संख्या १

सम्पादकीय

'शिव का भस्मासुर'—भस्मासुर की कथा पुराणों में मिलती है। मालूम नहीं कि भस्मासुर का वास्तविक नाम क्या था। किन्तु उसने शिवजी की आराधना में बड़ी उग्र तपस्या की। शिवजी प्रसन्न हो गये। बोले—वर माँग। भस्मासुर ने कहा कि मुझे यह वर दीजिए कि जिसके सिर पर अपना दाहिना हाथ रख दूँ वह तत्काल भस्म हो जाए। शिवजी महाराज उसकी तपस्या से इतने प्रसन्न थे कि बिना आगा-पीछा सोचे उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा—ऐसा ही हो। अब भस्मासुर शिवजी की ओर बढ़ा। उन्होंने पूछा—अब क्या चाहते हो? उसने कहा कि मैं आपके सिर पर हाथ रखकर देखना चाहता हूँ कि आपका वरदान सच्चा है या नहीं। शिवजी तो वरदान दे चुके थे। सिवाय वहाँ से पलायन करने के कोई उपाय नहीं था। ये आगे-आगे और भस्मासुर पीछे-पीछे। अन्त में घबड़ाकर वे विष्णु भगवान् के पास पहुँचे और सारी कथा सुनायी। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर लिया। मोहिनी को देखकर भस्मासुर रुक गया और उस पर मोहित हो गया। मोहिनी ने कहा कि तू मेरे साथ नाच, और जैसी-जैसी भावभंगी मैं करूँ, वैसी ही तू भी कर। काम-मोहित भस्मासुर नाचने लगा। मोहिनी ने अपना दाहिना हाथ कमर पर रखा। भस्मासुर ने भी अपना हाथ कमर पर रखा। मोहिनी ने नाचते-नाचते फिर उसे अपने कन्धे पर रखा। भस्मासुर ने भी अनुकरण किया। इस तरह कुछ देर नाचने के बाद मोहिनी ने अपना दाहिना हाथ अपने सिर पर रख लिया। भस्मासुर तो उस समय होश में न था। उसने भी अपना दाहिना हाथ अपने सिर पर रख लिया।

शिवजी का वरदान सफल हुआ। सिर पर अपना दाहिना हाथ रखते ही वह भस्म हो गया। इस प्रकार भस्मासुर का अन्त हुआ।

पश्चिमी बंगाल की वर्तमान संयुक्त सरकार के कुछ घटकों ने 'घिराव' रूपी भस्मासुर की उत्पत्ति की। अब यह भस्मासुर उन्हें ही त्रस्त कर रहा है। उसके कई घिराव समर्थक मन्त्रियों का घिराव हो चुका है। इस प्रकार भस्मासुर की कथा का एक अध्याय पूरा हो रहा है। इसमें सबसे मजेदार घिराव उद्योग मन्त्री श्री सुशील धाड़ा का था। वे जालढाका नामक स्थान में दौरा कर रहे थे। वहाँ एक बिजलीघर है। यह बिजलीघर किसी "अत्याचारी, शोषक और अन्यायी" पूँजीपति का नहीं है, वह राज्य के बिजली परिषद् का है, अर्थात् सरकारी है। समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार इसका राष्ट्रीयकरण हो चुका है। वहाँ के मजदूरों ने अपनी कुछ माँगें रखीं। यहाँ यह विचार करना व्यर्थ है कि माँगें उचित थीं या अनुचित। मन्त्री महोदय ने सहज भाव से कहा कि मामला समझने में कुछ समय लगेगा। और वे उन माँगों पर विचार करेंगे। किन्तु अपने 'अधिकारों' के प्रति सजग और अपनी माँगों की पवित्रता में अखंड विश्वास करनेवाले मजदूरों को यह कैसे सहन हो सकता था कि उनकी माँगों को एकदम स्वीकार न करके उन पर विचार किया जाय! अतएव उन्होंने उन्हें वहीं तत्काल स्वीकार करने के लिए मन्त्री महोदय का घिराव कर लिया। यह घिराव ८८ घन्टे (प्रायः चार दिन) चला। वर्तमान सरकार ने पुलिस को घिराव में हस्तक्षेप करने का निषेध कर रखा है (यद्यपि कलकत्ता हाईकोर्ट ने उसे ऐसा अपराध माना है जिसे रोकना या भंग करना पुलिस का कर्त्तव्य है—चाहे पुलिस में उसकी रिपोर्ट न भी की जाय।) अतएव वे पुलिस की सहायता नहीं माँग सकते थे। एक कहावत है कि "जब बुतों ने सताया, खुदा याद आया।" अब कामरेड धाड़ा को गाँधीजी याद आये, और उन्होंने घिराव रहने तक के लिए अनशन घोषित कर दिया। किन्तु भस्मासुर के ऊपर अनशन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। श्री धाड़ा भूखे-प्यासे चार दिन तक घिरे रहे। अन्त में पुलिस ने, अनिमन्त्रित होने पर भी, आकर उनका उद्धार किया। अतएव जनता यह जानने से वंचित रह गयी कि मार्क्सवादी घिराव और गाँधीवादी अनशन एवं सत्याग्रह की टक्कर में अन्त में किसकी विजय होती है।

यह जानने के लिए कि घिराव का उपयोग कैसे दुराग्रहों को मनवाने के लिए होता है, अलीपुरद्वार का घिराव सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। हमारी कल्याणकारी सरकार ने यह नियम बना रखा है कि यदि किसी मजदूर स्त्री को प्रसव हो तो उसे बारह सप्ताह की पूरे वेतन सहित छुट्टी और कुछ अतिरिक्त भत्ता दिया जाय। अलीपुरद्वार पश्चिमी बंगाल में है। वहाँ चाय के कारखाने हैं। जिनमें बहुत से मजदूर काम करते हैं। भारत-सरकार देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से परेशान है, और प्रायः सब दलों के समर्थन से परिवार नियोजन का प्रचार कर रही है। अलीपुरद्वार के एक चाय के कारखाने के अस्पताल के डाक्टर भी मजदूरों में परिवार नियोजन का प्रचार करते थे तथा जो मजदूर चाहते उनकी शल्य चिकित्सा भी कर देते थे जिससे भविष्य में उनके सन्तान न हों। मजदूरों की तर्क बुद्धि ने इस प्रचार को अपने अधिकारों का हनन समझा, क्योंकि भविष्य में जिन मजदूर स्त्रियों को सन्तान न होगी उन्हें नियमानुसार प्रसवकाल का बारह सप्ताहों का सवेतन अवकाश और भत्ता न मिलेगा। उनका कहना था कि इस प्रकार सन्तानोत्पत्ति रोककर उन्हें सवेतन अवकाश और भत्ते से—जो उनका अधिकार है—उन्हें वंचित किया जा रहा है, यह तर्क "मानो या न मानो" श्रेणी का है, किन्तु अलीपुरद्वार के इस चाय के कारखाने के मजदूरों की निष्ठा इस तर्क पर इतनी गहरी और अटल थी कि उन्होंने परिवार नियोजन का कार्य करनेवाले अपने अस्पताल के डाक्टरों और दाइयों को दोपहर में खुले मैदान में खड़ा कर दिया तथा उन्हें घेर लिया। अलीपुरद्वार तराई क्षेत्र में है। मई-जून में यहाँ सूर्य का उत्ताप भीषण होता है। ये डाक्टर और दाइयाँ लगातार सात घन्टे जलती हुई धूप में खड़े रहने को विवश किये गये। पीने को पानी भी उन तक नहीं पहुँचने दिया गया। इस बीच उन पर चारों ओर से गालियों की वर्षा होती रही। इस घिराव में एक बेचारे डाक्टर को हृदय का दौरा हो गया। एक दूसरा डाक्टर गर्मी के कारण बेहोश हो गया। अस्पताल में एक स्त्री रोगी की दशा एकाएक बिगड़ गयी, किन्तु घिराव में कैद डाक्टर उसका उपचार करने न जा सके। वह मर गयी। अन्त में सात घण्टे बाद कुछ बाहरी लोगों ने पुलिस को सूचना दी, और पुलिस ने आकर उन्हें घिराव से मुक्त किया। किन्तु इस घिराव से वहाँके डाक्टर इतने आतंकित और भयभीत

हो गये हैं कि दो डाक्टर तो त्यागपत्र देकर चले गये हैं। शेष में से अनेक छोड़ने का अवसर देख रहे हैं।

बँगला कांग्रेस वर्तमान संयुक्त मोर्चा सरकार की एक घटक है। उसने 'घिराव' के विरुद्ध स्पष्ट रूप र आवाज उठायी है किन्तु उस सरकार के कम्यूनिस्ट, अर्द्ध कम्यूनिस्ट तथा वामपंथी सदस्य अब भी घिराव के समर्थक हैं। हाँ, वे मन्त्रियों आदि का घिराव ठीक नहीं समझते। उद्योगपतियों के घिराव पर उन्हें आपत्ति नहीं। वे यह भी नही पसन्द करते कि पुलिस घिराव करनेवाले मजदूरों को घिराव करने से रोके। उधर हाईकोर्ट ने व्यवस्था दी है कि पुलिस का कर्त्तव्य है कि घिराव का समाचार पाते ही वह उसे भंग करे। हाई-कोर्ट की व्यवस्था और सरकार के मन्त्रियों के प्रत्यक्ष या परोक्ष परस्पर विरोधी आदेशों के बीच वहाँकी पुलिस किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रही है। इन घिरावों का वहाँके उद्योग-धन्धों और शान्ति-व्यवस्था पर बहुत विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। देखना है कि कब कोई मोहिनी इस भस्मासुर को समाप्त करती है।

शिक्षा का हिन्दी माध्यम, डा० राव० और डा० कोठारी—वर्षों के वाद-विवाद के अन्त में भारत में सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने यह सहज बुद्धि की साधारण बात स्वीकार करने की कृपा की कि निम्नस्तर से लेकर उच्च-स्तर (विश्वविद्यालय) तक शिक्षा का माध्यम राज्य की भारतीय भाषाएँ हों। किन्तु अभी यह बात सिद्धान्त रूप ही से स्वीकार की गयी है। 'श्रेयासि बहु विघ्नानि' के अनुसार अभी 'दिल्ली दूर अस्त'—इसके कार्यरूप में परिणत होने में समय लगेगा। किन्तु अभी से उत्तरदायी लोगों की ओर से जो बातें कही जाने लगी हैं उनसे मालूम होता है कि अंग्रेजीपरस्त लोग इसे ठीक तरह से कार्यान्वित नहीं होने देंगे। इसका प्रमाण डा० कोठारी का वह प्रस्ताव है जो उन्होंने हिन्दीभाषी राज्यों के उपकुलपतियों के सम्मेलन मे किया है।

इस समय भारत के शिक्षा मन्त्री डाक्टर वी० के० आर० वी० राव है। डा० दौलतसिंह कोठारी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष हैं। सारे देश के विश्वविद्यालय अर्थाभाव से पीड़ित रहते हैं, और इस आयोग के पास भारत सरकार का दिया हुआ प्रचुर धन है जिसे विश्व-विद्यालयों को बाँटने का उसे पूरा अधिकार है अतएव इस आयोग और उसके अध्यक्ष की शक्ति और विश्वविद्यालयों पर उनके प्रभाव का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। शिक्षा मन्त्रालय ने विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की तैयारी के लिए प्रत्येक राज्य को एक-एक करोड़ रुपये दिये है जिनसे वे अपने राज्य की भाषा विश्वविद्यालयों के उपयोग के लिए सभी विषयों की पुस्तकें तैयार कर सकें। पाँच हिन्दीभाषी राज्यों को भी सब मिलाकर पाँच करोड़ रुपये दिये गये हैं। श्री राव ने यह उचित समझा कि पाँचों राज्यों के विश्वविद्यालय मिलकर आपस में तय कर लें कि वे किन-किन विषयों की पुस्तकें तैयार करेंगे। इससे कई राज्यों में एक ही विषय की कई पुस्तके तैयार किये जाने से जो अपव्यय होगा वह बचेगा, और जब प्रत्येक विश्वविद्यालय को एक दो विषयों ही की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी होंगी तब काम भी शीघ्रता से और अधिक अच्छा होगा। यह बड़ा उपयोगी और व्याव-हारिक विचार था। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सभी विश्वविद्यालयों का पाठ्क्रम एक हो। कोई कारण नहीं कि इतिहास या गणित या अन्य किसी विषय में बी० ए० का पाठ्यक्रम पटना विश्वविद्यालय में एक हो, और सागर या आगरे में दूसरा, क्योंकि सब विश्वविद्यालयों में बी० ए० का स्तर समान माना जाता है। इन बातों पर विचार करने और उन्हें व्यावहारिक रूप देने के लिए कुछ दिन पूर्व श्री राव ने दिल्ली में हिन्दी क्षेत्र के ३५ विश्व-विद्यालयों के उपकुलपतियों का एक सम्मेलन किया था। उसमें इन बातों पर विचार हुआ और पाठ्यक्रम में एक-रूपता लाने तथा हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए जो सन्तोषजनक निर्णय हुए, वे यदि सफलतापूर्वक कार्यान्वित हो सकें तो हिन्दी क्षेत्र में सभी विषयों को हिन्दी में पढ़ाये जाने का काम सुचारु रूप से चलने लगेगा।

किन्तु डा० कोठारी ने इस सम्मेलन में एक बड़ी अजीब बात कही। डा० कोठारी 'साहबे-वक्त' हैं—बहुत 'बड़े आदमी' हैं। एक जर्मन विद्वान् ने कहा था कि A great man condemns the world to understand him अर्थात् बड़े आदमी मानों संसार को दण्ड देने के लिए ऐसी बात कह देते हैं कि उसके समझने में संसार को परे-शानी हो। डा० कोठारी को भी समझना सहल नहीं है। उनके कुछ भाषण पढ़ने से ऐसा मालूम होता है कि वे बड़े हिन्दी-प्रेमी हैं और भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम

बनाने के पक्षपाती हैं। किन्तु साथ ही वे अंग्रेजी के ज्ञान पर भी बहुत बल देते हैं। उनका कहना है कि भारतीय भाषाओं में अभी अनेक विषयों पर अच्छी और प्रामाणिक पुस्तकें नहीं है। विद्यार्थियों को ज्ञानमार्ग के लिए पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त इनका पढ़ना आवश्यक है। अतएव अंग्रेजी को "लाइब्रेरी लैंग्वेज" के रूप में रखना बहुत आवश्यक है। शायद इसी लिए इस सम्मेलन में भी डा० राव ने इस बात पर ज़ोर दिया कि विश्वविद्यालयों में त्रिभाषी सूत्र के अनुसार जो अंग्रेजी पढ़ायी जाय उसका स्तर काफी ऊँचा रहे। इस समय हम इस तर्क से सहमत हैं और डा० कोठारी के अनुसार विश्वविद्यालयों के लिए अंग्रेजी को 'लाइब्रेरी लैंग्वेज' बनाने की उपयोगिता मानते है। भाषा के ज्ञान में दो बातें निहित हैं Comprehension ग्रहण शक्ति या अर्थ और भाव समझने की योग्यता, और Expression अभिव्यक्ति पढ़कर किसी भाषा की बात समझ लेना अपेक्षाकृत सरल है, किन्तु अपने भावों को उस भाषा में व्यक्त कर सकना अपेक्षाकृत बहुत कठिन है। 'लाइब्रेरी लैंग्वेज' के लिए अंग्रेजी 'समझने' की अच्छी योग्यता होनी चाहिए, किन्तु विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी पढ़ाने और उसमें परीक्षा लेने का उद्देश्य यह देखना होता है कि विद्यार्थी अपने उच्च और जटिल विचार शुद्ध अंग्रेजी में व्यक्त कर सकते हैं या नहीं। अतएव विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को 'लाइब्रेरी लैंग्वेज' बनाने के लिए उनमें अंग्रेजी समझने की योग्यता विकसित करने पर ज़ोर देना चाहिए न कि अंग्रेजी में अपने भावों को व्यक्त करने की योग्यता पर।

जो आश्चर्यजनक प्रस्ताव डा० कोठारी ने किया है वह यह है कि जो विश्वविद्यालय भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनावें वे कम से कम एक-तिहाई विषय अंग्रेजी के माध्यम से भी पढ़ाएँ। उनका कहना है कि विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को अलग एक विषय के रूप में पढ़ाने से विद्यार्थियों में अंग्रेजी का इतना ज्ञान नहीं हो सकेगा कि वे पुस्तकालयों में जाकर अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ सकें। जब तक कुछ विषयों को वे अंग्रेजी के माध्यम से नहीं पढ़ते तब तक, डा० कोठारी के मतानुसार, विद्यार्थियों में अंग्रेजी पुस्तकों को पढ़कर समझने की योग्यता नहीं आ सकती। डा० कोठारी के प्रस्ताव का परिणाम यह होगा कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों में आंशिक रूप से अंग्रेजी माध्यम जारी रहेगा। यदि अधिकारी अंग्रेजी-परस्त हुए (जैसा कि वर्तमान स्थिति में वे अधिकांश स्थानों में हैं) तो कम से कम एक-तिहाई विषय अंग्रेजी में न पढ़ाये जाकर अधिक से अधिक एक-तिहाई विषय ही देशी भाषाओं के माध्यम से पढ़ाये जायेंगे। डा० कोठारी ने बड़ी चतुराई से देशी भाषाओं को उच्च शिक्षा के माध्यम बनाने के प्रयत्नों पर हरताल फेरने का प्रयत्न किया है। हम इस प्रस्ताव को देशी भाषाओं के विकास के लिए बड़ा घातक समझते हैं, और हमारा निश्चित मत है कि विश्वविद्यालयों को इस प्रकार द्विभाषी बनाने से न तो अंग्रेजी का हित होगा और न देशी भाषाओं का। 'लाइब्रेरी लैंग्वेज' के रूप में अंग्रेजी के ज्ञान की वृद्धि करने के लिए अन्य जो भी उपाय किये जायँ, उसकी आड़ में *विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम को बनाये रखने का* प्रयत्न देशी भाषाओं के प्रति घोर अन्याय है।

एक भारतीय भाषा-विरोधी अमरीकन—अमरीका इस समय संसार का सबसे धनी देश है। धनी होने के साथ ही उसे अपने धर्म, अपनी संस्कृति एवं सभ्यता अपनी 'अमरीकी जीवन प्रणाली' (अमेरिकन वे आफ़ लाइफ़) का उचित गर्व भी है। वह अपना धर्म फैलाने के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये एशिया और अफ्रीका में फैले हुए अपने ईसाई मिशनरियों को देता है। अपनी संस्कृति और सभ्यता फैलाने के लिए वह एशिया और अफ्रीका के 'पिछड़े' और 'अविकसित' देशों में प्रतिवर्ष करोड़ों डालर खर्च करता है। यहाँके प्राध्यापकों और प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को यात्रा का और अमरीका में रहने का व्यय तथा अन्य सुविधाएँ देकर वह उनमें अमरीकन सभ्यता और संस्कृति तथा अमरीकन जीवन प्रणाली के प्रति अभिरुचि और मोह उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। इनमें अधिकांश लोग लौट कर या तो बहुत कुछ 'देशी अमरीकन' हो जाते हैं, या अमरीका की महानता, उन्नति और श्रेष्ठता के चारण बन जाते हैं। उन्हें बार-बार अमरीका की यात्राएँ करने का अवसर दिया जाता है। इनमें कुछ तो इतने अधिक 'अमरीकन' हो जाते हैं कि उन्हें अपनी जन्मभूमि से विरक्ति हो जाती है और वे अमरीका में बस जाते और उसकी नागरिकता स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु इस प्रकार बहुत अधिक भारतीय अमरीका नहीं ले जाये जा सकते। अतएव विभिन्न "सांस्कृतिक सम्पर्क", 'सांस्कृतिक आदान-प्रदान', 'शिक्षा का पुनर्गठन' आदि आकर्षक नामोंवाली योजनाओं के अंतर्गत कितने ही चतुर अमर

कन विद्वान् और कार्यकर्ता भारत आकर हमारे विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।

एक बात विशेषरूप से ध्यान में रखने की है। अमरीका और इंग्लैड दोनों ही चाहते हैं कि भारत में अंग्रेजी राज्य के कारण जो अंग्रेजी फैल गयी थी उसकी जड़ मजबूत बनी रहें। इसके अनेक कारण हैं। यदि भारतवासी अंग्रेजी पढ़ते रहेंगे तो वे अंग्रेजी साहित्य, अंग्रेजी में लिखे इतिहास, नाटक, कहानी, उपन्यास, विज्ञान आदि की पुस्तकें बराबर पढ़ेंगे। ये पुस्तकें अमरीकी या अंग्रेजों के दृष्टिकोण से लिखी जाती हैं। अतएव उन्हें बराबर पढ़ते रहने के कारण वे अनजान में अमरीकी या अंग्रेजों के दृष्टिकोण को अपना लेंगे। आज हम चीन, जापान, फ्रांस, दक्षिण अमरीका, अफ्रीकी देशों के बारे में जो ज्ञान या जानकारी प्राप्त करते हैं वे अमरीकन या अंग्रेजों की लिखी पुस्तकों से। अतएव हम उनमें लिखी बातों को प्रामाणिक मान लेते हैं, और अनजान में हम उन देशों की समस्याओं को अमरीकी या अंग्रेजों की दृष्टि से देखने लगते हैं। इस प्रकार अंग्रेजी के इतने प्रचलन के कारण इस देश में अमरीकी और अंग्रेजी का प्रचार बड़े परोक्ष रूप से अपने आप होता रहता है, जिन देशों में अंग्रेजी का चलन नहीं है, उनमें उन्हें अपना प्रचार करने के लिए बड़ा व्यय करना पड़ता है और बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं। यहाँ हम अपना पैसा खर्च कर उनकी पुस्तकें पढ़ते हैं और उनके परोक्ष प्रचार के शिकार बनते हैं। यह इतना बड़ा राजनीतिक लाभ है कि अमरीकी और अंग्रेज इसे किसी कीमत पर खोना नहीं चाहते। भारत में अंग्रेजी की जड़ मजबूत करने के लिए उन्होने यहाँ अनेक निःशुल्क पुस्तकालय खोल रखे हैं। वे कम मूल्य पर अंग्रेजी में लिखी विविध विषयों की पाठ्यपुस्तकें दे रहे हैं। अंग्रेजी की शिक्षा-विधि में सुधार और शोध करने तथा उसमें अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए वे प्रशिक्षण कॉलिज खोलते हैं' सेमीनार करते हैं। इन सब बातों का उद्देश्य एक मात्र यही है कि अंग्रेजी भारत में अधिकाधिक फैले, और वह यहाँकी राजाभाषा तथा शिक्षा का माध्यम बनी रहे। बाद में जब अंग्रेजी यहाँ जम जायगी तब अंग्रेजीदाँ लोग प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों की पुस्तकें अमरीका और इंग्लैण्ड से मँगाकर उसके प्रकाशन उद्योग को लाभ पहुँचाएँगे। आज भी भारत में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों की अंग्रेजी पुस्तकें आती हैं। अतएव अमरीकन और अंग्रेज दोनों ही इस समय इस देश में अंग्रेजी की जड़ मजबूत करने में लगे हैं। भारत में भी देशी अंग्रेजी परस्ती की कमी नहीं हैं।

अभी तक इन अंग्रेजी-प्रचारकों के विरोध का लक्ष्य हिन्दी थी क्योंकि वे समझते थे कि एकमात्र राजभाषा हो जाने पर हिन्दी ही से अंग्रेजी को सबसे बड़ा खतरा है। वे लोग अंग्रेजी को देश की सह-राजभाषा बनवाने में सफल हो गये, और उन्हें विश्वास है कि वे उसे देश की वास्तविक राजभापा बनवाने में सफल हो जायेंगे।

किन्तु इस बीच इस देश में देशी भाषाओं को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने का अनदोलन जोर पकड़ गया है। अंग्रेजी के सबसे बड़े गढ़, और हिन्दी-विरोध के सबसे बड़े केन्द्र, तमिलनाडु में सरकार ने तमिल को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने का निश्चय कर लिया है, और इस दिशा में उसने ठोस कदम भी उठाये है। अन्य राज्यों में भी यह आन्दोलन जोर पकड़ रहा है। इस अप्रत्याशित आन्दोलन ने अंग्रेजीपरस्तों में बौखलाहट उत्पन्न कर दी है। अब वे खुलकर भारतीय भापाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का विरोध करने लगे हैं।

भारतीय अंग्रेजीपरस्त तो इसका विरोध कर ही रहे हैं, अब विदेशी भी इस विरोध मे हाथ बटाने लगे है। इसका एक उदाहरण अभी हाल में मिला है। अमरीका के प्रसिद्ध येल विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के एक प्रोफेसर डा० हेरल्ड कैसिडी भारत आये और ऊपर लिखी योजनाओं में से ग्रीष्मकालीन विज्ञान संस्थान (समर इन्स्टिट्यूट आफ़ सायन्स) नामक योजना में सम्मिलित हुए, यह ग्रीष्मकालीन समारोह तमिलनाडु के मदुरई नगर में किया गया। भारत में विज्ञान की शिक्षा पर अपने विचार प्रकट करने के बाद उन्होंने कहा—मदुरई में "मैंने एक ऐसी बात देखी जो भारत के लिए बड़ी और वास्तविक धमकी (खतरा) हैं। यह खतरा है विज्ञान को स्थानीय भापा में पढ़ाने का प्रयत्न। यह विनाशकारी है; यह विभाजन करनेवाला है, यह राजनीतिक बाजारू लीडरी है, और यह एक ऐसी वस्तु है कि जो यदि सफल हो गयी तो विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप नष्ट कर देगी।"(I encountered something which is a really serious threat to India, it is an attempt to teach science in local language; it is destructive, it is divisive, it is

political demagoguery; it is something which could, if it succeeded, destroy the international character of science.) हम इन विद्वान् प्रोफेसर का ऐसा दुःसाहसिक वक्तव्य पढ़कर आश्चर्यचकित रह गये। स्थानीय भाषा में विज्ञान पढ़ाये जाने से जो खतरे उत्पन्न हो सकते हैं उनको पढ़कर हम घवड़ा गये। किंतु फिर सोचा कि क्या भारत ही में यह 'विनाशकारी' काम किया जा रहा है? प्रोफेसर कैसिडी के पड़ोसी मैक्सिको में विज्ञान अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है या वहाँ की स्थानीय भाषा मे? दक्षिण अमरीका के अनेक राज्यों—ब्रेजिल, आर्जेण्टिना, चिली, उरुग्वे, पनामा आदि में क्या वह स्थानीय भाषाओं में नहीं पढ़ाया जाता? क्या चीन और जापान में वह वहाँ की देशी भाषाओं में न पढ़ाकर अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है? क्या फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्पेन, रूस आदि योरोपीय देशों में वह अपनी भाषाओं में नही पढ़ाया जाता? यदि संसार के इन बहुसख्यक देशों मे स्थानीय भाषाओं मे विज्ञान की शिक्षा होने के बावजूद विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप नष्ट नहीं हुआ तो भारतीय भाषाओं ही में पढ़ाये जाने से वह क्यों नष्ट होगा? अमरीका के एक विख्यात विश्वविद्यालय के एक वरिष्ठ प्रोफेसर से हम अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और तर्क-सगत बात की अपेक्षा करते थे।

इसके अतिरिक्त यह भी याद रहे कि डा० कैसिडी इस देश में अतिथि होकर आये है। भारतीय भाषाओ मे उच्च शिक्षा देने की नीति राष्ट्रीय नीति है। भारत सरकार ने उसे सिद्धान्तरूप में मान लिया है। हम विदेशी अतिथियों से अपेक्षा करते है कि वे हमारे आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की गुस्ताखी नही करेंगे। इस स्वतन्त्र देश में उन्हें अपना मत व्यक्त करने का पूरा अधिकार है, किंतु एक समझदार और शिष्ट अतिथि को अपना मत व्यक्त करने में संयम से काम लेना चाहिए। हम समझ सकते हैं कि देशी भाषा में विज्ञान की शिक्षा होते देखकर उनके अंग्रेजी प्रेम को कितना धक्का लगा होगा। किंतु हम इन विदेशियों को प्रसन्न करने के लिए अपने मौलिक सिद्धान्तों या देश के दीर्घकालीन हितों का बलिदान नहीं कर सकते।

रूस में धर्म की वर्तमान स्थिति—रूस कम्यूनिस्ट शासित देश है। कम्यूनिज़्म भी एक प्रकार का जीवन दर्शन या धर्म है जो जड़वादी है। हमारे देश के प्राचीन चार्वाक मतानुयायियों की तरह वह भी नास्तिक दर्शन है और ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता। कम्यूनिस्ट लोग धर्म को अनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्य की उन्नति के लिए स्पष्ट रूप से हानिकारक समझते हैं। उनका कहना है कि धर्म मनुष्यजाति के लिए अफ़ीम की तरह है। कोई व्यक्ति जो ईश्वर या धर्म में विश्वास करता है, कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य नही हो सकता। इसलिए रूस में जब-जब लोगों से पूछा गया कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं या नहीं, तब तब ९० प्रतिशत से भी अधिक रूसियों ने यही कहा कि उन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है। किंतु इन मतदानों के बावजूद वहाँ धर्म के प्रति अधिकांश जनता में आस्था है जिसे वे कम्यूनिस्ट सरकार के शासन के कारण खुलकर स्वीकार नहीं करते।

पचास वर्ष के कड़े कम्यूनिस्ट शासन और धुआँधार धर्म-विरोधी प्रचार और धर्म-विरोधी शिक्षा के बावजूद रूसी जनता मे धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था होना कम्यूनिस्टों के लिए एक आश्चर्यजनक व्यापार है। किंतु अब वे धीरे-धीरे इस वास्तविकता को सहन करने लगे है और ऐसा मालूम होता है कि उसके साथ समझौता भी करने लगे हैं। अभी तक वहाँ ईसाई धर्म में विश्वास करनेवालों को साम्यवाद का विरोधी समझा जाता रहा है। किन्तु रूसी अधिकारियों के परिवर्तित दृष्टिकोण की झलक वहाँ की एक पत्रिका "विज्ञान और धर्म" के एक लेख से मिलती है। उसमें एक जगह कहा गया है कि "आजकल के परम्परागत धर्म को मनानेवाले रूसी सोवियत संघ के अच्छे और निष्ठावान नागरिक हैं जो अपने अन्य रूसी भाइयों के साथ देश मे नया जीवन लाने में प्रयत्नशील हैं।" रूस की एक सरकारी पत्रिका में इस प्रकार धर्म को माननेवाले लोगों की प्रशंसा वहाँके लिए अभी तक एक अनहोनी बात समझी जाती थी। यही नहीं, इस वर्ष रूस के प्रकाशन विभाग ने बच्चों के लिए बाइबिल की कहानियों की एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। ये सब बातें इस बात का प्रमाण हैं कि रूस की कम्यूनिस्ट सरकार रूसी जनता की वास्तविक धर्मप्रियता की भावना को एक स्पष्ट तथ्य मानकर धीरे-धीरे उसके साथ समझौता करने को तैयार है।

रूस में प्राचीन ईसाई धर्म प्रचलित रहा है। वहांके लोग अनेक शतियों से अपनी धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

काम्यूनिस्टों के हाथ में शासन आते ही उन्होंने सब गिर्जेघर बंद कर दिये थे और अपनी सारी शक्ति धर्म के विरुद्ध प्रचार करने में लगा दी थी। स्कूलों और कालिजों में भी धर्म के विरुद्ध शिक्षा दी जाने लगी थी। कम्यूनिस्टों की तानाशाही के कारण जनता चुप रही, किन्तु उसकी भावना नहीं बदली। द्वितीय महायुद्ध में जब जर्मनी रूस पर जबर्दस्त आक्रमण करके उसके भीतर काफी दूर तक घुस गया और रूस के बहुत-से गोलबारूद और सैनिक सामान बनानेवाले कारखाने नष्ट हो गये तब वीर रूसी सैनिकों को आवश्यक युद्ध सामग्री अमरीका और इंग्लैड से पहुँचायी जाने लगी। अमरीका कट्टर ईसाई देश है, और वहाँके बहुत-से लोग इस बात से नाराज थे कि एक ईसाई-विरोधी देश को, जिसने गिर्जाघर बंद कर रखे हैं, इतनी सैनिक सहायता दी जा रही है। स्टालिन ने इन अमरीकियों के विरोध को शान्त करने के लिए उस समय रूस के गिर्जेघर खोल दिये थे। गिर्जेघर खुलने के कुछ दिन बाद ही ईसाइयों का ईस्टर नामक त्यौहार पड़ा था। उस समय इंग्लैण्ड और अमरीका के कितने ही पत्र और पत्रिकाओं में मास्को के गिर्जाघरों में ईस्टर के उत्सव के चित्र छपे थे। उनमें गिर्जाघरों में अपार भीड़ दिखलायी पड़ती थी। आश्चर्य की बात यह थी कि उस भीड़ में बूढ़े लोगों की अपेक्षा युवक और युवतियों की संख्या अधिक थी। ऐसा समझा जाता था कि ज़ार के समय के बचे हुए लोगों में धार्मिक सस्कार भले ही कम रह गये हों, पर कम्यूनिस्ट शासन में पैदा हुए और शिक्षा पाये हुए रूसी युवक-युवतियों पर धर्म का रंग न चढ़ा होगा। किंतु ऐसा नहीं हुआ। युवक और युवतियों में जो नैसर्गिक आध्यात्मिक जिज्ञासा है वह कम्यूनिस्ट प्रचार से नष्ट नहीं की जा सकी। इस सबध में राहुलजी ने एक घटना सुनायी थी जो प्रासंगिक है। उनकी रूसी पत्नी कम्यूनिस्ट होते हुए की धर्म में विश्वास रखती थीं और उनके पुत्र में भी धार्मिक संस्कार पड़ गये थे। एक बार जब राहुलजी रूस गये हुए थे तब उनके रूसी पुत्र की अवस्था दस-बारह वर्ष की थी। एक दिन वह गिर्जाघर गया जिसमें कोई धार्मिक उत्सव (मास) हो रहा था। उसे लौटने में बहुत देर हो गयी। जब वह लौटा तो उससे इतनी देर से लौटने का कारण पूछा गया। उसने कहा कि आराधना के बाद पादरी श्रद्धालु लोगों पर अभिषिक्त जल छिड़कता है। लोगों का इतना लम्बा 'क्यू' लगा था कि पादरी के पास पहुँचने तक की मेरी बारी बड़ी देर से आयी। मैं पवित्र अभिषिक्त जल से अपने को सिंचित कराये बिना कैसे आ सकता था? इसीसे देर हो गयी। राहुलजी ने यह बात एक दूसरे संदर्भ में बतलायी थी, किंतु इससे प्रमाणित है कि स्टालिन के लौह शासन में भी रूसी जनता में धर्म के प्रति कितनी गहरी निष्ठा थी, और वह निष्ठा अधिक अवस्था के लोगों में सीमित न रहकर, युवकों और बालकों तक में थी। रूस को कई उन पत्रिकाओं में जो किशोरों और तरुणों के लिए निकाली जाती हैं, अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वहाँके गिर्जाघरों में काफी भीड़ होती है और पूजा करने वालों में अधिकतर युवक और युवतियाँ ही होती हैं। पचास वर्ष के सतत धर्म-विरोधी प्रचार के बाद रूस में धर्म के प्रति जनता की निष्ठा नष्ट करना तो दूर, कम भी नहीं की जा सकी। मालूम होता है कि रूस के यथार्थ-वादी शासकों ने इस तथ्य को समझ लिया है और वे धीरे-धीरे इस वास्तविकता से समझौता कर रहे हैं।

जगद्गुरु पर मुकद्दमा नहीं चल सका—पिछले वर्ष अगस्त के महीने में पटना में एक हिन्दू सम्मेलन हुआ था जिसमें गोवर्द्धनपीठ (पुरी) के जगद्गुरु, श्री शंकराचार्यजी ने एक भाषण दिया था। उस भाषण में अस्पृश्यता के सबंध में भी शास्त्रोय दृष्टि से कुछ विचार व्यक्त किये गये थे। गोवध-विरोधी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण जगद्गुरु से इस देश के कांग्रेसी तथा कई अन्य राजनीतिक दलों के लोग अप्रसन्न हैं। वैसे भी ये दल हिन्दूधर्म की अनेक परम्परागत मान्यताओं, जैसे, जाति, यज्ञ आदि के विरुद्ध हैं, और जगद्गुरु परम्परागत हिन्दू धर्म के प्रचारक हैं। अतएव यह स्वाभाविक है कि अनेक अंग्रेजी समाचारपत्र तथा विभिन्न राजनीतिक दलों के समर्थक पत्र उनके विरोधी हैं। उनके पटनावाले भाषण को तोड़ मरोड़कर प्रकाशित किया गया, और 'कौआ कान ले गया' की कहावत चरि-तार्थ हो उठी। जगद्गुरु के विरुद्ध गर्मागर्म लिखे लेख और भाषण दिये जाने लगे। नेता लोगों को वक्तव्य देने का अव-सर मिल गया, और जगद्गुरु के विरुद्ध वक्तव्यों का ताँता बँध गया। संसद में भी इसकी चर्चा उठी, और गृहमंत्री ने भी उनके विरुद्ध कड़ा वक्तव्य दिया। उन्होंने और प्रधान मंत्री ने सरकार की ओर से उन पर मुकद्दमा चलाने की बात भी कही। इस बीच समाजवादी दल की विहार युवजन सभा

के मंत्री श्री शिवानंद तिवारी ने पटना में जगद्गुरु के विरुद्ध मुकद्दमा दायर भी कर दिया। न्यायाधीश ने जगद्गुरु को अभियुक्त रूप में न्यायालय में बुलाने के पहिले उस सम्मेलन की वास्तविक कार्रवाई जान लेना उचित समझा, और उसकी जाँच के लिए एक मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये। गत मास के आरंभ में मजिस्ट्रेट (श्री सहाय) ने अपनी जाँच का प्रतिवेदन न्यायाधीश को दे दिया। इस जाँच के परिणाम-स्वरूप न्यायाधीश ने समाजवादियों द्वारा चलाया गया मुकद्दमा खारिज कर दिया क्योंकि उन पर मुकद्दमा चलाने के लिए कोई आधार नहीं मिला। मजिस्ट्रेट ने अपनी जाँच के प्रतिवेदन में कहा कि इस बात को प्रमाणित करने के लिए प्रमाण नहीं मिले कि जगद्गुरु ने 'अस्पृश्यता' का प्रचार किया था। पी० टी० आई० (प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया) के पटना स्थित प्रबंधक श्री घोष उस सम्मेलन में उपस्थित थे, और उन्होंने उनके भाषण का सारांश अपनी दैनंदिनी (डायरी) में लिख रखा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि जगद्गुरु ने कहा—"मैं कानून का सम्मान करनेवाला नागरिक हूँ और मैं अस्पृश्यता संबंधी कानून का उल्लंघन न करूँगा। किंतु मुझे कानून और अपने धर्म दोनों का सम्मान करने का अधिकार है।" मजिस्ट्रेट ने इस दैनंदिनी को साक्ष्य के रूप में अपने अधिकार में ले लिया था। मजिस्ट्रेट इस परिणाम पर पहुँचे कि जगद्गुरु ने अपने भाषण में अस्पृश्यता के पक्ष में प्रचार नहीं किया। उनका मत था कि वे स्वयं क्या करते हैं, यह कानून की परिधि में नहीं आता।

जब समाचारपत्रों में उनके विरुद्ध तूफ़ान उठाया जा रहा था तब जगद्गुरु ने स्पष्टीकरण करते हुए एक वक्तव्य दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि उस भाषण में मैंने 'हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता क्या वस्तु है, उसे समझाने का प्रयत्न किया था। मैंने कहा था कि "किन्हीं-किन्हीं विशेष अवसरों और स्थितियों में हम अपने परिवार के लोगों को भी अस्पृश्य मानते हैं," किंतु इस अस्पृश्यता का समाज में चलनेवाली अस्पृश्यता से कोई संबंध नहीं हैं। उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं संन्यासी हूँ किंतु मैं किसी भी बीमार या आपत्ति में पड़े हरिजन की सेवा के लिए सदैव तैयार हूँ। मैंने पटना में कहा था कि "मैं समाज के निम्नतम वर्ग की सेवा करने को तैयार हूँ और इस बात पर जोर देता हूँ कि हरिजनों तथा हिन्दू समाज के शेष लोगों में कोई भी भेदभाव न रहना चाहिए। हमें सिद्धान्ततः अपने मन से हरिजनों से भेदभाव की भावना मिटा देनी चाहिए और उन्हें हिन्दू समाज का समान अंग समझना चाहिए। तभी ये झगड़े दूर हो सकेंगे और समस्याएँ हल हो सकेंगी।

किन्तु जो लोग जगद्गुरु का विरोध करने पर तुले हुए थे। उन्होंने उनके स्पष्टीकरण पर ध्यान नहीं दिया। शंकराचार्य हिन्दू समाज के मान्य नेता और धर्मगुरु हैं। उनके लिए इन विरोधियों ने जिस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। भारत के ध्वज को अपमानित करनेवालों या कश्मीर को भारत से अलग करने की माँग करनेवाले लोगों के लिए इन लोगों की वाणी कुंठित हो जाती है। किसी अन्य धर्म के धर्मगुरु की किसी अप्रिय बात का विरोध करने का उनमें साहस नहीं है। रोमन कैथलिक नेता संताननिग्रह का विरोध करते हैं किन्तु उन्हें उनके विरुद्ध इस भाषा का उपयोग करने की हिम्मत नहीं होती। बड़े-से-बड़े हिन्दू-धर्म के गुरु के विरुद्ध अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते समय उनकी ज़बान तेज़ हो जाती है। हिन्दुओं को अपनी 'सहनशीलता' और 'उदारता' का मूल्य इस प्रकार चुकाना पड़ता है।

शकराचार्य जी धर्मगुरु हैं। हिन्दू धर्म की व्याख्या करने का उन्हें अधिकार है। यह उनका कर्तव्य भी है। हम उनकी व्याख्या मानने को विवश नहीं हैं, किन्तु हमें इस बात का अधिकार नहीं है कि हम उन्हें अपनी बात कहने से रोकें या उनकी ऐसी व्याख्या के लिए जिससे हम सहमत नहीं हैं, उनका अपमान करें।

जो भी हो, पटना की अदालत ने यह प्रमाणित कर दिया कि जगद्गुरु पर जो यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने अस्पृश्यता का प्रचार किया, तथ्यहीन है। जिन नेताओं और समाचारपत्रों ने इस तथ्यहीन आरोप को लेकर उन पर कीचड़ उछाला था, वे अब चुप हैं। अपनी गलती मान लेना और उसके लिए प्रायश्चित्त करना महात्माजी की तरह के महान् और साहसी लोगों ही का काम है।

आचार्य अत्रे का स्वर्गवास—गत मास मराठी के यशस्वी साहित्यकार श्री प्रह्लाद केशव अत्रे का ७१ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। आचार्य अत्रे व्यक्ति नहीं थे, वे संस्था थे। उनकी प्रतिभा जितनी बहुमुखी थी,

[शेष पृष्ठ ७१ पर देखिये

बत्तीस विद्याएँ और चौंसठ कलाएँ

श्री मण्डन मिश्र

भारत का प्राचीन शिक्षा क्षेत्र कितना व्यापक था, इसका पता उस समय के पाठ्यक्रम पर एक दृष्टि डालने से लगता है। जिन विद्या तथा कलाओं की उस समय शिक्षा होती थी, उनके सम्बन्ध में रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य आदि ग्रन्थों में जानने योग्य बहुत सामग्री भरी पड़ी है। परन्तु उनका थोड़े में बहुत सुन्दर ढंग से विवरण शुक्लाचार्य के "नीतिसार" नामक ग्रन्थ के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण में मिलता है। इसमें वे लिखते हैं कि विद्या और कलाएँ अनन्त हैं। इन सबके नाम भी नहीं गिनाये जा सकते। परन्तु उनमें विद्या ३२ और कलाएँ ६४ मुख्य हैं। इन दोनों का भेद बतलाते हुए आचार्य लिखते हैं कि जिसमें सम्पूर्ण रूप से वाणी का उपयोग किया जाता है वह "विद्या" है, और जिसको एक मूर्ख भी, जो वर्णों का शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकता, कर सके वह "कला" है—"यद् यत् स्याद् वाचिकं सम्यक् कर्म विद्याभिसंज्ञकम्। शक्तो मुकोपि यत् कर्तुं कलासंज्ञन्तु तत् स्मृतम्।" इन ३२ विद्याओं में चार वेद "ऋक्, यजु, साम, अथर्व"; ४ उपवेद "आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व और तन्त्र"; ६ वेदांग 'शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष'; ६ दर्शन "मीमांसा, न्याय, सांख्य, वेदान्त, योग आदि"; इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिक मत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, काव्य, देशभाषा, अवसरोक्ति, यवनमत, और देशादि धर्म हैं।

आचार्य ने इन सबके लक्षण तथा परिभाषा बतलायी है। संहिता और ब्राह्मण भाग वेद कहा जाता है। संहिता भाग में मंत्रों का संग्रह है। जिसको उच्चारण करके किये हुए जप, होम, पूजन आदि देवताओं की प्रीति सम्पादन करनेवाले होते हैं, वह 'मन्त्र' है। मंत्रों का उपयोग कहाँ और कैसे किया जाता है, उसे बतलाने वाला वेद-भाग 'ब्राह्मण' कहलाता है। जिस वेद में गायत्री आदि छन्दों के रूप में मंत्र अधिक संख्या में हों और जिन मन्त्रों से यज्ञों में हौत्र नामक कर्म सम्पादित होता है, वह ऋग्वेद है, जिसमें अनेक मंत्र एक में मिलाकर पढ़े जाते हैं, और वे भी प्रायः किसी-छन्द विशेष के रूप में नहीं होते, एवं जिनसे अध्वर्यु 'यज्ञ' का एक ऋत्विक को कर्म करने की आज्ञा होती है, वह "यजुर्वेद" है। जिसमें भिन्न-भिन्न ऋचाओं पर विशिष्ट पद्धति से गीतियुक्त मन्त्र हैं, वह "सामवेद" है। उसके मंत्रों का उपयोग यज्ञों में—उद्गाता आदि याज्ञिक-गणों द्वारा विशिष्ट रीति से उच्चारण में होता है। जिस वेद भाग में उपास्य देवताओं की उपासना के अनेक मंत्र हैं, वह "अथर्व" कहा जाता है। हिन्दूशास्त्र में वेदों को अनादि अपौरुषेय एवं स्वतः प्रमाण मानते हैं। इन चारों वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। उनमें कुछ तो अभी उपलब्ध हैं, और उनकी अध्ययनाध्यापन परम्परा प्रचलित है। यद्यपि काल की महिमा से वेद पढ़नेवाले कम होते जाते हैं तथापि वाराणसी, नासिक आदि कतिपय स्थानों में ब्राह्मणों ने यह परम्परा अभी तक उज्जीवित रक्खी है। हजारों की संख्या में वेदों के मंत्र इनको कण्ठ है। पाठ में एक स्वर या मात्रा भी इधर-उधर होने नही पाती। इनके यहाँ यह परम्परा कब से चली आ रही है यह कहना कठिन है। इन वेद-पाठियों की स्मरणशक्ति देखकर आश्चर्य होता है।

इन चारों वेदों मे प्रत्येक का एक-एक उपवेद है। 'आयुर्वेद" ऋग्वेद का उपवेद माना जाता है। इसमें रोगों की पहचान, उनको उत्पत्ति के कारण, चिकित्सा आदि का वर्णन है। इसे जानकर तदनुकूल आचरण करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम रहता है और आयु बढ़ती है। इसीलिए यह "आयुर्वेद" कहलाता है। इसमें आकृति अर्थात् शरीर-रचना और औषधि या चिकित्सा दोनों आ जाते है। "धनुर्वेद" यजुर्वेद का उपवेद है। इसमें युद्ध सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन है। अनेक शस्त्रास्त्रों के निर्माण करने की विधि, उनके चलाने के उपाय, अनेक प्रकार की व्यूह रचनाएँ आदि विषय इसमे विस्तारपूर्वक बतलाये गये हैं। प्राचीनकाल में शस्त्रास्त्रों में धनुष मुख्य था। इसीलिए उसके नाम पर इस उपवेद का नाम धनुर्वेद है। "गान्धर्ववेद" सामवेद का उपवेद है। इसमें उदात्त, अनुदात्त आदि भेद से वीणा तथा कंठ से निकलनेवाले षड्ज, ऋषभ आदि ७ स्वरों से ताल के साथ गाने की विधि कही गयी है। इसमें "वोलकंठ" और "इन्सट्रूमेन्टल" (तंत्री) दोनों गान आ जाते हैं। 'तंत्र' अथर्ववेद का उपवेद है। इसमें अनेक उपास्य मंत्रों की उपासना की विधियाँ, प्रयोग और उपसंहार के साथ मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि षटकर्मो के प्रकार का, उनके ही नियम आदि विशिष्ट प्रयोगों के साथ

फा० ६

विषद वर्णन है। आजकल के लोग इन्हें 'टोना टामर' भले ही कहें, पर उनकी उपयोगिता को स्वर्गीय श्री वुडरफ सरीखे विद्वानों ने भी स्वीकार की है।

यहाँ तक ४ वेद और इनके चार उपवेदों का संक्षेप में वर्णन किया गया, अब वेदों की शिक्षा से लेकर ज्योतिष तक जो ६ अंग हैं, उनका वर्णन किया जाता है। उदात्त आदि स्वर भेद से ह्रस्व, दीर्घ आदि; काल भेद से कंठ तालु, आदि, स्थान भेद से, एवं बाह्य आभ्यन्तर प्रयत्नों के साथ पढ़ने की विधि को "शिक्षा" कहा जाता है। शिक्षाएँ प्रत्येक वेद की पृथक्-पृथक् एवं अनेक हैं। इसे वेद की "घ्राणेन्द्रिय" कहा गया है। शिक्षा के बाद "कल्प" है। इसके दो भेद हैं- एक श्रौत और दूसरा स्मार्त। श्रौत कल्प में ब्राह्मण नाम के वेद भाग में कहे गये कर्मों के प्रयोग की विधियाँ बतलायी गयी हैं। स्मार्त कल्प में उपनयन आदि संस्कार एवं अन्यान्य स्मार्त कर्मों की विधियाँ कही गयी हैं। यह कल्प प्रत्येक शाखाओं के अलग-अलग हैं। ये वेदों के "हाथ" माने गये हैं। व्याकरण में धातु, प्रत्यय, सन्धि, समास, लिंग आदि भेदों से शब्दों का साधन किया गया है। इसे जानने से शब्दों का शुद्धि, अशुद्धि का ज्ञान होता है। बोलने में शब्दों की शुद्धता एवं अशुद्धता का ज्ञान होना परमावश्यक है। व्याकरण वेद का "मुख" है। पता चलता है कि प्राचीन काल में ऐन्द्र, चान्द्र आदि कई व्याकरण प्रचलित थे, किन्तु आज वे प्रायः नाम शेष रह गये हैं। केवल पाणिन का संस्कृत व्याकरण ही विशेष प्रचलित है। निरुक्त में शब्दों का 'निरवचन' निष्कर्ष से कथन किया गया है, और वाक्यों के अर्थों का एकार्थ रूप में संग्रह किया गया है। यह वेदों के शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ बतलाता है। इसलिए इसे वेदों के 'कान' कहते हैं। पहले कई निरुक्त थे--ऐसा समझा जाता है, किन्तु आजकल यास्काचार्य रचित निरुक्त ही उपलब्ध है। 'छन्द' में मगण आदि गणों के भेदों से पद्य रचना की शैली का वर्णन है। गायत्री आदि वैदिक एवं आर्या आदि लौकिक छन्द है। 'छन्द' वेद का ५ वाँ अंग है। यह वेद का 'चरण' कहा जाता है।

छन्द के ग्रन्थों में तपिंगलकृत सूत्र प्रधान है। ज्योतिष में नक्षत्र, ग्रहों की गतियों से, संहीता, होरा एवं गणित आदि द्वारा पृथक्-पृथक् काल का निर्देश किया गया है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह अश्वनी आदि ज्योति द्वारा काल का बोध कराने के कारण उसको 'ज्योतिष' कहते है। काल का ज्ञान यज्ञ आदि कर्मों के लिए उपयुक्त हैं। यह शास्त्र वेद का 'नेत्र' माना जाता है। लब्धाचार्य 'वेदांग ज्योतिष' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ज्योतिष का विषय बड़ा गम्भीर और साथ ही अति मनोरंजक है। इसकी सहायता से प्राणी के भूत, वर्तमान, भविष्य के सुख-दुख आदि भोगों का पता लग सकता है। भारत में किसी समय यह शास्त्र बड़ी उन्नति पर था।

यहाँ तक अंगों का दिग्दर्शन कराया गया। आगे ६ दर्शनों का संक्षेप में विवरण किया जाता है। मीमांसा 'में अपूर्व, नियम, परिसंख्या आदि विधि भेद और अर्थवादादि भेद से वेद वाक्यों के अर्थ लगाने की पद्धति कही गयी है। इसे पूर्व मीमांसा भी कहते हैं।' विना इसकी सहायता के वेद वाक्यों का समन्वय नहीं किया जा सकता। इसके प्रधान आचार्य जैमिनि हुए हैं। ये वेद व्यास बादरायण के शिष्य थे। इन्होंने मीमांसा शास्त्र के 'अथातोधर्म जिज्ञासा' आदि सूत्रों का निर्माण किया है। इन सूत्रों का शबर स्वामी ने भाष्य किया है। कुमारिल भट्ट आदि और भी कई आचार्य इस शास्त्र के हुए हैं। 'न्याय' में भाव, द्रव्य, गुण आदि ६ पदार्थ' और अभावों का प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से युक्तिपूर्वक विचार किया है। इसमें दो भेद हैं—एक न्याय और दूसरा वैशेषिक। इन दोनों के मतों में अधिक अन्तर न होने से शुक्राचार्य ने इन दोनों को न्याय ही कहा है। न्याय के प्रधान आचार्य गौतम हुए हैं और वैशेषिक के कणाद्। न्याय मत के अनुसार प्रमाण, प्रमेय आदि १६ तत्त्वों के यथार्थ ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। कणाद् द्रव्य, गुण आदि ६ पदार्थो के तत्व ज्ञान से मुक्ति मानते हैं। गौतम के मतानुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये ४ प्रमाण हैं। किन्तु कणाद् प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानकर अन्य का उन्हींमें अन्तर्भाव करते हैं। गौतम के मत में प्रमेय आदि १५ तत्व इस प्रकार हैं—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रत्यभाव, फल, दुख, अपवर्ग, ये बारह प्रमेय हैं। संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त यहाँ १४ प्रकार का है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण, अभुपगम्, अवयव, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास। इसके ५ भेद हैं—सभ्य विचार, विरुद्ध, प्रकरण सम, साध्यसम और कालातीत। 'छल' यह वाक्छल, सामान्य छल, उपचार छल, इस तरह ३ प्रकार का है।

कणाद् के मतानुसार भाव रूप पदार्थ ६ हैं—१ द्रव्य, २—गुण, ३—कर्म, ४—सामान्य, ५—विशेष और ६—समवाय। इनके अतिरिक्त अभाव रूप एक ७वाँ पदार्थ भी माना जाता है। उक्त पदार्थों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल दिशा, आत्मा और मन, ये ९ द्रव्य हैं। रूप, रस, गण, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परकत्व, अपरकत्व गुरुत्व, द्रव्यत्वं स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म ये २४ गुण माने जाते हैं। उतक्षेपण 'उछालना' 'औक्षेपण, "फेंकना", आकुंचन "सिकोड़ना" प्रसारण, "फैलाना" गमन, "चलना" ये ५ कर्म हैं। पर और ऊपर यह दो प्रकार का "समान्य" है। विशेष अनन्त है, समवाय एक है। अभाव ४ प्रकार का है—१—प्रागभाव, २—प्रध्वंसा भाव, ३—अन्योन्याभाव, और ४—अत्यन्ताभाव, सांख्य का विषय २५ तत्व है, तत्वों की निश्चित संख्या की विशेषता इसमें होने से इनका नाम 'खर्साय' है, इसके मुख्य आचार्य कपिल हुए हैं। इन्होंने सांख्य सूत्रों द्वारा अपने सिद्धान्त को व्यक्त किया है आध्यात्मिक, आदि दैविक, आदि भौतिक तापों की अत्यन्त निवृत्ति को यह पुरुषार्थ मानते हैं। २५ तत्वों में १ पुरुष है जो कूटस्थ होने से न किसीका कारण है न विकार। २ मूल प्रकृति, ३ महातत्व, ४ अहंकार, ५–९ पूतन् मात्राएँ "शब्द'स्पर्श, रूपरस, गन्ध" १०-१४ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंच्चीकृत ५ महाभूत, १५-१९ हस्त, पाद, वाणी, मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय ये ५ कर्मेन्द्रिय, २०-२४, कान त्वचा, नेत्र, रसना, नाक ये ५ ज्ञानेन्द्रिय और २५ वाँ मन, इस तरह सांख्य मतानुसार ये २५ तत्व हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण उन्हें सम्मत है। वेदान्त में सजातीय, विजातीय, स्वगत, सर्वविध भेद रहित, अद्वितीय, नित्य निरतिशय, वृहत्, सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म ही एक सद्वस्तु प्रतिपाद्य है। ब्रह्मा तिरिक्त सर्व प्रपञ्च रज्जु में प्रतीत होने वाले सर्प के जैसा मिथ्या है। वस्तुत; न होते हुए भी सर्वज गत्की प्रतीति अज्ञान रूप से होती है। "ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यान्नाना नेहास्ति किच्चन। मायिकं सर्वमज्ञानादभाति वेदान्तिनां मतम्॥" यहाँ एक वात वड़े मार्के की है शुक्राचार्य ने जो मत 'वेदान्त' कहकर लिखा है उस पर ध्यान देने से यह स्पष्ट रूप से ही जाना जा सकता है कि शुक्राचार्य के पहले या उनके समय में 'वेदान्त मत' के नाम से कौन सिद्धान्त प्रचलित था। यह शांकर मत सिद्धान्त के अतिरिक्त दूसरा कोई हो ही नहीं सकता क्योंकि अन्य वेदान्तियों को ब्रह्म की अद्वितीयता एवं तद्वेतरिक्त प्रपंच का मिथ्यात्व कथमपि सम्मत नहीं। अतः इससे सिद्ध है कि शंकर सम्मत सिद्धान्त ही मुख्य वेदान्त है। इसके मुख्य आचार्य भगवान् श्रीनारायण हैं। महर्षि वादरायण व्यास के वेदान्त सूत्र सुप्रसिद्ध हैं। योग में चित्त की प्रवृत्तियों के निरोध का उपाय वर्णित है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास से अन्तःकरण की वृत्तियों का निरोध होता है। समाधि दो प्रकार की है—समप्रज्ञात और असमप्रज्ञात। समाधि द्वारा प्रकृति और पुरुष का पृथक् विवेचन हो जाने से प्रकृति का व्यापार वन्द हो जाता है और इसीसे मुक्ति होती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ५ "यम" हैं। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये ५ "नियम" हैं। पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि अनेक आसन हैं। योग की साधना से अणिमा आदि ८ प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जिनसे चमत्कार दिखाये जा सकते हैं। मेसमेरिज्म, हिप्नोटिज्म आदि इसी योग की निम्नकोटि की सिद्धियाँ हैं, जिनके द्वारा आजकल वहुत से लोग तमाशा दिखलाकर पैसा पैदा करते हैं। किन्तु विवेकी पुरुष सिद्धियों के चक्कर में न फँसकर परमसिद्धि—मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं। सिद्धियाँ परम सिद्धि के मार्ग में वाधक हैं। विना अच्छे जानकार गुरु की सहायता के केवल पुस्तकों के सहारे योग का अभ्यास करना हानिकर है। यहाँ तक वेद, उपवेद, वेदांग तथा दर्शनों का लक्षण वतलाकर आगे "इतिहास" का स्वरूप वतलाया गया है। इतिहास के वाद "पुराण" का लक्षण कहा गया है। 'सर्ग सृष्टि' 'प्रतिसर्ग' 'प्रलय', 'वंश' महान् पुरुषों के कुल मन्वन्तर, किस मनु का कितने समय तक अधिकार होता है यह, और 'वंशानुचरित' महान् पुरुषों के कुल चरित्र का वर्णन जिसमें मुख्य रूप से किया गया हो उसे "पुराण" कहते हैं। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत्, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड ये १८ पुराण हैं। इनके रचयिता वादरायण महर्षि व्यास हैं। श्रीमद्भागवत के स्थान में कोई-कोई देवी भागवत् को पुराण मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के मतानुसार पुराणों की श्लोक संख्या (एक श्लोक ३२ अक्षर) इस प्रकार है—१००००, ५९०००, २३०००, २४०००, १८०००, २५०००, ९०००,

१५४००, १४५००, २८०००, ११०००, २४०००, ८१-०००, १००००, १७०००, १८०००, १९०००, १२०००।

इस तरह सबकी सम्मिलित संख्या ४३२९०० होती है। कई दृष्टियों से पुराणों का बड़ा महत्त्व है। १८ पुराणों के समान अन्यान्य महर्षियों से रचित कई उपपुराण भी हैं। बहुतों का विश्वास है कि उपपुराण वैसे प्राचीन नहीं है, किन्तु आधुनिक उपलब्ध उपपुराणों में कुछ प्रक्षिप्त वचन हों तो भी मूल उपपुराण अति प्राचीन काल से हैं, इसमें सन्देह नहीं। ई० सन् की ११वीं शती के अन्तिम भाग में सद्गुरु शिष्य ने अपनी "वेदार्थदीपिका" में नृसिंह उप-पुराण से श्लोक उद्धृत किये हैं। उसके पहले मुसलमान पण्डित अल्बेरूनी अपनी भारत यात्रा के वर्णन में नन्द, आदित्य, सोम, साम्ब और नृसिंह आदि उपपुराणों का उल्लेख किया है। उपपुराणों के नाम यह हैं—सनत कुमार नृसिंह, वृहन्नाद, शिव या शिव धर्म, दूर्वासस, कापिल, मानव, औशनस, वारुण, कालिका, साम्ब, नन्दकेश्वर, सौर, पारासर, आदित्य, ब्रह्माण्ड, माहेश्वर, भागवत्, वासिष्ठ, कौर्म, भार्गव, आदि, मुदगल, कल्कि, देवी, महाभागवत्, वृहद्धर्म, परानन्द और पशुपति।

पुराणों की ओर आधुनिक विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। ऊटपटांग दन्तकथाएँ समझकर ही उन्हें छोड़ दिया गया है। परन्तु उनमें समाजशास्त्र, इतिहास, संस्कृति सम्बन्धी कितनी ही सामग्री भरी पड़ी है। अंग्रेज विद्वान् पारजिटर ने इस ओर कुछ ध्यान दिया था, परन्तु संस्कार भिन्न होने के कारण उनका प्रयत्न असफल ही रहा। पुराणों के बाद स्मृति का लक्षण है। स्मृति में वेद के अविरुद्ध अर्थात् वेदानुकूल—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णों के, एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास, आश्रमों के तथा वर्णांतरों के धर्मों का स्मरण तथा अर्थशास्त्र का वर्णन है। धर्म का निर्णय करने में वेदों के बाद स्मृतियों का ही स्थान है। स्मृतियाँ अनेक हैं। इनमें मनु, अत्रि, हारीत, याज्ञवल्क्य, उषना, अंगिरा, यम, आपस्तम्भ, समव्रत, कात्यायन्, वृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ट ये २० मुख्य हैं। इनके अध्ययन से पता लगता है कि अपने यहाँ कानून का प्राचीन भाग कितना व्यापक था। पाश्चात्य विद्वानों में रोम के कानून सम्बन्धी ज्ञान की बड़ी प्रशंसा है, परन्तु उसके उत्थान के सहस्रों वर्ष पूर्व अपने यहाँ कानून की जटिल समस्याओं पर कहीं विषद विवेचन मिलता है। स्मृति के आगे "नास्तिक" मत का उल्लेख है। इसमें युक्ति की ही प्रधानता है। वह अन्य आस्तिक सिद्धान्तों की तरह जगत् के कर्ता ईश्वर और वेद को नहीं मानता। उसके मत में सब वस्तु स्वाभाविक ही हैं—अकस्मात् अपने आप उत्पन्न हुई हैं। मनु वेद की निन्दा करनेवाले को ही "नास्तिक" बतलाते हैं। उनका तात्पर्य यह है कि ईश्वर, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि का बोध वेद से ही होता है। दूसरे प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों से ईश्वर आदि का अस्तित्व ही नहीं जाना जा सकता। इसलिए वेद की निन्दा जिसने की उसने मानों ईश्वर, परलोक आदि का खण्डन पहले ही किया। इसके चार्वाक दर्शन, लोकायतिक, आदि नाम भी हैं। इसके मुख्य आचार्य वृहस्पति हैं। नास्तिक मत में केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण माना गया है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु, ये ही ४ पदार्थ हैं। महुआ आदि पदार्थों में अन्यान्य वस्तु के सम्बन्ध से कालान्तर में जैसे मादक शक्ति उत्पन्न होती है, वैसे ही पृथ्वी आदि के संयोग से देह बन कर उसमें चैतन्य शक्ति आ जाती है। चैतन्य युक्त देह ही आत्मा है, देह से अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं। मृत्यु होना ही मुक्ति है। अच्छा खाना, पीना और खूब मौज करना, बस यही पुरुषार्थ है। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता इसी आदर्श का मूर्तिमान् उदाहरण है। उस समय की शिक्षा में इस नास्तिक मत का अध्ययन भी आवश्यक समझा जाता था क्योंकि बिना ऐसा किये पूर्व पक्ष का खण्डन करना कैसे सम्भव था? आगे "अर्थशास्त्र" के विषय में कहा गया है। इसमें वेद और स्मृतियों का विरोध न होते हुए राजा को अपना और राज्य का शासन किस तरह चलाना चाहिए इसका और धनोपार्जन करने के कुशल उपायों का वर्णन है। इस तरह इसमें राजनीति और अर्थशास्त्र दोनों आ जाते हैं। जो लोग समझते हैं कि धर्म का राजनीति, अर्थशास्त्र आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है, धर्म तो कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के आचरण की वस्तु है। सर्वसाधारण को धर्म के पचड़े में पड़ने का प्रयोजन नहीं, उन्हें शुक्राचार्य के लक्षण और भारतीय राजनीति, अर्थनीति आदि के ग्रन्थों का कुछ मनन करना चाहिए। अर्थशास्त्र के आगे 'कामशास्त्र' का उल्लेख है। "कामशास्त्र" में शशक, मृग, अश्व, हस्ती, भेद से पुरुषों का और अनुकूल, धृष्ट, शठ आदि भेद से नायकों का एवं पद्मिनी, चित्रिणी, शंखनी, हस्तनी, आदि भेद से स्त्रियों का और स्वकीया, परकीया,

साधारणीय आदि भेद से नायिका का वर्णन किया गया है। उनके परस्पर अनुराग आदि का लक्षण भी कामशास्त्र में वर्णित है। इससे स्त्री-पुरुषों के मानसिक भावों को भी समझने में बड़ी सहायता मिलती है। इसकी शिक्षा की उपयोगिता को अब पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। "कामशास्त्र" के सम्बन्ध में श्री हेवलाक ऐलिस, वेस्ट-मार्क ऐसे पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि प्राचीन भारतीय कामशास्त्र कई दृष्टियों से बहुत उच्चकोटि का है। तत्-पश्चात् "शिल्पशास्त्र" है, महल, किले, मकान, वगीचे, वापी, कूप, तड़ाग आदि का निर्माण और मरम्मत के प्रकार इस शास्त्र का विषय है। इसमें पूरी 'सिविल इन्जीनियरिंग' आ जाती है। मूर्तिकला का भी इसीमें समावेश है। इस तरह इस शास्त्र में 'आर्किटैक्चर' और 'स्कलप्चर' दोनों आ जाते हैं। एक बड़ी विशेषता यह है कि किस प्रकार, किस अनुपात के मकान बनाने से क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी इसमें उल्लेख है। इसे आजकल के लोग भले ही न मानें, पर यह होता अवश्य है। शिल्पशास्त्र के आधार पर बने हुए मन्दिर देखकर उनकी सुन्दरता पर विदेशी भी मुग्ध होते हैं। इस शास्त्र के कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं, पर खेद का विषय है कि उनके जानकारों का प्रायः अभाव सा हो रहा है।

इसके बाद अलिकृति है। इसमें सम, न्यून, अधिक रूप में सादृश्य आदि भेद से परस्पर के गुणों की भूषा वैचित्र्य का वर्णन होता है। इसे ही "अलंकार" भी कहते हैं। इसके बाद काव्य का लक्षण बतलाया है। शृंगार आदि रस युक्त, अनुप्रास, उपमा आदि अलंकारों से सुशोभित, एवं दुश्रव आदि दोषों से रहित शब्द और अर्थो का जो समुदाय हो उसे काव्य कहते हैं। उसके गद्य और पद्य ये दो भेद हैं। काव्य के सुननेवाले को एक विलक्षण अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। काव्य की रचना करनेवाला "कवि" कहलाता है। भारत में संस्कृत और भाषा के प्राचीन कवियों की सुन्दर कृतियों का इतना विशाल, अप्रतिम संग्रह है जो प्राचीनकाल से रसज्ञों के लिए रस वर्षण करता हुआ भी अब तक वैसा ही सरस बना हुआ है। न जाने इनमें कितना रस होगा। आगे देश की विद्या का लक्षण कहा गया है। भिन्न-भिन्न देशों में वहाँ के निवासी लोगों के द्वारा संकेत किये हुए पदार्थों का बिना प्रयास से ज्ञान करानेवाली वाणी को "देशकी" या देश भाषा कहते हैं। तत्पश्चात् "अवसरोक्ति" का स्वरूप बतलाया है। कोष या अन्यान्य शास्त्रीय भाषा परिभाषा रूप संकेत के बिना अवसर देखकर उसके अनुसार, अपने अभिप्राय को जिस वाणी से व्यक्त किया जा सकता है उसे "अवसरोक्ति" कहते हैं। फारसी में इसी का नाम 'हाजिरजवाबी' है। शिक्षा में इसकी बड़ी आवश्यकता है। सारे ग्रन्थ चाट कर भी बहुतों का समय पर ठीक उत्तर देने का अभ्यास नहीं होता। इसके बाद 'यावन-मत' का उल्लेख है जिसमें जगत् को चार्वाक की तरह आकस्मिक न बतलाकर उसका अदृश्य (जिसका दर्शन कभी न हो सके) ऐसा ईश्वर माना जाता हो और जिसमें पाप-पुण्य भी माने जाते हों, किन्तु उनके ज्ञान और उनके साधनों के ज्ञान का वेद स्मृति के बिना ही होना माना जाता हो, एवं जिसमें वेद विरुद्ध धर्मो का उपदेश किया गया हो, उसे यावन या यवनों का मत कहते हैं। यह बड़े मार्के की बात है जिससे उस समय के शिक्षा क्रम की उदारता का परिचय मिलता है। दूसरों का मत जानना बड़ा आवश्यक है, क्योंकि उससे अपने मत में दृढ निष्ठा होगी। 'यवन' शब्द प्रायः विदेशियों के लिए ही प्रयुक्त होता था। कुछ लोगों का मत है कि 'यवन' शब्द 'आयोनियन' का ही रूपान्तर है, जिससे अभिप्राय यूनानियों अर्थात् प्राचीन ग्रीस निवासियों से है। यह चाहे न भी हो, परन्तु इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि उस समय भी भारतीयों का विदेशियों से सम्पर्क था और उनके मत जानने की भारतीयों में उत्सुकता थी। इस तरह ३१ विद्याओं के लक्षण बतलाकर शुक्राचार्य ने अन्त में 'देशादि धर्म' को ३२ वीं विद्या कहा है। वे लिखते है कि भिन्न-भिन्न देश, कुल या जातियों में जो धर्म सदा से प्रचलित देखा जाता हो—चाहे उसके आधारभूत प्रमाण वेद, स्मृति आदि ग्रन्थों में मिलते हों या न भी मिलते हों—किन्तु जो लोगों के आचरणों में देखा जाता हो, उसे "देशादि धर्म जानना चाहिए। यहाँ आदि पद से कुल जाति को समझना चाहिए। इन धर्मो के आचरण पर बड़ा जोर दिया गया है, और इनके त्याग की कड़ी निन्दा की गयी है। युद्ध के परिणाम के विषय में अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से चिन्तित होकर यह शंका व्यक्त की थी कि युद्ध से पुरुषों का विनाश होने से स्त्रियाँ व्यभिचारणी हो जायँगी और उनसे वर्णसंकर उत्पन्न होंगे। उससे कुल धर्म, जाति धर्म आदि नष्ट हो जायँगे और लोगों का नरक में वास होगा। मनु, याज्ञवल्क्य ने राजा को इस बात की कड़ी हिदायत की है कि राजा यदि किसी अन्य देश पर अपना अधिकार करें तो उस विजित देश में जो जो देश जाति, कुल के धर्म उस समय प्रचलित हों उनके अनुसार ही वहाँ के शासन की व्यवस्था करें। शासन का यह कितना उदार भाव है ! इस तरह संक्षेप में ३२ विद्याओं का विवरण किया गया है। इसके बाद ६४ कलाओंका वर्णन मिलता है। (आगे कलाओं का वर्णन किया जायगा)।

भारतीय संस्कृति का प्रतीक : कमल

श्री अनवर आगेवान

फूल प्रकृति-सुषमा के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जिन्हें देखकर कोई भी आकर्षित हुए बिना नही रहता। इनमें कमल प्रमुख है, जो अपनी कमनीय कोमलता, मधुर सुगन्धि और सुन्दरता के कारण अन्य भारतीय फूलों से ऊँचा उठकर स्नेह, सौन्दर्य, पूर्णता और ज्ञान का प्रतीक बन गया है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक के साहित्य और भारतीय मानस पर कमल का जो प्रभाव पड़ा, वह अवर्णनीय है। कमल को सरोरुह, सरसिज, सरोज, पुण्डरीक, पुष्कर, पंकज, पद्म, राजीव, अम्बुज, अरविंद, इन्दीवर, वारिज, कंज, श्रीवास, शतपत्र आदि अनेक नामों से संबोधित किया गया है, जो उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। इसी प्रकार साहित्य और कला में कमल का वर्णन एवं चित्रण एक अपूर्व भावनामय प्रसून के रूप में हुआ है। एक संस्कृत कवि इसके सौन्दर्य और गुण से प्रभावित होकर कहता है—

लक्ष्मीः स्वयं निवसति
त्वयि लोकधात्री,
मित्रेण चापि विहितोऽस्ति
दृढोऽनुराग।
बन्दीव गायति गुणास्तव
चञ्चरीकः
कः पुण्डरीक तव
साम्यमुरीकरोति ॥

—हे कमल ! जगन्माता लक्ष्मी स्वयं तुझमें निवास करती हैं। सूर्य का भी तुझ पर विशेष अनुराग है। नित्य प्रति वन्दियों के सदृश भ्रमर तुम्हारे गुणों का गायन करते हैं। तुम्हारे सदृश सौभाग्य और किसका हो सकता है ?

कमल की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट एवं पुष्ट प्रमाण नही मिलते। फिर भी मानना पड़ेगा कि यह एक अत्यन्त प्राचीन पुष्प है। ऋग्वेद में सर्वप्रथम कमल का उल्लेख मिलता है। उर्वशी तथा मन से वसिष्ठ की उत्पत्ति के अवसर पर देवगण 'पद्म' लेकर उनकी अभ्यर्थना में उपस्थित होते हैं। इसी वेद में कई स्थानों पर नीलोत्पल का भी उल्लेख आया है। अथर्ववेद में कमल की दो किस्में, पुष्कर (नील कमल) और पुण्डरीक (श्वेत कमल), बतलायी हैं। कृष्ण यजुर्वेद में कमल पुष्पों का हार पहने नारायण के क्षीर सागर में योगनिद्रा में निमग्न होने का उल्लेख है।

अथर्ववेद में एक स्थान पर हृदय की उपमा कमल से दी गयी है। ऋग्वेद में भी बताया गया है कि 'गर्भाशय कमल के समान होता है तथा उसमें त्वग् (त्वचा) के संपर्क से उस गर्भ की उत्पत्ति होती है।'

तैत्तरीय ब्राह्मण में कमल का विशद् वर्णन है। पंचविंश ब्राह्मण में कमल की दो किस्मों, पुष्कर एव पुण्डरीक का वर्णन किया गया है। इसमें पुण्डरीक की उत्पत्ति नक्षत्र समूह की ज्योति से हुई बतायी गयी है। पुष्कर अश्विनी कुमारों का प्रिय पुष्प बतलाया गया है और स्थान-स्थान पर वे पुष्कर की माला पहने वर्णित किये गये हैं।

पुराणों में कमल के जन्म सम्बन्ध में एक रोचक कथा मिलती है, जिसमें बतलाया गया है कि कमल का जन्म सृष्टि के जन्म से भी पूर्व भगवान् की नाभि से हुआ, जिस पर चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। प्रजापति ब्रह्मा ने विश्व की उत्पत्ति की, जिसका विशद् वर्णन 'यमपुराण' के सृष्टि खंड के छत्तीसवें अध्याय में किया गया है। यम पुराण के अतिरिक्त मत्स्य पुराण, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में भी कमल के उल्लेख मिलते हैं।

यह तो प्रसिद्ध पौराणिक मान्यता है कि सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का जन्म विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुआ। इसीलिए ब्रह्मा को 'पद्मज' और विष्णु को 'पद्मनाभ' कहते हैं।

दार्शनिकों और साधकों की साधना में कमल प्रेरणा का प्रतीक है। जिस प्रकार कमल दिन भर प्रकाश की ओर अपना मुख किये रहता है और रात्रि के अन्धकार का आगमन होते ही अपने नेत्र मूंद लेता है, उसी प्रकार साधक सत्य और ज्ञान के प्रकाश की ओर उन्मुख होकर आत्मोन्नति की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

योग-साधना में कमल का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत करने के लिए जिन षट्चक्रों की परिकल्पना की गई है, वे कमलवत् ही हैं। कुण्डलिनी का मूलाधार ही पद्म है।

भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार कमल पवित्रता और अमरत्व का प्रतीक है, वह मानवजीवन का आदर्श है जो

कीचड़ में जन्म लेकर भी उसके ऊपर खिला रहता है। भगवद्गीता का एक श्लोक है—

> ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं
> त्यक्त्वा करोति यः।
> लिप्यते न स पापेन
> पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

जैसे कमल जल में रहकर भी उससे निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार मनुष्य को संसार में रहते हुए भी उससे अलग रहना चाहिए, कर्म करते हुए भी उनमें लिप्त नही होना चाहिए।

बौद्ध गाथाओं में कमल सर्जन का प्रतीक है। गाथाओं में वर्णित है कि सृष्टि के आरम्भ काल में आदि बुद्ध कमल से निकलती हुई ज्वाला के रूप में प्रकट हुए। बौद्धों का विश्वास है कि जब-जब बुद्ध जन्म लेते हैं तब तब कमल की कली जल के ऊपर निकल आती है, साथ ही वह उसके गुण एवं कार्यों के अनुसार विकसित-प्रफुल्लित अथवा मुरझाती रहती है। इस प्रकार जैन दर्शन में भी कमल का विशिष्ट स्थान है। बुद्ध की तरह जैन तीर्थंकार भी कमल पर बैठे हुए चित्रित किये गये हैं।

अद्वितीय भौतिक सौंदर्य के साथ ही आध्यात्मिक सौंदर्य से युक्त होने के कारण कवियों ने नायिकाओं के शरीर के विभिन्न अंगों—मुख, नेत्र, हाथ एवं पैरों की उपमा कमल पुष्प से दी है। 'ऋतुसंहार' में कालिदास ने शरद् का वर्णन करते हुए लिखा है :—

'लाल कमल के स्वरूपवाली, प्रस्फुटित नील-कमल रूपी नेत्रवाली, कमल के सदृश माधुर्यपूर्ण हास्यवाली मतवाली नारी के अनुरूप यह शरद् ऋतु तुम्हारी प्रसन्नता में वृद्धि-करे।'

इसी प्रकार 'रत्नावली' में वसंतक अपनी प्रियतमा से कहता है :—

'प्रिये, तुम्हारा मुख चन्द्र की भाँति प्रकाशमान है। तुम्हारे नेत्र कमल-कलियों के समान सुशोभित हैं और तुम्हारे हाथ पूर्ण विकसित हैं।'

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में कमल का प्रयोग ऋतु-वर्णन एवं उपमाओं के रूप में हुआ है। संस्कृत के सिवाय अन्य हिन्दी और ब्रज के कवियों ने भी इसे अपने शृंगारिक छंदों में बाँधा है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो अपने भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के मुख को ही—'अरविन्द सौ आनन' कहकर सम्बोधित किया है।

महाकवि सूरदास ने भी कमल को अपनाया है :—

> सुन्दर श्याम कमल दल लोचन,
> सूरदास सुखदाई।

या यह पद देखिए—

> सुभग शीतल कमल लोचन,
> त्रिविध ज्वाला हरन।

साहित्य के अतिरिक्त स्थापत्य तथा मूर्तिकला में भी इसको विशेष स्थान प्रदान किया गया है। उदयगिरि, भारहुत, अजन्ता, साँची की गुफाएँ स्तूप तथा खजुराहो के मंदिर कमल-शिल्प से भरे पड़े हैं। अशोक के स्तम्भों में जो ऊपर छत्र बने हैं वे उलटे कमल पुष्प ही हैं।

कमल की श्रेष्ठता के कारण हमारे गणराज्य में पद्म-श्री, पद्मभूषण, पद्म-विभूषण अलंकरणों (उपाधियों) के नाम रखे गये।

इस प्रकार कमल भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला का प्राण है।
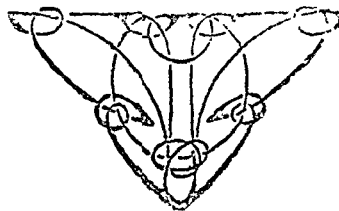
आर्थिक संकट और राजस्व नीति

श्री शंकरसहाय सक्सेना भूतपूर्व शिक्षा निदेशक राजस्थान

भारत जब स्वतंत्र हुआ तो देश में एक उल्लास था और सर्वसाधारण को यह आशा थी कि देश में निर्धनता और बेकारी समाप्त होगी और भारत की कोटि-कोटि जनसंख्या जो आज पशुवत् जीवन व्यतीत करती है उसे भी मानवोचित जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होगा। पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की गईं और आर्थिक विकास के लिए विशाल क्षेत्र मे प्रयत्न किए गए। इसमें तनिक भी संदेह नही कि एक वर्ग-विशेष के आंगन में धन की वर्षा हुई वह नही जानता कि उस धन का वह क्या करे। नम्बर दो का रुपया उसकी गुप्त तिजोरियों में भरा हुआ है और वह भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक की मैट्रिक नीति को विफल करता है तथा देश मे भ्रष्टाचार को पनपा रहा है। परन्तु अधिकांश भारतीय आज भी अत्यन्त निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहे है और उनके जीवन में पहले जैसी ही निराशा और अंधकार व्याप्त है। इस परिस्थिति के लिए बहुत से कारण उत्तरदायी हैं परन्तु हम यहाँ देश की राजस्वनीति के सम्बन्ध मे ही अध्ययन करेंगे।

देश की राजस्व नीति देश की आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए परन्तु कतिपय राजनीतिक स्थिर स्वार्थो के कारण हमारी सरकार सही राजस्व नीति को अपनाने का साहस नही करती। यदि हम ध्यान से देखें तो हमारी राजस्वनीति नीचे लिखी बातो से प्रभावित है :—

(१) स्वतंत्रता के उपरान्त एक पृथक् वर्ग उत्पन्न हो गया है जो अपने राजनीतिक प्रभाव के कारण भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को अनावश्यक अनुत्पादक व्यय करने पर विवश करता है। लाखों की संख्या में ऐसी संस्थाएँ स्थापित हैं जिनको मिलनेवाले राजकीय अनुदान वास्तव में उनके मुख्य कार्यकर्त्ताओं की आजीविका का साधन है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक अनुत्पादक और अनावश्यक व्यय करते रहने पर सरकार विवश है। होना तो यह चाहिए था कि जो देश गरीब है वह अनुत्पादक और अनावश्यक व्यय को समाप्त कर आवश्यक परन्तु अनुत्पादक व्यय को कम से कम रखकर उत्पादक व्यय को बढ़ाये। उसके स्थान पर पिछले वर्षो में भारत सरकार तथा राज्य सरकारों का व्यय जिस तेजी से बढ़ा है उसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता।

(२) जो सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगधंधे खड़े किये गये हैं उनकी अक्षमता के कारण वे देश पर एक आर्थिक भार बन गये हैं।

(३) कृषि क्षेत्र पर सरकार कोई कर लगाने का साहस नहीं करती।

(४) राज्य सरकारें निरन्तर घाटे का बजट बनाती हैं और रिजर्वबैंक से अधिविकर्ष (ओवर ड्राफ्ट) लेकर काम चलाती हैं।

(५) भारत सरकार अनुत्पादक और अनावश्यक व्यय को बढ़ने से न रोक सकने के कारण घाटे की अर्थव्यवस्था को स्वीकार करने पर विवश है और नोट छापकर काम चलाती है।

खेती से होने वाली आय

पिछले २१ वर्षो में जहाँ जमींदारी तथा जागीरदारी समाप्त हो गई वहाँ एक समृद्धिशाली और अधिक आयवाले कृषक वर्ग का उदय हुआ है, और उसकी वार्षिक आय बहुत अधिक है। भारत की संकुल वार्षिक राष्ट्रीय आय २९ हजार करोड़ रुपये है जिसकी आधी कृषि से प्राप्त होती है। अर्थात् कृषि से १४५०० करोड़ रुपये की आय प्राप्त होती है। राज्य सरकारों द्वारा उस पर केवल ११ करोड़ रुपये कृषि आयकर के रूप मे लिया जाता है। (कुछ राज्य तो ऐसे है जहाँ कृषि आयकर लगाया ही नही गया है। इसके अतिरिक्त देश भर में १०९ करोड़ रुपये मालगुजारी के रूप में इकट्ठा किया जाता है। इसकी तुलना में गैर कृषि आय पर आयकर प्रतिवर्ष ६८८ करोड़ रुपये और १२ करोड़ रुपये सम्पत्तिकर (वैल्थ टैक्स) के रूप में इकट्ठा किया जाता है।

कहा जा सकता है कि करोड़ों छोटे-छोटे किसानों से कृषि आयकर इकट्ठा नही किया जा सकता। परन्तु भारत मे भूमि भी अपेक्षाकृत थोड़े बड़े किसानों के पास केन्द्रित हो गई है। देश की संकुल कृषि भूमि की ६४ प्रतिशत कृषि भूमि बड़े किसानों के पास है जिनकी कृषि आय ६००० करोड़ रुपए की है। यदि इन बड़े किसानों से केवल ५ प्रतिशत भी कृषि आयकर लिया जावे तो प्रतिवर्ष ३०० करोड़ रुपयो की आय हो सकती है। परन्तु सरकार इन किसानों

पर उनके राजनीतिक प्रभाव के कारण आयकर लगाने का साहस ही नहीं करती। देश के सभी अर्थशास्त्री इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि कृषि आय पर कर लगाना चाहिए; कृषि क्षेत्र पर अपेक्षाकृत बहुत कम कर-भार है परन्तु लोकसभा में बड़े किसानों का वर्ग इतना प्रभावशाली है कि सरकार पंगु है। अभी श्री मुरारजीभाई देसाई ने साहस करके केवल पाँच करोड़ रुपये का कृषि भूमि पर सम्पत्ति कर (वैल्थ टैक्स) लगाने का प्रस्ताव रक्खा है परन्तु उसका ऐसा कड़ा विरोध हुआ है कि यह आशंका होने लगी है कि वह नाम मात्र का बहुत बड़े किसानों पर जिनके पास बहुत अधिक भूमि है सम्पत्तिकर अन्त में लगाया नहीं जा सकेगा।

यदि हम स्वतंत्रता के उपरान्त कृषि आयकर तथा मालगुजारी से होने वाली आय का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जावेगा कि कृषि की आय पर कर-भार बहुत कम है। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल (१९५१-५६) में समस्त राज्य सरकारों को अपनी संकुल आय की २८ प्रतिशत आय मालगुजारी और कृषि आयकर से प्राप्त होती थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना काल (१९५६-६१) में वह प्रतिशत घट कर २६ प्रतिशत, तीसरी योजना काल (१९६१-६६) में १९ प्रतिशत रह गया। तीसरी योजना के समाप्त होने पर भी मालगुजारी तथा कृषि आयकर से होने वाली आय का प्रतिशत घटता ही जा रहा है। १९६८-६९ में सब राज्यों की संकुल आय ११५९ करोड़ रुपये थी जिसमें कृषि आयकर तथा मालगुजारी से होनेवाली आय केवल १२० करोड़ रुपये अर्थात् केवल १० प्रतिशत थी।

क्योंकि शहरों की वोटों का राजनीतिज्ञों के लिए अधिक महत्त्व नहीं है अतएव यदि शहरी आय पर कर लगता है तो उसका विशेष विरोध नहीं होता। इसी बजट में दस हजार से बीस हजार रुपये वार्षिक गैर कृषि आय पर कर भार बढ़ा दिया गया परन्तु उसका विरोध नहीं हुआ। कृषि आय पर तनिक भी कर लगाने का सरकार साहस नहीं करती।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग

पिछले वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों का तेजी से विकास हुआ है और निर्धन देशवासियों का अरबों-खरबों रुपया उनमें लगा है। आशा थी कि इन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों से राष्ट्र को जो आय होगी उससे विकास के कार्य को और अधिक गति दी जा सकेगी। परन्तु इन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्यक्षमता और व्यावसायिक कुशलता इतने निम्नस्तर की है कि उनमें लाभ के स्थान पर हानि होती है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों सम्बन्धी निम्नलिखित आँकड़ों से स्थिति स्पष्ट हो जावेगी।

१९६२-६३ में सार्वजनिक क्षेत्र के सभी औद्योगिक संस्थानों में २२८७ करोड़ ३३ लाख की पूँजी लगी हुई थी जिस पर ६७ करोड़ ३४ लाख रुपये अर्थात् २·९ प्रतिशत लाभ हुआ।

१९६३-६४ में २६३५ करोड़ एक लाख रुपये की पूँजी पर ६८ करोड़ अर्थात् २·६ प्रतिशत का लाभ हुआ।

१९६४-६५ में २९४९ करोड़ ६२ लाख रुपए की पूँजी पर २७ करोड़ ४० लाख रुपए का अर्थात् ०.९ प्रतिशत का लाभ हुआ।

१९६५-६६ में ३४१८ करोड़ १३ लाख रुपये की पूँजी पर २२ करोड़ ९६ लाख रुपये अर्थात् ०·७ प्रतिशत का लाभ हुआ।

१.६६-६७ में ४४१६ करोड़ १४ लाख रुपये की पूँजी पर ११ करोड़ ६३ लाख रुपये अर्थात् ०·३ प्रतिशत की हानि हुई।

१९६७-६८ में ४६७५ करोड़ ३४ लाख रुपये की पूँजी पर ४२ करोड़ ५८ लाख रुपये अर्थात् एक प्रतिशत का घाटा हुआ।

१९६८-६९ में भी सब मिलाकर ३५ करोड़ रुपये का घाटा हुआ था।

१९६९-७० में जो बजट लोकसभा के सामने उपस्थित किया गया उसमें आशा व्यक्त की गई है और अनुमान लगाया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र में लगी हुई कुल ५१३७ करोड़ ४८ लाख रुपये की पूँजी २३ करोड़ १९ लाख अर्थात् ०·५ प्रतिशत लाभ होगा। यह लाभ का अनुमान अतिशयोक्तिपूर्ण है और यदि वर्ष के अन्त में घाटा न हो तो अहोभाग्य मानना चाहिए। परन्तु यह अनुमान सही भी निकले तो कुल पूँजी पर ०·५ प्रतिशत लाभ होगा। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखने की है। उनमें राज्य को एकाधिकार प्राप्त है उन्हें प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं करना पड़ता। वे जो चाहें अपनी वस्तु या सेवा का मूल निर्धारित कर सकते हैं। पिछले वर्षों में लगातार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों ने अपनी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में वृद्धि की है। इतना होने पर भी देश की कठि-

नाई से बचाई हुई पूंजी पर कोई लाभ नहीं मिला वरन् हानि हुई इससे अधिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की अकुशलता का दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है ?

देश के हित में इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि सार्वजनिक उद्योगों के संचालन और प्रबन्ध में आमूल परिवर्तन किया जावे जिससे वे घाटे का व्यापार न होकर लाभ दे जिससे सरकार को विकास कार्यों के लिए उनसे अधिकाधिक आय प्राप्त हो सके।

राज्यों की वित्तीय अनुशासनहीनता

भारत सरकार के अत्यधिक कर लगाने और घाटे की अर्थव्यवस्था के पीछे सबसे बड़ा कारण राज्य सरकारों की वित्तीय अनुशासनहीनता है। राज्य सरकारें स्वयं कर लगाने में संकोच करती हैं परन्तु व्यय को आंधी की तरह बढ़ाती जा रही हैं। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके बजट के घाटे प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे हैं और वे भारत सरकार से अधिक से अधिक अनुदान लेकर अथवा रिजर्व-बैंक से अधिविकर्ष (ओवर ड्राफ्ट) लेकर काम चलाती हैं।

१९६८-६९ में भारत सरकार ने अपने बजट में राज्य सरकारों को ३३७ करोड़ रुपये ऋणस्वरूप देने का प्रावधान किया था परन्तु उसे वर्ष के अंत तक राज्यों को ३९६ करोड़ रुपये देने पड़े।

१९६९-७० के बजट में भारत सरकार ने राज्य सरकारों को ऋण और अनुदान के रूप में १३९४ करोड़ का प्रावधान किया है।

बात यहाँ तक ही समाप्त नहीं होती। प्रत्येक राज्य ने घाटे का बजट बनाया है। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों की वित्तीय अनुशासनहीनता पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। प्रथम योजना के पांच वर्षों (१९५१-५६) में भारत के सभी राज्यों के पांच वर्षों के बजटों में कुल मिलाकर केवल १७ करोड़ रुपये का घाटा था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के पाँच वर्षों (१९५६-६१) में राज्य सरकारों के पाँच वर्षों के बजटों का घाटा बढ़कर ६४ करोड़ रुपए हो गया। तीसरी योजना के पांच वर्षों में घाटा कुछ घटा, कुल मिलाकर ४३ करोड़ रुपये रहा। यह ध्यान में रखने की बात है कि यह रकमें पांच वर्ष के घाटे की हैं। इनके विरुद्ध १९६९-७० के बजटों में राज्यों ने केवल एक वर्ष में २०० करोड़ रुपये के घाटे का प्रावधान किया है।

यदि राज्य सरकारों द्वारा यह घोर अपव्यय का क्रम इसी प्रकार चलता रहा तो देश दिवालिया हो जावेगा क्योंकि भारत सरकार चाहे जितना भी कर लगावे वह पूरा नहीं पड़ेगा। और जब तक राज्य सरकारों की इस अत्यधिक फिजूलखर्ची पर रोक नहीं लगाई जाती तब तक भारत सरकार को प्रतिवर्ष अधिकाधिक कर लगाना होगा।

भारत में व्यक्तिगत तथा कंपनियों की आय पर सबसे अधिक कर

१९६८-६९ के वित्तीय वर्ष में भारत में वैयक्तिक तथा निगम कर की उच्चतम सीमान्त दर ८९.४ प्रतिशत थी। १९६९-७० में यह दर ८२.५ होगी। परन्तु जो कर की दर में कमी दिखलाई पड़ती है वह भ्रमोत्पादक है क्योंकि सम्पत्ति कर में वृद्धि की गयी है उसको यदि मिलालें तो दर में अधिक कमी नहीं रहेगी।

इस सम्बंध में यह बतलाना आवश्यक है कि एशिया के बारह विकासशील देशों में ६ ऐसे है जहाँ उच्चतम सीमान्त आयकर की दर केवल ५० प्रतिशत है। वे हैं कम्बोडिया, लेओस, तेवान, ईरान, कोरिया तथा थाईलैड। पिछले चार देशों की आर्थिक अभिवर्धन दर सबसे तीव्र है और भारत की आर्थिक-अभिवर्धन दर (Economic Growth rate) सबसे कम है।

अभी हाल में कनाडा में शाही कर आयोग ने सिफारिश की है कि आयकर की उच्चतम दर ५० प्रतिशत होना चाहिए। जर्मनी में उच्चतम सीमान्त दर ५३ प्रतिशत है। यहाँ तक कि स्वीडन जो समाजवादी देश है वहाँ आयकर की उच्चतम दर ६५ प्रतिशत है और अभी हाल में उसमें भी कुछ सुविधा और कमी की गई है। विश्व के कई विख्यात अर्थशास्त्रियों का मत है कि वैयक्तिक आय पर ५० प्रतिशत से अधिक कर नहीं लगाना चाहिए।

निगमकर

संसार के १५० देशों में से १४४ देशों में निगम कर ५० प्रतिशत से कम है। केवल वेनिनजुला, फ़िनलैड, इन्डोनेशिया, भारत, फारोये द्वीप, तथा बरमा में ५० प्रतिशत से निगम कर अधिक है। इनमें भी केवल दो देश हैं जहाँ भारत से भी ऊँचा निगम कर रहा है। वे हैं फारोये द्वीप और बरमा। फारोये द्वीप समूह ब्रिटेन और आइसलैंड के

बीच में स्थित हैं और वहाँकी कुल जनसंख्या केवल चौंतीस हजार है। बरमा में औद्योगिक गतिहीनता उत्पन्न हो गई है, भारत में निगम कर ५०·६ प्रतिशत से लेकर ६५ प्रतिशत तक है। निगम कर के अतिरिक्त कंपनियों के लाभ पर उपरिकर (सरटैक्स) और लगाया जाता है।

आज बहुत से अर्थशास्त्री करों द्वारा राष्ट्रीय बचत के सिद्धान्त के विरोधी हैं क्योंकि अधिक कर लगाने से व्यक्तियों द्वारा की जानेवाली बचत बहुत कम हो जाती है। भारत में निजी व्यक्तियों द्वारा बचत का प्रतिशत गिरकर ६ प्रतिशत हो गया है। ऐसी स्थिति में देश में तेजी से आर्थिक गतिशीलता उत्पन्न होगी यह सोचना व्यर्थ है।

पिछले वर्षों में नये औद्योगिक संस्थानों की स्थापना अपेक्षाकृत कम हुई है। क्योंकि पूंजी बाजार की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी कि नये संस्थानों की अंश पूंजी को सर्वसाधारण खरीदता ही नहीं था। नई कंपनियों के अंशों को उनके अभिगोपनकर्त्ताओं को ही अधिकांश में खरीदना पड़ता था। यही कारण था कि १९६६, ६७ और ६८ में नये औद्योगिक संस्थान बहुत कम स्थापित हुए। पिछले वर्ष से पूंजी बाजार में थोड़ा सुधार हुआ है परन्तु केवल उन्हीं कम्पनियों के अंश पूंजी बाजार में बिकते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है और जिनमें ऊँचे लाभ की संभावनाएँ निश्चित है।

यह अवश्य है कि यदि भारत सरकार यह निश्चय कर ले कि सभी उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण कर लिया जावेगा और भविष्य में उद्योग-धंधो की स्थापना केवल राज्य ही कर सकेगा। अर्थात् पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था को स्थापित करना अभीष्ट हो तब तो प्रश्न ही दूसरा है। परन्तु भारत सरकार आज यह भी कर सकने की स्थिति में नही है, सार्वजनिक क्षेत्र मे जो उद्योग खड़े हुए हैं उनका संचालन और प्रबन्ध ही करना कठिन हो रहा है और उनमें घाटा हो रहा है। ऐसी दशा में यदि भारत सरकार निजी क्षेत्र में स्थापित सभी उद्योगों को लेने का दुस्साहस करे तो भारतीय अर्थव्यवस्था क्षत-विक्षत हो जावेगी। भारत सरकार के पास इतने मानवीय और भौतिक साधन ही नहीं हैं। अतएव यदि मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत औद्योगिक गतिशीलता लाना है तो कर व्यवस्था में सुधार करना होगा।

हमारी आर्थिक गतिहीनता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है कि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के उपरान्त देश में बेकारों की संख्या बढ़ती जा रही है। जब प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ में आरम्भ की गई थी तब यह अनुमान किया गया था कि देश में ३५ लाख लोग बेकार हैं। तीन पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा कर चुकने के उपरांत १९६९ में देश में बेकारों की संख्या सवा करोड़ से डेढ़ करोड़ के लगभग है।

देश के निर्यात देश के आर्थिक स्वास्थ्य की दशा का सही चित्रण करते हैं। हमारे निर्यात आयात की तुलना में बहुत कम हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अन्तर निरन्तर हमारे विपक्ष में रहता है। हमने आयातों पर कड़े प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं और निर्यातों को प्रोत्साहित करने की नई योजनाएँ कार्यान्वित की गई हैं फिर भी १९६८-१९६९ के वित्तीय वर्ष में निर्यात १३४० करोड़ रुपये का हुआ जो हमारे आयातों का केवल दो तिहाई था।

पिछले वर्ष हमारे निर्यात कुछ बढ़े हैं और चालू वर्ष में भी स्थिति थोड़ी अनुकूल दिखलाई देती है। इससे हमारे अधिकारी तथा मंत्रिगण बहुत प्रसन्न और आशान्वित हैं। परन्तु यह निर्यात में वृद्धि एक भ्रम है। यह निर्यात में वृद्धि भारत के आर्थिक स्वास्थ्य में सुधार की द्योतक नहीं है वरन् उसका कारण यह है कि विश्व भर में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पिछले दिनों बढ़ा है तथा अन्य देशों का व्यापार भारत की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा है। हांगकांग की पहली सूती कपड़े की मिल १९४७ में स्थापित हुई थी। भारत में सूती उद्योग १८५१ मे स्थापित हो गया था। परन्तु हांगकाग आज भारत से तिगुना सूती कपड़ा निर्यात करता है। लका भारत की अपेक्षा अधिक चाय निर्यात करता है।

किसी देश के आर्थिक स्वास्थ्य को उस देश में विदेशी-पूंजी के विनियोग से भी नापा जाता है। भारत में कुल विदेशी विनियोग आज लगभग एक अरब पचास करोड़ डालर है। मैक्सिको तथा तैवान मे इससे कई गुनी अधिक विदेशी पूंजी का विनियोग हुआ है। जापानी चतुर और कुशल विनियोजक है। जापानियो की विदेशो म जितनी पूंजी विनियोजित है उसकी केवल एक प्रतिशत भारत में लगी है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि देश के अन्दर ऐसी स्थिति हम उत्पन्न नही होने देते कि बचत और विनियोग को प्रोत्साहित किया जावे तो विदेशी पूंजी देश में अधिक मात्रा में आवेगी यह सोचना गलत है।

अतएव यदि मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत हम देश के आर्थिक विकास को गतिशील बनाना चाहते हैं तो देश में सुरसा की तरह बढ़ते हुए प्रशासनिक अनुत्पादक व्यय को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को कम करना होगा। बड़े और समृद्धिशाली किसानों पर थोड़ा कर लगाना होगा तथा व्यक्तिगत और निगम कर मे थोड़ी कमी करना होगी। और राज्य सरकारो की वित्तीय अनुशासनहीनता को कड़ाई से रोकना होगा। तभी भारत सरकार भी घाटे की अर्थव्यवस्था से बच सकेगी और चढ़ते हुए मूल्यों का मुद्रा स्फीत के कारण जो कुचक्र स्थापित हो गया है वह रुक सकेगा तथा देश का आर्थिक विकास तेजी से हो सकेगा।

परन्तु आज की राजनीतिक स्थिति मे हमारी राज्य सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार यह सब कर सकगी यह एक प्रश्न चिह्न है जिसका उत्तर देना कठिन है।

चीन पर भारतीय धर्म एवं कला का प्रभाव

डा० वासुदेव उपाध्याय

भारतवासियों को चीन देश का नाम अति प्राचीनकाल से ज्ञात था। महाभारत तथा मनुस्मृति में इसका उल्लेख है तथा ईसा पूर्व चौथी सदी के ग्रथ अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने चीनी रेशम का वर्णन किया है। ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व में शीन (Tsin) नामक वंश एशिया के पूर्वी भाग में शासन कर रहा था। उसी के नाम पर देश का नाम चीन हो गया। इस विषय के अत्यधिक प्रमाण मिलते हैं कि चीन से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था, और वहाँ पहुँचने के तीन मार्ग थे। सर्वप्रथम मध्य एशिया होकर भारतीय चीन गए। दूसरा मार्ग असम के उत्तरी-पूर्वी पर्वतीय (वर्तमान नेफा) भूभाग से चीन जाया करता था। इस स्थल मार्ग से भारतवासी उत्तर पश्चिम चीन में सरलता से पहुँच जाते थे। तीसरा मार्ग समुद्र होकर दक्षिण चीन पहुँचता था। भारत के पूर्वी बंदरगाह ताम्रलिप्ति अथवा चोलमण्डल किनारे या सिंहल से हिन्द महासागर होकर भारतीय जहाज दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीपसमूहों को पार कर दक्षिण चीन सागर पहुँचते, और वहीसे भारतीय चीन के दक्षिणी भूभाग पर उतरते रहे। इन मार्गों से चीन तथा भारत में आवागमन चल रहा था। चीनी दूतो से मध्यएशिया तथा वल्ख में भारतवासियों का मिलन हुआ था। पूर्वी भारत में चीनी सामग्री नेफा होकर तथा बर्मा पार कर आया करती थी। इस तरह की ऐतिहासिक चर्चा से प्रकट होता है कि ईसा पूर्व सदियों में चीन एवं भारत का सम्बन्ध स्थिर हो गया था तथा पारस्पारिक सद्भावना बढ़ती गयी। सभी मार्गों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि ईसा पूर्व सौ वर्षों में ही जलमार्ग पर सुचारु रूप से आवागमन हो रहा था। जहाजरानी में भारतीयों की प्रमुखता थी। अनेक व्यापारिक सामग्रियाँ (रेशम, सिन्दूर, बाँस के सामान) भारत मे आती रही।

मनुष्य के आवागमन के साथ विचार-विनिमय भी होता है। भारतवासी जिस देश में व्यवसाय के निमित्त पहुँचे, वहाँ भारतीय विचारधारा का स्वागत किया गया। यद्यपि मौर्य काल में भारत के बौद्ध दूत चीन गये थे, किन्तु इसकी ऐतिहासिकता अभी प्रमाणित नहीं हो सकी है। चीन देश मे बौद्ध धर्म का प्रसार किस समय हुआ, इस विषय पर अंतिम निर्णय नहीं दिया जा सकता। सम्भवतः चीन के सेनापति ने मध्य एशिया पर आक्रमण के पश्चात् स्थानीय बौद्ध प्रतिमाओं से परिचय प्राप्त किया और उनमें से कुछ को स्वदेश लेता गया। कुछ विद्वानों की धारणा है कि बर्मा होकर बौद्धधर्म चीन पहुँचा। इस विवाद में न जाकर यह कहना युक्तिसंगत होगा कि मध्य एशिया से ही चीन ने बौद्धमत को अङ्गीकार किया। पहली सदी में हानवंश के शासन काल में ही बौद्ध धर्म का वहाँ प्रचार हुआ जिसके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि हान नरेश मिगती ने स्वप्न में एक सुनहले मनुष्य को देखा जिसे शासक के सभासदगण बुद्ध कहने लगे। मिगती ने अपनी धर्मपिपासा को शान्त करने के लिए अपना राजदूत भारत भेजा, और दो प्रमुख भिक्षुओं—धर्मरत्न एवं काश्यप मातंग को निमंत्रित किया। इन दोनो भिक्षुओं ने चीन के एक विहार में निवास कर धर्मग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया, और वे जीवनपर्यन्त वहाँ बौद्धधर्म का प्रचार करते रहे। इस घटना के पश्चात् चीन देश में बौद्धमत से सम्बन्धित विषयों के परिचय की जिज्ञासा बढ़ती गयी और मध्यएशिया के कठिन तथा दुर्गम मार्ग पर चलकर फाहियान (चौथी शती) तथा युवानच्वांग (सातवीं शती) ने भारत में प्रवेश किया। भारतवर्ष में वर्षो भ्रमण कर तथा बौद्धधर्म एवं दर्शन का अध्ययन कर फाहियान चीन लौटा। उसका स्वदेश लौटने का मार्ग भिन्न था। भारत से फाहियान लंका पहुँचा, जहाँ से जहाज में बैठकर जावा, सुमात्रा और दक्षिण चीन सागर होकर वह चीन पहुँचा था। युवानच्वांग का कार्य अधिक श्रेयस्कर था। उसने मध्यएशिया के बौद्धमत का अध्ययन किया। खोतन मे स्थित गोमती विहार का विवरण उसने प्रस्तुत किया है। उस विहार मे महायान शाखा के हजारों भिक्षु निवास करते थे। युवानच्वांग कई वर्षों तक नालंदा में रहकर बौद्ध ग्रथों का अध्ययन करता रहा। उसने अपनी यात्रा एवं भारत के धर्म तथा समाज का विशद वर्णन किया है। अपनी ज्ञानपिपासा को शान्त कर वह पुनः स्थलमार्ग (मध्यएशिया के उत्तरी मार्ग) से चीन लौटा। इन चीनी बौद्ध यात्रियो ने अनेक धर्मग्रंथ तथा बौद्ध मूर्तियों को चीन ले जाने मे सफलता प्राप्त की थी। इनके विवरणों के द्वारा चीन में तथा अन्यत्र उस समय के बौद्ध-

धर्म की अभिवृद्धि का परिज्ञान हो जाता है। जो कार्य पहली शती से आरम्भ हुआ, वह क्रमशः फलता तथा फूलता गया। बौद्धमत के विकास में भारतीय भिक्षुओं ने अथक परिश्रम किया। अन्य देशों के सदृश भारतीय व्यापारियों ने चीन में भी पदार्पण किया, और धर्म-प्रचारकों ने उनके मार्ग का अनुसरण किया। इन्हीं कारणों से चीन में बौद्धमत का प्रचार एवं प्रसार हो सका।

इस प्रसंग में मध्यएशिया के प्रसिद्ध नगर तुयेन ह्वांग का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। यह नगर तरीम नदी (मध्यएशिया) के दोनों मार्गों–उत्तर तथा दक्षिण–के सङ्गम पर स्थित था जहाँ पश्चिमी चीन से मार्ग भी मिलता था। अतएव यह नगर एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गया था। इस सङ्गम से भी सांस्कृतिक चेतना का प्रसार चीन में होने लगा पहली शती से मध्य एशिया में महायान का प्रचार हो गया था, और उसको अभिवृद्धि से चीन को भी लाभ हुआ। यद्यपि इससे पूर्व चीनी तथा भारतीय लोगों का सीधा सम्पर्क न था, तथापि कालान्तर में भारतीय संस्कृति ने चीन पर गहरा प्रभाव डाला।

चीन में पूर्व प्रचलित मत

चीन के इतिहास से तीसरी सदी तक वहाँ बौद्ध धर्म की प्रमुखता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। चीनी साहित्य इस दिशा मे मौन है। इसका कारण सम्भवतः यह था कि पूर्ण देश में शक वंश का शासन था; उस समय चीन मे तो या ताओ तथा कन्फ्यूसियस के विचार प्रचलित थे। अतएव बौद्ध धर्म को वहाँ मत समझ कर प्रोत्साहन न मिल पाया। कन्फ्यूसियस मत में धार्मिक विचारों का अभाव तथा ताओ सम्प्रदाय में दार्शनिक भावों के लिए कोई स्थान न था। इसके विपरीत, बौद्धधर्म में धार्मिकता एवं दार्शनिक सिद्धांत भरे पड़े थे। यही कारण था कि पूर्व के सम्प्रदायों को त्याग कर चीन की जनता बौद्ध मत की ओर आकर्षित होने लगी थी। बौद्ध धर्म के प्रचार का यह ध्येय नहीं था कि जनता में धर्म की ओर झुकाव हो, किन्तु इसके द्वारा सामाजिक संगठन में परिवर्तन आ जाय। इससे चीन के जीवन दर्शन में नवीनता आ गई तथा बौद्ध धर्म के कारण पूर्व प्रचलित सम्प्रदाय ओझिल हो गये। उनके विचारों का विशेषतः ध्यान का इसमें समावेश था। हान वंश से पूर्व का इतिहास पूर्ण प्रकाश में नहीं आया है, परन्तु यह निःसंदेह है कि चीनी समाज के उच्च वर्गों में ही बौद्ध धर्म का प्रसार हो सका था ये वर्ग विशेषकर मध्य तथा दक्षिण चीन में रहते थे। उत्तरी चीन की कुछ भिन्न परिस्थिति थी, क्योंकि उस भू-भाग में असभ्य जातियों का शासन था। कालान्तर में 'वी' राजाओं के राज्यकाल में लोग बुद्ध को भारतीय देवता के रूप में पूजने लगे। इस विचार के कारण उत्तर चीन में भी बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन मिला, और विहार एवं चैत्य के निर्माण होने लगे। प्रारम्भिक शताब्दियों में चीन के राजाओं ने, जो ईश्वर की प्रेरणा से समाज के संरक्षक माने जाते थे, बौद्ध धर्म का स्वागत नहीं किया। अतः उसके आश्रयदाता को मन में बौद्ध धर्म के प्रति उत्साह का अभाव रहा। उस स्थिति में भारतीय बौद्ध प्रचारकों ने अथक परिश्रम कर चीनी जनता को धर्म के मूल सिद्धांतों से परिचित कराया जिसका प्रभाव कालान्तर में हुआ। काश्यप मातग का नाम उस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। उस प्रचार के अतिरिक्त भारतीय भिक्षुओं के आदर्श जीवन ने भी चीनवालों को प्रभावित किया जिसमें शुद्ध एवं उच्चविचार तथा विषम सुख से विमुख भावनाएँ निहित थीं।

इस बात की पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है कि प्रारम्भिक स्थिति मे ऊँचे शिक्षित वर्ग में बौद्ध धर्म के लिए सात्विक प्रेम न था। बौद्ध भिक्षू किसी स्थान पर दण्डित भी किये जाते रहे, किन्तु क्रमशः शासकों ने अपने दोषों को त्यागकर इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। पड़ोसी देशों में बौद्ध धर्म का बोल-बाला था तथा फाहियान भारत का शुभ-संदेश लेकर स्वदेश लौट चुका था। इस कारण चीनी साधुओं ने भी इस कार्य में सहायता की। धर्मग्रथों के अनुवाद में हाथ बँटाया। अतएव पांचवीं सदी के पश्चात् बौद्ध-धर्म नाम से तो भारतीय बना रहा, परन्तु चीनी पण्डितों ने इस मत के ज्ञान प्रसार में कुशलता दिखलाई। यही कारण था कि शानवंश का युग चीन में बौद्धधर्म का स्वर्ण-काल माना जाता है।

चीन में बौद्ध धर्म की उन्नति

यदि बौद्धधर्म के प्रसार का सर्वेक्षण किया जाय तो ज्ञात होता है कि इसके उत्थान के निम्न प्रमुख कारण थे—

(१) चीन में कुछ अन्य जातियों का भी शासन था जिन्होंने बौद्ध धर्म को शीघ्रातिशीघ्र अपना लिया। उदाहरणार्थ उत्तरी चीन पर तातार लोगों का राज्य (शीन नरेशों

के पश्चात्) पाँचवीं सदी में हो गया था। बौद्ध धर्म के लिए उनके हृदय में स्थान न था। मूर्ति-निर्माण तथा विहार के विरोधी थे। किन्तु कुछ समय के पश्चात् उन्हींके वंशजों ने बौद्ध धर्म को आश्रय ही नहीं दिया, अपितु उन्होंने विशाल विहार एवं मंदिर बनवाए। दक्षिण चीन की भी वही अवस्था थी।

(२) चीन के निवासियों ने बौद्धधर्म का अनुयायी होकर इसकी अभिवृद्धि मे सफल प्रयत्न किया।

(३) इसके प्रसार का तीसरा प्रमुख कारण यह था कि बौद्ध धर्म से पूर्व कोई सम्प्रदाय चीनियों के जीवन-दर्शन को प्रभावित न कर सका था। यों कहा जाय कि चीन में कोई धार्मिक परम्परा न थी।

(४) साधारण लोग तोय या ताओ मत के प्रेमी थे। बौद्ध धर्म उच्च वर्ग में ही सीमित था। सर्व-साधारण जनता तत्रमंत्र में विश्वास करती थी। वज्रयान में भी अप्रकट विचार कार्य करते रहे और चीन में इसकी जानकारी हो जाने पर सभी लोग बौद्ध धर्म मानने लगे।

(५) बौद्ध यात्री यूवान च्वांग के चीन लौटने पर भारतीयता का संदेश कारगर सिद्ध हुआ। वह अपने साथ भारतीय प्रतिमाएँ तथा धर्मग्रंथ साथ में स्वदेश लाया था।

(६) शान वश के नरेशों ने पर्याप्त सहायता की। बौद्ध-धर्म मे प्रचलित ध्यान, मनन एवं चिन्तन का प्रभाव चीन में उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इसमें पूजा को प्रकार का समावेश हो गया था। धर्मकार्य एवं पंचध्यानी बुद्ध की ओर चीनी जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ। अत: शान राज्यकाल में बौद्धधर्म की अकथनीय उन्नति हुई।

(७) बौद्ध भिक्षुओं के उपदेशों का भी प्रभाव पर्याप्त रूप में दीख पड़ता है। ऊँचे वर्ग मे दर्शन तथा विश्व-उत्पत्ति के विचारों पर वादविवाद होता रहा। पुनर्जन्म के गहन विचार ने चीनी जनता में शक्ति का संचार किया, और "आत्मा की अमरता" के सिद्धांत से सभी सुसंस्कृत व्यक्ति इस मत की ओर आकर्षित हो गये। निर्वाण, प्रज्ञा, समता एवं बोधि के विचारों का शक्ति के साथ सम्मिश्रण हो गया। श्रमण सर्व लोकहिताय की चिन्ता करने लगे। इसी कारण भिक्षु का जीवन एक प्रकार का एकान्त निवास समझा गया और मठ मे सुसंस्कृत, सुप्रतिष्ठित एवं विज्ञ जन एकत्रित हो गये। संघ को कुलीन व्यक्तियो ने आर्थिक सहायता दी। चीन के मठों की विचित्रता यह थी कि भिक्षु भी कुलीन परिवार में रहता था तथा उपासक विहार में निवास करते रहे। सभी ने धर्मग्रंथों के अनुवाद में सहायता की थी।

हानवंश के पश्चात् यानी दसवी सदी के बाद बुद्ध धर्म का ह्रास होने लगा। जल या स्थल मार्ग इस्लाम के कारण अवरोधित हो गये। नालंदा महाविहार के बौद्ध पण्डितों ने समीप देशों में परिश्रम के साथ कार्य किया था परन्तु इस महाविहार के नष्ट हो जाने पर स्रोत समाप्त हो गया। यद्यपि पश्चिम भारत के एक राजकुमार की चीन यात्रा का विवरण मिलता है, किन्तु उसका कोई महत्त्वपूर्ण फल न हुआ। ११वीं शती के पश्चात् चीन के इतिहास में भी बौद्ध-धर्म का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार ऐतिहासिक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि भारतीय भिक्षुओं के अभाव में तथा भारतीय स्रोत के क्षीण हो जाने पर चीन में बौद्ध धर्म की अवनति हो गयी। इसका एक प्रधान कारण शासकों की उदासीनता भी माना जा सकता है।

भारतीय कला का प्रभाव

चीन पर भारतीय कला के प्रभाव का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि चीन देश की कला में (बौद्ध-धर्म के प्रसार से पूर्व) धार्मिक चर्चा का अभाव तथा लौकिक विषयों की प्रधानता थी। प्राचीन चीन में कांस्य काष्ठ तथा सुलेमानी (जेड) पत्थर का प्रयोग कलात्मक कार्यों के लिए किया जाता था। किन्तु चीनवालों को भारतीय संपर्क के कारण भारत की प्रस्तर प्रतिमा का परिचय प्राप्त हुआ। मध्य एशिया के अतिरिक्त फाहियान तथा ह्वेनसांग ने अनेक बौद्ध प्रतिमाओं को चीन पहुँचाया था जिसके कारण वहाँ की कला पर भारतीय प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। चीन की देशी कला को गहरे रूप में प्रभावित करने के कारण एक नयी कला का जन्म हुआ जिसे चीनी-भारतीय कला (Indian Art) कहते हैं। इसका अध्ययन नये ढंग से पूरा करना होगा। इसमें बौद्धधर्म के कारण चीनी कला में आमूल परिवर्तन दीख पड़ता है। बौद्धधर्म के कारण चीनी कला में नयी दिशा, नयी उमंग तथा नयी शैली का विकास हुआ।

चीन के कलाविद् ऊँची-श्रेणी के कला-मर्मज्ञ थे। उनकी दस्तकारी की प्रशंसा जितनी की जाय, कम है। उन कलाकारों ने जिस कुशलता के साथ चीन की लौकिक कला की उन्नति की थी, उसी श्रेणी की दक्षता का परिचय

धार्मिक कला में भी दृष्टिगोचर होता है। बौद्धधर्म के प्रसार से तथा बुद्ध-मूर्ति के दर्शन से चीन के कलाकारों में नई स्फूर्ति आई। उनकी कुशलता अक्षुण्ण रूप से बनी रही। लौकिक विषयों के स्थान पर वे धार्मिक कला-निर्माण की ओर उन्मुख हो गये तथा उसी दक्षता के साथ बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण करने लगे। मध्य एशिया के पूर्वी छोर पर तुयेन हुआंग नामक नगर कई संस्कृतियों का केन्द्र था। चीन की पश्चिमी सीमा पर स्थिति होने के कारण भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर चीनवालों ने उसी प्रकार की कला शैली को अपनाया। तीसरी शती के पश्चात् चीनी कला का उत्कर्ष हुआ और शांसी प्रदेश में दो श्रेष्ठ केन्द्र कार्य करने लगे। बौद्ध भिक्षुओं के आग्रह पर कार्य की अभिवृद्धि हुई। इस प्रकार भारतीय कला का प्रभाव बढता ही गया। इस विषय पर बल देने की आवश्यकता नहीं है कि पहली शताब्दी से ही मध्य एशिया में गन्धार कला का प्रचार हो गया था। बुद्ध तथा बोधिसत्व की प्रतिमाएँ तरीम के काँठे में पूजी जा रही थीं। कुछ विद्वान् उसमें भारतीय-यूनानी प्रभाव की चर्चा करते हैं। गन्धार कला पर यूनानी प्रभाव का वर्णन पश्चिम के विद्वानों ने किया है, किन्तु डा० कुमार स्वामी उसमें भारतीयता की छाप देखते हैं। शारीरिक बनावट में कुछ सम्यता प्रकट होती है। ऐसी गन्धार कला का प्रभाव कुषाण युग में मध्य एशिया के मरु-उद्यानों के भग्नावशेषों से परिलक्षित होता है। चीन के कलाकारों ने प्रस्तर या धातु की बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण किया जो गन्धार शैली से अछूता न रह सका। हारीति तथा लोकेश्वर की भी प्रतिमाएँ चीन से उपलब्ध हुई हैं। पहली शती में कुषाण नरेश कनिष्क वाराणसी मे मध्य एशिया तक शासन करता था। इस कारण कुषाण साम्राज्य में आवागमन के बढ़ जाने से धर्म एवं कला उन उपनिवेशों में विकसित हुई। गन्धार कला के समकालीन मथुरा का कला केन्द्र अत्यन्त प्रसिद्ध था, तथा इस स्थान में निर्मित मूर्तियों की माँग बाहरी प्रदेशों में थी। यही कारण है कि दूसरी शती तक मध्य एशिया होकर मथुरा कला-शैली का प्रभाव चीन तक पहुँच गया था। गन्धार कला में यूनानी शरीर रचना की छाप है, परन्तु मथुरा शैली में स्थूलता तथा भारीपन का समावेश दीख पड़ता है। चौथी शती से भारतीय दर्शनशास्त्र ने कला को इस रूप में मोड़ दिया कि प्रतिमाओं में स्थूलता एवं भारीपन का स्थान आत्म-चिन्तन या पारलौकिक विचार ने ग्रहण कर लिया। गुप्त युग इस प्रकार के कार्य के लिए प्रसिद्ध है। शरीर रचना को गौण समझकर आध्यात्मिक विचारधारा को प्रमुखता मिली। इस दार्शनिक प्रभाव का प्रवाह चीन भी पहुँच गया। गुप्त शैली ने चीन की कला को प्रभावित किया और अलौकिक भावनाओं सहित बुद्ध अथवा लोकेश्वर की मूर्तियाँ चीनी कलाकारों ने तैयार कीं। संक्षेप में यह कहना युक्ति-सगत होगा कि चीन के कलाकारों ने मध्यएशिया के चीनी यात्रीगण तथा बौद्ध प्रचारकों से प्रभावित होकर चीन देश में कला की अभिवृद्धि की। शांसी प्रदेश के दो प्रमुख स्थानों—यूकांग तथा लागमेन—में गुप्तकालीन स रनाथ शैली पर आधारित बुद्ध की मूर्तियाँ तैयार की गईं। तीसरी चौथी शताब्दियाँ चीन कला का स्वर्ण युग मानी गयी हैं। अतएव प्रथम शती से चौथी शती तक चीन की कला पर भारतीय शैलियों का प्रभाव स्पष्ट दीख पडता है।

तक्षण कला के अतिरिक्त चित्रकला में भी भारतीयता की छाप है। अजंता भित्ति चित्रों के विषयों का परिज्ञतन तुयेन हुआंग के कलाकारों को था। सहस्र बुद्ध गुफा में जो भित्ति चित्र खींचे गये थे, उन पर अजंता की पूरी छाप है। चीनी चित्रकला मे भारतीय परम्परा का अध्ययन एक प्रमुख विषय है। आश्चर्य तो यह है कि भारतीय चित्रकला के छः सिद्धान्तों :—

(१) रूप (२) प्रमाण (३) भाव (४) लावण्य (५) सादृश्य तथा (६) वर्णिका-भंग का अक्षरशः पालन चीन के चित्रकारों ने किया जिससे उनमें सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ स

चीनवासी संगीत में भी अत्यन्त निपुण थे। यह गीत भारतीय संगीत से भिन्न है। परन्तु चीन के साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि उस देश में भारतीय संगीत का भी अभ्यास किया जाता था। मध्य एशिया के कूचा केन्द्र में भारत के संगीतज्ञ रहते थे। वहीं से नर्तक चीन गये। वहाँ भारतीय वाद्य—शख, वीणा, झाल, मृदंग आदि सहित संगीत का कार्य सम्पन्न किया जाता था। छठवीं शती में भारतीय संगीत का प्रचार चीन में हो गया था। वहाँसे यह विद्या जापान पहुँची। उन देशों के साहित्य में उल्लेख मिलता है कि चीन के संगीतज्ञ पंचम अथवा सप्त ताल में गाया करते थे। इस सम्बन्ध में यह चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है कि नर्तक सामूहिक रूप में विभिन्न वाद्य सहित मध्य एशिया से चीन पहुँचे थे।

विशेषतया चीन के शांसी प्रदेश में भारतीय कला का प्रचार हुआ था। बड़े विशाल मठ, मंदिर तथा गुफाएँ निर्मित हुईं। जिनके अवशेष आज भी गाथा को कह रहे हैं। गुफाओं में बुद्ध की स्थानक (खड़ी) प्रतिमा तथा दोनों दीवाल पर आनन्द तथा काश्यप की निर्मित मूर्ति दर्शक को आश्चर्यचकित कर देती है। कहने का तात्पर्य यही है कि बौद्धधर्म के प्रसार के साथ भारतीय कला का प्रभाव चीन कला पर स्थायी रूप में पड़ गया था।

गधा बनना और बनाना

श्री भ्रमरानन्द

वाहन और भारवाहन दोनों ही दृष्टियों से गधा कितना उपयोगी पशु रहा है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। देवता, दानव और मनुष्य सभी इसकी सवारी करते आ रहे है। शीतलावाहन के रूप में यह विख्यात ही है। कृष्ण-भक्त रसखान अपने आराध्य देव के सान्निध्य के लिए ब्रज के पशु पक्षी, यहाँ तक कि पत्थर होने को तैयार रहते थे। लेकिन उक्त देवी के किसी भक्त ने देवी का वाहन बनने की कामना कभी नहीं की। लेकिन सभी इसकी सवारी करना चाहते हैं और अवसर पाते ही करते भी हैं। आदमी को गधा बनाया ही इसीलिये जाता है और यदि बनाने की हिम्मत न हो तो समझ लिया जाता है। सभी बुद्धिमान और सहूरदार लोग इसी तरह गधे की सवारी करते हैं। लेकिन यह सच मानिये कि जिसे वास्तविक गधा नसीब नहीं है, वह पहले उसकी कल्पना करता है और यथा अवसर किसी व्यक्ति में गदहपन का आरोप कर अपनी आदिम इच्छा पूरी करता है। बात यह है कि समय के फेर से गधा पतित हो गया, उसकी पूर्व-प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी लेकिन उस पर सवारी करने की मानवीय लालसा मरी नहीं, न उसकी पुरानी आदत ही गयी। अब चूँकि सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण गधे की सवारी प्रत्यक्ष रूप में कर नही सकता इसलिए वह मनुष्य पर गधे का आरोप करता है और अपनी आदिम लालसा या आदत के चलते परोक्ष रूप से उसकी सवारी कर लिया करता है। भाषा की अभिव्यक्ति के चलते मनुष्य अपनी न जाने कितनी दमित वासनाओं की पूर्ति इसी तरह करता रहता है और मानसिक बोझ उतारकर हलका हो लेता है। परन्तु यहाँ बात ऐसी नही है, गधा बनानेवाला हलका नहीं होता वरन् गुरु-गभीर बन जाता है। वह गधा बननेवाले से हर हालत में अपने को गंभीर समझता है, इसका प्रमाण दिये बिना वह न तो गधा बना सकता है, न ही उसकी सवारी कर सकता है।

गधे का महत्त्व समझे-बूझे बिना गधा बनने और बनानेवाले व्यक्ति इसे अपमानजनक मानते हैं। बनानेवाले की नीयत तो साफ ही है लेकिन यह समझ में नहीं आता कि गधा बननेवाला इसे उस रूप में क्यों स्वीकार करता है। ऐसे बहुत लोग हैं जो बनाये जाने पर भी अपने को गधा नहीं समझते। ऐसा समझने का कोई कारण भी नहीं है कि कोई मूर्खतावश गधा बनाये और तुरंत अपने आपको गधा समझ लिया जाय। इस संबंध में ऐसे अनेक प्रमाण दैनिक जीवन मे हुई घटनाओं से दिये जा सकते हैं कि जिसमें बारंबार गधा बनाया जानेवाला कालांतर में पूर्ण मनुष्य बन गया है। सच तो यह है कि गधे जैसे सहनशील, निर्विकार, शीलसम्पन्न साधु, सतुष्ट, धैर्यशाली, क्षमामूर्ति, सीधे-सादे, उपयोगी जीव के प्रति दुर्भाव रखना मानव जाति की कुटिलता का परिचायक है। सभ्य मानव की भाषा ने न जाने ऐसे कितने साधु प्रतीकों को अपशब्द बना डाले हैं, कुत्ता, सुअर, उल्लू आदि उदाहरणार्थ उपस्थित किये जा सकते हैं। इन सबके साथ गधा भी मानव जाति की शताब्दियों, सहस्राब्दियों पुरानी दुर्भावना का शिकार बनता आया है। सेवकों और दासों के प्रति इसी प्रकार के अन्यथा-सिद्ध भावों से भारतीय समाज पतनोन्मुख हुआ है। शूद्र, चांडाल, अस्पृश्य, अंत्यज आदि दर्जनों विशेषणों ने इस समाज में असमानता, घृणा, छुआछूत जैसी विषाक्त परम्पराओं को प्रतिष्ठा की है। मजे की बात तो यह है कि इनके द्वारा अभिजातीयता और कुलीनता का पोषण किया जाता है। असत्य से सत्य, अपावनता से पावनता, दुष्टता से साधुता, नीचता से उच्चता और अंधकार से प्रकाश के पोषण तथा उत्थान का यह दंभ कितना गर्हित है। अपशब्दों और अपमानकारी भावों की रचना द्वारा कुलीनता की प्रतिष्ठा का यह ढोंग कितना विचित्र और हास्यास्पद हैं? गधा बनाने की योग्यता और गधा बनने की नालायकी दोनों समान रूप से धिक्कार-योग्य हैं।

सच तो यह है कि बनावटी गधे दो कौड़ी के होते है। उनसे कुछ भी नहीं हो पाता। कोई बनवटी गधा न तो वैशाखनन्दन हो सकता है, न शंकरकर्ण। उस पर न तो देवता सवारी करते हैं, न दूल्हे। ऐसे गधे नितांत लावारिस और आवारा होते हैं। लेकिन असली गधे उपयोगी जीवों

में आते हैं। उनके उपकार की नाप-तोल करना असाधारण सामर्थ्य का कार्य हैं यदि ये न होते तो खच्चर कहां से आते ? और तो और, आरण्यक ज्ञान के नामकरण के लिए एक प्रसिद्ध उपनिषद् का श्वेताश्वतर नाम कहां से आता ? पहले योरोप में यह सामान्य विश्वास था कि गधे पर बैठने या गधे पर बैठने की बात कहने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। सोमदेव बताते हैं कि यदि कोई गदहालोटन (थकान या खाज मिटाने के लिए गधे द्वारा लोटी हुई धूलि या भूमि) पर चला जाय तो उसकी टांगों में दर्द होने लगता है। अब निष्पक्ष होकर यह जांचने की जरूरत है कि नकली गधे में ये जादुई करामात कैसे आ सकते हैं। गधा बनाना हँसी ठट्ठा नहीं है जब जी में आये, किसी को चटपट गधा बना दिया जाय। उन स्वामियों को क्या कहें जिनके मुँह में अपने कंबख्त सेवकों के लिए सदा गधा तैयार खड़ा रहता है। असली गधे की तुलना तो हो ही नहीं सकती, उनकी उपमा उन्हीं से दी जा सकती है। कहते हैं, कोई महात्मा किसी सरोवर-तट पर पहुँच स्नान करने की तैयारी करने लगे। उनके पास कोपीन के अलावा एक ही अँचला था जिसे वे पहने थे। उन्होंने अँचले को पखार कर फैला दिया फिर पानी में उतर गये। स्नान के बाद संध्या-वंदन किया और जब पानी के बाहर हुए तो उन्होंने देखा कि एक गधा अँचले के चारों कोनों पर अपनी खुर दिये निर्विकार भाव से खड़ा है। वे अवाक् होकर देखने लगे, फिर गधे को संबोधित कर बोले—"आप को हम क्या कहें, आप तो आप ही है, अर्थात् दूसरा कोई इस प्रकार अँचले पर खड़ा होता तो कहता कि गधे कहीं के, तू यह क्या कर रहा है लेकिन गधे को संबोधित करने के लिये दूसरा विशेषण है ही नहीं।

सचमुच गधा एक अप्रतिम जीव है, वह अनुपमेय और अद्वितीय है। कोई अत्यंत सावधानी से उसका अभिनय या अनुकरण करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार वह भी लाख बनाव-चुनाव के बाद पहचान लिया जाता है। शेर की खाल में गधे की कहानी या नीले रंग में रँगे गधे की कथा से सभी परिचित हैं। एक लोककथा के अनुसार किसी धोबी के परिश्रमी गधे को यह देखकर बड़ा बुरा लगा कि अकर्मण्य कुत्ते को तो स्वामी प्यार करता है, खाने को रोटी देता है और इसे डंडे से मारता है। गधे ने एक दिन देखा कि घाट से आते ही कुत्ता कूद-कूदकर स्वामी के पाँव पर लोटने तथा तलवा चाटने लगा। उसने समझ लिया कि कुत्ते पर धोबी के प्रेम का यही रहस्य है। दूसरे दिन जब मालिक घाट से लौटा तो गधे ने कुलाँचें भरीं, आवाज़ दी और कुत्ते के अनुकरण पर धोबी के पैरों पड़ कूद-कर उसके पेट में चाटने के बजाय काट भी लिया। इस क्रिया से धोबी लहू-लुहान हो गया, उसके पैर कुचल गये। उसने क्रुद्ध होकर डंडा लिया और गधे की अच्छी मरम्मत की। इस कथा से जाहिर है कि गधा चाहे तो भी कुत्ते जैसी हरकत नहीं कर सकता। चाटुकारी गधों के भाग्य में नहीं लिखी है। वे चाटुकारी करने का प्रयत्न करें तो भी नहीं कर सकते, उल्टे बुरी तरह खुल जाने से अपमानित हो सकते हैं। लेकिन नकली गधों के विषय में ऐसी बात नहीं है। वे खुल भी जायँ तो भी चाटुकारी से बाज नहीं आते। इस माने में ये असली गधों से बीस पड़ेंगे।

बनारसी लोकवार्ता के अनुसार गधे के जन्म के पीछे निश्चित कारण होते हैं। कहते हैं यदि कोई काशी के बजाय गंगापार स्थित रामनगर में मरे तो अगले जन्म में गधा होता है। इस दृष्टि से काशी के अधिकांश गधे पूर्वजन्म के रामनगर-निवासी कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार पुराणों-स्मृतियों में गर्दभ-जन्म के अनेक कारण ढूंढ़े जा सकते हैं जो दंड-स्वरूप हैं। स्कंद पुराण के अनुसार पुण्यशील नामक किसी ब्राह्मण ने किसी बांझ स्त्री के पति से श्राद्धकर्म करवाया। इससे उसका मुँह गधे के समान हो गया। यहाँ हमें इस अधूरे गदहे से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हम तो असली और पूर्ण गधे की बात कर रहे हैं। कथा-कहानियों में शाप और जादू के द्वारा अनेक व्यक्तियों को गधों में बदलने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'पार्श्वनाथ चरित' में एक कुटनी दंडस्वरूप गधी बना दी जाती है। इसी तरह 'निहालदे सुलतान' नामक एक राजस्थानी पँवाड़े में गोरखनाथ, पनवाड़िन और हुड़दम बेगम नामक जादूगर-को दृष्टि-निक्षेप द्वारा गधी बना देते हैं। प्रवाद है कि जादूनगरी कामरूपा की युवती जादूगरनियाँ अपने प्रेमियों को गधा बनाकर रखती हैं। प्रेम में व्यक्ति तो बिना बनाये ही गधा हो जाता है, तब उसे दुबारा गधा बनाने की जरूरत ही नहीं रहती। कुछ भी हो, ये सभी नकली गधों के उदाहरण हैं। असली गधे तो अपरिवर्तनीय होते हैं। उनके संपर्क में रहनेवाला व्यक्ति भी लगभग उसी तरह हो जाता है। एक लोककथा है कि किसी स्कूल

मास्टर ने कभी बड़े गर्व से कहा—"मैं गधे को आदमी बनाता हूँ।" एक धोबी ने इसे सुना तो उसने मास्टर से अपने एक बदमाश गधे को आदमी बनाने की प्रार्थना कर वाजिब फीस भी चुकता कर दी। कुछ दिन वीतने पर धोबी ने अपने गधे के विषय में मास्टर से पूछ-ताछ की। मास्टर ने धोबी को प्रचंड मूर्ख समझकर गधे को कहीं बेच दिया था। धोबी के पूछने पर वह उसे इधर-उधर की हाँक कर टरका देता। लेकिन अंत मे उसने फिर पूछा तो मास्टर ने कहा—"तुम्हारा गधा अब अमुक नेता हो गया है।" धोबी ने घर जाकर एक टोकरी में घास-भूसे की सानी बनायी, हाथ में रस्सी ली और धोविन के साथ उस स्थान पर गया जहाँ वह नेता लाउडस्पीकर पर भाषण कर रहा था। उसे देख धोबी ने धोविन से कहा—"कान तो उसी तरह बड़े-बड़े हैं, आवाज कुछ बुलंद हो गयी है।" वह एक ओर टोकरी लेकर खड़ा हुआ, धोविन ने रस्सी संभाली, धोबी आवाज दे-देकर बुलाने लगा। इस पर लोगों ने उनसे इस क्रिया का मतलब पूछा। धोबी ने सारा किस्सा बयान कर दिया। जब नेता ने सुना तो वह क्रुद्ध हो गये और वहाँ आकर, धोबी को कई लात लगाये। तब धोबी ने धोबिन से कहा—"आदमी तो हो गया लेकिन अभी इसकी दुलत्ती झाड़ने की आदत नहीं गयी।"

असल में गधा गधा है और आदमी आदमी। संसर्ग से कोई कुछ अंशों में गधा हो भी जाय तो इससे क्या? पूर्ण गर्दभावस्था प्राप्त करने के लिए तो उसे वर्तमान शरीर-त्याग द्वारा पुनः अवतरित होने का कष्ट करना ही पड़ेगा। इसमें फेर-बदल और रूप-परिवर्तन की बातें पूरी तरह हवाई हैं। निष्कर्ष यह है कि असली गधा बनाया नहीं जा सकता, वह बनकर आता है। बात-बात में गधा बनाने और बननेवालों को यह नोट कर लेना चाहिए कि यह एक अपशब्द है और इस प्रजातंत्र के युग में इसके प्रयोग की छूट नहीं दी जा सकती क्योंकि ऐसे नकली गधों की संख्यावृद्धि का कुप्रभाव हमारे नेतृवर्ग पर पड़ रहा है और इसके विरुद्ध असली गधे आन्दोलन और विधानसभा भवन के सामने प्रदर्शन भी कर सकते हैं।

हमारी वर्णमाला

ठा० रणवीरसिंह शक्तावत 'रसिक'

एक-एक अक्षर है जिसका अनूठा, अर्थ
गौरव से युक्त ब्रह्म-वाणी ने निकाला है;
वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई अन्त तक,
अद्भुत कलात्मक जो दोषमुक्त आला है।
'रसिक' रसों से परिपूर्ण रमणीय अति,
गुण अभिव्यञ्जना का जिसमें निराला है;
सरल महान कर्ण-मधुर-सुधा-सी, हार—
हीरक-सुबर्ण सी हमारी वर्णमाला है॥

सर मोहम्मद इक़बाल और पाकिस्तान (१)

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[सर 'इकबाल' शाइरे-आज़म थे। उर्दू और फ़ार्सीके बड़े-से-बड़ा शाइर किसी रोज़ इतिहासके पृष्ठोंमें धुंधला पड़ सकता है, किन्तु इक़बाल आस्माने-शाइरी पर हमेशा चमकते रहेंगे। उन्होंने उर्दू-शाइरीके पुराने लबो-लेहजेको बदलकर जो नवीन डगर इख्तियार की और जीवन-जागृति और स्फूर्तिके जो भाव भरे वे बोल सदैव अमर रहेंगे। ऐसे क़ौमी सपूत पर जितना भी गर्व किया जाय कम है।

उनके सम्बन्धमें भारतमें अभी तक अधिकांश व्यक्तियोंकी यह भ्रामक धारणा बनी हुई है कि वे राष्ट्रीय कवि थे और उनके चन्द शेर मौके-बे-मौके गुनगुनाये भी जाते हैं।

इक़बाल विलायत जानेसे पूर्व १८९९ से १९०५ ई० तक राष्ट्रीय भावनाओंसे ओत-प्रोत नज्म कहते रहे, किन्तु इसके बाद बैरिस्टरीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए इंगलैण्डके प्रवासमें उन पर मजहबी रंग छाने लगा और वोह धीरे-धीरे मजहबी रंगमें सराबोर हो गये। विलायत जानेसे पूर्व जिसने इस तरह का क़लाम कहा था—

वतन की फ़िक्र कर नादाँ! मुसीबत आने वाली है
तेरी बर्बादियों के मशवरे हैं आस्मानों में
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्ताँवालो!
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में

× × ×

मुहब्बत से ही पाई है शिफ़ा बीमार क़ौमोंने
किया है अपने बख्ते-खुफ्तःको बेदार क़ौमोंने

× × ×

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा
शक्ती भी, शान्ती भी भगतों के गीत में है
धरती के वासियों की मुक्ती पिरीत में है

वही 'इक़बाल' केवल तीन वर्ष विलायत रह आनेके बाद देशोत्थान, मानव-प्रेम और मनुष्य-सेवाके मादक गीत गाते-गाते मुस्लिम साम्राज्यवाद, तबलीग़, हिज़ाज और सम्प्रदायवादके विषैले तीर छोड़ने लगते हैं—

या रब! दिले-मुस्लिमको वह जिन्दा तमन्ना दे
जो क़ल्बको गरमा दे, जो रूहको तड़पा दे

× × ×

हमनशीं! मुस्लिम हूँ मैं तौहीदका हामिल हूँ मैं

× × ×

चीनो अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा

इक़बाल जैसे परिष्कृत मस्तिष्क और विशाल हृदय वाले राष्ट्र कविको यकायक सम्प्रदायके दलदलमें फँसते देखकर लोग कराह उठे। आनन्द नारायण मुल्लाने इस अवसरपर जो नज़्म कही उसके दो शेर ये हैं:—

हिन्दी होने पर नाज़ जिसे कल तक था, हिजाजी बन बैठा
अपनी महफ़िलका रिन्द पुराना, आज नमाजी बन बैठा
ऐ मुतरिब! तेरे तरानोंमें अगली-सी अब वोह बात नहीं
वोह ताज़गीये-तख़लीक नहीं, बेसाख्तगीये-जज़्बात नहीं

इक़वाल की मुस्लिम मनोवृत्ति पर मैं अपनी ओरसे कुछ न लिखकर अल्लामा नियाज फ़तहपुरीका वक्तव्य ज्यों-का-त्यों दे रहा हूँ। यह लेख उन्हींके सम्पादनमें प्रकाशित होनेवाले 'निगार'के 'इक़बाल नम्बर' जनवरी १९६२ में प्रकाशित हुआ था। केवल फुटनोटमें कठिन शब्दोंके अर्थ यथास्थान टिप्पण अपनी ओर से दिये हैं। इस लेखसे इक़बालकी मुस्लिम मनोवृत्तिपर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

डाक्टर इक़बालने १९२७ ई० तक अमली सियायत-[1] में कोई हिस्सा नहीं लिया, हालांकि उससे क़ब्ल[2] उनकी मुतअद्दिद तसानीफ़[3] (इसरारे-खुदी-रमूजे-बेखुदी, पयामे-मशरिक बाँगे-दरा और ग़ालिबन जबूरे-अज्म भी) ऐसी शाया[4] हो चुकी थीं। जिनका ताल्लुक़ तंजीमें-मुल्क[5] ही से था जो अमली सियासतकी अस्ल बुनियाद है। लेकिन यह कोई हैरतकी बात नहीं, क्योंकि इक़बाल फ़ितरतन[6] और तारीखेआलम[7] में (अरबिस्तानको छोड़कर) हमें बहुत कम मिसालें ऐसी मिलती हैं कि किसी शाइरने अमली हैसियतसे जङ्ग-ओ-सियासतमें हिस्सा लिया हो। अलबत्ता

१. प्रकट रूपेण राजनीति, २. पूर्व, ३. अनेक कृतियाँ, ४. प्रकाशित, ५ भारतीय व्यवस्था, ६. स्वभावत:, ७. विश्व इतिहास में।

जिस हद तक फ़िक्रो-एहसास, शऊरो-इदराक, इज्तमाई-ओ-जहनी इन्क़िलाब[१] का ताल्लुक है, शुअ़रा ने भी अहम खिदमात अंजाम दी है। बिल्कुल यही सूरत इक़बाल की भी थी कि उन्होंने अपनी शाइरीसे मुल्कके जहनमें[२] सही सियासी एहसास[३] पैदा किया। फ़िरंगी इस्तिमारियतके खिलाफ़[४] एक आम जज्बए-एहतजाज के निश्वो-नुमामें नुमायाँ[५] हिस्सा लिया और इस तरह बराहे-रास्त[६] न सही, लेकिन बिलावास्ता उन्होंने मुल्की-ओ-क़ौमी सियासत-को भी काफी मुतास्सिर[७] किया।

जैसा कि मैंने अभी जाहिर किया, इकबाल काफ़ी अर्से तक अमली सियासत से जुदा रहे, बल्कि एक हद तक बेजार[८] भी, और इसका सबूत यह है कि जब मुसलिम लीग का इजलास लाहौर में हुआ (१९२४ ई०) तो इक़बालने उसमें तमाशाईकी हैसियतसे भी शिरकत[९] पसन्द नहीं की। हालांकि वह उनके मकानसे बिल्कुल मुत्तसिल[१०] श्री गुलाब थियेटर में मुनक़्क़द हुआ।

उसके और असबाब जो कुछ भी रहे हों, लेकिन एक यक़ीनी सबब यह भी था कि इक़बाल और 'जिनाह' के ताल्लुक़ात अगर नाखुशगवार नहीं तो खुशगवार भी नहीं थे, क्योंकि लाहौर की जमाअ़ते-अशराफ़,[११] एक ग़ैरपंजाबी शख्सियत का दर खुर[१२] अपने मुआसिलात में पसन्द न करती थी और इक़बाल भी उसी जमाअत के एक सरगर्म रुकुन थे। यहाँ तक कि जब मुस्लिम लीगके जवाबमे वहाँ शफ़ी लीग कायम हुई तो इक़बाल उसके सेक्रेटरी बन गये। यह बात सन् १९२७ ई० की है।

उसके बाद १९२९ ई०मे जब मुस्लिम लीगकी क़ूवत[१३] तोड़ने के लिए आलइण्डिया मुस्लिम कान्फ्रेंस की तश्क़ील[१४] अमल में आई तो इकबाल अव्वल-अव्वल उसकी मजलिसे-आमिला के मेम्बर बने और फिर ओहदए-सदारत[१५] भी क़बूल कर लिया।

इससे ज़ाहिर होता है कि इकबाल जिनाहकी पॉलिसी-को पसन्द नहीं करते थे। चुनांचे आशिक़ हुसेन बटालवी नाक़िल[१] हैं कि डाक्टर सैफ़ुद्दीन किचलूने जो मुस्लिम लीग-के सेक्रेटरी थे, एक बार दौराने गुफ्तगूमें जाहिर किया था कि—"जब दिसम्बर १९२८ ई०में कलकत्ताकी आल इण्डिया कन्वेंशनने मिस्टर जिनाहकी तजवीजको रद्द कर दिया तो मुस्लिम लीगकी हालत सख्त नाजुक हो गई और मैं इक़बालकी खिदमतमें हाजिर हुआ ताकि मुफ़ाहमत[२] की कोई सूरत पैदा हो जाये। लेकिन उन्होंने जिनाहके रवैये पर सख्त नुक्ताचीनी की और फ़र्माया कि मुसलमानों-की सियासतमें मिस्टर जिनाहने जो उलझन पैदा कर दी है, जब तक वह उस पर नदामतका इजहार[३] करके आइन्दा उससे मुज्तनिब[४] रहने का वायदा न करेंगे, मसाल-हत[५] नहीं हो सकती।

उसके बाद जब इकबाल गोलमेज कांफ्रेंसके मौक़े पर लन्दन गये (१९३१ ई०) तो वहाँ मिस्टर जिनाहसे तबा-दिलए-ख़यालात[६] का ज्यादा मौक़ा मिला और आपसकी बहुत-सी बदगुमानियाँ[७] दूर हो गईं। उसी सफ़ाईका नतीजा था कि जब १९३६ ई०में मिस्टर जिनाह इक़बालसे मिले (जो उस वक़्त सूबाई मुस्लिम लीगके सदर थे) और उनसे पार्लिमेण्ट्री बोर्ड कायम करनेकी दरख्वास्त की तो उन्होंने उस तजवीजकी हिमायत का वायदा कर लिया।

यह वोह वक़्त था, जब पंजाब एक अजीब क़िस्म के मुतजाद सियासी है जानमें मुब्तला[८] था। मुस्लिम लीग यूनियनिस्ट पार्टी, इतहाद-मिल्लत; मजलिसे-अहरार, तमाम पार्टियाँ बयक वक्त[९] एक दूसरे के खिलाफ़ अपने वजूद-ओ-बक़ा के लिए सरगर्म अमल[१०] थी। लेकिन मिस्टर जिनाहकी सबसे ज्यादा मुख़ालिफ़ जमाअत यूनियनिस्ट पार्टी थी। जिसके कर्त्ता-धर्त्ता मियाँ फ़ज्ल हुसेन थे। जिनाह और मिया फ़ज़ल हुसेन के दरमियान सबसे बड़ा इख्तलाफ़[११] यह था कि मिस्टर जिनाह चाहते थे कि मुसलमान उम्मीद-वारोंको लीगके टिकट पर इन्तखाबमें हिस्सा लेना चाहिए और मियाँ फ़ज़ल हुसेनका कहना था कि पूरे ईवान[१२] में मुसलमानों की तादात सिर्फ़ ५१ फ़ीसदी है। इसलिए जब तक किसी गैरमुस्लिम फ़रीक़ का तआवुन[१३] हासिल न हो वह वज़ारत नहीं बना सकते। और इसी

१. चिन्तन-सम्वेदन, सभ्यता-ज्ञान, सामूहिक और मान-सिक क्रान्ति का। २. विचारधारा में, ३. राजनैतिक चेतना, ४. अँग्रेजी-शासन के स्थायित्व के विरुद्ध, ५ जनता के राजद्रोही विचारधारा में विशेष, ६. प्रकट रूप, ७. प्रभावित, ८ असन्तुष्ट, ९. दर्शक के रूप में उपस्थित १०. समीप; ११. संभ्रांत गोष्ठी, १२. हस्तक्षेप, १३. शक्ति, १४. रूप रेखा, १५. अध्यक्षपद।

१. कथन है, २. समझौते की, ३. खेद प्रकट, ४. पृथक्, ५. सन्धि, ६. विचार परिवर्तन, ७. भ्रामक धारणाएँ, ८. भिन्न-भिन्न राजनैतिक विचारधाराओं में ग्रसित, ९. एक साथ, १०. अस्तित्व और स्थायित्व के लिए व्यस्त थीं, ११. मतभेद, १२. मुल्क में, १३. सहयोग।

मस्लहत के पेशे-नज़र[1] उन्होंने चौधुरी छोटूराम को मिला कर उसमें मखलूत जमाअत[2] यूनियनिस्ट पार्टीके नामसे बना ली थी। मिस्टर जिनाह भी इस हक़ीक़तसे बेखबर नहीं थे और वह छोटूरामसे इत्तहादके एक हद तक मुआफ़िक़[3] भी थे, लेकिन सिर्फ असेम्बलीसे बाहर वह मुस्लिम लीग हीके नाम पर इलेक्शन चाहते थे, किसी और पार्टीके नामसे नहीं।

बहरहाल मुस्लिम लीग और यूनियनिस्ट पार्टीका यह इख्तलाफ़ दोनों जमाअतोंके लिए दर्दे-सर बना हुआ था और मिस्टर जिनाह इस बातमें बहुत मुत्वद्दिद[4] थे। चुनांचे वह इस सिलसिलेमें डाक्टर इक़बालसे भी मिले। इक़बाल उस वक़्त बीमार थे और क़रीब-क़रीब खाना नशीन[5] हो चुके थे। लेकिन उन्होंने इम्दाद का वायदा फ़र्माया और कहा कि "आप अवधके ताल्लुकदारों या बम्बईके करोड़पती सेठोंकी क़िस्मके लोग पंजाबमें तलाश करेंगे तो यह जिन्स मेरे पास नहीं है। अलबत्ता अवामकी[6] मददका वायदा ज़रूर कर सकता हूँ।" मिस्टर जिनाहको इक़बालके इस जवाबसे बड़ी ढाढ़स बँधी।

८ मई १९३६ ई०को लाहौरके चन्द सरबर आवर्दा हजरात[7] के दस्तखत से जो बयान मिस्टर जिनाहकी ताईद-में शाया[8] हुआ था, उनमें डाक्टर इक़बालका नाम भी था।

२८ मईको इक़बालने खुद अपने मकानपर मुस्लिम लीगका एक जल्सा मुनक्किद[9] किया। जिसके सदर वे खुद थे। उस जल्सेकी एक क़रारदाद[10] यह थी कि मुस्लिम लीगके टिकट पर इलेक्शन लड़नेके लिए पंजाबमें एक पार्लियामेण्टरी बोर्ड क़ायम किया जाये और दूसरी क़रार-दाद यह थी कि उस बोर्ड के क़वायद-ओ-ज़वाबत[11] इक़-बाल हीके नामसे तक़सीम किये जाएँ।

अलग़रज़ इक़बाल अब मुस्लिम लीग के हामी हो गये थे। लेकिन सर फ़ज़ल हुसेनने मुस्लिम लीगको चलने न दिया और वह १६ साल तक पंजाबकी सियासत पर हावी रहे। जब उनका इन्तक़ाल हुआ तो इक़बालने भी उनकी वफ़ात पर इज़हारे-अफ़सोस किया और कहा कि "सर फ़ज़ल हुसेन की वफ़ात से हमारा सूबा एक हक़ीक़ी मुहव्बे-वतन-की खिदमतसे महरूम[1] हो गया।"

सर फ़ज़ल हुसेन के बाद जब सर सिकन्दर हयात यूनिय-निस्ट पार्टी के लीडर मुन्तखिब[2] हुए तो उस जमात के एक बड़े जबरदस्त कारकुने-मुल्क महदी ज़माँ मुस्लिम लीग पार्लियामेण्टरी बोर्डमें शामिल हो गये। इक़बालकी सेहत चूंकि खराब रहती थी, इसलिए उन्होंने यह तजवीज़ पेश की कि उनकी जगह मेहदी ज़माँको बोर्डका सदर मुन्तखिब कर लिया जाय। इक़बाल के इस इस्तीफे की खबर जब यूनियनिस्ट पार्टीको पहुँची तो उसने मुस्लिम लीगके खिलाफ़ यह प्रोपेगण्डा शुरू किया कि अब इक़बाल भी मुस्लिम लीगसे बेज़ार[3] हो गये। यह बात उन्हें बहुत नाग-वार गुज़री और अपना इस्तीफा वापिस ले लिया। उसके बाद मुस्लिम लीगकी तहरीक बढ़ना शुरू हुई और पार्लिया-मेण्टरी बोर्डमें मेम्बरोंका इज़ाफ़ा होने लगा, लेकिन इक़-बाल अपनी अलालत[4] की वजहसे उसके जल्सोंमें शरीक़ न हो सकते थे। ताहम उन्होंने ९ जून १९३६ ई०को एक खतके ज़रियेसे मिस्टर जिनाहको अपनी राय लिख भेजी कि :—

"बोर्डके मक़ासदके एलानमें यह सराहत[5] कर देना ज़रूरी है कि हुकूमत और हिन्दुओंके दरमियान मुसलमानों-की हैसियत क्या होगी और अगर मुस्लिम लीगकी मौजूदा स्कीमको मंजूर न किया गया तो मुसलमान अपने क़ौमी शीराज़ोंको अपने हाथसे मुन्तशिर[6] कर देंगे।"

जब पंजाब में इन्तखाबात की सरगर्मी तेज हुई तो इक़बालने मिस्टर जिनाहको लिखा कि मुस्लिम लीगकी इन्तखाबी मुहिम[7] को कामियाब बनानेके लिए उनका लाहौर आना ज़रूरी है। चुनांचे मिस्टर जिनाह ९ अक्तूबर १९३६ ई०को लाहौर आये और यूनियनिस्ट पार्टीका मुक़ाबिला करनेकी तैय्यारियाँ शुरू हो गईं जिसमें इक़बालने भी खास हिस्सा लिया।

उसके बाद जब हिन्दुस्तानमें इलेक्शन हुआ और कांग्रेसको कामियाबी हासिल हुई तो पण्डित नेहरूने दिल्ली-में आल इण्डिया कनवेंसन तलब करके हिन्दुस्तानकी आइन्दा

---

१. नीति को दृष्टि में रखकर, २. मिलीजुली, ३. मेल जोल के एक सीमा तक सहमत, ४. इस संबंध में चिन्तित एवं सावधान, ५. एकान्तवासी, ६. सर्वसाधारण, ७. मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के, ८. समर्थन में प्रकाशित, ९. आयोजित, १०. प्रस्तावित नीति, ११. प्रस्ताव और नियम।

१. सच्चे देश भक्त की सेवाओं से वंचित। २. निर्वा-चित ३. उदासीन एवं परेशान, ४. बीमारी, ५. उद्देश्यों के संबंध में प्रकट कर देना, ६. जातीय संगठन को अस्त-व्यस्त, ७. निर्वाचन आन्दोलन।

हुकूमतकी पॉलिसी पर इज़हारे-ख्याल किया कि उसकी बुनियाद सिर्फ़ इक़्तसादयात[१] पर क़ायम होगी। लेकिन इक़बालको इससे इख़्तलाफ़ था, चुनांचे उन्होंने मिस्टर जिन्नाको लिखा कि "आल इण्डिया कनवेन्सनके जवाबमें आल इण्डिया मुस्लिम कनवेन्सन का इनुकाद[२] ज़रूरी है ताकि अन्दरून-ओ-बेरून हिन्दकी तमाम दुनियाको मालूम हो जाये कि मुल्कमें महज़ इक़्तसादी मसला[३] ही नहीं; बल्कि मुसलमानोंके लिए सक़ाफ़त-ओ-कल्चरका[४] मसला भी ख़ास अहमियत[५] रखता है।"

जब बर्तानवी हुकूमतके रायल कमीशनने अपनी रिपोर्ट में तक़्सीमे-फ़िलसतीन की तजवीज पेश की तो इक़बाल उससे बहुत ज्यादा मुतास्सिर[६] हुए और उन्होंने मुस्लिम लीगका एक जलसए आम तलब करके उसमें जिन ख़यालातका इज़हार किया, उनसे पता चलता है कि वे मशरिक़ की सियासियातको[७] किस दर्दमन्दाना निगाहसे देखते थे ? उन्होंने कहा कि—

"मैं आप लोगोंको इस अम्रका यक़ीन दिलाता हूँ कि अरबोंके साथ जो नाइंसाफ़ी की गई है, मैं उसको उसी शिद्दत से महसूस[८] करता हूँ। अगर तारीख़ी पशे-मंज़ुर को[९] सामने रखकर उसका मुताला[१०] किया जाय तो साफ़ नज़र आता है कि यह मुआमिला ख़ालिसतन और कुलयतन मुसलमानोंका मामला है। तारीख इस बातपर शाहिद[११] है कि जब हज़रत उमर रजी अल्ला ताला बेतुल मुक़द्दतमें तसरीफ़ ले गये थे—और इस वाक़ियोंपर भी आज तेरह सौ बरसका अरसा गुजर चुका है, तो उनकी तशरीफ़ आवरीसे मुद्दतों पहले यहूदियोंका फ़िलिस्तीनके साथ कोई ताल्लुक़ बाकी नहीं रहा था।"

"यह भी अम्र वाक़िया है कि फ़िलिस्तीन का सवाल कभी मसीहों[१२] का मसला नहीं बना था। दौरे-हाज़िर की तारीखी तहक़ीक़ात[१३] की रोशनी में तो राहब पीटर का वजूद भी मुश्ता और ग़ैरयक़ीनी[१४] नज़र आने लगा है। अगर बफ़र्ज़ महाल यह मान भी लिया जाय कि सलेबी जंगों की ग़रज और ग़ायत[१५] यह थी कि फ़िलिस्तीन को मसीही मसला बनाया जाय तो फिर यह भी तस्लीम करना पड़ेगा कि सलाहुद्दीन की फ़तूहातने ऐसी तमाम कोशिशोंका हमेशाके लिए ख़ात्मा कर दिया था।"

"अरबों को जिस-जिस तरीक़ेसे तंग करके अपनी अर्ज़ो-मुक़द्दए[१] जिस पर मसजिदे-उमर क़ायम है फ़रोख़्त करने पर मजबूर किया गया है। उसमें एक तरफ़ तो मार्शल्ला जारी कर देनेकी सख़्त धमकियाँ हैं और दूसरी तरफ़ अरबोंकी क़ौमी फैय्याज़ी[२] और उनकी खायती महमाँ नवाज़ीके जज़्बाते-लतीफ़को बर अंगेख़्ता[३] करने की भी कोशिश की गई। यह तर्ज़े-अमल गोया इस बात का सबूत है कि बर्तानवी तद्दबुर का[४] अब दिवाला निकल चुका है। यहूदियों के ज़रखेज़ आराज़ी की पेश-कश[५] करके और अरबोंको पथरीली बंजर ज़मीनके साथ कुछ नक़द रक़म देकर राज़ी करनेकी कोशिश क़तन किसी सियासी होश मन्दी का सबूत नहीं है। यह तो एक अदना दर्ज़े की हक़ीर[६] सौदेबाज़ी है। जो यक़ीनन उस अज़ीमुश्शान[७] क़ौमके लिए मजबे-नंग और बाइस से-शर्म[८] है। जिसके नाम पर अरबोंसे आज़ादीका वादा किया गया था और यह भी वादा किया गया था कि उनके दरमियान एक मुश्तर्का-ओ-मुत्तहदा विफ़ाक़[९] भी क़ायम कर दिया जायेगा।"

मुस्लिम लीग की तारीख में "सिकन्दर-जिनाह पैक्ट" बड़ी अहमियत[१०] रखता है, जिसकी बिना पर पंजाब यूनियनिस्ट पार्टी और मुस्लिम-लीग दोनों मिलकर एक हो गई थीं। इक़बाल इस पैक्टके मुआफ़िक़ न थे। चुनांचे इस सिलसिलेमें उन्होंने एक ख़त मिस्टर जिनाहको लिखा कि "लखनऊ में आपके और सर सिकन्दरके दरमियान जो मुआहिदा[११] हुआ था, वह सूबे भरमें शदीद इख़्तलाफ़ातका मरकज़[१२] बना हुआ है। सिकन्दर ने पंजाब वापिस आते ही एक बयान शाया कर दिया था कि जहाँ तक पंजाबका ताल्लुक़ है, साबिक़ए सूरते-हाल हनूज़ क़ायम और बहाल[१३] है। अलबत्ता उसमें सिर्फ़ यह तरमीम[१४] कर दी गई, कि

१. आर्थिक नीति, २ बुलाना, ३. आर्थिक समस्या, ४. भाषा एवं संस्कृति ५. विशेष महत्ता, ६. प्रभावित, ७, पूर्वीय देशों की राजनीति, ८. अधिकता से अनुभव, ९. ऐतिहासिक दृष्टिकोण, १०. अध्ययन, ११. साक्षी, १२ ईसाइयों का, १३. वर्तमानयुगीन ऐतिहासिक अन्वेषण। १४. आस्तित्व भी, संदेहास्पद और अविश्वसनीय, १५. ईसाइयों की युद्ध अभिलाषा,

१. पवित्र भूमि, २. जातीय उदारता. ३. परम्परागत आतिथ्य सत्कार की कोमल भावनाओं को उभारने की. ४. बड़प्पन, ५. दौलत उगलनेवाली जमीन देने का वायदा, ६. तुच्छ, ७. महान, ८. बदनामी और लज्जाका कारण, ९. मिला-जुला और संगठित गठ-बंधन, १०. विशेषता, महत्व, ११. समझौता १२. अत्यन्त मतभेद का केन्द्र, १३. पहलेवाली नीति अब भी ज्योंकी- त्यों है, १४. संशोधन।

यूनियनिस्ट पार्टीके उन मुस्लिम इरकानको[१] जो मुस्लिम लीगके मेम्बर नहीं हैं, मशविरा दिया जायेगा कि अगर वह पसन्द करें तो लीगमें शामिल हो जायें। इसके अलावा यह शर्त भी लगा दी गई है कि आइन्दा ज़मनी इन्तख़ाबात[२] में जो मुस्लिम उम्मीदवार के टिकट पर खड़े होंगे, उन्हें यह अहद करना होगा कि कामयाब होनेके बाद वह यूनियनिस्ट पार्टीमें शामिल हो जायेंगे। इसके एवज़ इन्तखाबातकी जंगमें उन्हें यूनियनिस्ट पार्टी की इम्दाद हासिल होगी।"

जब दिसम्बर १९३७ में यौम-इक़बालकी तक़रीब[३] मनाई जानेवाली थी तो उस मौक़े पर सर सिकन्दर हयात खांने एक बयान अख़बारात में शाया कराया कि—

"हमारा फ़र्ज़ है कि हम उस तक़रीब को इस मतानिवे-संजीदगी और वक़ार[४] से मनाएँ जिससे एक तरफ़ तो दुनिया पर इक़बालकी अज़मत और उसकी शाइरीकी हक़ीक़ी क़दर-ओ-मंज़िलत ज़ाहिर हो जाये और दूसरी तरफ यह भी वाज़ह[५] हो जाये कि एशिया अपने इस फ़र्ज़न्दे-जलील के अदबी कारनामों की[६] क़दर करने की पूरी सलाहियत रखता है।"

"अर्सए-दराज़ की गराँ ख्वाबी[७] के बाद अगर आज हमें मुसलमानों में बेदारीके[८] आसार नज़र आते है तो यह सब कुछ इक़बालकी पुरजोश[९] आवाज़का असर है। इधर हिन्दुस्तानके बाशिन्दोंमें भी जो तड़प और बुलन्द निगही[१०] पैदा हो रही है। वह भी इस नाबग़ए-अज़ीमकी मसाईकी शरमिन्दए-एहसान[११] है। लिहाज़ा हर हिन्दुस्तानी का फ़र्ज़ है कि वह 'योमे इक़बाल' को एक मुक़द्दस क़ौमी फ़रीज़ा[१२] समझकर उसमें सरगर्मी से हिस्सा ले।"

१. कार्यकर्त्ताओं को, २. कौंसिलों के निर्वाचनों में, ३. वर्षगाँठ, ४. सभ्यता और प्रतिष्ठापूर्वक, ५. प्रकट, ६. महान् सपूत के साहित्यिक, कार्यों का, ७. बहुत काल तक अगाढ़ निद्रा में पड़े रहने के, ८. जागरण के, ९. ओजस्वी प्रेरणादायक, १०. कुछ कर गुज़रने के हौसले और उच्च दृष्टि, ११. महान् व्यक्तियों के किये गये प्रयत्नों से अनुगृहीत, १२. पवित्र जातीय कर्त्तव्य।

"इसी सिलसिले में मैं यह तजवीज़ पेश करता हूँ कि जिस-जिस शहर में योमे इक़बाल मनाया जाये, वहांके बाशिन्दों को चाहिए कि वह शाइरे-अज़म की ख़िदमत में एक थैली नज़र करें।"

सर सिकन्दर की इस तजवीज़ पर इक़बालने हस्ब ज़ैल बयान शाया किया —

"सर सिकन्दरने यह तजवीज़ पेश की है कि जो लोग मेरे कलामसे दिलचस्पी रखते हैं, वह सब मिलकर मुझको एक थैली पेश करें। मैं समझता हूँ कि मौजूदा हालातमें हमारी क़ौमकी ज़रूरियात इस क़दर ज़्यादा हैं कि उनके सामने एक शख्शकी ज़रूरते कोई हैसियत नहीं रखतीं। हर चन्द कि उस शख्सकी शाँयरीने हज़ारों, लाखों, इंसानोंकी रूहको क्यों न जिला बख्शी[१] हो। फ़र्द और उसको एहतियाज[२] बहरहाल ख़त्म हो जाने वाली चीज़ है। लेकिन क़ौम और उसकी एहतियाज हमेशा बाक़ी रहेंगी।

"आज वक़्तकी सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि इस्लामी अलूम की तहक़ीक़[३] के लिए इस्लामियाँ कालेज में एक चेयर क़ायम की जायें जहाँ जदीद तरीक़ों[४] के मुताबिक रिसर्च होनी चाहिए।

"अब वक़्त आ गया है कि इस्लामी फ़िक्र और इस्लामी तर्जे-हयात[५] का बग़ौर मुतायला करके हम अवाम को बतायें कि इस्लाम का अस्ल मक़सद क्या था और उस मक़सद और पैग़ाम[६] को किस तरह तह-दर-तह पर्दो में छुपा दिया गया है। नीज़ यह कि हिन्दुस्तान के अन्दर मौजूदा इस्लाम की रूह को क्योंकर मस्ख़ किया गया है। इन पर्दोको अब उठाना चाहिए, ताकि नई नस्लके नौजवान इस्लामकी हक़ीक़ी शक्ल-ओ-सूरतसे आगाह हो सकें।"

(क्रमशः)

१. आत्माओं को प्रकाश, २. व्यक्ति और उसकी आवश्यकताएँ, ३. इस्लामी साहित्य के शोध खोज के लिए, ४. वर्त्तमान ढंग के शोध-खोज के अनुसार, ५. इस्लामी दर्शनशास्त्र और जीवन पद्धति, ६. उद्देश्य और संदेश।

आध्यात्म के महाकवि हज़रत 'ऐन' शाह

श्री याहिद काज़मी

हज़रत ऐनुल्लाह का पूरा नाम ऐनुल्लाह हुसैन शाह था तथा वे 'ऐन' उपनाम से कविता करते थे। यद्यपि उनके जन्म-मृत्यु का ठीक ठीक समय अभी अज्ञात है, किन्तु उनके द्वारा उचित ग्रन्थों के आधार पर वे सं० १९०२ वि० तक विद्यमान थे। ग्वालियर में पैदा हुए तथा वहीं लालन-पालन हुआ। बचपन से ही अत्यन्त गंभीर प्रवृत्ति के थे। अतः अधिकांश समय साधुओं व फ़क़ीरों की सेवा में व्यतीत होता था। एक दिन एक फ़क़ीर के साथ घर से निकल पड़े, तथा घूमते-घामते पैदल दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ हज़रत फ़िदा हुसैन नामक एक विद्वान् सन्त से इतने अधिक प्रभावित हुए कि विधिवत् उनके शिष्य होकर सेवा में रहने लगे और उन्हींकी आज्ञा से फ़क़ीरी अपनाई। इस घटना के छः महीने बाद ग्वालियर आकर नगर से बाहर रहने लगे, तथा कुंडलियों के रूप में इनकी वाणी प्रकट होने लगी। लोगों ने जब ऐसी उपदेशपूर्ण-दिव्य वाणी सुनी तो अपनी कुटी पर धर्म-प्रेमी हिन्दू-मुसलमानों का अच्छा खासा जमाव रहने लगा, जिन्हें सतसंगी कहा जाता था। स्व० राजा बालचन्द जी इनके सर्वप्रथम शिष्य हुए। तदुपरान्त सैकड़ों हिन्दू-मुस्लिम व्यक्तियों ने इनकी शिष्यता ग्रहण की।

उन्होंने अपना अधिकांश जीवन दतिया, जोधपुर, जयपुर, दिल्ली, अलवर आदि स्थानों का पैदल भ्रमण करने में व्यतीत किया। जहाँ भी वे जाते लोग उनके दर्शनार्थ एकत्र हो जाते, तथा उनकी वाणी से लाभान्वित होते। ऐन शाह सबसे बिना किसी भी भेद-भाव के समान स्नेह एवं सौहार्द का व्यवहार करते और सबकी शंका समाधान करते। जीवन भर आपने लोगों को शान्ति, धर्म, प्रेम एवं एकता का पाठ पढ़ाया। आपके हिन्दू शिष्यों में 'गोपाल' उपनामी एक कवि का भी उल्लेख मिलता है। हिन्दी तथा भारतीय आध्यात्म एवं दर्शन पर आपने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की है। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि आध्यात्म एवं शुद्ध दर्शन के ऐन शाह सर्वप्रथम महाकवि हैं।

रचनाएँ—हज़रत ऐन शाह ने ठेठ हिन्दी में आठ वृहद काव्य ग्रन्थों की रचना की है जिनमें से पाँच ग्रन्थों की हस्त-लिखित मूल प्रतियाँ लेखक द्वारा बड़े ही प्रयत्नों के उपरान्त खोजी जा चुकी हैं। इन ग्रन्थों का अति संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है :—

(१) **स्वयं प्रकाश**—७" × ९" आकारीय पौने छः सौ पृष्ठों के इस ग्रन्थ के बावन अध्याय हैं। संवत् १९०२ वि० में इसकी रचना जयपुर नगर में पूर्ण हुई।

(२) *उपदेश-हुलास—यह ग्रन्थ भी ९" × ७" आका*-रीय पृष्ठों पर लिपिबद्ध किया गया है। आरम्भ एवं अन्त के कुछ पृष्ठ गायब हैं। अतः इसकी वास्तविक पृष्ठ-संख्या और रचना-काल के विषय में अभी कुछ प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु फिर भी वर्तमान दशा में यह लगभग पौने सात सौ पृष्ठों का ग्रन्थ है। अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक कुंड-लिया के बाद इसकी गद्य में व्याख्या (टीका) भी की गयी है। ग्रन्थ की लेखन विधि और स्थान-स्थान पर की गयी काटा फाँकी से स्पष्ट है कि यह अभी प्रारूप (मसविदा) है, अन्तिम रूप नहीं दिया गया। कहीं-कहीं तो समूचा पृष्ठ ही काट दिया गया है। लेखन विधि अत्यन्त घसीट है, इस लिए इसका पढ़ना अत्यन्त कठिन है। कुण्डलियों का मुख्य विषय भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र में दिये गये गीता के परम उपदेश हैं। ग्रन्थ में कुल २२२ कुण्डलियाँ हैं जिनकी लम्बी-लम्बी व्याख्याएँ की गयी हैं।

(३) **ऐनानन्द सागर**—इस ग्रन्थ को भी सम्पूर्ण रूप में नहीं खोजा जा सका। बड़ी कठिनाई से इसके कुछेक पृष्ठ उपलब्ध किये जा सके हैं। दोहा, सोरठा एवं चौपाई शैली में रचा गया यह ग्रन्थ काफ़ी बड़ा ग्रन्थ रहा होगा, जिसको छोटे-छोटे अध्यायों में विभाजित कर दिया गया है। प्रत्येक अध्याय को 'हिलोर' कहा गया है जिस प्रकार 'स्वयं प्रकाश' के अध्यायों को 'प्रकाश' कहा गया है। प्राप्त पृष्ठों में कवि लाघवता, ईश्वर भक्ति का गुणगान एवं ईश्वरो-पासना से संबंधित रचनाएँ हैं।

(४) सिद्धान्त सारिका—खेद का विषय है कि अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी इस ग्रन्थ के केवल पचास पृष्ठ ही प्राप्त किये जा सके, शेष का कोई पता नहीं चलता। वह भी चूँकि प्रारम्भ से नहीं, वरन् चौथे पृष्ठ से मिले हैं, इसलिए इसके रचना-काल, रचना-स्थल, वास्तविक पृष्ठ-संख्या आदि के विषय में भी पूरी जानकारी प्रस्तुत नहीं की जा सकती। यह ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा जरा अधिक मोटी कलम से और अधिक सुन्दर लिखा गया है। इसका कागज भी और ग्रंथों के कागज की अपेक्षा अच्छा है। किन्तु उसकी लिपि में तनिक सा अन्तर है। कुंडलिया शैली में रचे गये इस ग्रन्थ के प्राप्त पृष्ठों में लगभग सौ कुण्डलियाँ हैं जिनका मुख्य विषय, जैसा कि नाम से आभास मिलता है, सिद्धान्तों की व्याख्या, सारांश या इसी प्रकार की बातें नहीं हैं। सम्भवत: इसका कारण यह है कि अभी ग्रन्थ का प्रारम्भ है, और प्रथम अध्याय (भगवत महिमा) के ये पृष्ठ हैं। दोहा, चौपाई एवं सोरठा शैली में रचे इस ग्रन्थ में २१५० चौपाई, १४० दोहे, १४० सोरठे अर्थात् कुल २४२९ छन्द हैं। ग्रन्थ के मुख्य विषय, समाधान ज्ञान, आदि सिद्धान्त ज्ञान, मरफात ज्ञान, आध्यात्म ज्ञान, षट-शास्त्र निर्णायक ज्ञान, विद्या निर्णय ज्ञान, कार्य-कारण ज्ञान, मीमांसा ज्ञानो, केवल ज्ञान, सिद्धान्त ज्ञान, विद्या निर्णय ज्ञान इत्यादि आध्यात्म के सैकड़ों विषय हैं। इसमें परीक्षित की एवंद तीन अन्य कल्पित कथाओं का भी समावेश है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें चार अध्यायों द्वारा सूफ़ीयत और तसव्वुफ़ के चार प्रमुख अंग (शरीअत, मारिफ़त, तरीक़त और हक़ीक़त) की व्याख्या कर्म एवं उपासना काण्डों आदि द्वारा बड़े सुन्दर रूप से की गई है, जिसके अध्ययन से तसव्वुफ़ और भारतीय आध्यात्म में कोई अन्तर कहीं रह जाता।

(५) भागवत प्रसाद—इस ग्रन्थ की रचना सं० १८०० वि० में जयपुर नगर में की गयी। ९″×७″ आकार वाले छः सौ पृष्ठों पर रचित इस ग्रन्थ के २१ अध्याय हैं। कुण्डलिया शैली में रचे गये इन अध्यायों में प्रत्येक में न्यूनाधिक पचास (छः पंक्तियों की) कुण्डलियाँ हैं, जिसकी कुल संख्या लगभग एक हजार है। ग्रन्थ में भगवत् धर्म, सृष्टि-रचना एवं विध्वंस आत्मविद्या, आध्यात्म, अवतारों का रहस्य, विधि-निषेध, वर्णाश्रम, योगपन्थ, सिद्धि योग, विज्ञान, परमज्ञान, तत्त्व एवं उनकी वास्तविक संख्या, संख्या विधि, ब्रह्म ज्ञान, गुण-वृत्ति, मनुष्योचित वृत्तियाँ एवं उचित लक्षण आदि की विवेचना। वेद, पुराण, शास्त्र आदि के मूल उद्देश्यों, एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थन के साथ-साथ शुद्ध आध्यात्मवाद के सैकड़ों प्रसंगों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ में प्रसंगोचित रूप से बीच-बीच में हंस गीता, किंशुक गीता और विनयोदर्शी आदि की धार्मिक कथाओं का भी समावेश है।

(६) सिद्धान्त सार—दतिया नगर में इस ग्रन्थ की रचना किये जाने का उल्लेख इनके एक ग्रन्थ में मिलता है, किन्तु ऐसा प्रकट होता है कि ऐन शाह का यह सर्वप्रथम ग्रन्थ था। सम्भव है उसमें कुछ त्रुटियाँ या कमियाँ रह गयी हों, अत: इसे नष्ट कर दिया गया। बहरहाल कारण कुछ भी रहा हो, ऐन शाह के जीवन में ही इसे नष्ट कर दिया गया था, किन्तु यह प्रमाणित है कि यह भी कुण्डलिया शैली में रचा गया था, जिसके रचना-काल आदि के विषय में फिलहाल कुछ नहीं कहा जा सकता। इसमें अत्यन्त सुन्दर, रुचिकर एवं सरस कुण्डलियाँ थीं जिनका विषय परमात्मा के वियोग में कलपती आत्मा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण था जो हृदय को झंकृत कर देता था। अनुमानत: कहा जा सकता है कि यह उनका सबसे सरस ग्रन्थ रहा होगा।

उपरोक्त छः ग्रन्थों के अतिरिक्त दो या तीन और ग्रन्थों की रचना किये जाने का अनुमान है जिनकी खोज की जा रही है। किन्तु अभी तक उनका कोई पता नहीं चल सका है। हजरत ऐन शाह की वे काव्यगत विशेषताएँ और सृजन-शक्ति की विलक्षण प्रतिभा, जो उनमें बावजूद एक सन्त, ईश्वरभक्त, और अरबी-फार्सी के ज्ञाता होने के, महाकवि के रूप में उनमें विद्यमान थी, इन वृहद काव्य ग्रन्थों के प्रकाश में स्वयं ही सामने आ जाती है, और ऐन शाह को एक श्रेष्ठ महाकवि स्वीकार करने मे आपत्ति का कोई कारण नहीं रह जाता है।

जैसा कि स्पष्ट है कि ऐन शाह का समय हिन्दी साहित्य के विभाजनानुसार रीतिकालीन युग है। शृंगार की प्रधानता से तथा काव्य की उत्कृष्टता की दृष्टि से यह शृंगार का गौरवपूर्ण युग कहा जा सकता है, किन्तु ऐन शाह की रचनाओं में शृंगार नामक किसी वस्तु के दर्शन तक नहीं होते। वरन् उन्होंने आध्यात्म एवं दर्शन जैसे

जटिल विषय को मुख्य विषय के रूप में चुनकर जिस कुशलता और बुद्धिमत्ता से कविता में ढाला है, वह आश्चर्य-चकित कर देनेवाला है। अैन शाह की रचनायें भक्तिकाल की रचनाओं के विषय पर कही जा सकती हैं, किन्तु उनका ठीक-ठीक साम्य वहाँ भी नहीं मिलता क्योंकि इनका विषय न तो प्रेममार्गी शरण का अवास्तविक प्रेम (इश्के हकीकी) है, न उसके अन्तर्गत अलौकिक आराध्य एवं लौकिक आराधना ही है, न ज्ञाना-श्रयी शाखा की निर्गुण उपासना, न राम हैं न कृष्ण, और न ही उनकी रचनाओं में आराध्य को आराधक द्वारा विभिन्न रूपों से भजा या अपनाया गया है। अतः मानसिक उद्वेग, पीड़ा, सम्वेदन आदि का चित्रण नहीं के समान हुआ है। अैन शाह इन तमाम बातों का त्याग करके केवल एक ब्रह्म के दर्शन कराते हैं जो निर्विकार, निराकार, निरूपम, अवर्णनीय एवं अनंत है। मानव उसे अपनी भावना के अनुसार जिस रूप मे चाहे देख सकता है। शास्त्रों के ज्ञाता, दर्शन एवं आध्यात्म के विद्वान् होने के कारण ब्रह्म की उपस्थिति, महत्त्व आदि की व्याख्या के लिए, भावों की अभिव्यक्ति, आख्यायिकाओं, गाथाओं का अवलम्बन आदि लेने के लिए, शास्त्रीय रीति से बौद्धिक स्तर पर कारिकाएँ बनाई हैं जिनकी भाषा सटीक एव सुन्दर तर्कपूर्ण है। इस कारण भावों की अभिव्यंजना की अपेक्षा कविता का बोझिल पक्ष अत्यन्त प्रबल है।

श्री अैन शाह के समस्त ग्रन्थ किसी एक ही शैली में न होकर चार शैलियों में है—अर्थात् चौपाई, दोहा, सोरठा और कुण्डलिया में। दोहा-चौपाई शैली में (प्राप्त ग्रन्थों में) दो तथा कुण्डलिया शैली में चार ग्रन्थ हैं। वैसे काव्य को धाराप्रवाह बनाने के लिए चौपाई सबसे उपयुक्त एवं उपयोगी छंद माना गया है, किन्तु यह भी एक सुखद आश्चर्य है कि अन शाह ने कुण्डलिया छन्द द्वारा छोटे-छोटे कथा-काव्य और काव्य ग्रन्थ रचकर इस छन्द की महत्ता एवं उपयोगिता को उजागर कर दिखाया है जो इस प्रकार का सर्वप्रथम सफल एवं सराहनीय प्रयत्न है, जिसके लिये उन्हें कुंडलिया सम्राट् कहना अतिशयोक्ति न समझी जायगी। अैन शाह ने अपने ग्रन्थों द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया है कि यह भी एक ऐसा छन्द है जिसके द्वारा धाराप्रवाह रूप में वृहत् काव्य ग्रन्थ भी लिखे जा सकते हैं।

किन्तु खेद इस बात का है कि ऐसी अद्भुत सृजनन्शक्ति के स्वामी हिन्दी के विद्वान् एवं आध्यात्म के महाज्ञाता श्री अैन शाह का यह दिव्य व्यक्तित्व प्रस्तुत लेख द्वारा परिचित कराये जाने से पूर्व पूर्णतः अज्ञात ही रहा, और लेखक को उन पर खोज कार्य करते समय जब हस्तलिखित ग्रन्थों की मूल प्रतियाँ प्रा त हुईं, उन्हें देखकर मन रो उठा, क्योंकि वे इस दशा में थीं कि उन्हें ग्रन्थ तो क्या, ढाई सौ वर्ष प्राचीन कागज-पत्रों का एक हीन ढेर मात्र कहा जाना चाहिये था। बड़ी कठिनाई से वह इस योग्य किया जा सका कि उस पर ब्रह्म कवि हो सके; उन सब बातों का विवरण न यहाँ आवश्यक है, और न महत्वपूर्ण। किन्तु लेखक अब इस ओर प्रयत्नशील है कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र प्रकाश में लाया जा सके।
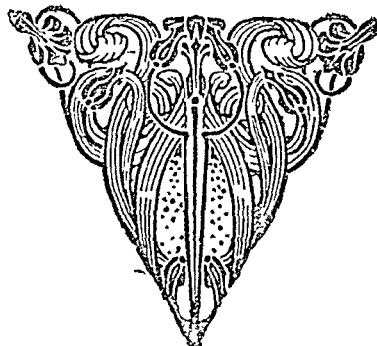
"मीर" और "मीर मंडल"

डा० व्रजभूषणसिंह "आदर्श"

वर्तमान युग की यह माँग है कि हम ऐसे साहित्यकारों का स्मरण करें जिन्होंने अहिंदी भाषा-भाषी होते हुये भी माँ-भारती के भांडार को समृद्ध बनाया। इन्हीं में कविवर सैयद अमीर अली 'मीर' भी एक थे। हिंदी के पुनरुत्थान के प्रभातकाल में उन्होंने जो सामाजिक रचनायें लिखीं वे पाठकों में अत्यन्त रुचिपूर्वक पढ़ी जाती थीं। मीरजी विशुद्ध भारतीय थे और उनका यही रूप उनकी कृतियों में देखने को मिलता है।

मीरजी के प्रथम कवित्त में ही उनकी भारतीयता की वृत्ति इस प्रकार समावेशित है—

सीताराम-ब्याह की उछाह अवलोक सब,
जनक-समाज बलि जात सुख-कंद पै।
वेद कुलरीति जैसी आज्ञा वशिष्ठ दीनी,
भाँवरों के सुन्दर सुभ समै निरद्वंद पै।
ता समय दुलही माँग भर वे चलायौ हाथ,
दूलहा ने सिंदूर ले अँगूठा अमंद पै।
उपमा तहाँ ऐसी मन आई कवि 'मीर' मानों,
लोभ तें अमी के अहि बढ्यो जात चंद पै।

भारतीय धर्मग्रंथों के सच्चे उपासक होने के कारण ही मीरजी साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। उनमें राष्ट्रीयता, धार्मिकता और साहित्यिकता, काव्यात्मक एकीकरण मिलता है—

हिंदू मुसलमान हो किंवा, भारत जन्मे ईसाई।
जननी जन्मभूमि के नाते, सब ही भाई भाई।
मिलकर ऐसे काम करो, हो जिससे उन्नत देशसमाज।
भूल जाव कल की वे बातें, जिनसे कलह न होवे आज।

सामाजिक कुरीतियों के प्रति उनका आक्रोश उनके साहित्य में दिखलाई पड़ता है।

मीरजी की कृतियों में 'बूढ़े का ब्याह,' अपने युग का बहुचर्चित खण्ड-काव्य है। इसमें मीरजी ने वृद्ध विवाह की सामाजिक कुरीति पर जमकर प्रहार किया और समाज-सुधारक के रूप में उसके दुष्परिणामों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया।

कृति के समर्पण में कवि की हास्य-व्यंग्य के पीछे निहित पीड़ा से सहज ही परिचित हुआ जा सकता है—

जो यौवन का लूट चुके सुख, अब मलते रहते हैं हाथ,
'बाबा' कहलाते, रहती पर विषय वासना जिनके साथ।
देख किशोरी को हो जाते जिनके आनन कूप सनीर
उन बूढ़ों के कम्पित कर में करें समर्पण सादर मीर।

इतना ही नहीं, वृद्ध विवाह को शास्त्र-सम्मत बताकर जो ब्राह्मण इस कुकृत्य में सहभागी होते हैं, मीरजी ने उनकी भी खूब खबर ली—

जिस ब्राह्मण को चतुर्वर्णं में बड़ा और सिरताज कहा,
है अफसोस नहीं है उसमें वह पहला अभिमान रहा।
जिनके पूर्व पुरुष औरों को धर्मपंथ बतलाते थे,
जिनके चरण कमल पर मस्तक राजा रंक झुकाते थे।
उनके ही वंशज अब देखो, ऐसे कुछ बरबाद हुए,
गुण से खाली हुए, मगर हाँ, अवगुण से आबाद हुए।
जिस समाज के अगुओं में जब अनाचार अत्यन्त हुआ।
तब निस्संशय गौरव गिरि से गिरकर उनका अंत हुआ।
लेकिन जिनका नेतादल जब सच्चरित्र, गुणवंत हुआ,
तब अवश्य वह सुखी, समुन्नत, कीर्तिवान, श्रीमंत हुआ।

इस तरह यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि मीरजी के काव्य में मनोविनोद ही नहीं, अपितु सामाजिक जागृति के उत्कट स्वर भी झंकृत हुए हैं। उसमें लोक-हिताय की भावना है जो स्थल स्थल पर उपदेशात्मकता का स्वरूप ग्रहण कर लेती है—

इसीलिए कहता हूँ भाई, शिक्षा का विस्तार करो,
देशधर्म के साथ समय भी देख देख व्यवहार करो।
जिससे कोई कभी नहीं यों तिरस्कार उपहास करे,
धर्म बचे, यश मिले, बढ़े धन, घर घर सौख्य निवास करे।
पति पत्नी में पूर्ण प्रेम हो, जिससे उत्तम हो संतान,
करें देश का जो मुख उज्ज्वल, रक्खें अपने कुल का मान।
अब सलाम करता हूँ पाठक, खूब हुआ बूढ़े का ब्याह,
"मीर" कभी फिर हाजिर होगा, अगर आप देंगे उत्साह।

पाठकों ने कवि का उत्साहवर्धन किया और उनके जीवनकाल में ही इसके तीन संस्करण प्रकाशित हुए।

सदचारिता, नैतिकता और आदर्शवादिता का यही स्वरूप 'मीरजी' की अन्य दो पुस्तकों—'नीति दर्पण' की भाषा टीका और 'सदाचारी बालक' में उद्घाटित हुआ है। 'सदाचारी बालक' में युगानुकूल राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर विशेष बल दिया गया है।

मीरजी राष्ट्र की पराधीनता से क्षुब्ध थे। गौरवमय अतीत का स्मरण कर वे कलात्मक सांकेतिक अभिव्यंजना के माध्यम से जन-जागरण के लिये सचेष्ट प्रतीत होते हैं। उनके अनेक छन्दों मे समकालीन सामाजिक जीवन की विद्रूपता का चित्रण और असहायावस्था के प्रति व्यंग्य और आक्रोश की अभिव्यक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

जो रक्षक भक्षक बने, 'मीर' कहा उपचार?
'बारी खावे खेत' तो, का करिहै रखवार!
'मीर' भागवश मानसर, जो पै तजे मराल,
तो न तलैयन में कभूँ, काट सके निज काल।

सिंह की पराधीनता से उत्पन्न असहायावस्था का मार्मिक चित्रण उनकी एक कुंडलिया में यों है—

जाने कीन्हो दमन है मत्त मतंगन मान।
हाय दैववश सिंह सो, परो पींजरे आन।
परौ पींजरे आन, श्वान के गन ढिंग भूँकें।
बिह सें ससा सियार कान पै आके कूकें।
'मीर' बात है सत्य लोक में कहिगे स्याने।
कापै कैसो समय कबै परिहै, को जाने?

मीर साहब सामान्यजन को उसकी पराधीनता का बोध करा कर जाग्रतावस्था में लाना चाहते हैं और झकझोर कर कहते है—

तोता! तू पकड़ा गया जब था निपट नदान,
बड़ा हुआ कुछ पढ लिया, तो भी रहा अजान।
तो भी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया,
जीवन पर के हाथ सौंप निज घर बिसराया।
कहें मीर समुझाय, हाय! तू अब लौं सोता,
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ के तोता?

मीरजी न केवल कवि अपितु एक कुशल संगठक भी थे। उन्होंने हिंदी के प्रचार एवं प्रसार के लिये 'मीर मडल' नामक एक साहित्यिक संगठन की स्थापना भी की थी।

महाकोशल क्षेत्रान्तर्गत 'भानु मंडल' और 'मीर मंडल' ने साहित्यिक चेतना के निर्माण में अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया है। 'मीर मंडल' की स्थापना मीर साहब ने की थी, और 'मंडल' के कवियों में प० कन्हैयालाल 'लाल विनीत,' मुंशी खैराती खाँ "खान", बाबू गोरेलाल "मंजुमुशील" ने उत्तम काव्य-रचना की।

"लाल विनीत" का जन्म देवरी में सन् १८७९ में हुआ था। बाल्यावस्था में उनमें अध्ययन के प्रति अरुचि रही, पर मीरजी की प्रेरणा से उन्नीस-बीस वर्ष की वय में उन्होंने पुन: अध्ययन प्रारम्भ किया, और सन् १९०१ ई० में अध्यापकों की ट्रेनिंग परीक्षा उत्तीर्ण कर शिक्षक हुए। तदुपरान्त कुछ वर्षों तक अध्यापन किया, फिर त्यागपत्र देकर घर का कार्य देखने लगे।

आपने पन्ना नरेश श्री रुद्रप्रतापसिंह कृत 'ज्ञान सुधाकर' की टीका लिखी थी जो अप्रकाशित है। यह ग्रंथ 'रामचरितमानस' के अनुकरण पर दोहा-चौपाइयों में वर्णित है। इसमें सात काण्ड में रामचरित्र वर्णित है। आपकी अलंकृत काव्य-माधुरी का रसास्वादन करें—

छाई छिति मंडल पै चाँदनी चवक चारु,
प्रसरी अनूप आभा देह अलबेली सी।
मुख अरविन्दन पर अवली मलिन्द की,
अलक निकाई राजै गरब गहेली सी।
पीत पट ओढ के पराग को 'विनीत'
और तारागन मोतिन की डार मंजु सेली सी।
नवौ खंड-मंडित, अखन्डित उदोत होत,
शरद सुहाई आई कामिनी नवेली सी॥

श्रावण कृष्णा ११ संवत् १८९३ को आप गोलोकवासी हुए। आपकी मृत्यु पर आपके सम-सामयिक कवि नेगी लल्ली प्रसाद ने लिखा था—

मंडल मीर के रत्न अनूपम
काव्य कला सुठि जानन हारे।
भारत भक्त भले सबके,
कुल में जिमि दीपक से उजियारे
देवरी नाम कियो जग उज्ज्वल,
नेगि कहें गुन को नहिं पारे।
श्रावण कृष्ण एकादशि के दिन,
लाल विनीतजी स्वर्ग सिधारे॥

मीर मंडल के एक अन्य कवि मुंशी खैराती खाँ भी अध्यापक थे। आप काव्य-रचना के साथ-साथ गणित और चित्रकला में भी अत्यन्त पटु थे। आपका जन्म देवरी में सन् १८७८ ई० में, और देहावसान १८ जनवरी सन् १९०७ में हुआ था। आपका काव्य सादगी से परिपूर्ण है और उसमें उच्च विचारों की छटा देखते ही बनती है--

मूंड़ मुड़ाय कहा भयो 'खान,'
कहा भयो बाँधे जटा सिर भारी ?
तैसेहि चीर रँगाये कहा भयो,
अंग भभूति कहा भयो धारी ?
मौन धरें जगमाल कहा,
कहा धूनी लगाय भयो अधिकारी ?
वादि गयो धरो जोग अनारी,
जो आसन मारी पै आस न मारी।

मीरजी के समान खैराती खाँ के काव्य में भी नैतिकता को प्रमुख स्थान मिला है। 'मीर मंडल के कवियों में प्राचीनता के प्रति मोह की भावना और नवीनता की खोज दोनों का समन्वय देखने को मिलता है। उनमें उपदेशात्मकता भी है और जीवन की स्वाभाविकता को पहिचानने का आग्रह भी। इस संदर्भ में खाँ साहब का एक छन्द देखिये—

केतक मारिवे सिंहन के फिरे,
शूर गरुर भरे अभिमानी।
त्यों करि-कुंभ विदारन को,
किते ठोंकत ताल करे मरदानी।
'खान' लखे बलवान किते,
बलवान पछारत हैं प्रण ठानी।
पैदलिवे कुसुमायुध को हैं दिखात
कहूँ बिरले जग प्रानी।

मीरजी के प्रिय शिष्य गोरेलाल 'मंजुसुशील' भी देवरी के थे, और आपका जन्म सन् १८८२ के आसपास बाबू श्यामलाल कायस्थ के यहाँ हुआ था। कुछ समय तक आप औरंगाबाद, जिला गया, से प्रकाशित 'लक्ष्मी' पत्रिका के सम्पादक भी रहे। 'मंजुसुशील' के काव्य में कलात्मकता है, भाव और भाषा दोनों का सम्यक् निर्वाह उन्होंने किया है—

तरल तरङ्गवारी तीछन त्रिवेणी ऐली,
सुंदर पुरंदर के चाप की निकाई है।
धूमधाम घोरे धरामंडल पे धामन की,
प्रसरी चहूँधा जोर जालिम जुन्हाई है।
सुकवि सुशीलमंजु आनंद अछैवट सौं,
मगरे विहंग द्विज बोलत सुहाई है।
आछी ओजवारी, भारी, चारुता संवारी,
हेरौ, शरद सुहावनी प्रयाग बनि आई है।

उनके भाव स्पष्ट और भाषा में अनूठी सादगी है। यत्र-तत्र मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग उसके सौंदर्य में चार चाँद लगा देता है—

सिकता सन तेल निकरिवो ज्यों,
जुही फूल सों शैल गिराइवो है।
बलि त्योंही विशाल विभाकर के,
उड़ु तारन पुंज गनायवो है।
कवि मंजुसुशील मृणाल के
तारसों, कुंजरवृन्द बंधइवो है।
यह नेह को नेम चलायवो री,
तरवार की धार पै धाइवौ है।

मीर साहब का जन्म ८ अक्टूबर, १८७३ में हुआ था। चार वर्ष बाद ही सन् १९७३ में उनकी जन्म शती होगी। क्या म०प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन इसे ठीक तरह से मना कर इस मौन साधक का सम्मान करेगा ?
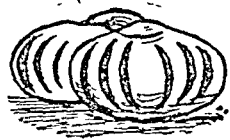
श्रीकृष्ण-कथाकाव्य में बुन्देलखण्ड का योगदान

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के क्रमिक-विकास का अध्ययन करने से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में विविध सम्प्रदायों द्वारा भक्ति-काव्य की विशाल-धाराएँ प्रवाहित हुईं थीं।

इन धाराओं में पाँच प्रकार की प्रमुख भक्ति-भावनाएँ देखने को मिलती हैं यथा :—शान्त, दास, वात्सल्य, सख्य और शृङ्गार। शान्त-भाव में प्रह्लाद-विषयक काव्य की गणना है। दास-भाव की भक्ति में श्री हनुमान्-विषयक रामानन्द तथा गोस्वामी तुलसीदासजी की कविताएँ आती हैं। वात्सल्य-भाव की कविताएँ वल्लभीय-सम्प्रदायवालों ने की हैं। वात्सल्य और सख्य भाव का मिश्रण मिलता है सूरदास के पदों में। शृङ्गार-भाव की कविताएँ सखी-सम्प्रदाय के भक्तों ने की हैं।

वात्सल्य, सख्य और शृङ्गार-भाव की कविताएँ अधिकतर व्रज-क्षेत्र में ही हुईं किन्तु अन्य सब ही विषयों की कविताओं को प्रदान करने में बुन्देलखण्ड अग्रगण्य रहा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्री रामचरितमानस का श्रीगणेश अवध में अवश्य किया था किन्तु हमारा अनुमान है कि उसकी पूर्ति हुई थी चित्रकूट और राजापुर में। हिन्दी-भाषा के प्रथमाचार्य कवीन्द्र केशव ने श्रीरामचन्द्रिका आदि ग्रन्थों की रचना ओरछा (बुन्देलखण्ड) में ही की थी।

ओरछानिवासी श्री हरीराम शुक्ल 'व्यासजी' ने तो वैराग्य, ज्ञान और अनेकानेक विषयों पर भावपूर्ण कविताएँ की थीं। आप ओरछानरेश भक्त कवि मधुकरशाह के गुरु थे।

सुकवि रामसखे ने श्रीराम और श्रीकृष्ण विषयक अनेकानेक गीतों की रचना की थी।

सेंवड़ा (दतिया) के निवासी हरिकेश कवि ने अपने व्रजलीला नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के गुणों का भरपूर गान किया है। पन्ना (म० प्र०) निवासी वख्शी हंसराज की अधिकतर कविताएँ श्रीकृष्ण विषयक ही हुई थीं।

ओरछा (बुन्देलखण्ड) के कृष्ण कवि ने अपने ग्रन्थ विदुर-प्रजागर और धर्म-सम्वाद में भावपूर्ण कविताएँ की हैं। पन्ना (म० प्र०) के मेदिनीमल्ल जू ने श्री कृष्णप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की।

दतिया (म० प्र०) के खण्डन कवि ने सुदामाचरित्र द्वारा श्रीकृष्ण की गाथाओं का गान किया है। जलालपुर (हमीरपुर) के ज्ञानी जू कवि ने 'वीर विलास' नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। ओरछा (बुन्देलखण्ड) के दूलहराय कवि ने विविध छन्दों में समस्त श्रीमद्भगवद्गीता का छन्दोबद्ध रूपान्तर किया है। कालिंजर के चौबे हितराम कृष्ण ने तो श्रीकृष्ण-विषयक अनेकानेक लीलाओं का अपनी कविता में वर्णन किया ही है। महोबा (उ० प्र०) के गुमान मिश्र ने कृष्णचन्द्रिका नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की है। मानदास कवि ने कृष्णविलास और भागवत् दशम स्कन्ध (छन्दवद्ध) की रचना की है।

मऊ महेवा (बुन्देलखण्ड) निवासी मंचित द्विज ने अपने कृष्णायन नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के चरित्रों का भरपूर उल्लेख किया है। ओरछा (बुन्देलखण्ड) के मोहनदास मिश्र ने कृष्णचन्द्रिका, रामाश्वमेध और भागवत् दशम स्कन्ध की रचना की है। झाँसी (उ० प्र०) निवासी नवलसिंह कायस्थ ने ३३ ग्रन्थों की रचना की थी उनमें से दस ग्रन्थ श्रीकृष्ण विषयक और दस ग्रन्थ श्रीरामविषयक हैं। अवशेष ग्रन्थ विविध विषयों पर हैं। पन्ना (म० प्र०) निवासी लाला हरिदास कवि ने श्रीकृष्ण-विषयक कितनी ही पुस्तकों की रचना की है। ओरछा (बुन्देलखण्ड) के सुखलाल भाट ने राधा कृष्ण कटाक्ष नामक पुस्तक में श्रीकृष्ण के दूत ऊधव को खूब खरी-खोटी बातें सुनायी हैं।

यथा :—

ऊधौ मत सूधौ है तुमारौ तुम जानौ कहा,
उनकी न ऐकौ तुम साँच कर छानी है;
पैलै दधि चोरौ चित चोरौ पट चोरौ जोरौ,
नेह सब तोरौ छोरौ-रन जग जानी है।
कहै 'सुखलाल बार-बार व्रजराज नाम,
लेत तुम ताते मैं सुनाई या कहानी है,
होते व्रजराज तौ का देस छोड़ भाग जाते,
ह्याँ तो व्रजरानी सदा राधा महारानी है।

—इत्यादि

राठ (हमीरपुर) के खूबचन्द कवि ने कृष्ण-कुसुमाकर, माखन चोरी और प्रेम पत्रिका आदि पुस्तकों की रचना की है।

दतिया (म० प्र०) के गोस्वामी राधालाल ने संस्कृत और व्रजभाषा दोनों में ही श्रीकृष्ण विषयक अनेकानेक ग्रन्थों की रचना की है जो अभी अप्रकाशित ही हैं। केवल संस्कृत का एक ग्रन्थ 'सौंदर्य-सागर' ही प्रकाशित हुआ है।

खटवारा (बाँदा) के वल्देवप्रसाद कायस्थ ने श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों ही पर प्रायः ३४ ग्रन्थों की रचना की है। उनमें से आठ ग्रन्थ प्रकाशित हैं। ललितपुर (झाँसी) के अड़कूलाल वैद्य ने 'पारजात रामायण' की छन्दोवद्ध रचना की।

उरई (उ० प्र०) के सुप्रसिद्ध काली कवि ने 'रितु-राजीव' और 'हनुमतपताका' की रचना की है। घनाक्षरी छंद उत्तम वन पड़े हैं। एक उदाहरण पढ़िए :—

खोलकर बदन गदूल गुल गोलन के,
कमल अमोलन के दलन दला करैं;
काली कवि चाक दिल चकवन चोरन के,
चखन चकोरन के अमृत झला करैं।
धाम यामिनी में काम, जोगिन जगायें देत,
वलि सो वियोगिन गन भोगिन भला करैं;
छहर छरीली छूट छित पै छलाये आज,
किरनैं कलाधर की कोटिन कला करैं।
धवल सिन्धु लहरीन में, फेन भये उतरात;
निज मणीन जल विन्दु से, इन्दु किरण ह्वै जात।

और भी अनेकानेक सुकवियों ने समय-समय पर श्रीराम और श्रीकृष्ण विषयक रचनाएँ की हैं उन सवका उल्लेख करके लेख का कलेवर बढ़ाना अभीष्ट नहीं है। किन्तु यह निस्संकोच लिखा जा सकता है कि श्री कृष्ण का गुणगान करने में बुन्देलखण्ड किसी प्रकार पिछड़ा हुआ नहीं है।

'कृष्णायन' के अतिरिक्त 'कृष्णचन्द्रिका' और 'श्रीकृष्ण कथामृत' के रूप में भी ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं किन्तु हिन्दी-भाषा-भाषी उनसे अधिक परिचित नही हैं। अतएव सक्षेप में उन पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

ग्राम खरेला, डाकघर पूंछ (झाँसी), निवासी श्री ठाकुर रूपसिंह उपनाम रूपराम ने सं० १९६७ वि० में 'कृष्णचन्द्रिका' की रचना की थी, जैसा कि ग्रंथ के अन्त में उल्लेख है :—

वेद रस रंध्र शशि संवतहि पाय है।
भाद्र पद कृष्ण शनि अष्टमी आय है॥

इस ग्रंथ में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की समस्त कथाओं को ललित छंदों में वर्णन किया गया है। ग्रंथारम्भ सं० १९५६ वि० में किया गया था और सं० १९६७ वि० में वह समाप्त हो सका था। ग्रंथ की समाप्ति पर लेखक ने अपने परिवार वालों से कहा कि उनकी आयु का अव केवल एक मास शेष है। अतएव वे तीर्थ-यात्रा पर जाना चाहते हैं। शीघ्र ही उचित व्यवस्था करके वे विन्ध्य-वासिनी, प्रयाग, काशी, वैद्यनाथ, गया होते हुए जगदीशपुरी पहुँचे, वहाँ से लौटकर आषाढ़ शुक्ल एकादशी सं० १९६८ वि० के दिन शान्त भाव से कम्वल पर पद्मासन लगाकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' कहते हुए उनने अपने प्राण त्याग दिए।

सन् १९२७ ई० में लेखक के वंशधर ठाकुर गोविन्द-सिंह ने ग्रंथ को प्रकाशित करवाया। ग्रंथकार ने राष्ट्र-भाषा-हिन्दी के प्रधानाचार्य कवीन्द्र केशव की शैली को अपना कर छंदशास्त्र के अनेकानेक छदों को अपने ग्रथ में व्यवहृत किया है। ग्रंथ में प्रायः दो सहस्र छंद है। मङ्गलाचरण करते हुए आप लिखते हैं :—

गावैं वेद बुध हू पुरान सिद्ध साधु गाथ,
पालैं दास घालैं सर्वकाल के कलुष को;
विघन विनाशन को वारौ वाहु दंड मंडै,
पंडै ज्यों वितुंड कंज भजै जन दुष को।
नाम लेत वानी दीन आवन न पावै कान,
लेत अपनाय, यों सुभाय निध सुख को;
एक मुख, चतुरमुख, पंचमुख, सहस्र मुख,
जग मुख वंदैं, वंदे रूप गज मुख को।

प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में कथा के सम्वन्ध में संक्षिप्त उल्लेख है। यथा :—

यह तीसर अध्याय में, होय देवकी व्याह;
व्योम गिरा सुन कंस खल, मारन चाहत ताह।
× × ×

मन्दिरा

बैठ सभा महँ कंस दिनाइक, दैत्यन को उपदेश दयो है;
देवन जन्म लयौ व्रज में, अव मण्डन विग्रह विष्णु चहै।

नारद मोह दयौ यह भेद, अहै अर्थप देवन झूठ कहै;
या हित मारहु ढूंढ़ सबै, जितनो जग में जदुवंश अहै।
यह षष्टम अध्याय में, कंस सुतावध कीन;
बोध देवकी देव कौ, दैत्यन आयुस दीन।
लगे कहन मुनिराज पुनि, सुन पारीछत राय;
होनहार अति ही प्रबल, होकें परत दिखाय।

× × ×

नवम अध्याय में सकटासुर संहार के पश्चात् नन्द बाबा के भवन पर उत्सव मनाया जा रहा है :—

—चामर—

दिवस सप्त वीस के भए गुपाल आय कै।
उत्सवै सबै रचौ न छिप्र जन्म पाय कै॥
बोल विप्रदान दीन, धेनु रत्न को गनै।
नन्द बन्धु जोर के, जिवाय विंजने घनै॥
ग्राम धाम आय गाय, बाजहीं बधावनौ।
जान हीन रात दिवस, पुन्न पाप सावनौ॥
नन्द नन्द जन्म कौ, अनन्द सिंध पावनौ।
देवता मनावहीं व्रजस्थली नहावनौ॥

समूचे ग्रंथ में नव्वे अध्याय हैं, इनमें विस्तारपूर्वक भागवत के दशम स्कंध की सब कथाएँ आ गई हैं। ग्रंथ के अंत में सुकवि रूपराम ने लिखा है :—

कृष्णचरित पावन अमित, अभिमत फल दातार;
गाय गाय नर सहज ही, पावै-भव निध पार।
एते श्रीमद्भागवत, दशम अयन हरिआय;
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत, भव नव्वै अध्याय।

श्रीकृष्ण कथामृत के प्रणेता, श्री गोविन्ददास व्यास 'विनीत' का जन्म आश्विन पूर्णिमा सं० १९५७ वि० में तालवेहट (झाँसी) में हुआ था। आपके पिता और पितामह दोनों ही कवि थे इससे कवित्व-गुण उनको विरासत में प्राप्त हुआ था। फिर भी श्री विनीतजी इन पंक्तियों के लेखक को अपना कविता-गुरु मानते रहे हैं। श्री विनीतजी की सशक्त लेखनी ने काव्य नाटक, उपन्यास, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत पर सफलतापूर्वक लिखा है। राष्ट्रपिता विश्व-बंद्य बापू ने श्रीकृष्ण कथामृत सुन कर अपनी शुभ सम्मति देते हुए लिखा था :—............ न जाने क्यों, श्री कृष्ण कथामृत के कुछ शब्द सुनकर मेरे आँसू बह निकले.......... इस ग्रंथ में आद्योपान्त गीता-वादी योगीराज का दर्शन पाया जाता है।

महामना श्री मदनमोहन जी मालवीय ने सम्मति दी थी :—

साँच कहौं सत भाय सौं, धरि हरिहर बिधि साखि;
सुधा सिन्धु चाहौं नहीं, कृष्ण कथामृत चाखि।

श्रीकृष्ण कथामृत के प्रायः ५१ अध्यायों में श्रीकृष्ण लीला विषयक समस्त कथाएँ आ गई हैं। भाषा प्रांजल, सरस, सरल और विशुद्ध बुन्देली तथा खड़ीबोली है। ग्रंथारम्भ में कहा गया है :—

शौनिक-वचन विनीति सुनि, बोले विहँसि मुनीस;
चारिपदारथ ताहि कर, देत जाहि जगदीस।

जदपि जीव सब प्रभुहिं समाना,
तदपि भेद असि कहहिं सुजाना।
सोइ सपूत निज पितहिं पियारा,
जो आचरहि ताहि अनुसारा।
सो आचरन न तौं लगि आवैं,
जौं लगि श्रुति-सम्मति नहिं पावैं।
श्रुति-सम्मति कर सार सुजाना,
कहहिं भागवत पूज्य पुराना।
कृष्ण कथामृत तिहिंकर सारू,
सुनत ताहिं पाइय भव पारू।

कथा प्रसग कहते हुए श्री विनीतजी ने देशवासियों से आग्रह किया है कि वे भेद-भाव भूलकर परस्पर स्नेहपूर्वक रहें क्योंकि वे समूचे एक देश के ही अंग हैं :—

भूसर, छत्रिय, वैश्य सूद्र गन,
धरे नाम तिनके गुनि बुध जन।
सब समान सब आरज जाती;
जारज जान न धरिय दुभाँती।
जथा जोग लहि भाग निज, पुष्ट तुष्ट सब संग;
धरम-प्रान राखहिं सकल, एकु देसु के अंग।

श्रीकृष्ण कथामृत में बाल-दर्शन, पूतना-वध-कथा, बकासुर की कथा, शकट, तृनावर्त कथा, समलार्जुन मोक्ष, वृन्दावनवास, वत्सचारन, अघासुर बध, कालियामर्दन, गोवर्धन कथा आदि आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। उदाहरणार्थ कथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

बाल-दर्शन—

विसर गयउ दुख-दोष-श्रम, बाढ़ेउ ब्रह्मानन्द,
मनु चकोर-जुग सन मिलेउ, उतरि गगन को चंद।

पूतना-बध—

यदुराय करषेउ प्राण-पान-अपान पौन न गति लही;
रोमावली थिरकी फिरी चख-पूतरी नहिं सुधि रही
प्रतिरंध्र प्रवहृत रुधिर चटकत तंतु-जाल मृनाल सों,
डगमगत पग कर उठि गिरत कढ़ि जीह बदन कराल सों;
रूप प्रगट करि आपनौ, परी धरनि अकुलाय;
प्रथमहिं कीन्हि चिकारि पुनि, बोली जय जदुराय;

बकासुर की कथा—

लीलन्ह चेह लीलाधरहिं; लीलहिं चंचु बढ़ाय;
गरु दबाय हरि बीच ही, गेरेहु ताहि उठाय।

तृनावर्त वध—

मथइ मुदित माई मही, मटुकिहिं इत-उत मोरि;
पुनि उठि दोहिनि देखही, पुनि लालन की ओरि।

यमलार्जुन मोक्ष—

मानुष-मन चंचल-निवल, रहहि न एकहिं कूल;
माया-पौन-प्रसंग परि, पुनि चेतहिं पुन भूल।

प्रेम-परीक्षा-कथा—

जोनि-बरन-सुर-नर-असुर, मो कहँ एक समान;
सरग-नरक-अपवरग-भव, निज कृत नर-निरमान।

गोवर्द्धन-कथा—

नर-तन-खेत किसान नर, करम शुभाशुभ बीज;
बुबइ-लुनइ-भोगत सुकहिं, पुनि उपजइ पुनि छीज।

× × ×

पुनि पुनि दुर्जन हाथ सौं, पावहिं बिघन सुजान;
तदपि निज पन देखि तें तिन हित राखहिं मान।

गोपी-चरित—

अनव कृति-दुति-सक्ति सुधि, प्रीति-प्रतीति पुनीत;
राधा भव-बाधा-हरनि, सुचि-साधन अभिनीत।

श्रीकृष्ण-कथामृत के अंत में ग्रंथकार ने कामना व्यक्त करते हुए कहा है :—

ज्ञान सौं रिझावौं तौ चतुरानन चूक रहे,
ध्यान सौं रिझावौं तौ लोम लगि हारे हैं;
त्याग सौं रिझावौं तौ सनकादिक मौन भये,
आनहुँ विराग तौ विदेह हार धारे हैं।
योग सौं रिझावौं तौ संकर सौ जोग नहिन,
साधन अनेक तहँ सिद्ध मति मारे हैं;
जानें बुद्धि वारे जैसी विधि सौं उवारे होय,
नंद के दुलारे हम सरन तिहारे हैं।

यह ग्रंथ सं० २००९ वि० में प्रकाशित हो गया था। श्री विनीतजी का समस्त जीवन अत्यधिक संघर्षपूर्ण रहा। शिक्षा-विभाग में अध्यापक रहते हुए भी उनने सदैव स्वदेश-हित चिंता में अपना योगदान दिया। सन् १९३० के आन्दोलन में वे ६ मास के लिए कारावास में भी गए थे, श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में चार वर्ष तक कार्य किया। घोर विपम-परिस्थितियों में भी वे साहित्य-सेवा से विमुख नहीं हुए। उनका निधन २३ मई सन् १९५३ ई० में हो गया। उनके प्रकाशित ग्रंथों में ८ काव्य-ग्रंथ, ६ नाटक, ९ और उपन्यास हैं। कितनी ही कृतियाँ उनकी अब भी अप्रकाशित पड़ी हुई हैं। उनका काव्य परिमाण और गुण में इस योग्य है कि किसी विश्वविद्यालय में इस पर खोज की जाय।

युग-परम्परा से बुन्देलखण्ड की पावन भूमि ने अनेकानेक सुकवि और साहित्यकार उत्पन्न किये हैं जिसने अपनी अपनी-अपनी अमर-कृतियों से राष्ट्र-भाषा हिन्दी का भण्डार अलंकृत किया है। किन्तु साधनों के अभाव में उन पर जैसा चाहिए था वैसा प्रकाश नहीं पड़ सका है। इस जनपद का गाँव-गाँव और घर-घर, हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में अपनी राष्ट्रीय-निधि को सुरक्षित किए हुए हैं, उसको प्रकाश में आना आवश्यक है।
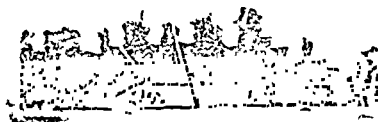
आइए गप्पें लड़ाएं

डा० शिवनन्दन कपूर

लड़ने-लड़ाने का क्रम बहुत दिनों से चला आ रहा है। पुराने जमाने में लोग शेर, भैंसे और हाथियों से लेकर तीतर मुर्गे और बटेर लड़ाते थे। बाजियाँ लगती थीं, जनाव, बाजियाँ। साथ ही कहीं ज्यादा जोश आया तो तलवारें तक निकल आती थीं। किन्तु मैं आपको एक ऐसी सलाह दे रहा हूँ जिसमें सिवाय फायदे के कोई नुकसान नहीं। आप गप्पें लड़ाइये, गप्पें। मजाल है कहीं चोट लग जाय। मज़ा यह कि एक पैसे का खर्च नहीं, ऊपर से खाली समय का सदुपयोग। आम के आम गुठलियों के दाम। और क्या चाहिए आपको?

आप समझते हैं कि गप्पें आज से लड़ाई जा रही हैं? सच पूछिये तो इसका इतिहास बहुत पुराना है, उतना ही जितना कि 'इतिहास' शब्द। अपना रिश्ता तो उसने सीधे खुदावन्द करीम से ही निकाला है। अपना गपशप शब्द ही ले लीजिए। अंग्रेजी में इसका रूप 'गासिप' (Gossip) है, जिसका मूलरूप था (God-Sibb), अर्थात् ईश्वर से संबंध। जिस समय चार बुजुर्ग बैठते और अपने जीवन की भली बातों से मनोरंजन करते, उस समय सचमुच जैसे यह शब्द यथार्थ हो उठता। अपना सृष्टि-रचना का इतिहास ही उठा लीजिये। जब विष्णु अकेले रहते-रहते उकता गये, झट नाभि से कमल-नाल सहित ब्रह्मा को उत्पन्न किया। फिर क्या था लड़ने लगीं गप्पें। गप्पें लड़ाते-लड़ाते ही तो सृष्टि-रचना की सूझी। एक से दो और दो से चार भले। बनने लगे देवी-देवता। धीरे-धीरे अतल, बितल, सुतल आदि का भी निर्माण हुआ। फिर आदि पुरुष को एक ऐसा प्राणी बनाने की इच्छा हुई जो उनकी यह गप्प लड़ाने की परम्परा को चिरकाल तक जीवित रख सके। उसीका परिणाम है यह मनुष्य-जाति—आप और हम—जो बोली फूटने से बोल बन्द होने तक गप्पाष्टक (याने दिन और रात आठो याम) लड़ाया करते हैं। उस जमाने में तो पोथियाँ भी नहीं थीं। हमारे दादा-परदादा, ऋषि-मुनि गप्पें लड़ाते-लड़ाते भी तो इतने विद्वान् हो सके। ऐसी गप्पें लड़ाने के स्थान भी कितने ही थे, जो आज भी पवित्र माने जाते हैं, यथा नैमिषारण्य, प्रयाग आदि। कभी-कभी तो इसके लिए विशेष रूप से पर्व आदि का भी आयोजन किया जाता था। उस समय तो बस चारों ओर मुण्ड ही मुण्ड नजर आते थे। नारद उस जमाने के गप्पियों के उस्ताद थे। इसी शौक में तो अक्सर वे मृत्युलोक चले आया करते थे। धार्मिक ग्रन्थों में ही ले लीजिये। महाभारत धृतराष्ट्र और संजय की गप्प है तो गीता में भगवान् कृष्ण और अर्जुन ने गप्पें लड़ाई हैं। महाभारत में गीता ही नहीं, इन गप्पों के न जाने कितने प्रसंग आये हैं।

धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं, राजनीतिक क्षेत्र में भी देखें तो राजा सिवाय गप्पें लड़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता था। कभी वे गप्पें रानियों से लड़ती थीं, तो कभी चरों से, एवं कभी-कभी मंत्रियों एवं सभासदों से भी। इनके लिए विशेष रूप से कमेटियाँ बनाई जाती थीं जिन्हें सभा, समिति, मंत्रिमंडल आदि की संज्ञा दी जाती थी। जो व्यक्ति इस गप्पें लड़ाने की सभा में निपुण होता था, उसे 'सभ्य' कहा जाता था, उसीसे तो आपकी सभ्यता का विकास हुआ है। आजकल भी संसार में हमारे भारतीय-विधातागण गप्पें ही तो लड़ाते हैं। इनकी गप्पें एक ही तरह की नहीं रहतीं। चुनाव के पहले कुछ और, चुनाव के समय कुछ और ही ढंग की, और आराम से गद्दी पर बैठ जाने के बाद तो उनका माडल ही बदल जाता है। सामाजिक क्षेत्र तो खैर गप्पें लड़ाने का पुराना अखाड़ा है। वहाँ चप्पे-चप्पे में गप्पें लड़ती हैं—अजी, लड़ती ही नहीं, उड़ती भी हैं।

आजकल का युग तो निश्चित रूप से गप्पों का है। कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ गप्पें न लड़ती हों। मजे की बात यह है कि इसके लिए न स्टेडियम बनवाने की जरूरत न क्लबघर की। गप्पें कहीं भी लड़ सकती हैं; चाहे वह मैदान हो, कुएँ की जगत, पहाड़, नदी, नाला अथवा आकाश में उड़ता वायुयान ही क्यों न हो। 'मिल गये यार जहाँ, लड़ गई गप्पें वहाँ'। इसके लिए कोई जरूरी नहीं कि आप बड़े आदमी हों। आपका नाम अखबारों में छपता हो। पढ़ा-लिखा साहित्यिक हो या घीसू चमार, सब इसका आनन्द समान रूप से ले सकते हैं। बस दिल की जरूरत है। इसमें तो 'अन बूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग'। जरा गहराई में जाना पड़ेगा।

यह भी निश्चय जानिए कि साधारणीकरण और साम्यवाद के प्रचार का इससे बढ़कर सरल तथा सुंदर

कोई साधन नहीं। साथ-साथ उठते-बैठते, मिलते-जुलते कितनी पुश्तैनी दुश्मनी रस की गंगा में किधर बह जाती है, पता नहीं चलता। बड़े-बड़े लोगों की तो बड़ी-बड़ी बातें होती ही हैं, छुटभय्यों की बात लीजिये। देहातों में जाड़े के दिनों में जब अलाव जलाकर किसान बैठते है, और लड़ने लगती हैं मजेदार गप्पें। फिर तो कुछ न पूछिये। वो वो ज्ञान विज्ञान की बातें, रामायण के वे अनूठे अर्थ जो शायद बाबा तुलसी के मानस में न आई होंगी, प्रकाश में आती हैं कि बस आप सुनकर दंग रह जायें। दर्शन का तो सुदर्शन चूर्ण बन जाता है। साथ ही साथ देश-विदेश की, गँवई गाँव की भी महत्वपूर्ण खबरें छिपी नहीं रह जातीं। किन्तु लुत्फ तो सच पूछिये सासों के जमघट में आता है। उस जमघट (यमघट) में वो वो गप्पें लड़ती हैं, मोहल्ले, टोले, गली-कूचे, वे अजी घर-घर की वे भेद की बातें खुलती हैं कि गुप्तचर विभाग का कार्यालय फाइलों से भर जाय। खुदा ना खास्ता कहीं गवर्नमेंट को इनकी खबर कभी हो गई तो उस विभाग में भी निश्चय ही मुसीबत आ जायगी।

गप्पें लड़ाने से बेकार का समय तो कटता ही है, साथ ही मस्तिष्क से व्यर्थ कूड़ा-कर्कट भी साफ हो जाता है। इससे बढ़कर मनोरंजन का सस्ता और सर्वत्र सुलभ साधन कहाँ मिलेगा? आप आफिस से थके आते हैं। मित्र हैं तो मित्र, अन्यथा पत्नी—और, यदि उन्हें भी फुर्सत न हो, तो बच्चों को ही लेकर बैठ जाइये। फिर देखिये, वे कहां-कहां की छेड़ते हैं। एक बार मुकुल से मैंने पूछा, ये "आसमान में क्या फैले हुये हैं।" वह बोला—"रामदेव (घर का नौकर) ने मटर फैलाई है।" कहां तारे कहां रामदेव की मटर। वाह, क्या कहा है मेरे नन्हें दोस्त। और यह शान्ति भाभी की रंजना तो अपना पूरा इतिहास ही अपनी तोतली वाणी में कह डालती है। कैसे वह छोटी थी तो अँगूठा चूसती थी, और बड़ी हुई तो दूध पीने लगी फिर 'लोटी' खाने लगी, आदि आदि। आप बस हँसते ही रह जायेगें। थकावट भी दूर हो जायगी, और हँसने से स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। चिन्ता के लिए इससे अच्छा कोई उपाय या दवा नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि बिना किसी साधन के, वातावरण के अभाव में, साथ ही बगैर पैसा खर्च किये ऐसा स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन और कहीं नहीं मिलेगा। हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही चोखा। यहाँ तो बस बात की ही बात है।

वीरासन, पद्मासन, शवासन, किसी भी सुखासन से बैठकर या लेटकर मुखासन से गप्पें लड़ाइए। जरा देर में होंगे आप, आपके दोस्त और आपके हाथों में अलादीनी चिराग़। बिना टिकट स्वप्नदेश की सुनहली गाड़ी पर सवार हो जाइये, कोई रोकनेवाला नहीं। फिर चलिये तूफान-मेल की रफ्तार से। न कोई मिले तो अपने आप से ही, बैठकर "आकाश-भाषित" गप्पें लड़ाइये। "अजी वाह, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। मैं यह कर सकता हूँ मैं वह कर सकता हूँ।" समझ लीजिये, चारों ओर हिन्दुस्तान की जनता हाथ जोड़े खड़ी है और आप ही हैं उसके आनरेरी प्राइम मिनिस्टर। कुछ ही दिन में देखियेगा, आपकी 'इच्छा-शक्ति' बैक्टीरिया के कीड़ों की तरह बढ़ रही है। इसके बाद किस्मत का पारा ऊपर चढ़ेगा ही।

जिसे बोलना न आता हो, इधर कदम बढ़ाये। झिझक खुलेगी। नेतागिरी का शौक हो तो उसके लिए यह पहली सीढ़ी है। भीषण भाषण देने की कला यहीं सीखिये और यहीं आजमाइए, बस गप्पें लड़ा-लड़ा कर इससे बढ़िया रिहर्सल का मौका अन्यत्र नहीं मिलेगा। यहाँ तो जिसके भी जबान है, उसे प्रयोग करने का अवसर सुलभ होगा। खूब मीठी कड़वी सुनाइए, साथ ही सुनिए भी। यही नहीं, मैं तो कहूँगा कि किसी वाद का प्रचार अथवा वस्तुओं का विज्ञापन जितनी सरलता से, साथ ही बिना जेब हल्की किये, गप्पें लड़ाने में हो सकता है, वह दूसरे प्रकारों से असम्भव ही है। गप्पें लड़ाकर आप दूसरों पर सहज ही अपना प्रभाव डाल सकते हैं, अपनी बात कह सकते हैं। आप विद्यार्थी हैं कोई बात समझ में नहीं आ रही है, तो चार सहपाठियों के साथ बैठकर उसी विषय को लेकर गप्पें लड़ाइये। फिर देखिये। विषय तो सुलभ हो ही जाता है, पढ़ने के लिए मस्तिष्क भी हल्का हो जाता है। थके होने पर पुनः काम करने के लिए तैयार होने के हेतु इससे सस्ता दूसरा कोई नुस्खा नहीं।

गप्पें लड़ाने से प्रतिभा का विकास होता है। आखिर परीक्षा की कापियों में विद्यार्थी नब्बे प्रतिशत गप्पें ही तो लड़ाते हैं। सार तो उसमें इतना ही रहता है, जितना त्रिवेणी पर यात्रियों द्वारा चढ़ाये जाने वाला 'गंगाजल' में दूध का

[शेष पृष्ठ ५५ पर देखिए

आधुनिक भारतीय साहित्य के कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकार (५)

श्री गोपीकृष्ण मणियार एम० ए०

चतुरसेन इतिहास के वैज्ञानिक सत्य को साहित्य के चिर-सत्य के पृथक् मानते थे और अपने को इतिहास रस का स्रष्टा। पर प्राचीन जीवन के सम्बन्ध में अपनी नवीन स्थापनाओं और मौलिक निष्कर्षों के फलस्वरूप दोनों उपन्यासों में मिलते हैं केवल मुक्त सहवास' विवसन, विचरण, नारी-अपहरण, नरमांस-भक्षण, लिंग-पूजन और राजाओं, ब्राह्मणों, आर्यों की निन्दा। (५) दोनों उपन्यास मांस मदिरा की गन्ध से आपूरित, विलास के वातावरण से आच्छादित, युद्धों की झंकार से गुंजित और नर-नारी के अवैध सम्बन्धों से आक्रान्त हैं। (६) 'वैशाली की नगरवधू' के प्रवचन में चतुर-सेन ने लिखा था:

"मैं आपसे केवल एक अनुरोध करता हूँ कि इस रचना को पढ़ते समय उपन्यास के कथानक से पृथक् किसी निगूढ़ तत्व को ढूंढ निकालने में आप सजग रहें। सभव है आपको वह सत्य मिल जाय।"

बेचारे पाठकों के हाथ कोई निगूढ़ तत्व आता नहीं। केवल "सोमनाथ महालय" (१९५५) "चतुरसेन अपेक्षातर स्वाभाविक रूप से कथा की रचना कर सके हैं। मूल प्रेरणा तो मुंशी के "जय सोमनाथ" की ही है पर सोमनाथ की जय-गाथा न होकर यह उपन्यास महमूद गजनी के मानवीय रूप का अंकन ही अधिक है। इतिहास में स्वीकृत कथा से काफी अन्तर है पर ऐतिहासिक सत्य का तो साहित्य के चिरसत्य की तुलना में चतुरसेन को दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था।

तो कुशल-संग्रुफन, सजीव संवाद, सरल चुटीली भाषा के स्वामी होते हुए भी अपनी विचित्र और भ्रान्तिपूर्ण स्था-पनाओं और निष्कषों के कारण चतुरसेन भी प्रथम श्रेणी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की पंक्ति में स्थान नही पा सकते।

अन्त में हम वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों पर विचार करेंगे। इनकी मानसिक गठन उस समय हुई जब भारत का शिक्षित मध्यवर्ग अंग्रेजी की दासता के प्रति संघर्ष प्रारम्भ कर चुका था। ११-१२ वर्ष की वायु में अंग्रेजों द्वारा लिखे गये इतिहास में यह पढ़कर कि "भारत गरम मुल्क है, इसलिए यहांके निवासी कमजोर हैं और इसी कारण वे बाहर से आये ठंढे" देश के लोगो के मुकाबले, हारते चले गये। आगे कभी नहीं हारेंगे, क्योकि ठंढे देशवाले अंग्रेज आ गये हैं—सदा बने रहेंगे।" उनका रोम-रोम जल उठा और उन्होंने निश्चय किया कि "असली बात मैं कहूँगा"। एक घर पर आये पंजाबी अतिथि के मुँह से बुंदेलखंड की बुराई सुनकर उन्होंने बुंदेलखंड का ही इतिहास अपने उपन्यासों में अंकित करने का संकल्प किया। ऐतिहासिक उपन्यास के लिखने में उनके दृष्टिकोण का उनके निम्न-लिखित विचारों से काफी स्पष्ट अंदाज लग जाता है:—

"वर्तमान की समस्याओं को लेकर प्राचीन में रम जाओ और उपन्यास के रूप में अपनी बात रख दो।"

"सच्ची बात के चौखटे में सच्ची बात के वातावरण को त्यों का त्यों प्रस्तुत करते हुए यदि वर्तमान की कुछ समस्याओं को प्रविष्ट कराया जाय तो ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक का उद्देश्य निरर्थक नहीं रह सकता।"

"जैसे जैसे मैं अध्ययन, अवलोकन और मनन करता गया मेरा निश्चय दृढ़ होता गया कि आधुनिक समस्याओं का समावेश उपन्यासों में अवश्य होना चाहिए और मैं अपना हल न देकर सुझाव दे दूं।"

"मैं तथ्य का उपासक हूँ तथ्य को सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत करना मैं सत्य की पूजा और कला का प्राण समझता हूँ। यदि वह प्रस्तुतीकरण निरुद्देश्य है—केवल मनोरंजन या "कला कला के लिए आदर्श है—तो व्यर्थ है। केवल मनो-रंजन या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लेखक का सामाजिक कर्त्तव्य नही है।"

ऊपर के उद्धरणों में वृन्दावनलाल की कला के मूल सूत्र बनाये गये है। सत्य को चित्रित करना पर सृजनात्मक ढंग से यानी लोक-कल्याण की दृष्टि से, आधुनिक समस्याओं का अतीत के चित्रण करते समय उल्लेख पर केवल अपने कुछ सुझाव के साथ, हल की चर्चा कहीं न करना—यही उनके मूलमंत्र हैं। उनका बहुचर्चित उपन्यास "झाँसी की रानी" इतना शक्तिशाली और कलानुप्राणित नहीं बन पड़ा है जितनी प्रसिद्धि उसे मिली है। "झाँसी की रानी" में ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश अधिक हो गया है और कथा इतिहास से बहुत दब गयी है। यह जरूर है कि रानी लक्ष्मी-बाई का मानवीय रूप केवल अतिमानवीय ही नहीं—बहुत सहज रूप से साकार हुआ है।

वृन्दावनलाल के दस ऐतिहासिक उपन्यास हैं। गढ़कुंडार (१९२७), विराटा की पद्मिनी (१९२८-३२), मुसाहिवजू (१९४३) झाँसी की रानी (१९४६), कचनार (१९४६), टूटे काँटे (१९४८), मृगनयनी (१९५०), अहिल्यावाई (१९५५), माधवजी सिंधिया (१९५७), और भुवनविक्रम (१९५७)। इनमें उनके सबसे अधिक प्रभावशाली उपन्यास "कचनार", "टूटे काँटे" और "मृगनयनी" हैं। इन तीनों उपन्यासों में कथानक सीधे-साधे है, कथा में फैलाव नहीं है, वर्णनों की भरमार नहीं है, और इतिहास, किंवदन्ती, लोक-कथा, कल्पना सबके योग से ऐतिहासिक और प्रेममयी कथा का साथ-साथ बड़ा सुन्दर निर्वाह हुआ। वृन्दावनलाल की भाषा तो सभी उपन्यासों में वड़ी सरल है। इन उपन्यासों में भी भाषा की सरलता विस्मय उत्पन्न करती है। 'मृग-नयनी' में निन्नी और मानसिंह के प्रणय की व्यंजना वहुत सीमित सीधे शब्दों में हुई है।

'तुम्हारे दिये हुए फूल को पगड़ी में खोंस लिया था। अब भी वहाँ वाँधे हूँ और सदा वहीं रहेगा। गंगा-यमुना की सौगन्ध खाता हूँ कि जन्मसंगिनी रहोगी।' मानसिंह का स्वर कांप कांप जा रहा था।

'सौगन्ध मत खाइए' निन्नी ने क्षीण स्वर में प्रतिवाद किया।

'तो कहो, क्या कहती हो सुन्दरी ?' राजा ने हठ किया।

'मैं राजाओं की भाषा नहीं जानती।' निन्नी ने उत्तर दिया।

'राजा ने अपना हाथ बढाया, कहा—'इस भाषा को संसार भर समझता है। अपना हाथ मेरे हाथ में दो।'

गर्दन मोड़े हुए, कनखियाँ देखते हुए, धड़कते कलेजे और अर्ध-स्मित के साथ निन्नी ने अपना कांपता हुआ धूल भरा हाथ उसके हाथ में दे दिया।

"बोली, "मैं नहीं जानती क्या कर रही हूँ। मेरी पत रखना।"

भाषा की सरलता के साथ-साथ ऊपर दिये गये उदा-हरण से भावों के अंकन में जो कलापूर्ण संयम लेखक ने दिखलाया वह भी ध्यान देने योग्य है। वर्मा जी के सभी उपन्यासों में प्रणय-कथाएँ इतिहास की घटनाओं के साथ बराबर चलती अंकित हुई हैं। अन्य उपन्यासकारों में भी प्रणय कथाएँ आती हैं। पर जहाँ मुन्शी, धूमकेतु और गुणवन्त में वे इतिहास के "मोयन" के रूप में है, वहाँ वर्माजी में इतिहास ही प्रणय कथाओं का 'मोयन' है। 'झाँसी की रानी' और 'माधव जी सिंधिया की कथायें' दो अपवाद हैं। "कचनार" और "मृगनयनी" का प्रधान आकर्षण कचनार और दिलीपसिंह, निन्नी और मानसिंह, लाखी और अटलसिंह की प्रेम-कथाये ही तो हैं। गुजरात के सुलतान मुहमूद बघर्रा के जिन्नों के समान कलेवे और दुर्दम्य आतंक का विशद चित्रण किया है।

"नौकर कलेवा ले आये। डेढ़ सौ पके केले, सेर भर शहद और सेर भर मक्खन यह रोज का कलेवा था। मह-मूद ने कलेवे पर हाथ साफ करने शुरू कर दिये। ढेर के ढेर गायव होने लगे। समाचार देने और आदेश लेने के लिए प्रधान जासूस सरदार और खबरनवीस हाजिर हो गये। सव सिर नवाये, हाथ जोड़े, खड़े थे—कलेजे में धड़कन, होंठ पर कड़ी मुहर।.........

ववर्रा ने प्रधान जासूस की ओर मुंह फेर के ऊँघ की। जैसे वादल गरज गया हो।

जासूस ने कांपते हुए सिर उठाया, आँखे नीची किये हुए वोला :—"मालवा के सुलतान गियासुद्दीन खिलजी—

वघर्रा के मुँह में आधा केला एक तरफ था, आधा गले से नीचे उतर जाने की जल्दी में। आधा मुँह खाली था उसी दिशा से दवी हुई कड़क निकली।

"सुलतान नहीं है वह नामाकूल। गुलाम खानदान का खिलजी है। कहो उसकी बावत क्या कहना है।"

"मेवाड़ के राना ने दिल्ली के सुल्तान—मैं भूल गया, बख्शा जाऊँ – दिल्ली के सिकंदर लोदी की फौज को हरा दिया है।"

कुछ एक छोटे केले को समूचा मुंह में डालकर वघर्रा वोला जैसे किसी नाले ने प्रवाह के जोर से वांध को तोड़ डाला हो—"एक मूजी ने दूसरे मूजी को मारा। कहते जाओ गयासुद्दीन आजकल क्या कर रहा है ?"

उसी प्रकार मालवा के सुलतान गयासुद्दीन और उसके पुत्र नासिरुद्दीन की विलासप्रियता और अपार काइयांपन का भी सजीव चित्रण किया है :—

"जानआलम के लिए न मालूम कितनी परियाँ तर-सती तड़पती है। समझ में नहीं आता कैसे यहाँ तक आ पावें।" मटरू ने एक रात लम्बी आह भर कर नसीरुद्दीन से कहा। "भाई ख्वाजा, मैं तो इन मौलवियों के मारे वेहद

परेशान हो गया हूँ। कमवख्त दिन-रात पीछे पड़े रहते हैं। मुश्किल से आज तुमको अकेले में बुला पाया।"

नसीर बोला.....................

"परियोंवाली बात जो तुमने सुनाई थी वे कहाँ हैं? कैसे आवें यहाँ तक?

"जाने आलम, सोना-चाँदी, हुकूमत और अख्तियार हाथ में हो तो चाहे जितनी परियाँ हाथ जोड़कर सामने आ खड़ी होंगी।"

अब्बा जब से नरवर को जीत कर आये हैं तब से जशन पर जशन मनाये जा रहे हैं। मैं भी जशन करूँगा।.......

मैं ही महरूम रक्खा जा रहा हूँ अकेला मैं ही, दुनिया के आराम से। मैंने कसम खाई है कि जब मैं सुलतान हो जाऊँगा तब मेरे पखवारे में पंद्रह दिन होंगे और एक दिन के लिए एक-एक हजार परियाँ। तब चैन लूंगा जब पूरी पंद्रह हजार हो जावेंगी। कसम खा ली है मांडू को आलीशान परिस्तान बनाने की।" और सचमुच अपने पिता को जहर देकर जहर देने वाली ख्वासिन की गर्दन भी धड़ से अलगकर जब नसीरुद्दीन मालवा का सुलतान बना तब उसने बारह हजार परियाँ इकट्ठी कर लीं, उनके साथ जल-विहार किये, उनके डूबने लगने पर सहायतार्थ आये पहरेदारों को मरवा डाला, और एक दिन इसी प्रकार स्वयं डूबने लगने पर किसी भी अंगरक्षक के न जाने से स्वर्ग सिधार गया। तब सुलतान बना उसका इतिहास-प्रसिद्ध पुत्र महमूद खिलजी द्वितीय। ख्वाजा मटरू का वध और परिस्तान का विसर्जन उसके शासन के सबसे पहले काम थे।

पर इतिहास की बातों से अधिक प्रबल स्वर कथाओं का है। गुणवन्त और धूमकेतु के लिए इतिहास ही मूल है। मुंशी और वृन्दावनलाल के लिए पात्र और प्रणय-कथा अधिक नहीं तो उतने ही महत्व की है। पर मुन्शी से भी वृन्दावन का इस बात का अन्तर है कि प्रणय-कथा के अंकन में चरित्र-निर्माण, लोकसंग्रह इत्यादि उद्देश्यों के प्रति वृन्दावनलाल बहुत सचेत रहे हैं। उनकी प्रणय-कथाओं में जहाँ एक ओर जटिलता बिल्कुल नहीं है, वहाँ दूसरी ओर मर्यादा और संयम भी भरपूर है। शृंगार के उद्दाम प्रवाह में उनके पात्र बह नहीं जाते। अटल-लाखी और मानसिंह निन्नी, "मृगनयनी" में दिलीपसिंह कचनार 'कचनार' में और मोहनलाल—बूरा "टूटे कांटे" में आदर्श प्रेमी हैं।

भाषा, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भावाभिव्यंजना सभी में अतिशय सरलता और सहजता वृन्दावन का सबसे बड़ा आकर्षण है। विद्वान् और साधारण विद्यार्थी तीक्ष्णबुद्धि वाले साहित्य के मर्मज्ञ और भोले-भाले किसान मजदूर, सबके लिए उनके उपन्यास सुबोध हैं। इसी के साथ अपने युग की समस्याओं का अतीत में स्थापित करने के उन्होने सुझाव दिये हैं। जाँत-पाँत से विवाह में बाधायें, नारी का अत्याचार और जबरदस्ती के साथ संघर्ष, मजदूरी का महत्त्व, अस्पृश्यता, धार्मिक विधिनिषेध इत्यादि समस्याओं को उपस्थित किया है। कुछ समस्यायें पात्रों की ही जबानी सुनिए :—

"राजा ने भी इसी तरह का बाहर व्याह किया है। पर वह राजा है और हम लोग गरीब। राजा ने किया तो पाप नहीं हुआ, हमने किया तो पाप बन गया।"

("मृगनयनी" में लाखी)

"धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरे पेट सो जाऊँ और तुम भूखों मरो। मैं महलों में रहूँ और तुम इस झोपड़ी में भूखे ठंढे मरो।"

"हमारा भाग्य है महाराज।"

"बिलकुल भ्रम की बात। हमारे भाग्य के आधार तुम्हीं सब जन हो। तुम्हारा भाग्य बुरा रहा तो हमारा तो पहले ही खोटा हो चुका।"

("मृगनयनी" में राजा मानसिंह और एक मजदूर)

"समय पड़ने पर मैं भी लड़ूँगी।"

"तुमको लड़ना पड़ा तो हम पुरुष काहे के लिए हैं?

"और स्त्रियाँ काहे के लिए हैं? क्या वे वाञ्छा और कामना की शृंगार मात्र हैं?"

"नहीं जीवन की प्रेरणा, प्रातःकाल की उषा जैसी सजग करने वाली।" मैं कविता नहीं जानती पर पूछती हूँ कि क्या वही उषा दोपहर की प्रचंड किरण नहीं बन जाती? बड़ी रानियों ने समाचार भिजवाया था कि यदि बुरी से बुरी घड़ी आ गई तो वे जौहर करेंगी।............ रानियों को ऐसे समय में यही याद आया क्योंकि उनकी बाहों ने तीर-कमान और तलवार को कभी अपना साखी नहीं बनाया। पहले की सतियों ने आग और चिता को जितना प्यार किया उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिए था।"

("मृगनयनी" में मानसिंह से निन्नी)

...... उसी प्रकार इतिहास संबंधी साधारणीकरण भी वृन्दावन मौके-मौके पर उपस्थित करते चलते हैं। केवल एक उदाहरण दिया जा रहा है:—

"स्वर्ण संचय की कामना, मारकाट की आकांक्षा, स्त्रियों के अपहरण की वासना, राज्य स्थापित करने के लोभ और किसी भी प्रकार अपने मजहब के विस्तार के मोह को लेकर पठान और तुर्क आक्रमक भारत में घुसे थे। इन सबका एक सामूहिक नाम था वहिश्त ......उस वहिश्त की प्राप्ति ने सुलतानों को और उनके सरदारों तथा सिपाहियों को निर्बल और निकम्मा बना दिया। हिन्दू यदि परलोक भय, निराशावाद, आपसी लड़ाइयों के कारण उतने दुबले न पड़ गये होते तो या तो वह स्वर्ग उनको मिलता ही नहीं और यदि मिल ही जाता तो धर्मराज उनको बहुत समय तक उसमें रहने न देते।"

ऐसा लगता है कि सन् १९५० में "मृगनयनी" के प्रकाशन के बाद उपन्यसरकार की प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो गया। ऊपर कहा जा चुका है कि झाँसी की रानी और "माधवजी सिंधिया" कला की दृष्टि से "कचनार", "मृगनयनी" और "टूटे काँटे" की टक्कर के नहीं है। सन् १९५७ में छपे "भुवनविक्रम" में तो वृन्दावन की कला ह्रासोन्मुखी दिखलाई पड़ती है। वैदिककालीन घटनाओं के चित्रण के उद्देश्य से वह उपन्यास लिखा गया। पर न तो उस समय का वातावरण उपस्थित हो सका, न कथा, चरित्र-चित्रण, संवादों में ही कोई विलक्षणता है। सब मिलाकर बहुत साधारण कृति है।

अंग्रेजों द्वारा लिखे गये इतिहास को पढ़कर वृन्दावन बालक ने क्रोध से भरकर कहा था, "असली बात मैं लिखूँगा।" इस पर उसके चाचा ने कहा था अबे अभी तो पढ़ता जा। असली बात बहुत पीछे मालूम होगी।" हमें आशा है वृन्दावन की साधना जारी है अतः उनकी प्रतिभा का नवोन्मेष होगा और "कचनार" "मृगनयनी" से भी सुन्दर और कलापूर्ण रचनायें उनकी कलम से निकलेंगी जिससे हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की दरिद्रता में कमी होगी और वृन्दावन भी सर्वश्रेष्ठ इतिहास उपन्यासकारों की पंक्ति में अपना स्थान बना लेंगे। परन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। वर्माजी थोड़े दिन हुए संसार से विदा हो गये।

समाप्त

आइए गप्पें लड़ाएँ

[पृष्ठ ५१ का शेषांश]

अंश। गप्प लड़ानी आती है तो भरते जाइये कापियों पर कापियाँ कुछ न कुछ तो मिलेगा ही। अजी, जितनी अधिक शक्कर पड़ेगी, शर्बत उतना ही मीठा होगा। वकील यदि गप्पें न लड़ायें तो न तो उसका काम अदालत में चल सकता है, और न 'शिकारों, के बीच। शिक्षक तो खैर गप्पियों के उस्ताद ही हैं। वैसे दलाल, व्यापारी, दुकानदार सभी गप्पें लड़ाते हैं, पर बड़े-बड़े लोग भी कभी-कभी इसमें गहरा हिस्सा लेते हैं। चार भले आदमियों में बस गप्पें ही भली लगती हैं। बस गोलगप्पे जैसी गप्पें। दार्शनिकता में तो वे फौरन ही कह उठेंगे "आप भी कहाँ की ले बैठे, कुछ इधर उधर की सुनाइये।" और अखबार गप्प लड़ाने के कारण ही तो इतने प्रिय हैं।

गप्पों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। राजनीतिक समस्या हो, बीमार पड़े हों, किसी विचारधारा का प्रचार करना हो अथवा कोई गौशाला, पौशाला या धर्मशाला खोलनी हो, बस चुपचाप गप्पें लड़ाइये। सब काम बन जायगा। चापलूसी करने के लिए भी यह एक अच्छा साधन है। महामंत्री का शिक्षा-कोष, मंत्राणीजी के नाम का सधवाश्रम, किसी मंत्री के बच्चा होने की खुशी में नर्सिंग होम, तो और किसी के नाम पर अस्पताल, सब काम हो जायगा। जरा, जबान तेज करने की जरूरत है। प्रत्येक क्षेत्र में गप्पें लड़ाने का बोलबाला है। क्या व्यापारी, क्या पुजारी और भंडारी, मक्कारी से मंडित राजनीति के पंडित, समाज के ठेकेदार एवं बेकार संन्यासी और खलासी, क्या बच्चे और क्या जवान, सभी गप्पें लड़ाते हैं। हाँ, उनके रास्ते अलग-अलग जरूर होते हैं। शिक्षा-शास्त्रियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इससे रोचक शिक्षा-पद्धति शायद दूसरी कोई नहीं जो शिक्षक और विद्यार्थी दोनों की रुचि के अनुकूल हो।

कहानी—

गरम दूध

श्रीराम शर्मा 'राम'

कमलबाबू को सरकारी दफ्तर में काम करते हुए पच्चीस वर्ष का समय बीत गया। स्पष्ट था कि इतने समय में जीवन का उत्साह मर गया। किसी समय जब जवानी थी, तो मन में जोश था, कल्पनाओं का एक सुन्दर किला आँखो के समक्ष खड़ा था। परन्तु बुढ़ापा आते-आते वह ढह कर माटी का ढेर हो गया। कमल बाबू सरकार के एक विभाग में लोअर डिवीजन क्लर्क थे; फिर यू० डी० सी० हुए; अन्त में कुछ वर्ष असिस्टेंट के पद पर रहकर आफिस इंचार्ज बन गये। उस मोड़ पर आकर उनके लिये आगे रास्ता नही था। मानों पूर्ण विराम लग गया। इतने समय में जीवन का वास्तविक रूप भी दिखायी दे गया। कल्पनाओ का प्रवाह रुक गया। मस्तिष्क में उठा अरमानो का झंझावात उतरा तो मानो सभी कुछ शून्य बन गया।

फलस्वरूप, प्रायः कमलबाबू सोचते कि कैसा संसार है यह! निपट अनोखा और सपाट। इनमे कोई अन्तर नही। उनके जीवन के समान, कही अन्यत्र न बुढ़ापा है न शिथिलता। मानो ज्वार-भाटे की तरह समाज और देश का उत्साह उछाले भर रहा है। सर्वत्र जगमगाहट है। किसी नयी-नवोढ़ा दुलहन की तरह वह इन्सानी समाज सज रहा है। सौन्दर्य मुखरित हो उठा है। वह ठहाके मारता है। चारों ओर चाँदी-सोना है और भौतिक पदार्थो का ढेर लगा है।

यह देख, कमल बाबू के मानस में बरबस ही टीस पैदा होती। अपने को झिझोड़ देने की तीव्र भावना जागती। वह देखते, घर मे उनकी पत्नी सत्या जो किसी समय अपूर्व सुन्दरी थी अब बुढ़िया हो गयी है, कमर झुक गयी है। उसके सिर के काले-घुंघराले बाल श्वेत पड़ गये है। जो बच्चे उसने पैदा किये, वे जवान बन गये। मानो सत्या ने अनबूझी अवस्था मे अपनी जवानी, जोश और जीवन की कामनाएँ उन लड़के-लड़कियों को भेंट कर दी।

इस तरह, जब नदी किनारे के बालू की तरह अपना और सत्या का जीवन नदी में बहता दिखायी दिया, तो कमल बाबू मानो एकाएक ही खो गए। उन्हे लगता कि 'जीवन' तो चला गया। किसी तोते की तरह हाथ से उड़ गया। कितना निर्मम है यह जीवन! वह बूढ़े हो गये हैं न! आँखों पर चश्मा लगाये हैं। कम देख पाते हैं। अब पहले के समान दौड़ नही पाते। दफ्तर और घर का मार्ग तेजी से तय करने मे असमर्थ है। रास्ते में चलते हैं; तो ताँगेवाला, रिक्शावाला आवाज लगाता है, 'ऐ बाबू, बचकर····अरे, हटकर चल बूढ़े!'

उसके मन मे बात उठती कि कोई तो इतना दम्भी और घमन्डी बन जाता है कि तनिक नही लजाता। अपनी जबान को बेलगाम कर देता है, 'ओ, बूढ़े! क्या मरने चला है? घरवाली से लड़कर आया है, क्या! बचकर चल नहीं तो पिस जायगा, इस मोटर के नीचे!''

और ले-देकर जब वह घर पहुँचते है, तो वहाँ भी चैन नही। अब सत्या की पहली मुस्कान नही। उसमें पहला आकर्षण नही। अपितु वह स्वय जहाँ अपने लिये बोझिल है, वहाँ पति के लिये भी एक आपदा है। वह नित नये झगड़े, दुश्चिताओ के बोल सँजोकर कमल बाबू के सामने रखती है और घुटी-घुटी साँस से बोल निकालकर घर की, बच्चों की नयी-नयी माँगें पूरी करने के लिये खर्च की मदों का एक पुलिन्दा रख देती है।

कठिनाई तो यह है कि जब कमल बाबू उन माँगों को अस्वीकार करते हैं, आँखे दिखाते है, उस सत्या को मूर्ख बताते हैं, तो वह भूखी शेरनी की तरह गुर्राती है। किसी प्रेतिनी की तरह दाँत किटकिटाती—'जब पैदा किये तो नही सोचा, इनको पालना है, पढ़ाई-लिखाई पर खर्च करना है। अब बोझ बताते हो खर्च की बात सामने आती है, तो रास्ता काटते हो।'

सोचते कमल बाबू, अब इस कम्बख्त सत्या को कौन समझाये कि बच्चे मैने अकेले ने ही पैदा नहीं किये, इसने भी पैदा किये है। तब तो स्वय बच्चो की भूखी रही और अब दोष मुझपर डालती है। किन्तु वह निस्सहाय व्यक्ति की तरह मुँह से कुछ न कहते। चुपचाप रुपये निकालते और पत्नी के हाथ पर रख देते।

किन्तु एक दिन जब कमलबाबू दफ्तर पहुँचे, तो उनके एक साथी ने उनकी दुखती रग को दबा दिया। बोला—"बाबू, तुम तो बुद्धू रहे। जीवन मे हीन और कायर ही बने रहे। पता है कि वह कल का आया हुआ छोकरा अब

पूरे एक हजार रुपये पायेगा। एक साधारण क्लर्क आकर लगा था कि अब गजटेड आफीसर बन गया।"

कमल बाबू उस समय थके थे। मुँह पर पसीना था। किन्तु जब साथी की बात सुनी, तो अत्यन्त व्यस्त बन कर बोले—"हाँ, भाई! सब भाग्य का खेल है।" और जिज्ञासा प्रकट की, "तुम्हें कैसे पता चला?"

"अजी, पता क्या, पढ़ लिया। गजट में निकल गया।"

कमल बाबू का स्वाँस रुक गया। जैसे किसी ने मस्तिष्क को पकड़ लिया। उनसे बोला नहीं गया।

साथी ने कहा—"खलक की आवाज खुदा की आवाज होती है, कमल बाबू! अब भी समझ लो, जिन्दगी इसी प्रकार आगे बढ़ाई जाती है। भीड़ में रास्ता बनाना मजाक नहीं है, दूसरों को धक्का देकर पीछे हटाया जाता है।"

लेकिन कमल बाबू फिर चुप।

साथी बोला—"बाबू, इस दुनिया से न्याय उठ गया। अधिकार तुम्हारा था कि वह नया लौंडा पा गया।" उसने कहा—"बाबू, तुम्हारी ईमानदारी और वफादारी सभी जानते हैं। किन्तु उसे किसी काँटे पर नहीं तौला गया।"

मानों असहाय और निरुपाय गाय की तरह कमल बाबू ने अपने साथी की ओर देखा। उससे कह देना चाहा कि मुझे इतना ही मिलना था। यही मेरे भाग्य में था।

किन्तु उस प्रौढ़ बाबू ने कहा—"बुरा न मानना कमल जी, तुमने न खुद खाया, न हमें खाने दिया। भला इस दफ्तर में आकर कौन मालदार नहीं बना! चपरासी और क्लर्कों तक ने धन कमाया है।"

तब कमल बाबू ने साँस भरी—"ईमानदारी भी कोई चीज है, आशू बाबू! इन्सानियत का खून करके पैसा पाना मुझे भला नहीं लगता?"

विकृत स्वर में आशू बाबू ने कहा—"ईमानदारी सिर धुनती है। सिर पकड़कर रोती है।"

मानों यह बात कमल बाबू के मन को छू गयी। जीवन का यह तथ्य उनकी समझ में आ गया। ध्यान आया कि घर में सत्या भी यही कहते-कहते बुढ़िया हो गयी। अब उसकी दो लड़की जवान है। उनका विवाह करना है। लड़कों की पढ़ाई है। कल को रिटायर होना है। बुढ़ापा आया है, तो जवानी से अधिक खर्च अपने साथ लाया है।

उसी समय कमरे में कुछ और बाबू भी आ गये। वे सभी कमल बाबू की मेज के पास आकर बैठ गये। एक ने जब आशू बाबू की बात सुनी, तो वह बोला—"आप सच कहते हैं। चालबाज, मक्कार और धूर्त लोग ही इस जीवन का मजा लेते हैं। सत्य और आदर्श केवल वाणी में आता है, व्यवहार में नहीं। स्वार्थ और स्वेच्छा से भरा आदमी शोषण का मार्ग चुनता है। इन्सान का लाल-लाल लहू बहता है, वह तड़पता है, किन्तु पास खड़ा व्यक्ति नितान्त उपेक्षित बना ही-ही करते और दाँत निपोरते क्या लजाता है!"

जैसे चिढ़कर कमलबाबू ने कहा—"अरे, भाई! किसी भाषण के स्टेज की भाषा बोलते हो क्या! इस धरती पर सब-कुछ है। पाप है, तो पुण्य भी है। यह समझ लो, पैसा ही सब-कुछ नहीं है। अन्ततः सभी को ढेर होना है। माटी का ढेला बनना है।"

आशू बाबू ने चुटकी ली और कहा—"और तुर्रा यह कि आप स्वयं भी इस पैसे के लिये अधिक परेशान रहते हैं। आजकल भी लड़की के विवाह की चिन्ता से ग्रसित क्षीण हैं। भला क्यों? इसीलिये न कि पास मे पैसे का अभाव है, इसी हेतु दफ्तर से कर्ज ले रहे हो। जब अभी घर का काम नहीं चलता, तो कर्ज कटाते समय कैसे चलाओगे?"

कमल बाबू ने मिमियाये बकरे की तरह मुँह खोलते हुए कहा—"यह तो विवशता की बात है, आशू बाबू!"

आशू बाबू ने कहा—"चोर और डाकू भी यही कहता है। जीवन चलाने के लिये कला और चतुराई चाहिये, बाबू।"

कमल बाबू ने साँस भरी और याचना भरी दृष्टि के साथ उन सभी साथियों की ओर देखा। मानों उन्होंने अपनी विवशता और दीनता को स्वतः ही उन सबके समक्ष रख दिया।

आशू बाबू बोले—"इस बदमाश मुकटलाल ने कई आदमियों का अधिकार मारा है। एक जूनियर इतना बड़ा आफीसर बन गया, भला यह कहाँ का न्याय है।"

अवश बनकर कमल बाबू ने कहा—"भाई, इस दुनिया में यही है। ऐसा ही देखा-सुना जाता है।" वह बोले—"तुमने कहा न, कला और चतुराई चाहिये, तो उसने उसी का उपयोग किया। सभी को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ गया।"

एक बाबू ने तेज स्वर में कहा—"तो दुनिया मरेगी। असन्तोष बढ़ेगा। आदमी ही आदमी से दूर होगा। उदार और सिद्धान्तवादी मानव पत्थर के समान कठोर और अनु-

दार रहेगा।" वह बोला—"बाबू, न्याय का गला घोंट कर यह इन्सान जीवित नहीं रहेगा। पशुत्व से ऊपर नहीं उठ सकेगा।"

तब निरे तीखे भाव में कमल बाबू मुस्कराये—"कल क्या होगा, आदमी यह नहीं देखता। वह अपने वर्तमान को पुष्ट करता है। उसे सजाता है। उसी नींव पर भविष्य का निर्माण करता है।" यह कहते ही कमल बाबू के मुँह पर कपैली और कडुवी मुस्कान फैल गयी। वह बोले—"बिहारी बाबू, हम सभी पशु हैं। उस स्थिति से क्या निकले हैं? जिस व्यक्ति ने सुखद कल्पनाओं की सृष्टि की है उसी ने क्रूर और मदान्ध कारनामे भी इस धरती पर प्रदर्शित किये हैं।"

बिहारी बाबू बोले—"परन्तु आज का आदमी अधिक सजग है। आँख खोलकर देखता है। दिमाग की खिड़कियों से ताजी हवा पाता है।"

धीर भाव से कमल बाबू बोले—"लेकिन समाज के पथ पर दुर्गन्ध उठती है। वह आदमी को सड़ाती है। इसलिए आज का व्यक्ति अधिक भयंकर है। प्रकाश के नीचे ही अन्धेरा है। मनुष्य आज भी आसुरी शक्ति का पुंज बना है।"

एक व्यक्ति बोला—"अब मुकुटलाल मोटर रखेगा। जल्दी ही एक बँगले का स्वामी हो जायगा। आफ़ीसरों और नगर के रईसों की श्रेणी में आ जायगा।"

उसी समय बातों का क्रम बदल गया। सभी बाबू अपनी-अपनी जगह पहुँच गये। काम आरम्भ हो गया।

तभी अवर सचिव ने कमलबाबू को बुलाया। वह एक फाइल को दिखाकर बोला— "महाशय, देखिये इस फाइल में यह पत्र उल्टा लगा है। और आपने कुछ मामलों का अभी तक निपटारा नहीं किया। कितना काम आपकी मेज पर पड़ा है?" उसने कहा—" लगता है, आपका काम में मन नहीं लगता। सौ बार कहा मैंने, यह सरकारी काम है। हम-सबको इसीकी तनख्वाह मिलती है।"

कमलबाबू के अन्तर में जो असन्तोष था, वह अब धुआँ बन चुका था। अवर सचिव की बात सुनी, तो वह अच्छी नहीं लगी। कड़वाहट का भाव और अधिक मन में आ गया। परन्तु यह भी कैसी विवशता थी कि मुँह नहीं खुला। जैसे धुआँ उमड़-घुमड़कर मानस में छुप गया। बादल उठा और बैठ गया।

फिर भी, कमलबाबू ने कहा—"हाँ, सरकारी काम तो है। परन्तु आदमी खाने को माँगे, तो उसे ज़हर का प्याला दिया जाता है।"

सुनते ही, अवर सचिव ने कमलबाबू की ओर देखा। उसने खिन्न बनकर कहा—"कुछ परेशान हो, क्या?"

बाबू ने कहा—"यहाँ कोई नहीं देखता कि कौन कितनी मेहनत करता है। कितनी ईमानदारी से काम करता है।" मानों साथियों से सुनी बात का धुआँ एक ही पल में बाहर आ गया।

अवर सचिव मुस्कराया, "बताइये तो, क्या है, आपके मन में कोई रोष है, क्या?"

कमलबाबू बोले—"सोचता हूँ, मैं पढ़ा-लिखा न होता तो ठीक था। तब रोटियों का प्रश्न जङ्गली आदमियों के मध्य बैठकर सुलझा लेता। वहाँ रूखी-सूखी खाकर सन्तोष पाता। शान्ति से जीवन बिताता।" उन्होंने कहा—"किन्तु यह बाबुओं का समाज है। यहाँ बिजली का पंखा है। लाखों रुपये की लागत से बनी शानदार इमारत है। परन्तु मुझे तो लगता है कि इस सब में से आग फूट रही है। आदमी को जलाती है। ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्धा नग्न बनकर नाचती है, इन पथरीली दीवारों के अन्तराल में!"

उस अफसर की हाथ ने कलम रख दी। आँखों का चश्मा उतार दिया और वह एकाएक विषम बनकर बोला—"ओह, अपने इस सत्य को आज अनुभव किया, कमलबाबू! सचमुच, देर में समझा। मैं तो बहुत पहले समझ गया था।"

कमलबाबू ने कहा—"हमारे जीवन का दृष्टिकोण बदल चुका है। अब संकुचित है।"

अवर सचिव बोला—"यह तो मुझे भी सूझता है। आदमी पैसे का दास बना है। विवेक और जीवन का नैतिक पक्ष इस पैसे के सैलाब में बह चुका है।"

"और देखिये न, सरकार ने, समाज ने जितनी व्यवस्थायें बनायी हैं, आदर्श निर्मित किये हैं, किन्तु वे सभी कागजी है। सुना तो होगा कि वह मुकुटलाल...."

"हाँ, हाँ, मैंने भी सुना तो अचरज हुआ। मुझे लगा कि यहाँ भी रिश्वत का बाजार गर्म है। खुशामद और चाटुकारी सर्वोपरि है।"

"मैं कहता हूँ, हमारी सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं। इन्सान अपने काम की कीमत पाने में असमर्थ है।"

जल्दी से मानों आतुर बनकर अवर सचिव बोला—

"कीमत का आँकना कठिन है, कमलबाबू। भाग्य सर्वोपरि है।"

कमलबाबू ने साँस भरी और वे चले गये। स्पष्ट था कि उन्हें अपने आफीसर का भाग्यवाद पसन्द नहीं आया। मन का कोलाहल नहीं दबा। वह आँधी की तरह मस्तिष्क में उठता रहा।

× × ×

यह सर्वविदित था कि आफिस में कमलबाबू के पास जो काम था वह महत्वपूर्ण था। धनपतियों से उनके कागजों का सम्बन्ध था। वहाँके कारखानेदार अपना माल बाहर भेजने के लिए और मँगाने के लिए लाइसेंस प्राप्त करते थे। अतएव, उस दिन भी एक धनपति का काम उसके सामने था। कई लाख के माल का निर्यात करने का लाइसेंस उसे दिया जाना था। अन्य कारखानेदारों के आवेदन-पत्र भी आये पड़े थे। कमलबाबू को उनका निपटारा करना था।

किन्तु व्यवस्था यह थी कि उस दिन उनका मस्तिष्क विकृत था। सत्या ने प्रातः ही कहा था कि लड़की शारदा का विवाह इन्हीं जाड़ों में करना है। लगन के दो मास बाकी हैं। घर में कोई सामान नहीं। इसलिये रुपये का प्रबन्ध होना आवश्यक है। ऐसा लड़का अन्यत्र मिलना कठिन है। उसने पति को बाध्य किया कि लड़के के पिता से कह दें। और उन्हें आश्वस्त कर दें कि उनकी माँग पूरी की जायेगी।

और स्थिति यह थी कि शारदा के विवाह के लिए जितना रुपया चाहिये, उतना कमलबाबू के लिये प्राप्त करना कठिन था। बी० ए० पास लड़की को किसी संभ्रान्त घर में ही भेजना उचित था। लड़का सुपात्र हो, कमाऊ हो, स्वस्थ-सुन्दर हो, इतना पाने के लिए कम-से कम दस हजार रुपया आवश्यक था। पाँच हज़ार रुपया दफ्तर से माँगा था। शेष कहाँसे आये? यह प्रश्न समस्या बनकर कमलबाबू के मस्तिष्क में कील की तरह गड़ा था। उसका कोई समाधान नहीं। फलस्वरूप, आँखों में भय था, मन में कम्पन। जब रुपया नहीं, तो पुत्री का विवाह करना निकट भविष्य में सम्भव नहीं मालूम होता था। लड़का योग्य और सुन्दर था, परन्तु जब दहेज के लिए इतने रुपये उनके पास नहीं, तो बेटे के बाप को कोई आश्वासन देना उनके लिए सरल नहीं था। अतएव, वह सोच चुके थे कि मैं लिखकर भेज दूंगा, इतना रुपया नहीं दे सकता।

उसी समय फोन की घंटी बजी। कमलबाबू ने फोन सुना, तो परिचित स्वर था। नगर के सेठ चम्पतराय का फोन था। उसने कमलबाबू को अपनी दूकान पर आने का निमन्त्रण दिया था। कहा था, "दफ्तर से लौटते समय यदि दर्शन दें, तो मुझे सुख मिलेगा।"

कमलबाबू ने बात स्वीकार कर ली और फोन रख दिया। किन्तु उनका दिल धक्-धक् करने लगा। सेठ चम्पत राय क्यों अपनी दूकान पर बुलाता है, यह रहस्य तुरन्त ही समझ में आ गया। फलस्वरूप, सिर घूम गया। आँखों में अँधेरा भर गया। हाथ में कलम थी, सामने फाइल खुली पड़ी थी, परन्तु लिखा नहीं जा रहा था। निदान, फाइल रख दी। कमलबाबू ने माथा पकड़ लिया।

एक बाबू ने कहा—"क्यों, सिर में दर्द है, क्या!"

कमलबाबू ने कहा—"सिर में भी दर्द है और दिल में भी दर्द है। तबीयत परेशान है।"

"तो लड़की के लिये लड़का तय हो गया?"

"जी हाँ, देख तो लिया, परन्तु निश्चित नहीं किया।" वह बोले—"समाज स्वार्थी है। रुपया अधिक माँगा जा रहा है। मैं दे नहीं सकता।"

बाबू ने कहा—"लड़की का विवाह तो करना ही पड़ेगा। जवान लड़की को कब तक घर में रखा जायेगा? विवाह का भी कोई दिन निश्चित नहीं हुआ क्या?"

"हाँ जी, वह दिन तो तय हो गया, परन्तु मैं अभी सहमत नहीं हुआ। मेरे लिए पैसे का प्रबन्ध करना असम्भव है।"

बाबू ने कहा—"वह तो करना ही होगा। लड़की का विवाह तो टाला नहीं जा सकता।"

"यही तो समस्या है, रामबाबू! आजकल मेरी यही चिन्ता है। मैं कहाँसे रुपया लाऊँ, यह सहज में नहीं सूझता।"

रामबाबू ने आँख मिचकायी—"आपके हाथ में तो बहुत से सेठ हैं। इस ईमानदारी की चादर को उतारिये और अपना काम सिद्ध कीजिये। भला आपके लिए क्या कठिन है!"

व्यस्त बनकर कमलबाबू ने कहा—"यह नहीं होगा, रामबाबू! मुझसे नहीं हो सकेगा। पुत्री के विवाह के लिए सत्य का खून करना इस कमलनाथ के लिए असम्भव होगा।

जब इतना जीवन कट गया, तो आखिरी पड़ाव पर यह कैसे सम्भव होगा ?"

किन्तु रामबाबू ने कहा—"यह सतयुग नहीं, करयुग है, कमलबाबू। अपनी अवस्था देखिए। सचमुच, आपने इस दकियानूसीपन में परिवार को भी नष्ट कर दिया। चाहते, तो आप राजा होते। इस तरह दीन-अनाथ न बने होते।"

किन्तु इतनी भारी बात सुनकर भी कमल बाबू ने अपना मत नहीं दिया। काम बन्द कर वह कुर्सी से खड़े हो गये और दफ्तर से चल दिये। सीधे घर पहुँच गये। जब वह जाकर पड़े तो पत्नी सत्या ने आकर कहा—"सुना कुछ ? तुम्हारा पुराना दोस्त बिहारी अब मालदार बन गया है। अब देशभक्ति का नारा नहीं लगता। साँप-बिच्छू की तरह समाज को डसता है, और रुपया कमाता है !

कमलबाबू ने साँस भरी और कहा—"तुम्हें आज पता चला। मुझे बहुत दिनों से मालूम है। उसने देश और समाज को ठगा है।

सत्या बोली—"जब त्रस्त था, मुसीबत में फँसा था, तो इस घर में आता था। अब मुँह नही दिखाता। अन्य डाकुओं की तरह यह बिहारी भी अवसर पाते ही क्रूर और मदान्ध बन गया है।" उसने कहा—"कभी मैंने सोचा था कि बिहारी देश का वफादार सेवक हैं। मैं सोचती थी कि ऐसे ही व्यक्तियों को जीवन पाने का अधिकार है। परन्तु अब लगता है, मेरा कोरा भ्रम था। वह तो छलिया निकला। भेड़िया बनकर समाज को खाने लगा।"

कमलबाबू ने व्यस्त भाव से कहा—"किन्तु आज वह सभ्य व्यक्ति है। समाज का सिरमौर है। उसके पास पैसा है। जब भला था, दीन था तो लोगों की दृष्टि में चोर और लुटेरा था।"

सत्या ने कहा—"राम ! राम ! ऐसा समाज है यह इतना अन्धा !" तब वह प्रस्तुत बात छोड़कर बोली—"तो मेरी बात पर सोचा ? पैसे का प्रबन्ध किया ?" उसने कहा— "जमाना खराब है। लड़की जवान है। जब आज कल के लड़के बेहया हो जाते हैं तो सयानी लड़की तो और बड़ी जिम्मेदारी है ? और तुम्हारी शारदा तो बी० ए० तक पढ़ी है। सभी कुछ समझती है।"

नितान्त असहाय होकर कमलबाबू बोले—"सत्या, यही मेरी चिन्ता है। आज काम में मन नहीं लगा। जल्दी चला आया। सिर भारी हो गया।"

सत्या भी इस बात को समझती थी। बोली—"एक प्याला चाय दूँ ? शारदा ने अभी-अभी मठरियाँ बनायी हैं।"

किन्तु सत्या की बात का उत्तर न देकर, कमलबाबू ने कमर पर गरम दुशाला डाल लिया। हाथ में बेंत ले लिया। जाड़ों की शाम थी। अतएव, सूरज डूबते ही, ठण्ड बढ़ गयी। वह घर से चल दिये।

सत्या ने कहा—"जल्दी लौटना। खाना ठण्डा हो जायेगा।"

तब भी बिना बोले कमलबाबू घर से बाहर हो गये। बाजार में जा पहुँचे। वे सीधे सेठ चम्पतराय की दूकान पर पहुँच गये। देखते ही सेठ ने बड़ी आवभगत की। चाय आई, मिठाई और नमकीन भी आया। तभी उसने अपनी बात खोली—"बाबू, सुना है, आपकी पुत्री का विवाह है।"

कमलबाबू ने कहा—"जी !"

"और बाबू, यह तो आप जानते हैं कि इस दुनिया में परस्पर लेन-देन का व्यवहार चलता है। मैंने आपके दफ्तर से पाँच लाख रुपये का माल भेजने का लायेसैंस माँगा है। फाइल आपके पास है। आपको लिखना है। "यह कहते हुए उसने एक लिफाफा आगे बढ़ाया और कहा—" इसमें दस हजार के नोट हैं। भेंट है मेरी ओर से, पुत्री के विवाह के लिए।"

यद्यपि वे नोट लिफाफे में थे, परन्तु कमलबाबू की निगाह में घूम गये वे मानों उनके मस्तिष्क के चारों ओर फैल गये। वे जैसे किसी काजर की कोठरी में फँस गये। गला सूख गया। बोला नहीं गया। केवल विस्फारित बनकर, कभी सेठ को और कभी बाहर के अन्धकार की ओर देखने लगे।

सेठ बोला—"बाबू, मैंने सुन लिया है कि आप रिश्वत नहीं लेते। कदाचित् आपके विभागाध्यक्ष ने इसीलिए यह काम आपको सौपा है। परन्तु मैं कहता हूँ, न यह पाप है, न रिश्वत है। मैं तो कमाता ही रहता हूँ। आपकी पुत्री का विवाह है। सरकारी नौकरी में क्या मिलता है, यह क्या मुझसे छिपा है।"

सेठ की बात सुनकर कमलबाबू कुछ कहते, अपना अभिमत व्यक्त करते, हुए उन रुपयों को लेने से इन्कार कर देते, अथवा उन दस हजार रुपये के नोटों से भरे लिफाफे को हाथ में दाबकर कह देते, अच्छी बात है, कल आइयेगा लाइसेंस मिल जायेगा। किन्तु उसी समय एक वृद्धा वहाँ

आयी और ऊनी कपड़ों से भरी दूकान पर कातर दृष्टि डाल कर बोली—"सेठ, एक कपड़ा मिल जाय ! ठण्ड से मरी जा रही हूँ।"

सेठ ने विरक्त और घृणायुक्त बनकर कहा—"चल, चल, हराम की बच्ची ! यहाँ जैसे मुफ्त का कपड़ा भरा है !"

किन्तु कमलबाबू ने देखा कि सचमुच, वह दया और याचना की साकार प्रतिमा बनी वृद्धा जाड़े से काँप रही थी। मानों उसके जर्जर शरीर की हड्डियाँ एक-दूसरे से शीत के कारण गुँथी जा रही हों।

फलस्वरूप, जब सेठ ने कुछ न देने की असमर्थता के साथ उसे फटकार दिया, तो वृद्धा आगे बढ़ गयी। पलभर में वह दृष्टि से ओझल हो गयी। किन्तु जाते-जाते वह दूकान पर बैठे, गरम दुशाले में लिपटे कमलबाबू को मानों झकझोर गयी। उनमें कम्पन पैदा कर गयी। उनकी मुंद जाने वाली आँखों को खोल गयी। उनका समूचा शरीर काँप गया।

तभी सेठ बोला—"यह लिफाफा रख लीजिये, बाबू। सम्भाल कर रखिये। आजकल बाजार में जेबकतरे भी बहुत हैं।"

किन्तु इतनी बात सुनी तो कमलबाबू में जैसे बिजली का करेंट दौड गया। उन्होंने कहा—'तो आपको भी पता है कि मैं रिश्वत नहीं लेता।"

उल्लसित बनकर सेठ बोला—"हाँ, हाँ, यह तो आपके आफिस में सभी को ज्ञात है। बड़े-बड़े आफिसर जानते हैं। अनेक क्लर्क और चपरासी भी हमसे कह चुके हैं।"

"हे राम ! कमलबाबू ने सहसा अपना सिर पकड़ लिया। लगा कि किसी ने सुगन्धभरे गुलाब के फूलों का टोकरा उनके सिर पर उडेल दिया। कुछ देर पूर्व सिर भारी था कि सेठ की बात सुनते ही, हल्का पड़ गया। आत्मा और मन में उल्लास का भाव फूट पड़ा। तभी कमल बाबू को लगा कि उन्होंने कुछ खोया नहीं, पाया है। जीवन बरबाद नहीं हुआ, सफल बना है।

तभी उन्होंने सेठ की ओर देखकर कहा—"सेठजी, आपने मेरे प्रति जो सद्भावना प्रदर्शित की, उसके लिए आभारी हूँ। किन्तु बताइये तो, जब आप मुझे ईमानदार मानते हैं, तो यह रिश्वत क्यों देते हैं ? मुझे क्यों नाबदान में डुबोते हैं इन्हें रखिये।" वह बोले, "सेठ, मेरी विवशता यह नहीं कि मैं अभावग्रस्त हूँ। बाल-बच्चों के बोझ से दबा हूँ। पुत्री के विवाह की चिन्ता में डूबा हूँ। मैं तो प्रायः सोचता हूँ कि आदमी इस पैसे का चिन्तन क्यों करता है ? आदमीयत का गला क्यों घोंटता है ? किसलिये ऐसा क्रूर व्यापार करता है ? मुझे पता है, आपका माल सड़ा-गला है। कई वर्षों से पड़ा है। अब बेकार हो चुका है। अतएव, मैं लाइसेंस नहीं दूँगा। मैं देश और आदमीयत के साथ ऐसा अन्याय न कर सकूँगा।" और इतना कहकर कमलबाबू उस दूकान से झटके से उठकर चल दिये। नोटों का लिफाफा वहीं मेज पर पड़ा रह गया।

उस समय कमलबाबू के समूचा शरीर में एक विचित्र कम्पन हो रहा था पैर लड़खड़ा रहे थे। आँखों में अँधेरा था। उस समय एक साथ ही दो प्रहार उन पर हो रहे थे। बुढ़ापे का प्रभाव, और सेठ की दूकान पर जो कुछ कह आये, उसकी प्रतिक्रिया। अभी वह घर से दूर थे। कोई सवारी मिल जाये, इसलिए सड़क के किनारे-किनारे चल रहे थे।

तभी सहसा, कमलबाबू की दृष्टि उस वृद्धा पर पड़ी। उस फुटपाथ के तरफ एक पड़ी थी। ठण्ड से काँप रही थी।

यह देखते ही, कमलबाबू ठिठक गये ! वे आहत भाव से उस वृद्ध को देखने लगे। उसके पास ही एक पिल्ला पड़ा था, वह ठण्ड के कारण काँपता हुआ काँय-काँय कर रहा था। तभी बरबस, कमलबाबू ने ऊपर आकाश की ओर देखा और कहा—"तुम बड़े दयालु हो, परमात्मा ! इन दो प्राणियों को अपने आँचल में समेट लो। इनका उद्धार करो।" तभी वे दो पग और आगे बढ़े। कमर से गरम दुशाला उतारा और वृद्धा तथा पिल्ले पर डालकर आगे बढ़ गये।

जब वे चले, तो वृद्धा का स्वर फूट पड़ा। वह उन्हें सुनाई दे गया—'बेटा राम तुम्हारा भला करे !"

मानो किसी ने सहसा वरद् हस्त कमलबाबू के सिर पर रख दिया। तब वे तेजी के साथ घर की ओर बढ़ गये।

अगले दिन दफ्तर में पैर रखते ही, सहसा लोगों ने कमलबाबू को घेर लिया। वे समझ नहीं सके। बरबस, डर गये। किन्तु तभी उनके समक्ष दफ्तर के अध्यक्ष की फाईल आई। जिसमें न केवल कमलबाबू की ईमानदारी को सराहा गया था, अपितु जिस स्थान पर मुकुटलाल नियुक्त हुआ था, उस पर कमलबाबू की स्थानापन्न नियुक्ति कर दी गयी थी।

कमलबाबू बोल नहीं सके। वे हमसे पुलकित होकर इतने विनम्र हो गये थे कि दफ्तर के सभी छोटे बड़े के समक्ष झुक गये।

एक बाबू ने कहा—"बाबू, वह मुकुटलाल अब जेल में है। जिस डाल पर बैठा, उसीको कुतरने लगा। वह नहीं कर सका। गरम दूध को एक ही साँस में पी जाने को प्रस्तुत हो गया। कम्बख्त मुँह जला बैठा। नौकरी भी गयी और अब जेलखाने में की हवा खायेगा।"

सुनते ही, लोगों में ठहाका उठा और तालियों की गड़गड़ाहट में लोगों ने कमलबाबू को फूलों की माला से लाद दिया।

लेकिन जब शाम को कमलबाबू घर पहुँचे, तो उससे पूर्व ही सत्या को समाचार मिल गया था। वह बड़ी प्रसन्न थी। उसने उन्हें सूचना दी कि लड़के के पिता को भी पता चल गया कि तुम्हें दफ्तर ने पुरस्कृत किया है। अतएव वे आये थे और कह गये हैं कि बाबू से कह देना कि हमें तुम्हारी बिटिया पाकर अपना घर सुशोभित करना है विवाह सादगी से होगा। मैं दहेज में रूपया नहीं लूँगा।"

कमलबाबू ने सत्या की ओर बड़े स्नेह से देखा और बोले—दयालु है, सत्या ! वह सभी कुछ देखता है। चिन्ता न कर, मैं अपनी बिटिया का विवाह ठाठ से करूँगा।"

रागी

श्री शिव वर्मा

रागी जब पहले पहल मेरे पास आया तो वह गँवई गाँव का निपट अनाड़ी, निरक्षर एवं सीधा सादा जवान था। अपनी तीस वर्ष की अवस्था में उसने रेलगाड़ी की सवारी पहली और अन्तिम बार तब की जब पुलिस के दो सिपाही उसे गोरखपुर जेल से नैनी लाये थे। उससे पूर्व उसने रेलगाड़ी का नाम भर सुना था। चाय का भी उसने केवल नाम ही सुना था और काफी का तो नाम भी न सुना था। काँच का ग्लास उसने देखा था लेकिन छुआ नहीं था, और चाय के बर्तन न देखे थे न सुने थे। मिट्टी के तेल की लालटेन उसने पहली बार गोरखपुर जेल में देखी और बिजली की रोशनी गोरखपुर स्टेशन पर या फिर नैनी जेल में आकर।

गोरखपुर जिले में नैपाल की सरहद के पास तराई में उसका छोटा-सा गाँव था। नदी और नालों से घिरा वह गाँव बरसात के दिनों में एक छोटा टापू बन जाता था। उस समय सारी दुनिया से अलग होकर कुछ एक झोपड़ियों का वह समूह अपने में सिमट कर रह जाता और गाँववालों के लिए जानवरों की देख-भाल के अलावा और कोई काम न रह जाता। बरसात समाप्त हो जाने पर नदियों का पानी उतर जाता तो थोड़ी बहुत खेती गाँव वाले कर लेते थे लेकिन उनका मुख्य पेशा था जानवर पालना और बेचना।

रागी गाँव के जानवरों का चरवाहा था। गायों और भैंसों के बीच वह जन्मा, उन्हीं के बीच खेला और बड़ा हुआ। जंगल में जानवर चराते हुए उसका अधिकांश समय भैंस की पीठ पर बीतता और विश्राम के समय जब उसके जानवर नम घास पर, छिछले पानी में या कीचड़ में बैठ कर जुगाली करते तो वह किसी भैंस की पीठ पर पेट के बल चिपट कर सो जाता।

तभी एक दिन जंगल के मार्ग से जाते हुए दो तीन सौदागरों को घेर कर कुछ लोगों ने लूट लिया। रिपोर्ट हुई, पुलिस आयी, कुछ लोग पकड़े गये, छूटे, चार और पकड़े गये, फिर दो उनमें से भी छोड़ दिये गये।

पुलिस को मामले की जाँच करते तीन चार दिन हो गये थे और गिरफ्तारियों तथा रिहाइयों का जो क्रम चल रहा था उससे ऐसा लगता था कि शायद एक एक कर गाँव के सभी नौजवानों को हवालात की हवा खानी पड़ेगी। पुलिस गाँव पर रोज ही छापा मारती और दो-चार को पकड़ कर ले जाती। फिर किसी की भैंस बिकती, किसी की गाय, तो किसी का दुधारू जानवर बगैर बिके ही चुपके से किसी अज्ञात स्थान पर पहुँच जाता और लोग थोड़ी बहुत मार या गालियाँ खाकर घर वापस आ जाते।

पाँचवें दिन शाम का झुटपुटा होने से पहले ही रागी ने एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर दूर तक बिखरे अपने जानवरों को आवाज लगाई। घर चलने का इशारा सुनते ही बछड़ों की याद में दुधारू गायों और भैंसों के दूध से बोझिल थनों में सुरसुरी होने लगी और वे सिमट कर रागी के चारों ओर जमा हो गयीं। रागी कूदकर नीचे आ गया और रोज के सधे जानवर अपने आप गाँव की ओर चल पड़े।

अंधकार प्रकाश को छू रहा था, संध्या निशा को चूम रही थी, जानवर बच्चों से मिलने की खुशी में बंबा रहे थे, घरवाली की याद में रागी का स्वर बिरहा की लै पर तैर रहा था। जानवर गाँव में प्रवेश कर भी न पाये थे कि पुलिस के कुछ आदमियों ने आगे बढ़ कर रागी को घेर लिया। भैंसों की चाल मद्धिम पड़ गयी, गायों का बंबाना रुक गया, बछड़ों तक पहुँचने का उनका उत्साह धीमा पड़ गया। रागी का अपना कोई जानवर न था, लेकिन वह सब जानवरों का था। और जब उन सब के सामने पुलिस रागी को बाँध कर ले गयी तो उस शाम अपने सामूहिक बछड़े के वियोग में गायें बच्चों को चाटना भूल गयीं और भैंसों ने नादों में मुँह नहीं डाला। रागी की झोंपड़ी में उस रात दिया नहीं जला।

कुछ व्यक्ति राह चलते लूटे गये थे और अपराधियों का पता लगाना पुलिस का कर्त्तव्य था। रागी यदि चाहता तो सौ पचास देकर वह भी छूट सकता था। लेकिन उसके पास तो दस की भी गुंजाइश न थी। उस पर तीन अन्य व्यक्तियों के साथ राहजनी का मुकदमा कायम हो गया गवाह भी मिल गये, चोरों की पहचान भी हो गयी और फिर सबको पाँच-पाँच साल की सजायें सुना दी गयीं।

नैनी जेल में जिस समय रागी मुझसे मिला उस समय वह अपनी सजा का एक वर्ष समाप्त कर चुका था।

"चीफ साहब ने आपके लिए पंखा कुली भेजा है," कह

कर हाते के जमादार ने एक दुबले पतले कैदी को हाथ पकड़ कर आगे कर दिया।

धूप से झुलसी त्वचा, गहरा साँवला रंग, चेहरे पर हलके चेचक के दाग, लगभग एक सप्ताह की बढ़ी दाढ़ी, दुर्बल शरीर, गिरा हुआ स्वास्थ्य, गंदे और फटे हुए कपड़े— यह रागी था। जमादार का इशारा पाकर वह दो कदम आगे बढ़ा और हाथ जोड़ कर सहमते-सहमते आकर मेरे सामने खड़ा हो गया।

"इससे अधिक गंदा और रोगी आदमी क्या जेल में नहीं था?" पास बैठे मेरे एक मित्र ने वार्डर से पूछा। वे १९४२ के आन्दोलन के एक नौजवान सिपाही थे और स्थानाभाव के कारण उस समय मेरे ही कमरे में रह गये थे।

"अभी रहने दीजिये, फिर कोई ढंग का आदमी मिलने पर बदल दूंगा।" क्षमा-याचना के स्वर में वार्डर ने कहा और रागी को ठीक तरह काम करने का आदेश देकर चला गया।

रागी बगल में अपनी मैली चादर और तसला कटोरी दबाये उसी प्रकार हाथ जोड़े खड़ा था और उसके मैले शरीर के अन्दर छिपा एक स्वच्छ हृदय छोटी छोटी आँखों के दो झरोखों से झाँक कर कह रहा था "हम गरीबों के शरीर ही गन्दे होते हैं, दिल गन्दा नहीं होता।"

"कितनी सजा है?" मेरे मित्र ने पूछा।

"पाँच साल।"

"क्या किया था?"

"राहजनी की दफा लगाई थी। वैसे मैंने कुछ किया नहीं था हजूर।"

उत्तर सुनकर मित्र महोदय जोर से हँस पड़े। "यहाँ हर कोई अपने आपको बेगुनाह ही कहता है।" उन्होंने कहा।

पूर्व इसके कि वे रागी से और जिरह करें मैंने बात काटते हुए कहा, "अच्छा, पहले जाकर नहा लो और अपने कपड़े साफ कर लो, फिर काम की बात करेंगे।"

रागी को जैसे किसी ने डूबते से उबार लिया हो। उसने राहत की साँस ली और एक कोने में अपना सामान रख कर नहाने चला गया।

नैनी जेल का पहला चक्कर सरकिल सन् ४२ के राजनैतिक बन्दियों से भर सा गया था और प्रायः नित्य ही चाय के समय मेरे कमरे में मित्रों की अच्छी खासी भीड़ जमा हो जाती थी। रागी को जब पहले दिन चाय के बर्तन धोने के लिए दिये गये तो उसके हाथ काँपने लगे— लगा जैसे वे उसके हाथ से फिसल कर गिर पड़ेंगे। और जब वह धोने बैठा तो सचमुच उसके हाथ से प्याली छूट पड़ी।

"बाबू जी, रागी ने एक प्याली तोड़ दी।" बैरक का सफैया वहीं से चिल्लाया। शोर सुनकर मैं कमरे से बाहर निकल आया। रागी टूटी प्याली के टुकड़ों को हाथ में लिए अपराधी की भाँति एक ओर खड़ा था और नम्बरदार उस पर बुरी तरह बिगड़ रहा था।

"पाँच रुपये से कम की नहीं रही होगी।" रागी से अधिक मुझे सुना कर नम्बरदार ने कहा।

"साले से चार बर्तन तो सँभाले नहीं सँभलते और चल दिया वहाँ से 'बी' क्लास में मक्खन-रोटी तोड़ने।" एक अन्य कैदी ने ताना दिया। वह स्वयं रागी के काम का उम्मीदवार था।

"इस तरह तो यह चार दिन में ही सारे बर्तन समाप्त कर देगा।" तीसरे ने कहा।

"प्याली के साथ इसे ले जाकर जेलर साहब के सामने पेश क्यों नहीं कर देते।" पहले कैदी ने नम्बरदार को सलाह दी।

रागी की हालत पर मुझे तरस आ गया। "प्यालियाँ तो टूटती ही रहती हैं।" मैंने हँसकर कहा। "अभी कुछ दिन पहले मुझसे भी टूट गयी थी। इस छोटी सी बात के लिए इतनी तूल की क्या जरूरत थी?" यह कह कर मैं फिर अपने कमरे में चला गया। भीड़ भी छट गयी।

उस दिन शाम तक रागी मेरे सामने नहीं आया। फिर पता चला कि उसने दोपहर का खाना भी नहीं खाया है और सबेरे से ही अपने कमरे में मुँह लपेटे पड़ा है। शायद अस्वस्थ होगा मैंने सोचा। लेकिन पूछताछ करने पर पता चला कि वह प्याली तोड़ने का प्रायश्चित्त कर रहा है। रागी ने अपने एक साल के जेल-जीवन में छोटी-छोटी बातों के लिए मार खायी थी, गालियाँ सुनी थीं। लेकिन यह हँसकर टाल देने वाली सजा उसने न सुनी थी और न वह उसका आदी था।

"क्या बात है?" मैंने बैरक के नम्बरदार से पूछा।

"कहता है, मैंने पाँच रुपये की प्याली तोड़ दी और

बाबू ने हँसकर टाल दिया। इससे तो अच्छा था वे मुझे मार लेते।"

नम्बरदार से रागी की बात सुन कर मेरे मित्र का दिल भर आया। वे ऊपर से जितने रूखे थे, अन्दर से उनका हृदय उतना ही कोमल था। उन्होंने जाकर रागी को उठाया।

"प्याली पाँच रुपये की नहीं, मुश्किल से पाँच आने की रही होगी। और नये आदमियों से आरम्भ में दो-एक टूट ही जाती हैं। आगे से धोते समय थोड़ी सावधानी रखने से ही वे तुम्हारे बस में आ जायँगी।" उन्होंने कहा, और फिर उसका हाथ पकड़ कर मेरे पास ले आये। "लीजिये इस बेवकूफ को समझाइये कि प्याली पाँच रुपये की नहीं थी।"

और उनके अपनत्व के सामने जब रागी रो पड़ा तो उन्होंने उसके गाल पर दो तमाचे लगाते हुए कहा, "लो प्याली तोड़ने की सजा हो गयी। लेकिन जेल में खाना छोड़ना और रोना भी गुनाह है। और इस कसूर की सजा के तौर पर आगे से तुम्हें चाय बनानी भी पड़ेगी।"

उस घटना के बाद रागी मेरे पास लगभग तीन वर्ष रहा। लेकिन उसके हाथ से फिर न कोई बर्तन टूटा और न किसी में दरार आयी। थोड़े ही दिनों में उसने हर चीज पर ऐसे काबू पा लिया मानों वह बहुत पुराना और अनुभवी काम करनेवाला आदमी था।

फिर उसने चाय बनाना भी सीख लिया और कुछ ही महीनों मे वह मेरे सभी कांग्रेसी मित्रों में चाय का विशेषज्ञ माना जाने लगा। हम लोगों मे आये दिन आपस में चाय पार्टियाँ होती रहती थीं। उन पार्टियों में अन्य वस्तुयें कोई भी बनाये लेकिन चाय के लिए प्रायः रागी को ही बुलाया जाता था।

कुछ दिनों बाद मेरे मित्र की शागिर्दी में उसने चाय पेश करने के कायदे कानून भी समझ लिये। अब किसीके लिए चाय लाने से पहले वह साफ कपड़े पहनता, फिर मेज सजाता, मेज न रहने पर जमीन पर कम्बल बिछाता, उस पर सफेद चादर लगाता, प्यालियाँ-चम्मच रखता, फिर थाली में चायदान, शक्कर और दूधदानी सजाकर लाता, चायदानी को "कोजी" से बन्द करता और फिर एक ओर खड़ा होकर आदेश की प्रतीक्षा करता।

जैसे जैसे चाय के बारे में उसकी ख्याति बढ़ती गयी वैसे वैसे दूसरों को चाय पिलाने का उसका शौक भी बढ़ता गया। मेरे मित्र भी उसकी कमजोरी को भाँप गये थे। वे उसे देखकर दूर से ही उसकी चाय की तारीफ शुरू कर देते, और वह सब काम छोड़ कर उनके लिए चाय बनाने बैठ जाता। अधिक व्यक्तियों में दूध, चीनी और चाय की कमी का कोई प्रश्न न था, अस्तु रागी ने धीरे-धीरे मेरे कमरे को एक प्रकार के टी क्लब में बदल दिया।

चाय के बारे में उसकी रुचि का विकास मेरे मित्र के सम्पर्क से ही हुआ था। चाय में अधिक चीनी या दूध लेनेवालों को वे मजाक में नौसिखिया चहेड़ी कहा करते थे। रागी उन्हें सचमुच अपना जैसा गँवई गाँव का अनाड़ी समझने लगा। मेरे जिन मित्रों का वह मुँह चढ़ा था उनसे कभी-कभी कह भी बैठता "गरम शरबत पीना चाहें तो अलग से बना दूँ। चाय क्यों खराब करते हैं?"

प्याली को छोड़ कर और किसी बर्तन में चाय पीना भी उसकी निगाह में अनाड़ीपन की निशानी थी। एक बार गोरखपुर के एक मित्र पांडेजी ने प्याली के अभाव में काँच के ग्लास में चाय ले ली। जाड़ों में उससे हाथ भी गर्म हो जाते हैं और चाय पीना भी हो जाता है। वे हाथ में ग्लास लिये बरामदे में घूम-घूम कर चाय पी रहे थे। तभी रागी से उनका सामना हो गया। रागी उनका मुँहलगा था! पहले तो वह उन्हें देख कर खूब हँसा, फिर बोला "पांडेजी, रउआं चाय पियले का सऊर हमरे बाबू के पास बैठि के सीख लेईं, नाहीं तो लोग कहीं कि रागी के जिला में सब लोग ऐसेन होला।"

पांडेजी विनोद प्रिय स्वभाव के व्यक्ति थे। वे रागी को पकड़ कर मेरे पास ले आये और बोले—"आपके स्कूल में भर्ती होने के क्या नियम हैं और फीस कितनी देनी पड़ेगी?"

प्रसंग न समझ सकने के कारण मैं उनके मुँह की ओर ताकता रहा। "कौन सा स्कूल मैंने पूछा।"

"यह घूम घूम कर चाय पी रहे थे।" पांडेजी के कुछ कह सकने से पहले ही रागी बोल पड़ा। "ऐसे भी कहीं चाय पी जाती है? मैंने कहा चलकर मेरे बाबू से चाय के कायदे कानून सीख लीजिये।'

रागी की सफाई पर पांडेजी, हँस पड़े, बोले "तोहरे बाबू से पहिले तो हमके तोहसे सीखे के परी।" और वे उसके टी क्लब के नियमित सदस्य हो गये। पाण्डेजी के पास रोचक किस्से-कहानियों का कभी न चुकने वाला भंडार

था। उनके आने से बैठकों में जान आ गयी। रागी का टी क्लब चमक उठा।

कुछ दिनों बाद रफी साहब भी नैनी आ गये। अस्वस्थ होने के कारण वे प्रायः अपने कमरे में ही रहते थे। उनके साथ शतरंज पर मेरी रोज की बैठक थी।* मेरे मिलने वालों में रफी साहब ही एक थे जिन्हें रागी अपना हुनर नहीं दिखा पाया था। धीरे-धीरे उसने उनके पास भी अपनी पहुँच कर ली और फिर प्रायः ही उन्हें शाम की चाय बना कर पिलाने के लिए उनके यहाँ पहुँचने लगा। एक दिन खुश होकर रफी साहब ने उससे कहा "जेल से छूट कर तुम मेरे पास आ जाना मैं तुम्हें अपने पास जगह दे लूंगा।"

"छूटने के बाद मैं अपने बाबू के ही पास रहूँगा।" उसने सरल भाव से उत्तर दिया। कारण पूछने पर कह दिया "उन्होंने मुझे जनवार से आदमी बनाया है। अब मैं उन्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

रफी साहब से उनका प्रस्ताव और रागी का उत्तर सुन कर मैंने उसे बहुत समझाया कि वह उनका प्रस्ताव स्वीकार कर ले, लेकिन वह राजी न हुआ और जब मैंने उसके सामने अपनी बाहर कि स्थिति रक्खी और उसे बताया कि मेरे साथ बाहर उसे शायद भर पेट खाने को भी नहीं मिल सकेगा तो उसने दो शब्दों में कह दिया, "अगर आप आधा पेट खाकर रह लेंगे तो क्या मैं नहीं रह सकूँगा?"

फिर धीरे-धीरे न जाने कब और कैसे रागी मेरा गार्जियन बन गया। उसके इस नये अधिकार का एहसास मुझे तब हुआ जब उसने मुझे डाटना, समझाना और मुझसे जवाब तलब करना आरम्भ कर दिया।

गर्मियों के दिनों में नहाने के लिये मैं तीन नम्बर हाते चला जाता था। वहाँ कपड़े आदि धोने की अच्छी व्यवस्था थी और पानी भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। एक दिन नहाने के बाद अपने एक मित्र के कमरे में बैठ गया और चलते समय तौलिया तथा बनियाइन वहीं छोड़ आया। रागी ने मेरी हर चीज गिन रक्खी थी और दूसरे तीसरे समय निकाल कर उनकी जाँच करता रहता था। दो तीन दिन बाद जब उसने मेरे कपड़े मिलाये तो एक तौलिया तथा बनियाइन कम थी। आमतौर पर रात के आठ बजे मुझे खाना खिलाकर रागी सोने चला जाता था लेकिन उस दिन वह कमरे के बाहर बैठ गया और जब मेरे सब मित्र चले गये और मैं अकेला रह गया तो वह धीरे से अन्दर आकर एक कोने में खड़ा हो गया।

"क्या है रागी?" उसे खड़ा देखकर मैंने पूछा।

"एक तौलिया और बनियाइन क्या किसी को दिये हैं?

"नहीं तो?" मैंने उत्तर दिया।

"कहाँ छोड़े हो?" उसने फिर पूछा।

उस समय तक कपड़े मेरे ध्यान से बिलकुल उतर चुके थे और न मैं उसे कोई उत्तर हीं दे पाया। रागी एक हलकी प्रतारणा के साथ यह कह कर चला गया :"ऐसे फेंकने से कपड़े कितने दिन चलेंगे और घरवाले मोल लेकर कहाँ तक भेजते रहेंगे?"

रागी का अधिकार का स्वर मुझे अच्छा लगा और मैंने प्रतारणा स्वीकार कर ली और कर भी क्या सकता था।

दूसरे दिन बैरक खुलते ही रागी तीन नम्बर पहुँचा। उस हाते में किस किस के यहाँ मेरा आना-जाना था। इसका उसे पता था। उसने एक एक के कमरे में जाकर पूछा और अन्त में जब उसे कपड़े मिल गये तो वह बड़-बड़ाता हुआ आया और आगे से कपड़े इधर-उधर न फेंकने की हिदायत देकर के चला गया।

१९४२ के राजनैतिक बन्दियों में जिन लोगों का मेरे यहाँ उठना-बैठना अधिक था उनमें बनारस के भवानी बनर्जी भी थे। उनसे मेरी घनिष्ठता का एक कारण यह भी था कि वे स्वयं क्रान्तिकारी आन्दोलन की उपज थे। अवकाश के क्षणों में कभी मैं उनके यहाँ चला जाता और कभी वे मेरे यहाँ आ जाते। एक दिन किसी पुस्तक की तलाश में दूसरी बैरेक जाते समय रागी से कह गया" भवानी बाबू यदि आयें तो उन्हें जाने न देना। मैं किताब लेकर अभी आता हूँ।" वहाँ किसी राजनैतिक समस्या पर विवाद में उलझ जाने के कारण मुझे एक घंटे से अधिक लग गया। वापस आया तो रागी खाना बना रहा था।

"भवानी बाबू आये थे?" मैंने पास जाकर पूछा।

"मैंने बहुत कहा बाबू अभी आ जायेंगे। लेकिन जब वे किसी तरह रुकने को राजी न हुए तो मैंने उन्हें कमरे में बन्द कर दिया। शायद सो रहे हैं।" रोटी बेलते-

* स्वर्गीय श्री रफी अहमद किदवाई शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे।

वेलते उसने ऐसे उत्तर दिया मानों वह कोई साधारण बात हो।

मैंने जाकर कमरा खोला। भवानी बाबू चादर ताने आराम से सो रहे थे। आहट पाकर वे उठकर बैठ गये।" भाई मान गये तुम्हारे सिपाही को" उन्होंने कहा और फिर-हँसते हँसते लोट-पोट गये।

एक बार किसी रोचक पुस्तक में उलझे रहने के कारण वे तीन-चार दिन मेरे यहाँ नहीं आये। रागी को उनका न आना अखरने लगा और एक दिन रात में कमरे में मुझे अकेला पाकर वह आया और बोला :

"एक बात पूछूँ, बाबू ?"

"क्या है ?" मैंने कहा।

"भवानी बाबू से क्या झगड़ा किये हो ?" उसने डरते-डरते पूछा। "पहले रोज आते थे लेकिन इधर कुछ दिनों से उनका आना एमदम बन्द हो गया है।" फिर कुछ रुक कर स्वयं ही बोला "जेलखाने में अच्छे दोस्त बहुत कम मिलते हैं। उनसे बिगाड़ नहीं करना चाहिये।"

मैंने उसे विश्वास दिलाया कि झगड़ा आदि जैसी कोई बात नहीं है और मैं उनके यहाँ प्रायः रोज जाता रहा हूँ, लेकिन उसे तसल्ली नहीं हुई। दूसरे दिन प्रातः बैरक खुलते ही वह जाकर भवानी बाबू को चाय की दावत दे आया। वह उनकी पसन्द जानता था। उसने चाय के साथ आमलेट और कुरमुरे परावठे बनाये और जब हम लोग एक साथ बैठे तो चाय का सामान सजाते-सजाते उसने हाथ जोड़ कर भवानी बाबू से पूछा "क्या हमारे बाबू से झगड़ा किये हैं, भवानी बाबू ?"

रागी की बात से भवानी बाबू चौंक से पड़े। फिर उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। 'मैं कल रात अपने हिस्से की खुराक पा चुका हूँ। अब चाय के साथ पहले तुम भी थोड़ी डाट खा लो फिर बात करूँगा। मैंने कहा। और जब उन्होंने रागी की ओर देखा तो उसने वही रातवाला उपदेश उन्हें भी सुना दिया।

रागी की सरलता और उसके अपनत्व से भावुक हृदय भवानी बाबू की आँखें नम हो गईं और उन्होंने उठकर उसे गले लगा लिया। रागी समानता के उस ऊँचे आसन के लिए तैयार न था। उसने बैठ कर दोनों हाथों से भवानी बाबू के पैर पकड़ लिए। उसके रुँधे गले से एक ही शब्द निकला 'बाबू' और उसकी आँखों से पानी के दो बूँद ढुलक कर उनके पैरों पर गिर पड़े।

एक दिन बैरक खुलते ही समाचार मिला कि मेरा चालान* जा रहा है। सरकिल इन्चार्ज भी सामान आदि ठीक कर रखने के लिए कहा गया। लम्बी अवधि का बन्दी होने के नाते मेरे पास इस प्रकार का काफी सामान जमा हो गया था जो आमतौर पर ऊँची श्रेणी के बन्दियों को नहीं मिलता है। मेरे पास फर्श पर बैठ कर पढ़ने के लिए डैस्क की आकार की दो चौकियाँ थीं, पुस्तकें आदि सजाने के लिए एक खूबसूरत रैक था, हाथ धोने के लिए तामचीनी की एक चिलमची और उसका स्टैण्ड था, कमरे में बिछाने के लिए दरी जैसा मूँज का एक खूबसूरत रंगीन फट्टा था, और भी जेल का काफी सामान था। चालान का समाचार सुन कर मेरे सब मित्र भी आ गये। किसी ने चौकी माँगी, किसी ने रैक, किसी ने फट्टा लिया, किसी ने चिलमची। सामान जेल का था और चले जाने के बाद कोई न कोई तो उसे लेता ही। तो फिर वह मेरे मित्रों के पास ही क्यों न जाये। मैं हाँ करता गया।

फिर पता नहीं क्यों और कैसे चालान रुक गया। संध्या समय जब सरकिल जेलर ने आकर यह समाचार सुनाया तो मेरे सभी मित्र खुशी से उछल पड़े। लेकिन रागी, जिसने सबेरे से ही मौन धारण कर लिया था, मेरे न जाने का समाचार सुनकर भी गूगा ही बना रहा। कुछ लोगों ने जब उससे चाय पिलाने के लिए कहा तो वह उत्तर दिये बिना ही चला गया। आग्रह करने पर भी उसने न किसी से बात की और न किसी के लिए चाय बनाई।

उस दिन के बाद से रागी खामोश खामोश रहने लगा। दो एक को छोड़ कर उसने लोगों को चाय पिलानी भी बन्द कर दी। शाम का टी क्लब भी तोड़ दिया। फिर एक साफ कमरे में मुझे अकेला पा कर चुपके से आया और एक कोने में खड़ा हो गया। मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था। आहट पाकर मैंने सर उठाया तो उसने आहिस्ते से कहा।

"बुरा न मानो तो एक बात पूँछूँ बाबू ?'

"कहो" मैंने स्वीकृति दी।

"काहे पाल रक्खे हैं इतते सारे दोस्त ?"

"दोस्त क्या खराब होते है ?' मैंने पूछा।

---

* जेल की भाषा में कैदी का एक जेल से दूसरी जेल ट्रान्स्फर या तबादिले को चालान जाना कहते हैं।

"वह बात नहीं है बाबू। उस रोज जब आप के जाने की बात थी तो लोगों को आप के जाने का गम नहीं था, सामान पाने की खुशी जरूर थी। किसे क्या मिलेगा इसकी ताक बहुत थी। आप का साथ छूटेगा इसका गम कम था। क्या होगा ऐसे दोस्तों को पाल कर?"

मैंने रागी को बहुत समझाया कि सामान तो किसी न किसी के पास जाता ही। ऐसी स्थिति में यदि मेरे दोस्तों ने उसे आपस में बाँट लिया तो वे बुरे कैसे हो गये।

रागी को मेरी बात से संतोष नहीं हुआ। कुछ देर खामोश रहकर उसने कहा बाप के मरने के बाद उसका सब सामान बेटों में बँट जाता है और उसे कोई बुरा भी नहीं कहता। कभी कभी मरने से पहले ही बाप अपनी जमीन जायदाद लड़कों में बाँट देता है। उसे भी कोई बुरा नहीं मानता। लेकिन जब मौत दरवाजे पर खड़ी हो तब बीमार बाप की चारपाई के पास बैठकर अगर उसके लड़के कहें वह खेत मैं लूंगा, वह मकान मुझे दे दीजिये, तो ऐसे बेटों को आप क्या कहेंगे?"

"लेकिन उस दिन न तो मैं बाप था और न वे लोग मेरे बेटे थे। न मैं मर रहा था, और न उस सारे सामान पर मेरा कोई अधिकार था। जेल का सामान जेल के कैदी अगर आपस में बाँट लें तो मुझे या तुम्हें क्यों आपत्ति हो।" मैंने पूछा।

"वह काम तो आपके जाने के बाद भी हो सकता था।" उसने कहा। "दास बाबू और भवानी बाबू भी तो थे। उन्होंने तो कुछ नहीं माँगा। क्या उन्हें अच्छा सामान काटता था?"

मेरे बहुत कुछ समझाने पर भी रागी अपनी बात पर अड़ा रहा। मुझसे समझौते के रूप में उसने अपना मौन भंग कर दिया और मेरे पास आने-जाने वालों के साथ पहले की भाँति बोलने-चालने भी लगा। लेकिन उन्हें चाय पर बुलाना या उनके आने पर अपनी ओर से उनसे चाय पीने का आग्रह करना उसने एकदम छोड़ दिया।

फिर रागी के छूटने से कुछ महीने पहले मेरी रिहाई आ गयी। उसने मेरे पास रह कर लगभग पन्द्रह रुपये जमा कर लिए थे। यह रुपये मेरे अनेक मित्रों ने छूटते समय रागी को इनाम के रूप में दिये थे।* जिस समय रिहाई के लिए मेरा चालान नैनी से हरदोई जाने लगा तो रागी ने वे रुपये मुझे दे दिये। मैंने उसके घर का पता मांगा जिससे बाहर जाकर उसके रुपये मनीआर्डर द्वारा उसके लड़के के पास भेज सकूँ तो उसने विश्वास दिलाते हुए कहा।

"मेरी रिहाई में तीन महीने ही रह गये हैं और जेल से रिहा होकर मैं पहले आप ही के पास आऊँगा। रुपये भी तभी ले लूंगा।" उसने अपना पता देने के बजाय मेरा पता ले लिया।

फरवरी १९४६ की इक्कीसवीं तारीख को लगभग १७ साल बाद मैं जेल से बाहर आया। मार्च के अन्त में मैंने रागी को पत्र लिख कर उसका कुशल-समाचार पूछा। और अप्रैल के पहले सप्ताह में नैनी जेल से उसके एक मित्र धारी ने उसका उत्तर दिया। पत्र इस प्रकार था :—

"श्रीमान शिववर्मा जी को धारी का चरन छूना पहुँचे।

"आगे समाचार यह है कि आप के चले जाने के बाद रागी बहुत बीमार हो गया और जेल के अस्पताल में भर्ती हो गया था। वहाँ सब लोगों का खयाल था बी क्लास में रागी ने बहुत रुपया कमाया है और उन लोगों ने कहा रुपया दो तो इलाज होगा। रागी के पास रुपया नहीं था, सो उसका इलाज नहीं हुआ और दस दिन अस्पताल में रहकर उसने चोला छोड़ दिया।

"उसके मरने के एक दिन पहले मैं उससे अस्पताल में मिला था। कहता था मेरे बाबू को खबर कर दो। वह होते तो मेरी यह हालत न होती। फिर दूसरे ही दिन वह हमें छोड़ गया। हम लोग अपने दिन काट रहे हैं।

आपका धारी"

पत्र शायद अनधिकृत रूप से चोरी से भेजा गया था क्योंकि उस पर न तो किसी जेल अधिकारी के हस्ताक्षर थे और न जेल की मोहर आदि। पहली बार पत्र पढ़ कर विश्वास नहीं हुआ कि रागी इतना शीघ्र चला जायेगा। मैंने पत्र दुबारा पढ़ा। उसमें स्पष्ट लिखा था कि रागी चोला छोड़ कर चला गया!

एक निर्दोष व्यक्ति जो पुलिस को रुपये न दे सकने के कारण पकड़ा गया, फिर रुपये के अभाव में न्याय भी न पा सका और लम्बी सजा लेकर जेल आया और वहाँ भी बीमार पड़ने पर रुपये के अभाव में ही उचित उपचार से वंचित

[शेष पृष्ठ ६९ पर देखिये

* जेल में कैदी का अपने पास रुपया पैसा रखना अपराध है फिर भी अधिकांश कैदी रुपया पैसा रखते हैं।

एक श्रेष्ठ मराठी कहानी का रूपान्तर—

नारी

रूपान्तरकार——उज्ज्वल कुमार

रात के बारह बजे का घंटा बोला। बसंतराव दफ्तर का काम पूरा करने में जुटे थे। उन्हें प्यास लग आई। समीप रक्खे लोटे में से आधा पानी उन्होंने पी लिया। गला फिर भी तर न हुआ। उन्हें ऐसा लग रहा था कि उनकी पत्नी ने दोपहर में रेलवे स्टेशन के नल से लोटा भर कर रक्खा था। कार्याधिकता, तीव्र गर्मी तथा गरम पानी पीने के कारण वह अन्दर ही अन्दर पत्नी पर भुँझला उठे। बाजार में नई-नई डिजाइनों की कितनी साड़ियाँ आई हैं। इसमें दुकानदारों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक ज्ञान रखती हैं, परन्तु उन्हें नाममात्र भी पुरुषों की तकलीफ़ों का ध्यान नहीं रहता। गर्मी में ठंडा पानी पीने की जरूरत रहती है, उन्हें इसका भी ख्याल नहीं रहता। यदि लोटे पर गीला कपड़ा लपेट दिया गया होता तो पानी अवश्य कुछ न कुछ ठंडा हो जाता।

भुनभुनाते हुए बसंतराव खिड़की के पास गये। पड़ोसी के घर की खिड़की इनकी खिड़की के ठीक सामने थी। उसमें से किसी ने पूछा—"अरे बसन्तरावजी, क्या नींद नहीं आ रही है ?

बसन्तराव भुँझलाहट के कारण तीखा उत्तर देने जा रहे थे परन्तु शिष्टता की याद आते ही संयत हो गये। उन्होंने प्रश्नवाचक उत्तर दिया—"अरे, अरे ! बताओ क्या कर रहे हो शंकरनजी ?"

"क्या कहूँ ? उबल रहा हूँ उबल ! हवा को पता नहीं क्या हो गया है जो चलने का नाम ही नहीं लेती।"—शंकरनजी ने कहा।

बसंतरावजी ने कहा, "लगता है हवा ने हड़ताल कर दी है। दुनिया हड़ताल कर सकती है लेकिन क्लर्क लोग नहीं कर सकते।"

"हुश्श !"—शंकरन ने सहानुभूतिपूर्वक कहा।

व्याकुल बसन्तरावजी वापिस मेज के पास लौट आये। न ठंडी हवा का झोंका, और न ठंडा पानी। "मिल मजदूर हड़ताल कर सकता है परन्तु शादी शुदा या दफ्तर का क्लर्क हड़ताल नहीं कर पाता।"—बैठे बैठे बसन्तराव जी सोचने लगे।

बगल के कमरे में बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। उन्हें पत्नी के प्रति और अधिक क्रोध हुआ। वह मजे से सोती होगी, मुझे अभी कम से कम एक घंटा और काम करना है। विवाह से पूर्व की कल्पना की कि संसार प्रत्यक्ष वसंत ऋतु है वास्तविकता बाद में जाकर मालूम होती है। तब वह समझ पाता है कि संसार का अर्थ—ग्रीष्म की प्रचंड लू है।"

रात के दो बजे। बसन्तराव का काम समाप्त हो गया। वे सो गये। मस्तिष्क की बेचैनी के कारण सुखदायी नींद न आई। अच्छे-बुरे स्वप्न रात भर आते रहे।

सुबह हुई। आठ बजे नींद टूटी। चाय की चुस्की लेते हुए फिर वे अखबार पढ़ने लगे। शंकरन के घर जब वे लौटे तो दस बज गये। जल्दी से नहाये, कपड़े पहने और खाने के लिए बैठ गये। थाली में चावल अधिक परोसा था। वे बोले—"चावल थोड़ा कम कर दो।"

पत्नी बोली—"आज रोटी नहीं बनी है।"

"क्यों ?"

"मैंने आज मंगल-व्रत रक्खा है।"

"स्त्रियों को तो केवल मंगल-व्रत ही नहीं प्रत्येक दूसरे दिन व्रत करना चाहिए।"

"क्यों ?"

"काम न धाम ! घर में बैठे बैठे अजीर्ण होने का डर रहता है। पत्नी व्यंग्य का कारण समझ गयी। वह चुप रही।

बसन्तराव भुनभुनाते हुए दफ्तर गये। चावल की अपेक्षा रोटी उन्हें ज्यादा पसन्द थी। और रोटी बनी ही न थी। वे इसका कारण सोच रहे थे—प्रेम का रंग पक्का होने के साथ-साथ कच्चा भी होता है। विवाह के बाद के दो तीन वर्ष तक पत्नी छाया बनी फिरती है पर आज कष्टों की चिंता ही नहीं रखती। पहले तो पान खिलाने के लिए व्याकुल रहती थी परन्तु अब पेट भर खाना खिलाने की भी चिंता नहीं रहती।

सन्ध्या समय बसन्तराव घर लौटे। साथ दो मित्र भी थे। उन्होंने हवाखोरी का प्रोग्राम बनाया। मित्र घर का काम करने का बहाना कर चले गये।

थोड़ी देर तक बसन्तराव सिगरेट का धुँआ हवा में

फूंकते रहे। फिर अकेले हवा खाने चल दिये। घूमते घूमते सिनेमाघर पहुँच गये। बस, मन की तरंग उठी, टिकट खरीदा और अन्दर हाल में घुस गये।

इंटर्वल हुआ। उन्होंने थोड़ी दूर पर बैठे उन दोनों मित्रों को देखा। दोनों को आड़े हाथ लेने की इच्छा हुई, परन्तु कुछ सोचकर रुक गये।

खेल समाप्त हुआ। वे घर लौटे। ठंडी हवा कहीं न थी। उन्होंने सोचा—पत्नी सो गयी होगी। जब वह खाना परोसने उठेगी तो मैं भूख न होने का बहाना कर दूँगा। इस प्रकार उसकी आँख खोलने के लिए एक आध दिन मुझे भूखे रहना पड़ेगा।

पत्नी द्वार पर खड़ी बसन्तराव की प्रतीक्षा कर रही थी। भोजन बन रहा था। उसे भूख तेज लग रही थी, परन्तु पति भी तो भूखे थे। वह कैसे खा सकती थी? अतएव प्रतीक्षा कर रही थी।

बसन्तराव घर आए। वे पत्नी को 'किश्त' देना चाहते थे, मगर स्वय 'मात' खा गये। इससे क्या होता है? पुरुष कभी हार स्वीकार कर सकता है? वे पत्नी से बोले—अरे ये व्रत आदि किसके लिए कर रही हो?

"मैंने पाँच मंगलवारों की मानता दिनकर के लिए मानी है।"

"क्यों?"

"कल रात भर वह ज़्वर से छटपटा रहा था। उसे गोद में लिये लिये मैं रात भर जागती रही।"

"मुझे क्यों नहीं बताया?"

"दफ्तर के काम से ही आप खुद परेशान रहते हैं।"

बसन्तरावजी रोटी न बना सकने का कारण समझ गये। फिर वह चिन्तित मुद्रा में बोले—"ठीक है जाकर मैं डाक्टर को बुला लाता हूँ।"

पत्नी ने कहा—"उन्हें घर पर खाने से दो रुपये फीस देनी पड़ती और आप रिस्टवाच लेना चाहते हैं। दिनकर का बुखार हल्का होते ही मैं उसे डाक्टर को दिखा लाई हूँ।"

बसन्तराव पत्नी के शयन-गृह में 'मात' खाकर गये। दिनकर का शरीर अब भी थोड़ा गर्म था।

फिर वे रसोईघर में गये। वहाँ जाकर देखा कि फूली-फूली रोटियाँ रक्खी है। चावल पक रहा है। बसन्तराव विचारों में डूब गये—तपी हुई धरा की झरप की तरह पुरुष अपनी वेदना को स्पष्ट कर देता है। परन्तु नारी अपनी वेदना वसुन्धरा के अन्तराल में उबलते हुए तरल पदार्थ के समान छिपाये रहती है। उसकी तीव्रता अदृश्य होती है।

रसोईघर से निकलकर बसन्तराव की पत्नी ने देखा कि दिनकर रावजी के बिस्तर पर सो रहा था और वह उसे पंखा झल रहे थे। दोनों प्राणी में से प्रत्येक दिनकर को अपने पास सुलाना चाहते थे। अन्त में आधी-आधी रात का बँटवारा हुआ। यानी आधी रात तक रावजी के पास और आधी रात तक पत्नी के पास दिनकर सोयेगा।

रात के दो बजे। पत्नी बसन्तराव के कमरे में आयी तो खिलखिला कर हँस पड़ी। राव जी के पास दिनकर न था। उन्हें झपकी आते ही दिनकर उनके पास से गायब हो गया था। यह देखकर रावजी भी हँस पड़े।

दिनकर ज्वर से मुक्त हो चुका था। पति-पत्नी प्रसन्न थे। बसन्तराव खिड़की के पास खड़ी पत्नी के पास जाकर उसकी महानता की याद दिलाना ही चाहते थे कि सामने वाली खिड़की से आवाज आई—"कहिये रावजी, जाग रहे है यहाँ मैं भी गर्मी से उबल रहा हूँ।"

बसन्तराव ने खिड़की बन्द करते हुए कहा—"नहीं भाई, बर्फ गिर रही है-बर्फ।" फिर उन्होंने पत्नी से कहा यदि नारी न होती तो मनुष्य का जीवित रहना दूभर हो जाता।"

पत्नी यह सुनते ही शर्म से भर गई। उसने कहा—जाइये, आप सोइये न।" यह कहकर वह भी अपने कमरे में जाकर लेट गई। उसका दिल प्रसन्न था क्योंकि उसे व्रत का फल मिल चुका था।

रागी

[शेष पृष्ठ ६७ का शेषांप]

रहा। रागी को पकड़ने और उसे मारने वाले अधिकारी के विरुद्ध घृणा से मेरी आत्मा खीझ उठी। फिर सोचा दौलतपरस्ती के इस युग में, जहाँ सदियों पहले पैसे के हक में भगवान् ने अवकाश ग्रहण कर लिया था, यह सब तो होगा ही। रागी के अपराधी तो इस दूषित समाज के नगण्य अंग मात्र हैं। यहाँ तो हर क्षण पैसे की घिनौनी वेदी पर रागी जैसी न जाने कितनी निर्दोष आत्माओं की बलि चढ़ती रहती है। यह नरमेध तो इस व्यवस्था के साथ ही समाप्त हो सकेगा।

रागी की मृत्यु के बाद उसके गाँव घर का पता लगाने का मैंने बड़ा प्रयास किया। गोरखपुर गया, उस समय के अपने जेल के मित्रों से भी बात की। लेकिन कोई भी ठीक पता न दे सका। नैनी जेल के सुपरिटेन्टेन्ट को एक पत्र लिखा। वहाँ से भी कोई उत्तर नहीं मिला।

धारी का पत्र और रागी के रुपये अब भी मेरे बाक्स के एक कोने में लिफाफे के अन्दर से उसकी दुखान्त कहानी दोहराया करते हैं।

'गुप्त बनाम गुप्ता' पर श्रीमती कमला रत्नम् का वक्तव्य

द्वारा विदेश मन्त्रालय, नयी दिल्ली

२८ मई, १९६९

आदरणीय चतुर्वेदी जी,

सेवा में सप्रेम प्रणाम स्वीकार हो।

अभी-अभी मई ६९ की 'सरस्वती' आई है। आदरणीय श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह का जो पत्रांश आपने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में उद्धृत किया है वह देखा। इस सम्बन्ध में मेरा यही निवेदन है कि श्री लक्ष्मीनारायण गुप्ता से मेरा परिचय एकमात्र मेरी सखी श्रीमती प्रेमलता के माध्यम से है। प्रेमलता को भी उनका परिचय 'गुप्ता' ही कराया गया था 'गुप्त' नहीं। संभव है अँग्रेजी-उच्चारण और रोमन लिपि के माहात्म्य के कारण 'गुप्त' का गुप्ता' हो गया हो, परन्तु भाषा में बोलने-चालने से निरन्तर जो घिसाव-पिटाव होता रहता हैं, तथा श्रवणदोष और मुख-सुख के कारण जो परिवर्तन आते रहते हैं उनसे बहुत से शब्दों का रूप ही बदल जाता है। सबसे अच्छा उदाहरण 'सिंह' शब्द ही है जिसे रोमन के माध्यम से बिहारी लोग "सिन्हा" कहने लगे हैं। हिन्दी के बड़े-बड़े लेखक तथा संसद् के सदस्य तक इसे गलत नहीं अनुभव करते और धड़ल्ले से इसका प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी तरीके से जहाँ पति या पिता के नाम का अन्तिम भाग बच्चों के नाम के आगे जोड़ दिया जाता है वहाँ ऐसी नयी बानगियाँ देखने को मिलती हैं कि तबियत खुश हो जाती है। जैसे 'रमा सिंह' में केवल 'रमा' को लेकर पता चल सकता है कि इस अभिधान की स्वामिनी एक स्त्री है। परन्तु यदि "नीलम सिंह" यह नाम सामने आ जाय तो क्या किया जाय? मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ कि कहीं इन सज्जन अथवा सज्जना या सज्जनी से भेंट हो तो यह रहस्य खुले। इससे अच्छा तो रोमन के माध्यम से बना 'सिन्हा' रूप है। स्त्रियों के नाम के आगे जुड़ जाये तो शोभा देता है। शोभा वाली स्त्री हो तो फिर क्या कहने हैं। वैसे रोमन द्वारा भारतीय नामों को जिस प्रकार चौपट किया गया है उसके हजारों उदाहरण भाई माचवेजी सुना सकते हैं। वर्षों तक मैं परमुखानन्द को शान मुखानन्द समझती थी तथा सत्पथी और शतपथी में कौन शुद्ध है यह निर्णय नहीं कर पाती थी।

आजकल जब सर्वत्र अंग्रेजी का राज है तो कवि दिनकर सोनवलकर के "संत्रास" से संत्रस्त होना पड़ता है :—

> तेजी से चलता था
> हिन्दी साहित्य का क्लास
> गुरु जी विचरते थे
> द्विवेदी युग के आसपास
> पूछा एक शिष्य ने
> "सर, क्या होता है संत्रास ?"
> उत्तर मिला, "संत्रे का
> बहुवचन है संत्रास।"

मैं आदरणीय श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह का समाधान कर सकने की धृष्टता तो नहीं कर सकती परन्तु यदि अपनी सखी प्रेमलता के पति को 'गुप्ता' से 'गुप्त' कर देती तो शायद वह मुझे इस दुनिया में न रहने देती। इस भय से यदि मैंने गलत भी लिखा तो वह क्षम्य है।

आशा है आप सानन्द स्वस्थ होंगे।

समस्त मंगल कामनाओं सहित
आपकी
कमला रत्नम्

सम्पादकीय

[पृष्ठ १६ का शेषांश]

उनके कार्यक्षेत्र और कार्यकलाप भी उतने ही बहुरूपी थे। समाज और जीवन के कितने ही क्षेत्रों में उन्होंने काम किया, और प्रत्येक क्षेत्र में वे चमके। कई दशकों तक वे मराठी साहित्याकाश में प्रखरता से चमकते रहे। पत्रकारिता, नाटक, निबंध, चलचित्र, कहानी आदि कितनी ही विधाओं द्वारा उन्होंने मराठी साहित्य को पुष्ट किया।

शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने अपना जीवन शिक्षक के रूप में आरंभ किया, किंतु वह जीवन उनकी प्रकृति से मेल न खाता था। शीघ्र ही उसे छोड़कर वे नाटक के क्षेत्र में चले गये। उनमें नाटक की प्रकृतिदत्त प्रतिभा थी। वे कहा करते थे कि नाटक या थिएटर से मेरा जो सम्बन्ध है वह उसके अंग्रेजी नाम The Atre से स्पष्ट है। और बात बहुत सीमा तक सही भी थी। उनके नाटक बड़े लोकप्रिय हुए किंतु वे सफल नाटककार ही न थे, वे सफल अभिनेता भी थे। मराठी रंगमंच को जीवन्त रंगमंच बनाने में उनका बड़ा हाथ था। इसके बाद वे चलचित्र के क्षेत्र में गये। आरंभ में उन्होंने उसके लिए कहानियाँ लिखीं, किंतु अंत में वे स्वय चलचित्र-निर्माता और निर्देशक बन गये। इस क्षेत्र में उनकी सफलता इसी बात से स्पष्ट है कि उनके द्वारा निर्मित चित्रों—श्यामची आयी और महात्मा फुले—को राष्ट्रपति के चलचित्र पुरस्कार मिले थे।

किंतु नाटक या चलचित्र उनके विचारों और आदर्शों तथा क्रियाशीलता की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त माध्यम न थे। उन्हें अधिक विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता थी। उन्होंने पत्रकारिता और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। वे कांग्रेस के अनन्य समर्थक हो गये। उन दिनों उन्होंने 'नवयुग' साप्ताहिक का सम्पादन हाथ में लिया। और उसके द्वारा राष्ट्रीयता तथा कांग्रेस का जो प्रचार किया उसके महत्त्व का मूल्यांकन करना आज कठिन है। बाद में वे 'शिवशक्ति' निकालने लगे और उसके द्वारा सारे महाराष्ट्र को वे अंत तक अपने लेखों से उत्तेजनात्मक प्रेरणा देते रहे।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद वे कांग्रेस की गतिविधि से असंतुष्ट हो गये थे और उससे अलग होकर उसके तीव्र आलोचक बन गये थे। संयुक्त महाराष्ट्र बनाने के लिए महाराष्ट्र में जो आंदोलन हुआ (जिसके फलस्वरूप विदर्भ, मराठवाड़ा, महाराष्ट्र, कोंकण और बम्बई को मिलाकर वर्तमान महाराष्ट्र राज्य बना) उसके वे अन्यतम सूत्रधारों और सचालकों में थे।

आचार्य अत्रे बड़े शक्तिशाली और प्रभावशाली लेखक और वक्ता थे। वे हास्य और व्यंग्य के अप्रतिम धनी थे। उनके वाक्बाणों से उनका कोई भी विरोध करनेवाला नहीं बचता था। मराठी साहित्य संसार में व्यंग्य के तो वे बादशाह थे।

वे निर्भीक पत्रकार थे और उन्होंने पत्रकारों की स्वतन्त्रता का एक बड़ा कीर्तिमान स्थापित किया।

इतने तेजस्वी और निर्भीक होने पर भी व्यक्तिगत जीवन में वे बड़े सरल थे और बड़ी सादगी से रहते थे। उनका जीवन समर्पित और क्रियाशील जीवन था। उन्हें पीलिया रोग हो गया था। उसीमें उनकी मृत्यु हुई। उनके निधन से मराठी साहित्य का एक अत्यंत उज्ज्वल नक्षत्र टूट गया, और भारतीय पत्रकारिता ने अपना एक निर्भीक, स्वतंत्रचेता सम्पादक खो दिया। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

अजन्ता 'रम' और एलोरा 'जिन'—मद्यनिषेध गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य था। कांग्रेसी सरकारों ने आरंभ में मद्यनिषेध को लागू करना आरंभ भी किया किंतु 'रुपये की मार' ने उनका उत्साह कमजोर कर दिया। इस समय गुजरात की कांग्रेसी सरकार और तमिलनाडु की गैर-कांग्रेसी द्रमुक सरकार ही ऐसी दो सरकारें हैं जो मद्यनिषेध के सिद्धान्त पर डटी हुई हैं। कई कांग्रेसी सरकारों ने मद्यनिषेध के नियम ढीले कर दिये, जहाँ वह लागू था वहाँ से उसे उठा लिया। कई

ने विलायती शराब के कारखाने खोलकर रुपया कमाना आरंभ कर दिया।

दिल्ली के एक अंग्रेजी समाचारपत्र के विशेष प्रतिनिधि ने बम्बई से यह समाचार दिया है: "(महाराष्ट्र) राज्य सरकार का चितली में शराब बनाने का कारखाना है। वह जो 'रम' (Rum) और 'जिन' (gin) बना रहा है उनके नाम क्रमशः अजन्ता और ऐलोरा की संसार प्रसिद्ध गुफाओं पर रखे जायेंगे।"

"जिस प्रकार अजन्ता के भित्तिचित्र और ऐलोरा की गुफाएँ अंतर्राष्ट्रीय सैलानियों को आकर्षित करती हैं, उसी प्रकार आशा की जाती है कि ये दो शरावें भी अपने अंतर्राष्ट्रीय गुण और कम दाम के कारण उन्हें आकर्षित करेंगी। अजन्ता 'रम' और ऐलोरा 'जिन' अगली वर्षा ऋतु में बाजार में आ जायँगी।"

'रम' और 'जिन' दोनों ही तेज शराब हैं। सेना में ठंडे या बहुत ऊँचे स्थानों में सामान्य सिपाहियों को 'रम' दी जाती है। इन दोनों में मद्यांश के अनुपात में अंतर है, किंतु हमारे पाठकों को इस विवरण में रुचि न होगी। जो बात ध्यान देने की है वह यह व्यंग्य है कि एक गांधीवादी सरकार इस गांधी जन्मशती वर्ष में दो नई शरावें तैयार करके जनता को सुलभ कर रही है। दूसरा व्यंग्य यह है कि महाराष्ट्र के दो संसार-प्रसिद्ध सांस्कृतिक महत्त्व के पवित्र स्थानों के नाम सरकार ने इन दो शरावों को दिये हैं। कांग्रेसी सरकार भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों का इससे और अच्छा उपयोग कर भी क्या सकती है! अब अजन्ता के चित्रों के श्रद्धालु भिक्षु-निर्माताओं तथा कैलाश गुफा के धर्मप्राण शिल्पियों की आत्माएँ अपनी कृतियों के नाम इन रंग-विरंगी मादक बोतलों पर देखकर तृप्त हो जायँगी। गनीमत है कि सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों ही का नाम देकर इन शरावों का गौरव बढ़ाया गया, नहीं तो यदि उन्हें अधिक गौरवान्वित करने के लिए उनका नाम 'बुद्ध या गांधी रम' और 'विनोवा जिन' रख दिया जाता तो कोई क्या कर लेता! भारत की मद्य-प्रिय जनता को ये 'अजन्ता रम' और 'ऐलोरा जिन' इस गांधी जन्मशती वर्ष के बड़े उपयोगी, हृदयग्राही (कंठग्राही ?) और सुन्दर उपहार हैं!
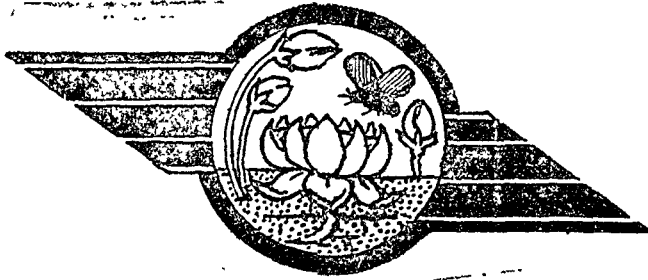
अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद—लेखक, श्री विश्वनाथ वैशम्पायन, प्राप्तिस्थान, लाजपत स्मारक साहित्य-सदन, मिर्जापुर (उ० प्र०) दो खंडों में—प्रथम खंड का मूल्य २ रु० ५० पैसे, दूसरे खंड का सात रुपये।

अभी तक आज़ाद के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें निकली हैं, उन सबमें यह सबसे अधिक प्रामाणिक और विवरणपूर्ण है। वैशम्पायनजी विद्यार्थी जीवन से आज़ाद के सम्पर्क में आये और उनके विश्वस्त सहयोगी थे। वैशम्पायनजी की दृष्टि तीव्र थी और उनमें आदमी की परख थी। आजाद के प्रशंसक होते हुए भी वे भावुकता में वह कर विवेक नहीं खो बैठे। इसमें आजाद की जो जीवनी दी है, तथा जिन घटनाओं का वर्णन किया है उनकी या तो उन्हें व्यक्तिगत जानकारी थी, या उन्होंने उनकी काफी छानबीन कर तथ्यों को संग्रह किया। इस छोटे ज्ञापन में इस पुस्तक की पूरी आलोचना नहीं की जा सकती क्योंकि इसमें आजाद तथा आजाद के सहयोगियों से सम्बन्धित कितनी ही विवादग्रस्त बातों का वर्णन और विश्लेषण है। उनमें से एक एक बात पर विचार करने के लिए काफी समय चाहिए। किन्तु इस पुस्तक को पढ़कर पाठक पर यह प्रभाव पड़ता है कि वैशम्पायनजी ने इन विवादग्रस्त बातों का जो निष्कर्ष निकाला है वह प्रायः ठीक है। इस पुस्तक में आजाद का चरित्र एक अत्यन्त निष्ठावान और योग्य क्रान्तिकारी नेता के रूप में उभरा है। भावी इतिहासकारों के लिए यह पुस्तक एक प्रामाणिक स्रोत प्रमाणित होगी। पुस्तक की शैली अत्यन्त रोचक है और जो बात कही गयी है वह स्पष्ट शब्दों में, जिससे पाठक को लेखक का मन्तव्य जानने में कठिनाई नही होती। इसकी भाषा प्राञ्जल और बड़ी सरल है। श्री वैशम्पायन ने इस पुस्तक को लिखकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास की बड़ी सेवा की। इसके प्रकाशित होने के कुछ ही दिनों बाद उनकी खेदजनक मृत्यु हो गयी—मानों वे इस ऐतिहासिक पुस्तक को समाप्त करने ही के लिए जीवित थे। वे स्वयं अपनी आत्मकथा लिखने का विचार कर रहे थे, किन्तु खेद है कि क्रूर मृत्यु ने यह कार्य न होने दिया। श्री वैशम्पायन उन थोड़े से एकनिष्ठ क्रान्तिकारियों में थे जो अन्त तक आन्दोलन के प्रति वफादार बने रहे और जिन्होंने उसके लिए अनेक कष्ट और यातनायें सहीं। दूसरा खंड उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ। उसमें वैशम्पायनजी की जीवनी और संस्मरण श्रीमती ललिता वैशम्पायन ने लिखी है। यह बड़ी प्रेरणादायक है। इससे इस पुस्तक का महत्त्व बढ़ गया है। इस पुस्तक का पढ़ना क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में रुचि रखनेवालों के लिए अनिवार्य है। इसमें आजाद का जो जीवनवृत्त दिया गया है वह भारत के नवयुवकों को सदैव प्रेरणा देता रहेगा। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार हो।

दम्पति वाक्य विलास—गोपालराय कृत प्राचीन काव्य। सम्पादक, डा० चन्द्रभान रावत और डा० राम कुमार खंडेलवाल। प्रकाशक, हिन्दी अकादमी, हैदराबाद। प्रप्तिस्थान, भारतीय पुस्तक भंडार, बेगमबाजार, हैदराबाद (दक्षिण) पृष्ठ संख्या ४७६ + २६ बड़ा आकार मूल्य, १० रुपये।

१९६३ में सरस्वती (अंक ६) में श्री प्रभुदयाल मीतल का 'व्रजभाषा का एक ज्ञान कोश' शीर्षक लेख छपा था। जिसमें इस पुस्तक का विस्तृत परिचय दिया गया था। उसी वर्ष (अंक ६) में श्री अगरचन्द नाहटा का "दम्पति वाक्यविलास के दो प्रकाशित संस्करण" शीर्षक लेख छपा जिसमें उसके सम्बन्ध में अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गयी थी। बहुत दिनों से यह ग्रन्थ अप्राप्य था। अब हैदराबाद की हिन्दी अकादमी ने उसे प्रकाशित कर सुलभ कर दिया है। यह संस्करण वृन्दावन के श्री रंगजी के मन्दिर के श्रीरंगलक्ष्मी पुस्तकालय की एक हस्तलिखित प्रति, हैदराबाद में मिली एक अन्य प्रति तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। सबसे बड़ी और संपूर्ण प्रति वृन्दावन वाली प्रति है। वेंकटेश्वरप्रेस ने कृष्णगढ़ में प्राप्त एक हस्तलिखित प्रति को छापा था। सम्पादकों ने वृन्दावन वाली प्रति को आधार मानकर पाद-टिप्पणियों में अन्य प्रतियों के पाठों के भेद आदि स्पष्ट कर दिये हैं। वृन्दावन वाली प्रति की पुष्पिका से मालूम होता है कि वह प्रति कवि

ने स्वयं लिखी थी। वह प्रामाणिक और उसका अंतिम रूप है।

रीतिकालीन युग के अंतिम चरण में लिखी यह पुस्तक बड़ी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका विषय अनोखा है। इसमें पुरुष और स्त्री का वार्तालाप है। पुरुष बेकार और दरिद्री है। वह कहता है—

तन तें उद्यम होत है, उद्यम तें धन होत
धन तें सुख जस पाइए, यातें नाम उदोत।
यातें उद्यम करन सें कबहुँ रोकिए नाहिं
धन की प्रापति पाइए प्यारी याके माहिं।
बिना गये परदेश के धन प्रापति नहिं होइ
धन प्रापति बिन जगत में क्यों सुख पावै कोइ?

तब पुरुष अनेक स्थानों में जाने तथा अनेक कार्यों को करने का प्रस्ताव करता हुआ उनके लाभ और गुण बतलाता है, किन्तु स्त्री प्रत्येक प्रस्तावित कार्य का दोष बतलाती है। इसमें तत्कालीन समाज के सभी कार्य-कलापों की चर्चा हो जाती है। यही कारण है कि यह तत्कालीन समाज का दर्पण बन गया है। इससे मालूम होता है कि उस समय लोग जीविकोपार्जन के लिए क्या-क्या काम किया करते थे। और निम्न मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए कौन-कौन से रोजगार खुले हुए थे। प्रकारान्तर से उस समय की सामाजिक और आर्थिक अवस्था का भी पता लगता है। यह ग्रंथ अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखा गया था। मुगल साम्राज्य का पतन हो चुका था, अराजकता फैल रही थी और पूर्व तथा दक्षिण से अंग्रेजों का साम्राज्य उत्तर भारत में बढ़ रहा था। उस समय की दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है।

धरम तें हीन, श्रो मलीन, परतियलीन,
बिन रुजगार, सब दुख भरने लगे,
कीरति, प्रताप, धन, धान्य पर संपति कौं
आपुस में देखिदेखि नर जरने लगे।
ताप सों तपत, बेटा बाप तें कँपत नाहिं,
खाय कें शपथ झूँठी, पाप करने लगे।
कहत 'गुपाल' बरसै न मेघमाल यातें
कलि की कुचाल सों अकाल परने लगे।

लोगों के चरित्र और सामाजिक मूल्यों के सम्बन्ध में लिखते हैं—

हिंसक हरामजादे, हिजरा, हरीफ़न कौं
चाह रही मीठी मुख आगें कहै तिनकी।
कपटी कुकर्मी, डिम्मधारी और डिफानिन की
अति पुष्ट स्यानिन की, लिये रहै मन की।
कहत 'गुपाल' चतुराई की न बूझ रही,
रह गई चाह भारी चोर चुगलन की।
खुश मसखरी श्रो खुशामदी बरामदी की
अब कलिकाल में कमाई रही इनकी।

तब से अब समाज के चरित्र में कितना परिवर्तन हो पाया है?

लगे हाथ अंग्रेजों के सम्बन्ध में भी इस दम्पति की राय पढ़ लीजिए। पुरुष फिरंगीराज की प्रशंसा में कहता है:

डाड़त न काहू, कभी मारत न काहू, पाप
करै जाई दैइं दण्ड, रहै न विजाज में।
नाहर औ गाय घाट एक पानी प्यावैं निज
धरम कों जाने, जंग जोरत अवाज़ में।
'सुकवि गुपाल' चंदा, रोजी ना जमीन कहूँ
काहू की दई कौं न लगावें परकाज में।
करैं न अकाज, डर गए सब भाजि, भए
राम के से राज, अँगरेजन के राज में।

और स्त्री उनके दोषों का वर्णन करती हुई कहती है—

घर-घर फूट औ फरेब, झूँठ-साँच, बरकत
नहिं नेक, या में साँसे रहैं नाज के।
चोर निर्भय, अरु साह घिरे फिरें, इल-
जाम लगें यामें, नेंक निकरें अवाज के।
'सुकवि गुपाल' भलो बुरो एक भाव, काहू
गुन की न बूझ, रुजगारन लिहाज के।
खिचैं महाराजा, प्रजा दुखित निलाज कहै
जात न अकाज अंगरेजन के राज के।

इस प्रकार इसमें जनता के रोजी-रोजगार से तथा उस समय के शासन एवं समाज से संबंधित प्रायः सभी बातों की प्रिय और अप्रिय आलोचना की गयी है। साहित्य की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है ही, किन्तु तत्कालीन समाज की अवस्था जानने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

इसके सम्पादक द्वय प्रोफेसर हैं और उन्होंने इसका

सम्पादन केवल शास्त्रीय दृष्टि से किया है। वे उसका प्रामाणिक संस्करण निकालना चाहते थे और पाठभेदों को स्पष्ट करना चाहते थे। इसमें उन्हें सफलता मिली है। यह कार्य थोड़े से साहित्य के गहन अध्येताओं के लिए भले ही उपयोगी हो, सामान्य पाठक के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसके लिए यह आवश्यक था कि इसमें दिये हुए अप्रचलित शब्दों के अर्थ दिये जाते तथा उनके जो बिगड़े हुए रूप (जैसे वे उस समय चलते थे) स्पष्ट किये जाते। उदाहरण के लिए ऊपर के एक छंद में 'डिम्मघाता' शब्द आया है। शायद यह 'दम्भधारी' (पाखंडी) के लिए उस समय प्रयुक्त होता था। सामान्य पाठक इसे न समझ सकेगा। इसमें ऐसे कितने ही उद्यमों के नाम हैं जिनको समझना सामान्य पाठक के लिए कठिन है। पाद टिप्पणियों में उनका स्पष्टीकरण होना चाहिए था। यह संस्करण इस ग्रन्थ को जीवित रखने में तो सफल होगा, किंतु अनेक शब्दों के अर्थों तथा उस समय के अनेक रोजगारों के स्पष्टीकरण के बिना सामान्य पाठक इससे जैसा चाहिए वैसा लाभ न उठा सकेगा। हमारे प्रोफेसर शास्त्रीय अध्ययन में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे सामान्य पाठकों की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। इससे उनके सम्पादित ग्रन्थ विश्वविद्यालयों और कालिजों के पुस्तकालयों तक ही सीमित रह जाते हैं। जनता को उनकी विद्वता का लाभ नहीं मिलता।

प्राचीन हिन्दी काव्य में तथा आज से डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व की सामाजिक अवस्था में रुचि रखनेवालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए।

मनसुखा—(व्रजभाषा गद्य में उपन्यास) लेखक, श्री श्यामसुंदर सुमन। प्रकाशक, श्री सुमन साहित्य प्रकाशन मदिर, मथुरा। मूल्य, दो रुपये पचास पैसे।

एक युग में व्रजभाषा का सारे उत्तर भारत में प्रचार और प्रसार हुआ था और आज भी उसका सांस्कृतिक तथा विद्या के क्षेत्रों में बड़ा प्रतिष्ठित स्थान है, किंतु वह प्रचार-प्रसार पद्य द्वारा ही हुआ। चौरासी वैष्णवों की वार्ता और लल्लूलालजी के प्रेमसागर के बाद, जहाँ तक हमें मालूम है, अनूपजी ही ने 'फेरि मिलिबो' व्रजभाषा गद्य में लिखा था। अब देश के व्यापक हित में सब लोगों ने खड़ीबोली गद्य को स्वीकार कर लिया है, और इसीलिए व्रजभापा में गद्य नहीं लिखा जाता। किंतु इधर कुछ दिनों से हिन्दी के विविध उपरूपों या बोलियों को सामने लाकर उन्हें खड़ीबोली का प्रतिद्वन्द्वी बनाया जा रहा है। हिन्दी की इन उपभापाओं और बोलियों के प्रेमी होने के बावजूद हम इस प्रवृत्ति को अशुभ और देश की एकता तथा हिन्दी के व्यापक हितों के लिए अकल्याणकारी समझते हैं। यदि हम देश की एकता और राष्ट्रभाषा हिन्दी को कमजोर नहीं कर देना चाहते तो इस तथाकथित 'जनपदीय' प्रवृत्ति पर हमें स्वेच्छा से रोक लगानी पड़ेगी। अभी हमारी सारी शक्ति राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने में और उसे देश ही की नहीं, संसार की अन्य उन्नत भाषाओं में उसका उचित स्थान दिलाने में लगाना चाहिए। हमें अपनी सीमित शक्ति और साधनों का उपयोग उसी उद्देश्य की पूर्ति में करना उचित है।

अन्य उपभाषाओं की हलचलों की प्रतिक्रिया व्रज भाषा-भाषियों पर भी हुई मालूम होती है और यह पुस्तक उसका परिणाम है। श्री सुमन ने व्रजभाषा गद्य में यह उपन्यास लिखने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि व्रजभाषा गद्य में इस प्रकार की चीज रोचक ढंग से लिखी जा सकती है।

मनसुखा व्रज का एक बड़ा लोकप्रिय पात्र (कैरेक्टर) है जिसे रासमंडलियों ने सारे देश से परिचित करा दिया है। वह हास्य रस का अलंबन है। इस कथा में भी उसे आधुनिक वातावरण में अपनी भूमिका निभाने का अवसर दिया गया है जो उसने बड़ी खूबी से निवाही है। उसकी चेष्टाओं और कार्यों से सरल लोगों का बड़ा मनोरंजन होगा। कहानी में प्रवाह है और भाषा मथुरा तथा उसके आसपास बोली जानेवाली व्रजभापा है। जिस प्रकार व्रजभाषा के पद्य का एक मानक रूप बन गया था, वैसा व्रज भाषा गद्य का नहीं बन पाया। किन्तु यदि व्रज में गद्य लिखने की परम्परा बन गयी तो एक दिन वह भी बन जायगा। श्री सुमन को इस हास्यरस की कहानी को व्रजभाषा गद्य में सफलतापूर्वक लिखने के लिए बधाई है।

शिक्षा का विकास—लेखक, श्री भगवानप्रसाद। प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली—१; पृष्ठ संख्या १५०, मूल्य ३ रुपये,

पुस्तक के लेखक सिकिम में शिक्षा-निदेशक थे और

उन्हें भारतीय शिक्षा-प्रणाली का काफी अनुभव है। यह परिचयात्मक पुस्तक है। इसमें भारतीय शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास और अंग्रेजों के समय से अब तक के उसके विकास का कुछ अधिक विस्तृत वर्णन दिया गया है। जो लोग देश की शिक्षा-प्रणाली के विकास को संक्षेप में समझना चाहते हैं, तथा जो उसकी वर्तमान अवस्था तथा इसकी समस्याओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह बहुत उपयोगी है। इसके तथ्य प्रामाणिक हैं तथा वह वस्तुनिष्ठ दृष्टि से लिखी गयी है। शिक्षा शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है।

शक्ति और इंजन—लेखक श्रीकृष्णगोपाल, प्रकाशक, आत्माराम एंड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली—६; पृष्ठ-संख्या १११। अनेक उपयोगी और स्पष्ट चित्र, अच्छी छपाई। आकर्षक आवरण, मूल्य दो रुपये।

विज्ञान की पुस्तकें बहुधा पारिभाषिक शब्दावलियों से इतनी बोझिल होती हैं तथा उनमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर इतना जोर दिया जाता है कि सामान्य पाठकों के लिए वे दुरूह हो जाती है। यह पुस्तक उनका अपवाद है। इसमें 'शक्ति' का उपयोग समझाया गया है। आदिम मनुष्य पेड़ के मोटे लट्ठे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए एक लकड़ी से सहायता लेकर उसको लट्ठे के नीचे लगाकर वह काम कर लेता था जो वह केवल बाहुबल से न कर पाता। इस लकड़ी के टेक ने उसकी शक्ति को एक स्थान पर ऐसा केन्द्रित कर दिया कि वह उसे हटा सका। शक्ति मनुष्य की बाहु ही में नहीं, हवा, पानी, भाप, बिजली आदि में भी है। इनकी शक्ति का मनुष्य ने किस प्रकार उपयोग करके बड़े बड़े कल-कारखाने चलाये और किस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति कर दी—यह बड़ा मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक विषय है। इस पुस्तक में यही विषय समझाया गया है। भाषा बड़ी सरल, और इसकी शैली इतनी स्पष्ट है कि पाठक को जटिल बातों के समझने में भी कठिनाई नहीं होती। सुंदर और स्पष्ट चित्र इस काम में बड़े सहायक हैं। जनता में विज्ञान का प्रचार करने तथा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए इस प्रकार की पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है।

ऑक्सीजन और जीवन—लेखक, श्री रामेश्वर भटनागर; प्रकाशक; आत्माराम एण्ड सन्स; काश्मीरी गेट, दिल्ली—६, आकर्षक आवरण, सुंदर और स्पष्ट चित्र। पृष्ठ-संख्या ९८, मूल्य २ रुपये।

जो बातें हमने ऊपर की पुस्तक के संबंध में कही हैं, वे इस पर भी लागू हैं, वायु में जो ऑक्सिजन गैस है वही वायु का प्राण-दायक अंश है। बहुत लोग उसके बारे में बहुत कम जानते हैं। उसका हमारे जीवन और स्वास्थ्य से सीधा संबंध है। सूर्य की किरणों का तथा वनस्पति से भी उसका घनिष्ठ संबंध है। ये सब आवश्यक और मनोरंजक बातें बड़े सरल ढंग से इस पुस्तक में बतलायी गयी हैं। इसमें जो चित्र दिये गये हैं वे प्रचुर संख्या में हैं तथा वे पुस्तक की बातों को समझने में बड़ी सहायता करते हैं। इस पुस्तक का विषय ऐसा है जिसकी जानकारी सभी लोगों के लिए आवश्यक है, और यह इस ढंग से लिखी गयी है कि सभी लोग—सामान्य पाठक और विद्यार्थी—इससे समान रूप से लाभ उठा सकते हैं।

कालिख और लाली—(एकांकी-संग्रह), लेखक राजेन्द्र कुमार शर्मा, प्रकाशक आत्माराम ऐण्ड सन्स, पृष्ठ संख्या १११, मूल्य रु० २·००। कालिख और लाली, ए क्लास दिल्ली, तलाक ब्यूरो, पहली अप्रैल आदि आठ एकांकी नाटकों का यह संग्रह है। "पहली अप्रैल" के अतिरिक्त शेष सात एकांकी रंगमंचित किये जा चुके हैं। लेखक के अनुसार इन एकांकियों में से कई मूल रूप से रंगमंच के लिये लिखे गये थे और बाद में इनका रेडियो रूपान्तर किया गया, और शेष मूल रूप से आकाशवाणी के लिए लिखे गये और बाद में उनको रंगमंचीय नाटक में ढाला गया।

इन एकांकियों में उच्चमध्यवर्ग और मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन के विद्रूपों का चित्रण हुआ है। लेखक का दृष्टिकोण विनोदमय होने पर भी दिल्ली के व्यस्त जीवन की कृत्रिमता में संयम और निष्ठा की खोज की ओर कर रहा है और इसी कारण इन कृतियों को सार्थकता और सफलता मिली है। फ़ेयरवेल, ड्राईफ्रूट, रोमांस, शट अप आदि शब्दों का व्यवहार कई एकांकियों को समाज के एक विशेष वर्ग के ही लिये उपयोगी बनाता है। पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है। रा. ना. पा.

अँगूठा की छाप

निरालाजी बड़े मौजी थे। उन्हें जो बात सूझ जाय, वही करने लगते और कभी-कभी यह सनक महीनो या वर्षों चलती। एक बार उन्हे अंग्रेजी बोलने की धुन सवार हुई। वे सबसे अँग्रेजी में बोलते और हस्ताक्षर भी अँग्रेजी में करते। इसी तरह एक बार उन्हे यह धुन सवार हुई कि मैं हस्ताक्षर न करूँगा। यह सनक भी कई महीनों रही। समाचारपत्रों से उनकी कविता के पारिश्रमिक मनीआर्डर द्वारा आते, किन्तु मनीआर्डर पर हस्ताक्षर न करने के कारण डाकिया उन्हें रुपया न देता। किन्तु निरालाजी को इसकी परवाह न थी। उन्ही दिनों एक सज्जन ने हमें पत्र लिखा कि मैं विशिष्ट व्यक्तियों के हस्ताक्षर सग्रह कर रहा हूँ और निरालाजी का भी हस्ताक्षर चाहता हूँ। आप कृपा कर साथ के कार्डों पर उनके हस्ताक्षर करा कर भेज दे। उन्होने साथ में दो बढ़िया सादे 'विजिटिंग कार्ड' भी भेजे। हम जानते थे कि निरालाजी को उन दिनो हस्ताक्षर न करने की सनक है और वे हस्ताक्षर न करेंगे। मैंने उनसे सीधे कहना उचित नहीं समझा। मेरे भतीजे श्रीध्रुवनाथ को वे बहुत मानते थे क्योंकि उसका संस्कृत श्लोक पाठ उन्हे बहुत प्रिय था और वे उससे बहुधा श्लोक सुना करते थे। मैंने उसे उन दोनों कार्डो को देकर उनके पास भेजा। उसने उनसे जाकर निवेदन किया कि मैंने उसे उन कार्डो पर हस्ताक्षर कर देने के लिए भेजा है। निरालाजी कब हस्ताक्षर करनेवाले थे। किंतु आग्रह की रक्षा भी करना चाहते थे। बोले—"जाइके भैयासाहब से कह देउ कि हम हस्ताक्षर नही करित। कहें तो इस पर अँगूठा की छाप लगाइ देई।" हम पहले ही से जानते थे कि उस सनक मे उनसे हस्ताक्षर न मिलेगे। किंतु उस समय हमारे पास अँगूठे की छाप लेनेवाली स्याही नही थी। हमे खेद है कि हम महाकवि के अगूठे की छाप न ले सके। वह भी एक अनोखी संग्रहणीय वस्तु होती।

ओरछा नरेश की उदारता

ओरछा नरेश स्वर्गीय महाराज वीरसिंहजी देव को काव्य और कला मे बड़ी अभिरुचि थी और वे इनके बड़े पारखी थे। एक बार राजस्थान से एक चित्रकार टीकमगढ़ गया। वह चाहता था कि वह महाराज का एक चित्र बनावे और उनसे इनाम, प्राप्त करे। वह वहाँ बहुत दिनो ठहरा रहा, किन्तु महाराज तक उसकी पहुँच न हो सकी। सयोग से उसकी भेंट श्री कृष्णानन्द गुप्त से हो गयी जो उन दिनों वहाँ रहते थे। उन्हें उस पर दया आयी और उन्होने महाराज से उसकी चर्चा की। महाराज ने उसे बुलवाया। वह अपने साथ अपने बनाये चित्र भी ले गया था। उन्हे देखकर महाराज ने उससे कहा—मै आपसे अपना चित्र नही बनवाऊँगा। वह चित्रकार बड़ा निराश होकर महल से लौटा। महाराज को मालूम था कि वह कई सप्ताह से टीकमगढ़ मे ठहरा हुआ है और बड़ी आशा लेकर आया था। महाराज ने उसे बिदाई में कई सौ रुपये भिजवा दिये। उसे बड़ी आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई। उसने गुप्त जी से कहा कि महाराज ने बिदाई में जितने रुपये दिये हैं उतने मैं उनका चित्र बनाकर भी पाने की आशा न करता था। महाराज को चित्रकार की कला नही जँची, किंतु उस कला के साधक को उचित सम्मान देना वे आवश्यक समझते थे। उनका उदार हृदय उस कलाकार को निराश नही कर सकता था।

१९१३ की सरस्वती

नज़ीर अकबराबादी

पं० गिरधर शर्मा

उर्दू-साहित्य के बाग़ में अनेक कवि-कोकिलों ने अपना-अपना मधुर आलाप सुनाया। परन्तु जो गान नजीर ने गाये वे किसी से भी गाये नहीं गये। ज़ुल्फ़, जुदाई, नाज़, जाना, बेवफाई, मैंकशी, हुस्न वग़ैरह-वग़ैरह के तरानों से आगे बढ़कर बहुत कम कवियों ने पैर रक्खा। परन्तु नज़ीर ने ईश्वर की प्रत्येक प्रकार की सृष्टि में सौन्दर्य की झलक देखी और जिस बात पर क़लम उठाई उसका चित्र खींच दिया। नजीर का नाम शेख़ वली मोहम्मद था। वे अकबराबाद (आगरा) के रहनेवाले थे। उनका जन्म कहाँ, कब और किस माँ के पेट से हुआ इसका कुछ पता नहीं चलता। 'जिन्दगानी-बे नजीर' के लेखक के मतानुसार उनके पिता का नाम मुहम्मद फर्रूख पाया जाता है।

नज़ीर आलिम आदमी थे। उन्होंने कभी किसी अमीर उमरा के दरबार में जाकर हाँ-हुज़ूरी का काम नहीं किया। यही कारण है कि उनका हाल जियादहतर किताबों में लिखा हुआ नहीं मिलता। नजीर को हुए बहुत अर्सा नहीं हुआ। उनको अपनी आँखों से देखने वाले बूढ़े लोग अब तक कहीं-कहीं पाये जाते हैं। मैंने गई रात को ही (२४-१-१९१३) अपने मित्र श्रीयुत हरगोविन्द प्रसाद निगम एम० ए० की जबानी सुना है कि नज़ीर तीन रुपये महीने लेकर एक विद्यार्थी को पढ़ाते थे। ऐसी अवस्था में उन्हें एक श्रीमान् के यहाँ से ८०) रु० महीने देने की जगह का सन्देशा आया। इस पर नज़ीर ने कहा कि वर्तमान मालिक की इजाजत के बिना मैं दूसरी जगह नौकरी नहीं कर सकता। जब नजीर ने मालिक से पूछा तो तीन रुपये महीने के अलावा नजीर को रोटियाँ भी रोज मिलने लगीं, इसी को अपनी तरक्की समझा और ३) माहवार नकद और रोजाना रोटियों पर ही विद्यार्थी पढ़ाते रहे।

सम्भव है, नज़ीर की कोई निज की पाठशाला रही हो। उसमें बहुत से विद्यार्थी पढ़ते रहे हों और अपनी शक्ति और श्रद्धा से नजीर की सेवा करते रहे हों। इसी से शायद उन्हें किसी के अधीन रहना अखरता होगा। और संभव है इसी से वे हाँ-हुज़ूरी से दूर रहे हों।

कविता के विषय में नज़ीर किसी के शिष्य नहीं हुए। और यदि हुए भी हों तो इस बात का कुछ पता नहीं चलता। लोगों का ख़याल है कि यदि ये शिष्य होते भी तो मीर के होते। नज़ीर एक ऐसे कवि समाज में सम्मिलित हुए थे जिसमें मीर भी थे। और मीर ने आपके शैर को पसद भी किया था। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आप उनके शिष्य थे। मैं तो जोर के साथ कह सकता हूँ कि वे मीर के या उसी प्रकार के और किसी कवि के शिष्य हो ही नहीं सकते क्योंकि कहाँ मीर का रंग और कहाँ उर्दू-कविता को नई पोशाक पहनाने वाले नज़ीर की सौन्दर्य सृष्टि।

ऊँची कोटि के कवियों में सौन्दर्योपासना स्वाभाविक होती है। वे बाह्य और आभ्यन्तर सौन्दर्य के उपासक होते हैं। उनकी उपासना परम पवित्र और जगन्मङ्गलकारिणी होती है। साधारण मनुष्यों की गति उनके विचारों तक नहीं पहुँचती। एक बार नज़ीर किसी बाग़ में टहल रहे थे। इतने में वहाँ एक अत्यन्त रूपवती सुन्दरी आई। उसे देखते ही उन्होंने उसे सम्बोधन कर यह मिसरा पढ़ा—

> करम करदन ब हवाले ग़रीबाँ।
> ज़ दिलदाराँ ज़ दिलदारी तवाँ गुफ़्॥

थोड़ी देर बाद उस सुन्दरी ने जाना चाहा। तब उसकी बाँह पकड़कर उसे ठहरा लिया। जब उसने कहा कि जनाब, मेरी तबियत चाहती है कि मैं उठकर चल दूँ तब नज़ीर कहने लगे कि मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हें न जाने दूँ।

सुन्दरी—क्या मुझ पर आप मोहित हैं?

नजीर—मैं तो पारसा अर्थात् पवित्र भक्त हूँ।

सुन्दरी—तो रिन्द (मस्त, बेपरवा, धर्म मर्यादा को उल्लंघन करनेवाला, मन से पवित्र और ऊपर से मनमानी करनेवाला) हो जाओ।

नजीर—अभी तक तो ऐसा नहीं हुआ।

सुन्दरी—अब हो जाओ।

नजीर—अबकी खुदा जाने।

इतना सुनकर वह सुन्दरी चल दी। नजीर सौन्दर्य के उपासक थे सो भी पवित्र भावों से भरे हुए। उनकी उपासना काम-जन्य न थी। उनके चित्त पर इस सुन्दरी की बातों का कुछ भी बुरा असर न पड़ा।

नजीर ने ऋतु-वर्णन, संसार की नश्वरता, ईश्वर की महत्ता, रोटीनामा, बुढ़ापा, मेला वगैरह बहुत से विषयों पर कविता लिखी है और खूब नैसर्गिक वर्णन किया है। इनके नैसर्गिक वर्णन को देखकर सहसा मुँह से निकल पड़ता है कि धन्य उर्दू साहित्य के शेक्सपियर! शेक्सपियर के काव्य पढ़ने से यह पता लगता है कि उसके हृदय में विजातीय मनुष्यों से घृणा थी। उसने 'मर्चेण्ट आफ वीनिस' में यहूदी शैलाक का कैसा चित्र उतारा है। परंतु नजीर के मुँह से 'कृष्ण कन्हैया का बालपन' सुनकर कौन ऐसा वेतास्सुब मनुष्य है जो मजे में आकर सर न हिलाने लगे।

नजीर अर्बी के मौलवी और फ़ार्सी के फ़ाजिल थे। परन्तु उन्होंने उर्दू इतनी अच्छी लिखी है कि बारबार पढ़ने को जी चाहता है। नजीर की कविता में कुछ ऐसी माधुरी है कि कहते नहीं बनता। सरस्वती के रसिकों के चित्त-विनोदार्थ "कुल्लियात नजीर" (नज़ीर के सर्वसंग्रह) से कुछ कविता यहाँ पर हम लिखते हैं और आशा करते हैं कि पाठक नजीर को दिव्य रूप में, देख पावेंगे। लक्ष्मी को कोई सरपर बाँधकर नहीं ले जा सकता। मनुष्य को चाहिए कि लक्ष्मी को पाकर फूल न जाय। खा ले, दे ले और अच्छे कामों में भोग ले। एक संस्कृत-कवि ने कहा है :—

"दानं भोगो नाशास्तिस्यो गतयो भवन्ति वित्तस्य"

नजीर अपनी "बाबा" वाली कविता में लिखते हैं:—

(१) ज़र की जो मुहब्बत तुझे पड़ जायगी बाबा।
दुख इसमें तेरी रूह बहुत पायेगी बाबा॥
हर खाने को हर पीने को तरसायेगी बाबा।
दौलत जो तेरी याँ है न काम आयेगी बाबा॥
फिर क्या तुझे अल्लाह से मिलवायेगी बाबा।

(२) दौलत जो तेरे पास है रख याद तू ये बात।
खा तू भी और कर खुदा की राह में खैरात॥
देने से इसीके तेरा ऊँचा रहेगा हात।
और याँ भी तेरी गुज़रेगी सौ ऐशसे औक़ात॥
और वाँ भी तुझे सैर ये दिखायेगी बाबा।

(३) यह तो न किसी पास रही है न रहेगी।
जो और से करती रही तुझसे भी करेगी॥
कुछ शक नहीं इसमें जो बढ़ी है वह घटेगी।
जब तक तू जियेगा' तुझे वह चैन न देगी॥
और मरते हुए फिर ये गजब लायेगी बाबा।

सर्व खल्विदंब्रह्म—के विचार को भी नजीर ने अपनी कविता में गूँथा है। उसका उदाहरण सुनिए :—

तनहा न उसे अपने दिले तंग में पहचान।
हर बाग़ में हर दश्त[1] में हर संग में पहचान॥
बेरंग में बारंग में नेरंग में पहचान।
मंज़िल में मकामात में हर संग[2] में पहचान॥
हर आन में हर बान में हर ढंग में पहचान।
आशिक है तो दिलबर को हर इक रंग में पहचान॥

नजीर ने एक बे-नजीर कविता प्यारे कृष्ण के बालपन पर लिखी है। पाठक देखिए कैसी अमृतमयी कविता है :—

(१) यारो सुनो यह दूध खवैया का बालपन।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन॥
मोहन सरूप निरत करैया का बालपन।
बन-बन के ग्वाल गोधन चरैया का बालपन॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥

(२) ज़ाहिर में सुत वो नन्द यशोदा के आप थे।
वरना वो आप ही माई और आप ही बाप थे॥
पर्दे में बालपन के ये उनके मिलाप थे।
जोती स्वरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे॥

---

१. जंगल।

२. कोश।

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥

(३) उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा ।
संसार की जो रीति थी उसको रखा बज़ा ॥
मालिक थे वो तो आप उन्हें बालपन से क्या ।
वहाँ बालपन जवानी बुढ़ापा सब एक था ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥

(४) ग्वाले हो बिरजराज जो दुनिया में आ गये ।
लेली के लाख रंग तमाशे दिखा गये ॥
इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये ।
इक ये भी लहर थी कि जहाँ को जता गये ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या-क्या कहूँ में कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥

(५) यों बालपन तो होता है हर तिफ्ल का भला ।
पर उनके बालपन में कुछ और भेद था॥
इस भेद का भला जो किसी को ख़बर है क्या ।
क्या जाने अपने खेलने आये थे क्या भला ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥

इस कविता को हम पढ़ते-पढ़ते तल्लीन हो गये। सहसा मुख से निकल पड़ा—धन्य भक्त शिरोमणि नज़ीर, धन्य ! और आँखें प्रेमाश्रु से भर आईं। नजीर की वह प्रेमोन्मादमयी मूर्ति आँखों के सामने आ गई और हृदय की दशा विचित्र हो गई। पाठक, नज़ीर की ये पंक्तियाँ, आपही कहिये कैसी हैं :—

इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये।
× × ×
लेली के लाख रंगो तमाशे दिखा गये ॥

यही कविता है जो मनुष्य के हृदय में उन्माद उत्पन्न कर दे ।

नज़ीर ने 'बरसात की बहारें', 'मुफलसी', 'बनजारे नामा' आदि और भी बहुत सी कवितायें लिखी हैं। जो पाठक उर्दू पढ़ सकते है उन्हें कुल्लियाते नजीर पढ़ना चाहिए। अब हम नजीर के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं :—

सब मिल के यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जय
गोविन्द छैल कुंज विहारी की बोलो जय
दधिचोर, कालीनाथ विहारी की बोलो जय
तुम भी नज़ीर कृष्ण मुरारी की बोलो जय

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

दो अनमोल काव्य-संग्रह

चित्रा

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ८६, मूल्य २·७५

यह कवि की विचित्र कवितायें हैं। कहीं ग्राम-वधू और ग्राम-कन्या का चित्रण है तो कहीं लहरों और हिमाद्रि का परिचय, कहीं प्रेमी-जीवन की झलक है। कविता पढ़ते-पढ़ते जैसे पाठक सचमुच ग्रामवासी वन ग्राम-वधू को महुआ विनते देख रहा है। चित्रा के समस्त चित्र सुन्दर और कलात्मक हैं। इसके गीत वड़े ही भावपूर्ण हैं।

कविता की वानगी देखें—

सुन सकोगे तुम समय दे, सुन सकोगे तुम हृदय दे।
और अपने भाव भी क्या शब्द भी वन जायँगे प्रिय ?
चाहता मैं कुछ न गाऊँ गीत वन जाता अचानक,
और तुम हो मौन क्या कुछ स्वर नहीं उठते तुम्हारे ?
अरुण चरणों की मधुर सुधि है हमें पागल बनाती
किन्तु तुम तो घूमते हो दूर यमुना के किनारे।

वासन्ती

रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी

सजिल्द, पृष्ठ संख्या ११७, मूल्य ३·००

इस संग्रह में कवि की कितनी ही वढ़िया कविताएँ हैं। किसी में वसन्त है, किसी में मन को सदुपदेश हैं, किसी में प्रेम की सरसता है और किसी में कोयल की कुहू ध्वनि का सुन्दर वर्णन है। कविता-प्रेमियों को यह संग्रह वहुत पसंद आयेगा।

कविता का नमूना देखें—

लो समेट यह अपनी करुणा !
मरुथल ही मैं भला यहाँ हूँ वने न दृग ये गलगल वरुणा।
हूँ विदग्ध, हैं दग्ध अधर पुट, वँधता नहीं अभी कर-संपुट।
दो मधु का मतदान जले को, अपनी प्रीति करो मत अरुणा।
ले लो अपना सुरा पात्र ये, दो न मुझे तुम वूंद मात्र ये;
प्यास वुझ चुकी है प्राणों की, फिर न जगाओ तृष्णा करुणा !

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0.65 Paise July 1969 SARASWATI—Reg.

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर २१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएं, ६० कहानी-लेखकों की कहानियां तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१६ रु०—डाक व्यय—२·१० पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—३० रु०—डाक व्यय—२·७० पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—१२ रु०, डाक व्यय के लिए २·१० पैसे अतिरिक्त]

माननीय श्री श्रीमन्नारायण (भारतीय राजदूत, नेपाल)

"यह अंक सचमुच बहुत उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। सरस्वती के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अपूर्व सेवा हुई है उसकी झलक इस अंक द्वारा मिलती है।"

पद्मभूषण श्री सुमित्रानन्दन पंत

निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिंदी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह हिंदी साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूं। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम बकदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्यसेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग